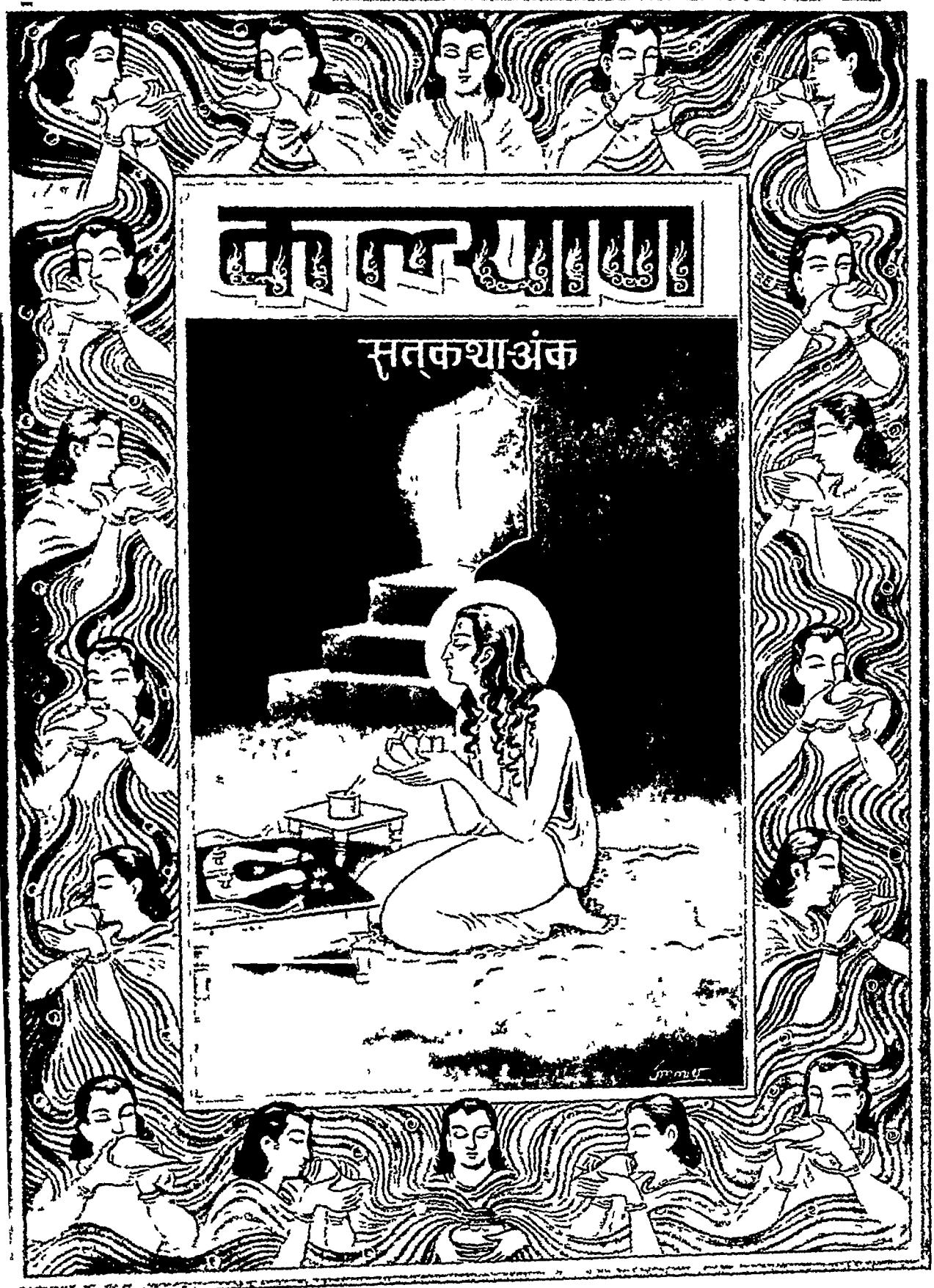


कामरुपी

स्त्रीकथा अंक





COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

'सत्-कथा-अङ्क' की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१—सत्कथाओंके मूल स्रोत और संतोंके परम ध्येय [कविता] (पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री शर्मा) १		३०—शारीरमें अनासत्त भगवद्भक्तको कहीं भय नहीं (सु० सिं०) ४५	
२—मूर्तिमान् सत् [श्रीभरतजी] ३		३१—समस्त लौकिक-पारलौकिक सुखोंकी प्राप्तिका साधन भगवद्भक्ति (सु० सिं०) ४७	
३—सत्कथाकी महिमा (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) १०		३२—आर्त जगत्के आश्रय [भगवान् नारायण] ४९	
४—जीवनका वास्तविक वरदान (पं० श्रीजानकी- नाथजी शर्मा) १५		३३—ऐसों को उदार जग माहों (सु० सिं०) ५०	
५—सत्कथाओंकी लोकोत्तर महत्ता एवं उपयोगिता (पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा) १७		३४—श्रीराधार्जीके हृदयमें चरण-कमल (जा० शा०) ५०	
६—सत्कथाका महत्व (हनुमानप्रसाद पोद्धार) १८		३५—पेट-दर्दकी विचित्र औपथ (,,,) ५१	
७—देवताओंका अभिमान और परमेश्वर (पण्डित श्रीजानकीनाथजी शर्मा) २५		३६—आर्त पुकार द्यामय अवश्य सुनते हैं (सु० सिं०) ५२	
८—यमके द्वारपर (पं० श्रीशिवनाथजी दुवे, साहित्यरत्न) २६		३७—धन्य कौन (जा० शा०) ५३	
९—आपद्रम्म (जा० शा०) २८		३८—दुर्योधनके मेवा त्वागे (सु० सिं०) ५५	
१०—गोसेवासे ब्रह्मज्ञान (" ") २९		३९—भगवान् या उनका वल ? (" ") ५६	
११—अग्नियोद्दारा उपदेश (" ") ३०		४०—श्रीकृष्णका निजस्वरूप-दर्शन (जा० शा०) ५७	
१२—गाढ़ीवालेका ज्ञान (" ") ३०		४१—हनुमान् जीके अत्यल्प गर्वका मूलसे संहार (जा० शा०) ५९	
१३—एक अक्षरसे तीन उपदेश (" ") ३१		४२—दीर्घायुष्य एवं मोक्षके हेतुभूत भगवान् शङ्करकी आराधना (जा० शा०) ६०	
१४—कुमारी केशिनीका त्वाग और प्रह्लादका न्याय (पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा) ३२		४३—एकमात्र कर्तव्य क्या है ? (" ") ६१	
१५—धीरताकी पराकाष्ठा [मयूरध्वजका वलिदान]		४४—भगवान् सरल भाव चाहते हैं (सु० सिं०) ६३	
१६—मेरे राज्यमें न चोर हैं न कृपण हैं, न शशीवी हैं न व्यभिचारी हैं (जा० शा०) ३४		४५—भगवान् की प्राप्तिका उपाय (रा० श्री०) ६४	
१७—वह तुम ही हो (" ") ३५		४६—महापुरुषोंके अपमानसेपतन (सु० सिं०) ६५	
१८—सर्वथ्रेष्ठ ब्रह्मनिष्ठ (" ") ३६		४७—गुरुसेवा विद्या-प्राप्ति (" ") ६६	
१९—सर्वोत्तम धन (" ") ३६		४८—गुरुसेवा और उसका फल (" ") ६७	
२०—ब्रह्म क्या है ? (" ") ३७		४९—बड़ोंके सम्मानका शुभ फल (" ") ६८	
२१—पश्चात्तापका परिणाम (श्रीरामललजी) ३८		५०—लक्ष्मी कहाँ रहती है ? (जा० शा०) ६९	
२२—उसने सच कहा (" ") ३९		५१—धर्मों रक्षति रक्षितः (सु० सिं०) ७१	
२३—सत्य-पालन (" ") ४०		५२—भगवान् कहाँ-कहाँ रहते हैं ? (" ") ७२	
२४—उपासनाका फल (" ") ४१		५३—धर्मनिष्ठ सत्रसे अजेय है (" ") ७४	
२५—योग्यताकी परख (" ") ४२		५४—धर्मरक्षामें प्राप्त विपत्ति भी मङ्गलकारिणी होती है (सु० सिं०) ७६	
२६—सम-वितरण (" ") ४३		५५—धन्य कौन ? (जा० शा०) ७८	
२७—महान् कौन है ? (जा० शा०) ४४		५६—सदाचारसे कल्याण (" ") ७९	
२८—भक्तका स्वभाव (श्रीसुदर्शनसिंहजी) ४४		५७—हमें मृत्युका भय नहीं है (सु० सिं०) ८१	
२९—निष्कामकी कामना—इक्षीस पीढ़ियों तर गया... ४५		५८—नास्तिकताका कुठार (जा० शा०) ८२	
		५९—सदाचारका वल (" ") ८३	

६०—गर्भस्य विशुर भाग्नाके जीवनका गर्भार प्रभाव पड़ता है	(सु० सिं०)	८५	१४—शबरीकी हृदि निशा (जा० श०)	११३
६१—कूटित अक्षरा प्रभाव	(" ")	८६	१५—आमदि कि करणीयन्, सरणीयं चरणयुग्म- मप्रायाः [सुदृश्यनम् लगदम्बाकी कृपा] (जा० श०)	११४
६२—आर्यकन्याका आदर्श	(" ")	८७	१६—कृची निशा [गणेशजीकी कृपा] (रा० श्री०)	११६
६३—आर्यनारीका आदर्श	(" ")	८७	१७—लोभका दुष्परिणाम (तु० सिं०)	११७
६४—मै त्वेच्छासे परपुरुषका सर्व नहीं कर सकता	८८	१८—आदर्श निलौभी	११८	
६५—अँसे आचरणसे नारी पतिको बद्धमें कर लेती है ? (सु० सिं०)	८८	१९—मन्य-पालनकी दृढ़ता (तु० सिं०)	११९	
६६—कृष्णे मर्हीर्य मैत्रेय (जा० श०)	९०	२००—तानिक-सा भी असत्य पुण्यको नष्ट कर देता है (सु० सिं०)	१२०	
६७—मूल-उम्मतीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त (" ")	९१	२०१—इमानदार व्यागारी (" ")	१२०	
६८—अनन्यता—मै किसी भी दूसरे गुरु-माताननिना- को नहीं जानता	९२	२०२—वह सन्य सत्य नहीं, जो निर्दोषकी हत्यामें कारण हो (रा० श्री०)	१२१	
६९—तुम्हारे ही लिये राम बन जा रहे हैं	९३	२०३—जग्नें पशुबलिका समर्थन असत्यका समर्थन है (सु० सिं०)	१२१	
७०—मै समान पानोका धर कौन ? तुम्हारा नाम बाढ़ करने ही पान नष्ट हो जायेगी	९३	२०४—आखेट तथा अनावधारीका दुष्परिणाम (सु० सिं०)	१२२	
७१—मैं तुम्हारा विश्वस्त्री—केवल अमरे अनुग्रह- का बल	९४	२०५—यज्ञमें या देवताके लिये की गयी पशुबलि भी पूर्णोंको नष्ट कर देती है (सु० सिं०)	१२२	
७२—सत्पियोंका त्वाग (जा० श०)	९४	२०६—दूसरोंका अमङ्गल चाहनेमें अपना अमङ्गल पहले होता है (सु० सिं०)	१२३	
७३—नत्यनानके श्रवणका अविकारी (सु० सिं०)	९६	२०७—परेपत्र महान् धर्म (" ")	१२४	
७४—प्रसातर तत्त्वकी विशुर्लंबा (" ")	९७	२०८—अर्जुनकी शणणागातवन्चलता और श्रीकृष्णके साथ युद्ध [नारदजीकी युद्ध-दर्शनोत्सुकता]	१२४	
७५—मुव चमार है	(" ")	२०९—जीणोऽधरका पुण्य (जा० श०)	१२५	
७६—यह सच या वह सच ? (" ")	९८	२१०—ज्वेतका उद्धार (" ")	१२६	
७७—आमका गच्छ कहोतक है ? (जा० श०)	९९	२११—विचित्र परीक्षा (" ")	१२७	
७८—संसारके सम्बन्ध अम्मात्र है (सु० सिं०)	१००	२१२—विलक्षण दानवीरता (सु० सिं०)	१२८	
७९—संतानके मोहसे विपत्ति (" ")	१०१	२१३—योक्ते के अवसरर हर्ष क्यों ? [श्रीकृष्णका अर्जुनके प्रति प्रेम]	१२९	
८०—युक्तेवर्जीका समता	१०२	२१४—उल्लासके समय खिल क्यों ? [श्रीकृष्णका कर्गके प्रति सद्भाव]	१३०	
८१—युक्तेवर्जीना वैराग्य (जा० श०)	१०३	२१५—उत्तम दानकी महत्ता त्वागमें है, न कि संख्यामें	१३१	
८२—त्तेवर्ल	(रा० श्री०)	१०४	११६—भगवती सीताकी शक्ति तथा पराक्रम	१३२
८३—करणीय हुँझ है, सुख नहीं (सु० सिं०)	१०५	११७—वीर माताका आदर्श (सु० सिं०)	१३४	
८४—कृचीजित होना अनर्यकारी है (" ")	१०५	११८—पतिको रणमें भेजते समयका विनोद	१३५	
८५—कामतुक्षिसे विनाश (" ")	१०६	११९—सच्चीक्षमा द्वेषपर विजय पाती है (सु० सिं०)	१३६	
८६—कामवज्र विना विचारे प्रतिज्ञा करनेसे विपत्ति	(जा० श०)	१२०—वीर क्षेत्रमें भी सत्यथपर अदिग गृहनेवाला महापुरुष है (जा० श०)	१३७	
८७—परब्र्हामें आसक्ति मृत्युका कारण होता है	(सु० सिं०)	१२१—सेवा निष्ठाका चमत्कार (सु० सिं०)	१३८	
८८—क्रोध मन करो कोई किसीको मारना नहीं (" ")	१०९			
८९—अमिमानका पाप [ब्रह्माजीका दर्पमङ्ग] (जा० श०)	११०			
९०—मिथ्यामिमान	(सु० सिं०)			
९१—मिदिका गर्व	(रा० श्री०)			
९२—रामनामकी अलौकिक महिमा [वेद्याका उद्धार]	११२			
९३—विद्वासकी विजय [वेदेत मुनिन् शक्तकी इदा] (रा० श्री०)	११३			

१२२—सत्कारसे शशु मी मित्र हो जाते हैं (सु० सिं०)	१३९	१५६—सच्चे सतका शाप भी मङ्गलकारी होता है (सु० सिं०)	१६९
१२३—अतिथि-सल्कारका प्रभाव (" ")	१४०		
१२४—विचित्र आतिथ्य (जा० शा०)	१४१	१५७—क्षणभरका कुसङ्ग भी पतनका कारण होता है (" ")	१७०
१२५—सम्मान तथा मधुर भाषणसे राक्षस भी वशीभृत (जा० शा०)	१४२	१५८—क्षणभरका सत्सङ्ग कल्पित जीवनको भी परमोज्ज्वल कर देता है (" ")	१७०
१२६—चाढ़कारिता अनर्थकारिणी है (सु० सिं०)	१४२	१५९—किसीको धर्ममें लगाना ही उसपर सच्ची कृपा करना है (" ")	१७२
१२७—मैत्री-निर्वाह [कर्णकी महत्ता] (" ")	१४३	१६०—धैर्यव-सङ्गका श्रेष्ठ फल (रा० श्री०)	१७२
१२८—अलौकिक भ्रातृ-प्रेम (" ")	१४५	१६१—चित्रध्वजसे चित्रकला	१७३
१२९—अनोखा प्रमुखिका और प्रमुखीति	१४६		
१३०—विश्वास हो तो भगवान् सदा समीप हैं (सु० सिं०)	१४६	१६२—सुभद्रा (प० श्रीसूरजनन्दजी सत्यप्रेमी 'हाँगीजी')	१७४
१३१—सगसे दुबली आया (जा० शा०)	१४८	१६३—धैर्यसे पुनः सुखकी प्राप्ति (जा० शा०)	१७५
१३२—पार्वतीकी परीक्षा	१४९	१६४—आत्म-प्रश्नसासे पुण्य नष्ट हो जाते हैं (सु० सिं०)	१७६
१३३—चोरीका दण्ड (जा० शा०)	१५०	१६५—जरा-मृत्यु नहीं टल सकती	१७७
१३४—मङ्किका वैराग्य (" ")	१५०	१६६—विद्या अध्ययन करनेसे ही आती है (सु० सिं०)	१७७
१३५—दुखदायी परिदृशका कदु परिणाम [खगमका क्रोध] (सु० सिं०)	१५१	१६७—जहाँ मन, वहीं हम (जा० शा०)	१७८
१३६—परिदृशसे श्रृंगिके तिरस्कारका कुफल [परीक्षितको शाप]	१५२	१६८—दुरे काममें देर करनी चाहिये (सु० सिं०)	१७९
१३७—आश्रितका त्याग अभीष्ट नहीं [धर्मराजकी धार्मिकता] (सु० सिं०)	१५३	१६९—प्रतिज्ञा [त्रेतामें राम अवतारी, द्वापरमें कृष्णमुरारी] (श्रीसदानन्दजी शर्मा)	१८०
१३८—मृत्युका कारण ग्राणीका अपना ही कर्म है (सु० सिं०)	१५३	१७०—गृष्म और उल्कको न्याय (जा० शा०)	१८०
१३९—दुरभिमानका परिणाम [वर्वरीकका वध] (जा० शा०)	१५४	१७१—पुण्यकार्य कल्पर मत टालो (सु० सिं०)	१८२
१४०—जुआरीसे राजा [स्वर्गमें अद्भुत दाता] (" ")	१५५	१७२—तर्पण और शाद्व (जा० शा०)	१८२
१४१—दृढ़ निष्ठा (सु० सिं०)	१५६	१७३—आत्महत्या कैसी मूर्खता !	१८३
१४२—किसी भी वहनेसे धर्मका त्याग नहीं कर सकता	१५७	१७४—रोम-रोमसे 'जय कृष्ण'की ध्वनि	१८४
१४३—नियम-निष्ठाका प्रभाव (सु० सिं०)	१५७	१७५—कृतम् पुरुषका मास राक्षस भी नहीं खाते (सु० सिं०)	१८५
१४४—आसक्तिसे बन्धन (" ")	१५८	१७६—जटिल प्रश्नोत्तर (जा० शा०)	१८६
१४५—अद्वा, धैर्य और उद्योगसे अशक्य भी शक्य होता है (" ")	१५९	१७७—पूर्ण सर्पण [तेरा, सो सर मेरा] (श्रीहरकिशनजी झवेरी)	१८८
१४६—लक्ष्यके प्रति एकाग्रता (" ")	१६०	१७८—जरा-सा भी गुण देखो, दोष नहीं	१८८
१४७—सच्ची लगान क्या नहीं कर सकती (" ")	१६१	१७९—एक मुही अनाजपर भी अधिकार नहीं	१८९
१४८—सच्ची निष्ठाका सुपरिणाम (जा० शा०)	१६१	१८०—परोपकारमें आनन्द (सु० सिं०)	१८९
१४९—सगसे बड़ा आश्र्य (सु० सिं०)	१६३	१८१—आत्मशानसे ही शान्ति (" ")	१८९
१५०—भगवत्कथा श्रवणका माहात्म्य (जा० शा०)	१६३	१८२—भक्त विमलतीर्थ	१९२
१५१—भगवद्वीताका अद्भुत माहात्म्य (" ")	१६५	१८३—जगत् कल्पना है । सकल्पमात्र है ॥ (सु० सिं०)	१९३
१५२—गायका मूल्य (" ") ..	१६५	१८४—सर्वत्याग (" ")	१९५
१५३—गो-सेवाका शुभ परिणाम (सु० सिं०) ..	१६६	१८५—साधुताकी कसौटी (" ")	१९६
१५४—वनयात्राका गो-दान (जा० शा०)	१६८	१८६—सत्सक्ष्य (रा० श्री०)	१९६
१५५—सत्सङ्गकी महिमा (सु० सिं०) ..	१६८	१८७—विचित्र न्याय (जा० शा०)	१९७
		१८८—विचित्र सहानुभृति (" ")	१९७
		१८९—सहुपदेश (रा० श्री०)	१९८

१९०—सहनगीलता	(सु० सिं०)	१९९	२२९—सत्यकी ज्योति	(रा० श्री०)	३०२
१९१—धनका मदुपयोग	(रा० श्री०)	१९९	२३०—पॉच स्कन्धोका सघात	(श्रीग्रताप-	
१९२—त्राहण	(शि० दु०)	२००	नारायणजी टडन)		२३०
१९३—अग्नि-परीक्षा	(रा० श्री०)	२०१	२३१—विद्युका अहकार	(जा० श०)	२३०
१९४—सच्ची मौग	(" ")	२०१	२३२—सच्ची दृष्टि	(सु० मिं०)	३०२
१९५—आत्मदान	(" ")	२०२	२३३—मुक्तिका मूल्य	(" ")	२३१
१९६—जाको राखै साइयाँ, मारि सकै ना कोय? (,,,)		२०३	२३४—अकोधेन जयेत् क्रोधम्	(" ")	२३२
१९७—गुणग्राहकता	(" ")	२०४	२३५—कथा ग्रेम	(" ")	२३२
१९८—वनी कौन?	(शि० दु०)	२०४	२३६—नगा उत्तर गया	(" ")	२३३
१९९—युक्ताहारविहारस्य योगो भवति दुःखहा।'	(सु० सिं०)	२०५	२३७—प्रतिकूल परिस्थितिसे वचे रहो (" ")	००	२३४
			२३८—अपने बलपर अपना निर्माण (कविरत्न श्रीअमरचन्द्रजी मुनि)		२३५
२००—अपनी खोज	(रा० श्री०)	२०५	२३९—अभयका देवता	(" ")	२३५
२०१—वैराग्यका क्षण	(" ")	२०६	२४०—नारी नरमे आगे	(" ")	२३६
२०२—सन्यासका मूल्य	(" ")	२०७	२४१—मोगमेंसे जन्मा वैराग्य	(" ")	२३७
२०३—परीक्षाका माध्यम	(" ")	२०८	२४२—सत्त्वज्ञका लाभ	(सु० मिं०)	२३७
२०४—सहज अधिकार	(" ")	२०८	२४३—महत्वपूर्ण दान	(" ")	२३८
२०५—निर्वाण पथ	(शि० दु०)	२०९	२४४—प्रलोभनोपर विजय प्राप्त करो		२३८
२०६—कोई घर भी मौतसे नहीं बचा		२११	२४५—हमारे कुलमे युवा नहीं मरते (जा० श०)	००	२३९
२०७—सच्चा साधु	(सु० सिं०)	२१२	२४६—मै दलदलमें नहीं गिर्हेगा (सु० सिं०)	००	२४०
२०८—समझौता	(रा० श्री०)	२१२	२४७—भगवान् प्रसन्न होते हैं [गिलहरीपर राम-कृष्ण]	२४१	
२०९—सच्चे सुखका वोध	(" ")	२१३	२४८—मस्तक-विक्रय	(जा० श०)	२४२
२१०—गाली कहों जायगी?	(सु० मिं०)	२१४	२४९—मातृ-भक्त आचार्य गकर		२४२
२११—आकर्षण	(शि० दु०)	२१४	२५०—कमलपत्रोपर गङ्गापार (आचार्य श्री-		
२१२—आत्मकल्याण	(रा० श्री०)	२१६	बलरामजी गाढ़ी, एम० ए०, साहित्यरत्न)	२४२	
२१३—दानकी मर्यादा	(" ")	२१७	२५१—कुत्तेका भय भी अनित्य है (" ")	००	२४३
२१४—आत्मगान्ति	(" ")	२१८	२५२—वैदिक धर्मका उद्धार (" ")	००	२४३
२१५—वासी अन्न	(सु० सिं०)	२१८	२५३—भगवान् नारायणका भजन ही सारहै (शि० दु०)	२४४	
२१६—चमत्कार नहीं, सदाचार चाहिये (जा० श०)		२१९	२५४—भगवान्से विवाह (" ")	००	२४५
२१७—धर्मविजय	(रा० श्री०)	२१९	२५५—नम्रताके औंमू (श्रीयुत तिं० न० आच्रेय)	००	२४६
२१८—यह धन मेरा नहीं, तुम्हाग है (जा० श०)		२२०	२५६—ल्लिके सहाससे भक्तका पतन (शि० दु०)	००	२४८
२१९—अर्जुनका उदारताका अभिमान-भङ्ग			२५७—त्राहणके कधेपर (" ")	००	२४९
[कर्णका चन्द्रन-दान] (जा० श०)		२२१	२५८—छोटी कोटरीमे भगवद्वर्णन (" ")	००	२५०
२२०—अर्जुनका भक्ति-अभिमान-भङ्ग			२५९—भगवान् लूट लिये गये (" ")	००	२५०
[दिग्मरुकी भक्ति-निष्ठा] (जा० श०)		२२१	२६०—भगवान्की मूर्ति बोल उठी (" ")	००	२५१
२२१—श्रीनारदका अभिमान-भङ्ग	(" ")	२२३	२६१—गुरु-प्राप्ति	(" ")	२५१
२२२—नारदका कामविजयका अभिमान-भङ्ग (जा० श०)		२२३	२६२—भगवान्का पेट कव भरता है ? (प० श्रीगोविन्द नरहरि वैजापुरकर)		
२२३—इन्द्रका गर्व-भङ्ग	(" ")	२२५			
२२४—गारुड़, सुदर्शनचक और रानियोका गर्व-भङ्ग		२२६	२६३—अपना काम स्वयं पूरा करें (" ")	००	२५२
२२५—श्रीमारुति गर्व-भङ्ग	(जा० श०)	२२६	२६४—सत्के कल्याणका पवित्र भाव (सु० सिं०)	००	२५३
२२६—भीमसेनका गर्व-भङ्ग		२२७	२६५—भक्त आचार्यकी आदर्श विनम्रता (आचार्य -		
२२७—सर्वश्रेष्ठ गासक	(सु० सिं०)	२२८	स्वामीजी श्रीराध्याचार्यजी महाराज)	००	२५४
२२८—अद्भुत पितृ-भक्ति	(" ")	२२८			

२६६—विद्यादान न देनेसे व्रहराक्षस हुआ (सु० सिं०)	२५४	३०२—विकट तपस्वी (रा० श्री०)	२७८
२६७—प्रेमपत्र कौन ? (" ")	२५४	३०३—निर्मलाकी निर्मल मति	२७९
२६८—सत्याग्रह (रा० श्री०)	२५५	३०४—मेरा उगना कहो गया ?	२८०
२६९—धर्मकी सद्म गति (" ")	२५६	३०५—गृह-कलह रोकनेके लिये आत्मोत्सर्ग	
२७०—सच्ची प्रशंसा (" ")	२५७	(सु० सिं०)	२८१
२७१—जीरादेह (जा० ग०)	२५८	३०६—स्वामिभक्ति (रा० श्री०)	२८२
२७२—हुयोंको भी सौजन्यसे जीतिये (" ")	२५८	३०७—आतिथ्य-निर्वाह (" ")	२८२
२७३—दानका फल (सु० सिं०)	२५९	३०८—प्ररमात्मा सर्वव्यापक है (सु० सिं०)	२८३
२७४—केवल इतनेसे ही पतन (रा० श्री०)	२५९	३०९—गरीबके दानकी महिमा	२८३
२७५—आत्मयज (" ")	२६०	३१०—अत न होइ कोई आपना ? (रा० श्री०)	२८४
२७६—सच्ची क्षमा (सु० सिं०)	२६१	३११—ओरको अहिंसक भक्त बनाया ! (गो० न० वै०)	२८४
२७७—धन्य भामती (श्रीयुत एस० एम० वोरा)	२६१	३१२—समारम्भ सावधान (" ")	२८५
२७८—किमीकी हँसी उड़ाना उसे शनु बनाना है [दुर्योधनका अपमान]	२६३	३१३—जो तोको कॉटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल ! (" ")	२८५
२७९—परिहासका दुष्परिणाम [यादव-कुलको भीण आप]	२६४	३१४—अम्बादामका कल्याण (श्रीयुत मा० पराडे)	२८५
२८०—भगवन्नामका जप करनेवाला सदा निर्भय है [प्रहारकी निश्चा]	२६५	३१५—अहकार-नाग (श्रीयुत एम० एन० धारकर)	२८७
२८१—भगवन्नाम समस्त पापोंको भस्त कर देता है [यमदूतोंका नया अनुभव]	२६५	३१६—कुत्तेको भी न्याय [राम-राज्यकी महिमा]	२८८
२८२—कुन्तीका त्याग	२६७	३१७—सिंहनीका दूध ! (गो० न० वै०)	२८९
२८३—अद्युत क्षमा [द्रौपदीका मातृभाव]	२६८	३१८—प्रेम दशाके विनाब्रत-उपवास व्यर्थ (" ")	२९१
२८४—लगन हो तो सफलता निश्चित है (सु० सिं०)	२६९	३१९—परर्धमहिण्युताकी विजय (" ")	२९०
२८५—स्वामिभक्ति धन्य है (" ")	२६९	३२०—गिवाका आदर्श दान (" ")	२९०
२८६—दूसरोंका पाप छिपाने और अपना पाप प्रकट करनेसे धर्ममें दृढ़ता होती है	२६९	३२१—पहले कर्तव्य पीछे पुत्रका विवाह (" ")	२९१
२८७—गोस्वामीजीकी कविता	२७०	३२२—समय सूचकका सम्मान (" ")	२९१
२८८—सूरदास और कन्या (राधा)	२७०	३२३—उदारताका त्रिवेणी-सङ्गम [गिवाजीका ब्राह्मण-प्रेम, तानाजीकी स्वामिनिष्ठा और ब्राह्मणकी प्रत्युपकार बुद्धि] (" ")	२९२
२८९—मेरी ओँते पुन. फूट जायें (" ")	२७१	३२४—वन है धूलि-समान (श्रीताराचन्द्रजी अडलजा)	२९४
२९०—समर्पणकी मर्यादा (गा० श्री०)	२७२	३२५—पितरोंका आगमन	२९५
२९१—भागवत-जीवन (" ")	२७२	३२६—नाथकी भूतदयाकी फलश्रुति (गो० न० वै०)	२९५
२९२—हाथोंमें थाम लिया	२७३	३२७—क्षमाने दुर्जनको सजन बनाया (सु० सिं०)	२९६
२९३—च्यामजीकी प्रसादनिष्ठा (श्रीवासुदेवजी गोस्वामी)	२७३	३२८—तुकारामजीकी ज्ञानिति	२९७
२९४—अनन्य आगा (भक्त श्रीरामशरणदासजी)	२७४	३२९—पतिसेवासे पति वशमें (गो० न० वै०)	२९७
२९५—ब्रजराजपर निछावर (रा० श्री०)	२७४	३३०—तुकारामका गो-प्रेम (" ")	२९८
२९६—प्रसादका अपमान (गिं० दु०)	२७५	३३१—भगवान् थाल साफ कर गये (" ")	२९८
२९७—लीलामयकी लीला (" ")	२७५	३३२—कच्चा वर्तन	२९९
२९८—मरते पुत्रको बोध	२७६	३३३—योगक्षेम वहाम्यहम्	३००
२९९—चोरका हृदय पलटा	२७७	३३४—सवर्में भगवान्	३००
३००—सम्पत्तिके सब साथी, विपत्तिका कोई नहीं (सु० सिं०)	२७८	३३५—नामदेवका गौके लिये प्राणदान (" ")	३०१
३०१—श्रीधर स्वामीका सन्यास	२७८	३३६—पारस-ककड़ एक समान (" ")	३०१
		३३७—धूलपर धूल डालनेसे क्या लाभ ?	३०२
		३३८—जत्र सूली पानी-पानी हो गयी। (गो० न० वै०)	३०२

४८८—पड़ोसी कौन ?	(जा० शा०)	३९१	५२८—नामदेवकी समता-परीक्षा	“	४१७
४८९—दर्ननकी पिपासा	(रा० श्री०)	३९१	५२९—एकनायजीकी अक्रोध-परीक्षा	“	४१७
४९०—परमात्मामें विश्वास	(“ ”)	३९२	५३०—तुकारामका विश्वास	“	४१८
४९१—विश्वामर्की शक्ति	(“ ”)	३९२	५३१—सेवा-भाव [समर्थका पनगढ़ा]	“	४१८
४९२—दीनताका वरण	(“ ”)	३९३	५३२—देवके लिये वलिदान	(सु० सिं०)	४१९
४९३—दण्डिनारागणकी नेवा	(“ ”)	३९४	५३३—उदारता	(“ ”)	४१९
४९४—अमर जीवनकी खोज	(“ ”)	३९५	५३४—सार्वजनिक सेवाके लिये त्याग (“ ”)	“	४२०
४९५—प्रभु-विश्वामी राजकन्या	“	३९५	५३५—सत्यकी शक्तिका अद्भुत चमलकार (श्री-	“	
४९६—असहायके आश्रय	(सु० सिं०)	३९६	खुनाथप्रसादजी पाठक)	“	४२०
४९७—क्षणिक जीवन	(“ ”)	३९७	५३६—सत्यवादितासे उब्रति	(रा० श्री०)	४२१
४९८—मत्य शिव सुन्दरम्	(जा० शा०)	३९७	५३७—सच्ची मित्रता	(सु० सिं०)	४२२
४९९—मुझे एक ही बार मरना है	(सु० सिं०)	३९८	५३८—दो मित्रोंका आदर्श-प्रेम	“	४२२
५००—गर्व किसिमर ?	(“ ”)	३९८	५३९—सङ्घावना	(रा० श्री०)	४२५
५०१—विषयान	(रा० श्री०)	३९८	५४०—स्वर्गही हायसे निरुल जायगा ? (“ ”)	“	४२५
५०२—सत्यमापणका प्रताप	(“ ”)	३९९	५४१—प्रार्थनाका प्रभाव	(“ ”)	४२५
५०३—पिताके मत्यकी शक्ति	(सु० सिं०)	४०१	५४२—जीवन-व्रत	(“ ”)	४२६
५०४—आतिथ्यका सुफल	(रा० श्री०)	४०२	५४३—आप वडे डाकू हैं	(“ ”)	४२७
५०५—वर्मप्रचारके लिये जीवनदान	(सु० सिं०)	४०३	५४४—सिकन्दरकी मातृ-भक्ति	“	४२७
५०६—मृतकके प्रति नहानुभूति	(रा० श्री०)	४०४	५४५—कलाकारकी गिरष्टा	(रा० श्री०)	४२८
५०७—सच्चा वलिदान	(“ ”)	४०४	५४६—सुलेमानका न्याय	(“ ”)	४२९
५०८—मतकी एकान्तप्रियता	(“ ”)	४०५	५४७—चोरीका त्याग	(“ ”)	४२९
५०९—प्रार्थनाकी शक्ति	(“ ”)	४०६	५४८—समयता	(सु० सिं०)	४३०
५१०—मंतकी निर्भयता	(“ ”)	४०६	५४९—देव-भक्ति	(रा० श्री०)	४३०
५११—सौन्दर्यकी पवित्रता	(“ ”)	४०७	५५०—कर्तव्य-पालन	(“ ”)	४३१
५१२—सतकी सेवा-वृत्ति	(“ ”)	४०७	५५१—आनन्दधनकी खीझ	“	४३२
५१३—सत प्रचारसे दूर भागते हैं	(“ ”)	४०८	५५२—आजा-पालन	(रा० श्री०)	४३३
५१४—गरजनेके बाद वरसना भी	चाहिये	(सु० सिं०)	५५३—भातृप्रेम	(सु० सिं०)	४३३
५१५—कल्पकी पूजा सर्वत्र होती है	(रा० श्री०)	४०९	५५४—उत्तम कुलाभिमान	(“ ”)	४३४
५१६—मौनकी शक्ति	(“ ”)	४०९	५५५—अपनी प्रश्नासे अचूचि	(“ ”)	४३४
५१७—दैन्यकी चग्म नीमा	(“ ”)	४१०	५५६—स्वयम मनुष्यको महान् बनाता है (“ ”)	“	४३५
५१८—निकपट आश्वासन	(“ ”)	४१०	५५७—मानवता	(“ ”)	४३५
५१९—समयका मूल्य	(“ ”)	४११	५५८—सङ्घाव	(“ ”)	४३६
५२०—भड़महिलाका म्बच्छन्द धूमना उचित नहीं	(रा० श्री०)	४११	५५९—अद्भुत साहस	(“ ”)	४३६
५२१—कथमें भी क्रोध नहीं	“	४१३	५६०—भारको सम्मान दो	(“ ”)	४३७
५२२—न मे भक्त प्रणव्यति	(रा० श्री०)	४१३	५६१—न्यूटनकी निरभिमानता	(जा० शा०)	४३७
५२३—व्यभिचारीका जीवन बदल गया (“ ”)	४१४	५६२—गरीबोंकी उपेक्षा पूरे समाजके लिये धातक है	(सु० सिं०)		
५२४—पवित्र अन्न [गुरु नानकदेवका अनुभव]	४१४	५६३—लोभका बुरा परिणाम [विचित्र बॉसुरीवाला]	४३८		
५२५—गुरु-भक्ति	“	५६४—उसकी मानवता धन्य हो गयी (रा० श्री०)	४४०		
५२६—सत्य निष्ठा [गुरु रामसिंह]	४१५	५६५—प्रयोक्त व्यक्ति एक दूसरेका सेवक है (“ ”)	४४०		
५२७—पजाव-नेसरीकी उदागता	“	५६६—परिश्रम गौरवकी वस्तु है (सु० सिं०)	४४१		
		५६७—क्षमागीलता	(रा० श्री०)	४४१	

८०३—धर्मके नामपर हिंसा (सु० सिं०)	५७५	८४१—मेहतरके लिये पगड़ी (श्रीहरिकृष्णदासजी)	५९४
८०४—आर्यकन्याकी आराध्या	५७६	गुप्त 'हरि')
८०५—त्राहणीके द्वारा जीवरक्षा (ले०—श्रीकृष्णगङ्गर 'जयराम')	५७७	८४२—आत्मप्रचारसे विमुखता (श्रीकृष्णगोपाल-जी माथुर) ..	५९७
८०६—गोपाल पुत्ररूपमें	५७७	८४३—मुझे अशार्फियोंके शाल नहीं, मुढ़ीभर आटा चाहिये (भक्त श्रीरामगणदासजी) ...	५९८
८०७—भगवान्के दर्शन	५७९	८४४—ब्रजवासियोंके दुकड़ोंमें जो आनन्द है, वह अन्यत्र कही नहीं है (" ") ..	५९९
८०८—सेवा-कुञ्जमें दर्शन	५७९	८४५—आदर्श वी० ए० वहू (पं० श्रीरामनरेगजी त्रिपाठी) ६००	
८०९—प्रसुकी वस्तु	५८०	८४६—श्रद्धा और मनोवलका चमत्कार (कविविनोद वैद्यभूषण ५० श्रीठाकुरदत्तजी शर्मा 'वैद्य') ...	६०६
८१०—देवीजीके दर्शन	५८०	८४७—चोरके साथ चोर ..	६०७
८११—भक्तकी रक्षा	५८०	८४८—महागत्कि ही पालिका हैं ..	६०८
८१२—अधा हो गया	५८१	८४९—गालार्थ नहीं करेंगा ..	६०९
८१३—वास्तव्य	५८१	८५०—सच्चे महात्माके दर्शनसे लाभ (श्री सी० एल० भाटिया) ..	६०९
८१४—वास्तव्यवती वृद्धा	५८१	८५१—पॉच सेर भजन । ..	६१०
८१५—कुट्टीके रूपमें भगवान्	५८२	८५२—विपत्तिका मित्र (श्रीदीनानाथजी सिद्धान्तालंकार) ६१०	
८१६—जिव-पार्वतीकी कृपा	५८२	८५३—जाति-विरोधसे अनर्थ (सु० सिं०) ..	६१२
८१७—अन्त मति सो गति	५८२	८५४—सुख-दुःखका साथी ..	६१२
८१८—विवाहमें भी त्याग	५८३	८५५—आदर्श मित्र (जा० शा०) ..	६१३
८१९—भगवन्नामसे रोगनाश (जा० शा०)	५८३	८५६—एक अनुभव (श्रीरामरुदप्रसादमिहंजी आई० ए० एस०) ..	६१४
८२०—रामनामसे शरावकी आदत मी छूटी	५८४	८५७—कपोतकी अतिथि-सेवा (जा० शा०) ..	६१४
८२१—भगवत्यासिके लिये कैसी व्याकुलता अपेक्षित	५८४	८५८—खूब विचारकर कार्य करनेसे ही श्रोभा है ..	६१६
८२२—लक्ष्य और साधना	५८४	८५९—मिथ्या गर्वका परिणाम (सु० सिं०) ..	६१७
८२३—भगवान् सदा साथ हैं (कु० रा०) ..	५८५	८६०—मकटमे बुद्धिमानी (जा० शा०) ..	६१८
८२४—सरयूजीसे रास्ता (" ") ..	५८५	८६१—वहुमतका सत्य (सु० सिं०) ..	६२०
८२५—विहारीजी गवाह (" ") ..	५८६	८६२—स्वतन्त्रताका मूल्य (जा० शा०) ..	६२१
८२६—पहले ललिताजीके दर्शन कीजिये (" ") ..	५८७	८६३—बुरी योनिसे उद्धार (" ") ..	६२२
८२७—मेरे तो वहिन-वहनोंहैं दोनों हैं ..	५८७	८६४—सबसे भयकर शत्रु—आलस्य (" ") ..	६२२
८२८—विवाह करके लड़की यमुनाजीमें पार हो गयी	५८८	८६५—सत्य-निष्ठाका प्रभाव (सु० सिं०) ..	६२३
८२९—हिंसाका कुफल (श्रीलीलाघरजी पाण्डेय) ..	५८८	८६६—ससारके सुखोंकी अनित्यता (" ") ..	६२४
८३०—साधु-महात्माको कुछ देकर आना चाहिये (डा० श्रीयतीशचन्द्र राय) ..	५८९	अवतार-कथा	
८३१—चाचा ! शेर बनकर गीदड़ क्यों बनते हो ? (भक्त श्रीरामशरणदासजी) ..	५८९	८६७—श्रीमत्यावतार-कथा } (स्वामीजी ..	६२५
८३२—भगवत्ताने कन्यारूपसे टटिया वॉघी (श्रीहरिशचन्द्रदासजी वी० ए०) ..	५९०	८६८—श्रीकन्तपावतार-कथा } श्रीअखण्डानन्दजी ..	६३८
८३३—अद्वृत उदारता ..	५९१	८६९—श्रीवाराहावतार-कथा } महाराज ..	६५४
८३४—सेवाका अवसर ही सौभाग्य है	५९१	८७०—श्रीनृसिंहावतार-कथा } (") ..	६६९
८३५—नौकरके साथ उदार व्यवहार	५९२	८७१—श्रीवामनावतार-कथा } (") ..	६८७
८३६—भगवान्नका विधान ..	५९२	८७२—सम्पादकका निवेदन और क्षमाप्रार्थना ..	७०३
८३७—सबमें भगवद्वर्गन ..	५९२	८७३—सत्कथा [कविता] ..	७०४
८३८—ठीकरी पैमा वरावर ..	५९३		
८३९—गरीरका सदुपयोग (रा० श्री०) ..	५९३		
८४०—आत्मसम्बन्ध	५९४		

चित्र-सूची

संख्या	सुनहरी	२२—पतिव्रता छोके घर	७२	५०—भगवन्नाम समस्त पापोंको
		२३—सत्यवादी ईमानदार		मस्स कर देता है
		व्यापारीके घर	७२	२६५
		२४—जितेन्द्रिय		५१—भगवन्नाम-जप करने-
		मिथ्रके घर	७२	वाला सदा निर्भय है
		२५—एमनामको अलौकिक		२६५
		महिमा	११२	५२—अद्भुत धर्म
		२६—विश्वासकी विजय	११३	५३—कुन्तीका त्याग
		२७—शवरीकी ढढ निष्ठा	११३	५४—प्रेम-तपस्विनी ब्रह्मविद्या
		२८—नची निष्ठा	११३	५५—हसोंके द्वारा भीमको सदेश
		२९—जगदमाकी कृपा	११३	५६—राक्षसीका उद्धार
		३०—चोरीका टण्ड	१५२	५७—परोपकारका आदर्श
		३१—मङ्किका वैराग्य	१५२	५८—न्याय और धर्म
		३२—दुखदायी परिहासका		५९—शालज्ञाने रक्षा की
		दुष्परिणाम	१५२	६०—विक्रमकी जीव-दया
		३३—परिहाससे ऋषि-तिरस्कार-		६१—सर्वस्वदान
		का कुफल	१५२	६२—भिलासिनीका अक्षय
		३४—स्वर्में अद्भुत दाता	१५३	भिक्षापात्र
		३५—मृत्युका कारण अपना		६३—अहिंसाका चमत्कार
		ही कर्म	१५३	६४—हृदय-परिवर्तन
		३६—दुर्गमिमानका परिणाम	१५३	६५—नर्तकीका अनुताप
		३७—आश्रितका त्याग स्वीकार		६६—निष्पक्ष न्याय
		नहीं	१५३	६७—अहिंसाकी हिंसापर विजय
		३८—रोम-रोमसे 'जय कृष्ण'		६८—वैभवको धिक्कार है
		ब्लनि	१८४	६९—शूलीसे सिंहासन
		३९—आनन्द और प्रेमका		७०—पवित्र अन्न
		रस-नृत्य	१८५	७१—गुरु-भक्ति
		४०—अर्जुनका अभिमान-भङ्ग	२२४	७२—सत्यनिष्ठा
		४१—अर्जुनका भक्ति-		७३—उदारता
		अभिमान-भङ्ग	२२४	७४—नामदेवकी समता-परीक्षा
		४२—नारदका अभिमान-भङ्ग	२२४	७५—एकनाथकी अक्रोध-परीक्षा
		४३—नारदका कामजय-		७६—तुकारामका विश्वास
		अभिमान-भङ्ग	२२४	७७—समर्थका पनवडा
		४४—इन्द्रका गर्व-भङ्ग	२२५	७८—महल नहीं, धर्मजाला
		४५—गरुड़-सुर्दर्शन आदिका		७९—दानका फल
		गर्व-भङ्ग	२२५	८०—एकान्त कहीं नहीं
		४६—माहात्मिका गर्व-भङ्ग	२२५	८१—उदार स्वामी
		४७—भीमका गर्व-भङ्ग	२२५	८२—विषयोंमें दुर्गन्ध
		४८—किसीकी हँसी उड़ाना		८३—डाइन खा गयी
		उसे शत्रु बनाना है	२६४	८४—धनका परिणाम
		४९—परिहासका दुष्परिणाम	२६४	८५—सूपया मिला कि भजन छूटा
				८६—स्वामिमत्तिका आदर्श
				८७—अतिथि-सत्कार

८८—गौर्यका सम्मान	४९६	१०३—झूण लेकर भूलना नहीं	५४०	११८—अङ्गुत उदारता	५९२
८९—मनुदर्शन	४९६	१०४—सच्चा वीर	५४०	११९—सेवाका असर	५९२
९०—चन्द्रार्जुन मरण-विनिका	४९७	१०५—सम्मान पदमें है या		१२०—नौकरसे उदार व्यवहार	५९२
०१—लाज्जताका सतीत्व-लालित्य	४९७	नुस्ख्यतामें	५४०	१२१—भगवानका विधान	५९२
१२—अमिन्ननकी चिकित्ता	४९७	१०६—दुसङ्गका परिणाम	५४१	१२२—सबमें भगवद्वर्षन	५९३
१३—प्रतिव्रताका व्रत	४९७	१०७—सहनशीलता	५४१	१२३—ठीकरी पैसा वरावर	५९३
१४—श्रीनैतन्यका ल्याग	५२४	१०८—क्षमा	५४१	१२४—शारीरका सदृष्टयोग	५९३
१५—नामनिष्ठा और क्षमा	५२४	१०९—पवित्र वलिदान	५४१	१२५—आत्म-सम्बन्ध	५९३
१६—सच्चा गीता-पाठ	५२४	११०—सच्ची श्रद्धा	५६४	१२६—मिथ्या गर्वका परिणाम	६२०
१७—चाहुने के लिये तीर्त्यन		१११—हक्की रोटी	५६४	१२७—संकटमें बुद्धिमानी	६२०
ही बड़ा पान	५२४	११२—संतकी क्षमा	५६४	१२८—बहुमतका सत्य	६२०
१८—कैनकी नि स्थृता	५२५	११३—नीचा सिर क्यों	५६४	१२९—स्वतन्त्रताका मूल्य	६२०
१९—पनि-पती दोनों नि-स्पृह	५२५	११४—आतिथ्य-धर्म	५६५	१३०—बुरी योनिसे उद्धार	६२१
१००—दूसरेकी वृत्तिमें वृत्ति	५२५	११५—अस्तेप	५६५	१३१—संसारके सुखोंकी अनित्यता	६२१
१०१—सच्चा गोभा	५२५	११६—कामना कथदायिनी	५६५	१३२—सत्यनिष्ठाका प्रभाव	६२१
१०२—निष्याम हो, वह पत्थर मारे	५४०	११७—सच्चा भाव	५६५	१३३—सबसे भयंकर शत्रु आलस्य	६२१

मासिक महाभारत

(मूल संस्कृत और हिंदी-अनुवादसहित)

लगभग रोन मालमें ७२०० पृष्ठोंमें पूरा होगा। प्रतिमास ३० पौंडके मोटे ग्लेज कागज २१×३०—आठपेजी २०० पृष्ठ, दो बहुरोग तथा छ सादे चित्र, नवम्बर १९५५ से अक्टूबर १९५६ तकका वार्षिक मूल्य प्रतिमासके रजिस्ट्रीखर्चसहित २०) मात्र। अवनक नवम्बर, दिसम्बरके दो अङ्क निकल चुके हैं।

व्यवस्थापक—महाभारतविभाग, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

नामजपके लिये प्रार्थना

गत वर्षके ११ वे अङ्कने श्रीभगवन्नामन्जपके लिये प्रतिवर्षकी भौति प्रार्थना की गयी थी। तदनुसार सैकड़ो प्रेमी महानुभावों और महिलाओंने नाम-जप करना-करना आरम्भ कर दिया है। नाम-जप-विभागमें लगातार सूचनाएँ आ रही हैं। मेरी प्रेनी महानुभावों तथा माता-नहिनोंसे प्रार्थना है कि वे नाम-जपमें स्वयं भाग लें तथा कृपया अपने इष्ट-मित्रोंको प्रेम तथा विनयपूर्वक प्रेरणा करके नाम-जपमें लगायें। कलियुगमें उर्वकल्यागकारी भगवन्नाम ही है—इस विषयमें जानकारी प्राप्त करनी हो तो ‘नाम-जप-विभाग’ ‘कल्याण’ कार्यालय, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) को कृपया पत्र लिखें।

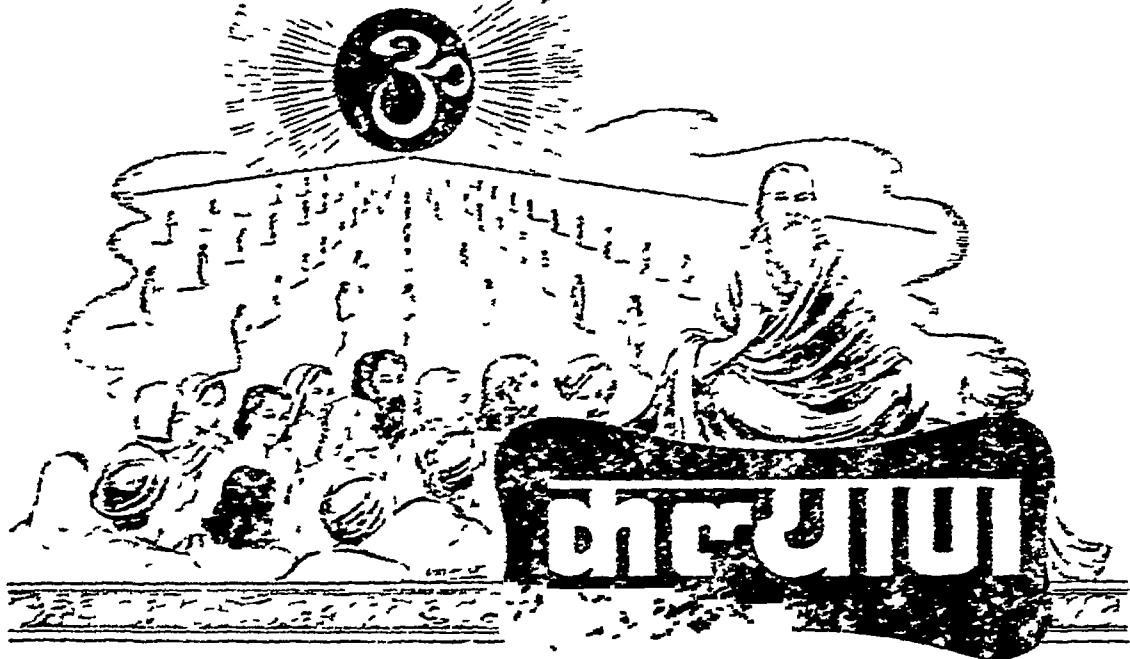
हनुमानप्रसाद पोद्धार—सम्पादक ‘कल्याण’

हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थोंका संग्रह

गीताप्रेसमें प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंके संग्रहकी व्यवस्था की गयी है। उसमें बहुत-से ग्रन्थोंका संग्रह हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। अतएव जिनमें पात्र प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत या हिंदीके संचित्र या अचित्र ग्रन्थ हों और जो उन्हें सुरक्षित रखना चाहते हों, वे कृपया अपने ग्रन्थोंको गीताप्रेसके संग्रहालयके लिये भेज दे। डाक और रेलखर्च यहाँसे दिया जायगा। हमारा निवेदन है कि ‘कल्याण’के ग्राहक और पाठक महोदय प्रयत्न करके ऐसे ग्रन्थ भिजवाकर प्राचीन ग्रन्थोंकी रक्षाके कार्यमें सहायता करे।

हनुमानप्रसाद पोद्धार, सम्पादक, ‘कल्याण’ (गोरखपुर)

ॐ दूर्जन् दूर्जन् दूर्जन् दूर्जन् दूर्जन् । दूर्जन् दूर्जन् दूर्जन् दूर्जन् ॥



पिवलि ये भगवत् आनन्दः ननां कथासुतं श्रवणपुटेषु सम्मृतम् ।
पुनलि ने विषयविद्यपितामयं ब्रजलि उच्चरणसरोहान्तिकम् ॥

(श्रीनिवासवत २।२।३३)

वर्ण ३० }

गोरखपुर, मौर्य माह २०१३, जनवरी १९५८

{ संख्या १
पृष्ठ संख्या ३५०

सत्कथाओंके मूल स्रोत और संतोंके परम व्यय

(नवनिरुद्धमें व्यामा-व्याम)

(१)

सत्कथाल पावन वृंदावन यवित्तनवाच्छ लोहै,
नित दूर्जन निज दुर्जन्दुर्जन सौं दुर्जन्दुर्जनिभन मोहै ।
तेष लाला हूँ दै जाकी सोभा वरनि न जाई
जहै पावस वसंत आदिक अशु चंत नहै लुमाई ॥

(२)

जहै वेलिन्दुनन्दन्दमूह है संत मोल्ल-दुव वारैं,
विक्षितव दुर्जन सरिस नैतन सौं स्वामा स्वाम निहारैं ।
वा वृंदावन वीव नंजु इन नवल निरुद्ध विपर्जै,
जाकी स्वामनवी दुर्जन लखि नंदन कोदिक लजै ॥

(३)

मध्य मनोहर वा निकुंज के एक कदंब सुहावै,
निज अनुपम अनल्प महिमा सौं पादप कल्प लजावै ।
डाल-डाल अरु सघन पात विच कुसुमित कुसुम धनेरे,
कै सुरपञ्ज जुगल छवि हरेत सहस नैन करि नेरे ॥

(४)

नीचे वा कदंब तखवर के कोटि मदन छवि हारी
ठाढ़े ललित त्रिमंगी छवि सौं वृद्धाविपिन-विहारी ।
बाईं और मदनमोहन के श्रीवृषभानुकिसोरी,
चितवति स्याम विनत चितवन सौं मानौ चंद चकोरी ॥

(५)

मोर-मुकुट स्वर्णभ सुधर सिर श्रीहरि के छवि पावै,
सीस चंद्रिका भानुसुता के भानु-विभा बगारवै ।
पेखि स्याम द्युति पीत प्रिया को पीत वसन तन धारैं,
पिय के रँग सम नील-स्याम पट स्यामा अंग सँवारैं ॥

(६)

कुंडल लोल अमोल स्वन विच वक्ष विमल वनमाला,
मुरली मधुर बजाइ विस्व कौ मन मोहत नँदलाला ।
धूँधट नैक उठाइ हाथ सौं पिय-छवि निरखति प्यारी,
रूप-सुधा कौ दान पाइ त्यौं हिय हरपत बनवारी ॥

(७)

विविध वरन आभरन विभूषित रसिक-राय गिरिधारी,
ज्ञीन वसन भूषन कंचुक पट सोमित भानु-दुलारी ।
दोउन के दग द्वै चकोर वनि दोउ मुखचंद निहारैं,
प्रेम विवस दोऊ दोउन पै तन-मन-सरवस वारैं ॥

(८)

परम प्रेम फलरूप, कोटि-सत रति-मन्मथ छवि छीने,
संत-हृदय-संपति दंपति नव लसत प्रनय-रस-भीने ।
दारति चँवर जुगल प्रीतम कौं स्नेहमयी कोउ वामा,
अरपन कर सौं करति पान कौ वीरो कोउ अभिरामा ॥

(९)

सेवा-रत सहचरी-चंद जुत स्याम और स्यामा की,
जाके हिय विच वसति सदा यह भुवनमोहनी झाँकी ।
सोइ तापस गुनवंत संत सुचि, सोइ ध्यानी, सोइ ज्ञानी,
सोई लाह लह्यौ जीवन कौ भावुक भगत अमानी ॥

—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

मूर्तिमान् सत् (श्रीभरतजी)

नित पूजत प्रमु पर्वती प्रीनि न हृदये ममानि ।

मानि मारि अयमु करत राज काज वहु भैनि ॥

पुनक गन हियं निय रथुवीरु । जैह नामु जप लोचन नीरु ॥

लत्वन राम निय कानन वसही । भरतु मवन वामितप तनु कसही ॥

(सुत्रषड्का दुरुगा चित्र देविय)

जिनके जीवनका प्रत्येक कण और प्रत्येक क्षण सर्वथा
और सर्वदा 'सत्' से ओतप्रोत है, जो 'सत्' के परम आदर्श
और मूर्तिमान् स्वरूप हैं, जिनका श्रीविघ्रह 'सत्' स्वरूप श्रीराम-
प्रेमसे ही बना हुआ है—

'राम प्रेम मूर्नि तनु आही ।'

—असत्का जिनके जीवनमें कभी स्वप्नमें भी सर्वर्ग नहीं
हैं, जो परम 'सत्स्वरूप' रामके भी सरण तथा जरके
विनय हैं—

'सुमित्र निनहि राम नन माही ।'

'ज्ञु जन रामु रामु जप जेही ।'

—जिनका दर्घन करके भगद्वाजमुनि प्रयागवासियोंकि साथ
अपनेनो भागवान् मानते हैं और उनके दर्घनको रामदर्घन-
का फल वतलाते हैं—

तुम्हु भरत हन शृं न कहहीं । उदासीन तापन बन रहहीं ॥
सच नाधन कर मुफ्ल मुहाना । लत्वन राम निय दरसनु पावा ॥
तेहि फल कर फलु दरम तुम्हारा । सहित पयाग मुमाग हमारा ॥
भगत घन्य तुम्ह जनु ज्ञु जयल । कहि अपेम मगन मुनि मधड ॥

'सुनो भरत ! हम वनवासी तपनी हैं, उदासीन हैं—
हमारा कहीं गग-द्रेप या अपना-पराया नहीं है, न हमें कुछ
चाहिये ही। हम किसी हेतुसे तुमसे बनावटी बात नहीं कहते—
हम शृं नहीं कहते। हमें तुमसे कुछ भी लेना-देना नहीं है।
हम सच्य कहते हैं कि हमारे समस्त साधनोंका तुन्दर फल
तो यह हुआ कि हमने सीता-लक्ष्मण-नृहित रामका दर्घन प्राप्त
किया और उस रामदर्घनका महान् फल है तुम्हारा दर्घन।
समस्त प्रयागके साथ हमारा यह सौभाग्य है। भरत ! तुम
घन्य हो । तुम्हारे यशने जगत्को जीत लिया ।' यह कहकर
मुनि भगद्वाज प्रेमगम हो गये ।

—जिनके महस्वका दिग्दर्घन कराते हुए पग्म सिद्ध जानी
जनक महाराज सजल-नेत्र और पुलकित-अरीर होकर मुदित
मनसे एकान्तमें अपनी धर्मपक्षीसे कहते हैं—

नववान सुनु सुमुखि सुलोचनि । भरत कथा भव-चव-निमोचनि ॥

घरन राजनय ब्रह्मविचार । इहाँ जयामनि भोर प्रचार ॥

सो मनि भोरि भरत महिमाही । कहै काह छँडि छुमनि न छैही ॥

 × × ×

भरत अमिन महिना नुनु गली । जानहिं रामु न सकहिं वसानी ॥

 × × ×

बहुरहि लम्नु भानु बन जाही । सबकर मल सबके मन माही ॥

देवि परतु भग रथुवर की । प्रीनि प्रनीनि जड नहि तरकी ॥

भानु अवधि मनेह ममता की । ज्यापि रामु सीम समता की ॥

परमरथ सुख सारे । भरत न मरनेहुँ मनहुँ निहारे ॥

सावन मिदि राम पग नेहू । मोहि लखि परत भरत मत एहू ॥

‘हे सुमुखि ! सुनयनी ! साववान होकर सुनो । भरतजी-

की कथा भववन्दनसे मुक्त करनेवाली है । धर्म, राजनीति

और ब्रह्मविचार—इन तीनों विषयोंमें अपनी बुद्धिके अनुसार

मेरी गलि है । (अर्थात् इनके उम्भन्यमें मे कुछ जानता हूँ और

अपनी सम्मति दे सकता हूँ ।) पर मेरी वह (धर्म, राजनीति

और ब्रह्मज्ञानमें प्रवेश पायी हुई) बुद्धि भरतजी महिमाका

वर्णन तो क्या करे, छल करके भी उसकी छायातकको

नहीं छू पाती ।

‘रानी ! भरतजीकी अपरिमित महिमा है । उसे एक

श्रीरामजी ही जानते हैं, पर वे भी उसका वर्णन नहीं

कर सकते ।

‘लक्ष्मणजी लौट जायें और भरतजी बनको जायें, इसमें

ममीका भला है और सबके मनमें भी यही है । परंतु देवि ।

भरतजी और श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम और एक दूसरेका विश्वास

हमारी बुद्धिके तर्कमें नहीं आते । यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी

समताकी सीमा हैं, तथापि भरतजी प्रेम और ममताकी

सीमा हैं । भरतजीने (श्रीरामके अनन्य प्रेमको छोड़कर)

समस्त परमार्थ, स्वार्थ और तुखोंकी ओर स्वप्नमें भी नहीं

ताका है । श्रीरामके चरणोंका प्रेम ही उनका साधन है और

वही सिद्धि है । मुझे तो बस, भरतजीका यही एकमात्र

सिद्धान्त जान पड़ता है ।’

—जिनका समस्त जीवन 'सत्कथा' रूप है, जिनके जीवनकी

सभी दिनाएँ सत् और सत्कथासे भरी हैं, जिनके जीवनरूपी

सत्-सुधार्पूर्ण अक्षय कल्पासे अनवरत निकल-निकलकर 'सत्'-

का मङ्गलमय प्रवाह सब ओर वह रहा है और अनन्त-अनन्त देवमूर्तियों सब ओरसे सदा जिनकी 'सत्कथा' का गङ्गा फूँक रही हैं (मुखपृष्ठका बहुरगा चित्र देखिये), उन भरतजीकी परम पावनी 'सत्' स्वरूपा लीलाके सम्बन्धमें कुछ भी कहना दुस्साहस मात्र है; पर इस वहाने उनका परम कल्याणमय पवित्र स्मरण हो जाता है, इसीलिये उनके महान् 'सत्' जीवनके किञ्चित् पुण्यस्मरणका प्रयास किया जाता है—

भगवान् श्रीरामचन्द्र श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजीको साथ लेकर सहर्ष बनमे चले गये। महाराज दशरथका रामवियोगके दुखसे देहान्त हो गया। भरतजीको ननिहालसे बुलाया गया। वे शत्रुघ्नीके साथ लौटकर आये। अवधमें आकर जब सारे नगरको विपादग्रस्त देखा, तभी उनके मनमें खट्टका हो गया था। फिर जब राजमहलमें आकर वहाँ भी शोक-पूर्ण सन्नाटा देखा, तब तो भरतजी सहम गये। माता कैकेयीने उनका आदर किया, नैहरके कुशल-समाचार पूछे, पर भरतका मन तो पिता दशरथ तथा अग्रज श्रीरामको देखनेके लिये व्याकुल था। उन्होंने मातासे कहा—

अभिषेक्ष्यति राम तु राजा यशं तु यक्षते ।
द्व्यह कृत्सकल्पो हष्टो यात्रामयासिष्मू ॥
तदिदं ह्यन्यथाभूत व्यवदीर्ण मनो मम ।
पितरं यो न पश्यामि नित्यं प्रियहिते रतम् ॥

X X X

यो मे भ्राता पिता वन्दुर्यस्य दासोऽस्मि सम्मतः ।
तस्य मा शीघ्रमाल्याहि रामस्याक्षिष्टकर्मणः ॥
पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः ।
तस्य पात्रौ ग्रहीप्यामि स हीदानीं गतिर्मम ॥

(वा० रा० अयोध्या० ७२ । २७-२८-३२-३३)

'मैं तो यह सोचकर बड़ी प्रसन्नतासे चला था कि महाराज या तो श्रीरामका राज्याभियेक करेंगे या कोई यज्ञ करेंगे। परन्तु यहाँ तो मैंने उलटा ही देखा, जिससे मेरा हृदय विदीर्ण हो गया। आज मेरा सदा अपने प्रिय और हितमें रत पिता-जीको नहीं देख रहा हूँ। यह तु मुझे शीघ्र बता कि जो मेरे भाई, पिता, वन्दु—सब कुछ हैं, मैं जिनका प्रिय दास हूँ, वे सरलस्वभाव रामचन्द्र कहाँ हैं? धर्मको जाननेवाले वहे भाई-जीको पिताके सद्ग समझते हैं। मैं उनके चरणोंमें पड़ूँगा, अब वे ही मेरे अवलम्ब हैं।'

अब कैकेयीने उन्हें सारी बातें आयोगान्त सुना दीं। वह

समझ रही थी कि भरत इसे सुनकर प्रसन्न होंगे। भरतकी जगह दूसरा कोई राज्यलोक्य होता तो वह अवश्य प्रसन्न होता। पर भरतजीको माताके बचन ऐसे लगे मानो वे जलेपर नमक लगा रही हों—

‘मनहुँ जर पर लोनु लगावति ।’

माताने जब कहा कि ‘अब सोन्च छोड़कर राज्य करो’ तब तो भरतजी सहम गये। मानो पके धावपर अगार छू गया हो। वे लघी सॉस लेते हुए बोले—‘पापिनी! तूने सब तरहसे कुलका नाश कर दिया। हाय! यदि तेरी ऐसी ही कुरुचि थी तो तूने जन्मते ही मुझे मार क्यो नहीं डाला। तूने पेइ काटकर पत्तेको सीचा है और मछलीके जीनेके लिये पानी-को उलीच डाला है। अरी कुमति। जब तेरे हृदयमें ऐसा बुरा विचार आया, तभी तेरे हृदयके टुकड़े-टुकड़े क्यों न हो गये? तेरी जीम गल नहीं गयी? तेरे मुहमें कीड़े नहीं पड़ गये?’

भरतजीने कहा—

लुभाया विदितो मन्ये न तेऽहं राघवं यथा ।

तथा ह्यनर्थो राज्यार्थं स्वयानीतो महानयम् ॥१३॥

अहं हि पुरुषव्याघ्रावपश्यन् रामलक्ष्मणौ ।

केन शक्तिभ्रावेण राज्यं रक्षितुमुत्सहे ॥१४॥

न तु कामं करिष्यामि तवाहं पापनिश्चये ।

यथा व्यसनमारब्धं जीवितान्तकरं मम ॥२५॥

X X X

राज्याद् अंशस्त कैकेयि नृशंसे दुष्टचारिणि ।

परित्यक्तासि धर्मेण मा मृतं रहती भव ॥२॥

किं तु तेऽद्वृष्टयद् रामो राजा वा भृशाधार्मिकं ।

ययोर्मृत्युर्विवासश्च त्वच्छ्रुते तुल्यमागतौ ॥३॥

यत् त्वया हीदृशं पापं कृतं धोरेण कर्मणा ।

सर्वलोकप्रियं हित्वा समाप्यापादितं भयम् ॥५॥

मातृरूपे ममामित्रे नृशंसे राज्यकासुके ।

न तेऽहमभिभाष्योऽस्मि दुर्वृत्ते पतिधातिनि ॥७॥

(वा० रा० ७३ । ७४)

‘लोभिनि! तुझे ज्ञात नहीं है कि श्रीराघवेन्द्रके प्रति मेरा क्या भाव है। इसी कारण राज्यके लोभसे तूने यह महान् अनर्थ कर डाला। पुरुषसिंह राम-लक्ष्मणको विना देखे मैं किसके बलपर राज्यकी रक्षा करूँगा? तूने मेरे जीवनका अन्त कर देनेवाला भीषण दुःख उत्पन्न कर दिया। पर पापिनि! मैं तेरा मनोरथ पूर्ण नहीं होने दूँगा। अरी दुष्टा कूरे। तू

राज्यसे भ्रष्ट हो जा, तू धर्ममें पतित है। इंधर करे मैं मरजाऊँ
और तू मेरे लिये रोया करे। गमने तेरा क्या बुरा किया था?
और अत्यन्त धार्मिक महाराजने ही तेरा क्या विगड़ा किया? जो तूने
एकको बनवास और दूसरेको एक ही माथ मौतके मुँहमें पहुँचा
दिया। तूने इस प्रकारका घोर कर्म किया है कि मर्वलोकप्रिय
रामको बन दिया। इससे मैं भी भयभीत हो गया हूँ।
अरी राज्यकी भूती! क्षूरे! तू माताके रूपमें मेरी जतु है।
तुमको मुझमें ओलना भी नहीं चाहिये। तू वडी दुगचारिणी
है। तू पति हत्यारी है!

मन्थगुरो धर्मीटते हुए गतुधका क्रोध शान्त करते
समय तो भगतजीने गहाँतक कह दिया कि—

इन्यामहमिमां पापा कैकेयों हुएचारिणीम् ।
यदि मा धार्मिको रामो नास्येन्मानुव्यातकम् ॥

(वा० रा० ३ । ७८ । २३)

‘भाई! मुझे यदि यह ढर न होता कि धर्मात्मा श्रीराम-
भद्र मातृ हत्यारा मानकर मुझे त्याग देंगे तो मैं इस दुष्ट
आचरणवाली कैकेयीको मार ही डालता।’

अन्तमें भगतजीने कैकेयीका मुण भी नहीं देखना चाहा
और कहा ‘तू जो है, सो है, अब मुँहपर कालिङ्ग पोतकर
यहाँसे उठ और मेरी आँगोंकी ओढ़में जा बैठ।’ मैं तेरा
मुँह नहीं देगना चाहता—

जो हमि सो हमि मुहूँ मसि लाई। जानि आए उठि बठहि जाई॥

माता कैकेयीका भरतको राज्य दिलानेका यह प्रयत्न
भरतकी मर्मान्तर केदनाका कारण हो रहा है। वे इसको महा-
पाप मान रहे हैं। माँको राम विगेधी समझकर वे उने अपना
गतु समझ रहे हैं। उनके मनकी देदनाका कोई पार नहीं है।
हृतनेमें ही श्रीकौसल्याजी वहों आ जाती है और शोकावेद्रमें
उनके मुँहसे कुछ ऐसे शब्द निकल जाने हैं, जिनमें यह प्रतीत
होता है कि माता कौसल्या रामके बन-नामनम भरतको कारण
मान रही है। भरतजी महाराज राम पियोगसे व्याकुल माता
कौसल्याकी दीन दशा देखकर अत्यन्त दुखकानर तो थे ही।
माताके मुखसे निरुले बच्चोंको सुनकर तो भरतजीका हृदय
दूँक दूँक हो गया। वे पद्मावृत खाकर माताके चरणोंमें मर्जिन
होकर गिर पड़े। जर चेतना हुई, तब गङ्गा कण्ठमें ‘हा राम,
हा राम!’ पुकारते हुए इधर-उधर ताकने लगे। भरतजीने

व्याकुल होकर उनके चरणोंमें पड़े-पड़े कहा—
मातृ तात कहूँ देहि देखाई। कहूँ सिय रामु लखनु दोउ भाई॥

कैकैइ कत जनमी जग माझा। जौं जनमि त मझ कहै न बौँका॥

कुन फलकु जैहिं जनमेड मोही। अपजम भाजन प्रियजन द्रोही॥
को तिमुन मोहि सरिस अमली। मनि असि तोरि मातु जैहि लाली॥
पितु मुरधुर बन रघुवर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
धिग मोहि भयठ बेनु बन आली। दुमह दाह दुख दूधन भाली॥

भरतकी इम स्थितिको देखकर कौमल्याजी घबरा गर्याँ
और उन्हें गोदमें बिटाकर स्वयं रोने लगी। भरतजीने
कौमल्याको विश्वास दिलानेके लिये ऐसी-ऐसी भयानक अपर्यं
सार्याँ कि जिन्हें सुनकर हृदय कम्हणा-गम्ममें वह जाता है।
फिर माता बोली—

मम दुखमिड उत्र भूय समुपजायते ।
शपर्य शपमानो हि प्राणानुपरुस्मि भे ॥
दिष्ट्वा न चलितो धर्माश्रमा ते सहलक्षण ।
वस्म मत्प्रतिज्ञो हि सत्रा लोकानवाप्त्यसि ॥
हत्युक्त्वा चाक्षमानीय भरतं भ्रातृवत्सलम् ।
परिव्वज्य महावाहुं रुद्रं भृशादु खिता ॥

(वा० रा० ७५ । ६२ मे ६३)

‘वेदा! तुम्हारी इन शपथोंसे मेरे निकलते हुए प्राण तो
रुक गये हैं, पर तुम्हारी शपथोंसे—तुम्हें इतना दुखी देखकर
मेरग दुर य और अधिक बढ़ गया है। यह वडे सौभाग्यकी बात है
कि तुम्हारा अन्त-करण धर्ममें विचलित नहीं हुआ। वेदा! तुम
सत्प्रतिज हो। तुमको सत्पुरुषोंके लोककी प्राप्ति होगी।’
यों कहकर भ्रातृवत्सल भरतको गोदमें लेकर मैयाने हृदयसे
लगा लिया और अत्यन्त दुखी होकर वे गेने लगी।

माता कौमल्याका हृदय निगलित हो गया। भरतके प्रति
उनकी स्लोह ममताका भमुद्र उमड़ पड़ा। वे बोली—

राम प्रानहु तं प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपनिहि प्रानहु तं प्यारे॥
पिषु प्रिप चैव सैव हिमु आली। हाँ वारिचर वारि विराली॥
भर्तु ग्यानु वरु भिट न मोह। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सों भपनेहुँ मुख सुगति न लहर्ही॥
अस कहि मातृ भरतु हियं लाए। थन पथ लवहि नयन जल छाए॥

कौमल्या माताने भरतको हृदयसे ल्या लिया। उनके
स्तनोंमें स्नेहामृत—दुग्धकी बारा वहने लगी। नेत्रोंमें वाद
आ गयी।

माताकी आजासे भरतजीके द्वारा दशरथजीकी शाद्विया
सविधि सम्पन्न हुई। गुरु विग्रहने शोक त्यागकर राज्यपद
स्वीकार करनेके लिये आदेश दिया। माता कौमल्याने,
मन्त्रियोंने, प्रजाने भी उन्हें राज्य-ग्रहणकी सम्मति दी। भरतजीके

हृष्टव्री वेदना तो भरतजी ही जानते थे। वे सुनते रहे और गेते रहे!

अयोध्यका चक्रवर्ती राज्य उनके लिये तनिक भी प्रलोमनका विषय नहीं हो सका। उन्होंने वडे घैर्य और साहसके साथ सर्व ग्रतिवृल्प परिस्थितियोंका समाना किया, दृढ़ी कड़ी-कड़ी परीक्षाएँ दाः पर भरतके मनको तनिकना भी विचलित करनेमें बोई भी जक्कि उक्कल नहीं हुई। कोई भी प्रलोमन और भय उन्हें जग भी डिगा न सका!

इहा जाता है कि कैकेयीके विवाहके समय कैकेयीके निनाने नामने महानज दग्धरथ बनन दे नुके थे कि कैकेयीका पुत्र ही राज्यवा अधिकारी होगा। मन्यगुके उपदेशसे कैकेयीने महानज दग्धरथसे बरदान भी प्राप्त कर लिया था— केवल भगवनके गज्यामिषेकका ही नहीं, रामके लिये चौदह वर्षके बनवासका; जिससे कि इतनी लंबी अवधिमें अनने संदृश्यवहार से भग्न प्रजनकी सहानुभूति, ल्लेह तथा आत्मायता प्राप्त कर लें, और चौदह वर्षके बाद रामके लौटनेपर भी प्रजा भगवतको ही चाहे। फिर कैकेयीके बगदानमें भी यह बात तो थी ही नहीं कि चौदह वर्षके बाद आकर रामजी भगवतसे गज्य ले लेंगे। मन्यगुने कैकेयीसे यही बहा था कि तुम 'भगवनका राज्य' और 'राम-के लिये चौदह वर्षका बनवास' मौग लो।' भगवनका राज्य चौदह वर्षके लिये नहीं, न गमका बनवास चौदह वर्षके लिये ही और वह इमलिये कि तक्षतक भग्न प्रजाके न्नेह-भाजन हो जायें और उनका राज्य अडिग हो जाय। मन्यगुके अन्दर हैं—

तौ च याचन्व भर्तां भरतस्यामिषेचनम्।
प्रामाजनं च रामस्य वर्षणि च चतुर्दश ॥
चतुर्दश हि वर्षणि रामे प्रवाजिते बनम्।
प्रनामावगतस्तेह स्थिरः पुन्नो भविष्यति ॥

(वा० चा० ३। ९। २०-१)

इस प्रकार भगवनका राज्य-नीकुलिति निर्दोष तथा निर्वाध थी। नभी लोग उत्तरा समर्यन करते थे। परंतु रामप्रेमके मूर्तिमान् अन्य भग्नने सुनकनिरन्कार कर दिया। उन्होंने माता, ननिश्चल, प्रजनन, पिनारी आना, बनन-स्पृशा-सुन्वन-समनि, गज्यवैभव-सूक्ष्मा त्याग कर दिया। उन्होंने किनी बग्न, पदार्थ, स्थिति, प्राणी वा आर्माद-भजनकी जोई भी पाच नहीं की और अननेशे दिना शर्न गमके चण्णोंमें समर्पित कर दिया। धन्य।

सभके द्वाह ग-म-के प्रनाम तथा अनुग्रहको तुनकर भग्नर्न, दृढ़ी ही निर्नान और आर्न चारीमें दोले—

एह चिठ्ठि महागनने मुझे तुन्द्र उपदेश दिया। प्रजा,

मन्त्री आदि सबको भी यही सम्मन है। माता कौसल्याजीने भी उचित समझकर ही आदेश दिया है और अवश्य ही मैं मी उसे सिर चढ़ाकर पूरा करना चाहता हूँ। गुरु, पिता, माता, स्वामी और सुहृद्दीनी वात उसे हितकारी समझकर प्रसन्न मनसे माननी चाहिये। उसके विषयमें उचित-अनुचितका विचार करनेसे धर्मका नाभ और पापकी प्राप्ति होती है। आपलोग मेरे भल्के लिये ही मुझे यह सरल सीख दे रहे हैं। परंतु मुझे इससे संतोष नहीं होता। मेरी प्रार्थना यह है कि आप मुझे मेरी योग्यता देखकर ही उपदेश कीजिये। मैं उत्तर दे रहा हूँ, मेरा यह अपराध क्षमा कीजिये। मैं इस समय दुखी हूँ, सात्रु पुरुष दुखीके दोष-गुणोंकी ओर ध्यान नहीं देते। वे तो उसके दुखकी ओर देखते हैं।

पिताजी स्वर्गमें हैं, श्रीसीतारामजी बनमें हैं और मुझे आप राज्य करनेके लिये कह रहे हैं। यह तो बताइये कि इसमें आपने मेरा क्षत्याग समझा है या अपने किसी वडे कामके सिद्ध होनेकी आज्ञा की है? मेरा हित तो सीतापति श्रीरामभद्रकी चाकरीमें है, सो उसे माताकी कुटिलताने छीन लिया। मैंने अच्छी तरह सोचकर देख लिया कि दूसरे किसी भी उपायसे मेरा हित नहीं है। शोकका समुदाय यह राज्य श्रीलक्ष्मण, श्रीरामभद्र और श्रीसीताजीके चरणोंको देखे दिना विस गिनतीमें है। जैसे कृष्णदोंके दिना गहने बोझ मात्र है, वैराग्यके दिना ब्रह्मविचार व्यर्थ है, रोगी शरीरके लिये भौति-भौतिके भोग व्यर्थ है, श्रीहरिकी भक्तिके दिना जप और योग व्यर्थ है और जीवके दिना सुन्दर शरीर व्यर्थ है, वैसे ही श्रीरुद्रनाथजीके दिना मेरा सब कुछ व्यर्थ है। आप लोग मुझे आजा दीजिये—मैं श्रीरामके चरणोंमें जाऊँ। मेरा यही एक निश्चय है। मुझे राजा बनाकर आप जो अपना भला चाहते हैं, सो यह तो आपके लेहकी जडतामात्र है।

दैर्जे के मुझ कुटिल मनि रान विमुख गन लाज ।

तुम्ह चाहत मुखु नोह वस मोहि से अवम के राज ॥

कहूँ साँचु सव नुनि पनिशाहू। चाहिअ घरमसील नरनाह ॥
मोहि राजु हठ देह्तु जवहीं। रसा रसातल जाहि तवहीं ॥
मोहि समान को पाप निचासू। जैहि लगि सीव राम बनवासू ॥

मैं कैकेयीका देटा, कुटिल-तुद्धि, रामविमुख और निर्लज्ज हूँ। मुझ-सरीदे अधमके राज्यसे आप मोहके वज होकर ही सुन्व चान्ते हैं।

मैं मृत्यु कहता हूँ, आप सब सुनकर विश्वास करें,

धर्मदीलको ही राजा होना चाहिये । आज मुझे हठ करके ज्यों ही राज्य देंगे, ज्यों ही वह पृथ्वी पातालमें बैठ जायगी । मेरे समाज पानोंका धर और कौन होगा, जिसके कारण श्रीसीतारामजीको बनवाउ दुखा ।'

अन्यतमें मरतजीने रामके चरणोंमें जानेका दृढ़ प्रस्ताव किया । मरतकी वात सद्गो बहुत अच्छी लगी । सबने साथ चलनेकी इच्छा प्रकट की । राजधानीकी रक्षाना सनुचित प्रबन्ध करके सब लोगोंको साथ लेकर मरतश्चक्रुच दोनों भाई पैदल ही चल दिये । रातेमें रामस्वता नियाद-राजने भी मरतकी बड़ी कड़ी परीक्षा ली । पर उनके रामप्रेम-पीयूषने परिष्ठ पूद्यको देखकर निमाद उद्धके लिये उनका चरणानुगत हो गया । वास्तीकि-रामायके अनुचर मुनि मरदाजने भी पहले संदेह किया था । वहाँ भी मरतको मर्मान्तक पीड़ा हुई और उन्हें कड़ी परीक्षा देनी पड़ी । उनको एक विश्वास था—श्रीरामने त्वभावका । माताकी करूतका लरण होता, तब तो अनेको अन्यत नीच नहरम मानकर डुक्ती और निराश-से हो जाते, पर श्रीरामका त्वभाव बाद आते ही उत्साहसे भर जाते ।

नातु भने नहुं भनि नोहि जो कहु करहि सो थोर ।

उद्य अक्षुन छनि उदरहि सनुक्षि अपनी ओर ॥

फेरति मनहुं नातु दृत खोरी । चक्ष नापि दन वैरज घोरी ॥
दन सनुक्षन रहुनाथ सुभाल । तब पद परत उद्गङ्ग पाझ ॥

इतीं वर्ति एक वात और ही गयी । श्रीरामके अल्पन्त प्रेमी, रामपर अपना एकाविकार माननेवाले लक्ष्मणजीने दूरसे विशाल सेनाके साथ मरतजीको आते देखा तो रामप्रेमवश उनका वैररत्न जग उठा और उन्होंने मरत तथा अग्ने चगे माई शत्रुघ्नी कुटिल्ता समझकर उनका तिरस्कार करते हुए कहा—‘भूदृ, विश्वी जीव प्रसुता पाकर मोहवश अग्ने अलली लग्नको प्रकट कर देते हैं । भरत नीतिनिष्ठण, जायु और चतुर हैं प्रसु (राजनी) के चरणोंमें उनका प्रेम भी जग-विल्यात है । वे मरत भी आज रामका प्राप्य राजनद पाकर धर्मकी मर्यादा नियाकर आ रहे हैं । कुटिल्तासे भरे कुवन्तु (सोटे माई) मरत आज कुसमद देखकर और राजनीको बनमें अकेले जानकर दुरी नीयतरे समाज उजाकर राज्यको निष्कण्टक करनेके लिये यहों आये हैं । दोनों भाई इन कुटिल्ताओंके कारण ही सेना बटोरकर यहों पहुँचे हैं । इद्यमें कुटिल्तान होदी तो इस समर हाथी धोड़े, रथ निरे दुहुरे ? पर मरतको ही क्या दोप्रहै । राज्यमद चारे जगत्को ही

पागल कर देता है । अब यही मरतने एक वात बहुत ही दुरी की कि वे रामको अतहाय जानकर उनका निरादर करने चले हैं । पर आज संग्राममें श्रीरामजीका क्रोबर्ण मुख देखकर वह भूल भी उनकी समझमें आ जायगी ।’ इतना कहते-कहते ही लक्ष्मणजी नीतिको भूल गये और रणस्तमें मत्त होकर रामदुहाई करते हुए मरत-द्वारुको मर डालनेकी वात कह बैठे ।

आकाशवारी हुई । लक्ष्मणजीको सचेत किया देवताओंने कि दिना विचारे कुछ भी करने कर न बैठें । इससे लक्ष्मणजी सकुचा गये । लक्ष्मणजी जोशमें थे, उन्होंने अनुचित विचार कर लिया । पर जो कुछ दिया, उसमें एकमात्र कारण तो रामप्रेम ही है । लक्ष्मणके विचार असुन्दर हैं, अतएव उन विचारोंको दूर करना है; पर लक्ष्मणजीके प्रेमका तो आदर ही करना है । अतएव श्रीसीता-रामजीने सकुचे हुए लक्ष्मणजीका आदरप्रहित समान निया—

सुनि नु वचन लक्ष्मण सकुचाने । गन सीर्प सदर सनमाने ॥

सिर रामजीने कहा—

‘प्रिय लक्ष्मण ! तुमने कही सुन्दर नीति कही । वह सत्य है मैया ! राज्यमद सबसे कठिन मद है । जिन्होंने सत्यइ नहीं किया, वे राजा राज्यमदहपी मदिराका जराचा पान करते ही मतवाले हो जाते हैं । पर लक्ष्मण ! सुनो, मरतसरीखा उत्तम पुरुष न तो ब्रह्माकी उठिमें कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है ।

मरतहि हैं न राजमदु विवि हरि हर पद पाढ़ ।

कवहुं कि कौंजी नीकरनि छौर मिथु विनसाइ ॥

‘योद्याके राजनी तो वात ही क्या है, ब्रह्मा; विष्णु और चतुरका पद पाकर भी मरतको राज्यमद नहीं हो सकता । क्या कमी कौंजीकी दृंदोंसे क्षीरसमुद्र नष्ट हो सकता है ।

‘अन्वकार चाहे मव्याहके सूर्यको निगल जाय, आकाश चाहे वाइलोंमें समाकर मिल जाय । गौके खुर जितने जलमें अगस्त्यजी चाहे द्वृत जायें और पृथ्वी चाहे अपनी क्षमा (सहनशीलता) को छोड़ दे, मच्छरकी फूँकरे चाहे सुमेव उड़ जाय, पर मैया । मरतको राज्य-मद कभी नहीं हो सकता । मैया लक्ष्मण ! मैं तुम्हारी शनय और मितार्जीकी सौगंध खाकर कहता हूँ—मरतके समान पवित्र और उत्तम भाई उंसारमें नहीं हैं ।’

मगवान्की कागीसे लक्ष्मणजीका समावान हो गया । देवता प्रदाना करने लगे । अत्तु—

जय-वल्कलधारी भरतजी रामजीके समीप पहुँचे । उनके प्रेमन्त्रो देखकर सभी चकित हैं । वनके पश्च-पक्षी और जड़ वृक्षादि भी प्रेममें निमग्न हैं । देव-शृणिमुनि सभी लोग भरतकी प्रदानसा करने लगे—

ऐम अन्मि भृत विहु भृत एवंवि गंभीर ।
मथि प्रगटेड सुर साधु हित वृषा सिधु रघुवीर ॥

भरतजीके नेत्रोंसे कदणा तथा पश्चात्तापके गरम-गरम ओसुओकी धारा वह रही है, गद्गाद कण्ठ है, देह दुबली हो रही है वे दीन, हीन, मलिन तथा दुखसे अत्यन्त पीड़ित हैं । अपनेनो महान् अपराधी, पतित मानते हुए, कौनते हुए रामके चरणोंके पात्र पहुँचते हैं ।

दु खाभितसो भरतो राजपुत्रो महावल ।
उत्त्वायेति सज्जु दीनं पुनर्नोवाच विचन ॥
(९९ । ३८)

जटिल चीरवसन प्राञ्छिलि पतित भुवि ।
ददर्श रामो हुर्दर्शं दुग्धान्ते भास्कर चथा ॥
(१०० । १)

कथचिदभिविज्ञाय विवर्णवदनं कृशम् ।
आतरं भरतं राम. परिज्ञाह पाणिना ॥
(१०० । २)

दु खसे उत्तरत महावली राजकुमार भरत 'हा आर्य!' इतना ही कह सके, फिर उनके मुहसे शब्द नहीं निकला और जटा तथा वल्कल वल्ल वारण किये श्रीभरतजी हाथ जोड़कर मूर्छित हो पृथ्वीपर श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़े । रामजीने देखनेके अयोध्य प्रल्यकालीन सूर्यके सुगन भरतजीको देखा । उनका मुख विर्ण हो रहा था । वे अत्यन्त कृप हो रहे थे । श्रीरामने किसी तरह उन्हें पहचाना और अपने हाथों उठाया ।

श्रीमानसके अनुसार 'हा नाथ, रक्षा कीजिये।' कहते हुए भरतजी जब पृथ्वीपर दण्डकी भोति गिर पड़े, तब लक्षणगजीने कहा—'श्रीरघुनाथजी! भरतजी प्रणाम कर रहे हैं।' यह सुनते श्रीरघुनाथजी प्रेममें अर्धार होकर उठे, उनका वल्ल कहां तरक्त कहां, घनुप कहां और वाण कहां गिर ।

क्षणनिधान श्रीरामजीने उनको जवरदस्ती उठाकर हृदयसे लगा लिया । नरतजी और श्रीरामजीका इस मिलनकी विलक्षण रीतिको देखकर सब अपनी लुब-नुष्ठ भूल गये—

उठे राम् सुनि भेन अर्धसा । कहुँ पट कहुँ निष्ण घनु तीर ॥
वरवत लिप लग्न अ लाए वृग्निधान ।
भरत रम की निलनि लक्षि नित्तरा सवहि अपन ॥

महाराज दद्वारथकी मृत्युके समाचारसे सबको दुःख हुआ । रामजीने उचित किया की । इसके बाद भरतजीका जो कुछ लीला प्रसङ्ग है, वह इतने महत्वका है कि जगत्मे उसकी कहां तुलना नहीं है । रामचरितमानसके अयोध्याकाण्ड में उसे पटना चाहिये । श्रीरामजी अपनेको भरतके हाथोंमें समर्पण कर देते हैं और भरत तो सर्वथा समर्पित ही हैं । अन्तमें सेवककी रचि रखनेवाले स्वामीकी ही रचि रखना भरतजी पसंद करते हैं । परं रामजी भोति-भोतिये भरतजीके महत्वका वर्गन करते अद्याते ही नहीं ।

भरतने कहा था—'मैं 'अधम' हूँ, 'कुटिलमति' हूँ
'कुटिला कैकेयीका पुत्र हूँ' 'पापनिवास' हूँ । मुझे राज्य दोनों तो धरती पातालमें धैर्य जायगी—'मा रसातल जाइहि ।'
श्रीरामजी सहज ही श्रीमन्मतीसे अहते हैं—

तीनि जाल निमुञ्जन नन मेरें । पुन्यसिनोल तात तर तेरें ॥
जर आनत तुम्हपर कुटिलाई । जड़ लोकु परलोकु नसाई ॥
दोमु देहि जननिहि जड़ तेई । किन्व गुर नाधु सना नहि स्नेई ॥

मिट्ठिहि पाप प्रपञ्च सब अखिल अमंगल मार ।

लोक सुजसु परलोक मुख मुनिरत नानु तुम्हार ॥

कहुँ मुभाड सत्य सिन माली । भरत मूर्मि रह राघि गली ॥

मैया भरत ! (तुम अधम नहीं हो;) मेरे मत्तमें तो भृत, भाविष्य, वर्तमान—तीनों कालों और स्वर्ग, भूमि; पाताल —तीनों लोकोंके सम्बन्ध श्रेष्ठ पुण्यात्मा पुश्य तुमसे नीचे हैं ।

'(तुम कुटिलमति नहीं हो, वल्कि) दृढ़यमें भी तुमर कुटिलताका आरोप करनेवालेके लोक तथा परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं । (माता कैकेयी भी कुटिला नहीं है;) माता कैकेयीको तो वे ही नूर्ख दोष देते हैं, जिन्होंने गुरु और साधुओंकी सभाका सेवन नहीं किया है ।

'भरत ! (तुम पापनिवास नहीं हो, तुम तो इतने महान् पुण्य भव हो कि) तुम्हारे नामका स्मरण करते ही सारे पाप, प्रगच्छ (अज्ञान) और सुमस्त अमङ्गलोंके समूह मिट जायेंगे तथा इस लोकमें सुन्दर वज और परलोकमें सुख प्राप्त होगा ।

'भरत ! (तुमने कहा था धरती पातालमें धैर्य जायगी; पर) में स्वभावसे ही सत्य कहता हूँ, शिवजी साक्षी हैं, यह पृथ्वी तुम्हारी ही रक्खी रह रही है ।'

अन्तमें भरतजी महाराज जो स्वर्ण-पादुका तैयार करवा-

कर अपने माथ ले गये थे, उन्हे भगवान् श्रीगमकी भेवामे
उपस्थित करके बोले—

अधिरोहार्यं पात्राभ्या पादुके हेमभूषिते ।
एते हि भर्वलोकन्य योगक्षेम विधास्यत ॥
सोऽविस्त्व नरव्याघ पादुके व्यवसुच्य च ।
प्रायच्छत् सुमहातेजा भरताय महात्मने ॥

(वा० ग० ३ । ११० । २१-२२)

‘आर्य! आप स्वर्णभूषित इन पादुकाओंको पहन लीजिये। ये सबका योगक्षेम वहन करेंगी। तप नरग्रेष महातेजस्वी भगवान् श्रीगमजीने उन पादुकाओंको एक बार पहन लिया, फिर निरालकर महात्मा भगतमो दे दिया।’

भरतने पादुकाओंको प्रणाम किया और श्रीगममे रुदा—
‘मैं चौदह दर्पतक अगणवासी तपस्वीके नद्वा जटा-बल्कल
धारण करके नगरके बाहर रहूँगा और फल-मूलका आहार
करता हुआ आपकी प्रतीक्षा करता रहूँगा। इन पादुकाओं-
को राजसिंहासनपर पथगकर इन्होंके लिये चौदह वर्षतक
सेवककी तरह मैं राजकाज देखता रहूँगा। चौदहवे वर्षका
अन्तिम दिन वीतनेके बाद पहले ही दिन आपके दर्शन नहीं
होंगे तो मैं प्रलव्विलित अग्रिमें प्रवेश कर जाऊँगा।’

न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेश्यामि हुतादानम् ।

(वा० रा० ३ । ११० । २५)

भरतने उन श्रेष्ठ पादुकाओंको लंकर अपने सिरपर
रखा। श्रीगमकी प्रदक्षिणा की और उनको हाथीपर पथगया।
अयोध्या पहुँचकर लोगोंमें कहा कि ‘इनपर उत्तर धारण करो।
ये भगवान् श्रीरामके प्रतिनिधि हैं। मेरे बड़े भाई भगवान्
गमने प्रेमपर मुझे यह धरोहर दी है। जगतक वे लौटकर नहीं
पथारेंगे, तवतक मैं इनकी रक्षा करूँगा। श्रीघ ही श्रीगमजी-
के चरणोंमें इन पादुकाओंको पहनाकर मैं उनके पादुकायुक्त
चरणोंके दर्शन करूँगा। जिस दिन ये पादुकाएँ और
अयोध्याका गज्य श्रीरामको वापस लैया दूँगा, उसी दिन
अपनेको इस पापकलङ्कसे मुक्त समझूँगा।’

फिर माता कौसल्या और गुरु वशिष्ठजीके चरणोंमें प्रणाम
करके प्रसुकी चरणपादुकाओंकी आज्ञा पाकर धर्मधुरीण
परम धीर भरतजीने नन्दिग्राममें कुटी बनायी और उसमें वे
रहने लगे। उनकी रहनी-करनीका बड़ा सुन्दर चित्र
गोस्वामी तुलसीदासजीने खाना है, उसे उन्होंकी मापामें
पढ़कर देखिये—

जटाजूट मिर मुनिपट धारी । महि खनि कुस साँथरी सँवारी ॥
अमन वसन वासन व्रत नैमा । करत कठिन रिपि धरम सप्रेमा ॥
मृपन वसन मोग-सुख मूरी । मन तन वचन तजे निन तूरी ॥
अवध गजु सुर राजु सिहाई । दमरय धनु सुनि धनु लनाई ॥
तंहि पुर वसत भगत विनु गगा । चचरीक जिमि चपक वागा ॥
गमा विलासु राम अनुरागी । तजन वमन जिमि जन वडभागी ॥

गम पेम भाजन भरत बडे न यहि करतूनि ।

चानक हम मराहिअत टैक विंदक विमूनि ॥

देह दिनहूँ दिन दूबार हाँई । धट्ट तेजु वलु मुखद्यवि सोई ॥
नित नव राम प्रेम यनु धीना । बट्ट धरम दलु मनु न मलीना ॥
जिमि जलु निधट्ट सरद प्रकास । पिलसत वेतम वनज विकास ॥
सम दम सजम नियम उपासा । नखत भरत हिय विमल अकासा ॥
प्रुव प्रिस्तालु अववि रका सी । स्त्रामि सुरति सुरवीथि विकासी ॥
राम पेम विधु अचन अदाया । सहित समाज सोह नित चोका ॥
भरत रहनि समुझनि करनूरी । भगति विरति गुन विमल विभूती ॥
वरनत सफल सुकृपि सकुचाहां । सेस गनेस गिरा गमु नाहां ॥

मिगपर जटाजूट और शरीरमें मुनियोंके (बल्कल) वस्त्र
धारणकर, पृथ्वीको खोदकर उसके अदर कुदाकी आसनी
विद्या लीं। भोजन, वस्त्र, वरतन, व्रत, नियम—सभी वातोंमें
वे श्रृंगियोंके फटिन धर्मका प्रेमसे आचरण करने लगे। वस्त्र,
आभूपण और विग्राल भोगसुखोंको मन, तन और वचनसे
तृण तोड़कर (प्रतिजा करके) त्याग दिया। जिस अयोध्याके
गत्यको देवराज इन्द्र सिहाते थे और दशरथजीकी समति
सुनमर कुवेर भी लजा जाते थे, उसी अयोध्यापुरीमें भरतजी
अनामक होकर इस प्रकार निवास कर रहे ह, जैसे चम्पाके
वर्ण-चेमें भ्रमर। श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमी वडभागी पुरुष लक्ष्मीके
विलास (भोगैश्वर्य) को वमनकी भौति त्याग देते हैं। (फिर
उसकी ओर ताकतेही नहीं) फिर भरतजी तो श्रीरामचन्द्रजीके
प्रेमपत्र हैं। वे इस (भोगैश्वर्यत्याग रूप) करनीसे वडे नहीं
हुए। उनके लिये यह कोई बड़ी वात नहीं है। (स्वाति-भेघ
जलके मिवा अन्य जल न पीनेकी) टैकसे चातककी और
नीर-क्षीर-विवेरकी विभूतिसे इसकी भी सराहना होती है।

भरतजीका शरीर दिनेंदिन ढुबला होता जाता है। मेद
घट रहा है। बल तथा मुखद्यवि (मुखकी ओभा) वैसी ही
बनी हुई है। रामप्रेमका प्रण नित्य नया और पुष्ट होता है।
धर्मका दल बढ़ता है और मन प्रसन्न है। जैसे शरद-ऋतुके
प्रकाशसे जल घटता है, फिर वैत श्रोभा पाते हैं और कमल
विकसित होते हैं। शम, दम, सयम, नियम और उपवास आदि-

भरतजीके हृदयरूपी निर्मल आकाशके नक्षत्र हैं। (उनके जीवनमें यही सब चमक रहे हैं)। विश्वास ही उस आकाशका ब्रुव तारा है, चौदह वर्षकी अवधि पूर्णिमाके समान है और स्वामी श्रीरामजीकी स्मृति आकाशगङ्गाके समान प्रकाशित है। रामप्रेम ही अच्छ और कलङ्करहित चन्द्रमा है। वह अपने समाज (संयम-शम-दमादि) सहित नित्य सुन्दर सुगोभित है। भरतजीकी रहनी, समझ, करनी, भक्ति, वैराग्य, निर्मल गुण और ऐश्वर्यका वर्णन करनेमें सभी सुकृति सकुचाते हैं, क्योंकि वहाँ (ओंगेकी तो वात ही क्या) स्वयं शेष, गणेश और सरस्वतीजीकी भी पहुँच नहीं है।

वे प्रतिदिन पादुकाओंका पूजन करते हैं। हृदयमें प्रेम समाता नहीं। पादुकाओंसे आज्ञा मॉग-मॉगकर वे सब प्रकारके राजकाज करते हैं। वरीर पुलकित है, हृदयमें श्रीसीतारामजी है। जीप राम-राम जप रही है। नेत्रोंमें प्रेमके आँखू ढलक रहे हैं। श्रीरामजी, सीताजी और लक्ष्मणजी तो बनमें बसते हैं, पर भरतजी घरमें ही रहकर तपके द्वारा तनको कस रहे हैं।

—○—○—○—○—

सत्कथाकी महिमा

(लेखक—ऋद्धेय श्रीजयदयालजी गोपन्दका)

‘सत्’ का अर्थ है परमात्मा। उस परमात्माको जाननेवाले जो महापुरुष हैं, उनको ‘सत्पुरुष’ कहते हैं और उस परमात्माकी प्राप्तिका जो उपाय है, उसे ‘सत्-मार्ग’ कहा जाता है। ‘सत्’ गद्यका कहों-कहों प्रयोग होता है—इसका निरूपण करते हुए स्वयं भगवान्ने कहा है—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।

ब्राह्मणास्नेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिता पुरा॥

(गीता १७।३३)

ॐ, तत्, सत्—ऐसे वह तीन प्रकारका सुचिदानन्द-धन ब्रह्मका नाम कहा गया है, उम्मीसे सृष्टिके आदिकालमें ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये।

सन्नावे सायुभावे च सदित्येतय्युज्यते।

प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दं पार्य युज्यते॥

(गीता १७।३६)

‘सत्’—इस प्रकार यह परमात्माका नाम सत्य भावमें और श्रेष्ठ भावमें प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्य! उत्तम कर्ममें भी ‘सत्’ गद्यका प्रयोग किया जाता है।

चौदह वर्ष लगातार यही ऋम चला। अन्तके दिन प्रभु-के द्वारा प्रेरित श्रीहनुमान्‌जीने भी ब्राह्मण-वेषमें आकर महात्मा भरतजीकी यही प्रेममयी झाँकी देखी—

वैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृप गत ।

राम गम रघुपति जपत स्वत नयन जल जात ॥

धन्य भरतजी, धन्य आपका त्याग, धन्य आदर्श, धन्य राम-प्रेम। मूर्तिमान् भृत, मूर्तिमान् सदाचरण, मूर्तिमान् सद्व्यवहार और मूर्तिमान् प्रेम।

सिय राम प्रेम पियूष पूर्न हैन जनमु न भरत को।

मुनिमन अगमजम नियम सम दम पियम त्रत आचरत को॥

दुख दाह दारिद द-भ दूषन सुजम मिस अपहरत को।

कम्भिकाल तुलसी से सठन्हि हडि राम सनमुख करत को॥

भरतके अति पावन चरित्रके श्रवणका अवश्यम्भावी परम फल भी तुलसीदाम व्रताते है—

भरत चरित करि नेमु तुलसी जे सादर सुनहि ।

सीय राम पद प्रेमु अवसि होइ भव रस विरति ॥

जय जय जय भरत मैयाकी जय जय जय !

यज्ञे तपसि दाने च स्थिति॑ सदिति॒ चोच्यते ।

कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥

(गीता १७।२७)

‘तथा यज, तप और दानमें जो स्थिति (निष्ठा) है, वह भी ‘सत्’ इस प्रकार कही जाती है और उस परमात्माके लिये किया हुआ कर्म निश्चयपूर्वक सत्—ऐसे कहा जाता है।’

इससे यह निष्कर्ष निकला कि ‘सत्’ शब्द एक तो परमात्माका वाचक है। दूसरे, भाव (सत्ता) का; तीसरे, श्रेष्ठ यानी साधु भावका अर्यात् हृदयके धमा, दया आदि उत्तम गुणोंका, चौथे, उत्तम आचरणोंका, पॉच्वे, उत्तम कर्ममें जो स्थिति (निष्ठा) है उसका एव छठे, भगवदर्थ (निष्काम) कर्मका वाचक है। उपर्युक्त छहोंमेंसे किसीकी भी कथा—वर्णन जिसमें हो, वह ‘सत्कथा’ है।

सबसे बढ़कर एकमात्र भगवान् है। इसलिये हमलोगोंको भगवान्‌की प्राप्ति जिस प्रकार शीघ्रतिशीघ्र हो, वही चेष्टा करनी चाहिये। भगवान्‌की प्राप्तिका सबोंत्तम उपाय है—भगवान्‌के वचनोंका पालन करना। गीता भगवान्‌के साक्षात् वचन है। अतः गीताके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये।

श्रीभगवान् और उनके वचनोंकी महिमा अपार है। उनका पार शेष, महेश, गणेश और दिनेश आदि भी नहीं पा सके। यदि उनका पार पा जाय तब तो उन्हें अपार कैसे कहा जा सकता है। श्रीसखानन्जीने क्या ही सुन्दर कहा है—

सेष महेश गणेश दिनेश, सुरेशहु जाहि निरतर गाँवै।
जाहिं अनादि अनत अष्टड, अछेद अमेद सुकेद बतावै॥
नारद-से सुरुच्यास रटें, पचि हों तऊ पुनि पार न पावै।
ताहि अहीर की छोहरिपौं, छिया भरि छाछ वै नाच नचावै॥

ऐसा होते हुए भी जाखोंमें भगवान्की महिमाका कथन ऋषि-महात्माओंने किया ही है। गीतामें भी दसवें अध्यायके १२वें श्लोकमें अर्जुन कहते हैं—

परं ब्रह्म पर धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥

‘आप परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र हैं, क्योंकि आपको सब ऋषिगण सनातन, दिव्य पुरुष एव देवोंके भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं।’

आगे ग्यारहवें अध्यायमें ३६वेंसे ४६वें श्लोक तक अर्जुनने भगवान्की महिमा कुछ और विस्तारसे गायी है। इसी तरह अन्य ऋषियोंने भी जाखोंमें खान-खानपर भगवान्की अगर महिमाका वर्णन किया है।

इसके अतिरिक्त, भगवान्की प्राप्तिके साधनोंकी महिमाका भी जगह-जगह वर्णन किया गया है। स्वयं भगवान्ने ही गीतामें कहा है—

इदं तु ते शुहृतम् प्रवक्ष्याम्यनसूयते ।
ज्ञानं विज्ञानसहित यज्ञात्वा मोक्षसेऽशुभात् ॥

(गीता ९।१)

‘तु उ दोपदिशिरहित भक्तके लिये इस परम गोपनीय विज्ञानसहित ज्ञानको पुनः भलीपैति कहेंगा, जिसको जानकर तू दुखरूप ससारसे मुक्त हो जायगा।’

राजविद्या राजगुहा पवित्रमिद्मुक्तम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्मं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥

(गीता ९।२)

‘यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओंका राजा, सब गोपनीयोंका राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त, साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है।’

इसना होनेपर भी जो लोगोंकी भगवत्प्राप्तिके साधनमें तत्परता नहीं होती, इसका कारण भगवान् और भगवान्के

वचनोंमें श्रद्धाका अभाव ही है। इस वातको स्वयं भगवान् भी कहते हैं—

अश्रद्धाना पुरुषा धर्मस्याख्यं परतप ।
अप्राप्य मा निवर्तन्ते मृत्युससारवर्त्मनि ॥

(गीता ९।३)

‘हे परतप ! इस उपर्युक्त धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मुक्तको न प्राप्त होकर मृत्युरूप ससार-चक्रमें भ्रमण करते रहते हैं।’

श्रद्धाका तात्पर्य है—भगवान्, महात्मा, गात्र और परलोकमें आदरपूर्वक प्रत्यक्षीकी भौति विश्वास। वह विश्वास होता है—अन्त करणकी शुद्धि होती है साधनसे और साधन होता है विश्वाससे। इस प्रकार ये सभी परस्पर एक-दूसरेके सहायक हैं। इसलिये ईश्वर और महात्मा पुरुषोंके वचनोंपर परम श्रद्धा और विश्वास करके हमलोगोंको तत्परताके साथ साधनमें लगा जाना चाहिये।

इसके लिये हमें सर्वप्रथम यह निश्चय करना होगा कि हमारा यह कार्य इस मनुष्य-शरीरमें ही हो सकता है। जो मनुष्य-शरीर प्राणियोंके लिये बहुत ही दुर्लभ है, वह हमें वर्तमानमें अनायास ही प्राप्त है। ऐसे अवसरको हमें अपने हाथसे नहीं जाने देना चाहिये। मृत्युका कोई भरोसा नहीं, न मालूम कब आकर प्राप्त हो जाय। अत इसे पहलेसे ही सावधान हो जाना चाहिये, क्योंकि वर्तमानमें जो हमारी अन्त करणकी पवित्रता, श्रद्धा, निष्ठा, स्थिति है, वही उस समय काम आ सकती है। इसलिये हमें अपनी स्थिति कैचेसे-कैचेसे स्तरकी श्रीश्रातिश्री वना लेनी चाहिये। भक्ति, ज्ञान, योग आदि जितने भी परमात्माकी प्राप्तिके साधन बताये गये हैं, उनसे अन्त करणकी शुद्धि होती है और अन्त करणके अनुसार ही श्रद्धा होती है। भगवान् कहते हैं—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छद्ध स एव स ॥

(गीता ९।३)

‘हे भारत ! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्त करणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है।’

श्रद्धासे ही परमात्मविषयक ज्ञान उत्पन्न होता है, उसीसे असली परम शान्ति मिलती है। श्रद्धा होनेपर साधनमें तत्परताका होना अनिवार्य है। हमारी जितनी श्रद्धा होगी,

८-थ्रमका फल	(रा० श्री०)	४४२	६०८-सब अवस्थामें भगवत्कृपाका अनुभव	(शि० दु०)	४६८
९-अन्त भला तो सब भला	(जा० शा०)	४४२		(" ")	४६८
०-उद्वमका जादू	...	४४३	६०९-दो मार्ग	(" ")	४६९
१-न्यायका सम्मान	(गो० न० वै०)	४४३	६१०-अहंकार तथा दिखावटसे पुण्य नष्ट	...	४६९
२-स्वावलम्बनका फल	(" ")	४४४	६११-सेवककी इच्छा क्या	(सु० सिं०)	४७०
३-निर्माता और विजेता	(जा० शा०)	४४५	६१२-सच्चा साधु	(" ")	४७०
४-स्वावलम्बी विचार्यी	...	४४५	६१३-सच्चे भक्तका अनुभव	(जा० शा०)	४७०
५-आदर्श दण्ड	...	४४६	६१४-फकीरी क्यों ?	(शि० दु०)	४७०
६-अन्यायका पैसा	...	४४७	६१५-अत्यधिक कल्याणकर	(" ")	४७१
७-ईश्वरके विधानपर विश्वास	...	४४८	६१६-जीवन-क्षण	(" ")	४७१
८-दीपक जलाकर देखो तो [युद्धके समय एक मैनिकका अनुभव]	...	४४८	६१७-चेतावनी	(" ")	४७१
९-दया	...	४४९	६१८-विक्षा	(" ")	४७१
१०-अद्वृत न्याग	(रा० श्री०)	४४९	६१९-अस्थिर दृष्टि	(" ")	४७२
११-दयालु वादशाह	...	४५०	६२०-निष्कपट स्वीकृति	(" ")	४७२
१२-परोक्तार और सचाईका फल	...	४५१	६२१-सुखार्थ	(" ")	४७२
१३-जीवन-दर्शन	(रा० श्री०)	४५३	६२२-विवशता	(" ")	४७३
१४-मृत्युकी खोज	(" ")	४५४	६२३-संत-स्वभाव	(सु० सिं०)	४७४
१५-लड़का गाता रहा	(" ")	४५४	६२४-सहनशीलता	(शि० दु०)	४७४
१६-महल नहीं, धर्मशाला	...	४५५	६२५-सुहृद्	(" ")	४७४
१७-दानका फल	...	४५५	६२६-मनुष्यका मांस	(" ")	४७५
१८-एकान्त कहीं नहीं	...	४५६	६२७-संतका व्यवहार	(" ")	४७५
१९-उदार स्वामी	...	४५६	६२८-क्रोधहीनताका परिणाम	(" ")	४७६
२०-विषयोंमें दुर्गन्ध	...	४५७	६२९-साधुता	(" ")	४७६
२१-रूपया मिला और भजन छूटा	...	४५७	६३०-सहिष्णुता	(" ")	४७६
२२-धनका परिणाम—हिंसा	(सु० सिं०)	४५८	६३१-संतका सद्व्यवहार	(सु० सिं०)	४७७
२३-डाइन खा गयी	...	४५८	६३२-क्रोध असुर है	...	४७७
२४-यह वसलता !	(रा० श्री०)	४६०	६३३-क्या यह तुझे शोभा देगा ?	...	४७७
२५-वह अपने प्राणपर खेल गयी (" ")	४६१	६३४-दायें हाथका दिया वायाँ हाथ भी न जान पाये	(जा० शा०)	४७८	
२६-मनुष्यका गर्व व्यर्थ है	(सु० सिं०)	४६१	६३५-अच्छा पैसा ही अच्छे काममें लगता है	...	४७८
२७-अच्छी फसल	(रा० श्री०)	४६२	६३६-धनके दुरुपयोगका परिणाम (रा० श्री०)	४७९	
२८-महान् वैज्ञानिककी विनम्रता	...	४६२	६३७-दरिद्र कौन है ?	(शि० दु०)	४८०
२९-ग्रेमका झरना	(रा० श्री०)	४६३	६३८-स्वावलम्बीका वल	(जा० शा०)	४८०
३०-बुद्धिमानीका परिचय	(" ")	४६३	६३९-नित्य अभिन्न [उमा-महेश्वर]	...	४८१
३१-ग्रार्थनानाका फल	(" ")	४६४	६४०-मित्र चोर निकला	(रा० श्री०)	४८२
३२-सच्चा साहसी	(" ")	४६४	६४१-आप सुलतान कैसे हुए ?	(सु० सिं०)	४८२
३३-मृत्युकी खाई	(" ")	४६५	६४२-सद्ग्रावना-रक्षा	(शि० दु०)	४८३
३४-ईश्वर रक्षक है	(सु० सिं०)	४६६	६४३-तल्लीनता	(" ")	४८३
३५-दयालु स्वामीके दिये दुःखका भी स्वागत	(सु० सिं०)	४६६	६४४-माताकी सेवा	(" ")	४८४
३६-ईश्वरके साथ	(" ")	४६७	६४५-करणका आदर्श	(जा० शा०)	४८४
३७-भगवान् सब अच्छा ही करते हैं (" ")	४६७	६४६-अतिथिकी योग्यता नहीं देखनी चाहिये	(सु० सिं०)	४८५	

अन्ये त्वेवमजानन्त श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणा ॥
(गीता १३ । २४-२५)

‘उस परमात्माको कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई स्थम दुद्धिसे ध्यानके द्वारा हृदयमें देखते ह, अन्य कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा और दूसरे कितने ही कर्मयोगके द्वारा देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं । परतु दूसरे कर्त एक जो उपर्युक्त सामनोंको नहीं जानते, वे दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जानेवाले महापुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे अवगतपरायण पुरुष भी मृत्युरूप मसाग्नागरको निष्पदेह तर जाते हैं ।’

श्रीतुल्मीदामर्जीने भी सत्पुरुषोंके सङ्गकी यही भागी महिमा गारी है—

तात सर्वं अपर्वा मुद्र भरित तुला एक अग ।
तूल न ताहि सम्भ भिनि जो सुख लत सनगग ॥
मिनु मतमग न हरि कथा तेहि मिनु मोह न भाग ।
मोह गर्ण विनु राम पद होइ न दृढ अनुराग ॥
एक घडी आधी घडी आधी मे पुनि आध ।
तुलसी मगति गाधु की कहै कोटि अपराध ॥
और भी कहते हैं—

मनि करनि गनि भूनि भर्नाई । जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई ॥
सो जानव सतमग प्रमाऊ । लोकहुँ वेद न आन उपाऊ ॥
मिनु सतमग प्रिवेक न होई । राम कृष्ण मिनु सुलभ न सोई ॥
सनसगत मुद्र माल मूल । सोइ फल सिधि सप साधन फूला ॥
सठ सुधरहि सतमगति पाई । पारस परस कुमातु सुहाई ॥
यहाँ ‘सत्मङ्ग का तात्पर्य है—महापुरुषोंना सङ्ग करके उनके कथनानुसार अपने जीवनको बनाना । जैसे गीतामें वताया कि—‘श्रुत्वान्येभ्य उपासते’—‘दूसरोंसे अर्थात् महापुरुषोंसे सुनकर तदनुसार उपासना करते हैं, वे भी तर जाते हैं ।’ भगवान् श्रीगमने भी रुहा है—

सो सेवक प्रियतम मम सोई । मम अनुसासन मानह जोई ॥
अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णका अत्यन्त प्रिय भक्त या ।
भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे पूछा कि ‘मैंने जो तुम्हें गीताका उपदेश दिया, उसे तुमने ध्यानपूर्वक सुना कि नहीं और तुम्हारा मोह नाश हुआ कि नहीं ।’ इसका भी अभिप्राय यही था कि मेरी वातको सुनकर तुमने उसको धारण किया या नहीं । इसके उच्चरणे अर्जुनने यही कहा—

नष्टो मोह स्मृतिलंब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽसि गतमन्देह करिष्ये वचन तव ॥

(गीता १८ । ७३)

‘अच्युत । आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है, अब मैं सभायरहित होकर स्थित हूँ, अत आपकी आज्ञाका पालन करूँगा ।’

इसमें अर्जुनने खाम वात यही रुही है कि आपकी कृपासे मेरा मोह नाश हो गया और मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा ।

इसमें सिद्ध हुआ कि ईश्वर, महापुरुष और जात्मोंके वचनोंका पालन करना ही परमात्माकी प्राप्तिका सर्वोत्तम उपाय है ।

हमलोग गीतादि जात्मोंपे पढते हैं, सुनते हैं, मनन करते ह और कथन भी करते ह, किंतु धारण किये विना उनमे होनेवाला विशेष लाभ नहीं हो पाता । इनी प्रकार हम वपरमे सत्मङ्ग करते ह, पर महापुरुषोंकी वातोंको काममें नहीं लाते, इसी कारण विशेष लाभ नहीं होता । इसलिये हमें जात्मों और महापुरुषोंकी वातोंको सुनकर और उनमें प्रत्यक्षकी भौति अतिशय विश्वास करके काममें लानेके लिये तत्पर होना चाहिये ।

बास्तवमें भगवान् तो सबको सदा प्राप्त ही है, क्योंकि उनके और हमारे वीचमें देश-कालका व्यवधान नहीं है, अत देश-काल वाधक नहीं हैं । भगवान् सभी देश और सभी कालमें सदा ही मौजूद ह, किंतु हमें इस वातपर श्रद्धा नहीं है, हम इसे मानते नहीं, इसीसे हम विजित हो रहे हैं । इसलिये हमें भगवान्-पर दृढ विश्वास करना चाहिये । भगवान्-ने स्वयं वतलाया है—

श्रद्धावौल्लभते ज्ञान तत्पर सर्वतेन्द्रिय ।

ज्ञान लब्ध्वा परा शान्तिमविरेणाधिगच्छति ॥

(गीता ४ । ३९)

‘जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह विना विलम्ब—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है ।’

हमें भगवान्-के उपर्युक्त वचनोंपर विशेष ध्यान देना चाहिये, क्योंकि प्रधानतया एक श्रद्धाकी कमीके कारण ही हम ससारके इन नाशवान् क्षणभूत भोग और पदार्थोंमें राग करके फँस रहे हैं और इस प्रकार अपने मानवजीवनको

नष्ट कर रहे हैं। विषयभोगोक्ती क्षणभङ्गरताके विषयमें
भगवान् कहते हैं—

नासतो विद्यते भावों नाभावो विद्यते सत्।
उभयोरपि द्वष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभि ॥

(गीता २। १६)

‘असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्त्व तत्त्वदर्शी पुरुषों-द्वारा देखा गया है अर्थात् यही तत्त्वदर्शी पुरुषोंका निर्णय है।’

भाव यह कि जो सत् वस्तु है, उसका तो कभी अभाव होता नहीं और मिथ्या वस्तु कभी कायम नहीं रहती। हम देखते हैं कि सासाके भोग और पदार्थ तथा हमारा यह शरीर भी हमारे देखते देखते द्वन्द्वे क्षण-क्षणमें चिनाग हो रहा है। फिर भी हम उनको सत् मानकर और उनगर विश्वास करके उनको ही पकड़े हुए हैं। यह हमारी बड़ी भारी भूल है। हमें अपनी इस मूलको शीघ्र दूर करना चाहिये और क्षणभङ्गर नागवान् जड़ पदार्थोंके साथ हमारा जो सम्बन्ध है और उनमें जो हमारी आसक्ति है, उसको असत् समझकर उसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। इन क्षणभङ्गर नागवान् जड़ वस्तुओंके साथ माने हुए सम्बन्ध और आसक्तिका त्याग हो जानेपर सत् वस्तुकी प्राप्ति तो स्वत है ही।

हमें इस बातकी खोज करनी चाहिये कि परमात्माकी प्राप्तिमें विलम्ब क्यों हो रहा है। सोचनेपर पता लगता है कि यह विलम्ब हमारी असावधानीके कारण ही हो रहा है। वास्तवमें परमात्माकी प्राप्ति तो क्षणमात्रमें हो सकती है। जैसे विजली फिट हो जाने और शक्ति-कैन्ड्रसे उसका सम्पर्क हो जानेपर स्विच दबानेके साथ ही प्रकाश हो जाता है, इसी प्रकार परमात्मापर दृढ़ विश्वास कर लेनेपर परमात्माकी प्राप्ति क्षणमात्रमें हो सकती है। विजलीके तारमें तो करेंट दिया जाता है पर परमात्मा तो सत् जगह पहलेसे ही व्यापक है। आवश्यकता है इस बातपर दृढ़ विश्वास होनेकी।

हमलोगोंको विचार करना चाहिये कि जब भगवान् हैं, मिलते हैं, बहुतोंको मिले हैं और हमें भी मिल सकते हैं तथा वे सब जगह सदा ही विद्यमान हैं तो फिर हम उनसे विचित क्यों रह रहे हैं। विचार करनेपर इसका कारण हमलोगोंकी असावधानी ही सिद्ध होता है। इस असावधानीको

हम स्वयं ही दूर कर सकते हैं। इसके लिये दूसरेकी आगा करना भूल है। यदि परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें थोड़ी भी कमी रह जायगी तो हमें फिर जन्म लेना पड़ेगा और वर्तमान-की भौति ही महान् क्लेश भोगना पड़ेगा।

अतएव महान् पुरुषों और शास्त्रोंके वचनोंमें विश्वास करके हमें उनसे विशेष लाभ उठाना चाहिये। हमें उचित है कि परमात्माके दिये हुए तन, मन, धन, ऐश्वर्य, इन्द्रिय, बुद्धि, बल, विवेकका सदुपयोग करें। कभी दुरुपयोग न करें। इनको सर्वथा परमात्माकी प्राप्तिके काममें लगाना ही इनका सदुपयोग करना है और परमात्माकी प्राप्तिके साधनके अतिरिक्त अन्य किसी काममें लगाना ही इनका दुरुपयोग करना है। हमें काम, भय, लोभ, मोहके बग होकर या किसीके प्रभावमें आकर एक क्षण भी अपना अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहिये। इन क्षणभङ्गर नागवान् पदार्थोंमें अपने तन, मन और बुद्धिको लगाना ही समयको व्यर्थ नष्ट करना है और यही असावधानी है। ईश्वरकी कृपासे मनुष्य शरीर, उत्तम देश, उत्तम काल और उत्तम धर्मको पाकर भी हम परमात्माकी प्राप्तिसे एक क्षणके लिये भी विचित क्यों रहे? त्री, पुत्र, धन, मकान आदिकी तो बात ही क्या, शरीरके साथ भी हमारा सम्बन्ध वास्तविक नहीं है, केवल माना हुआ है, क्योंकि किसी भी ससारी वस्तुके साथ जो सयोग है, वह वियोगको लेकर ही है। जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु निश्चित है, इसी प्रकार जिसका संयोग है, उसका वियोग भी निश्चय ही है। फिर हम इन नागवान् अनित्य पदार्थोंके फैदेमे फैसकर अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी क्यों नष्ट करें?

परमात्मा नित्य है। उसका सयोग भी नित्य है। विश्वास न होनेके कारण ही हम उसे भूले हुए हैं। अतएव जो नित्य सत्य है, जिसका कभी अभाव नहीं है, उसीकी शरण लेनी चाहिये। ‘भगवान् ध्रुव सत्य है’—ऐसा विश्वास करके उनके नाम त्पको हर समय याद रखना, भगवान्के सिवा अन्य कोई भी हमारा नहीं है—ऐसा समझना, अपने मन, बुद्धि, इन्द्रिय, शरीर-सबको भगवान्की वस्तु मानकर भगवान्के समर्पण करना अर्थात् भगवान्के काममें लगा देना तथा अनिच्छा और परेच्छासे जो कुछ भी हो रहा है, उस सबको भगवान्की लीला समझकर अत्यन्त प्रसन्न रहना भगवान्की शरण लेना है।

जीवनका वास्तविक वरदान

(हेतु—५० श्रीगणकोनाथजी शर्मा)

पता नहीं क्यों, कथाएँ सर्वो वडी प्यारी लगती हैं। जो बहुत बड़े महानुभाव है जिन्हे जपनी विद्वा, दुष्टि, वैभव, अन्ति, प्रभुताता वडा गर्व है और जो कुछ भी सुनना, जानना या पढ़ना नहीं चाहते, वे भी कथाएँ सुनने, पढ़नेके लिये उल्लुक देने जाते हैं। चतुर लोग रहनियोंके द्वारा वृंदेन्वडे गर्वलि गजनमहायजाओंके उन्मार्गसे हृदयकर झट सन्मार्गलद्व रुते नहे हैं। इन कथाओंद्वारा मित्रसम्मत किंग राज्यामन्मत उपदेश प्राप्त होता है, जो सुननेमें वडा मधुर तथा आच्छामें सुगम जान पड़ता है। इसलिये इनसी ओर सर्वांशा आकर्षण होता है। असर आदिके विषयमें प्रसिद्धि है कि वे गतसो सोनेके समय मनोरञ्जनके लिये गिरिकीके वाहनमें कुछ विशिष्ट लोगोंकी कथाएँ सुनने थे। भगवत्कथाओंसी तो वात ही निगली है। वडेन्वडे साधु-सत, सिद्ध योगीन्द्र-सुनान्द्र भी उन्हें सुननेसो रदा तत्पर नहते हैं और उनके लिये समाधिसुखको भी उत्तर्ग करनेको तत्पर रहते हैं।

'मुनि गुन-गान सनाति विनारो । मात्र मुनहि परन अपिकारो ॥'
'जीवनमुक्त महानुनि जेज । हरि मुन सुन अजन न तेऊ ॥'

और तो और, पूर्णतम पुरुषोत्तम अग्निल व्रस्ताण्टनापर, परान्पर द्रष्टा भी नगपताग धारणम, भूमगडलग अवर्तीर्ण होकर वडी शविसे कथा सुनकर अपनी लालमा पूरी करता है—
'कहत कथा उपेहाम पुराना । शर्चर रुनि जुग तम मिरानी ॥'
—विश्वामित्रजी पुराना कथाएँ सुनते हैं। भगवान् राघवेन्द्रको यह रात इतनी अन्धी लगी कि धार्धी गत हो गयी और पना न चला। राघवेन्द्रको उत्तर इतनी अन्धी लगती है कि जहाँ कहों भी भोजन आदिसे अवसर मिला कि वे कथाएँ सुनना चाहते हैं। विश्वामित्रजी भी उत्तरे भावग्राहक है कि वे राघवेन्द्रको प्रार्थना नरेन्द्र अवसर नहीं देते। उनकी रक्षा देखकर ही दृष्टियाँ, सुनियों एवं प्राचीन राजाओंसी कथाएँ कहने लग जाते हैं—

१०. दतिहामपुरागानि शृण्वन्न भद्रानि च ॥

हनन हान्यकथया क्वानित् प्रियया चृहे ।

(श्रीमद्भा० १० । ६९ । २८ २९)

करि भोनन मुनिवर विग्यानी । लोग कहन रुद्ध कथा पुरानी ॥'

वहोंक कहा जाय, सुनी जानी हुई कथाएँ भी सुननेमें भली ही लगती हैं। सतजन तो उनमें कुछ-न-कुछ नयी विदेशी पर भी प्रकट कर देते हैं। इसलिये सर्वज व्रह भी उन्हें सर्वया जानता हुआ भी वार-वार सुननेमें आनन्दका अनुभव करता है—

'ठिठ पुरान वसिष्ठ वत्वानहि । सुनहि राम जद्यपि मव जानहि ॥'
'तहै पुनि कलुर दिवम रुगया । रहे जीन्ह विप्रल्प पर दाया ॥'
मननि हेतु वह कथा पुराना । कहे विप्र जद्यपि प्रसु जाना ॥'

इन कथाओंकी न्यायाविक मोहकता एवं निर्माण सुन्दरताका ही यह परिणाम है कि वह निर्दोष शुद्ध, बुद्ध जीव स्योगवशात् दृष्टित कथाओंके भी सामने आ जानेपर उनसे अनिन्द्या नहीं प्रकट कर पाता। वहोंक कि कल्पित, असत्य, असत् कथाओंके भी सुनने, पढ़ने, सोचनेमें रस लेने लगता है। वटि ऐसी वात न होती तो आज विविध भाषाओंमें लिये गये चरित्रनाशक उपन्यासोंका इतना वडा विशाल भण्डार क्यों कर तैयार हो जाता। इतना ही नहीं, गन्दे अद्लील माहित्य, कहानियोंकी अमाल्य पुमकें एवं केवल अनर्गल, तामसी कहानियों एवं वारावाहिक उपन्यासोंके रूपमें चलनेवाली पत्रिकाओंका विनार ससारमें कैसे होता ? कितने पुम्काल्योंमें तो केवल ऐसे ही साहित्य हैं, क्योंकि उनके सदस्य तथा जनता उन्हें ही चाहती है। पर यह मनुष्य-मनिषकी दुर्वलनाका अनुचित लाभ उठाना है। कथाओंके सहरे कठिन-से-कठिन सिद्धान्त मस्तिष्कमें, जीवनमें सुगमता-पूर्वक उतार दिये जाते हैं। गणितके सिद्धान्तोंको सुगमता-पूर्वक समझानेके लिये भी कथाओंकी कल्पना की जाती है। वेदान्तके दुर्गम सिद्धान्त, दुर्घट दर्शनके दुर्गम तत्त्व आल्यानिकाओंद्वारा सहज ही बुद्धिगम्य हो जाते हैं। वाल्क जो कहानियाँ सुनता है, उसे तो वह अनने जीवनमें ही उत्तर लेता है और उसके वे स्तकाग प्राय यावजीवन तिरोहित नहीं होते।

यन्नवे भानने लग्न मस्कारो नान्यया भवेत् ।

कथाच्छ्लेन वालाना नीतिस्तिह कथ्यते ॥

इसी लोगोंपर भी इन कथात्वयोंका कम प्रभाव कदापि

नहीं पड़ता। कथाओंको पढ़ते-सुनते उनमें रुचि पैदा होती है। धीरे-धीरे वह रुचि उनमें गुणवृद्धि रखने लगती है। फिर तो वह मार्ग 'सिडान्त'-सा बनकर मन्त्रिकमें आ जाता है। इस तरह वैसा ही नाय्य करना—उन जाना अर्भष्ट हो जाता है, और वह ठीक ही है कि मनुष्य जैसा बनना चाहता है और जी-जानसे जैसा होनेका प्रयत्न करता है, वैसा ही बन जाता है।

याद्यै सनिविशते यादशाश्रोपसेवते ।
यादगित्तेच भवितु तादग् भवति पूरुप ॥
(महा० उद्योग० विदुरप्रजागर० ३६ । १३)

फिर बालक हो या युवा, जो भी असत् कथाओंको चावसे पढ़े-सुनेगा, वह तदनुकूल भ्यमावतया धर्म, सटाचारको तिलाङ्गलि दे स्वच्छन्द तामस, अकाण्ड ताण्डव नम नृत्य करनेमें ही गौरव अनुभव करेगा। फिर ऐसी दशामें वह मनुष्य-जीवनके परम एवं चरम लाभ—जिसके लिये देवता भी तरमते हैं, 'भगवद्याति'से तो विश्वित रह ही जायगा। वह दुराचारसार प्राणी अपने सभी पुण्योंका नाश कर आश्रयहीन तमोमय नरकोंमें चिरकालके लिये चला जायगा।

ठीक इसके विपरीत उतने ही श्रम तथा लगनसे भगवच्चरित्र अयवा सत-चरित्रका श्रवण करनेवाले सौभाग्यशाली सज्जन भगवान्को किंवा भगवद्वामको प्राप्त करते हैं। भगवद् यश श्रवण करने, पढ़ने आदिसे तो संधे भगवत्सम्बन्ध होता है, सत-कथा सुननेसे भी सर्वो-जैसा आचरण करनेकी इच्छा होती है, इस तरह प्राणी भत बनकर भगवान्को प्राप्त कर लेता है। साय ही सत-कथामें 'भगवत्सम्बन्ध' ही तो मुख्य कथावस्थु होती है। साय ही सतजन प्रभुको अपनेसे भी अधिक प्रिय होते हैं। या यों कहिये कि 'भगवत्सारसर्वम् मात्र' होनेसे

१. यन्न ब्रजन्त्यधिदो रचनानुवादा-
च्छृण्वन्ति येऽन्यविषया कुरुथा मतिन्नी ।
यस्तु श्रुता हतमगैर्भिरात्तसारा-
स्तात्तान् क्षिपन्त्यशरणेषु तम सु हन्त ॥
(श्रीमद्भा० ३।१५।२३)

२ (क) यच्च ब्रजन्तनिमिषामृषभानुवृत्या
दूरेयमा हथुपरि न सृहणीयशीला ।
मर्तुमेथ सुयशस कथनानुराग-
वैद्यवाष्पजलया पुलकीकृताङ्गा ॥
(श्रीमद्भा० ३।१५।२५)

भत और भगवन्तमें कोई अन्तर ही नहीं होता^३। इसलिये सत्कथाओंका भी वैसा ही महत्व है। श्रीबलभान्चार्य-जीतो भागवतके 'श्रुतस्य पुसा सुचिरश्रमस्य' (३। १३। ४) इस श्लोककी 'सुवोधिनी' टीकामें लिखते हैं कि जैसे भगवच्चरित्र सुनना आवश्यक है, उसी प्रकार भगवदीयोंका—भगवद्भक्तोंका भी चरित्र सुनना आवश्यक है, क्योंकि उन-उन सतोने किस प्रकार भगवच्चरणारविन्दको हृदयमें स्थिर किया था, वह सत्चरित्र सुननेसे सुगमतापूर्वक जात हो जाता है। साथ ही सौशील्य, कारुण्य, वात्सल्यादि भगवदीय दिव्य गुण ही भक्तोंमें भी होते हैं, इसलिये भगवद्गुण और भक्तगुण सुननेमें कोई अन्तर या विरोध नहीं है—

'भगवदीयानामपि चरित्रं श्रोतव्यं निराश्रय चरित्रं स्वाश्रयत्वं न सम्पादयति ततो न स्थिरं भवेत् ।' ... अतो भगवच्चरित्रस्यापि भगवदीयचरित्रश्रवणफलम् । ' ... येन येन गुणेन भगवच्चरणारविन्दं तेषा हृदये तिष्ठति स गुणः—श्रवणस्य फलम् । भगवदीया एव गुणा भक्तेषु स्थितास्तथा भवन्तीति न विरोधः ।'

थोड़े शब्दोंके हेर-फेरसे श्रीधर स्वामीने भी यही कहा है।^४

(ख) पश्यन्त्यात्मनि चात्मान भक्त्या श्रुतगृहीतया ।

(श्रीमद्भा० १।२।१२)

(ग) 'नारायणोऽन्ते गतिरङ्ग शृणवताम् ।' (श्रीमद्भा० ३।१९।३८)

(घ) इसीलिये गोपियाँ भगवत्कथा वितरण करनेवालेको सबसे बड़ा दानी करार देती हैं—

तव	कथासृत	तसजीवन
	कविभिरीदित	कल्मपापहम् ।
श्रवणमङ्गल		श्रीमदातत
		सुवि गृणन्ति ते भूरिदा जना ॥

(१०।३।१९)

प्रभो! तुम्हारी लीलाकथा अमृतस्वरूप है। ससारके तापसे तस प्राणीके लिये तो वह सजीवनवटी ही है। वडे-वडे ज्ञानी महात्माओंने उसे गाया है और गाते हैं। वह सारे पापतापको मिथा देती है। केवल सुनने मात्रसे महामङ्गलका दान करती है। वह वडी रम्य, मधुर तथा विस्तृत है। जो उसे गाते हैं वास्तवमें भूलोकमें वे ही सबसे वडे दाता हैं।

३ सत भगवत अतर निरत नहि किमपि कहत मतिमद दास तुलमी । (विनयपत्रिका)

४ येषु हृदयेषु सुकुन्दपादारविन्दसुपासते तेषा भागवताना

स्वयं भागवतकार भी कहते हैं कि 'परमतत्त्ववेच्चा निर्भ्रान्ति विद्वानोंकी दृष्टिमें जात्योंके प्रगाढ़ अध्ययनका यहीं फल है कि जिनके हृदयमें मुकुन्दके पादारविन्द हैं, उन भक्तोंके गुणोंका श्रवण किया जाय ।'

अस्तु । साराय यह है कि मनुष्यका कल्याण वही सुगमतापूर्वक हो सकता है, क्योंकि कथाएँ सबको अच्छी लगती ही हैं और ससारमें भगवत्तरित्र अथवा भागवत्तरित्रका कोई अभाव है नहीं । वस, करना केवल इतना ही है कि इस रचिको उनमें योग दे दिया जाय । यदि सभीपके स्थानमें वैसी पुस्तकें न हों तो सर्वोंसे, भक्तोंसे, धरके वडे-चूडे लोगोंसे कथाएँ सुनी जायें । प्रथल करनेपर दोनों ही प्राप्त हो सकते हैं, फिर कोई एक वस्तु तो मिल ही जायगी ।

बम्, बुद्धिमानीसे इतना ही काम लेना है कि चरित्रनिर्माण तथा भगवान्की ओर जीवनकी गति कर देनेमें सहायक भगवान् तथा सर्वोंकी चरित्रकथा तथा इसी प्रकारकी अन्यान्य लोककथाएँ सुनी-पढ़ी जायें और इनसे अतिरिक्त दूसरी कथाओं, अनर्गल असत्कथाओंसे वचा जाय । उनका सुनना, पढना केवल आयुके क्षणोंकी उपेक्षा ही नहीं, वह असद्व्यय है,

क्योंकि उससे तम-प्रधान आसुरी योनियों एवं आश्रयहीन धोर नरकोंकी उपलब्धि होती है । यह ठीक है कि नासिकों, दुरचारियोंके जीवनमें भी कोई साधु, सत्प्रेरणाप्रद घटना मिल सकती है । यहाँतक कि कुछ नासिकोंका जीवन ही सदाचार-मय दीख सकेगा । यथापि क्षीरनीरविवेकीके लिये उनका विवेचन सम्भव हो सकता है तथापि हम सर्वसावारणको तो ऐसी घटनाओंसे भी वचना चाहिये, क्योंकि रागतः उनकी सारी जीवनी सुनकरु सम्भव है, उसे भी जीवनमें उतारकर हम पथप्रप्त हो जायें ।

वास्तवमें भक्त या सतके चोलेमें ठग या ईच्छरत्तात्रविरोधी सत-महात्मा दोगों ही त्याज्य है । ईच्छरत्तात्रानुगामी भक्त सर्वोंके चरित्र तो आद्योपान्त अमृतोपम होंगे ही, तथापि उनकी कई जीवनघटनाएँ तो ऐसी आश्र्वयकारिणी सत्प्रेरणाप्रद होती हैं कि जिनके एक ही वार पढ़-सुन लेनेसे जीवनमें महान् परिवर्तन हो जाता है और यदि वे ठीकसे जीवनमें उत्तर गयों, तब तो वास्तवमें जीवनके लिये एक महत्वपूर्ण वास्तविक वरदान सिद्ध होती है । सचमुच ऐसे सर्वों, भक्तों, उनके भगवान् तथा उनकी भक्तिमयी सत्क्रिया-कथाको वारन्वार जत-शत प्रणाम है ।

सत्कथाओंकी लोकोत्तर महत्ता एवं उपयोगिता

(लेखक—प० श्रीरामनिवामनी शर्मा)

सत्कथाओंने आजतक मंमारका जितना उपकार किया है, सम्भवत उतना किसीने भी नहा किया होगा एवं इस समय भी ससारमें जो कुछ मानवता है, वह भी इनका ही पुण्य-प्रसाद है ।

सत्कथाएँ वास्तविक आचरणकी दिव्य ज्योति हैं और सन्मार्गकी साधना, यदि वे न होतीं तो पता ही नहीं चलता कि सदाचार किस वस्तुका नाम है ।

सत्कथाएँ सदाचारका मूर्त रूप हैं । इनसे सदाचार-हीन व्यक्ति भी सरलतासे सदाचारी हो सकता है और पतनोन्मुख उत्थानेन्मुख ।

गुणाना श्रवणमिति यत् । भगवद्गुणवद् भागवत्गुणा अपि श्रोतव्या एव ।' (उपर्युक्त श्लोकपर भागवतभावदीपिका)

१०. शुनस्य पुसा त्रुचिरत्रमस्य नन्वजसा सूरिभिरीडितोऽर्थ । यत्तद्गुणानुश्रवण मुकुन्दपादारविन्द हृदयेषु येपाम् ॥

(श्रीमद्भा० ३ । १३ । ४)

२ तत्कथता महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम् ॥

अथवास्य पदान्मोजनकरन्दिष्टा सताम् । किमन्यैसदालापैरायुपो

यदसद्व्यय ॥

(श्रीमद्भा० १ । १६ । ५-६)

सत्कथाओंकी अनिवार्य आवश्यकता नहीं अपितु आवश्यकता है उठाहरणीय और अनुकरणीय वास्तविक जीवन-प्रसंगोंकी।

सत्कथाओंकी एक अन्यतम विशेषता यह भी है कि वे चाहे किसी भी व्यक्तिकी हों और वह व्यक्ति किसी भी देश-कालमें उत्पन्न हुआ हो, परतु उसकी वे कथाएँ अनन्त कालतक मनुष्य-जातिको लाभ पहुँचाती रहती हैं।

सत्कथाओंकी एक अत्यधिक उल्लेखनीय महनीयता यह भी है कि वे अपने चरित्र-नायककी अपेक्षा अधिक उपकारिणी होती है। कौन नहीं जानता राम-कृष्ण, संत-महात्मा और सज्जनोंने उतना उपकार नहीं किया, जितना उनकी जीवन-कथाओंसे हुआ।

अग कदाचित् यह प्रश्न हो कि सत्कथाओंकी तथा कथित लोकोत्तर विशेषताके सर्वतोमद्र प्रब्रलतम कारण क्या हैं तो इसका सदुत्तर इस प्रकार है—

१. मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे मानव-मनके ज्ञान, सौन्दर्य और शील—ये तीन प्रधानतम रसात्मक तत्त्व हैं। इनमें शील उसका अविभाज्य, आत्म-समृद्ध चरित्र-प्रधान तत्त्व है। यही कारण है कि सत्कथाओंसे मानव-दृदय समधिक प्रभावित होता है।

२. मनुष्य, मनुष्यको अपना-सा होनेसे पसद करता है। महावीर अर्जुनने विराट् रूपसे घवराकर भगवान् श्रीकृष्ण-से कहा था—‘प्रमो। मुझे तो आप अपना वही मनुष्यरूप दिखाइये।’ मानवता-प्रधान होनेसे सत्कथाओंकी ओर स्वभावतः मनुष्य आकर्षित होता है।

३. मानव प्रगतिशील प्राणी है। वह अनवधानतापूर्वक (unconsciously) भी ऊँचा उठना चाहता है। यही हेतु है कि जीवन-खुरको ऊँचा उठानेवाली सत्कथाओंकी ओर मानव अगत्या आकृष्ट होता है।

४. मानव-दृदय निर्गतः सौन्दर्य-उपासक है और सद्वृत्त

सात्त्विक-सौन्दर्यकी चरम-सीमा है। अतः सद्वृत्त-प्राण सत्-कथाओंकी ओर खिचना मनुष्यका अपना अव्यक्त गुण है।

५. सत्कथाएँ स्वतः एक साहित्यिक आकर्षण हैं। उनसे मनुष्य अनाकृष्ट कैसे रह सकता है?

६. मनुष्य सामाजिक जन्म है, ऐसी दिग्में व्यष्टि-समष्टि-परक सत्कथाओंसे उसका प्रभावित होना वैज्ञानिक तथ्य है।

७. यह सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र सत्य है कि मनुष्य अपने व्यक्तित्व-का निर्माता स्वय है, अतएव व्यक्तित्व-निर्मात्री सत्कथा और मानव-मनका प्राकृतिक अन्योन्याश्रयत्व समन्वय है। अतः चरित्र-प्रधान सत्कथाओंसे उसका प्रभावित न होना अप्राकृतिक बात है।

८. प्रत्येक सद्वस्तु और सदू-व्यक्तित्वमें कुछ न-कुछ आकर्षण अवश्य होता है। सत्कथाएँ भी सद्वस्तु हैं और उनका भी सदू-व्यक्तित्व है। अतः उनकी ओर मनुष्यका आकर्षित होना एक स्वाभाविक बात है।

९. मनुष्यको गुरु-सम्मत और मित्र-सम्मत उपदेश-की अपेक्षा कान्ता-सम्मत उपदेश स्वभावतः अधिक प्रिय लगता है, इसीका यह प्रताप है कि कथाओं—विशेषतः सत्कथाओंका मानव-मनपर समधिक कारण ग्रभाव होता है।

१०. मानव-प्राणी निर्गतः जिज्ञासाप्रधान है। ऐसी स्थितिमें सत्य-तथ्य-पूर्ण सत्कथाएँ तो उसका मानसिक प्रिय खाद्य होनेसे उसकी रुचिकी वस्तु होती ही है।

इस तरह हम देखते हैं मनुष्यको वास्तविक मनुष्य बनानेकी दृष्टिसे चरित्र-निर्माणकी दिग्मामें सत्कथाएँ जगत्-कल्याणकारिणी हैं एवं आजके आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक पाप-दोष और दुःख-गोक-सत्तस ससारको दिव्य सुखमय स्वर्ग-राज्यमें परिणत करनेकी शक्ति रखती हैं। अतः आशा है, हम ऐसी अप्रतिम गुण रखनेवाली सत्कथाओंके पाठसे अपना और जगत्-का कल्याण करनेमें ईश्वर-कृपासे समर्थ होंगे।

सत्कथाका महत्व

‘सत्’ उसे कहते हैं जो सदा है, जिसका कभी अभाव नहीं होता, जो नित्य सत्य चिदानन्दस्वरूप है, जो भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें एव जाग्रत्, स्वप्न, सुपुत्र और तुरीय—चारों अवस्थाओंमें सम एव

एकरूप है; जो सबका आश्रय, ज्ञाता, प्रकाशक और आधार है; श्रुतियों ‘सत्य ज्ञानमनन्त ग्रह्य’ आदि कहकर जिसका संकेत करती हैं और जो एकमात्र चैतन्यघन होनेपर भी

* सत्कथाएँ मनुष्य-जातिका सर्वोत्तम विद्यालय हैं। मनुष्यको जो पाठ यहाँसे मिल सकता है वह अन्यत्र सर्वथा दुर्लम है।—‘क्षमित्।’

अनेक रूपोंमें दिखायी पड़ता है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत्।

(२।१६)

जो 'असत्' है, उसका कभी अस्तित्व नहीं है और जो 'सत्' है उसका कभी अभाव नहीं है। अर्थात् वह सदा सर्वत्र है। सब कुछ उसीमें है, वही सबमें समाया है। यह 'सत्' ही परमात्मा—परात्पर ब्रह्म है। यथार्थमें इस 'सत्' की उपलब्धि ही मानव-जीवनका प्रधान ही नहीं, एकमात्र लक्ष्य है। इसीके लिये भगवान् दया करके जीवको मनुष्य-योनिमें भेजते हैं—

कवृङ्क करि कस्ता नर देही। देत ईस चिनु देतु सनेही॥

जो मनुष्य नरदेहका यह वास्तविक लाम न उठाकर पशु या पिशाचवत् भोगोंके उपार्जन और उनके भोगमें ही लगा रहता है, उसका मानव-जन्म व्यर्थ जाता है। केवल व्यर्थ ही नहीं जाता, भोगकामनासे मनुष्यका विवेक ढक जाता है और वह भोगोंकी प्राप्तिके लिये अनेकों पाप-कर्मोंमें प्रचुर होकर मानव-जीवनमें परिणत कर डालता है, जिसका बहुत बुरा परिणाम होता है। भगवान्‌ने कहा है—

आसुरीं योनिमापशा मूढा जन्मनि जन्मनि।

मामप्राप्त्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६।२०)

'कौन्तेय ! वे मूढलोग मुझको (भगवान्‌को) तो प्राप्त होते ही नहीं, जन्म-जन्ममें आसुरी योनिमें जाते हैं और फिर उससे भी अति नीच गति (धोर नरकों) को प्राप्त होते हैं।'

इसलिये मनुष्यका यही एकमात्र कर्तव्य या परम धर्म होता है कि वह लोक-भरलोकके कल्याण तथा मानव-जीवनके परम साध्य परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही सब कार्य करके अपने जीवनको सफल करे। विषयमोर्गोंको इस जीवनका लक्ष्य समझकर उन्होंको प्राप्त करनेमें जीवन लगाना तो अमृत देकर वदलें जहर लेना है। भगवान् श्रीरामचन्द्रने कहा है— पहि तन कर फल विषय न माई । स्वर्गां खल्य अत दुर्दाई ॥ नर तनु पाह विष्य मन देहीं । पलटि सुषा ते सठ विव लेहीं ॥

वे आगे चलकर कहते हैं कि इस प्रकारकी दुर्लभ सुविधा पाकर भी जो भवसागरसे नहीं तरता, वह आत्म-हृत्यारेकी गतिको प्राप्त होता है—

नर तनु भव वारिधि कहुँ देरो । सन्मुख मरु अनुग्रह मेरो ॥
करनधार सदगुर ढठ नावा । दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥

जो न तै मवतागर नर समाज अस पाइ ।

सो झनिदक मंदमनि आत्माहन गनि जाइ ॥

यही वात श्रीमद्भागवतके इस श्लोकमें कही गयी है—

नृदेहमाय सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकृतप गुरुक्षण्डारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाविष न तरेत् सआत्महा ॥

(११।३०।१७)

श्रुति कहती है—

इह चेद्वेदीन्ध सत्यमस्ति न चेद्विहेदीन्महती विनाइः ।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यासाल्लोकाद्यृता भवन्ति ॥

(केनोपनिषद् २।५)

'यदि इस मनुष्य-शरीरमें परमात्मतत्त्वको जान लिया जायगा तो सत्य है—(सत्यकी उपलब्धिसे मानव-जीवनकी सार्थकता है) और यदि इस जन्ममें उसको नहीं जाना तो महान् हानि है। धीर पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें परमात्माका चिन्तन कर—परमात्माको समझकर इस देहका त्याग करके अमृतको प्राप्त होते हैं। अर्थात् इस देहसे प्राणोंके निकल जानेपर वे अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।'

इस 'सत्'-स्वरूप चिदानन्दन परमात्माकी प्राप्तिके जितने साधन हैं या परमात्माको प्राप्त महापुरुषमें अथवा परमात्मप्राप्तिके साधनमें लगे हुए सच्चे साधकमें जिन-जिन गुणों और क्रियाओंका प्रकाश और विकास देखा जाता है, वे सब भी 'सत्' ही हैं। इसीसे भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

सङ्गवे साधुभावे च सदित्येतत्त्वयुज्यते ।

प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छङ्गः पार्थ युज्यते ॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थिति सदिति चोच्यते ।

कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवभिधीयते ॥

(१७।२६-२७)

'‘सत्’ इस (परमात्माके नाम) का सद्भावमें और साधुभावमें प्रयोग किया जाता है तथा अर्जुन ! उत्तम कर्ममें भी 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है और यज, तप तथा दानमें जो स्थिति है, वह भी 'सत्' है—ऐसा कहा जाता है। एवं उस परमात्माके लिये किया गया (प्रत्येक) कर्म ही सत् है—ऐसा कहा जाता है।'

इससे यह सिद्ध होता है कि परमात्मा या भगवान् भी 'सत्' है तथा उस सत्के साधन तथा सत्यके प्राप्त होनेपर

स्वभावत् र्हा सन्पुरुषमें दीखनेवाले गुण भी 'सत्' है—
अर्थात् भद्रगुण, सद्भाव, सद्विचार, सदाचार, सद्यवहार,
सत्यभाषण, सत्-आहार और सद्विहार—जो कुछ भी
भगवानके प्राप्त्यर्थ, श्रीत्वर्थ वा सहज दैवीगुणरूपमें विकसित
भाव-विचार-गुण-कर्म आदि हैं, सभी 'सत्' हैं और वे जिसके
जीवनमें प्रलयश्च प्रकट हैं, वे ही 'सत्पुरुष' हैं। ऐसे
सन्पुरुषोंका या उनके सदाचारों तथा सद्विचारोंका सङ्ग ही
'सत्सङ्ग' है। इस प्रकारके 'सत्सङ्ग'में ही वासविक 'सत्-
कथा'—हरिकथा प्राप्त होती है, उससे मोहका नाश
(भोगवदार्थोंमें—इहलोक तथा परलोकके प्राणिपदार्थोंमें सुख-
वोधरूप मोहका नाश) होकर भगवच्चरणोंमें इड़ प्रेमकी
प्राप्ति होती है—

त्रिनु सन्सर न हरिकथा तेहि विनु मोह न भाग ।
मोह गर्दै त्रिनु रामण्ड होड न छठ अनुराग ॥

हरिकथा ही 'सत्कथा' है। जिसमें श्रीहरिके पवित्र
लीलाचरित्रोंका गान हो, अथवा जो भगवान् श्रीहरिकी ओर
ले जानेवाले भुक्त सावन वतारी हो, वह 'सत्कथा' है।
श्रीद्युक्तदेवजी कहते हैं—

संसारसिन्दुमतिदुसरसुचितीर्थो-

नान्य इब्रो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।

लीलाकथारसनियेवणमन्तरेण

पुंमो भवेद् विविघड़वद्वार्दितस्य ॥

(श्रीमद्भा० १२।४०)

'जो लोग अत्यन्त दुसर संसार-सागरसे पार होना चाहते
हैं अथवा जो भौति-भौतिके दुःखदावानलसे दग्ध हो रहे हैं,
उनके लिये पुरुषोत्तम भगवानकी लीला-कथा-रसका सेवन
करनेके सिवा और कोई साधन नहीं है, कोई नौका नहीं है।
केवल लीला-कथा-रसायनका सेवन करके हीं वे अपना
मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं।'

हरिकथाको छोड़कर और सभी कथाएँ असत् हैं तथा
त्याज्य हैं। श्रीमद्भागवतके अन्तमें श्रीसूतजी महाराजने
कहा है—

मृषा गिरस्ता ह्यसतीसत्कथा
न कथ्यते यद्गवानघोक्षजः ।
तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥

तदेव रम्य रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
तदेव शोकाण्विग्रोपणं नृणा
यदुत्तमश्लोकवशोऽनुगीयते ॥

(श्रीमद्भा० १२।१२।४८-४९)

'जिस वाणीके द्वारा घटवटवासी भगवानके नाम-गुण-
लीलाका कथन नहीं होता, वह भावमुक्त होनेपर भी
व्यर्थ—सारहीन है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर है और
वस्तुतः वह 'असत्-कथा' है। जो वचन भगवानके गुणोंसे
पूर्ण रहते हैं, वे ही परम पवित्र हैं, वे ही मङ्गलमय हैं और
वे ही परम सत्य हैं। जिस वचनके द्वारा भगवानके परम
पवित्र यशका गान होता है, वही परम रमणीय, परम रुचिर
और प्रतिक्षण नया-नया लगता है, वही अनन्त कालतक
मनके लिये परम महोत्सवरूप है। वह मनुष्यके शोकरूपी
गहरे समुद्रको सुखा देनेवाला है।'

जहाँ 'सत्कथा' होती है वहाँ उसके प्रभावसे प्राणिमात्रमें
परस्पर प्रेम हो जाता है। वहाँ लोग वैर छोड़कर सुखी
हो जाते हैं। प्रचेतागण भगवानकी स्तुति करते हुए
कहते हैं—

यत्रेभ्यन्ते कथा मृषास्तृप्यायाः प्रशस्तो यतः ।

निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कथन ॥

यत्र नारायणः साक्षात्तद्गवान् न्यासिनां गतिः ।

संस्तूप्यते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः पुनः ॥

(श्रीमद्भा० ४।३५-३६)

'जहाँ (भगवद्गत्तोंमें) सदा भगवानकी दिव्य कथा
होती रहती है, जिनके श्रवणमात्रसे भोगतृष्णा सर्वथा ज्ञात
हो जाती है। प्राणिमात्र सब परस्पर निर्वैर हो जाते हैं और
उनमें कोई उद्वेग नहीं रहता। सत्कथाओंके द्वारा अनासक्त
मावसे महान् त्यागियोंके एकमात्र आश्रय साक्षात् भगवान्
श्रीनारायणका वार-चार गुण-गान होता रहता है।'

जिन लोगोंको सत्कथा-सुधाका स्वाद मिल जाता है, वे
तो फिर उसे पीते ही रहना चाहते हैं, कभी तृप्त होते ही
नहीं। विदेह राजा निमिने योगीश्वरोंसे प्रार्थना की है—

नानुत्प्ये लुप्तन् युप्मद्वचो हरिकथामृतम् ।

संसारतापनित्ससो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥

(श्रीमद्भा० ११।३।२)

‘मे मृत्युका शिकार और संसारके तापोंसे मतस हूँ।

आपलोग मुझे जिस हरि-कथा-अमृतका पान करा रहे हैं,
वह इन तापोंको नष्ट करनेकी एकमात्र ओपथि है, इसलिये
आपकी वाणीका सेवन करते-करते म तृप्त नहीं होता ।'

सत्कथा-सुधाके परम पिपासु भक्तराज ध्रुव सत्सङ्गकी
चाह करते हुए भगवानसे बोले—

भक्ति सुहु प्रवहतां त्वयि मे प्रग्नदो
भृथाऽनन्त महात्ममलाशयानाम् ।
येनाभ्योद्यणमुख्यमन भवाद्विष
नेष्ये भवद्वृणकथामृतपानमत्तः ॥

(श्रीमद्भा० ४।९।११)

‘अनन्त परमात्मन् । जिनकी आपमें अविच्छिन्न भक्ति
है, उन निर्मलहृदय गदापुरुष भक्तोंका मुझे सज्ज दीजिये ।
उनके उद्घाटने आपके गुणों और लीलाओंकी कथा-सुधाको
पी-पीकर में उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही अनेक
दुर्घटोंसे पूर्ण इम भयक्षर भव-भागरसे उप पार पहुँच
जाऊँगा ।’

परम सीधाग्यमयी श्रीगोपाङ्गनाएँ, जो भगवत्कथा-सुधा-
रसकी रसिका ही टहरी, उनके समान इम रससुधाका
अनुभव मिमने किया हे ।—प्रेममतवारी वे गोपियों वडे ही
कहण-मधुर स्वर्गमें गाती हैं—

तव कथामृत तसजीवनं
कविभिरीदित कल्पपापहम् ।
श्रवणमङ्गल श्रीमद्रातत
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जना ॥

(श्रीमद्भा० १०।३।९)

‘इयामसुन्दर ! तुम्हारी कथा सुधा (तुम्हारे विरहसे)
सत्स पुरुषोंके लिये जीवनरूप है, जानी महात्माओंके द्वारा
उपरका गान किया गया है । वह सारे पाप-तापोंको मिटानेवाली है,
श्रवण-मात्रसे मङ्गल करनेवाली है, परम मधुर और परम
सुन्दर तथा विस्तृत है । जो तुम्हारी लीला-कथाका गान
करते हैं, वे ही वास्तवमें पृथ्वीमे सरसे वडे दाता हैं ।’

महात्मा मुनि मैत्रेयजी तो कथा-सुधा पान न करनेवालोंको
मनुष्य ही नहीं मानते । वे विद्वरजीसे कहते हैं—

को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्

पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् ।

आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहा-
महो विरज्येत विना नरेतरम् ॥
(श्रीमद्भा० ३।१३।५०)

‘अरे, ससारमें पशुओंको छोड़कर अपने पुरुषार्थका
सार—असली मानव-पुरुषार्थका रहस्य जानेवाला ऐमा कौन
पुरुष होगा जो आद्यागमनरूपी भवसे छुड़ा देनेवाली
भगवान्की प्राचीन कथाओंमेंसे किसी भी कथा-सुधाका अपने
कर्णपुटोंसे एक बार पान करके फिर उसकी ओग्से मन
हटा लेगा ।’

श्रीगोस्वामीजी महाराज सत्कथा (रामकथा) के महत्त्वका
वर्णन करते हुए कहते हैं—

महामोह महियेमु विसाना । राम कथा कालिना कराना ॥
राम कथा ससि फिरन समाना । संत चक्रोर करहि जेहि पाना ॥
जिन्ह हरि कथा सुनी नहि काना । व्रवन रप्र अहिभवन समाना ॥
राम कथा सुदर कर तारी । ससय विहग डडावनिहारी ॥

सत्कथासे ही मनुष्यको अपनी भूलेंका पता लगता है
और भवाटवीसे निकलकर सब्जे सुखकी ग्रासिका मन्मार्ग,
उसका पाथेय, प्रकाश और सहायक शुभ सज्ज प्राप्त होता
है । सत्कथाओंमें भी जो प्रभाव उपदेशका पड़ता है, उसमें
वहुत ही अधिक घटनाप्रसरणोंका पड़ता है । विषय-चामना,
भोग कामना, कामोपमोगपरायणता, भोगार्थ दुर्कर्मसे
प्रवृत्ति, अन्यायसे अर्थोपार्जनकी वृत्ति आदि सभी दोषों-
को मिटाकर जो आत्महित, लोकहितके साथ साथ भगवत्-
प्रीतिसम्पादनमें सहायक और प्रेरक हो, जिससे दैवी सम्पत्ति-
के गुणोंका विकास तथा सर्वर्थन होता हो, ऐसी घटनाओंका
श्रवण, कथन, मनन ही ‘सत्कथाका’ सेवन है ।

इसके विपरीत जिन कथाओंसे आसुरीमपदाके दुर्गुण,
दुर्विचार, दुराचार आदिका विकास तथा सर्वर्थन होता
हो—जिससे हिंसा, असत्य, स्तेय, दम्भ, दर्प, अभिमान,
मद, द्वेष, वैर, क्रोध, काम, लोभ, छल, कपट, कायरता,
असहिष्णुता, मन इन्द्रियोंकी गुलामी, व्यभिचार, तुष्णा,
ईश्वर तथा वर्में अविश्वास, दोषदर्ढनकी वृत्ति, निन्दा-
चुगलीमें प्रीति, मिथ्या प्रशसाकी इच्छा, शरीरके अत्यन्त
आरामकी भावना आदि दोष उत्पन्न होते हैं, उमड़ते
हैं, बढ़ते हैं, फैलते हैं—वह असत्कथा है । उससे
सदा दूर रहना चाहिये ।

असत् मानव-चरित्रोंका तथा असत् घटनाओंका भूलकर

भी कभी श्रवण, पठन, कथन, स्मरण नहीं करना चाहिये। जैसे सत्पुरुषोंके सत्-चरित्र और सत्-घटना आदिसे चरित्रनिर्माणमें प्रेरणा, सहायता तथा आदर्शकी प्राप्ति होती है, ठीक इनके विपरीत असत्-चरित्र तथा घटनाओंसे चरित्रनाश होता है। इसीलिये असत् साहित्यका प्रकाश और प्रचार-प्रसार ससारके लिये हानिकर माना गया है। इसीलिये गांधी तथा सत्पुरुष वार-वार सावधान करते हुए सब प्रकारके दुःसङ्खका त्याग करनेके लिये प्रेरणा देते हैं। स्वल्पन अथवा पतन बहुत शीघ्र होता है, पैर जरा-सा फिसला कि आदमी गिरा। परतु फिसलाहटसे बचनेमें बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है और चढ़नेके लिये तो परिश्रम या प्रयाम भी करना पड़ता है। 'असत्-कथा' मानव-जीवनका पतन करनेके लिये बहुत बड़ी फिसलाहट है। इसलिये 'असत्-कथा' से सदा बचकर 'सत्कथा' का ही सेवन करना चाहिये।

सत्कथाके सेवनसे मनुष्यको अपने कर्तव्यका ज्ञान होता है। अपने प्रति तथा दूसरोंके प्रति कैसे वरतना चाहिये—यह बात ठीक समझमें आती है। संसारमें किस प्रकार रहना चाहिये, घरमें रहते हुए भी बन्धन न हो; कोई भी काम या चेष्टा ऐसी न हो, जिससे किसी भी प्राणीका अहित होता हो। सदा स्वाभाविक ही सत्रका हित—परहित होता रहे, इसकी सच्ची जानकारी उन पुरुषोंकी जीवन-घटनाओंसे ही प्राप्त होती है, जो ऐसे हैं और जिनके जीवनमें ये चीजें प्रत्यक्ष देखी जाती हैं।

हमारे यहाँ चार पुरुषार्थ माने गये हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। संसारमें जीवन-निर्वाह तथा स्वयं कष्ट न पाकर सत्रको आराम पहुँचाने, अपने आश्रितोंका स्नेह तथा भक्तिपूर्वक पालन-पोषण करनेके लिये अर्थ और कामकी भी आवश्यकता है। इसीलिये धर्मके स्वरूपकी व्याख्या करते हुए हमारे सर्वदर्शी तथा आत्मस्वरूपमें स्थित महर्षिने कहा—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

'जिससे लौकिक अभ्युदय—सर्वाङ्गीण उन्नति और निःश्रेयस—परमकल्याणकी सिद्धि हो वह धर्म है।' परतु मानव-जीवनका प्रधान लक्ष्य है—मोक्ष या भगवत्प्राप्ति। इसलिये अर्थ और काम ऐसे न हों जो मनुष्यको कामोपभोगपरायण बनाकर उसे आमुरी जीवनमें पहुँचा दें। वे अर्थ और काम धर्मनियन्त्रित होने चाहिये। धर्मानुसार ही

अर्थ-कामका अर्जन, प्रयोग और उपयोग होना चाहिये। यह बात सीखनेको मिलती है—'सत्कथा' से ही।

हमारे ऋषियोंगण करते हैं—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मन् प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

'धर्मके सार-सर्वस्वको सुनो और सुनकर उसे धारण करो—वह धर्मसर्वस्व यही है कि जो-जो कार्य या व्यवहार तुम्हारे मनसे प्रतिकूल हैं, दूसरोंके साथ उन्हे न करो।' इसका यथार्थ रूप कैसा होना चाहिये। इस बातका पता 'सत्कथा'से ही लगता है।

दूसरोंका न कभी बुरा करो, न चाहो ही। तुम्हारे चाहने-करनेसे किसीका बुरा नहीं होगा। वह तो तभी होगा, जब किसीके बैसे अपने कर्म कारणरूपमें पहलेसे बने हुए विद्यमान होंगे और जो फलदानोन्मुख हो चुके होंगे। पर किसीका बुरा चाहते ही तुम्हारा तो बुरा निश्चितरूपसे हो ही गया।

जिससे अपना तथा दूसरोंका परिणाममें अहित होता हो, वही पाप है और जिससे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका हित होता हो, वही पुण्य है।

दूसरोंका अहित चाहने तथा करनेवालोंका परिणाममें कभी हित नहीं होता और दूसरोंका हित चाहने तथा करनेवालोंका परिणाममें कभी अहित नहीं होता।

हमारा अहित या नुकसान हमारे कर्मसे होता है, दूसरा कोई भी हमारा अहित नहीं कर सकता। यदि कोई वैसी चेष्टा करता है तो वह अपने लिये ही बुराईका बीज बोता है और जो अपने अहितका कार्य आप करता है, वह पागल है और पागल दयाका पात्र होता है, द्वेषका नहीं।

किसी भी स्थिति, अवस्था, प्राणी, पदार्थ, वस्तु आदिसे जो सुखकी आगा रखता है, वह कभी सुखी नहीं हो सकता। वह सदा निराश ही रहेगा, फलतः दुखी रहेगा।

सुख-दुःख किसी वस्तु या स्थितिमें नहीं है, न कोई सुख-दुःख देता ही है। मनकी अनुकूलतामें सुख है और प्रतिकूलतामें दुःख है। यदि मनुष्य जानकी दृष्टिसे अपनेको निर्लिप्त केवल द्रष्टा मान ले तो सर्वत्र अनुकूलता-प्रतिकूलताका नाश होकर समता हो जाती है तथा फिर सुख-दुःख मिटकर आनन्दकी प्राप्ति हो सकती है। अथवा

मात्रिकी दृष्टिसे सर हुठको भगवान्का भज्जलविगम मान ले तो सर्वत्र प्रत्येक सामारिक परिगाममें अनुकूल दृष्टि हो जाती है—प्रतिकूलना रहती ही नहीं, तब फिर वह नित्य आनन्दको प्राप्त कर सकता है।

अपनेको गहर्में पड़े तिनकेए भी नीचा समझे, कृत्य-की भाँति दुग्ध कग्नेवाल्मीकी भी अपना सर्वत्र देशर हित करे, स्वयं मानका त्याग करके सरको मान दे और सदा-सर्वदा श्रीभगवान्ना कीर्तन करे।

पतन या पामका कारण प्रावृत्त्य नहीं है। विवेकका अनादर ऊर्के नाम्नाके बश्य होनेपर मनुष्य पामचरण करता है और तभी उसका पतन होता है।

अपनी स्थितिसे अधिक न्वर्च करनेवाले मनुष्यको धन-की चाह नदा चर्नी ही रहता है और धन करनेके लिये वह नदा अगान्न रहता हुआ, विविध प्रकारके दुग्धचरण करने लगता है। जिन्हीं आवश्यकना जिननी कर दें, वह उनका ही अधिक सुर्यो है।

सारे ह्लेघोंना काण ममता और अहता है। जानकी दृष्टिसे नाम तथा न्ययसे अहता निराकरण एकमात्र निर्विदेश ब्रह्ममें अहता करे, निर जगन्के प्राणिपदार्थोंसे ममता आप ही निरन्तर जायगी। अथवा भग्निकी दृष्टिसे अपना साग 'अह' भगवान्ने दासन्में लगा दे अर्यान् अपनेको केवल भगवान्का दास मान ले और अपनी सारी ममता सब जगहसे हटाकर भगवान्ने खण्डोंमें ही लोड़ दे। ऐसे भगवान्ना दास' और भगवान्ने चराक्षम द्वारा ही भए हैं। ऐसे और कुछ नहीं तथा मेरा और कुछ भी नहीं।'

सातु, भक्त, महात्मा सजकर जो दुनियाको धोखा देना चाहता है, वह अपने आपको ही धोखा देना है और मानव-जीवनको पापमय बनाता है।

शुर्गसे भगवल्लस्य सशास्त्री सेवा करे, मनसे भगवान्का चिन्तन करे, यह परम साधन है।

मातान्पिताकी सेवा और अपने वर्णांश्रम-वर्मका पालन कष्ट सहकर भी आनन्दशूर्वक सौभाग्य मानकर करे।

दूसरेके अधिकारी वयासाव्य पूर्ति कर दे और अपना कोई अविकार नाने नहीं, दूसरोंकी इच्छाको उनकी आशारे अधिक पूरी करे, दूसरोंसे स्वयं इच्छापूर्तिकी कोई आशा रखते ही नहीं।

सशास्त्रके सारे सम्बन्ध भगवान्के सम्बन्धसे माने। घर भगवान्ना, घरके प्राणी भगवन्स्वरूप, घरका काम भगवान्नी सेवा। जगतक भगवान् इन बन्तुओंको रखते—तवतक इन्हें अपनी न मानकर भगवान्के नाते सेव्य माने और इनकी आठन्पूर्वक सेवा करे। भगवान् अपनी बन्तुओंको अन्यत्र भिजवा दें या सेवा कग्नेवालेको ही दूसरी जगह भेजकर दूसरी सेवा सींन दें तो न्वद प्रशस्तासे त्वीकार करे। सेवा करनी है—ममता नहीं। प्रेम करके देना है—किसीसे दृष्टि लेना नहीं है।

यद्योंनी सेवा न करना, अपवित्र रहना, अकड़े रहना, व्रद्धचर्यका नाश करना, किर्णिको चोट पहुँचाना—ये शुर्गसे होनेवाले पाँच पाप हैं। ऐसी वाणी बोलना जिससे नुनेवाले-को उद्देश हो, जो असत्य हो, जो कढ़ हो और जो अहित कग्नेवाली हो तथा भगवान्के नाम-नुण्णोंका गान न करना—ये वाणीसे होनेवाले पाँच पाप हैं। तथा मनका विशद, निर्दयता, द्वर्यं चिन्तन, उच्छृङ्खलता, अशुद्ध मात्र—ये पाँच मनसे बननेवाले पाप हैं। इनको छोड़कर शुर्गसे देव-द्विज गुरु-प्राञ्जका पूजन, शौच, सीधाम, व्रद्धचर्यका पालन और अहिंसाका सेवन करे। वाणीसे अनुदेशकरु रुत्य, मधुर और निनकर बचन बोले तथा स्वाध्याय करता रहे एव मनसे प्रशस्ता, साम्यता, मौन (भगवान्के नामहृष्णुण्णोंका मनन), मनका निगह, भावोंकी शुद्धि-दूनका सेवन करे।

किसी भी लोम या भप्से सन्य एव धर्मका त्याग न करे, विश्वक सन्य तथा धर्मकी नक्काके लिये अपने जीवनको न्योगावर कर दे।

दूसरें हु वको कर्मी अपना सुख न बनावे। अपना मान सुख टेकर दूसरेके हु नांको हग्ग करे और उसे शुजी बनावे तथा इसीमें परम सुखका अनुभव करे।

जितनेसे अपना पेट भेरे उत्तनेपर ही अपना हक है। इससे अधिकको अपना माननेवाला चोर है और दण्डनीय है। अतएव सप्तका हक यथायोग्य सप्तको टेकर केवल अपने हक्से ही अपना जीवन चलावे।

दूसरे सप्तको उनका स्वत्व टेकर वचे हुएको प्रशादन्यसे खाना ही यजावशिष्ठ भोजन है और इसीसे पाप नाश होते हैं। जो केवल अपने लिये ही कमाता खाता है, वह तो पाप खाता है।

अपने पास सग्रह करे ही नहीं, यदि कोई वस्तु या धन-सम्पत्ति अपने पास हो तो अपनेको उसका त्वामी न माने, दूसरी माने और उस वस्तुको दूसरी सम्पत्ति माने

तथा यथायोग्य नियमानुसार उसका भगवत्सेवार्थ जनसेवामें खुले हाथों उपयोग करता रहे और उसमें अपना कुछ भी श्रेय न समझे ।

किसीको कुछ देकर न उसपर अहसान करे, न उससे कृतज्ञता या बदला चाहे, न गिनावे—उसीकी वस्तु उसे दी गयी है, यही समझकर इसे भूल जाय ।

अपने द्वारा किसीका कभी कुछ हित हुआ हो, उसे भूल जाय । दूसरेके द्वारा कभी अपना अहित हुआ हो उसे भूल जाय । दूसरेके द्वारा अपना कुछ हित हुआ हो उसे याद रखें और अपने द्वारा कभी किसीका कुछ अहित हुआ उसे याद रखें ।

जैसे थोड़ा-सा भी कोढ़ सर्वाङ्गसुन्दर शरीरको विगड़ देता है, वैसे ही तनिक-सा भी लोभ यशस्वी पुरुषोंके शुद्ध यश और गुणी पुरुषोंके प्रगतिशील गुणोंको नष्ट कर देता है ।

चोरी, हिंसा, छूट, दम्प, काम, क्रोध, गर्व, अहकार, भेदब्धिद्वि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जूआ और शराब—ये पद्रह अनर्थ मनुष्योंमें अर्थ—धनसे उत्पन्न होते हैं । इस अर्थनामधारी अनर्थमें ममता-आसक्ति न करके बुद्धिमान् पुरुषको इच्छा नहीं करनी चाहिये और मिल जाय तो उसे भगवान्‌की सेवामें लगा देना चाहिये ।

सकल्पत्यागके द्वारा कामको जीते, कामके त्यागसे क्रोध-को जीते, धनसे होनेवाले अनयांको हाष्ठमें रखकर लोभका त्याग करे तथा तत्त्वविचारके द्वारा भयको जीते ।

महान् पापी भी यदि भगवान्‌को एकमात्र गरणदाता मानकर उनको अनन्यचित्तसे पुकारता है तो वह साधु ही माना जाता है ।

भगवान्‌की कृपामें जितना बल है, उतना पापके पापमें नहीं है । भगवान्‌की सभी अक्षियोंमें कृपागत्ति सबसे बड़ी है ।

किसीके नामके वहने, परिहासमें, गीतके आलाप आदिके लिये अथवा अवहेलनासे भी लिया हुआ भगवान्‌का नाम सब पापोंको नाश करता है । अनजानमें अथवा जानकर उच्चारण किया हुआ जो श्रीहरिका नाम है, वह मनुष्यकी पापराशिको उसी प्रकार जला देता है, जैसे आग इन्धनको ।

संसार बड़ा स्वार्थी है, यह दूसरेके सकटको नहीं जानता, जानता होता तो किसीसे कोई याचना नहीं करता और जो देनेमें समर्थ है, वह माँगनेपर कभी इनकार नहीं करता ।

धन, उत्तम कुल, रूप, तपस्या, वेदाध्ययन, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पुरुषार्थ, बुद्धि और योग—इन बारह गुणोंसे

शुक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान् पद्मनाभके चरणकमलसे विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल ही श्रेष्ठ है, जिसने मन, चचन, कर्म, धन, प्राण, सब कुछ भगवान्‌के चरणोंमें समर्पण कर दिये हैं; क्योंकि वह चाण्डाल तो अपने कुलको पवित्र करता है, किंतु बड़पूर्णका अधिक अभिमान रखनेवाला वह ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता ।

धन और भोगोंसे सतोप न होना ही जीवके ससारबन्धनमें पड़नेका कारण है । जो कुछ प्राप्त हो जाय उसीमें सतोप कर लेनेवालेको मुक्ति मिलती है ।

भोगोंकी प्राप्तिसे भोगकामना कभी गान्त नहीं होती, अपितु घी-ईंधनसे प्रज्वलित होनेवाली अग्निकी भौति अधिकाधिक बढ़ती है ।

जो सतुष्ट है, निष्काम है तथा आत्मामें ही रमण करता है, उसे जो सुख मिलता है, वैसा सुख कामलालसा और धनकी इच्छासे इधर-उधर दौड़नेवालोंको कभी नहीं मिल सकता ।

नुष्ट्यदेह भगवत्प्राप्तिके लिये मिला है, भोगप्राप्तिके लिये नहीं । मानवकी मानवता तभी सिद्ध होती है, जब वह भगवान्-की प्राप्तिके साधनोंमें लगकर अपने जीवनको सर्वथा भगवान्‌के अनुकूल बना लेता है या बनाना चाहता है ।

सबसे सर्वदा भगवान्‌के दर्गन करके सबकी सेवा करनेवाला महापुरुष है । केवल मानवमें ही नहीं—पशु, पक्षी, कीट-पतंग, जड़-चेतन सभीमें भगवान् भरे हैं । भगवान् ही उनके रूपमें प्रकट हैं । यह अनुभव करके सबका हित, सबकी सेवा, सबको प्रणाम करे ।

उपर्युक्त सभी चीजोंको समझना और जीवनमें उत्तरना मानव-जीवनकी पूर्णताके लिये अत्यावश्यक हैं । पर ये चीजें केवल सुननेसे नहीं मिलती । जिनके जीवनमें ये सब चीजें मूर्तिमान् हुई हों, जिन्होंने इनका प्रत्यक्ष पोपण और सेवन किया हो, उनकी उन जीवन-घटनाओंसे इनको प्राप्त करनेकी तीव्र प्रेरणा मिलती है, करनेकी युक्ति प्राप्त होती है और प्राप्त करके कैसे उनका सेवन किया जाता है इसके लिये एक अनुभवपूर्ण आदर्श मिलता है । यही ‘सत्कथा’ की विशेषता तथा उपादेयता है ।

प्रत्येक कल्याणकामी वालक-बृद्ध, नर-नारी, गृहस्थ-पिरक्त, मानवमात्रको ‘सत्कथा’ का श्रवण, मनन, अध्ययन करके उसके अनुसार जीवन बनानेका प्रयत्न करना चाहिये । यही विनीत प्रार्थना है ।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

देवताओंका अभिमान और परमेश्वर

(लेखक—पण्डित श्रीज्ञानकीनाथजी शर्मा)

एक बार देवासुर-सग्राम हुआ। उसमे भगवान्‌की कृपामे देवताओंको विजय मिली। परमेश्वर तथा आङ्गकी मर्यादा भङ्ग करनेवाले असुर हार गये। यद्यपि देवताओं-की इस महान् विजयमे एकमात्र प्रभुकी कृपा एवं इच्छा ही कारण थी, तथापि देवता इसे समझ न पाये। उन्होंने सोचा, यह विजय हमारी है और यह सौभाग्य-सुग्र केवल हमारे ही पराक्रमका परिणाम है। भगवान्‌को देवताओंके इस अभिग्रायको समझने देर न लगा। वे उनके सम्पूर्ण दुर्गुणोंकी खान इस अहकारको दूर करनेके लिये एक अद्भुत यशके स्फुरणमें उनके सामने प्रकट हुए।

देवता उनके इस अद्भुत स्फुरणको कुछ समझ न सके और वडे विस्मयमें पड़ गये। उन्होंने सर्वज्ञकल्प अग्निको उनका पता लगानेके लिये भेजा। अग्निके वहाँ पहुँचनेपर यक्षखूप भगवान्‌ने उनने प्रश्न किया कि ‘आप कौन हैं?’ अग्निने कहा—‘तुम मुझे नहीं जानते? मैं इस विश्वमें ‘अग्नि’ नामसे प्रसिद्ध जातवेदा हूँ।’ यक्षखूप भगवान्‌ने पूछा—‘ऐसे प्रसिद्ध तथा गुण-सम्पन्न आपमें क्या शक्ति है?’ इसपर अग्नि बोले कि ‘मैं इस चराचर जगत्को जलाकर भस्म कर सकता हूँ।’ इसपर (यक्षखूपमें) भगवान्‌ने उनके सामने एक तृण रख दिया और कहा, ‘कृपाकर इसे जलाइये।’ अग्निने बड़ी चेष्टा की, क्रोधसे खय पैरसे चोटीतक प्रबल्लिं हो उठे, पर वे उस निनकेको न जला सके। अन्तमें वे निराश तथा लज्जित होकर लौट आये और देवताओंमे बोले कि ‘मुझे इस यक्षका कुछ भी पता न लगा।’ तदनन्तर सबकी सम्मतिसे वायु उस यक्षके पास गये और भगवान्‌ने उनसे भी वैसे ही पूछा कि ‘आप कौन हैं तथा आपमें क्या शक्ति है?’ उन्होंने

कहा कि ‘इस सारे विश्वमें वायु नामसे प्रसिद्ध मै मातरिश्चा हूँ और मैं पृथ्वीके सारे पदार्थोंको उड़ा सकता हूँ।’ इसपर भगवान्‌ने उसी निनकेकी ओर इनका ध्यान आङ्गष्ट कराया और उसे उडानेको कहा। वायुदेवताने अपनी सारी शक्ति भिड़ा दी, पर वे उसे टस-से-मस स न कर सके और अन्तमें लज्जित होकर देवताओंके पास लौट आये। जब देवताओंने उनसे पूछा कि ‘क्या कुछ पना ला कि यह यक्ष कौन था?’ तब उन्होंने भी सीधा उत्तर दे दिया कि ‘मैं तो विल्कुल न जान सका कि वह यक्ष कौन है।’

अब अन्तमे देवताओंने इन्द्रसे कहा कि ‘मघवन्। आप ही पता लगायें कि यह यक्ष कौन है?’ ‘वहुत अच्छा’ कहकर इन्द्र उसके पास चले तो सही, पर वह यक्ष उनके वहाँ पहुँचनेके पूर्व ही अन्तर्वान हो गया। अन्तमे इन्द्रकी दृढ़ भक्ति एवं जिज्ञासा देखकर साक्षात् उमा—मूर्तिमती ब्रह्मविद्या, भगवती पर्वती वहाँ आकाशमें प्रकट हुई। इन्द्रने उनसे पूछा कि ‘माँ! यह यक्ष कौन था?’ भगवती उमाने कहा कि ‘वे यक्ष प्रसिद्ध परमव्याप्त परमेश्वर थे। इनकी ही कृपा एवं लीलाशक्तिसे असुर पगजिन हुए हैं, आपलोग तो केवल निमित्तमात्र रहे। आपलोग जो इसे अपनी विजय तथा शक्ति मान रहे हैं, वह आपका व्यामोह तथा मिथ्या अहङ्कार-मात्र है। इसी मोहमयी विनाशिका भ्रान्तिको दूर करनेके लिये परमेश्वरने आपके सामने यक्षखूपमें प्रकट होकर कुदूहल प्रदर्शन कर आपलोगोंके गर्वको भङ्ग किया है। अब आपलोग अच्छी तरह समझ ले कि इस विश्वमें जो वडे-बडे पराक्रमियोंका पराक्रम, वल्वानों-का वल, विद्वानोंकी विद्या, तपस्त्रियोंका तप, तेजस्त्रियों-का तेज एवं ओजस्त्रियोंका ओज है, वह सब उसी परम लीलामय प्रभुकी लीलामयी विविध शक्तियोंका

लब्रलेगांश मात्र है और इस विश्वके सम्पूर्ण हलचलोंके केन्द्र एकमात्र वे ही सच्चिदानन्दधन परमव्याप्ति हैं। प्राणीका अपनी शक्तिका अहङ्कार मिथ्या भ्रममात्र है।

उमाके वचनोंसे इन्द्रकी ओंखें खुल गयीं। उन्हें अपनी भूलपर बड़ी लज्जा आयी। लौटकर उन्होंने सभी देवताओंको सम्पूर्ण रहस्य बतलाकर सुखी किया। (केनोपनिषद्)

यमके द्वारपर

(लेखक—प० श्रीशिवनाथजी दुवे, साहित्यरत्न)

‘न देने योग्य गौके दानसे दाताका उल्टे अमङ्गल होता है’ इस विचारसे सात्त्विक बुद्धि-सम्पन्न ऋषिकुमार नचिकेता अधीर हो उठे। उनके पिता वाजश्रवस—वाजश्रवके पुत्र उदालकने विश्वजित् नामक महान् यज्ञके अनुष्ठानमें अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी, किंतु ऋषि-ऋत्विज् और सदस्योंकी दक्षिणामें अच्छी-द्युरी सभी गौंहें दी जा रही थीं। पिताके मङ्गलकी रक्षाके लिये अपने अनिष्टकी आङ्गड़ा होते हुए भी उन्होंने विनय-पूर्वक कहा—‘पिताजी ! मैं भी आपका धन हूँ, मुझे किसे दे रहे हैं—तत कर्मै मा दास्यसीति ।’

उदालकने कोई उत्तर नहीं दिया। नचिकेताने पुनः वही प्रश्न किया, पर उदालक टाल गये।

‘पिताजी ! मुझे किसे दे रहे हैं ?’ तीसरी बार पूछने पर उदालकको क्रोध आ गया। चिढ़कर उन्होंने कहा—‘तुम्हें देता हूँ मृत्युको—मृत्युवे त्वा ददामीति ।’

नचिकेता विचलित नहीं हुए। परिणामके लिये वे पहलेसे ही प्रस्तुत थे। उन्होंने हाथ जोड़कर पितासे कहा—‘पिताजी ! शरीर नश्वर है, पर सदाचरण सर्वोपरि है। आप अपने वचनकी रक्षाके लिये यम-सदन जानेकी मुझे आज्ञा दे ।’

ऋषि सहम गये, पर पुत्रकी सत्यपरायणता देखकर उसे यमपुरी जानेकी आज्ञा उन्होंने दे दी। नचिकेताने पिताके चरणोंमें सभक्ति प्रणाम किया और वे यमराजकी पुरीके लिये प्रस्तित हो गये।

यमराज काँप उठे। अतिथि ब्राह्मणका सत्कार न करनेके कुपरिणामसे वे पूर्णतया परिचित थे और ये तो अग्नितुल्य तेजस्वी ऋषिकुमार थे, जो उनकी अनुपस्थितिमें उनके द्वारपर बिना अन्न-जल प्रहण किये तीन रात विता चुके थे। यम जलपूरित स्वर्ण-कलश अपने ही हाथोंमें लिये दौड़े। उन्होंने नचिकेताको सम्मानपूर्वक पाद्यार्थ देकर अत्यन्त विनयसे कहा—‘आदरणीय ब्राह्मणकुमार ! पूज्य अतिथि होकर भी आपने मेरे द्वारपर तीन रात्रियों उपवासमें विता दीं, यह मेरा अपराध है। आप प्रत्येक रात्रिके लिये एक-एक वर मुझसे माँग लें।’

‘मृत्यो ! मेरे पिता मेरे प्रति शान्त-सकल्प, प्रसन्नचित्त और क्रोधरहित हो जायें और जब मैं आपके यहाँसे लौटकर घर जाऊँ, तब वे मुझे पहचानकर प्रेमपूर्वक बातचीत करें।’ पितृभक्त बालकने प्रथम वर माँगा।

‘तथास्तु’ यमराजने कहा।

‘मृत्यो ! सर्गके साधनभूत अनिको आप भली-भाँति जानते हैं। उसे ही जानकर लोग सर्गमें अमृतत्व-देवत्वको प्राप्त होते हैं, मैं उसे जानना चाहता हूँ। यही मेरी द्वितीय वर-याचना है।’

‘यह अग्नि अनन्त सर्ग-लोककी प्राप्तिका साधन है।’—यमराज नचिकेताको अल्पायु, तीक्ष्णबुद्धि तथा वास्तविक जिज्ञासुके रूपमें पाकर प्रसन्न थे। उन्होंने कहा—‘यही विराट्रूपसे जगत्‌की प्रतिष्ठाका मूल कारण है। इसे आप विद्वानोंकी बुद्धिरूप गुहामें स्थित समझिये।’

उस अग्निके लिये जैसी और जितनी ईंटें चाहिये, वे जिस प्रकार रखी जानी चाहिये तथा यज्ञस्थली-निर्माणके लिये आवश्यक सामग्रियाँ और अग्निचयन करनेकी विधि बतलाते हुए अत्यन्त सतुष्ट होकर यमने द्वितीय वरके रूपमें कहा—‘मैंने जिस अग्निकी बात आपमे कही, वह आपके ही नामसे प्रसिद्ध होगी और आप इस विचित्र रूलोंवाली माल्कको भी ग्रहण कीजिये।’

‘दृतीयं वरं नचिकेता वृणीष्व ।’

‘हे नचिकेता, अब तीसरा वर माँगिये।’ अग्निको स्वर्गका साधन अच्छी प्रकार बतलाकर यमने कहा।

‘आप मृत्युके देवता हैं’ श्रद्धा-समन्वित नचिकेताने कहा—‘आत्माका प्रत्यक्ष या अनुमानसे निर्णय नहीं हो पाता। अतः मैं आपसे वही आत्म-तत्त्व जानना चाहता हूँ। कृपापूर्वक बतला दीजिये।’

यम शिखके। आत्म-विद्या साधारण विद्या नहीं। उन्होंने नचिकेताको उस ज्ञानकी दुरुहत्ता बतलायी, पर उनको वे अपने निश्चयसे नहीं डिगा सके। यमने भुवन-मोहन अखका उपयोग किया—सुर-दुर्लभ सुन्दरियाँ और दीर्घकालस्थायिनी भोग-सामग्रियोंका प्रलोभन दिया, पर ऋषिकुमार अपने तत्त्व-सम्बन्धी गूढ़ वरसे विचलित नहीं हो सके।

‘आप वडे भाग्यवान् हैं।’ यमने नचिकेताके वैराग्यकी प्रशंसा की और वित्तमयी ससारगतिकी निन्दा करते हुए बतलाया कि विवेक-वैराग्य-सम्पन्न पुरुष ही ब्रह्मज्ञान-प्राप्तिके अधिकारी हैं। श्रेय-ग्रेय और विद्या-अविद्याके विपरीत खरूपका यमने पूरा वर्णन करते हुए कहा—‘आप श्रेय चाहते हैं तथा विद्याके अधिकारी हैं।’

‘हे भगवन् ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो सब प्रकारके व्यावहारिक विषयोंसे अतीत जिस परब्रह्मको

आप देखते हैं, मुझे अवश्य बतलानेकी कृपा कीजिये।’

‘आत्मा चेतन है। वह न जन्मता है, न मरता है। न यह किसीसे उत्पन्न हुआ है और न कोई दूसरा ही इससे उत्पन्न हुआ है।’ नचिकेताकी जिज्ञासा देखकर यम अत्यन्त प्रसन्न हो गये थे। उन्होंने आत्माके खरूपको विस्तारपूर्वक समझाया—‘वह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है, सनातन है, शरीरके नाश होनेपर भी बना रहता है। वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और महान्-से भी महान् है। वह समस्त अनित्य शरीरोंमें रहते हुए भी शरीरहित है, समस्त अस्थिर पदार्थोंमें व्यास होते हुए भी सदा स्थिर है। वह कण-कणमें व्यास है। सारा सृष्टिक्रम उसीके आदेशपर चलता है। अग्नि उसीके भयसे जलता है, सूर्य उसीके भयसे तपता है तथा इन्द्र, वायु और पाँचवाँ मृत्यु उसीके भयसे दौड़ते हैं। जो पुरुष कालके गालमें जानेसे पूर्व उसे जान लेते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। शोकादि कलेशोंको पारकर परमानन्दको प्राप्त कर लेते हैं।’

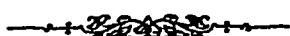
यमने कहा, ‘वह न तो वेदके प्रवचनसे प्राप्त होता है, न विशाल वुद्धिसे मिलता है और न केवल जन्मभर शाश्वोंके श्रवणसे ही मिलता है।।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।

वह उन्होंको प्राप्त होता है, जिनकी वासनाएँ ज्ञान्त हो चुकी हैं, कामनाएँ मिट गयी हैं और जिनके पवित्र अन्त करणको मलिनताकी छाया भी स्पर्श नहीं कर पाती तथा जो उसे पानेके लिये अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं।’

X X X

आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लेनेके बाद उद्धालक-पुत्र कुमार नचिकेता लौटे तो उन्होंने देखा कि वृद्ध तपस्त्रियोंका समुदाय भी उनके खागतार्थ खड़ा है।



आपद्धर्म

एक समय कुरुदेशमें ओलोंकी बड़ी भारी वर्षा हुई। इसमें सारे उगते हुए पौधे नष्ट हो गये और भयानक अकाल पड़ गया। दुष्कालसे पीडित प्रजा अन्नके अभावसे देश छोड़कर भागने लगी। वहाँ एक उपस्थि नामके ब्राह्मण भी रहते थे। उनकी द्वीका नाम आटिकी था। वह अभी वालिका ही थी। उसे लेकर उषस्ति भी देश छोड़कर इधर-उधर भटकने लगे। भटकते-भटकते वे दोनों एक महावर्णोंके ग्राममें पहुँचे। भूखके मारे देवचारे उपस्थि उस समय मरणासन्न दग्धाको प्राप्त हो रहे थे। उन्होंने देखा कि एक महावत उबाले हुए उड्ड खा रहा है। वे उसके पास गये और उससे कुछ उड्ड देनेको कहा। महावतने कहा—‘मैं इस वर्तनमें रक्खे हुए जो उड्ड खा रहा हूँ, इनके अतिरिक्त मेरे पास और उड्ड है ही नहीं, तब मैं कहाँसे दूँ?’ उषस्ति ने कहा—‘मुझे इनमेंसे ही कुछ दे दो।’ इसपर महावतने थोड़े-से उड्ड उषस्तिको दे दिये और सामने जल रखकर कहा कि ‘लो, उड्ड खाकर जल पी लो।’ उषस्ति बोले—‘नहीं, मैं यह जल नहीं पी सकता; क्योंकि इसके पीनेसे मुझे उच्छिष्ट-पानका दोप लगेगा।’

महावतको इसपर बड़ा आश्र्वय हुआ। उसने पूछा कि ‘ये उड्ड भी तो हमारे जूँठे हैं; फिर जलमें ही क्या रक्खा है जो इसमें जूँठनका दोप आ पड़ा?’

उषस्ति ने कहा—‘भाई! मैं यदि यह उड्ड न खाता तो मेरे प्राण निकल जाते। प्राणोंकी रक्षाके लिये आपद्धर्मकी व्यवस्थानुसार ही मैं उड्ड खा रहा हूँ। पर जल तो अन्यत्र भी मिल जायगा। यदि उड्डकी तरह ही मैं तुम्हारा जूँठा जल भी पी लूँ, तब तो वह स्वेच्छाचार हो जायगा। इसलिये भैया। मैं तुम्हारा जल नहीं पीऊँगा।’ यों कहकर उषस्ति ने कुछ उड्ड स्वयं खा लिये और शेष अपनी पक्षीको दे दिये। ब्राह्मणीको पहले ही कुछ खानेको मिल गया था; इसलिये उन उड्डोंको उसने खाया नहीं, अपने पास रख लिया।

दूसरे दिन प्रात काल उषस्ति ने नित्यकृत्यके बाद अपनी द्वीपसे कहा—‘क्या करूँ, मुझे जरा-सा भी अन्न कहींसे खानेको मिल जाय तो मैं अपना निर्वाह होने लायक कुछ धन प्राप्त कर लूँ, क्योंकि यहाँसे समीप ही एक राजा यज्ञ कर रहा है, वह ऋत्विक्‌के कार्यमें मेरा भी वरण कर लेगा।’

इसपर उनकी द्वीप आटिकीने कहा—‘मेरे पास कलके बचे हुए उड्ड हैं; लीजिये, उन्हें खाकर आप यज्ञमें चले जाइये।’ भूखसे सर्वथा अशक्त उषस्ति ने उन्हें खा लिया और वे राजाके यज्ञमें चले गये। वहाँ जाकर वे उद्घाताओंके पास बैठ गये और उनकी भूल ढेखकर बोले—‘प्रस्तोतागण! आप जानते हैं—जिन देवताकी आप स्तुति कर रहे हैं, वे कौन हैं? यदि रखिये आप यदि अधिष्ठाताको जाने बिना स्तुति करेंगे तो आपका मस्तक गिर पड़ेगा।’ और इसी प्रकार उन्होंने उद्घाताओं एवं प्रतिहर्ताओंसे भी कहा। यह सुनते ही सभी ऋत्विज् अपने-अपने कर्म छोड़कर बैठ गये।

राजाने अपने ऋत्विजोंकी यह दशा देखकर उषस्ति से पूछा—‘भगवन्! आप कौन हैं? मैं आपका परिचय जानना चाहता हूँ।’ उषस्ति ने कहा—‘राजन्! मैं चक्रका पुत्र उषस्ति हूँ।’ राजाने कहा, ‘ओहो, भगवन्, उषस्ति आप ही हैं?’ मैंने आपके बहुत-से गुण सुने हैं। इसीलिये मैंने ऋत्विज्‌के कामके लिये आपकी बहुत खोज करवायी थी, पर आप न मिले और मुझे दूसरे ऋत्विजोंको वरण करना पड़ा। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है, जो आप किसी प्रकार स्वयं पधार गये। अब ऋत्विज्-सम्बन्धी समस्त कर्म आप ही करनेकी कृपा करें।’

उषस्ति ने कहा—‘वहुत अच्छा। परंतु इन ऋत्विजों-को हटाना नहीं, मेरे आज्ञानुसार ये अपना-अपना कार्य करें और दक्षिणा भी जो इन्हें दी जाय, उतनी ही मुझे देना (न तो मैं इन लोगोंको निकालना चाहता हूँ और न दक्षिणमें अधिक धन लेकर इनका

अप्रमाण हीं करना चाहता हूँ। मेरी देख-रेखमें ये सब काम करते रहेंगे)।” तदनन्ना सभी ऋत्विज् उपस्थिके पास जाकर तत्त्वोंको जानकर ब्रजकार्यमें लग

गये और विशिष्टक वह यज्ञ सम्पन्न हुआ। —जा० श० (आन्दोग्य० अ० १, ख० १०-११)

गो-सेवासे ब्रह्मज्ञान

एक सत्यचारिणी ब्राह्मणी थी, उसका नाम था जवाला। उसका एक पुत्र था सत्यकाम। वह जब निवार्यवन करने वोग्य हुआ, तब एक दिन अपनी मातासे कहने लगा—“माँ! मैं गुरुद्वलमें निवास करना चाहता हूँ, गुरुजी जब मुझमे नाम, गोत्र पूछेंगे तो मैं अपना कौन गोत्र बतलाऊँगा?” इसपर उसने कहा कि “पुत्र! मुझे तेरे पितासे गोत्र पूछनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ। क्योंकि उन दिनों मैं सदा अनियिगोंकी सेवामें ही बड़ी रहनी थी। अनेक जब आचार्य तुमसे गोत्रादि पूछें, तब तुम इतना ही कह देना कि मैं जबालाका पुत्र सत्यकाम हूँ।” माताकी आज्ञा लेकर सत्यकाम हारिद्रिमत गौतमऋषिके यहाँ गया और बोला—“मैं श्रीमानके यहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक सेवा करने आगा हूँ।” आचार्यने पूछा, “क्षस! तुम्हारा गोत्र क्या है?”

सत्यकामने कहा, “भगवन्! मेरा गोत्र क्या है, इसे मैं नहीं जानता। मैं सत्यकाम जावाल हूँ, वस, इतना ही इस सम्बन्धमें जानता हूँ।” इसपर गौतमने कहा—“क्षस! ब्राह्मणको छोड़कर दूसरा कोई भी इस प्रकार सरल भावसे सच्ची ब्रह्म नहीं कह सकता। जा, थोड़ी समिधा ले आ। मैं तेरा उपनयन-स्तकार करूँगा।”

सत्यकामका उपनयन करके चार सौ दुर्वल गायोंको उसके सामने लाकर गौतमने कहा—“तू इन्हें बनमें चराने ले जा। जबतक इनकी संख्या एक हजार न हो जाय, इन्हें वापस न लाना।” उसने कहा—“भगवन्! इनकी संख्या एक हजार हुए बिना मैं न लौटूँगा।”

सत्यकाम गायोंको लेकर बनमें गया। वहाँ वह कुठिया बनाकर रहने लगा और तन-मनसे गौओंकी सेवा करने लगा। धीरे-धीरे गायोंकी संख्या पूरी एक हजार हो गयी। तब एक दिन एक वृषभ (साँड़)

ने सत्यकामके पास आकर कहा—“क्षस, हमारी संख्या एक हजार हो गयी है, अब तू हमें आचार्यकुलमें पहुँचा दे। साय ही ब्रह्मनस्तके सम्बन्धमें तुझे एक चरणका मैं उपदेश देता हूँ। वह ब्रह्म ‘प्रकाशस्तरूप’ है, इसका दूसरा चरण तुझे अप्रिय बतलायेंगे।”

सत्यकाम गौओंको हाँककर आगे चला। संध्या होनेपर उसने गायोंको रोक डिया और उन्हें जल पिलाकर वहीं गत्रिनिवासकी व्यवस्था की। तत्पश्चात् काष्ठ लाकर उसने अप्रिय जलायी। अप्रियने कहा, “सत्यकाम! मैं तुझे ब्रह्मका द्वितीय पाद बनाता हूँ, वह ‘अनन्त’ लक्षणात्मक है, अगला उपदेश तुझे हंस करेगा।”

दूसरे दिन सायकाल सत्यकाम पुन किसी सुन्दर जलाशयके किनारे बहर गया और उसने गौओंके रात्रि-निवासकी व्यवस्था की। इतनेमें ही एक हंस ऊपरसे उड़ता हुआ आया और सत्यकामके पास बैठकर बोला—“सत्यकाम!” सत्यकामने कहा—“भगवन्! क्या आज्ञा है?” हंसने कहा—“मैं तुझे ब्रह्मके तृतीय पादका उपदेश कर रहा हूँ, वह ‘योनिप्रान्’ है, चतुर्थ पादका उपदेश तुझे मुद्र (जलकुक्कुट) करेगा।”

दूसरे दिन सायकाल सत्यकामने एक बउवृक्षके नीचे गौओंके रात्रि-निवासकी व्यवस्था की। अप्रिय जलाकर वह बैठ ही रहा था कि एक जलमुर्ग आकर पुकारा और कहा—“क्षस! मैं तुझे ब्रह्मके चतुर्थ पादका उपदेश करता हूँ, वह ‘आयननस्तरूप’ है।”

इस प्रकार उन-उन देवताओंसे सच्चिदानन्दधन-लक्षण परमात्माका बोव प्राप्तकर एक सहज गौओंको लेकर सत्यकाम आचार्य गौतमके यहाँ पहुँचा। आचार्यने उसकी चिन्तारहित, तेजपूर्ण दिव्य मुखकान्तिको देखकर कहा—“क्षस! तू ब्रह्मज्ञानीके सद्ग डिखलायी पड़ता है।” सत्यकामने कहा, “भगवन्! मुझे मनुष्येतरोंसे विदा

मिली है। मैंने सुना है कि आपके सहज आचार्यके द्वारा प्राप्त हुई विद्या ही श्रेष्ठ होती है, अतएव मुझे आप ही पूर्णरूपमे उपदेश कीजिये।' आचार्य बड़े प्रसन्न हुए

और बोले—'वत्स ! तूने जो प्राप्त किया है, वही ब्रह्म-तत्त्व है।' और उस सम्पूर्ण तत्त्वका पुन. ठीक उसी प्रकार उपदेश किया। —जा० श० (छान्दोग्य० ४ । ४-६)

अग्नियोद्घारा उपदेश

कमलका पुत्र उपकोसल सत्यकाम जावालके यहाँ ब्रह्मचर्य ग्रहण करके अध्ययन करता था। बारह वर्षोंतक उसने आचार्य एवं अग्नियोंकी उपासना की। आचार्यने अन्य सभी ब्रह्मचारियोंका समावर्तन-संस्कार कर दिया और उन्हें घर जानेकी आज्ञा दे दी। केवल उपकोसल-को ऐसा नहीं किया।

उपकोसलके मनमें दुख हुआ। गुरुपत्रीको उसपर दया आ गयी। उसने अपने पतिसे कहा—'इस ब्रह्मचारीने बड़ी तपस्या की है, ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करते हुए विद्याध्ययन किया है। साथ ही आपकी तथा अग्नियों-की विधिपूर्वक परिचर्या की है। अतएव कृपया इसको उपदेश कर इसका भी समावर्तन कर दीजिये। अन्यथा अग्नि आपको उलाहना देंगे।' पर सत्यकामने बात अनुसन्धान कर दी और विना कुछकहे ही वे कहीं अन्यत्र यात्रा में चले गये।

उपकोसलको इससे बड़ा क्षेत्र हुआ। उसने अनशन आरम्भ किया। आचार्यपत्रीने कहा—'ब्रह्मचारी ! तुम भोजन क्यों नहीं करते ?' उसने कहा—'माँ, मुझे बड़ा मानसिक क्षेत्र है, इसलिये भोजन नहीं करूँगा।'

अग्नियोंने सोचा—'इस तपस्वी ब्रह्मचारीने मन ल्याकर हमारी बहुत सेवा की है। अतएव उपदेश करके इसके मानसिक क्षेत्रको मिटा दिया जाय।' ऐसा विचार करके उन्होंने उपकोसलको ब्रह्मविद्याका यथोचित उपदेश दे दिया। तदनन्तर कुछ दिनों बाद उसके आचार्य सत्य-काम यात्रासे लौटे। इधर उपकोसलका मुखमण्डल ब्रह्म-तेजसे देटीप्यमान हो रहा था। आचार्यने पूछा—'सौम्य ! तेरा मुख ब्रह्मवेत्ता-जैसा दीख रहा है; बता, तुझे किसने ब्रह्मका उपदेश किया ?' उपकोसलने बड़े सकौचसे सारा समाचार सुनाया। इसपर आचार्यने कहा—'यह सब उपदेश तो अलौकिक नहीं हैं। अब मुझसे उस अलौकिक ब्रह्मतत्त्वका उपदेश सुन, जिसे भली प्रकार जान लेने-पर—साक्षात् कर लेनेपर पाप-ताप ग्राणीको उसी प्रकार स्पर्श नहीं कर पाते, जैसे कमलके पत्तेको जल।'

इतना कहकर आचार्यने उपकोसलको ब्रह्मतत्त्वका रहस्यमय उपदेश किया और समावर्तन-संस्कार करके उसे घर जानेकी आज्ञा दे दी। —जा० श०

(छान्दोग्य० ४ । १०—१५)

गाड़ीवालेका ज्ञान

एक बड़ा ढानी राजा था, उसका नाम था जानश्रुति। उसने इस आश्रयसे कि लोग सब जगह मेरा ही अन्न खायेंगे, सर्वत्र धर्मगालाएँ बनवा दी यीं और अन्न-सत्रादि खोल रखवे थे। एक दिन रात्रिमें कुछ हंस उड़कर राजाके महलकी छतपर जा बैठे। उनमेंसे पिछले हंसने अगलेसे कहा—'अरे ओ भल्लाक ! ओ भल्लाक ! देख, जानश्रुतिका' तेज दुलोकके समान फैला हुआ है। कहीं उसका स्पर्श न कर लेना, अन्यथा वह तुझे भस्म कर डालेगा।'

इसपर दूसरे (अग्रगामी) हंसने कहा—'वैचारा वह राजा तो अत्येत तुच्छ है, मालूम होता है तुम

गाड़ीवाले रैकको नहीं जानते। इसीलिये इसका तेज उसकी अपेक्षा अत्यधिक होनेपर भी तुम इसकी वैसी प्रशंसा कर रहे हो।' इसपर पिछले हंसने पूछा—'भाई ! गाड़ी-वाला रैक कैसा है ?' अगले हंसने कहा—'भाई ! उस रैककी महिमाका क्या बखान किया जाय ! जुआरीका जब पासा पड़ता है, तब जैसे वह तीनोंको जीत लेता है, इसी प्रकार जो कुछ प्रजा शुभ काये करती है, वह सब रैकको प्राप्त हो जाता है। वास्तवमें जो तत्त्व रैक जानता है, उसे जो भी जान लेता है, वह वैसा ही फल प्राप्त करता है।'

जानश्रुति इन सारी बातोंको ध्यानसे सुन रहा था।

प्रातःकाल उठते ही उसने अपने सेवकोंको बुलाकर कहा—‘तुम गाड़ीवाले रैकके पास जाकर कहो कि राजा जानश्रुति उनसे मिठाना चाहता है।’ राजाके आज्ञानुसार सर्वत्र खोज ढुई, पर रैकका कहीं पता न चला। राजाने विचार किया कि इन सबने रैकको ग्रामों तथा नगरोंमें ही छूँढ़ा है और उनसे पुन कहा कि ‘अरे जाओ, उन्हें ब्रह्मवेत्ताओंके रहने योग्य स्थानों (अरण्य, नदीतट आदि एकान्त स्थानों) में छूँढ़ो।’

अन्तमें वे एक निर्जन प्रदेशमें गाड़ीके नीचे बैठे हुए शरीर खुजलाते हुए मिल ही गये। गजपुरुषोंने पूछा—‘प्रभो! क्या गाड़ीवाले रैक आप ही हैं?’ मुनिने कहा—‘हाँ, मैं ही हूँ।’

पता लगानेपर राजा जानश्रुति छः सौ गौएँ, एक हार और एक खचरियोंसे जुता हुआ रथ लेकर उनके पास गया और बोला—‘भगवन्! मैं यह सब आपके लिये

लाया हूँ। कृपया आप इन्हें स्वीकार कीजिये तथा जिस देवताकी उपासना करते हैं, उसका मुझे उपदेश कीजिये।’ राजाकी बात सुनकर मुनिने कहा—‘अरे शूद्र! ये गायें, हार और रथ तू अपने ही पास रख।’ यह सुनकर राजा धर लौट आया और पुनः दूसरी बार एक सहस्र गायें, एक हार, एक रथ और अपनी पुत्रीको लेकर मुनिके पास गया और हाथ जोड़कर कहने लगा—‘भगवन्! आप इन्हें स्वीकार करें और अपने उपास्यदेवताका मुझे उपदेश दें।’

मुनिने कहा—‘हे शूद्र! त, फिर ये सब चीजें मेरे लिये लाया?’ (क्या इनसे ब्रह्मज्ञान खरीदा जा सकता है?) राजा चुप होकर बैठ गया। तदनन्तर राजाको धनादिके अभिमानसे शून्य जानकर उन्होंने ब्रह्मविद्याका उपदेश किया। जहाँ रैक मुनि रहते थे, उस पुण्य प्रदेशका नाम रैकपर्ण हो गया। —जा० शा० (छान्दोग्य० ४। १-२)

एक अक्षरसे तीन उपदेश

एक बार देवना, मनुष्य और असुर—ये तीनों ही कुछ काल बीत जानेपर उन्होंने उनसे उपदेश (समावर्तन) ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की। सबसे प्रथम देवताओंने कहा—‘प्रभो! हमें उपदेश कीजिये।’ प्रजापतिने एक ही अक्षर कह दिया ‘द’। देवताओंने कहा ‘हम समझ गये। हमारे स्वर्गादि लोकोंमें भोगोंकी ही भरमार है। उन्हींमें लिस होकर हम अन्तमें स्वर्गसे गिर जाते हैं, अतएव आप हमें ‘द’ से ‘दमन’ अर्थात् इन्द्रिय-स्यमका उपदेश कर रहे हैं।’ तब प्रजापति ब्रह्माने कहा, ‘ठीक है, तुम समझ गये।’

फिर मनुष्योंने प्रजापतिसे कहा—‘आप हमें उपदेश कीजिये।’ प्रजापतिने उनसे भी ‘द’ इस एक अक्षरको ही कहा और पूछा कि ‘क्या तुम समझ गये?’ मनुष्योंने कहा—‘जी, समझ गये, आपने हमें दान करनेका उपदेश दिया है, क्योंकि हमलोग जन्मभर सप्रह करनेकी ही लिप्सामें लगे रहते हैं, अतएव हमारा दानमें ही कन्याण है।’ तब प्रजापति ने कहा ‘ठीक है, मेरे कथनका यही अभिप्राय था।’

अब असुरोंने उनके पास जाकर उपदेशकी प्रार्थना की। प्रजापतिने इन्हें भी ‘द’ अक्षरका ही उपदेश किया। असुरोंने सोचा, ‘हमलोग स्वभावसे ही हिंसक हैं, क्रोध और हिंसा हमारा नित्यका सहज व्यापार है। अतएव नि सदेह हमारे कल्याणका मार्ग एकमात्र ‘दया’ ही है। प्रजापतिने हमें उसीका उपदेश किया है, क्योंकि दयासे ही हम इन दुष्कर्मोंको छोड़कर पाप-तापसे मुक्त हो सकते हैं।’ यों विचारकर वे जब चलनेको तैयार हुए, तब प्रजापतिने उनसे पूछा ‘क्या तुम समझ गये?’ असुरोंने कहा—‘प्रभो! आपने हमें प्रागिमात्रपर दया करनेका उपदेश दिया है।’ प्रजापतिने कहा, ‘ठीक है, तुम समझ गये।’

प्रजापतिके अनुशासनकी प्रतिध्वनि आज भी मेघ-गर्जनामें हमें ‘द, द, द’ के रूपमें अनुदिन होती सुनायी पड़ती है। अर्थात् भोगप्रधान देवताओं! इन्द्रियोंका दमन करो। संग्रहप्रधान मनुष्यों! भोगसामग्रीका दान करो। और क्रोधप्रधान असुरों! जीवमात्रपर दया करो। इससे हमें दम, दान और दया—इन तीनोंको सीखना तथा अपनाना चाहिये। —जा० शा० (बृहदारण्यक० ३०)

कुमारी केशिनीका त्याग और प्रह्लादका न्याय

(लेखक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा)

पञ्चाल-ग्रदेशोंकी सर्वगुणसम्पन्ना विवेकशीला लोक-विश्रुत सुन्दरी एक स्वयंवरा कन्या थी। वह श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न सत्पुरुषसे ही विवाह करना चाहती थी। वह इस बातको अच्छी तरह समझती थी कि विवाह-योग्य वरके सम्मान्य गुणोंमें संकुलका महनीय स्थान है। यही कारण था कि उसने वैवाहिक जीवनके सब सुखोपर संकुलको ही विशेषता दी और तपस्थी ऋषि-कुमार सुधन्वासे विवाह करनेका निश्चय किया।

केशिनीके पास विवाहार्थी अनेक राजकुमारोंके भी प्रस्ताव आये, परंतु उसने सबको ठुकरा दिया। एक दिन सम्राट् प्रह्लादके युवराज विरोचनने भी अपनी विवाहेच्छा उसके सम्मुख प्रकट की।

यद्यपि युवराज विरोचनके साथ विवाह करनेके सासारिक लाभ केशिनीकी दृष्टिसे ओङ्कल नहीं थे, तथापि उसने विरोचनको इन शब्दोंमें उत्तर दिया—

‘राजकुमार! मैंने महर्षि अङ्गिराके पुत्र सुधन्वासे विवाह करनेका निश्चय किया है, परंतु यह निश्चय उनके कुल-श्रेष्ठ होनेके कारण ही किया गया है। अब आप ही बताइये कि कुलमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं या दैत्य; यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं तो मैं सुधन्वासे विवाह क्यों न करूँ?’

इसपर विरोचनने दैत्य-कुलके श्रेष्ठत्वका प्रतिपादन किया। उत्तरमें केशिनीने कहा—‘ठीक है, यदि आपका ऐसा मत है तो कल प्रातःकाल स्वयंवरसे पहले हमारे घरपर आ जाइये, वहाँ सुधन्वा भी होंगे, आप इस विषयमें उनसे विचार-विनिमय कर सकते हैं।’

ग्रात काल दोनों कुमार केशिनीके घरपर पहुँचे, परंतु वहाँ एक अरुचिकर घटना हो गयी। वह यह कि विरोचन पहले पहुँचे और सुधन्वा पीछे। इसलिये विरोचनने उससे कहा, ‘सुधन्वा! तुम यहाँ मेरे पांस सिंहासनपर बैठो।’ किंतु सुधन्वाने उसके पास बैठनेसे इन्कार करते हुए यह कहा कि ‘समान-गुणशील व्यक्ति ही एक साथ बैठ सकते हैं।’

पिता-पुत्र, दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो चृद्ध और दो शूद्र एक आसनपर साथ बैठ सकते हैं। इस दृष्टिसे मैं तुम्हारे पास नहीं बैठ सकता, क्योंकि तुम मेरे समान नहीं हो। सम्भवतः तुम्हें यह बात माल्यम नहीं कि जब मैं तुम्हारे पिताकी सभामें जाता था, तब वे मुझे उच्चासनपर बैठाकर स्वयं मुक्षसे नीचे बैठते थे और मेरी सेवा-शुश्रूषा भी करते थे।

इसपर दोनोंमें विवाद छिड़ गया; परंतु वे एकमत नहीं हो सके। ऐसी परिस्थितिमें उन्होंने किसी न्यायाधीश-से ही निर्णय लेना उचित समझा। परंतु विरोचनके यह कहनेपर कि वे देवता और ब्राह्मणको न्यायाधीश नहीं बना सकते, सुधन्वाने विरोचनके पिता सम्राट् प्रह्लादजी-को ही न्यायाधीश चुना; किंतु इसमें शर्त यह रही कि विजित व्यक्ति विजेताके चरणोंमें अपने प्राण समर्पित कर दे।

इसपर दोनों न्याय-पिपासु कुमार महाराज श्रीप्रह्लाद-जीके पास गये और उनसे सब कुछ कह दिया। प्राण-पणकी बात भी कह दी और न्यायके लिये दोनोंने उनसे प्रार्थना की।

प्रह्लादजी एक बार तो पुत्र-स्नेहसे सकुचाये; किंतु उन्होंने धर्मधर्म और सत्यासत्यके विषयमें सुधन्वासे विचार-विनिमय किया। सुधन्वाने बतलाया—

यां रात्रिमध्यविना खी यां चैवाक्षपराजितः।
यां च भाराभितप्ताङ्गो दुर्विवक्ता स्म तां वसेत् ॥
नगरे प्रतिरुद्धः सन् बहिद्वारे बुमुक्षितः।
अमित्रान् भूयसः पद्येद् यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥
पञ्च पश्चनुते हन्ति दश हन्ति गवान्नुते।
शतमश्वान्नुते हन्ति सहस्रं पुरुषान्नुते ॥
हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन्।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मास्य भूम्यनृतं वदेः ॥

(महा० उद्योग० ३५। ३१-३४)

सौतवाली खी, जूएमें हारे हुए जुआरी और भार ढोनेसे व्यथित शरीरवाले मनुष्यकी रात्रिमें जो स्थिति होती है, वही उल्टा न्याय देनेवाले वक्ताकी होती है।

जो झूठा निर्णय देता है, वह राजाके नगरमें कैद होकर बाहरी दरवाजेपर भूखका कष्ट सहता हुआ बहुत-से शत्रुओंको देखता है। साधारण पशुके लिये झूठ बोलनेसे पाँच पीढ़ियाँ, गौके लिये झूठ बोलनेवालेकी दस पीढ़ियाँ, घोड़ेके लिये झूठ बोलनेसे सौ पीढ़ियाँ और मनुष्य-के लिये झूठ बोलनेसे एक हजार पीढ़ियाँ नरकमें गिरती हैं। सोनेके लिये झूठ बोलनेवाला भूत, भविष्यकी सभी पीढ़ियों-को नरकमें गिराता है। पृथ्वी (ही) के लिये झूठ बोलनेवाला तो अपना सर्वनाश ही कर लेता है। अतएव आप भूमि (ही) के लिये झूठा निर्णय कभी मत दीजियेगा।

प्रहादने अन्तमें पुत्र-स्नेहकी तुलनामें सत्य और कुल-गौरवको विशेषता देते हुए विरोचनको सम्बोधित करके कहा—

मत्तः श्रेयानङ्गिरा वै सुधन्वा त्वद्विरोचन ।
मातास्य श्रेयसी मातुस्तस्मात्वं तेन वै जितः ॥
(महा० उद्योग० ३१ । ३४)

‘विरोचन ! अङ्गिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं, सुधन्वाकी माता तेरी मातासे श्रेष्ठ है और तुझसे सुधन्वा श्रेष्ठ है। अत सुधन्वा-ने तुझे जीत लिया, अब सुधन्वा तेरे प्राणोंका सामी है ।’

धीरताकी पराकाष्ठा

(मयूरध्वजका वलिदान)

जिन दिनों महाराज युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञका उपक्रम चल रहा था, उन्हीं दिनों रलपुराधीश्वर महाराज मयूरध्वजका भी अश्वमेधीय अश्व छूटा था, इधर पाण्डवीय अश्वकी रक्षामें श्रीकृष्ण-अर्जुन थे, उधर ताम्रध्वज। मणिपुरमें दोनोंकी मुठभेड़ हो गयी। युद्ध-में भगवदिच्छासे ही अर्जुनको पराजित करके ताम्रध्वज दोनों अश्वोंको अपने पिताके पास ले गया। पर इससे महाराज मयूरध्वजके मनमें हृषके स्थानपर घोर विषाढ़ ही हुआ। कारण, वे श्रीकृष्णके अद्वितीय भक्त थे।

इधर जब अर्जुनकी मूर्छा दूटी, तब वे घोड़ेके लिये वेतरह व्यग्र हो उठे। भक्त-प्रवक्षा प्रसुने ब्राह्मणका वेष बनाया और अर्जुनको अपना चेला। वे राजाके पास

इस प्रकार प्रसन्न होकर सुधन्वाने सहृदयतापूर्वक कहा—
यद्धर्ममधुणीथास्त्वं न कामदन्तं वदीः ।
पुनर्ददामि ते पुत्रं तसात् प्रह्लाद दुर्लभम् ॥
एष प्रह्लाद पुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः ।
पादप्रक्षालनं कुर्यात् कुमार्याः संनिधौ मम ॥

(महा० उद्योग० ३० ३४)

‘प्रह्लादजी ! आपने पुत्र-स्नेहके वशीभूत होकर भी असत्य-भाषण नहीं किया, अपितु विशुद्ध न्याय प्रदान किया, इसलिये मैं यह दुर्लभ पुत्र आपको सौंपता हूँ, किंतु यह कुमारी केशिनीके सम्मुख हमारे पैर धोये । यही इस घटनाका साधारण-सा प्रायश्चित्त है ।’

यहाँ उल्लेखनीय वात यह है कि कुमारी केशिनीने अश्वस्तनिक सुधन्वाको जीवन-सङ्गी और धर्म-साथी बनाकर न केवल अपने भौतिक सुख-विलासकी तुलनामें सत्कुलोत्पन्न व्यक्तित्वको विशेषता दी, अपितु उसने अपने जीवनके द्वारा हिंदू-संस्कृतिका एक विश्वस्पृहणीय उदाहरण भी संसारके सामने प्रस्तुत किया ।

पहुँचे । राजा मयूरध्वज इन लोगोंके तेजसे चकित हो गये । वे इन्हें प्रणाम करनेवाले ही थे कि इन लोगोंने स्वस्ति कहकर उन्हें पहले ही आशीर्वाद दे दिया । राजाने इनके इस कर्मकी वज्री भर्त्सना की । फिर इनके पधारनेका कारण पूछा । श्रीकृष्णने कहा—‘मेरे पुत्रको सिंहने पकड़ लिया है । मैंने उससे बार-बार प्रार्थना की जिसमें वह मेरे एकमात्र पुत्रको किसी प्रकार छोड़ दे । यहाँतक कि मैं स्वयं अपनेको उसके बदलेमें देनेको तैयार हो गया, पर उसने एक न मानी । बहुत अनुनय-विनय करनेपर उसने यह स्वीकार किया है कि राजा मयूरध्वज पूर्ण प्रसन्नताके साथ अपने दक्षिणाङ्कको अपनी ली-पुत्रके द्वारा चिरवाकर

१ दैत्य-कुल-भूषण प्रह्लादजी और युवराज विरोचनके व्यवहारसे भी सत्कुल-गौरव और हिंदू-संस्कृतिका सम्मान ही स्पष्ट होता है। परतु हम देखते हैं कि आजकलके पर-प्रत्यय-नेय-मतितो इस मार्गसे बहुत कुछ पिछड़ गये और दूर चले गये हैं।

दे सकें तो मैं तुम्हारे पुत्रको छोड़ सकता हूँ।'

राजाने ब्राह्मणस्य श्रीकृष्णका प्रस्ताव मान लिया। उनकी रानीने अद्भुतिनी होनेके नाते अपना शरीर देना चाहा, पर ब्राह्मणने दक्षिणाङ्गकी आवश्यकता बतलायी। पुत्रने अपनेको पिताकी प्रतिमूर्ति बतलाकर अपना अङ्ग देना चाहा, पर ब्राह्मणने वह भी अस्तीकार कर दिया।

अन्तमे दो खंभोंके बीच 'गोविन्द, माधव, मुकुन्द' आदि नाम लेते महाराज बैठ गये। आरा लेकर रानी तथा ताम्रघञ्ज चीरने लगे। जब महाराज मयूरध्वजका सिर चीरा जाने लगा, तब उनकी बार्यी आँखसे ऑसूकी वैँटें निकल गयीं। इसपर ब्राह्मणने कहा—'दुःखसे दी हुई वस्तु मैं नहीं लेता।' मयूरध्वजने कहा—'आँसू निकलनेका यह भाव नहीं है कि शरीर काटनेसे मुझे दुःख हो रहा है। बायें अङ्गको इस बातका क्लेश है— हम एक ही साथ जन्मे और बढ़े, पर हमारा दुर्भाग्य

जो हम दक्षिणाङ्गके साथ ब्राह्मणके काम न आ सके। इसीसे बार्यी आँखमे ऑसू आ गये।'

अब प्रभुने अपने आपको प्रकट कर दिया। शङ्ख-चक्र-गदा धारण किये, पीताम्बर पहने, सघन नीलवर्ण, दिव्य ज्योत्स्नामय श्रीश्यामसुन्दरने ज्यों ही अपने अमृत-सय कर-कमलसे राजाके शरीरको स्पर्श किया, वह पहलेकी अपेक्षा भी अधिक सुन्दर, युवा तथा पुष्ट हो गया। वे सब प्रभुके चरणोंपर गिरकर स्तुति करने लगे। प्रभुने उन्हें वर माँगनेको कहा। राजाने प्रभुके चरणोंमे निश्चल प्रेमकी तथा भविष्यमें 'ऐसी कठोर परीक्षा किसीकी न ली जाय'—यह प्रार्थना की। अन्तमें तीन दिनोंतक उनका आतिथ्य ग्रहणकर घोड़ा लेकर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन वहाँसे आगे बढ़े।

(जैमिनीय अश्वमेध, अध्याय ४४ से ४७)

मेरे राज्यमें न चोर हैं न कृपण हैं, न शराबी हैं न व्यभिचारी हैं

एक बार उपमन्युके पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष-पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लवि-पौत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्षका पुत्र जन और अश्वतराक्ष-पुत्र बुद्धिल—ये महागृहस्थ और श्रेत्रिय एकत्र होकर आपसमे आत्मा और ब्रह्मके सम्बन्धमें विचार-विमर्श करने लगे। पर जब वे किसी ठीक निर्णयपर न पहुँचे, तब अरुणके पुत्र उदालकके पास जाकर इस रहस्यको समझनेका निश्चय किया।

उदालकने जब उन्हें दूरसे ही आते देखा तभी उनका अभिग्राय समझ लिया और विचारा कि 'इसका ठीक-ठीक निर्णय तो मैं कर नहीं सकता, अतएव इन्हें केक्यके पुत्र राजा अश्वपतिके पास भेजना चाहिये।' उसने उनके आनेपर कहा कि 'भगवन्! इस वैश्वानर आत्माको अश्वपति ही अच्छी प्रकार जानते हैं; चलिये, हमलोग उन्हींके पास चलें।' सब तैयार हो गये और अश्वपतिके यहाँ पधारे।

राजाने सभी ऋषियोंके सत्कारका अलग-अलग प्रबन्ध किया। दूसरे दिन प्रातःकाल उसने उनके सामने बहुत बड़ी अर्थराशि सेवामे रक्खी, परंतु उन्होंने उसका स्पर्शतक नहीं किया। राजाने सोचा, 'माल्म होता है ये मुझे अधर्मी अथवा दुराचारी समझ रहे हैं; इसीलिये इस धनको दूषित समझकर नहीं ग्रहण करते। अतएव उसने कहा—'न तो मेरे राज्यमें कोई चोर है, न कोई कृपण, न मध्यायी (शराबी)। हमारे यहाँ सभी ब्राह्मण अश्रिहोत्री तथा विद्वान् हैं। कोई व्यभिचारी पुरुष भी मेरे देशमें नहीं हैं, और जब पुरुष ही व्यभिचारी नहीं हैं, तब सी तो व्यभिचारिणी होगी ही कहाँसे?' अतएव मेरे धनमे कोई दोष नहीं है।' ऋषियोंने इसका कोई उत्तर नहीं दिया।

राजाने सोचा, 'थोड़ा धन देखकर ये स्वीकार नहीं

करते होंगे', अतएव उसने पुन कहा—'भगवन् । मैं एक यज्ञका आरम्भ कर रहा हूँ, उसमें प्रत्येक ऋत्यिक् को जितना धन दूँगा, उतना ही आपमेंसे प्रत्येकको दूँगा ।'

राजाकी बात सुनकर ऋषियोंने कहा—'राजन् । मनुष्य जिस प्रयोजनसे जहाँ जाता है, उसका वही प्रयोजन पूरा करना चाहिये । हमलोग आपके पास

धनके लिये नहीं, अपितु वैश्वानर-आत्माके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आये हैं ।' गजाने कहा—'इसका उत्तर मैं प्रात काल दूँगा ।'

दूसरे दिन पूर्वाह्नमें वे हाथमें समिधा लेकर राजाके पास गये और गजाने उन्हें बतलाया कि यह समस्त विश्व भगवत्स्वरूप है तथा आत्मा एवं परब्रह्ममें स्वरूपत कोई भेद नहीं है ।

—जा० श० (छान्दोग्य०)

वह तुम ही हो

अरुणके पुत्र उदालकका एक लड़का श्वेतकेतु था । उससे एक दिन पिताने कहा, 'श्वेतकेतो ! द् गुरुकुलमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन कर, क्योंकि हमारे कुलमें कोई भी पुरुष स्वाध्यायरहित ब्रह्मवन्यु नहीं हुआ ।'

तदनन्तर श्वेतकेतु गुरुकुलमें गया और वहाँ उपनयन कराकर बारह वर्षतक विद्याध्ययन करता रहा । जब वह अध्ययन समाप्त करके घर लौटा, तब उसे अपनी विद्याका बड़ा अहंकार हो गया । पिताने उसकी यह दशा देखकर उससे पूछा—'सौम्य ! तुम्हें जो अपने पाण्डित्यका इतना अभिमान हो रहा है, सो क्या तुम्हें उस एक वस्तुका ज्ञान है, जिसके जान लेनेपर सारी वस्तुओंका ज्ञान हो जाता है, जिस एकके सुन लेनेसे सारी सुननेयोग्य वस्तुओंका श्रवण तथा जिसे विचार लेनेपर सभी विचारणीय वस्तुओंका विचार हो जाता है ?'

श्वेतकेतुने कहा—'मैं तो ऐसी किसी भी वस्तुका ज्ञान नहीं रखता । ऐसा ज्ञान हो भी कैसे सकता है ?' पिताने कहा—'जिस प्रकार एक मृत्तिकाके जान लेनेपर घट, गरावादि सम्पूर्ण मिट्टीके पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है । अथवा जिस प्रकार एक सुवर्णको जान लेनेपर सम्पूर्ण कड़े, मुकुट, कुण्डल एवं पात्रादि सभी सुवर्णके पदार्थ जान लिये जाते हैं । अथवा एक लोहेके नखछेदनीसे सम्पूर्ण लोहेके पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है कि तत्त्व तो केवल लोहा है । टाँकी, कुदाल, नखछेदनी, तलवार आदि तो वाणीके विकार हैं ।'

इसपर श्वेतकेतुने कहा—'पिताजी ! पूज्य गुरुदेव ने मुझे इस प्रकारकी कोई शिक्षा नहीं दी । अब आप ही मुझे उस तत्त्वका उपदेश करें, सचमुच मेरा ज्ञान अत्यन्त अल्प तथा नगण्य है ।' इसपर पिताने कहा—'आरम्भमें यह एकमात्र अद्वितीय सत् था । उसने विचार किया कि मैं बहुत हो जाऊँ । उसने तेज (अग्नि) उत्पन्न किया । तेजसे जल, जलसे अन्न और पुनः सब अन्य पदार्थ उत्पन्न किये । कहीं भी जो लाल रंगकी वस्तु है वह अग्निका अश है, शुक्ल वस्तु जलका अश है तथा कृष्ण वस्तु अन्नका अश है । अतएव इस विश्वमें अग्नि, जल और अन्न ही तत्त्व हैं । इन तीनोंके ज्ञानसे विश्वकी सारी वस्तुओंका ज्ञान हो जाता है । अथवा इन सर्वांके भी मूल 'सत्तत्त्व' के जान लेनेपर पुनः कुछ भी ज्ञेय अविगिष्ट नहीं रह जाता ।'

श्वेतकेतुके आग्रहपर आरुणिने पुन इस तत्त्वका दर्ही, मधु, नर्दी एवं वृक्षादिके उदाहरणसे वोध कराया और बतलाया कि सत्से उत्पन्न होनेके कारण ये सब सत् आत्मा ही हैं और वह आत्मा तुम ही हो । इस प्रकार श्वेतकेतुने सच्चा ज्ञान पाया कि एक परमात्माके जान लेने, चिन्तन करने, आराधन-पूजन करनेसे सबकी जानकारी, आराधना हो जाती है ।

—जा० श० (छान्दोग्य०)

सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मनिष्ठ

एक बार महाराज जनकने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया। उसमें उन्होंने एक बार एक सहस्र सोनेसे मढ़े हुए सींगोंवाली वादिया दुधारी गौओंकी ओर सकेत करके कहा—‘पूज्य ब्राह्मणो ! आपमें जो ब्रह्मनिष्ठ हों, वे इन गौओंको ले जायें।’ इसपर जब किसीका साहस न हुआ, तब याज्ञवल्क्यने अपने ब्रह्मचारीसे कहा—‘सोमश्रवा ! दू इन्हे ले जा !’ अब तो सब ब्राह्मण विगड़ पड़े। उन्होंने कहा कि ‘क्या हम सबमें तुम्हीं उत्कृष्ट ब्रह्मनिष्ठ हो !’ याज्ञवल्क्यने कहा कि ‘ब्रह्मनिष्ठ-को तो हम नमस्कार करते हैं; हमें तो गायें चाहिये, इसलिये हमने इन्हें ले लिया है।’

अब विवाद छिड़ गया। ब्रह्मनिष्ठामिमानी अश्वल, ऋतुभ, आर्तभाग, भुज्यु, उषस्त, कहोल, उद्धालक तथा गार्णी आदिने कई प्रश्न किये। पर याज्ञवल्क्यने सभी-का सतोषजनक उत्तर दे दिया। अन्तमें वाचक्षवी गार्णीने कहा—‘पूजनीय ब्राह्मणगण ! अब मैं इनसे दो प्रश्न करती हूँ। यदि ये मेरे उन प्रश्नोंका उत्तर दे देंगे तो समझ लीजिये कि इन्हें कोई भी न जीत सकेगा।’ ब्राह्मणोंने कहा—‘गार्णी, पूछ !’

गार्णीने याज्ञवल्क्यसे प्रश्न किया—‘हे याज्ञवल्क्य ! जो ब्रह्माण्डसे ऊपर है, जो ब्रह्माण्डमें नीचे है, जो इस

सर्व और पृथ्वीके बीचमे स्थित है तथा जो भूत, वर्तमान और भविष्यरूप है, वह सूत्रात्मा विश्व किसमें ओतप्रोत है ?’

याज्ञवल्क्यने कहा—‘गार्णी ! यह जगद्रूप व्यावृत सूत्र अन्तर्यामीरूप आकाशमें ओतप्रोत है।’

गार्णीने कहा—‘इस उत्तरके लिये तुम्हें प्रणाम ! अब इस दूसरे प्रश्नका उत्तर दो कि जगद्रूप सूत्रात्मा जिस आकाशमें ओतप्रोत है, वह आकाश किसमें ओतप्रोत है ?’

याज्ञवल्क्यने कहा—‘वह अव्याकृत आकाश अविनाशी अक्षर ब्रह्ममें ही ओतप्रोत है। यह अक्षर ब्रह्म देश-काल-वस्तु आदिके परिच्छेदसे रहित सर्व-व्यापी अपरिच्छिन्न है। इसीकी आज्ञामें सूर्य और चन्द्रमा नियमित रूपसे बतते हैं। जो इसे जान बिना ही मर जाता है, वह दयाका पात्र है, और जो इसे जानकर मरणको प्राप्त होता है, वह ब्रह्मनिर्दि हो जाता है।

महर्षिके इस व्याख्यानको सुनकर गार्णी सतुष्ट हो गयी और उसने ब्राह्मणोंसे कहा—‘याज्ञवल्क्य नमस्कारवे योग्य है। ब्रह्मसम्बन्धी विवादमें इन्हें कोई भी नहीं हरा सकता।’ याज्ञवल्क्यके ज्ञान तथा तेजको देखकर सारी सभा चक्रित रह गयी। —जा० शा० (बृहदारण्यक०)

सर्वोत्तम धन

महर्षि याज्ञवल्क्यकी दो खियों थीं। एकका नाम या मैत्रेयी और दूसरीका कात्यायनी। जब महर्षि सन्यास प्रहण करने लगे, तब दोनों खियोंको बुलाकर उन्होंने कहा—‘मेरे पीछे तुमलोगोंमें झगड़ा न हो, इसलिये मैं सम्पत्तिका बैच्चारा कर देना चाहता हूँ।’ मैत्रेयीने कहा—‘सामिन् ! जिस धनको लेकर मैं अमर नहीं हो सकती, उसे लेकर क्या करँगी ? मुझे तो आप अमरत्वका साधन बतलानेकी दया करें।’

याज्ञवल्क्यने कहा—‘मैत्रेयी ! तुमने बड़ी सुन्दर

बात पूछी। वस्तुतः इस विश्वमें परम धन आत्मा ही है। उसीकी प्रियताके कारण अन्य धन, जन आदि प्रिय प्रतीत होते हैं। इसलिये यह आत्मा ही सुनने, मनन करने और जानने योग्य है। इस आत्मासे कुछ भी भिन्न नहीं है। ये देवता, ये प्राणीवर्ग तथा यह सारा विश्व—जो कुछ भी है, सभी आत्मा है। ये ऋगादि वेद, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सृत्र, मन्त्रविवरण और सारी विद्याएँ इस परमात्माके ही निःश्वास हैं।

‘यह परमात्म-तत्त्व अनन्त, अपार और विज्ञानधन

है। यह इन भूतोंसे प्रकट होकर उन्हींके साथ अदृश्य हो जाता है। देहेन्द्रिय-भावसे मुक्त हो जानेपर इसकी कोई सज्जा नहीं रह जाती। जहाँ अज्ञानावस्था होती है, वहीं द्वैतका वोध होता है तथा अन्यको सृङ्घने, देखने, सुनने, अभिवादन करने और जाननेका भ्रग होता है, किंतु जहाँ इमके लिये सब कुण्ड आत्मा ही हो गया है,

वहाँ कौन किसे देखे, सुने, जाने या अभिवादन करे ? वहाँ कैसा शोक, कैसा शोह, कैसी मृत्यु, जहाँ सब कुछ एकमात्र विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही सर्वत्र दीख रहा है।'

ऐसा उपदेश करके महर्षिने सन्यासका उपक्रम किया तथा उन्हींके उपदेशके आवारपर चलकर मैत्रेयीने भी परम कल्याणको प्राप्त कर लिया। —जा० शा० (बृहदारण्यक०)

ब्रह्म क्या है ?

गार्गोत्रमें उत्पन्न वल्मीकी के पुत्र वालाकि नामके एक प्रसिद्ध ब्राह्मण थे। उन्होंने सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन तो किया ही था, वे वेदोंके अच्छे वक्ता भी थे। उन दिनों संसारमें सब और उनकी बड़ी स्थाति थी। वे उभीनर देशके निवासी थे, परतु सदा विचरण करनेके कारण कभी मत्स्य देशमें, कभी कुरु-पाञ्चालमें और कभी काशी तथा मिथिला ग्रान्तमें रहते थे। इस प्रकार वे सुप्रसिद्ध गार्य (वालाकि) एक दिन काशीके विद्वान् राजा अजातशत्रुके पास गये और अभिमानपूर्वक बोले—‘राजन् ! आज मैं तुम्हें ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करूँगा।’ इसपर प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा—‘आपको इस बातपर हमने आपको एक सहस्र गौँँ दी। आज आपने हमारा गौरव राजा जनकके समान कर दिया। अन. इन्हें स्त्रीकार करके हमें ब्रह्म-तत्त्वका शीघ्र उपदेश करें।’

इसपर गार्य वालाकिने कहा कि ‘राजन् ! यह जो सूर्यमण्डलमें अन्तर्यामी पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्म-बुद्धिसे उपासना करता हूँ।’ यह सुनकर प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा—‘नहीं, नहीं, इसके विषयमें आप सवाद न करें, यह तेजका आत्मा है। जो इसकी इस प्रकार उपासना करता है, वह तेजस्वी हो जाता है।’

तब गार्य बोले—‘यह जो चन्द्र-मण्डलमें अन्तर्यामी पुरुष है, मैं इसकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ।’ यह सुनकर अजातशत्रुने कहा—‘नहीं, नहीं, इस विषयमें आप सवाद न करें। यह सोम राजा है और अलका आत्मा है। इसकी इस प्रकार उपासना करनेवाला व्यक्ति मुझ-जैसा ही अन्न-राशिसे सम्पन्न हो जाता है।’

अब वे गार्य बोले—‘यह जो विद्युन्मण्डलमें अन्तर्यामी पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ।’ अजातशत्रुने इसपर यही कहा कि ‘नहीं, नहीं, इस विषयमें आप सवाद न करें, यह तेजका आत्मा है। जो इसकी इस प्रकार उपासना करता है, वह तेजस्वी हो जाता है।’

इसी प्रकार गार्य क्रमशः मेघ, आकाश, वायु, अग्नि, जल, दर्पण, प्रतिघनि, पदघनि, छायामय पुरुष, शरीरान्तर्वर्ती पुरुष, प्राण तथा उभयनेत्रान्तर्गत पुरुषको ब्रह्म बतलाते गये और अजातशत्रुने इन सबको ब्रह्मका अङ्ग तथा ब्रह्मको इनका अङ्गी सिद्ध किया। अन्तमें हारकर वालाकिने तुष्णी साध ली और अन्तमें राजा अजातशत्रुको अपना गुरु स्त्रीकार किया और उनके सामने समिधा लेकर वे शिष्यभावसे उपस्थित हुए।

इसपर राजा अजातशत्रुने कहा—‘यदि क्षत्रिय ब्राह्मणको शिष्य बनाये तो बात त्रिपरीत हो जायगी,

इसलिये चलिये, एकान्तमे हम आपको ब्रह्मका ज्ञान करायेंगे ।' यो कहकर वे बालाकिको एक सोये हुए व्यक्तिके पास ले गये और उसे 'ओ ब्रह्मन् । ओ पाण्डरवासा । ओ सोम राजा ।' इत्यादि सम्बोधनोंसे पुकारने लगे । पर वह पुरुष चुपचाप सोया ही रहा । तब उसे दोनों हाथोंसे दबाकर जगाया । अब वह जगा । तदनन्तर राजाने बालाकिसे पूछा—'बालाके ! यह जो विज्ञानमय पुरुष है, जब सोया हुआ था तब कहाँ था ? और अब यह कहाँसे आ गया ?' किंतु गार्ग्य यह कुछ न जान सके ।

अजातशत्रुने कहा—'हिता नामसे प्रसिद्ध बहुत-सी नाड़ियाँ हैं । ये हृदयकमलसे सम्बद्ध हैं और वर्हाँसे निकलकर सम्पूर्ण शरीरमें फैली हुई हैं । यह पुरुष सोते समय उन्हीं नाड़ियोंमें स्थित रहता है । जैसे क्षुरधानमें छूरा रखा रहता है, उसी प्रकार शरीरान्तर्गत

हृदयकमलमें इस परम पुरुष परमात्माकी उपलब्धि होती है । वाक्, चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियों अनुगत सेवककी भाँति उसका अनुसरण करती है । इसके सो जानेपर ये सारी इन्द्रियों प्राणमे तथा प्राण इस आत्मामे लीन—एकीभावको प्राप्त हो जाता है ।

'यही आत्मतत्त्व है । जबतक इन्द्रको इस आत्म-तत्त्वका ज्ञान नहीं था, तबतक वे असुरोंसे हारते रहे । किंतु जब वे इस रहस्यको जान गये, तब असुरोंको पराजितकर सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ हो गये, स्वर्गका राज्य तथा त्रिमुखनका आधिपत्य पा गये । इसी प्रकार जो विद्वान् इस आत्मतत्त्वको जान लेता है, उसके सारे पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे खाराज्य, प्रभुत्व तथा श्रेष्ठत्वकी प्राप्ति होती है । —जा० श०

(वृहदारण्यक०)
(कौषीतकिग्राहणोपनिषद्)

पश्चात्तापका परिणाम

(लेखक—श्रीरामलालजी)

अप्युन्नतपदारुढपूज्यान् नैवापमानयेत् ।

इक्ष्वाकूणां ननाशाश्वनेस्तेजो वृशावमानतः ॥

(नीतिमञ्जरी ७८)

इक्ष्वाकु-वशके महीप त्रिवृष्टिके पुत्र त्र्यरुणकी अपने पुरोहितके पुत्र वृशजानसे बहुत पठती थी । दोनों एक दूसरेके बिना नहीं रह सकते थे । महाराज त्र्यरुणकी धीरता और वृशजानके पाण्डित्यसे राजकीय समृद्धि नित्य बढ़ रही थी । महाराजने दिग्विजय-यात्रा की, उन्होंने वृशजानसे सारथि-पद स्थीकार करनेका आग्रह किया । वृशजान रथ हाँकनेमें बड़े निपुण थे, उन्होंने अपने मित्रकी प्रसन्नताके लिये सारथि होना स्थीकार कर लिया ।

× × × ×

राजधानीमें ग्रसन्नताकी लहर दौड़ पड़ी । दिग्विजय-यात्रा समाप्तकर त्र्यरुण लौटनेवाले थे । रथ बड़ी तेजीसे

आगे बढ़ रहा था, राजधानी थोड़ी ही दूर रह गयी थी कि सहसा रथ राजपथपर रुक ही गया ।

'अनर्थ हो गया, महाराज ! हमारी दिग्विजय-यात्रा कलङ्घित हो गयी, रथके पहियेके नीचे एक ब्राह्मण-कुमार दबकर स्वर्ग चला गया ।' वृशजानने गम्भीर सोंस ली ।

'इस कलङ्घकी जड़ आप है, पुरोहित । आपने रथका वेग बढ़ाकर धोर पाप कर डाला ।' महाराज धर-थर काँपने लगे ।

'दिग्विजयका श्रेय आपने लिया तो यह ब्रह्महत्या भी आपके ही सिरपर मढ़ी जायगी ।' पुरोहित वृशजानके शब्दोंसे महाराज तिलमिला उठे । दोनोंमें अनबन हो गयी । त्र्यरुणने उनके कथनकी अवज्ञा की ।

वृशजानने अथर्वाङ्गिरस मन्त्रके उच्चारणसे ब्राह्मण-कुमारको जीवन-दान दिया । उसके जीवित हो जानेपर, महाराजने उन्हें रोकनेकी बड़ी चेष्टा की, पर वृशजान अपमानित होनेसे गज्य छोड़कर दूसरी जगह चले गये ।

X X X X

पुरोहित वृशजानके चले जानेपर महाराज ऋरुण पथ्वात्तापकी आगमें जलने लगे । मैंने मठोन्मत्त होकर अपने अभिन्न मित्रका अपमान कर डाला—यह सोच-सोचकर वे बहुत व्ययित हुए । राजप्रासाद, राजधानी और सम्पूर्ण राज्यमें अग्नि देवताकी अकृपा हो गयी । यज्ञ आदि सत्कर्म समाप्त हो गये । महाराजने प्रजा-समेत पुरोहितके चरणोंमें जाकर भासा माँगी, अपना अपराध स्वीकार किया । वृशजान गजधानीमें वापस आ गये । चारों ओर 'स्वाहा-स्वाहा' का ही राज्य स्थापित हो गया । अग्नि देवताका तेज प्रज्वलित हो उठा ।

'मेरी समझमें आ गया मित्र ! राज्यमें अग्नि-तेज घटनेका कारण ।' वृशजानने यज्ञ-कुण्डमें धीकी आहुति देते हुए ऋरुणकी उत्सुकता बढ़ायी । महाराज आश्वर्य-चकित थे ।

'यह है ।' वृशजानने ऋरुणकी रानी—पिशाचीको कपिश—गड़ेके आसनपर बैठनेका आदेश दिया, वेद-मन्त्रसे अग्निका आवाहन करते ही पिशाची स्वाहा हो गयी ।

'यह ब्रह्महत्या थी महाराज । रानीके वेषमें राजप्रासादमें प्रवेशकर इसने राज्यश्रीका अपहरण कर लिया था ।' वृशजानने रहस्यका उद्घाटन किया । यज्ञ-कुण्डकी होम-ज्वालासे चारों ओर प्रकाश छा गया ।

ऋरुणने वृशजानका आलिङ्गन किया । प्रजाने दोनों की जय मनायी । चारों ओर आनन्द वरसने लगा ।

(वृहद्वेष्टा अ० ५ । १४-२३)

उसने सच कहा

कनिष्ठाः पुत्रवत् पाल्या भ्रात्रा ज्येष्ठेन निर्मलाः ।
प्रगाथो निर्मलो भ्रातुः प्रगात् कण्वस्य पुत्रताम् ॥
(नौतिमञ्जरी १११)

महर्षि धोर्में पुत्र कण्व और प्रगाथको गुरुकुलसे लौटे कुछ ही दिन हुए थे । दोनों ऋषिकुमारोंका एक-दूसरेके प्रति हार्दिक ग्रंथ था । प्रगाथ अपने बड़े भाई कण्वको पिताके समान समझते थे, उनकी पली प्रगाथसे स्नेह कात्ती थी । उनकी उपस्थितिसे आत्रमका वातावरण बड़ा निर्मल और पवित्र हो गया था । यज्ञकी धूमशिखा आकाशको चूम-चूमकर निर्गतर महती सात्त्विकताकी विजयिनी पताका-सी लहराती रहती थी ।

एक दिन आत्रममें विशेष आनिका साम्राज्य था । कण्व समिधा लेनेके लिये वनके अन्तरालमें गये हुए थे । उनकी साथी पली यज्ञवेदीके ठीक सामने बैठी हुई थी । उससे धोड़ी दूरपर ऋषिकुमार प्रगाथ साम-गान

कर रहे थे । अत्यन्त शीतल और मधुर समीरणके सचारसे ऋषिकुमारके नयन अलसाने लगे और वे ऋषिपलीके अङ्कमें सिर रखकर विश्राम करते-करते सो गये । ऋषिपली किसी चिन्तनमें तन्मय थी ।

X X X

'यह कौन है, इस नीचने तुम्हारे अङ्कमें विश्राम करनेका साहस किस प्रकार किया ?' समिधा रखते ही कण्वके नेत्र लाल हो गये, उनका अमित रुद्ररूप देखकर ऋषिपली सहम गयी ।

'देव !' वह कुछ और कहने ही जा रही थी कि कण्वने प्रगाथकी पीठपर पद प्रहार किया । ऋषिकुमारकी आँख खुल गयी । वह खड़ा हो गया । उसने कण्व ऋषिको प्रणाम किया ।

'आजसे तुम्हारे लिये इस आश्रमका दरवाजा बद है, प्रगाथ !' कण्व ऋषिकी वाणी क्रोधकी भयकर ज्ञालासे प्रज्वलित थीं, उनका रोम-रोम सिहर उठा था ।

‘मैया । आप तो मेरे पिताके समान हैं और ये तो साक्षात् मेरी माता हैं ।’ प्रगाथने ऋषिपिलीके चरणोंमें श्रद्धा प्रकटकर कण्ठका शङ्खा-समाधान किया ।

कण्ठ धीरे-धीरे स्वस्थ हो रहे थे, पर उनके सिरपर संशयका भूत अब भी नाच रहा था ।

‘ऋषिकुमार प्रगाथने सचं कहा है, देव ! मैंने तो आश्रममें पैर रखते ही उनका सदा पुत्रके समान पालन किया है । बड़े भाईकी पत्नी देवरको सदा पुत्र मानती है, इसको तो आप जानते ही हैं, पवित्र मारत देशका यही आदर्श है ।’ ऋषिपिलीने कण्ठका क्रोध शान्त किया ।

‘भाई प्रगाथ ! दोष मेरे नेत्रोंका ही है, मैंने महान् पाप कर डाला, तुम्हारे ऊपर व्यर्थ शङ्खा कर बैठा ।’

ऋषि कण्ठका शील समुत्तित हो उठा, उन्होंने प्रगाथका आलिङ्गन करके स्नेह-दान दिया । प्रगाथने उनकी चरण-धूलि मस्तकपर चढ़ायी ।

‘भाई नहीं, ऋषिकुमार प्रगाथ हमारा पुत्र है । ऋषिकुमारने हमारे सम्पूर्ण वात्सल्यका अधिकार पा लिया है ।’ ऋषिपिलीकी ममताने कण्ठका हृदय-स्पर्श किया ।

‘ठीक है, प्रगाथ हमारा पुत्र है । आजसे हम दोनों इसके माता-पिता हैं ।’ कण्ठने प्रगाथका मस्तक सूँधा ।

आश्रमकी पवित्रतामें नवीन प्राण भर उठा—जिसमें सत्य वचनकी गरिमा, निर्मल मनकी प्रसन्नता और हृदय-की सरलताका सरस सम्मिश्रण था ।—रा० श्री०

(वृहदेवता अ० ६ । ३५-३९)

सत्य-पालन

प्राचीन समयकी बात है । कुरुवशके देवापि और शन्तनुमें एक-दूसरेके प्रति स्वार्थ-त्यागकी जो अनुपम भावना थी, वह भारतीय इतिहासकी एक विशेष समृद्धि है ।

देवापि बडे और शन्तनु छोटे थे । पिताके सर्वगमनके बाद राज्याभिषेकका ग्रन्थ उठनेपर देवापि चिन्तित हो उठे । वे चर्मरोगी थे, उनके शरीरमें छोटे-छोटे श्वेत दाग थे । उनकी बड़ी इच्छा थी कि राज्य शन्तनुको मिले, इसीमें वे प्रजाका कल्याण समझते थे ।

× × ×

‘महाराज ! आपके निश्चयने हमारे कार्यक्रमपर वज्रपात कर दिया है । बड़े भाईके रहते छोटेका राज्याभिषेक हो, यह बात समाचीन नहीं है ।’ प्रधान मन्त्रीके स्वरमें स्वर मिलाकर प्रजाने करबद्ध निवेदन किया ।

‘आपलोग ठीक कहते हैं, पर आपको विश्वास होना चाहिये कि मैं आपके कल्याणकी बातमें कुछ भी कसी न रखूँगा । राजाका कार्य ही है कि वह सदा प्रजाका

हितचिन्तन करता रहे ।’ देवापिने छिपे तरीकेसे शन्तनुका पक्ष लिया ।

‘महाराज की जय ।’ प्रजा नतमस्तक हो गयी । शन्तनुके राज्याभिषेकके बाद ही देवापिने तप करनेके लिये वनकी ओर प्रस्थान किया । शन्तनु राज्यका काम सँभालने लगे ।

× × ×

‘प्रजा भूखों मर रही है । चारों ओर अकालका नगा नाच हो रहा है । महाराज देवापिके वनगमनके बाद बारह सालसे इन्द्रने तो मौन ही धारण कर लिया है । जल-वृष्टि न होनेसे प्राणिमात्र उद्धिग्न हो उठे हैं ।’ महाराज शन्तनुने प्रधान मन्त्रीका ध्यान अपनी ओर खींचा ।

‘पर यह तो भाग्यका फेर है, महाराज ! अनावृष्टिका दोष आपपर नहीं है और न इसके लिये प्रजा ही उत्तरदायी है ।’ प्रधान मन्त्री कुछ और कहना चाहते थे कि महाराजने बीचमें ही रोक दिया ।

‘हम प्रजासहित महाराज देवापिको मनाने जायँगे । राजा होनेके वास्तविक अविकारी तो वे ही हैं ।’ महाराज शन्तनुकी चिन्ता दूर हो गयी । प्रधान मन्त्रीने सहमति प्रकट की ।

× × ×

वास्तवमें जङ्गलमें मङ्गल हो रहा था । बन-प्रान्त नागरिकोंकी उपस्थितिसे प्राणवान् था ।

‘भैया ! अपराध क्षमा हो । हमारे दोषोंकी ओर ध्यान न दीजिये । सत्यका व्यतिक्रम करके मेरे राज्याभिषेक स्वीकार करनेपर और आपके बनमें आनेपर सारा-का-सारा राज्य भयंकर अनावृष्टिका शिकार हो चला है । आप हमारी रक्षा कीजिये ।’ शन्तनुने कुर्दीसे बाहर निकलनेपर देवापिके चरण पकड़ लिये ।

‘भाई ! मैं तो चर्मरोगी हूँ, मेरी लचा दूषित है । मुझमें रोगके कारण राजकार्यकी शक्ति नहीं थी, इसलिये

प्रजाके कल्याणकी वृद्धिसे मैंने बनका रास्ता लिया था— यह सत्य वात है । पर इस समय अनावृष्टिके निवारणके लिये तथा वृहस्पतिकी प्रसन्नताके लिये मैं आपके वृष्टिकाम-यज्ञका पुरोहित बनूँगा ।’ देवापिने महाराज शन्तनुको गले लगा लिया । प्रजा उनकी जय बोलने लगी ।

× × ×

तपस्वी देवापि राजधानीमें लौट आये । उनके आगमनसे चारों ओर आनन्द छा गया । दोनों भाइयोंके सत्यपालनसे अनावृष्टि समाप्त हो गयी । यज्ञकी काली-काली धूम-रेखाओंने गगनको आच्छादित कर लिया । वृहस्पति प्रसन्न हो उठे । पर्जन्यकी कृपा-वृष्टिसे नदी, तालाब, वृक्ष और खेतोंके प्राण लौट आये । देवापिने अपने सत्यव्रतसे प्रजाकी कल्याण-साधना की ।—रा० श्री० (वृहदेवता अ० ७ । १५५-५७; अ० ८ । १-६)

—ॐ श्रीकृष्ण—

उपासनाका फल

सोमं सुत्वात्र संसारं सारं कुर्वात तत्त्ववित् ।
यथाऽसीत् सुत्वचाऽपाला दत्त्वेन्द्राय मुखञ्च्युतम् ॥
(नीतिमञ्जरी १३०)

महर्षि अत्रिका आश्रम उनकी तपस्याका पवित्र प्रतीक था । चारों ओर अनुपम शान्ति और दिव्य आनन्दकी वृष्टि निरन्तर होती रहती थी । यज्ञकी धूमशिखाओं और वेद-मन्त्रोंके उच्चारणसे आश्रमके कण्ठमें रमणीयताका निवास था । महर्षि आनन्दमन्तर रहकर भी सदा उदास दीख पड़ते थे । उनकी उदासीकां एकमात्र कारण थी अपाला । वह उनकी स्नेहसित्ता कहन्या थी । चर्मरोगसे उसका शरीर विगड़ गया था । श्वेत कुष्ठके दागोंसे उसकी अङ्ग-कान्ति म्लान दीखती थी । पतिने इसी रोगके कारण उसे अपने आश्रमसे निकाल दिया था, वह बहुत समयसे अपने पिताके ही आश्रममें रहकर समय काट रही थी । दिन-प्रति-दिन उसका यौवन गलता जा रहा था; महर्षि अत्रिके

अनन्य स्नेहसे उसके प्राणकी दीप-शिखा प्रकाशित थी । चर्मरोगकी निवृत्तिके लिये अपालाने इन्द्रकी शरण ली । वह बड़ी निष्ठासे उनकी उपासनामें लग गयी । वह जानती थी कि इन्द्र सोमरससे प्रसन्न होते हैं । उसकी हार्दिक इच्छा थी कि इन्द्र प्रत्यक्ष दर्शन देकर सोम खीकार करें ।

× × ×

‘कितनी निर्मल चाँदनी है । चन्द्रमा ऐसा लगता है मानो उसने अभी-अभी अमृतसागरमें स्नान किया है या कामधेनुके दूधसे ऋषियोंने उसका अभिषेक किया है ।’ सरोवरमें स्नानकर अपालाने जलसे भरा कलश कंघेपर रख लिया, वह प्रसन्न थी;—रातने अभी पहले पहरमें ही प्रवेश किया था—वह आश्रमकी ओर चली जा रही थी ।

‘निस्संदेह आज इन्द्र मुझसे बहुत प्रसन्न हैं,

मुझे कला सर्वत्व मिल गया ।' उसने रात्तेमें सोमलता देखा और पराह्नके लिये दौँतोंसे लगाते ही सोमाभिष्वव सन्धन हो गया, उसके दौँतसे सोमरस-कण पृथ्वीपर गिर पड़े । सोमलता-प्राप्तिसे उसे महान् आनन्द हुआ । उसकी तस्या सोमलताके रूपमें मूर्तिमत्ती हो उठी । अगलने रात्तेमें ही एक दिव्य पुरुषका दर्शन किया ।

'मैं सोनगनके लिये घर-ब्रह्म बूमता रहता हूँ । काज इस समय तुम्हारी सोमाभिष्वव-क्रियासे मैं अपने जाप छला आया ।' दिव्य स्वर्णरथसे उत्तरब्रह्म इन्हने अगला परिचय दिया । देवराजने सोमगत किया । उन्होंने त्रुपिके सरमें बदान माँगनेकी प्रेरणा दी ।

'आपकी प्रसन्नता ही मेरी इच्छा-पूर्ति है। उपास्यका दर्शन हो जाय, इससे बढ़कर दूसरा सौभाग्य ही क्या है ?' ब्रह्मवादिनी ऋषिकन्याने इन्द्रकी स्तुति की ।

'सच्ची भक्ति कभी निष्फल नहीं होती है, देवि !' इन्हने अपालाको पकड़कर अपने रथ-छिद्रसे उसे तीन बार निकाला । उनकी वृणसे चर्मरोग दूर हो गया, वह सूर्यकी प्रभा-सी प्रदीप हो उठी । ऋषि अत्रिने कन्याको आशीर्वाद दिया । अपाल अपने पति के घर गयी । उपासनाके फलस्वत्प उसका दाम्पत्य-जीवन सरस हो उठ । —राठ श्री ।

(वृहदेवता अ० ६ । ९९-१०६)

योग्यताकी परस्य

यज्ञकी धूम-चिराओंसे गगन आच्छादित हो गया; उसकी निर्मल और सच्च नीलिमामें विशेष दीप्ति अभिव्यक्त हो उठी । महाराज रथवीति दार्थकी राजधानी यज्ञकर्ता ऋषियोंकी उपस्थितिसे परन पत्रित हो गयी । वे अपनी राजमहिंसी और नन्दोरन्य कन्याके साय यज्ञवेदीके ही सर्वार आसनस्थ थे ।

'क्रितनी सुर्वाल और लाव्यमधी कन्या है !' अत्रिके पुत्र ऋषि अर्चनानाने यज्ञ-कुण्डमें वैदिक मन्त्रोंसे आहुति ढालते हुए मनमें विचार किया । उनकी व्येत दाढ़ीकी दुःख-धन्वन्तिनामें नवीन आमा लहराने ली । उन्होंने वेद-वेदाङ्गमें याज्ञन अपने पुत्र इयावाश्वकी ओर धृष्टिपान किया; ऋषिकुनारमें यौवनका निखार था, नयनोंमें चालिकता थी, हृदयमें श्रद्धा और भक्ति थी ।

'मैं अपनी पुत्रवृक्ते रूपमें लापकी कन्याकी वाचना करता हूँ, महाराज !' अर्चनानाके गम्भीर मालणसे ऋषि-मण्डली चकित थी । जनना वित्तय-मूल हो गयी ।

'यह तो आर्का बहुत बड़ी कृपा है; मेरी कन्याके लिये इससे बढ़कर सौभाग्यकी दूसरी बात क्या होगी कि वह महर्षि लक्ष्मीके लाग्नमें निवास करेगी ?'

महाराज रथवीतिने अर्चनानाके प्रति श्रद्धा व्यक्त की । राजकन्याने नीची दृष्टिसे ऋषिकुमार इयावाश्वको देखा, मानो वह संक्रेत कर रही थी कि मेरा मस्तक आपके चरणपर नत होनेके लिये समुत्सुक है ।

'पर हमारा कुल राजर्षियोंका है, हम अपनी कन्या मन्त्रदर्शी ऋषिको ही सौंप सकते हैं, महर्ष !' राजमहिंसीने प्रस्ताव अस्तीकार किया ।

X X X

'जिताजी ! मैं अपनी कुल-योग्यता सिद्ध करनेके लिये ऋषिपद प्राप्त करूँगा, मेरे लिये राज-कन्या उतने महत्वकी वस्तु नहीं है, जितने महत्वका विषय ऋषिपद है । यह प्रधान है, वह गौण है ।' इयावाश्वने अर्चनानाकी चरण-धूलि ली । उसका प्रण था कि बिना ऋषिपद प्राप्त किये आश्रममें न जाऊँगा । अर्चनाना चले गये । इयावाश्व ब्रह्मचर्यपूर्वक मिथा माँगकर पर्यटन करने लगे ।

रात्तेमें महाराज विदेश्वके पुत्र तरन्त और राजमहिंसी शशीयसी तथा तरन्तके छोटे भाई पुरुमीद़ने ऋषिकुमारका अपनी राजधानीमें ल्लागत-सल्कार किया,

बहुत-सी गायें ढीं, अमर धन प्रदान कर व्याजशक्ति
पूजा की।

‘पर अमी तो मैंने मन्त्रका दर्शन ही नहीं किया।’
अवास्था आश्रममें न जा सका। वह बहमें विचरण कर
रहा था कि उसकी स्वयनिष्टासे प्रसन्न होकर तद्युपत्र
महाराजोंने उसको दर्शन दिया। उनकी कृपासे उसने
मन्त्रदर्शी ऋषिपद प्राप्त किया। महाराजोंने रक्षमाला दी।

X X X

‘जह तो हमारे लिये परम सौमाण्यकी वात है कि

मेरी कन्या आपके पौत्रकी जीवन-सङ्ग्रही हो रही है।’
इसे उत्तरेपर आश्रममें अत्रि ऋषिकी राजा रथर्वाति
और राजमहिमीने पूजा की, मधुपर्क समर्पित किया।

स्यावस्त्र और उसकी वधूने महर्षि अत्रिकी वन्दना
की। अर्चनानाका आर्चिर्वात प्राप्त किया। अवास्थाने
वेदमिता^{*} और राजकन्याने वेदमानाका पठ पाया।
महाराज रथर्वातिने हिमाल्यग्रदेशमें गोमती-नद्यर तपस्या
करनेके लिये प्रस्थान किया। —२० श्री०

(वृद्धेवता अ० ५। ५०-८१)

सम-वितरण

विमञ्च भुज्ञते सन्तो भव्यं प्राप्य सहायिना।
चतुरश्चमसान् कृत्वा तं सोमनृभवः पपुः॥

(नीतिमङ्गली १०)

सुवन्नाके पुत्र क्रमु. विसु और वाज लक्ष्मीके निशेष
कृपापात्र थे। लक्ष्मीने उन्हें अपनी समस्त विद्याओंमें
सम्पन्न कर दिया। उनके सत्कर्मकी चर्चा देवोंमें
प्राप होनी रहती थी। उन्होंने वृहस्त्यनिको अमृत तथा
अश्विनीकुमारोंको दिव्य त्य और इन्द्रको वाहनमें
संतुष्ट कर उनकी प्रसन्नता प्राप्त की थी। वेदमन्त्रोंसे
वे देवोंका समस्समयमर आवाहन लेते रहते थे।
देवोंको सोमका भाग देकर वे अपने सत्कर्मसे देवताकी
ओर बढ़ रहे थे।

X X X

ऋग्मुओंने लक्ष्मीनिर्भिन्न सोमपानका आयोजन किया।
सामवेदके सरस मन्त्रोच्चारणसे उन्होंने सोमाभिष्व
प्रारम्भकर उसे चन्सामें रखा ही था कि सहसा

उन्हींके आकार-प्रकार, खप-रंग और वर्गस्के एक प्राणी
दीख पड़े। ऋग्मुओंको वडा आश्र्वय हुआ।

‘वृमसके चार भाग करने चाहिये।’ ज्येष्ठ पुत्र
क्रमुने आदेश दिया। उनकी आजाका तत्क्षण पालन
हुआ विश्वा और वाजके द्वारा।

‘अतिथिका सकार वरना हमाग परम वर्म हैं,
आप कोई भी हों। हमलोगोंने आपको सम भागका
अविकारी माना है।’ ऋग्मुओंने सोमपानके लिये अज्ञात
पुरुषने प्रार्थना की।

‘देवगग आपसे प्रसन्न हैं, ऋग्मुओं। मुझे इन्द्रने
आपकी परीक्षाके लिये भेजा था। आपलोग संत हैं।
आपने अतिथि-वर्मका पालन करके अपना गोत्र पवित्र
कर दिया।’ अग्नि प्रकट हो गये। उन्होंने सोमका
चौथा भाग ग्रहण किया। इन्द्रने भी सोमका भाग प्राप्त
किया। प्रजापतिने उन्हें अमरता प्रदान की। वे अपने
शुभकर्मसे देवता हो गये। —२० श्री०

(वृद्धेवता अ० ३। ८३-९०)

* मन्त्रदर्शी ऋषिवेदमिता कहा जाता है और उसकी पर्णी वेदमाता, वेदमन्त्रा कहलाती है।

† सोमस्स धारण वरनेवाले काष्ठपात्र-विचेषका नाम चमत है।

महान् कौन है ?

एक बार देवर्षिके मनमें यह जाननेकी इच्छा हुई कि जगत्में सबसे महान् कौन है। उन्होंने सोचा कि चलूँ भगवान्‌के पास ही। वहाँ इसका ठीक-ठीक पता लग सकेगा। वे सीधे वैकुण्ठमे गये और वहाँ जाकर प्रभुसे अपना मनोमाव व्यक्त किया।

प्रभुने कहा—नारद ! सबसे बड़ी तो यह पृथ्वी ही दीखती है; पर वह समुद्रसे धिरी हुई है, अतएव वह भी बड़ी नहीं है। रही बात समुद्रकी, सो उसे अगस्त्य मुनि पी गये थे, अतः वह भी बड़ा कैसे हो सकता है। इससे तो अगस्त्यजी सबसे बड़े हो गये। पर देखा जाता है कि अनन्ताकाशके एक सीमित सूचिका-सदृश भागमे वे केवल एक खद्योत्तब्द—जुगनूकी तरह चमक रहे हैं, इससे वे भी

बड़े कैसे हो सकते हैं ? अब रहा आकाशविषयक प्रश्न। प्रसिद्ध है कि भगवान् विष्णुने वामनावतारमे इस आकाशको एक ही पगमे नाप लिया था, अतएव वह भी उनके सामने अत्यन्त नगण्य है। इस दृष्टिसे भगवान् विष्णु ही सर्वोपरि महान् सिद्ध होते हैं। तथापि नारद ! वे भी सर्वाधिक महान् हैं नहीं, क्योंकि तुम्हारे हृदयमे वे भी अङ्गुष्ठमात्र स्थलमे ही सर्वदा अवरुद्ध देखे जाते हैं। इसलिये भैया ! तुमसे बड़ा कौन है ? वास्तवमे तुम ही सबसे महान् सिद्ध हुए—

पृथ्वी तावदतीव विस्तृतिमती तद्वेष्टनं वारिधिः
पीतोऽसौ कलशोऽह्वेन मुनिना स व्योम्नि खद्योत्तब्दं ।
तद्व्यासं दनुजाधिपस्य जयिना पादेन चैकेन खं
तं त्वं चेतसि धारयस्यविरतं त्वत्तोऽस्ति नान्यो महान् ॥

—जा० श०

भक्तका स्वभाव

प्रह्लादने गुरुओंकी बात मानकर हरिनामको न छोड़ा, तब उन्होंने गुस्सेमे भरकर अग्निशिखाके समान प्रज्वलित शरीरवाली कृत्याको उत्पन्न किया। उस अत्यन्त भयकर राक्षसीने अपने पैरोंकी चौटसे पृथ्वीको कॅपाते हुए वहाँ प्रकट होकर बड़े क्रोधसे प्रह्लादजीकी छातीमे त्रिशूलसे प्रहर किया, किंतु उस बालकके हृदयमे लगते ही वह अलझलाता हुआ त्रिशूल टुकडे-टुकडे होकर जमीनपर गिर पड़ा। जिस हृदयमे भगवान् श्रीहरि निरन्तर प्रकटरूपसे विराजते हैं, उसमें लगनेसे वज्रके भी दूक-दूक हो जाते हैं, फिर त्रिशूलकी तो बात ही क्या है ?

पापी पुरोहितोंने निष्पाप भक्तपर कृत्याका प्रयोग किया था, बुरा करनेवालेका ही बुरा होता है, इसलिये कृत्याने उन पुरोहितोंको ही मार डाला। उन्हे मारकर वह स्वयं भी नष्ट हो गयी। अपने गुरुओंको कृत्याके द्वारा जलाये जाते देखकर महामति प्रह्लाद ‘हे कृष्ण ! रक्षा करो ! हे अनन्त ! इन्हें बचाओ !’ यों कहते हुए उनकी ओर दौड़े।

प्रह्लादजीने कहा—‘सर्वव्यापी, विश्वरूप, विश्व-

स्था जनार्दन ! इन ब्राह्मणोंकी इस मन्त्राग्रिरूप भयानक विपत्तिसे रक्षा करो। यदि मैं इस सत्यको मानता हूँ कि सर्वव्यापी जगद्गुरु भगवान् सभी प्राणियोंमे व्याप्त हैं तो इसके प्रभावसे ये पुरोहित जीवित हो जायें। यदि मैं सर्वव्यापी और अक्षय भगवान्‌को अपनेसे वैर रखनेवालोंमे भी देखता हूँ तो ये पुरोहितगण जीवित हो जायें। जो लोग मुझे मारनेके लिये आये, जिन्होंने मुझे जहर दिया, आगमे जलाया, बड़े-बड़े हाथियोंसे कुचलवाया और सौंपोंसे डँसवाया, उन सबके प्रति यदि मेरे मनमें एक-सा मित्रभाव सदा रहा है और मेरी कभी पाप-बुद्धि नहीं हुई है तो इस सत्यके प्रभावसे ये पुरोहित जीवित हो जायें।’

यों कहकर प्रह्लादने उनका स्पर्श किया और स्पर्श होते ही वे मरे हुए पुरोहित जीवित होकर उठ बैठे और प्रह्लादका मुक्तकण्ठसे गुणगान करने लगे। —सु० सिं०

निष्कामकी कामना—इक्कीस पीढ़ियाँ तर गर्याँ

हिरण्यकशिपु जब स्वयं प्रह्लादको मारनेके लिये उद्यत हुआ और क्रोधावेगमें उसने सामनेके खंभेपर बूसा मारा तब उसी खंभेको फाड़कर नृसिंहभगवान् प्रकट हो गये और उन्होंने हिरण्यकशिपुको पकड़कर नखोंसे उसका पेट फाड़ ढाला । दैत्यराजके अनुचर प्राण लेकर भाग खड़े हुए । हिरण्यकशिपुकी आँतोंकी माला गलेमें ढाले, बार-बार जीभ लपलपाकर त्रिकट गर्जना करते अङ्गार-नेत्र नृसिंहभगवान् बैठ गये दैत्यराजके सिंहासनपर । उनका प्रचण्ड क्रोध शान्त नहीं हुआ था ।

शकरजी तथा ब्रह्माजीके साथ सब देवता वहाँ पवारे । सबने अलग-अलग स्तुति की । लेकिन कोई परिणाम नहीं हुआ । ब्रह्माजी डरे कि यदि प्रमुका क्रोध शान्त न हुआ तो पता नहीं क्या अनर्थ होगा । उन्होंने भगवती लक्ष्मीको भेजा, किंतु श्रीलक्ष्मीजी भी वह त्रिकराल रूप देखते ही लौट पड़ीं । उन्होंने भी कह दिया—‘इतना भर्यकर रूप अपने आराध्यका मैंने कभी नहीं देखा । मैं उनके समीप नहीं जा सकती ।’

अन्तमें ब्रह्माजीने प्रह्लादसे कहा—‘वेदा ! तुम्हीं समीप जाकर भगवान्को शान्त करो ।’

प्रह्लादको भय क्या होता है, यह तो ज्ञात ही नहीं था । वे सहजभावसे प्रभुके सम्मुख गये और दण्डवत् प्रणिपात करते भूमिपर लौट गये । भगवान् नृसिंहने स्वयं उन्हें उठाकर गोदमें बैठा लिया और चात्सल्यके मारे जिहासे उनका मस्तक चाटने लगे । उन त्रिभुवन-नाथने कहा—‘वेदा ! मुझे क्षमा कर । मेरे आनेमें बहुत देर हुई, इससे तुझे अत्यधिक कष्ट भोगना पड़ा ।’

शरीरमें अनासक्त भगवद्धक्तको कहीं भय नहीं

- महात्मा जडभरत तो अपनेको सर्वया जड़की ही भाँति रखते थे । कोई भी कुछ काम बतलाता तो कर देते ।
- वह बदलेमें कुछ भोजन दे देना तो उसे खा लेते ।
- नहीं देता तो भी प्रसन्न बने रहते । भोजनमें कौन

प्रह्लादने गोदसे उत्तरकर हाथ जोड़कर श्रद्धापूर्ण गद्द-स्वरमें प्रार्थना की । भगवान् ने कहा—‘प्रह्लाद ! मैं प्रसन्न हूँ । तेरी जो इच्छा हो, वह बदान माँग ले ।’

प्रह्लाद बोले—‘प्रभो ! आप यह क्या कह रहे हैं ? जो सेवक कुछ पानेकी आडासे स्थामीकी सेवा करता है, वह तो मेरेक ही नहीं है । आप मेरे परमोदार स्थामी हैं और मैं आपका चरणाश्रित सेवक हूँ । यदि आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो यही बदान दें कि मेरे मनमें कभी कोई कामना हो ही नहीं ।’

भगवान् सर्वज्ञ है । उन्होंने ‘एवमस्तु’ कहकर भी कहा—‘प्रह्लाद ! कुछ तो माँग ले ।’

प्रह्लादने सोचा—‘प्रभु जब मुझसे बार-बार माँगनेको कहते हैं तो अवश्य मेरे मनमें कोई-न-कोई कामना है ।’ अन्तमें उन्होंने प्रार्थना की—‘नाथ ! मेरे पिताने आपकी बहुत निन्दा की है और आपके सेवक—मुझको कष्ट दिया है । मैं चाहता हूँ कि वे इस पापमे घृणकर पवित्र हो जायें ।’

भगवान् नृसिंह हँस पड़े—‘प्रह्लाद ! तुम्हारे-जैसा भक्त जिसका पुत्र हुआ वह तो स्वयं पवित्र हो गया । जिस कुलमें तुम-जैसे मेरे भक्त उत्पन्न हुए, उस कुलकी तो इक्कीस पीढ़ियाँ तर गर्याँ ।’

अपनेको कष्ट देनेवालेकी भी दुर्गनि न हो, यह एक कामना थी प्रह्लादके मनमें । धन्य है यह कामना । सच्चे भगवद्धक्तमें अपने लिये कोई कामना भला शेष कैसे रह सकती है । (श्रीमद्भगवत् ७ । ९-१०)

क्या देता है, यह जैसे उन्हें पता ही नहीं लगता । कोई अच्छा भोजन दे, सूखी गेटी दे, जला भान दे या और कुछ दे—अरे वे तो भ्रसी, चावलकी जली खुरचन भी अमृतकी भाँति खा लिया करते थे । सर्दी हो या

गरमी, वर्षा हो या सूखा—वे सदा न गे शरीर अलमस्त घूमते रहते। भूमिपर, खेतमें, मेडपर, जहाँ निद्रा आयी सो गये। ऐसे व्यक्तिसे खच्छता, सुसंगत व्यवहारकी आशा कोई कैसे करे। मैला-कुचैला जनेऊ कमरमे लपेट रखा था, इसीसे पहचाने जाते थे कि द्विजाति है। माता-पिताकी मृत्युके बाद सौतेले भाइयोंसे पालन-पोषण प्राप्त हो, इसकी अपेक्षा नहीं थी और अपना भी कहीं कुछ खत्त हो सकता है, यह उस दिव्य मनमे आ ही नहीं सकता था। लोगोंको इतना सस्ता मजदूर भला, कहाँ मिलता। भरतको तो किसीकी भी आज्ञाको अखीकार करना आता ही न था।

भाइयोंने देखा कि जडभरत औरेका काम करके उनका दिया भोजन करते हैं तो कुख्याति होती है, अतः उन्होंने जडभरतको अपने ही खेतपर रखवालीके लिये बैठा दिया। भरत खेतकी रखवालीको बैठ तो गये, किंतु अपना खेत, पराया खेत वे क्या जानें और रखवालीमे खेतपर बैठे रहनेके अतिरिक्त भी कुछ करना है, इसका उन्हे क्या पता। हाँ, वे खेतपर बैठे अवश्य रहते थे। अंधेरी रातमें भी वे खेतकी मेडपर जमे बैठे ही रहते थे।

उसी समय कोई शूद्र सरदार देवी भद्रकालीको पुत्र-ग्रासिकी इच्छासे मनुष्य-बलि देना चाहता था। उसने बलिके लिये मनुष्य प्राप्त कर लिया था, किंतु ठीक बलिदानकी रात्रिमें वह मनुष्य किसी प्रकार भाग गया। उस सरदारके सेवक उस मनुष्यको छँडने निकले रात्रिमें। उन्हे वह मनुष्य तो मिला नहीं, खेतकी रखवाली करते जडभरत मिल गये। चिन्ता-शोकसे सर्वथा रहित होनेके कारण जडभरतका शरीर खूब मोटा-तगड़ा था। शूद्र सरदारके सेवकोंने देखा कि यह बलिके लिये अच्छा पशु है, बस, वे प्रसन्न हो गये। रस्सियोंसे जडभरतको बौधकर देवीके मन्दिरमें उन्हें ले गये।

‘हम तुम्हारी पूजा करेंगे।’ शूद्र सरदार भी प्रसन्न हुआ। जडभरत-जैसा मोटा व्यक्ति बलिदानके लिये मिलनेसे विशेष सुविधा यह थी कि यह ऐसा व्यक्ति था जो किसी प्रकारका भी विरोध नहीं कर रहा था।

‘अच्छा, पूजा करो।’ जडभरतको तो सब बातें पहलेसे खीकार थीं।

‘तुम भरपेट भोजन वर लो।’ सरदारने नाना प्रकारके व्यञ्जन सामने रखे।

‘अच्छा, भोजन करेंगे।’ भरतने डटकर भोजन किया।

‘हम तुम्हारा बलिदान करेंगे।’ भली प्रकार पूजन करके सरदारने भरतको देवीके सम्मुख खड़ा किया और हाथमें अभिमन्त्रित तलवार ली।

‘अच्छा, बलिदान करो।’ भरतके लिये तो मानो यह भी भोजन या पूजन-जैसी ही कोई किया थी।

शूद्र सरदारने तलवार उठायी; किंतु भगवद्वक्ता आत्मज्ञानीका बलिदान ले सकें, इतनी शक्ति देवी भद्रकालीमें भी नहीं है। उनकी मूर्तिके सम्मुख, उनके निमित्त ऐसे शरीरातीत परम भागवतका मस्तक कटे—कदाचित् इससे पहले उनका स्वयका अस्तित्व सदिग्ध हो जायगा। यह कल्पना नहीं है, स्वय देवी भद्रकालीको यही प्रतीत हुआ। उनका शरीर भस्म हुआ जा रहा था। क्रोधके मारे अद्वैहास करती वे आधे पलमे प्रकट हो गयीं और शूद्र सरदारके हाथकी तलवार छीनकर सरदार और उसके सेवकोंका मस्तक उन्होंने एक झटकेमें उड़ा दिया। अपने गणोंके साथ आवेशमें वे उनका रक्त पीने लगीं, उनके मस्तकोंको उछालने और नृत्य करने लगीं।

जडभरत—वे परम तत्त्वज्ञ असङ्ग महापुरुष, उनके लिये जैसे अपनी मृत्युका कुछ अर्थ ही न था, वैसे ही भद्रकालीकी क्रीड़ा भी एक कौतुकमात्र थी। वे चुपचाप वहाँसे चले गये। —सु० सिं० (श्रीमद्भागवत ५।९)

समस्त लौकिक-पारलौकिक सुखोंकी प्राप्तिका साधन भगवद्-भक्ति

बान आजर्णा नहीं, युष्मिके प्राग्मनके नयनयुगर्णी हैं। मनुके दो पुत्र थे—प्रियव्रत और उत्तानपाद। इनमें उत्तानपाद नरेण्ठ हृषि। उनकी दो गतियाँ थीं; किंतु अपर्ना वडी गर्ना मुर्नानिष्ठ नरेण्ठका ग्रेम कम ही था। वे शोर्धी गर्ना सुरुचिके वथा हो रहे थे। एक दिन वडी गर्नीका पुत्र ध्रुव नेत्रना आगा और पिनाकी गोदमें वैठगय। शोर्धी गर्नी वडी थीं, उनसे यह नहा नहीं गया। उन्होंने पौँच वर्षके बालक कुछको हाथ पकड़कर नरेण्ठको गोदमें नीचे उतार दिया और ज़िड़कर बोर्ड—‘यह आगमन में पुत्र उत्तमका है। नुअं यहाँ बैठना हो तो भगवानका भजन करके भेरे गर्मी में जन्म ले।’

वडी कर्जी बान थी। नन्हे बालको कहा जा रहा था कि ‘पिनाकी गोद या निहामनगर बैठनेके लिये मग्ना होगा और किस विमानाके गर्मी में उत्तम होना होगा। पिनाने भी बालकके अपमानको गेका नहीं। ध्रुव अन्तनः सप्ताद्युक्ता कुमार था, अगमनमें क्षुब्ध गेना हुआ चढ़ पड़ा बद्दोंमें। नहा बालक यहाँ जाय? माना ही एकमात्र उसका आश्यस्थान ढहरा।

पिनियम-वृद्धिना गर्ना मुर्नानिने हृष्यग्र पल्या गवर्म सत्र मुना। पुत्रकों आर्नाने उग्राहर गेनी हृषि वे बोर्ड—‘विद्य! मुझ अभागिनीके गर्मने जन्म लेकर सत्रमुच तुम भाग्यहीन हो गये हों, लेकिन तुम्हारी विमानाने तुम्हारे अपमानके लिये जो बान कर्जी है, सर्वा बान वर्जी है। सत्रमुच यहि तुम उनके पुत्र उत्तमकी भौति महागवको सिंहामनपर बैठना चाहते हों तो पद्मपद्माग्रांचन श्रीहर्षिके चण्डोंकी आगवना करो। तुम्हारे पिनामह मनुने उन नागयशकों आगवनामें ही श्रेष्ठ पद पाया। भगवान् ब्रह्म श्रीहर्षिकी कृपामें ही व्रद्यन्तकों भयिन करने हैं। समन्त लौकिक-पारलौकिक सुखोंकी प्राप्तिका भावन भगवद्-भक्ति ही है।

बालक ध्रुवको जैसे मार्ग मिठ गया। उन्हें पता नहीं था कि भगवान जीन है, उनकी भक्ति कैसे होनी है, किंतु वे मानाको प्रणाम करके घरमें निकल पड़ अकेले बनके मार्गमें। ध्रुवको कुछ पता हो या न हो, ध्रुव जिसे पाने निकले थे, उसे तो सब पता रहता है। कोई सत्रमुच उसे पाने चले और उसे मार्ग न मिल, यह नम्मम नहीं है। भगवान नागयशके मनके ही अग्र हैं देवर्पि नागदजी, ध्रुवके बनमें पहुँचने-न-पहुँचने वीणा वजाने वे उनके समुख मार्गमें आ गए हैं।

बालक ध्रुवने देवर्पिको प्रणाम किया। देवर्पिने उनके मनुकपर हाथ रखा, पुत्रकाग और मव बानें पूछकर समझाया—‘अमीं तो तुम बच्चे हों। बालकोंका क्या अपमान और क्या सम्मान। वर लौड़ चलो, मैं तुम्हारे पिनाको समझा देना हूँ। यह नपम्या और उपासनाका मार्ग बड़ा कठोर है। सुमय आयेगा, वडे होंगे और तुम और नव यह सब भी कर लेंगे।’

ध्रुव बच्चे थे, किंतु कल्पे नहीं थे। उनका निश्चय तो सप्ताद्युक्ताका निश्चय था। वडी नप्रतामें उन्होंने निवेदन किया—‘मुझे तो ऐसा पद चाहिये जो मेरे पिता, पिनामह या अंग किमीको भी नहीं मिला है। ऐसा पद भी मुझे प्राप्त करना है क्योंकि श्रीहर्षिमें। आपने कृपा करके दर्यन दिया है तो अब इस उद्देश्यकी मिहिका भावन भी बना दीजियं।’

देवर्पि प्रसन्न हो गये इम ढहनामे। उन्होंने कहा—‘तुम्हारी भावनाने तुम्हें दीक भार्ग वनवाया है। किमीको कोई पुष्ट्यार्थ अभीष्ट हो—उसकी प्राप्तिका भर्वत्तम साधन नागयशकमानकी आगवना ही है।’ देवर्पिने कृपा करके द्रष्टव्याकुर मन्त्रका उपदेश किया, मथुरा जाकर भगवानकी पूना करनेका आदेश दिया।

माथाकी गति आया-जैसी धरे चर्दे तो धार्वे। पीठ केर जो त्याग चर्दे तो पांड-पांड आवै॥

कहाँ तो महाराज उत्तानपाद ध्रुवको गोदमेसे हटाये जानेपर चुप वैठे रहे और कहाँ अब वे ही ध्रुवके बनमे जानेके समाचारसे अत्यन्त व्याकुल हो उठे। उन्हे भूख-प्यास और निद्रा भी भूल गयी। ध्रुव लौटे तो उन्हे सर्वस्त्र दे दे, यहीं सोचने लगे। देवर्षि नारद ध्रुवको मथुरा भेजकर महाराजके पास आये और उन्हे आश्वासन दिया।

ध्रुव मधुवनमे पहुँचे। यमुना-न्नान करके वे देवर्षिके उपदेशके अनुसार मन्त्र-जप तथा भगवद्ध्यानमे जुट गये। एक महीने उन्होंने तीन दिनके अन्तरसे एक बार बेर और कैथ खानेका नियम बनाया। दूसरे महीने वे प्रति छठे दिन सूखे तृण तथा वृक्षसे अपने-आप गिरे पत्ते खाकर रहे। तीसरे महीने नौ दिनके अन्तरसे एक बार केवल जल पी लेते थे और चौथे महीने तो बारह दिन बीतनेपर एक बार श्वास लेना मात्र उनका व्रत बन गया। चौथा महीना वीता और ध्रुवने श्वास लेना भी बद कर दिया। एक पैरसे निश्वल, निस्पन्द खड़ा अखण्ड ध्यानमग्न था वह क्षत्रियकुमार।

बादल गरजे, बिजली टूटी, ओले पडे, सिंह और अजगर दहाड़ते-फुंकारते आये—व्यर्थ था मायाका यह सब प्रपञ्च। ध्रुव तो ऐसे दृढ़ शैल थे कि उसपर मस्तक पटककर मायिक प्रपञ्च खंयं नष्ट हो जाते थे। अन्तमें माता सुनीतिका रूप बनाकर माया पुकारती आयी—‘वेदा ध्रुव ! लौट चल ! लौट चल, बेटा !’ पर ध्रुवके बद पलक न हिले, न हिले।

देवता छटपटा रहे थे। वे प्रत्येक देहमे हैं, ध्रुवके दृढ़ प्राणनिरोधके कारण उनका दम धुटा जा रहा था और ध्रुव उनकी पहुँचसे परे पहुँच चुके थे। उनका कोई उद्योग ध्रुवके ध्यानको कम्पिततक करनेमे समर्थ नहीं था। अन्तमे सब देवता ‘त्राहि त्राहि’ करते भगवान्

नारायणकी शरण पहुँचे। भगवान्‌ने उन्हें आश्वासन दिया और स्वय गरुडपर बैठकर ध्रुवको कृतार्थ करने मधुवन पधारे।

त्रिलोकीके नाथ समुख खडे हैं, किंतु ध्यानमग्न ध्रुवको इसका पता तक नहीं। भगवान्‌ने ध्रुवके हृदयसे अपनी मूर्ति अदृश्य कर दी। व्याकुल होकर ध्रुवने नेत्र खोले और चकित देखते रह गये। हाथ जोड़ लिये किंतु कहे क्या, बहुत इच्छा है स्तुति करनेकी, पर स्तुति करनी आती नहीं। सर्वज्ञ प्रभु हँस पडे, अपने निखिलब्रेदमय शंखका बालकके कपोलसे स्पर्श कर दिया। सरस्वती जाग्रत् हो गयीं, वाणी खुल पडी, ध्रुव स्तुति करने लगे।

स्तवनके पश्चात् प्रभुने कहा—‘वेदा ध्रुव ! जिस पदको तुम्हारे पिता या पितामहतकने नहीं पाया है, जिसे और भी कोई नहीं पा सका है, वह ध्रुवलोक तुम्हारा है। अभी तो तुम घर जाओ। पिताके बाद पैतृक सिंहासनको भूमित करना। धराका राज्य भोगकर यहाँका समय समाप्त होनेपर तुम सशरीर उस मेरे दिव्य लोकमे निवास करोगे। सप्तर्षि तथा समस्त तारक-मण्डल उस लोककी प्रदक्षिणा किया करेंगे।’

भगवत्कृपा पाकर ध्रुव लौटे। उनके लौटनेका समाचार देनेवालेको महाराज उत्तानपादने अपने कण्ठ-का रक्षार उपहारमे दे दिया। माता सुनीतिके हर्षकी बात तो क्या कोई कहेगा, प्रसन्नताके मारे पूरा आशीर्वाद तो नहीं दे सकीं ध्रुवको तिरस्कृत करनेवाली रानी सुरुचि। ध्रुवके प्रणाम करनेपर गद्गद स्वरसे उन्होंने कहा—‘चिरञ्जीवी हो पुत्र !’ महाराजने समारोहके साथ ध्रुवको नगरमे लाकर युवराजपद उसी समय दे दिया। —सु० सिं० (श्रीमद्भागवत ४। ८-९)

आर्त जगत्‌के आश्रय

(भगवान् नारायण)

संसारमें जब पापका ग्रावल्य हो जाता है—
अनेक बार हो जाता है; किंतु अनेक बार ऐसा
होता है कि पाप पुण्यके ही बलसे अजेय हो जाता
है। असुर तपस्या करते हैं, उनकी तपःशक्ति
उन्हें अजेय बना देती है। पाप विनाशी है,
दुःखरूप है। शाश्वत, अजेय, सुखखरूप तो हैं
धर्म। किंतु धर्म या पुण्य करके जब कोई अजेय
अदम्य सुखी होकर पापरत हो जाय—देवता भी
विवश हो जाते हैं। किसीकी तपःशक्ति, किसी-
का फल-दानोन्मुख पुण्य वे नष्ट नहीं कर सकते
और अपने तप एवं पुण्यके द्वारा प्राप्त शक्ति तथा
ऐश्वर्यसे मदान्य प्राणी उच्छृङ्खल होकर विश्वमें
त्रास, पीड़ा एवं उत्पीडनकी सृष्टि करता है।

जगत्‌की नियन्त्रका शक्तियाँ—देवता भी
जब असमर्थ हो जाते हैं, विश्वके परम संचालककी
शरण ही एकमात्र उपाय रहता है। जबतक
देवशक्ति नियन्त्रण करनेमें समर्थ है, उत्पीडन
अपनी सीमाका अतिक्रमण करते ही स्वयं ध्वस्त
हो जाता है। अहंकारी मनुष्य समझ नहीं पाता
कि उसका विनाश उसके पीछे ही मुख फाड़े

खड़ा है। पर ऐसा भी अवसर आता है जब
देवशक्ति भी असमर्थ हो जाती है। उसकी शक्ति-
सीमासे असुर बाहर हो जाते हैं। महामारी,
अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, ज्वालामुखी—कोई
सिर नहीं उठा सकता। सब नियन्त्रित कर लिये
जाते हैं। आसुरशक्तिके यथेच्छाचारसे जगत्
आर्त हो उठता है।

एक बारकी नहीं, युग-युगकी कथा है यह।
देवता, मुनिगण मिलकर उस परमतत्त्वकी शरण
लेते हैं, उस सर्वसमर्थका स्वन करते हैं और
उन्हें आश्वासन ग्राप्त होता है। वे रमाकान्त,
गरुडवाहन भगवान् नारायण आविर्भूत होते हैं
अभयदान करने।

सृष्टिकी—विश्वकी ही नहीं, जीवनकी भी
यही कथा है। जब पाप ग्रवल होता है, आसुर
वृत्तियाँ अदम्य हो जाती हैं, यदि हम पराजय न
स्वीकार कर लें, यदि हम उस आतोंके आश्रयको
पुकारें—पुकार भर लें, वे रमाकान्त, गरुडवाहन
भगवान् नारायण आश्वासन देते ही हैं। उनकी
परमपावन सृति ही आलोक प्रदान करती है
और आसुर-वृत्तियोंको ध्वस्त कर देती है।

ऐसो को उदार जग माहीं

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीघुनाथजीको पता लगा कि उनके परम भक्त विमीषणको कहीं ब्राह्मणोंने बाँध लिया है। श्रीराघवेन्द्रने चारों ओर दूत भेजे, पता लगाया और अन्तमें स्थय वहाँ पहुँचे, जहाँ ब्राह्मणोंने विमीषणको दृढ़ शृङ्खलाओंसे बाँधकर एक भूरभूगृहमें बदी बना रखा था।

मर्यादापुरुषोत्तमको कुछ पूछना नहीं पड़ा। ब्राह्मणोंने प्रभुका खागत किया, उनका आतिथ्य किया और कहा—‘महाराज ! इस बनमे हमारे आश्रमके पास एक राक्षस रथमें बैठकर आया था। हममेंसे एक अत्यन्त बृद्ध मौनत्री बनमे कुश लेने गये थे। राक्षसने उनसे कुछ पूछा, किंतु मौनत्री होनेसे वे उत्तर नहीं दे सके। दुष्ट राक्षसने उनके ऊपर पाद-प्रहार किया। वे बृद्ध तो थे ही, गिर पड़े और मर गये। हमलोगोंको समाचार मिला। हमने उस दुष्ट राक्षसको पकड़ लिया, किंतु हमारे द्वारा बहुत पीटे जानेपर भी वह मरता नहीं

है। आप यहाँ आ गये हैं, यह सौभाग्यको बात है। उस दुष्ट हत्यारेको आप दण्ड दीजिये।

ब्राह्मण विमीषणको उसी दशामें ले आये। विमीषणका मस्तक लज्जासे झुका था; किंतु श्रीराम तो और भी सकुचित हो गये। उन्होंने ब्राह्मणोंसे कहा—‘किसीका सेवक कोई अपराध करे तो वह अपराध स्वामीका ही भाना जाता है। आपलोग इनको छोड़ दें। मैंने इन्हें कल्पर्यन्त जीवित रहनेका वरदान तथा लङ्काका राज्य दिया है। ये मेरे अपने हैं, अतः इनका अपराध तो मेरा ही अपराध है। आपलोग जो दण्ड देना चाहे, मैं उसे खीकार करूँगा।’

विमीषणजीने जान-बूझकर ब्रह्महत्या नहीं की थी। वे बृद्ध ब्राह्मण हैं और मौनत्री हैं, यह विमीषणको पता नहीं था। उनको मार डालनेकी तो विमीषणकी इच्छा थी ही नहीं। अतः अनजानमें हुई हत्याका प्रायश्चित्त ही ऋषियोंने बताया और वह प्रायश्चित्त विमीषणने नहीं, श्रीराघवेन्द्रने स्थय किया।— सु० सिं०

श्रीराधाजीके हृदयमें चरण-कमल

एक बार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने सम्पूर्ण परिवार-परिकर आदिके साथ सिद्धाश्रम तीर्थमें स्नान करने गये। दैवयोगसे श्रीराधिकाजी भी वहाँ अपनी सखियोंके साथ स्नान करने आयी थीं। बडे उल्लासके साथ उभयपक्षके लोगोंका सम्मिलन हुआ। भगवान्‌की पटरानियोंने स्थयं प्रभुके मुखसे श्रीराधिकाजीकी बड़ी महिमा सुन रखी थी। अतएव समय निकालकर वे एकान्तमें श्रीराधिकाजीसे मिलीं। श्रीराधाजीने उनका बड़ा सत्कार किया। बात-चीतके प्रसङ्गमें उन्होंने कहा—‘बहिनो ! चन्द्रमा एक होता है; परतु चकोर अनेक होते हैं। सूर्य एक होता है, किंतु नेत्र अनेक होते हैं—

चन्द्रो यथैको बहवश्चकोराः
सूर्यो यथैको बहवो दशः स्युः ।
श्रीकृष्णचन्द्रो भगवांस्तथैव
भक्ता भगिन्यो बहवो वयं च ॥

उनके वार्तालापका श्रीकृष्णपत्रियोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे आग्रह करके राधिकाजीको अपने स्थानपर ले आयीं। वहाँ सभीने उनका बड़ा खागत किया, भोजनादि भी कराया और अन्तमें श्रीरुक्मिणीजीने स्थय दूध पिलाया। तत्पश्चात् अनेक प्रकारके शिष्ट-सलाप होनेके बाद श्रीराधाजी अपने स्थानपर लौट आयीं। शयनके समय श्रीरुक्मिणीजी नित्य-नियमानुसार प्रभुके चरण दाढ़ने

वैठी । चरणतलोंके दर्शन करते ही वे आश्वर्यमें दूध गयीं । उन्होंने देखा भगवान्‌के चरणतलपर तमाम फफोले पड़ रहे हैं । विस्मित होकर उन्होंने सभी सहेलियोंको बुलाया । सभी आश्वर्यसे ढंग रह गयीं । भगवान्‌से पूछनेका किसीको साहस नहीं था । अन्तमें प्रभुने नेत्र खोलकर सबके बहाँ एकत्रित होनेका कारण पूछा । उत्तरमें उन लोगोंने चरणोंके फफोले दिखलाये । पहले तो भगवान्‌ने टलना चाहा । पर अत्यन्त आग्रह करनेपर उन्होंने कहा—

श्रीराधिकाया हृदयारविन्दे
पादारविन्दं हि विपजते मे ।

अद्योप्णदुग्धप्रतिपानतोऽद्या-
बुच्छालकास्ते मम प्रोच्छलन्ति ॥

अर्थात् श्रीराधाके हृदयमें मेरे चरणकमल दिन-रात्र विराजमान रहते हैं । तुमने उन्हें बहुत गरम दूध दे दिया । श्रीराधा उसे तुम्हारा दिया हुआ समझकर पी गयीं । दूध उनके हृदयमें गथा और इससे मेरे चरण-कमलमें फफोले पड़ना स्वाभाविक था ।

प्रभुके वचनसे महिपियोंको बड़ा ही आश्रय हुआ । तबसे वे अपने प्रेमको श्रीराधाजीके प्रभु-प्रेमके सामने अत्यन्त तुच्छ मानने लगीं । —जा० श०

पेट-दर्दकी विचित्र औषध

प्रायः भगवान् श्रीकृष्णकी पटरानियाँ ब्रजगोपिकाओं-के नामसे नाक-भौं सिक्कोडने लगतीं । इनके अहंकारको मङ्ग करनेके लिये प्रभुने एक बार एक लीला रची । नित्य निरामय भगवान् वीमारीका नाटक कर पड़ गये । नारदजी आये । वे भगवान्‌के मनोभावको समझ गये । उन्होंने बतलाया कि इस रोगकी औषध तो है, पर उसका अनुपान प्रेमी भक्तकी चरण-रज ही हो सकती है । रुक्षिमणी, सत्यभामा, सभीसे पूछा गया । पर पदरज कौन दे प्रभुको । भगवान्‌ने कहा—‘एक बार ब्रज जाकर देखिये तो ।’

‘नारदजी श्यामसुन्दरके पाससे आये हैं’ यह सुनते ही श्रीराधाजीके साथ सारी ब्रजाङ्गनाएँ वासी मुँह ही दौड़ पड़ीं । कुचल पूछनेपर नारदजीने श्रीकृष्णकी वीमारीकी बात सुनायी । गोपियोंके तो प्राण हीं सूख गये । उन्होंने तुरत पूछा—‘क्या वहाँ कोई वैद्य नहीं है?’

‘वैद्य भी हैं, दवा भी है, पर अनुपान नहीं मिलता ।’
‘ऐसा क्या अनुपान है?’

‘अनुपान बहुत दुर्लभ है; उसे कौन दे ? है तो वह सभीके पास, पर कोई उसे देना नहीं चाहता । सम्पूर्ण ; जगत्‌में चक्र ला आया, पर व्यर्थ ।’

‘सभीके पास है ! क्या हमलोगोंके पास भी है ?’
‘है क्यों नहीं, पर तुम भी दे न सकोगी ।’

‘प्रियतम श्रीकृष्णको न दे सकें, ऐसी हमारे पास कोई वस्तु ही नहीं रह सकती ।’

‘अच्छा, तो क्या श्रीकृष्णको अपने चरणोंकी धूलि दे सकोगी ? यही है वह अनुपान, जिसके साथ दवा देनेसे उनकी वीमारी दूर होगी ।’

‘यह कौन-सी बड़ी कठिन बात है, मुनि महाराज ?’
‘लो, हम पैर बढ़ाये देती हैं, जितनी चाहिये, चरण-धूलि अभी ले जाओ ।’

‘अरी यह क्या करती हो ?’ नारदजी घबराये ।
‘क्या तुम यह नहीं जानतीं कि श्रीकृष्ण भगवान् हैं ?
भला, उन्हें खानेको अपने पैरोंकी धूल ? क्या तुम्हें नरकका भय नहीं है ?’

‘नारदजी ! हमारे सुख-सम्पत्ति, भोग, मोक्ष-सब कुछ हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण ही हैं । अनन्त नरकोंमें जाकर भी हम श्रीकृष्णको स्वस्थ कर सकें—उनको तनिक-सा भी सुख पहुँचा सकें तो हम ऐसे मनचाहे नरकका नित्य भजन करें । हमारे अवासुर (अघ+असुर), नरकासुर,

(नरक+असुर) तो उन्होंने कभीके मार रखे हैं।'

नारदजी विहृल हो गये। उन्होंने श्रीराधारानी तथा उनकी कायव्यूहरूपा गोपियोंकी परम पावन चरणरजकी पोटली बौधी, अपनेको भी उससे अभिषिक्त किया। लेकर नाचते हुए द्वारका पधारे। भगवान् ने दवा ली।

पठरानियाँ यह सब सुनकर लज्जासे गड़-सी गयीं। उनका प्रेमका अहकार समाप्त हो गया। वे समझ गयीं कि हम उन गोपियोंके सामने सर्वथा नगण्य हैं। उन्होंने उन्हें मन-ही-मन निर्मल तथा श्रद्धापूर्त मनसे नमस्कार किया। —जा० शा० (उच्चल भारत)

आर्त पुकार दयामय अवश्य सुनते हैं

युधिष्ठिर जुएमें अपना सर्वस्व हार गये थे। छल-पूर्वक शकुनिने उनका समस्त वैभव जीत लिया था। अपने भाइयोंको, अपनेको और रानी द्वौपदीको भी बारी-बारीसे युधिष्ठिरने दावपर रखा। जुआरीकी दुराशा उसे बुरी तरह ठगती रहती है—‘कदाचित् अबकी बार सफलता मिले !’ किंतु युधिष्ठिर प्रत्येक दाव हारते गये। जब वे द्वौपदीको भी हार गये, तब दुर्योधनने अपने छोटे भाई दुःशासनके द्वारा द्वौपदीको उस भरी सभामें पकड़ मँगवाया। दुरात्मा दुःशासन पाञ्चालीके केश पकड़कर घसीटा हुआ उन्हें सभामें ले आया। द्वौपदी रजस्ता थी और एक ही बद्ध पहने थी। विपत्ति यहाँ समाप्त नहीं हुई। दुर्योधनने अपनी जाँघ खोलकर दिखलाते हुए कहा—‘दुःशासन ! इस कौरवोंकी दासीको नगी करके यहाँ वैठा दो।’

भरी थी राजसभा। वहाँ धृतराष्ट्र थे, पितामह भीष्म थे, द्रोणाचार्य थे। सैकड़ों सभासद् थे। वयोवृद्ध विद्वान् थे, शूरवीर थे और सम्मानित पुरुष भी थे। ऐसे लोगोंके मध्य पाण्डवोंकी वह महारानी, जिसके केश राजसूयके अवस्थ स्थानके समय सिद्धित हुए थे, जो कुछ सप्ताहपूर्व ही चक्रवर्ती सम्राट्के साथ सम्राज्ञीके रूपमें भूमण्डलके समस्त नरेशोंद्वारा वन्दित हुई थी, रजस्ता होनेकी स्थितिमें केश पकड़कर घसीट लायी गयी और अब उसे नग करनेका आदेश दिया जा रहा था।

होनेको वहाँ विद्युर भी थे; किंतु उनकी बात कौन

सुनता। द्वौपदीने अनेक बार पूछा—‘युधिष्ठिर जब अपने-आपको हार चुकेथे, तब उन्होंने मुझे दावपर लगाया था, अतः धर्मतः मैं हारी गयी या नहीं ?’ किंतु भीष्म-जैसे धर्मज्ञोंने भी कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया। जिसकी भुजाओंमें दस हजार हाथीका बल विख्यात था, उस दुरात्मा दुःशासनने द्वौपदीकी साड़ी पकड़ ली।

‘मेरे निभुवनविख्यात शूरवीर पति !’ द्वौपदी व्याकुल होकर इधर-उधर देख रही थी कि कोई उसकी रक्षा करेगा; किंतु पाण्डवोंने लज्जा तथा शोकके कारण मुख दूसरी ओर कर लिया था।

‘आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म, धर्मात्मा कर्ण...’ द्वौपदीने देखा कि उसका कोई सहायक नहीं। कर्ण तो उल्टे दुःशासनको प्रोत्साहित कर रहा है और भीष्म, द्रोण आदि बड़े-बड़े धर्मात्माओंके मुख दुर्योधनद्वारा अपमानित होनेकी आशङ्कासे बद हैं और उनके मस्तक नीचे झुके हैं।

एकवस्त्रा अबला नारी—उसकी एकमात्र साड़ीको दुःशासन अपनी बलभरी मोटी भुजाओंके बलसे झटके देकर खींच रहा है। कितने क्षण द्वौपदी साड़ीको पकड़े रह सकेगी ? कोई नहीं—कोई नहीं, उसकी सहायता करनेवाला ! उसके नेत्रोंसे झङ्गी लग गयी, दोनों हाथ साड़ी छोड़कर ऊपर उठ गये। उसे भूल गयी राजसभा, भूल गयी साड़ी, भूल गया शरीर। वह कातर खरमे पुकार उठी—‘श्रीकृष्ण ! द्वारकानाथ ! देवदेव ! गोपीजनप्रिय !

जगन्नाथ ! इन दुष्ट कौरवोंके सागरमें मैं छव रही हूँ,
दयामय ! मेरा उद्धार करो ।'

द्रौपदी पुकारने लगी—पुकारती रही उस आतिनागन असहायके सहायक करुणार्णविको । उसे पता नहीं था कि क्या हुआ या हो रहा है । सभामें कोलाहल होने लगा । लोग आश्वर्यचकित रह गये । दुःशासन पूरी शक्तिसे वेगपूर्वक द्रौपदीकी साड़ी खींच रहा था । वह हाँफने लगा था, पसीनेसे लयपथ हो गया था, थक गयी थीं दस सहस्र हायियोंका बल रखनेवाली उसकी भुजाएँ । द्रौपदीकी साड़ीसे रग-विरिंगे वक्षोंका अन्वार निकलता जा रहा था । वह दस हाथकी साड़ी पाञ्चालीके शरीरसे तनिक भी हट नहीं रही थी । वह तो अनन्त हो चुकी थी । दयामय द्वारकानाथ रजस्तला नारीके उस अपवित्र वक्षमें ही प्रविष्ट हो गये थे । आज उन्होंने वक्षावतार धारण कर लिया था और तब उन अनन्तका और-छोर कोई पा कैसे सकता था ।

'विदुर ! यह कोलाहल कैसा है ?' अघे राजा धृतराष्ट्रने घबराकर पूछा ।

धन्य कौन

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुरके दुर्योधनके यज्ञसे निवृत्त होकर द्वारका लौटे थे । यदुकुलकी लक्ष्मी उस समय ऐन्द्री लक्ष्मीको भी मात कर रही थी । सागरके मध्यस्थित श्रीद्वारकापुरीकी छटा अमरावतीकी शोभाको भी तिरस्कृत कर रही थी । इन्द्र इससे मन-ही-मन लज्जित तथा अपनी राज्यलक्ष्मीसे द्वेष-सा करने लग गये थे । हृषीकेश नन्दनननकी अद्भुत राज्यश्रीकी बात छुनकर उसे देखनेको उसी समय बहुत-से राजा द्वारका पधारे । इनमें कौरव-पाण्डवोंके साथ पाण्ड्य, चौल, कलिङ्ग, वाहीक, द्रविड़, खश आदि अनेक देशोंके राजा-महाराजा भी सम्मिलित थे ।

एक बार इन सभी राजा-महाराजाओंके साथ भगवान्

महात्मा विदुरने बताया—‘दुःशासन द्रौपदीकी साड़ी खींचते-खींचते थक चुका है । वक्षोंका ढेर लग गया है । आश्वर्यचकित सभासदोंका यह कोलाहल है । साथ ही आपकी यज्ञशालामें शृगाल धुस आये हैं और रो रहे हैं । दूसरे भी बहुत-से अपशङ्कुन हो रहे हैं । द्रौपदी सर्वेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको पुकारनेमें तन्मय हो रही है । उन सर्वसमर्थने अभी तो उनकी साड़ी बढ़ा दी है; किंतु यदि शीघ्र आप पाञ्चालीको प्रसन्न नहीं करते तो श्रीकृष्णका महाचक्र कब्र प्रकट होकर एक क्षणमें आपके पुत्रोंको नष्ट कर देगा—यह कोई कह नहीं सकता । आपके समासद् तो भय-आकुल होकर कोलाहल करते हुए दुर्योधनकी जो निन्दा कर रहे हैं, उसे आप सुन ही रहे हैं ।’

धृतराष्ट्रको भय लगा । उन्होंने दुर्योधनको फटकारा । दुःशासनने द्रौपदीकी साड़ी छोड़ दी और चुपचाप अपने आसनपर बैठ गया । वह समझे या न समझे, पाण्डव तथा भीष्म-जैसे भगवद्ग्रन्थोंको यह समझना नहीं था कि द्रौपदीकी लज्जाप्रक्षा कैसे ढुर्दे । —सु० सिं०

(महाभारत, सभा० ६७-७१)

श्रीकृष्ण सुधर्मा सभामें स्वर्णसिंहासनपर विराजमान थे । अन्य राजा-महाराजागण भी चित्र-त्रिचित्र आसनोंपर यथास्थान चारों ओरसे उन्हें धेरे बैठे थे । उस समय वहाँकी शोभा बड़ी विलक्षण थी । ऐसा लगता था मानो देवताओं तथा असुरोंके बीच साक्षात् प्रजापति ब्रह्माजी विराज रहे हों ।

इसी समय मेघनादके समान तीव्र वायुका नाद हुआ और बड़े जोरोंकी हवा चली । ऐसा लगता था कि अब भारी वर्षा होगी और दुर्दिन-सा दीखने लग गया । पर लोगोंको बड़ा आश्वर्य हुआ जब कि इस तुमुल दुर्दिनका भेदन करके उसमेंसे साक्षात् देवर्षि नारद निकल पडे । वे ठीक अग्निशिखाके सदृश

नरेन्द्रोंके बीच सीधे उतर पडे। नारदजीके पृथ्वीपर उतरते ही वह दुर्दिन (वायु-मेघादिका आडम्बर) समाप्त हो गया। समुद्र-सद्वरा नृपमण्डलीके बीच उतरकर देवर्षिने सिंहासनासीन श्रीकृष्णकी ओर मुख करके कहा—‘पुरुषोत्तम ! देवताओंके बीच आप ही परम आश्वर्य तथा धन्य हैं।’ इसे सुनकर प्रसुने कहा—‘हाँ, मैं दक्षिणाओंके साथ आश्वर्य और धन्य हूँ।’ इसपर देवर्षिने कहा—‘प्रभो ! मेरी वातका उत्तर मिल गया, अब मैं जाता हूँ।’ श्रीनारदको चलते देख राजाओंको बड़ा आश्वर्य हुआ। वे कुछ भी समझ न सके कि वात क्या है। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—‘प्रभो ! हमलोग इस दिव्य तत्त्वको कुछ जान न पाये: यदि गोप्य न हो तो इसका रहस्य हमें समझानेकी कृपा करें।’ इसपर भगवान् ने कहा—‘आपलोग धैर्य रखें, इसे स्वयं नारदजी ही सुना रहे हैं।’ यों कहकर उन्होंने देवर्षिको इसे राजाओंके सामने स्पष्ट करनेके लिये कहा।

नारदजी कहने लगे—“राजाओ ! सुनो—जिस प्रकार मैं इन श्रीकृष्णके माहात्म्यको जान सका हूँ, वह तुम्हें बनलाता हूँ। एक बार मैं सूर्योदयके समय एकान्तमें गङ्गा-किनारे धूम रहा था। इतनेमें ही वहाँ एक पर्वताकार कछुआ आया। मैं उसे देखकर चकित रह गया। मैंने उसे हायसे स्पर्श करते हुए कहा—‘कूर्म ! तुम्हारा शरीर परम आश्वर्यमय है। वस्तुतः तुम धन्य हो।’ क्योंकि तुम नि.शङ्क और निश्चिन्त होकर इस गङ्गामें सर्वत्र विचरते हो, फिर तुमसे अधिक धन्य कौन होगा ?” मेरी वात पूरी भी न हो पायी थी कि विना ही कुछ सोचे वह कछुआ बोल उठा—‘मुने ! भला मुझमें आश्वर्य क्या है तथा प्रभो ! मैं धन्य भी कैसे हो सकता हूँ ? धन्य तो हैं ये देवनदी गङ्गा, जो मुझ-जैसे हजारों कछुए तथा मक्क, नक्क, झाजादि सकुल जीवोंकी आश्रय-

भूता शरणदायिनी हैं। मेरे-जैसे असंख्य जीव इनमें भरे हैं—विचरते रहते हैं, भला इनसे अधिक आश्वर्य तथा धन्य और कौन है ?’

“नारदजीने कहा, ‘राजाओ ! कछुएकी वात सुनकर मुझे बड़ा कुप्रहल हुआ और मैं गङ्गादेवीके सामने जाकर बोला—‘सरित-श्रेष्ठे गङ्गे ! तुम धन्य हो। क्योंकि तुम तपस्थियोंके आश्रमोंकी रक्षा करती हो, समुद्रमें मिलती हो, विश्वालक्ष्मी य श्वापदोंसे सुशोभित हो और सभी आश्वर्योंसे विभूषित हो।’ इसपर गङ्गा तुरंत बोल उठी—‘नहीं, नहीं, देवगन्धर्वप्रिय देवर्षे ! कलहप्रिय नारद ! मैं क्या आश्वर्यविभूषित या धन्य हूँ। इस लोकमें सर्वाश्र्वर्यकर परमधन्य तो समुद्र ही है, जिसमें मुझ-जैसी सैकड़ों बड़ी-बड़ी नदियों मिलती हैं।’ इसपर मैंने जब समुद्रके पास जाकर उसकी ऐसी प्रशंसा की तो वह जलतलको फाड़ता हुआ ऊपर उठा और बोला—‘मुने ! मैं कोई धन्य नहीं हूँ; धन्य तो है यह वसुन्धरा, जिसने मुझ-जैसे कई समुद्रोंको धारण कर रखा है और वस्तुतः सभी आश्वर्योंकी निवासभूमि भी यह भूमि ही है।’

“समुद्रके वचनोंको सुनकर मैंने पृथ्वीसे कहा, ‘देह-धारियोंकी योनि पृथ्वी ! तुम धन्य हो। शोभने ! तुम समस्त आश्वर्योंकी निवासभूमि भी हो।’ इसपर वसुन्धरा चमक उठी और बड़ी तेजीसे बोल गयी—‘अरे ! ओ संग्रामकलहप्रिय नारद ! मैं धन्य-वन्य कुछ नहीं हूँ, धन्य तो हैं ये पर्वत जो मुझे भी धारण करनेके कारण ‘भूधर’ कहे जाते हैं और सभी प्रकारके आश्वर्योंके निवासस्थल भी ये ही हैं।’ मैं पृथ्वीके वचनोंसे पर्वतोंके पास उपस्थित हुआ और कहा कि ‘वास्तवमें आपलोग बड़े आश्वर्यमय दीख पड़ते हैं। सभी श्रेष्ठ रह तथा सुवर्ण आदि धातुओंके शाश्वत आकर भी आप ही हैं, अतएव आपलोग धन्य हैं।’ पर पर्वतोंने भी कहा—‘ब्रह्मर्षे ! हमलोग धन्य नहीं हैं। धन्य हैं प्रजापति ब्रह्मा और

वे सर्वाश्रमय जगत्के निर्माता होनेके कारण आश्र्वय-
मूल भी हैं।'

"अब मैं ब्रह्माजीके पास पहुँचा और उनकी स्तुति
करने लगा—'भगवन् ! एकमात्र आप ही धन्य हैं,
आप ही आश्र्वयमय हैं। सभी देव, दानव आपकी ही
उपासना करते हैं। आपसे ही सृष्टि उत्पन्न होती है,
अतएव आपके तुन्य अन्य कौन हो सकता है ?' इसपर
ब्रह्माजी बोले—'नारद ! इन धन्य, आश्र्वय आदि ग्रन्थों-
से तुम मेरी क्यों स्तुति कर रहे हो ? धन्य और आश्र्वय
तौ ये बेटे हैं, जिनसे यज्ञोंका अनुष्ठान तथा विश्वका
संरक्षण होता है।' अब मैं बेदोंके पास जाकर उनकी
प्रणंसा करने लगा तो उन्होंने यज्ञोंको धन्य कहा। तब
मैं यज्ञोंकी स्तुति करने लगा। इसपर यज्ञोंने मुझे बतलाया

कि—'हम धन्य नहीं, विष्णु धन्य हैं, वे ही हमलोगोंकी
अन्तिम गति हैं। सभी यज्ञोंके द्वारा वे ही आराध्य हैं।'

"तदनन्तर मैं विष्णुकी गतिकी खोजमें यहाँ आया
और आप राजाओंके मध्य श्रीकृष्णके रूपमें इन्हें देखा।
जब मैंने इन्हें धन्य कहा, तब इन्होंने अपनेको दक्षिणाओं-
के साथ धन्य बतलाया। दक्षिणाओंके साथ भगवान्
विष्णु ही समस्त यज्ञोंकी गति हैं। यहाँ मेरा प्रश्न
समाहित हुआ और इतनेसे ही मेरा कुत्तहल भी निवृत्त
हो गया। अतएव मैं अब जा रहा हूँ।"

ये कहकर देवर्पि नारद चले गये। इस रहस्य
तथा सवादको सुनकर राजालोग भी बड़े विस्मित हुए
और सबने एकमात्र प्रभुको ही धन्यवाद, आश्र्वय एव
सर्वोत्तम प्रशसाका पात्र माना। —जा० शा०

(हरिवश, विष्णुपर्व, अध्याय ११०, धन्योपाख्यानसे)



दुर्योधनके मेवा त्यागे

वासुदेवका रथ आया। नगरसे बाहर जाकर
दुर्योधनने भीपम, द्रोण, कृष्णचार्य, विद्वुर आदि बृद्ध
सम्मान्य पुरुषों तथा भाइयोंके साथ उनका स्वागत
किया। उनके साथ सब नगरमें आये।

'आप पधारें !' बड़ी नम्रतासे दुर्योधनने मार्ग
दिखलाया। परतु वासुदेव बोले—'राजन् ! आपके उदार
स्वागतके लिये धन्यवाद ! किंतु दूतका कर्तव्य है कि
जबतक उसका कार्य न हो जाय, वह दूसरे पक्षके यहाँ
भोजनादि न करे।'

दुर्योधनको दुरा लगा, किंतु अपनेको सयत
करके वह बोला—'आप दूत हैं, यह बात पीछे देखनेकी
है। आप हमारे सम्मान्य सम्बन्धी हैं। हम जो कुछ
सेवा कर सकते हैं, हमने उसका प्रयास किया है।
आप हमारा स्वागत क्यों अखीकार कर रहे हैं ?'

अब श्रीकृष्णचन्द्रने स्पष्ट सुना दिया—'राजन् ! जो

वे ही उत्साहपूर्वक पिताकी आज्ञाका पालन कर
रहा था। उसने राज्यके सब कारीगर डुटा रखते थे
भवन, मार्ग तथा नगरमें तोरण-द्वार सजानेके लिये।
श्रीकृष्णचन्द्रके भोजनके लिये इतने पदार्थ बनवाये
गये थे जिनकी गणना करना भी कठिन था। ऐसी
साज-सज्जा की गयी थी कि वह हस्तिनापुरके डतिहासके
लिये नवीन थी।

भूखसे मर रहा हो, वह चाहे जहाँ भोजन कर लेता है, किंतु जो ऐसा नहीं है, वह तो दूसरे घर तमी भोजन करता है, जब उसके प्रति वहाँ प्रेम हो। भूखसे मैं मर नहीं रहा हूँ और प्रेम आपमे है नहीं।'

द्वारकानाथका रथ मुड़ गया विदुरके भवनकी ओर। उनके लिये जो दुःशासनका भवन सजाया गया था, उसकी ओर तो उन्होंने ताकातक नहीं।

—सु० सिं० (महाभारत, उद्योग० ९१)

भगवान् या उनका बल ?

महाभारतका युद्ध निश्चित हो गया था। दोनों पक्ष अपने-अपने मित्रों, सम्बन्धियों, सहायकोंको एकत्र करनेमे लग गये थे। श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवोंके पक्षमें रहेंगे, यह निश्चित था, किंतु सभी कौरव वीर इसी सत्यसे भयभीत थे। श्रीकृष्ण यदि चक्र उठा लें, उनके सामने दो क्षण भी खड़ा होनेवाला उन्हें दीखता नहीं था और उनकी नारायणी सेना—विश्वकी वह सर्वश्रेष्ठ सेना क्या उपेक्षा कर देने योग्य है? 'कुछ भी हो, जितनी सहायता श्रीकृष्णसे पायी जा सके, पानेका प्रयत्न करना चाहिये।' यह सम्मति थी शकुनि-जैसे सम्मति देनेवालोंकी। इच्छा न होनेपर भी स्वयं दुर्योधन द्वारकाधीशको रण-निमन्त्रण देने द्वारका पहुँचे।

दुर्योधनकी पुत्रीका विवाह हुआ था श्रीकृष्ण-तनय साम्बसे। दुर्योधनके लिये द्वारकेशके भवनमें जानेमे कोई बाधा नहीं थी। वे भवनमे भीतर पहुँचे। भगवान् वासुदेव भोजन करके मध्याह-विश्राम करने शाय्यापर लेटे थे। कक्षमे दूसरा कोई था नहीं। लीलामयने निद्राका नाट्य करके नेत्र बद कर रखे थे। दुर्योधनने इधर-उधर देखा। शाय्याके सिरहानेके पास बैठनेके लिये एक उत्तम आसन पड़ा था। वे उसीपर चुपचाप बैठकर श्रीकृष्णचन्द्रके जागनेकी प्रतीक्षा करने लगे।

अर्जुन भी उपलब्ध नगरसे चले थे रण-निमन्त्रण देने। वे भी पहुँचे द्वारकेशके उसी कक्षमें। श्यामसुन्दरको शयन करते देखकर वे उनके चरणोंके

पास खडे हो गये और उन भुवनसुन्दरकी यह शयन-शाँकी देखने लगे आत्मविस्मृत होकर।

सहसा श्रीकृष्णचन्द्रने नेत्र खोले। सम्मुख अर्जुन-को देखकर पूछने लगे—'धनञ्जय। कब आये तुम ? कैसे आये ?'

दुर्योधन डरे कि कहाँ अर्जुनको ये कोई वचन न दे दें। बैठे-बैठे ही वे बोले—'वासुदेव ! पहिले मैं आया हूँ आपके यहाँ। अर्जुन तो अभी आया है।'

'आप !' बायीं ओरसे सिरको पीछे घुमाकर जनार्दनने देखा दुर्योधनको और अभिवादन करके पूछा—'कैसे पधारे आप ?'

दुर्योधनने कहा—'आप जानते ही हैं कि पाण्डवोंसे हमारा युद्ध निश्चित है। आप मेरे सम्बन्धी हैं। मैं युद्धमें आपकी सहायता माँगने आया हूँ।'

'अर्जुन ! तुम ?' अब अर्जुनसे पूछा गया तो वे बोले—'आया तो मैं भी इसी उद्देश्यसे हूँ।'

बडे गम्भीर स्वरमें द्वारकानाथ बोले—'आप दोनों हमारे सम्बन्धी हैं। इस घरेलू युद्धमें किसी पक्षसे युद्ध करना मुझे प्रिय नहीं है। मैं इस युद्धमें शास्त्र नहीं ग्रहण करूँगा। एक ओर मैं शश्वत्त्व रहूँगा और एक ओर मेरी सेना शश्वत्त्व रहेगी। परंतु राजन्। अर्जुनको मैंने पहिले देखा है और वे आपसे छोटे भी हैं; अतः पहिले अर्जुनको अवसर मिलना चाहिये कि वे दोनोंमेंसे जो चाहें, अपने लिये चुन लें।'

अर्जुनको तो जैसे वरदान मिला । वे डर रहे थे कि कहीं पहिला अवसर दुर्योधनको मिला और उसने वासुदेवको ले लिया तो अनर्थ ही हो जायगा । उन्होंने बड़ी आतुरतासे कहा—‘आप हमारी ओर रहें ।’

दुर्योधनका मुख सूख गया था द्वारकेशके निर्णयसे । वे सोचने लगे थे, जब ये शख उठायेंगे ही नहीं, तब युद्धमें इन्हें लेकर कोई करेगा क्या । उल्टे कोई न-कोई उपद्रव खड़ा किये रहेंगे ये । कहीं ऐसा न हो कि अर्जुन सेना ले ले और ये हमारे सिर पड़ें । अर्जुनकी बात सुनते ही दुर्योधन आसनसे उत्साहके मारे उठ खड़े हुए—‘हाँ, हाँ, ठीक है । सीकार है हमें ! आप पाण्डवपक्षमें रहें और नारायणी सेनाको आज्ञा दें हमारे पक्षमें प्रस्थान करनेकी ।’ भगवान्‌ने पहले ही वामदृष्टिसे देख लिया था उनकी ओर, इससे भगवान्‌को न पाकर वे प्रसन्न हो गये ।

दुर्योधनके सामने ही सेनाको आदेश मेज दिया गया । जब वे प्रसन्न होकर चले गये, तब हँसकर मधुसूदन अर्जुनसे बोले—‘पर्य । यह क्या बचपन किया तुमने ! सेना क्यों नहीं ली तुमने ! मैंने तो

तुमको पहिले अवसर दिया था । मैं शख उठाऊँगा नहीं, यह कह चुका हूँ । मुझे लेकर तुमने क्या लाभ सोचा । तुम चाहो तो यादव शूरोंकी एक अक्षौहिणी सेना अब भी मेरे बदले ले सकते हो ।’

अर्जुनके नेत्र भर आये । वे कहने लगे—‘माधव ! आप मेरी परीक्षा क्यों लेते हैं । मैंने किसी लाभको सोचकर आपको नहीं चुना है । पाण्डवोंकी जय हो या न हो, किंतु हम आपको छोड़कर नहीं रह सकते । आप तो हमारे प्राण हैं । आपसे रहित आपका बल हमें नहीं चाहिये । हम तो आपके हैं, आपके समीप रहना चाहते हैं ।’

‘क्या कराना चाहते हो तुम मुझसे ?’ हँसकर पूछा वासुदेवने और हँसकर ही अर्जुनने उत्तर दिया—‘सारथि बनाऊँगा आपको । मेरे रथकी रस्मि हाथमे लीजिये और मुझे निश्चिन्त कर दीजिये ।’

जो अपने जीवन-रथकी डोर भगवान्‌के हाथमें सौंप देता है, उसकी लौकिक तथा पारमार्थिक विजय किया तुमने ! सेना क्यों नहीं ली तुमने ! मैंने तो निश्चित है ।—सु० सिं०

श्रीकृष्णका निजस्वरूप-दर्शन

महाभारतका युद्ध समाप्त हो चुका । महाराज युधिष्ठिर एकराट्के रूपमें अभिषिक्त कर दिये गये । अब भगवान् श्रीकृष्ण सुभद्राको लेकर द्वारका लौट रहे थे । यात्रा करते हुए भगवान् मारवाड़ देशमें वहाँ जा पहुँचे, जहाँ अमित तेजस्वी उत्तरकुंभ मुनि रहते थे । भगवान्‌ने उनका दर्शन किया और पूजा भी की ।

तत्पश्चात् मुनिने भी उनका खागत-सत्कार किया । फिर कुञ्ज-ग्रन्थ होने लगे । अन्तमे जब श्रीकृष्णने कौरवोंके संहारकी बात सुनायी, तब मुनि क्रोधमें भर गये और बोले—‘मधुसूदन ! कौरव तुम्हारे सम्बन्धी और ग्रेमी थे । शक्ति रहते हुए भी तुमने उनकी रक्षा

नहीं की । अतः आज मैं तुम्हें शाप दूँगा । ओह ! कुरुवंशके सभी श्रेष्ठ वीर नष्ट हो गये और तुमने सामर्थ्य रहते भी उनकी उपेक्षा की !’

श्रीकृष्ण बोले—‘भूगुनन्दन ! पहले मेरी बात तो सुन लीजिये । आपने जो बाल्यावस्थासे ब्रह्मचर्यका पालन कर कठोर तपस्या की है और गुरुमार्किसे अपने गुरुको संतुष्ट किया है, मैं वह सब जानता हूँ, पर इतना याद रख लीजिये कि कोई भी पुरुष योड़ी-सी तपस्याके बलपर मेरा तिरस्कार नहीं कर सकता अथवा मुझे शाप नहीं दे सकता । मैं आपको कुछ अध्यात्मतत्त्व सुनाता हूँ, उसे सुनकर पीछे आप विचार कीजियेगा महर्षे !

आपको माल्ग्रम होना चाहिये—ये रुद्र, वसु, सम्पूर्ण दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग और अप्सराओंका मुझमे ही प्रादुर्भाव हुआ है। असत्, सदसत् तथा उससे परे जो अव्यक्त जगत् है, वह भी मुझ सनातन देवाधिदेवसे पृथक् नहीं है। मैं धर्मकी रक्षा तथा स्थापनाके लिये महात्माओंके साथ अनेक बार अनेक योनियोंमें अवतार धारण करता हूँ। मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र तथा सबकी उत्पत्ति और प्रलयका कारण हूँ। जब-जब धर्मका हास और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं विभिन्न योनियोंमें प्रविष्ट होकर धर्ममर्यादाकी स्थापना करता हूँ। जब देवयोनिमें अवतार लेता हूँ, तब मेरे सारे आचार-व्यवहार देवताओंके सदृश होते हैं। गन्धर्व-योनिमें अवतार लेनेपर गन्धर्वोंके समान तथा नाग, यक्ष, राक्षस योनियोंमें अवतार लेनेपर उन-उन योनियोंके सदृश आचार-व्यवहारका पालन करता हूँ। इस समय मैं मनुष्यरूपमें प्रकट हुआ हूँ। अतएव मैंने कौरवोंसे दीनतापूर्वक प्रार्थना की, किंतु मोहग्रस्त होनेके कारण उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। अतः युद्धमें प्राण देकर इस समय वे स्वर्गमें पहुँचे हैं।

इसपर उत्तरके कहा—‘जनार्दन ! मैं जानता हूँ, आप जगदीश्वर हैं। अब मैं आपको शाप नहीं दूँगा। आप कृपा कर अपना विश्वरूप मुझे डिखलायें। तत्पथात् भगवान् ने उन्हें सनातन विष्णु-स्वरूपका दर्शन कराया और वर माँगनेके लिये प्रेरित किया। उत्तरके उस मरुभूमिमें जल मिलनेका वर माँगा। भगवान् ने कहा—‘जब भी जलकी आवश्यकता हो, तब-तब मेरा स्मरण कीजिये।’ यह कहकर श्रीकृष्ण द्वारकाको चल पडे।

एक दिन उत्तरके सुनिको बड़ी प्यास लगी। वे पार्नाके लिये चारों ओर घूमने लगे। इतनेमें ही उन्हें श्रीकृष्णकी बात स्मरण हो आयी। उन्होंने श्रीकृष्णको याद किया। तबतक देखते क्या हैं—एक नग-धडग, कुर्तोंसे घिरा भीपण आजारका चाण्डाल चला आ

रहा है। उस चाण्डालके मूत्रेन्द्रियसे अजस्त्र जलकी धारा गिरती दिखायी देती थी। वह सुनिके निकट आकर बोला—‘महर्ष ! आपको प्याससे व्याकुल देखकर मुझे बड़ी दया लगती है। आप जलदी आकर मेरे पास जल पी लीजिये।’

यह सुनकर कुपित होकर उत्तरक उस चाण्डालको डॉटने लगे तथा वर देनेवाले श्रीकृष्णको भी भला-बुरा बकने लगे। उनके इनकार करनेपर कुर्तोंके साथ चाण्डाल वहीं गायब हो गया। यह देखकर महात्मा उत्तरक समझ गये कि श्रीकृष्णकी ही यह सब माया है। तबतक भगवान् श्रीकृष्ण शङ्ख, चक्र, गदा धारण किये वहाँ प्रकट हो गये। उनको देखते ही उत्तरक बोल उठे—‘केशव ! प्यासे ब्राह्मणको चाण्डालका मूत्र देना आपको उचित नहीं।’

श्रीकृष्णने बड़े मधुर शब्दोंमें कहा—‘मनुष्यको प्रत्यक्ष रूपसे अमृत नहीं पिलाया जाता। इससे मैंने चाण्डालवेषधारी इन्द्रको गुप्तरूपसे अमृत पिलाने भेजा था, किंतु आप उन्हें पहचान न सके। पहले तो देवराज आपको अमृत देनेको तैयार नहीं थे। पर मेरे बार-बार अनुरोध करनेपर वे इस शर्तपर आपको अमृत पिलाने तथा अमर बनानेपर तैयार हो गये कि यदि ऋषि चाण्डाल-वेषमें तथाकथित ढगसे अमृत पी लेंगे, तब तो मैं उन्हें दे दूँगा और यदि वे न लेंगे तो अमृतसे वशित रह जायेंगे। पर खेद है आपने अमृत नहीं ग्रहण किया। आपने उनको लौटाकर बड़ा बुरा किया। अस्तु ! अब मैं आपको पुनः वर देता हूँ कि जिस समय आप पानी पीनेकी इच्छा करेगे, उसी समय बादल मरुभूमिमें पानी बरसाकर आपको स्वादिष्ट जल देंगे। उन मेघोंका नाम उत्तर-मेघ-होगा।’

भगवान् के यों कहनेपर उत्तर, तबसे बड़ी प्रसन्नतासे वहीं रहने लगे। अब भी उत्तर-मेघ मारवाड़की मरुभूमिमें पानी बरसाते रहते हैं। —जा० श०

हनुमानजीके अत्यल्प गर्वका मूलसे संहार

भगवान् श्रीरामचन्द्र जब समुदपर सेतु बाँध रहे थे, तब विश्वनिवारणार्थ पहले उन्होंने गणेशजीकी स्थापना कर नवग्रहोंकी नौ प्रतिमाएँ नलके हाथों स्थापित करायीं। तत्पश्चात् उनका विचार सागर-संयोगपर एक अपने नामसे लिङ्गलिङ्ग स्थापित वरानेका हुआ। इसके लिये हनुमानजीको बुलाकर कहा—‘मुहूर्तके भीतर काशी जाकर भगवान् शङ्खसे लिङ्ग मौंगकर लाओ। पर देखना, मुहूर्त न टलने पाये।’ हनुमानजी क्षणभरमें वाराणसी पहुँच गये। भगवान् शङ्खरने कहा—‘मैं पहलेसे ही दक्षिण जानेके विचारमें था, क्योंकि अगस्त्यजी विन्ध्याचलको नीचा करनेके लिये यहाँसे चले तो गये, पर उन्हें मेरे वियोगका बड़ा कष्ट है। वे अभी भी मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। एक तो श्रीरामके तथा दूसरा अपने नामपर स्थापित करनेके लिये इन दो लिङ्गोंको ले चलो।’ इसपर हनुमानजीको अपनी महत्ता तथा तीव्रगमिताका योजान्सा गर्वमास हो आया।

इधर कृपासिन्दु भगवान्‌को अपने भक्तकी इस रोगोत्पत्ति-की वात माल्द्रम हो गयी। उन्होंने सुग्रीवादिको बुलाया और कहा—‘अब मुहूर्त वीतना ही चाहता है, अतएव मैं सैकत (वालुकामय) लिङ्गकी ही स्थापना किये देता हूँ।’ यों कहकर मुनियोंकी सम्मतिसे उन्होंके बीच बैठकर विधि-विवानमें उस सैकत लिङ्गकी स्थापना कर दी। दक्षिण-उत्तरके लिये प्रभुने कौस्तुभमणिको स्मरण किया। स्मरण करते ही वह मणि आकाशमार्गसे सूर्यवत् आ पहुँची। प्रभुने उसे गलेमें बाँध लिया। उस मणिके प्रभावसे वहाँ धन, वल, गौँ, अश्व, आभरण और पायसादि दिव्य अन्नोंका ढेर लग गया। भगवान्‌से अभिपूजित होकर ऋषिगण अपने घर चले। रास्तमें उन्हें हनुमानजी मिले। उन्होंने मुनियोंसे पूछा, ‘महाराज ! आपलोगोंकी किसने पूजा की है ?’ उन्होंने कहा—‘श्रीरघवेन्द्रने

शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा की है, उन्होंने ही हमारी दक्षिणादान-मानादिसे पूजा की है।’ अब हनुमानजीको भगवान्‌के मायावश क्रोध आया। वे सोचने लगे—‘देखो ! श्रीरामने व्यर्यका श्रम कराकर मेरे साथ यह कैसा व्यवहार किया है !’ दूसरे ही क्षण वे प्रभुके पास पहुँच गये और कहने लगे—‘क्या लङ्घा जाकर सीताका पता लगा आनेका यही इनाम है ? यो काशी भेजकर लिङ्ग मौंगकर मेरा उपहास किया जा रहा है ? यदि आपके मनमें यही बात थी तो व्यर्यका मेरे द्वारा श्रम क्यों कराया ?’

दयाधाम भगवान्‌ने बड़ी शान्तिसे कहा—‘पवन-नन्दन ! तुम विल्कुल ठीक ही तो कहते हो। क्या हुआ ? तुम मेरे द्वारा स्थापित इस वालुकामय लिङ्गको उखाड़ डालो। मैं अभी तुम्हारे लाये लिङ्गोंको स्थापित कर दूँ।’

‘वहुत ठीक’ कहकर अपनी पूँछमें लपेटकर हनुमानजीने उस लिङ्गको बडे जोरेसे खींचा। पर आर्थ्य—लिङ्गका उखड़ना या हिलना-डुलना तो दूरकी बात रही, वह टस-से-मसतक न हुआ, उल्टे हनुमानजीकी पूँछ ही टट गयी। वीरशिरोमणि हनुमानजी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। वानर सब जोरेसे हँस पड़े। वस्थ होनेपर हनुमानजी सर्वथा गर्वविहीन हो गये। उन्होंने प्रभुके चरणोंमें नमस्कार किया और क्षमा माँगी।

प्रभुको क्या था ? क्षमा तो पहलेसे ही दी हुई थी। भक्तका भयकर रोग उत्पन्न होते-न-होते दूर कर दिया। तत्पश्चात् विधिपूर्वक अपने स्थापित लिङ्गके उत्तरमें विश्वनाथ-लिङ्गके नाममें उन्होंने हनुमानजीद्वारा लाये गये लिङ्गोंकी स्थापना करायी और वर दिया—‘कोई यदि पहले हनुमत्रप्रतिष्ठिन विश्वनाथ-लिङ्गकी अर्चा न कर मेरे द्वारा स्थापित रामेश्वर-लिङ्गकी पूजा करेगा, तो उसकी

पूजा वर्य होगी ।' फिर प्रभुने हनुमान्‌जीसे कहा—
‘तुम भी यहाँ छिन्‌पुच्छ, गुप्तपाद-खपसे गतगर्व होकर
निवास करो ।’ इसपर हनुमान्‌जीने अपनी भी एक वैसी

ही छिन्‌पुच्छ, गुप्तपाद, गतगर्व-मुद्रामयी प्रतिमा स्थापित
कर दी । वह आज भी वहाँ वर्तमान है ।—जा० श०
(आनन्दरामायण, सारकाण्ड, सर्ग १०)

दीर्घायुष्य एवं मोक्षके हेतुभूत भगवान् शङ्करकी आराधना

प्राचीन कालमें एक राजा थे, जिनका नाम था इन्द्रधुमा । वे बड़े दानी, धर्मज्ञ और सामर्थ्यशाली थे । धनार्थियोंको वे सहस्र स्वर्णमुद्राओंसे कम दान नहीं देते थे । उनके राज्यमें सभी एकादशीके दिन उपवास करते थे । गङ्गाकी वालुका, वर्षाकी धारा और आकाशके तारे कदाचित् गिने जा सकते हैं; पर इन्द्रधुमके पुण्योंकी गणना नहीं हो सकती । इन पुण्योंके प्रतापसे वे सशरीर ब्रह्मलोक चले गये । सौ कल्प बीत जानेपर ब्रह्माजीने उनसे कहा—‘राजन् ! सर्गसाधनमें केवल पुण्य ही कारण नहीं है, अपितु त्रैलोक्यविस्तृत निष्कलङ्घ यश भी अपेक्षित होता है । इधर चिरकालसे तुम्हारा यश क्षीण हो रहा है, उसे पुनः उज्ज्वल करने-के लिये तुम वसुधातलपर जाओ ।’ ब्रह्माजीके ये शब्द समाप्त भी न हो पाये थे कि राजा इन्द्रधुमने अपनेको पृथ्वीपर पाया । वे अपने निवासस्थल काम्पिल्य नगरमें गये और वहाँके निवासियोंसे अपने सम्बन्धमें पूछ-ताछ करने लगे । उन्होंने कहा—‘हमलोग तो उनके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते, आप किसी वृद्ध चिरायुसे पूछ सकते हैं । सुनते हैं नैमित्तारण्यमें सप्तकल्पान्तजीवी मार्कण्डेयमुनि रहते हैं, कृपया आप उन्हींसे इस प्राचीन बातका पता लगाइये ।’

जब राजाने मार्कण्डेयजीसे प्रणाम करके पूछा कि ‘मुने ! क्या आप इन्द्रधुम राजाको जानते हैं ?’, तब उन्होंने कहा, ‘नहीं, मैं तो नहीं जानता, पर मेरा मित्र नाड़ीजङ्घबक शायद इसे जानता हो; इसलिये चलो, उससे पूछा जाय ।’ नाड़ीजङ्घने अपनी बड़ी विस्तृत

कथा सुनायी और साथ ही अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए अपनेसे भी अति दीर्घायु प्राकारकर्म उल्लङ्घके पास चलनेकी सम्भति दी । पर इसी प्रकार सभी अपनेको असमर्थ बतलाते हुए चिरायु गृध्रराज और मानसरोवरमें रहनेवाले कच्छुप मन्थरके पास पहुँचे । मन्थरने इन्द्रधुमको देखते ही पहचान लिया और कहा कि ‘आपलोगोंमें जो यह पौँचवें राजा इन्द्रधुम है, वहे देखकर मुझे बड़ा भय लगता है; क्योंकि इसीके यज्ञमें मेरी पीठ पृथ्वीकी उष्णतासे जल गयी थी ।’ अब राजाकी कीर्ति तो प्रतिष्ठित हो गयी, पर उसने क्षयिष्यु स्वर्गमें जाना ठीक न समझा और मोक्ष-साधनकी जिज्ञासा की । एतदर्थ मन्थरने लोमशजीके पास चलना श्रेयस्कर बतलाया । लोमशजीके पास पहुँचकर यथाविधि प्रणामादि करनेके पश्चात् मन्थरने निवेदन किया कि इन्द्रधुम कुछ प्रश्न करना चाहते हैं ।

महर्षि लोमशकी आज्ञा लेनेके पश्चात् इन्द्रधुमने कहा—‘महाराज ! मेरा प्रथम प्रश्न तो यह है कि आप कभी कुटिया न बनाकर शीत, आतप तथा वृष्टिसे बचनेके लिये केवल एक मुहुरी तृण ही क्यों लिये रहते हैं ?’ मुनिने कहा, ‘राजन् ! एक दिन मरना अवश्य है; फिर शरीरका निश्चित नाश जानते हुए भी हम घर किसके लिये बनायें ? यैवन, धन तथा जीवन—ये सभी चले जानेवाले हैं । ऐसी दशामें ‘दान’ ही सर्वोत्तम भवन है ।’

इन्द्रधुमने पूछा, ‘मुने ! यह आयु आपको दानके परिणाममें मिली है अथवा तपस्याके प्रभावसे, मैं यह जानना चाहता हूँ ।’ लोमशजीने कहा, ‘राजन् ! मैं पूर्वकालमें एक दरिद्र शूद्र था । एक दिन दोपहरके समय जलके भीतर मैंने एक बहुत बड़ा शिवलिङ्ग

देखा । भूखमे मेरे प्राण मृत्यु जा रहे थे । उस जन्मायमें स्नान करके मैंने कपलके सुन्दर फलोंमे उस शिवलिङ्गका पूजन किया और पुनः मैं आगे चढ़ दिया । मृत्युतुर होनेके कारण मार्गमें ही मेरी मृत्यु हो गयी । दूसरे जन्ममें मैं ब्राह्मणके वर्गमें उत्पन्न हुआ । शिवरूपके फटस्वरूप मुझे पूर्वजन्मकी वानोंका मरण रहने लगा । मैंने जाननूसकर मृकना धारण कर ली । पितादि-की मृत्यु हो जानेपर सम्बन्धियोंने मुझे निग गूँगा जान-

कर सर्वथा लाग दिया । अब मैं सात-दिन भगवान् शङ्खरकी आराधना करने लगा । इस प्रकार सौ वर्ष बीत गये । प्रभु चन्द्रगेहरने मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और मुझे इनी दीर्घ आयु दी ।'

यह जानकर इन्द्रशुभ्र, वरु, कल्याण, गीव और उद्धकने भी लोपाजीमे शिवदीक्षा ली और तप करके मोक्ष प्राप्त किया । —ज्ञा० श०
(सन्दपुगण, माहेश्वरगण्ड, कुमारिसामण्ड २६ । ४—१०)

एकमात्र कर्तव्य क्या है ?

पुण्डरीक नामके एक वडे भगवद्वक्त गृहस्थ ब्राह्मण थे । साथ ही वे वडे धर्मात्मा, सदाचारी, तपस्ची तथा कर्मकाण्डनिपुण थे । वे माता-पिताके मेयक, शिरय-भोगोंमे सर्वथा नि-स्वृह और वंड कृपालु थे । एक बार अधिक विरक्तिके कारण वे पवित्र स्त्री वन्य तीर्थोंकी यात्राकी अभिलाप्यामे निकाट पड़े । वे केवल कन्द-मूल-आकाढि वाकर गङ्गा, यमुना, गोमती, गण्डक, सागृ, शौण, सगम्बती, प्रयाग, नर्मदा, गया तथा शिंच्य एवं हिमाचलके पवित्र तीर्थोंमें वृमने हुए आलग्राम क्षेत्र (आजके हार्हिहर-अंतर) पहुँचे और वहाँ पहुँचकर प्रभुकी आराधनामें तन्मीन हो गये । वे विरक्त तो थे ही, अनेक इस तुच्छ क्षणभगुर यौवन, रूप, आयुष्य आदिसे सर्वथा उपत द्वौकर महज ही भगवद्ध्यानमें लीन हो गये और समागमको मर्वथा भूल गये ।

देवर्पि नारदजीको जब यह समाचार ज्ञान हुआ, तब उन्हें देवनेकी इच्छामे वे भी वहाँ पश्चारे । पुण्डरीकने विना पहचानं ही उनकी पोडगोपचारसे पूजा की और किं उनमे परिचय पूछा । जब नारदजीने उन्हें अपना परिचय तथा वहाँ आनेका कारण बताया, तब पुण्डरीक हर्षमे गदगद हो गये । वे बोले—‘महामुने ! आज मैं धन्य हो गया । मेरा जन्म सफल हो गया

तथा मेरे पितर कलार्थ हो गये । पर देवर्पि ! मैं एक सद्वेष्म पड़ा हूँ, उमे आप ही निवृत्त कर सकते । कुछ लोग सम्यकी प्रशसा करते हैं तो कुछ सदाचारकी । इसी प्रकार कोई साए़यकी, कोई योगकी तो कोई ज्ञानकी महिमा गाते हैं । कोई धमा, दया, अजुता आदि गुणोंकी प्रशसा करता दीख पड़ता है । यों ही कोई दान, कोई वैगम्य, कोई यजा, कोई ध्यान और कोई अन्यान्य कर्मकाण्डके अक्षरोंकी प्रशसा करता है । ऐसी दशामें मेरा चित्त इस कर्तव्याकर्तव्यके निर्णयमें अत्यन्त प्रिमोहको प्राप्त हो रहा है कि वस्तुत अनुष्टेय क्या है ।’

इसपर नारदजी वडे प्रसन्न हुए । उन्होंने कहा—‘पुण्डरीक ! वस्तुत आखों तथा कर्म-शर्मके बाहुद्वयके कारण ही प्रियकार वैचित्र और धैलक्षण्य है । देव, काल, रुचि, वर्ण, आश्रम तथा प्राणिविशेषके भेदमे अप्रियोंने प्रियन्न धर्मोंका प्रियान किया है । साथागण मनुष्यकी दृष्टि अनागत, अतीत, ग्रिप्रकृष्ट, व्यग्रहित तथा अत्रश्रित वस्तुओंतक नहीं पहुँचती । अतः मोह द्वारा है । इस प्रकारका संयाय, जैसा तुम कह रहे हो, एक बार मुझ भी हुआ था । जब मैंने उमे ब्रह्माजीमे कहा, तब उन्होंने उसका बड़ा सुन्दर निर्णय दिया था । मैं उमे तुमको ज्यों-कान्यों युना देना हूँ । ब्रह्माजीने

मुझमे जहा था—‘नारद ! भगवान् नारायण ही परम तत्त्व है। वे ही परम ज्ञान, परम ब्रह्म, परम ज्योति, परम अन्मा अथव परममे भी परम प्रात्म हैं। उनमे परे कुछ भी नहीं है।

नारायणः परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः ।
नारायणः परं ज्योतिरात्मा नारायणः परः ॥
पराद्यपि परच्छान्तौ नस्मान्तास्ति परं सुने ।
(नृसिंहपुराण ६४, ६३-६४)

‘इस नस्मागमे जो कुछ भी देखा-मुना जाना है, उनके बाहर-मीतर, सर्वत्र नारायण ही व्याप है। जो निष्ठ-निरन्तर, सदा-सर्वदा भगवानका अनन्य भावसे ध्यान करता है, उमे यज्ञ, तथ अथवा नीर्थयात्राकी क्या आवश्यकता है। बस, नारायण ही सर्वोत्तम ज्ञान, योग, सांख्य तथा धर्म है। जिस प्रकार कई वर्डी-बड़ी सड़कें किसी एक विशाल नगरमें प्रविष्ट होती हैं, अथवा कई बड़ी-बड़ी नदियाँ समुद्रमें प्रवेश कर जाती हैं, उसी प्रकार भी मार्गोंका पर्यवसान उन परमेश्वरमें होता है। मुनियोंने यथारुचि, यथामनि उनके भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंकी व्याख्या की है। कुछ शास्त्र तथा ऋषिगण उन्हें विज्ञानमात्र बताते हैं, कुछ परब्रह्म परमात्मा कहते हैं, कोई उन्हें महावर्णी अनन्त कालके नामसे पुकारता है, कोई सनातन जीव कहता है, कोई क्षेत्रज्ञ कहता है तो कोई पद्मविश्वक तत्त्वरूप बताता है, कोई अद्भुतमात्र कहता है तो कोई पद्मरजकी उपमा देता है। नारद ! यदि आत्र एक ही होता तो ज्ञान भी नि संशय तथा अनाविद्व होता। किन्तु आत्र बहुत-से हैं; अनेव विशुद्ध, सद्यगद्वित ज्ञान तो सर्वथा दृष्टिं ही है। फिर भी जिन मेवार्या महानुभावोंने दीर्घ अध्यवसाय-पूर्वक भी आत्रोंका पठन, मनन तथा समन्वयात्मक दृग्मे विचार किया है, वे मत्र इसी निष्कर्षर पहुँचे हैं कि सदा सर्वत्र, निष्ठ-निरन्तर, सर्वात्मना एकमात्र नारायणका ही ज्ञान करना सर्वोपरि परमोत्तम कर्तव्य है।

आनेऽद्य स्वर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेन्द्रं तु निष्पद्यन्तं ध्येयो नारायणः सदा ॥*
(६४ । ७८)

‘वेद, रामायण, महामार्ग तथा सभी पुराणोंके आदि, मध्य एवं अन्तमे एकमात्र उन्हीं प्रमुका यशोगान है—

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
थादौ मध्ये तथा अन्ते हरिः सर्वत्र गीयते ॥

‘अतपृथिवी शास्त्र वल्याणकी इच्छा रखनेवालेको व्यामोहक जगज्ञालमे सर्वथा वचकर, सर्वदा निरालस्य होकर प्रयत्पूर्वक अनन्यभावमे उन परमात्मा नारायणका ही ध्यान करना चाहिये।

‘पुण्डरीक ! इस प्रकार ब्रह्माजीने जब मेरा सवय दूर कर दिया, तब मैं सर्वथा नारायणपरायण हो गया। वास्तवमें भगवान् वासुदेवका माहात्म्य अनन्त है। कोई नृशंस, दुरात्मा, पापी ही क्यों न हो, भगवान् नारायण-का आश्रय लेनेमे वह भी मुक्त हो जाता है। यदि हजारों जन्मोंके साथनमे भी ऐसे देवाविदेव वासुदेवक दास हूँ ऐसी निश्चिन बुद्धि उत्पन्न हो गयी तो उसक काम बन गया और उने विष्णुसालोक्यकी प्राप्ति है जाती है—

‘जन्मान्तरस्त्वेषु यस्य स्याद् बुद्धिरीदृशी ।
दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्दूलिणः ॥
प्रयाति विष्णुसालोक्यं पुरुषो नात्र संशयः ।
(९४-९५)

‘भगवान् विष्णुकी आगधनासे अस्त्रीय, प्रह्लाद राजपिं भरत, ध्रुव, मित्रासन तथा अन्य अगणित ब्रह्मपिं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यासी तथा वैष्णवगण

* यह श्लोक नृसिंहपुराण १८ । ३४ तथा ६४ । ७८: लिङ्गपुराण उत्तरार्ध अध्याय ७ श्लोक ११: गरुडपुराण, पूर्ववण्ड, अध्याय २२, श्लोक १ (जीवानन्द विद्यामार्ग महारण); वेङ्कटेश्वर प्रेससे प्रकाशित पुस्तकमें यह २६० वाँ अध्याय है।) तथा पद्मपुराण, उत्तरवण्ड, अध्याय ८१ श्लोक २६ आदि स्थानोंपर कई जगह उपलब्ध होता है।

परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। अब तुम भी नि नदाय होकर उनकी ही आगयना करो।

इनना छहन देवति अन्तर्थान हो गये और भक्त पुण्डरीक हनुष्टर्णीको नद्यं गोविन्द हो प्रनिष्ठितकर भगवद्घटनने परायग हो गये। उन्न नने करम सनात हो गये और उन्हें नमाश हुई देखी निर्दि प्राप्त हो गयी। उनके नामने निर्माणाति शिव जन्मोंकी भी नूरता नहीं हो गयी। पुण्डरीकर्मी हड़ भक्ति निष्ठाको देखकर पुण्डरीकनेत्र आनिमान भगवान् नाम हा दर्दी-

भृत हुए और उनके मामने प्रकल्प हो गये। उन्होंने पुण्डरीकसे वर माँगनेका हड़ आग्रह किया।

पुण्डरीकने प्रमुखे गद्गढ लतरमे यही माँग कि 'नाव ! जिससे मंग कन्याण हो, आप मुझे बही हैं। सुम दुद्रिहीनमे इननी ग्रेयना कहाँ जो आत्महितका निर्णय कर सकूँ ।'

भगवान् उनके इस उत्तरमे वडे प्रमत हुए और उन्होंने पुण्डरीकसे अपना पार्षद बना किया। —जा० श० (पश्चपुण्ड, उत्तरगढ, जन्माय ८१, शृंखिपुण्ड, अन्माय ६४)

भगवान् सरल भाव चाहते हैं

दूसरे एक मन्दिर था र्षीशंकरजीका। र्षीशुमार कण्णप्य आखेट करने निकला और त्रूपना-वामना उस मन्दिरतम पहुँच गया। मन्दिरमे भगवान् शिवकी पूजा प्रतिनिया थी। उस नाडुक भगवान् र्षीशुमारके मनमे यह भाव थाया—'भगवान् इन छिन्नक पशुओंने मेरे बनमे अकेले हैं। कड़ी कोई पशु गत्रिमे आकर इन्हें कष्ट न दे।' उम समय नद्या हो गहा था। र्षीशुमारने धनुषपर बण चढ़ाया और मन्दिरमे द्वारपर पहरा ढेने बैठ गया। वह पूरी नत फहाँ बढ़ा रहा।

नक्षें हुआ। कण्णपके मनमे अब भगवान्‌सी पूजा अत्यनेजा भिन्नार हुआ, किंतु वर्तमा जाने पूजा अन्ना। वह बनमे गया, पशु नहे और अग्निमि उनका माम भन लिया। शहदकी भक्तिव्योका छत्ता तोड़कर उसने ; शहद निकाल। एन ढोनेम शहद और गास उसने। लिया, बनमी लताओंसे कुछ पुष्प नोड और अपने वालोंमे उलझा लिये। नर्दीका जल मुखमे भर लिया। और मन्दिर पहुँचा। मूर्तिपर हुए कृष्ण-पत्ते पडे थे। उन्हें कण्णपने पैसे हटा दिया, कर्मोंकि उसके एक हाथमें धनुष या ओर दूसरेमे मासका ढोना। मुखमे ही मूर्तिपर उसने जल गिया। अब धनुप एक ओर रखकर वालोंमे लगाये कुछ निकालकर उसने मूर्तिपर

चढ़ाये और गासका ढोना नैवेद्यके रूपमे मूर्तिके सामने रख दिया उसने। सब धनुपपर बण चढ़ाकर चोकोदारी करने मन्दिरके द्वारके बाहर बैठ गया।

कण्णपको भूल गया था, भूल गया परिवार, यहाँ-तक कि भोजन तथा निद्राकी सुविधि भी भूल गयी। वह अपने भगवान्‌की पूजा और उनकी रखवालीमे जैसे मसार और अर्ग रसव भूल गया।

उस मन्दिरमे प्रातःकाल एक ब्राह्मण दूरके गाँवसे प्रतिदिन आते थे और पूजा करके चले जाते थे। उनके आनेका समय वही या जब कण्णप बनमे आखेट करने जाना था। मन्दिरमे मासके दुकड़े पडे देखकर ब्राह्मणको बड़ा हु ख हुआ। उन्होंने नर्दीसे जल लाकर पूरा मन्दिर बोया। सब किसे ल्लान किया और तब पूजा की। लेकिन यह कोई एक दिनकी बात तो थी नहीं। प्रतिदिन जब यही टड़ा मन्दिरकी मिलने लगी, तब एक दिन ब्राह्मणने निश्चय किया, 'आज छिपकर देखूँगा कि कोन प्रतिदिन मन्दिरको भ्रष्ट कर जाता है।'

ब्राह्मण छिपकर देखना रहा, किंतु जब उसने धनुष लिये भयकर भीलको देखा, तब कुछ बोलनेका साहस उसे नहीं हुआ। इवर कण्णपने मन्दिरमें प्रवेश करते

ही देखा कि भगवान्‌की मूर्तिके एक नेत्रसे रक्त वह रहा है। उसने हाथका दोना नीचे रख दिया और दुःखसे रो उठा—‘हाय ! किस दुष्टने मेरे भगवान्‌के नेत्रमे चोट पहुँचायी ।’

पहले तो कण्णप्य धनुषपर बाण चढ़ाकर मन्दिरसे बाहर दौड़ गया। वह मूर्तिको चोट पहुँचानेवालेको मार देना चाहता था, किंतु बहुत शीघ्र धनुष फेंककर उसने धास-पत्ते एकत्र करने प्रारम्भ कर दिये। एक पूरा गढ़र लिये वह मन्दिरमे लौटा और एक-एक पत्ते एवं जड़को मसल-मसलकर मूर्तिके नेत्रमे लगाने लगा। कण्णप्यका उद्योग सफल नहीं हुआ। मूर्तिके नेत्रोंसे रक्त जाना किसी प्रकार भी रुकता नहीं था। इससे वह भील-कुमार अत्यन्त व्याकुल हो गया। इसी समय उसे स्मरण आया कि उससे कभी किसी भीलने कहा था—‘शरीरके धावपर यदि दूसरेके शरीरके उसी अंशका मास लगा दिया जाय तो शीघ्र भर जाता है।’ कण्णप्य प्रसन्न हो गया। उसने एक बाण निकाला अपने तरकससे और उसकी नोक अपने नेत्रमें घुसेड़ ली। अपने हाथों अपना नेत्र निकालकर उसने मूर्तिके नेत्रपर रखकर

दबाया। खयं उसके नेत्रके गड्ढे से रक्तकी धारा वह रही थी; किंतु उसे पीड़िका पता नहीं था। वह प्रसन्न हो रहा था कि मूर्तिके नेत्रसे रक्त निकलना बद्द हो गया है।

इसी समय मूर्तिके दूसरे नेत्रसे रक्त निकलने लगा। कण्णप्यको तो अब ओषधि मिल गयी थी। उसने मूर्तिके उस नेत्रपर पैरका अँगूठा रखा, जिससे दूसरा नेत्र निकाल लेनेपर जब वह अंधा हो जाय तो इस मूर्तिके नेत्रको छूँडना न पड़े। बाणकी नोक उसने अपने दूसरे नेत्रमे चुमायी। सहसा मन्दिर दिव्य प्रकाशसे प्रकाशित हो उठा। उसी मूर्तिसे भगवान् शंकर प्रकट हो गये। उन्होंने कण्णप्यको हृदयसे लगा लिया।

‘ब्राह्मण ! मुझे पूजा-पञ्चति प्रसन्न नहीं करती। मुझे तो सरल श्रद्धापूर्ण भाव ही प्रिय है।’ भगवान् शिवने छिपे हुए ब्राह्मणको सम्बोधित किया। कण्णप्यके नेत्र स्थिर हो चुके थे। वह तो आशुतोषका पार्षद बन गया था और उनके साथ ही उनके दिव्य धाममें चला गया। ब्राह्मणको भी उस भीलकुमारके ससारि भगवान्‌का दर्शन प्राप्त हुआ। —मु० सिं०

भगवान्‌की प्राप्तिका उपाय

‘मेरा धन्य भाग्य है, भगवान् विष्णुने मुझे राजा बनाकर मेरे हृदयमें अपनी भक्ति भर दी है।’ अनन्त-शयनतीर्थमे शेषगायी विष्णुके श्रीविप्रहको स्वर्ण और मणियोंकी मालाओंसे समलकृतकर महाराजा चोल मदोन्मत्त हो उठे, मानो वे अन्य भक्तोंसे कहना चाहते थे कि ‘भगवान्‌की पूजामे मेरी स्पर्धा करना ठीक नहीं है।’ वे भगवान् विष्णुका चिन्तन करने लगे।

‘यह आप क्या कर रहे हैं ? देखते नहीं कि भगवान्‌का विग्रह रहोंकी मालाओंसे कितना रमणीय हो चला है नयनोंके लिये ? वार-बार तुलसीदलसे आप

स्वर्ण और मणियोंको ढककर भगवान्‌का रूप असुन्दर कर रहे हैं !’ महाराजाने दीन ब्राह्मण विष्णुदासके हृदय-पर आधात किया धनके मदमे।

‘भगवान्‌की पूजाके लिये हृदयके भाव-पुष्पकी आवश्यकता है, महाराज ! सोने और हीरेसे उनका महत्त्व नहीं ऑका जा सकता। भगवान्‌की प्राप्ति भक्तिसे होती है।’ विष्णुदासने चोलराजसे निवेदन किया। भक्त ब्राह्मण विष्णुसूक्तका पाठ करने लगे।

‘देखना है, पहले मुझे भगवान्‌का दर्शन होता है या आपकी भक्ति सफल होती है।’ राजाने काश्ची-

निवासी अपनी एक दरिद्र प्रजाको चुनौती दी । वे राजधानीमें लौट आये ।

× × × ×

महाराजाने मुद्गल ऋषिमो आमन्त्रितकर भगवान्-के दर्शनके लिये विष्णुजन्म का आयोजन किया । भगवती ताम्रपर्णी नदीके कलरवसे निनादित उनकी राजधानी काङ्क्षीमें सर्णयूपकी आभा ऐसा लगती थी मानो अपने दिव्य वृक्षोंसमेत चैत्रथ वनकी साकार श्री ही धरतीपर उत्तर आयी हो । वेदमन्त्रोंके मधुर गानसे यज्ञ आरम्भ हो गया । काङ्क्षी नगरी शाक्षज्ञ पण्डितों और मन्त्रदर्शी ऋषियोंसे परिपूर्ण हो उठी । दान-दक्षिणाकी ही चर्चा नगरीमें नित्य होने लगी ।

इधर दीन ब्राह्मण भी क्षेत्र-सन्यास ग्रहणकर अनन्त-शयनतीर्थमें ही भगवान् विष्णुकी आराधना और उपासना तथा व्रत आदिका अनुष्ठान करने लगे । उनका ग्रण था कि जबतक भगवान्का दर्शन नहीं मिल जायगा तब-तक काङ्क्षी नहीं जाऊँगा । वे दिनमें भोजन बनाकर भगवान्को भोग लगानेपर ही प्रसाद पाते थे ।

एक समय सात दिनतक लगातार भोजन चोरी गया । दुवारा भोजन बनानेमें समय न लगाकर वे निराहार रहकर भगवान्का भजन करने लगे । सातवें दिन वे छिपकर चोरकी राह देखने लगे । एक दुवला-पतला चाण्डाल भोजन लेकर भागने लगा । वे करुणासे द्रवी-

भूत होकर उसके पीछे धी लेकर दौड़ पडे । चाण्डाल मूर्छित होकर गिर पड़ा तो विष्णुदास अपने बख्तसे उस-पर समीरका सचार करने लगे ।

‘परीक्षा हो गयी, भक्तराज !’ चाण्डालके स्थानपर शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारणकर साक्षात् विष्णु प्रकट हो गये । अलसीके फ़लके समान श्याम शरीरकी शोभा निराली थी—हृदयपर श्रीवत्स-चिह्न था । वक्षपर कौस्तुभ-मणि थी । मुकुट और पीताम्बरकी झाँकी अनुपम थी । श्रीविष्णुका दर्शन करते ही विष्णुदासके हृदयमें सत्त्विक प्रेमका उदय हो गया । वे अचेत हो गये । वे उस मूर्छित अवस्थामें नारायणको प्रणाम तक न कर सके । भगवान् ने ब्राह्मणको अपना रूप दिया । विष्णुदास विमानपर बैठकर बैकुण्ठ गये । देवोंने पुष्पवृष्टि की, अप्सरा तथा गन्धवोंने नृत्य-गान किया ।

× × × ×

‘यज्ञ समाप्त कर दीजिये, महर्षे !’ चोलराजने मुद्गलका ध्यान आकृष्ट किया । उन्होंने विष्णुदासको विमानपर जाते देखा । यह सोचकर कि भक्ति ही श्रेष्ठ है, महाराज धधकते यज्ञकुण्डमें कूद पडे । विष्णुभगवान् प्रकट हो गये । उन्हें दर्शन देकर बैकुण्ठ ले गये ।

विष्णुदास पुष्पशील और चोलराज सुशील पार्षदके नामसे प्रसिद्ध हैं ।—रा० श्री० (पद्मपुराण, उत्तरा०)



महापुरुषोंके अपमानसे पतन

बृत्रासुरका वध करनेपर देवराज इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी । इस पापके भयसे वे जाकर एक सरोवरमें छिप गये । देवताओंको जब हँड़नेपर भी देवराजका पता नहीं छागा, तब वे बड़े चिन्तित हुए । सर्वका राज्यसिंहासन सूना रहे तो त्रिलोकीमें सुव्यवस्था कैसे रह सकती है । अन्तमें देवताओंने देवगुरु बृहस्पतिकी सलाहसे राजा नहुषको इन्द्रके सिंहासनपर तबतकके लिये

बैठाया, जबतक इन्द्रका पता न लग जाय ।

इन्द्रत्व पाकर राजा नहुप प्रभुताके मदसे मदान्ध हो गये । उन्होंने इन्द्रपली शचीदेवीको अपनी पत्नी बनाना चाहा । शचीके पास दूतके द्वारा उन्होंने संदेश भेजा—‘मैं जब इन्द्र हो चुका हूँ, इन्द्राणीको मुझे स्त्रीकार करना ही चाहिये ।’

पतित्रता शचीदेवी बड़े संकटमें पड़ीं । अपने पति-

की अनुपस्थितिमें पनिके राज्यमें अव्यवस्था हो, यह भी उन्हें सीकार नहीं था और अपना पातिन्रत्य भी उन्हें परम प्रिय था । वे भी देवगुरुकी शरणमें पहुँचीं । वृहस्पनिजीने उन्हें आश्वासन देकर युक्ति बतला दी । देवगुरुके आदेशानुसार गच्छीने उस दूतके द्वारा नहुषको कहला दिया—‘यदि राजेन्द्र नहुष ऐसी पालकीपर बैठकर मेरे पास आवें जिसे सप्तर्षि ढो रहे हों तो मैं उनकी सेवामें उपस्थित हो सकती हूँ ।’

काम एवं अधिकारके मदसे मतवाले नहुषने महर्षियोंको पालकी ले चलनेकी आज्ञा दे दी । राग-द्वेष तथा मानापमानसे रहित सप्तर्षियोंने नहुषकी पालकी उठा ली । लेकिन वे ऋषिगण इस भयसे कि पैरोंके नीचे कोई चीटी या अन्य क्षुद्र जीव दब न जायँ, भूमिको ढेख-ढेखकर धीरे-धीरे पैर रखते चलते थे । उधर कामातुर नहुषको इन्द्राणीके पास शीघ्र पहुँचनेकी

आतुरता थी । वे बार-बार ऋषियोंको शीघ्र चलनेको कह रहे थे । लेकिन ऋषि तो अपने इच्छानुसार ही चलते रहे ।

‘सर्प ! सर्प !’ (शीघ्र चलो ! शीघ्र चलो !) कहकर नहुषने झुँझलाकर पैर पटका । संयोगवश उनका पैर पालकी ढोते महर्षि भृगुको लग गया । महर्षिके नेत्र लाल हो उठे । पालकी उन्होंने पटक दी और हायमें जल लेकर शाप देते हुए बोले—‘दुष्ट ! तु अपनेसे बड़ोंके द्वारा पालकी दुखाता है और मदान्व होकर पूजनीय लोगोंको पैरसे ढुकराकर ‘सर्प, सर्प’ कहता है, अतः सर्प होकर यहाँसे गिर !’

महर्षि भृगुके शाप देते ही नहुषका तेज नष्ट हो गया । भयके मारे वे कॉपने लगे । शीघ्र ही वे बड़े भारी अजगर होकर स्वर्गसे पृथ्वीपर गिर पड़े ।—सु० मिं०

(महाभारत, उद्योग ० १०-१६)

✓ गुरुसेवासे विद्या-प्राप्ति

वर्षके दिन थे, वृष्टि प्रारम्भ हो गयी थी । आयोद्धौम्य ऋषिने अपने शिष्य आरुणिको आदेश दिया—‘जाकर धानके खेतकी मेड़ बाँध ढो । पानी खेतसे बाहर न जाने पाये ।’

आरुणि खेतपर पहुँचे । मेड़ दूट गयी थी और बड़े बैगसे खेतका जल बाहर जा रहा था । बहुत प्रयत्न किया आरुणिने, किन्तु वे मेड़ बाँधनेमें सफल न हो सके । जलका बैग इतना था कि वे जो मिट्टी मेड़ बाँधनेको रखते, उसे प्रवाह वहा ले जाता । जब मेड़ बाँधनेका प्रयत्न सफल न हुआ, तब स्थिरं आरुणि दूटी मेड़के स्थानपर आड़े होकर लेट गये । उनके शरीरसे पानीका प्रवाह रुक गया ।

पानीके भीतर पड़े आरुणिका शरीर अकड़ गया । जोकों और दूसरे जलजन्तु उन्हें काट रहे थे । परंतु

वे स्थिर पड़े रहे । हिलनेका नाम भी उन्होंने नहीं लिया । पूरी रात्रि वे वैसे ही स्थिर रहे ।

इधर रात्रिमें अँखेरा होनेपर धौम्य ऋषिको चिन्ता हुई । उन्होंने अन्य शिष्योंसे पूछा—‘आरुणि कहाँ है ?’

शिष्योंने बताया—‘आपने उन्हें खेतकी मेड़ बाँधने भेजा, तबसे वे लौटे नहीं ।’

पूरी रात्रि ऋषि सो नहीं सके । सबेरा होते ही शिष्योंके साथ खेतके समीप जाकर पुकारने लगे—‘वेदा आरुणि ! कहाँ हो तुम ?’

मूर्छितप्राय आरुणिको गुरुदेवका स्वर सुनायी पड़ा । उन्होंने वहाँसे उत्तर दिया—‘भगवन् ! मैं यहाँ जलका बैग रोके पड़ा हूँ ।’

ऋषि शीघ्रतापूर्वक वहाँ पहुँचे । आरुणिको उठनेका आदेश दिया । जैसे ही आरुणि उठे, ऋषिने

उन्हें हृदयसे लगा लिया और बोले—‘वत्स ! तुम और परलोकमें भी तुम्हारा मङ्गल होगा ।’ क्यारीको विदीर्ण करके उठे हो, अत. अबसे तुम्हारा गुरुकृपासे आरुणि समस्त शाश्वोंके निदान हो नाम उदालक होगा । सब वेद तथा धर्मशाल तुम्हारे गये । वे उदालक ऋषिके नामसे प्रसिद्ध हैं । —सु० सिं० अन्त. करणमें स्वयं प्रकाशित हो जायेंगे । लोकमें (महाभारत, आदिपर्व ३)

✓ गुरुसेवा और उसका फल

महर्षि आयोद्घौम्यके दूसरे शिष्य थे उपमन्यु । गुरुने उन्हें गायें चराने और उनकी रखवाली करनेका काम दे रखा था । ब्रह्मचर्याश्रमका नियम है कि ब्रह्मचारी गुरु-सेवा करता हुआ गुरुगृहमें निवास करे । वह पासके नगर-प्रामोंसे भिक्षा माँगकर ले आये और उसे गुरुके सम्मुख रख दे । गुरुदेव उसमें जो भी उसे दें, उसीको खाकर सतुष्ट होते हैं । उपमन्यु भी इस नियमका पालन करते थे, किंतु वे जो भिक्षा माँगकर लाते थे, उसे धौम्यऋषि पूरी-की पूरी रख लेते थे । उपमन्युको उसमें से कुछ भी नहीं देते थे । उपमन्यु भी कुछ कहते नहीं थे ।

एक दिन ऋषिने पूछा—‘उपमन्यु ! मैं तुम्हारी भिक्षाका सभी अन्न रख लेना हूँ, ऐसी दशामें तुम क्या भोजन करते हो ? तुम्हारा शरीर तो हृष्ट-पुष्ट है ।’

उपमन्युने बताया—‘भगवन् ! मैं दुबारा भिक्षा माँग लाता हूँ ।’

ऋषि बोले—‘यह तो तुम अच्छा नहीं करते । इससे गृहस्थोंको सकोच होता है । दूसरे भिक्षार्थी लोगोंके जीविकाहरणका पाप होता है ।’

उपमन्युने खीकार कर लिया कि वे फिर ऐसा नहीं करेंगे । कुछ दिन बीतनेपर ऋषिने फिर पूछा—‘उपमन्यु ! तुम आजकल क्या भोजन करते हो ?’

उपमन्युने बताया—‘भगवन् ! मैं इन गायोंका दूध पी लिया करता हूँ ।’

ऋषिने डॉट—‘गायें मेरी हैं, मेरी आज्ञाके बिना इनका दूध पी लेना तो अपराध है ।’

उपमन्युने दूध पीना भी छोड़ दिया । कुछ दिन पश्चात् जब फिर ऋषिने पूछा, तब उन्होंने बताया कि वे अब बछड़ोंके मुखसे गिरा फेन पी लेते हैं । लेकिन

गुरुदेवको तो उनकी परीक्षा लेनी थी । उन्होंने कह दिया—‘ऐसी भूल आगे कभी मत करना । बछड़े वड़े दयालु होते हैं, तुम्हारे लिये वे अधिक दूध ज्ञाग बनाकर गिरा देते होंगे और स्वयं भूखे रहते होंगे ।’

उपमन्युके आहारके सब मार्ग बद हो गये । गायोंके पीछे दिनभर बन-बन दौड़ना ठहरा उन्हें, अस्त्यन्त प्रबल क्षुधा लगी । दूसरा कुछ नहीं मिला तो विवश होकर आकके पत्ते खा लिये । उन विषेले पत्तोंकी गरमीसे नेत्रकी ज्योति चली गयी । वे अधे हो गये । देख न पड़नेके कारण बनमें धूमते समय एक जलहीन कुएँमें गिर पड़े ।

सूर्यस्त हो गया, गायें बिना चरवाहेके लौट आयीं, किंतु उपमन्यु नहीं लौटे । ऋषि चिन्तित हो गये—‘मैंने उपमन्युका भोजन सर्वथा बद कर दिया । वह रुष्ट होकर कहीं चला तो नहीं गया ।’ शिष्योंके साथ उसी समय वे बनमें पहुँचे और पुकारने लगे—‘वेदा उपमन्यु ! तुम कहाँ हो ?’

उपमन्युका स्वर सुनायी पड़ा—‘भगवन् ! मैं यहाँ कुएँमें पड़ा हूँ ।’

ऋषि कुएँके पास गये । पूछनेपर उपमन्युने अपने कुएँमें पड़नेका कारण बता दिया । अब ऋषिने उपमन्यु-को देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमारोंकी स्तुति करनेका आदेश दिया । गुरु-आज्ञासे उपमन्यु स्तुति करने लगे । एक पवित्र गुरुभक्त ब्रह्मचारी स्तुति करे और देवता प्रसन्न न हों तो उनका देवत्व टिकेगा कितने दिन ? उपमन्युकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर अश्विनीकुमार कुएँमें ही प्रकट हो गये और बोले—‘यह मीठा पुआ लो और इसे खा लो ।’

नम्रतापूर्वक उपमन्युने कहा—‘गुरुदेवको अर्पण किये बिना मैं पुआ नहीं खाना चाहता।’

अश्विनीकुमारोंने कहा—‘पहले तुम्हारे गुरुने भी हमारी स्तुति की थी और हमारा दिया पुआ अपने गुरुको अर्पित किये बिना खा लिया था। तुम भी ऐसा ही करो।’

उपमन्यु बोले—‘गुरुजनोकी त्रुटि अनुगतोंको नहीं देखनी चाहिये। आपलोग मुझे क्षमा करे, गुरुदेवको अर्पित किये बिना मैं पुआ नहीं खा सकता।’

अश्विनीकुमारोंने कहा—‘हम तुम्हारी गुरुभक्तिसे

बहुत प्रसन्न हैं। तुम्हारे गुरुके दौत लोहेके हैं, परतु तुम्हारे खण्डके हो जायेंगे। तुम्हारी दृष्टि भी पहलेके समान हो जायगी।’

अश्विनीकुमारोंने उपमन्युको कुएँसे बाहर निकाल दिया। उपमन्युने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया। महर्षि आयोद्धौम्यने सब बातें सुनकर आशीर्वाद दिया—‘सब वेद और धर्मशास्त्र तुम्हें खतः कण्ठ हो जायेंगे। उनका अर्थ तुम्हें भासित हो जायगा। धर्मशास्त्रोंका तत्त्व तुम जान जाओगे।’ —सु० सिं० (महाभारत, आदि० ३)

बड़ोंके सम्मानका शुभ फल

कुरुक्षेत्रके मैदानमें कौरव-पाण्डव दोनों दल युद्धके लिये एकत्र हो गये थे। सेनाओंने व्यूह बना लिये थे। वीरोंके धनुष चढ़ चुके थे। युद्ध प्रारम्भ होनेमें क्षणोंकी ही देर जान पड़ती थी। सहसा धर्मराज युधिष्ठिरने अपना कवच उतारकर रथमें रख दिया। अक्ष-शश्व भी रख दिये और रथसे उतरकर वे पैदल ही कौरव-सेनामें भीष्मपितामहकी ओर चल पड़े।

बड़े भाईको इस प्रकार शश्वहीन पैदल शत्रु-सेनाकी ओर जाते देखकर अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेव भी अपने रथोंसे उत्तर पड़े। वे लोग युधिष्ठिरके पास पहुँचे और उनके पीछे-पीछे चलने लगे। श्रीकृष्णचन्द्र भी पाण्डवोंके साथ ही चल रहे थे। भीमसेन, अर्जुन आदि बड़े चिन्तित हो रहे थे। वे पूछने लगे—‘महाराज! आप यह क्या कर रहे हैं?’

युधिष्ठिरने किसीको कोई उत्तर नहीं दिया। श्रीकृष्णचन्द्रने भी सबको शान्त रहनेका सकेत करके कहा—‘धर्मात्मा युधिष्ठिर सदा धर्मका ही आचरण करते हैं। इस समय भी वे धर्माचरणमें ही स्थित हैं।’

उधर कौरव-दलमें बड़ा कोलाहल मच गया। लोग कह रहे थे—‘युधिष्ठिर डरपोक है। वे हमारी सेना देखकर डर गये हैं और भीष्मकी शरणमें आ रहे हैं।’ कुछ लोग यह संदेह भी करने लगे कि

पितामह भीष्मको अपनी ओर फोड़ लेनेकी यह कोई चाल है। सैनिक प्रसन्नतापूर्वक कौरवोंकी प्रशसा करने लगे।

युधिष्ठिर सीधे भीष्मपितामहके समीप पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—‘पितामह! हमलोग आपके साथ युद्ध करनेको विवश हो गये हैं। इसके लिये आप हमें आज्ञा और आशीर्वाद दें।’

भीष्म बोले—‘भरतश्रेष्ठ! यदि तुम इस प्रकार आकर मुझसे युद्धकी अनुमति न माँगते तो मैं तुम्हें अवश्य पराजयका शाप दे देता। अब मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम विजय प्राप्त करो। जाओ, युद्ध करो। तुम मुझसे वरदान माँगो। पर्याप्त! मनुष्य धनका दास है, धन किसीका दास नहीं। मुझे धनके द्वारा कौरवोंने अपने वशमें कर रखा है; इसीसे मैं नपुसकोंकी भाँति कहता हूँ कि अपने पक्षमें युद्ध करनेके अतिरिक्त तुम मुझसे जो चाहो, वह माँग लो। युद्ध तो मैं कौरवोंके पक्षसे ही करूँगा।’

युधिष्ठिरने केवल पूछा—‘आप अजेय हैं, फिर आपको हमलोग सप्राप्तमे किस प्रकार जीत सकते हैं?’

पितामहने उन्हें दूसरे समय आकर यह बात पूछनेको कहा। वहाँसे धर्मराज द्रोणाचार्यके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके उनसे भी युद्धके लिये अनुमति माँगी। आचार्य द्रोणने भी वही बातें कहकर आशीर्वाद दिया;

रंतु जब युधिष्ठिरने उनसे उनकी पराजयका उपाय श्रूत, तब आचार्यने स्पष्ट बना दिया—‘मेरे हाथमें इस रहते मुझे कोई मार नहीं सकता । परतु मेरा व्रामाव है कि किसी विश्वसनीय व्यक्तिके मुखसे युद्धमें तोई अप्रिय समाचार सुननेपर मैं धनुष रखकर ध्यानस्थ तो जाता हूँ । उस समय मुझे मारा जा सकता है ।’

युधिष्ठिर द्वौगचार्यके प्रणाम करके हृगचार्यके आस पहुँचे । प्रणाम करके युद्धकी अनुमति माँगनेपर ज्याचार्यने भी भीम्पितामहके समान ही सब बातें रखकर आशीर्वाद दिया, किंतु अपने उन कुलगुरुसे युधिष्ठिर उनकी मृत्युका उपाय पूछ नहीं सके । यह आरुण बात पूछते-पूछते हु खके मारे वे अचेन हो गये । ज्याचार्यने उनका तात्पर्य समझ लिया था । वे बोले—
राजन् । मैं अवध्य हूँ, किसीके द्वाग भी मैं मार नहीं जा

सकता । परंतु मैं बचन देता हूँ कि नित्य प्रातःकाल भगवान्से तुम्हारी विजयके लिये प्रार्थना करूँगा और युद्धमें तुम्हारी विजयका वाघक नहीं बनूँगा ।’

इसके पश्चात् युधिष्ठिर मामा शत्रुघ्निके पास प्रणाम करने पहुँचे । शत्रुघ्नने भी पितामह भीम्पकी बातें ही दुहगकर आश्रित दी, परतु साय ही उन्होंने यह बचन भी दिया कि युद्धमें अपने निपुर बचनोंसे वे कर्णको हतोन्साह करते रहेंगे ।

गुरुजनोंको प्रणाम करके, उनकी अनुमति और विजयका आशीर्वाद लेकर युधिष्ठिर भाइयोंके साथ अपनी सेनामें लौट आये । उनकी इस विनम्रताने भीम, द्रोण आदिके हृदयमें उनके लिये ऐसी सहानुभूति उत्पन्न कर दी, जिसके बिना पाण्डवोंकी विजय अन्यत्त दुष्कर थी ।—सु० सिं० (महामारत, भीम० ४३)

लक्ष्मी कहाँ रहती हैं ?

एक बार इन्द्रने बड़ी कठिनतासे राजा वल्लिको हूँढ नेकाला । उस समय वे छिपकर किसी खाली घरमें छहेके लूपमें कालक्षेप कर रहे थे । इन्द्र और वल्लिमें छुछ बातें हो रही थीं । वल्लि इन्द्रको तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया तथा कालकी महत्ता बतलायी । बात दोनोंमें बल ही रही थी कि एक अन्यत्त दिव्य खी वल्लिके गरीरसे निकल गयी । इसे देख इन्द्रको वडा आश्र्वय दृढ़ा । उन्होंने वल्लिमें पूछा—‘दानवराज ! तुम्हारे शरीरसे यह प्रमामयी क्वैनसी खी बाहर निकल पड़ी ? यह देवी है अथवा आसुरी या मानुषी ?’

वल्लि कहा—‘न यह देवी है न मानुषी और न आसुरी । यह क्या है तथा इसे क्या अभिप्रेत है सो तुम इसीसे पूछो ।’ इसपर इन्द्रने कहा—‘देवी ! तुम कौन हो तथा असुरराज वल्लिको छोड़कर मेरी ओर क्यों आ रही हो ?’

इसपर वह प्रमामयी शक्ति बोली—‘देवेन्द्र ! न तो मुझे विरोचन जानते थे और न उनके पुत्र ये बलि ही । पण्डित लोग मुझे दुस्सहा, विविसा, भूति, श्री और

लक्ष्मीके नामोंसे पुकारते हैं । तुम और दूसरे देवता भी मुझे नहीं जानते ।’

इन्द्रने पूछा—‘आयें ! तुम बहुत दिनोंतक वल्लिके पास रहीं । अब वल्लिमें कौन-सा दोष और मुझमें गुण देखकर उन्हें छोड़ मेरे पास आ रही हो ?’

लक्ष्मीने कहा—‘देवेन्द्र ! मुझे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर धाता, विधाता कोई भी नहीं हटा सकता । कालके प्रभावसे ही मैं एकको छोड़कर दूसरेके पास जाती हूँ । इसलिये तुम वल्लिका अनादर मत करो ।’

इन्द्रने पूछा, ‘सुन्दरी ! तुम अब असुरोंके पास क्यों नहीं रहना चाहतीं ?’ लक्ष्मी बोली—‘जहाँ सत्य, दान, ब्रत, तप, पराक्रम तथा धर्म रहते हैं, मैं वहाँ रहती हूँ । असुर इस समय इनसे विमुख हो रहे हैं । पहले ये सत्यवादी, जितेन्द्रिय और ब्राह्मणोंके हितैयी थे । पर अब ये ब्राह्मणोंसे ईर्ष्या करने लगे हैं, जूँठे हाय धी छूते हैं, अमश्य-भोजन करते और धर्मकी मर्यादा तोड़कर मनमाना आचरण करते हैं । पहले ये उपवास और तपमें लगे रहते थे । प्रतिदिन सूर्योदयके पहले जागते

और रातमें कभी दही या सत्तू नहीं खाते थे। रातके आचे भागमें ही ये सोते थे, दिनमें तो ये कभी सोनेका नाम भी नहीं लेते थे। दीन, अनाथ, वृद्ध, दुर्बल, रोगी तथा खियोंपर दया करते तथा उनके लिये अन्वस्थकी व्यवस्था करते थे। व्याकुल, त्रिषादग्रस्त, भयभीत, रोगी, दुर्बल, पीड़ित तथा जिसका सर्वस्व लुट गया हो, उसको सदा ढाढ़स बँधाते तथा उसकी सहायता करते थे। पहले ये कार्यके समय परस्पर अनुकूल रहकर गुरुजनों तथा वडे-बूढ़ोंकी सेवामें सदा दत्तचित्त रहते थे। ये उत्तम भोजन बनाकर अकेले ही नहीं खाते थे। पहले दूसरोंको देकर पीछे अपने उपभोगमें लाते थे। सब प्राणियोंको अपने ही समान समझकर उनपर दया करते थे। चतुरता, सरलता, उत्साह, निरहकारता, सौहार्द, क्षमा, सत्य, दान, तप, पवित्रता, दया, कोमल वाणी और मित्रोंसे प्रगाढ़ प्रेम—ये सभी गुण इनमें सदा मौजूद रहते थे। निद्रा, आठस्य, अप्रसन्नता, दोषदृष्टि, अविवेक, असंतोष और कामना—ये दुर्गुण इन्हें स्पर्गतक नहीं कर सके थे।

‘पर अब तो इनकी सारी बाते निराली तथा विपरीत ही दीख पड़ती हैं। धर्म तो इनमें अब रह ही नहीं गया है। ये सदा काम-क्रोधके वशीभूत रहते हैं। वडे-बूढ़ोंकी सभाओंमें ये गुणहीन दैत्य उनमें दोष निकालते हुए उनकी हँसी उड़ाया करते हैं। बूढ़ोंके आनेपर ये लोग अपने आसनोंपरसे उठते भी नहीं। की पतिकी, पुत्र पिताकी आज्ञा नहीं मानता। माता, पिता, वृद्ध, आचार्य, अतिथि और गुरुओंका आदर इनमें उठ गया। संतानोंके उचित लालन-पालनपर ध्यान नहीं दिया जाता। इनके रसोइये भी अब पवित्र नहीं होते। छोटे बालक आज्ञा लगाकर टकटकी बाँधे देखते ही रह जाते हैं और दैत्यलोग खानेकी चीजें अकेले चट कर जाते हैं। ये पशुओंको घरमें बाँध देते हैं, पर

चारा और पानी देकर उनका आदर नहीं करते। ये सूर्योदयतक सोये रहते हैं तथा प्रभातको भी रात ही समझते हैं। प्रायः दिन-रात इनके घरमें कलह ही मचा रहता है।

‘अब इनके यहाँ वर्णसकर संतानें होने लगी हैं। वेदवेत्ता ब्राह्मणों और मूर्खोंको ये एक-समान आदर व अनादर देते हैं। ये अपने पूर्वजोंद्वारा ब्राह्मणोंको दी हुई जागीरे नास्तिकताके कारण छीन लेते हैं। शिष्य अब गुरुओंसे सेवा करवाते हैं। पत्नी पतिपर शासन करती है और उसका नाम लेलेकर पुकारती है। संक्षेपमें ये सब-के-सब कृतम्भ, नास्तिक, पापाचारी और स्वैरी बन गये हैं। अब इनके वदनपर पहलेका-सा तेव नहीं रह गया।

‘इसलिये देवराज ! अब मैंने भी निश्चय किया कि इनके घरमें नहीं रहूँगी। इसी कारणसे दैत्योंका परित्याग करके तुम्हारी ओर आ रही हूँ। तुम मुझे खीकार करो। जहाँ मैं रहूँगी, वहाँ आशा, श्रद्धा धृति, क्षान्ति, विजिति, संतति, क्षमा और जय—आठ देवियाँ भी मेरे साथ निवास करेंगी। मेरे साथ ही ये सभी देवियाँ भी असुरोंको त्यागकर आ गयी हैं। तुम देवताओंका मन अब धर्ममें लग गया है, अतएव अब हम तुम्हारे ही यहाँ निवास करेंगी।’

तदनन्तर इन्द्रने उन लक्ष्मीजीका अभिनन्दन किया सारे देवता भी उनका दर्शन करनेके लिये वहाँ आये। तत्पश्चात् सभी लौटकर खगमे आये। नारदजी लक्ष्मीजीके आगमनकी सर्गाय सभामें प्रशंसा की। एसाथ ही पुनः सभीने वाजे-गाजेके साथ पुष्ट अमृतकी वर्षा की। तबसे फिर अखिल संसार धर्म त सुखमय हो गया। —जा० श०

(महाभारत, गान्तिपर्व, मोक्ष० २२४-२२८, वृहद् विस्मृति, अध्याय १९। महा० अनुशासनपर्व, अध्याय १।

धर्मो रक्षति रक्षितः

वनवासके समय पाण्डव द्वैतवत्मेथे। उन्हें युद्धे नर एक दिन उन्हें प्यान लगा। धर्मज युविष्टिने क्षमा चडकर इच्छाप्राप्त देखा। एक स्यानग हिन्दी नथा जल होनेवे अन्य चिह्न देखकर उन्होंने कुछको जल लाने भेजा। नकुल उस स्यानकी लोग ल पढ़े। वहाँ उन्हें लच्छ जलमे पूर्ण एक सूर्योदय लाइः किंतु जैने ही वे सूर्योदयमे जल पीने लगे, उन्हें ह वार्गी सुनारी पड़ी—‘इस सूर्योदयका पानी पीनेवा हस्त मन को।’ इसके जलमर मैं पहले ही अविकर र चुका हूँ। पहले मेरे प्रश्नोक्त उत्तर दे लो, तब नीर पीना।’

नकुल बहुत आमे थे। उन्होंने उस बानग, जिसे क बन बह नहा था, ध्यान नहीं दिया। लैकिल जैमे औं उन्होंने सूर्योदयका जल सुउमे लाया। वैमे ही जीव होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

इधर नकुलको गमे बहुत देर हो गया तो युविष्टिने हृदेवको भेजा। सहेत्रको भी सूर्योदयके धान यज्ञर्जी पीं सुनारी पड़ी। उन्होंने भी उसुग ध्यान नदेकर जल ला चाहा और वे भी प्रागर्हीन होकर गिर गये। इसी चक्र वर्णगत्ते अर्हुतको और र्ममसेनको भी भेजा। दोनों भी वार्गीवारीने आये और उनकी भी यही शा हुई।

जब जल लाने गये कोई नाई न लैटे, तब बहुत के होनेवे भी लय युविष्टि उस सूर्योदयके पास पहुँच पै। उन्हें देवोपन भाइयोंको प्रणहीन पृथ्वीपर पढ़े लक्ष उन्हें अगर हुँ-ख हुआ। दैरका भाइयोंके ये शोक करके उन्हमें वे भी जल पीनेको उच्यन ए। उन्हें पहले तो यहाँ बगुलेके लग्ने नेत्र। किंतु विष्टिको पूछनेपर कि—‘नुम कौन हो?’ वह यहके ऐसे एक वृक्षपर दिखारी पड़ा।

‘गार्वाचित्र वर्मान् युविष्टिने कहा—‘यक्ष ! मैं दृसते—

के लैकिलकी उन्हु नहीं लेना चाहता। तुमने तरो वक्ते जलग पहले ही लैकिलर जर लिया है, तो वह जल तुम्हारा रहे। तुम जो प्रस्तु पूछना चाहते हो, पूछो। मैं अगरी वृद्धिके अनुसार उनका उत्तर देनेवा प्रयत्न करूँगा।’

यहाँ लगेवों प्रस्तु पूछे। युविष्टिने सभी प्रस्तोत्र उचित उत्तर दिया। उनके उत्तरसे संतुष्ट होन्द उन्हें कहा—‘गजन् !’ तुमने मेरे प्रस्तोत्रके ठंक उत्तर दिये हैं; इसलिये अगले इन भाइयोंसे जिस एकको चाहो, वह जीवित हो सकता है।’

युविष्टि बोले—‘आज मेरे छोटे भाई नकुलको जीवित कर दो।’ यहाँ अव्यर्थके स्वरमे कहा—‘तुम गज्जर्हीन होन्द उनमे भड़क रहे हो, अबुझामे तुम्हें उन्हमें संप्राप्त करना है। ऐसा दवामे अगले परम पात्रमी मैं भी अन्मेन अथवा अलज्जावृद्धामगि अरुनको छोडकर नकुलके लिये क्यों अत्र हो?’

वर्णगज युविष्टिने कहा—‘वक्ष ! राजका सुख या वनवासका हुँ-ख तो मापके अनुसार पिल्ला है, किंतु मनुष्यको वर्णकर ल्यान नहीं करना चाहिये। जो वर्णर्जी रक्षा करना है, वर्म खंडं उसकी रक्षा करता है। इसलिये मैं वर्मको नहीं छोड़ूँगा। कुर्ता और माद्री दोनों नेरी माता है। कुर्तीका पुत्र मैं जीवित हूँ। अन मैं चाहता हूँ कि नेरी दूसरी माता मार्दीका वंश भी नष्ट न हो। उनका भी एक पुत्र जीवित रहे। तुम नकुलको जीवित करके दोनोंको पुत्रनी कर दो।’

यहाँ कहा—‘तुम अर्थ लैर कामके विक्रयमें परम उदार हो। अन: तुम्हारे चारों भाई जीवित हो जायें। मैं तुम्हारा गिरा वर्म हूँ। तुम्हें देखेवे तथा तुम्हारी वर्मनिष्टिकी परिका लेने आपा था।’

वर्मने अपना स्वल्प प्रकट कर दिया। चारों सून-प्राप्त पाण्डव तकाल उठ बैठे।—दु० चिं०

(महामारतः वन० ३१२-३१४)

✓ भगवान् कहाँ कहाँ रहते हैं ?

बहुत पहलेकी बात है कोई नरोत्तम नामका ब्राह्मण था। उसके घरमें मौँ-बाप थे। तथापि वह उनकी परिचर्या न कर तीर्थयात्राके लिये निकल पड़ा। उसने अनेक तीर्थोंमें पर्यटन तथा अग्रगाहन किया, जिसके प्रतापसे उसके गीले बब्र निरालम्ब आकाशमें उड़ने और सूखने लगे। जब उसने यों ही स्वच्छन्द गतिसे अपने बब्रोंको आकाशमें उड़ते चलते देखा, तब उसे अपनी तीर्थचर्याका महान् अहंकार हो गया। वह समझने लगा कि मेरे समान पुण्यकर्मा यशस्वी इस संसारमें दूसरा कोई भी नहीं है। एक बार उसने ऐसा ही कहाँ कह भी दिया। तबतक उसके सिरपर एक बगुलेने बीट कर दी। कुद्र होकर नरोत्तमने बगुलेको शाप दे दिया, जिसमें वह बगुला वही जलकर भस्त हो गया। पर आश्र्य ! तबसे उसके कपड़ेका आकाशमें उड़ना और सूखना बंद हो गया। अब नरोत्तम वडा उदास हो गया। तबतक आकाशवाणी हई—‘ब्राह्मण ! तुम परम-धार्मिक मूक चाण्डालके पास जाओ, वहीं ‘धर्म क्या है’ इसका तुम्हे पता चल जायगा तथा तुम्हारा कन्याण भी होगा।’

१ माता-पिताकी सेवा करनेवालेके घर

नरोत्तमको इससे वडा कुद्रहल हुआ। वह तुरत पता लगाता हुआ मूक चाण्डालके घर पहुँचा। वहाँ मूक वडी श्रद्धासे अपने माता-पिताकी शुश्रूपामें लगा था। उसके विलक्षण पुण्यप्रतापसे भगवान् विष्णु निरालम्ब उसके घर अन्तरिक्षमें वर्तमान थे। वहाँ पहुँचते ही नरोत्तमने मूकको आवाज दी और कहा—‘अरे ! मैं यहाँ आया हूँ, तुम मुझे यहाँ आकर शाश्वत हितकारी धर्मतत्त्वका स्वरूपतः वर्णन करना चाहता हूँ।’

मूकबोला—‘मैं अपने माता-पिताकी सेवामें लगा हूँ। इनकी विधिपूर्वक परिचर्या करके तुम्हारा कार्य करूँगा। तबतक चुपचाप दरवाजेपर बैठे रहो। मैं तुम्हारा आतिथ्य करना चाहता हूँ।’

अब तो नरोत्तमकी लोरी चढ गयी। वह बडे जोरोसे बिंगड़कर बोला—‘अरे ! मुझ ब्राह्मणकी सेवासे बढ़कर तुम्हारा क्या काम आ गया है ? तुमने मुझे हँसी-खेल समझ रखा है क्या ?’ मूकने कहा—‘ब्राह्मण देवता। मैं बगुला नहीं हूँ। तुम्हारा क्रोध बस, बगुले-पर ही चरितार्थ हो सकता है, अन्यत्र कहाँ नहीं। यदि तुम्हें मुझसे कुछ पूछना है तो तुम्हें यहाँ ठहर-कर प्रनीभा करनी ही पड़ेगी। यदि तुम्हारा यहाँ ठहरना कठिन ही हो तो तुम पतित्रिताके यहाँ जाओ। उसके दर्शनसे तुम्हारे अभीष्टकी सिद्धि हो सकेगी।’

२ पतित्रिताके घर

तबतक द्विजस्त्रधारी विष्णु चाण्डालके घरसे बाहर निकल पड़े और नरोत्तमसे बोले—‘चलो, मैं तुम्हें पतित्रिताका घर दिखला दूँ।’ अब नरोत्तम उनके साथ हो लिया। उसने उनसे पूछा—‘ब्राह्मण ! तुम इस चाण्डालके घर लियोंमें आवृत होकर क्यों रहते हो ?’ भगवान् बोले—‘इसका रहस्य तुम पतित्रिता आदिका दर्शन करनेपर स्वयमेव समझ जाओगे।’

नरोत्तमने पूछा—‘महाराज ! यह पतित्रिता कौन-सी वला है ? पतित्रिताका लक्षण तथा महत्व क्या है ? क्या आप इस सम्बन्धमें कुछ जानते हैं ?’ भगवान् ने कहा—‘पतित्रिता वही अपने दोनों कुलोंके सभी पुरुषोंका उद्धार कर देती है। प्रलयपर्यन्त वह स्वर्गभोग करती है। कालान्तरमें जब वह जन्म लेनी है, तब उसका पति सार्वभौम राजा होता है। सैकड़ों जन्मोंतक यह क्रम चल-कर अन्तमें उन दोनों पति-पत्नीका मोक्ष होता है। जो वही-प्रेममें अपने पुत्रसे सौगुना तथा भयमें राजासे सौगुना पतिसे प्रेम तथा भय करती है, उसे पतित्रिता कहते हैं। जो काम करनेमें दासीके समान, भोजन करनेमें माताके समान, विहारमें वेश्याके समान, विपत्तियोंमें मन्त्रीके समान हो, उसे पतित्रिता कहते हैं। वैसी ही यहाँ एक शुभा नामकी पतित्रिता वही है।

तुम उसने जाकर धर्मके रहस्योंको समझो ।’* अब नरोत्तम पनित्रनाके दरवाजेपर पहुँचा । वहाँ पहुँचकर उसने आवाज लगायी । पनित्रना आवाज सुनकर बाहर आ गयी । नरोत्तम बोला—‘मुझे धर्मज्ञ रात्र्य समझाओ ।’ पनित्रना बोली—‘ब्राह्मण देवना ! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ । इस समय मुझे पनित्री परिचर्या दरनी है । अभी तो आप अनियिके दृश्यमें नहे कहाँ गिराने । पनित्रेयाने निरुत्त दोकर मैं आपका कार्य करूँगी ।’ नरोत्तम बोला, ‘कन्याणि ! मुझे आनियरी कोई आपश्शरना नहीं है । न तो मुझे भूम है, न प्राम और न थकापट । तुम मुझे साधारण ब्राह्मण नमझकर नैड मन करो । यदि तुम मेरी बान नहीं गाननी हो तो मैं तुम्हें शाप देंगा ।’

पनित्रनाने कहा—‘मैं बगुग नहीं हूँ । यदि तुम्हें पैसी ही जन्मी है तो तुम तुगधार वैश्यके पास चले जाओ । वह तुम्हारा कार्य कर सकेगा ।’

३ लोभरहित मत्यवादी वैश्यके घर

नरोत्तम उन पैश्यके घर पहुँचा । वहाँ पहुँचकर उसने उन ब्राह्मणको फिर देखा, जिन्हे चाण्डालके घरमें देखा था । तुगधार व्यापारके कार्यमें बेनरे फैसा था । उसने कहा—‘ब्राह्मण देवना ! एक प्रहर रातक मुझे अपकाय नहीं । आप शृणुया अद्वौहकके पास पढ़ाएं; वह आपके द्वाग बगुलेकी मृत्यु, बलोंका उड़ना और फिर न उड़नेके गहन्योंको यथाविधि बताए फैसा था ।’ वह ब्राह्मण फिर नरोत्तमके साथ हो गया । नरोत्तमने उसमें पूछा—‘ब्राह्मण ! आधर्य हैं, वह तुलधार म्मान, सम्या, देवर्पि, पितृ-नर्पण आदिसे सर्वथा रहित है । इसका अंरीर मठका भण्डार हो रहा है । इसके सारे

* पुचान्छन्तुगुण स्नेहाद् राजन च भयादथ ।
आश्रयेत् पति श्रीरि या पञ्चेत् सा पतिवता ॥
कार्यं दासी रती वैश्या भोजने जननीममा ।
निष्टु मन्त्राणी भर्तुः सा च भार्या पतिवता ॥
भर्तुरुग्जा न लघ्देद् या मनोगाकायरूपमिं ।
मुक्ते पतौ सदा चात्ति सा च भार्या पतिवता ॥
(पद्मपुराण, सृष्टि० ४७ । ५५-५७)

वक्त्र भी बेढ़ने हो रहे हैं, तथापि यह मेरी सारी बानोंको जो इसके परोक्षमें बटी है, कैसे जान गया ?’

ब्राह्मण-रूपधारी भगवान् बोले—‘इसने सन्य और समतामें तीनों लोकोंको जीत लिया है । यह मुनिगणोंके साथ देवना और पितरोंको भी तुस कर चुका और इसीके प्रभावमें भूत, भगिष्ठ और वर्तमानकी परोक्ष धटनाओंको भी जान सकता है । सत्यसे बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं, ज्ञानमें बड़ा कोई दूसरा पातक नहीं । इसी प्रकार समताकी भी महत्ता है । शत्रु, मित्र, मध्यस्थ—इन तीनोंमें जिसका समान भाव उत्पन्न हो गया है, उसके सारे पाप क्षीण हो गये और वह पिण्डु-सायुज्यको प्राप्त कर लेना है । जिस व्यक्तिमें सत्य, जम, दम, धैर्य, स्वैर्पि, अनालस्य, अनाधर्य, निर्लोभिता और समना-जैसे गुण हैं, उसमें सारा विश्व हा प्रतिष्ठित है । ऐसा पुरुष कोड़ों बुल्दोंका उद्धार कर लेना है । उसके शरीरमें माक्षात् भगवान् पिंगजमान हैं । वह देवलोक-नरलोकके सभी वृत्तान्तोंको जान सकता है ।’*

नरोत्तमने कहा—‘अस्तु ! तुलधारकी सर्वज्ञताका कारण मुझे ज्ञान हो गया, पर अद्वौहक कौन तथा किस प्रभावजाता है, क्या यह आप जानते हैं ?’

४ जितेन्द्रिय मित्रके घर

प्रियरूपी भगवान् बोले—‘कुछ समय पूर्वकी बात है । एक राजकुमारकी छीं बड़ी सुन्दरी तथा युवती थी । एक दिन उस राजकुमारको अपने पिताकी आजागे कहीं बाहर जानेकी आवश्यकता हुई । अब वह तीके सम्बन्धमें सोचने लगा कि कहाँ उसे रखा जाय, जहो उसकी पूरी सुरक्षा हो सके । अन्तमें वह अद्वौहकके घर गया और अपनी खीके रक्षार्थ उसने

५ सत्य दमः गमश्चेव धैर्यं स्वैर्पिमलोभता ।

अनाधर्यमनालस्य तसिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

एव यो वर्तते नित्यं कुलकोटिं समुद्रेत् ।

तेन वै देवलोकस्य नरलोकस्य सर्वग ॥

वृत्तं जानाति धर्मज्ञस्तस्य देहे स्थितो हरि ॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ४७ । ९७-९९)

प्रार्थना की। अद्रोहकने कहा—‘न तो मैं तुम्हारा पिता हूँ न भाई-बन्धु। तुम्हारे मित्रोंमें से भी मैं नहीं होता, फिर तुम ऐसा प्रस्ताव क्यों कर रहे हो ?’

“राजकुमार बोला—‘महात्मन् ! इस विश्वमें आप-जैसा धर्मज्ञ और जितेन्द्रिय कोई दूसरा नहीं है, इसे मैं भली प्रकार जानता हूँ। यह अब आपके घरमें ही रहेगी, आप ही जैसे हो इसकी रक्षा कीजिये।’ यों कहकर वह राजकुमार चला गया। अद्रोहकने बड़े धैर्यसे उसकी रक्षा की। छः मासके बाद राजकुमार पुनः लौटा। उसने लोगोंसे अपनी स्त्री तथा अद्रोहकके प्रबन्धके सम्बन्धमें पूछताछ की। अधिकाश लोगोंने अद्रोहककी निन्दा की। बात अद्रोहकको भी मालूम हुई। उसने लोकनिन्दासे मुक्त होनेके लिये एक बड़ी चिता बनाकर उसमें आग लगा दी, तबतक राजकुमार वहाँ पहुँच गया। अद्रोहकको उसने रोकना चाहा। पर उन्होंने एक न सुनी और अग्निमें प्रवेश कर गये। फिर भी अग्निने उनके अङ्गों तथा वस्त्रोंको नहीं जलाया। देवताओंने साधुवाद दिया और अद्रोहकके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा की। जिन लोगोंने अद्रोहककी निन्दा की थी, उनके मुँहपर अनेकों प्रकारकी कोढ़ हो गयी।

देवताओंने ही उन्हें अग्निसे बाहर किया। उनका चरित्र सुनकर मुनियोंको भी बड़ा विस्मय हुआ। देवताओंने राजकुमारसे कहा—‘तुम अपनी स्त्रीको स्त्रीकार करो। इन अद्रोहकके समान कोई मनुष्य इस संसारमें नहीं हुआ है।’ तदनन्तर वे राजकुमार-दम्पति अपने राजमहलको चले गये। तबसे अद्रोहकको भी दिव्य दृष्टि हो गयी है।”

तत्पश्चात् नरोत्तम अद्रोहकके पास पहुँचे और उनका दर्शन किया। जब अद्रोहकने उनके पधारनेका कारण पूछा, तब उसने धोतियोंके न सूखने, बगुलेके बीट करने और उसके जलनेका रहस्य पूछा। अद्रोहकने उन्हे वैष्णवके पास जानेको कहा। वैष्णवने कहा—‘भीतर चलकर भगवान्‌का दर्शन कीजिये।’ भीतर जानेपर नरोत्तमने देखा कि वे ही ब्राह्मण जो चाण्डाल, पतिव्रता एवं धर्मव्याधके घरमें थे और जो उसे बराबर राह बतलाते रहे थे, उस मन्दिरमें वर्तमान हैं। वहाँ उन्होंने सब बातोंका समाधान कर दिया और उसे माता-पिताकी सेवाकी आज्ञा दी। तबसे नरोत्तम घर लौट आया और माता-पिताकी दृढ़ भक्तिमें तछीन हो गया।

(पञ्चपुराण, सृष्टिवर्ण, अध्याय ४७)

धर्मनिष्ठ सबसे अजेय है

देवता और दैत्योंने मिलकर अमृतके लिये समुद्र-मन्थन किया और अमृत निकला भी, किंतु भगवान् नारायणके कृपापात्र होनेसे केवल देवता ही अमृत-पान कर सके। दैत्य छले गये, उन्हे परिश्रम ही हाथ लगा। परिणाम तो देवासुर-सग्राम होना ही था। उसमें भी अमृत-पानसे अमर बने देवता ही विजयी हुए। दैत्यराज बलि तो युद्धमें मारे ही गये थे, किंतु आचार्य शुक्रने बलि तथा युद्धमें मरे अन्य दैत्योंको भी अपनी संजीविनी त्रिधासे जीवित कर लिया। बलि अपने अनुचरोंके साथ अस्ताचल चले गये।

अपनी सेवासे बलिने आचार्य शुक्रको प्रसन्न कर लिया। आचार्यने एक यज्ञ कराया। यज्ञकुण्डसे प्रकट

होकर अग्निने बलिको दिव्य रथ, अक्षय त्रोण तथा अन्य शस्त्र दिये। अब फिर बलिने स्वर्गपर चढ़ाई कर दी। इस बार बलिका तेज इतना दुर्धर्ष था कि देवराज इन्द्र उन्हें देखते ही हताश हो गये। देवगुरु बृहस्पतिने भी देवताओंको चुपचाप भागकर पर्वतीय गुफाओंमें छिय जानेका आदेश दिया। अमरावतीपर बिना युद्ध बलिने अधिकार कर लिया।

‘स्वर्गके सिंहासनपर वही स्थिर रह सकता है, जिसने सौ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण किये हों। कोई भी कर्म तभी फल देता है, जब वह कर्मभूमि पृथ्वीपर किया गया हो। स्वर्गमें किये कर्म कोई फल नहीं देते। तुमने स्वर्गपर अधिकार कर लिया है, किंतु यह अधिकार बना

के इनके लिये मौ उद्देश्य कह तुम्हें पूरे कर सके जाएंगे।” अत्र वृक्षों की विकास समझा।

विनिमयों विकल्पों आजमें वृक्षों द्वारा प्राप्तज्ञान ही वृक्ष बन ले दिया था। वृषभीकर नर्मदागंग परिवर्तन द्वारा उत्तर राज्यकाटा करने और एकजैसा काढ़ दृम्भा अनुसेव यज्ञ दे करने लगे। निवानवे अवश्येय यह निर्विचार पूरे हो गये। अनिवार्य अवश्येय भी प्राप्तम् हो गया।

उत्तर द्वितीय अविनि अग्रदे गृहीत उत्तरों दृष्टि से अन्यकल्प दृग्य थी। उत्तरोंने व्याप्ति एविदेव मार्त्तिर्य वशस्त्रे प्रार्थना की—‘मैंना कोई उपग्रह दत्तानंदी हूँ कर, जिसे भैरों पुरोऽर्थि विवित दूर हो जाय।’

महर्षिने पर्वत वर्णके भगवान्‌सी अग्रगता करनेका शब्दिन दिया। अविनिमये वर्ती श्रद्धा उत्तर नगरानि गृह दृग्य दूर गिया। उमर्ज्ज अग्रगतामें संतुष्ट होना गृहगत नागमगतें उत्तरों द्वारा दिया। गृहगताने कहा—‘ऐपि’ जो उमर्ज्जी रक्षा रखना है, धर्म सदा उमर्ज्जी रक्षा रखना है। जो धर्मज्ञ है वह वहाँ आवाजें, आदेश चलाहै वह ऐसे लिये ही आनें हैं। उत्तरों नाम व्यवस्थाएव वर्ती कोई चिज्जर नहीं ही सगत। लेकिन ऐसी उत्तराना वर्द नहीं जाती। वे तुम्हारे पुत्रनाममें अन्यथा त्रैग्री और देवताओंसे उत्तर व्याप्त युनिवूर्यज दिलाउँगा।’

व्याप्ति देवता नगरानु अन्तर्हित हो गये। अविनिमये उत्तरोंने व्यवस्थामें अग्रगत व्याप्ति किया। न्यूर्य व्यवस्थाने अविनिमये भाव व्यवस्थाका सुन्दर कराय। व्यवस्थानव्यवस्था हो जानेव वामन विक्षी गृहगतार्जु और चल पड़े। उत्तरों पहिने कठिमें नेत्रध्या बौद्धि, उत्ता लगये, डट और जड़मग कमण्डलु लिये। वृक्षचारी वेदामें वामन सक्षात् नूर्मके भगवन तेजस्वी रहने थे।

दैत्यराज विक्रम अन्तिम अवश्येय यज्ञ भी पूर्णहुनि-

के लिया ही का। वृश्चाक्रांते द्वारा मूर्तिमान् नार्तिङ्ग-वेद समान ज्व वामन पहुँचे, तब उनके सम्मानमें सर्वा द्वितीय द्वैतगत विष्ठि एव अन्य सदस्य तड़े हो गये। विनिमये वडे अद्वान्ये उत्तरे उच्चासनम् बैठाया। उनके चरण गोप्ता उनकी पूजा की। अन्यम् नवतार्ष्वक विष्ठि ने हाथ जोड़कर कहा—‘आप वृक्षचारी वृक्षगतुमार हैं। उत्तरों पवित्रान्में नै वन्य हो गया। अत्र आप दिस उद्देश्ये आये हैं, वह उत्तरार्थी कृपा करें। जै उत्तर आग माँगना चाहै, माँग ले।’

भगवन् उत्तरने देव्यवृक्षके औंगर्जकी प्रगत्या की, दानकीर्णेर्व चर्ची की दौर विक्षी दानर्गीउत्तरकी भी प्रगत्या की। इन्हा कर्के उत्तरोंने कहा—‘मुझे आपने देखेन्में तीन पठ मूरि चाहिये।’

उत्ते हैं पठ और वेले—‘मित्रुला’ आप द्वितीय हैं, जिन्हे ही तो वाल्मी ही। अरे, मूरि ही नार्मनी है तो इन्हीं भूमि तो माँग लो, जिसमें तुम्हारी अर्जिमा चढ़ जाय।’

गंतु त्रिमे तीनों लोक चाहिये, वह आर्जिका-वामपंच त्रिये मूरि क्यों ले। वर्डी गर्भागतामें वामन बौद्ध—‘गजन्’ तृष्णा बहुत बुरी होती है। यदि मैं तीन पठ मूरिमें सत्य न होऊँ तो तृष्णा तो गव्य चाहेगी, जिन गायर्ज्ज वामना ब्रह्म पूरा भूषणदलकी माँग जार्ने और आप जानते ही हैं कि तृष्णाकी तृष्णितो आपका त्रिलोकीका गव्य पाकर भी नहीं होती। तृष्णा जाप्रत् लक्ष्मी आपने कुछ अच्छा नहीं किया। मुझे तो आग मेरे पैरोंमें तीन तीन पठ मूरि दे दें—मेरे लिये इन्हा ही बहुत हैं।’

‘अच्छी वात ! जैसे आप प्रनत्त रहें।’ विनिमये हैनकर भवत्य वर्तनेवे लिये पर्वतीमें जलयात्र माँगा। परनु इन्होंमें शुक्राचारी वामनजीको पहचान गये थे। उत्तरोंने अपने शिष्यको ढाँचा—‘मृत्व ! क्या करने जा

रहा है ? ये नन्हे-से ब्राह्मणकुमार नहीं हैं। इस वेदमे तेरे सामने ये साक्षात् मायामय विष्णु खड़े हैं। ये अपने एक पदमे भूलोक और दूसरे-से खर्गादि लोक नाप लेगे। तीसग पद ग्रन्थनंको स्थान छोड़ेगे ही नहीं। सर्वस्व उन्हे देकर तू कहों रहेगा ? इन्हे हाथ जोड़ और कह दे कि देवता ! कोई और यजमान छूटो। मुझपर तो कृपा ही करो।'

'ये साक्षात् विष्णु हैं !' बलि भी चौके। अपने आचार्यपर अविश्वास करनेका कारण नहीं था। मस्तक झुकाकर दो झण उन्होंने सोचा और तब उस महामनखीने मिर्ग उठाया—'मगवन् ! आप इन्हे वडेवडे गजोंसे मेरे द्वाग जिन यज्ञमूर्ति विष्णुकी आगवना करते हैं, वे साक्षात् विष्णु ये हों या और कोई, मैं तो भूमि देनेको कह चुका। प्रह्लादका पौत्र 'हों' करके कृष्णकी भौति अश्वीकार कर दे, यह नहीं हो सकता। मेरा कुछ भी हो जाय, द्वारपर आये ब्राह्मणको मैं शक्ति रहते विमुख नहीं करूँगा।'

शुक्राचार्यको क्रोध आ गया। उन्होंने गेयपूर्वक कहा—'तू मेरी वन मानता, अपनेको वडा धर्मात्मा और पण्डित समझता है, इससे तेरा वैभव तकाल नहु हो जायगा।'

बल्नि पस्तक झुकाकर गुरुदेवका शाप स्वीकार कर लिया किन्तु अपना निश्चय नहीं छोड़। जल लेकर

उन्होंने वामनको तीन पद भूमि देनेका सकल्प कर दिया। भूमिडान लेने ही वामन भगवान् ने शिराट्खूप धारण कर लिया। एक पदमे पूरी भूमि उन्होंने नाप ली और दूसरा पद उठाया तो उसके अङ्गुष्ठका नख ब्रह्मण्डावरणको भेड़कर बाहर चला गया। अब भगवान् ने बलिसे कहा—'तू बडा दानवीर बनता था। मुझे तू तीन पद भूमि दी हैं। दो पदमे ही तेरा त्रिलोकीका राज्य पूरा हो गया। अब तीसरे पदको रखनेका स्थान बता।'

बलिने मस्तक झुकाकर कहा—'सम्पत्तिमे सम्पन्निका स्वामी बडा होता है। आप तीसग पद मेरे मस्तकपर रखे और अपना दान पूर्णत. ले ले।'

भगवान् ने तीसरा पद बलिके मस्तकपर रखकर उन्हें धन्य कर दिया। इन्द्रको स्वर्ग प्राप्त हुआ। स्वयं वामन-भगवान् उपेन्द्र वने इन्द्रकी रक्षाके लिये, किन्तु बलिजो तो उन्होंने अपने आपको ही दे दिया। स्वर्गमे भी अविक ऐश्वर्यमय सुतल्लोक प्रभुने बलिको निवासके लिये दिया। अगले मन्त्रन्तरमें बलि इन्द्र बनेगे, यह आश्वासन दिया। इससे भी आगे यह वरदान दिया कि वे अखिलेश्वर स्वयं हाथमें गदा लिये सदा सुतलमें बलिके द्वारपर उपस्थित रहेगे। इस प्रकार छले जाकर भी बलि विजयी ही रहे और दयामय प्रभु उनके द्वारपाल बन गये। —सु० मिं० (श्रीमद्भागवत ८। १५—२३)

धर्मरक्षामें प्राप्त विपत्ति भी मङ्गलकारिणी होती है

पाण्डव वनवासका जीवन व्यर्तीत कर रहे थे। भगवान् व्यासकी प्रेरणामे अर्जुन अपने माझ्योकी आज्ञा लेकर तपस्या वरने गये। तप करके उन्होंने भगवान् अङ्गरको प्रसन्न किया, आशुतोषने उन्हे अपना पाशुपताल प्रदान किया। इसके अनन्तर देवराज इन्द्र अपने स्थां वैयकर अर्जुनको खर्गलोक ले गये। इन्द्रने तथा अन्य लोकपालोंने भी अपने दिव्याख अर्जुनको दिये।

उन दिव्याखोंको लेकर अर्जुनने देवताओंके शत्रु निवात-कवचनामक असुरगणोंपर आक्रमण कर दिया। देवता भी उन असुरोंपर विजय नहीं पा रहे थे, उन असुरोंके वार-वारके आक्रमणसे देवता सत्रस्त हो रहे थे। अर्जुनने शुद्धमे असुरोंको पराजित कर दिया। उनके गाण्डीव धनुपसे छूटे वाणोंकी मारसे व्याकुल होकर असुर मार खडे हुए और पाताल चले गये।

असुर-विजयी मध्यम पाण्डव जब अमरावती लौटे, तब देवनाओंने वडे उछाससे उनका खागत किया। देव-सभा भरपूर सजायां गयी। देवराज इन्द्र अर्जुनको साथ लेकर अपने सिंहासनपर बैठे। गन्धर्वगणोंने श्रीणा उठायी। खर्गकी श्रेष्ठतम अप्सराएँ एक-एक करके नृत्य करने लगीं। देवराज किसी भी प्रकार अर्जुनको संतुष्ट करना चाहते थे। वे ध्यानसे अर्जुनकी ओर देख रहे थे कि उनकी सूचि और आकर्षणका पता लगा सकें।

अर्जुन स्वर्गमें थे। प्रामद्विक सौन्दर्य एवं ऐश्वर्यकी पश्चकाश्च स्वर्गभूमि आज विशेषरूपसे सजायी गयी थी। अप्सराएँ अपनी समस्त कला प्रकट करके देवताओं तथा देवराजके परमप्रिय अनियिको रिंझा लेना चाहती थीं। देवप्रतिहारी एक नृत्य समाप्त होनेपर दूसरी अप्सराका नाम लेकर परिचय देता और देवसभा एक नवीन झंकृतिमें झूम उठनी। परंतु जिस अर्जुनके खागतमें यह सब हो रहा था, वे मस्तक झुकाये, नेत्र नीचे किये शान्त बैठे थे। खर्गके इस बैमध्रें उन्हें अपने श्लक्षण पहिने, फल-मूल खाकर भूमिशयन करनेवाले वनवासी भाई स्परण आ रहे थे। उन्हें तनिक भी आकर्षण नहीं जान पड़ता था अमरावतीमें।

सहसा देवप्रतिहारीने उर्वशीका नाम लिया। अर्जुनका सिर ऊपर उठा। देवसभामें उपस्थित होकर नृत्य करती उर्वशीको उन्होंने कई बार देखा। सहस्रलोचन इन्द्रने यह बात लक्षित कर ली। महोत्सव समाप्त होनेपर देवराजने गन्धर्वराज चित्रसेनको अपने पास बुलाकर कहा—‘उर्वशीके पास जाकर मेरी यह आज्ञा सूचित कर दो कि आज रात्रिमें वे अर्जुनकी सेवामें पधारें। अर्जुन हम सबके परम प्रिय हैं। उन्हें आज वे अवश्य प्रसन्न करें।’

उर्वशी स्वयं अर्जुनपर अनुरक्त हो चुकी थी। चित्रसेनके द्वारा जब उसे देवराजका आदेश मिला, तब

उसने उसे बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार किया। उस दिन उसने अपनेको उंतना सजाया जितना वह अधिक-से-अधिक सजा सकती थी। रात्रिमें भरपूर शृङ्खार करके वह अर्जुनके निवासस्थानपर पहुँची।

अर्जुन उर्वशीको देखते ही शश्यासे उठकर खड़े हो गये। दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने मस्तक झुकाकर उसे प्रणाम किया और बोले—‘माता ! आप इस समय कैसे पधारीं ? मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?’

उर्वशी तो अर्जुनके सम्बोधनसे ही भौंचकी रह गयी। उसने स्पष्ट वतलाया कि वह स्वयं उनपर आसक्त है और देवराजका भी उसे आदेश मिला है। उसने प्रार्थना की कि अर्जुन उसे स्वीकार करें। लेकिन अर्जुनने स्थिरभावसे कहा—‘आप मुझमें ऐसी अनुचित वात फिर न कहें। आप ही कुरुकुलकी जननां हैं, यह वात मैंने ऋषियोंसे सुन रखी थी। आज देवसभामें जब प्रतिहारीने आपका नाम लिया, तब मुझे आपका दर्शन करनेकी इच्छा हुई। मैंने अपने कुलकी माता समझकर अनेक बार आपके सुन्दर चरणोंके दर्शन किये। लगता है कि इसीसे देवराजको मेरे सम्बन्धमें कुछ भ्रम हो गया।’

उर्वशीने समझाया—‘पार्थ ! यह धरा नहीं है, स्वर्ग है। हम अप्सराएँ न किसीकी माता हैं न वहिन, न पत्नी ही। स्वर्गमें आया हुआ प्रत्येक प्राणी अपने पुण्यके अनुसार हमारा उपभोग कर सकता है। तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लो।’

रात्रिका एकान्त समय था और पर्याप्त शृङ्खार किये खर्गकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी प्रार्थना कर रही थी; किंतु धर्मज अर्जुनके चित्तको कामदेव स्पर्श भी नहीं कर सका। उन्होंने उसी प्रकार हाथ जोड़कर प्रार्थना की—‘जिस प्रकार कुन्ती मेरी माता हैं, जिस प्रकार माद्री मेरी माता हैं, जिस प्रकार इन्द्राणी शनीदेवी मेरी माता हैं,

उसी प्रकार आपको भी मैं अपनी माता समझता हूँ । आप मुझे अपना पुत्र मानकर मुझपर अनुग्रह करे ।'

उर्वशीकी ऐसी उपेक्षा तो कभी किसी ऋषिने भी नहीं की थी । उसे इसमें अपने सौन्दर्यका अपमान प्रतीत हुआ । उस कामातुराने क्रोधमें आकर शाप दिया—‘तुमने नपुसकके समान मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की, इसलिये हिंजडे बनकर खियोके बीच नाचते-गाते हुए तुम्हें एक वर्ष रहना पड़ेगा ।’

आप देकर उर्वशी चली गयी । अर्जुन भी उसे आप देनेमें समर्थ थे और उन्हें अन्यायपूर्वक आप दिया

गया था, किन्तु उन्होंने उर्वशीको जाते समय भी मस्तक छुकाकर प्रणाम ही किया ।

प्रातःकाल देवराजको सब बातें ज्ञात हुईं । अर्जुनके सयमपर प्रसन्न होकर वे बोले—‘धनञ्जय ! धर्मका पालन करनेवालेपर कभी विपत्ति नहीं आती । यदि कोई विपत्ति आती भी है तो वह उसका मङ्गल ही करती है । उर्वशीका शाप तुम्हारे लिये एक मानव वर्षतक ही रहेगा और उस शापके कारण बनवासके अन्तिम अज्ञात-वासवाले एक वर्षके समयमें तुम्हें कोई पहचान नहीं सकेगा । तुम्हारे लिये यह शाप उस समय बरदान ही सिद्ध होगा ।’—सु० सिं० (महाभारत, बन० ४२-४६)

धन्य कौन ?

एक बार मुनियोमे परस्पर इस विषयपर बड़ा विवाद हुआ कि ‘किस समय थोड़ा-सा भी पुण्य अत्यधिक फलदायक होता है तथा कौन उसका सुविधापूर्वक अनुष्ठान कर सकता है ?’ अन्तमें वे इस सदेहके निवारणके लिये महामुनि व्यासजीके पास गये । उस समय दैववतात् वे गङ्गाजीमे स्नान कर रहे थे । ज्यो ही ऋषिगण वहाँ पहुँचे, व्यासजी डुबकी लगाकर ऊपर उठे और ऋषियोंको सुनाकर जोरसे बोले—‘कलियुग ही श्रेष्ठ है, कलियुग ही श्रेष्ठ है ।’ यह कहकर वे पुनः जलमग्न हो गये । थोड़ी देर बाद जब वे जलसे पुनः बाहर निकले, तब ‘शूद्र ही धन्य है, शूद्र ही धन्य है’ यों कहकर फिर डुबकी लगा ली । इस बार जब वे जलसे बाहर आये, तब—‘खियाँ ही धन्य है, खियाँ ही साधु है, उनसे अविक धन्य कौन है ?’ यह बाक्य बोल गये और नियमानुसार ध्यानादि नियमकर्ममें लग गये ।

तदनन्तर जब वे ध्यानादिसे निवृत्त हुए, तब वे मुनिजन उनके पास आये । वहाँ जब वे अभिवादनादि-के बाद शान्त होकर बैठ गये, तब सत्यवतीनन्दन व्यासदेवने उनके शुभागमनका कारण पूछा । ऋषियोंने

कहा—“हमे आप पहले यह बताइये कि आपने जो ‘कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही धन्य है, खियाँ ही धन्य हैं’ यह कहा—इसका आशय क्या है ? यदि कोई आपत्ति न हो तो पहले यही बतलानेका कष्ट करें । तदनन्तर हमलोग अपने आनेका कारण कहेंगे ।”

व्यासदेवजी बोले—‘ऋषियो । जो फल सत्ययुगमें दस वर्ष तप, ब्रह्मचर्य और धर्माचरण करनेसे प्राप्त होता है, वही त्रेतामें एक वर्ष, द्वापरमें एक मास तथा कलियुगमें केवल एक दिनमें प्राप्त होता है* । इसी कारण मैंने कलियुगको श्रेष्ठ कहा है । जो फल सत्ययुगमें योग, त्रेतामें यज्ञ और द्वापरमें पूजा करनेसे प्राप्त होता है, वही फल कलियुगमें केशवका नाम-कीर्तन करने-मात्रसे मिल जाता है । ऋषियो ! कलियुगमें अत्यल्प श्रम, अत्यल्प कालमें अत्यधिक पुण्यकी प्राप्ति हो जाती है, इसीलिये मैंने कलियुगको श्रेष्ठ कहा है ।

* यत् कृते दग्धभिर्वैस्तेताया हायनेन तत् ।

द्वापरे तत्त्व मासेन तदहा प्राप्यते कलौ ॥

“इसी प्रकार द्विजातियोंको उपनयनपूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है। तत्त्वद्वारोंके अनुश्रानमें बड़ा श्रम और शक्तिका व्यय होता है। इस प्रकार बड़े क्लेशसे उन्हें पुण्योंकी प्राप्ति होती है, पर शूद्र तो केवल द्विजोंको सेवासे ही प्रसन्नकर अनायास वे पुण्य प्राप्त कर लेता है। और खियोंको भी ये पुण्य केवल मन, वचन, कर्मसे अपने पतिकी सेवा करनेसे ही उपलब्ध हो जाते हैं, इसीलिये मैंने ‘शूद्र ही धन्य हैं, खियाँ ही साधु हैं, इनसे धन्य और कौन है !’ ये शब्द कहे थे। अस्तु, अब कृपया आपलोग यह बतलायें कि आपके आनेका कौन-सा शुभ कारण है ?”

ऋषियोंने कहा—‘महामुने ! हमलोग जिस प्रयोजनसे आये थे, वह कार्य हो गया। हमलोगोंमें यही विवाद छिड़ गया था कि अल्पकालमें कब अधिक पुण्य अर्जित किया जा सकता है तथा उसे कौन सम्पादित कर

सकता है। वह आपके इस स्पष्टीकरणसे समाप्त तथा निर्णीत हो चुका ।’

व्यासदेवने कहा—‘ऋषियो ! मैंने ध्यानसे आपके आनेकी बात जान ली थी तथा आपके हृदयत भावों-को भी जान गया था। अतएव मैंने उपर्युक्त बातें कहीं और आपलोगोंको भी साधु-साधु कहा था। वास्तवमें जिन पुरुषोंने गुणरूप जलसे अपने सारे दोष धो डाले हैं, उनके थोड़े-से ही प्रयत्नसे कलियुगमें धर्म सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार शूद्रोंको द्विजसेवा तथा खियोंको पतिसेवासे अनायास ही महान् धर्मकी सिद्धि, विशाल पुण्यराशिकी प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार आपलोगोंकी अभीष्ट वस्तु मैंने बिना पूछे ही बतला दी थी ।’

तदनन्तर उन्होंने व्यासजीका पूजन करके उनकी बार-बार प्रशंसा की और वे जैसे आये थे, वैसे ही अपने-अपने स्थानको लौट गये। —जा० श०

(विष्णुपुराण, अश ६, अन्याय २)

सदाचारसे कल्याण

दशार्ण देशमें एक राजा रहता था वज्रबाहु। वज्रबाहुकी पल्नी सुमति अपने नवजात शिशुके साथ किसी असाध्य रोगसे ग्रस्त हो गयी। यह देख दुष्ट-बुद्धि राजाने उसे बनमें त्याग दिया। अनेकों प्रकारके कष्ट भोगती हुई वह आगे बढ़ी। वहुत दूर जानेपर उसे एक नगर मिला। उस नगरका रक्षक पद्माकर नामका एक महाजन था। उसकी दासीने रानीपर दया की और उसे अपने खामीके यहाँ आश्रय दिलाया। पद्माकर रानीको माताके समान आदरकी दृष्टिसे देखता था। उसने उन दोनों माँ-बेटेकी चिकित्साके लिये बड़े-बड़े वैद्य नियुक्त किये, तथापि रानीका पुत्र नहीं वच सका, मर ही गया। पुत्रके मरनेपर रानी मूर्च्छित हो गयी और वेहोड़ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। इसी

समय ऋषभ नामके प्रसिद्ध शिवयोगी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने उसे विलाप करते देख कहा—‘वेठी ! तुम इतना क्यों रो रही हो ? फेनके समान इस शरीरकी मृत्यु होनेपर विद्वान् पुरुष शोक नहीं करते। कल्यान्त-जीवी देवताओंकी भी आयुमें उलटफेर होता है। कोई कालको इस शरीरकी उत्पत्तिमें कारण बताते हैं, कोई कर्मको और कोई गुणोंको। वस्तुतः काल, कर्म और गुण—इन तीनोंसे ही शरीरका आधान हुआ है। जीव अव्यक्तसे उत्पन्न होता है, अव्यक्तमें ही लीन होता है। केवल मध्यमे बुलबुलेकी भाँति व्यक्त-सा प्रतीत होता है। पूर्वकर्मानुसार ही जीवको शरीरकी प्राप्ति होती है। कर्मोंके अनुरूप ही उसे सुख-दुःखकी भी प्राप्ति होती है। कर्मोंका उल्लङ्घन करना असम्भव है।

कालका भी अनिक्रिय करना किसीके लिये सम्भव नहीं। जगत्‌के समस्त पदार्थ मायामय तथा अनित्य हैं। इसलिये तुम्हें गोक नहीं करना चाहिये। जैसे समझके पदार्थ, इन्द्रजाठ, गन्धर्वनगर, शरदू ऋतुके बादल अत्यन्त अणिक होते हैं, उसी प्रकार यह मनुष्यगरी भी है। अबतक तुम्हारे अब्दो जन्म वीत चुके हैं। अब तुम्हीं बनाओ, तुम किसकी-किसकी पुत्री, किसकी-किसकी माता और किसकी-किसकी पत्नी हो? मृत्यु सर्वया अनिवार्य है। क्रोड़ भी व्यक्ति अपनी तपस्या, विद्या, वुद्धि, मन्त्र, ओषधि तथा रसायनसे इसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। आज एक जीवकी मृत्यु होती है तो कठ दूसरेकी। इस जन्म-मरणके चक्करसे बचनेके लिये उमापति भगवान्‌ महादेव ही एकमात्र शरण है। जब मन सब प्रकारकी आसक्तियोंसे अलग होकर भगवान्‌ गंकरके ध्यानमें मग्न हो जाता है, तब फिर इस संसारमें जन्म नहीं होता। भड़े! यह मन शिवके ध्यानके लिये है। इसे गोक-मोहने मत डुवाओ।'

शिवयोगीके तत्त्वभरे करुणापूर्ण उपदेशोंको सुनकर रानीने कहा—‘भगवन्! जिसका एकमात्र पुत्र मर गया हो, जिसे प्रिय बन्धुओंने त्याग दिया हो और जो महान्‌ रोगमें अत्यन्त पीड़ित हो, ऐसी मुक्त अभागिनिके लिये मृत्युके अनिरिक्त और कौन गति है? इसलिये मैं इस जिगुके साथ ही प्राण त्याग देना चाहती हूँ। मृत्युके समय जो आपका दर्शन हो गया, मैं उसनेसे ही कृतार्थ हो गयी।’

रानीकी बात सुनकर दयानिधान शिवयोगी शिव-मन्त्रमें अभिमन्त्रित भस्म लेकर बालकके पास गये और उसके मुँहमें ढाल दिया। विभूतिके पड़ते ही वह मरा हुआ बालक उठ बैया। उन्होंने भस्मके ग्रभावसे मौं-बैठेके धावोंको भी दूर कर दिया। अब उन दोनोंके शरीर दिव्य हो गये। ऋषभने रानीसे कहा—‘वेटी। जबन्तक इस ममामगें जीवित रहोगी, वृद्धवस्था तुम्हारा

स्पर्श नहीं करेगी। तुम दोनों दीर्घकालतक जीवित रहो। तुम्हारा यह पुत्र भद्रायु नामसे विख्यान होगा और अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लेगा।’

यो कहकर ऋषभ चले गये। भद्रायु उसी वैश्य-राजके घरमें बढ़ने लगा। वैश्यका भी एक पुत्र ‘सुनय’ था। दोनों कुमारोंमें बड़ा स्नेह हो गया। जब राजकुमार-का सोलहवाँ वर्ष पूरा हुआ, तब वे ऋषभ योगी पुन वहाँ आये। तबतक राजकुमार पर्याप्त पढ़-लिख चुका था। माताके साथ वह योगीके चरणोंपर गिर पड़ा। माताने अपने पुत्रके लिये कुछ उचित शिक्षाकी प्रार्थना की। इसपर ऋषभ बोले—“वेद, स्मृति और पुराणोंमें जिसका उपदेश किया गया है, वही ‘सनातनवर्म’ है। सभीको चाहिये कि अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमके शास्त्रोंके धर्मोंका पालन करे। तुम भी उत्तम आचारका ही पालन करो। देवताओंकी आज्ञाका कभी उल्लङ्घन न करो। गौ-ब्राह्मण-देवता-गुरुके प्रति सदा भक्तिभाव रखें। स्नान, जप, होम, साध्याय, पितृतर्पण, गोपूजा, देवपूजा और अतिथिपूजामें कभी भी आलस्यको समीप न आने दो।

क्रोन, द्वेष, भय, शठना, चुगली, कुटिलता आदिका यत्पूर्वक त्याग करो। अधिक भोजन, अधिक बातचीत, अधिक खेलकूद तथा क्रीडाविलासको सदाके लिये छोड़ दो। अधिक विद्या, अधिक श्रद्धा, अधिक पुण्य, अधिक स्मरण, अधिक उत्साह, अधिक प्रसिद्धि और अधिक धैर्य जैसे भी ग्रास हो, इसके लिये सदा प्रयत्न करो। अनुराग साधुओंमें करो। धूर्त, क्रोधी, क्रूर, छली, पतित, नास्तिक और कुटिल मनुष्यको दूरसे ही त्याग दो। अपनी प्रशंसा न करो। पापरहित मनुष्योंपर सदेह न करो। माता, पिता और गुरुके कोपसे बचो। आयु, यश, वल, पुण्य, शान्ति जिस उपायसे मिले, उसीका अनुष्ठान करो। देश, काल, शक्ति, कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य आदिका भलीभौति विचार करके यत्पूर्वक कर्म करो। स्नान, जप, पूजा, हवन, श्राद्धादिमें उतावली न करो। वेदवेत्ता

ब्राह्मण, गान्त सन्यासी, पुण्य वृक्ष, नदी, तीर्थ, सोनव, वेनु, वृग्भ, पतिव्रता स्त्री और अपने घरके देवताओंके पास जाते ही नमस्कार करो ।'

ये कहकर शिवयोगीने भद्रायुको शिवकवच, एक शङ्ख और खड़ग दिया । पिर भस्मो अभिमन्त्रितका उसके शरीरमें लगाया, जिससे भद्रायुमें वारह हजार हाथियोंका बल हो गया । तटनन्तर योगीने कहा—‘ये खड़ग और शङ्ख दोनों ही दिव्य हैं, इन्हे देख-मुनकर ही तुम्हारे शत्रु नष्ट हो जायेंगे ।’

इवर वज्रवाहुको शत्रुओंने पराप्त करके बोध लिया,

उसकी रानियोंका अपहरण कर लिया और दग्गार्ण देशका राज्य नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । इसे सुनते ही भद्रायु सिंहकी भाँति गर्जना करने लगा । उसने जाकर शत्रुओं-पर आक्रमण किया और उन्हे नष्टकर अपने पिताको मुक्त कर लिया । निप्रधराजकी कन्या कीर्तिमालिनीसे उसका विवाह हुआ । वज्रवाहुको अपनी योग्य पत्नीसे मिलकर बड़ी लज्जा हुई । उन्होंने राज्य अपने पुत्रको सौंप दिया । तटनन्तर भद्रायु समस्त पृथ्वीके सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् हो गये ।—जा० थ०

(स्कन्दपुराण, ब्राह्मणण्ड, ब्रह्मोत्तरवण्ड, अध्याय १०-११)

—३८५८३८३८३८—

हमें मृत्युका भय नहीं है

हैह्य क्षत्रियोंके वंशमें एक परपुरज्य नामक गज-कुमार हो गये हैं । एक बार वे ब्रह्ममें आग्वेष्टके लिये गये । वृक्षोंकी आडसे उन्होंने दूरपर एक मृगका कुछ शरीर ढेना और बाण छोड़ दिया । पास जानेपर उन्हें पता लगा कि मृगके बोनेमें उन्होंने मृगचर्म ओढ़े एक मुनिको मार डाला है । इस ब्रह्महत्याके कारण उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ । दृख्यन होकर वे अपने नगरमें लौट आये और अपने नरेशसे सब बातें उन्होंने सच-मच कह दी । हैह्य-नरेश राजकुमारके साथ बनमें गये और वहाँ एक युवक मुनिको मग हुआ देखकर बहुत चिन्तित हुए । उन्होंने यह पता लगानेका प्रयत्न किया कि वे मुनि किसके पुत्र या शिष्य हैं ।

दूँढ़ने हुए हैह्य-नरेश बनमें महर्षि अरिष्ठनेमाके आश्रमपर पहुँचे । ऋषिको प्रणाम करके वे चुपचाप खड़े हो गये । जब ऋषि उनका सत्कार करने लगे, तब नरेशने कहा—‘हमारे द्वारा ब्रह्महत्या हुई है, अत हम आपसे सत्कार पाने योग्य नहीं हैं ।’

ऋषि अरिष्ठनेमाने पूछा—‘आपलोंगोंने किस प्रकार ब्रह्महत्या की ? उस मृत ब्राह्मणका शरीर कहाँ है ?’

नरेशने ब्रह्महत्यामी घटना सुनायी और मृत ब्राह्मणका शरीर जहो छोड़ा था, वहो उसे लेने गये, किंतु उन्हे वहो शर मिला नहीं । अपनी असावधानीके लिये उन्हे और भी ग़लानि हुई ।

उन दोनोंको अत्यन्त दुखिन एव लज्जिन देखकर ऋषिने अपनी कुटियासे बाहर अपने पुत्रको बुलाया और बोले—‘तुमने जिसे मार डाला था, वह यही ब्राह्मण है । यह तपस्त्री मेरा ही पुत्र है ।’

तरेश आश्वर्यमे पड़ गये । उन्होंने पूछा—‘भगवन् ! यह क्या बात है ? ये महात्मा फिर कैसे जीवित हो गये ? यह आपके तपका प्रभाव है या इनमें ही कोई अद्भुत शक्ति है ?’

ऋषिने बताया—‘गजन् ! मृत्यु हमारा स्पर्श भी नहीं कर सकती । हम सदा सत्यका पालन करते हैं, मिथ्याकी ओर हमारा मन भूलकर भी नहीं जाता । हम सर्वदा अपने वर्मके अनुसार ही आचरण करते हैं, अत मृत्युमें हमें कोई भय नहीं है । हम विद्वानों तथा ब्राह्मणोंके गुण ही प्रकट करते हैं, उनके अवगुणपर दृष्टि नहीं डालते, अत मृत्युसे हमें डर नहीं है । हम

भोजनकी सामग्रीसे यथाशक्ति पूरा अतिथि-सत्कार करते हैं और जिनके भरण-पोषणका भार हमपर है, उन्हें तृप्त करके ही अन्तमे भोजन करते हैं, इसीसे मृत्यु हमपर अपना बल नहीं दिखा सकती। हम शान्त, जितेन्द्रिय और क्षमागील हैं। हम तीर्थयात्रा और दान करते हैं

तथा पवित्र देशमे रहते हैं, इसलिये हमे मृत्युका भय नहीं है। हम सदा तेजस्वी सत्पुरुषोंका ही सङ्ग करते हैं, इसलिये हमें मृत्युका खटका नहीं है।'

इतना बताकर ऋषिने नरेशको आश्वासन देकर त्रिदा किया।—सु० सिं० (महाभारत, बन० १८४)

नास्तिकताका कुठार

एक वैद्य था, जिसका नाम था नन्दभद्र। उसकी नर्मनिष्ठा देखकर लोग उसे साक्षात् 'धर्मावितार' कहा करते थे। वास्तवमे वह था भी वैसा ही। धर्मसम्बन्धी कोई भी विपय ऐसा न था, जिसकी उसे जानकारी न हो। वह सबका सुहृद् एव हितैषी था। उसका पडोसी एक शूद्र था, जिसका नाम था सत्यव्रत। यह ठीक नन्दभद्रके विपरीत बड़ा भारी नास्तिक और दुराचारी था। यह नन्दभद्रका घोर द्वेषी था और सदा उसकी निन्दा किया करता था। वह अवसर ढूँढ़ता रहता था कि कहाँ छिद्र मिले तो इसे धर्मसे गिराऊँ।

आखिर एक दिन इसका मौका भी उसे मिल गया। वेचारे नन्दभद्रके एकमात्र युवा पुत्रका देहान्त हो गया और थोड़े ही दिनों बाद उसकी धर्मपत्नी कनका भी चल बसी। नन्दभद्रको इन घटनाओंसे बड़ी चोट पहुँची। विशेषकर पत्नीके न रहनेसे गृहस्थ-धर्मके नाशकी उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। सत्यव्रत तो यही अवसर ढूँढ़ रहा था। वह कपटपूर्वक 'हाय ! हाय ! वडे कष्टकी बात हुई।' इत्यादि शब्दोंसे सहानुभूतिका स्वँग रचता नन्दभद्रके पास आया और कहने लगा—'भाई ! जब आपकी भी यह दग्गा देखता हूँ तो मुझे यह निश्चय हो जाता है कि धर्म केवल वोखेकी ढंगी है। मैं कई वरोंमे आपसे एक बात कहना चाहता था, पर अवसर न आया।' नन्दभद्रके बहुत आग्रह करनेपर सत्यव्रत कहने लगा—'भाई ! जबसे आपने पत्थरोंकी पूजा

शुरू की, मुझे तभीसे आपके दिन ब्रिगडे दिखायी पड़ने लगे थे। एक लड़का था, वह भी मर गया। वैचारी साध्वी खी भी चल बसी। ऐसा फल तो बुरे कर्मोंका ही होता है। नन्दभद्रजी ! ईश्वर, देवता कहाँ कुछ नहीं हैं। यह सब झूठ है। यदि वे होते तो किसीको कभी दिखलायी क्यों न देते ? यथार्थमे यह सब दम्भी ब्राह्मणोंकी धूर्तता है। लोग पितरोंको दान देते हैं, ब्राह्मणोंको खिलाते हैं, यह सब देखकर मुझे हँसी आती है। क्या मरे हुए लोग कभी खा सकते हैं ? इस जगत्का कोई निर्माता ईश्वर नहीं है। सूर्य आदिका भ्रमण, वायुका बहना, पृथ्वी, पर्वत, समुद्रोंका अस्तित्व—यह सब स्वभावसे ही है। धूर्तजन मनुष्यजन्मकी प्रशसा करते हैं। पर सच्ची बात तो यह है कि मनुष्यजन्म ही सर्वोपरि कष्ट है, वह तो शत्रुओंको भी न हो। मनुष्यको सैकड़ो शोकके अवसर सर्वदा आते रहते हैं। जो इस मनुष्य-शरीरसे बचे, वही भाग्यवान् है। पशु, पक्षी, कीड़े—ये सब कैसे भाग्यवान् है, जो सदैव सतन्त्र धूमा करते हैं। अधिक क्या कहूँ ? पुण्य-पापकी कथा भी कोरी गप्प ही है। अतः इनकी उपेक्षा कर यथारुचि खाना-पीना और मौज उडाना चाहिये।'

नन्दभद्रपर इन बातोंका अब भी कोई प्रभाव न पड़ा। हँसकर उन्होंने कहा, 'भाई सत्यव्रत ! आपने जो कहा कि धर्मका आचरण करनेवाले सदा दुखी रहते हैं, यह असत्य है, क्योंकि मैं पापियोंको भी दुःख-जालमे फँसा

देखता ही हूँ। ब्रह्मन्, कल्पा, एतर्ज्ञान्यं मृत्यु—
यह प्रगिर्वोक्ते भी होता है। इस्तिये वर्म ही श्रेष्ठ है;—
व्योक्ति ‘यह बड़ा अर्ज्ञा है, इसका लोग बड़ा
द्याद्र करते हैं।’ ऐसी वन पापिरोक्ते माल्यमें नहीं होता।
अर नै पूछता हूँ, पर यदि बुग नहीं है तो
व्योक्ति गयी यदि अपकी बड़ी य वनका अग्हरण
देखते, तिये आपके वामे बुस आये तो आप
दमका श्रिव क्यों बहते हैं? आगे दो यह बहा कि
‘वर्ग्य पञ्चकी पूजा क्यों करते हो?’ सो अंग नूर्दको कैसे
देउ सकता है? ब्रह्म आठि देखता, बड़ेबड़े महाना,
ऋग्मिसुदि तथा एव्यर्थगारी सार्वमौन चक्रज्ञान गता भी
मनानुर्वा आगता करते हैं। उन्हीं सामिन देवमूर्तियाँ
आज नी प्रस्तुत हैं। क्य वे सर्वा नृत्य थे और
एक अप ही बुद्धिमान् है? देखता नहीं है, वे हीने
तो अग्नि किसीको दिव्यार्थी नहीं पड़ते? आजके इस
वक्त्वके सुनकर हमें तो बड़ी हँसी आती है। पा

नहीं आप जौनमे पैसे सिद्ध हैं, जो देवालोग
मिठमंगेव्या नह आजके दग्धाजे भाख माँगने आये।
आप जो कहते हैं कि ये संसारका सारा कन्तुँ अग्ने-
आप दन्तन हो गय हैं, तो हम पूछते हैं कि भोजन
आपकी यालीमे खयं बनकर क्यों नहीं अग्ने-आप
दस्तिन हो जाना? ‘ईद्र नहीं है’ यह भी वक्त्वाक्तीमी
वात है। क्य विनायासुचके प्रजा रह सकती है? आप
जो मनुष्यकी अंगका अन्य सुर्म ग्रगिर्वोक्ते वन्य
बनलाने हैं, यह तो मैंने आपके अतिरिक्त किसी दूसरेके
सुखसे कर्मा सुना ही नहीं। मैं पूछता हूँ यदि ये जड़。
तामन, सर्वा अङ्गोमे विचल अन्य ग्राण्डा वन्य हैं तो सर्वा
इन्द्रों एवं सावनों तथा बुद्धि आठि वैभवोमे सुखन
मनुष्य कैसे वन्य नहीं है?

इसी प्रकार मन्त्रनको कुछ और समझाकर नह भड़की
तत बहने बतमें चले गये। —जा० श०

(लन्दपुण्य, नहेश्वरम्बद्ध, कुमगिकान्वड, ४०। ४५)

सदाचारका वल

ब्रह्मा नड़ीके नठर अद्यास्तर नामके नाममें
एक ब्रह्मग रहता था। वह बड़ा सुविचारी तथा
अनियिकनुद्ध था। नमर्गीय बनो एवं उदानोंको
देखनेकी उसकी बड़ी इच्छा थी। एक दिन उसके वरण
एक ऐसा अनियि आग, जो भग्मिन्नादिनियाओंका
डाना था और उनके प्रमात्रमे प्रतिदिन हजारों गेजन
चला जाता था। ब्राह्मणते उस सिद्ध अनियिका बड़ा
सुन्दर बिला। बान-चीतके ग्रन्तिमें सिद्धने अनेकों बन,
पर्वत, नगर, नद, नदियों एवं तार्योंका चक्रों
चलायी। यह सुनकर ब्राह्मणोंको बड़ा बिल्ल दुआ। उसने
बहा कि मेरी भी इस पूर्वाक्ते देखनेकी बड़ी इच्छा है।
यह सुनकर उठान्दिच आगनुब सिद्धने उमे पैरमें
आनंदके लिये एक लेप दिया, जिसे लगाकर ब्राह्मण
हिन्दुओं पर्वतको देखने चाह। उसने सोचा था कि

सिद्धके कथनानुसार ने आवे दिनमे एक हजार योजन
चला जाऊँगा तथा वेष आवे दिनमे पुन लोट आऊँगा।

अस्तु! वह हिमालयके शिखरर पहुँच गया और
बहाँकी पर्वतीय भूमिग पैदल ही विचरना शुरू किया।
ब्रह्मर चलनेके कारण उसके पैरोंमें लगा हुआ दिव्य लेप
बुल गया। इसमे उसकी नीकानि दुग्धिन हो गया।
अब वह इवर-उवर बूमकर हिमालयके भगोहर दिखाओंपर
अच्छोकत करने लगा। वह स्थानसिद्ध, गर्वर्त, किलोंका
आवास हो गया था। उनके दिवारस्थल होनेसे उसकी
सर्णायना बहुत बढ़ गयी थी। बहाँके ननोहर दिखाओंके
देखनेमे उसके शरीरमें आनन्दसे रोमाछ हो आया।

दूसरे दिन उसका विचार हुआ कि अब वर चले।
ग्र अब उमे ज्ञा चला कि उसके पैरोंकी गति दुग्धिन

हो चुकी है। वह सोचने लगा—‘अहो! यहाँ वर्फ़के पानीसे मेरे पैरका लेप धुल गया। इधर यह पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और मैं अपने घरसे हजारों योजनकी दूरीपर हूँ। अब तो घर न पहुँचनेके कारण मेरे अग्निहोत्रादि नित्यकर्मोंका लोप होना चाहता है। यह तो मेरे ऊपर मयानक सकट आ पहुँचा। इस अवस्थामे किसी तपस्थी या सिद्ध महात्माका दर्गन हो जाता तो वे कदाचित् मेरे घर पहुँचनेका कोई उपाय बतला देते।’ इसी समय उसके सामने वरुथिनी नामकी अप्सरा आयी। वह उसके रूपसे आकृष्ट हो गयी थी। उसे सामने देखकर ब्राह्मणने पूछा—‘देवि! मैं ब्राह्मण हूँ और अरुणास्पद नगरसे यहाँ आया हूँ। मेरे पैरमे टिक्क्य लेप लगा हुआ था, उसके धुल जानेसे मेरी दूरगमनकी शक्ति नष्ट हो गयी है और अब मेरे नित्यकर्मोंका लोप होना चाहता है। कोई ऐसा उपाय बतलाओ, जिससे सूर्यास्तके पूर्व ही अपने घरपर पहुँच जाऊँ।’

वरुथिनी बोली—‘महाभाग ! यह तो अत्यन्त रमणीय स्थान है। सर्ग भी यहाँसे अधिक रमणीय नहीं है। इसलिये हमलोग सर्गको भी छोड़कर यहाँ रहते हैं। आपने मेरे मनको हर लिया है। मैं आपको देखकर कामके वर्णभूत हो गयी हूँ। मैं आपको सुन्दर वस्त्र, हार, आभूषण, भोजन, अङ्गरागादि देंगी। आप यहाँ रहिये। यहाँ रहनेसे कभी दुष्कापा नहीं आयेगा। यह यौवनको पुष्ट करनेवाली देवमूर्मि है।’ यो कहते-कहते वह बावली-सी हो गयी और ‘मुझपर कृपा कीजिये, कृपा कीजिये’ कहती हुई उसका आलिङ्गन करने लगी।

तब ब्राह्मणने ‘अरी ओ दुष्टे ! मेरे गरीरको न छू। जो तेरे ही ऐसा हो, वैसे ही किसी अन्य पुरुष-के पास चली जा। मैं कुछ और भावसे प्रार्थना करता हूँ और तू कुछ और ही भावसे मेरे पास आती है ? मूर्ख ! यह सारा ससार धर्ममें प्रतिष्ठित है। सायं-प्रात-का अग्निहोत्र, विधिपूर्वक की गयी इज्या ही विश्वको

धारण करनेमे समर्थ है और मेरे उस नित्यकर्मका ही यहाँ लोप होना चाहता है। तू तो मुझे कोई ऐसा सरल उपाय बता, जिससे मैं शीघ्र अपने घर पहुँच जाऊँ।’ इसपर वरुथिनी बहुत गिडगिडाने लगी। उसने कहा, ‘ब्राह्मण ! जो आठ आत्मगुण बतलाये गये हैं, उनमे दया ही प्रधान है। आश्चर्य है, तुम धर्मपालक बनकर भी उसकी अवहेलना कैसे कर रहे हो ? कुलनन्दन ! मेरी तो तुमपर कुछ ऐसी प्रीति उत्पन्न हो गयी है कि, सच मानो, अब तुमसे अलग होकर जी न सकूँगी। अब तुम कृपाकर मुझपर प्रसन्न हो जाओ।’

ब्राह्मणने कहा—‘यदि सचमुच तुम्हारी मुझमे प्रीति हो तो मुझे शीघ्र कोई ऐसा उपाय बतलाओ, जिससे मैं तत्काल घर पहुँच जाऊँ।’ पर अप्सराने एक न सुनी और नाना प्रकारके अनुनय-विनय तथा त्रिलापादि-से वह उसे प्रसन्न करनेकी चेष्टा करती गयी। ब्राह्मणने अन्तमे कहा, ‘वरुथिनि ! मेरे गुरुजनोंने उपदेश दिया है कि परायी छीकी कदापि अभिलाषा न करे। इसलिये तू चाहे त्रिलख या सूखकर दुबली हो जा, मैं तो तेग स्वर्ण नहीं ही कर सकता, न तेरी और दृष्टिपात ही करता हूँ।’

यों कहकर उस महाभागने जलका स्वर्ण तथा आचमन किया और गार्हपत्य अग्निको मन-ही-मन कहा—‘भगवन् ! आप ही सब कर्मोंकी सिद्धिके कारण हैं। आपकी ही तृप्तिसे देवना वृष्टि करते और अन्नादिकी वृद्धिमे कारण बनते हैं। अन्नसे सम्पूर्ण जगत् जीवन धारण करता है, और किसीसे नहीं। इस तरह आपसे ही जगत्की रक्षा होती है। यदि यह सत्य है तो मैं सूर्यास्तके पूर्व ही घरपर पहुँच जाऊँ। यदि मैंने कभी भी वैदिक कर्मानुष्ठानमे कालका परित्याग न किया हो तो आज घर पहुँचकर छवनेसे पहले ही सूर्यको देखूँ। यदि मेरे मनमे पराये धन तथा परायी छीकी अभिलाषा कभी भी न हुई हो तो मेरा यह मनोरथ सिद्ध हो जाय।’

ब्राह्मणके यो कहृते ही उनके अग्रिमे गार्हपत्य अग्निने प्रदेश किया । फिर तो वे ज्ञाताओंके वीचमें प्रकट हुए मूर्तिमान् अग्निदेवकी भौति उस प्रदेशको प्रकाशित करने लगे और उस अप्सराके देखते-ही-देखते

वे वहांसे चले तथा एक ही क्षणमें घर पहुँच गये । घर पहुँचकर पुन उन्होंने यथागात्र सब कर्मोंका अनुष्ठान किया और वडी आन्ति एवं धर्म-प्रीतिसे जीवन व्यनीत किया । —जा० श० (मार्कण्डेयपुराण, अन्याय ६१)

गर्भस्थ शिशुपर माताके जीवनका गम्भीर प्रभाव पड़ता है

मत्क्षेप प्रह्लादजीको दैत्यगज हिरण्यकशिपु भगवान्के स्परण-भजनमें प्रियत करना चाहता था । उमर्की धारणा थी कि 'प्रह्लाद अभी बालक है, उमे किर्माने बहुका दिया है । टीक डागने शिक्षा मिलनेपर उनके प्रिचार बश्ल जायेंगे ।' इस धारणाके कारण दैत्यगजने प्रह्लादको शुक्राचार्यके पुत्र पण्ड तथा अमर्कीके आश्रम पढ़नेके दिये भेज दिया था और उन दोनों आचार्यों आदेश दे दिया था कि वे सामवानीपूर्वक उमके बालको दैत्योचित अर्थनीति, दण्डनीति, गजनीति आदिकी शिक्षा दे ।

आचार्य जो कुछ पढ़ाते थे, उमे प्रह्लाद पढ़ लेते थे, भग्न कर लेने थे, किंतु उसमें उनका मन नहीं लगता था । उस शिक्षाके प्रति उनकी महत्त्वाद्विद्धि नहीं थी । जब दोनों आचार्य आश्रमके काममें लग जाने, तब प्रह्लाद दूसरे सहपाठी दैत्य-वालकोंको अपने पास बुला लेने । एक तो वे राजकुमार थे, दूसरे उहैं मारनेके दैत्यगजके अनेक प्रयत्न व्यर्थ हो चुके थे, इममें मध्य दैत्य-वालक उनका बहुत सम्मान करते थे । प्रह्लादके बुलानेपर वे खेलना छोड़कर उनके पास आ जाने और ध्यानसे उनकी बातें सुनने । प्रह्लाद उहैं सूयम, सदाचार, जीवदयाका महत्त्व बनाते, सासारिक भोगोंकी निस्नानता समझाकर भगवान्के भजनकी महिमा सुनाते । वालकोंको यह सब सुनकर वडा आर्थर्य होना ।

दैत्य-वालकोंने पूछा—'प्रह्लादजी ! तुम्हारी अवस्था छोटी है । तुम भी हमलोगोंके साथ ही राजमवनमें रहे

हो और इन आचार्योंके पास पढ़ने आये हो । तुम्हें ये सब बातें कैमे ज्ञान हुई ?'

प्रह्लादजीने बताया—“भाड़यो । इसके पीछे भी एक इनिहास है । मेरे चाचा हिरण्याक्षकी मृत्युके पश्चात् मेरे पिताने अपनेको अमग्नाय बनानेके लिये तपस्या करनेका निश्चय किया और वे मन्दराचलपर चले गये । उनकी अनुगस्तिमें देवताओंने दैत्यपुर्गपर आक्रमण कर दिया । दैत्य अपने नायकके अभावमें पराजित हो गये और अपने खी-पुत्रादिको छोड़कर प्राण बचाकर उभर-उभर भाग गये । देवताओंने दैत्योंके सूने धरोंको लूट लिया और उनमें आग लगा दी । लूट-पाटके अन्तमें देवगज इन्द्र मेरी माता कथाधूको बन्दिनी बनाकर अपगवती ले चले । मार्गमें ही देवर्पिं नाश्न मिले । उन्होंने देवराजको डॉटा—‘इन्द्र ! तुम इस परायी साधी नारीको क्यों पकड़े लिये जाने हो ? इसे तुरत छोड़ दो ।’

“इन्द्रने कहा—‘देवर्पिं ! इसके पेटमें दैत्यगजका बालक है । हम दैत्योंका वज्र नष्ट कर देना चाहते हैं । इसका पुत्र उत्पन्न हो जाय तो उमे मैं मार डाढ़गा और तब इसे छोड़ दूँगा ।’

“नारदजीने बताया—‘भूलते हो, देवराज ! इसके गर्भमें भगवान्का महान् भक्त है । तुम्हारी जक्ति नहीं कि तुम उसका कुछ भी बिगड़ सको ।’

“देवगजका भाव तत्काल बश्ल गया । वे हाय

जोड़कर बोले—‘देवर्पि क्षमा करें ! मुझे पता नहीं था कि इसके गर्भमें कोई भगवद्भक्त है ।’ इन्द्रने मेरी माताकी परिक्रमा की । गर्भस्थ शिशुके प्रति मस्तक झुकाया और मेरी माताको छोड़कर चले गये ।

“नारदजीने मेरी मातामे कहा—‘वेदी ! मेरे आश्रममें चलो और जवतक तुम्हारे पनिदेव तपस्यासे निवृत्त होकर न लौटे, तवतक वहीं सुखपूर्वक रहो ।’

देवर्पि तो आश्रममें दिनमें एक बार आते थे, किंतु

मेरी मानाको वहाँ कोई कष्ट नहीं था । वह आश्रमके अन्य ऋषियोंकी सेवा करती थी । देवर्पि नारदजी उसे भगवद्भक्तिका उपदेश किया करते थे । देवर्पिका लक्ष्य मुझे उपदेश करना था । माताके गर्भमें ही वे दिव्य उपदेश मैंने सुने । बहुत दिन वीत जानेके कारण और खी होनेसे घरके कामोंमें उलझनेके कारण माताको तो वे उपदेश भूल गये, किंतु देवर्पिकी कृपासे मुझे उनके उपदेश स्मरण हैं ।” —सु० सिं० (श्रीमद्भागवत ७ । ६-७)

दूषित अन्नका प्रभाव

महाभारतका युद्ध समाप्त हो गया था । धर्मराज युविष्ठिर एकच्छ्र सप्ताह हो गये थे । श्रीकृष्णचन्द्रकी सम्मनिसे रानी द्रौपदी तथा अपने भाइयोंके साथ वे युद्धमूसिमें शशव्यापर पड़े प्राणत्यागके लिये सूर्यके उत्तरग्रहण होनेकी प्रतीक्षा करते परम धर्मज्ञ भीष्मपितामहके सर्वाप आने थे । युविष्ठिरके पूछनेपर भीष्मपितामह उन्हें वर्ण, आश्रम तथा राजा-प्रजा आदिके त्रिभिन्न धर्मोंका उपदेश कर रहे थे । यह धर्मोपदेश चल ही रहा था कि गनी द्रौपदीको हँसी आ गयी ।

‘वेदी ! तू हँसी करो ॥’ पितामहने उपदेश वीचमें ही रोककर पूछा ।

द्रौपदीजीने सकुचित होकर कहा—‘मुझसे भूल हुई । पितामह मुझे क्षमा करें ।’

पितामहका इससे सतोष होना नहीं था । वे बोले—‘वेदी ! कोई भी गीलबनी कुल्लवधू गुरुजनोंके सम्मुख अकारण नहीं हँसती । तू गुणवती है, सुशीला है । तेरी हँसी अकारण हो नहीं सकती । सकोच छोड़कर तू अपने हँसनेका कारण बता ।’

हाथ जोड़कर द्रौपदीजी बोला—‘दाशजी ! यह

बहुत ही अभद्रताकी बात है, किंतु आप आज्ञा देते हैं तो कहनी पड़ेगी । आपकी आज्ञा मैं टाल नहीं सकती । आप धर्मोपदेश कर रहे थे तो मेरे मनमें यह बात आयी कि ‘आज तो आप धर्मकी ऐसी उत्तम व्याख्या कर रहे हैं; किंतु कौरवोंकी सभामें जब हु.शासन मुझे नंगी करने लगा था, तब आपका यह धर्मज्ञान कहाँ चला गया था । मुझे लगा कि यह धर्मका ज्ञान आपने पीछे सीखा है । मनमें यह बात आते ही मुझे हँसी आ गयी, आप मुझे क्षमा करे ।’

पितामहने शान्तिपूर्वक समझाया—‘वेदी ! इसमें क्षमा करनेकी कोई बात नहीं है । मुझे धर्मज्ञान तो उस समय मी था, परन्तु दुर्योधनका अन्यायपूर्ण अन्न खानेसे मेरी बुद्धि मलिन हो गयी थी, इसीसे उस घूतसभामें धर्मका ठीक निर्णय करनेमें मैं असमर्थ हो गया था । परन्तु अब अर्जुनके बाणोंके लगनेसे मेरे शरीरका सारा रक्त निकल गया है । दूपित अन्नसे बने रक्तके शरीरसे बाहर निकल जानेके कारण अब मेरी बुद्धि शुद्ध हो गयी है, इससे इस समय मैं धर्मका तत्त्व ठीक समझता हूँ और उसका त्रिवेचन कर रहा हूँ ।’ —सु० सिं०

आर्यकन्याका आदर्श

मद्देशके राजा अवधिनिे अपनी परम सुन्दरी कन्या साक्षिंत्रीको सततन्त्र कर दिया था कि वह अपने योग्य पति छुन ले तो उसीसे उसका विवाह कर दिया जाए। राजाने अपने बुद्धिमान् भन्त्रीको कन्याके साथ भेज दिया था अनेक देशों वृमकर राजकुमारोंको देखनेके लिये। राजा अवधिनिे अपनी पुत्रीकी योग्यता, धर्मगीचना तथा विचारशक्तिर विवास अल्पके ही उन्हें वह सततना ढी थी और जब बहुतसे नगरोंकी यात्रा अल्पके साक्षिंत्री ढौंड, तब वह सिद्ध हो गया कि पिनाने उसमर उचित भरोसा किया था। साक्षिंत्रीने न तो दूषको महत्ता ढी, न दृष्टको ढींग न बन अयत्रा राज्यको ही। उसने महत्ता ढी थी वर्षको। उसने शान्तवेदनके नेत्रहीन राजा शुम्नसेनके पुत्र सत्यवान्को पति बनानेका निश्चय किया था वयपि उस समय राजा शुम्नसेन शत्रुओंद्वारा गङ्गर अविद्यार अत लिये जानेके कारण ढी तथा

पुत्रके साथ बनमें तज्ज्ञी ज्ञात्वा व्यनान कर रहे थे।

संयोगवत् देवर्पि नारदजी उस समय राजा अवधिनिे वहाँ आये थे जब कि साक्षिंत्री अपनी यात्रा समाप्त करके लौटी। देवर्पि उसका निश्चय जानकर बनाया—‘निश्चय सन्धवान् सद्गुणी और धर्मात्मा हैं; वे बुद्धिमान्, धूर, क्षमाशील तथा तेजस्वी हैं; किंतु वे अन्यथा हैं। आजसे ठीक एक वर्ष बाद उनकी मृत्यु हो जायगी।’

वह सुनकर गजा अवधिनिे पुत्रीसे कहा—‘वेर्डी ! तुम और किसीको अपने पतिके द्वयमें चुन लो।’

साक्षिंत्रीने नम्रनापूर्वक कहा—‘पिताजी ! एक बार मनमें मैंने जिनका वरण कर लिया, वे ही मेरे पति हैं। चाहे कुछ भी हो, मैं अब और किसीका वरण नहीं कर सकती। कन्याका दान एक बार लिया जाता है और आर्यकन्या एक बार ही पतिजा वरण करती है।’

—चु० चिं० (नहामारत, वन० २९३-२९४)

आर्यनारीका आदर्श

अपनी पुत्रीके दृढ़ निश्चयको देखकर धर्मात्मा नरेशने अविक आग्रह करना उचित नहीं माना। देवर्पि नारदजीने भी साक्षिंत्रीके निश्चयकी प्रशंसा की। राजा अवधिनि अन्यादानकी सब सामग्री लेकर बनमें राजा शुम्नसेनकी कुटियापर गये और वहाँ उहोने विचिर्वृक्ष के अपनी पुत्रीका विवाह सन्धवान्के साथ कर दिया। विवाहकर्त्य समाप्त होनेपर राजा अवधिनि अपनी गजवानी लौट गये।

पिनाके चले जानेपर साक्षिंत्रीने सब रत्नजटिन गहने और बहुमृत्यु वक्त उनार लिये।

जब साक्षिंत्रीने बहुमृत्यु वक्त और आमूर्यग उनारे और साससे नम्रनापूर्वक बच्चल वक्त पहननेको मार्गी, तब सासने विषप्पा होजर उससे कहा—‘वेर्डी ! तुम राज-

कन्या हो। अपने पिनाके लिये हुए वशभूषणोंको पहनो।’

साक्षिंत्रीने नम्रनापूर्वक उत्तर दिया—‘मैं आपके पुत्रकी सेविका हूँ। आप तथा मेरे पूज्य ब्रह्मर एवं मेरे खारी जैसे रहते हैं। वैसे ही मैं भी रहूँगी। उसमे अविक मुख मेरे लिये सर्वथा त्याज्य हैं। मैं आपकी अपेक्षा उत्तम वक्त एवं आमूर्यण कैसे पहिन सकती हूँ। मेरे लिये सच्चा आमूर्यग तो आपलोगोंकी सेवा ही है।’

वह बल्कल वक्त पहिनकर मुनि-गुनियोंकी भाँति रहने लगी। वह अपने गील, सदाचार, इन्द्रिय-संगम, मधुर वार्णी तथा सेवापगयगताके कारण सबकी सम्मान-भाजन हो गई। सास-सद्गुण तथा पतिकी सेवामें वह बगवर तन्मर नहीं थी।—चु० चिं०

मैं स्वेच्छासे परपुरुषका स्पर्श नहीं कर सकती

अशोकवाटिकामे श्रीसीताजीको बहुत दुखी देखकर महावीर हनुमानजीने पर्वताकार शरीर धारण करके उनसे कहा—‘मानाजी ! आपकी कृपासे मैं पर्वत, वन, महल, चहारदीवारी और नगरद्वारसहित इस सारी लङ्घापुरी-को रावणके समेत उठाकर ले जा सकता हूँ । आप कृपया मेरे साथ शीघ्र चलकर राघवेन्द्र श्रीरामका और लङ्घणका गोक दूर कीजिये ।’

इसके उत्तरमें सतीशिरोमणि श्रीजनकक्षिशोरजीने

वहा—‘महाकपे ! मैं तुम्हारी शक्ति और पराक्रमको जानती हूँ । परतु मैं तुम्हारे साथ नहीं जा सकती, क्योंकि मैं पतिभक्तिकी दृष्टिसे एकमात्र भगवान् श्रीरामके सिवा अन्य किसी भी पुरुषके अरीत्का स्पर्श स्वेच्छापूर्वक नहीं करता चाहती । रावण मुझे हरकर लाया था, उस समय तो मैं निरूपण थी । उसने बलपूर्वक ऐसा किया । उस समय मैं अनाथ, असमर्थ और विवश थी । अब तो श्री-राघवेन्द्र ही पवारका रावणको मारकर मुझे शीघ्र ले जायँ ।’

कैसे आचरणसे नारी पतिको वशमें कर लेती है ?

वनवासमें पाण्डव जब काम्यक वनमें थे, तब श्री-कृष्णचन्द्र सत्यकि आडिके साथ उनसे मिलने गये थे । उस समय उनके साथ सत्यभामाजी भी थी । एक दिन श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रियतमा उन मत्यभामाजीने एकान्तमें द्वौपर्दीजीमे पूछा—‘पाञ्चाली ! तुम लोकपालोंके समान तेजस्वी और वीर अपने पतियोंको कैसे संतुष्ट रखती हो ? तुम्हारे पति तुमपर कर्भा क्रोध नहीं करते, वे सदा तुम्हारे वशमें रहते हैं, तुम्हारा मुख देखा करते हैं—इसका क्या कारण है ? तुमने इसके लिये कोई ब्रन, नप या जप किया है ? अयशा किसी मन्त्र, दवा, अज्ञन या जड़ीका प्रयोग किया है ? मुझे भी ऐसा कोई उपाय बनलाओ, जिसमें मेरे स्वामी श्रीद्वारकेश मेरे वशमें रहे ।’

द्वौपर्दीजीने कहा—‘सत्यभामाजी ! तुम मुझसे यह दुश्म लिंगोंकी-सी वात कैसे पूछती हो ? तुम्हारे लिये ऐसा प्रभ करना उचित नहीं है । देखो, जब पतिको पता लगता है कि व्यक्ति उसे वशमें करनेके लिये मन्त्र-नन्त्रादिका प्रयोग करतानी है, तब वह उससे उसी प्रकार धरणता है जैसे लोग धरमें रहनेवाले सर्पसे डरते हैं । वह पुरुष सदा चिन्तित रहने लगता है । वहिन ! मन्त्र-नन्त्रमें पुरुष कभी व्यक्ति के वशमें नहीं हो सकता ।

इससे उच्छ्वे बुराई उत्पन्न होती है । वशीकरणके लोभमें पड़कर लिंगों अपने पतिको अज्ञानवश ऐसी वस्तुएँ खिला देती है, जिससे उनको मृत्यु हो जाती है या वे असाध्य रोगोंके शिकार हो जाते है । भोजन या लेपमें वे ऐसी वस्तुएँ मिला देती है, जिनसे उनके पति जलेहर, कोढ, नपुसकना, पागलपन आडि भयंकर रोगोंसे पीड़ित हो जाते हैं अथवा अधे या बहिरे हो जाते हैं । धूतलोग ऐसी लिंगोंको ठाकर उनका धन ले लेते है, उन्हे आचरणमन्त्र कर देते हैं और उनके द्वारा उनके पतिको चिपैली वस्तुएँ दिलवा देते है । लीको पतिका अनिष्ट या अग्रिय कभी नहीं करना चाहिये ।’

द्वौपर्दीजीने आगे बताया—‘सत्यभामाजी ! महात्मा पाण्डव मेरे जिन कामोंसे मुझ्यर प्रसन्न है, वे तुम्हें बतलाती हूँ । मैं अहकार, कामवासना, क्रोध तथा दुष्ट भावोंसे दूर रहकर सदा पाण्डवों तथा उनकी अन्य पत्नियोंकी सेवा करती हूँ । कभी गर्व नहीं करती । मेरे पति जो चाहते है, वैसा ही कार्य करती हूँ । उनमर कभी सदेह नहीं करती और न उनसे कभी कठोर वचन ही कहती हूँ । कभी दुरे स्थानपर या दुर्ग सगतिमें नहीं बैठती । ऐसी दृष्टिसे कभी किसीको नहीं

देखती जिससे निन्दित विचार व्यक्त हों। पाण्डवोंके अतिरिक्त मेरे हृदयमें किसी पुरुषके लिये कभी स्थान नहीं। पाण्डवोंके भोजन किये विना मैं भोजन नहीं करती और उनके स्नान किये विना स्नान नहीं करती। उनके सो जानेपर ही सोती हूँ। यहाँतक कि घरके और लोगों तथा सेवकोंके खानेयीनेसे पहले भी मैं स्नान, भोजन या शयन नहीं करती। मेरे पति वाहरसे लौटकर जब घर आने हैं, तब मैं आगेसे उठकर उनका स्नान करती हूँ, उन्हें घरमें लाकर बैठनेको आसन देती हूँ तथा हाथपैर एवं मुख धोनेके लिये जल देती हूँ। घर और घरकी सभी सामग्री सच्छ रखती हूँ। सच्छताके साथ भोजन बनाकर ठीक समग्रपर उन्हें भोजन कराती हूँ। अब तथा दूसरी सामग्री यत्रके साथ भंडारमें सुरक्षित रखती हूँ। दुरे आचरणकी निन्दित लियोंके पास न बैठनी हूँ न उनसे मित्रता रखती हूँ। विना हँसीका अवसर हुए मैं हँसती नहीं। द्वारपर खड़ी नहीं रहती। घरसे स्टे उपवनमें देरतक नहीं रुकती। क्रोध उत्पन्न होनेवाले अवसरोंको टाल जानी हूँ। किसी कायसे जब पनि कहीं विदेश जाते हैं, तब उस समय मैं पुष्प-माला, सुगन्ध आदि लाग देती हूँ। मेरे पति जो पदार्थ नहीं खाते, जिसका सेवन वे नहीं करते, उन पदार्थोंका मैं भी त्याग कर देती हूँ। पतिके पास मैं सदा पवित्र होकर, सुन्दर सच्छ वस्त्र पहनकर और शृङ्खर करके ही जाती हूँ। पतियोंका प्रिय और हित करना हा मेरा ब्रत है।

‘मेरी पूजनीया सासने अपने कुटुम्बके प्रति जो कर्तव्य मुझे बताये हैं, उनका मैं सदा पालन करती हूँ। भिक्षा देना, देवपूजा, श्राद्ध, पवित्रके दिन उत्तम भोजन बनाना, माननीय पुरुषोंकी पूजा करना तथा और भी जो अपने कर्तव्य मुझे ज्ञात हैं, उनमें कभी प्रमाद नहीं करती। विनयके भाव और पतित्रिताके नियमोंको ही अपनाये रहती हूँ। अपने पतियोंकी

रुचिपर सदा दृष्टि रखकर उसके अनुकूल आचरण करती हूँ। पतियोंको कभी हीन दृष्टिसे नहीं देखती, उनसे उत्तम भोजन कभी नहीं करती और न उनसे उत्तम वस्त्राभूषण ही वारण करती। अपनी सासकी कभी निन्दा नहीं करती। उनकी सदा सेवा करती हूँ। सब काम मन लगाकर सावधानीसे करती हूँ और बड़े-बड़े-की सेवामें तत्पर रहती हूँ।

‘अपने पतियोंकी पूजनीय मानाको मैं अपने हाथसे परोसकर भोजन कराती हूँ। उनकी सब प्रकारसे सेवा करती हूँ। कभी ऐसी बात नहीं कहती, जो उन्हें बुरी लगे। पहले महाराज युविष्टिके भवनमें नित्य स्थानके पात्रोंमें आठ हजार ब्राह्मण भोजन करते थे। इनके अतिरिक्त अहुसी हजार स्नातक गृहस्थ ब्राह्मणोंको महाराजकी ओरसे अन्न-ब्रह्म मिलता था। एक-एक ब्राह्मणकी सेवाके लिये तीस-तीस दासियाँ नियुक्त थीं। दस सहन्न ब्रह्मचारी साधुओंको प्रतिदिन स्थर्णपात्रमें भोजन दिया जाता था। इन सब ब्राह्मणोंको भोजन कराकर, अन्न-ब्रह्म देकर मैं उनकी पूजा करती थी।

‘महाराज युविष्टिके यहाँ एक लाख दासियाँ थीं। वे मूल्यवान् वस्त्राभूषणोंसे सजित रहती थीं। वे नाचती-गाती महाराजके आगे चलती थीं तथा अन्य सेवाकार्य भी करती थीं। मैं उनके नाम, रूप तथा भोजनादिका सब विवरण जानती थी। किसके लिये क्या काम नियत है, किसने क्या काम किया, यह भी मुझे ज्ञात रहता था। महाराजकी सवारीमें एक लक्ष अश्व और एक लक्ष गज साथ निकलते थे। मुझे इनकी संख्या ज्ञान थी और मैं ही उनका सब प्रबन्ध करती थी। पूरे अन्त पुरका, सारे सेवकोंका, समस्त परिवारका, अतियियोंका, पशुओं तथा पशुपालकोंतकका प्रबन्ध भी मैं ही करती थी।

‘वहिन सत्यमामा ! महाराजके राज्यके आय-व्ययका

विवरण मुझे ज्ञात था और मैं ही उसकी जॉच करती थी। पाण्डियोंने राज्य और कुटुम्बकी देखभालका कार्य मुझे सौंप रखा था। वे निश्चिन्त होकर धर्मकर्ममें लगे रहते थे और मैं सब सुख छोड़कर दिन-रात परिश्रम करके यह भार सँभालती थी। मैं भूख-ध्यास भूलकर पतियोंकी सेवामें लगी रहती थी। पतियोंकी सेवासे मेरा जी कभी नहीं ऊबता। मैं उनके सो जानेपर सोती हूँ

और उनके उठनेसे पहले ही उठ जाती हूँ। पतियोंको वश करनेका मेरा उपाय यही है। ओछी सियोंके आचरणका हाल मैं नहीं जानती।'

द्वौपदीके इन वचनोंको सुनकर सत्यभामाजीने कहा—‘पाञ्चाली! तुम मेरी सखी हो, इसीसे हँसीमें मैंने तुमसे यह बात पूछी थी। इसके लिये तुम दुःख या क्रोध मत करो।’—सु० सिं० (महाभारत, बन० २३३)

कीड़ेसे महर्षि मैत्रेय

भगवान् व्यास सभी जीवोंकी गति तथा भाषाको समझते हैं। एक बार जब वे कहाँ जा रहे थे, तब रास्तेमें उन्होंने एक कीडेको बड़े बेगसे भागते हुए देखा। उन्होंने कृपा करके कीडेकी बोलीमें ही उससे इस प्रकार भागनेका कारण पूछा। कीडेने कहा—‘विश्ववन्द्य मुनीश्वर! कोई बहुत बड़ी बैलगाढ़ी इधर ही आ रही है। कहाँ यह आकर मुझे कुचल न डाले, इसलिये तेजीसे भागा जा रहा हूँ।’ इसपर व्यासदेवने कहा—‘तुम तो तिर्यक् योनिमें पड़े हुए हो, तुम्हारे लिये तो मर जाना ही सौभाग्य है। मनुष्य यदि मृत्युसे डरे तो उचित है, पर तुम कीटको इस शरीरके छूटनेका इतना भय क्यों है?’ इसपर कीडेने कहा—‘महर्षे! मुझे मृत्युसे किसी प्रकारका भय नहीं है। भय इस बातका है कि इस कुत्सित कीटयोनिसे भी अधम दूसरी लाखों योनियों हैं, मैं कहाँ मरकर उन योनियोंमें न चला जाऊँ। उनके गर्भ आदि धारण करनेके कलेशसे मुझे डर लगता है, दूसरे किसी कारणसे मैं भयभीत नहीं हूँ।’

व्यासजीने कहा—‘कीट! तुम भय न करो। मैं जब-तक तुम्हे ब्राह्मणशरीरमें न पहुँचा दूँगा, तबतक सभी योनियोंसे गीत्र ही छुटकारा दिलाता रहूँगा।’ व्यासजीके यों कहनेपर वह कीड़ा पुनः मार्गमें लौट आया और रथके पहियेसे दबकर उसने प्राण त्याग दिये।

तत्पश्चात् वह कौए और सियार आदि योनियोंमें जब-जब उत्पन्न हुआ, तब-तब व्यासजीने जाकर उसके पूर्वजन्म-का स्मरण करा दिया। इस तरह वह क्रमशः साही, गोहा, मृग, पक्षी, चाण्डाल, शूद्र और वैश्यकी योनियोंमें जन्म लेता हुआ क्षत्रिय-जातिमें उत्पन्न हुआ। उसमें भी भगवान् व्यासने उसे दर्शन दिया। वहाँ वह प्रजापालरूप धर्मका आचरण करते हुए थोड़े ही दिनोंमें रणभूमिमें शरीर त्यागकर ब्राह्मणयोनिमें उत्पन्न हुआ। जब वह पॉच वर्षका हुआ, तभी व्यासदेवने जाकर उसके कानमें सारस्वत-मन्त्रका उपदेश कर दिया। उसके प्रभावसे विना ही पढ़े उसे सम्पूर्ण वेद, शास्त्र और धर्मका स्मरण हो आया। पुनः भगवान् व्यासदेवने उसे आज्ञा दी कि वह कार्तिकेयके क्षेत्रमें जाकर नन्दभद्रको आश्वासन दे। (नन्दभद्रकी कथा अन्यत्र आ चुकी है।) नन्दभद्रको यह शङ्का थी कि पापी मनुष्य भी सुखी क्यों देखे जाते हैं। इसी कलेशसे घबराकर वे बहूदक तीर्थपर तप कर रहे थे। नन्दभद्रकी शङ्काका समाधान करते हुए इस सिद्ध सारस्वत बालकने कहा था—‘पापी मनुष्य सुखी क्यों रहते हैं, यह तो बड़ा स्पष्ट है। जिन्होंने पूर्वजन्ममें तामस भावसे दान किया है, उन्होंने इस जन्ममें उसी दानका फल प्राप्त किया है; परतु तामस भावसे जो धर्म किया जाता है, उसके फलस्वरूप लोगोंका धर्ममें अनुराग नहीं

होता और फलत वे ही पापी तथा सुखी देखे जाते हैं। ऐसे मनुष्य पुण्य-फलको भोगकर अपने तामसिक भावके कारण नरकमें ही जाते हैं, इसमें सदेह नहीं है। इस विषयमें मार्कण्डेयजीकी कहीं ये बातें सर्वदा ध्यानमें रखें जानी चाहिये—‘एक मनुष्य ऐसा है, जिसके लिये इस लोकमें तो सुखका भोग सुलभ है परतु परलोकमें नहीं। दूसरा ऐसा है, जिसके लिये परलोकमें सुखका भोग सुलभ है किंतु इस लोकमें नहीं। तीसरा ऐसा है जो इस लोक ओर परलोकमें दोनों ही जगह सुख प्राप्त करता है और चौथा ऐसा है, जिसे न यहीं सुख है और न परलोकमें ही। जिसका पूर्वजन्मका किया हुआ पुण्य शेष है, उसको भोगते हुए परम सुखमें भूला हुआ जो व्यक्ति नूतन पुण्यका उपार्जन नहीं करता, उस मन्दवृद्धि एवं भाग्यहीन मानवको प्राप्त हुआ वह सुख केवल इसी लोकतक रहेगा। जिसका पूर्वजन्मोपार्जित पुण्य तो नहीं है किंतु वह तपस्या करके नूतन पुण्यका उपार्जन कर रहा है, उस वृद्धिमान्त्रको परलोकमें अवश्य ही विशाल सुखका भोग उपस्थित होगा—इसमें रंचमात्र भी सदेह नहीं। जिसका पहलेका किया हुआ पुण्य वर्तमानमें सुखद हो रहा

है और जो तपद्वारा नूतन पुण्यका उपार्जन कर रहा है, ऐसा वृद्धिमान् तो कोई-कोई ही होता है जिसे इहलोक-परलोक दोनोंमें सुख मिलता है। जिसका पहलेका भी पुण्य नहीं है और जो यहाँ भी पुण्यका उपार्जन नहीं करता, ऐसे मनुष्यको न इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही। ऐसे नराधमको धिक्कार है।’*

इस प्रकार नन्दभद्रको समाहित कर वालकने अपना वृत्तान्त भी बतलाया। तत्पश्चात् वह सात दिनों-तक निराहर रहकर सूर्यमन्त्रका जप करता रहा और वहीं वहूङ्क तीर्थमें उसने उस शरीरको भी छोड़ दिया। नन्दभद्रने विधिपूर्वक उसके शवका दाह-सत्कार कराया। उसकी अस्थियाँ वहीं सागरमें डाल दी गयीं और दूसरे जन्ममें वहीं मैत्रेय नामक श्रेष्ठ मुनि हुआ। इनके पिताका नाम कुयारु तथा माताका नाम मित्रा था (भागवत स्कन्ध ३)। इन्होंने व्यासजीके पिता पराशरजीसे ‘प्रिण्युपुराण’ तथा ‘वृहत्-पाराशर होरा-शास्त्र’ नामक विशाल ज्यौतिषप्रन्यका अध्ययन किया था। —जा० श०

(स्कन्दपुराण, माहे० कुमा० ४४-४६, महा०, अनुगा० ११७—११९)

नल-दमयन्तीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

आबू पर्वतके समीप पहले आहुक नामका एक उन्होंने एक यतिका रूप धारण किया और सध्य-भील रहता था। उसकी खींका नाम आहुआ था। वह वडी पतिव्रता तथा वर्मणीला थी। दोनों ही खीं-पुरुष वडे शिवभक्त एवं अतिथि-सेवक थे। एक बार उन्होंने एक रात भर यहीं रहना चाहता हूँ, तुम दयाकर एक रात मुझे रहनेके लिये स्थान दे दो।’ इसपर भीलने कहा, ‘स्वामिन् !

* अस्मिन्द्वये प्रोक्त मार्कण्डेयेन श्रूयते ।

इहैचैकस्य नामुत्र अमुत्रैकस्य नो इह ॥ इह चामुत्र चैकस्य नामुत्रैकस्य नो इह ॥
पूर्वोपात्त भवेत् पुण्य भुक्तिर्वार्जयन्त्यपि । इह भोगः स वै प्रोक्तो दुर्भगसात्यमेधसः ॥
पूर्वोपात्त यस्य नास्ति तपोभिश्वार्जयन्त्यपि । परलोके तस्य भोगो धीमतः स क्रियात्स्फुटम् ॥
पूर्वोपात्त यस्य नास्ति पुण्य नेहापि नाजयेत् । ततश्चेहामुत्र वापि भो धिक् त च नराधमम् ॥

(स्क० पु० माहे० कुमारिका० ४६ । ९६-१००)

मेरे पास स्थान बहुत थोड़ा है, उसमें आप कैसे रह सकते हैं ?' इसपर यति चलनेको ही थे कि खीने कहा—'स्वामिन् ! यतिको लौटाइये नहीं, गृहस्थर्घर्मका विचार कीजिये; इसलिये आप दोनों तो घरके भीतर रहें, मैं अपनी रक्षाके लिये कुछ बड़े शास्त्रोंको लेकर दरवाजेपर बैठी रह जाऊँगी ।' भीलने सोचा, बात यह ठीक ही कहती है, तथापि इसको बाहर रखकर मेरा घरमें रहना ठीक नहीं; क्योंकि यह अबला है। अतएव उसने यति तथा अपनी खीको घरके भीतर रखा और खयं शख धारणकर बाहर बैठ रहा। रात बीतनेपर हित्र पशुओंने उसपर आक्रमण किया और उसे मार डाला। प्रात, होनेपर जब यति और उसकी खी बाहर आये तो उसे मरा देखा। यति इसपर बहुत दुखी हुए। पर भीलनीने कहा—'महाराज ! इसमें शोक तथा चिन्ताकी क्या बात है ? ऐसी मृत्यु तो बड़े भाग्यसे ही प्राप्त होती है। अब मैं भी इनके साथ सती हो जा रही हूँ। इसमें तो हम दोनोंका ही परम कल्याण

हो गया ।' यों कहकर चितापर अपने पतिको रखकर वह भी उसी अग्निमें प्रविष्ट हो गयी ।

इसपर भगवान् शङ्कर डमख-त्रिशूल आदि आयुधोंके साथ प्रकट हो गये। उन्होंने बार-बार उस भीलनीसे वर माँगनेको कहा, पर वह कुछ न बोलकर सर्वथा ध्यानमग्न हो गयी। इसपर भगवान् ने उसे वरदान दिया कि 'आगले जन्ममें तुम्हारा पति निषधदेशमें राजा वीरसेनका पुत्र नल होगा और तुम्हारा जन्म विदर्भदेशके राजा भीमसेनकी पुत्री दमयन्तीके रूपमें होगा। यह यति भी हस होगा और यही तुम दोनोंका सयोग करायेगा। वहाँ तुमलोग अनन्त राज-सुखोंका सम्भोग करके अन्तमें दुर्लभ मोक्षपदको प्राप्त करोगे ।'

यों कहकर वे प्रभु शङ्कर वहीं अचलेश्वर लिङ्गके रूपमें स्थित हो गये और कालान्तरमें ये ही दोनों भील-दम्पति नल-दमयन्तीके रूपमें अवतीर्ण हुए।—जा० शा० (शिवपुराण, शतश्छसहिता, २८वाँ अध्याय)

अनन्यता—मैं किसी भी दूसरे गुरु-माता-पिताको नहीं जानता

माता कैकेयीकी इच्छा और पिता दशरथजीकी मृक आज्ञासे राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्र वन जानेको तैयार हुए। उनकी वन जानेकी बात सुनकर लक्ष्मणजीने भी साथ चलनेकी आज्ञा माँगी। भगवान् श्रीरामने कहा—'मैया ! जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामीकी सीखको खभाव-से ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेनेका लाभ पाया है, नहीं तो जगत्-में जन्म व्यर्थ है। मैं तुम्हें साथ ले जाऊँगा तो अयोध्या अनाथ हो जायगी। गुरु, माता, पिता, परिवार, ग्रजा—सभीको बड़ा दुःख होगा। तुम यहाँ रहकर सबका परितोष करो। नहीं तो बड़ा दोष होगा ।' श्रीरामजीकी इन बातोंको सुनकर लक्ष्मणजी व्याकुल हो गये और उन्होंने चरण पकड़कर कहा—'स्वामिन् । आपने मुझे बड़ी अच्छी

सीख दी, परंतु मुझे तो अपने लिये वह असम्भव ही लगी। यह मेरी कमजोरी है। शास्त्र और नीतिके तो वे ही नरश्रेष्ठ अधिकारी हैं, जो धैर्यवान् और धर्म-धुरन्धर हैं। मैं तो प्रभुके स्नेहसे पाला-पोसा हुआ छोटा बच्चा हूँ। भला, हस भी कभी मन्दराचल या सुमेरुको उठा सकता है। मैं आपको छोड़कर किसी भी गुरु या माता-पिताको नहीं जानता। यह मैं खभावसे ही कहता हूँ। आप विश्वास करें। जगत्-में जहाँतक स्नेह, आत्मीयता, प्रेम और विश्वासका सम्बन्ध वेदोंने बताया है, वह सब कुछ मेरे तो, बस, केवल आप ही हैं। आप दीनबन्धु हैं, अन्तस्तलकी जाननेवाले हैं। धर्म-नीतिका उपदेश तो उसे कीजिये, जिसको कीर्ति,

विभूति या सद्गति प्यारी लगती है। जो मन, वचन, कर्मसे चरणोंमें ही रत हो, कृपासिन्धु ! क्या वह भी त्यागने योग्य है ?

श्रीगमभद्रका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने लक्ष्मणजीको हृदयसे लगा लिया और सुमित्रा मैयासे आज्ञा लेकर साथ चलनेकी अनुमति दे दी।

तुम्हारे ही लिये राम वन जा रहे हैं

माता सुमित्रा अपने पुत्र लक्ष्मणका श्रीरामजीकी सेवाके लिये वन जानेका विचार सुनकर अत्यन्त प्रमुदित हो गयी। उन्होंने जो कुछ कहा, वह सर्वथा आदर तथा अनुकरणके योग्य है। वे बोला—‘वेद ! सीता तुम्हारी माता है, सब प्रकार स्नेह करनेवाले राम तुम्हारे पिता हैं। जहाँ सूर्य है, वहाँ दिन है, इसी प्रकार जहाँ राम रहते हैं, वहाँ अयोध्या है। यदि राम-सीता वन जाते हैं तो अयोध्यामें तुम्हारे लिये कोई कार्य नहीं है।’ XXX तुम महान् भाग्यशाली हो, तुमने मुझको भी धन्य कर दिया; वेद ! मैं तुम्हारी बलिहारी जानी हूँ। जगतमें पुत्रवर्णी तो वही युवती है, जिसका पुत्र भगवान् श्री-राघवेन्द्रका भक्त होता है, जो रामविमुख पुत्रसे हित समझती है, उसका तो बाँझ रहना ही अच्छा था। वह तो

वर्यही व्यावी (पशु-मादाकी तरह उसने सतान पैदा की)। वेद ! तुम यही समझो कि वस, गम तुम्हारे ही कारण वन जाते हैं। श्रीराम-सीताके चरणोंमें सहज प्रेम होना ही समस्त सुकूनोंका महान् फल है। राग, क्रीध, ईर्ष्या, मद, मोह—इनके बग स्वप्नमें भी मत होना और सारे विकारोंको छोड़कर तन-मन-वचनसे सेवा करना।’

लक्ष्मणजीके शक्ति लगनेका समाचार पाकर माता सुमित्राने कहा था—‘रामके काममें जीवनदान करके लक्ष्मण तो धन्य हो गया। अब शत्रुघ्न ! तू जाकर अपने जीवनको सफल कर।’

वन्य माता, धन्य सौतेली माता और वन्य भावद्वृग्नरागकी सूर्ति सुमित्रा।

मेरे समान पापोंका घर कौन ? तुम्हारा नाम याद करते ही पाप नष्ट हो जायेंगे

श्रीराम-सीता-लक्ष्मण वन पधार गये। श्रीदशरथजीकी मृत्यु हो गयी। भरतजी ननिहालसे अयोध्या आये। सब समाचार सुनकर अत्यन्त मर्माहत हो गये। महामुनि विग्रिमुनी, माता कौसल्या, पुरजन, प्रजाजन—सभीने जब भरतको राजगद्दी स्थीकार करनेके लिये कहा, तब भरतजी दुखी होकर बोले—

‘मुझे राजा बनाकर आप अपना भला चाहते हैं ? यह वस, स्नेहके मोहसे कह रहे हैं। कैकेयीके पुत्र, कुण्डलवृद्धि, रामसे विमुख और निर्लज्ज मुझ अवमके राज्यसे आप मोहवश होकर ही सुख चाहते हैं। मैं सन्य कहता हूँ, आप सुनकर विश्वास करें। राजा वही होना चाहिये, जो धर्मशील हो। आप मुझे हठ करके ज्यों ही

राज्य देंगे, त्यों ही यह पृथ्वी पातालमें धैस जायगी। (‘रसा रसातल जाइहि तवहाँ’)। मेरे समान पापोंका घर कौन होगा (‘मोहि समान को पाप निवासू’), जिसके कारण श्रीसीताजी तथा श्रीरामजीका वनवास हुआ। महाराजा तो रामके विछुड़ते ही स्वयं सर्वगको चले गये। मैं दुष्ट सारे अनयोंका कारण होने हुए भी होग-हवासमें ये सारी बातें सुन रहा हूँ।’

भरतजीने अपनी असर्पता प्रकट की। वे श्रीरामचरण-दर्शनके लिये सबको साथ लेकर वनमें पहुँचे। वहाँ बहुत बातें हुईं। भरतजीके रोम-रोमसे आत्मगलानि प्रकट हो रही थी। श्रीरामजीने उनसे कहा—

‘भैया भरत ! तुम व्यर्थ ही अपने हृदयमे गलानि करते हो । मैं तो यह मानता हूँ कि भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों कालोंमे और सर्व, पृथ्वी, पाताल—तीनों लोकोंमे जितने पुण्यात्मा हैं, वे सब तुमसे नीचे हैं । जो मनसे भी तुमपर कुटिलताका आरोप करता है, उसका यह लोक और परलोक—डोनों विगड़ जाते हैं । भई ! तुम्हारेमे पापकी तो कन्धना करना ही पाप है । तुम इतने पुण्यजीवन हो कि तुम्हारा नाम-स्मरण करते ही सब पाप, प्रपञ्च और सारे अमङ्गलोंके समूह नष्ट हो

मैं तुम्हारा चिरऋणी—केवल आपके अनुग्रहका बल

हनुमान्‌जीके द्वारा सीताके समाचार सुनकर भगवान्‌श्रीराम गद्दद होकर कहने लगे—‘हनुमान् ! देवता, मनुष्य, मुनि आदि शरीरधारियोंमे कोई भी तुम्हारे समान मेरा उपकारी नहीं है । मैं तुम्हारा बदलेमें उपकार तो क्या करूँ, मेरा मन तुम्हारे सामने झौँकनेमें भी सकुचाता है । वेद ! मैंने अच्छी तरह विचारकर देख लिया—मैं कभी तुम्हारा ऋण नहीं चुका सकता ।’ धन्य कृतज्ञताके आदर्श—राम स्थामी ।

हनुमान्‌ने कहा—‘मेरे मालिक ! बदरकी बड़ी

जायेंगे तथा इस लोकमे सुन्दर यश और परलोकमे सुख प्राप्त होगा—

मिटिहिं पाप प्रपञ्च सब अखिल अमराल भार ।

लोक सुजस परलोक सुखु सुमिरत नाम तुम्हार ॥

‘भरत ! मैं स्वभावसे ही सत्य कहता हूँ—शिवजी साक्षी हैं, यह पृथ्वी तुम्हारी ही रक्खी रह रही है (‘भरत भूमि रह रातरि राखी’) ।’

धन्य भायप, धन्य प्रेम, धन्य गुणदर्शन, धन्य राम, धन्य भरत !

सप्तरिणीका त्याग

वहुत पुराने समयकी वात है । एक बार पृथ्वीपर वारह वर्गोंतक वर्षा नहीं हुई । ससारमें धोर अकाल पड़ गया । सभी लोग भूखों मरने लगे । सप्तरिं भी भूखने व्यकुल होकर इधर-उधर भटकने लगे । घूमते-घूमते ये लोग वृपादर्भि राजाके राज्यमे गये । उनका आगमन सुनकर राजा वहाँ आया और बोला—‘मुनियो ! मैं आपलोगोंको अन्न, ग्राम, घृत-दुधधादि सर तथा तरह-तरहके रक्त दे रहा हूँ । आपलोग कृपया स्वीकार करें ।’

ऋणियोंने कहा—‘राजन् ! राजाका दिया हुआ दान ऊपरसे मधुके समान मीठा जान पड़ता है, किन्तु परिणाममें वह विश्वके समान हो जाता है । इस वातको

मर्दानगी यही है कि वह एक डालसे दूसरी डालपर कूद जाता है । मैं जो समुद्रको लैंघ गया, लङ्घापुरीको मैंने जला दिया, राक्षसोंका वध करके रावणकी वाटिकाको उजाड़ दिया—इसमे नाय ! मेरी कुछ भी बड़ाई नहीं है, यह सब हे राघवेन्द्र ! आपका ही प्रताप है । प्रभो ! जिसपर आपकी कृपा है, उसके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है । आपके प्रभावसे और तो क्या, क्षुद्र रुद्ध भी बडवानलको जला सकती है । नाय ! मुझे तो आप कृपापूर्वक अपनी अतिसुखदायिनी अनपायिनी भक्ति दीजिये ।’ धन्य निरभिमानितापूर्ण प्रभुपर निर्भरता !

जानते हुए भी हमलोग आपके प्रलोभनमें क्योंकर पड़ सकते हैं । ब्राह्मणोंका शरीर देवताओंका निवासस्थान है । यदि ब्राह्मण तपस्यासे शुद्ध एवं संतुष्ट रहता है तो वह सम्पूर्ण देवताओंको प्रसन्न रखता है । ब्राह्मण दिन भरमें जितना तप सप्रह करता है, उसको राजा-का प्रतिग्रह क्षण भरमे इस प्रकार जला डालता है जैसे सूखे जंगलको प्रचण्ड दावानल । इसलिये आप इस दानके साथ कुरालपूर्वक रहे । जो इसे माँगें अथवा जिन्हे इसकी आवश्यकता हो, उन्हें ही यह दान दे दें ।’

यों कहकर वे दूसरे रास्तेसे आहारकी खोजमें बनमें चले गये । तदनन्तर राजाने अपने मन्त्रियोंको गूलरके फलोंमें सोना भर-भरकर ऋषियोंके मार्गमें रखवा

देनेका आदेश दिया । उनके सेवकोंने ऐसा ही किया । महर्षि अत्रिने जब उनमेंसे एकको उठाया, तब फल बड़ा बजनदार माल्हम हुआ । उन्होंने कहा—‘हमारी बुद्धि इतनी मन्द नहीं हुई है, हम सो नहीं रहे हैं । हमें माल्हम है इनके भीतर सुवर्ण है । यदि आज हम इन्हें ले लेते हैं, तो परलोकमे हमे इसका कटु परिणाम भोगना पड़ेगा ।’

यों कहकर दृष्टापूर्वक नियमोंके पालन करनेवाले वे ऋषिगण चमत्कारपुरकी ओर चले गये । घूमते-घूमते वे मध्यपुष्करमें गये, जहाँ अकस्मात् आये हुए शुन सख नामक परिजाजकसे उनकी भेट हुई । वहाँ उन्हे एक बहुत बड़ा सरोवर दिखायी दिया । उसका जल कमलोंसे ढूँका हुआ था । वे सब-के-सब उस सरोवरके किनारे बैठ गये । उसी समय शुन सखने पूछा—‘महर्षियो ! आप सब लोग बताइये, भूखकी पीड़ा कैसी होती है ?’

ऋषियोंने कहा—‘अखाक्षरोंसे मनुष्यको जो बेदना होती है, वह भी भूखके सामने मात हो जाती है । पेटकी आगसे शरीरकी समस्त नाड़ियों सूख जाती हैं, औंखोंके आगे अंधेरा छा जाता है, कुछ सूझता नहीं । भूखकी आग प्रज्वलित होनेपर प्राणी गूँगा, बहरा, जड़, पङ्क, भयकर तथा मर्यादाहीन हो जाता है । इसलिये अब ही सर्वोत्तम पदार्थ है ।

‘अत अन्नदान करनेवालेको अक्षय तृप्ति और सनातन स्थिति प्राप्त होती है । चन्दन, अगर, धूप और शीतकालमें ईधनका दान अन्नदानके सोलहवे भागके बराबर भी नहीं हो सकता । दम, दान और यम—ये तीन मुख्य धर्म हैं । इनमें भी दम त्रिशेषतः ब्राह्मणोंका सनातन धर्म है । दम तेजको बढ़ाता है । जितेन्द्रिय पुरुष जहाँ कहीं भी रहता है, उसके लिये वही स्थान तपोवन बन जाता है । विषयासत्त्व मनुष्यके मनमें भी दोपोंका उद्घावन होता है, पर जो सदा शुभ कर्मोंमें ही प्रवृत्त है, उसके लिये तो घर भी तपोवन ही है । केवल शब्द-शास्त्र (व्याकरण) में ही लगे रहनेसे मोक्ष नहीं होता, मोक्ष तो एकान्तसेवी, यम-नियमरत,

ध्यानपरायण पुरुषको ही प्राप्त होता है । अङ्गेसहित बेद भी अजितेन्द्रियको पवित्र नहीं कर सकते । जो चेष्टा अपनेको बुरी लगे, उसे दूसरेके लिये भी आचरण न करे—यही धर्मका सार है । जो परायी खीको माताके समान, पर-धनको मिठ्ठीके समान तथा ससारके सभी भूतोंको अपने ही समान देखता है, वही ज्ञानी है । सम्पूर्ण प्राणियोंके हितका ध्यान रखनेवाला प्राणी मोक्षको प्राप्त करता है ।’

तदनन्तर ऋषियोंके हृदयमें विचार हुआ कि इस सरोवरमें कुछ मृणाल निकाले जायें । पर उस सरोवरमें प्रवेश करनेके लिये एक ही दरवाजा था और इस दरवाजेपर खड़ी थी राजा वृषादर्भिकी कृत्या, जिसे उसने अपनेको अपमानित समझकर ब्राह्मणोंद्वारा अनुष्ठान कराकर सप्तर्षियोंकी हत्याके लिये भेजा था । सप्तर्षियोंने जब उस ब्रिकराल राक्षसीको वहाँ खड़ी देखा, तब उन्होंने उसका नाम तथा वहाँ खड़ी रहनेका प्रयोजन पूछा । यातुधानी बोली—‘तपस्त्रियो ! मैं जो कोई भी होऊँ, तुम्हें मेरा परिचय पूछनेकी आवश्यकता नहीं है । तुम इतना ही जान लो कि मैं इस सरोवरकी रक्षिका हूँ ।’

ऋषियोंने कहा—‘भद्रे ! हमलोग भूखसे व्याकुल हैं । अत. तुम यदि आज्ञा दो तो हमलोग इस तालाबसे कुछ मृणाल उत्थाप लें ।’ यातुधानी बोली—‘एक शर्तपर तुम ऐसा कर सकते हो । एक-एक आदमी आकर अपना नाम बताये और प्रवेश करे ।’ उसकी बात सुनकर महर्षि अत्रि यह समझ गये कि यह राक्षसी कृत्या है और हम सबको वध करनेकी इच्छासे आयी है । तथापि भूखसे व्याकुल होनेके कारण उन्होंने उत्तर दिया—‘कल्याणि । पापसे त्राण करनेवालेको अरात्रि कहते हैं और उनसे बचानेवाला अत्रि कहलाता है । पापरूप मृत्युसे बचानेवाला होनेके कारण ही मैं अत्रि हूँ ।’ यातुधानी बोली—‘तेजस्वी महर्षे ! आपने जिस प्रकार अपने नामका तात्पर्य बतलाया है, वह मेरी समझमें आना बड़ा कठिन है । अच्छा, आप तालाबमें उतरिये ।’

इसी प्रकार वशिष्ठने कहा—‘मेरा नाम वशिष्ठ है। सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण लोग मुझे वरिष्ठ भी कहते हैं।’ यातुवानी बोली—‘मैं इस नामको याद नहीं रख सकती। आप जाइये, तालाबमें प्रवेश कीजिये।’ कश्यपने कहा—‘कश्य नाम है शरीरका, जो उसका पालन करता हो, वह कश्यप है। कु अर्थात् पृथ्वीपर वम—वर्षा करनेवाला सूर्य भी मेरा ही स्वरूप है—अतः मैं कुवम भी हूँ।’ काशके फूलकी भाँति उज्ज्वल होनेसे ‘काश्य’ भी समझो।’

इसी प्रकार सभी ऋषियोंने अपने नाम बतलाये, किंतु वह किसीको भी ठीकसे न याद कर पायी न व्याख्या ही समझी, अन्तमें शुनःसखकी पारी आयी। उन्होंने अपना नाम बतलाते हुए कहा—‘यातुवानी! इन ऋषियोंने जिस प्रकार अपना नाम बतलाया है, उस तरह मैं नहीं बता सकता। मेरा नाम शुनःसखसख (धर्म-स्वरूप मुनियोंका मित्र) समझो।’

इसपर यातुवानीने कहा—‘आप कृपया अपना नाम एक बार और बतलायें।’ शुनःसखने कहा—‘मैंने एक

बार अपना नाम बतलाया। तुम उसे याद न कर वार-बार पूछती हो; इसलिये लो, मेरे त्रिदण्डकी मारसे भस्म हो जाओ।’ यों कहकर उस संन्यासीके बेपरे छिपे इन्द्रने अपने त्रिदण्डकी आड़मे गुप्त बज्रसे उसका विनाश कर डाला और सतपर्णियोंकी रक्षा की तथा अन्तमें कहा—‘मैं सन्यासी नहीं, इन्द्र हूँ। आपलोगोंकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे ही मैं यहाँ आया था। राजा वृषादर्भिकी भेजी हुई अत्यन्त क्रूर कर्म करनेवाली यातुधानी कृत्या आपलोगोंका वध करनेकी इच्छासे यहाँ आयी हुई थी। अग्निसे इसका आविर्भाव हुआ था। इसीसे मैंने यहाँ उपस्थित होकर इस राक्षसीका वध कर डाला। तपोधनों! लोभका सर्वथा परित्याग करनेके कारण अक्षय लोकोपर आपका अधिकार हो चुका है। अब आप यहाँसे उठकर वहाँ चलिये।’

अन्तमें सप्तर्षिगण इन्द्रके साथ चले गये। —जा० श०

(महाभारत, अनुशासनपर्व, अध्याय १३; स्कन्दपुराण, नागरखण्ड, अध्याय ३२; पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय १९)

तत्त्वज्ञानके श्रवणका अधिकारी

महर्षि याज्वल्यक्य नियमित रूपसे प्रतिदिन उपनिषदोंका उपदेश करते थे। आश्रमके दूसरे विरक्त गिर्वाय तथा मुनिगण तो श्रोता थे ही, महाराज जनक भी प्रतिदिन वह उपदेश सुनने आते थे। महर्षि तत्त्वतक प्रवचन प्रारम्भ नहीं करते थे, जनतक महाराज जनक न आ जायें। इससे श्रोताओंके मनमें अनेक प्रकारके सदेह उटते थे। वे सकोचके मारे कुछ कहते तो नहीं थे, किंतु मनमें सोचते रहते थे—‘महर्षि शरीरकी तथा ससारकी अनित्यताका प्रतिपादन करते हैं, मानापमानको हेय बतलाते हैं, किंतु विरक्तों, ब्रह्मणों तथा मुनियोंके रहते भी राजाके आये विना उपदेश प्रारम्भ नहीं करते।’

योगिराज याज्वल्यक्यजीने अपने श्रोताओंका मनोभाव लक्षित कर लिया। प्रवचन प्रारम्भ होनेके पश्चात् उन्होंने अपनी योगशक्तिसे एक लीला की। आश्रमसे एक ब्रह्मचारी दौड़ा आया और उसने समाचार दिया—‘वनमें अग्नि लगी है, आश्रमकी ओर ल्पटें बढ़ रही हैं।’

समाचार मिलते ही श्रोतागण उठे और अपनी कुटियोंकी ओर दौड़े। अपने कमण्डलु, बल्कल तथा नीवार आदि वे सुरक्षित रखने लगे। सब वस्तु उँ सुरक्षित करके वे फिर प्रवचनस्थानपर आ वैठे। उसी समय एक राजसेवकने आकर समाचार दिया—‘मिथिला-नगरमें अग्नि लगी है।’

महाराज जनकने सेवककी बातपर ध्यान ही नहीं दिया। इतनेमें दूसरा सेवक दौड़ा आया—‘अग्नि राजमहलके बाहरतक जा पहुँची है।’ दो क्षण नहीं बीते कि तीसरा सेवक समाचार लाया—‘अग्नि अन्तःपुरतक पहुँच गयी।’ महर्षि याज्वल्यने राजा जनककी ओर देखा। महाराज जनक बोले—‘मिथिलानगर, राजभवन, अन्तःपुर या इस शरीरके ही जल जानेसे मेरा तो कुछ जलता नहीं। आत्मा तो अमर है। अतः आप प्रवचन बढ़ न करें।’ अग्नि सच्ची तो थी नहीं; किंतु तत्त्वज्ञानके श्रवणका सच्चा अधिकारी कौन है, यह श्रोताओंकी समझमें आ गया। —सु० सिं०

परात्पर तत्त्वकी शिशु-लीला

नित्य प्रसन्न राम आज रो रहे हैं। माता कौसल्या उद्दिश हो गयी हैं। उनका लाल आज किसी प्रकार गान्त नहीं होता है। वे गोदमें लेकर खड़ी हुईं। पुच्छकारा, थपकी दी, उछालाः किंतु राम रोते रहे। बैठकर मत्तनपान करनेका प्रयत्न किया; किंतु आज तो रामललाको पता नहीं क्या हो गया है। वे बार-बार चरण उछालते हैं, कर पटकते हैं और रो रहे हैं। पालनेमें झुलानेपर भी वे चुप नहीं होते। उनके दीर्घ द्व्यांसे बड़े-बड़े विन्दु टपाटप टपक रहे हैं।

श्रीराम रो रहे हैं। सारा राजपरिवार चिन्तित हो उठा है। तीनों माताएँ व्यग्र हैं। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न—तीनों शिशु बार-बार उझकते हैं, बार-बार हाथ बढ़ाते हैं। उनके अग्रज रो क्यों रहे हैं? माताएँ अत्यन्त व्यथित हैं। अत्यन्त चिन्तित हैं—‘कहाँ ये तीनों भी रोने न लगें।’

‘अवश्य किसीने नजर लगा दी है।’ किसीने कहा, सम्भवतः किसी दासीने। अविलम्ब रथ गया महर्षि वशिष्ठके आश्रमपर। रघुकुलके तो एकमात्र आश्रय ठहरे वे तपोमूर्ति।

‘श्रीराम आज ऐसे रो रहे हैं कि चुप होते ही नहीं।’ महर्षिने सुना और उन ज्ञानधनके गम्भीर मुखपर मन्दसित आ गया। वे चुपचाप रथमें बैठ गये।

‘मेरे पास क्या है। तुम्हारा नाम ही

त्रिभुवनका रक्षक है, मेरी सम्पत्ति और साधन भी वही है।’ महर्षिने यह बात मनमें ही कही। राजभवनमें उन्हें उत्तम आसन दिया गया था। उनके सम्मुख तीनों रानियों बैठी थीं। सुमित्रा और कैकेयीजीने लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नको गोदमें ले रखा था और माता कौसल्याकी गोदमें थे दो इन्द्रीवर-सुन्दर कुमार। महर्षिने हाथमें कुण्ड लिया, नृसिंह-मन्त्र पढ़कर श्रीरामपर कुछ जल-सीकर डाले कुशाग्रसे।

महर्षिने हाथ बढ़ाकर श्रीरामको गोदमें ले लिया और उनके मस्तकपर हाथ रखवा। उन नीलसुन्दरके स्पर्शसे महर्षिका शरीर पुलकित हो गया, नेत्र भर आये। उधर रामलला रुदन भूल चुके थे। उन्होंने तो एक बार महर्षिके मुखकी ओर देखा और फिर आनन्दसे किलकारी मारने लगे।

‘देव ! इस रघुवंशके आप कल्पवृक्ष हैं।’ रानियोंने अच्छल हाथमें लेकर भूमिपर मस्तक रखवा महर्षिके सम्मुख।

‘मुझे कृतार्थ करना था इन कृपामयको।’ महर्षिके नेत्र तो शिशु रामके विकच कमल-मुखपर स्थिर थे।

महर्षिके बड़े शिष्य एक और बैठे तथा अन्तःपुरकी बात्सल्यवती परिचारिकाएँ खड़ी यह मधुर दृश्य देख रही थीं।

(गीतावली, पद १-१२)

सव चमार

मिथुनं नन्दं महाप्रज उनकी सुन्तमे वाङ्मये र्मज
सुर्योदय विद्वानोऽनि सनुदाय एवं या । अनेक वेदोऽनि
ब्राह्मण ये । बहुतसे धार्यनिक सुनिषग्य ये । उस राजनामामें
शृंगिकुमार लग्नवर्णने प्रवेश किय । हाथ, पैर तथा पूरा
वर्षर ठेहा ! पैर रखते कही हैं तो पड़ता कही है और सुखकी
आवाहि तो लैरे भी कुन्ज है । उनकी इस बेंगी मूरतको
देखन्न समाने ग्रामः सर्मि लोग हैं ऐ पड़े । अष्टवर्ज
अनन्तुष्ट नहीं हुए । वे जहाँ थे, वही तड़े हो गए और स्थंये
भी हैं दूसरे लड़े ।

नहाना ज जनक अनन्ते उठे और आगे आये।
उन्होंने हाथ जोड़कर पूछा—मरावद् ! दूसरे हैस क्यों
जुहू हैस ११

અધ્યક્ષને પ્રથ—દે લોગ કણે હુસુ રહે હું ॥

‘हम तो तुम्हारी यह अटपटी आकृति देखकर हँस रहे हैं। एक ब्राह्मण ने उच्चर दिया।

अध्यावक्त्री बोले—प्राजन् ! मैं चला या वह सुनकर
कि जननके द्वारा विद्वान् एकत्र हुए हैं; नितु अब यह देखकर
हँस रहा हूँ कि विद्वानोंकी परिषद्के बदले चमगंडी सन्मान
आ पहुँचा है। वहाँ तो मन चमार हैं।

‘मगरन् ! इन विद्वानोंको आप चमत्र कहते हैं ?’
महाराज जननने शक्तिन् स्वरमें पूछा ।

अध्यक्षक उसी बल्हडपनसे दोले—जो चमड़े और हड्डियोंको देखे-पहिचाने, वह चमत्र।

समझ विद्वानोंके नस्तक हुक गये उन शृंगिकुमारके
सम्मल । —डॉ. तिं

यह सच या वह सच ?

मिथिलान्नरेट नहागङ जनक अपने राजभवनमें दृश्यन
कर रहे थे। नित्रामें उन्होंने एक अद्वितीय स्पष्ट देखा—

मिथ्यानन्द जिनी व्यक्तु नरेवने आकृता कर दिया है। उसकी उपार सेनाने नगरको देर लिया है। तुम्हुल संग्राम छिड़ गया उसके काष्ठ। मिथ्याकी चेना पराजित हो गयी। महाराज जनक दंदी हुए। विजयी व्यक्तु ने आज्ञा दी—‘मैं तुम्हां प्राप्त नहीं चेता; किन्तु अपने सब वस्त्राभरण उत्तर दो और इस रस्ये निकल जाओ।’ उस नरेवने बोपणा करा दी—‘जनकको जो आश्रद या भोजन देगा, उसे प्राप्त नहीं दिया जायगा।’

यज्ञ उनके द्वारा भूमिका उत्तर दिये । केवल एक छोटा
वच कठिमे लघुटे वे राजमहलमे निकल पड़े । पैदल ही उन्हे
राजसीमा बाहरक जाना पड़ा । प्रानमन्त्रे कोई उनसे
बोलनाउन नहीं था । चलते-चलते फैरोमे छाले पह गये ।
बृक्षके नीचे बैठ जायँ या सूखे नो नहै, कोई अपने द्वार-
पर को उनके लडे नी होनेमे डनता था । कई दिनोंतक
अक्षय एक बान मी पैरोमे नहीं गया ।

जनक अद गजा नहीं थे । दिव्यने ज्ञान, धूलिमें प्रा-
यरीन, बुद्धने अनन्त व्याकुल जनक एक मिश्रक-जैसे थे ।
गद्यमें वाहू एक नगर मिला । पत्न द्वारा कि बहों कोई

अन्न-क्लेव है और उसमें भूखोंको खिचड़ी दी जाती है। बड़ी आग्ने से जनक बहों पहुँचे, किंतु खिचड़ी बेट चुकी थी। अब बॉटनेवाला द्वारा बंद करने जा रहा था। भूख से चक्र खाकर जनक दैट गये और उनकी ओंखोंसे ऑसू बहने लगे। अब बॉटनेवाले कर्मचारीको इनकी दबावर दया आ गयी। उसने कहा—‘खिचड़ी तो है नहीं, किंतु वर्तनमें उसकी कुछ खुरचन ल्ही है। तू कहे तो वह तुझे दे दूँ। उसमें नल जानकी गन्ध तो आ रही है।’

जनन्मो तो वही बरदान जान पड़ा । उन्होंने दोनों
हाथ फैलव दिये । अमरीकी जली हुई खिचड़ीकी खुरचन
उनके हाथपर रख दी । लेकिन इसी समय एक चौलने
झगड़ा मार दिया । उसके पंछे ल्यानेसे जनन्म का हाथ ऐसा
हिल कि सारी खुरचन कीचड़ीमें गिर पड़ी । मारे व्ययके
जनक चिल्ल पड़े ।

यद्याँक तो न्यन थाः अति निद्रामे जनक उच्चमुच
चिल्ला पहै थे । चिल्लानेसे उनकी निद्रा तो दूट ही गर्या
गनियोः, रेवन, नेविकाएँ ढौड आयीं उनके पास—महाराज-
को क्या हो गया ?

महानगर जनक अब ऑर्जु प्लाइ-फाइकर ट्रेस्ट है चारों
ओर, वे अग्ने सुविद्धा व्यवन-कञ्चमें स्वर्णगतोंके पल्लगपर

दुर्घफेन-सी कोमल शश्यापर लेटे हैं। उन्हें भूत तो है ही नहीं। रानियाँ पाग खड़ी हैं। सेवक-सेविकाएँ सेवामे प्रस्तुत हैं। वे अब भी मिथिला-नरेश हैं। यह सब देखकर जनक बोले—‘यह सच या वह सच ?’

गनियाँ चिन्तित हो गयीं। मन्त्रियोंकी व्याकुलता बढ़ गयी। महाराज जनक, लगता था कि, पागल हो गये। वे न किसीसे कुछ कहते थे, न किसीके प्रश्नका उत्तर देते थे। उनके सम्मुख जो भी जाता था, उससे एक ही प्रश्न वे करते थे—‘यह सच या वह सच ?’

चिकित्सक आये, मन्त्रज आये और भी जाने कौन-कौन आये, किंतु महाराजकी दगामें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अचानक ही एक दिन शृंगि अष्टावक्रजी मिथिला पधारे। उन्होंने मन्त्रियोंको आश्वासन दिया और वे महाराज जनकके नमीप पहुँचे। जनकने उनसे भी वही प्रश्न किया। योगिराज अष्टावक्रजीने ध्यान करके प्रश्नके कारणका पता लगा लिया।

अष्टावक्रजीने पूछा—‘महाराज। जब आप कठिमें एक वस्त्र-पण्ड ल्पेटे अन्नक्षेत्रके द्वारपर भिक्षुकके बेगमें दोनों हाथ फैलाये रखे थे और आपकी हथेलीपर खिचड़ीकी जली खुरचन रखी गयी थी, उस समय यह राजभवन, आपका यह राजदेश, ये रानियों, राजमन्त्री, सेवक-सेविकाएँ थीं ?’

महाराज जनक अब बोले—‘भगवन्। ये कोई उस समय नहीं थे। उस समय तो विपत्तिका मारा मैं एकाकी क्षुधित भिक्षुक मात्र था।’

आपका राज्य कहाँतक है ?

महाराज जनकके राज्यमें एक ब्राह्मण रहता था। उससे एक बार कोई भारी अपराध बन गया। महाराज जनकने उसको अपराधके फलस्वरूप अपने राज्यसे बाहर चले जानेकी आज्ञा दी। इस आज्ञाको सुनकर ब्राह्मणने जनकसे पूछा—‘महाराज ! मुझे यह बतला दीजिये कि आपका राज्य कहाँतक है ? क्योंकि तब मुझे आपके राज्यसे निकल जानेका ठीक-ठीक जान हो सकेगा।’

महाराज जनक स्वभावतः ही विरक्त तथा ब्राह्मणमें प्रविष्ट रहते थे। ब्राह्मणके इस प्रश्नको सुनकर वे विचारने लगे तो पहले तो परम्परागत सम्रूप पृथ्वीपर ही उन्हें अपना राज्य तथा अधिकार-सा दीखा। मिथिला नगरीपर वह

अष्टावक्रजीने फिर पूछा—‘और राजन्। जागनेपर जब आप इस राजदेशमें राजभवनमें पल्लापर आमीन थे, तब वह अन्नक्षेत्र, उसका वह कर्मचारी, वह आपका कराल-वेश, वह जली खिचड़ीकी खुरचन और वह आपकी क्षुधा थी ?’

महाराज जनक—‘भगवन्। बिल्कुल नहीं, वह कुछ भी नहीं था।’

अष्टावक्र—‘राजन्। जो एक कालमें रहे और दूसरे कालमें न रहे, वह सत्य नहीं होता। आपके जाग्रत्में इस समय वह स्वप्नकी अवस्था नहीं है, इसलिये वह सच नहीं, और स्वप्नके समय वह अवस्था नहीं थी, इसलिये वह भी सच नहीं। न यह सच न वह सच।’

जनक—‘भगवन्। तब सच क्या है ?’

अष्टावक्र—‘राजन्। जब आप भूते अन्नक्षेत्रके द्वारपर हाथ फैलाये रखे थे, तब वहाँ आप तो थे न।

जनक—‘भगवन्। मैं तो वहाँ था।’

अष्टावक्र—‘और राजन्। इस राजभवनमें इस समय आप हैं ?’

जनक—‘भगवन्। मैं तो यहाँ हूँ।’

अष्टावक्र—‘राजन्। जाग्रत्में, स्वप्नमें और सुषुप्तिके साक्षीरूपमें भी आप रहते हैं। अवस्थाएँ बदलती हैं, किंतु उनमें उन अवस्थाओंको देखनेवाले आप नहीं बदलते। आप तो उन स्वर्में रहते हैं। अतः आप ही सच हैं। केवल आत्मा ही सत्य है।’ —सु० सिं०

अधिकार दीखने लगा। आत्मज्ञानके झोंकेमें पुनः उनका अधिकार घटकर प्रजापर, फिर अपने शरीरमें आ गया और अन्तमें कहीं भी उन्हें अपने अधिकारका भान नहीं हुआ। अन्तमें उन्होंने ब्राह्मणको अपनी सारी स्थिति समझायी और कहा कि ‘किसी वस्तुपर भी मेरा अधिकार नहीं है। अतएव आपकी जहाँ रहनेकी इच्छा हो, वहाँ रहिये और जो इच्छा हो, भोजन करिये।’

इमपर ब्राह्मणको आश्रय हुआ और उसने उनसे पूछा—‘महाराज ! आप इतने बड़े राज्यको अपने अधिकारमें रखते हुए किस तरह सब वस्तुओंसे निर्मम हो गये हैं और क्या समझकर सारी पृथ्वीपर अधिकार मौत्र रहे थे ?’

जनकने कहा—‘भगवन् । मसारके भव पदार्थ नश्वर हैं । शास्त्रानुसार न कोई अधिकारी ही भिन्न होता है और न कोई अधिकार-योग्य वस्तु ही । अतएव मैं किसी वस्तुको अपनी कैसे समझूँ? अब जिस बुद्धिसे सारे विश्वपर अपना अधिकार समझता हूँ, उसे सुनिये । मैं अपने सतोषके लिये कुछ भी न कर देवना, पितर, भूत और अतिथि-सेवाके लिये करता हूँ । अतएव पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश और अपने मनपर भी मेरा अधिकार है ।’

जनकके इन वचनोंके साथ ही ब्राह्मणने अपना चोल वदल दिया । उसका विग्रह दिव्य हो गया और बोल कि ‘महाराज । मैं धर्म हूँ । आपकी परीक्षाके लिये ब्राह्मण-चेष्टसे आपके राज्यमें रहा तथा यहाँ आया हूँ । अब भलीभाँति समझ गया कि आप सत्त्वगुणरूप नेमियुक्त ब्रह्मप्राप्तिरूप चक्रके मंचालक हैं ।’ —जा० श०

(महा० आश्मेधिक० ३२ वाँ अध्याय)

संसारके सम्बन्ध भ्रममात्र हैं

शूरसेन प्रदेशमें किसी समय चित्रकेतु नामक अत्यन्त प्रतापी राजा थे । उनकी रानियोंकी तो संख्या ही करना कठिन है, किंतु सतान कोई नहीं थी । एक दिन महर्षि अङ्गिरा राजा चित्रकेतुके राजभवनमें पधारे । सतानके लिये अत्यन्त लालायित नरेशको देखकर उन्होंने एक यज कराया और यजोग्य हविष्यान्न राजाकी भवसे बड़ी रानी कृतद्युतिको दे दिया । जाते-जाते महर्षि कहते गये—‘महाराज! आपको एक पुत्र तो होगा; किंतु वह आपके हर्ष तथा शोक दोनोंका कारण बनेगा ।’

महारानी कृतद्युति गर्भवती हुई । समयपर उन्हें पुत्र उत्पन्न हुआ । महाराज चित्रकेतुकी प्रसन्नताका पार नहीं था । पूरे राज्यमें महोत्सव मनाया गया । दीर्घकालतक सतानहीन राजाको सतान मिली थी, फलतः उनका वात्सल्य उमड़ पड़ा था । वे पुत्रके स्नेहवश बड़ी रानीके भवनमें ही ग्रायः रहते थे । पुत्रवती बड़ी महारानीपर उनका एकान्त अनुराग हो गया था । फल यह हुआ कि महाराजकी दूसरी रानियों कुछने लगीं । पतिकी उपेक्षाका उन्हें बड़ा दुःख हुआ और इस दुःखने प्रचण्ड द्वेषका रूप धारण कर लिया । द्वेषमें उनकी बुद्धि अधी हो गयी । अपनी उपेक्षाका मूल कारण उन्हें वह नवजात वालक ही लगा । अन्तमें सबने सलाह करके उस ओरोध शिष्यको चुपचाप विष दे दिया । वालक मर गया । महारानी कृतद्युति और महाराज चित्रकेतु तो वालकके शवके पास कटे बृक्षकी भौति गिरे ही, पूरे राजसदन-में कन्दन होने लगा ।

रुदन-क्रन्दनसे आकुल उस राजभवनमें दो दिव्य विभूतियों पधारें । महर्षि अङ्गिरा इस बार देवर्षि नारदके साथ आये थे । महर्षिने राजासे कहा—‘राजन् । तुम ब्राह्मणोंके

और भगवान्के भक्त हो । तुमपर प्रभव होकर मैं तुम्हारे पास पहले आया था कि तुम्हे भगवद्वर्णनका मार्ग दिया दूँ; किंतु तुम्हारे चित्तमें उस समय प्रवल पुच्छा देखकर मैंने तुम्हें पुत्र दिया । अब तुमने पुत्र-वियोगके दुःखका अनुभव कर लिया । यह सारा सार इसी प्रकार दुःखमय है ।’

राजा चित्रकेतु अभी शोकमग्न थे । महर्षिकी बातका भर्म वे समझ नहीं सके । वे तो उन महापुरुषोंकी ओर देरखते रह गये । देवर्षि नारदने समझ लिया कि इनका मोह ऐसे दूर नहीं होगा । उन्होंने अपनी दिव्यशक्तिसे वालकके जीवको आकर्षित किया । जीवात्मके आ जानेपर उन्होंने कहा—‘जीवात्मन्! देरखो, ये तुम्हारे माता-पिता अत्यन्त दुखी हो रहे हैं । तुम अपने शरीरमें फिर प्रवेश करके इन्हें सुरी करो और राज्यसुख भोगो ।’

सबने सुना कि जीवात्मा स्पष्ट कह रहा है—‘देवर्षे! ये मेरे किस जन्मके माता-पिता हैं? जीवका तो कोई माता पिता या भाई-बन्धु है नहीं । अनेक बार मैं इनका पिता रहा हूँ, अनेक बार ये मेरे । अनेक बार ये मेरे भिज या भन्न रहे हैं । ये भव सम्बन्ध तो शरीरके हैं । जहाँ शरीरसे सम्बन्ध छूटा, वहीं सब सम्बन्ध छूट गया । फिर तो सबको अपने ही कर्मोंके अनुसार फल भोगना है ।’

जीवात्मा यह कहकर चला गया । गजा चित्रकेतुका मोह उसकी बातोंको सुनकर नष्ट हो चुका था । पुत्रके शवका अन्तिम स्तकार भयन्त्र करके वे स्वस्थचित्तसे महर्षियोंके समीप आये । देवर्षि नारदने उन्हें भगवान् शेषकी आराधना का उपदेश किया, जिसके प्रभावसे कुछ कालमें ही उन्हें शेषजीके दर्जन हुए और वे विद्याधर हो गये ।—सु० सिं०

(श्रीमद्भागवत ६। १४। १६)

संतानके मोहसे विपत्ति

किसी समय तुङ्गभद्रा नदीके किनारे एक उत्तम नगर था । वहाँ आत्मदेव नामके एक सदाचारी, रूर्मनिष्ठ ब्राह्मण रहते थे । उनकी पत्नीका नाम था धुन्धुली । वह सुन्दरी थी, सल्कुलोत्तम थी, धरका कार्य करनेमें निपुण थी; किंतु वहुत बोलनेवाली, कृपण, कलहप्रिय और दूसरोंके ज्ञगड़ोंमें आनन्द लेनेवाली थी । आत्मदेव अपनी पत्नीके साथ मतुए थे, किंतु उन्हें इस ब्रातका बड़ा दुःख या कि उनके कोई संतान नहीं है । उन्होंने दान-पुण्यमें अपनी सम्पत्तिका आधा भाग व्यय भी किया, किंतु कोई संतति नहीं हुई । अन्तमें दुखी होकर उन्होंने देहत्यागका निश्चय कर लिया और एक दिन चुचपचप घनमें चले गये । घनमें प्यास लगनेपर एक सरोवरसे जल पीकर वे बैठे थे कि वहाँ एक सन्यासी आ गये । उन्हें जल पीकर सिर बैठे देर ब्राह्मण आत्मदेव उनके समीप पहुँचे और उनके चरणोंपर सिर रखकर फूट-फूटकर रोने लगे ।

सन्यासी महात्माके पूछनेपर आत्मदेवने अपने कष्टकी वात बतलायी और पुत्र-प्राप्तिका उपाय पूछा । दैवश सन्यासी ने योगबलसे उनकी भाग्यन्तरेखा देरकर बताया—‘तुम्हारे प्रारब्धमें सात जन्मोंतक पुत्र नहीं हैं । पुत्रप्राप्तिके मोहको छोड़ दो । यह मोह अजानसे ही है । देखो । पुत्रके कारण महाराज सगर और राजा अङ्गको भी अत्यन्त दुःख भोगना पड़ा है । सुख तो मोहको छोड़कर भगवान्का भजन करनेमें ही है ।’

परतु ब्राह्मण तो संतानकी इच्छासे मोहन्ध हो रहे थे । उन्होंने रुहा—‘यदि आपने पुत्र-प्राप्तिका उपाय न बताया तो मैं यहीं आपके नामने ही प्राण त्याग दूँगा ।’

अन्तमें विवश होकर महात्माने ब्राह्मणको एक फल टेकर कहा—‘क्या किया जाय, तुम्हारा दुराग्रह बलवान् है, किंतु पुत्रसे तुम्हें सुख नहीं होगा । क्योंकि प्रारब्धके विपरीत हठ करनेसे कष्ट ही मिलता है । अच्छा, यह फल ले जाकर अपनी पत्नीको खिला दो, इससे उसे पुत्र होगा । तुम्हारी पत्नी एक वर्षतक सत्य बोले, पवित्रतापूर्वक रहे, जीवोंपर दया करें, दीनोंको दान दे और केवल एक समय भोजन करे तो पुत्र वार्षिक उत्पन्न होगा ।’

महात्मा तो फल टेकर चले गये और ब्राह्मणने घर आकर फल अपनी पत्नीको दे दिया । परतु आत्मदेवकी देवीजी भी अद्भुत ही थीं । उन्होंने वह फल खाया नहीं,

उल्टे अपनी मखीके सामने रोने लगा—‘मखी । यदि मैं फल खा लूँ तो गर्भवती हो जाऊँगी, उससे मेरा पेट बढ़ जायगा, भूर्म रुम हो जायगी, मैं दुर्बल हो जाऊँगी, फिर धरका कार्य कैसे होगा । रुदान्चित् गाँवमें डाकू आ गये तो गर्भिणी नारी कैसे भाग सकेगी । कहीं गर्भस्थ डिशु टेढ़ा हो गया तो मेरी मृत्यु ही हो जायगी । प्रसवमें भी सुना है महान् कष्ट होता है, मैं सुकुमारी उसे फैसे महन कर सकूँगी । मेरे असमर्थ होनेपर मेरी ननद मेरा सर्वस्व चुग लेगी । सत्य, शौचादि नियमोंका पालन भी मेरे लिये अद्यक्ष्य ही है । पुत्रके लालन-पालनमें भी खींको बड़ा दुःख होता है । मेरी समझसे तो बन्ध्या या विधवा न्यी ही सुखी है ।’ इस प्रकार कुत्कर करके ब्राह्मण-पत्नीने फल नहीं खाया ।

कुछ दिनों बाद ब्राह्मण-पत्नीकी छोटी वहिन उसके पास आयी, ब्राह्मणीने सब बातें उसे बताकर रुहा—‘वहिन । ऐसी दशामें मैं क्या करूँ ।’

उमसी वहिनने रुहा—‘चिन्ता मत करो । मैं गर्भवती हूँ, ब्रह्म होनेपर उसे तुम्हें दे दूँगी । तुम मेरे पतिसो घन दे देना, इससे वह तुम्हें बालक टे देंगे । तबतक तुम गर्भवतीके समान घरमें गुस्सन्पसे रहो । लोगोंमें से प्रभिड़ झर दूँगी कि छ. महीनेका होकर मेरा पुत्र मर गया । तुम्हारे घर प्रतिदिन आकर मैं तुम्हारे पुत्रका पालन-पोषण करूँगी । यह फल तो परीक्षाके लिये गायको दे दो ।’

ब्राह्मण-पत्नीने फल तो गायको दे दिया और पतिसे कह दिया—‘मैंने फल खा लिया ।’ समयपर उसकी वहिनको पुत्र हुआ । गुस्सन्पसे उस वहिनके पतिने बालक लाकर ब्राह्मण-पत्नीको दे दिया । ब्राह्मणीने पतिको बताया—‘वडी मरलतासे पुत्र हो गया ।’ ब्राह्मणके आनन्दका क्या डिकाना । बड़ी धूम-धामसे पुत्रोत्तम भगवान्या जाने लगा । ब्राह्मणने उस बालकका नाम माताके नामपर धुन्धकारी रखा ।

कुछ दिनोंके बाद गायने भी एक मानव-डिशुको जन्म दिया । लोगोंको इससे बड़ा कुतूहल हुआ । यह बालक बहुत ही सुन्दर, तेजम्बी था, किंतु उसके कान गायके समान थे । ब्राह्मणने उस बालकके भी मम्कार रुराये और उसका नाम गोकर्ण रखा ।

वडे होनेपर बालक गोकर्ण तो विनम्र, सदाचारी,

विद्वान् और धार्मिक हुए, किंतु धुन्धकारी महान् दुष्ट हुआ। वह स्नान तथा दूसरी पवित्रताकी क्रियाओंसे दूर ही रहता था, अखाद्य पदार्थ उसे प्रिय थे, अत्यन्त क्रोधी था। वायं हाथसे भोजन करता था, चोर था, सबसे अकारण द्वेष रखता था, छोटे बच्चोंको उठाकर कुर्झेंसे फेंक देता था, हत्यारा था, हाथमे सदा शब्द रखता था, डीनों और अधोंको सदा पीड़ा देता रहता था, चाण्डालोंके साथ हाथमे रत्सी और साथमे कुत्ते लिये घूमा करता था। वेज्यागामी बनकर उसने सब पैतृक सम्पत्ति नष्ट कर दी और माता-पिताको पीटकर वरके वर्तन भी बैचनेको ले जाने लगा।

अब आत्मदेवको पुत्रके उत्पातका दुःख असह्य हो गया। वे दुखी होकर आत्मघात करनेको उद्यत हो गये। परतु गोकर्णने उन्हें समझाया कि ‘यह सुसार ही असार है। यहाँ सुख है नहीं। सुख तो भगवानका भजन करनेमें ही है।

गोकर्णके उपदेशको स्वीकार करके आत्मदेव बनमें चले गये। वहाँ भगवद्भक्तिमें उन्होंने मन लगाया, इससे अन्तमें उन्हें भगवल्लोककी प्रसिद्धि हुई। इधर घरमें धुन्धकारीने माताको निल्य पीटना प्रारम्भ किया कि ‘धन कहाँ छिपाकर

रकड़ा है, वता!’ इस नित्यकी मारसे व्याकुल होकर ब्राह्मणीने कुर्झेंमें कूदकर आत्मघात कर लिया। स्वभावसे विरक्त गोकर्ण तीर्थयात्रा करने चले गये। अब तो धुन्धकारी को स्वतन्त्रता हो गयी। पैंच वेज्याएँ उसने घरमें ही टिका लीं। चोरी, डकैती, जुआ आदिसे उनका पोषण करने लगा।

एक बार अपने कुकर्मोंसे धुन्धकारीने बहुत सा धन एकत्र कर लिया। धनराशि देखकर वेश्याओंके मनमें लोभ आया। उन्होंने परस्पर सलाह करके एक रातमें सोते हुए धुन्धकारीको रसियोंसे ब्रौंध दिया और उसके मुखपर जलते अज्ञार रखकर उसे मार डाला। फिर उसका शव गढ़ा खोदकर गाड़ दिया और सब धन लेकर वे चली गयीं।

मरकर धुन्धकारी प्रेत हुआ। तीर्थयात्रा करके जब गोकर्ण लौटे और रात्रिमें अपने घरमें सोये, तब नाना वेशोंमें प्रेत बना धुन्धकारी उन्हें डरानेका प्रयत्न करने लगा। गोकर्णकी कृपासे वह बोलनेमें समर्थ हुआ, उसके मुखसे उसकी दुर्गतिका वृत्त जानकर गोकर्णने उसे इस दुर्दशाएँ मुक्त करनेका वचन दिया और अन्तमें श्रीमद्भागवतका सप्ताह सुनाकर उसे प्रेतल्वसे मुक्त किया।—सु० सि०

(पश्चपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवतमाहात्म्य ४-५)

शुकदेवजीकी समता

पिता वेदव्यामिजीकी आजासे श्रीगुकदेवजी आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये विदेहराज जनककी मिथिला नगरीमें पहुँचे। वहाँ खूब सजे-सजाये हाथी, घोड़े, रथ और लौ-पुरुषोंको देखा। पर उनके मनमें कोई विकार नहीं हुआ। महलके बामने पहली छोटीपर पहुँचे, तब द्वारपालोंने उन्हें वहाँ धूपमें रोक दिया। न वैठनेको कहा न कोई बात पृछी। वे तनिक भी खिन्न न होकर धूपमें खड़े हो गये। तीन दिन चौथे दिन एक द्वारपालने उन्हें ममानपूर्वक दूसरी छोटीपर ठंडी छायामें पहुँचा दिया। वे वहाँ आत्मचिन्तन करने लगे। उन्हें न तो धूप और अपमानसे कोई क्लेश हुआ न ठड़ी छाया और नमानसे कोई सुख ही।

इसके बाद राजमन्त्रीने आकर उनको सम्मानके साथ सुन्दर प्रमदावनमें पहुँचा दिया। वहाँ पचास नवयुवती लियोंने उन्हें भोजन कराया और उन्हें साथ लेकर हँसती, खेलनी, गाती और नाना प्रकारकी चेष्टा करनी हुई प्रमदावनकी शोभा दिखाने लगी। गत होनेपर उन्होंने शुकदेवजीको सुन्दर

पलगपर वहुमूल्य दिव्य विछौना विछाकर बैठा दिया। वे पैर धोकर रातके पहले भागमें ध्यान करने लगे। मध्यभागमें सोये और चौथे पहरमें उठकर फिर ध्यान करने लगे। ध्यानके समय भी पचासों युवतियों उन्हें धेरकर बैठ गयीं, परतु वे किसी प्रकार भी शुकदेवजीके मनमें कोई विकार पैदा नहीं कर सकीं।

इतना होनेपर दूसरे दिन महाराज जनकने आकर उनकी पूजा की और उन्हें आसनपर बैठाकर पाद्य, अर्च्य और गोदान आदिसे उनका सम्मान किया। फिर सब आजा लेकर धरतीपर बैठ गये और उनसे बातचीत करने लगे।

बातचीतके अन्तमें जनकजीने कहा—‘आप सुख-दुःख, लोभ-क्षोभ, नाच-गान, भय-भेद—सबसे मुक्त परम ज्ञानी हैं। आप अपने जानमें कमी मानते हैं, इतनी ही कमी है। आप परम विज्ञानवन होकर भी अपना प्रभाव नहीं जानते हैं।’ जनकजीके बोधसे उन्हें अपने स्वरूपका पता लग गया।

शुकदेवजीका वैराग्य

एक बार व्यासजीके मनमें व्याहकी अभिलाषा हुई। उन्होंने जावालि मुनिसे कन्या माँगी। जावालिने अपनी चेटिका नामकी कन्या उन्हें दे दी। चेटिकाका दूसरा नाम पिङ्गल था। कुछ दिनोंके बाद उसके गर्भमें शुकदेवजी आये। बाहर वर्ष बीत गये, पर वे बाहर नहीं निकले। शुकदेवजीकी बुद्धि बड़ी प्रसर थी। उन्होंने सारे वेद, वेदाङ्ग, पुराण, धर्मशास्त्र और मोक्ष-शास्त्रोंका वहीं श्रवण करके गर्भमें ही अभ्यास कर लिया। वहाँ यदि पाठ करनेमें कोई भूल होती तो शुकदेवजी गर्भमेंसे ही डॉट देते। इधर माताको भी गर्भके बढ़नेसे बड़ी पीड़ा हो रही थी। यह सब देखकर व्यासजी बड़े विसित हुए। उन्होंने गर्भस्थ बालकसे पूछा—‘तुम कौन हो ?’

शुकदेवजीने कहा—‘जो चौरासी लाख योनियाँ वतायी गयी हैं, उन सबमें मैं धूम चुका हूँ। ऐसी दशामें मैं क्या वताऊँ कि कौन हूँ ?’

व्यासजीने कहा—‘तुम बाहर क्यों नहीं आते ?’

शुकदेव—‘भयंकर संसारमें भटकते-भटकते मुझे बड़ा वैराग्य हो गया है। पर मैं जानता हूँ गर्भसे बाहर आते ही वैष्णवी मायाके स्पर्शसे सारा ज्ञान-वैराग्य हवा हो जायगा। अतएव मेरा विचार इस बार गर्भमें रहकर ही योगाभ्यासमें तत्पर हो मोक्ष-सिद्धि करनेका है।

अन्तमें व्यासदेवजीके वैष्णवी मायाके न सर्वा करनेका आश्वासन देनेपर वे किसी प्रकार गर्भसे बाहर तो आये, पर तुरंत ही बनके लिये चलने लगे। यह देख व्यासजी बोले—‘वेदा ! मेरे घरमें ही ठहरो। मैं तुम्हारा जातकर्म आदि संस्कार तो कर दूँ !’ इसपर शुकदेवजीने कहा—‘अवतक जन्म-जन्मान्तरोंमें मेरे सैकड़ों संस्कार हो चुके हैं। उन बन्धन-प्रद संस्कारोंने ही मुझे भवसागरमें भटका रखा है। अतएव अब मुझे उनसे कोई प्रयोजन नहीं है।’

व्यासदेव—‘द्विजके बालकको पहले विविष्वर्वक ब्रह्म-चर्याश्रममें रहकर वेदाध्ययन करना चाहिये। तदनन्तर उसे गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रममें प्रवेश करना चाहिये। इसके बाद ही वह मोक्षको प्राप्त होता है। अन्यथा पतन अवश्यमावी है।’

शुकदेव—‘यदि ब्रह्मचर्यसे मोक्ष होता हो तब तो

न पुंसकोंको वह सदा ही प्राप्त रहता होगा; पर ऐसा नहीं दीखता। यदि गृहस्थाश्रम मोक्षका सहायक हो, तब तो सम्पूर्ण जगत् ही मुक्त हो जाय। यदि वानप्रस्थियोंको मोक्ष होने लगे, तब तो सभी मृग पहले मुक्त हो जायें। यदि आपके विचारसे संन्यास-धर्मका पालन करनेवालोंको मोक्ष अवश्य मिलता हो, तब तो दरिद्रोंको पहले मोक्ष मिलना चाहिये।’

व्यासदेव—‘मनुका कहना है कि सद्-गृहस्थोंके लिये लोक-परलोक दोनों ही सुखद होते हैं। गृहस्थका समन्वयात्मक संग्रह सनातन सुखदायक होता है।’

शुकदेव—‘सम्भव है दैवयोगसे कभी आग भी शीत उत्पन्न कर सके, चन्द्रमासे ताप निकलने लगे जाय; पर परिग्रहसे कोई सुखी हो जाय—यह तो त्रिकालमें भी सम्भव नहीं है।’

व्यासदेव—‘वडे पुण्योंसे मनुष्यका शरीर मिलता है। इसे पाकर यदि कोई गृहस्थधर्मका तत्व ठीक-ठीक समझ जाय तो उसे क्या नहीं मिल जाता ?’

शुकदेव—‘जन्म होते ही मनुष्यका गर्भ-जनित ज्ञान-ध्यान सब भूल जाता है। ऐसी दशामें गार्हस्थ्यमें प्रवेश तथा उससे लाभकी कल्पना तो केवल आकाशसे पुण्य तोड़नेके समान है।’

व्यासदेव—‘मनुष्यका पुत्र हो या गदहेका, जब वह धूलमें लिपटा, चञ्चलातिसे चलता और तोतली वाणी बोलता है, तब उसका शब्द लोगोंके लिये अपार आनन्दप्रद होता है।’

शुकदेव—‘मुने ! धूलमें लोटते हुए अपवित्र शिशुसे सुख या संतोषकी प्राप्ति सर्वथा अज्ञानमूलक ही है। उसमें सुख माननेवाले सभी अज्ञानी हैं।’

व्यासदेव—‘यमलोकमें एक महाभयंकर नरक है, जिसका नाम है—‘पुम्’। पुत्रहीन मनुष्य वहीं जाता है। इसलिये पुत्रकी प्रशंसा की जाती है।’

शुकदेव—‘यदि पुत्रसे ही स्वर्गकी प्राप्ति हो जाती तो सूबर, कूकर और टिंडुयोंको यह विशेषरूपसे मिल सकता।’

व्यासदेव—‘पुत्रके दर्शनसे मनुष्य पितृ-ऋणसे मुक्त हो जाता है। पौत्र-दर्शनसे देव-ऋणसे मुक्त हो जाता है और प्रपौत्रके दर्शनसे उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है।’

शुकदेव—गीध दीर्घजीवी होते हैं, वे सभी अपनी कई पीढ़ियोंको देखते हैं। पौत्र, प्रपौत्र तो सर्वथा नगण्य वस्तु हैं उनकी दृष्टिमें। पर पता नहीं उनमेंसे अवतक कितनोंको मोक्ष मिला ।'

यो कहकर विरक्त शुकदेवजी वनमें चले गये ।

—जा० श०

(स्कन्दपुराण, नागरखण्ड पूर्वार्ध १५०, देवीभागवत, स्कन्ध १ अ० ४५)

तपोबल

‘मूँ, मुझे उतना ही भीठा दूध पिलाओ ।’ उपमन्यु घर आकर मॉकी गोदमें बैठ गया। उसने अभी थोड़ी देर पहले अपने मामाके लड़केको दूध पीते देखा था, उसे भी थोड़ा-सा दूध मिला था।

‘वेटा ! हमलोग गरीब हैं, पेट भरनेके लिये घरमें अन्नका अभाव है तो दूध किस तरह मिल सकता है ।’ माताने हठी उपमन्युको समझाया; पर वह किसी तरह मानता ही नहीं था। बालहठ ऐसा होता ही है।

माताने दिन काटनेके लिये कुछ अन्न बटोरकर घरमें रखका था। उसने उसे पीसकर तथा पानीमें धोलकर उपमन्युसे कहा कि ‘दूध पी लो ।’

‘नहीं मूँ ! यह तो नकली दूध है, असली दूध तो भीठा होता है ।’ उपमन्युने ओठ लगाते ही दूध पीना अस्वीकार कर दिया। वह मच्छ-मच्छकर रोने लगा।

‘वेटा ! ससारमें हीरा, मोती, माणिक्य सब हैं, पर भाग्य-से ही उनकी प्राप्ति होती है। हमलोग अभागे हैं, इसलिये हमारे लिये असली दूध मिलना कठिन है। भगवान् शिव सर्वसमर्थ हैं, वे भोलानाथ प्रसन्न होनेपर क्षीरसागरतक दे देनेमें सकोच नहीं करते। उनकी शरणमें जानेपर ही मनोकामना पूरी हो सकती है। वे तपसे प्रसन्न होते हैं।’ उपमन्युकी मौने सीख दी।

‘मैं तप करूँगा, मूँ। मैं अपने तपोबलसे सर्वेश्वर महेश्वरका आसन हिला दूँगा। वे कृपामय मुझे क्षीरसागर अवश्य देंगे ।’ उपमन्यु पलभरके लिये भी घरमें नहीं ठहर सका।

× × × ×

उपमन्युने हिमालयपर घोर तप आरम्भ किया। उसने महादेवकी प्रसन्नताके लिये अन्न-जलनकका त्याग कर दिया।

उसकी तपस्यासे समस्त जगत् सत्त्व हो उठा। भगवान् विष्णु ने देवताओंको साथ लेकर मन्दराचलपर जाकर परम शिवसे कहा कि ‘बालक उपमन्युको तपसे निवृत्तकर जगत् को आश्रस्त करना केवल आपके ही वशकी बात है ।’

× × × ×

‘यह अत्यन्त कठोर तप तुम्हारे लिये नहीं है, बालक ।’ ऐरावतसे उत्तरकर इन्द्रने अपना परिचय दिया।

‘आपके आगमनसे यह आश्रम पवित्र हो गया ।’ उपमन्युने इन्द्रका स्वागत किया। शिव-चरणमें दृढ़ भक्ति मौगी।

‘शिवकी प्राप्ति कठिन है। मेरा तीनों लोकोंपर अधिकार है; तुम मेरी शरणमें आ जाओ, मैं तुम्हे समस्त भोग प्रदान करूँगा ।’ इन्द्रने परीक्षा ली।

‘इन्द्र इस प्रकार शिव-भक्तिकी निन्दा नहीं कर सकते। ऐसा लगता है कि तुम उनके वेषमें कोई दैत्य हो। मेरी तपस्यामें विष्णु डालना चाहते हो। तुम शिवनिन्दक हो, मैं तुम्हारा प्राण ले लूँगा, तुमने मेरे आराध्यकी निन्दा की है।’ उपमन्यु मारनेके लिये दौड़ पड़ा, पर सहसा ठहर गया।

‘तुमने अपने तपोबलसे मेरी भक्ति प्राप्त की है, मैं प्रसन्न हूँ, वस्तु ।’ इन्द्ररूपी शिवने अभय दिया। उपमन्यु उनके चरणोंपर नतमस्तक हो गया।

‘मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था ।’ क्षीरसागर प्रकट कर चन्द्रगेवरने भक्तिकी कामना पूरी की। उसे पार्वतीकी गोदमें रखकर कहा कि ‘जगजननी तुम्हारी अम्बा हैं। मैं पिता हूँ।’

भगवतीने उसे योग-ऐश्वर्य और ब्रह्मविद्या दी। वह निहाल होकर गद्याद कण्ठसे जगत्के माता-पितामात्र स्तवन करने लगा। शङ्कर गिरिजासमेत अन्तर्धान हो गये। —रा० श्री०

(लिङ्गपुराण अ० १०७)

वरणीय दुःख है, सुख नहीं

मुख के माथे मिल परै जो नाम हृदय से जाय ।
बहिर्हारी वा दुख को जो पन्नपल नाम रटाय ॥

महाभारतका युद्ध समाप्त हो चुका था । विजयी धर्मराज सिंहासनासीन हो चुके थे । अश्वत्यामाने पाण्डवोंका बड़ा ही नष्ट करनेके लिये ब्रह्मान्बन्धा प्रयोग किया, किंतु जनार्दनने पाण्डवोंकी और उत्तराके गर्भस्य शिशुकी भी उससे रक्षा कर दी । अब वे श्रीकृष्णचन्द्र द्वारका जाना चाहते थे । इसी समय देवी कुन्ती उनके पास आयी । वे प्रार्थना करने लगीं । वही अद्भुत प्रार्थना की उन्होंने । अपनी प्रार्थनामें उन्होंने ऐसी चीज मौंगी, जो कदाचित् ही कोई मौंगनेका साहम करे । उन्होंने मौंगा—

विष्ट, सन्तु न शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो ।

भवतो दर्शन यत् स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥

(श्रीमद्भा० १ । ८ । २५)

‘हे जगद्गुरो ! जीवनमें वारन्वार हमपर विपत्तियाँ ही आती रहे । क्योंकि जिनका दर्शन होनेसे जीव फिर ससारमें नहीं आता, उन आपका दर्शन तो उन (विपत्तियों) में ही होता है ।’

यह देवी कुन्तीका अपना अनुभव है । उनका जीवन विपत्तियोंमें ही बीता और विपत्तियाँ भगवान्का वरदान हैं, उनमें वे मङ्गलमय निरन्तर चित्तमें निवास करते हैं, यह उन्होंने भली प्रकार अनुभव किया । अब उनके पुत्रोंका रात्र निष्कण्ठ हो गया । उन्हें लगा कि विपत्तिरूपी निधि अब हाथसे चली गयी । इसीमें श्यामसुन्दरसे विपत्तियोंका वरदान भौंगा उन्होंने ।

ग्रामादी सुखी जीवन धिकारके बोग्य है । घन्य है वह विपद्ग्रस्त जीवनका दुखपूरित क्षण, जिसमें वे अविलेखर समरण आते हैं ।—झ० सिं० (श्रीमद्भागवत १ । ८)

स्त्रीजित होना अनर्थकारी है

दैत्यमाता दितिके दोनों पुत्र हिरण्यकश और हिरण्यकशिपु मारे जा चुके थे । देवराज इन्द्रकी प्रेरणामें भगवान् विष्णुने वाराह एव नृसिंह अवतार धारण करके उन्हें मारा था । यह यष्ट था कि उनका वध देवताओंकी रक्षाके लिये हुआ था । इसलिये दैत्यमाताका सारा क्रोध इन्द्रपर था । वह पुत्रशोकके कारण इन्द्रसे अत्यन्त रुष थी और वरावर सोचती रहती थी कि इन्द्रको कैसे मारा जाय । परन्तु उसके पास कोई उपाय नहीं था । उसके पतिदेव महर्षि कव्यप रसवसर्मर्थ थे, किंतु अपने पुत्र देवताओंपर महर्षिका अधिक स्नेह था । वे भला, इन्द्रका अनिष्ट क्यों करने ले ।

दितिने निश्चय कर लिया कि चाहे जैसे हो, महर्षि कव्यपको ही प्रसन्न करके इन्द्रके वधकी व्यवस्या उनसे करानी है । अपने अभिप्रायको उसने मनमें अत्यन्त गुत रक्खा और वह पतिसेवामें लग गयी । निरन्तर तत्परतासे दिति महर्षिकी सेवा करने लगी । अपनेको, चाहे जितना कष्ट हो, वह प्रसन्न बनाये रखती । रात-रात जागती, सदा महर्षिके समीप खड़ी रहती और उन्हें कव क्या आवश्यक है, वह देखती रहती । विनय एव सेवाकी वह भूर्ति बन गयी । महर्षि कुछ भी कहें, वह मधुर वाणीमें उत्तर देती । उनकी ओर प्रेम-

पूर्वक देखती रहती । इस प्रकार एक लघे समयतक वह लगी रही पतिसेवामें । अपने परम तेजस्वी समर्थ पतिको उसने सेवासे बशमें कर लिया । महर्षि कव्यप उसपर प्रसन्न होकर अन्ततः एक दिन बोल उठे—‘प्रिये । मे तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हूँ । तुम्हारे मनमे जो इच्छा हो, वर मौंग लो ।’

दिति इसी अवसरकी प्रतीक्षामें थी । उसने कहा—‘देव ! यदि आप सचमुच प्रसन्न हैं और वरदान देना चाहते हैं तो मैं मौंगती हूँ कि आपसे मुझे इन्द्रको मार देनेवाला पुत्र प्राप्त हो ।’

महर्षि कव्यपने मस्तकपर हाथ दे मारा । किंतना वहा अनर्थ—अपने ही प्रिय पुत्रको मारनेवाला दूसरा पुत्र उन्हें उत्पन्न करना पड़ेगा । स्त्रीजित न हो गये होते तो क्यों आता यह अवसर । लेकिन अब तो बात कही जा चुकी । वरदान देनेको कहकर अस्वीकार कैसे करेगा एक श्रृंगि । महर्षि उपाय सोचने ले ।

‘यदि तुम मेरे बताये नियमोंका एक वर्ष तक पालन करोगी और टीक विधिपूर्वक उपासना करोगी तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी ।’ कव्यपनीने उपाय सोचकर कहा —‘यदि नियमोंमें तनिक भी त्रुटि हुई तो तुम्हारा पुत्र देवताओंका

मित्र होगा । तुम्हे पुत्र होगा; किंतु वह इन्द्रको मारनेवाला होगा या देवताओंका मित्र होगा, यह तो आज नहीं कहा जा सकता । यह तो तुम्हारे नियम-पालनपर निर्भर है ।'

दिति ने नियम पूछे । अत्यन्त कडे थे नियम; किंतु वह सावधानीसे उनके पालनमें लग गयी । उसकी नियमनिष्ठा देखकर इन्द्रको भय लगा । वे उसके आश्रममें वेश बदलकर आये और उसकी सेवा करने लगे । इन्द्र सेवा तो करते थे;

किंतु आये थे वे यह अवसर देखने कि कहीं नियमपालनमें दिति से तनिक त्रुटि हो तो उनका काम बन जाय । इन्द्रको मरना नहीं था, भगवान्ने जो विश्वका विधान बनाया है, उसे कोई बदल नहीं सकता । दिति से तनिक-सी त्रुटि हुई और फल यह हुआ कि उसके गर्भसे उन्नचास मरुतोका जन्म हुआ, जो देवताओंके मित्र तो क्या देवता ही बन गये ।—सु० सिं० (श्रीमद्भागवत ६ । १८)

कामासक्तिसे विनाश

हिरण्यकशिपुके वगमें दैत्य निकुम्भके पुत्र सुन्द और उपसुन्द अत्यन्त पराक्रमी तथा उद्धत थे । वे अपने समयमें दैत्योंके मुखिया थे । दोनों सगे भाई थे । दोनोंमें इतना अधिक प्रेम था कि 'एक प्राण दो, देह' की कहावत उनके लिये सर्वथा सार्थक थी । दोनोंकी रूचि समान थी, आचरण समान था, अभिप्राय समान थे । वे साथ ही रहते थे, साथ ही खाते पीते, उठते-बैठते थे । एकके बिना दूसरा कहीं जाता नहीं था । वे परस्पर मधुर वाणी बोलते थे और सदा दूसरे भाईको ही सुख पहुँचाने एव सतुष्ट करनेका प्रयत्न करते रहते थे ।

सुन्द-उपसुन्द दोनों भाइयोंने अमर होनेकी इच्छासे एक साथ घोर तप प्रारम्भ किया । विन्ध्याचल पर्वतपर जाकर वे केवल वायु पीकर रहने लगे । उनके शरीरोपर मिट्टीका ढेर जम गया । अन्तमें अपने शरीरका मास काट-काटकर वे हवन करने लगे । जब शरीरमें केवल अस्थि रह गयी, तब दोनों हाथ ऊपर उठाये, पैरके अँगूठेके बल खड़े होकर उन्होंने तपस्या प्रारम्भ की । उनके दीर्घकालतक चलनेवाले उग्र तपसे विन्ध्य पर्वत तस हो उठा ।

देवताओंने अनेक प्रकारसे विभ करना चाहा उन दोनों दैत्योंके तपमें । परतु सब प्रकारके प्रलोभन, भय एव छल व्यर्थ हुए । अन्तमें उनके तपसे सतुष्ट होकर ब्रह्माजी वहाँ पधारे । वरदान मौगनेको कहनेपर दोनोंने मौगा—'हम दोनों मायावी, सभी अख्लोंके जाता तथा अमर हो जायें ।' पर ब्रह्माजीने उन्हें अमर बनाना स्वीकार नहीं किया । अन्तमें सोचकर दोनोंने कहा—'यदि आप हमें अमरत्व नहीं दे सकते तो यही वरदान दें कि हम दोनों किमी दूसरेसे न तो पराजित हों और न मारे जायें । हमारी मृत्यु कभी हो तो परस्पर एक दूसरेके हाथसे ही हो ।' ब्रह्माजीने इसपर 'एवमस्तु' कह दिया ।

दैत्योंको वरदान देकर ब्रह्माजी अपने लोकमें चले गये और वे दोनों दैत्यपुरीमें आ गये । दोनोंने त्रिलोकीके विजयका निश्चय किया । उद्योग प्रारम्भ करते ही वे विजयी हो गये । उनको जो वरदान मिला था, उसे जानकर भी देवता भला, उनसे युद्ध करनेका साहस कैसे करते । वे तो दैत्योंके आक्रमणका समाचार पाते ही स्वर्ग छोड़कर जहाँ-तहाँ भाग गये । यक्ष, राक्षस, नाग आदि सबको उन दैत्योंने जीत लिया । त्रिलोकविजयी होकर उन्होंने अपने सेवकोंको आज्ञा दे दी—'कोई यज्ञ, पूजन, वेदाध्ययन न करने पाये । जहाँ ये काम हो, उस नगरको भस्स कर दो । त्रृष्णियोंको हूँढ़-हूँढ़कर नष्ट करो ।'

स्वामावसे क्रूर दैत्य ऐसी आज्ञा पाकर ब्राह्मणोंका वध करते घूमने लगे । त्रृष्णियोंके आश्रम उन्होंने जला दिये । किसी त्रृष्णिने शाप भी दिया तो ब्रह्माजीके वरदानसे वह व्यर्थ चला गया । फल यह हुआ कि पृथ्वीपर जितने तपस्वी, वेदपाठी, जितेन्द्रिय ब्राह्मण थे, धर्मात्मा लोग थे, त्रृष्णि थे, वे सब भयके मारे पर्वतोंकी गुफाओंमें जा छिपे । समाजमें न कहीं यज्ञ-पूजन होता था, न वेदपाठ । परतु दैत्योंको इतनेसे सतोष नहीं हुआ । वे इच्छानुसार रूप रखनेवाले क्रूर सिंह, व्याघ्र, सर्प आदिका रूप धारण करके गुफाओंमें छिपे त्रृष्णियोंका भी विनाश करने लगे । इस अत्याचारकी शान्तिका दूसरा कोई उपाय न देखकर त्रृष्णिगण ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके पास पहुँचे । उसी समय देवता भी लोकपितामहके समीप अपनी विपत्ति सुनाने पहुँच गये थे ।

देवताओं तथा त्रृष्णियोंकी विपत्ति सुनकर लोकस्थान ब्रह्माजीने दो क्षण विचार करके विश्वकर्माको बुलाकर एक अत्यन्त सुन्दरी नारीके निर्माणका आदेश दिया । विश्वकर्माने विश्वकी समस्त सुन्दर वस्तुओंका सारभाग लेकर एक स्त्रीका

निर्माण किया । उस नारीके गरीबका एक तिल रखने जितना भाग भी ऐसा नहीं था जो अत्यन्त आकृष्ट न हो, इसलिये ब्रह्माजीने उचका नाम तिलोत्तमा रखका । वह इतनी सुन्दर थी कि नभी देवता और लोकपाल उसे देखते ही मोहित हो गये ।

तिलोत्तमाने हाथ जोड़कर ब्रह्माजीसे पूछा—‘मेरे लिये क्या आज्ञा है?’ पितामह ब्रह्माजीने कहा—‘तुम सुन्द-उपसुन्द-के समीप जाओ और उनमें परत्पर शत्रुता हो जाय, ऐसा प्रयत्न नरो ।’

तिलोत्तमाने आज्ञा स्वीकार कर ली । पितामहको प्रणाम करके, देवताओंकी प्रदक्षिणा करके उसने प्रस्थान किया । सुन्द-उपसुन्द अपने अनुचरोंके साथ उस सुमय विन्द्याचलके उपवनमें विहार कर रहे थे । वहाँ भोगकी सभी सामग्री एकत्र थीं, दोनों भाईं मदिरा पीकर उत्तम आसनोंपर बैठे थे । स्त्रियाँ नृत्य कर रही थीं । गायक नाना प्रकारके वाले वजाकर गा रहे थे । बहुत-से लोग उन दोनों भाईयोंकी स्तुति कर रहे थे । तिलोत्तमा नरोंके किनारे करके पूल चुनती हुई वहाँ पहुँची । उसे देखते ही दोनों भाई उत्सर आसक्त हो गये ।

कामासक्त सुन्द और उपसुन्द एक साथ उठकर तिलोत्तमाके पास दौड़ गये । सुन्दने उसका दाहिना हाथ पन्डा और उपसुन्दने वायाँ हाथ । दोनों उससे अनुनय-विनय करने लगे कि वह उनकी पक्षी हो जाय ।

तिलोत्तमाने दोनोंकी ओर कटाक्षपूर्वक ढेखकर मुस्कराकर कहा—‘आपलोग पहले परत्पर निर्णय कर लें कि मे किसको बरण करूँ ।’

एक नारीकी धासक्तिके कारण दोनों भाईं परत्परका सौहार्द भूल गये । उनमेंसे प्रत्येक स्वयं ही उस नारीको अपनी बनाना चाहता था । एक तो मदिराका नजा था, दूसरे कामदेवने उन्हें अधा कर दिया था । वे अपने हित-अहितको भी भूल गये । सुन्दने कोधपूर्वक उपसुन्दसे कहा—‘यह मेरी छी है । तुम्हारे लिये यह माताके समान है । इसका हाथ छोड़ दो ।’

उपसुन्दने गर्जना की—‘यह मेरी छी है, तुम्हारी नहीं । तुम्हारे लिये यह पुत्रवधूके समान है । जटपट इससे दूर हट जाओ ।’

दोनों कुद्द हो उठे । काममोहित होकर उन्होंने भयानक गदाएं उठा लीं और एक दूसरेपर प्रहार करने लगे । परत्परके आधातसे उनका शरीर पिसकर स्थानस्थानसे कट गया । रक्तकी धारा चलने लगी । अन्तमें दोनों ही मासके लोथड़ोंके समान निर्जीव होकर गिर पड़े ।

तिलोत्तमाका कार्य पूरा हो गया । वह स्वर्गकी श्रेष्ठ अप्सरा बन गयी । इन्द्र देवताओंके माथ फिर स्वगकि अपीश्वर हुए ।

—मु० मिं० (महाभारत, आदि० २१३—२१५)

कामवश विना विचारे प्रतिज्ञा करनेसे विपक्षि

बहुत पहले अयोध्यामें एक राजा रहते थे शृृ॒तघ्नज । महाराज रुक्माङ्गद इनके ही पुत्र थे । वे बड़े प्रतापी और घर्मात्मा थे । इनकी एक अत्यन्त पतिव्रता पक्षी थी—विन्द्यावती । उनके गर्भसे जन्म हुआ था घर्माङ्गदका, जो पितृभक्तोंमें सर्वप्रथम तथा अन्य घर्मोंमें अपने पिता के ही तुल्य थे । महाराज रुक्माङ्गदको एकादशी-त्रत प्राणोंसे भी प्यारा था । उन्होंने अपने समस्त राज्यमें शोधणा करा दी थी कि जो एकादशी-त्रत न करेगा, वह दण्डका भागी होगा । इसलिये उनके राज्यमें आठसे लेकर अस्ती वर्षतकके सभी वाल्क-वृद्ध, पुरुष-ब्री श्रद्धापूर्वक एकादशी-त्रतका अनुश्रान करते थे । केवल कुछ रोगी, गर्भिणी स्त्रियाँ आदि इसके अपवाद थे । इस त्रतके प्रतापसे उनके समयमें कोई भी यमपुरी नहीं जाता था । यमपुरी सूती हो गयी । यमराज इससे बड़े चिन्तित हुए । वे प्रजापति ब्रह्माके पास गये और उन्हें

यमपुरीके उजाड़ होनेका तथा अपनी वेकारीका सुमाचार सुनाया । ब्रह्माजीने उन्हें शान्त रहनेका उपदेश दिया । यमराजके बहुत प्रयत्न करनेपर मायाकी एक मोहिनी नामकी छी शिकारके लिये बनाये गये हुए राजाके पास गयी । उसने राजा रुक्माङ्गद-को अपने बश्यमें कर लिया । राजाने उससे विवाह करना चाहा, तब उसने कहा कि ‘मेरी एक शर्त यह है कि मैं जो कुछ भी कहूँ, वही आपको करना पड़ेगा ।’ महाराज तो मोहसे वेहोश थे ही, फिर न करनेकी तो बात ही कहाँ थी । उसको लेकर वे राजधानी लैटे । राजकुमार घर्माङ्गदने बड़े उत्साहके साथ दोनोंका स्वागत किया । विन्द्यावतीने भी अपनी सौतकी सेवा आरम्भ की और विना किसी मानसिक क्लेशके अपनेको सेविका-जैसी मानकर वह मोहिनीकी टहलमें लग गयी ।

अन्तमें एकादशी भी आ गयी । शहरमें ढिंढोरा पीटा

जाने लगा—‘कल एकादशी है; सावधान, कोई भूल से अब न ग्रहण कर ले। सावधान।’ मोहिनीके कानोंमें ये शब्द पहुँचे। उसने महाराजसे पूछा, ‘महाराज! यह क्या है?’ रुक्माङ्गदने सारी परिस्थिति बतलायी और स्वयं भी व्रत करनेके लिये तत्पर होने लगे।

मोहिनीने कहा—‘महाराज, मेरी एक व्रत माननी होगी।’ रुक्माङ्गदने कहा—‘यह तो मेरी प्रतिज्ञा ही की हुई है।’ तब आप एकादशी-व्रत न करें।’ मोहिनी बोल गयी।

महाराज तो अबकर रह गये। उन्होंने बड़े कष्टसे कहा—‘मोहिनी! मैं तुम्हारी सारी बातें तो मान सकता हूँ और मानता ही हूँ, किंतु देवि! मुझसे एकादशी-व्रत छोड़नेके लिये मत कहो। यह मेरे लिये नितान्त असम्भव है।’

मोहिनीने कहा—‘यह तो हो ही नहीं सकता। आपने इस दृगकी प्रतिज्ञा की है। अतएव आप की हुई प्रतिज्ञासे कैसे टल सकते हैं।’

रुक्माङ्गदने कहा—‘तुम किसी भी शर्तपर मुझे इसे करनेकी आज्ञा दो।’

मोहिनीने कहा—‘यदि ऐसी ही बात है तो आप अपने हाथों धर्माङ्गदका मिर काटकर मुझे दे दीजिये।’

इसपर रुक्माङ्गद वडे दुखी हुए। धर्माङ्गदको जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने अपने पिताको समझाया और वे इसके लिये तैयार हो गये। उन्होंने कहा—‘मेरे लिये तो इससे बढ़कर कोई सौभाग्यका अवसर ही नहीं आ सकता।’ उसकी माता रानी विन्द्यावतीने भी इसका अनुमोदन कर दिया।

सभी तैयार हो गये। महाराजने ज्यों ही तलवार चलायी, पृथ्वी कॉप उठी; साक्षात् भगवान् वहाँ आविर्भूत हो गये और उनका हाथ पकड़ लिया। वे धर्माङ्गद, महाराज तथा विन्द्यावतीको अपने साथ ही अपने श्रीधामको ले गये।

कामके बश होकर विना विचारे प्रतिशा करनेका क्या कुफल होता है और पिता तथा पतिके लिये सुपुत्र तथा सती छी क्या कर सकती है एव भगवान्की कृपा इनपर कैसे वरसती है, इसका यह ज्वलन्त उदाहरण है।—३० ३०

(ब्रह्मनारदीय पुराण, उत्तरभाग १—४०)

परस्तीमें आसक्ति मृत्युका कारण होती है

द्रौपदीके साथ पाण्डव वनवासके अन्तिम वर्ष अजातवासु-के समयमें वेद्य तथा नाम बदलकर राजा विराटके यहाँ रहते थे। उस समय द्रौपदीने अपना नाम सैरन्ध्री रख लिया था और विराटनरेत्रकी रानी सुदेष्णाकी दासी बनकर वे किसी प्रकार समय व्यतीत कर रही थीं।

राजा विराटका प्रधान सेनापति कीचक रानी सुदेष्णाका भाई था। एक तो वह राजाका साला था, दूसरे सेना उसके अधिकारमें थी, तीसरे वह स्वयं प्रख्यात बलवान् था और उसके समान ही बलवान् उसके एक सौ पाँच भाई उसका अनुगमन करते थे। इन सब कारणोंसे कीचक निरङ्कुश तथा मदान्ध हो गया था। वह सदा मनमानी करता था। राजा विराटका भी उसे कोई भय या सकोच नहीं था। उल्टे राजा ही उससे दबे रहते थे और उसके अनुचित व्यवहारोंपर भी कुछ कहनेका साहस नहीं करते थे।

दुरात्मा कीचक अपनी वहिन रानी सुदेष्णाके भवनमें एक बार किसी कार्यवड़ गया। वहाँ धर्पूर्व लावण्यवती दासी सैरन्ध्रीको देखकर उसपर आसक्त हो गया। कीचकने नाना प्रकारके प्रलोभन सैरन्ध्रीको दिये। मैरन्ध्रीने उसे समझाया—

‘मैं पतिव्रता हूँ। अपने पतियोके अतिरिक्त किसी पुरुषकी कभी कामना नहीं करती। तुम अपना पापपूर्ण विचार त्याग दो।’ लेकिन कामान्ध कीचकने उसकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया। उसने अपनी वहिन सुदेष्णाको भी प्रस्तुत कर लिया कि वे सैरन्ध्रीको उसके भवनमें भेजेंगी। रानी सुदेष्णाने सैरन्ध्रीके अस्तीकार करनेपर भी अधिकार प्रकट करते हुए ढॉटकर उसे कीचकके भवनमें जाकर वहाँसे अपने लिये कुछ सामग्री लानेको भेजा। सैरन्ध्री जब कीचकके भवनमें पहुँची, तब वह दुष्ट उसके साथ बलप्रयोग करनेपर उतारू हो गया। उसे धक्का देकर वह भागी और राजसभामें पहुँची। परंतु कीचकने वहाँ पहुँचकर राजा विराटके सामने ही केश पकड़कर उसे भूमिपर पटक दिया और पैरकी एक ठोकर लगा दी। राजा विराट कुछ भी बोलनेका साहस नहीं कर सके।

सैरन्ध्री वनी द्रौपदीने देख लिया कि इस दुरात्मासे विराट उनकी रक्षा नहीं कर सकते। कीचक और भी धृष्ट हो गया। अन्तमें व्याकुल होकर रात्रिमें द्रौपदी भीमसेनके पास गयीं और रोकर उन्होंने भीमसेनसे अपनी व्यथा कही। भीमसेनने उन्हे आश्वासन दिया। दूसरे दिन

सैरन्द्रीने भीमसेनकी सलाहके अनुसार कीचकसे प्रसन्नतापूर्वक बातें कीं और रात्रिमें उसे नाथ्यगालमें आनेको कह दिया।

राजा विराटकी नाथ्यगाल अन्त पुरकी कन्याओंके नृत्य एव सगीत सीखनेके काम आती थी। वहाँ दिनमें कन्याएँ गान-विद्याका अभ्यास करती थीं, किंतु रात्रिमें वह सूनी रहती थी। कन्याओंके विश्रामके लिये उसमें एक विशाल पलग पड़ा था। रात्रिका अन्वकार हो जानेपर भीमसेन चुपचाप आकर नाथ्यगालके उस पलगपर सो रहे। कामान्ध कीचक सज-धजकर वहाँ आया और अँधेरेमें पलगपर बैठकर, भीमसेनको सैरन्द्री समझकर उनके ऊपर उसने हाथ रखता। उछलकर भीमसेनने उसे नीचे पटक दिया और वे उस दुरात्माकी छातीपर चढ़ बैठे।

कीचक बहुत बलवान् था। भीमसेनसे वह भिड़ गया। दोनोंमें मल्लयुद्ध होने लगा, किंतु भीमने उसे शीघ्र पछाड़ दिया, उसका गला धोटकर उसे मार डाला और फिर

उसका मस्तक तथा हाथ-पैर इनने जोरसे दबा दिये कि वे सब धड़के भीतर बुस गये। कीचकका शरीर एक डरावना लोथड़ा बन गया।

प्रातःकाल सैरन्द्रीने ही लोगोंको दिखाया कि उसका अपमान करनेवाला कीचक निस दुर्दणाको प्राप्त हुआ। परतु कीचकके एक-सौ पाँच भाइयोंने सैरन्द्रीको पकड़कर बौब लिया। वे उसे कीचकके शवके साथ चितामें जला देनेके उद्देश्यसे इमश्यान ले चले। सैरन्द्री क्रन्दन करती जा रही थी। उसका विलाप सुनकर भीमसेन नगरका परकोटा कूदकर इमश्यान पहुँचे। उन्होंने एक बृक्ष उत्ताइकर कबेपर उठा लिया और उसीसे कीचकके सभी भाइयोंको यमलोक भेज दिया। सैरन्द्रीके बन्धन उन्होंने काट दिये।

अपनी कामासक्तिके कारण दुरात्मा कीचक मारा गया और पापी भाईका पक्ष लेनेके कारण उसके एक सौ पाँच भाई भी बुरी मौत मारे गये।—सु० सिं०

(महाभारत, विराट १४—२३)

क्रोध मत करो, कोई किसीको मारता नहीं

महाराज उत्तानपाटके विरक्त होकर बनमें तपस्या करनेके लिये चले जानेपर ध्रुव सप्राट हुए। उनके सौतेले भाई उत्तम बनमें आखेट करने गये थे, भूलसे वे यक्षोंके प्रदेशमें चले गये। वहाँ किसी यक्षने उन्हें मार डाला। पुत्रकी मृत्युका समाचार पाकर उत्तमकी माता सुरुचिने प्राण त्याग दिये। भाईके बधका समाचार पाकर ध्रुवको बढ़ा क्रोध आया। उन्होंने यक्षोंकी अल्कापुरीपर चढ़ाई कर दी।

अल्कापुरीके बाहर ध्रुवका रथ पहुँचा और उन्होंने शङ्खनाद किया। बलवान् यक्ष इस चुनौतीको कंसे सहन कर लेते। वे सहस्रोंकी सख्यामें एक साथ निकले और ध्रुवपर टूट पड़े। भयकर सग्राम प्रारम्भ हो गया। ध्रुवके हस्त-लाघव और पटुत्वका वह अद्भुत प्रदर्शन था। सैकड़ों यक्ष उनके बाणोंसे कट रहे थे। एक बार तो यक्षोंका दल भाग ही खड़ा हुआ युद्धभूमिसे। मैदान खाली हो गया। परतु ध्रुव जानते थे कि यक्ष मायावी हैं, उनकी नगरीमें जाना उचित नहीं है। ध्रुवका अनुमान ठीक निकला। यक्षोंने माया प्रकट की। चारों ओर मानो अग्नि प्रज्वलित हो गयी। प्रलयका समुद्र दिशाओंको हुवाता उमड़ता आता दीखने लगा, शत-शत पर्वत आकाशसे स्वर्यं गिरने लगे और गिरने लगे उनसे अपार अस्त्र-शस्त्र; नाना प्रकारके हिंसक जीव-जन्मनु

यक्ष उपदेवता हैं, अमानव होनेसे अतिशय बली हैं, मायावी हैं, किंतु उन्हें आज ऐसे मानवसे सग्राम करना था जो नारायणका कृपापात्र था, मृत्युसे परे था। वेचरे यक्ष उसकी क्रोधाग्निमें पत्तोंके समान भस्स हो रहे थे। परतु यह सहार उचित नहीं था। ग्रजाधीश मनु आकाशमें प्रकट हो गये। उन्होंने पौत्र ध्रुवको सम्बोधित किया—‘ध्रुव। अपने अन्नका उपमहार करो। तुम्हारे लिये यह रोप सर्वथा अनुचित है। तुमने तो भगवान् नारायणकी आराधना की है। वे सर्वेश्वर तो प्राणियोंपर कृपा करनेसे प्रसन्न होते हैं। शरीरके मोहके कारण परस्पर शत्रुता तो पशु करते हैं। वेदा ! देखो तो तुमने कितने निरपराध यक्षोंको मारा है। भगवान् शंककके प्रियजन यक्षराज कुवेसे शत्रुता मत करो। उन लोकेश्वरका क्रोध मेरे कुलपर हो; उससे पूर्व ही उन्हें प्रसन्न करो।’

श्रुतने पितामहको प्रणाम किया और उनकी आज्ञा स्वीकार करके अबका उपर्युक्त हार कर लिया। श्रुतका क्रोध घान्त हो गया है, यह जानकर धनाधीश कुवेरजी स्वयं वहाँ प्रकट हो गये और बोले—‘श्रुत! चिन्ता मत करो। न तुमने यशोंको मारा है न वक्षने तुम्हारे भाईको मारा है। प्राणीकी मृत्यु तो उसके प्रारब्धके अनुसार कालकी प्रेरणासे ही होती है। मृत्युका निमित्त दूसरेको मानकर लोग अजानवग दुखी तथा गेषान्ध होते हैं। तुम सत्पात्र हो, तुमने भगवान्को

प्रसन्न किया है; अतः मैं भी तुम्हें वरदान देना चाहता हूँ। तुम जो चाहो, माँग लो।’

श्रुतको माँगना क्या था। क्या अलम्भ था, उन्हें जो कुवेरसे माँगते? लेकिन सज्जा हृदय प्रभुकी भक्तिसे कभी तृप्त नहीं होता। श्रुतने माँगा—‘आप मुझे आशीर्वाद दें कि श्रीहरिके चरणोंमें मेरा अनुराग हो।’

कुवेरजीने ‘एवमस्तु’ कहकर सम्मानपूर्वक श्रुतको विदा किया।—सु० मिं० (श्रीमद्भागवत ४। १०१०)

अभिमानका पाप (ब्रह्माजीका दर्पभङ्ग)

हरिमाया कर अमित प्रभावा। विपुल वार जोहि माहि नचावा॥

ब्रह्माजीके मोह तथा गर्वभूलनकी भागवत, ब्रह्मवैर्यत, द्विव, स्कन्द आदि पुराणोंमें बहुत-सी कथाएँ आती हैं। अकेले ब्रह्मवैर्यपुराणमें एकत्र कृष्णजन्मखण्डके १४८ वें अन्यायमें ही उनके गर्वभूलनकी कई कथाएँ हैं। एक तो उनमेंसे अत्यन्त विचित्र है। कथा है कि एक वार स्वर्गकी अप्सरा मोहिनी ब्रह्माजीपर अत्यन्त आसक्त हो गयी। वह एकान्तमें उनके पास गयी और उनके आमनपर ही बैठकर उनसे ग्रेमदानकी प्रार्थना करने लगी। ब्रह्माजीको उस समय भगवान् स्मरण आये और भगवत्पूजासे उनका मन निविकार रहा और वे मोहिनीको जानकी वातें समझाने लगे। पर वह इसे न सुन अवाञ्छनीय चैष्टा करने लगी। ब्रह्माजीने भगवान्का स्मरण किया और तबतक ससर्पिण्य सुनकादिके साथ वहाँ पहुँच गये। पर दुर्दैववद्यात् अब ब्रह्माजीको अपनी किया, भक्ति तथा शक्तिका गर्व हो गया। श्रृंगियोंने जब मोहिनीके एकासनपर बैठनेका कारण पूछा, तब ब्रह्माजीने गर्वपूर्वक हँसकर कहा—‘वह नाचते-नाचते थककर पुनर्नीके भावसे मेरे पास बैठ गयी है।’ श्रृंगियोग समझ गये और योड़ी देर बाद हँसते हुए चले गये। अब मोहिनीका क्रोध जाग्रत् हुआ। उसने शाप दिया—‘तुम्हें अपनी निष्कामताका गर्व है और मुझ शरणागताका तुमने उपहास किया है; इसलिये न तो तुम्हारी सरारमें कहाँ पूजा होगी और न तुम्हारा यह गर्व ही रहेगा।’ वह तुरत वहाँसे चलती वनी।

अब ब्रह्माजीको अपनी भूलका पता चला। वे दौड़े हुए भगवान् जनार्दनकी शरणमें बैकुण्ठ पहुँचे। वे अभी अपनी गाया तथा शापादिकी बात सुना ही रहे थे, तबतक द्वारपालने प्रभुसे निवेदन किया—‘प्रभो! वाहर दरवाजेपर अमुक ब्रह्माण्डके स्वामी अष्टमुख ब्रह्मा आये हैं और श्रीचरणोंका दर्शन करना चाहते हैं।’ प्रभुकी अनुमति हुई। अष्टमुख ब्रह्माने आकर बड़ी श्रद्धासे अत्यन्त दिव्य स्तुति सुनायी। ब्रह्माजीको इन ब्रह्माके सामने अपनी विद्या, बुद्धि, शक्ति, भक्ति—सब नगण्य दिखी। तदनन्तर वे आठ मुखके ब्रह्माजी चले गये। इनके जाते ही दूसरे ही क्षण द्वारपालने कहा—‘प्रभो! अमुक दरवाजेपर अमुक ब्रह्माण्डके अधिनायक षोडशमुख ब्रह्मा उपस्थित हैं तथा श्रीचरणोंका दर्शन करना चाहते हैं।’ भगवदाशासे वे भी आये और उन्होंने पूर्वोक्त ब्रह्मासे भी उच्च श्रेणीकी स्तुति सुनायी। इसी प्रकार एक-एक करके षोडशमुखसे लेकर सहस्रमुख ब्रह्मातक पहुँचते गये और उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर गद्धावलियोंमें अपना स्तोत्र सुनाते गये। उनकी योग्यता और निरभिमानता देखकर अपनेको प्रभुके तुल्य ही माननेवाले ब्रह्माजीका गर्व गलकर पानी हो गया। फिर भगवान्ने गङ्गास्नान कराकर उनके गर्वजनित पापकी शान्ति करायी। —जा० श०

(ब्रह्मवैर्यपुराण, कृष्णजन्मखण्ड । एक ऐसी ही कथा जैमिनीया-श्मेध ६०-६१ में भी है।)

मिथ्याभिमान

चक्रवर्तीं सुमाद् भरतकी वारणा या कि वे सुमस्त भूमण्डलके प्रथम चक्रवर्ती हैं—क्रमसे-क्रम वे ऐसे प्रथम चक्रवर्ती हैं, जो द्विष्ठाचल्लभर पहुँच सके हैं। वे उन पर्वत-के शिखरपर अपना नाम अङ्कित करना चाहते थे। उनकी धारणा या कि वहाँ उनका वह पहला नाम होगा।

शिवरपर पहुँचन्नर भरतके पैर टिठक गये। उन्होंने ऊपरसे नीचेतक पर्वतके शिवरको भलीभाँति देखा। जहाँ-तक वे जा सकते थे, शिवरका अन्य दिलाओंमें गये। शिखरपर इतने नाम अङ्कित थे कि नहीं भी एक नाम और लिखा जा सके, इतना स्थान नहीं था। लिखे हुए

नामोंसे एक भी ऐसा नाम नहीं था, जो चक्रवर्तीका नाम न हो।

भरत खिल्ल हो गये। उनका आभिमान कितना मिथ्या था। उन्होंने विवश होकर वहाँ एक नाम मिठ्ठा दिया और उस स्थानपर अपना नाम अङ्कित कराया, किंतु लौटनेपर राजपुरोहितने कहा—‘राजन् ! नामको अमर रखनेका आधार ही आपने नष्ट कर दिया। अब तो आपने नाम मिटाकर नाम लिखनेकी प्रस्तुता प्रारम्भ कर दी। कौन कह सकता है कि वहाँ आपका नाम कौन क्व मिठा देगा ?’

—सु० मि०

सिद्धिका गर्व

‘नमस्त जगत् उनके नृत्यसे मोहित होकर नाच रहा है, देव ! यदि आप उन्हें न रोकेंगे तो महान् अनर्थ हो सकता है। आप आडिदेव हैं।’ ब्रह्मा एव अन्य देवताओंने महादेवको वायुद्वारा सुकून्याके गर्भमें उत्पन्न वाल-त्रक्षचारी महर्षि मङ्गणकके सिद्धिमठोन्मत्त नृत्यकी सूचना दी। मोलानाथ हँस पड़े, मानो उनके लिये वह खेल था।

X X X X

‘आप इतने उन्मत्त होकर नाच क्यों रहे हैं, महर्षि ? आप तो वेदज और शास्त्रोंके महान् जाता हैं, आप परम पवित्र भगवती सरस्वतीमें ल्लान करके यज्ञ आदि कृत्य विधि-पूर्वक सम्बन्धकर वेद-गान करते रहते हैं, आप सत्यके महान् उत्तरासुक हैं, इस नश्वर जगत्की किस वस्तुने आपका मन इस तरह मुग्ध कर लिया है ?’ ब्राह्मणने अमित विनम्रतासे महर्षि मङ्गणकको सचेत किया।

‘रगमें भग ढालना टीक नहीं है, ब्राह्मणदेवता ! आज सिद्धिने मेरी तपस्या सफल कर दी है। देसते नहीं हैं, अँगुलीमें कुशकी नोक गड़ जानेसे रक्षके स्थानपर शाक-रस निकल रहा है।’ महर्षिके नृत्यका देख वढ़ गया।

‘पर इतना ही भल्य नहीं है। वह तो इससे भी आगे

है।’ ब्राह्मणने अपनी अँगुलीके सिरसे अँगूठेपर आवात किया और रक्षके स्थानपर नफेद भस्त निकलने लगा।

X X X X

‘मुझे गर्व हो गया था, देवाधिदेव ! मे आपकी महानता भूल गया था। ऐसी चमकारण्ण सिद्धि आप ही दिखा सकते हैं। मैंने सिद्धिके अमार मदमें अनर्थ कर डाला। आप अपने भूत्वम्पसे मुझे कृतकृत्य कीजिये, मेरे परमार्थ !’ महर्षि मङ्गणके व्यस्त हो गये, उनके सिरसे सिद्धि-पित्ताचिनी उत्तर-कर नौ-दो-न्याग्रह हो गयी। ब्राह्मण-वेषधारी भगवान् शङ्कर उनकी सत्यनिष्ठा और निष्कपट पश्चात्तापसे बहुत प्रसन्न हुए।

मङ्गणके रोम-रोममें अद्भुत हृपेण्डास था। वे परमानन्दमें मम थे। सप्तसारस्वत-तीर्थ उनकी उपस्थितिसे दिव्यतर हो उठा।

‘सिद्धिका गर्व पतनकी ओर ले जाता है, वस्त ! सिद्धि-की परमनिधि—परमेश्वरकी उपासना और भक्ति ही तपस्योंके परम फल है, यही सत्य है।’ शङ्करने मङ्गणके मस्तकपर चरण हस्त रख दिया। महर्षि अपने उपास्यका दर्शन करके आनन्दसे नाच उठे। —रा० श्री० (महाभारत, शत्य० अ० ३८)

—*शुद्धिकृत*—

राम-नामकी अलौकिक महिमा

(वैश्याका उद्घार)

किसी शहरमें एक वैश्या थीं। उसका नाम था जीवन्ती। उसे कोई संतान न थी। इसलिये उसने एक सुग्रेका बच्चा खरीद लिया और पुत्रवत् उसे पालने लग गयी। वह सुग्रेको 'राम राम राम राम' पढ़ाने लगी। अन्याससे सुग्रा 'राम-राम' बोलना सीख गया और सुन्दर स्वरोंसे वह प्रायः सर्वदा 'राम-राम' ही कूजता रहता। एक दिन दैवयोगसे दोनोंके ही प्राण छूट गये। इनको लेनेके लिये यमदूत पहुँचे। इधर विष्णुदूत भी आये। विष्णुदूतोंने भगवन्नामका माहात्म्य बतलाकर यमदूतोंसे उन दोनोंको छोड़ देनेका आग्रह किया। यमदूतोंने उनके दीर्घ और विशाल पाप-समुदाय तथा यमराजकी आज्ञा बतलाकर अपनी लाचारी व्यक्ति की। अन्तमें युद्धकी नौबत आ पहुँची।

युद्धमें यमदूतोंके सेनानायक चण्डको गहरी मार पड़ी। यमदूत उन्हें लेकर हाहाकार करते हुए भाग चले। सारी बात यमराजको विदित हुई। उन्होंने कहा—“दूतो ! उन्होंने मरते समय यदि 'राम' इन दो अक्षरोंको उच्चारण किया है तो उन्हें मुझसे कोई भय नहीं रह गया। संसारमें ऐसा कोई पाप नहीं है, जिसका राम-नामके स्मरणसे नाश न हो जाय। राम-नामका जप करनेवाले कभी विषाद या क्लेशको नहीं प्राप्त होते। इसलिये अब ऐसे लोगोंको भूलकर भी यहाँ लाने-की चेष्टा न करना। मेरा उनको प्रणाम है तथा मैं उनके अधीन हूँ।”

इधर विष्णुदूत हर्षमें भरकर जयध्वनि-के साथ उस सुग्रे तथा गणिकाको व्रिमान-में बिठलाकर विष्णु-लोकको ले गये।

(पञ्चपुराण, क्रियायोगसार, अन्याय १४)

विश्वासकी विजय (श्वेतमुनिपर शंकरकी कृपा)

‘मृत्यु क्या कर सकती है ? मैंने मृत्युज्ञय गिरकी शरण ली है ।’ श्वेतमुनिने पर्वतश्री निर्जन कन्दरामें आत्मविश्वासका प्रकाश फैलाया । चारों ओर सात्त्विक पवित्रताका ही राज्य था, आश्रममें निराली शान्ति थी । मुनिकी तपस्यासे बानावणेकी दिव्यता बढ़ गयी ।

श्वेतमुनिकी आगु समाप्तिके अन्तिम झासपर थी । वे अभय होकर रुद्राध्यायका पाठ कर रहे थे, भगवान् ऋष्यकके स्तुतनसे उनका रोम-रोम प्रतिष्ठानित था ।

वे सहसा चौंक पड़े । उन्होंने अपने सामने एक विकराल आकृति देखी, उसका समस्त गरीर काला था और उसने अति भयकर काला वज्र धारण कर रखा था ।

‘उँ नम शिवाय ।’ इस पवित्र मन्त्रका उच्चारण करते हुए श्वेतमुनिने अत्यन्त करुणभावसे शिवलिङ्गकी ओर देखा । उन्होंने उसका स्पर्श करके वडे विश्वाससे अपरिचित आकृतिसे कहा—‘तुमने हमारे आश्रमको अपवित्र करनेका दु साहस किस प्रकार किया ? यह तो भगवान् शिवके अनुग्रहसे अभय है ।’ मुनिने पुनः शिवलिङ्गका स्पर्श किया ।

‘अब आप धरतीपर नहीं रह सकते, अत्रियि पूरी हो गयी । आपको यमलोक चलना है ।’ भयंकर आकृतिवाले कालने अपना परिचय दिया ।

‘अभय, नीच, तुमने शिवकी भक्तिको चुनौती दी है । जानते नहीं, भगवान् शंकर कालके भी काल—महाकाल है ।’ श्वेतमुनिने शिवलिङ्गको

अङ्कमें भरकर निर्भयताकी साँस ली ।

‘शिवलिङ्ग निश्चेतन है, अक्षिशून्य है, पाषाणमें सर्वेश्वर महादेवकी कल्पना करना महान् भूल है, न्राहण ।’ कालने श्वेतमुनिको पात्रमें बाँध लिया ।

‘यिक्कार है तुम्हें, परम चिन्मय माहेश्वर लिङ्गकी शक्तिमत्ताकी निन्दा करनेवाले काल ! भगवान् उमापति कण-कणमें व्याप्त हैं । विश्वासपूर्वक आवाहन करनेपर वे भक्तकी रक्षा करते हैं ।’ श्वेतमुनिने मृत्युकी भर्त्सना की ।

X X X

‘ठहरो, श्वेतमुनिकी वात सच है, हमारा ग्राकञ्च विश्वासके ही अर्वान है ।’ उमासहित भगवान् चन्द्रगेहर प्रकट हो गये । उनकी जठरमें पतितपात्रनी गङ्गाका मनोरम रमण था, भुजाओंमें सर्पवल्य और वक्षदेशमें साँपोंकी माला थी । भगवान्के गौर शरीरपर भस्मका शङ्खर ऐसा लगता था मानो हिमालयके ध्वल शिखरपर श्याम धनका आन्दोलन हो । काल उनके प्रकट होते ही निष्ठाण हो गया । उसकी शक्ति निक्रिय हो गयी । श्वेतमुनिने भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया, वे भोलानाथ-की स्तुति करने लगे ।

‘आपकी लिङ्गोपासना धन्य है, भक्तराज ! विश्वास-की विजय तो होती ही है ।’ शिवने मुनिकी पीठपर वरद हस्त रख दिया ।

नन्दीके आग्रहपर कालको प्राणदान देकर भगवान् मृत्युज्ञय अन्तर्भान हो गये ।—राठी०(लिङ्गपुराण, अ० ३०)

शवरीकी दृढ़ निष्ठा

प्राचीन समयकी वात है । सिंहक्रेतुं नामक एक पञ्चालदेशीय राजकुमार अपने सेवकोंको साथ लेकर एक द्विन वनमें शिवार क्षेत्रने गया । उसके सेवकोंमेंसे एक शवरको शिवारकी खोजमें इवर-उवर घूमते एक द्रृष्टि-श्रद्धा शिवालय दीख पड़ा । उसके चबूतरेपर एक

शिवलिङ्ग पड़ा था, जो दृटकर जलहरीसे सर्वथा अलग हो गया था । शवरने उसे मूर्तिमान् सौभाग्यकी तरह उठा लिया । वह राजकुमारके पास पहुँचा और विनय-पूर्वक उसे शिवलिङ्ग दिखलाकर कहने लगा—‘प्रभो ! देखिये, यह कैसा सुन्दर शिवलिङ्ग है । आप यदि

कृपापूर्वक मुझे पूजाकी विधि बता दें तो मैं नित्य इसकी पूजा किया करूँ ।'

निषादके इस प्रकार पूछनेपर राजकुमारने ग्रेमपूर्वक पूजाकी विधि बतला दी । पोडगोपचार पूजनके अतिरिक्त उसने चिताभस्म चढानेकी बात भी बतलायी । अब वह शबर प्रतिदिन स्नान कराकर चन्दन, अक्षत, बनके नये-नये पत्र, पुष्प, फल, धूप, दीप, नृत्य, गीत, वाघके द्वारा भगवान् भगवान् महेश्वरका पूजन करने लगा । वह प्रतिदिन चिताभस्म भी अवश्य भेट करता । तत्पश्चात् वह स्वय प्रसाद ग्रहण करता । इस प्रकार वह श्रद्धालु शबर पत्नी-के साथ भक्तिपूर्वक भगवान् शंकरकी आराधनामें तछीन हो गया ।

एक दिन वह शबर पूजाके लिये बैठा तो देखता है कि पात्रमें चिताभस्म तनिक भी शेष नहीं है । उसने बड़े प्रयत्नसे इधर-उधर ढूँढ़ा, पर उसे कहीं भी चिताभस्म नहीं मिला । अन्तमें उसने शिति पत्नीसे व्यक्त की । साथ ही उसने यह भी कहा कि 'यदि चिताभस्म नहीं मिलता तो पूजाके बिना मैं अब क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता ।'

खीने उसे चिन्तित देखकर कहा—'नाय । डरिये मत । एक उपाय है । यह घर तो पुराना हो ही गया है । मैं इसमें आग लगाकर उसीमें प्रवेश कर जाती हूँ । इससे आपकी पूजाके निमित्त पर्याप्त चिताभस्म तैयार हो जायगी ।' बहुत वाद-विवादके बाद शबर

भी उसके प्रस्तावसे सहमत हो गया । शबरीने खामीकी आज्ञा पाकर स्नान किया और उस घरमें आग लगाकर अग्निकी तीन बार परिक्रमा की, पतिको नमस्कार किया और सदाशिव भगवान्का हृदयमें ध्यान करती हुई अग्निमें धुस गयी । वह क्षणभरमें जलकर भस्म हो गयी । फिर शबरने उस भस्मसे भगवान् भूतनाथकी पूजा की ।

शबरको कोई विपाद तो था नहीं । स्वभाववशात् पूजाके बाद वह प्रसाद देनेके लिये अपनी खीको पुकारने लगा । स्मरण करते ही वह छी तुरंत आकर खड़ी हो गयी । अब शबरको उसके जलनेकी बात याद आयी । आश्वर्यचकित होकर उसने पूछा कि 'तुम और यह मकान तो सब जल गये थे, फिर यह सब कैसे हुआ ?'

शबरीने कहा—'आगमे मैं धुसी तो मुझे लगा कि जैसे मैं जलमें धुसी हूँ । आधे क्षणतक तो प्रगाढ़ निद्रा-सी विद्वित हुई और अब जगी हूँ । जगनेपर देखती हूँ तो यह घर भी पूर्ववत् खड़ा है । अब प्रसादके लिये यहाँ आयी हूँ ।'

निषाद-दम्पति इस प्रकार बाते कर ही रहे थे कि उनके सामने एक दिव्य विमान आ गया । उसपर भगवान्के चार गण थे । उन्होंने ज्यों ही उन्हे स्पर्श किया और विमानपर बैठाया, उनके शरीर दिव्य हो गये । वास्तवमें श्रद्धायुक्त भगवदराधनाका ऐसा ही माहात्म्य है ।—जा० श०

(स्कन्द० ब्राह्म० ब्रह्मोत्तर० अध्याय १७)

आपदि किं करणीयम्, स्मरणीयं चरणयुग्मलम्भायाः (सुदर्शनपर जगद्भाकी कृपा)

अयोध्यामें भगवान् रामसे १५वीं पीढ़ी बाद ध्रुव-संधि नामके राजा हुए । उनके दो भ्रियों थीं । पहुँ-महिषी थी कलिङ्गराज वीरसेनकी पुत्री मनोरमा और छोटी रानी थी उज्जयिनीनरेश युधाजितकी पुत्री

लीलावती । मनोरमाके पुत्र हुए सुदर्शन और छोटी रानी लीलावतीके शत्रुजित् । महाराजकी दोनोंपर ही समान दृष्टि थी । दोनों राजपुत्रोंका समान रूपसे लालन-पालन होने लगा ।

इधर महाराजको आखेटका व्यसन कुछ अधिक था । एक दिन वे शिकारमें एक सिंहके साथ भिड़ गये, जिसमें सिंहके साथ स्वयं भी स्वर्गगामी हो गये । मन्त्रियोंने उनकी पारलैकिक किया करके सुदर्शनको राजा बनाना चाहा । इधर शत्रुजित्के नाना युधाजित्को इस बातकी खबर लगी तो वे एक बड़ी सेना लेकर इसका विरोध करनेके लिये अयोध्यामें आ डटे । उधर कलिङ्गनरेश वीरमेन भी सुदर्शनके पक्षमें आ गये । दोनोंमें युद्ध छिड़ गया । कलिङ्गायिपति मारे गये । अब रानी मनोरमा डर गयी । वह सुदर्शनको लेकर एक धाय तथा महामन्त्री विद्लुके साथ भागकर महर्षि भरद्वाजके आश्रममें प्रयाग पहुँच गयी । युधाजित्ने अयोध्याके सिंहासनपर शत्रुजित्को अभिषिक्त किया और सुदर्शनको मारनेके लिये वे भरद्वाजके आश्रमपर पहुँचे । पर मुनिके भयसे वहाँसे उन्हें भागना पड़ा ।

एक दिन भरद्वाजके गिर्याण महामन्त्रीके सम्बन्धमें कुछ बातें कर रहे थे । कुछने कहा कि विद्लु क्षीव (नपुसक) है । दूसरोंने भी कहा—‘यह सर्वथा क्षीव है’ । सुदर्शन अभी बालक ही था । उसने बार-बार जो उनके मुँहसे क्षीव-क्षीव सुना तो स्वयं भी ‘क्षी-क्षी’ करने लगा । पूर्व पुष्पके कारण वह कालीबीजके रूपमें अभ्यासमें परिणत हो गया । अब वह सोते, जागते, खाते, पीते, ‘क्षी क्षी’ रटने लगा । इधर महर्षिने उसके क्षत्रियोचित सस्कारादि भी कर दिये और थोड़े ही दिनोंमें वह भगवती तथा ऋषिकी कृपासे शञ्च-शाङ्खादि सभी विद्याओंमें अत्यन्त निपुण हो गया । एक दिन बनमें खेलनेके समय उसे देवीकी दयासे अक्षय दूरीर तथा दिव्य धनुष भी पड़ा मिल गया । अब सुदर्शन भगवतीकी कृपासे पूर्ण शक्तिसम्पन्न हो गया ।

इधर काशीमें उस समय राजा सुबाहु राज्य करते थे । उनकी कन्या शशिकला बड़ी विदुषी तथा देवी-मक्ता थी । भगवतीने उसे स्वप्नमें आज्ञा दी कि ‘तू

सुदर्शनको अपने पतिरूपमें वरण कर ले । वह तेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करेगा ।’ शशिकलाने मनमें उसी समय सुदर्शनको पतिके रूपमें स्त्रीकार कर लिया । प्रातःकाल उसने अपना निश्चय माता-पिताको सुनाया । पिताने लड़कीको जोरोंसे डॉढ़ा और एक असहाय बनवासीके साथ सम्बन्ध जोड़नेमें अपना अपमान समझा । उन्होंने अपनी कन्याके स्वयंवरकी तैयारी आरम्भ की । उन्होंने उस स्वयंवरमें सुदर्शनको आमन्त्रित भी नहीं किया । पर शशिकला भी अपने मार्गपर ढूँढ थी । उसने सुदर्शनको एक ब्राह्मणद्वारा देवीका सदेश भेज दिया । सभी राजाओंके साथ वह भी काशी आ गया ।

इधर शत्रुजित्को साथ लेकर उसके नाना अवन्तिनरेश युधाजित् भी आ धमके थे । प्रयत्न करते रहनेपर भी शशिकलाद्वारा सुदर्शनके मन-ही-मन वरण किये जानेकी बात सर्वत्र फैल गयी थी । इसे भला, युधाजित् कैसे सहन कर सकते थे । उन्होंने सुबाहुको बुलाकर जबाब तलब किया । सुबाहुने इसमें अपनेको दोषरहित बतलाया । तथापि युधाजित्ने कहा—‘मैं सुबाहुसहित सुदर्शनको मारकर बलात् कन्याका अपहरण करूँगा ।’ राजाओंको बालक सुदर्शनपर कुछ दया आ गयी । उन्होंने सुदर्शन-को बुलाकर सारी स्थिति समझायी और भाग जानेकी सलाह दी ।

सुदर्शनने कहा—‘यद्यपि न मेरा कोई सहायक है और न मेरे कोई सेना ही है, तथापि मैं भगवतीके स्वप्नगत आदेशानुसार ही यहाँ स्वयंवर देखने आया हूँ । मुझे पूर्ण विश्वास है, वे मेरी रक्षा करेंगी । मेरी न तो किसीसे शत्रुता है और न मैं किसीका अकल्याण ही चाहता हूँ ।’

अब प्रान्तकाल स्वयंवर-प्राङ्गणमें राजा लोग सज-धजकर आ बैठे तो सुबाहुने शशिकलासे स्वयंवरमें जानेके लिये कहा । पर उसने राजाओंके सामने होना सर्वथा अस्तीकार कर दिया । सुबाहुने राजाओंके अपमान तथा

उनके द्वारा उपस्थित होनेवाले भयकी बात कही। शशिकला बोली—‘यदि तुम सर्वया कायर ही हो तो तुम मुझे सुदर्शनके हवाले करके नगरसे बाहर छोड़ आओ।’ कोई दूसरा रस्ता भी नहीं था, इसलिये सुवाहने राजाओंसे तो कह दिया कि ‘आपलोग कल स्वयंवरमेआयेगे, आज शशिकला नहीं आयेगी।’ इधर रातमें ही उसने सदिस विधिसे गुप्तरीत्या सुदर्शनसे शशिकलाका विवाह कर दिया और सबेरा होते ही उन्हें पहुँचाने लगा।

युधाजित्को भी बात किसी प्रकार मालूम हो गयी। वह रास्तेमें अपनी सेना लेकर सुदर्शनको मार डालनेके विचारसे खिर था। सुदर्शन भी भगवतीको स्मरण करता

हुआ वहौं पहुँचा। दोनोंमें युद्ध छिड़नेवाला ही था कि भगवती साक्षात् प्रकट हो गयी। युधाजित्की सेना भाग चली। युधाजित् अग्ने नाती शत्रुजित्के साथ खेत रहा। पराम्बा जगज्जननीने सुदर्शनको वर मोंगनेके लिये प्रेरित किया। सुदर्शनने केवल देवीके चरणोंमें अग्निल, निश्वल अनुरागकी याचना की। साथ ही काशीपुरीकी रक्षाकी भी प्रार्थना की।

सुदर्शनके वरदानस्वरूप ही दुर्गाकुण्डमें स्थित हुई पराम्बा दुर्गा वाराणसीपुरीकी अद्यावधि रक्षा कर रही हैं। —जा० शा० (देवीभागवत, स्कन्ध ३, अध्याय १४ से २५, खण्ड १८ । ३४—५३)

सच्ची निष्ठा

(गणेशजीकी कृपा)

पहले समयकी बात है। सिन्धु देशकी पल्लीनगरीमें कल्याण नामका एक घनी मेठ रहता था। उसकी पत्नी-का नाम इन्दुमती था। विवाह होनेके बहुत दिनोंके बाद उनके पुत्र हुआ; उसके जन्मोत्सवमें उन लोगोंने अनेक दान-पुण्य किये, राग-रंग और आमोद-प्रमोदमें पर्याप्त धन व्यय किया। उसका नाम रक्खा गया बल्लाल; वह उन दोनोंके नयनोंका तारा था।

X X X

‘कितना मनोरम वन है।’ सरोवरमें अपने सम-वयस्त्व कबल्गोपालोंके साथ स्तान करते हुए बल्लालने अपने कथनका समर्थन कराना चाहा। वह उन्हें नित्य अपने साथ लेकर पल्लीसे घोड़ी दूर स्थित वनमें आकर सैर-सपाई किया करता था। बालकोंने उसकी ‘हो-मैं-हूँ’ मिलायी।

‘चलो, हमलोग भगवान् विनेश्वर श्रीगणेश देवताकी पूजा करें; उनकी कृपासे समस्त संकट मिट जाते हैं।’ बल्लालने सरोवरके किनारे एक छोटे-से पत्थरको

श्रीगणेशका श्रीनिव्रह मानकर बालकोंको पूजा करनेकी प्रेरणा दी। उसने श्रीगणेश-महिमाके सम्बन्धमें अनेक बातें घरपर सुनी थीं।

लता-पत्र एकत्रकर बालकोंने एक मण्डप बूँदा लिया, उसमें तथाकथित श्रीगणेश-निव्रहकी स्थापना करके मानसिक पूजा—फूल, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल, दक्षिणा आदिसे—आरम्भ की। उनमेंसे कई एक पण्डितोंका स्वाँग बनाकर पुराणों और शास्त्रोंकी चर्चा करने लगे। इस प्रकार श्रीगणेशकी उपासनामें उनका मन लग गया। वे दोपहरको भोजन करने घर नहीं आते थे, इसलिये दुबले हो गये। उनके पिताओंने कल्याण सेठसे कहा कि यदि बल्लालका वनमें जाना नहीं रोक दिया जायगा तो हमलोग राजासे गिरायत करके आपको पल्लीनगरीसे बाहर निकलता देंगे। कल्याणका मन चिन्तित हो उठा।

X X X

‘ये तो नकली गणेश हैं, बच्चों। असली गणेशजी तो हृदयमें रहते हैं।’ कल्याणने हाथके डंडेसे बछालको सावधान किया।

‘मिनाजी. आग जो कुछ भी कह रहे हैं, वह आपका दृष्टिमें नितान्त सत्र है पर नेरी निष्ठा तो श्रीगणेशके इनी श्रीविप्रहमें है। मैं पूजा नहीं थोड़ भक्ता।’ बल्लालका इनना कहना था कि नेठने उसे भारता आगम्म किया अन्य बालक भाग निकले। नेठने मण्डप तोड टाला, बल्लालको एक जोटमें रूपेने पेड़के तनेमें बौंच डिया।

‘यदि इस विप्रहमें श्रीगणेशजी होंगे तो तुम्हारा बन्धन सुख जायगा। उम निर्जन बनमें वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे।’ कन्याणन घका रात्ना डिया।

X X X

‘निस्मन्देह श्रीगणेशजी ही नेरी माना-रिता हैं। वे दयामय हीं मेरी रक्षा करेंगे। वे विनिदितारक, सिद्धि-

दायक, सर्वमर्य हैं। मैं उनकी अरणमें अभय हूँ।’ बल्लालका निष्ठा बोल रथी; वह हृष्टमें करुणाका वेग समेटकर निर्निमेय दृष्टिमें श्रीगणेशके विप्रहको देखने लगा।

‘मैं तन मन्त्रे हीं बाँचा जाय, पर मैं भग मन खतन्त्र हैं, मैं अपना ग्राण श्रीगणेशके चरणोंमें अर्पित करूँगा।’ बल्लालके इस निश्चयमें पापाणमें श्रीगणेशजी प्रकट हो गये।

‘तुम्हारी निष्ठा बन्ध है, बस।’ श्रीगणेशने उसका आठिङ्गल किया। वह बन्धनमुक्त हो गया। उसने अपने आगथकी जी भर सुनि की। गणेशजीने अभय दान डिया, और अन्तर्धान हो गये। —रा० श्री०

(गणेशपुराण, अ० २२)

लोभका दुष्परिणाम

प्राजान शालमें सुख्य नामके एक नेश्य थे। उनके कोइं पुत्र नहीं था; नेश्य एक बन्धा था। एत प्रानिकी इच्छासे उन्होंने देवन् ब्राह्मणोंकी सेवा प्राप्तमर्ही। गजाने दान एव उम्मानमें ननुष्ट होन्न ब्राह्मणोंने देवर्पि नानदसे यज्ञके पुत्र होनेकी प्रार्थना की। उन दिनों देवर्पि यज्ञ सुख्यसे ही अतिथि थे। ब्राह्मणोंसे प्रार्थनासे द्विति होकर देवर्पिने गजासे कहा— तुम कैसा पुत्र चाहते हो ?’

अब यहा सुख्यके मनमें लोभ आया। उन्होंने प्रार्थना की—‘आप सुझे ऐसा एत्र होनेता बन्धन दें जो सुन्दर हो, न्वन्ध हो, गुगवान् हो तथा उसुने मन्मूत्र, धून्कर आदि न्वर्गमय देह।

देवर्पिने कुछ सोचन्न ‘एवमन्तु कर डिया। उनके वरदानके अनुसार गजाको थोड़े दिनमें पुत्र ग्रास हुआ। उस पुत्रना नाम गजाने सुवर्णशीली रक्षा। अब सुख्यके घनका क्या डिकाना था। उनके पुत्रका थूक तथा मल्लून—सुमी न्वर्ग होता था। गजाने अपने राजमवनके सब पात्र, आसुन आदि न्वर्गके बनवा लिये। इनके अनन्तर उन्होंने पूरा राजमवन ही न्वर्णका बनवाया। उसमें दीवाल, सर्वमें

उन तथा भूमि आदि सब सोनेकी थीं।

गजाके पुत्र सुवर्णशीलीका समाचार सुरे देशमें फैल गया। दूर-दूरसे लोग उसे देखने आने लगे। डाकुओंने भी यह समाचार पाया। उनके अनेक दल परस्पर मिल्कर उस राजकुमारको हरण करनेका प्रयत्न करने लगे। अवसर पाकर एव यह दस्तु राजमवनमें द्वुष आये और राजकुमारको उठा ले गये।

वनमें पहुँचनेपर दम्भुओंमें विचाद हो गया। अधिक समयनक राजकुमारको जीवित छिपाये रखना अत्यन्त कठिन था। सबने निश्चय किया कि सुवर्णशीलीको मारकर जो न्वर्ण मिले, उसे परस्पर बाँट लिया जाय। उन निर्दिन दस्तुओंने राजकुमारके दुकड़े कर ढाँचे, किंतु उसके शरीरसे उन्हें एक रसी भी सोना नहीं मिला।

लोभके बद्य होकर राजा सुख्यने ऐसा पुत्र माँगा कि उसकी रक्षा अशक्य हो गयी। पुत्र-शोक सहन करना पड़ा उन्हें। लोभका डाकुओंने राजकुमारकी हत्या की। केवल पापमारी हुए वे और राजकोपके भाजन भी। लाम कुछ उन्हें भी नहीं हुआ। —द्वा० सिं० (महामारन, द्वोप० ८८)

आदर्श निर्लोभी

परम भक्त तुलाधार शूद्र वडे ही सत्यवादी, वैराग्यवान् तथा निर्लोभी थे। उनके पास कुछ भी संग्रह नहीं था। तुलाधारजीके कपड़ोंमें एक धोती थी और एक गमछा। दोनों ही विल्कुल फट गये थे। मैले तो थे ही। वे नाममात्रके बन्ध रह गये थे, उनसे वस्तकी जरूरत पूरी नहीं होती थी। तुलाधार नित्य नदी नहाने जाते थे, इसलिये एक दिन भगवान्ने दो वढ़िया वस्त नदीके तीरपर ऐसी जगह रख दिये, जहाँ तुलाधारकी नजर उनपर गये बिना न रहे। तुलाधार नित्यके नियमानुसार नहाने गये। उनकी नजर नये वस्तोंपर पड़ी। वहाँ उनका कोई भी मालिक नहीं था, परतु इनके मनमें जरा भी लोभ पैदा नहीं हुआ। उन्होंने दूसरेकी वस्तु समझकर उधरसे सहज ही नजर फिरा ली और स्नान-ध्यान करके चलते बने। दूर छिपकर खडे हुए प्रभु भक्तका सयम देखकर मुसकरा दिये।

दूसरे दिन भगवान्ने गूलरके फल-जैसी सोनेकी डली उमी जगह रख दी। तुलाधार आये। उनकी नजर आज भी सोनेकी डलीपर गयी। क्षणमरके लिये अपनी दीनताका

ध्यान आया, परतु उन्होंने सोचा, यदि मैं इसे ग्रहण कर लैँगा तो मेरा अलोभ-ब्रत अभी नष्ट हो जायगा। फिर इससे अहकार पैदा होगा। लाभसे लोभ, फिर लोभसे लाभ, फिर लाभसे लोभ—इस प्रकार निन्यानवेके चक्रमें मैं पड़ जाऊँगा। लोभी मनुष्यको कभी ज्ञान्ति नहीं मिलती।

नरकका दरवाजा तो सदा उसके लिये खुला ही रहता है।

वडे-वडे पापोंकी पैदाइग इस लोभसे ही होती है। घरमें बनकी प्रचुरता होनेसे स्त्री और बालक धनके मदसे मतवाले हो जाते हैं, मतवालेपनसे कामविकार होता है और कामविकारसे बुद्धि मारी जाती है। बुद्धि नष्ट होते ही मोह छा जाता है और उस मोहसे नया-नया अहकार, क्रोध और लोभ उत्पन्न होता है। इनसे तप नष्ट हो जाता है और मनुष्यकी बुरी गति हो जाती है। अतएव मैं इस सोनेकी डलीको किसी प्रकार भी नहीं लैँगा।¹³ इस प्रकार विचार करके तुलाधार उसे वहीं पड़ी छोड़कर घरकी ओर चल दिये। स्वर्गस्थ देवताओंने साधुवाद दिया और फूल बरसाये।

सत्य-पालनकी हँड़ता

अयोध्या-नरेश महाराज हरिश्चन्द्रने स्वप्रमें एक ब्राह्मणको अपना राज्य दान कर दिया था। जब वह ब्राह्मण प्रत्यक्ष आकर राज्य मौंगने लगा, तब महाराजने उसके लिये भिहासन खाली कर दिया। परतु ब्राह्मण कोई साधारण ब्राह्मण नहीं था और न उसे राज्यकी भूत्त थी। वे तो थे ऋषि विश्वामित्र, जो हन्द्रकी प्रेरणासे हरिश्चन्द्रके सत्यकी परीक्षा लेने आये थे। राज्य लेकर उन्होंने राजासे इस दानकी साझताके लिये एक सहस्र स्वर्णमुद्राएँ दक्षिणाकी और मौंगीं। दान किये हुए राज्यका तो सब बैमव, कोप आदि ऋषिका हो ही गया था, राजा को वह अतिरिक्त दक्षिणा देनेके लिये एक महीनेका समय उन्होंने दिया।

जो अवतक नरेश था, वह अपनी महारानी तथा राजकुमारके साथ साधारण वस्त पहिने राजभवनसे दरिद्रके समान निकला। उसके पास एक फट्टी कौड़ी भी नहीं थी और न था पायेय ही। अपने दान किये राज्यका अन्न-जल उसके लिये वर्जित था। वह उदार धर्मात्मा भगवान् विश्वनाथकी

पुरी काशीमें पहुँचा। भरे बाजारमें उसने अपनी पत्नीको दासी बनानेके लिये बेचनेकी पुकार प्रारम्भ की। महारानी शैव्या, जो मैकड़ों दामियोंसे सेवित होती थीं, धर्मनिष्ठ पति-द्वारा बेच दी गयी। एक ब्राह्मणने उन्हे खरीदा। वही कठिनाईसे उस ब्राह्मणने शैव्याको अपने छोटे-से पुत्र रोहिताश्वको साथ रखनेकी अनुमति दी। परतु महारानीको बेचकर भी हरिश्चन्द्र केवल आधी ही दक्षिणा दे सके विश्वामित्रको। शैष आधीके लिये उन्होंने स्वय अपनेको चाण्डालके हाथों बेचा।

महारानी शैव्या अब ब्राह्मणकी दासी थीं। पानी भरना, वर्तन मलना, घर लीपना, गोवर उठाना आदि सब कार्य ब्राह्मणके घरका उन्हें करना पड़ता था। उनका पुत्र—अयोध्याका सुकुमार युवराज रोहिताश्व अपनी नन्ही अवस्थामें ही दासी-पुत्रका जीवन व्यतीत कर रहा था। उधर राजा हरिश्चन्द्रको चाण्डालने अमशान-रक्षक नियुक्त कर दिया था। जिनकी सेवामें सेवकों और सैनिकोंकी भीड़ लगी रहती थी;

वे अब हाथमें लाटी लिये अकेले घोर शमशानभूमिमें रात्रिको धूमा करते थे। जो कोई वहाँ शब-दाह रखने आता था, उससे 'कर' लेना उनका कर्तव्य बन गया था।

विपत्ति यहाँ नहीं समाप्त हुई। रोहिताश्वको सपने डैंस लिया। अब शैवाके साथ भला, शमशान जानेवाला कौन मिलता। अपने मृत पुत्रको उठाये वे देवी रोती-चिल्लती रात्रिमें अकेली ही शमशान आयी। उनका रुदन सुनकर हरिश्चन्द्र भी लाटी लिये 'कर' लेने पहुँच गये उनके पास। मेघाच्छन्न आगाम, घोर अन्धकारमयी रजनी; किंतु विजली चमकी और उसके प्रकाशमें हरिश्चन्द्रने अपनी रानीको पहिचान लिया। पुत्रका शब पढ़ा था सामने और पतिवता पत्नी क्रन्दन कर रही थी, परतु हरिश्चन्द्रने हृदयको बत्र बना लिया था। हाय रे कर्तव्य! कर्तव्यसे विवश वे शोले—'भट्टे।' कुछ 'कर' दिये विना तुम पुत्रके देहका सस्कार नहीं बर सकतों। मेरे स्वामीका आदेश है कि मैं किसीको भी 'कर' लिये विना यहाँ शब-दाहादि न करने वैँ। मेरा धर्म मुझे विवश कर रहा है।'

शैवा क्या 'कर' दें! क्या धरा था उस धर्ममयी नारीके पास। पुत्रके मृत शरीरको ढकनेके लिये उसके पास तो

—३६५—

तनिक-सा भी असत्य पुण्यको नष्ट कर देता है

महाभारतके युद्धमें द्रोणाचार्य पाण्डव-सेनाका संहार कर रहे थे। वे धार-नार दिव्यान्नोंका प्रयोग करते थे। जो भी पाण्डव-पक्षका वीर उनके सामने पड़ता, उसीको वे मार गिराते थे। सम्पूर्ण सेना विचलित हो रही थी। बड़े-बड़े महारथी भी चिन्तित हो उठे थे।

'आचार्यके हाथमें शश रहते तो उन्हें कोई पराजित कर नहीं सकता। वे स्वयं शक्त रख दें, तभी विजय सम्भव है।' युद्धके प्रारम्भमें उन्होंने स्वयं बताया है कि कोई अत्यन्त अप्रिय समाचार विश्वस्त व्यक्तिके द्वारा सुनायी पड़नेपर वे शश त्यागकर ध्यानस्थ हो जाया करते हैं।' पाण्डवोंकी विपत्तिके नित्यसहायक श्रीकृष्णचन्द्रने सबको यह बात स्वरण करायी।

भीमसेनको एक उपाय सूझ गया। वे द्रोणपुत्र अश्वत्थामासे युद्ध करने ल्ये। युद्ध करते समय भीम अपने रथसे उत्तर पड़े और अश्वत्थामाके रथके नीचे गदा लगाकर रथके साथ उसे युद्धभूमिसे बहुत दूर फेंक दिया उन्होंने। कौरव-

कफन भी नहीं था। अपने अचलसे ही वह उसे ढककर ले आयी थी। परतु पतिके धर्मकी रक्षा तो अपने प्राण देकर भी उसे करनी थी। उसने अपनी आधी साझी 'कर' के रूपमें देनेका विचार कर लिया। हरिश्चन्द्रने फाइ लेना चाहा उसकी साझी।

परीक्षा समाप्त हो गयी। शमशानभूमि दिव्य आलोकसे आलोकित हो उठी। भगवान् नारायणने प्रकट होकर हरिश्चन्द्रका हाथ पकड़ लिया था। सत्य-स्वरूप श्रीनारायण हरिश्चन्द्रकी सत्यनिष्ठासे पूर्ण सतुष्ट हो गये थे। वे कह रहे थे—'राजन्। अब तुम पत्नीके साथ बैकुण्ठ पधारो।'

'राजन्। आपने अपनी सेवासे मुझे सतुष्ट कर लिया। आप अब स्वतन्त्र हैं।' हरिश्चन्द्रने देखा कि उनका स्वामी चाण्डाल और कोई नहीं, वे तो साक्षात् धर्मग्राज हैं।

उस समय वहाँ महर्षि विश्वामित्र भी आ पहुँचे। वे कह रहे थे—'वेदा रोहित! उठ तो!' रोहिताश्व उनके पुकारते ही निद्रासे जगेकी भौति उठ वैठा। महर्षिने कहा—'राजन्! रोहित अब मेरा है और उसे मैं अयोध्याके सिंहासनपर बैठाने ले जा रहा हूँ।'—सु० सि०

सेनाम एक अश्वत्थामा नामका हाथी भी था। भीमसेनने एक ही आधातसे उसे भी मार दिया और तब द्रोणाचार्यके सम्मुख जाकर पुकार-पुकारकर कहने लगे—'अश्वत्थामा मारा गया। अश्वत्थामा मारा गया।'

द्रोणाचार्य चौके, किंतु उन्हें भीमसेनकी बातपर विश्वास नहीं हुआ। युधिष्ठिरसे सच्ची बात पूछनेके लिये उन्होंने अपना रथ बढ़ाया। इधर श्रीकृष्णचन्द्रने युधिष्ठिरसे कहा—'महाराज! आपके पक्षकी विजय हो, इसका दूसरा कोई उपाय नहीं। आचार्यके पूछनेपर 'अश्वत्थामा मारा गया' यह बात आपको कहनी ही चाहिये। मेरे कहनेसे आप यह बात कहें।'

वर्मराज युधिष्ठिर किसी प्रकार झूठ बोलनेको प्रस्तुत नहीं थे, किंतु श्रीकृष्णचन्द्रका कहना वे टाल भी नहीं सकते थे। द्रोणाचार्यने उनके पास आकर पूछा कि भीमसेनकी बात सत्य है या नहीं तो वडे कहसे उन्होंने कहा—'अश्वत्थामा मारा गया।' सर्वथा असत्य उनसे किर भी बोला नहीं गया।

उनके मुखसे आगे निकला—‘मनुष्य वा हाथी’ परतु जैसे ही युधिष्ठिरने कहा—‘अश्वत्थामा मारा गया’ वैसे ही श्रीकृष्णचन्द्रने अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाना प्रारम्भ कर दिया। युधिष्ठिरके अगले शब्द उस शङ्खचन्द्रनिके कारण द्रोणाचार्य सुन ही नहीं सके।

धर्मराज युधिष्ठिरका रथ उनकी सत्यनिष्ठाके प्रभावसे

सदा पृथ्वीसे चार अगुल ऊपर ही रहता था; किंतु इस छलवाक्यके बोलते ही उनके रथके पहिये भूमिपर लग गये और आगे उनका रथ भी दूसरे रथोंके समान भूमिपर ही चलने लगा। इसी असत्यके पापसे सशरीर स्वर्ग जानेपर भी उन्हें एक बार नरकका दर्शन करना पड़ा।—सु० सि०

(महाभारत, द्वे० १९०)

ईमानदार व्यापारी

महातपस्वी ब्राह्मण जाजलिने दीर्घकालतक श्रद्धा एवं नियमपूर्वक वानप्रस्थाश्रमधर्मका पालन किया था। अब वे केवल वायु पीकर निश्चल खड़े हो गये थे और कठोर तपस्या कर रहे थे। उन्हें गतिहीन देखकर पक्षियोंने कोई वृक्ष समझ लिया और उनकी जटाओंमें धोंसले बनाकर वहीं अड़े दे दिये। वे दयालु महर्षि चुपचाप खड़े रहे। पक्षियोंके अड़े बढ़े और फूटे, उनसे बच्चे निकले। वे बच्चे भी बड़े हुए, उड़ने ल्ये। जब पक्षियोंके बच्चे उड़नेमें पूरे समर्थ हो गये और एक बार उड़कर पूरे एक महीनेतक अपने धोंसलेमें नहीं लैटे, तब जाजलि हिले। वे स्वयं अपनी तपस्यापर आश्र्य करने लगे और अपनेको सिद्ध समझने ल्ये। उसी समय आकाशवाणी हुई—‘जाजलि! तुम गर्व मत करो। काशीमें रहनेवाले तुलाधार वेद्यके समान तुम धार्मिक नहीं हो।’

आकाशवाणी सुनकर जाजलिको बड़ा आश्र्य हुआ। वे उसी समय चल पड़े। काशी पहुँचकर उन्होंने देखा कि तुलाधार एक साधारण दूकानदार हैं और अपनी दूकानपर बैठकर ग्राहकोंको तौल-तौलकर सौदा दे रहे हैं। परतु जाजलिको उस समय और भी आश्र्य हुआ जब तुलाधारने बिना कुछ पूछे उन्हें उठकर प्रणाम किया, उनकी तपस्याका वर्णन करके उनके गर्व तथा आकाशवाणीकी बात भी बता दी। जाजलिने पूछा—‘तुम तो एक सामान्य बनिये हो, तुम्हें इस प्रकारका ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ?’

तुलाधारने नम्रतापूर्वक कहा—‘ब्रह्मन्। मैं अपने वर्णनित धर्मका सावधानीसे पालन करता हूँ। मैं न मद्य बेचता हूँ, न और कोई निन्दित पदार्थ बेचता हूँ। अपने

ग्राहकोंको मैं तौलमें कभी ठगता नहीं। ग्राहक बूढ़ा हो या बच्चा, भाव जानता हो या न जानता हो, मैं उसे उचित भावमें उचित वस्तु ही देता हूँ। किसी पदार्थमें दूसरा कोई दूषित पदार्थ नहीं मिलाता। ग्राहककी कठिनाईका लाभ उठाकर मैं अनुचित लाभ भी उससे नहीं लेता हूँ। ग्राहकी सेवा करना मेरा कर्तव्य है, यह बात मैं सदा सरण रखता हूँ। ग्राहकोंके लाभ और उनके हितका व्यवहार ही मैं करता हूँ, यही मेरा धर्म है।’

तुलाधारने आगे बताया—‘मैं राग-द्वेष और लोभसे दूर रहता हूँ। यथाशक्ति दान करता हूँ और अतिथियोंकी सेवा करता हूँ। हिंसारहित कर्म ही मुझे प्रिय हैं। कामनाका त्याग करके सब प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखता हूँ और सबके हितकी चेष्टा करता हूँ।’

जाजलिके पूछनेपर महात्मा तुलाधारने उनको विस्तारसे धर्मका उपदेश किया। उन्हें समझाया कि हिंसायुक्त यज्ञ परिणाममें अनर्थकारी ही हैं। वैसे भी ऐसे यज्ञोंमें बहुत अधिक भूलोंके होनेकी सम्भावना रहती है और थोड़ी-सी भी भूल विपरीत परिणाम देती है। प्राणियोंको कष्ट देनेवाला मनुष्य कभी सुख तथा परलोकमें मङ्गल नहीं प्राप्त कर सकता। ‘अहिंसा ही उत्तम धर्म है।’

जो पक्षी जाजलिकी जटाओंमें उत्पन्न हुए थे, वे बुलाने पर जाजलिके पास आ गये। उन्होंने भी तुलाधारके द्वारा बताये धर्मका ही अनुमोदन किया। तुलाधारके उपदेशसे जाजलिका गर्व नष्ट हो गया।—सु० सि०

(महाभारत, शान्ति० २६१-२६४)

वह सत्य सत्य नहीं, जो निर्दोषकी हत्यामें कारण हो

मैकड़ों भाल बीत गये, किन्तु दो नदियोंके पवित्र सगमपर एक तपोधन ब्राह्मण रहते थे। उनका नाम कौशिक था। वे अपने जीवनका प्रत्येक क्षण शास्त्रसम्मत धर्मचरणमें विताते थे, उनकी मनोवृत्ति सात्त्विक थी वे नियमपूर्वक सगमपर ज्ञान करके त्रिकाल-सम्भ्या करते थे तथा भूलसे भी किनीका मन नहीं दुरस्त होता थे। उनके निष्पट व्यवहारकी प्रवृत्ति दूर-दूरतक फैल गयी थी।

X X X

‘महाराज! आप सत्यवादी हैं, ब्राह्मण हैं, न्वप्में भी आपने असत्य-भाषण नहीं किया है। कृपापूर्वक वतलाइये कि लोग किधर गये।’ ढाकुओंने नदीके तटपर आसीन कौशिक ब्राह्मणका मन चञ्चल कर दिया। वे कुछ व्यक्तियोंका पीछा करते-करते कौशिके आश्रममें आ पहुँचे थे।

‘यह बात नितान्त सत्य है कि वे निकटकी ही क्षाड़ियोंमें छिप गये हैं। यदि मैं ढाकुओंसे उनका ठीक-ठीक पता नहीं

बता देता तो मुझे असत्यभाषणका पाप लगेगा। सत्य ही तप है, धर्म है, न्याय है, मैं सत्यको नहीं छिपा सकता।’ कौशिकके नेत्र बद थे, वे मनमें सत्य-असत्यका विवेचन कर रहे थे।

‘सत्यवादी सच बोलनेमें विलम्ब नहीं करते, ब्राह्मण-देवता। आपके लिये आगा-यीद्धा करना उचित नहीं है।’ ढाकुओंने प्रगता की।

‘उधर!’ ब्राह्मणने अङ्गुलीसे मकेत किया और क्षण-मात्रमें उनके सत्यकथनके हुपरिणामरूपमें ढाकुओंने असद्य यात्रियोंके प्राण ले लिये। उन्हे हित-अहितका तनिक भी विवेक नहीं था, वे कोरे सत्यवादी थे।

कौशिकके सत्यने अधर्म और अन्यायको प्रोत्साहन दिया और इनसे उन्हे नरकमें जाना पड़ा। —८० श्री०

(महाभारत, कर्ण० अ० ६९)

यज्ञमें पशुवलिका समर्थन असत्यका समर्थन है

कृष्णके प्रारम्भमें सत्ययुगका समय था। उस समय देवताओंने महर्षियोंसे कहा—‘श्रुति कहती है कि यजमें अज-बलि होनी चाहिये। अज वकरेका नाम है, किन आपलोग उसका वलिदान क्यों नहीं करते?’

महर्षियोंने कहा—‘देवताओंनी मनुष्योंकी इम प्रकार परिक्षा नहीं लेनी चाहिये और न उनकी बुद्धिको भ्रममें डालना चाहिये। वीजका नाम ही अज है। वीजके द्वारा अर्थात् अज्ञोंसे ही यज करनेका वेद निर्देश करता है। यजमें पशु-वध सजनोंका धर्म नहीं है।

परंतु देवताओंने श्रृंगियोंकी बात स्वीकार नहीं की। दोनों पक्षोंमें इस प्रश्नपर विवाद प्रारम्भ हो गया। उसी समय राजा उपरिचर आकाशमार्गसे सेनाके साथ उधरसे निकले। भगवान् नारायणकी आराधना करके राजा उपरिचरने यह शक्ति प्राप्त की थी कि वे अपने रथ तथा सैनिकों, मन्त्रियों आदिके साथ इच्छानुसार आकाशमार्गसे सभी लोकोंमें जा सकते थे। उन प्रतापी नरेशको टेक्कर देवताओं तथा श्रृंगियोंने उन्हें मध्यस्थ बनाना चाहा। उनके सुमीप जाकर श्रृंगियोंने पूछा—‘यजमें पशु-बलि होनी चाहिये या नहीं?’

राजा उपरिचरने पहले यह जानना चाहा कि देवताओं

और श्रृंगियोंमें से किसका क्या पक्ष है। दोनों पक्षोंके विचार जानकर राजाने भोचा—‘देवताओंकी प्रसन्नता प्राप्त करनेका यह अवसर मुझे नहीं छोड़ना चाहिये।’ उन्होंने निर्णय दे दिया कि ‘यजमें पशुवलि होनी चाहिये।’

उपरिचरका निर्णय सुनकर महर्षियोंने क्रोधपूर्वक कहा—‘तूने सत्यका निर्णय न करके पक्षपात किया है, असत्यका समर्थन किया है, अत हम शाप देते हैं कि अब तू देवलोकमें नहीं जा सकेगा। पृथ्वीके ऊपर भी तेरे लिये स्थान नहीं होगा। तू पृथ्वीमें धूंस जायगा।’

उपरिचर उसी समय आकाशसे गिरने लगे। अब देवताओंको उनपर दया आयी। उन्होंने कहा—‘महाराज! महर्षियोंके बचन मिथ्या करनेकी शक्ति हममें नहीं है। हम-लोग तो श्रुतियोंका तात्पर्य जाननेके लिये हठ किये हुए थे। पक्ष तो महर्षियोंका ही सत्य है; किंतु हमलोगोंसे अनुरोग होनेके कारण आपने हमारा पक्ष लिया, हस्तसे हम वरदान देते हैं कि जवतक आप भूगर्भमें रहेंगे, तबतक यजमें ब्राह्मणों-द्वारा जो धीकी धारा (वसुधारा) ढाली जायगी, वह आपको प्राप्त होगी। आपको भूख-प्यासका कष्ट नहीं होगा।’—८० श्री०

(महाभारत, शान्ति० ३४)

आखेट तथा असावधानीका दुष्परिणाम

अनेक बार तनिक-सी असावधानी दाशण दुःखका कारण हो जाती है। बहुत-से कार्य ऐसे हैं, जिनमें नाममात्रकी असावधानी भी अक्षम्य अपराध है। चिकित्सकका कार्य ऐसा ही है और आखेट भी ऐसा ही कार्य है। तनिक-सी भल किसीके प्राण ले मक्ती है और फिर केवल पश्चात्ताप हाथ रहता है।

अयोध्या-नरेश महाराज दशरथ एक बार रात्रिके समय आखेटको निकले थे। सरयूके किनारे उन्हे ऐसा गच्छ सुनायी पड़ा मानो कोई हाथी पानी पी रहा हो। महाराजने शब्दवेधी लक्ष्यसे बाण छोड़ दिया। यहाँ वही भारी भूल हो गयी। आखेटके नियमानुसार विना लक्ष्यको ठीक-ठीक देखे बाण नहीं छोड़ना चाहिये था। दूसरे, युद्धके अतिरिक्त हाथी अवध्य है, यदि वह पागल न हो रहा हो। इसलिये हाथी समझकर भी बाण चलाना अनुचित ही था। महाराजको तकाल किसी मनुष्यकण्ठका चौकार सुनायी पड़ा। वे दौड़े उसी ओर।

माता-पिताके परम भक्त श्रवणकुमार अपने अधे माता-पिताकी तीर्थयात्राकी इच्छा पूरी करनेके लिये दोनोंको कॉवरमे वैठाकर कधेपर उठाकर यात्रा कर रहे थे। अयोध्याके पास वनमें पहुँचनेपर उनके माता-पिताको प्यास लगी। दोनोंको वृक्षके नीचे उतारकर वे जल लेने सरयू-किनारे आये। कमण्डलके पानीमें डुबानेपर जो गच्छ हुआ, उसीको महाराज दशरथने दूरसे हाथीके जल पीनेका गच्छ समझकर बाण छोड़ दिया था।

महाराज दशरथके पश्चात्तापका पार नहीं था। उनका बाण श्रवणकुमारकी छातीमें ल्पा था। वे भूमिपर छटपटा

रहे थे। महाराज अपने बाणसे एक तपस्वीको धायल देखकर भयके मारे पीले पढ़ गये। श्रवणकुमारने महाराजका परिचय पाकर कहा—‘मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, अतः आपको ब्रह्मदत्या नहीं लगेगी। परतु मेरी छातीसे बाण निकाल लीजिये और मेरे प्यासे माता-पिताजो जल पिला दीजिये।’

छातीसे बाण निकालते ही श्रवणकुमारके प्राण भी शरीरसे निकल गये। महाराज दशरथ जल लेकर उनके माता-पिताके पास पहुँचे और विना बोले ही उन्हे जल देने लगे, तब उन वृद्ध अधे दम्पतिने पूछा—‘वेदा। आज तुम बोलते क्यों नहीं?’

विवरण होकर महाराजको अपना परिचय देना पड़ा और सारी घटना बतानी पड़ी। अपने एकमात्र पुत्रकी मृत्यु सुनकर वे दोनों दुःखसे अत्यन्त व्याकुल हो गये। ‘वेदा श्रवण ! तुम कहो हो ?’ इस प्रकार चिल्लाते हुए सरयू-किनारे जानेको उठ पड़े। हाथ पकड़कर महाराज उन्हें वहाँ ले आये, जहाँ श्रवणकुमारका शरीर पड़ा था। महाराजको ही चिंता बनानी पड़ी। दोनों वृद्ध दम्पति पुत्रके शरीरके साथ ही चिंतामें बैठ गये। महाराज दशरथके बहुत प्रार्थना करनेपर भी उन्होंने जीवित रहना स्वीकार नहीं किया और बहुत क्षमा मौगनेपर भी उन्होंने महाराजको क्षमा नहीं किया। उन्होंने महाराजको शाप दिया—‘जैसे हम पुत्रके वियोगमें मर रहे हैं, वैसे ही तुम भी पुत्रके वियोगमें तड़प-तड़पकर मरोगे।’

वृद्ध दम्पतिका यह शाप सत्य होकर रहा। श्रीरामके बन जानेपर चक्रवर्ती महाराजने उनके वियोगमें व्याकुल होकर देहत्याग किया। —सु० सि०

यज्ञमें या देवताके लिये की गयी पशुबलि भी पुण्योंको नष्ट कर देती है

विद्यमें भूत्य नामका एक दरिद्र ब्राह्मण था। उसका विश्वान या कि देवताके लिये पशु-बलि देनी ही चाहिये। परतु दरिद्र होनेके कारण न तो वह पशु-पालन कर सकता था और न वलिदानके लिये पशु खरीद ही सकता था। इमान्दे कूपमाण्डादि फलोंको ही पशु कीप्ति करके, उनका नलिदान देकर हिंसाप्रधान यज्ञ एव पूजन करता था।

एक तो वह ब्राह्मण स्वयं नदाचारी, तपस्वी, त्यागी

और धर्मात्मा था और दूसरे उसकी पत्नी सुशीला पतिष्ठाता तथा तपस्विनी थी। उस साक्षीको पतिका हिंसाप्रधान पूजन—यज्ञ सर्वथा अरुचिकर था; किंतु पतिकी प्रसन्नताके लिये वह उनका सम्भार अनिच्छापूर्वक करती थी। कोई धर्माचरणकी सच्ची इच्छा रखता हो और उससे अज्ञानवश कोई भूल होती हो तो उस भूलको स्वयं देवता सुधार देते हैं। उस तपस्वी ब्राह्मणसे हिंसापूर्ण सकलकी जो भूल हो रही थी, उसे

मुधारनेके लिये धर्म न्वय मृगज्ञा रूप वारण करके उसके पाम आकर बोल—‘तुम अङ्गहीन यज कर रहे हो । पशु-वलिका सकल्प करके केवल फलादिमें पशुकी कल्पना करनेसे पूरा फल नहीं होता । इसलिये तुम मेरा वलिदान करो ।’

ब्राह्मण हिंमा-प्रधान यज-पूजन करते थे, पशु-वलिका सकल्प भी करते थे । जिन्होंने कभी पशु-वलि की नहीं थी । उनका कोमलद्वदय मृगकी हत्या करनेसे प्रस्तुत नहीं हुआ । ब्राह्मणने मृगको दृदयसे ल्याकर कहा—‘तुम्हारा मङ्गल हो, तुम शीश यद्दोसे चले जाओ ।’

धर्म, जो मृग बनकर आया था, ब्राह्मणसे बोला—‘आप मेरा वध कीजिये । वज्रमें भार जानेसे मेरी सद्गति होगी और पशु-वलि करके आप भी न्वर्ग प्राप्त करेंगे । आप इस समय स्वर्गकी अप्सगओं तथा गन्धर्वोंके विच्छिन्न विमानोंको देख सकते हैं ।’

ब्राह्मण यह भूल गया कि मृगने छलसे वही तर्क दिया

है, जो वलिदानके पक्षपाती दिया करते हैं । स्वर्गीय विमानों तथा आसराओंको देखकर उसके मनमें स्वर्ग-प्राप्तिकी कामना तीव्र हो गयी । उसने मृगज्ञा वलिदान कर देनेका विचार किया ।

अब मृगने कहा—‘ब्रह्मन् । सचमुच क्या दूसरे प्राणी की हिंसा करनेसे किमीका कल्पण सम्भव है ?’

ब्राह्मणने सोचकर उत्तर दिया—‘एकका अनिष्ट करके दूसरा कैसे अपना हित कर सकता है ।’

अब मृग अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो गया । नाकात् धर्मराजको मामने देखकर ब्राह्मण उनके चरणोंपर गिर पड़ा । धर्मने कहा—‘ब्रह्मन् । आपने वज्रमें मृगको भार देनेकी इच्छा मात्र नी, इसीसे आपकी तपस्याका बहुत बढ़ा भाग नष्ट हो गया है । यह या पूजनमें पशु-हिंसा उचित नहीं है ।’

उसी समयसे ब्राह्मणने यज-पूजनमें पशु-वलिका सकल्प भी त्याग दिया । —द्व० मिं० (महाभारत, शान्ति० २७०)

दूसरोंका अमङ्गल चाहनेमें अपना अमङ्गल पहले होता है

‘देवधराज इन्द्र तथा देवताओंकी प्रार्थना स्तीमार करके महर्षि दधीचिन्द्रने देह-न्याय किया । उनकी अस्थियाँ लेकर विश्वकर्मने वज्र बनाया । उसी वज्रसे अजेयप्राय वृत्तासुरको इन्द्रने मारा और स्वर्गपर पुन अधिकार किया ।’ ये सब वात्स अपनी माता सुवर्चामे बालक पिष्पलादने सुनीं । अपने पिता दधीचिन्द्रके धातक देवताओंपर उन्ह वज्र छोध आया । ‘स्वार्थवंश ये देवता मेरे तपस्वी पितासे उनकी हड्डियाँ भाँगनेमें भी लजित नहीं हुए ।’ पिष्पलादने उसी देवताओंको नष्ट कर देनेका सकल्प करके तपस्या ग्रारम्भ कर दी ।

पवित्र नदी गौतमीके किनारे बैठकर तपस्या करते हुए पिष्पलादको दीर्घकाल वीत गया । अन्तमें भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुए । उन्होंने पिष्पलादको दर्शन देकर कहा—‘विद्या ! वर माँगो ।’

पिष्पलाद बोले—‘प्रलयक्षर प्रभु ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अपना तृतीय नेत्र खोलें और स्वार्थी देवताओंको भस्म कर दें ।’

भगवान् आशुतोषने समझाया—‘पुत्र ! मेरे शङ्क-रूपका तेज तुम सहन नहीं कर सकते थे, इसीलिये मैं तुम्हारे सम्मुख्य सौम्य रूपमें प्रकट हुआ । मेरे तृतीय नेत्रके तेजका आङ्गन मत करो । उससे सम्पूर्ण विश्व भस्म हो जायगा ।’

पिष्पलादने हृदयमें कपालमाली, विल्पाश, त्रिलोचन, अहिभूषण भगवान् शङ्कका दर्शन किया । उस ज्वालामय प्रचण्ड म्वरुपके हृदयमें प्रादुर्भाव होते ही पिष्पलादको लगा कि उनका रोम-रोम भस्म हुआ जा रहा है । उनका पूरा शरीर थर-थर काँपने लगा । उन्हे लगा कि वे कुछ ही क्षणोंमें चेतनाहीन हो जायेंगे । आर्तम्बरमें उन्होंने फिर भगवान् शङ्करको पुकारा । हृदयकी प्रचण्ड मूर्ति अदृश्य हो गयी । शङ्करजीने स्नेहपूर्वक समझाया—‘विनाश किसी एक स्थलसे ही प्रारम्भ होकर व्यापक बनता है और सदा वह वहाँसे

परमोदार मङ्गलमय आशुतोष है ।’ उन्होंने कहा—‘तुम्हें एक अवमर और मिल रहा है । तुम अपने अन्त - करणमें मेरे शङ्क-रूपका दर्शन करो ।’

पिष्पलादने हृदयमें कपालमाली, विल्पाश, त्रिलोचन, अहिभूषण भगवान् शङ्कका दर्शन किया । उस ज्वालामय प्रचण्ड म्वरुपके हृदयमें प्रादुर्भाव होते ही पिष्पलादको लगा कि उनका रोम-रोम भस्म हुआ जा रहा है । उनका पूरा शरीर थर-थर काँपने लगा । उन्हे लगा कि वे कुछ ही क्षणोंमें चेतनाहीन हो जायेंगे । आर्तम्बरमें उन्होंने फिर भगवान् शङ्करको पुकारा । हृदयकी प्रचण्ड मूर्ति अदृश्य हो गयी । शङ्करजीने स्नेहपूर्वक समझाया—‘विनाश किसी एक स्थलसे ही प्रारम्भ होकर व्यापक बनता है और सदा वह वहाँसे

मैंने देवताओंको भस्म करनेकी प्रार्थना की थी, आपने मुझे ही भस्म करना ग्रारम्भ किया ।’ पिष्पलाद उलाहनेका स्वरमें बोले ।

शङ्करजीने स्नेहपूर्वक समझाया—‘विनाश किसी एक स्थलसे ही प्रारम्भ होकर व्यापक बनता है और सदा वह वहाँसे

प्रारम्भ होता है, जहाँ उसका आवान किया गया हो। तुम्हारे हाथके देवता इन्द्र हैं, नेत्रके सर्य, नाभिकोके अश्विनीकुमार, मनके चन्द्रमा। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय तथा अङ्गके अधिदेवता हैं। उन अधिदेवताओंको नष्ट करनेसे शरीर कैसे रहेगा। वेद। इसे समझो कि दूसरोंका अमङ्गल चाहनेपर पहले स्वयं अपना अमङ्गल होता है। तुम्हारे पिता महर्षि

दधीचिनो दूसरोंके कल्याणके लिये अपनी हड्डियोंतक दे दी। उनके त्यागने उन्हे अमर कर दिया। वे दिव्यधाममें अनन्त कालतक निवास करेंगे। तुम उनके पुत्र हो। तुम्हें अपने पिताके गौरवके अनुरूप सबके मङ्गलका चिन्तन करना चाहिये।

पिपलदने भगवान् विश्वनाथके चरणोंमें मस्तक झुका दिया।
—सु० सिं०

परोपकार महान् धर्म

दुरात्मा रावणने मारीचको माया-मृग बननेके लिये वाय किया। मायासे म्वर्ण-मृग बने मारीचका आखेट करने वनुप लेकर श्रीराम उसके पीछे गये। वह उन्हें दूर बनमे ले गया और अन्तमें जब उनके बाणसे मरा, तब भरते-भरते भी ‘हा लक्ष्मण।’ पुकारकर उसने छल किया। उम आर्त-मरको सुनकर श्रीजानकी व्याकुल हो गयी। उनके आग्रह-में लक्ष्मणजीको अपने ज्येष्ठ भ्राताका पता लगाने बनमें जाना पड़ा। पञ्चवटीमें श्रीवैदेहीको अकेली देखकर रावण वहाँ आया और उसने बल्पूर्वक उन जनककुमारीको रथमें बैठा लिया।

श्रीसीताजीको रथमें बैठाकर राक्षसराज रावण श्रीघ्रतासे भागा जा रहा था। वे श्रीमैथिली आर्त-कन्दन कर रही थीं। उनकी वह आर्त-कन्दन-च्छनि पश्चिराज जटायुने भी सुनी। जटायु बृद्ध थे; उनको पता था कि रावण विघ्वविजयी है, अत्यन्त कूर है और ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे अजेयप्राय है। जटायु समझते थे कि वे न रावणको मार सकते हैं न पराजित कर सकते हैं। श्रीजनकनन्दिनीको वे छुड़ा सकेंगे उम कूर राक्षससे, इसकी कोई आशा न उन्हें भी न हो सकती थी। उल्टे रावणका विरोध करनेपर मृत्यु निश्चित थी। परतु सफलता-विफलतामें चित्तको समान रखकर प्राणीको अपने कर्तव्यका दृढ़तासे पालन करना चाहिये। यही जटायुने किया। वे पूरे वेगसे रावणपर छूट पड़े। उसका रथ अपने आवातोंसे तोड़ डाला। अपने पंचों तथा चौंचकी मारसे रावणके शरीरको नोच डाला। पर अन्त-में रावणने तलवार निकालकर उनके पख काट दिये।

जटायु भूमिपर गिर पड़े। गवण श्रीजानकीको लेकर आकाश-मार्गसे चला गया।

मारीचको मारकर श्रीराम लौटे। लक्ष्मण उन्हें मार्गमें ही मिल गये। कुटियामें श्रीजानकीको न देखकर वे व्याकुल हो गये। नाना प्रकारका विलाप करते हुए वैदेहीको छूटते आगे बढ़े। मार्गमें उनकी प्रतीक्षा करते जटायु अन्तिम स्थितिमें मृत्युके क्षण गिन रहे थे। मर्यादापुरुषोत्तमको उन्होंने विदेहनन्दिनीका समाचार दिया। उस दिन श्रीराघवेन्द्रने नरनाट्य त्यागकर कहा—‘तात ! आप अपने शरीरको रक्खें। मैं आपको अभी स्वस्थ कर दूँगा।’

जटायु इसे कैव्य स्वीकार कर लेते। श्रीराम सम्मुख खड़े हों, मृत्युके लिये ऐसा सौभाग्यगाली क्षण क्या बार-बार प्राप्त होता है ? वे त्रिभुवनके स्वामी जटायुको गोदमे लेकर अपनी जटाओंसे उनके रक्तमे मने शरीरकी धूलि पौछ रहे थे, उन्हें अपने अश्रुओंसे स्नान करा रहे थे। वे अनुभव कर रहे थे कि सर्वसमर्थ होनेपर भी वे जटायुको कुछ नहीं दे सकते। नेत्रोंमें अश्रु भरकर उन श्रीराघवेन्द्रने कहा—

‘तात कर्म निज ते गति पाई ॥

परहित वस जिन्ह के मन माहों। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कलु नाहों ॥

‘जटायु ! तुमने तो अपने कर्मसे ही परमगति प्राप्त कर ली है। तुम पूर्णकाम हो गये हो, तुम्हें मै दे क्या सकता हूँ ?’

शरीर त्यागकर जटायु जब चतुर्सुज दिव्य भगवत्यार्घद देहसे बैकुण्ठ चले गये, तब श्रीरामने अपने हाथों उनके उस गीघदेहका बड़े सम्मानपूर्वक अग्नि-सस्कार किया।—सु० सिं० (रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड)

अर्जुनकी शरणागतवत्सलता और श्रीकृष्णके साथ युद्ध

(नारदजीकी युद्ध-दर्शनोत्सुकता)

एक बार महर्षि गालव जब प्रात् सर्यार्थ्य प्रदान कर रहे थे, उनकी अखलिमें आकाशमार्गसे जाते हुए चित्रसेन गन्धर्वकी यूकी हुईं पीक गिर पड़ी। मुनिको इससे बड़ा क्रोध हुआ। वे उसे शाप देना ही चाहते थे कि उन्हें अपने तपोनाशका स्थान आ गया और रुक गये। उन्होंने जाकर भगवान् श्रीकृष्णसे फरियाद की। श्यामसुन्दर तो ब्रह्मण्यदेव ठहरे ही, झट प्रतिज्ञा कर ली—चौबीस घटेके भीतर चित्रसेनको वध कर देनेकी। श्रृंगिको पूर्ण मतुष्ट करनेके लिये उन्होंने माता देवती तथा महर्षिके चरणोंकी शपथ भी ले ली।

गालवजी अभी लौटे ही थे कि देवर्षि नारद वीणा शकाकरते पहुँच गये। भगवान् ने उनका स्वागत-आतिथ्य किया। शान्त होनेपर नारदजीने कहा—‘प्रभो! आप तो परमानन्दकन्द कहे जाते हैं, आपके दर्घनसे लोग विपादमुक्त हो जाते हैं; पर पता नहीं क्यों आज आपके मुख-कमलपर गिराकी रेखा दीख रही है।’ इसपर श्यामसुन्दरने गालवजीके सारे प्रसङ्गको सुनाकर अपनी प्रतिज्ञा सुनायी। अब नारदजीको कैसा नैन? आनन्द आ गया। झटपट चले और पहुँचे चित्रसेनके पास। चित्रसेन भी उनके चरणोंमें गिरकर अपनी कुण्डली आदि लाकर ग्रहदणा पूछने लगा। नारदजीने कहा—‘अरे तुम अब यह सब क्या पूछ रहे हो? तुम्हारा अन्तकाल निरुप आ पहुँचा ह। अपना कल्याण चाहते हो तो बस, मुझ दान-पुण्य कर लो। चौबीस घटोंमें श्रीकृष्णने तुम्हे मार डालनेकी प्रतिज्ञा कर ली है।’

अब तो वेचारा गन्धर्व व्यवराया। वह लगा दौड़ने डधर-उधर। व्रशधाम, श्रियपुरी, इन्द्र-यम-वरुण सभीके लोकोंमें दौड़ता फिरा, पर किसीने उसे अपने यहाँ ठहरनेतक न दिया। श्रीकृष्णसे ग्रन्तुता कौन उधार ले। अब वेचारा गन्धर्वराज अपनी रोती-पीटती क्षियोंके साथ नारदजीकी ही शरणमें आया। नारदजी दयालुतो ठहरे ही, ‘बोले, अच्छा चलो यमुना-तटपर।’ वहाँ जाकर एक स्थानको दिखलाकर कहा ‘आज आधी रातको यहाँ एक छी आयेगी। उस समय तुम ऊंचे स्वरसे विलाप करते रहना। वह छी तुम्हे बचा लेगी। पर ध्यान रखना—जवतक वह तुम्हारे कष्ट दूर कर देनेकी प्रतिज्ञा न कर ले, तबतक तुम अपने कष्टका कारण भूलकर भी मत बताना।’

नारदजी भी विचित्र ठहरे। एक ओर तो चित्रसेनको यह समझाया, दूसरी ओर पहुँच गये अर्जुनके महलमें सुभद्राके पास। उससे बोले—‘सुभद्रे! आजका पर्व बड़ा ही महत्वपूर्ण है। आज आधी रातको यमुना स्थान करने तथा किसी दीक्षी रक्षा करनेसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होगी।’

आधी रातका अवसर हुआ। सुभद्रा दो-एक सखियोंके माथ यमुना-स्थानको पहुँची। वहाँ उन्हें रोनेका करण-म्बर सुनायी पड़ा। नारदजीने दीनोद्धारका माहात्म्य बतला ही रक्खा या। सुभद्राने सोचा, ‘चलो, अक्षय पुण्य लूट ही नूँ।’ वे तुरत उधर गयीं तो चित्रसेन रोता मिला। उन्होंने लाख पूछा, पर वह विना प्रतिज्ञाके बतलाये ही नहीं। अन्तमें इनके प्रतिज्ञावद्व छोड़नेपर उसने स्थिति स्पष्ट की। अब तो यह सुनकर सुभद्रा वडे धर्मसकट और असमजसमें पड़ गयीं। एक ओर श्रीकृष्णकी प्रतिज्ञा—वह भी व्राह्मणके हितके लिये, दूसरी ओर अपनी प्रतिज्ञा। अन्तमें शरणागतव्राणका निश्चय करके वे उसे अपने साथ ले आयीं। घर आकर उन्होंने सारी परिस्थिति अर्जुनके सामने रखकी। (अर्जुनका चित्रसेन मित्र भी या।) अर्जुनने सुभद्राको सान्त्वना दी और कहा कि तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होगी।

नारदजीने इधर जब यह सब ठीक कर लिया, तब द्वारका पहुँचे और श्रीकृष्णचन्द्रसे कह दिया कि ‘महाराज। अर्जुनने चित्रसेनको आश्रय दे रखा है, इसलिये आप सोच-विचारकर ही युद्धके लिये चलें।’ भगवान् ने कहा—‘नारदजी। एक बार आप मेरी ओरसे अर्जुनको समझाकर लौटानेकी चेष्टा तो कर देखिये।’ अब देवर्षि पुनः दौड़े हुए द्वारकापे इन्द्रप्रस्थ पहुँचे। अर्जुनने सब सुनकर साफ कह दिया—‘वद्यापि मे सब प्रकारसे श्रीकृष्णकी ही शरण हूँ और मेरे पास केवल उन्होंका बल है, तथापि अब तो उनके दिये हुए उपदेश—क्षात्र-धर्मसे कभी विमुख न होनेकी वातपर ही हूँ। मैं उनके बलपर ही अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करूँगा। प्रतिज्ञा छोड़नेमें तो वे ही समर्थ हैं।’ दौड़कर देवर्षि अब द्वारका आये और ज्यों-का-त्यों अर्जुनका वृत्तान्त कह सुनाया। अब क्या हो? युद्धकी तैयारी हुई। भभी यादव और पाण्डव रणक्षेत्रमें पूरी सेनाके साथ उपस्थित हुए। तुमुल युद्ध छिड़ गया। बड़ी घमासान लड़ाई-

हुई। पर कोई जीत नहीं सका। अन्तमे श्रीकृष्णने सुदर्गनचक छोड़ा। अर्जुनने पाशुपतास्त्र छोड़ दिया। प्रलयके लक्षण देखकर अर्जुनने भगवान् शकरको स्मरण किया। उन्होने दोनों शस्त्रोंको मनाया। फिर वे भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णके पास पहुँचे और कहने लगे—‘प्रभो! ‘राम सदा सेवक रुचि रखी। वेद, पुरान, लोक सब साखी।’—गत्कोकी बातके आगे अपनी प्रतिज्ञाको भूल जाना तो आपका नहज स्वभाव है। इसकी तो असख्य आवृत्तियाँ हुई होगी। अब तो इस लीलाको यहीं समाप्त कीजिये।’

बाण समाप्त हो गये। प्रभु युद्धसे विरत हो गये। अर्जुनको गले लगाकर उन्होने युद्धश्वरसे मुक्त किया, चित्रसेनको

अभय किया। अब लोग धन्य-धन्य कर उठे।

पर गालवको यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कहा, ‘यह तो अच्छा मजाक रहा।’ सच्छ दृदयके ऋषि बोल उठे—‘लो, मैं अपनी गति प्रकट करता हूँ। मैं कृष्ण, अर्जुन, सुभद्रासमेत चित्रसेनको जला डालता हूँ।’ पर बेचारे साधुने ज्यों ही, जल हाथमें लिया, सुभद्रा बोल उठी—‘मैं यहि कृष्णकी भक्त होऊँ और अर्जुनके प्रति मेरा पातिव्रत्य पूर्ण हो तो यह जल ऋषिके हाथसे पृथ्वीपर न गिरे।’ ऐसा ही हुआ। गालव बड़े लजित हुए। उन्होंने प्रभुको नमस्कार किया और वे अपने स्थानको लौट गये। तदनन्तर सभी अपने-अपने स्थानको पधारे।* —जा० श०

जीर्णोद्धारका पुण्य

पहले गौडदेशमे वीरभद्र नामका एक अत्यन्त प्रभिद्व राजा राज्य करता था। वह बड़ा प्रतापी, विद्वान् तथा धर्मात्मा था। उसकी पत्नीका नाम चम्पकमञ्जरी तथा प्रधान मन्त्रीका नाम वीरभद्र था। ये तथा उसके दूसरे मन्त्री एवं पुरोहित भी धर्मनिष्ठ थे। ये सभी कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, धर्म-अधर्म आदिका निर्णय सदा धर्मशास्त्रोंके आधारपर ही करते थे; क्योंकि वे जानते थे कि प्रायश्चित्त, चिकित्सा, ज्यौतिषका फलादेश अथवा धर्म-निर्णय सदा शास्त्रोंके आधारपर ही करना चाहिये। जो विना शास्त्रोंके यों ही मनमाना फतवा दे डालता है, उसे ब्रह्माहत्याका पाप लगता है। इसलिये ये लोग राजाको भदा धर्मशास्त्रादिको श्रवण करते रहते थे। उसके राज्यमें कोई नगण्य व्यक्ति भी अवर्म या अन्यायका आचरण नहीं करता था। उस समय गौडदेशमें स्वर्ग-जैसा सुराज हो रहा था।

एक दिन राजा वीरभद्र अपने मन्त्रियोंके साथ बनमें शिकार खेलने गया। वे वहाँ दौड़ते-दौड़ते थक गये और तबतक दोपहर भी हो गयी थी। वे लोग प्याससे बेचैन हो

रहे थे। तबतक उनकी दृष्टि एक छोटी-सी पोखरीपर गयी, जो प्रायः सूखी थी। उसके मन्त्री बुद्धिसागरने उसे देखकर उसमेसे जल निकालनेकी युक्ति सोची। उसने उसमे एक हाथका गड्ढा खोदा और जल निकाल लिया। उस जलके पीनेसे राजा तथा मन्त्री दोनोंकी ही पूर्ण तृप्ति हो गयी। अब धर्म-अर्थके पण्डित उस मन्त्रीने राजासे कहा—‘राजन्। यह पुष्करिणी (तलैया, पोखरी) न जाने इस पर्वतकी अधित्यका (चौरस भूमि) मे किसने बनायी थी। अभीतक तो यह वर्षाके जलसे भरी थी, पर अब सूख गयी है। अब यदि आजा दें तो मैं इसका पूर्णतया उड़ार करके चारों ओर बढ़िया बैध बनाकर इसे सरोवरका ही रूप दे दूँ।’

राजाने मन्त्रीके इस प्रस्तावको बड़ी प्रसन्नताके साथ स्वीकार कर लिया। उसने बड़े समारोहसे बुद्धिसागरको इस कार्यमें नियुक्त किया। शुद्धात्मा मन्त्रीने बड़ी श्रद्धासे दो सौ हाथ लबा-चौड़ा एक सरोवर तैयार किया और उसके चारों ओर पत्थरके घाट बनवा दिया। इस तरह उसमें अगाध

* बङ्गलाकी एक पुस्तकमें अर्जुन-कृष्ण-युद्धकी एक और न्यारी कथा आती है। फ़हते हैं कि महर्षि दुर्वासाके शापके कारण उर्वशीको एक बार घोड़ी हो जाना पड़ा था। दिनभर तो उसकी शक्ति घोड़ीकी रहती, पर रातको वह अपने रूपमें लौट आती। इसी दशामें वह अवन्ती-नरेश दण्डीके पास रह रही थी। नारदजीने श्रीकृष्णको समझाया कि ‘आप यदि इस घोड़ीको अवन्तीनरेशसे ले लें तो बड़ा अच्छा रहे। इस घोड़ीमें बड़े माझलिक लक्षण हैं।’ भगवान् ने दण्डीके यहाँ खबर भेजी। दण्डीने इसे अस्तीकार कर दिया। भगवान् ने श्रीकृष्णहोड़ीको। अन्तमें अर्जुन-सुभद्राने उसे शरण दी। युद्ध छिड़ गया। बड़ा धमासान हुआ। जेपमें दुर्वासाने आपत्त उर्वशीको शापमुक्त कर दिया और सारा ज्ञगदा वहीं समाप्त हो गया। कल्पभेदसे दोनों ही वणन सत्य हो सकते हैं।

+ प्रायश्चित्त चिकित्सा च ज्यौतिष धर्मनिर्णयम्। विना शास्त्रेण यो ब्रूयात् तमादुर्ज्ञाधातकम्॥’ (नारदसु० १२। ७४)

जलराशि मन्तित हो गयी । तबसे वह चन्द्रार्णे एव पक्षियोंका शीढास्यल एव जलशानका आभृत हो गया ।

आयु समाप्त होनेपर बुद्धिमान जग धर्मराजोंये यहों पधारे, नम धर्मराज चिन्हगुप्तसे उनके कृत्योंके सम्बन्धमें पूछ लाई की । चिन्हगुप्तने उनके सरोवर-निर्माणकी चर्चा की । माय ही वर्त भी कहा कि 'पे राजामो नदा ही धर्मकार्मम प्रेरित करते थे ।' चिन्हगुप्तके या गृहनेपर धर्मराजने बुद्धिमानको धर्मविमानपर चढाने जानेकी आज्ञा दें दी । उच्छिन्होंके नाम गजा वीरभद्र भी कहा (गमलोक) पधारे और धर्मराजनों आदररूपक नमस्कार करने एक ओर पड़े हो गये । पुण्यसम्बन्धी प्रदन किये जानेपर चिन्हगुप्तने उनके लिये भी उनी सरोवर निर्माणके पुण्यकी चर्चा की । तदनन्तर धर्मराजने वडी अद्वृत वाणीमें राजानां सम्मोहित करते हुए कहा—'राजन् ! पूर्वशर्ममें मैन्यवगिरिजी अधित्यकामें एक लक्ष्मा पक्षीने जल टहनेके लिये अपनी चौक्षेदो अगुल भूमि त्योदी भी । तत्प्रधात् कालान्तरम एक शूकरने उसी स्थलपर अपने भुशुनेसे एक हाथ गहरा गहड़ा सोदा । तबसे उसमें हाथ भर जल रहने लगा । तदनन्तर एक मैस-

ने खोदकर उसे दो हाथ गहरा कर दिया । महाराज । तबसे तो उसमें दो मासतक जल ठहरने लगा गया । उनके छोटेश्वरोंटे जीव प्याससे व्याकुल होनेपर उस जन्मको पीते थे । तदनन्तर इसके तीन वर्ष बाट एक हाथीने उस गड्ढेको तीन हाथ गहरा कर दिया । अब उसमें तीन महीनेतक पर्याप्त जल ठहरने लगा गया । फिर जल सूख जानेपर आप उम स्थानपर आये और मन्त्री बुद्धिमानकी सम्मतिमें सरोवर-निर्माणमा कार्य चल पड़ा । फिर तो उसमें बहुत जल सचित हो गया और पत्थरोंसे ढढता-पूर्वक धाट बैठ जानेपर वह महान् सरोवर ही बन गया । जलाशय निर्माणके उपकरणमें अपने-अपने पुण्यसे क्रमज ये लचा, शूकर, मैस, हाथी और मन्त्री—पॉच जीव धर्मविमानपर आमृद्ध हुए हैं, अब छठे आप भी उसपर चढ़ जाइये ।'

धर्मराजके इन विचित्र तथा सुखद गवांको सुनकर राजा वीरभद्र भी उम विमानपर जा बैठा । इस प्रकार जीर्णोद्धारका पुण्य अत्यन्त महान् है, जिससे एक सरोवरके पुनः-पुनः उद्धारमें ये छः जीव धर्मविमानपर आसूद्ध हुए ।

—जा० श०

इवेतका उद्धार

एक बार प्रभु श्रीगणेशन्द्र पुष्पर यानसे चलकर तपोवनांका दर्शन लेते हुए महार्पि अगस्त्यके यहों गये । महार्पिने उनका वडा त्वागत किया । अन्तमें अगस्त्यजी विश्वकर्माना बनाया एक दिव्य आनन्दपूर्ण उन्हें देने लगे । इनपर भगवान् शीरामने आपत्ति की और कहा—'व्रह्मन् ! आपसे मैं उच्छ लैं, यह वडी निन्दनीय वात होगी । क्षनिय भला, जान वृक्षकर व्राह्मणा दिया हुआ दान क्योंकर ले नक्षता है । फिर अगस्त्यजीके अत्यन्त आग्रह करनेपर उन्होंने उसे ले लिया और पुछा कि 'वह आभूषण उन्हें कैसे मिला था ।'

अगस्त्यजीन कहा—'रघुनन्दन ! पहले व्रेतायुगमें एक बहुन विशाल बन था, पर उसमें पशु पक्षी नहीं रहते थे । उस बनके मध्यभागमें चार कोम लड्डी एक हील थी । वहों में एक वडे आश्र्वयनी वात ढंगी । सरोवरके पास ही एक आश्रम था, जिन्हु उसमें न तो कोई तपस्ती था और न कोई जीव-जन्मन् । उस आश्रममें मैने ग्रीष्म शूकुकी एक रात वितायी । स्वेरे उठकर तालाबकी ओर चला तो रास्तेमें मुझे

एक सुदा दीखा, जिसका शरीर वडा हृष्ट-पुष्ट था । मालूम होता था किंगी तरुण पुरुषकी लाग है । मैं वडा होकर उस लाशके सम्बन्धमें कुछ सोच ही रहा था कि आकाशसे एक दिव्य विमान उत्तरता दिखावी दिया । लणभरमें वह विमान सरोवरके निकट आ पहुँचा । मैंने देखा उस विमानसे एक दिव्य मनुष्य उतरा और सरोवरमें स्नानकर उस मुर्देका मास राने लगा । भरपेट उस मोटेताजे मुर्देका मास खाकर वह फिर सरोवरमें उतरा और उसकी शोभा निहारकर मिर्झर्गकी ओर जाने लगा । उम देवोपम पुरुषको ऊपर जाने देव भैने कहा—'महाभाग ! तनिक ठहरो । मैं तुमसे एक वात पूछता हूँ । तुम कौन हो ? देखनेमें तो तुम देवनाके ममान जान पड़ते हो, मिन्तु तुम्हारा भोजन वहुत ही शृणित है । सौम्य ! तुम ऐसा भोजन मृग करते हो और कहों रहते हो ?'

'रघुनन्दन ! मरी वात सुनकर उसने हाथ जोड़कर कहा—'विप्रवर ! मैं विदर्भ देशका राजा था । मेरा नाम इवेत था । राज्य करतेकरते मुझे प्रवल वैराग्य हो गया और

मरणपर्यन्त तपस्याका निश्चय करके मैं यहाँ आ गया। अस्ती द्वजार वयातक्र कठोर तप करके मैं ब्रह्मलोकको गया, किंतु वहाँ पहुँचनेपर मुझे भूख और प्यास अधिक सताने लगी। मैंगी इन्द्रियोंतिलमिला उटीं। मैंने ब्रह्माजीसे पूछा—‘भगवन्! यह लोक तो भूख और प्याससे रहित सुना गया है; तथापि भूख-प्यास मेंग पिण्ड यहाँ भी नहीं छोड़ती, यह मेरे किस कर्मका फल है। तथा मेरा आहार क्या होगा?’

‘इसपर ब्रह्माजीने बड़ी देरतक सोचकर कहा—‘तात। पृथ्वीपर दान किये बिना यहाँ कोई वस्तु खानेको नहीं मिलती। तुमने तो मिखमंगेको कभी भीखतक नहीं दी है। इसलिये यहाँपर भी तुम्हें भूख-प्यासका कष्ट भोगना पड़ रहा है। राजेन्द्र ! भौति-भौतिके आहारोंसे जिसको तुमने भलीभौति पुष्ट किया था, वह तुम्हारा उत्तम शरीर पड़ा हुआ है, तुम उसीका मास खाओ, उसीसे तुम्हारी तृतीय होगी। वह तुम्हारा शरीर अक्षय बना दिया गया है। उसे प्रतिदिन तुम खाकर ही तृत रह सकोगे। इस प्रकार अपने ही शरीरका मास खातेखाते जब सौ वर्ष पूरे हो जायेंगे, तब तुम्हें महर्षि अगस्त्यके दर्शन होंगे। उनकी कृपासे तुम सकटसे छूट जाओगे। वे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं तथा असुरोंका भी उद्धार करनेमें समर्थ

हैं, फिर यह कौन-सी बड़ी बात है?’

‘विग्रवर ! ब्रह्माजीका यह कथन सुनकर मैंने यह वृणित कार्य आरम्भ किया। यह अब न तो कभी नष्ट होता है, मात्र ही मेरी तृतीय भी इसीके खानेसे होती है। न जाने कब उन महाभागके दर्शन होंगे, जब इससे पिण्ड छूटेगा। अब तो ब्रह्मन्। सौ वर्ष भी पूरे हो गये हैं।’

‘रघुनन्दन ! राजा व्येतका यह कथन सुनकर तथा उसके वृणित आहारकी ओर देखकर मैंने कहा—‘अच्छा। तो तुम्हारे सौभाग्यसे मैं अगस्त्य ही आ गया हूँ। अब निःसदेह तुम्हारा उद्धार करूँगा।’ इतना सुनते ही वह दण्ड-की भौति मेरे पैरोंपर गिर गया और मैंने उसे उठाकर गले लगा लिया। वहाँ उसने अपने उद्धारके लिये इस दिव्य आभूषणको दानरूपमे मुझे प्रदान किया। उसकी दुःखद अवस्था और करण वाणी सुनकर मैंने उसके उद्धारकी दृष्टि से ही वह दान ले लिया, लोभवश नहीं। मेरे इस आभूषण-को लेते ही उसका वह मुर्दा शरीर अदृश्य हो गया। फिर राजा व्येत बड़ी प्रसन्नताके साथ ब्रह्मलोकको चले गये।’

तदनन्तर और कुछ दिनोंतक स्त्सङ्ग करके भगवान् वहाँसे अयोध्याको लौटे।—जा० श०

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ३३, वाल्मी० रामा० उत्तरकाण्ड)

विचित्र परीक्षा

एक समय श्रीमद्राघवेन्द्र महाराजराजेन्द्र श्रीरामचन्द्रने एक बड़ा विग्राल अवसरे यज्ञ किया। उसमें उन्होंने सर्वस्व दान कर दिया। उस समय उन्होंने घोषणा कर रखी थी कि ‘यदि कोई व्यक्ति अयोध्याका राज्य, पुष्पकविमान, कौस्तुभमणि, कामधेनु गाय या सीताको भी मौगेगा तो मैं उसे दे दूँगा।’ वहे उत्साहके साथ यजकी समाप्ति हुई। टीक श्रीरामजन्मके ही दिन अवभृथ-स्नान हुआ। भगवान्-के नचिदानन्दस्य श्रीविग्रहका दर्शन करके जनता बन्ध हो रही थी। देवता, गन्धर्व दिव्य वाद्य वजाकर पुष्पवृष्टि कर रहे थे। अन्तमें भगवान्-ने चिन्तामणि और कामधेनुको अपने गुरुको दान करनेकी तैयारी की।

विशिष्टजीने मोचा कि ‘मेरे पास नन्दनी तो है ही। यहाँ मे एक अपूर्व लीला करूँ। आज श्रीराघवके औदार्यका प्रदर्शन कराकर मैं उनकी कीर्ति अक्षय कर दूँ।’ यो विचारकर उन्होंने कहा, ‘रायव। यह गोदान क्या कर

रहे हो, इससे मेरी तृतीय नहीं होती। यदि तुम्हें देना ही हो तो सर्वाल्कारमण्डिता सीताको ही दान करो। अन्य सैकड़ों क्षियों या वस्तुओंसे मेरा कोई प्रयोजन या तृतीय सम्भव नहीं।’

इतना सुनना था कि जनतामें हाहाकार मच गया। कुछ लोग कहने लगे कि ‘क्या ये बूढ़े विशिष्ट पागल हो गये?’ कुछ लोग कहने लगे कि ‘यह मुनिका केवल विनोद है।’ कोई कहने लगा—‘मुनि राश्वकी धैर्य-परीक्षा कर रहे हैं।’ इसी बीच श्रीरामचन्द्रजीने हँसकर सीताजीको बुलाया और उनका हाथ पकड़कर वे कहने लगे—‘हो, अब आप स्त्रीदानका मन्त्र बोलें, मैं सीताको दान कर रहा हूँ।’ विशिष्टने भी यथाविधि इसका उपक्रम सम्पन्न किया। अब तो सभी जड़चेतनात्मक जगत् चकित हो गया। विशिष्टजीने सीताको अपने पीछे बैठनेको कहा। सीताजी भी खिल हो गयीं। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि ‘अब कामधेनु गाय भी लीजिये।’

बशिषुजीने इसपर कहा—‘महावाहो राम ! मैंने केवल तुम्हारे औदार्य-प्रदर्शनके लिये यह कौतूहल रचा था । अब तुम मेरी वात सुनो । सीताका आटगुना सोना तौलकर तुम इसे बापस ले लो और आजसे तुम मेरी आजासे कामधेनु, चिन्तामणि, सीता, कौस्तुभमणि, पुण्यकविमान, अगोव्यामुगी तथा सम्पूर्ण राज्य किसीको देनेका नाम न लेना । यदि मेरी इस आजाका लोप करोगे तो विश्वास रक्खो, मेरी आजा

न माननेसे तुम्हें बहुत कलेज होगा । इन सात वस्तुओंके अतिरिक्त तुम जो चाहो, स्वेच्छासे ब्राह्मणोंको दो ।’

तदनन्तर भगवान् ने वैसा ही किया और निरलकार केवल दो बछोंके साथ सीतासो लौटा लिया । आकाशसे पुण्यवृष्टि होने लगी तथा जन-जयकारकी महान् व्वनिसे दसों दिव्याएँ भग गयीं । फिर वडे समुत्साहसे यज्रकी शेष कियाएँ पूरी हुईं । —जा० श० (आनन्दरामायण—यागकाण्डम्)

विलक्षण दानवीरता

कर्णका वासनविक नाम तो वसुपेण था । माताके गर्भसे वसुपेण दिव्य कवच और कुण्डल पहिने उत्पन्न हुए थे । उनका यह कवच, जो उनके शरीरसे चर्मकी भौति लगा था, अस्त्र-शस्त्रोंसे अमेन्य था और शरीरके साथ ही बढ़ता गया था । उनके कुण्डल अमृतसिक्त थे । उन कुण्डलोंके कानोंमें रहते, उनसी मृत्यु सम्भव नहीं थी ।

अर्जुनके प्रतिस्पर्धी थे कर्ण । सभी जानते थे कि युद्धमें अर्जुनकी समता कर्ण ही कर सकते हैं । युद्ध अनिवार्य जान पड़ता था । पाण्डव-पक्षमें सबको कर्णकी चिन्ता थी । धर्मराज युधिष्ठिरको कर्णके भयसे बहुत वैचैनी होती थी । अन्तमें देवराज इन्द्रने युधिष्ठिरके पास सदेश भेजा—‘कर्णकी अजेयता समाप्त कर देनेकी युक्ति मैंने कर ली है, आप चिन्ता न करें ।’

अचानक कर्णने रात्रिमें स्वानन्दमें एक तेजोमय ब्राह्मणको देखा । वे ब्राह्मण कह रहे थे—‘वसुपेण । मैं तुमसे एक वचन माँगता हूँ । कोई ब्राह्मण तुमसे कवच-कुण्डल माँगे तो देना मत ।’

स्वप्नमें भी कर्ण चौके—‘आप कहते क्या ह ? कोई ब्राह्मण भुज्ञसे कुछ माँगे और मैं अस्तीकार कर दूँ ?’

स्वप्नमें ही ब्राह्मणने कहा—‘वेदा । मैं तुम्हारा पिता सूर्य हूँ । देवराज इन्द्र तुम्हें ठग लेना चाहते ह । मेरी वात मान ले ।’

कर्णने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—‘आप मेरे पिता हैं, मेरे आराध्य हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ । आप मुझे क्षमा करें । पर इन्द्र आये था और कोई, ब्राह्मणके रूपमें मेरे पास कोई आयेगा, कुछ याचना करेगा तो प्राणके भयसे कृपणकी भौति म उसे अस्तीकार नहीं कर सकूँगा ।’

गूर्य अदृश्य हो गये । अपने अकल्यनीय उदार पुत्रपर उन्हें गर्व था । दूसरे ही दिन देवराज ब्राह्मणके वेशमें पदारे । कर्णका आतिथ्य स्वीकार करके उन्होंने कहा—‘मैं कुछ याचना करने आया हूँ, पर वचन दो कि दोगे ।’

कर्ण बोले—‘भगवन् । वसुपेणने कभी किसी ब्राह्मणको निराश नहीं किया है । विना दिये भी यह वचन तो दिया ही हुआ है ब्राह्मणके लिये ।’

‘कवच और कुण्डल, जो जन्मसे तुम्हारे शरीरपर हैं ।’ इन्द्रको यही माँगना था । कर्णने तलवार उठायी और शरीर-की त्वचा अपने हाथों काटकर रक्तसे भीगे कुण्डल और कवच इन्द्रको दे दिये ।

‘तुम्हारा शरीर कुरुप नहीं होगा ।’ इन्द्रने आशीर्वाद दिया, किंतु देवराज किसीसे दान लेकर उसे वरदानस्वरूप कुछ दिये विना स्वर्ग जा नहीं सकते थे । इसलिये कर्णको अपनी अमोत शक्ति उन्होंने दी और कवच-कुण्डल लेकर वे चले गये । —सु० सिं० (महाभारत, वन०)

शोकके अवसरपर हर्ष क्यों ?

(श्रीकृष्णका अर्जुनके प्रति प्रेम)

भीमका महावीर राक्षसपुत्र घटोलकच मारा गया । पाण्डवशिविरमें शोक छाया है, सबकी ओंखोंसे औंसू वह रहे हैं, केवल श्रीकृष्ण प्रसन्न है । वे वार-वार आनन्दसे सिंहनाद

करते और हर्षसे शूमकर नाच उठते हैं तथा अर्जुनको गले लगाकर उसकी पीठ ठोकते हैं ।

भगवान्को इतना प्रसन्न देखकर अर्जुनने पूछा—

मधुमूदन। घटोल्कचकी मृत्युसे अपना सारा परिवार गोक-
सारामे छावा हुआ है। अपनी सारी सेना विमुख होकर
भाग रही है। आप इस अवसरमें इतने प्रसन्न क्यों हैं? १
मामूली कारणसे तो आप ऐसा करते नहीं; क्या वात है,
कृपया बताइये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—‘अर्जुन! मेरे लिये सचमुच
आज वडे ही आनन्दका अवसर है। घटोल्कच तो मरा, पर
मेरा प्राणप्रिय अर्जुन वच गया। मुझे इसीकी प्रसन्नता है।
कर्णके पास कवच-कुण्डल ये। उनके रहते वह अजेय था;
उनको तो इन्द्र माँगकर ले गये। पर इन्द्र कर्णको एक
ऐसी शक्ति दे गये, जिसके उनके पास रहते मैं सदा तुम्हारे
प्राणोंको सकटमें ही मानता था। कर्ण ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी,
व्रतवारी, तपस्वी और चतुरोपर भी दया करनेवाले हैं।
इसीलिये उनको ‘वृप’ या ‘धर्म’ कहते हैं। उन्हें यो ही कोई
नहीं मार सकता, फिर ‘शक्ति’ रहते तो मार ही कौन
सकता था। कर्ण उस शक्तिसे तुम्हे मारना चाहते थे। आज
उस शक्तिसे घटोल्कच मारा गया, अतएव अब कर्णको मरा
ही समओ। इसीसे मुझे प्रसन्नता है।

‘रही घटोल्कचके मरनेकी वात, सो माना कि घटोल्कच
अपने घरका वचा था और महावीर भी था, परन्तु वह
पापात्मा, ब्राह्मणद्वेषी और यज्ञोक्ता नाश करनेवाला था। ऐसे
खलेको भी मैं स्वयं मारना चाहता हूँ। इससे उसका
विनाश तो मैंने ही करवाया है। मैं तो सदा वही कीड़ा
किया करता हूँ जहाँ वेद, सत्य, दम, पवित्रता, धर्म,
कुकूल्यमें लज्जा, श्री, वैर्य और क्षमाका निवास है। इसीलिये
मैं पाण्डवोंके साथ हूँ। अर्जुन! तुम मेरे प्राणप्रिय हो, आज

इस प्रकार तुम्हारे वच जानेसे मुझे अत्यन्त हर्ष है।
भगवान्के प्रेमपूर्ण वाक्योंको सुनकर अर्जुन गद्गद हो गये।
अर्जुनका समाधान हो गया।

फिर सात्यकिने पूछा—‘भगवन्! जब कर्णने वह अमोघ
शक्ति अर्जुनपर ही छोड़नेका निश्चय किया था, तब उसे
छोड़ा क्यों नहीं? अर्जुन तो निय ही समराङ्गणमें उनके
सामने पड़ते थे। इसपर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—‘सात्यके।
दुर्योधन, दुःखासन, शकुनि और जयद्रथ—ये सभी प्रति-
दिन कर्णको यह सलाह दिया करते थे कि तुम इस
शक्तिका प्रयोग केवल अर्जुनपर ही करना। अर्जुनके मारे
जानेपर मारे पाण्डव और सुज्जय आप ही मर जायेंगे और
कर्ण भी यह प्रतिज्ञा कर चुके थे। वे प्रतिदिन ही उस
शक्तिके द्वारा मारनेकी वात सोचते थे, पर ज्यो ही वे
सामने आते कि मैं उनको मोहित कर देता। यही कारण
है कि वे शक्तिका प्रयोग अर्जुनपर नहीं कर सके। इतनेपर
भी सात्यके। वह शक्ति अर्जुनके लिये मृत्युरूप है—इस चिन्ताके
मारे मैं सदा उदास रहता था, मुझे रातको नींद नहीं आती
थी। अब वह शक्ति घटोल्कचपर पड़कर नष्ट हो गयी। यह
देखकर मुझे लगता है कि अर्जुन मृत्युके मुखसे छूट गये।
मैं युद्धमें अर्जुनकी रक्षा करना जितनी आवश्यक समझता
हूँ, उतनी पिता, माता, तुम-जैसे भाई और अपने
प्राणोंकी भी रक्षा आवश्यक नहीं समझता। तीनों लोकोंके
राज्यकी अपेक्षा भी कोई दुर्लभ वस्तु मिलती हो तो उसे
भी मैं अर्जुनके विना नहीं चाहता। इसीलिये आज अर्जुन
मानो मरकर पुनः वापस आ गये हैं, यह देखकर ही मुझे
बड़ा भारी हर्ष हो रहा है।’ ॥

उल्लासके समय खिल्ल क्यों? (श्रीकृष्णका कर्णके प्रति सङ्घाव)

महाभारतके युद्धका सत्रहवाँ दिन समाप्त हो गया था।
महारथी कर्ण रणभूमिमें गिर चुके थे। पाण्डव-शिविरमें
आनन्दोत्सव हो रहा था। ऐसे उल्लासके समय श्रीकृष्णचन्द्र
खिल्ल थे। वे वार-वार कर्णकी प्रशंसा कर रहे थे—‘आज
पृथ्वीपरसे सच्चा दानी उठ गया।’

धर्मराज युधिष्ठिरके लिये किसीके भी धर्मचरणकी प्रशंसा
सम्मान्य थी, किंतु अर्जुन अपने प्रतिस्पद्योंकी प्रशंसा से खिल्ल
हो रहे थे। श्रीकृष्णचन्द्र बोले—‘वनज्ञय। देखता हूँ कि
तुम्हें मेरी वात अत्युक्तिपूर्ण जान पड़ती है। एक काम करो,
तुम मेरे साथ चलो और दूरसे देखो। महादानी कर्ण अभी

* न पिता न च मे माना न यूय ब्रातरस्तथा । न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा वीभत्सुराहवे ॥
श्वेतोक्त्यराज्यात् यत्किञ्चिद् भवेदन्यत् सुदुर्लभम् । नेच्छेय सात्यताह तद्विना पार्थं धनञ्जयम् ॥

अत प्रहर्षं सुमहान् युयुधानाय मेऽभवत् । सृत प्रत्यागतमिव इद्वा पार्थं धनञ्जयम् ॥

मेरे नहीं हैं। उनकी दानशीलता अब भी तुम देख सकते हो।'

रात्रि हो चुकी थी। युद्ध-भूमिमें गीदड़ोंका राज्य था। जहों-तहों कुछ आहत कराह रहे थे। शब्दोंके खण्ड, वाणोंके टुकड़े, लायोंकी ट्रैरियों, रक्तकी कीचड़िसे पूर्ण युद्धभूमि बड़ी भयकर थी। अर्जुनको श्रीकृष्णचन्द्रने कुछ दूर छोड़ दिया और स्वयं ब्राह्मणका वेङ बनाकर पुकारना प्रारम्भ किया—‘कर्ण। दानी कर्ण कहो हैं।’

‘मुझे कौन पुकारता है? कौन हो भाई! वहे कष्टे भूमिपर मूर्छितप्राय पढ़े कगने मस्तक उटार कहा।

ब्राह्मण कणके पास आ गये। उन्होंने कहा—‘मैं वडी आशाए तुम्हारा नाम सुनकर तुम्हारे पास आया हूँ। मुझे थोड़ा-सा स्वर्ण चाहिये—वहुत थोड़ा-सा।’

‘आप मेरे घर पथारें। मेरी पत्नी आपको, जितना चाहेगे, उतना स्वर्ण देगी।’ कर्णने ब्राह्मणसे अनुरोध किया। परतु ब्राह्मण कोई साधारण ब्राह्मण हैं तब तो घर जायें। वे तो विगड़ उठे—‘नहीं देना है तो ना कर दो, इधर-उधर दौड़ाओ मत। मैं कहों नहीं जाऊँगा। मुझे तो दो सरसों-जितना स्वर्ण चाहिये।’

कर्णने कुछ सोचा और बोले—‘मेरे दाँतोंमें स्वर्ण लगा है। आप कृपा करके निकाल लें।’

ब्राह्मणने श्रृंगारे मुख खिलोड़ा—‘तुम्हें लज्जा नहीं आती एक ब्राह्मणसे यह कहते कि वह जीवित मनुष्यके दाँत तोड़े।’

इधर-उधर देखा कगने। पास एक पत्थर दीखा। किसी प्रकार धसीटते हुए वहों पहुँचे और पत्थरपर मुख दे मारा। दाँत टूट गये। अब बोले दृतोंको हाथमें लेकर—इन्हें स्वीकार करें प्रभु।’

‘छि। रक्षे सनी अपवित्र अस्ति।’ ब्राह्मण दो पद पिछे हट गये। कगने खड़से दृतमेंसे सोना निकाल। जब ब्राह्मणने उसे अपवित्र बताया और कर्णको धनुष देना भी अत्यकार कर दिया, तब कर्ण फिर धसीटते हुए धनुषके पास पहुँचे। किसी प्रकार सिरसे दवाकर धनुष चढ़ाया और उसपर बाण रखकर बारुणाखसे जल प्रकट करके दृतसे निकले स्वर्णको बोया। अब वे श्रीकृष्णके वह स्वर्ण ब्राह्मणको देनेको उद्यत हुए।

‘वर माँगो, दीर।’ श्रीकृष्णचन्द्र अब ब्राह्मणका वेश छोड़कर प्रकट हो गये थे। अर्जुन वहुत दूर लजित खड़े थे। कर्णने इतना ही कहा—‘त्रिभुवनके स्वामी देहत्यागके समय मेरे सम्मुख उपस्थित है, अब माँगनेको रह क्या गया?’ कर्णकी देह हुल्क गयी श्यामसुन्दरके श्रीचरणोंमें।

धन्य दानी भक्त कर्ण। —सु० सिं०

उत्तम दानकी महत्ता त्यागमें है, न कि संख्यामें

महाराज युधिष्ठिर कौरवोंको सुदृशमें पराजित करके समस्त भूमण्डलके एकच्छत्र सप्तराषि हो गये थे। उन्होंने लगातार तीन अश्वमेध यज्ञ किये। उन्होंने इतना दान किया कि उनकी दानशीलताकी रूपाति देश-देशान्तरमें फैल गयी। पाण्डवोंके भी मनमें वह भाव आ गया कि उनका दान सर्वेष्ट एवं अतुल्नीय है। उसी समय जब कि तीसरा अश्वमेध यज्ञ पूर्ण हुआ था और अवभृत्यन्तान करके लोग यज्ञभूमिसे गये भी नहीं थे, वहों एक अद्भुत नेवला आया। उस नेवलेके नेत्र नीले थे और उसके गरीबका एक ओरका आधा भाग स्वर्णका था। यज्ञभूमिमें पहुँचकर नेवला वहों लोट-पोट होनेके बाद वहे भयंकर शब्दमें गर्जना करके उसने सब पशु-पक्षियोंको भयभीत कर दिया और फिर वह मनुष्यभाषामें बोला—‘पाण्डवों। तुम्हारा यह यज्ञ विधिपूर्वक हुआ, किंतु इसका पुण्यफल

कुच्छेत्रके एक उच्छवृत्तिधारी ब्राह्मणके एक सेर सत्तूके दानके समान भी नहीं हुआ।’

नेवलेको इस प्रकार कहते सुनकर आश्र्वयचकित ब्राह्मणोंने धर्मराज युधिष्ठिरके धर्मान्वरण, न्यायशीलता तथा अपर दानकी प्रशंसा करके पूछा—‘नकुल। तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? इस यज्ञकी निन्दा क्यों करते हो?’

नेवलेने कहा—‘मैं न आपके द्वारा कराये यज्ञकी निन्दा करता हूँ न गर्वकी या शूद्री वात करता हूँ। मैं उस ब्राह्मणकी कथा आपको सुना रहा हूँ। कुछ वर्ष पूर्व कुच्छेत्रमें एक धर्मात्मा ब्राह्मण रहते थे। उनके परिवारमें उनकी पत्नी, पुत्र और पुत्रवधू थी। वे धर्मात्मा ब्राह्मण किसानोंके लेज काट लेनेपर वहों गिरे हुए अन्नके दाने चुन लाते थे और उसीसे अपनी तथा परिवारकी जीविका चलाते थे।

एक बार घोर दुर्भिक्ष पड़ा। ब्राह्मणके पास सचित अन्न

तो था नहीं। और खेतोमें तो बोया हुआ अब उत्पन्न ही नहीं हुआ था। ब्राह्मण को परिवारके साथ प्रतिदिन उपवास करना पड़ता था। कई दिनोंके उपवासके अनन्तर बड़े परिश्रमसे वाजारमें गिरे दानोंको चुनकर उन्होंने एक सेर जौ एकत्र किया और उसका सत्तू बना लिया।

नित्यकर्म करके देवताओं तथा पितरोंका पूजन-तर्पण समाप्त हो जानेपर ब्राह्मणने सत्तू चार भाग करके परिवारके सभी सदस्योंको बॉट दिया और भोजन करने वैठे। उसी समय एक भूखे ब्राह्मण वहाँ आ गये। अपने यहाँ अतिथिको आया देखकर उन तपस्वी ब्राह्मणने उनको प्रणाम किया, अपने कुलगोत्रादिका परिचय देकर उन्हें कुटीमें ले गये और आदरपूर्वक आसनपर बैठाकर उनके चरण धोये। अर्धपाद्यादिसे अतिथिका पूजन करके ब्राह्मणने अपने भागका सत्तू नम्रतापूर्वक उन्हें भोजनके लिये दे दिया।

अतिथिने वह सत्तू खा लिया, किंतु उससे वे तृप्त नहीं हुए। ब्राह्मण चिन्तामें पड़ा कि अब अतिथिको क्या दिया जाय। उस समय पतिव्रता ब्राह्मणीने अपने भागका सत्तू अतिथिको देनेके लिये अपने पतिको दे दिया। ब्राह्मणको पत्नीका भाग लेना ठीक नहीं लग रहा था और उन्होंने उसे रोका भी, किंतु ब्राह्मणीने पतिके अतिथ्यधर्मकी रक्षाको अपने ग्राणोंसे अधिक आदरणीय माना। उसके आग्रहके कारण उसके भागका सत्तू भी ब्राह्मणने अतिथिको दे दिया। लेकिन उस सत्तूको खाकर भी अतिथिका पेट भरा नहीं। क्रमपूर्वक ब्राह्मणके पुत्र और उनकी पुत्रवधूने भी अपने भागका सत्तू आग्रह करके अतिथिको देनेके लिये

ब्राह्मणको दे दिया। ब्राह्मणने उन दोनोंके भाग भी अतिथिको अपित कर दिये।

उन धर्मात्मा ब्राह्मणका यह त्याग देखकर अनिथि बहुत प्रसन्न हुए। वे ब्राह्मणकी उदारता, दानशीलता तथा आतिथ्यकी प्रशंसा करते हुए बोले—‘ब्रह्मन्। आप धन्य हैं। मैं धर्म हूँ, आपकी परीक्षा लेने आया था। आपकी दानशीलतासे मैं और सभी देवता आपपर प्रसन्न हैं। आप अपने परिवारके साथ स्वर्गको शोभित करें।’

नेवलेने कहा—‘धर्मके इस प्रकार कहनेपर स्वर्गसे आये विमानपर बैठकर ब्राह्मण अपनी पत्नी, पुत्र और पुत्रवधूके साथ स्वर्ग पधरे। उनके स्वर्ग चले जानेपर मैं विलसे निफलकर जहाँ ब्राह्मणने सत्तू खाकर हाथ धोये थे, उस कीचड़ीमें लोटने लगा। अतिथिको ब्राह्मणने जो सत्तू दिया था, उसके दो-चार कण अतिथिके भोजन करते समय वायुसे उड़कर वहाँ पड़े थे। उनके शरीरमें लगनेसे मेरा आधा शरीर सोनेका हो गया। उसी समयसे शेष आधा शरीर भी सोनेका बनानेके लिये मैं तपोवनों और यज्ञस्थलोंमें धूम करता हूँ, किंतु कहाँ भी मेरा अभीष्ट पूरा नहीं हुआ। आपके वहाँ यज्ञभूमिमें भी मैं आया, किंतु कोई परिणाम नहीं हुआ।’

‘युधिष्ठिरके यज्ञमें असरव्य ब्राह्मणोंने भोजन किया और वनस्पति उस ब्राह्मणने केवल एक ही ब्राह्मणको तृप्त किया। पर उसमें त्याग था। चारोंने भूखे पेट रहकर उसे भोजन दिया था। दानकी महत्त्वा त्यागमें है, न कि सख्यामें।’ वह नेवला हतना कहकर वहाँसे चला गया। —सु० सिं०

(महाभारत, अश्वमेध० ९०)

भगवती सीताकी शक्ति तथा पराक्रम

एक बार भगवान् श्रीराम जब सपरिकर सभामें विराज रहे थे, विभीषण वडी विकलतापूर्वक अपनी स्त्री तथा चार मन्त्रियोंके साथ दौड़े आये और बार-बार उससे लेते हुए कहने लगे—‘राजीवनयन राम। मुझे बचाइये, बचाइये। कुम्भकर्णके पुत्र मूलकाशुर नामक राक्षसने, जिसे मूल नक्षत्रमें उत्पन्न होनेके कारण कुम्भकर्णने वनमें छुइवा दिया था, पर मधुमक्षियोंने जिसे पाल लिया था, तरुण होकर तपस्याके द्वारा ब्रह्माजीको प्रसन्न कर उनके बलसे गर्वित होकर वडा भारी ऊधम मचा रखा है। उसे आपके द्वारा

लङ्घा-विजय तथा मुझे राज्य-प्रदानकी वात मालूम हुई तो पातालवासियोंके साथ दौड़ा हुआ लङ्घा पहुँचा और मुक्षपर धावा बोल दिया। जैसे-तैसे मैं उसके साथ छः महीनेतक युद्ध करता रहा। गत रात्रिमें मैं अपने पुत्र, मन्त्रियों तथा स्त्रीके साथ किसी प्रकार सुरगसे भागकर यहाँ पहुँचा हूँ। उसने कहा है कि ‘पहले भेदिया विभीषणको मारकर, फिर पितृहन्ता रामको भी मार डालेंगा। सो राघव। वह आपके पास भी आता ही होगा; इसलिये ऐसी स्थितिमें आप जो उचित समझते हों, वह तुरत कीजिये।’

भक्तवत्सल भगवान् श्रीरामके पास उस समय यथापि बहुत से अन्य आवश्यक कार्य भी थे, तथापि भक्तकी करुण कथा सुनकर उन्होंने अपने पुत्र लव, कुण तथा लश्मण आदि भाइयों एवं सारी वानरी सेनाको तुरत तैयार किया और पुष्पकयानपर चढ़कर झट लक्ष्मी ओर चल पड़े। मूलकासुरको राघवेन्द्रके आनेकी बात मालूम हुई तो वह भी अपनी सेना लेकर लड़नेके लिये लक्ष्मीके बाहर आया। बड़ा भागी तुमुल युद्ध छिड़ गया। मात दिनोंतक घोर युद्ध होता रहा। बड़ी कठिन समस्या उत्पन्न हो गयी। अयोध्यारे सुमन्त्र आदि सभी मन्त्री भी आ पहुँचे। हनुमानजी वरावर सजीविनी लाकर वानरों, भालुओं तथा मानुषी सेनाको जिलाते ही रहे, पर युद्धका परिणाम उलटा ही दीयता रहा। भगवान् विन्तामें कल्यवृक्षके नीचे बैठे थे। मूलकासुर अभिनारहोमके लिये गुप्तगुहामें गया था। विभीषण भगवान्से उसकी गुप्त चेष्टा बतल रहे थे। तथतक ब्रह्माजी वहाँ आये और रहने लगे—‘रघुनन्दन।’ इसे मैंने स्त्रीके हाथ मरनेका वरदान दिया है। इसके साथ ही एक बात और है, उसे भी सुन लीजिये। एक दिन इसने सुनियोंके बीच शोकसे व्याकुल होकर ‘चण्डी सीताके कारण मेरा कुल नष्ट हुआ’ ऐसा वास्तव कहा। इसपर एक सुनिने कुद्र होकर उसे आप दे दिया—‘दुष्ट! तूने जिसे चण्डी कहा है, वही सीता तुझे जानसे मार डालेगी।’ सुनिका हृतना कहना था कि वह दुष्टत्वा उन्हे खा गया। अब क्या था, शेष सब सुनि लोग चुपचाप उसके ढरके मारे धीरेसे वहाँसे रिसक गये। इसलिये अब उसकी कोई औपध नहीं है। अब तो केवल सीता ही इसके वधमें समर्थ हो सकती है। ऐसी दशामें रघुनन्दन। आप उन्हें ही यहाँ तुलाकर इसका तुरत वध करनेकी चेष्टा करें। यही इसके वधका एकमात्र उपाय है।’

इतना कहकर ब्रह्माजी चले गये। भगवान् श्रीरामने भी तुरत हनुमानजी और विनतानन्दन गरुड़को सीताको पुष्पकयानसे सुरक्षित ले आनेके लिये भेजा। इधर पराम्बा भगवती जनकनन्दिनी सीताकी बड़ी विच्छिन्न दशा थी। उन्हें श्रीराघवेन्द्र रामचन्द्रके विरहमें एक क्षणभर भी चैन नहीं थी। वे वार-न्वार प्रासाद-ठिलखरपर चढ़कर देखती कि कहाँ दक्षिणसे पुष्पकपर प्रभु तो नहीं पधार रहे हैं। वहाँसे निराश होकर वे पुनः द्राक्षामण्डपके नीचे शीतलताकी आदामें चली जातीं। कभी वे प्रभुकी विजयके लिये तुलसी, शिवप्रतिमा, पीपल आदिकी प्रदक्षिणा करतीं और कभी व्राजाणोंसे मन्युसुक्तका

पाठ करतीं। कभी वे दुर्गाकी पूजा करके वह माँगतीं कि विजयी श्रीराम शीघ्र लौटें और कभी व्राजाणोंसे शतशद्रियका जप करतीं। नींद तो उन्हें कभी आती ही न थी। वे दुनियाभरके देवी-देवताओंकी मनोती मनातीं तथा सरे भोगों और शृङ्गारोंसे विरत रहती। इसी प्रकार युगके समान उनके दिन जा रहे थे कि गरुड और हनुमानजी उनके पास पहुँचे। पतिके सदेशको सुनकर सीता तुरत चल दीं और लक्ष्मीमें पहुँचकर उन्होंने कल्यवृक्षके नीचे प्रभुका दर्शन किया। प्रभुने उनके दीर्घल्यका कारण पूछा। पराम्बा लजाते हुए हँसकर कहा—‘स्वामिन्! यह केवल आपके अभासमें हुआ है। आपके विना न नींद आती है न भूत लगती है। मैं आपकी वियोगिनी, व्रग, वोगिनीकी तरह रात दिन बलात् आपके ध्यानमें पड़ी रही। वाय नरीरंग क्या हुआ है, इसका मुझे जोई जान नहीं।’

तत्पश्चात् प्रभुने मूलकासुरके पराक्रमादिकी बात कही। किर तो क्या था, भगवतीको क्रोध आ गया। उनके शरीरसे एक दूसरी तामी शक्ति निकल पड़ी, उसका स्वर बड़ा भयानक था। वह लक्ष्मीकी ओर चली। तथतक वानरोंने भगवान्के मकेतसे गुहामें पहुँचकर मूलकासुरको अभिनारसे उपरत किया। वह दौड़ता हुआ हनके पीछे चला तो उसका मुकुट पिर पड़ा। तथापि वह रणक्षेत्रमें आ गया। छायासीताको देखकर उसने कहा—‘तू भाग जा। मैं ब्रियापर पुरुपार्थ नहीं दियाता।’ पर छायाने कहा—‘मैं तुम्हारी मृत्यु-चण्डी हूँ। तूने मेरे पक्षपाती व्राजाणको मार डाला था, अब मैं तुम्हें मारकर उसका श्रृण चुकाऊँ।’ इतना कहकर उसने मूलकपर पाँच बाण चलाये। मूलकने भी बाण चलाना शुरू किया। अन्तमें चण्डिकाला चलाकर छायाने मूलकासुरका सिर उड़ा दिया। वह लक्ष्मीके दरवाजेपर जा गिरा। राखम हाहाकार फरते हुए भाग राखे हुए। छाया लौटकर सीताके बठनमें प्रवेश कर गयी। तत्पश्चात् विभीषणने प्रभुको पूरी लक्ष्मी दिखायी, क्योंकि पितावचनके कारण पहली बार वे लक्ष्मीमें न जा सके थे। सीताजीने उन्हें अपना वासस्थल अग्रोक्तवन दियाया। मुछ देरतक वे प्रभुका हाथ पकड़कर उस वाटिकामें धूमों भी। किर मुछ दिनोंतक लक्ष्मीमें रहकर वे भीता तथा लव-कुण्डादिके माथ पुष्पकयानसे अयोध्या लौट आये।

(आनन्दरामायण, राज्यकाण्ट, पूर्वाख, अध्याय ५-६)

अद्भुतरामा० १६-२१ में ऐसी ही एक दूसरी कथा गगवती सीतादारा शतसुख रावणके वधकी आती है।

वीर माताका आदर्श

प्राचीन कालमें विदुल नामकी एक अत्यन्त उद्गिमनी एवं देवजन्मिनी छत्रांगी थी। उनका पुत्र नजय युद्धमें ब्रह्मुत्ते पराजित हो गया था। पराजयने उत्तराभासु मड़ कर दिया। वह हतोत्ताह होकर वर्षे पड़ा रहा। अग्ने पुत्रको निर्दयोन पढ़े देखकर विदुल उसे फटकारने लगी—‘अरे कायर। तू ने ये पुत्र नहीं हैं। तू कुलझार इस बींगने द्वारा प्रगतिन कुलमें क्यों उन्मन हुआ। तू नपुन्नदोनीं भोगि पड़ा है।’ तेरी गणना पुरुषोंमें क्यों होती है? यदि तेरी दुजओंमें दल है तो व्यक्त उठा और ब्रह्मुत्ता मान नर्दन कर। छोटी नदियों योड़े जम्से भर जाती है, चूड़ेनी अल्लियों योड़े ही पदार्थमें भर जाती है और कामरलोग योड़ेमें ही सतुष्ठ हो जाते हैं। परंतु द. क्षत्रिय हैं! महत्ता प्राप्त करनेके लिये ही छत्रांगी पुत्र उन्मन करती है। उठ! युद्धके लिये प्रस्तुत हो।

‘पुत्र! तेरे लिये युद्धमें या तो विजय प्राप्त करना उचित है या त् प्राप्त त्वागकर सूर्यमण्डलमेदकर योगियोंके लिये भी दुर्लभ परमगद प्राप्त कर ले। क्षत्रिय रोगसे व्यापर पड़े-पड़े प्राण त्वागनेको उन्मन नहीं होता। युद्ध क्षत्रियका धर्म है। धर्मसे चिन्तन होकर त् क्यों जीवित रहना चाहता है? अरे नपुसञ्ज! यज्ञ, दान और भोगका मूल राज्य तो नष्ट हो चुका और कापुद्य बनकर तू धर्मच्युत भी हो गया। निर तू जीवित क्यों रहना चाहता है? तेरे कारण कुल दूष रहा है, उसका उदार कर। उद्योग कर और विक्रम दिखा।

‘उमाजनें जिसके महान्वकी चर्चा नहीं होती या देवना जिसे सत्कारयोग्य नहीं जानते वह न पुरुष है और न द्वी, मनुष्योंकी गणना बढ़ानेवाला वह पृथ्वीन व्यर्थ कर है। दान, सत्य, तप, विद्या और जाननेसे किसी क्षेत्रमें जिसको देय नहीं मिला वह तो माताकी विष्टके समान है। पुरुष बही है जो ब्रह्मोंके अव्याप्त, ब्रह्मोंके प्रयोग, तर अथवा जाननें श्रेष्ठत्व प्राप्त करे। न्यायुरों तथा मृत्योंके समान भीन मौगकर जीविता चलना तेरे दोग्य कायं नहीं। लोगोंके अनादनका पात्र होकर, नेजन-बछंके लिये दूर्वर्हका जुख ताकनेवाले हीनवीर्य, नीचहृदय पुरुष ब्रह्मोंको प्रसन्न करते तथा बन्दुर्यग्नों चूल्कीं भोगि तुमते हैं।

‘हान! ऐसा लगता है कि हमें राज्यसे निर्वासित होन्नर क्षमाल दशामें मरना पड़ेगा। तू कुलझार है। अग्ने कुलके

अयोध्य काम करनेवाला है। तुझे गर्भमें रक्षनेके कारण मैं भी अयकी भागिनी बर्दूगी। कोई भी नारी तेरे समान वीर्यहीन, निरहलाही पुत्र न उत्पन्न करे। वीर पुरुषके लिये ब्रह्मोंके मस्तकपर क्षगमर प्रज्वलित होकर दुःख जाना भी उत्तम है। जो आलक्षी है, वह कभी महत्त्व नहीं पाता। इसलिये अब भी तू पराजयकी गलानि त्यागकर उद्योग कर।’

माताके द्वारा इस प्रकार फटकारे जानेमर संजय दुखी होकर बोला—‘माता! मैं तुम्हारे सामनेसे कहाँ चला जाऊँ या मर ही जाऊँ तो तुम राज्य धन तथा दूसरे सुख-भोग लेकर क्या करोगी?’

विदुल बोटी—‘नै चाहती हूँ कि तेरे ब्रह्मु पराजय, क्षगाली और दुखके भागी बने और तेरे मित्र आदर तथा युद्ध प्राप्त करें। तू पराप्रे अन्नसे पल्लेवाले दीन पुरुषोंकी हृति मत ग्रहण कर। ब्राह्मण और नित्र तेरे आश्रयमें रहकर तुझसे जीविका प्राप्त करे, ऐसा उद्योग कर। पके फलेंसे लदे ब्रह्मके नमान लोग जीविकाके लिये जिप्रका आश्रय लेते हैं, उसीका जीवन सार्थक है।

‘पुत्र! स्वरूप रक्ष कि यदि तू उद्योग छोड़ देगा तो पौरुष-न्यायके पश्चात् श्रीघ्र ही तुझे नीच लोगोंका मार्ग अपनाना पड़ेगा। जैसे मरणासन्न पुरुषको औपध प्रिय नहीं लगती, वैसे ही तुझे मेरे हितकर वचन प्रिय नहीं लग रहे हैं। तेरे ब्रह्म इन समय प्रवल हैं, किंतु तुझमें उत्साह हो और तू उद्योग करनेको खड़ा हो जाय तो उनके ब्रह्म तुझसे आ मिलेंगे। तेरे हितैरी भी तेरे पास एकत्र होने लगें। तेरा नाम नजर है, किंतु जर पानेका कोई उद्योग तुझमें नहीं देख पड़ता। इसलिये तू अपने नामको सार्थक कर।

‘पुत्र! हार हो या जीत, राज्य मिले या न मिले, दोनोंको नमान समझकर तू ढड संकल्पपूर्वक युद्ध कर। जग-पराजय तो कालके प्रभावसे सबको प्राप्त होती है; किंतु उत्तम पुरुष वही है, जो कभी हतोत्साह नहीं होता। संजय! मैं श्रेष्ठ कुलकी कन्या हूँ, श्रेष्ठ कुलकी पुत्रवधू हूँ और श्रेष्ठ पुरुषकी पत्नी हूँ। यदि मैं तुझे गौरव बढ़ाने योग्य उत्तम कायं करते नहीं देखूँगी तो मुझे कैसे शान्ति मिलेगी। कायर, कुपुरुषकी माता कहलानेकी अपेक्षा तो मेरा मर

जाना ही उत्तम है। यदि तू जीवित रहना चाहता है तो शत्रुको पराजित करनेका उद्योग कर। अन्यथा सद्गते लिये पराप्रित दीन रहनेकी अपेक्षा तो मर जाना उत्तम है।'

माताके इस प्रकार बहुत अधिक ललकनेमर भी उजपने के कहा—‘माता! तू कृष्णाहीन और पापाण्जने हृदयवाली है। मैं तेग एकमात्र पुत्र हूँ। यदि मैं युद्धम मारा गया तो तू गत्य और धन लेकर क्या मुक्त पायेगी कि मुझे युद्धभूमिमें भेजना चाहती है?’

विदुलने कहा—‘वेदा! मनुष्यसे अर्थ तथा वर्मके लिये उद्योग करना चाहिये। मैं उमी धर्म और अर्थकी सिद्धिके लिये तुम्हें युद्धमें भेज रहा हूँ। यदि तू शत्रुघ्नारा मारा गया तो पन्नोकमें महत्व प्राप्त करेगा—मुक्त हो जायगा और विजयी हुआ तो समारम्भे मुक्तवर्तक राज्य करेगा। इस कर्तव्यसे विमुक्त होनेमर समाजमें तेग अपमान होगा। तू अपना और मेरा भी घोर अनिष्ट करेगा। मैं मोहृश्व तुम्हे

इस अनिष्टसे न नेढ़ौं तो वह न्नेह नहीं कहा जायगा। लोकमें तू दरिद्रता तथा अपमान नहै और मरनेवर कर्तव्य-प्रष्ठ लोगोंसी अधमगति पाये ऐसे मार्गशर म तुम्हे नहीं जाने देना चाहती। सजनोद्वारा निन्दित कायरताके मार्गको छोड़ दे। जो सजनारी, उद्योगी, विनीत पुत्रपर स्नेह प्रकट करे, उमीका स्नेह सज्जा है। उद्योग, विनय तथा सदाचरणसे सहित पुत्रपर जो स्नेह करता है, उसमा पुत्रवान् होना व्यर्थ है। शत्रुको विजय करने वा युद्धमें प्राण देनेके लिये शत्रिय उत्पन्न हुआ है। तू अपने जन्मदो सार्यक कर।’

माताके उपरेक्षामे मजपत्ता गौर्य जाग्रत् हो गया। उमका उत्साह मजीब हो उठा। उसने माताकी आज्ञा न्वीकार कर ली। नव और उदारीको दूर करके वह सैन्य-सप्रहमे लग गया। अन्तम शत्रुको पराजित करके उसने अपने गत्यपर अधिकार प्राप्त किया। —सु० मिं०

(महामारन, उद्योग १३३-१३६)

पतिको रणमें भेजते समयका विनोद

चम्पकपुरीके एकपत्नीवती राज्यमें महाराज हसुन्दज राज्य करते थे। पाण्डवोंके अवधेय यत्रना ओडा चम्पकपुरीके पास पहुँचा। महावीर अर्जुन अश्वकी रक्षाके लिये पीछे पीछे आ रहे थे। हसुन्दजने धन्त्रिय-वर्मके अनुसार तथा पार्थ-सारथी भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे ओडेको पकड़ लिया। भगवान् युद्धकी तंत्रारी हुर्द। सुब्रह्मा संसरे ओडा पुत्र था। रणमें जाते समय वह अपनी मानामा आश्रीर्वांद लेकर, वहिनीकी अनुमति प्राप्तकर अपनी सती पत्नी प्रभावर्तके पास गया। वह पहलेसे ही दीपकयुक्त सुवर्ण-थालमें चन्दन-कप्र लिये आरती उत्तरासेको दरवाजेपर ही घृड़ी थी। सतीने वडे भक्तिभावसे दीर पतिकी पूजा की, तदनन्तर वैयक्ति साथ आरती करती हुर्द नम्रताके साथ पतिके प्रति प्रेमभरे गुह्य वचन कहने लगी—प्राणनाथ। मैं आपके श्रीकृष्णके दर्शनार्थी सुखकमलका दर्शन कर रही हूँ, परतु नाथ। माल्म होता है आज आपका एकपत्नीवत नष्ट हो जायगा। पर आप जिसपर अनुरक्त होकर उत्साहसे जा रहे हैं, वह जी मेरी वरावरी कभी नहीं कर सकेगा। मैंने आपके तिवा दूसरेकी ओर कभी भूलकर भी नहीं ताका है, परतु वह ‘मुक्ति’ नामी रमणी तो पिता, पुत्र, सभीके प्रति गमन करनेवाली है। आपके मनमें ‘मुक्ति’ वस रही है, इसीसे

श्रीकृष्णके द्वारा उसके मिन्नेकी आशासे आप दौड़े जा रहे हैं। पुरुषाका चित्त देव-रमणियोंकी ओर चला ही जाता है, परतु आप वह निश्चिन रखिये कि श्रीहर्षिको देखकर, उनकी अतुलित मुखच्छविके भामने ‘मुक्ति’ आपको कभी प्रिय नहीं लगेगी। कर्मोंकि उनके भक्तजन जो उनकी प्रेम-माधुरीपर अपनेको न्योद्यावर कर देते हैं, वे मुक्तिकी कभी इच्छा नहीं करते। मुक्ति तो दासीकी तरह चम्पासे जामा अवसर हैंदृढ़ती हुई उनके पीछेपीछे धूमा करती है, परतु वे उसकी ओर ताकते भी नहीं। वहाँतक कि हरि स्वयं भी कभी उन्हें मुक्ति प्रदान करना चाहते हैं, तब भी वे उसे प्रहण नहीं करते।

‘इसके सिवा पुरुषोंकी भौति न्वी पर-पुरुषोंके पास नहीं जाया करती। नहीं तो आपके चले जानेवर यदि मैं ‘मोक्ष’ के प्रति चली जाऊँ तो आप क्या कर सकते हैं? परतु विवेक नामक अद्वैत पुत्र निरन्तर मेरी रक्षा करता है। जिन लियोंके विवेक नामक पुत्र नहीं है, वे ही पर-पुरुषके पास जाया करती हैं। मुझे लड़कपनसे ही त्रियेक-पुत्र प्राप्त है, इसीसे आर्य! मुझे मोक्षके पास जानेमं सकोच हो रहा है।’

पत्नीके मध्यर धार्मिक वचनोंका उत्तर देते हुए सुधन्वन्नाने कहा—

‘योमने। जब मैं श्रीकृष्णके साथ लड़नेको जा रहा

हूँ, तब तुम्हे मोशके प्रति जानेसे कैसे रोक सकता हूँ। तुम भी मेरे उत्तम बन्न, स्वर्ण-रत्नोंके समूह और इस शरीर तथा चित्तको त्यागकर चली जाओ। मैं तो यह पहलेसे ही

जानता था कि तुम ‘मोश’के प्रति आसक्त हो। इसीसे तो मैंने प्रत्यक्षमें विवेक पुत्रके उत्पन्न करनेकी चेष्टा नहीं की।

सच्ची क्षमा द्वेषपर विजय पाती है

राजा विश्वामित्र सेनाके साथ अल्लेटके लिये निकले गए। वनमें धूमने हुए वे महर्षि वशिष्ठके आश्रमके समीप पहुँच गये। महर्षिने उनका आतिथ्य किया। विश्वामित्र यह देखकर आश्रव्यमें पड़ गये कि उनकी पूरी सेनाका मत्कार कुटियामें रहनेवाले उस तपस्वी ऋषिने राजेचित भोजनसे किया। जब उन्हे पता लगा कि नन्दिनी गौके प्रभावसे ही वशिष्ठजी यह सब कर सके हैं तो उन्होंने ऋषिसे वह गौ मांगी। किसी भी प्रकार, किसी भी मूल्यपर ऋषिने गौ देना स्वीकार नहीं किया तो विश्वामित्र बल्पूर्वक उसे छीनकर ले जाने लगे। परतु वशिष्ठके आदेशसे नन्दिनीने अपनी हुंकारमें ही दाहण घोड़ा उत्पन्न कर दिये और उन दैनिकोंकी मार खाकर विश्वामित्रके सैनिक भाग खड़े हुए।

राजा विश्वामित्रके सब दिव्यास्त्र वशिष्ठके ब्रह्मदण्डसे टकरान्न निर्मल हो चुके थे। विश्वामित्रने कटोर तप करके और दिव्यास्त्र प्राप्त किये, किंतु वशिष्ठजीके ब्रह्मदण्डने उन्हे भी व्यर्थ कर दिया। अब विश्वामित्र समझ गये कि धात्रवल तपस्वी ब्राह्मणका कुछ विगाड नहीं सकता। उन्होंने स्वयं ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेका निन्द्य करके तपस्या ग्राम्य कर दी। सैकड़ों वर्षोंके उत्तर तपके पश्चात् वशिष्ठजीने प्रसन्न होकर दर्शन भी दिया तो कह दिया—‘वशिष्ठ आपको वशिष्ठ मान लें तो आप ब्राह्मण हो जायेगे।’

विश्वामित्रजीके लिये वशिष्ठसे प्रार्थना करना तो बहुत अपमानजनक लगता था और स्योगवश्य जब वशिष्ठजी मिलते थे तो उन्हे गजपिंहीं ही कहकर पुकारते थे, इससे विश्वामित्रका क्रोध बढ़ता जाता था। वे वशिष्ठके बोर शवु हो गये थे। एक राक्षसको प्रेरित करके उन्होंने वशिष्ठके सौ पुत्र मरवा डाले। स्वयं भी वशिष्ठको अपमानित करने, नीचा दिखाने तथा उन्हे हानि पहुँचानेका अवमर ही ढूँढते रहते थे।

‘मैं नवीन सुष्ठि करके उसका ब्रह्मा बनूँगा।’ अपने उद्देश्यमें असफल होकर विश्वामित्रजी अद्भुत हठपर उत्तर

आये। अपने तपोवलसे उन्होंने सचमुच नवीन सुष्ठि करनी प्रारम्भ की। नवीन अन्न, नवीन तुण्टर, नवीन पश्च—वे बनाते चले जाते थे। अन्तमें ब्रह्माजीने उन्हे आकर रोक दिया। उन्हे आश्वासन दिया कि उनके बनाये पदार्थ और प्राणी ब्राह्मी सुष्ठिके प्राणियोंके समान ही संमारमें रहेगे।

कोई उपाय सफल होते न देखकर विश्वामित्रने वशिष्ठजी-को ही मार डालनेका निश्चय किया। सम्मुख जाकर अनेक बार वे पराजित हो चुके थे, अतः अल्ल-अल्लसे सजित होकर रात्रिमें छिपकर वशिष्ठजीके आश्रमपर पहुँचे। गुपतरूपसे वे वशिष्ठका वध उनके अनजानमें करना चाहते थे। चौंदनी रात थी, कुटीसे बाहर बेदीपर महर्षि वशिष्ठ अपनी पल्लीके साथ बैठे थे। अवसरकी प्रतीतामें विश्वामित्र पास ही बृथों-की ओटमें छिप रहे।

उसी समय अरुन्धतीजीने कहा—‘कैसी निर्मल ज्योत्स्ना छिटकी है।’

वशिष्ठजी बोले—‘आजकी चन्द्रिका ऐसी उज्ज्वल है जैसे आजकल विश्वामित्रजीकी तपस्याका तेज दिशाओंको आलौकित करता है।’

विश्वामित्रने इसे सुना और जैसे उन्हे सॉप सूँघ गया। उनके हृदयने विकारा उन्हें—‘जिसे तू मारने आया है, जिससे रात-दिन द्वेष करता है, वह कौन है—यह देख। वह महापुरुष अपने सौ पुत्रोंके हत्यारेकी प्रशंसा एकान्तमें अपनी पर्दीसे कर रहा है।’

नोच फेंके विश्वामित्रने शरीरपरके शाख। वे दौड़े और वशिष्ठके सम्मुख भूमिपर प्रणिपात करते दण्डवत् गिर पड़े। बद्धमूल द्वेष समाप्त हो चुका था सदाके लिये। वशिष्ठजी सहज धमा उत्पन्न विजय पा चुकी थी। द्वेष और शाख त्यागकर आज तपस्वी विश्वामित्र ब्राह्मणत्व प्राप्त कर चुके थे। महर्षि वशिष्ठ बेदीसे उत्तरकर उन्हे दोनों हाथोंसे उठाते हुए कह रहे थे—‘उठिये, ब्रह्मर्षि।’—सु० सि०

धोर क्षेत्रमें भी सत्पथपर अडिग रहनेवाला महापुरुष है

जब मानवन् विष्णुने बामनहरसे बलिसे पृथ्वी तथा सर्वका राज्य छीनकर इन्होंने दे दिया, तब कुछ ही दिनोंमें राज्यकर्त्ता के स्वामानिक दुर्गुण गर्वसे इन्हें पुन उन्नत हो उठे। एक दिन वे श्रद्धार्जिके पास पहुँचे और हाय जोड़कर खोले—‘मिनामह ! अब अगर दानी हजा बलिका कुछ पता नहीं लग रहा है। मैं सर्वत्र खोजता हूँ, पर उनका पता नहीं मिलता। आर कृत्यकर सुझे उनका पता बताइये।’ श्रद्धार्जिने कहा—‘तुम्हारा यह कार्य उचित नहीं। तथामि किसीके पूर्वनेपर कृदा उच्चर नहीं देना चाहिये, अतएव मैं तुम्हें बलिका पता बतला देना हूँ। हजा बलि इस समय लैट-बैल, गवा या बोझा बनकर किसी साली वरमें रहते हैं। इन्हें इक्षर पूछा—‘मैं नैं किसी स्थानपर बलिको पाजँ तो उहैं अपने बल्ले नार ढाँड़ या नहीं ?’ श्रद्धार्जिने कहा—‘हजा बलि—ओर ! वे कदाचित भारने योग्य नहीं हैं। तुम्हें उनके पास जाकर कुछ विक्षा ग्रहण करनी चाहिये।’

उद्भन्नतर इन्ह दिव्य आभूदग धारणकर ऐरवत्तमर बद्धकर बलिकी खोजमें निकल पड़े। अन्तमें एक साली कर्म उन्होंने एक गदहा देखा और कई लक्षणोंसे उन्होंने अनुमान किया कि ये ही उहा बलि हैं। इन्हें कहा—‘युनवरज ! इस समय तुमने वडा विचित्र देप बना रखता है। क्या तुम्हें अपनी इस दुर्घारा कोई हुए ल नहीं होता। इस समय तुम्हारे छत्र, चामर और बैजयन्ती माला कहाँ गयी ? कहाँ गया वह तुम्हारा अप्रतिहत द्यनका महावत और कहाँ गया तुम्हारा सूर्य, चंचा, हुक्के अमि और जल्का न्य ?’

बलिने कहा—‘देखें ! इस समय तुम मेरे छत्र, चामर तिहारनादि उपकरणोंको नहीं देख सकते। पर मिर कमी मेरे दिन लौटेंगे और तब तुम उन्हें देख सकते। तुम जो इस समय अपने ऐन्वयके मध्यमें आकर मेरा उपहास कर रहे हो, वह केवल तुम्हारी तुच्छ डुदिका ही परिचायक है। मालूम होता है, तुम अपने पूर्वसे दिनोंको सर्वथा ही भूल गये। पर कुनैद्य ! तुम्हें समझ लेना चाहिये, तुम्हारे वे दिन पुन, लौटेंगे। टेक्राज। इस विश्वमें कोई कल्प सुनिश्चित और सुस्थिर नहीं है। काल सबको नष्ट कर डालता है। इस कालके अद्भुत रहस्यको जानकर मैं किसीके लिये मी शोक नहीं करता। वह काल धनी, निर्वन, बली, निर्वल, पीप्तित,

मूर्त, नगवान्, कुरुन, मान्यवान्, मान्यहीन, बालक, चुवा, बृद्ध, योगी, तपसी, धर्मत्मा, शूर और वडे-से-वडे अहंकारियों-मेंसे किसीको मी नहीं छोड़ता और उमीको एक समान ग्रस्त कर लेता है—मुश्क कलेजा कर जाता है। ऐसी दिग्में महेन्द्र। मैं क्यों सोचूँ ? कालके ही कारण मनुष्योंको लाम-हानि और छुड़-टुड़की प्राप्ति होती है। काल ही सबको देता और पुन छीन भी लेता है। कालके ही प्रभावसे सभी कार्य चिद होते हैं। इसलिये वासव। तुम्हारा अहकार, मद तथा पुरुषार्थका गर्व केवल मोहमात्र है। ऐन्वयोंकी प्राप्ति या विनाश किसी मनुष्यके अवीन नहीं है। मनुष्यकी कमी उन्नति होती है और कमी अवनति। यह संसारका नियम है, इसमें हर्यन्वियाद नहीं करता चाहिये। न तो सदा किसीकी उच्चति ही होती है और न सदा अवनति या पतन ही। समपरे ही ऊँचा पद निल्मा है और समय ही गिरा देता है। इसे तुम अच्छी तरह जानते हो कि एक दिन देवता, पितर गन्धर्व, मनुष्य, नाग, राक्षस-उत्तर मेरे अवीनये। अधिक क्या, ‘नमस्तत्यै दिवेऽन्वलु यस्मा वैरोचनिर्वलिं’—‘जिस दिग्में हजा बलि हैं, उस दिग्मांको मी नमस्कार’ वो कहकर, मैं जिस दिग्में रहता था, उस दिग्मांको भी लोग नमस्कार करते थे। पर जब मुझपर भी कालका आकर्षण हुआ, तो भी दिन पल्ल्या खा गया और मैं इस दिग्में पहुँच गया, तब किस गरजते और तरते हुए-पर कालका चक न निरेगा ? मैं अकेला बाहर सूखोंका तेज रखता था, मैं ही पानीका आकर्षण करता और बरसावा था। मैं ही तीनों लोकोंको प्रकाशित करता और तगाता था। मुश्क लोकोंका पालन, यंहारु दान, ग्रहण, बन्धन और मोचन मैं ही करता था। मैं तीनों लोकोंका सामी था, किन्तु कालके फेरते इस समय मेरा वह प्रभुत्व समाप्त हो गया। विद्वानोंने कालको दुरतिकम और परमेश्वर कहा है। वडे देगसे दौड़नेपर भी कोई मनुष्य कालको लॉब नहीं सकता। उच्ची कालके अवीन हम, तुम—उत्तर कोई है। इन्ह तुम्हारे बुद्धि सचदुन्दु बालकों-जैसी है। शायद तुम्हें पता नहीं कि अवतक तुम्हारे-जैसे हजारें इन्ह हुए और नष्ट हो चुके। यह राज्यलक्ष्मी, सौभाग्यश्री, जो आज तुम्हारे पास है, तुम्हारी बरौती या बरीदी हुई दासी नहीं है, वह तो तुम्हें जैसे हजारें इन्होंके पास रह चुकी है। वह इसके पूर्व नेरे पास थी। अब तुम्हें छोड़कर तुम्हारे पास गयी है और यीन थी

तुमको भी छोड़कर दूसरेके पास चली जायगी । मैं इस रहस्यको जानकर रत्तीभर भी दुखी नहीं होता । बहुत-से कुलीन धर्मात्मा गुणवान् राजा अपने योग्य मन्त्रियोंके साथ भी घोर वलेश पाते हुए देखे जाते हैं, साथ ही इसके विपरीत मैं नीच कुलमें उत्पन्न मूर्ख मनुष्योंको विना किसीकी सहायता-के राजा बनते देखता हूँ । अच्छे लक्षणोंवाली परम सुन्दरी तो अभागिनी और दुःखसागरमें हूँवती दीख पढ़ती है और कुलक्षणा, कुरुपा भाग्यवती देखी जाती है । मैं पूछता हूँ, इन्द्र ! इसमें भवितव्यता—काल यदि कारण नहीं है तो और क्या है ? कालके द्वारा होनेवाले अनर्थ बुद्धि या बलसे हटाये नहीं जा सकते । विद्या, तपस्या, दान और वन्धु-बान्धव—कोई भी कालग्रस्त मनुष्यकी रक्षा नहीं कर सकता । आज तुम मेरे सामने बज्र उठाये खड़े हो । अभी चाहूँ तो एक धूंसा मारकर बज्रसमेत तुमको गिरा हूँ । चाहूँ तो इसी समय अनेक भयकर रूप धारण कर लैं, जिनको देखते ही तुम डरकर भाग खड़े हो जाओ । परंतु करूँ क्या ? यह समय सह लेनेका है—पराक्रम दिखलानेका

नहीं । इसलिये यथेच्छ गदहेका ही रूप बनाकर मैं अध्यात्म-निरत हो रहा हूँ । शोक करनेसे दुःख मिटता नहीं, वह तो और बढ़ता है । इसीसे मैं बेखटके हूँ, बहुत निश्चिन्त, इस दुरवस्थामें भी ।'

बलिके विशाल धैर्यको देखकर इन्द्रने उनकी बड़ी प्रशंसा की और कहा—निस्सदेह तुम बड़े धैर्यवान् हो जो इस अवस्थामें भी सुझ वज्रधरको देखकर तनिक भी विचलित नहीं होते । निश्चय ही तुम राग-देपसे शून्य और जितेन्द्रिय हो । तुम्हारी शान्तचिन्ता, सर्वभूतसुदृदता तथा निर्वैरता देखकर मैं तुमपर प्रसन्न हूँ । तुम महापुरुष हो । अब मेरा तुमसे कोई द्वेष नहीं रहा । तुम्हारा कल्याण हो । अब तुम मेरी ओरसे बेखटके रहो और निश्चिन्त और नीरोग होकर समयकी प्रतीक्षा करो ।'

यों कहकर देवराज इन्द्र ऐरावत हाथीपर चढ़कर चले गये और बलि पुनः अपने स्वरूपचिन्तनमें स्थिर हो गये ।—जा० श०

(महाभारत, शान्तिपर्व, मोक्षधर्म, अध्याय २२३—२२७)

सेवा-निष्ठाका चमत्कार

मर्यादापुरुषोत्तम विश्वसप्तमी श्रीराघवेन्द्र अयोध्याके सिंहासनपर आसीन थे । सभी भाई चाहते थे कि प्रभुकी सेवाका कुछ अवसर उन्हें मिले, किंतु हनुमानजी प्रभुकी सेवामें इतने तत्पर रहते थे कि कोई सेवा उनसे बचती ही नहीं थी । सब छोटी-बड़ी सेवा वे अकेले ही कर लेते थे । इससे घवराकर भाइयोंने माता जानकीजीकी शरण ली । श्रीजानकीजीकी अनुमतिसे भरतजी, लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नकुमारने मिलकर एक योजना बनायी । प्रभुकी समस्त सेवाओंकी सूची बनायी गयी । कौन-सी सेवा कब कौन करेगा, यह उसमें लिखा गया । जब हनुमानजी प्रातः सरयू-स्नान करने गये, उस अवसरका लाभ उठाकर प्रभुके सम्मुख वह सूची रख दी गयी । प्रभुने देखा कि उनके तीनों भाई हाथ जोड़े खड़े हैं । सूचीमें हनुमानजीका कहाँ नाम ही नहीं था । सर्वज्ञ रुद्रनाथजी मुस्कराये । उन्होंने चुपचाप सूचीपर अपनी स्वीकृतिके हस्ताक्षर कर दिये ।

श्रीहनुमानजी खान करके लौटे और प्रभुकी सेवाके लिये कुछ करने चले तो शत्रुघ्नकुमारने उन्हें रोक दिया—‘हनुमानजी ! यह सेवा मेरी है । प्रभुने सबके लिये सेवाका विभाग कर दिया है ।’

‘प्रभुने जो विधान किया है या जिसे स्वीकार किया है, वह सुझे सर्वथा मान्य है ।’ हनुमानजी खड़े हो गये । उन्होंने इच्छा की वह सूची देखनेकी और सूची देखकर बोले—‘इस सूचीसे बची सेवा मैं करूँगा ।’

‘हाँ, आप सूचीसे बची सेवा कर लिया करें ।’ लक्ष्मणजीने हँसकर कह दिया । परन्तु हनुमानजी तो प्रभुकी स्वीकृतिकी प्रतीक्षामें उनका श्रीमुख देख रहे थे । मर्यादापुरुषोत्तमने स्वीकृति दे दी, तब पवनकुमार बोले—‘प्रभु जब जम्हाई लेंगे तो मैं चुटकी बजानेकी सेवा करूँगा ।’

यह सेवा किसीके ध्यानमें आयी ही नहीं थी । अब तो प्रभु स्वीकार कर चुके थे । श्रीहनुमानजी प्रभुके सिंहासनके सामने बैठ गये । उन्हे एकटक प्रभुके श्रीमुखकी ओर देखना था; क्योंकि जम्हाई जानेका कोई समय तो है नहीं । दिनभर किसी प्रकार बीत गया । खान, भोजन आदिके समय हनुमानजी प्रभुके साथ बने रहे । रात्रि हुई, प्रभु अपने अन्तःपुरमें विश्राम करने पधारे, तब हनुमानजी भी पीछे-पीछे चले । अन्तःपुरके द्वारपर उन्हे सेविकाने रोक दिया—‘आप भीतर नहीं जा सकते ।’

हनुमानजी वहाँसे सीधे राजभवनके ऊपर एक कॅग्गोपर जाकर बैठ गये और लगे चुटकी बजाने। उधर अन्तःपुरमें प्रभुने जग्हाई लेनेवो मुख खोला तो दोले ही रहे। श्रीजानकीजीने पूछा—‘यह क्या हो गया आपको?’ परतु प्रभु मुख बद न करें तो थोलें रहें। घबराकर श्रीजानकीजीने माता कौसल्याको समाचार दिया। माता दौड़ी आयी। योही देरमें तो बात पूरे राजभवनमें फैल गयी। सभी माताएँ, सब भाई एकत्र हो गये। सब चरित, सब दुर्सी, किंतु किसीको कुछ संश्लिष्ट नहीं। प्रभुका मुख खुला है, वे किसीके प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दे रहे हैं।

अन्तमें महर्षि वशिष्ठजीसे सूचना दी गयी। वे तो धन रात्रिमें राजभवन पधारे। प्रभुने उनके चरणोंमें मस्तक रखकर, किंतु मुख खुला रहा, कुछ थोके नहीं। सर्वज महर्षिने इधर उधर देखकर कहा—‘हनुमान् कहाँ हैं? उन्हें बुलाओ तो।’

सत्कारसे शन्ति भी मित्र हो जाते हैं

पाण्डवोंका वनवास-काल समाप्त हो गया। दुर्योधनने युद्धके बिना उन्हें पाँच गाँव भी देना स्वीकार नहीं किया। युद्ध अनिवार्य समझकर दोनों पक्षसे अपने-अपने पक्षके नरेण्ठोंके पास दूत भेजे गये युद्धमें सहायता रखनेके लिये। मद्राज शत्यकी भी दूतोंके द्वारा युद्धका समाचार मिला। वे अपने महारथी पुत्रोंके साथ एक अक्षीहिणी सेना लेकर पाण्डवोंके पास चले।

शत्यकी बहिन माद्रीका विवाह पाण्डुसे हुआ था। नमुल और सहदेव उनके सो भानजे थे। पाण्डवोंको पूरा विश्वास था कि शत्य उनके पक्षमें युद्धमें उपस्थित रहेंगे। महारथी शत्यकी विश्राल सेना दो-दो कोसपर पड़ाव ढालती धरि-धीरे चल रही थी।

दुर्योधनको शत्यके आनेका समाचार पहले ही मिल गया था। उसने मार्गमें जहाँ-जहाँ सेनाके पड़ावके उपयुक्त स्थान थे, जल तथा पशुओंके लिये तृणकी सुविधा थी, वहाँ-वहाँ निपुण कारीगर भेजकर सभा-भवन एवं निवास-स्थान बनवा दिये। सेवामें चतुर सेवक वहाँ नियुक्त कर दिये। भोजनादिकी सामग्री रखवा दी। ऐसी व्यवस्था कर दी कि शत्यको सब कहाँ पूरी सुख-सुविधा प्राप्त हो। वहाँ कुएँ और बावलियाँ बनवा दीं।

सेवक दौड़े हनुमानजीको छूँढ़ने। हनुमानजी जैसे ही प्रसुते सम्मुख आये, प्रभुने मुख बद कर लिया। अब वशिष्ठजीने हनुमानजीसे पूछा—‘तुम कर बया रहे थे?’

हनुमानजी बोले—‘मेरा कार्य है—प्रभुको जग्हाई आये तो चुटकी बजाना। प्रभुको जग्हाई कब आयेगी, यह तो कुछ पता है नहीं। सेवामें कुठि न हो, इसलिये मैं वरावर चुटकी बजा रहा था।’

अब मर्यादापुरुषोत्तम बोले—‘हनुमान् चुटकी बजाते रहें तो रामने जग्हाई आती ही रहनी चाहिये।’

रहस्य प्रकट हो गया। महर्षि विदा हो गये। भरतजीने, अन्य भाइयोंने और श्रीजानकीजीने भी कहा—‘पवनकुमार! तुम यह चुटकी बजाना छोड़ो। पहले जैसे सेवा करते थे, वैसे ही सेवा करते रहो।’ यह मैया सीताजी और भरत-लक्ष्मणजी आदिका विनोद था। वे श्रीहनुमानजीको सेवासे वञ्चित योही ही करना चाहते थे।—सु० सिं०

मद्राज शत्यको मार्गमें सभी पड़ावोंपर दुर्योधनके सेवक स्वागतके लिये प्रसुत मिले। उन सिखलाये हुए सेवकोंने वहाँ सावधानीसे मद्राजका भरपूर सत्कार किया। शत्य यही समझते थे कि यह सब व्यवस्था युधिष्ठिरने की है। इस प्रकार विश्राम करते हुए वे आगे बढ़ रहे थे। ल्पाभग हस्तिनापुरके पास पहुँचनेपर उन्हें जो विश्राम-स्थान मिला, वह बहुत ही सुन्दर था। उसमें नाना प्रकारकी सुखोपभोग-की सामग्रियाँ भरी थीं। उस स्थानको देखकर शत्यने वहाँ उपस्थित कर्मचारियोंसे पूछा—‘युधिष्ठिरके किन कर्मचारियोंने मेरे मार्गमें टहरनेकी व्यवस्था की है? उन्हें ले आओ। मैं उन्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ।’

दुर्योधन स्वयं छिपा हुआ वहाँ शत्यके स्वागतकी व्यवस्था कर रहा था। शत्यकी बात सुनकर और उन्हें प्रसन्न देखकर वह सामने आ गया और हाथ जोड़कर प्रणाम करके बोला—‘मामाजी! आपको मार्गमें कोई कष्ट तो नहीं हुआ?’

शत्य चौके। उन्होंने पूछा—‘सुयोधन! तुमने यह व्यवस्था करायी है?’

दुर्योधन नम्रतापूर्वक बोला—‘गुरुजनोंकी सेवा करना तो छोटोंका कर्तव्य ही है। मुझे सेवाका कुछ अवसर मिल गया—यह मेरा सौभाग्य है।’

श्ल्य प्रसन्न हो गये । उन्होंने कहा—‘अच्छा, तुम मुझसे कोई वरदान माँग लो ।’

दुर्योधनने माँगा—‘आप सेनाके साथ युद्धमें मेरा भाय दें और मेरी सेनाका संचालन करें ।’

श्ल्यको स्वीकार करना पड़ा यह प्रस्ताव । यद्यपि उन्होंने युधिष्ठिरसे भेट की, नकुल-सहदेवपर आवात न

करनेकी अपनी प्रतिज्ञा दुर्योधनको बता दी और युद्धमें कर्ण-को हतोत्साह करते रहनेका वचन भी युधिष्ठिरको दे दिया; किंतु युद्धमें उन्होंने दुर्योधनका पक्ष लिया । यदि श्ल्य पाण्डवपक्ष-में जाते तो दोनों दलोंकी सैन्य-संख्या यथाप्रर रहती; किंतु उनके कौरवपक्षमें जानेसे कौरवोंके पास दो अक्षौहिणी सेना अधिक हो गयी । —सु० सिं० (महाभारत, उच्चोग० ८)

अतिथि-सत्कारका प्रभाव

कुरुक्षेत्रमें मुद्गल नामके एक श्रृंघि थे । वे धर्मात्मा, जितेन्द्रिय और सत्यनिष्ठ थे । ईर्ष्या और क्रोधका उनमें नाम भी नहीं था । जब किसान खेतसे अन्न काट लेते और गिरा हुआ अन्न भी चुन लेते, तब उन खेतोंमें जो दाने वच रहते उन्हें मुद्गलजी एकत्र कर लेते । कवूतरके समान वे थोड़ा ही अन्न एकत्र करते थे और उसीसे अपने परिवारका भरण-पोषण करते थे । आये हुए अतिथिका उसी अन्नसे वे सत्कार भी करते थे । पूर्णमासी तथा अमावस्याके शाद तथा इष्टीकृत हवन भी वे सम्पन्न करते थे । महात्मा मुद्गल एक पक्षमें एक द्वोषभर अन्न एकत्र कर लाते थे । उत्तनेसे ही देवता, पितर और अतिथि आदिकी पूजा-सेवा करनेके बाद जो कुछ वचता था, उससे अपना तथा परिवारका काम चलते थे ।

महर्षि मुद्गलके दानकी महिमा सुनकर महामुनि दुर्वासा-जीने उनकी परीक्षा करनेका निश्चय किया । वे सिर मुँडाये, नंग-धड़ा, पागलों-जैसा वेश बनाये कठोर वचन कहते मुद्गलजीके आश्रममें पहुँचकर भोजन माँगने लगे । महर्षि मुद्गलने बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ दुर्वासाजीका स्वागत किया । अर्व्य, पाद्य आदि देकर उनकी पूजा की और फिर उन्हें भोजन कराया । दुर्वासाजीने मुद्गलके पास जितना अन्न था, वह सब खा लिया तथा वचा हुआ जूँड़ा अन्न अपने जरीरमें पोत लिया । फिर वे वहाँसे चले गये ।

महर्षि मुद्गलके पास अन्न रहा नहीं । पूरे एक पक्षमें उन्होंने फिर द्वोषभर अन्न एकत्र किया । देवता तथा पितरोंका भाग देकर वे जैसे ही निवृत्त हुए, महामुनि दुर्वासा पहलेके समान फिर आ धमके और फिर सब अन्न खाकर

चल दिये । मुद्गल फिर परिवारसहित भूखे रह गये ।

एक-दो बार नहीं, पूरे छः पक्षतक इसी प्रकार दुर्वासाजी आते रहे । प्रत्येक बार उन्होंने मुद्गलका सारा अन्न खा लिया । मुद्गल भी उन्हें भोजन कराकर फिर अन्नके दाने चुननेमें लग जाते थे । उनके मनमें क्रोध, खीझ, घवराहट आदिका स्पर्श भी नहीं हुआ । दुर्वासाके प्रति भी उनका पहलेके ही समान आदर-भाव बना रहा ।

महामुनि दुर्वासा अन्तमें प्रसन्न होकर बोले—‘महर्षे । संसारमें तुम्हारे समान ईर्ष्या-रहित अतिथिसेवी कोई नहीं है । क्षुधा इतनी बुरी होती है कि वह मनुष्यके धर्म-शान तथा धैर्यको नष्ट कर देती है; किंतु तुमपर वह अपना प्रभाव नहीं दिखा सकी । इन्द्रियनिग्रह, धैर्य, दान, सत्य, शम, दम तथा दया आदि धर्म तुममें पूर्ण प्रतिष्ठित है । विप्रश्रेष्ठ ! तुम अपने इसी शरीरसे स्वर्ग जाओ ।’

महामुनि दुर्वासाके इतना कहते ही देवदूत स्वर्गसे विमान लेकर वहाँ आये और उन्होंने मुद्गलजीसे उसमे बैठनेकी प्रार्थना की । महर्षि मुद्गलने देवदूतोंसे स्वर्गके गुण तथा दोष पूछे और उनकी बातें सुनकर बोले—‘जहाँ परस्पर स्पर्धा है, जहाँ पूर्ण तृप्ति नहीं और जहाँ असुरोंके आक्रमण तथा पुण्य क्षीण होनेसे पतनका भय सदा लगा ही रहता है, उस स्वर्गमें मैं नहीं जाना चाहता ।’

देवदूतोंको विमान लेकर लौट जाना पड़ा । महर्षि मुद्गलने कुछ ही दिनोंमें अपने त्यागमय जीवन तथा भगवद्-भजनके प्रभावसे भगवद्वाम प्राप्त किया । —सु० सिं०

(महाभारत, वन० २६०-२६१)

विचित्र आतिथ्य

महर्षि दुर्वासा अपने क्रोधके लिये तीनों लोकमें विघ्यात हैं। एक बार वे चौर धारण किये, जड़ा चढ़ाये, विल्वदण्ड लिये तीनों लोकोंमें धूम धूमकर सभाओंमें, चौराहोंपर चिल्डाते फिरते थे—‘मैं दुर्वासा हूँ, दुर्वासा। मैं निवासके लिये स्थान खोजता हुआ चारों ओर धूम रहा हूँ। जो कोई मुझे अपने घरमें टहराना चाहता हो, वह अपनी इच्छा व्यक्त करे। पर रक्तीभर अपराध करनेपर भी मुझे क्रोध आ जायगा। इसलिये जो मुझे आश्रय देना चाहे, उसे सर्वदा इस बातका ध्यान रखना होगा और वहां सावधान रहना पड़ेगा।’

महर्षि चिल्लाते चिल्लाते देवलोक, नागलोक, मनुष्यलोक—सर्वत्र धूम आये; पर किसीको भी उनके प्रस्तावस्तप विपत्तिको स्वीकार फरनेका माहसुन हुआ। धूमते-भासते वे द्वारका पहुँचे। भगवान् श्रीकृष्णके कानोंमें उनकी विज्ञापि पहुँची। उन्होंने उनको बुलाकर अपने घरमें टहरा लिया, किंतु उन भद्रात्माका गहनेका ढग वहां निराला था। किसी दिन तो वे हजारों मनुष्योंकी भोजन-सामग्री अकेले रा जाते और किसी दिन वहूँ योङा जाते। किसी दिन घरसे बाहर निकल जाते और फिर उस दिन लैटते ही नहीं। कभी तो वे टहराका मारकर अनायास ही हँसने लगते और कभी अकारण ही जोरोंसे रोने लगते थे। एक दिन वे अपनी कोठरीमें बुस गये और अस्त्रा, विठ्ठौना आदिको आगमें जलाकर भागते हुए श्रीकृष्णके पास आये और बोले—‘वासुदेव ! मैं इन सभय सीर खाना चाहता हूँ; मुझे तुरत खीर खिलाओ।’ भगवान् वासुदेव भी सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् थे। उन्होंने उनका अभिप्राय पहलेसे ही ताड़ लिया था। इसलिये उनकी अभीष्ट साद्य सामग्रियों पहलेसे ही तैयार कर रखी थीं। वस, उन्होंने भी तुरत गरमागरम सीर लाकर उनके सामने रख दी। सीर खाकर उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—‘वासुदेव ! तुम यह बच्ची हुँड जूँटी खीर अपने शरीरभरमें चुपड़ लो। श्रीकृष्णने भी झट वैसा ही कर लिया। मस्तकमें और सब अङ्गोंमें सीर लगा ली। श्रीकृष्णनीजी वहीं खड़ी-खड़ी मुसकरा रही थीं। दुर्वासाने यह देख लिया। झट वहीं खीर उनके भी सारे अङ्गोंमें पोत दी और एक रथमें उनको जोतकर उसपर सवार हो गये। फिर तो जिस तरह सारथि घोड़ोंको चाबुक मारता है उसी तरह महर्षि कोडे फटकारते हुए रथ चलाने लगे।

श्रीकृष्ण यह सब चुपचाप देख रहे थे। यादवोंको यह देखकर वहां छले गए हुआ। परम दुर्धर्ष महर्षि रथपर चढ़े राजमार्गसे निकले। रुक्मिणीजी बार-बार गिर जाती थीं। पर महर्षि इससी रक्तीभर भी परवा नहीं करते। अन्तमें जब रथ खींचनेमें सर्वथा असमर्थ होकर वे गिर पड़ीं, तब महर्षि विगड़कर रथसे उतर पड़े और उनको बेटों रास्तेसे दक्षिणकी ओर ले चले। भगवान् श्रीकृष्ण भी सारे शरीरमें खीर पोते उनके साथ दौड़ते चले जा रहे थे। उन्होंने महर्षि दुर्वासासे कहा—‘भगवन्। मुक्षपर प्रसन्न हो जाएगे।’

तब दुर्वासा प्रसन्न होकर श्रीकृष्णकी ओर देखने लो और बोले—‘वासुदेव ! तुमने क्रोधको जीत लिया है। तुम्हारा कोई अपराध मुझे नहीं देख पड़ा। अब मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ और तुमको वर देता हूँ कि तुम सारे ससारमें सबके प्रिय होओगे। तुम्हारी पवित्र कीर्ति सब लोकोंमें फैलेगी। तुम्हारी जितनी वस्तुएँ मैंने जलायी था नष्ट कर दी हैं, वे सब तुम्हें बैसी ही या उससे भी श्रेष्ठ अवस्थामें मिलेंगी। इस जूँटी खीरको सारे शरीरमें लगा लेनेसे अब तुमको मृत्युका भय नहीं रहेगा। तुम जबतक जीवित रहना चाहोगे, जी सकोगे। पर भाई ! तुमने अपने तलबोंमें खीर क्यों नहीं लगायी ? यह तुम्हारा काम मुझे प्रसन्न नहीं आया। बस, केवल ये तुम्हारे तलबे ही निर्भय न बन सके।’

दुर्वासाका इतना कहना था कि श्रीकृष्णने अपने शरीर की ओर देखा तो वह विल्कुल सच्छ और निर्मल था। अब महर्षि रुक्मिणीजीकी ओर देखकर कहने लगे—‘कल्याणी ! तुम्हारे शरीरमें बुढापा, रोग या अकान्तिका स्पर्श नहीं होगा। तुम्हारे शरीरसे सर्वदा सुगन्ध निकलेगी और तुम सभी खियोंमें श्रेष्ठ, यश और कीर्ति प्राप्त करोगी। अन्तमें तुम्हें श्रीकृष्णका सालोक्य प्राप्त होगा।’

इतना कहकर महर्षि अन्तर्वान हो गये। रुक्मिणीको साथ लेकर श्रीकृष्णचन्द्र चुपचाप घर आये। घर आकर उन्होंने देखा कि महर्षिने जिन-जिन वस्तुओंको जलाकर नष्ट कर डाला था, वे सब पहलेकी तरह अपनी-अपनी जगहपर रखली थीं। महर्षिका अद्भुत कार्य देखकर सभी आश्र्योंमें पढ़ गये।

—जा० श०

(महाभारत, चनुशासनपद, १५९ वाँ अस्थाव)

सम्मान तथा मधुर भाषणसे राक्षस भी वशीभूत

एक बार एक बुद्धिमान् ब्राह्मण एक निर्जन वनमें धूम रहा था। उसी समय एक राक्षसने उसे खानेकी इच्छासे पकड़ लिया। ब्राह्मण बुद्धिमान् तो था ही, विद्वान् भी था; इसलिये वह न घबराया और न दुखी ही हुआ। उसने उसके प्रति सामका प्रयोग आरम्भ किया। उसने उसकी प्रगत्सा बड़े प्रभावशाली शब्दोंमें आरम्भ की—‘राक्षस ! तुम दुर्वले क्यों हो ? मालूम होता है, तुम गुणवान्, विद्वान् और विनीत होनेपर भी सम्मान नहीं पा रहे हो और मूढ़ तथा अयोग्य

व्यक्तियोंको सम्मानित होते हुए देखते हो; इसीलिये तुम दुर्वल तथा कुद्रू-से रहते हो। यद्यपि तुम बड़े बुद्धिमान् हो तथापि अजानी लोग तुम्हारी हँसी उड़ाते होंगे—इसीलिये तुम उदास तथा दुर्वल हो !’

इस प्रकार सम्मान किये जानेपर राक्षसने उसे मित्र बना लिया और बड़ा धन देकर विदा किया। —जा० श०

(महा० शान्तिपर्व, आपद्धर्म)

चाटुकारिता अनर्थकारिणी है

बड़ी मीठी लगती है चाटुकारिता और एक बार जब चाटुकारोंकी मिथ्या प्रगत्सा सुननेका अभ्यास हो जाता है, तब उनके जालसे निकलना कठिन होता है। चाटुकार लोग अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये बड़े-बड़ोंको मूर्ख बनाये रहते हैं और आश्र्वय यही है कि अच्छे लोग भी उनकी झूटी प्रशासाको सत्य मानते रहते हैं।

चरणादि (चुनार) उन दिनों करुषदेशके नामसे विख्यात था। वहाँका राजा था पौण्ड्रक। उसके चाटुकार सभासद् कहते थे—‘आप तो अवतार हैं। आप ही वासुदेव हैं। भूमर दूर करनेके लिये आप साक्षात् नारायणने अवतार धारण किया है। आपकी सेवा करके हम धन्य हो गये। जो आपका दर्शन कर पाते हैं, वे भी धन्य हैं।’

पौण्ड्रक इन चाटुकारोंकी मिथ्या प्रशासामें ऐसा भूला कि उसने अपनेको वासुदेव कहना प्रारम्भ किया। वह दो कृत्रिम हाथ लगाकर चतुर्भुज बना रहने लगा और शङ्ख, चक्र, गदा तथा कमल उन हाथोंमें लिये ही रहनेका उसने अभ्यास कर लिया। अपने रथकी पताकापर उसने गरुड़का चिह्न बनवाया। बात यहींतक रहती, तब भी कोई हानि नहीं थी; किंतु उसने तो गर्वमें आकर दूत भेजा द्वारका। श्रीकृष्णचन्द्रके पास यह सदेश भेजा उसने—‘कृष्ण ! मैं ही वासुदेव हूँ। भूमर दूर करनेके लिये मैंने ही अवतार धारण किया है। यह बहुत अनुचित बात है कि तुम भी अपनेको वासुदेव कहते हो और मेरे चिह्न धारण करते हो। तुम्हारी यह धृष्टता सहन करने योग्य नहीं है। तुम वासुदेव कहलाना बद करो और मेरे

चिह्न छोड़कर मेरी शरण आ जाओ। यदि तुम्हें यह स्वीकार न हो तो मुझसे युद्ध करो।’

द्वारकाकी राजसभामें दूतने यह सदेश सुनाया तो यादवगण देरतक हँसते रहे पौण्ड्रककी मूर्खतापर। श्रीकृष्णचन्द्रने दूतसे कहा—‘जाकर कह दो पौण्ड्रकसे कि युद्ध-भूमिमें मैं उसपर अपने चिह्न छोड़ूँगा।’

पौण्ड्रकको गर्व या अपनी एक अक्षौहिणी सेनाका। अकेले श्रीकृष्णचन्द्र रथमें बैठकर करुष पहुँचे तो वह पूरी सेना लेकर उनसे युद्ध करने आया। उसके साथ उसके मित्र काशीनरेश भी अपनी एक अक्षौहिणी सेनाके साथ आये थे। पौण्ड्रकने दो कृत्रिम भुजाएँ तो बना ही रक्खी थीं, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मके साथ नकली कौस्तुभ भी धारण किया था उसने। नटके समान बनाया उसका कृत्रिम वेश देखकर श्रीकृष्णचन्द्र हँस पड़े।

पौण्ड्रक और कागिराजकी दो अक्षौहिणी सेना तो शाङ्खे छूटे वाणों, सुदर्शन चक्रकी ज्वाला और कौमोदकी गदाके प्रहरमें दो घटे भी दिखायी नहीं पड़ी। वह जब समाप्त हो गयी, तब द्वारकाधीशने पौण्ड्रकसे कहा—‘तुमने जिन अस्त्रोंके त्यागनेकी बात दूतसे कहलायी थी, उन्हें छोड़ रहा हूँ। अब सम्भलो।’

गदाके एक ही प्रहरने पौण्ड्रकके रथको चकनाचूर कर दिया। वह रथसे कूदकर पृथ्वीपर खड़ा हुआ ही था कि चक्रने उसका मस्तक उड़ा दिया। उस चाटुकारिताप्रिय मूर्ख एव पाखण्डीका साथ देनेके कारण काशिराज भी युद्धमें मारे गये।—सु० सिं० (श्रीमद्भागवत १०।६६)

मैत्री-निर्वाह

कर्णकी महत्ता

(१)

पाण्डव वारह वर्षका दनवास तथा एक वर्षना अज्ञात-
वास पूर्ण कर चुके थे । वे उपग्रह नगरमें अब अपने पक्षके
वीरोंको एकत्र कर रहे थे । भाइयोंमें युद्ध न हो, महा-
सहर इन जाय, इनके लिये श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवोंके दूत दनकर
हस्तिनापुर दुर्योधनको समझाने गये, जिन्होंने दुर्योधनने
स्थान कह दिया—“युद्धके दिना सूर्योदी नौक-जितनी भूमि भी
मैं पाण्डवोंको नहीं दूँगा ।”

बालुदेवका संघ प्रयात्र अनुकूल हो गया । वे लौटने
लगे । उनको पहुँचानेके लिये भीम, विदुर आदि जो
लोग नगरसे बाहरतक आने, उन्हें उन्होंने लैटा दिया,
किन्तु कर्णको बुलाकर अपने रथपर बैठा लिया । कर्णका
खाली रथ सारथि पीछे-पीछे ले आ रहा था ।

अपने रथपर बैठान्त, आदरपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्र कर्णसे
बोले—“क्षमुण्ये । तुम वीर हो, निचारदील हो, धर्मात्मा
हो । देखो, मैं तुम्हें आज एक युत वात बतलाता हूँ । तुम
अधिरथ सूतके पुत्र नहीं हो, तुम कुन्तीके पुत्र हो । दूसरे
पाण्डवोंके समान तुम भी पाण्डव हो, पाण्डु-पुत्र हो, क्योंकि
भगवान् सूर्यके द्वारा तुम पाण्डुरी पक्षी छुन्तीसे उनकी
कन्यावस्थामें उत्तम हुए थे ।”

कर्ण सिर मुकाने त्रुप-चाप मुनते रहे । बालुदेवने उनके
कंधेपर हाथ रखा—“तुम युधिष्ठिरके बड़े भाइ हो । दुर्योधन
अन्याय कर रहा है और तुम्हारे ही बलपर अकड़ रहा है ।
तुम उसका साथ ठोड़ दो और मेरे साथ चलो । कल ही
तुम्हारा राज्याभियेन हो । युधिष्ठिर तुम्हारे युवराज बनेंगे ।
पाण्डव तुम्हारे पीछे चलेंगे । मैं तुम्हें अभिवादन करूँगा ।
तुम्हारे सहित जब पाण्डव छः भाइ साथ लड़ होंगे, तब
त्रिभुवनमें उनके सम्मुख खड़े होनेका साहस किसमें है ?”

अब कर्ण तनिक मुस्कराये । वे बोले—“बालुदेव ! मैं
जानता हूँ कि देवी कुन्ती मेरी माता हैं । मैं सूर्य-पुत्र हूँ
और धर्मतः पाण्डव हूँ । किंतु दुर्योधनने सदसे मेरा
विश्वास किया है । जब सब मुझे तिरस्कृत कर रहे थे, दुर्योधन-
ने मुझे अपनाया, मुझे सम्मानित किया । मुझपर दुर्योधनके

बहुत अधिक उपकार हैं । मेरे ही भरोसे दुर्योधनने युद्धका
आयोजन किया है । मैं ऐसे समय किन्ती प्रकार उनके साथ
विश्वास्यात नहीं करूँगा । आप मुझे आज्ञा दें उनके पक्षमें
युद्ध करनेकी । होगा वही जो आप चाहते हैं; किंतु क्षत्रिय
वीर खाटपर पढ़े-पढ़े न मरें, युद्धमें वीर-गति प्राप्त करें—
यही मेरी इच्छा है ।”

“कर्ण ! तुम मेरा इतना भव्य प्रस्ताव भी नहीं मानते
तो तुम्हारी इच्छा । युद्ध तो होगा ही ।” श्रीकृष्णचन्द्रने रथ
सक्ता दिया ।

उस रथसे उत्तरनेके पूर्व कर्ण बोले—“बालुदेव ! मेरी
एक प्रार्थना आप अवश्य स्वीकार करें । मैं कुन्ती-पुत्र हूँ,
यह बात आप गुत ही रखें, क्योंकि युधिष्ठिर धर्मात्मा है ।
उन्हें पता लग जायगा कि मैं उनका वहा भाइ हूँ तो वे
राज्य मुझे दे देंगे और मैं दुर्योधनको दे दूँगा । मैं दुर्योधनका
दूत हूँ, अतः युद्ध उन्होंके पक्षसे करूँगा, किंतु चाहता मैं
यही हूँ कि न्यायकी विजय हो । धर्मात्मा पाण्डव अपना
राज्य प्राप्त करें । जहाँ आप हैं, विजय तो वहाँ होनी ही
है, पिर भी आप मेरा यह अनुरोध स्वीकार करें ।”

महात्मा कर्णका अनुरोध स्वीकृत हो गया । वे श्रीकृष्ण-
चन्द्रके रथसे उत्तरकर अपने रथपर जा बैठे और हस्तिनापुर
लौट पड़े । (महाभारत, उपोग ० १४०-१४१)

× × × ×

(२)

तत्त्व करनेके प्रयत्नमें असफल होकर श्रीकृष्णचन्द्र
लौट गये । अब युद्ध निश्चित हो गया । युद्धकी तिथितक
निश्चित हो गयी । इधर देवी कुन्ती अत्यन्त व्याकुल हो
रही थी । कर्ण उनका ही पुत्र और वही अपने और भाइयोंसे
सम्भास करनेको उद्यत ! दुर्योधन कर्णके ही बलपर तो कूद
रहा है । अन्तमें कुन्ती देवीने कर्णको समझानेका निश्चय
किया । वे अकेली ही घरसे निकलीं ।

स्वाम बनकर कर्ण गङ्गामें खड़े सूर्यदेवकी ओर मुख
किये सम्भा कर रहे थे । कुन्ती देवीको कुछ देर प्रतीक्षा
करनी पड़ी । सम्भा समाप्त करके कर्णने मुख बुमाया ।

कुन्तीको देखते ही दोनों हाथ जोड़कर बोले—‘देवि ! अधिरथका पुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता है ।’

कुन्तीके नेत्र भर आये । वडे सकोचसे बोले—‘बेटा ! मेरे सामने तो तू अपनेको सूतपुत्र मत कह । मैं यही कहने आयी हूँ कि तू इन लोकप्रकाशक भगवान् सूर्यका पुत्र है और इस अमागिनीके गर्भसे उत्पन्न हुआ है । मैं तेरी माता हूँ । तू अपने भाइयोंसे ही युद्धका हठ छोड़ दे, बेटा ! मैं तुझसे यही मौगने आयी हूँ आज ।’

कणि फिर दोनों हाथ जोड़े—‘माता ! आपकी बात सत्य है । मुझे पता है कि मैं आपका पुत्र हूँ; किंतु मैं दुर्योधनके उपकारोंसे दबा हूँ । दुर्योधन उस समय मेरा मित्र बना, जब मुझे पूछनेवाला कोई नहीं था । आपत्तिके समय मैं मित्रका साथ नहीं छोड़ सकता । युद्ध तो मैं दुर्योधनके ही पक्षमें करूँगा ।’

कुन्तीदेवीने भरे कण्ठसे कहा—‘मैं होकर आज सकोच छोड़कर मैं तेरे पास आयी और तू मुझे निराश करके लौटा रहा है ।’

कर्ण बोले—‘माता ! आप मुझे क्षमा करें । मैं कर्तव्यसे विवर्ग हूँ । परंतु मैं आपको वचन देता हूँ कि अर्जुनको छोड़कर दूसरे किसी पाण्डवपर मैं धातक प्रहार नहीं करूँगा । दूसरे भाई युद्धमें मेरे सामने पड़ें भी तो मैं उन्हें छोड़ दूँगा । आपके पौत्र पुत्र बने रहेंगे । अर्जुन मारे गये तो आपका पौत्रवृत्त मैं और मैं मारा गया तो अर्जुन हैं ही ।’

‘तुम अपना यह वचन स्मरण रखना !’ देवी कुन्ती आशीर्वाद देकर लौट गयीं ।

(महाभारत, उद्घोग १४४-१४६)

(३)

पितामह भीष्म सदा कर्णका तिरस्कार किया करते थे । युद्धके आरम्भमें महारथी, अतिरथी वीरोंकी गणना करते समय सबके सामने ही उन्होंने कर्णको अर्धरथी कहा था । चिढ़कर कणि प्रतिशा कर ली थी कि जबतक पितामह युद्धमें कौरवपक्षके सेनापति हैं, वह गङ्गा नहीं उठायेगा । दस दिनोंके युद्धमें कर्ण तटस्थ दर्शक ही रहे । दसवें दिन पितामह अर्जुनके दाणोंसे विद्ध होकर रथसे गिर पड़े । उनके

शरीरमें लगे बाण ही उनकी शश्या बन गये थे । पितामहके गिरनेपर युद्ध बद हो गया । सब स्वजन उनके समीप आये । यह भीड़ जब समाप्त हो गयी, जब शरशश्यापर पड़े भीष्म अकेले रह गये, तब एकान्त देखकर कर्ण वहाँ आये । उन्होंने कहा—‘पितामह ! सदा आपसे धृष्टा करनेवाल सूतपुत्र कर्ण आपके चरणोंमें प्रणाम करता है ।’

भीष्मपितामहने स्नेहपूर्वक कर्णको पास बुलाया और स्नेहपूर्ण गद्दद वाणीसे बोले—‘बेटा कर्ण ! मैं जानता थ कि तुम महान् शूर हो । तुम अद्भुत वीर एवं श्रेष्ठ महारथ हो । तुम ज्ञानी हो । परंतु तुम्हें हतोत्साह करनेके लिये म सदा तुम्हारा तिरस्कार करता था । इसी उद्देश्यसे मैंने तुम अर्धरथी कहा था; क्योंकि दुर्योधन तुम्हारे ही बल्य युद्धको उद्यत हुआ । यदि तुम युद्धमें उत्साह न दिखलाओ तो दुर्योधन युद्धका हठ छोड़ देता । यह महासहार किस प्रकार रुक जाय, यही मैं चाहता था । परंतु हुआ वह जो होनेवाला था । तुम्हारे प्रति मेरे मनमें कभी दुर्भाव न रहा है । मेरी बातोंको तुम मनमें मत रखना ।’

कर्ण मस्तक छुकाये सुनते रहे । पितामहने कहा—‘बेटा मेरी बलि लग चुकी है । तुम चाहो तो यह संहार अब भी स्व सकता है । मैं तुम्हें एक भेदकी बात बतलाता हूँ । तुम अधिरथके पुत्र नहीं हो । तुम सूर्यकुमार हो और कुन्तीके पुत्र हो । तुम पाण्डवोंमें सबसे बड़े हो । दुरात्मा दुर्योधनका साथ छोड़ कर तुम्हें अपने धर्मात्मा भाइयोंका पालन करना चाहिये ।’

कर्ण अब बोले—‘पितामह ! आप जो कह रहे हैं, उरे मैं पहलेसे जानता हूँ । किंतु दुर्योधन मेरा मित्र है । उसने सदा मुझसे सम्मानका व्यवहार किया है । अपनेपर उपकार करनेवाले मित्रके साथ मैं विश्वासवात कैसे कर सकता हूँ । उसका मुक्षपर ही भरोसा है, ऐसी दशामें मैं इस सकटकालमें उसका साथ कैसे छोड़ सकता हूँ । आप तो मुझे युद्ध करनेकी आशा दें । कौरवपक्षमें युद्ध करते हुए मैं वीरोंकी भौति देहत्याग करूँ, यही मेरी कामना है ।’

पितामहने आशीर्वाद दिया—‘वत्स ! तुम्हारी कामना पूर्ण हो । तुम उत्साहपूर्वक दुर्योधनके पक्षमें युद्ध करो । अपने कर्तव्यका पालन करो ।’—सु० सि०

(महाभारत, भीष्म १२२)

अलौकिक भ्रातृ-प्रेम

‘मैं प्रभु कृष्ण गीति जियँ जोही। हारेहूँ खेल जितावर्हिं मोही॥’ (श्रीरामनवरितमानम्, अयोध्याकाण्ड)

सरयूके स्वच्छ पुलिनपर चक्रवर्तीजीके चारों कुमार खेलने आये थे सखाओंके साथ। समस्त बालकोंका विभाजन हो गया दो दलोंमें। एक दलके अग्रणी हुए श्रीराम और दूसरे दलके भरतलाल। श्रीरामके साथ लक्ष्मण और भरतके साथ शशुभ्र कुमार तो सदासे रहे—रहते आये, सुतरां आज भी थे। दोनों यूथ सुसज्जित खडे हो गये। दोनों दलोंके मध्यमें विस्तृत समतल भूमि स्थिर हो गयी। मध्यमें रेखा बना दी गयी। खेल चलने लगा। आज राजकुमार कवड़ी खेल रहे थे।

लखनलाल आज उमंगमें थे। वे बार-बार भरतजीको ललकारते थे—‘भैया! आज तो रघुनाथजी विजयी होंगे।’

यह ललकार भरतको उल्लसित करती थी। उनके दलके बालक आज हार रहे थे। एक-एक करके उनका दल कम हो रहा था। प्रत्येक बार जब लक्ष्मण आते थे, एक-दो बालकोंको छूकर ही लौटते थे। अन्तमें शशुभ्र भी हार गये। अपने दलमें बच रहे अकेले भरत।

‘अब सब लोग चुपचाप खड़े रहेंगे। भरतलाल मुझे छू लें तो विजय उनकी, न छू पायें तो विजय मेरे दलकी।’ श्रीराघवेन्द्रने खेलमें एक अद्भुत निर्णय दे दिया।

‘आप पूरे वेगसे भागें तो सही।’ लक्ष्मणजीने बड़े भाईको प्रोत्साहित किया।

भरत आये दौड़ते और श्रीराम भागे; किंतु ऐसे भागे जैसे उन्हें दौड़ना आता ही न हो। दस पग जाते-जाते तो भरत-के हाथने उनकी पीठका स्पर्श कर लिया।

‘भाई भरत विजयी हुए।’ श्रीराम-का कमलमुख प्रफुल्लित हो उठा। दोनों हाथोंसे तालियाँ बजायीं उन्होने। लंकिन भरतका मुख नीचे झुक गया था। उन-के नेत्रोंमें उल्लासके स्थानपर लज्जाका भाव था। अपने अग्रजके भ्रातृस्नेहका साक्षात् करके उनके बड़े-बड़े नेत्र भर आये थे।

‘विजयी हुए भाई भरत।’ श्रीराम तो उल्लासमें ताली बजाते ही जा रहे थे।—छ० सिं०

अनोखा प्रभु-विश्वास और प्रभु-प्रीति

वृत्रासुरने देवराज हन्तके साथ महायुद्ध करते हुए उनसे कहा—‘देवराज ! भगवान् विष्णुने मुझे मारनेके लिये तुम्हे आजा दी है, इसलिये तुम मुझे बत्तेसे मार डालो । मैं अपने मनको भगवान्के चरणोंमें विलीन कर दूँगा । जो पुरुष भगवान्के हो गये हैं और उनके चरणोंके अनन्य प्रेमी हैं, उनको भगवान् स्वर्ग, पृथ्वी अथवा पातालकी सम्पत्ति नहीं देते; क्योंकि इनमें परम आनन्दकी प्राप्ति न होकर द्वेष, अभिमान, उद्देश, मानस पीड़ा, कलह, दुःख और परिश्रम ही हाथ लगाते हैं । मुक्षपर भगवान्की अत्यन्त कृपा है, इसीसे वे मुझे उपर्युक्त सम्पत्तियों नहीं दे रहे हैं । मेरे प्रभुकी कृपाका तो अनुभव उनके अकिञ्चन भक्तोंको ही होता है । दूसरे उसे नहीं जान पाते । वे प्रभु अपने भक्तके अर्थ, धर्म और कामसम्बन्धी प्रयासोंको असफल करके ही उनपर कृपा करते हैं । मैं इसी कृपाका अधिकारी हूँ ।’ यों कहते-कहते वृत्रासुरने भगवान्से प्रार्थना की—‘प्रभो ! मेरा मन निरन्तर आपके मङ्गलमय गुणोंका ही स्वरण करता रहे । मेरी वाणी

उन गुणोंका ही गान करे और शरीर आपकी सेवामें ही लगा रहे । सर्वसौभाग्यनिधे । मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मपद, भूमण्डलका साम्राज्य, पातालका एकच्छत्र राज्य, योगकी सिद्धियों—यहाँतक कि अपुनर्भव मोक्ष भी नहीं चाहता । जैसे, जिनके पॉख नहीं उगे हैं, ऐसे मॉपर निर्भर रहनेवाले पक्षियोंके बच्चे अपनी मॉकी बाट देखते रहते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी गैया-मैयाका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं, जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिये नित्य उल्कण्ठित रहती है, वैसे ही कमललोचन ! मेरा मन आपके लिये छटपटा रहा है । मुझे सुकृति न मिले, मेरे कर्म मुझे चाहे जहाँ ले जायें; परंतु नाथ ! मैं जहाँ-जहाँ जिस-जिस योनिमें जाऊँ, वहाँ आपके प्यारे भक्तोंसे ही मेरी प्रीति—मैत्री रहे । जो लोग आपकी मायासे देह-नेह और स्त्री-पुत्रादिमें आसक्त हैं, उनके साथ मेरा कभी किसी प्रकार का भी सम्बन्ध न हो ।’

धन्य प्रभु-विश्वास, प्रभु-प्रीति और परम निष्कामभाव ।

विश्वास हो तो भगवान् सदा समीप हैं

दुर्योधनके कपट-द्यूतमें सर्वस्व हारकर पाण्डव द्रौपदीके भाथ काम्यकवनमें निवास कर रहे थे । परतु दुर्योधनके चित्तको शान्ति नहीं थी । पाण्डवोंको कैसे सर्वथा नष्ट कर दिया जाय, वह सदा इसी चिन्तामें रहता था । सयोगवडा महर्षि दुर्वासा उसके यहाँ पधारे और कुछ काल टिके रहे । अपनी सेवासे दुर्योधनने उन्हें सतुष्ट कर लिया । जाते समय महर्षिने उससे वरदान माँगनेको कहा । कुटिल दुर्योधन न प्रतासे बोला—‘महर्षि ! पाण्डव हमारे बड़े भाई हैं । यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं चाहता हूँ कि जैसे आपने अपनी सेवाका अवसर देकर मुझे कुतार्थ किया है, वैसे ही मेरे उन बड़े भाईयोंको भी कम-से-कम एक दिन अपनी सेवाका अवसर दें । परतु मेरी इच्छा है कि आप उनके यहाँ अपने सम्मन शिरोंके साथ आतिथ्य-ग्रहण करें और तब पधारें जब महारानी द्रौपदी भोजन कर चुकी हो, जिससे मेरे भाईयोंको देरतक भृत्या न रहना पड़े ।’

बात यह थी कि पाण्डव जब वनमें गये, तब उनके

प्रेमसे विवश वहुत-से ब्राह्मण भी उनके साथ-साथ गये । किसी प्रकार वे लोग लौटे नहीं । इन्हे सब लोगोंके भोजन-की व्यवस्था वनमें होनी कठिन थी । इसलिये धर्मराज युधिष्ठिरने लपस्या तथा स्तुति करके सूर्यनारायणको प्रसन्न किया । सूर्यने युधिष्ठिरको एक वर्तन देकर कहा—‘इसमें वनके कन्द-गाक आदि लाकर भोजन बनानेसे वह भोजन अक्षय हो जायगा । उससे सहस्रों व्यक्तियोंको तबतक भोजन दिया जा सकेगा, जबतक द्रौपदी भोजन न कर लें । द्रौपदी-के भोजन कर लेनेपर उस दिन पात्रमें कुछ नहीं बचेगा ।’ दुर्योधन इस बातको जानता था । इसीसे उसने दुर्वासाजीसे द्रौपदीके भोजन कर चुकनेपर पाण्डवोंके यहाँ जानेकी प्रार्थना की । दुर्वासा मुनिने उसकी बात स्वीकार कर ली और वहाँसे चले गये । दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ यह समझकर कि पाण्डव इन्हे भोजन नहीं दे सकते और तब ये महाक्रोधी मुनि अवश्य ही शाप देकर उन्हें नष्ट कर देंगे । बुरी नीयत-का यह प्रत्यक्ष नमूना है ।

महर्षि दुर्वासा तो दुर्योधनको वचन ही दे चुके थे । वे अपने दस सहस्र शिष्योंकी भीड़ लिये एक दिन दोपहरके बाद काम्यकवनमें पाण्डवोंके यहाँ जा घमके । धर्मराज युधिष्ठिर तथा उनके भाइयोंने उठकर महर्षिको साप्तज्ञ प्रणिपात किया । उनसे आसनपर बैठनेकी प्रार्थना की ।

महर्षि बोले—‘राजन् । आपका मङ्गल है । हम सब भूखे हैं और अभी मध्याह्न-सन्ध्या भी हमने नहीं की है । आप हमारे भोजनकी व्यवस्था करें । हम पासके सरोवरमें स्नान करके, सध्या-वन्दनसे निवृत्त होकर शीघ्र आते हैं ।’

‘स्वभावत् धर्मराजने हाथ जोड़कर नम्रतासे कह दिया—‘देव ! सध्यादिसे निवृत्त होकर शीघ्र पथरें ।’ पर जब दुर्वासाजी शिष्योंके साथ चले गये, तब चिन्तासे युधिष्ठिर तथा उनके भाइयोंका मुख सख्त गया । उन्होंने द्वौपदीजीको बुलाकर पूछा तो पता लगा कि वे भोजन कर चुकी हैं । महाकोशी दुर्वासाजी भोजन न मिलनेपर अवश्य शाप देकर भस्म कर देंगे—यह निश्चित था और उन्हें भोजन दिया जा सके, इसका कोई भी उपाय नहीं था । अपने पतियोंको चिन्तित देख द्वौपदीजीने कहा—‘आपलोग चिन्ता कर्ते करते हैं ? श्यामसुन्दर सारी व्यवस्था कर देंगे ।’

धर्मराज बोले—‘श्रीकृष्णचन्द्र यहाँ होते तो चिन्ताकी कोई वात नहीं थी, किंतु अभी ही तो वे हमलोगोंसे मिलकर अपने परिकरोंके साथ द्वारका गये हैं । उनका रथ तो अभी द्वारका पहुँचा भी नहीं होगा ।’

द्वौपदीजीने दृढ़ विद्वाससे कहा—‘वे कहाँ आते-जाते हैं ? ऐसा कौन-सा स्थान है, जहाँ वे नहीं हैं । वे तो यहाँ हैं और अभी-अभी आ जायेंगे ।

द्वौपदीजी श्टपट कुटियामें चली गयीं और उस जन-रक्षक आर्तिनाशन भृत्यसदनको मन-ही-मन पुकारने लगीं । पाण्डवोंने देखा कि वहे वेगसे चार द्वेष धोड़ोंसे जुता द्वारकाधीशका गदड़व्यञ्जन रथ आया और रथके लड़े होते-न-होते वे मर्यूरमुकुटी उसपरसे कूद पड़े । परतु इस बार उन्होंने न किसीको प्रणाम किया और न किसीको प्रणाम करनेका अवसर दिया । वे तो सीधे कुटियामें चले गये और अत्यन्त क्षुधातुकी भौति आतुरतासे बोले—‘कृष्ण ! म बहुत भूखा हूँ, श्टपट कुछ भोजन दो ।’

‘तुम आ गये मैया ! मैं जानती थी कि तुम अभी आ जायेंगे ।’ द्वौपदीजीमें जैसे नये प्राण आ गये । वे हड्डवङ्कर

उठीं—‘महर्षि दुर्वासाको भोजन देना है’

‘पहले मुझे भोजन दो । फिर और कोई वात । मुझसे छड़ा नहीं हुआ जाता भूखके मरे ।’ आज श्यामको अद्भुत भूख लगी थी ।

‘परतु मैं भोजन कर चुकी हूँ । सर्वका दिया वर्तन घो-मॉजकर बर दिया है । भोजन है कहाँ ? उसीकी व्यवस्थाके लिये तो तुम्हें पुकारा है तुम्हारी इस कगालिनी वहिने ।’ द्वौपदीजी चकित देख रही थीं उम लीलामयका मुख ।

‘वातें मत बनाओ । म बहुत भूखा हूँ । कहाँ है वह वर्तन ? लाखो, मुझे दो ।’ श्रीकृष्णचन्द्रने जैसे कुछ सुना ही नहीं । द्वौपदीने चुपचाप वर्तन उठाकर हाथमें दे दिया उनके । श्यामने वर्तन लेकर बुमा-फिराकर उसके भीतर देखा । वर्तनके भीतर चिपका शाकके पत्तेका एक नन्हा ढकड़ा उन्होंने हूँढकर निकाल ही लिया और अपनी लाल-लाल अँगुलियोंमें उसे लेकर बोले—‘तुम तो कहती थीं कि कुछ है ही नहीं । यह क्या है ? इससे तो सरे विश्वकी क्षुधा दूर हो जायगी ।’

द्वौपदीजी चुपचाप देखती रहीं और उन द्वारकाधीशने वह शाकपत्र मुखमें ढाला यह कहकर—‘विश्वात्मा हससे तूस हो जायें’ और वस, डकार ले ली । विश्वात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने तृप्तिकी डकार ले ली तो अब विश्वमें कोई अनुस रहा कहाँ ।

वहाँ सरोवरमें स्नान करते महर्षि दुर्वासा तथा उनके शिष्योंकी बड़ी विचित्र दशा हुई । उनमेंसे प्रत्येकको डकार-पर-डकार आने लगी । सबको लगा कि कण्ठतक पेटमें भोजन भर गया है । आश्र्वर्यसे वे एक दूसरेकी ओर देखने लगे । अपनी और शिष्योंकी दशा देखकर दुर्वासाजीने कहा—‘मुझे अम्बरीषकी बटनाका स्वरण हो रहा है । पाण्डव वन-में हैं, उनके पास वैसे ही भोजनकी कमी है, यहाँ हमारा आना ही अनुचित हुआ और अब हमसे भोजन किया नहीं जायगा । उनका भोजन व्यर्थ जायगा तो वे क्रोध करके हम सबको एक पलमें नष्ट कर सकते हैं, क्योंकि वे भगवद्भक्त हैं । अब तो एक ही मार्ग है कि हम सब यहाँसे चुपचाप भाग चले ।’

जब गुरु ही भाग जाना चाहें तो शिष्य कैसे टिके रहे । दुर्वासा मुनि जो शिष्योंके साथ भागे तो पुश्चीपर रुकनेका उन्होंने नाम नहीं लिया । सीधे ब्रह्मलोक जाकर वे खड़े हुए ।

पाण्डवोंकी ज्ञांपडीसे शाकका पंता खाकर श्यामसुन्दर मुसकराते निकले । अब उन्होंने धर्मराजको अभिवादन किया और बैठते हुए सहदेवको आठेश दे दिया कि महर्षि दुर्वासाको भोजनके लिये बुला लाये । सहदेव गये और कुछ देरमे अकेले लौटे आये । महर्षि और उनके शिष्य होते तब तो मिलते । वे तो अब पृथ्वीपर ही नहीं थे ।

‘दुर्वासाजी अब पता नहीं कब अचानक आ धमकेंगे ।’ धर्मराज फिर चिन्ता करने लगे; क्योंकि दुर्वासाजीका यह स्वभाव विख्यात था कि वे किसीके यहाँ भोजन वनानेको

कहकर चल देते हैं और लौटते हैं कंभी आशी रातको, कभी कई दिन बाद किसी समय । लौटते ही उन्हें भोजन चाहिये, तनिक भी देर होनेपर एक ही बात उन्हें आती है—ग्राप देना ।

‘अब वे हधर कभी ज्ञांकेंगे भी नहीं । वे तो दुरात्मा दुर्योधनकी प्रेरणासे आये थे ।’ पाण्डवोंके परम रक्षक श्रीकृष्णनन्दने उन्हें पूरी घटना समझाकर निश्चिन्त कर दिया और तब उनसे विदा होकर वे द्वारका पधारे । —सु० सिं०

(महाभारत, बन० २६२-२६३)

सबसे दुबली आशा

तुलसी अद्भुत देवता आसा देवी नाम ।

सेये सोक समर्पहि विमुख भये अभिराम ॥

एक बार युधिष्ठिरने भीष्मजीसे पूछा कि ‘पितामह! आशा क्या है तथा इसका स्वरूप कैसा है, बतलानेकी कृपा करें । प्रायः देखा जाता है कि सभी पुरुष महान् आशा लेकर प्रवृत्त होते हैं; पर जब वह बीचमें ही प्रतिहत होती है, तब या तो प्राणी मर ही जाता है अथवा महान् क्लेश भोगता है ।’

इसपर भीष्मने कहा कि इस सम्बन्धमें-राजर्षि सुमित्र और श्रृंगम सुनिके सवादकी कथा कही जाती है । हैह्यवर्णी राजा सुमित्र एक बार शिकार लेलने गया । वहाँ उसने एक हरिन देखा । उसपर उसने बाण मारा । अमितविक्रम मृग बाण लेकर भागा और राजाने भी मृगराजका पीछा किया । ऊचे-नीचे स्थलों, नदनदियों, पत्थरों, बनों तथा समविप्रम भागोंसे होकर वह मृग भागता जाता था । राजा भी पूरी शक्ति लगाकर उसका पीछा कर रहा था । तथापि वह मृग हाथ न आया । अन्तमें भीपण अरण्यमें भटकता हुआ गजा सहसा तपत्तियोंके आश्रमके सामने निकला । थके-मौदे, भग्न-प्याससे ब्याकुल, धनुर्वर राजाको देखकर ऋषियोंने उसका यथाविधि स्वागत किया और नदनन्तर उसके वहाँ आनेका कारण पूछा ।

राजा बोला—‘मैं हैह्यकुलमें उत्पन्न सुमित्र नामका राजा हूँ । शिकारसे मृगका पीछा करता हुआ यहाँ पहुँच गया हूँ । मैं हताश, श्रमार्त एव भ्रष्टमार्ग हो गया हूँ । इससे बढ़कर मेरे लिये और कष्ट ही क्या हो सकता है । यद्यपि मैं इस समय छत्र, चामर आदि समस्त राजलक्षणोंसे हीन हूँ, धर, नगर और समस्त प्रकृतिमण्डलसे भी अलग हूँ, पर भी इन सबका मुक्त वैसा दुःख नहीं, जैसा इस आशाके

मङ्ग होनेसे (मृगके हाथसे निकल जानेसे) हो रहा है । महाभाग । आपलोग सर्वज्ञ हैं, मैं जानना चाहता हूँ कि इस दुरन्त आशाका, जो समुद्र, हिमालय और अनन्त आकाशसे भी बड़ी मालूम होती है, कैसा स्वरूप एव क्या लक्षण है । यदि कोई आपत्ति न हो तो आपलोग इसे बतलानेकी कृपा करें ।’

इसपर उन ऋषियोंमेंसे ऋषभ नामके ऋषि बोले—‘राजसिंह । एक बार मैं तीर्थयात्रा करता हुआ नर-नारायण-के आश्रम बढ़रीवनकी ओर निकला । आश्रमके समीप ही मैं निवासकी खोजमें था कि एक चीराजिनधारी कृत्तिनु नामके मुनि दीख़ पड़े । अन्य साधारण मनुष्यकी अपेक्षा ये आठ-गुना अधिक दुबले थे । राजेन्द्र । मैंने वैसी कृशता अन्यत्र कहीं नहीं देखी । वस, उनका शरीर कनिष्ठिका अङ्गुलीके तुल्य था । उनके हाथ, पैर, गर्दन, सिर, कान, ऊख सभी अङ्ग भी शरीरके ही अनुरूप थे । पर उनकी वाणी और चेष्टा सामान्य थी । मैं उन ब्राह्मण देवताको देखकर ढर गया और अत्यन्त उदास हो गया । मैंने उन्हें प्रणाम किया और धीरेसे वहीं उनके द्वारा दिये गये आसनपर बैठ गया । कृशमुनि धर्ममयी कथा सुनाने लगे । इतनेमें ही वीरद्युम्न-नामका राजा भी वहीं पहुँच गया । उसका एकमात्र पुत्र भूरिद्युम्न शिकारसे खो गया था । उसने कृशमुनिसे उसके सम्बन्धमें अपनी महती आशा तथा चिन्ता व्यक्त की और उसकी जानकारी चाही । कृशमुनिने कहा कि उसने एक ऋषिकी अवहेलना की थी, आशा भङ्ग की थी, अतएव उसकी यह दण्डा हुई । वीरद्युम्न निर्विण और निराग हो गया ।

‘कृशमुनिने कहा, ‘राजन् । दुराशा छोड़ो । मैंने यह निश्चय किया है कि जो आशासे जीत लिया गया है, वही दुर्वल है; जिसने आशाको जीत लिया, वास्तवमें वही पुष्ट है ।’

‘इसपर वीरद्युम्नने कहा—‘महाराज ! क्या आपसे भी

यह आशा कुशल—दुर्वली है। मुझे तो इस चानपर बड़ा संग्रह दें रहा है।

“मुनिने कहा—‘उज्जन ! शक्ति होनेपर भी जो दूसरेका उपकार नहीं करना, तो यह पुरुषोंका सत्कार नहीं करना, उस परमासक पुरुषर्ती दुराशा मुझसे दुर्वली है। इसी एक पुत्रालं पिनाको जो एनरे निंदा जाने या भूल जाने या पता न लगनेपर जो उसकी आशा होनी है, वह मुझसे दुर्वली है। जो आशा ऊपर नश्यम जान्मी तथा अपराह्नी

पुनर्जनेमें समक्त है, वह आशा मुझसे कहीं दुर्वली है।”

“इन सब वानोंको मुनपर राजा मुनिके चरणोंपर गिरपड़ा और उसने अपने पुत्रकी प्राप्तिरे लिये प्रार्थना की। मुनिने भी अपने योगवल तथा तरोवलसे हँसकर उसे तुरत ला दिया। मुन उन्होंने अपना अत्यद्वृत दिव्य धर्ममय रूप दिग्वलापा और बनमें वे अन्यत्र चले गये। अतएव अत्यन्त दुर्वल दुराशा सर्वथा त्याग करनेके योग्य हैं। —ना० श०

(महाभागा० शानिपर्व, राजधर्म २०५—२०८)

पार्वतीकी परीक्षा

महाभागा० हिमाचलनन्दिनी पार्वतीने भगवान् शशरको पतिन्द्रसे प्राप्त नन्देके लिये धोर तप किया। श्रीगंगरजीने प्रभुज होनपर दर्शन दिया। पार्वतीने उन्ह वरण कर लिया। उसके बाद शकरजी अन्तर्धान हो गये। पार्वतीजी आश्रमके बाटर एक शिलापर बैठी थी। उत्तरमें उन्ह किसी आर्त वालकके रोनेकी आशाज सुनारी दी। वाल्क चिल्ड रहा था। “हाय हाय ! मैं वजा हूँ, मुझे आदने पकड़ लिया है। यह अभी मुझे चरा जाएगा। मेरे गातापिताओंमें से ही एकमात्र पुत्र हूँ। बोर्द दीड़ा, मुझे बचाओ दात ! मैं मरा।

वालकका आर्तनाद सुनपर पार्वतीजी दीर्घा। उसका, एक बड़े ही सुन्दर वाल्कको गरोपरमे ग्राह पकड़ हुए है। वह पार्वतीको नेगतं ही जर्दीमें चलकर वाल्कको भरोपर-के बीचमें ले गया। वाल्क बड़ा तेजस्वी था, पर ग्राहके द्वाग पकड़ जानेसे कठण-कन्दन कर रहा था। वाल्कना दुख दंगपर पार्वतीजीका हृदय ब्रह्मित हो गया। वे प्रोली—‘ग्राहराज ! वाल्क बड़ा दीन ह, इसे तुरत छाड़ दो।’ ग्राह दीन—‘देवी ! दिनके छठ भागमें जो मेरे पास आयेगा, वही मेरा आहार होगा। यह वाल्क इसी कालमें यहाँ आया है अतएव ब्रह्माने इसे मेरे आहार-रूपमें ही भेजा है; इसे मैं नहीं छोड़ सकता।’ देवीने कहा—‘ग्राहराज ! मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ। मैंने हिमाचलर्की चोरीपर रहकर बड़ा तप किया है, उसीके बलमें तुम इसे छोड़ दो।’ ग्राहने कहा—‘तुमने जो उत्तम तप किया है, वह मुझे अर्पण कर दो तो मैं इसे छोड़ दूँ।’ पार्वतीने कहा—‘ग्राहराज ! इस तपकी

तो बात ही क्या है, मैंने जन्मभरमें जो कुछ भी पुण्य-मन्त्र लिया है, सब तुम्हें अर्पण करती हूँ; तुम इस वाल्कको छोड़ दो।’ पार्वतीके इतना कहते ही ग्राहका शर्णीर तपके तेजसे चमक उठा, उसके शरीरकी आङ्गृति मव्याहुके श्वर्यके सहज तेजोमय हो गयी। उसने कहा—‘देवी ! तुमने यह क्या किया ? जरा विचार तो करो। कितना कष सहकर तुमने तप किया था और किस महान् उद्देश्यमें किया था। ऐसे तपका त्याग उन्ना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। अच्छा, तुम्हारी व्रायण-भक्ति और दीन-सेवासे म बड़ा सतुष्ट हूँ। तुम्हें वरदान देता हूँ—तुम अपनी तपस्या को भी वापस लो और इस वाल्कको भी।’ इसपर गहावता पार्वतीने कहा—‘ग्राहराज ! ग्राण ठकर भी इस दीन व्रायण-वाल्कको वचाना मेरा कर्तव्य था। तप तो फिर भी हो जायगा, पर यह वाल्क फिर कहोसे आता ? मैंने सब कुछ सोचकर ही वाल्कको वचाया ह और तुम्हें तप दिया है। अब इस दी हुई वस्तुको मे वापस नहीं ले सकती। वस, तुम इस वाल्कको छोड़ दो।’ इस वाल्को सुनपर ग्राह वाल्कको छोड़कर अन्तर्धान हो गया। इधर पार्वतीने अपना तप चला गया समझकर फिरसे तप करनेका विचार किया। तब शकरजीने प्रकट होकर कहा—‘देवी ! तुम्हें फिरसे तप नहीं करना पड़ेगा। तुमने यह तप मुझको ही दिया है। वाल्क मैं या और ग्राह भी मैं ही था। तुम्हारी दया और त्यागकी महिमा देखनेके लिये ही मैंने यह लीला की। देखो, दानके फल-सरूप तुम्हारी यह तपस्या अब हजारगुनी होकर अक्षय हो गयी है।’

चोरीका दण्ड

ऋषि 'शङ्ख' और 'लिखित' दो भाई थे। दोनों ही बड़े तपसी थे और दोनों ही अलग-अलग आश्रम बनाकर रहते थे। एक बार लिखित शङ्खके आश्रमपर आये। दैववश उस समय शङ्ख बाहर गये हुए थे। लिखितको भूख लगी थी, इसलिये शङ्खके आश्रमके वृक्षोंसे फल तोड़कर खाने लगे। इतनेमें ही शङ्ख आ गये। उन्होंने उनसे पूछा—‘मैया ! तुम्हे ये फल कैसे मिले ?’ लिखितने हँसते हुए कहा—‘ये तो इसी सामनेके वृक्ष-से हमने तोड़े हैं।’ ‘तब तो तुमने चोरी की’ लिखितने कहा। ‘अतएव अब तुम राजाके पास जाओ और उससे कहो—‘मुझे वह दण्ड दीजिये जो चोरको डिया जाता है।’

लिखित बड़े भाईके इस आदेशसे बड़े प्रसन्न हुए कि भाईने मुझे एक आदशकि त्यागखूप पापसे बचा लिया। वे राजा सुद्धुम्नके पास गये और कहा—‘राजन् ! मैंने बिना आज्ञा लिये अपने बड़े भाईके फल खा लिये हैं, इसलिये आप मुझे दण्ड दीजिये।’

सुद्धुम्नने कहा—‘विप्रवर ! यदि आप दण्ड देनेमें राजाको प्रमाण मानते हैं, तो उसको क्षमा करनेका भी तो अधिकार है। अत. मैं आपको क्षमा करता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं आपकी और क्या सेवा करूँ ?’ पर लिखितने

अपना आग्रह बराबर जारी रखा। अन्तमें राजाने उनके दोनों हाथ कटवा दिये। अब वे पुनः शङ्खके पास आये और क्षमा माँगी।

शङ्खने कहा, ‘मैया ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम तो धर्मज्ञ हो। यह तो धर्मोलङ्घनका दण्ड है। अब तुम इस नदीमें जाकर विधिवत् देवता और पितरोंका तर्पण करो। भविष्यमें कभी अधर्ममें मन मत ले जाना।’ लिखित नदीके जलमें स्वान करके ज्यों ही तर्पण करने लगे, उनकी भुजाओंमें समलके समान दो हाथ प्रकट हो गये। इससे उन्हें बड़ा आश्वर्य हुआ और उन्होंने आकर भाईको हाथ दिखलाये। शङ्खने कहा—‘भाई ! शङ्खा न करो, मैंने अपने तपके प्रभावसे ये हाथ उत्पन्न कर दिये हैं।’ लिखितने पूछा—‘यदि आपके तपका ऐसा प्रभाव है तो आपने पहले ही मेरी शुद्धि क्यों नहीं कर दी ?’ शङ्खने कहा—‘यह ठीक है, पर तुम्हे दण्ड देनेका अधिकार मुझे नहीं, राजाको ही था। इससे राजाकी भी शुद्धि हुई और पितरोंके सहित तुम भी पवित्र हो गये।’ लिखितको जहाँ बाहु उत्पन्न हुए थे, उस नदीका उस दिनसे नाम ‘बाहुदा’ हो गया। —जा० ग०

(महा० शान्ति० अध्याय ४७)

मङ्किका वैराग्य

मङ्कि नामके एक ब्राह्मण थे। उन्होंने वनोपार्जनके लिये बहुत यत्न किया, पर सफलता न मिली। अन्तमें योड़े-से बचे-खुचे धनसे उन्होंने भार सहने योग्य ढो बछड़े खरीदे। एक दिन सवानेके लिये वे उन्हें जोतकर लिये जा रहे थे। रास्तेमें एक ऊँट बैठा था। वे उसे बींचमें करके एकदम दौड़ गये। जब वे उसकी गर्दनके

पास पहुँचे, तब ऊँटको बड़ा बुरा लगा और वहाँ खड़ा होकर उनके दोनों बछड़ोंको गर्दनपर लटकाये बड़े जोरसे दौड़ने लगा। इस प्रकार मङ्किने जब अपने बछड़ोंको मरते देखा, तब उन्हें बड़ा कष्ट तथा वैराग्य हो गया और वे कहने लगे—‘मनुष्य कैसा भी चतुर क्यों न हो, यदि उसके भाग्यमें नहीं होता तो प्रयत्न

करनेपर भी उसे धन नहीं मिल सकता । पहले अनेकों असफलताओंके बाद भी मैं धनोपार्जनकी चेष्टामें लगा ही था, पर प्रिशताने इन बछड़ोंके बहाने मेरे सारे प्रयत्नको मिट्टीमें मिला दिया । इस समय काक्तार्लीय न्यायसे ही यह ऊँट मेरे बछड़ोंको लटकाये हथर-उचर ढोड़ रहा है । यह दैवकी ही लीला है । यदि कोई पुरुषार्थ सफल होता दिग्वार्या देना है तो विचारनेपर वह भी दैवका ही फ़िरा जान पड़ता है । इसलिये जिसे सुखकी इच्छा हो, उसे वैराग्यका ही आश्रय लेना चाहिये । अहो ! शुकदेव मुनिने क्या ही, अच्छा कहा है—‘जो मनुष्य अपनी समस्त कामनाओंको पा लेना है तथा जो उनका सर्वया त्याग कर देना है, उन दोनोंमें त्यागनेवाला ही श्रेष्ठ है ।’

मङ्गिने मन-ही-मन कहा—‘ओ कामनाओंके दास ! अब तू सब प्रकारकी कर्मवासनाओंसे अद्वा हो जा । वियासकिको छोड़ दे । ओ मूँह ! भला, तू इस अर्ध-जोलुपत्तामें कब्र अपना पिण्ड छुड़ायेगा । यों तो वनके सकन्धमें ही सुख नहीं है । वह मिल जाय तो भी चिन्ता ही बढ़ती है । और यदि एक बार मिलकर नष्ट हो जाय, तब तो मौत ही आ जाती है । मैं समझता हूँ, धनके नाश होनेपर जो कष्ट होता है, वही सबसे बढ़कर है । धनमें जो थोड़ा सुखका अंश

दीखता है, वह भी दु खके लिये ही है । धनकी आजासे छुट्टेरे भार डालते हैं अयत्रा उसे तरह-तरहकी पीड़ा देकर नित्यप्रति तग करते रहते हैं । काम ! तेरा पेट भरना बड़ा कठिन है । तू पातालके समान दुष्पूर है । मैं मनकी सारी चेष्टाएँ छोड़कर तुझे दूर करूँगा । अब धनके नाश हो जानेसे मेरी सब खटपट मिट गयी । अब मैं मौजसे सोऊँगा । काम ! तू अब मेरे पास न रह सकेगा । तू मेरा बड़ा जन्म है । मैं तेरी इच्छा पूर्ण नहीं होने दूँगा । तू अच्छी तरह समझ ले, मुझे वैराग्य, सुख, तृप्ति, शान्ति, सत्य, दम, क्षमा और सर्वभूतदया—ये सभी गुण प्राप्त हो गये हैं । अत काम, लोभ, तृष्णा और कृपणताको चाहिये कि वे मुझे छोड़कर चले जायें । दुःख, निर्लज्जता और असतोप—ये कामसे ही उत्पन्न होते हैं । पर आज काम और लोभसे मुक्त होकर मैं सुखी हो गया हूँ । अब मैं परब्रह्ममें प्रतिष्ठित हूँ, पूर्णतया शान्त हूँ और मुझे विशुद्ध आनन्दका अनुभव हो रहा है ।’

इस प्रकारकी वृद्धि पाकर मङ्गि विरक्त हो गये । सब प्रकारकी कामनाओंका परित्याग करके उन्होने ब्रह्मानन्द प्राप्त किया । ठो बछड़ोंके नाशसे ही उन्हें अमरत्व प्राप्त हो गया । उन्होने पाप तथा दुःखोंके मूल कामकी जड़ काट डाली और वे अत्यन्त सुखी हो गये । —जा० शा० (महा० शान्तिपर्व, मोक्षधर्म, अध्याय १७७)

दुःखदायी परिहासका कट्टु परिणाम

(खगमका ऋध)

पूर्वकालमें एक सहस्रपाद नामके श्रृणिकुमार थे । उनमें सभी गुण थे; केवल एक दुरुरुण था कि वे अपने मित्रों और साथियोंको हँसीमें चौंका दिया करते या डरा दिया करते थे । उनके एक मित्र थे श्रृणिकुमार खगम । वे सत्यवादी थे और परम तपसी थे, लेकिन अत्यन्त भीर थे । सर्वसे उन्हें बहुत डर लगता था ।

एक दिन श्रृणिकुमार सहस्रपादने खेल-खेलमें धासका एक सौंप बनाया और उसे लेकर दबे पैर अपने मित्र खगम-जीके पीछे जा खड़ा हुआ । उस समय श्रृणिकुमार खगम अभिहोत्र कर रहे थे । सहस्रपादने वह धासका सर्प उनके ऊपर फेंक दिया । इससे भयके मारे खगम मूर्धित हो गये ।

मूर्धा भङ्ग होनेपर खगमने उस धासके सर्पकी पहिचाना ।

क्रोधसे उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने सहस्रपादको शाप दिया—‘तूने मुझे विघ्रहित तृणके सर्पसे डराया है, अतः तू विषयीन सर्पयोनि प्राप्त करेगा।’

इस भयकर शापको सुनकर सहस्रपाद धवरा उठा। वह पृथ्वीपर गिर पड़ा और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने—गिङ्गिङ्गिङ्गाने लगा। इससे खगमको दया आ गयी। उन्होंने बताया—‘मृगुबश्मे प्रमतिके पुत्र रुह होगे, वे जब तुम्हे मिलेंगे, तब तुम मेरे शापसे छूट जाओगे। शापको सर्वथा मिथ्या नहीं किया जा सकता। मेरे मुखसे निकले शब्दोंको मैं भी असत्य नहीं कर सकता।’

सहस्रपादको हुण्डुभ जातिका सर्प होना पड़ा। प्रमतिके

पुत्र रुहकी पत्नी सर्पके काटनेसे जब मर गयी, तब सर्प-जातिपर ही रुष्ट होकर वे-मोटा डडा लेकर धूमने लगे और जो भी सर्प मिलता, उसीको मार देते। रुहको मार्गमें हुण्डुभ सर्प वने सहस्रपाद भी मिले। उन्हे भी मारनेको रुहने डडा उठाया। मृहस्रपादने उन्हे रोका और बताया कि ‘विषयीन निरपराध हुण्डुभ जातिके सर्पोंको मारना तो पाप ही है। प्राणी कालकी प्रेरणासे ही मरता है। सर्प, विद्युत् या रोग आदि तो मृत्युके निमित्तमात्र वनते हैं। प्राणियोंको अभय देना—अहिंसा ही परम धर्म है।’ इस प्रकार रुहको धर्मोपदेश करके वे शृष्टि-कुमार सर्पयोनिसे छूट गये। —सु० सिं०

(महाभारत, आदि० ११)

परिहाससे ऋषिके तिरस्कारका कुफल

(परीक्षितको शाप)

अभिमन्युनन्दन राजा परीक्षित् वडे धर्मात्मा थे। एक दिन इन्हे मालूम हुआ कि मेरे राज्यमे कलियुग आ गया है। वस, ये उसे छोड़नेके लिये निकल पड़े। एक स्थानपर उन्होंने देखा कि राजोचित वल्लभूपाणसे सुसजित कोई शूद्र गौ और वैलको डडोंसे पीट रहा है। वैलके तीन पैर ढूट चुके थे, एक ही अवगोष था। उनका परिचय प्राप्त करनेपर मालूम हुआ कि वह वैल धर्म है, पृथ्वी गौ है और कलियुग ही शूद्र है। उन्होंने उस कलिको मारनेके लिये खड़ उठाया, परतु वह उनके चरणोंपर गिरकर गिङ्गिङ्गाने लगा। राजाको दया आ गयी। उन्होंने उसकी प्रार्थना स्वीकार करके और उसका यह शुण देखकर कि कलियुगमें और किसी साधन, योग, यज आदिकी आवश्यकता न होगी, केवल भगवान्‌के नामोंसे ही प्राणियोंका स्वार्थ, परमार्थ आदि सम्पन्न हो जायगा, उसे रहनेके लिये जूझा, गराब, स्त्री, हिंसा, सोना आदि स्थान ब्रूता दिये, ज्योंकि इन स्थानोंमें शूद्र, मद, अपवित्रता तथा कूरतादि दोष रहते हैं। कुछ दिनोंके बाद उस समयकी प्रथाके अनुसार वे शिकार खेलने निकले। एक मृगके पीछे दौड़ते, हुए दूर निकल गये। यक्षावट और प्यासके कारण वे धवरा उठे। पानी पीनेकी इच्छासे एक ऋषिके आश्रमपर गये, परतु वे ध्यानमम्य ये। इनकी याचनामे उनका ध्यान भङ्ग नहीं हुआ।

इसी समय कलियुगने इनपर आक्रमण किया। इनको क्रोध आ गया और क्रोधवज्ञ होकर ऋषिका परिहास करनेके लिये इन्होंने उन ध्यानमम्य ऋषिके गंगेमें एक मरा सौप पहना दिया और आवेशमें ही राजधानी लौट आये।

जब कुछ समय बाद इन्हे होश आया, तब ये पश्चात्ताप करने लगे और इस अपराधका दण्ड भोगनेके लिये उद्यत होकर उसकी प्रतीक्षा करने लगे।

उधर कई ऋषि-वालोंने जाकर, नदी-किनारे खेलते हुए उनके वच्चेसे यह बात कह सुनायी। उसे क्रोध आ गया और उसने शाप दे दिया कि आजके सातवें दिन तक्षक सौप परीक्षितको डॉसेगा। अपमानके कारण उद्धिष्ठ होकर वह रोने लगा। उसका रोना सुनकर धीरे-धीरे कुछ समयके बाद ऋषिका ध्यान ढूटा। उन्होंने सब बात सुनकर अपने लड़के को बहुत डॉटा। ससारके एकमात्र धार्मिक सम्राट् हमारे आश्रममे आये और उनका सत्कार तो दूर रहा, अपमान हुआ और उन्हे मृत्युंतकका शाप दे दिया गया। आगे आनेवाली अधर्मकी वृद्धिकी चिन्तासे ऋषि-चिन्तित हो उठे, परतु अब तो शाप दिया जा चुका था। राजाके पास सदेश भेज दिया। इसी शापसे परीक्षितकी मृत्यु हुई।

आश्रितका त्याग अभीष्ट नहीं (धर्मराजकी धार्मिकता)

महाराज युधिष्ठिरने जब सुना था श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी लंगलाङा सवरण कर लिया है और यादव परस्परके कलहमें ही नष्ट हो चुके हैं, तभ उन्होंने अर्जुनके पुत्र परीनित्यका राजतिलक रख दिया। न्यय सब वस्त्र एवं आनूपण उतार दिये। मौन-ब्रन लेफर केज रोने, वीर-सुन्यास लेवरवे राजभवनसे निकले और उत्तर दिशासी ओर चल पड़े। उनके शेष भाइयों तथा द्रोषदीने भी उनसा अनुगमन किया।

धर्मराज युधिष्ठिरने सब भाइयोंहोत त्याग किया था। उन्होंने न भोजन किया, न जन्म पिया और न विश्राम ही किया। पिना किसी धोर देसे या दक्षे व वराम चलते ही गये और गिमालयमें शशीनाथसे पांगे बढ़ गये। उनके भाई भाइयों तथा रानी द्रौपदी भी वराम उनके पीछे चलती रहीं।

सन्धव पार हुआ और स्वर्गारोहणकी दिव्य भूमि आयी। द्रौपदी नकुल, भद्रदेव, अर्जुन—ये क्रम-क्रमसे गिरने लगे। जो गिरना था, वह वही रह जाता था। उस हिम-प्रदंगमें गिरन्नर फिर उठनेसी नवाँ ही व्यर्द है। शर्मर तो तत्काल हिम समाप्ति पा जाता है। उस पापन प्रदंगमें प्राण त्यागनेवालेसो स्वर्गनी प्राप्तिसे भल-कौन रोक नसकता है। युधिष्ठिर न रुकते थे और न गिरते हुए भाइयोंनी और देखते ही थे। वे राग द्वेषमें परे हो चुके थे। अन्तमें मीमलेन भी गिर गये।

युधिष्ठिर जब स्वर्गारोहणके उच्चतम गिरावर पहुँचे, तब भी अकेले नहीं थे। उनके भाई और रानी द्रौपदी भार्यामें गिर चुकी थीं, किंतु एक कुत्ता उनके साथ था। यह कुत्ता

हस्तिनापुरसे ही उनके पीछे-पीछे आ रहा था। उस गिरावर पहुँचते ही स्वयं देवराज इन्ड विमानमें बैठकर आकाशसे उतरे। उन्होंने युधिष्ठिरका स्वागत करते हुए कहा—‘आपके धर्मचरणमें स्वर्ग अब आपका है। विमानमें बैठिये।’

युधिष्ठिरने अब अपने भाइयों तथा द्रौपदीको भी स्वर्ग ले जानेसी प्रार्थना की। देवराजने बताया—‘वे पहले ही वहाँ पहुँच गये हैं।’

युधिष्ठिरने दूसरी प्रार्थना की—‘इस कुत्तेको भी विमानमें बैठा ले।’

इन्ड—‘आप धर्मज होकर ऐसी बात क्यों कहते हैं? स्वर्गमें कुत्तेका प्रवेश कैसे हो सकता है? यह अपवित्र प्राणी भुजे देस सका, यही बहुत है।’

युधिष्ठिर—‘यह मेरे आश्रित है। मेरी भक्तिके कारण ही नगरसे इतनी दूर मेरे साथ आया है। आश्रितका त्याग अधर्म है। इन आश्रितका त्याग मुझे अभीष्ट नहीं। इसके जिन मैं अकेले स्वर्ग नहीं जाना चाहता।’

इन्ड—‘राजन्! स्वर्गकी प्राप्ति पुण्योंके फलसे होती है। यह पुण्यात्मा ही होता तो इस अधम योनिमें क्यों जन्म लेता?’

युधिष्ठिर—‘मैं अपना आधा पुण्य इसे अर्पित करता हूँ।’

‘धन्य हो, धन्य हो, युधिष्ठिर तुम! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ! युधिष्ठिरने देखा कि कुत्तेका रूप त्यागकर साक्षात् धर्म देवता उनके सम्मुख खड़े होकर उन्हें आशीर्वाद दे रहे हैं।—रु० सि० (महाभारत, महाप्रास्थनिक० १-३)

सृत्युका कारण प्राणीका अपना ही कर्म है

प्राचीनकालमें एक गौतमी नामकी बृद्धा ब्राह्मणी थी। उसके एकमात्र पुत्रको एक दिन सर्पने काट लिया, जिससे वह वालक भर गया। वहाँपर अर्जुनक नामक एक न्याय इस धटनाको देख रहा था। उस व्याघने फटेमें सर्पको बौघ लिया और उस ब्राह्मणिके पास ले आया। ब्राह्मणसे व्याघने पूछा—‘देवि! तुम्हारे पुत्रके हत्यारे इस सर्पको मैं अग्रिमे डाल दूँ या काटकर ढकड़े-ढकड़े कर डालूँ?’

धर्मपरायणा गौतमी चोली—‘अर्जुनक! तुम इस सर्पको छोड़ दो। इसे मार डालनेसे मेरा पुत्र तो जीवित होनेसे रहा

और इसके जीवित रहनेसे मेरी कोई हानि नहीं है। न्यर्य हस्ता करके अपने सिरपर पापका भार लेना कोई बुद्धिमान् व्यक्ति स्वीकार नहीं कर सकता।’

व्याघने कहा—‘देवि! बृद्ध मनुष्य स्वभावसे दयालु होते हैं, किंतु तुम्हारा यह उपदेश शोकहीन मनुष्योंके योग्य है। इस दुष्ट सर्पको मार डालनेकी तुम मुझे तत्काल आशा दो।’

व्याघने वार-नार सर्पको मार डालनेका आग्रह किया, किंतु ब्राह्मणने किसी प्रकार उसकी बात स्वीकार नहीं की। इसी समय रसीमें बैधा सर्प मनुष्यके स्वरमें बोला—‘व्याघ! मेरा

तो कोई अपराध है नहीं । मैं तो परावीन हूँ, मृत्युकी प्रेरणासे मैंने बालकको काटा है ।'

अर्जुनकपर सर्पकी वातका कोई प्रभाव नहीं पड़ा । वह क्रोधपूर्वक कहने लगा—‘दुष्ट सर्प ! तू मनुष्यकी भाषा बोल सकता है, यह जानकर मैं डरूँगा नहीं और न तुझे छोड़ूँगा । तूने चाहे स्वयं यह पाप किया या किमीके कहनेसे किया; परतु पाप तो तूने ही किया । अपराधी तो तू ही है । अभी मैं अपने डडेसे तेरा सिर कुचलकर तुझे मार डालूँगा ।’

सर्पने अपने ग्राण बचानेकी बहुत चेष्टा की । उसने व्याधको ममझानेका प्रयत्न किया कि ‘किसी अपराधको करनेपर भी दूत, सेवक तथा शश अपराधी नहीं माने जाते । उनको उस अपराधमें लगानेवाले ही अपराधी माने जाते हैं । अतः अपराधी मृत्युको मानना चाहिये ।’

सर्पके यह कहनेपर वहाँ शरीरधारी मृत्यु देवता उपस्थित

हो गया । उसने कहा—‘सर्प ! तुम मुझे क्यों अपराधी बतलाते हो ? मैं तो कालके बगमे हूँ । सम्पूर्ण लोकोंके नियन्ता काल भगवान् जैसा चाहते हैं, मैं वैसा ही करता हूँ ।’

वहाँपर काल भी आ गया । उसने कहा—‘व्याध ! बालककी मृत्युमें न सर्पका दोष है, न मृत्युका और न मेरा ही । जीव अपने कर्मोंके ही वशमें है । अपने कर्मोंके ही अनुसार वह जन्मता है और कर्मोंके अनुसार ही मरता है । अपने कर्मके अनुसार ही वह सुख या दुःख पाता है । हमलोग तो उसके कर्मका फल ही उसको मिले, ऐसा विधान करते हैं । यह बालक अपने पूर्वजन्मके ही कर्मदोषसे अकालमें मर गया ।’

कालकी वात सुनकर ब्राह्मणी गौतमीका पुत्रशोक दूर हो गया । उसने व्याधको कहकर वन्धनमें ज़कड़े सर्पको भी छुड़वा दिया ।—सु०सिं० (महाभारत, अनुशासन० १)

दुरभिमानका परिणाम (वर्वरीकका वध)

वर्वरीक भीमसेनका पोता और उनके पुत्र घटोत्कचका पुत्र था । इसकी माता मौर्वी थी, जिसे शश, शास्त्र नया बुद्धिद्वारा पराजितकर घटोत्कचने व्याहा या । वर्वरीक वडा वीर था, उसने एक बार भीमसेनको अत्यन्त भाधारण युद्धकौशलसे पराजित कर दिया था । जब पाण्डवोंके बनवासका तेरहवाँ वर्ष व्यतीत हुआ, तब सभी गजा उपमुख नामक स्थानमें युद्धके लिये एकत्र हुए । वहाँसे चलकर महारथी पाण्डव कुरुक्षेत्रमें आये, जहाँ दुर्योधनादि कौरव पूर्वसे ही स्थित थे । उस समय भीमजीने दोनों पक्षोंके रथियों तथा अतिरथियोंकी गणना की थी । उसका सब समाचार जब गुप्तचूर्णद्वारा महाराज युधिष्ठिरको मिला, तब उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—‘केगव ! दुर्योधनका ‘कौन वीर कितने समयमें सेनासहित पाण्डवोंका वध कर सकता है ?’ इस प्रश्नपर पितामह और कृपचार्यने एक महीनेमें हम सर्वोंको मार डालनेकी प्रतिज्ञा की है । द्रोणाचार्यने पठह दिनोमें, अश्वत्थामाने दस दिनोंमें और मदा मुझे भयमीत करनेवाले कर्णने तो छः ही दिनोंमें सेनासहित पाण्डवोंको मारनेकी घोषणा की है । देवकीनन्दन ! कथा हमारे पक्षमें ऐसा कोई योद्धा नहीं, जो इसकी कोई ग्रतिक्रिया कर सके ।’

राजा युधिष्ठिरका यह बचन सुनकर अर्जुन बोले—

‘महाराज ! भीष्म आदि महारथियोंकी ये सारी घोषणाएँ असगत हैं, क्योंकि युद्धसम्बन्धी जय-पराजयका निश्चय किसी कामका नहीं होता । इधर आपके पक्षमें भी बहुतसे दुर्धर्ष प्राजा हैं, जो कालके समान अजेय हैं । भला सत्यकि, भीमसेन, द्रुपद, घटोत्कच, विराट, धृष्टद्युम्न आदिसे कौन पार पा सकेगा । सर्वथा अजेय भगवान् श्रीकृष्ण भी आपके ही पक्षमें है । मैं तो समझता हूँ इनमेसे एक-एक वीर सारी कौरव-सेनाका सहार कर सकता है । भला, बूढ़े वावा भीष्म, द्रोण और कृपसे अपनेको क्या भय है । पर इतनेपर भी यदि आपके चित्तको शान्ति न होती हो तो लीजिये—मैं अकेला ही युद्धमें सेनासहित समस्त कौरवोंको एक ही दिनमें नष्ट कर सकता हूँ—यह घोषणा मेरी है ।’

अर्जुनकी वात सुनकर वर्वरीकने कहा—‘महात्मा अर्जुन-की प्रतिज्ञा मेरे लिये असह्य हो रही है । इसलिये मैं कहता हूँ, अर्जुन और श्रीकृष्णसहित आपलोग सब खड़े रहें । मैं एक ही मुहूर्तमें सारी कौरव-सेनाको यमलोक पहुँचा देता हूँ । सिद्धान्विकाके दिये इस खड़ग तथा मेरे इन दिव्य धनुष-बाणोंको तो जरा देखिये । इनके सहारे मेरा यह कृत्य सर्वथा सुगम है ।’

वर्वरीककी वात सुनकर सभी क्षत्रिय चिसित हो गये । अर्जुन भी लजित हो गये और श्रीकृष्णकी ओर देखने

लो । श्रीकृष्णने कहा—‘पार्थ ! वर्वरीकने अपनी शक्तिके अनुरूप ही वात कही है । इसके विपर्यमें वड़ी अद्भुत वातें सुनी जाती हैं । पहले इसने पातालमें जाकर नौं क्रोड दैत्योंसे धणभरमें मौतके घाट उतार दिया था ।’ फिर उन्होंने वर्वरीकसे कहा—‘वत्स ! तुम भीष्म, द्रोण, कृष्ण, कर्ण आदि महान् धर्मीसे सुरक्षित सेनाको इतना शीघ्र कैसे गार सकोगे ? इनार विजय पाना तो महादेवजीके लिये भी कठिन है । तुम्हारे पास ऐसा कौन-सा उपाय है, जो इस प्रकारकी वात कह रहे हो । मैं तुम्हारी इस वातपर कैसे विचार करूँ ?’

वासुदेवके द्वय प्रकार पूछनेमर वर्वरीकने तुरंत ही अपना धनुष नद्वाया और उत्तरग वाण संधान किया । फिर उस वाणको उसने लाल रंगके भस्मसे भर दिया और कानतक लांचकर छोड़ दिया । उस वाणके मुखमें जो भस्म उद्वा, वह दोनों गेनाओंके मर्मस्थलोंपर गिरा । केवल पाँच पाण्डव, कृष्णाचार्य और अद्वत्थामाके शरीरसे उसका सर्व नहीं हुआ । अब वर्वरीक बोला—‘आपलोगोंने देखा ! दूस कियागे मैंने सरनेवाले वीरोंके मर्मस्थलका निरीक्षण कर लिया । अब चम दो घड़ीमें इन्हें गार गिराता हूँ ।’

वह देव-नुनकर युधिष्ठिर आदिके चित्तमें वड़ा विस्मय हुआ । भर्ती लोग वर्वरीकको ‘धन्य ! धन्य !’ कहने लगे । दूसमें गहान कोलाहल छा गया । इतनेमें ही श्रीकृष्णने अपने नीक्षा चक्रमें वर्वरीकका भस्मक काट गिराया । इससे भीष्म, विश्रेतकन आदिको वड़ा छेंग हुआ । इसी गमय भिद्धभिका आदि देवियों वहाँ आ पहुँचाँ और उन्होंने बनलाया कि इसमें श्रीकृष्णका कोई अपराध नहीं । वर्वरीक पूर्वजन्ममें सूर्यवचानामका यश था । जब पृथ्वी भारते व्रतगकर मेह पर्वतपर देवताओंके सामने अपना दुग्धवड़ा रो रही थी, तब इसने कहा था कि मैं अकेला ही अवतार लेकर सब दैत्योंका संहार करूँगा । मेरे रहते किसी देवताको भी पृथ्वीपर अवतार करूँगा ।

लेनेकी आवश्यकता नहीं ।’ इसपर ब्रह्माजीने कुद्र होकर कहा था—‘दुर्मते ! तू मोहवदा यह दुस्साहस कर रहा है । अतएव जब पृथ्वीभार-नाशके लिये युद्धका आरम्भ होगा, उसी समय श्रीकृष्णके हाथसे तेरे शरीरका नाश होगा ।’

तदनन्तर श्रीकृष्णने फिर चण्डिकासे कहा—‘इसके सिरको अमृतसे संचो और राहुके सिरकी भाँति अजर-अमर बना दो । देवीने वैसा ही किया । जीवित होनेपर मस्तकने भगवान् की प्रणाम किया और कहा—‘मैं युद्ध देखना चाहता हूँ ।’ तब भगवान् ने उसके मस्तकको पर्वत-शिखरपर लिएर कर दिया । जब युद्धसमाप्त हुआ, तब भीमसेनादिको अपने युद्धका वड़ा गर्व हुआ और सब अपनी-अपनी प्रदानी करने लगे । अन्तमें निराय हुआ कि चलकर वर्वरीकके मस्तकसे पूछा जाय । जब उससे जाकर पूछा गया, तब उसने कहा—‘मैंने तो शत्रुओंके माथ केवल एक ही पुष्पको युद्ध करते देखा है । उस पुष्पके वार्षी और पाँच मुख और दस हाथ थे, जिनमें वह चिश्चूल आदि आशुध धारण किये था और दाहिनी ओर उसके एक मुख और चार भुजाएँ थीं, जो चक्र आदि शक्तियोंसे मुमुक्षित थे और दाहिनी ओरके मस्तक पर मुकुट जगमगा रहा था । वह वार्षी और भस्म धारण किये था और दाहिनी ओर चन्दन लगा था । वार्षी और चन्द्रकला चमक रही थी और दाहिनी ओर कौस्तुभमणि श्लमला रही थी । उसी (रुद्र-विष्णुस्प) पुष्पने सारी कौरव सेनाका विनाश किया था । मैंने उसके अतिरिक्त किसी अन्यको सेनाका संहार करते नहीं देखा ।’ उसके यों कहते ही आकाशमण्डल उद्भासित हो उठा । उससे पुण्यवृष्टि होने लगी और साधु-साधुकी ध्वनिसे आकाश भर गया ।

इसपर भीष्म आदि अपने गर्वपर बड़े लजित हुए ।—जा०श०

(स्वन्दुपुराण, मातेश्वरस्थान, कुमारिकास्थान द१-६२)

जुआरीसे राजा

(स्वर्गमें अद्भुत दाता)

सद्गमे, पृथ्वीपर गिरा और मूर्च्छित हो गया । जब होश आया तब उसे वड़ा, खेद तथा वैराग्य हुआ । उसने अपनी सारी सामग्री बड़े शुद्धचित्तसे वहीं पड़ रहे एक शिवलिङ्गको समर्पित कर दी । वस, जीवनमें उसके द्वारा यह एक ही पुण्यकर्म सम्पन्न हुआ ।

कालान्तरमें उसकी मृत्यु हुई । यमदूत उसे यमलोक ले

गये। यमराज बोले—‘ओ मूर्ख! तू अपने पापके कारण बड़े-बड़े नरकोंमें यातना भोगने योग्य है।’ उसने कहा—‘महाराज! यदि मेरा कोई पुण्य भी हो तो उसका विचार कर लीजिये।’ चित्रगुप्तने कहा—‘तुमने मरनेके पूर्व थोड़ा-सा गन्वमात्र भगवान् शङ्करको अर्पित किया है। इसके फल-स्वरूप तुझे तीन घड़ीतक स्वर्गका शासन—इन्द्रका सिंहासन प्राप्त होगा।’ जुआरीने कहा—‘तब कृपया मुझे पहले पुण्यका ही फल प्राप्त कराया जाय।’

अब यमराजकी आजासे उसे स्वर्ग भेज दिया गया। देवगुरु वृहस्पतिने इन्द्रको समझाया कि ‘तुम तीन घड़ीके लिये अपना सिंहासन इस जुआरीके लिये छोड़ दो। पुनः तीन घड़ीके बाद यहाँ आ जाना।’ अब इन्द्रके जाते ही जुआरी स्वर्गका राजा बना। उसने सोचा कि ‘वृत्त, अब भगवान् शङ्करके अतिरिक्त कोई शरण नहीं।’ इसलिये अनुरक्त होकर उसने अपने अधिकृत पदार्थोंका दान करना आरम्भ किया। महादेवजीके उम भक्तने ऐरावत हाथी अगत्यजीको दे दिया। उच्चैश्च अथ विश्वामित्रजीको दे डाला। कामधेनु गाय महर्षि वसिष्ठको दे डाली। चिन्तामणि रत्न गालवजीको समर्पित किया। कल्पवृक्ष उड़ाकर कौण्डिन्य मुनिको दे दिया। इस प्रकार जवतक तीन घड़ीयों समाप्त नहीं हुईं वह

दान करता ही गया और प्रायः वहाँके सारे बहुमूल्य पदार्थोंको दे ही डाला। इस प्रकार तीन घड़ीयों बीत जानेपर वह स्वर्गसे चला गया।

जब इन्द्र लौटकर आये, तब अमरावती ऐश्वर्यशून्य पड़ी थी। वे वृहस्पतिजीको लेकर यमराजके पास पहुँचे और विगड़कर बोले—‘धर्मराज! आपने मेरा पद एक जुआरीको देकर बड़ा अनुचित कार्य किया है। उसने वहाँ पहुँचकर बड़ा बुरा काम किया। आप सच मानें उसने मेरे सभी रत्न अष्टप्रियोंको दान कर दिये और अमरावती सूनी-सी पड़ी है।’

धर्मराज बोले—‘आप बूढ़े हो गये, किंतु अभीतक आपकी राज्य-विपर्यक आसक्ति दूर नहीं हुई। जुआरीका पुण्य आपके सौ यजोसे कही महान् हुआ। वही भारी सत्ता हस्तगत हो जानेपर जो प्रमादमें न पड़कर सत्कर्ममें तत्पर होते हैं, वे ही धन्य हैं। जाइये, अगस्त्यादि अष्टप्रियों-को धन देकर या चरणोंमें पड़कर अपने रत्न लौटा लीजिये।’ ‘वहुत अच्छा’ कहकर इन्द्र स्वर्ग आये और इधर वही जुआरी पूर्वाभ्यासवग्रात् तथा कर्मविपाकानुसार विना नरक भोगे ही महादानी विरोचनपुत्र बलि हुआ। —जा० श० (स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड, केदारखण्ड, अध्याय १८)



हृष्ट निष्ठा

पर्वतराजकुमारी उमा तपस्या कर रही थी। उनके जो निन्य-आराध्य हैं, वे ठहरे नित्यनिष्काम। उन योगीक्षर चन्द्रमौलिमे कामना होगी और वे पाणिग्रहण करेंगे किसी कुमारीका, यह तो सम्भावना ही नहीं। परतु वे हैं आशुतोष। जब वे औद्धरदानी प्रसन्न हो जाते हैं, उनके चरणोंमें किसीकी कैसी भी कामना अपूर्ण कहो रही है। इसलिये पार्वती उन शशाङ्कगोखरको तपस्यासे प्रसन्न करना चाहती थीं।

जिसकी आराधना की जा रही थी, वह स्वयं आया था, किंतु जवतक वह स्वयं अपना परिचय न दे, उसे कोई पहचान कैसे सकता है। पार्वतीके समुख तो एक युवक ब्रह्मचारी खड़ा था। रुखी जटाएँ, वल्कल पहिने, कमण्डल और पलाशदण्ड लिये वह ब्रह्मचारी—बड़ा वाचाल था वह। तपस्विनी उमाका अर्थ स्वीकार करनेसे पूर्व ही उसने उनकी

तपस्याका कारण पूछा और तब उसकी बाणी पता नहीं कैसे अनियन्त्रित हो उठी—

‘ममी देवता और लोकपाल तुम्हारे पिता हिमाल्यके प्रदेशोंमें ही रहते हैं। तुम्हे-जैसी सुकुमारी क्या तपस्यके योग्य है? मैंने दीर्घकालतक तप किया है, चाहो तो मेरा आधा या पूरा तप ले लो, पर तुम्हें चाहिये क्या? तुम्हें अलभ्य क्या है? तुम इच्छा करो तो त्रिमुखनके स्वामी भगवान् विष्णु भी ……।’

लेकिन उमाने ऐसा भाव दिखाया कि ब्रह्मचारी दो ध्यानको रुक गया; किंतु वह फिर बोला—‘तुम्हें क्या धुन चढ़ी है? योग्य वरमें तीन गुण देखे जाते हैं—१-सौन्दर्य, २-कुलीनता और ३-सम्पत्ति। इन तीनोंमेंसे एक भी नाम-मात्रको भी डिवमें है? नीलकण्ठ, त्रिलोचन, जटाधारी, विभूति पोते, सौप लपेटे, त्रिशूल, ढमरू और स्वप्नर लिये गिवमें कहीं सौन्दर्य दीखता है तुम्हें? उनकी सम्पत्तिका तो

पूछना ही क्या—नगे रहते हैं या बहुत हुआ तो चमड़ा लेट लिया। कोई नहीं जानता कि उनकी उत्तरि ऐसे हुई।

ब्रह्मचारी पता नहीं क्या-क्या कहता मिन्तु यह आराध्य-की निन्दा सुने कौन? उमाका तो इह निश्चय था—

जनन कोटि लगि गर दूर हमारी। वर्ते समु न त रहें कुर्गां॥

अत वे अन्यत्र जानेको उठ खड़ी हुईं। जहें ऐसी इह निया है, वहें लक्ष्य कहीं अप्राप्त रह सकता है।

—नृ० मि०

किसी भी वहानेसे धर्मका त्याग नहीं कर सकता

पॉचों पाण्डवोंने गगान् व्यासनी अनुमतिसे यह नियम कर लिया था कि एक नियमित समयकर द्रौपदीके साथ एक भाई एकान्तमें रहेगा। उस समय दूसरे भाई वहाँ नहीं जाएगा। यदि कोई द्रौपदीके एकान्तवासको देख देगा तो वह बाहर वर्षके लिये राज्यसे बाहर निर्वासित होकर रहेगा। एक बारकी बात है। छुटेगेने ब्राह्मणकी गायें लूट लीं। उन्होंने युकार मचायी। अर्जुनने ब्राह्मणको आश्वासन लिया। पर वह अड़चन थी कि जिस घरमें अर्जुनने अवृत्युत्त्र थे, उसीमें द्रौपदीजीके पास नजा युधिष्ठिर थे। अर्जुनने ब्राह्मणके गोथनकी तथा दुष्प्रियरें गत्यर्थर्मकी रक्षाके लिये घरमें जाकर अब लनेका निश्चय किय और वे घरमें जाकर घनुप आदि ले आये और ब्राह्मणकी गौ छुटा लये।

ग्रन ताल युधिष्ठिरके पास जाकर अर्जुनने कहा—

‘महाराज! मैंने एकान्त घरमें जाकर नियम भड़ा किया है, अब बाहर वर्षके निर्वासितकी सुने आजा दीजिये।’ युधिष्ठिरने व्याकुल होकर कहा—‘मार्द! तुमने तो मेरा राज्य धर्म बचाया है, ब्राह्मणकी रक्षा की है, अबने धर्मका पालन किया है। मुझे इससे तनिक भी दुख नहीं हुआ।’ फिर वडा भाई यदि अननी पत्नीके पास वैटा हो तो वहाँ छोटे भाईका जाना अपराध नहीं है। हों, वडे भाईको छोटे भाई-के एकान्तमें नहीं जाना चाहिये। इससे न तो तुम्हारे धर्मका लोप हुआ है, न मेरा अपमान। अतएव तुम यह विचार छोड़ दो। अर्जुनने कहा—‘महाराज! आपकी ही तो वह सम्मति है कि धर्मके पालनम कोई भी वहानेवाली नहीं करनी चाहिये।’ फिर मैं किसी वहानेका सहाय लेकर धर्म क्यों छोड़ूँ। किसी भी युक्तिसे मैं अननी सत्य-प्रतिज्ञाको नहीं तोड़ सकता।’ युधिष्ठिरने मूँक सन्मति दी। अर्जुन चले गये।

नियम-निष्ठाका प्रभाव

महर्षि जरल्काशने पिनरोंकी आजासे वद्यरम्यरा चलनेके लिये विवाह करना भी न्वीकार किया तो इस नियमके साथ कि वे तभी विवाह करेंगे जब उनके ही नामवाली कन्याको कन्याके अभिमानक उन्हें मिलाकी भौति अपीत करें। परन्तु भाग्यका विद्यान सफल होकर ही रहता है। नागगज वासुकिकी वहिनका नाम भी जरल्काश था और उसे लाकर न्वय वासुकिने ऋषिको अर्पित किया।

ऋषिने वासुकिसे कहा—‘अगरनी वहिन और उससे उत्तरन्त्र होनेवाली सतानका भन्यग्रोगण तुम्हें ही करना पड़ेगा। मैं तभीतक इसके साथ रहूँगा, जबतक वह मेरी आजा मानेगी। और मेरे किसी काममें विश्व नहीं डालेगी। मेरे किसी कार्यम इसके द्वारा आशा पढ़ी तो मैं उसे छोड़कर चला जाऊँगा। तुम्हें यह सब न्वीकार हो तभी मैं इसे छानी बनाऊँगा।’

ब्रह्माजीने वासुकि नागको बतलाया था कि गजा जनमेजय

आये सर्पयज्ञ करेंगे। उस सर्पयज्ञसे वासुकि तथा अन्य धर्मात्मा नागोंकी रक्षा ऋषि जरल्काशका औरस पुत्र ही कर नकरेगा। इसलिये ऋषिकी सब वातें वासुकिने स्वीकार कर लीं।

जरल्काश ऋषि पत्नीके नाथ नागलोकमें आनन्दपूर्वक रहने लगे। उनकी पत्नी वडी सावधानीसे ऋषिकी सेवामें तन्त्र रहने लगी। वे अपने तेजस्वी पतिकी प्रनेक आजाका पालन करनी और उन्हे सतुर रखनेका पूरा म्यान रखती।

एक दिन सध्याके समय दिनभरकी उपासना एव तपस्यामे थके ऋषि पत्नीकी गोदमें मस्तक रखकर सो रहे थे। सूर्यासुका समय हो गया। ऋषिपत्नी चिन्तित होकर सोन्दने लगी—‘यदि मैं इन्हें जगाती हूँ तो ये त्रोदश करके मुझे त्यागकर चले जायेंगे और यदि नहीं जगाती हूँ तो सर्वास्त हो जायगा, सापकालकी मध्याका समय वीत जानेमे इनका धर्म नष्ट होगा।’

उस पतिव्रताने अन्तमें निश्चय किया—‘मुझे अपने

स्वार्यका त्याग करना चाहिये । भले क्रोध करके पतिदेव मुझे त्याग दे, किंतु उनका धर्म सुरक्षित रहना चाहिये ।' उसने नम्रतापूर्वक कहा—'देव । सूर्यनारायण अस्ताचलपर जा रहे हैं । उठिये । सध्या-वन्दन कीजिये । आपके अभिहोत्रका समय हो गया है ।' ऋषि उठे । क्रोधसे उनके नेत्र लाल हो गये, होठ फड़कने लगे । वे बोले—'नागकन्या । तूने मेरा अपमान किया है, अब अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मैं तौरे पास नहीं रह सकता । मैंने नियमपूर्वक सदा सूर्यको समयपर अर्ध्य

दिया है, अतः मेरे उठकर अर्ध्य देनेतक वे अस्त हो नहीं सकते थे । किसी नियम-निष्ठकी निष्ठाका लोप करनेकी शक्ति किसी देवता या लोकपालमें नहीं होती ।'

ऋषि चले गये । वे निल्य विरक्त—उन्हें तो एक वहना चाहिये था गृहस्थिसे छुटकारा पानेके लिये । नागकन्या जरकार उस समय गर्भवती थीं । उनके गर्भसे नागोंको जन्मेजयके सर्पयज्ञसे वचानेवाले आस्तीक मुनि उत्सन्न हुए ।

—सु० सिं० (महाभारत, आदि० ४७)

आसक्तिसे बन्धन

भगवान् ऋषभदेवने विरक्त होकर बनमें जाते समय अपने मौ पुत्रोंसे ज्येष्ठ पुत्र भरतको राज्य दिया था । दीर्घ कालतक भरत पृथ्वीके एकच्छत्र मम्राट् रहे और धर्मपूर्वक उन्होंने प्रजाका पालन किया । उनकी पत्नी पतिव्रता एव सुश्रीला थी तथा उनके पॉच्चों पुत्र पितृभक्त तथा गुणवान् थे । ममी सेवक-सचिव महाराज भरतकी सेवामें तत्पर रहते थे । परतु मनुष्य-जीवनका लक्ष्य भोग तो है नहीं । भरत स्वय विद्वान्, भगवद्भक्त एव विधर्योंमें अनासक्त थे और अपने पिता ऋषभदेवसे भी उन्हें दैवी सम्पत्ति ही प्राप्त हुई थी । प्रजापालन तो पितृ-आज्ञा मानकर कर्तव्य-नुष्ठिसे वे करते थे । जब पुत्र युवा हो गये, तब भरूतने उन्हें राज्यका भार सोप दिया और स्वय एकाकी, निष्परिह भगवदाराधनके लिये राजधानीसे दूर पुलहाश्रम चले गये । जो कलतक नमन्त भोगोंकी गोदमें कीड़ा करता था, समस्त भूमण्डल-का सम्राट् था, वह स्वेच्छासे बनमें कठोर तपस्त्री-जीवन व्यतीत करने लगा ।

बनके पुष्प, फल आदि एकत्र कर लाना और उससे भगवान्की पूजा करना—यही भरतका दैनिक जीवन हो गया । जप, तप और पूजन—बनमें भी गये तो स्नान करने या पूजन-सामग्री लाने—पूरा जीवन आरावनामय बन गया भरतका । वे विवेकी थे, भगवद्भक्त थे, विरक्त थे और अब इस तपस्याने रहे-सहे चित्तके मल्कों भी समाप्तप्राप्य कर दिशा ।

सयोगकी बात—एक दिन भरत अपने आश्रमके पासकी नदीमें लान करके जलमें ही खड़े-खड़े जप कर रहे थे, उसी समय अपने यूथसे फिरी प्रकार विछुड़ी हुई अफेली मृगी वहाँ नदीमें जल पीने आयी । मृगी प्यासी थी, थकी थी, गर्भवती थी । वह पृग जल पी भी नहीं सकी थी कि बनमें

कहीं पास ही मिहकी गर्जना सुनायी पड़ी । भयके मारे मृगी विना प्यास बुझाये ही धूमी और कगारपर जानेके लिये छलाँग लाग दी उसने । फल यह हुआ कि उस पूर्णगर्भ हिरनीके पेटका वचा निकल पड़ा और नदीके जलमें गिरकर प्रवाहमें बहने लगा । मृगी इस धक्केको सह नहीं सकी, वह किसी प्रकार कुछ दूर गयी और अन्तमें एक पर्वतीय गुफामें बैठ गयी । वही प्राण त्याग दिये उसने ।

जलमें जप करते खड़े भरतजी यह सब देख रहे थे । मृगीके गर्भसे जलमें गिरा वचा जब प्रवाहमें बहने लगा, तब उनको दिया आ गया । उन्होंने उस नवजात मृगशिशुको जलमे उठा लिया गोदमें और जप समाप्त करके उसे लेकर अपनी कुटियामें आ गये । वे उस हिरनके बच्चेको ले तो आये, किंतु एक समस्या खड़ी हो गयी कि उसकी जीवन-रक्षा कैसे हो । किसी प्रकार सतत सावधानीसे भरतने उसे वचा लिया । कुछ दिनोंमें मृगशिशु स्वय तृग चरने शुरू हो गया ।

यहाँतक सब बातें ठीक हुईं । एक मृत्युके मुखमें पहे प्राणीको वचा लेना कर्तव्य था, पुण्य था और नदीसे निकाल देनेसे ही वह कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता था । मृगशिशु स्वय आहार लेनेमें और दौड़नेमें समर्थ न हो जाय, वहाँतक उसका पालन एव रक्षा तो सर्वथा उचित थी, किंतु मनके भीतर जो मायाके सेवक छिपे बैठे हैं, वे तो जीवको वौधनेका समय देखनेरहते हैं । कभीके सम्राट् भरत, जो साम्राज्यके वैभवका, अपने पुत्रादिका भी त्याग कर चुके थे, उनकी आसक्ति मनसे सर्वथा निकाल चुके थे, बनमें एकाकी थे । अकेलेपनका गुप्त भान था मनमें और सप्ताहाँतक उन्हें उस मृगशिशुका वरावर ध्यान रखना पड़ा । सावधानीसे उसका पालन करना पड़ा । मोहको अवसर मिल गया, अनासक्त भरतकी मृग-

शिशुमें आसक्ति हो गयी। उस हिस्तीके वच्चेमें उन्हें ममत्व हो गया।

मन बड़ा धूर्त है। वह अपने दोषोंको कर्तव्य, धर्म, आवश्यक आदि नाना तकोंसे सिद्ध करता ही रहता है। भरतके मनने भी उनसे कहना प्रारम्भ किया—‘यह वेचारा मृगशावक अनाथ है, इसकी माता मर गयी है, अब हमी इसके माता-पिता हैं, यह हमारी शरण है, इसका पालन-पोषण हमारा कर्तव्य है।’ मनके दोष जहाँ एक बार अवसर पा जाते हैं, वहाँ फिर तरख्से समुद्र बनते उन्हें कहाँ देर लगती है। मृगशावकमें भरतका मोह बढ़ता गया। वे सध्या-पूजाके बीचमें भी उसे उठकर देख लेते, पूजनके पश्चात् उसे आशीर्वाद देते, यदि मृगशावक कहीं बनमें चला जाता तो व्याकुल होकर उसकी प्रतीक्षा करते और कुछ देर होती उसके लौटनेमें तो उसके सङ्कुशल लौटनेकी देवताओंसे प्रार्थना करने लगते।

काल तो किसी वातकी प्रतीक्षा करता नहीं। भरतका भी जीवनकाल समाप्त हुआ और मृत्युका समय आया। मृगशावक, जो अब मृग हो चुका था, उनसे अत्यन्त प्रेम करने लगा था। मृत्युके समय वह उनके समीप बैठा उनकी ही ओर देख रहा था। भरत भी उसे बड़े स्नेहसे देख रहे थे और व्याकुल होकर सोच रहे थे—‘मेरे बिना यह वेचारा कैसे रहेगा?’ इसी दशामें उनका शरीर छूट गया। भगवान् ने तो स्पष्ट चता दिया है गीतामें—

य यं चापि सरन् भाव स्थजत्यन्ते कलेवरम् ।
त तमेवैति कौन्तेय सदा तदभावभावित ॥

(८।६)

साम्राज्यत्यागी विरक्त, शास्त्रज्ञ और ज्ञानी, दीर्घकालतक भगवदाराधना करनेवाले भरत मृगशावकका चिन्तन करते गए, इससे उन्हें मृगयोनिमें जन्म लेना पड़ा। उनका जन्म हुआ कालिङ्गरमें एक मृगीके गर्भसे। परतु भगवान् की आराधना व्यर्थ नहीं जाती। भरतको उनकी आराधनाने यह शक्ति दे दी थी कि मृगशरीरमें भी उन्हें पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा। फल यह हुआ कि जैसे ही मृगशरीरमें वे चलनेदौड़ने योग्य हुए कि कालिङ्गरसे भागकर अफेले ही फिर पुलहाश्रम आ गये और वहाँ केवल वृक्षोंसे अपने आप सुखकर गिरे पते खाकर रहने लगे। समय आनेपर वहाँके पवित्र तीर्थ-जलमें स्नान करके उन्होंने शरीर त्याग दिया।

भरतका तीसरा जन्म हुआ एक ब्राह्मणके यहाँ। यहाँ भी उन्हें अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण तथा शान बना रहा। इसलिये उन्होंने अपनेको ऐसा बना लिया जैसे वे सर्वथा बुद्धिमान्, पागल हों। उन्हें ब्राह्मण भय रहता था कि बुद्धिमान् एव व्यवहारकुण्डल बननेसे सासारिक व्यवहारमें पहकर कहीं आसक्ति न हो जाय। उनके व्यवहारका अटपटापन देखकर लोग उन्हें ‘जड़’ कहने लगे। इससे उनका नाम ही जडभरत पड़ गया। यही उनका अन्तिम जन्म था।—सु० सिं० (श्रीमद्भागवत ५। ७-८)

श्रद्धा, धैर्य और उद्योगसे अशक्य भी शक्य होता है

महाराज सगरके साठ सहस्र पुत्र महर्षि कपिलका अपमान करके अपने ही अपराधसे भस्त हो गये थे। उनके उद्धारका केवल एक मार्ग था—उनकी भस्त गङ्गाजलमें पड़े। परतु उस समयतक गङ्गाजी पृथ्वीपर आयी नहीं थीं। वे तो ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके कमण्डलमें ही थीं। सगरके पौत्र अशुमान् ने उनको पृथ्वीपर लानेके लिये तपस्या प्रारम्भ की और तपस्या करते-करते ही उनका देहावसान भी हो गया। उनके पुत्र दिलीपने तपस्या करके पिता के कार्यको पूरा करना चाहा, किंतु वे भी असफल रहे। उनकी आयु भी तपस्या करते-करते समाप्त हो गयी। दिलीपके पुत्र भगीरथने जैसे ही देखा कि उनका ज्येष्ठ पुत्र राज्यकार्य चला सकता है, उसे राज्य दे दिया और स्वयं बनमें चले गये। पिता-पितामह

जिस कार्यको पूरा नहीं कर सके थे, उसे उन्हें पूरा करना था।

दीर्घकालीन तपस्याने पश्चात् गङ्गाजीने प्रसन्न होकर दर्भान् भी दिया तो बोलीं—‘मेरे बेगको सहेगा कौन? वैसे भी मैं पृथ्वीपर नहीं आना चाहती, क्योंकि यहाँके पापी मुझमें स्नान करेंगे। उनका पाप मुझमें रह जायगा। वह पाप कैसे नष्ट होगा?’

भगीरथने निवेदन किया—‘भगवान् शंकर आपका बेग सम्भाल लेंगे। पापका भय आप न करें। भगवद्गत महात्मा-गण भी आपमें स्नान करेंगे। उनके हृदयमें पापहारी श्रीहरि निवास करते हैं। अतः उन भक्तोंके स्पर्शसे आप सदा शुद्ध बनी रहेगी।’

गङ्गाजी प्रसन्न हो गयी। भगीरथको फिर तपस्या करके शंकरजीको प्रसन्न करना पड़ा। आशुतोषने गङ्गाजीको मस्तक पर धारण करना स्वीकार कर लिया। परतु ब्रह्मलोकसे पूरे देवगमे आकर गङ्गाजी उन विराटमूर्ति धूर्जटिकी जटाओंमें ही समा गयीं। वहेंसे उनका एक बूँद जल भी बाहर नहीं आया। भगीरथने फिर सदाशिवकी स्तुति प्रारम्भ की, तब कहीं जटा निचोड़कर उकरजीने गङ्गाको बाहर प्रकट किया।

‘श्रेयासि बहुविज्ञानि।’ भगीरथके साथ गङ्गाजीने यह निश्चय किया था कि भगीरथ रथपर बैठकर आगे-आगे चलें और पीछे-पीछे गङ्गाजीका प्रवाह चले। किंतु कुछ दूर जानेपर भगीरथ देखते हैं कि गङ्गाका प्रवाह तो कहीं दीख नहीं रहा है। वात यह हुई कि मार्गमें गङ्गाजी जहु ऋषिका आसन-

कमण्डलु अपनी धाराके साथ बहा ले गयी, अतः क्रोधमें आकर ऋषिने गङ्गाको ही पी लिया था। भगीरथने पीछे लौटकर देखा कि गङ्गाजीके प्रवाहके स्थानपर रेत उड़ रही है। अब उन्होंने किसी प्रकार प्रार्थना करके ऋषिको प्रसन्न किया। ऋषिने गङ्गाको अपनी पुत्री बनाकर, जॉघ चौरकर बाहर निकाला। इससे गङ्गाजी जाहवी कहलायी।

भगीरथकी तपस्या, श्रद्धा, धैर्य और उद्योगके प्रभावसे उनके पूर्वज सगरके पुत्रोंकी भस्म गङ्गाजलमें पड़ी। वे मुक्त हो गये। साथ ही संसारका अपार कल्याण हुआ। परमणवन गङ्गा-प्रवाह मर्त्यलोकके प्राणियोंके लिये सुगम हो गया।

—सु० दि०

(श्रीमद्भागवत् १ । ८०)

लक्ष्यके प्रति एकाग्रता

द्रोणाचार्य पाण्डव एव कौरव राजकुमारोंको अख्य-शिक्षा दे रहे थे। वीच-वीचमें आचार्य अपने शिष्योंके हस्तलघव, लक्ष्यवेध, शम्भ्र-चालनकी परीक्षा भी लिया करते थे। एक बार उन्होंने एक लकड़ीका पक्षी बनवाकर एक सघन वृक्षकी कँची ढालपर रखवा दिया। राजकुमारोंको कहा गया कि उस पक्षीके बाये नेत्रमें उन्हें बाण मारना है। सबसे बड़े राजकुमार युधिष्ठिरने धनुष उठाकर उसपर बाण चढ़ाया। इसी समय आचार्यने उनसे पूछा—‘तुम क्या देख रहे हो ?’

युधिष्ठिर सहजभावसे बोले—‘मैं वृक्षको, आपको तथा अपने सभी भाइयोंको देख रहा हूँ।’

आचार्यने आजा दी—‘तुम धनुष रख दो !’

युधिष्ठिरने चुपचाप धनुष रख दिया। अब दुर्योधन उठे। बाण चढ़ाते ही उनसे भी वही प्रश्न आचार्यने किया। दुर्योधनने कहा—‘सभी कुछ तो देख रहा हूँ। इसमें पूछने की क्या बात है ?’

उन्हे भी धनुष रख देनेका आदेश हुआ। इसी प्रकार वारी-वारीसे भमी पाण्डव एव कौरव राजकुमार उठे। सबने धनुष चढ़ाया। सबसे वही प्रश्न आचार्यने किया। सबने लगभग एक ही उत्तर दिया। सबको यिना बाण चलाये धनुष रख देनेकी आजा आचार्यने दे दी। सबके अन्तमें आचार्यकी आजामे अर्जुन उठे और उन्होंने धनुषपर बाण चढ़ाया। उनसे भी आचार्यने पूछा—‘तुम क्या देख रहे हो ?’

अर्जुनने उत्तर दिया—‘मैं केवल यह वृक्ष देख रहा हूँ।’

आचार्यने फिर पूछा—‘मुझे और अग्ने भाइयोंको तुम नहीं देखते हो ?’

अर्जुन—‘इस समय तो मैं आपमेंसे किसीको नहीं देख रहा हूँ।’

आचार्य—‘इस वृक्षको तो तुम पूरा देखते हो ?’

अर्जुन—‘पूरा वृक्ष मुझे अब नहीं दीखता। मैं तो केवल वह ढाल देखता हूँ, जिसपर पक्षी है।’

आचार्य—‘कितनी बड़ी है वह शाखा ?’

अर्जुन—‘मुझे यह पता नहीं, मैं तो पक्षीको ही देख रहा हूँ।’

आचार्य—‘तुम्हे दीख रहा है कि पक्षीका रग क्या है ?’

अर्जुन—‘पक्षीका रंग तो मुझे इस समय दीखता नहीं। मुझे केवल उसका बाम नेत्र दीखता है और वह नेत्र काले रगका है।’

आचार्य—‘ठीक है। तुम्हीं लक्ष्यवेध कर सकते हो। बाण छोड़ो।’ अर्जुनके बाण छोड़नेपर पक्षी उस शाखासे नीचे गिर पड़ा। अर्जुनके द्वारा छोड़ा गया बाण उसके बाय नेत्रमें गहरा चुभा हुआ था।

आचार्यने अपने शिष्योंको समझाया—‘जबतक लक्ष्यपर दृष्टि इतनी श्विर न हो कि लक्ष्यके अतिरिक्त दूसरा कुछ दीखे ही नहीं, तबतक लक्ष्यवेध ठीक नहीं होता। इसी प्रकार जीवनमें जबतक लक्ष्य-प्राप्तिमें पूरी एकाग्रता न हो, सफलता सदिग्रध ही रहती है।’

—सु० मि०

(महाभारत, आदि० १३५-१३६)

सच्ची लगन क्या नहीं कर सकती

द्रोणाचार्य उन दिनों दृनिनापुरमें कुरुकुर्से वालक पाण्डव एवं कौरवोंको अब्रनज्जरी शिक्षा दे रहे थे। एक दिन एक काले रगका पुष्ट शर्गनवाल भी इन्हाँ उनके समीन आया। उसने आचार्ये चरणोंमें प्रणाम उनके प्रार्थना की—‘मेरे नाम एकलवृत्’। मैं उस आश्रुते आया हूँ कि आचार्य नुष्टपर भी अनुग्रह करेंगे और मुझे अब्रनज्जलन सिखायेंगे।^१

आचार्ये उस वालककी नवना प्रिय लगी, किंतु राजकुमारोंके साथ वे एक भी इन्हाँ वालको नहीं अनुमति दे नहीं सकते थे। उन्होंने कह दिया—‘केवल द्विजानि वालक ही किसी भी गुरुदृष्टि में लिये जाते हैं। आपेटके योग्य अब्रन-शिक्षा तो तुम अपने गुरुजनोंसे भी पा सकते हो। अब्रन-राजालनकी विद्युष शिक्षा तुम्हारे लिये अनाप्यक है। प्रजामलन एवं नंग्राम जिनका कार्य है, उनके लिये ही उसकी आवश्यकता भी है।’^२

एकलव्य बदौसे निराश होकर लौट गया। किंतु उसका उन्साह न रहा नहीं हुआ। उसमें अब्रन-शिक्षा पाने की सच्ची लगन थी। वनमें उसने एकान्तमें एक कुटिया बनाकर द्रोणाचार्यकी मिट्टीकी प्रतिमा, जो उसने स्वयं बनायी थी, स्थापित कर दी और स्वयं वनुप-व्याण लेकर उस प्रतिमाके सम्मुख अभ्यास करनेमें जुट पड़ा।

द्रोणाचार्य एक बार अपने शिष्योंके साथ वनमें घूमते हुए निकले। पाण्डवोंसे एक कुत्ता उनके नायसे अलग होकर वनमें उपर चल गया, जिवर एकलव्य लक्ष्यवेशका अन्याय कर रहा था। कुत्ता उस काढे भीलको देखकर भौंकने लगा। उसके भौंकनेमें एकलव्यके काममें बाधा पड़ी, इवलिये उसने वाणोंसे उस कुत्तेका मुख भर दिया। उससे व्यवरकर कुत्ता पाण्डवोंकी समीप भागा आया।

सभी पाण्डव तथा कौरव राजकुमार कुत्तेकी दवा

सच्ची निष्ठाका सुपरिणाम

पहले काशीमें माणिट नामके एक व्रात्यग रहते थे। उनके ओर्द पुत्र न था। अनएव उन्होंने साँ वप्पोंतक भगवान् अङ्गरकी अरणवनाकी। अन्तमें भगवान् प्रकट हुए और उन्हे अपने ही उमान पराक्रमी और प्रभावशाली पुत्र होनेका वरदान देकर अन्तर्वर्णन हो गये। अब माणिटकी पर्वीने गर्भवारण किया। चार वर्ष बीत गये गर्भका वालक बाहर नहीं निकला। माणिटने

देवतर हृसने लगे। किंतु अर्जुनको वडा आवश्य हुआ। कुत्तेसे मुखमें इस प्रसार वाण मारे गये थे कि कोइं वाण उसे रहा जुभा नहीं था, किंतु उसका पूरा मुख वाणोंसे उपाठम भर गया था। इतनी सावधानी और शीघ्रतासे वाण मानना कोई हैसी-खेड़ नहीं था। आचार्य द्रोग भी उस अद्भुत धनुर्धरकी चोजमें चल पड़े, जिसने यह अर्तिमित कार्य साम्य कर दियाया था।

द्रोणाचार्यको देखते ही एकलव्य दोङ्कर उनके चरणोंपर गिर पड़ा। उसकी कुठियामें मिट्टीकी बनी अपनी ही प्रतिमा देखतर आचार्य चकित हो उठे। किंतु इसी समय अर्जुनने धूमें उनसे कहा—‘गुरुदेव। आपने बचन दिया था कि आपके शिष्योंमें म सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होऊँगा। किंतु इस मीलके सम्मुख तो मेरा हस्तलब्ध नगण्य है। आपके बचन।’^३

आचार्यने सकेतसे ही अर्जुनको आश्वासन दे दिया। एकलव्यसे उन्होंने गुरुदक्षिणाकी भौंग की और जब उसने पूरा—‘काँस-सी मेवा करके मैं अपनेको धन्व मानूँ।’ तब आचार्यने दिना हिन्दके फह दिया—‘अपने दाहिने हाथना अँगूठा मुझे ढं दो।’^४

अनुपम वीर, अनुपम निश्चावान् एकलव्य अनुपम वीर भी मिद्द हुआ। उसने तलबार उठाकर दाहिने हाथका अँगूठा काढ़ा और आचार्यके चरणोंके पास उसे आश्रप्त्वेन रख दिया। अँगूठेके कट जानेमें वह वाण चलाने योग्य नहीं रह गया। वायं हाथमें वाण चला लेनेपर भी वह धनुर्धरकी गणनामें कमी नहीं आ सका। किंतु धनुर्धर होकर विद्युत होनेपर कितने दिन जगत् उसको समग्न करना। अपने त्यागके कारण अपनी निष्ठाके कारण, तो एकलव्य इतिहासमें अमर हो गया।

—सु० मि०

(मठभारत, बादि० १३०)

यह दवा देखकर कहा—‘पुत्र। मनुष्य योनिके लिये जीव तरसते हैं। सभी पुरुषार्थ जिसमें मिद्द हो, उस मनुष्य-श्रीमान् अनादर करके उस माताके उडरमें ही क्यों स्थित हो रहे हो?’ गर्भस्थ वालकने कहा ‘मैं यह सब जानता हूँ, पर मैं कालमें बहुत डर हा हूँ। यदि कालका भय न हो तो मैं बाहर आऊँ।’

यह सुनकर माणिट भगवान् मठाशिवकी शरण गये और

उनके आडेगसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यने आश्रामन दिया कि ‘हम तुम्हारे मनसे कभी अलग न होंगे।’ इसी प्रकार अधर्म, अज्ञानादिने भी कभी उनके पास न फटकनेकी प्रतिज्ञा की। ऐसा आश्रामन मिलनेपर भी जब वह वाल्क उत्तम हुआ तब कॉपने और रोने लगा। इसपर विभूतियोंने कहा—‘माणे। तुम्हारा यह पुत्र कालसे भीत होकर रोता और कॉपता है, इसलिये यह कालभीति नामसे प्रसिद्ध होगा।’

मस्कारोंसे युक्त होकर कालभीतिने पाशुपत मन्त्रकी दीक्षा ली और तीर्थयात्राके लिये निकल पड़ा। वह मही-सागर-मगमपरं पहुँचा और वहाँ स्नान करके उसने पूर्वोक्त मन्त्रका एक करोड़ जप किया। लौटनेपर एक विल्ववृक्षके समीप पहुँचनेपर उसकी इन्द्रियों लयको प्राप्त हो गयीं और क्षणभरमें वह केवल परमानन्द-स्वरूप हो गया। दो घड़ियोंतक समाधिमें स्थित होनेके पश्चात् वह पुनः पूर्वावस्थामें आया और वह देखकर उसे बड़ा विस्मय हुआ। वह मन-ही-मन कहने लगा, ‘मुझे ऐसा आनन्द किसी भी तीर्थमें नहीं मिला, लगता है यह स्थान अत्यन्त श्रेष्ठ है। अनः मे यद्यु रहकर बड़ी भारी तपस्या करूँगा।’

यां विचारकर कालभीति उसी विल्ववृक्षके नीचे एक अङ्गूठेके अग्रभागपर खड़ा होकर पाशुपत-मन्त्रका जप करने लगा। इस प्रकार सौ वर्ष वीत गये। तदनन्तर एक मनुष्य उनके सामने जलसे भरा घड़ा लेकर आया और बोला—‘महामने। आज आपका नियम पूरा हो गया। अब इस जलको ग्रहण कीजिये।’ इसपर कालभीतिने कहा, ‘आप किस वर्णके हैं। आपका आचार-न्यवहार कैसा है। इन सब वार्ताओंको आप व्यार्थ रूपसे बतलाइये। त्रिना इन सब रहस्योंको जाने में जल कैसे ग्रहण करूँ?’

इसपर आगन्तुक बोला, ‘मैं अपने माता-पिताको नहीं जानता। मुझे यह भी पता नहीं कि वे थे और मर गये या वे ये ही नहीं। सुतरा मैं अपना वर्ण-भी नहीं जानता। आचार और धर्म-कर्मसे भी मेंग कोई प्रयोजन नहीं है।’ इसपर कालभीतिने कहा, ‘अच्छा। यदि ऐसी वात है तो मैं आपका जल नहीं लेना। क्योंकि मैंने गुरुओंसे ऐसा सुना है कि ‘जिसके कुलका ज्ञान न हो, जिसके जन्ममें वीर्य-शुद्धिका अभाव हो, उसका अन्न-जल ग्रहण करनेवाला पुरुष तल्काल कष्टमें पड़ जाता है। साथ ही जो हीनवर्णका है तथा भगवान् शङ्करका भक्त नहीं है, उससे टानादि लेने-देनेका सम्बन्ध न करना चाहिये। इसलिये जलादि लेनेके पूर्व वर्ण तथा आचारादिका ज्ञान आवश्यक होता है।’

वह सुनकर उस पुरुषने कहा—‘तुम्हारी इस वातपर मुझे हँसी आती है। या तो तुम्हारा मस्तिष्क प्रिगड़ गया है या तो तुम्हारे गुरुको ही व्यथार्थ ज्ञान नहीं है, अथवा तुमने उनका ठीक अभिप्राय ही नहीं समझा। भला, जब सब भूतोंमें भगवान् शंकर ही निवास करते हैं, तब किसीकी निन्दा भगवान् शंकरकी ही निन्दा हुई। अथवा सभी शब्द तथा वस्तुएँ शिवमय होनेके कारण सर्वथा पवित्र हैं। अथवा यदि शुद्धिका ही विचार किया जाय तो इस जलमें क्या अपवित्रता है? यह घड़ा मिट्टीका बना हुआ है। फिर अग्रिसे पकाकर जलसे भरा गया है। इन सब वस्तुओंमें तो कोई अशुद्धि है नहीं। यदि कहो कि मेरे सर्सर्गसे अशुद्धि आ गयी, तब तो तुम्हें इस पृथ्वीपर न रहकर आकाशमें रहना, चलना-फिरना चाहिये; क्योंकि मैं इस पृथ्वीपर खड़ा हूँ। मेरे सर्सर्गसे यह पृथ्वी अपवित्र हो गयी है।’

इसपर कालभीतिने कहा—‘अच्छा ठीक। देखो, यदि सम्पूर्ण भूत शिवमय ही हैं और कहीं कोई भेद नहीं है तो ऐसा माननेवाले लोग भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थोंको छोड़कर मिट्टी क्यों नहीं खाते? रात्र और धूल क्यों नहीं फॉकते? भगवान् अवश्य सम्पूर्ण भूतोंमें है, पर जैसे सुवर्णके बने हुए आभूपूणोंमें सबका व्यवहार एक-सा नहीं होता, गलेका गहना गलेमें तथा अङ्गुलीका अङ्गुलीमें पहना जाता है तथा उनमें भी खोटे-दरे कई भेद होते हैं, उसी प्रकार ऊँच-नीच, शुद्ध-अशुद्ध—सबमें भगवान् सदागिव विराजमान है, पर व्यवहार-भेद आवश्यक है। जैसे खोटे सुवर्णको भी अशि आदिसे शुद्ध कर लिया जाता है, उसी प्रकार इस शरीरको भी व्रत, तपस्या और मदाचार आदिके द्वारा शुद्ध बना लेनेपर मनुष्य स्वर्गमें जाता है। इसी तरह भगवान्-के सर्वत्र व्याप्त होनेपर भी देहादिमें कर्मवशात् शुद्धि-अशुद्धि मानने और तन्मूलक आचारादिका पालन करनेमें कोई पागलपन या मूर्खता नहीं है। इसलिये मैं तुम्हारा जल किसी प्रकार नहीं ग्रहण कर सकता। यह कार्य भला हो या बुरा, मेरे लिये तो वेद ही परम प्रमाण है।’

कालभीतिके इस व्याख्यानको सुनकर वह आगन्तुक वडे जोरसे हँसा और उसने अपने दाहिने पैरके अङ्गूठेसे भूमि खोड़कर एक विग्राल और सुन्दर गर्त बना दिया तथा उसमें वह घडेका जल गिराने लगा। उससे वह गर्त भर गया, फिर भी घडेमेका जल बचा ही रहा। तब उसने दूसरे पैरसे भूमि

खोदकर एक वडा सरोकर बना दिया और थड़ेका बचा हुआ जल उस सरोवरमें डाल दिया, जिससे यह तालाब भी पूरा भर गया।

कालमीति उसके इस आश्र्यमय कर्तव्यसे तनिक भी चक्रित या विचलित न हुआ। उसने कहा—‘ऐसी अनेक पिचित्रताएँ भूत-प्रेनादिको सिंड करनेवालेमें भी देखी जाती हैं। इससे क्या हुआ?’ इनपर आगन्तुकने कहा—‘तुम हो तो मूर्ख, पर याते पण्डितों-जैसी रुते हो पुण्यवेत्ता विद्वानोंके मुन्से क्या यह अलोक तुमने नहा नुना—

कृष्णन्यस्य धर्मोऽन्यस्य रज्जुरन्यस्य भारत।

पायरख्येकं दिव्यन्येकं भर्वं ते समभागिन् ॥

‘भारत! हृओं दूसरेका, वडा दूसरेका और रन्धी दूसरेकी हैं। एक पानी पिलाता है और एक पीता है वे सब ममान फलके भागी होते हैं।’

अत कृष्णतालानादिके जर्में क्या दोष होगा, फिर अब तुम इस सुग्रेवरके जन्मको क्या नहा पीते?’

कालमीतिने कहा—‘आपका रुहना ठीक है, तथापि आपने अपने थड़ेके जन्मे हीं तो इम मनोरनों भर्य हैं। वह बान प्रल्यन देवउग्र मी मेरे-जैसा मनुष्य इस जन्मको कैमे पी मरकता है? अत मैं इस जन्मको किसी प्रकार नहा पीकूंगा।’

इस तरह कालमीतिके दृढ़ निश्चयने देवउग्र वह पुनर्य एक वार चून्ह जोराएं सैंड सा और धग-भगमें अन्तर्धान हो गया। अपनो नामीतिको वडा विस्तय हुआ। वह वार-वार सोचने

लगा—‘यह क्या वृत्तान्त है?’ इतनेमें ही उस विल्ववृक्षके नीचे एक अल्यन्त तेजस्वी वाणलिङ्ग प्रकट हो गया। आकाशमें गन्धर्व गाने लगे, इन्हने पारिजातके पुष्पोंकी वर्णी की। यह देखकर कालमीति भी वडी प्रसन्नतासे प्रणाम करके मक्ति-पूर्वक भगवान् शिवकी सुति करने लगे। सुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शकरने उस लिङ्गसे प्रकट होकर कालमीतिको प्रन्यक्ष दर्शन दिया और कहा, ‘तत्स! तुम्हारी आराधनासे म वडा मतुष्ट हूं। तुम्हारी धर्मनिष्ठाकी परीक्षाके लिये मैं ही वहाँ मनुष्यरूपमें प्रकट हुआ था और इस गड्ढे तथा सरोवरके जन्मको मैंने ही सब तीर्थोंके जलसे भर्य है। तुम मनोवाञ्छित वर माँगो। तुम्हारे लिये मुझे बुछ भी अदेय नहा है।’

आल्मीतिने कहा—‘यदि आप मतुष्ट हैं तो सदा यहाँ निवास करें। आपके इस शुभ लिङ्गपर जो भी दान, पूजन आदि किया जाय, वह अद्वित हो। जो इस गर्तमें स्नान करके पितरोंको तर्पण करे, उसे सब तीर्थोंका फल प्राप्त हो और उसके पितरोंको अक्षयगतिकी प्राप्ति हो।’ भगवान् सदाशिवने कहा—‘जो तुम चाहते हो, वह सब होगा। साथ ही तुम नन्दीके साथ मेरे दूमे द्वारानाल बनोगे। कालमार्गपर विजय पानेमें तुम महाकालके नामके प्रसिद्ध होओगे। यहाँ करन्धम आपेंगे, उन्हें उपदेश करके तुम मेरे लोकमें चले आना।’ इतना कहउग्र भगवान् अन्तर्धान हो गये। —जा० श०

(स्वल्पपुराण, माहेश्वरप्रगट, कुमारिकावगड, वायाय ३४)

सबसे वडा आश्र्य

वनमध्यराज युग्मित्रिके चारे भार्ट सरोगरके किनारे मृतक-के समान पड़े थे। व्यास तथा भ्रातृशूरमे व्याकुल युग्मित्रिरे ममुख एक यज्ञ प्रत्यक्ष वडा था। यज्ञके प्रशाका उत्तर दिये दिना जल पीनेके प्रवलमं हीं भीम, अर्जुन न कुल तथा सहवेवनी वह दशा हुई थी। युग्मित्रिसे यज्ञको उसके प्रद्योग उत्तर देना स्वीकार कर लिया था। यज्ञ प्रवलमर प्रश्न करना जारहा था। युग्मित्रिजो उसे धैर्यपूर्वक उत्तर देरहे थे। यज्ञके अन्तिम प्रश्नोंमें एक प्रश्न था—‘आश्र्यक्या है?’

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम् ।

त्रेषा स्थिरत्वमिद्धन्ति किमाश्र्यमत परम् ॥

‘नित्य-नित्य—प्रतिदिन प्राणी यमलोक जा रहे हैं। (सब देख रहे हैं कि प्रतिदिन उनके आधपास लोग मर रहे हैं)। परतु (फिर भी) वने हुए लोग स्थिर (अमर) वने रहना चाहते हैं, इससे वडा आश्र्य और क्या होगा?’ यह उत्तर था धर्मराजका। —सु० सिं० (महाभारत, बन० ३१३)

भगवत्कथा-श्रवणका माहात्म्य

तत्रैव गदा यमुना च तत्र गोडावरी मिन्युमरन्वती च ।
नद्य समक्षा अपि देवस्वाता नमन्ति यत्राच्युतमन्तकथायग ॥
न कर्मलोपो न च वन्धलेशो न दु स्लेशो न च जन्मयोग ।
न भूतयभागित्याच्योद्दा यत्राच्युतोऽरकथाप्रमङ्ग ॥

(वाय० माघमास० २० । ८, ६)

सत्ययुगका अन्तिम भाग समाप्त हो रहा था, तथकी बान है। गङ्गाजीमे दो कोस दक्षिण हटकर सत्यव्रत नामक ग्राममें एक महातपस्वी वृहत्तपा नामके ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने दीर्घतमा नामक एक जन्मान्य महर्षिको ल्पातार सौ वर्षतक भगवान्की कृथा सुनारी थी। उसी सत्यव्रत

गाँवमें एक और ब्राह्मण रहते थे, जिनका नाम या पुण्यधामा। जब वृहत्तंत्रकी कथा होने लगती, तब वे पुण्यधामाजी भी वहाँ अवश्य सुनने पहुँचते। वे पुण्यधामाजी इतने कथालोलुप थे कि सौ वर्षतक भगवत्कथा ही सुनते रह गये। यद्यपि गङ्गाजी वहाँसे दो कोसमर ही थी, तथापि वे कथालोलुप पुण्यधामाजी सौ वर्षतक वहाँ स्थान करने भी नहीं गये। इनका पूर्ण विचास या कि मात्रतंत्रकथाके समीप समस्त तीर्थ आ जाते हैं। अतएव वे अन्यान्य सभी क्रियाओंका मकोच करके केवल परम पुण्यमय शतकोटि-प्रविस्तर श्रीरामचरित्र, उन्हीं ही मंग्लव्याका पञ्चरात्र तथा सभी इतिहास, पुराण, वेद, वेदान्त आदि हरिचरितामृतका ही श्रवण करते रह गये। तीनों सत्याओंके समय वे दशगायत्रीका जप तथा अन्य नित्यकर्मोंका भी वे सक्षेपतः अनुष्ठान कर लेते थे। रात्रिमें तीर्थयात्रियोंकी सेवा भी वे वडे दत्तचित्त होकर करते थे। सक्षेपमें पुण्यधामाजीकी दो ही गतियाँ थीं—सदा विष्णुकथाका श्रवण और अतिथि-महात्माओंकी सेवा।

एक दिन पुण्यधामाजी जब कथा सुनकर लौटे, उसी समय उनके यहाँ दो महात्मा—वृतत्रत और ज्ञानमिन्दु—तीर्थयात्राने प्रसङ्गमें पधारे। पुण्यधामाजीने उन्हे देखा तो उनके चरणोंपर गिर पड़े, मधुपकार्दिसे उनकी पूजा की और अपने भाग्यकी सराहना करने लगे तत्पश्चात् उन्हे भोजन करकर उनके चरण ट्वाने लगे। पुण्यधामाजीकी पत्नी पखा हाँक रही थी। वात-चीतके प्रमाणमें दोनों महात्माओंने पुण्यधामाजीसे गङ्गाजीकी वहाँसे दूरी पूछी। पुण्यधामाजीने वतलाया—‘महाराज। मैं तो सौ वर्षोंसे कथा-श्रवणमें लगारहा हूँ। मुझे वहाँ स्वयं जानेका अवसर नहीं आया, अतएव सुनिश्चित रूपसे तो कुछ वतला नहीं सकता। तथापि कई बार लोगोंके मुहसे वह सुन चुका हूँ कि वे यहाँसे दो कोम उत्तर पड़ती हैं।

इतना सुनना था कि दोनों मुनि विगड़ पड़े। वे परस्पर कहने लगे—‘अहो, इसके समान दूसरा पापी कौन है, जिसने कभी गङ्गाकी सेवा नहीं की। भला, जो सैकड़ों योजनोंसे भी गङ्गा-नग्ना कहता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और वह विष्णुलोकको जाता है। गङ्गाके समीप होनेमर भी जो उनकी सेवा नहीं करता, वह आत्महत्यारा तो नर्वकर्ममें वाहिष्कृत करने योग्य है। देवों, पितरों तथा सुनियोंकी आशा भङ्ग करनेवाला वह अवश्य ही नरकमें जाता है। आज दुर्भाग्यवश्यात् अनजाने ही हमलोगों-को इसके भङ्गसे महान् पाप लग गया।’ यो कहकर वे

तत्काल वहाँसे उठकर चल दिये और प्रातःकाल वर्षा उत्कण्ठासे गङ्गा-तटपर पहुँचे। दूरसे ही नमस्कार करते हुए वे स्थानार्थ समीप पहुँचे तो उन्हे कही जल नहीं दीजा। वे गङ्गामारसे लेकर हिमालयतक गङ्गातटपर घूमते रहे, पर उन्हे नाममात्रको भी जल नहीं मिला। अन्तमें काशी लैट-कर वे गङ्गाजीकी प्रार्थना करने लगे—‘देवि ! देवगिरोमणि महादेवने भी आपको सिरपर धारण कर रखता है। आप भगवान् विष्णुके चरण-नक्षत्रसे निर्गत हुई हैं। आप समस्त लोकों पवित्र करनेवाली हैं। जगद्धात्री ! माता ! यदि हमसे कोई अपराध वन ही गया हो तो मॉ। आपको अब क्षमा कर देना चाहिये।’

दोनोंने इस प्रकार मृति की तो दयामयी भगवनी गङ्गा वहाँ प्रत्यक्ष प्रकट हो गयी। वे मेघके समान गम्भीर वाणीसे बोलं—‘तुमने महाबुद्धिमान् पुण्यधामाकी निन्दा की है, यह बहुत बुरी बात हुई है। मैं स्वयं उस महाभागकी चरणरेणुकी प्रतीक्षामें रात-दिन बैठी रहती हूँ। जहाँ भगवान्की कथा होती है और भगवदाश्रित साधुजन गहते हैं, वहाँ सारे तीर्थ रहते हैं—इसमें विचारनेकी कोई बात नहीं।’ विष्णुकथाका श्रवण-कीर्तन ही ‘विधि’ है, उसे भूलना ही ‘नियेध’ है। अन्य सारे विधि-नियेध इन दोनोंके किंकर है। करोड़ों ब्रह्महत्याओंका पाप तो किसी प्रकार आन्त भी किया जा सकता है, पर भगवन्दत्तकोंकी निन्दाका पाप अरव-खरव कल्पोंमें भी नष्ट नहीं होता। † हजारों पांडोंसे निस्तार सम्भव है पर विष्णु, उनकी कथा और उनके भक्तोंकी निन्दाकी कोई औपर नहीं है। जो महाभाग नित्य, सदा-सर्वदा भगवत्कथामें लीन है, उसने किस सत्कर्मका अनुष्ठान नहीं किया? भगवान् महात्मा अपराधोंको भूल सकते हैं, पर अने भक्तोंके अपमानको वे कभी नहीं क्षमा कर सकते। ‡ वे लक्ष्मीको तो कथचित् छोड़नेको तैयार भी

* यत् विष्णुकथा लोके साधवश्च तदाश्रया ।

तत्र तीर्थानि सर्वाणि नात्र कार्या विचारणा ॥

(वायुपुराण माधवास० २० । ६६)

† ब्रह्महत्यासहस्रसं पाप शम्येत् कथचन ।

निन्दया विष्णुभक्ताना जनाना पापकारिणाम् ॥

पाप न नदयते तत्त्वं कल्पकोटिशतैरपि ।

(मातृ० २० । ६७-६८)

‡ (क) भजावमान क्षमते नैव व्यापि कथचन । (उ०)

(ख) सुनु सुरेस रुनाथ सुभाव । निज अपराध रिताहैं न काऊ ॥

— — — — —

हो सकते हैं, पर वे भक्तवत्सल भक्तका परित्याग मन्त्रमें भी नहीं कर सकते ॥। अतएव तुमलोग उस पुण्यथामासो प्रसन्न करो। जबतक ऐसा नहीं करते मैं ग्रन्थन नहीं होती और तुम जड़ नहीं ढीपता।

भगवती गङ्गाके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर वे दोनों मुनि सत्यवत् ग्राममें गये और पुण्यथामासे ग्रायना करने लगे। पुण्यथामा उन्हें लेकर अपने गुदके पास

गये। उन्होंने उन दोनाओं भी बुलाकर दो वर्षतक भगवत्कथा सुनायी। तत्पश्चात् वे पॉचों गङ्गाटपर आये। भगवती गङ्गाने उटकर बृहत्तपा, दीर्घनमा और पुण्यथामासी पूजा की। साथमें आये हुए दोनों मुनियोंने भी देखा कि अब गङ्गाजी जलपूर्ण था। अब उन पॉचोंने वहाँ श्रद्धापूर्वक अवगाहन किया तथा परा मिद्दि प्राप्त की।—ना० श० (वायुपुराण माघमाहात्म्य, अध्याय २०)

भगवद्गीताका अद्भुत माहात्म्य

नर्मदाके तटपर माहिमती नामकी एक नगरी है। वहाँ भाग्य नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने अपनी विद्याके प्रभावसे ब्रह्म धन रुमाता और एक विद्याल वज्रका आयोजन किया। उस यज्ञमें वलि देनेके लिये एक वरुण मौगल्या गया। तब उसके शरीरकी पूजा हो गयी, तब वरुणेने हृषकर रहा—‘ब्रह्मन्। इन यज्ञोंसे क्या लाभ है। उनका फल विनाशी तथा जन्म-मरणप्रद ही है। मैं भी पूर्वजन्ममें एक ब्राह्मण था। मैंने गमस्तु यज्ञोंका अनुष्ठान किया था और वेदविद्यामें बहुत प्रवीण था। एक दिन मेरी स्त्रीने बाल गेगरी शान्तिके लिये एक वक्रेकी मुक्तसे वलि दिलायी। जब चृष्णिकाके मन्त्रमें वह वक्र भक्तरा मारा जाने लगा, तब उसकी माताने मुझे शाप दिया—‘ओ पापी। तू मेरे वज्रेका वध करना चाहता हो, अतएव तू भी वक्रेकी योनिमें जन्म लेगा।’ ब्राह्मणों। तदनन्तर मैं भी मरमर वक्रा हुआ। यद्यपि मैं पशु-न्योनिमें हूँ, तथापि मुझे पूर्व-जन्मांका मरण बना है। अतएव इन सभी वेतानिक किया-जालसे भगवदाग्रहन आठि शुद्ध कर्म ही अधिक दिव्य है। अध्यात्ममार्गपरामरण होकर हिंसारहित पूजा, पाठ एवं गीतादि मन्त्राओंका अनुशीलन ही सुसुति-चक्रसे छूटनेकी एक मात्र औपच है। इस मन्त्रन्यमें मैं आपको एक और आदर्शकी वात वेताता हूँ।

‘एक बार सूर्यग्रहणके अवसरपर कुरुक्षेत्रके राजा चन्द्र-शर्माने बड़ी ब्रह्माके साथ कालपुरुषका दान ऊरनेकी तैयारी की। उन्होंने वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी एक विद्वान् ब्राह्मणको बुलाया और सुपुरोहित स्नान करने चले। स्नानादिके उपरान्त योचित विधिसे उस ब्राह्मणको कालपुरुषका दान किया।

‘तब ब्रालपुरुषका हृदय चीरकर उसमेंसे एक पापान्मा चाण्डाल और निन्दात्मा एक चाण्डाली निकली। चाण्डालोंकी वह जोड़ी ओर्वें लाल किये ब्राह्मणके शरीरमें हटात् प्रवेश करने लगी। ब्राह्मणने मन नहीं मन गीताके नवम अध्यायका जप आरम्भ किया और राजा यह सब कौनक चुपचाप देख रहा था। गीताके अक्षरोंसे समुद्भूत विष्णुदूताने चाण्डाल जोड़ीको ब्राह्मणके शरीरमें प्रवेश करते देख वे क्षट दौड़े और उनका उद्योग निपट कर दिया। इस घटनाको देख राजा चक्रिन हो गया और उस ब्राह्मणसे इसका रहस्य पूछा। नव ब्राह्मणने सारी वात वतलायी। अब राजा उस ब्राह्मणका गिर्प हो गया और उसने गीताका अन्यथन—अभ्यास किया।’

इस कथासों वकरेके मुहसे सुनकर ब्राह्मण वज्रा प्रभावित हुआ और वकरेसो मुक्तकर गीतापग्रहण हो गया।—ना० श० (पशुपुराण, उत्तररुद्र, अध्याय १७०)

गायका मूल्य

एक बार महर्षि आपस्तम्भने जलमें ही छूटे रहकर भगवद्गीतन करनेका विचार किया। वे बारह वर्षोंतक नर्मदा और मल्या-मगमके जलमें छूटकर भगवत्सरण करते रह गये। जलमें रहनेवाले जीवोंके वे वडे प्रिय हो गये थे। तदनन्तर एक समय मठली पकड़नेवाले बहुत-से मल्लाह

बहों आये। उन्होंने वहाँ जाल फैलाया और मठलियोंके माथ महर्षिको भी रीच लाये। मल्लाहोंकी इष्टि मुनिपर पड़ी तो वे भयसे व्याकुल हो उठे और उनके चरणोंमें गिरकर क्षमा माँगने लगे।

मुनिने देखा कि उन मल्लाहोंद्वारा यहाँकी मठलियोंका

* कथचिद् रमणी त्यक्तु विष्णुमृतसहदे क्वचित्। त्यक्तुमुत्सहदे क्वापि न भक्तान् भक्तवत्सल ॥ (७३)

वहां भारी सहार हो रहा है, अतः सोचने लगे—अहो ! स्वतन्त्र प्राणियोंके प्रति यह निर्दयतापूर्ण अत्याचार और स्वार्थके लिये उनका वलिदान—कैसे गोककी वात है । भेदहस्ति रखनेवाले जीवोंके द्वारा दुःखमें डाले गये प्राणियोंकी ओर जो ध्यान नहीं देता, उससे बढ़कर क्रूर इस सप्तरमे दूसरा कौन है ? जानियोंमें भी जो केवल अपने ही हिनमें तत्पर है, वह श्रेष्ठ नहीं है; क्योंकि जानी पुरुष भी जब स्वार्थका आश्रय लेकर ध्यानमें स्थित होते हैं, तब इस जगत्के दुखी प्राणी किसकी शरण जायें ? जो मनुष्य स्वयं अकेला ही सुख भोगना चाहता है, मुमुक्षुजन उसे पापीसे भी महापापी वतलाते हैं । वह कौन-सा उपाय है, जिससे इनका सारा पाप-ताप मेरे कपर आ जाय और मेरे पास जो कुछ भी पुण्य हो, वह इनके पास चला जाय ? इन दरिद्र, विकलाङ्ग, दुखी प्राणियोंको देखकर भी जिसके हृदयमें दया नहीं उत्पन्न होती, वह मनुष्य नहीं, राक्षस है । जो समर्थ होकर भी सकटापन्न भयविहृल प्राणियोंकी रक्षा नहीं करता, वह उनके पापोंको भोगता है इसलिये जो कुछ हो, मैं इन मछलियोंको दुःखसे मुक्त करनेका कार्य छोड़कर मुक्तिको भी वरण नहीं करूँगा, स्वर्गलोककी तो वात ही क्या है ।'

इधर यह विचित्र समाचार वहोंके राजा नाभागको मिला । वे भी अपने मन्त्री-पुरोहितोंके साथ टौड़े घटनास्थलपर पहुँचे । उन्होंने देवतुल्य महर्षिकी पूजा की और पूछा— 'महाराज ! मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ ।'

आपस्तम्भ बोले—'राजन् । ये मल्लाह वडे दुःखसे जीविका चलाते हैं । इन्होंने मुझे जलसे बाहर निकालकर वहां भारी श्रम किया है । अतः जो मेरा उचित मूल्य हो, वह इन्हे दो ।' नाभागने कहा, 'मैं इन मल्लाहोंको आपके बढ़ले एक लाख स्वर्णमुद्राएँ देता हूँ ।'

महर्षिने कहा—'मेरा मूल्य एक लाख मुद्राएँ ही नियत करना उचित नहीं है । मेरे योग्य जो मूल्य हो, वह इन्हे

अर्पण करो ।' नाभाग बोले, 'तो इन निपादोंको एक करोड़ दे दिया जाय या और अधिक भी दिया जा सकता है ।' महर्षिने कहा—'तुम ऋषियोंके साथ विचार करो, कोटि-मुद्राएँ या तुम्हारा राज्यपाट—यह सब मेरा उचित मूल्य नहीं है ।'

महर्षिकी वात सुनकर मन्त्रियों और पुरोहितोंके साथ राजा वडी चिन्तामें पड़ गये । इसी समय महातपस्वी लोमश ऋषि वहाँ आ गये । उन्होंने कहा, 'राजन् । भय न करो । मैं मुनिको सतुष्ट कर लैगा । तुम इनके लिये मूल्यके रूपमें एक गौ दो; क्योंकि ब्राह्मण सब वर्णोंमें उत्तम है । उनका और गौओंका कोई मूल्य नहीं आँका जा सकता ।'

लोमगजीकी यह वात सुनकर नाभाग वडे प्रसन्न हुए और हर्षमें भरकर बोले—'भगवन् । उठिये, उठिये; यह आपके लिये योग्यतम मूल्य उपस्थित किया गया है ।' महर्षिने कहा, 'अब मैं प्रसन्नतापूर्वक उठता हूँ । मैं गौसे बढ़कर दूसरा कोई ऐसा मूल्य नहीं देखता, जो परम पवित्र और पापनाशक हो । यजका आदि, अन्त और मध्य गौओंको ही बताया गया है । ये दूध, दही, धी और अमृत—सब कुछ देती हैं । ये गौएं स्वर्गलोकमें जानेके लिये सोपान हैं । अस्तु, अब ये निग्राद इन जलचारी मछलियोंके साथ सीधे स्वर्गमें जायें । मैं नरकको देखूँ या स्वर्गमें निवास करूँ, किंतु मेरे द्वारा जो कुछ भी पुण्यकर्म बना हो, उससे ये सभी दुःखार्थ प्राणी शुभ गतिको प्राप्त हों ।'

तदनन्तर महर्षिके सत्सकल्प एव तेजोमयी वाणीके प्रभावमें सभी मछलियों और मल्लाह स्वर्गलोकमें चले गये । नाना उपदेशोद्धारा लोमगजी तथा आपस्तम्भजीने राजाको वोश प्राप्त कराया और राजाने भी धर्ममयी बुद्धि अपनायी । अन्तमें दोनों महर्षि अपने-अपने आश्रमको चले गये ।

—जा० श०

(स्कन्दपुराण, आवन्त्यखण्ड, रेचात्मण्ड, अध्याय १३, महाभारत, अनुशासनपर्व, अध्याय ५०)

गो-सेवाका शुभ परिणाम

महाराज दिलीप और देवराज इन्द्रमें मित्रता थी । देवराजके बुलानेपर दिलीप एक बार स्वर्ग गये । वहोंसे लौटते समय मार्गमें कामधेनु मिली, किंतु दिलीपने पृथ्वीपर आनेकी आनुरताके कारण उसे देखा नहीं । कामधेनुको उन्होंने प्रणाम

नहीं किया । इस अपमानसे रुष्ट होकर कामधेनुने शाप दिया— 'मेरी सतान यदि कृपा न करे तो यह पुत्रहीन ही रहेगा ।'

महाराज दिलीपको शापका कुछ पता नहीं था । किंतु उनके कोई पुत्र न होनेसे वे स्वयं, महारानी तथा प्रजाके

लोग भी चिन्तित एवं दुखी रहते थे। पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे महाराज रानीके साथ कुलगुरु महर्षि वशिष्ठके आश्रमपर पहुँचे। महर्षिने उनकी प्रार्थना सुनकर आदेश किया—‘कुछ काल आश्रममें रहो और मेरी होमधेनु नन्दिनीकी सेवा करो।’

महाराजने गुरुकी आज्ञा स्वीकार कर ली। महारानी प्रातःकाल उस गौकी भलीभाँति पूजा करती थीं। गो-दोहन हो जानेपर महाराज उस गायके साथ बनमें जाते थे। वे उसके पीछेपीछे चलते और अपने उत्तरीयसे उसपर बैठनेवाले मच्छर, मक्खी आदि जीवोंको उड़ाते रहते थे। हरी धास अपने हाथसे लाकर उसे खिलाते थे। उसके शरीर-पर हाथ फेरते। गौके बैठ जानेपर ही बैठते और उसके जल पी चुकनेपर ही जल पीते थे। सायंकाल जब गौ बनसे लौटती, महारानी उसकी फिर पूजा करती थीं। रात्रिमें वे उसके पास धीका दीपक रखती थीं। महाराज रात्रिमें गौके समीप भूमिपर ही सोते थे।

अत्यन्त श्रद्धा और सावधानीके साथ गो-सेवा करते हुए महाराज दिलीपको एक महीना हो गया। महीनेके अन्तिम दिन बनमें वे एक स्थानपर वृक्षोंका सौन्दर्य देखते रहे हो गये। नन्दिनी तृण चरती हुई दूर निकल गयी, इस बातका उन्हें ध्यान नहीं रहा। सहसा उन्हें गौके चीकारका शब्द सुनायी पड़ा। दिलीप चौंके और शीघ्रतापूर्वक उस ओर चले, जिधरसे शब्द आया था। उन्होंने देखा कि एक बलवान् सिंह गौको पंजोंमें दबाये उसके ऊपर बैठा है। गौ बड़ी कातर दृष्टिसे उनकी ओर देख रही है। दिलीपने धनुष उठाया और सिंहको मारनेके लिये बाण निकालना चाहा; किंतु उनका वह हाथ भायेमें ही चिपक गया।

इसी समय स्पष्ट मनुष्यभाषामें सिंह बोला—‘राजन् ! व्यर्थ उद्योग मत करो। मैं साधारण पशु नहीं हूँ। मैं भगवती पार्वतीका कृपापात्र हूँ और उन्होंने मुझे अपने हाथों लगाये इस देवदार वृक्षकी रक्षाके लिये नियुक्त किया है। जो पशु अपने-आप यहाँ आ जाते हैं, वे ही मेरे आहर होते हैं।’

महाराज दिलीपने कहा—‘आप जगन्माताके सेवक होनेके कारण मेरे बन्दनीय हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। सत्पुरुषोंके साथ सात पद चलनेसे भी मित्रता हो जाती है। आप मुझपर कृपा करें। मेरे गुरुकी इस गौको छोड़ दें

और क्षुधा-निवृत्तिके लिये मेरे शरीरको आहर बना लें।’

सिंहने आश्र्वयपूर्वक कहा—‘आप यह कैसी बात करते हैं ! आप युवा हैं, नरेश हैं और आपको सभी सुखभोग प्राप्त हैं। इस प्रकार आपका देहत्याग किसी प्रकार बुद्धिमानी-का काम नहीं। आप तो एक गौके बदले अपने गुरुको सहस्रों गायें दे सकते हैं।’

राजाने नम्रतापूर्वक कहा—‘भगवन् ! मुझे शरीरका मोह नहीं और न सुख भोगनेकी स्थृता है। मेरी रक्षामें दी हुई गौ मेरे रहते मारी जाय तो मेरे जीवनको धिकार है। आप मेरे शरीरपर कृपा करनेके बदले मेरे धर्मकी रक्षा करें। मेरे यथा तथा मेरे कर्तव्यको सुरक्षित बनायें।’

सिंहने राजाको समझानेका बहुत प्रयत्न किया; किंतु जब उन्होंने अपना आग्रह नहीं छोड़ा, तब वह बोला—‘अच्छी बात ! मुझे तो आहर चाहिये। तुम अपना शरीर देना चाहते हो तो मैं इस गौको छोड़ दूँगा।’

दिलीपका भायेमें चिपका हाथ छूट गया। उन्होंने धनुष तथा भाया उतारकर दूर रख दिये और वे मस्तक झुकाकर भूमिपर बैठ गये। परंतु उनपर सिंह कूदे, इसके बदले आकाशसे पुष्प-बाया होने लगी। नन्दिनीका स्वर सुनायी पड़ा—‘पुत्र ! उठो। तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिये अपनी मायासे मैंने ही यह दृश्य उपस्थित किया था। पत्तेके दोनोंमें मेरा दूध दुहकर पी लो। इससे तुम्हें तेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा।’

दिलीप उठे। वहाँ सिंह कहाँ था ही नहीं। नन्दिनीको उन्होंने साप्ताङ्ग प्रणाम किया। हाथ जोड़कर बोले—‘देवि ! आपके दूधपर पहिले आपके बछड़ेका अधिकार है और फिर गुरुदेवका। आश्रम पहुँचनेपर आपका बछड़ा जब दूध पीकर तृप्त हो जायगा, तब गुरुदेवकी आज्ञा लेकर मैं आपका दूध पी सकता हूँ।’

दिलीपकी धर्मनिष्ठासे नन्दिनी और भी प्रसन्न हुई। वह आश्रम लौटी। महर्षि वशिष्ठ भी सब बातें सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनकी आज्ञा लेकर दिलीपने गौका दूध पीया। गोसेवाके फलसे उन्हें पराक्रमी पुत्र प्राप्त हुआ।

—सु० सिं०
(खुंबंश)

वनयात्राका गो-दान

भगवान् श्रीरामके विषयमें प्रसिद्ध है कि वे वनयात्राके सम्बन्ध रक्षीभर भी उद्घिन नहीं हुए थे—‘तथा न मम्ले वनवसदुखतः।’ वल्कि उर्टे उनका हर्ष और उत्साह चढ़ गया था।—

‘न गयदु खुवीर मनु राजु अलान समान।

दूट जानिवन गवनु सुनि उर अनदु अविकान॥’

उस समय उन्होंने कुवेरकी भौति ब्राह्मणोंके धन लुटाया था। अपने प्रत्येक सेवकको चौडह वर्षोंतक (अपने पूर्ण वनयाम कालभर) जीविका चलाने योग्य धन दिया था। इसके बाद भी जब उनके खजानेमें धन रह गया, तब अपने ओगव्यको बुलगकर सारा धन बालक-बूढ़े ब्राह्मणों तथा दीन-दुष्क्रियोंको बेटवा दिया।

उन्हीं दिनों अयोध्यामें एक त्रिजट नामका गर्गगोत्रीय ब्राह्मण रहता था। उसके पास जीविकाका कोई साधन न था। उसका अपरीर अल्यन दुवला और पीला हो गया था। उसकी आँगने उससे कहा—‘नाथ ! श्रीरामचन्द्रजीसे आप जाकर मिलिये, वे बड़े वर्मज हैं; वे अवश्य हमलोगोंके लिये कोई द्रवन्य कर देंगे, पल्लीकी वात सुनकर त्रिजट श्रीरामभट्टके

पास आया। वे उस समय वन जानेको तैयार थे और उनका यह ‘वन-यात्रा-दान-महोत्सव’ जारी था। त्रिजटको यह मन कुछ भी माझ्म न था। उसने उनके पास पहुँचकर कहा—

‘राजकुमार ! मैं निर्धन हूँ, मेरी वहुत-सी मंताने हैं। आप मेरी दद्याका धूमान करके मुझपर कृपा-दृष्टि फेरें।’

उसकी वात सुनकर तथा उसका दौर्वल्य देखकर प्रभुको इस समय भी एक परिहासकी वात सूझ गयी। उन्होंने त्रिजटसे कहा—‘विष्ववर। आप अपना डंडा जितनी दूरतक फेंक सकें, फेंकिये। जहाँ तक आपका डंडा पहुँचेगा, वहाँतक की गाये आप अपनी समझ लीजिये।’

अब त्रिजटने वही तेजीके साथ धोतीके पल्लेको समेटकर ठीक किया। उसने अपनी सारी शक्ति ल्याकर डड़ेको बड़े जोरसे धुमाकर फेंका। डंडा सरयूके उस पार जाकर हजारों गौओंके बीच गिरा। भगवान् त्रिजटको गले ल्या लिया और वहाँतककी गायें उसके आश्रमपर मिलवा दी। उन्होंने उससे क्षमा माँगी और कहा—‘ब्राह्मणदेवता, बुग न मानियेगा मैंने वह वात विनोदमें ही कह दी थी।’ ब्राह्मण प्रसन्न था।—जा० श०

(वार्त्ताक० रामा० अयोध्या० ३२)

सत्सङ्गकी महिमा

किसी समय महर्षि वसिष्ठजी विश्वमित्रजीके आश्रमपर पत्वांर। विश्वमित्रजीने उनका स्वागत-संकार तो किया ही, अतिथ्यमें अपनी एक सहस्र वर्षकी तपस्याका फल भी अर्पित किया। कुछ समय पश्चात् विश्वमित्रजी वसिष्ठजीके अनिय हुए। वसिष्ठजीने भी उनका यथोचित सत्कार किया और उन्हें अपने आयी वर्षीके सत्सङ्गका पुण्य अर्पित किया। परतु वसिष्ठजीके इस व्यवहारसे विश्वमित्रजीको शोभ हुआ। यद्यपि वे कुछ बोले नहीं, फिर भी उनके सुखपर आया रोपना भाव छिपा नहीं रहा। उस भावको लक्षित करके वसिष्ठजी बोले— मैं देखता हूँ कि आपको अपनी सहस्र वर्षकी तपस्याके समान मेरा आयी वर्षीका सत्सङ्ग नहीं जान पड़ता। क्यों न हमलोग किसीमें निर्णय करा लें।’

दोनों ब्रह्मणि व्यवहार, उनके विवादका निर्णय करनेका माहस कोई अृप्तिमुनि भी नहीं कर सकता था, नरेशोंकी तो चर्चां ही क्या। वे ब्रह्मलोक पहुँचे। परतु ब्रह्माजीने

भी सोचा कि इनमें कोई रघु होकर शाप दे देगा तो विपत्ति-में पड़ना होगा। उन्होंने कह दिया—‘आपलोग भगवान् विष्णुके पास पधारें, क्योंकि सुषिके कार्यमें व्यस्त होनेके कारण मैं स्वस्यचित्तसे कोई निर्णय देनेमें असमर्थ हूँ।’

‘मैं आप दोनोंके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। तपस्या और सत्सङ्गके माहान्यका निर्णय वही कर सकता है, जो स्वय इनमें ल्या हो। मेरा तो इनसे परिचय ही नहीं। आपलोग तपोमूर्ति भगवान् शङ्करसे पूछनेकी कृपा करें।’ भगवान् विष्णुने भी दोनों अृप्तियोंको यह कहकर विदा कर दिया।

दोनों अृप्ति कैलास पहुँचे, किंतु शङ्करजीने भी कह दिया—‘जवसे मैंने हालाहल पान किया है, तवसे चित्तकी स्थिति निर्णायक बनने-जैसी नहीं रही है। शेषजी मस्तकपर पृथ्वी उठाये निरन्तर तप करते रहते हैं और अपने सहस्रमुखोंसे मुनिवृन्दको मस्तसङ्गका लभ देते रहते हैं। वे ही आपलोगोंका निर्णय कर सकते हैं।’

पाताल पहुँचनेपर दोनों महर्षियोंकी वात शेषजीने सुन ली और बोले—‘आपमेंसे कोई अपने प्रभावसे इस पृथ्वीको कुछ क्षण अधरमें रोके रहे तो मेरा भारकम हो और मैं स्वस्य होकर विचार करके निर्णय दूँ।’

‘मैं एक सहस्र वर्षके तपका फल अर्पित करता हूँ, धरा आकाशमें स्थित रहें।’ महर्षि विश्वामित्रने हाथमें जल लेकर सरुत्प किया किंतु पृथ्वी तो हिली भी नहीं थी।

‘मैं आधी घड़ीके अपने सत्पङ्कका पुण्य देता हूँ, पृथ्वी देवी कुछ क्षण गगनमें ही अवस्थित रहे।’ व्रहर्षि वसिष्ठजीने सकल्प किया और पृथ्वी शेषजीके फणोंसे ऊपर उठकर निराधार स्थित हो गयी।

अब निर्णय करने-करानेको कुछ रहा ही नहीं था। विश्वामित्रजीने विष्णुजीके चरण पकड़ लिने—‘भगवन्। आप सदासे महान् हैं।’ —सु० सिं०

सच्चे संतका शाप भी मङ्गलकारी होता है

धनाधीश कुवेरके दो पुत्र थे—नलकूवर और मणिग्रीव। कुवेरके पुत्र फिर सम्पत्तिका पूछना क्या। युवावस्था थी, वक्ष होनेके कारण अत्यन्त बली थे, लोकपालके पुत्र होनेके कारण परम स्वतन्त्र थे।

यौवन धनसम्पत्ति प्रभुत्वमविवेकता ।
एकैकमप्यनर्थाय किञ्चु यत्र चतुष्प्रथम् ॥

युवावस्था, धन, प्रभुत्व और विचारहीनता—इनमेंसे प्रत्येक अनर्थका कारण है, फिर जहाँ चारों हों, वहाँ तो पूछना ही क्या। कुवेरके पुत्रोंमें चारों दोष एक साथ आ गये। धन-मदसे वे उन्मत्त रहने लगे।

एक बार वे खियोंके साथ मदिरा पीकर जल-क्रीड़ा कर रहे थे नगे होकर। उसी समय देवर्षि नारद उधरसे निकले। देवर्षिको देखकर खियों झटपट जलसे बाहर निकल आयीं और उन्होंने वक्ष पहिन लिये, किंतु दोनों कुवेरपुत्र वैसे ही नग-वड़ा खड़े रहे। देवर्षिका कोई सत्कार या सकोच करना उन्हे अनावश्यक लगा।

देवर्षिको उनकी दशा देखकर क्रोध तो नहीं आया, दया आ गयी। कुवेरजी लोकपाल हैं, उनके गग भी उपदेव माने जाते हैं, भगवान् जैकर उन्हें अपना सखा कहते हैं, उनके पुत्र ऐसे असभ्य और मदान्व। दया करके देवर्षिने शाप दे दिया—‘तुम दोनों लड़की भौति खड़े हो, अतः जड़ वृक्ष हो जाओ।’

सतके दर्शनसे कोई बन्धनमें नहीं पड़ता। सतके शापसे किसीका अमङ्गल नहीं होता। सत तो ही मङ्गलमय। उसका दर्शन, स्पर्श, सेवन तो मङ्गलकारी है ही, उसके

रोष और शापसे भी जीवका परिणाममें मङ्गल ही होता है। देवर्षिने शाप देते हुए कहा—‘तुम दोनों ब्रजमें नन्दद्वारपर सटे हुए अर्जुनके वृक्ष बनो। द्वापरमें अवतार लेकर श्रीकृष्णचन्द्र वृक्षयोनिसे तुम्हारा उद्धार करेंगे और तब तुम्हें भगवद्गति प्राप्त होगी।’

यह शाप है या वरदान ? श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन प्राप्त होगा, स्पर्श प्राप्त होगा और भगवद्गति प्राप्त होगी। ब्रजमें निवास प्राप्त होगा उससे पूर्व, और वह भी नन्दद्वारपर। सुषिकर्ता व्रहाजीने जब श्यामसुन्दरकी स्तुति की वस्तहरणके पश्चात्, तब वे भी इतना साहस नहीं कर सके कि नन्दपौरिपर वृक्ष होनेकी प्रार्थना कर सकें। डरते-डरते उन्होंने यही प्रार्थना की—‘नाथ ! मुझे ब्रजमें कुछ भी बना दीजिये।’ सुषिकर्ता प्रार्थना करके भी ब्रजके तृण होनेका वरदान नहीं पा सके और उद्धत कुवेरपुत्रोंको शाप मिल गया नन्दद्वारपर दीर्घकालतक वृक्ष होकर रहनेका—यह मतके दर्शनका प्रभाव था।

लीलामय नटनागरने द्वापरमें अवतार लेकर अपने ही धरमें दहीका मटका फोड़ा, माखन चुराया और इस प्रकार मैया यशोदाको रुट्ट करके उनके हाथों अपनेको ऊखलसे बैधवाया। इसके बाद रस्सीमें ऊखलसे बैधा वह दामोदर ऊखल धमीटता अपने द्वारपर अर्जुन वृक्ष बने कुवेरपुत्रोंके पास पहुँचा। वृक्षोंके मध्य ऊखल अटकाकर उसने बलपूर्वक वृक्षोंको गिरा दिया, क्योंकि अपने प्रिय भक्त देवर्षिकी वात उसे सत्य करनी थी। कुवेरके पुत्रोंको वृक्षयोनिसे परित्राण दिया उसने। —सु० सिं०

(श्रीमङ्गलगवत् १० । ९-१०)

—३३५—

क्षणभरका कुसङ्ग भी पतनका कारण होता है

किसी समय कब्जौजमे अजामिल नामका एक तरुण ब्राह्मण रहता था। वह शास्त्रोंका विद्वान् था, शीलवान् था, कोमल स्वभावका, उदार, सत्यवादी तथा सयमी था। गुरुजनोंका सेवक था, समस्त प्राणियोंका हितैषी था, बहुत कम और सयत वाणी बोलता था एवं किसीसे भी द्वेष या घृणा नहीं करता था।

वह धर्मात्मा ब्राह्मण युवक पिताकी आजासे एक दिन बनमें फल, पुष्प, अभिहोत्रके लिये सूखी समिधा और कुश लेने गया। इन सब सामग्रियोंको लेकर वह लौटने लगा तो उससे एक भूल हो गयी। वह ऐसे मार्गसे लौटा, जिस मार्गमें आचरणहीन लोग रहा करते थे। यह एक नन्ही-सी भूल ही उस ब्राह्मणके पतनका कारण हो गयी।

ब्राह्मण अजामिल जिस मार्गसे लौट रहा था, उस मार्गमें एक शूद्र एक दुराचारिणी छोड़ीके साथ शराब पीकर निर्लज्ज विनोद कर रहा था। वह खीं शराबके नशेमें लज्जाहीन हो रही थी। उसके बख्त अस्तव्यस्त हो रहे थे। अजामिलने पाससे यह दृश्य देखा। वह शीघ्रतापूर्वक वहाँसे चला आया; किंतु उसके मनमें सुस विकार उस क्षणभरके कुसङ्गसे ही प्रबल हो चुका था।

अजामिल घर चला आया, किंतु उसका मन उन्मत्त हो

उठा। वह बार-बार मनको सयत करनेका प्रयत्न करता था; किंतु मन उस कदाचारिणी छोड़ीका हीचिन्तन करनेमें लगा था। अन्ततः अजामिल मनके इस सघर्षमें हार गया। एक क्षणके कुसङ्गने धर्मात्मा संयमी ब्राह्मणको हुआ दिया पाप-सागरमें। उस कदाचारिणी छोड़ीको ही सतुष्ट करनेमें अजामिल लग गया। माता-पिता, जाति-धर्म, कुल-सदाचार और साध्वी पक्षीको भी उसने छोड़ दिया। लोक-निन्दाका कोई भय उसे रोक नहीं सका। समस्त पैतृक धन घरसे ले जाकर उसने उसी कुलटाको सतुष्ट करनेमें लगा दिया और वात यहाँतक बढ़ गयी कि उसी छोड़ीके साथ अलग घर बनाकर वह रहने लगा।

जब एक बार मनुष्यका पतन हो जाता है, तब फिर उसका सम्हलना कठिन होता है। वह बराबर नीचे ही गिरता जाता है। अब अजामिलको तो उस कुलटा नारीको सतुष्ट करना था और इसका उपाय था उसे धन देते रहना। चोरी, जूझा, छल-कपट—जिस उपायसे धन मिले—धर्म-अधर्मका प्रश्न ही अजामिलके सामनेसे हट गया।

तनिक देरका कुसङ्ग कितना महान् अनर्थ करता है। एक धर्मात्मा सयमी एक क्षणके प्रमादसे आचारहीन घोर अधर्मी बन गया। —सु० सिं० (श्रीमद्भागवत् ६। १)

क्षणभरका सत्सङ्ग कल्पित जीवनको भी परमोज्ज्वल कर देता है

उन्हा नाम जपत जगु जाना। बालमीकि भण ब्रह्म समाना॥

बहुत प्राचीन वात है, सङ्गदोपसे एक ब्राह्मण क्रूर डाकू बन गया था। जन्मसे ही वह अशिक्षित था। अपने परिवारके पालन-पोषणके लिये उसने बड़ा घोर मार्ग अपनाया। घोर बनसे जानेवाले एक मार्गके समीप उसका अड़ा था। जो भी यात्री उधरसे निकलता, उसे वह मार डालता बिना वह सोचे कि इस हृत्यासे उसे लाभ कितना होगा। मृत व्यक्तिके पास जो कुछ मिलता, उसे लेकर वह गवको कहीं ठिकाने लगा देता। उसने इतने व्यक्ति मारे कि उनमें जो द्विजाति थे, उनके यजोपवीत ही साढे सात वैल गाड़ी एकत्र हो गये।

वह मार्ग यात्रियोंके लिये मृत्युद्वार बन गया था। पथिकोंकी यह विपत्ति देवर्षि नारदसे देखी नहीं गयी। वे स्वयं उसी मार्गसे चल पड़े। सदाकी भौति शख्त उठाये डाकू उनपर भी झपटा। देवर्षिको भला, भय क्या। उन्होंने

कहा—‘भाई! तुम व्यर्थ क्यों क्रोध करते हो? जास्त उठानेसे क्या लाभ? मैंने तो तुम्हारा कुछ विगाड़ा नहीं है। तुम चाहते क्या हो?’

‘मैं चाहता हूँ तेरे प्राण, तेरी यह तुमझी और बख्त तथा तेरे पास कुछ और निकले तो वह भी।’ डाकू गरज उठा।

‘निरन्तर जीव-हत्याका यह पाप फिये बिना भी तो, तुम बनके फल-कन्दसे पेट भर सकते हो।’ देवर्षिका तेज और उनके स्वरमें भरी दया डाकूको स्तम्भित किये दे रहे थे।

‘किंतु मेरे माता-पिता, छोड़ि-पुत्रका पेट कौन भरेगा तू?’ डाकू अभी क्रूर व्यंग ही कर रहा था।

‘भाई! तुम जिनके लिये नित्य यह पाप करते हो, उनमेंसे कोई तुम्हारे पापका फल भोगनेमें भाग नहीं लेगा। अपने पापका फल तुम्हें अकेले ही भोगना होगा।’ नारदजीने बड़ी मदुतासे कहा।

‘यह कैसे हो सकता है ? डाकू निचलित हो उठा था । जो मेरे पासे कमाये थनका लुप्त भोगते हैं, वे मेरे पासके फलमें भी भाग तो लेंगे ही ।’

‘बहुत भोड़े हो, मार्द ! पाम्बे फलमें कोई भाग नहीं देगा । तुम्हें जेनी थनका विचाल न हो तो वह जात्र उन लोगोंसे पूछ लो ।’ देवर्षि वात पूर्ण कर दी ।

‘वावाजी ! तुम्हें मूर्ख बनाना चाहता है । मैं वह पूछने जाऊँ और तू वहाँसे विचाल करने । डाकूने निर चक्र सम्भाल ।

‘तुम भुजे इस पेड़के नाय भर्णभौति बौच दो ।’ तुम्हारा नारदजी स्वयं एक पेड़से लगान्न लड़े हो गये ।

अब डाकूको उनकी बात सच्ची लगी । उसने उन्हें पेड़के साथ बनकी लताओंसे भर्णभौति बौच दिया और स्वयं शीतार्घवक धर पहुँचा । वह उक्कर उसने गिराए पूछा—‘मिताजी ! आर तो जानते ही हैं कि मैं बातियोंकी हत्या करके उनके साथकी सामग्री लाना हूँ और उन्हें परिवर्तन भरण-योग्य करना हूँ । मैं जो नित्य वह पाप करना हूँ, उसके फलमें आमका भी तो भाग है न ?

‘तात्काल लौटकर गिराने उनकी ओर देवा और कहा—‘वेद ! हमने तुम्हारे पालन-योग्य दिवा तुम्हें छोटेसे बड़ा किया और अब तुम सुमर्य हो गये । हमारी बृद्धावस्था आ गयी । तुम्हारा कर्तव्य है हमारे भग्न-योग्य करना । तुम कैसे बन दते हो, इससे हमें क्या । तुम्हारे पाप-पुण्यमें नन्द हमारा भाग क्यों होने लगा ।’

पहली बार डाकू चौका । वह नामों पाप गता किन् माताने भी उसे बही उच्चर दिया दो गिराने दिया था । उसने पर्लाउ पूछा—‘जो पनीरने बहा—न्वानी । मेरा कर्तव्य है आमकी देवा करना, आमने तुमजनों तथा परिवारों के बाकरना । वह अपना कर्तव्य मैं पालन करती है । आमका कर्तव्य है मेरी रक्षा अना और नेह पोषण करना, वह आप करते हैं । इसके लिये आप कैसे बन लाने हैं सो आम जानें । आमने उन पासे नेह क्या नमन्व । मैं उनमें क्यों भाग लेंगी ।

डाकू निहश हो गया फिर भी उठने अपने बालक पुत्रसे अन्तर्में पूछा । बालकने और नष्ट उत्तर दिया—‘मैं होदा हूँ, अनुनर्थ हूँ अतः आप नेह भरण-योग्य करने हैं ।

मैं सुन्य हो जाऊँगा, तब आप बृद्ध और अनुर्मय हो जावेगे । उस समय मैं आमका भरण-योग्य करनेगा और अवस्था कहेगा । यह तो परस्तर सहानुवारी बात है । आमके पासको आप जानें मैं उसमें कोई भाग लेना नहीं चाहता, न देंगा ।’

डाकूके नेत्रोंमें लागे अन्वकार द्वा गया । जिनके लिये वह इतने पास कर चुका वे कोई उन पामका बालण पल भोगनेमें उसके साथ नहीं रहना चाहते । पश्चात्तामते जल्दे लगा उसका बृद्ध । दौड़ा वह बनकी ओर । वहाँ पहुँचकर देवर्षिके बन्धनकी ल्लायें उसने तोड़ फेंकी और क्लॅन्ड करना उनके चरणोंपर गिर पड़ा ।

‘तुम यहनामका जर ब्बो ।’ देवर्षि ने प्राप्तिक्षण बतलाया । किंतु हृष्ण-निष्ठुर हृदय, पाप-क्लृप्ति वागी वह दिव्य नाम र्त्याहोनेमें भी उच्चारण करनेमें सुमर्य नहीं हुई । देवर्षि हारना नहीं जानते, वे जिसे मिल जायें वह भगवान्के चरणोंसे दूर बना रहे, वह शक्य नहीं । उन्होंने कहा—‘चिन्ता नहीं तुम मर मर ही जाओ ।

डाकू वहाँ बैठ गया । उसे पना नहीं कि उसके उपरेका बब चढ़े गये । उनकी वागी लग गयी जन्में-मरा मरा मरा मरा मरा . . . दिन, राताह मर्हीने और वर्ष बीतते चले गये किंतु डाकूको झुट्ठ पना नहीं था । उसके शरीरमें दीमक लग गये, दीमनोंकी पूरी बौद्धी-बल्मीकि बन गयी उसके उपर ।

डाकूके तस्ने लृष्टिकर्तासे आश्र्यमें डाल दिया । वे हस्ताहन स्वयं पकाए वहाँ और असने कमगड़लने अमृत-जलसे उन्होंने उन तपन्नी-ग्रन्थादि त्रिये । उन जल-वीररूपोंके प्रभावसे उस दीनदोषके बल्मीकिसे जो पुरुष निन्द खड़ा हुआ, वह अब पूर्ण बदल चुका था । उनका न्यूर रग द्वारी और हृदय सब दिव्य हो चुका था ।

स्वार ठाक नहीं जानता कि डाकूका नाम क्या था, क्षीर्द्वार्द्ध उसे रक्षकर कहते हैं । किंतु वह जो तपनी उठा, बल्मीकिसे निकलनेरे कारण उसे बाल्मीकि कहा गया । वह वादिकवि, भगवान् श्रीरामके निर्मल यशका प्रथम गायक—दिव्य उत्तर्का बनना करके आज भी ब्रह्मार्थ होता है । वह होगा वह कर्मी अनानन्दमा कूर डाकू, किंतु एक क्षणके सुन्दरफ़े उसे महत्तम जो बना दिया ।—उ० चिं०

—३७५—

किसीको धर्ममें लगाना ही उसपर सच्ची कृपा करना है

जब बार एक दिन ब्राह्मणके मनमें बन पानेकी तीव्र कामना हुई। वह सकाम यत्रीकी विवि जानना था किंतु धन ही नहीं तो बज़ कैसे हो? वह धनकी प्राप्तिके लिये देवताओंकी पूजा और बन करने लगा। कुछ नमय एक देवताकी पूजा करता पातु उससे बुद्ध लाभ नहीं दिलायी रहता तो दूसरे देवताकी पूजा करने लगता और पहलेको छोड़ देता। इस प्रकार उसे बहुत दिन बीत गये। अन्तमें उसने सोचा—‘जिस देवताकी आग्रहना मनुष्यने कर्मी न की हो मेरे अब उसीकी उपासना करूँगा। वह देवता अवश्य मुझपर शीघ्र प्रसन्न होगा।’

ब्राह्मण यह सोच ही रहा था कि उसे आकाशमें कुण्डधार नामक मेघके देवताका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। ब्राह्मणने नमध्य लिया कि मनुष्यने कभी इनकी पूजा न की होगी। वे बुद्धानार नेत्रदेवता देवलोकके तर्मीप रहते हैं अवश्य ये मुझे बन देंगे। वह बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे ब्राह्मणने उस कुण्डधार मेघकी पूजा प्रारम्भ कर दी।

ब्राह्मणकी पूजासे प्रसन्न होकर कुण्डधारने देवताओंकी नूतन की व्योक्ति वह स्वयं तो जल्दे अतिरिक्त किसीको कुछ दे नहीं सकता था। देवताओंकी प्रेरणासे यक्षश्रेष्ठ मणिभद्र उसके गम अकर बोले—‘कुण्डधार! तुम दया चाहते हो?’

कुण्डधार—‘यक्षराज! देवता यदि मुझपर प्रसन्न है तो मेरे उपासक इस ब्राह्मणको वे सुखी करे।’

मणिभद्र—‘तुम्हारा भक्त यह ब्राह्मण यदि धन चाहता हो तो इनकी इच्छा पूर्ण कर दो। यह जितना धन मौगेगा वह मेरे द्वेषे दे देंगा।’

कुण्डधार—‘यक्षराज! मेरे ब्राह्मणके लिये बनकी प्रार्थना नहीं करता। मैं चाहता हूँ कि देवताओंकी इच्छासे यह धर्मपरायण हो जाय। इसकी बुद्धि धर्ममें लगे।’

मणिभद्र—‘अच्छी बात! अब ब्राह्मणकी बुद्धि धर्ममें

ही स्थित रहेगी।’ उसी समय ब्राह्मणने स्वप्नमें देखा कि उसके चारों ओर कफन पड़ा हुआ है। वह देखकर उसके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगा—‘मैंने इसने देवताओंकी और अन्तमें कुण्डधार मेघकी भी धनके लिये आराधना की, किंतु इनमें कोई उदार नहीं दीखता। इस प्रकार बनकी आशामें ही लगे हुए जीवन व्यतीत करनेमें क्या लाभ। अब मुझे परलोककी चिन्ता करनी चाहिये।’

ब्राह्मण वहेसे बनमें चला गया। उसने अब तपस्या करना प्रारम्भ किया। दीर्घकालतक कठोर तपस्या करनेके कारण उसे अद्युत मिठि प्राप्त हुई। वह स्वयं आदर्श करने लगा—‘कहों तो मैं बनके लिये देवताओंकी पूजा करता था और उसका कोई परिणाम नहीं होता था और कहों अब मैं स्वयं ऐसा हो गया कि किसीको धनी होनेका आशीर्वाद दे दूँ तो वह नि-पंदेह धनी हो जायगा।’

ब्राह्मणका उत्पाद बढ़ गया। तपस्यामें उसकी शरद बढ़ गयी। वह तत्परतापूर्वक तपस्यामें ही लगा रहा। एक दिन उसके पास वही कुण्डधार मेघ आया। उसने कहा—‘ब्रह्मन्। तपस्याके प्रभावसे आपको दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गयी है। अब आप बनी पुरुषों तथा राजाओंकी गति देख सकते हैं।’ ब्राह्मणने देखा कि धनके कारण गर्वमें आकर लोग नाना प्रकारके पाप करते हैं और धोर नरकोंमें गिरते हैं।

कुण्डधार बोला—‘मक्किपूर्वक मेरी पूजा करके आप यदि बन पाते और अन्तमें नरककी यातना भोगते तो मुझसे आपको क्या लाभ होता? जीवका लाभ तो कामनाओंका त्याग करके वर्माचरण करनेमें ही है। उन्हें धर्ममें लगानेवाला ही उनका सच्चा हितपी है।’

ब्राह्मणने मेघके प्रति कुतन्ता प्रकट की। कामनाओंका त्याग करके अन्तमें वह मुक्त हो गया। —२०० सिं०

(महाभारत, शान्ति० २७१)

वैष्णव-सङ्गका श्रेष्ठ फल

‘मैंने जीवनपर्यन्त पार ही पार किये हैं—सू, कम्बल और चमड़ेके व्यापारसे ही जीवना चलायी, जिसको लोग अच्छा काम नहीं समझते। मनिरामन, वेग्यागमन, मिद्याभाषणमें मैंने किसीसे भी नहीं छोड़ा। अवन्तीपुरीका गहनेवाला धनेवाल ब्राह्मण इस प्रकारकी अनेक बातोंका चिन्तन

करता हुआ अपने पथपर बढ़ रहा था। वह सामान खरीदने-वेचनेके लिये माहिमती जा रहा था।

माहिमती आ गयी। परम पवित्र मगवतीनर्मदाकी सच्च तरङ्गें माहिमतीकी प्राचीर चूमकर उसकी पवित्रता बढ़ा रही थीं। ऐसा लगता था मानो अमरकण्टक पर्वतपर तप करनेके

बाद सिद्धियोने माहिप्मतीमें ही निवास करनेसा विचार किया हो । इस तीर्थमें कहाँ वेदमन्त्रोंका उच्चारण हो रहा था, कहाँ बड़े-बड़े यज्ञ हो रहे थे पुराण-श्रवणका क्रम चल रहा था, स्थान, ध्यान पूजनमें लोग तत्पर थे तो इही भगवान् शकुरको प्रतक्षण करनेके लिये नृत्य-गान आदि उत्सव भी विश्वरूपक सम्पन्न हो रहे थे । नदीके तटपर वैष्णवजन कहाँ दान-पुण्य कर रहे थे तो कहाँ बड़े-बड़े व्रत-अनुष्ठान भी दर्शनीय थे । धनेश्वरको माहिप्मतीमें निवास करते एक मास पूरा हो रहा था, वह धूम-धूमकर शुभ कृत्योंका दर्शन फ़रता था ।

‘आह !’ एक दिन नदी-तटपर धूमते समय उसके मुखमें सहसा निम्नलिख पड़ा । वह मृद्धित होकर पृथ्वीपर पिंग पड़ा । उसे काले सौंपने काट लिया था । अगणित लोग एकत्र हो गये । उसकी चेतना लौटानेके लिये वैष्णवोंने तुलसीदल-सिंहित ज़ज्ज्ञान को उसके मुखपर छोटा लिया, श्रीविष्णुजा नाम सुनाया, द्वादशाश्वर गन्त्रका उच्चारण किया, पर उसके शरीरमें प्राणका सचार न हो सका ।

X X X

मयमनीपुरीमें पहुँचनेपर धनेश्वरके लिये कड़ी-से भड़ी यातनाका विद्यान सोचा गया । यमदूत उसे मुद्रारसे मारने लगे ।

‘इसने पृथ्वीपर एक भी पुण्य नहीं किया है महाराज ! यह महान् पापी है ।’ चित्रध्वजने यमराजका व्याप्त आकृष्ट किया, धनेश्वर कुम्भीपाक नरकमें खौलते तेलके कड़ाहेमें डाल दिया गया । उसके गिरने ही तेल ठड़ा हो गया ।

‘युधमनीपुरीकी यह पहली आश्र्वयमयी घटना है, महाराज !’ प्रेतराजने विसिन दृष्टिसे यमराजको देखा ।

‘इसमें आश्र्वय करनेकी आवश्यकता ही नहीं है, धनेश्वरने एक मासतक वैष्णवोंसे सम्पर्कमें माहिप्मतीमें निवासकर अनेक पुण्य कराये हैं, व्रत अनुष्ठान, दान, नृत्य, सर्गीत कथा-नाटा आदिमें इसका मन पवित्र है, इसके पहलेके पाप नष्ट हो गये हैं ।’ वीणा वजाते हुए देवर्पिं नारद आ पहुँचे । यम और प्रेतराज—दोनोंने उनकी चरण-वन्दना की ।

‘यह यश्चरोनि पानेका अधिकारी है, इसके लिये नरक-यातनाकी आवश्यकता नहीं है, केवल नरक-ऋणमें ही जाम चल जायगा ।’ नारद चले गए ।

प्रेतराजने धनेश्वरको तसवालुका, अन्वतापिक्ष, कक्ष, असिंहवन, वर्गला, कूटगात्मली, रक्तपृथ्य और कुम्भीपाक नरकका दर्शन कराया । उसने यश्चरोनि पापी । —रा ० श्री० (पद्मपुराण, उत्तरग्वण्ड)

चित्रध्वजसे चित्रकला

प्राचीन कालमें वन्दप्रभ नामके एक राजपिंथे । भगवान् श्रीकृष्णकी कृगासे उन्हें चित्रध्वज नामक सुन्दर पुत्र प्राप्त था । वह लड़क्यनसे ही भगवान्का भक्त था । वह जब वारह वर्षका हुआ, तभी राजाने किनी ब्राह्मणके द्वारा उसे धर्यादशाश्वर—(ओ० कई कृष्णाय गोविन्दाय गोरीजन-बल्लभाय म्वाहा) मन्त्र दिलवा दिया । बालकने मन्त्रपृथृत अमृतमय जलमें स्नान करके पिताको प्रणाम किया और एक दिन वह सुन्दर पवित्र नवीन वस्त्र तथा आभूषण वाग्ण करके श्रीविष्णु-मन्दिरमें चल गया । वहाँ वह यमुना-पुलिनपर बनमें गोवालाओंके साथ क्रीड़ा करते हुए सुवनमोहन श्रीकृष्णका ध्यान करने लगा और भगवान्के लिये उसका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठा । भगवत्कुलसे उसे परमा विद्या प्राप्त हुई और उसने म्बग्रमें देखा—

उस भवनमें सुवर्णपीटपर समस्त तुलश्चणोंसे युक्त व्यामर्ण स्तिंगध और लावण्यगाली त्रिभङ्गलित भगवान् श्रीकृष्णका मनोहर श्रीविग्रह है । सिरपर मयूरपिंच सुशांमित

है । वे श्रीविग्रहरू भगवान् मानो अधरोपर स्थापित स्वर्णवेणु वजा रहे हैं । उनके दोनों ओर दो सुन्दरियाँ विराजमान हैं । चित्रध्वजने इन प्रकार वैद्यविलासपुक्त श्रीकृष्णको देखकर लज्जावनत होकर उन्हें प्रणाम किया । तदनन्तर श्रीकृष्णने अपने दाहिनी ओर वैश्नी हुई लिंगता प्रियासे हृष्टमें हुए कहा—‘मृगलोचने । तुम अपने ही अगमृत इस बालकके लिये ऐसा चिन्तन करो मानो यह तुम्हारे ही जैसी दिव्य अद्भुत युवती है । तुम्हारे और इसके शरीरमें कोई भी भेद नहीं रहना चाहिये । तुम्हारे ऐसा चिन्तन करनेपर तुम्हारे अङ्ग-तेजस सर्वा पाकर यह बालक तुम्हारे रूपको प्राप्त हो जायगा ।’

तब वह कमलनयनी चित्रध्वजके पास जाकर अपने अङ्गोंके समान उसके समस्त अङ्गोंका अमेदभावसे चिन्तन करने लगी । उस देवीके अङ्गोंकी तेजोराशि चित्रध्वजके अङ्गोंका आश्रय करके उसका वैसा ही निर्माण करने लगी । देखते-ही-देखते वह सुन्दर नितम्ब, वक्ष स्थल, फ़ेराराशिके

युक्त रमणीय युवती-रूपमें परिणत हो गया। वह रमणी सम्पूर्ण सुन्दर वस्त्र, आभूषण तथा हार-मालादिसे सुशोभित होकर बैठे ही हाव-भावोंसे समग्र दीखने लगी। तब एक दीपकमें दूसरे दीपकके जल उठनेकी भौति देवीगरीरसे उल्लङ्घ देवी-मूर्तिमें देखकर उस देवीने उस लज्जासे सकुचित और यौवन-सुलभ मन्द मुसकानसे युक्त नवीन रमणीका हाथ पकड़कर परम आनन्दसे उमे श्रीगोविन्दकी वायी ओर बैटा दिया। तदनन्तर उस देवीने श्रीभगवान्‌से कहा—‘प्रभो! आपकी वह दासी उपस्थित है, इसका नामकरण कीजिये और इसको आपकी रचिकी कौन-सी अत्यन्त द्विष्ट सेवामें नियुक्त किया जायगा, वह भी वता दीजिये।’ इसके पश्चात् उसने म्यं ही उसका ‘चित्रकला’ नाम रखकर उसमें कहा कि ‘नुम इन वीणाको लो और सदा-सर्वदा प्रभुके समीप रहकर विविध म्यरंगें मेरे प्राणनायका गुणगान किया करो। तुम्हारे लिये यही मेवा है।

‘चित्रकला’ने उनका आदेश म्यकार करके भगवान् श्रीमात्रवक्तो प्रणाम किया और उनकी प्रेयमीके चरणरविन्दकी

धूलि लेकर वह युगलस्वरूपके आनन्दवर्धक गुणोंका सुललित स्वरोमे गान करने लगी। तब आनन्दमय भगवान् श्रीकृष्णने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसका आलिङ्गन किया। भगवान् श्रीकृष्णके आनन्दमय स्पर्शसे चित्रकला ज्यों ही आनन्द-मागरमे निमग्न हुईं कि उसकी नींद ढूट गयी। अब तो श्रीकृष्ण-प्रेम-परवक्ता होकर कुमार चित्रकला स्वरूपके उस अपार अलौकिक आनन्दका स्मरण करके फुफकार मारकर उच्च स्वरसे रोने लगा। उसका आहार-विहार सब छूट गया। महीनेमर इन प्रकार व्याकुल हृदयसे घरमें रहा, फिर एक दिन आधी रात्रिके समय श्रीकृष्णको सहचर बनाकर वह घरसे निकल पड़ा और श्रीकृष्ण-प्राप्तिके लिये मुनियांके लिये भी दुःसाध्य तपस्या करने लगा। इसी महामुनिने देह-त्यागके अनन्तर वीरगुप्त नामके गोपके घर ‘चित्रकला’ नामसे कन्यारूपसे जन्म लिया। चित्रकला गोपीके कधेपर सदा-सर्वदा सप्तम्यर-गोभित मनोहर वीणा रहती है और यह भगवान्‌के समीप युगल-स्वरूप श्रीराधाकृष्णका नित्य निरन्तर गुणगान किया करती है।

सु-भद्रा

(लेखक—प० श्रीसुरजचन्द्रजी सत्प्रेमी ‘डॉगीजी’)

जो पहले था, अब भी है और मदा रहेगा, वही ‘सत्’ है, जिसके सुननेसे हित होता है, ऐसे वृत्तान्तको भी ‘सत्’ कहने हैं। ऐसे ‘सत्’की कथा करना ही ‘कल्याण’के इस अङ्गकी विशेषता है। मैं आपकी सेवामें ऐसी एक सत्कथा उपस्थित करता हूँ, जो जीवनका उत्तम दर्जन है एवं जिसके आवाग्पर हमारा मनुष्य-जीवन प्रत्येक अवस्थामें आन्त, निर्मल और प्रगतिशील रहकर स्व-पर-कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है—

दमुदेव-नन्दन कम-चाणूर-मर्दन, देवकी-परमानन्द जगद्गुरु श्रीकृष्णकी वहिन ‘सुभद्रा’ देवी दोंग्धा गोपाल-नन्दनके मित्र वत्स पार्थको दी गयी थी।

पुत्र अभिमन्युके चन्द्र-लोकगमनका समाचार सुनकर सुभद्राकी अश्रुधारा गेकना वर्मराजको भी असम्भव लगा। नन्दनन्दन बोले—‘उहिन। तू योगेश्वरकी वहिन होकर रोती है—वह शोभा नहीं देता। जो आत्मा था, वह तो किसीने देस्ता नहीं और जो अरीर दिखायी दिया, वह अब भी है। कौन अभिमन्यु पैदा हुआ और कौन मरा। वता तो सही।’ इस प्रकार तत्त्व-ज्ञान सुनानेपर भी रुद्ध वद नहीं

हुआ। भगवान् बोले—‘वहिन। युद्धमें तो तूने ही उसे तिलक करके भेजा था और कहा था कि हारा हुआ मुँह मुड़े मन दिखाना। यदि विजय करके आया तो मेरी गोद है अन्यथा पृथ्वी माताकी गोद है। डस प्रकार वीरतापूर्ण मदेश देनेवाली रोये, वह अयोग्य है।’

सुभद्राने उत्तर दिया, ‘भैया, चुप रहो। इस समय बोलो मत। तुम्हारी वहिन सुभद्रा तो सु-भद्रा ही है—परम गान्त है—वह कभी नहीं रोती। युद्धमें भेजेवाली वीर-यत्नी क्षत्रियाणी थी और रोनेवाली वेटेकी मौ है, इसे रो लेने दो। जाओ। तुम पहले मौ वनो और बैटा मर जाये तो नहीं रोओ, तब मुझे समझाने आना। भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो गये।

प्रत्येक मनुष्यके मानसमें ऐसी एक सुभद्रावृत्ति रहती है, जो भगवान्‌की वहिन है। वह निरन्तर गान्त रहती है और दुनियाके सब कर्तव्यकर्म निर्लिप्तभावसे करती है—उसे पहचानकर स्वर्वर्मका पालन करना ही जीवनका उत्तम दर्जन है।

स्वर्वर्मणा तमभ्यर्थ्य सिर्जिंद विन्दति मानव।

धैर्यसे पुनः सुखकी प्राप्ति

एक बार युधिष्ठिरने पितामह भीष्मसे पृछा—‘पितामह! क्या आपने कोई ऐसा पुरुष देखा या सुना है, जो एक बार मरकर पुनः जी उठा हो?’

भीष्मने कहा—‘राजन्! पूर्वकालमें नैभिपारण्यमें एक अद्भुत घटना हुई थी, उसे सुनो। एक बार एक ब्राह्मणका एकमात्र वालक अत्यावस्थामें ही चल वसा। रोते-विलखते उसे लेकर सभी शमशानमें पहुँचे और उसे भूमिपर रखकर करण नन्दन करने लगे। उनके रोनेका गद्द सुनकर वहाँ एक गीथ आया और कहने लगा—‘अब तुमलोग इस वालकको छोड़कर तुरत घर चले जाओ। व्यर्थ विलभ्य मत करो। भभीको अपनी आयु समाप्त होनेपर कूच करना ही पढ़ता है। यह शमशान-भूमि गृह और गीदड़ोंसे भरी है। इसमें सर्वत्र नरकझाल दिखलायी पड़ रहे हैं। तुमलोगोंको यहाँ अधिक नहीं ठहरना चाहिये। प्राणियोंकी गति ऐसी ही है कि एक बार कालके गालमें जानेपर कोई जीव नहीं लौटता। देखो, अब सूर्यभगवान् अस्ताचलके अञ्चलमें पहुँच चुके हैं, इसलिये इस वालकका मोह छोड़कर तुम अपने घर लौट जाओ।’

‘उस गृध्रकी वातें सुनकर वे लोग उस वालकको पृथ्वी-पर रखकर रोते-विलखते चलने लगे। इतनेमें ही एक काले रगका गीदड़ अपनी मॉदमेंसे निकला और वहाँ आकर कहने लगा—‘मनुष्यो! वास्तवमें तुम वडे स्लेहन्टन्य हो। और मूर्दों! अभी तो सूर्यास्त भी नहीं हुआ। इतने डरते क्यों हो? कुछ तो स्लेह निवाहो। फिसी शुभ घड़ीके प्रभावसे यह वालक कहीं जी ही उठे। तुम कैसे निर्दयी हो। तुमने शुत्रस्नेहको तिलाज्ञालि दे दी है और इस नन्हे-से वालकको भीषण शमशानमें यो ही पृथ्वीपर सुलाकर छोड़कर जानेको तैयार हो गये हो। देखो, पशु-पक्षियोंको भी अपने बच्चोंपर इतना कम स्लेह नहीं होता। यद्यपि उनका पालन-पोषण करनेपर उन्हें इस लोक या परलोकमें कोई फल नहीं मिलता।’

‘गीदड़की वातें सुनकर वे लोग अबके पास लौट आये। अब वह गृध्र कहने लगा—‘अरे बुद्धिमान् मनुष्यो! इस तुच्छ मन्दमति गीदड़की वातोंमें आकर तुम लौट कैसे आये। मुझे जन्म लिये आज एक हजार वर्षसे अधिक हो गया, किंतु मैंने कभी फिसी पुरुष, खीं या नपुसकको मरनेके बाद यहाँ जीवित होते नहीं देखा। देखो, इसका मृत-देह निस्तेज और

काष्ठके समान निश्चेष्ट हो गया है। अब तुम्हारा स्लेह और श्रम तो व्यर्थ ही है। इससे कोई फल हाथ ल्यानेवाला नहीं। मैं तुमसे अवश्य कुछ कठोर वातें कर रहा हूँ; पर ये हेतु-जनित हैं और मोक्षधर्मसे सम्बद्ध हैं। इसलिये मेरी वात मानकर तुम घर चले जाओ। किसी मेरे हुए सम्बन्धिको देखनेपर और उसके कामोंको याद करनेपर तो मनुष्यका शोक दुगुना हो जाता है।’

‘गृध्रकी वातें सुनकर पुनः सब वहाँसे चलने लगे। उसी समय गीदड़ तुरत उनके पास आया और बोला—‘भैया। देखो तो सही इस वालकका रग सोनेके समान चमक रहा है। एक दिन यह अपने पितरोको पिण्ड देगा। तुम गृध्रकी वातोंमें आकर इसे क्यों छोड़े जाते हो? इसे छोड़कर जानेमें तुम्हारे स्लेह, व्यथा और रोने-धोनेमें तो कोई कमी आयेगी नहीं। हाँ, तुम्हारा सताप अवश्य बढ़ जायगा। सुनते हैं भगवान् श्रीरामने शम्बूकको मारकर ब्राह्मणके भरे वालकको पुन जिला दिया था। एक बार राजपिंश्वेतका वालक भी मर गया था, किंतु धर्मनिष्ठ देवतने उसे पुनः जीवित कर लिया था। इसी प्रकार यहाँ भी कोई सिद्ध मुनि या देवता आ गये तो वे रोते देखकर तुम्हारे ऊपर कृपा करके इसे पुन जिला सकते हैं।’

‘गीदड़के इस प्रकार कहनेपर वे सब लोग फिर शमशानमें लौट आये और उस वालकका सिर गोदमें रखकर रोने लगे। अब वह गृध्र उनके पास आया और कहने लगा—‘अरे लोगो! यह तो धर्मराजकी आज्ञासे सदाके लिये सो गया है। जो वडे तपस्ती, धर्मात्मा और बुद्धिमान् होते हैं, उन्हें भी मृत्युके हाथमें पड़ना पड़ता है। अत. बार-बार लौटकर शोकका बोक्षा सिरपर लादनेसे कोई लाभ नहीं है। जो व्यक्ति एक बार जिस देहसे नाता तोड़ लेता है, वह पुनः उस बारीसे नहीं आ सकता। तुम्हारे आँख बहाने, लंबे-लंबे श्वास लेने या गला फाढ़कर रोनेसे इसे पुनर्जीवन नहीं मिल सकता।’

‘गृध्रके ऐसा कहनेपर वे लोग फिर धरकी ओर चल पड़े। इसी समय गीदड़ फिर बोल उठा—‘अरे! तुम्हें धिकार है।

तुम इस गृष्मकी बातोंमें आकर मूर्खोंकी तरह पुत्रस्तेहको तिलाज्जलि देफर कैसे जा रहे हो । यह गृष्म तो महापापी है । मैं सच कहता हूँ, मुझे अपने मनसे तो यह बालक जीवित ही जान पड़ता है । देखो, तुम्हारी मुखकी घड़ी समीप है । निश्चय रखो, तुम्हे अवश्य मुख मिलेगा ।'

"इस प्रकार गृष्म और गीदड़ दोनों उन्हें बास्थार अपनी-अपनी कहकर समझाते थे ।

"राजन् ! वे गृष्म और गीदड़ दोनों ही भूले थे । वे दोनों ही अपना अपना काम बनानेपर तुले हुए थे । गृष्मको भय था कि रात हो जानेपर मुझे धोमलेमें जाना पड़ेगा और इसका मास मियार खायेगा । इधर गीदड़ सोचता कि दिनमें गृष्म बाधक होगा या इसे लेकर उड़ जायगा । इसलिये गृष्म तो यह कहता था कि अब सर्यास्त हो गया और गीदड़ कहता था कि अभी अस्त नहीं हुआ । दोनों ही जानकी बातें बनानेमें कुशल थे । इसलिये उनकी बातोंमें आकर वे कभी धरकी ओर चलते और कभी रुक जाते । कुशल गृष्म

और गीदड़ने अपना काम बनानेके लिये उन्हें चक्रमें डाल रखता था और वे शोकवग रोते हुए वहाँ खड़े रहे । इतनेमें ही श्रीपार्वतीजीकी प्रेरणामें वहाँ भगवान् शंकर प्रकट हुए । उन्होंने उनसे वर माँगनेको कहा । तब सभी लोग अत्यन्त विनीत भावसे हुँसित होकर बोले—'भगवन् । इस एकमात्र पुत्रके वियोगसे हम बड़े दुखी हैं, अतः आप इसे पुनः जीवनदान देकर हमें मरनेसे बचाइये ।'

"उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् ने उस बालकको पुनः जिला दिया और उसे सौ वर्षकी आयु दी । भगवान् ने कृपाकर उस गीदड़ तथा गृष्मको भूख मिट जानेका वर दिया । वर पाकर सभीने पुनःपुनः प्रभुको प्रणाम किया और कृतकृत्य होकर नगरकी ओर चले गये ।

"राजन् । यदि कोई दृढ़निश्चयी व्यक्ति धैर्यपूर्वक किसी कार्यके पीछे लगा रहे, उससे ऊबे नहीं, तो भगवत्कृपासे उसे सफलता मिल सकती है ।" — जा० श०

(महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय १९३)

आत्म-प्रशंसासे पुण्य नष्ट हो जाते हैं

महाराज यथातिने दीर्घकालतक राज्य किया था । अन्तमें सासारिक भोगोंसे विरक्त होकर अपने छोटे पुत्र प्रसुको उन्होंने राज्य दे दिया और वे स्वयं बनमें चले गये । बनमें कन्द-मूल खाकर क्रोधको जीतकर बानप्रस्थाश्रमकी विधिका पालन करते हुए पितरों एव देवताओंको सतुष्ट करनेके लिये वे तपस्या करने लगे । वे नित्य विधिपूर्वक अग्निहोत्र करते थे; जो अतिथि-अभ्यागत आते, उनका आदरपूर्वक कन्द-मूल-फलसे मत्कार करते और स्वयं कटे हुए खेतमें गिरे अन्नके दाने चुनकर तथा स्वतः बृक्षसे गिरे फल लाकर जीवन-निर्वाह करते थे । इस प्रकार पूरे एक महस्त्र वर्ष तप करनेके बाद महाराज यथातिने केवल जल पीकर तीस वर्ष व्यतीत कर दिये । फिर एक वर्षतक केवल वायु पीकर रहे । उसके पश्चात् एक वर्षतक वे पञ्चानि तापते रहे । अन्तके छः महीने तो वायुके आहारपर रहकर एक पैरसे खड़े होकर वे तपस्या करते रहे ।

इस कठोर तपस्याके फलसे राजा यथाति मर्वा पहुँचे । वहाँ देवताओंने उनका वड़ा आदर किया । वे कभी देवताओं-के साथ मर्वामें रहते और कभी व्रह्मलोक चले जाते थे । उनका यह महत्व देवताओंकी ईर्प्यकां कारण हो गया ।

यथाति जब कभी देवराजके भवनमें पहुँचते, तब इन्द्रके साथ उनके सिहासनपर बैठते थे । देवराज इन्द्र उन परम पुण्यात्मको अपनेसे नीचा आसन नहीं दे सकते थे । परतु स्वर्गमें आये मर्त्यलोकके एक जीवको अपने सिहासनपर बैठाना इन्द्रको दुरा लगता था । इसमें वे अपना अपमान अनुभव करते थे । देवता भी चाहते थे कि किसी प्रकार यथातिको स्वर्ग-भ्रष्ट कर दिया जाय । इन्द्रको देवताओंका भाव भी जात हो गया ।

एक दिन यथाति इन्द्रभवनमें देवराज इन्द्रके साथ एक मिहासनपर बैठते थे । इन्द्रने अत्यन्त मधुर स्वरमें कहा—'आप तो महान् पुण्यात्मा हैं । आपकी समानता भला, कौन कर सकता है । मेरी यह जाननेकी बहुत इच्छा है कि आपने कौन-सा ऐसा तप किया है, जिसके प्रभावसे ब्रह्मलोकमें जाकर वहाँ इच्छानुसार रह लेते हैं ।'

यथाति वड़ाई सुनकर फूल गये और वे इन्द्रकी मीठी वाणीके जालमें आ गये । वे अपनी तपस्याकी प्रशंसा करने लगे । अन्तमें उन्होंने कहा—'इन्द्र । देवता, मनुष्य, गन्धर्व और ऋषि आदिमें कोई भी तपस्यामें मुझे अनेसमान दीख नहीं पड़ता ।'

यात् सुमास होते ही देवराजना भाव बढ़ा गया । कठोर स्वरमें वे बोले—‘यथाति ! मेरे आसनसे उठ जाओ । तुमने आगे सुगमे अग्नी प्रगमा की है, इससे तुम्हारे वे सब पुण्य नष्ट हो गये, निनकी तुमने चर्चा की है । देवता, मनुष्य, गन्यर्व, शृंदि आदिमें किमनं सितना तप मिला है—यह पिना जाने ही तुमने उनका निरन्मार मिला है, इससे अब तुम स्वर्णसे गिरोगे ।’

आत्म प्रगमाने व्याप्तिके तीव्र तपके फलको नष्ट कर दिया । वे स्वर्णसे गिर गये । उनकी प्रार्थनापर देवराजने कृपा करके वह सुविधा उन्हें दे दी थी कि वे सत्पुरुषोंकी मण्डलीम ही गिरे । सत्पुरुषोंके परिणामस्वरूप वे पुन शीघ्र ही स्वर्ण जा सके ।—सु० सिं०

(महाभारत, आदि० ८० ८१)

जरा-मृत्यु नहीं टल सकतीं

यज्ञा जनसने पञ्चशिष्य सुनिमे वृद्धामन्या और मृत्युसे वननेका उपाय पूछा । तत्र पञ्चशिष्यने कहा—‘कोई भी मनुष्य जरा और मृत्युमें नहीं रच सकता । अज्ञानी मनुष्य जग मृत्युम्यी जन्मगमे भेरे हुए जालम्यी सागरमें नित्य ही पिना नावके उत्थते उत्तरने रखते ह । इन्हें कोई नहीं बचा सकता । मात्रामें रोटि किसीजा नहीं ह । जैसे गहरमें चरते हुए गाँवियाभी एक-दूसरेसे भेट हो जाती

है सुसाग्रम छी पुत्र और भाई-बन्धुके सम्बन्धको भी ऐसा ही नमस्ना चाहिये । जैसे गरजते हुए बाढ़लोंको हवा अनापास ही एक जगहसे उड़ाकर दूसरी जगह ले जाती है, वैसे ही मृत-ग्राणी जालसे प्रेरित होकर हाय हाय करते हुए मरते और जन्मते रहते ह । जरा और मृत्यु भेड़ियेकी भानि दुर्बल और वश्वान् तथा नीच और ऊच, सभीको खा जाती ह, इसलिये शरीरके लिये गोक नहीं करना चाहिये ।’

विद्या अध्ययन करनेसे ही आती है

कन्यपलके समीर गङ्गा रिनारे योङ्गी दूरके अन्तरसे महर्षिं भगद्वान् तथा मर्त्यिं रैभ्यके आत्रम ये । दोनों महर्षिं परस्पर धनिष्ठ मित्र थे । रैन्द्रन् अर्वाचसु और परावसु नामके दो पुत्र हुए । वे दोनों ही अपने पिताके नमान शास्रोंके गम्भीर विद्वान् हुए । भगद्वाजजी तपस्मी थे । अध्ययन-अध्यागममें उनकी दक्षिणही थी । गांवज न होनेके कारण उनकी ख्याति भी रैभ्यकी अंगेका रूप थी । उनके एक पुत्र यवकीत । पिताके नमान यवकीत भी अन्यगमसे अलग ही रहे । परतु यवकीतकी अपने पिताकी समाजद्वाग उपेक्षा और रूप तथा उनके पुत्रोंका सम्मान देवराज वडा दुर्घ द्योता था । अन्यमें सोच-समझकर उन्होंने बैठेकर जान प्राप्त करनेके लिये उग्र तप प्रारम्भ किया । पञ्चशिष्य तपते हुए वे प्रचलिन अग्निमें अपना शरीर सरत करने लगे ।

यवकीतका कठोर तप देवराज देवराज इन्हें उनके पास आये और उनसे इस तपका कारण पूछने लगे । यवकीतने वताण्य—‘गुरुके सुवसे बंदोंकी मम्पूर्ण विद्या शीघ्र नहीं पायी जा सकती, इसलिये म तरके प्रभावमें ही मम्पूर्ण वेद-ग्राण्डोंका जान प्राप्त करना चाहता हूँ ।’

इन्होंने कहा—‘आपने सर्वथा उल्टा मार्ग पकड़ा है ।

गुरुके पास जाकर अध्ययन कीजिये । इस प्रकार व्यर्थ आत्म-हत्या करनेमें क्या लाभ ।’

इन्हें तो चढ़े गये, किंतु यवकीतने तपस्या छोड़ी नहीं । उन्होंने और कठोर तप प्रारम्भ कर दिया । देवराज दया करके फिर पश्चे और बोले—‘त्राहण । आपका यह उद्योग बुद्धिमत्तायुक्त नहीं है । किसीको गुरुमुद्दसे पढ़े विना विद्या प्राप्त भी हो तो वह मफल नहीं होती । आप अपने हुराप्रह-को छोड़ दें ।’

जब देवराज यह आंदेश टकर चढ़े गये, तब यवकीतने निश्चय किया कि वे अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग काटकर अग्निमें हवन कर देंगे । उन्होंने तपस्यामें ही विद्या पानेका आग्रह रखा । उनका निश्चय जानकर देवराज इन्हें अत्यन्त बृद्ध एवं रोगी त्राहणका रूप बनाकर वहाँ आये और जहाँ यवकीत गङ्गाजीमें सान किया फरते थे, उसी स्थानपर गङ्गाजीमें बाल डालने लगे ।

यवकीत जब खान करने आये तब उन्होंने देखा कि एक दुर्बल बृद्ध त्राहण अज्ञालियें वास-वार गेन लेकर गङ्गामें डाल रहा है । उन्होंने पृछा—‘विश्ववर ! आप क्या कर रहे हैं ?

बृद्ध ब्राह्मणने उत्तर दिया—‘लोगोंको यहाँ गङ्गाके उस पार जानेमें बड़ा कष्ट होता है, इसलिये मैं गङ्गापर पुल बॉध देना चाहता हूँ।’

यवकीत बोले—‘भगवन्! आप इम महाप्रवाहको बालूसे किती प्रकार बॉध नहीं सकते। इसलिये हरा असम्भव कार्यको छोड़कर जो कार्य हो सके, उसके लिये प्रयत्न कीजिये।’

अब बृद्धने धूमकर यवकीतकी ओर देखा—‘तुम जैसे

तपस्याके द्वारा वैदिक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो, वैसे ही मैं यह कार्य कर रहा हूँ। तुम असाध्यको यदि साध्य कर सकोगे तो मैं क्यों नहीं कर सकूँगा।’

ब्राह्मण कौन है, यह यवकीत समझ गये। उन्होंने नम्रतापूर्वक कहा—‘देवराज ! मैं अपनी भूल समझ गया। आप मुझे क्षमा करें।’ —सु० सिं०

(महाभारत, बन० १३५)

जहाँ मन, वहीं हम

सुशील नामके एक ब्राह्मण थे। उनके दो पुत्र थे। वडेका नाम था सुवृत्त और छोटेका वृत्त। दोनों युवा थे। दोनों गुणसम्बन्ध तथा कई विद्याओंके विद्यारद थे। धूमते-धामते दोनों एक दिन प्रयाग पहुँचे। उस दिन थी जन्माष्टमी। इसलिये श्रीयेनीमाधवजीके मन्दिरमें महान् उत्सव था। महोत्सव देखनेके लिये वे दोनों भी निकले। वे लोग सहकपर निकले ही थे कि वडे जोरकी वर्षा आ गयी। इसलिये दोनों मार्ग भूल गये। किसी निश्चित स्थानपर उनका पहुँचना कठिने था। अतएव एक तो वेश्याके घरमें चला गया, दूसरा भूलता-भटकता माधवजीके मन्दिरमें जा पहुँचा। सुवृत्त चाहता था कि वृत्त भी उसके साथ वेश्याके यहाँ ही रह जाय। पर वृत्तने इसे स्वीकार नहीं किया। वह माधवजी-के मन्दिरमें पहुँचा भी, पर वहाँ पहुँचनेपर उसके संस्कार बदले और वह लगा पछताने। वह मन्दिरमें रहते हुए भी सुवृत्त और वेश्याके ध्यानमें झूल गया। वहाँ भगवान्नकी पूजा हो रही थी। वृत्त उसे सामनेसे ही खड़ा देख रहा था। पर वह वेश्याके ध्यानमें ऐसा तल्लीन हो गया था कि वहाँकी पूजा, कथा, नमस्कार, स्तुति, पुण्याळिलि, गीत-वृत्तादिको देखते-सुनते हुए भी नहीं देख रहा था और नहीं सुन रहा था। वह तो बिल्कुल चिन्तके समान वहाँ निर्जीव-सा खड़ा था।

इधर वेश्यालयमें गये सुवृत्तकी दग्गा विचित्र थी। वह पदचात्तापकी अग्निमें जल रहा था। वह सोचने लगा—‘अरे। आज भैया वृत्तके हजारों जन्मोंके पुण्य उदय हुए जो वह जन्माष्टमीकी रात्रिमें प्रयागमें भगवान् माधवका दर्शन कर रहा है। ओहो! इस नभय वह प्रभुको अर्घ्य दे रहा होगा। अब वह पूजा-आरतीका दर्शन कर रहा होगा। अब वह नाम एव कथा-कीर्तनादि सुन रहा होगा।

अब तो नमस्कार कर रहा होगा। सचमुच आज उसके नेत्र, कान, सिर, जिहा तथा अन्य सभी अङ्ग सफल हो गये। मुझे तो बार-बार धिक्कार है जो मैं इस पापमन्दिर वेश्याके घर-में आ पड़ा। मेरे नेत्र मोरके पॉखके समान हैं, जो आज भगवद्वर्णन न कर पाये। मेरे हाय, जो आज प्रभुके सामने नहीं जुड़े, कलब्धुलसे भी गये चीते हैं। हाय! आज सत-समागमके बिना मुझे यहाँ एक-एक क्षण युगसे बड़ा मालूम होने लगा है। अरे। देखो तो मुझ दुरात्माके आज कितने जन्मोंके पाप उदित हुए कि प्रयाग-जैसी मोक्षपुरीमें आकर भी मैं धोर दुष्ट-सङ्गमें फैस गया।’

इस तरह दोनोंको सोचते रात चीत गयी। प्रातःकाल उठकर वे दोनों परस्पर मिलने चले। वे अभी सामने आये ही थे कि वज्रपात हुआ और दोनोंकी तत्क्षण मृत्यु हो गयी। तत्काल वहाँ तीन यमदूत और दो भगवान् विष्णुके दूत आ उपस्थित हुए। यमदूतोंने तो वृत्तको पकड़ा और विष्णुदूतोंने सुवृत्तको साथ लिया। ज्यों ही वे लोग चलनेको तैयार हुए, सुवृत्त घबराया-सा बोल उठा, ‘अरे। आपलोग यह कैसा अन्याय कर रहे हैं। कलके पूर्व तो हम दोनों समान थे। पर आजकी रात मैं वेश्यालयमें रहा हूँ, और वह वृत्त, मेरा छोटा भाई, माधवजीके मन्दिरमें रहकर परम पुण्य अर्जन कर चुका है। अतएव भगवान्नके परम धारमें तो वही जानेका अधिकारी हो सकता है।’

अब भगवान्नके दोनों पार्षद ठहाका मारकर हँस पड़े। वे बोले—‘हमलोग भूल या अन्याय नहीं करते। देखो, धर्मका रहस्य बड़ा सूक्ष्म तथा विचित्र है। सभी धर्मकमोंमें मनःशुद्धि ही मूल कारण है। मनसे भी किया गया

पाप दुःखद होता है, और मनसे भी चिन्तित धर्म सुखद होता है। आज तुम रातभर शुभचिन्तामें लगे रहे हो, अतएव तुम्हें भगवद्वामकी प्राप्ति हुई। इसके विपरीत वह आजकी सारी रात अशुभ चिन्तनमें ही रहा है, अतएव वह नरक जा रहा है। इसलिये सदा धर्मका ही चिन्तन और मन लगाकर धर्मानुष्ठान करना चाहिये।'

बस्तुत, जहाँ मन है, वहाँ मनुष्य है। मन वेद्यालयमें हो तो मन्दिरमें रहकर भी मनुष्य वेद्यालयमें है और मन मगवानमें है तो वह चाहे कहीं भी हो, मगवानमें ही है।

सुवृत्तने कहा 'पर जो हो, इस भाईके बिना मेरी भगवद्वाममें जानेकी हच्छा ही नहीं होती। अन्यथा आप-लोग कृपा करके इसे भी यमपात्रसे मुक्त कर दें।'

विष्णुदूत बोले—'सुवृत्त! यदि तुम्हें उसपर दया है तो तुम्हरे गतजन्मके मानसिक मावस्थानका सकल्पित जो पुण्य वच रहा है, उसे तुम वृत्तको दे दो तो यह भी तुम्हरे साथ ही विष्णुलोकको चल सकेगा। सुवृत्तने तत्काल वैसा ही किया और फलतः वृत्त भी हरिधामको अपने भाईके साथ ही चला गया।—जा० श० (वायुपुराण, मावमाहात्म्य, अन्याय २१)

दुरे काममें देर करनी चाहिये

महर्षि गौतमके एक पुत्रका नाम था चिरकारी। वे बुद्धिमान् थे, कार्यकुशल थे, किंतु प्रत्येक कार्यको वहुत सोच-विचार करनेके पश्चात् करते थे। उनका स्वभाव ही वरे-वरे कार्य करनेका हो गया था। जबतक किसी कार्यकी आवश्यकता और औचित्य उनकी समझमें नहीं आ जाता था, तबतक वे कार्य प्रारम्भ ही नहीं करते थे। केवल उस कार्यके सम्बन्धमें विचार करते रहते थे। वहुतसे लोग उनको इस स्वभावके कारण आलसी समझते थे।

एक बार महर्षि गौतम किसी कारणसे अपनी पक्षीसे रुद्ध हो गये। क्रोधमें आकर उन्होंने चिरकारीको आजा दी—'वेटा! अपनी इस दुष्ट माताको मार डालो।' यह आजा देकर महर्षि बनमें चले गये।

अपने स्वभावके अनुसार चिरकारीने विचार करना प्रारम्भ किया—'मुझे क्या करना चाहिये। पिताकी आजाना पालन करनेपर माताका वध करना पड़ेगा और माताका वध न करनेपर पिताकी आजाका उछल्हन होगा। पुत्रके लिये पिता और माता दोनों पूज्य हैं। दोनोंमेंसे किसीकी भी अवजा करनेसे पुत्र पापका भागी होता है। कोई भी माताका नाश करके सुखी नहीं हो सकता। पिताकी आजा टालकर भी सुख और कर्तिं नहीं मिल सकती। मेरी मातामें कोई दोष है या नहीं, यह सोचना मेरे लिये अर्थमें है। इसी प्रकार पिताकी आजा भी उचित है या नहीं, अह सोचना मेरे अधिकारमें नहीं।'

चिरकारी तो ठहरे ही चिरकारी। वे चुपचाप हाथमें शब्द लेकर बैठे रहे और सोचते रहे। किसी भी निश्चयपर उनकी बुद्धि पहुँचती नहीं थी और बुद्धिके टीक-टीक निर्णय किये बिना कोई काम करना उनके स्वभावमें नहीं था।

उधर बनमें जानेपर जब महर्षि गौतमका क्रोध शान्त हुआ, तब उन्हे अपनी भूल जात हुई। वे वहुत दुखी होकर सोचने लगे—'मैंने आज कितना बड़ा अनर्थ किया। अवश्य मुझे छी-बधका पाप लगेगा। मेरी पक्षी तो निर्दोष है। क्रोधमें आकर मैंने बिना विचारे ही उसको मार डालनेका आदेश दे दिया। कितना अच्छा हो कि चिरकारी अपने नामको आज सार्थक करे।'

महर्षि श्रीघ्रतापूर्वक आश्रमकी ओर लैटे। उनको आते देखकर चिरकारीने लज्जासे शब्द छिपा दिया और उठकर पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। महर्षिने अपने पुत्रको उठाकर हृदयसे लगा लिया और सब वृत्तान्त जानकर प्रसन्न हृदयसे उसको आजीर्वाद दिया। वे चिरकारीको उपदेश देते हुए बोले—'हितैषीका वध और कार्यका परित्याग वहुत सोच समझकर करना चाहिये। किसीसे मित्रता करनी हो तो सोच-विचारकर करनी चाहिये। क्रोध, अभिमान, किसीका अनिष्ट, अप्रिय तथा पापकर्म करनेमें अधिकसे अधिक विलम्ब करना चाहिये। किसीके भी अपराध करनेपर उसे श्रीघ्र दण्डनहीं देना चाहिये। वहुत सोच-समझकर दण्ड देना चाहिये।' —सु० मि० (महाभारत, शान्ति० २६६)

प्रतिज्ञा

त्रेतामें राम अवतारी, द्वापरमें कृष्णमुरारी

(लेखक—श्रीसदानन्दजी शर्मा)

भगवान् श्रीराम जब समुद्र पारकर लङ्घा जानेके लिये समुद्रपर पुल बॉधनेमें सलझ हुए, तब उन्होंने समस्त वानरोंको सुकेत किया कि 'वानरो ! तुम पर्वतोंसे पर्वत-खण्ड लठो जिससे पुलका कार्य पूर्ण हो ।' आज्ञा पाकर वानरठल भिन्न-भिन्न पर्वतोपर खण्ड लनेके लिये दौड़ चले और अनेक पर्वतोंसे बड़े-बड़े विश्वाल पर्वत-खण्डोंको लाने लगे । नल और नील जो इस ठलमें शिल्पकार थे, उन्होंने कार्य प्रारम्भ कर दिया । हनुमान् इस वानरठलमें अधिक वलशाली थे । वे भी गोवर्धन नामक पर्वतपर गये और उम पर्वतको उठाने लगे, परन्तु अत्यन्त परिश्रम करनेपर भी वे पर्वतराज गोवर्धनको न उठा सके । हनुमान्‌को निराश देखकर पर्वतराजने कहा, 'हनुमान् ! यदि आप प्रतिज्ञा करें कि भक्त-शिरोमणि भगवान् श्रीरामके दर्शन करा दूँगा तो मैं आपके साथ चलनेको तैयार हूँ ।' यह सुनकर हनुमान्जे कहा—'पर्वतराज ! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप मेरे साथ चलनेपर श्रीरामजीका दर्शन कर सकेंगे ।' विश्वास प्राप्तकर पर्वतराज गोवर्धन हनुमान्‌जीके करकमलोपर सुगोभित होकर चल दिये । जिस समय हनुमान्‌जी पर्वतराज गोवर्धनको लेकर ब्रजभूमिपरसे आ रहे थे, उस समय सेतु-बॉधनेका कार्य सम्पूर्ण हो चुका था और भगवान् श्रीरामने आज्ञा दी कि 'वानरो ! अब और खण्ड न लाये जायें, जो जहोपर है, वह वहीपर पर्वत-खण्डोंको रख दे ।' आज्ञा पाते ही समस्त वानरोंने जहोंकेतहाँ पर्वत-शिलाओंको रख दिया । हनुमान्‌जीने भी आज्ञाका पालन किया और उन्हे पर्वतराज गोवर्धनको वहीपर रखना पड़ा । वह देख पर्वतराजने कहा—'हनुमान्‌जी ! आपने तो विश्वास ठिक्काया था कि मुझे श्रीरामजीका दर्शन कराओगे, पर आप तो मुझे यहीपर छोड़कर चले जाना चाहते हैं । भला कहिये तो सही, अब मैं परितपावन श्रीरामजीका दर्शन कैसे कर सकूँगा । हनुमान्‌जी विश्व ये,

क्या करते, प्रभुकी आज्ञा ही ऐसी थी । हनुमान्‌जी शोकातुर होकर कहने लगे, 'पर्वतराज ! निराश मत हो, मैं श्रीरामजीके समीप जाकर प्रार्थना करूँगा, आज्ञा है कि दीनदयाल आपको लानेकी आज्ञा प्रदान कर देंगे, जिससे आप उनका दर्शन कर सकेंगे ।'

इतना कहकर हनुमान्‌जी वहोंसे चल दिये और गमदलम आकर श्रीरामजीके चरणोंमें उपस्थित हो अपनी 'प्रतिज्ञा' निवेदन की । श्रीरामजीने कहा—'हनुमान्‌जी ! आप अभी जाकर पर्वतराजसे कहिये कि वह निराश न हो । द्वापरमें कृष्णस्पसे उसे दर्शन होगा ।' हनुमान्‌जी तुरत ही पर्वतराज गोवर्धनके पास गये और जाकर बोले—'पर्वतराज ! भगवान् श्रीरामजीकी आज्ञा है कि आपको द्वापरमें कृष्ण-स्त्रीसे दर्शन होंगे ।'

द्वापर आया । भगवान् श्रीरामने श्रीकृष्णरूप धारणकर ब्रजमे जन्म लिया । एक समय देवताओंके राजा इन्द्रने ब्रजवासियो-द्वारा अपनी पूजा न पानेके कारण क्रोधातुर हो ब्रजको समूल नष्ट करनेका विचार करके मेघोंको आज्ञा दी कि 'आप ब्रजमे जाकर समस्त ब्रजभूमियोंको वर्षाद्वारा नष्ट कर दो ।' मेघ देवराज इन्द्रकी आज्ञा पाकर ब्रजपर मूसलाधर जल वरसाने लगे ।

अतिवृष्टिके कारण ब्रजमे हाहाकार मच गया । समस्त ब्रजवासी इन्द्रके कोसे भयभीत होकर नन्दवावाके घरकी ओर दौड़े । भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'ब्रजवासियो ! धैर्य धारण करो, इन्द्रका कोय आपका कुछ न कर सकेगा; आओ, हमारे साथ चलो । भगवान् श्रीकृष्ण गोप तथा ब्रजवालाओं-सहित गोवर्धनकी ओर चल दिये । पर्वतराज गोवर्धनको दर्शन देकर अद्भुतिपर धारण कर लिया और समस्त ब्रजगमियोंका भय हर लिया तथा अपने बचन तथा सेवन हनुमान्‌की प्रतिज्ञा भी पूरी की ।

बोलो भगवान् श्रीराम-कृष्णकी जय ।

गृध्र और उत्तरकक्षो न्याय

एक बार जब भगवान् श्रीरामवेन्द्र अपने दरवारमें विराज रहे थे, तब एक उत्तर और एक गृध्र उनके चरणोंमें उपस्थित हुए और वार-वार उनके चरणोंको नारी-वारीसे छूने लगे ।

प्रभुके द्वारा कार्य पूछे जानेपर गीध कहने लगा—'आप देवताओं तथा असुरोंमें प्रधान हैं । बुद्धिमें आप वृहस्पति और शुक्रसे भी बढ़-चढ़कर हैं । साथ ही प्राणियोंके बाहर

भीतर, उपर-नीचे सर्वत्रकी वातें जानते हैं। प्रभो! इस उल्लङ्घने मेरे अपने वाहुदीर्घने बनाये हुए ममानका अपहरण कर लिया है। मैं, नाथ! आपकी शरण हूँ। आप कृपया मेरी रक्षा करें।'

गीधकी वात समात भी न हो पारी थी कि उल्लङ्घने कहने न्या—‘महावाहु राम! उन्न, चन्द्र, यम, कुव्रेर और दूर्युके अंगसे गजासी उत्तरति होनी है। इसमें मनुपत्ना अंग तो शोड़ा ही होता है। फिर आप तो सर्वदेवमय मात्रात् भगवान् नारायण ही हैं। इसलिये आपने परे तो कुछ है ही नहा। नाथ! युद्धके न्यासी होनेके नारण आप हमलोगोंके भी स्वामी तथा न्यायकर्ता हैं। देव! धर मेरा हूँ और यह गीर्घ उसमें दुसरफर निव्यप्रति मुझे वाधा पहुँचाता है। इसलिये स्वामिन्! इसे शामित रिया जाय।’

इसपर भगवानने गीधसे पछा—‘अच्छा, तुम यह तो वतलाओं कि तुम उस मकानमें फ़िनने वाले से रह रहे हो?’ गीधने रहा—‘प्रभो! ज़रसे यह पृथ्वी मनुपत्नोंसे विग्रह हुई प्रकट हुई, तर्थसे वह धर मेरा आदाम रहा है।’

इसपर प्रभुने अपने समापदोंसे रहा—‘मम्यो! वह सभा नहीं, जहाँ बृद्ध न हो, वे बृद्ध नहीं, जिन्हें धर्ममा परिज्ञान न हो। वह धर्म भी नहीं, जहाँ सत्य न हो और वह सत्य सत्य भी नहीं, जो छलमें अनुपिद्ध हो। इसके साथ ही यदि समापदगग्न सभी वानासो ठीक ठीक जानते हुए भी चुप्पी मारे वैठे रहते हैं और वधावमर बोलनेका कष्ट नहीं हरते तो वे सभी मिथ्यावादी ही समझे जाते हैं। या जो काम, कोथ और भरके कागण जानते हुए भी प्रबन्धोंका ठीक-ठीक उत्तर नहीं देते, वे समापद अपनेमें एक सहस्र वारुणगशोंसे चोथ लेते हैं। उन पाणोंमें एक पात्र एक वर्षपर छूटता है। इसलिये कौन-सा ऐसा समापद होगा, जो इन गद्यसाको जानते हुए भी सत्तरका अपलाप करे, या जान-बूझनर मोन साथ लेश्य। अतएव आपलोग इनके व्यवहारका ठीक-ठीक निर्णय लें।’

समापदोंने कहा—‘महामति, राजसिंह रखुनन्दन।

* न सा नभा यत्र न सत्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ वमा यत्र न स्वयमन्ति न तत् सत्य यच्छ्लेनात्मुविद्धम् ॥
ये तु सम्या सदा शत्रा तूर्णा ध्यायन्त आसते ।
यथाप्राप्त न ब्रुते ते मवेऽनुतवादिन ॥
जानन वाक्यात् प्रश्नान् कामात् क्रोधाद्यात् तथा ।
सहस्र वारुणान् पाशानात्मनि प्रनिमुच्यति ॥

लक्षणों तथा वाणीके विकारोंसे गीधकी वातें ठीक नहीं जान पड़तीं। उल्लङ्घनी ठीक कह रहा है। पर यह तो हमलोगोंका मत है, यथार्थत महाराज ! इनमें आप ही अव परम प्रमाण हैं।’

मन्त्रियोंकी वात सुनकर प्रभुने कहा—‘पुराणोंमें कहा गया है कि पहले यह सारी पृथ्वी और यह सारा चराचर जगत् जलमय था और वह महाविष्णुके हृदयमें विलीन हो गया था। महातेजस्ती गिर्जा इसे हृदयमें लिये हुए अनन्त वर्षोंतक योगनिद्राम सोते रहे। उनके उठनेपर उनकी नामिये पश्च उत्पन्न हुआ, जिसे ब्रह्माजी प्रकट हुए। उनके कानके मन्त्रमें मधु और कैटम-ये दो दैन्य उत्पन्न हुए, जो ब्रह्माजीको ही वाने दैड़े, रिंतु जिन्हे चक्रके प्रहारसे मात्रात् श्रीहरिने मार डाला। उन्हीं असुरोंके मेदसे प्रावित होकर यह पृथ्वी उत्पन्न हुई। उसे श्रीविष्णुने फिर शुद्धकर ब्रह्म, ओपथियों एव नाना प्रकारके वान्योंसे परिपूर्ण किया। पर यह गीध कह रहा है कि यह उस धरमे तवसे वसता आ रहा है, जबसे मनुपत्नोंसे आवृत नह पृथ्वी निकली। ऐसी दशामें यह धर उल्लङ्घना ही है, गीधका नहा। अतएव पररह-हर्ता, परपीड़क होनेके नाते गीधको दण्ड दिया जाना चाहिये।’

भगवान् यों कह ही रहे ये कि आकाशसे निर्मल वनि सुनायी पढ़ी—‘रामभद्र ! आप इस गीधका वध मत कीजिये। यह काल्यांतमके तोप्रलस्ये पहले ही दग्ध हो उका है। पूर्व-जन्ममें वह ब्रह्मदत्त नामका राजा था। एक वार कालगौतम नामक महात्मा इसके धर भोजनके लिये पधारे। उन महात्माके आहारमें अनजानमें थोड़ा मास रखा गया। यह देव उन्होंने क्रोधमें उसे शाप दे डाल कि ‘जा त् गीध हो जा !’ यह नहीं-नहीं, वह कीजिये, अनजानमें भूल हो गयी है’ आदि वाते रहता ही रह गया, पर उन्होंने एक न सुनी। अन्तमें शापकी अवधि करते हुए उन्होंने रुहा कि ‘जब इश्वाकुरुलमें महायगा, राजीवलोचन श्रीरामभद्र प्रकट होगे और वे तुम्हें अपने हस्तारविन्दसे सर्वं करेंगे, तत्र पुनः तुम्हे

तेषा मवत्सरे पूर्णे पाश एक प्रसुच्यते ।
तसात् सत्येन वत्स्य जानता सत्यमक्षसा ॥
(चा० उत्तर० ५९ के वादका प्र० सर्ग १। ३३-३६, महाभारत,
उद्योगपर्व)

प्राय ये सभी डलोक ज्यो-त्यों नारदीय पुराण, मनुमहिता आदिमें भी उपलब्ध होते हैं।

दिव्य शरीरकी प्राप्ति हो जायगी ।' अतः देव । यह दयनीय है, वध्य नहीं ।'

इस अन्तरिक्षगत अशरीरवाणीको सुनकर भगवन् आज्ञो ही उसका सर्व किया, गीधने धृणित शरीर त्यागकर

दिव्यगन्धानुलिपि दिव्य पुरुषका रूप धारण कर लिया और 'राघव ! साधु, साधु; धर्मज रामभद्र साधु ।' आज आपने मेरा घोर नरकसे उद्धार कर दिया, मेरे शापका अन्त कर दिया ।' यो कहता हुआ वह दिव्यलोकको चला गया । —जा० श०

पुण्य-कार्य कल्पर मत टालो

धर्मराज युधिष्ठिरके समीप कोई ब्राह्मण याचना करने आया । महाराज युधिष्ठिर उस समय राज्यके कार्यमें अत्यन्त व्यस्त थे । उन्होंने नम्रतापूर्वक ब्राह्मणसे कहा—'भगवन् । आप कल पधारें, आपको अभीष्ट वस्तु प्रदान की जायगी ।'

ब्राह्मण तो चला गया, किन्तु भीमसेन उठे और लगे राजसभाके द्वारपर रक्खी हुई दुन्दुभि बजाने । उन्होंने सेवकोंको भी मङ्गलवाद्य बजानेकी आज्ञा दे दी । असमयमें मङ्गलवाद्य बजनेका गद्व सुनकर धर्मराजने पूछा—'आज इस समय मङ्गलवाद्य क्यों बज रहे हैं ?'

सेवकने पता लगाकर बताया—'भीमसेनजीने ऐसा करनेकी आज्ञा दी है और वे स्वयं ही दुन्दुभि बजा रहे हैं ।'

तर्पण और श्राद्ध

एक बार महाराज करन्धम महाकालका दर्शन करने गये । कालभीतिने जब करन्धमको देखा, तब उन्हें भगवान् शकरका वचन सरण हो आया । उन्होंने उनका स्वागत-सत्कार किया और कुशल-प्रश्नादिके बाद वे सुखपूर्वक बैठ गये । तदनन्तर उन्होंने महाकाल (कालभीति) से पूछा—'भगवन् । मेरे मनमें एक बड़ा संग्रह है कि यहाँ जो पितरोंको जल दिया जाता है, वह तो जलमें ही मिल जाता है, फिर वह पितरोंको कैसे प्राप्त होता है ? यही बात श्राद्धके सम्बन्धमें भी है । पिण्ड आदि जग यहाँ पढ़े रह जाते हैं, तब हम कैसे मान लें कि पितरलोग उन पिण्डादिका उपयोग करते हैं । साथ ही यह कहनेका साहस भी नहीं होता कि वे पदार्थ पितरोंको किसी प्रकार मिलते ही नहीं, क्योंकि स्वप्नमें देखा जाता है कि पितर मनुष्योंमें श्राद्ध आदिकी याचना करते हैं । देवताओंके चमत्कार भी प्रत्यक्ष देखे जाते हैं । अतः मेरा मन इस विषयमें मोहग्रस्त हो रहा है ।'

महाकालने कहा—'राजन् । देवता और पितरोंकी योनि ही इत प्रकारकी है कि दूरसे कही हुई बात, दूरसे किया हुआ पूजन-सत्कार, दूरसे की हुई अर्चा, स्तुति तथा

भीमसेनजी बुलाये गये तो बोले—'महाराजने कालको जीत लिया, इससे बड़ा मङ्गलका समय और क्या होगा ।'

'मैंने कालको जीत लिया ?' युधिष्ठिर चकित हो गये ।

भीमसेनने बात स्पष्ट की—'महाराज । विश्व जानता है कि आपके मुखसे हँसीमें भी छूटी बात नहीं निकलती । आपने याचक ब्राह्मणको अभीष्ट दान कल देनेको कहा है, इसलिये कम-से-कम कलतक तो अवश्य कालपर आपका अधिकार होगा ही ।'

अब युधिष्ठिरको अपनी भूलका बोध हुआ । वे बोले—'भैया भीम ! तुमने आज मुझे उचित सावधान किया । पुण्य-कार्य तत्काल करना चाहिये । उसे पीछेके लिये टालना ही भूल है । उन ब्राह्मण देवताको अभी बुलाओ ।' —सु० सिं०

भूत, भविष्य और वर्तमानकी सारी बातोंको वे जान लेते हैं और वहीं पहुँच जाते हैं । उनका शरीर केवल नौ तत्त्वों (पॅच तन्मात्रा, चार अन्तःकरण) का बना होता है, दसवाँ जीव होता है, इसलिये उन्हे स्थूल उपमोगोंकी आवश्यकता नहीं होती ।'

करन्धमने कहा, 'यह बात तो तब मानी जाय, जब पितर लोग यहाँ भूलोकमें हो । परतु जिन मृतक पितरोंके लिये यहाँ श्राद्ध किया जाता है, वे तो अपने कर्मानुसार सर्व यां नरकमें चले जाते हैं । दूसरी बात, जो शास्त्रोंमें यह कहा गया है कि पितरलोग प्रसन्न होकर मनुष्योंको आयु, प्रजा, धन, विद्या, राज्य, सर्व या मोक्ष प्रदान करते हैं, यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि जब वे स्वयं कर्मवन्धनमें पड़कर नरकमें हैं, तब दूसरोंके लिये कुछ कैसे करेंगे ।'

महाकालने कहा—'ठीक है, किंतु देवता, असुर, यज्ञ आदिके तीन अमूर्त तथा चारों वर्णोंके चार मूर्त—ये सात प्रकारके पितर माने गये हैं । ये नित्य पितर हैं । ये कर्मोंके अधीन नहीं, ये सबको सब कुछ देनेमें समर्थ हैं । इन नित्य पितरोंके अत्यन्त प्रबल इक्षीस गण हैं । वे तृत होकर श्राद्ध-कर्ताके पितरोंको, वे चाहे कहीं भी हों, तृत करते हैं ।'

करन्यमने कहा, 'महाराज ! यह वात तो समझमें आ गयी, किंतु पिर भी एक सदेह है—भूत-प्रेतादिके लिये लैसे एकत्रित बलि आदि दी जाती है, वैसे ही एकत्र ही संक्षेपसे देवतादिके लिये भी क्यों नहीं दी जाती ? देवता, पितर, अग्नि—इनको अलग-अलग नाम लेकर देनेमें वडा शक्षट तथा विस्तारसे कष्ट भी होता है।'

महाकालने कहा—'सभीके विभिन्न नियम ह । घरके दरवाजेपर बैठनेवाले कुत्तेमें जिस प्रकार खानेमें दिया जाता है, क्या उसी प्रकार एक विशिष्ट सम्मानित व्यक्तिको भी दिया जाय ? और क्या वह उस तरह दिये जानेपर स्वीकार करेगा ? अतः जिस प्रकार भूतादिको दिया जाता है, उसी प्रकार देनेपर देवता उसे नहीं ग्रहण करते । यिन्हा श्रद्धाके दिया हुआ चाहे वह जितना भी पवित्र तथा वहुमूल्य क्यों न हो, वे उसे कदापि नहीं

लेते । अद्वापूर्वक पवित्र पदार्थ भी विना मन्त्रके वे स्वीकार नहीं करते ।'

करन्यमने कहा—‘मैं यह जानना चाहता हूँ कि जो दान दिया जाता है, वह कुश, तिल और अक्षतके साथ क्यों दिया जाता है ?’ महाकालने कहा—‘पहले भूमिपर जो दान दिये जाते थे, उन्हें असुरलोग वीचमें ही बुसफर ले लेते थे । देवता और पितर मुँह देखते ही रह जाते । आखिर उन्होंने ब्रह्माजीसे गिकायत की । ब्रह्माजीने कहा कि—पितरोंको दिये गये पदार्थोंके साथ तिल, जल, कुश एव जो देवताओंको दिया जाय, उसके साथ अक्षत (जौ, चावल) जल, कुशका प्रयोग हो । ऐसा करनेपर असुर इन्हें न ले सकेंगे । इसीलिये यह परिपाटी है ।’ अन्तमें युगसम्बन्धी शङ्खाओंको भी दूरकर कुनकुल्य हो करन्यम लौट आये ।—जा० श० (स्कन्दपुराण, भाषेश्वरत्वण्ड, कुमारिकाखण्ड, अध्याय ३५, ३६)

आत्महत्या कैसी मूर्खता !

पूर्वकालमें काश्यप नामक एक वडा तपमानी और समयमी शृणिपुत्र था । उसे फिरी धनमदान्वय वैष्णवने अपने रथके थकेसे गिरा दिया । गिरनेसे काश्यप वडा दुर्योगी हुआ और क्षोब्धवश आपसे बाहर होकर कहने लगा—‘दुनियामें निर्धन-का जीना व्यर्थ है, अतः अप म आत्मगत कर लूँगा ।’

उसे इस प्रकार धुम्र देवरकुर हन्त्र उसके पास गीदङ्कका सूप धारण करके आने और तोले, ‘मुनिग्र । मनुष्य-शरीर पानेके लिये तो सभी जीव उत्सुक रहते ह । उसमें भी ब्राह्मणत्वका तो कुछ रहना ही नहीं । आप मनुष्य ह, ब्राह्मण हैं और शाक्त्र भी हैं । ऐसा हुल्म शरीर पानर उसे यों ही नष्ट कर देना, आत्मगत कर लेना भला, कहाँसी बुढ़िमानी है । अजी । जिन्हें भगवान् ने हाथ दिये हैं, उनके तो मानो सभी मनोरथ मिछ दो गये । इस समय आपको जैसे धनकी लालसा है, उसी प्रकार मैं तो केवल हाथ पानेके लिये उत्सुक हूँ । मेरी दृष्टिमें हाथ पानेसे बढ़कर समारमें कोई लाभ नहीं है । देखिये, मेरे शरीरमें कोटे तुमें हैं, किंतु हाथ न होनेसे मैं उन्हें निकाल नहीं सकता । किंतु जिन्हें भगवान् से हाथ मिले हैं, उनका क्या कहना ? वे वर्षा, शीत, धूपसे अपना कष्ट निवारण कर सकते हैं । जो दुःख विना हाथके दीन,

दुर्वल और मूर्क ग्राणी सहते हैं, सौभग्यवदा, वे तो आपको नहीं सहन करने पड़ते । भगवान् की वडी दया समझिये कि आप गीदङ्क, कीड़ा, चूहा, सौप या मेढ़क आदि किसी दूसरी योनिमें नहीं उत्पन्न हुए ।

‘काश्यप ! आत्महत्या करना वडा पाप है । यही सोचकर मैं वैसा नहीं रुर रहा हूँ, अन्यथा देखिये, मुझे वे कीड़े काट रहे हैं, किंतु हाथ न होनेसे मैं इनसे अपनी रक्षा नहीं कर सकता । आप मेरी वात मानिये, आपको वेदोक्त कर्मका वास्तविक फल मिलेगा । आप सावधानीसे साध्याय और अग्निहोत्र कीजिये । सत्य वोलिये, इन्द्रियोंको अपने कावूमे रखिये, दान दीजिये, किसीसे स्पर्धा न झीजिये । विप्रवर ! यह शृगाल-योनि मेरे कुकमोंका परिणाम है । मैं तो रात-दिन अब कोई ऐसी साथना करना चाहता हूँ, जिससे किसी प्रकार आप-जैसी मनुष्ययोनि प्राप्त हो सके ।’

काश्यपको मानवदेहकी महत्त्वका ज्ञान हो गया । उसे यह भी भान हुआ कि यह कोई प्राकृत शृगाल नहीं, अपितु शृगाल-वेशमें शक्तीपति हन्त्र ही है । उसने उनकी पूजा की और उनकी आज्ञा पाकर धर लौट आया ।

(महा० शान्तिपर्व, अध्याय १८०)



रोम-रोमसे 'जय कृष्ण' की ध्वनि

एक बार कैलासके गिरपर श्रीश्रीगौरीगङ्गर भगवद्दक्षो-
के विप्रमें कुछ वार्तालाप कर रहे थे। उसी प्रसङ्गमें जगजननी
श्रीपार्वतीजीने आशुतोष श्रीभोलेवावासे निवेदन किया—
‘भगवन्। जिन भक्तोंकी आप इतनी महिमा वर्णन करते हैं,
उनमेंसे किसीके दर्शन करानेकी कृपा कीजिये। आपके श्री-
मुखसे भक्तोंकी महिमा सुनकर मेरे चित्तमें बड़ा आहाद हुआ
है और अब मुझे ऐसे भक्तराजके दर्शनोंकी अति उल्कण्ठा
हो रही है। अतः कृपया श्रीघ्रता कीजिये।’

प्राणप्रिया उमाके ये वचन सुनकर श्रीभोलानाथ उन्हे
साथ लेकर इन्द्रप्रस्थको चले और वहाँ कृष्ण-सखा अर्जुनके
महल्के द्वारपर जाकर द्वारपालसे पूछा—‘कहो, इस समय अर्जुन
कहो हैं?’ उसने कहा—‘इस समय महाराज श्रयनागारमें
पौढ़े हुए हैं।’ यह सुनकर पार्वतीजीने उतावलीसे कहा, ‘तो
अब हमें उनके दर्शन कैसे हो सकेंगे।’ प्रियाको अधीर देख-
कर श्रीमहादेवलीने कहा—‘देवि। कुछ देर जान्त रहो।
इतनी अधीर मत हो, भक्तको उसके इष्टदेव भगवान्के द्वारा
ही जगाना चाहिये, अतः मैं इसका प्रयत्न करता हूँ।’
तदनन्तर उन्होंने समाधिस्थ होकर प्रेमाकर्षगद्वारा आनन्दकन्द
श्रीवजनन्दको बुलाया और कहा, ‘भगवन्। कृपया अपने
भक्तको जगा दीजिये, देवी पार्वती उनका दर्शन करना
चाहती है।’ श्रीमहादेवजीके कहनेसे श्यामसुन्दर तुरत ही
मित्र उद्धव, देवी रुक्मिणी और सत्यभामासहित अर्जुनके
श्रयनागारमें गये और देखा कि वह अविंक थकानेसे सो रहा
है और सुभद्रा उसके सिरहाने वैटी हुई धीरे-धीरे पखा हुला-
कर उसके स्वेद-क्लान्त केंद्रोंको सुखा रही है। भाई कृष्णको
आये हुए देखकर सुभद्रा हड्डवड़ोंकर उठ सड़ी हुई और
उसकी जगह श्रीसत्यभामाजीं विराजमान होकर पखा हुलाने
लगी। गरमी अधिक थी, इसलिये भगवान्का सकेत पाफर
उद्धवजी भी पखा हॉकने लगे। इतनेमें ही अक्सात्
सत्यभामा और उद्धव चकित-से होकर एक दूसरेकी ओर ताकने
लगे। भगवान्ने पूछा, तुमलोग किस विचारमें पड़े हो? उन्होंने
कहा—‘महाराज। आप अन्तर्यामी हैं, सब जानते हैं; हमे
क्या पूछते हैं।’ भगवान् श्रीकृष्ण बोले, ‘व्रताओं तो सही,
क्या वात है?’ तब उद्धवने कहा कि ‘‘अर्जुनके प्रत्येक
रोमसे ‘श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण’ की आवाज आ रही है। रुक्मिणीजी
पैर दवा रही थीं, वे बोलीं—‘महाराज! पैरोंसे भी वही आवाज

आती है।’ भगवान्ने समीप जाकर सुना तो उन्हें भी स्पष्ट
सुनायी दिया कि अर्जुनके प्रत्येक केंद्रसे निरन्तर ‘जय कृष्ण-
कृष्ण, जय कृष्ण-कृष्ण’ की ध्वनि निकल रही है। कुछ और
ध्यान दिया तो विदित हुआ कि उसके शरीरके प्रत्येक रोमसे
यही ध्वनि निकल रही है। तब तो भगवान् उसे जगाना
भूलकर स्वयं भी उसके प्रेम-पात्रमें धृष्ट गये और गद्दद होकर
स्वयं उसके चरण दवाने लगे। भगवान्के नवनीत-कोमल
कर-कमलोंका स्पर्श होनेसे अर्जुनकी निद्रा और भी गाढ़ी हो गयी।

इधर महादेव और पार्वतीको प्रतीक्षा करते हुए जग
वहुत देर हो गयी; तब वे मन-ही-मन कहने लगे, ‘भगवान्
श्रीकृष्णको गये वहुत विलम्ब हो गया। मालूम होता है उन्हें
भी निद्राने घेर लिया है।’ तब उन्होंने ब्रह्माजीको बुलाकर
अर्जुनको जगानेके लिये भेजा। किंतु अन्तःपुरमें पहुँचनेपर
ब्रह्माजी भी अर्जुनके रोम-रोमसे ‘कृष्ण-कृष्ण’की ध्वनि सुनकर
और स्वयं भगवान्को अपने भक्तके पैरव पलोटते देखकर
अपने प्रेमावेशको न रोक सके। एव अपने चारों मुखोंसे
वेद-स्तुति करने लगे। अब क्या था, ये भी हाथसे गये। जग
ब्रह्माजीकी प्रतीक्षामें भी श्रीमहादेव और पार्वतीको वहुत
समय हो गया, तंत्र उन्होंने देवर्पिं नारदजीका आवाहन किया।
अबकी बार वे अर्जुनको जगानेका बीड़ा उतार चले।
किंतु श्रयनागारका अद्भुत दृश्य देख-सुनकर उनसे भी न
रहा गया। वे भी अपनी बीणाकी खूँटियों कसकर हरि-कीर्तनमें
तल्लीन हो गये। जब उनके कीर्तनकी ध्वनि भगवान् शङ्करके
कानमें पड़ी तो उनसे भी और अधिक प्रतीक्षा न हो सकी;
वे भी पार्वतीजीके साथ तुरत ही अन्तःपुरमें पहुँच गये।
वहाँ अर्जुनके रोम-रोमसे ‘जय कृष्ण, जय कृष्ण’ का मधुर नाद
सुनकर और सभी विचित्र दृश्य देखकर वे भी प्रेम-समुद्रकी
उत्ताल तरङ्गोंमें उछलने-झूँवने लगे। अन्तमें उनसे भी न
रहा गया। उन्होंने भी अपना त्रिसुर्वन-मोहन ताण्डव-नृत्य
आरम्भ कर दिया, साथ ही श्रीपार्वतीजी भी स्वर और तालके
साथ सुमधुर वाणीसे हरिन्दुण गाने लगीं। इस प्रकार वह
सम्पूर्ण समाज प्रेम-समुद्रमें झूँव गया, किसीको भी अपने तन-
मनकी सुध-नृध नहीं रही। सभी प्रेमोन्मत्त हो गये।
भक्तराज अर्जुनके प्रेम-प्रवाहने सभीको संरक्षण-कर दिया।
अर्जुन! तुम्हारा वह अविचल प्रेम धन्य है।

कृतम् पुरुषका मांस राक्षस भी नहीं खाते

गौतम नामका एक ब्राह्मण था। ब्राह्मण वह केवल इस अर्थमें था कि ब्राह्मण माता-पिताओं उत्तम हुआ था, अन्यथा या वह निर्खर और म्लेच्छप्राय। पहले तो वह भिक्षा माँगता था; मित्र भिक्षादान करता हुआ जग म्लेच्छोंके नगरमें पहुँचा, तब वहाँ एक विद्वा खीको पत्नी बनाकर वस गया। म्लेच्छोंके समर्गसे उसका स्वभाव भी उन्होंके समान हो गया। वनमें पशु-पश्चियांदा आसेट करना ही उसकी जीविता हो गयी।

सयोगवदा उधर एक विदान् ब्राह्मण आ निकले। यजोरवीतयारी गौतमको व्याघके समान पश्चियांको मारते देख उन्हें दरा था गयी। उन्होंने गौतमको सुमझाया कि यह पापकर्म वह ढोइ दे। उनके उपदेशसे गौतम भी धन रक्षानेका दूसरा साधन हँडने निकल पड़ा। उसने पहले व्याघारिमें एक यार्तादिन्द्रिका साथ पकड़ा किंतु वनमें मतवाडे हाथियोंने उस दल्लर आक्रमण कर दिया। मित्रने व्याघारी मारे गये, पता नहीं। प्राण बचानेके लिये गौतम अकेला भाग और फिर बोर बनमें भटक गया।

ब्राह्मण गौतमका भाष्य अच्छा था। वह भटकता हुआ एक ऐसे बनमें पहुँच गया, जिसमें पके हुए मधुर फलोंवाले दृश्य थे। सुगन्धित दृश्य भी वहाँ पर्याप्त थे और मधुर स्वरमें बोल्नेवाले पर्वतगाँड़ा नो वह निवास ही था। उसी बनमें महर्षि कठ्यरके पुत्र राजधर्मा नामक बगुलेका निवास था। ब्राह्मण गौतम सयोगवदा उस बनमें उसी विगाल वटुक्षके नीचे जा बैठा, जिसपर राजधर्माका विश्रामस्थान था।

मध्याके समय चमकीले पत्तोंवाले राजधर्मा ब्रह्मलोकसे अपने स्थानपर आये तो उन्होंने देखा कि उनके वहाँ एक अतिथि आया है। उन्होंने मनुष्यमायामें गौतमको प्रणाम किया और अपना परिचय दिया। गौतमके लिये उन्होंने कोमल पत्तों तथा सुगन्धित पुष्पोंकी शव्या बना दी। उसे भोजन कराया। भोजन करके जब ब्राह्मण लेट गया तब राजधर्मा अपने पत्तोंसे उसे हवा करने लगे।

जब राजधर्माको पता लगा कि ब्राह्मण ढारिछ है और धन पानेके लिये यात्रा कर रहा है, तब उन्होंने उसे वहाँसे तीन योजन दूर अपने मित्र विल्पाक्ष नामक राक्षसराजके वहाँ जानेमो कहा। दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्मण वहाँसे चल पड़ा। जब राक्षसराजने सुना कि उनके मित्र राजधर्माने गौतमको मेजा

है, तब उन्होंने गौतमका खूब सल्कार किया और उसे बहुत अधिक धन दिया।

राक्षसराजने विदा होकर गौतम फिर उसी बनमें आया। रावधर्माने उसका फिर सल्कार किया। रात्रिमें राजधर्मा भी भूमिपर ही सो रहे। वहाँ उन्होंने पासमें अग्नि जला दी थी, जिससे बन्ध-पशु रात्रिमें ब्राह्मणपर आक्रमण न करें। रात्रिमें ही ब्राह्मणकी निटा भड़ा भड़ा हुई। वह सोचने लगा—‘मेरा धर वहाँसे दूर है। लोभवश मैंने धन भी बहुत ले लिया। मार्गमें भोजनके लिये कुछ मिलेगा नहीं और मेरे पास भी कुछ है नहीं। इम मोटे बगुलेको मारकर साथ ले लें तो मेरा काम चल जायगा।’ यह विचारकर उस क्रूरने सोते हुए राजधर्माको मार डाल। उनके पश्य नोचकर जल्ती अग्निमें उनका शरीर भून लिया और धनमीं गटरी लेकर वहाँसे चल पड़ा।

इधर राक्षस विल्पाक्षने अपने पुत्रसे कहा—‘वेदा! मेरे मित्र राजधर्मा प्रतिदिन ब्रह्माजीको प्रणाम करने ब्रह्मलोक जाते हैं और लौटते समय मुझसे मिले विना किसी दिन धर नहीं जाते। आज दो रातें बीत गयीं, वे मुझसे मिलने नहीं आये। मुझे उस गौतम ब्राह्मणके लक्षण अच्छे नहीं लगते थे। मेरा चित्त व्यापुल हो रहा है। तुम पता तो लगाओ कि मेरे मित्र निः अवस्थामें हैं।’

राक्षसराजना कुमार दूसरे रात्रियोंके साथ जग राजधर्माके निवासस्थानपर पहुँचा, तब वहाँ उन्हें उन परिश्रेष्ठोंके नोचे हुए पत्तोंसे इधर-उधर विल्परे देखा, इससे उसे बड़ा हु ख हुआ। शोक और कोशके मारे उसने उस ब्राह्मणको हँड़ना प्रारम्भ किया। शोझी ही देरमें राक्षसोंने ब्राह्मणको पकड़ लिया। उसे लेकर वे राक्षसराजके पास पहुँचे।

अपने मित्र बगुलेका ब्रह्मसा हुआ शरीर देखकर राक्षसराज शोनसे मूर्द्यित हो गये। उनके परिवार-परिजनके लोग दुखी होकर रोने लगे। मूर्द्या दूर होनेपर राक्षसराजने कहा—‘राङ्गुलो! इम हुए ब्राह्मणको मारकर इसका मास खा लो।’

हाय जोड़कर राक्षसगण थोड़े—‘राजन्। इम पापीको हमलोग नहीं खाना चाहते। इस कृतमका मास खानार हम भी पापी बनेंगे। आप इसे चाण्डालोंको दे दे।’

परतु जब राक्षसराजने राक्षसोंद्वारा गौतमके शरीरके ढुकड़े-ढुकड़े करके वह मास चाण्डालोंको देना चाहा, तब वे भी

उसे लेनेको तैयार नहीं हुए। वे बोले—‘यह तो कृतज्ञका मास है। इसे तो पशु, पक्षी और क्रीड़ेक नहीं खाना चाहेगे। हम इसे नहीं ले सकते।’ फलतः वह मास यों ही एक खदकमे फेक दिया गया।

अब राक्षसराजने सुगन्धित चन्दनकी चिता बनवायी और उसपर बड़े सम्मानसे अपने मित्र राजधर्मका शरीर रखवा। परंतु उसी समय देवराज इन्द्रके साथ कामधेनु आकाशमार्गसे

वहाँ पधारी। कामधेनुके मुखसे अमृतमय ज्ञान चितापर रखे राजधर्मके शरीरपर गिर गया, इससे राजधर्मी जीवित हो गये।

जीवित होनेपर धर्मात्मा राजधर्मने उस ब्राह्मणको भी जीवित कर देनेका अनुरोध इन्द्रसे किया। देवराजकी कृपासे वह ब्राह्मण भी जीवित हो गया। यों बुरा करनेवालेको भी आपने जीवनदान दिया। यही साधुता है।—सु० सिं०

(महा० शान्ति० १६८-१७३)

जटिल प्रश्नोत्तर

एक बार देवर्षि नारदजी मही-सागर-संगमसे स्नान करने पघारे। उसी समय वहाँ बहुतसे शृणु-मुनि भी आ पहुँचे। नारदजीने उनसे पूछा—‘महात्माओं। आपलोग कहाँसे आते हैं?’ उन्होने बतलाया—‘मुने। हमलोग सौराष्ट्र देशमें रहते हैं, जहाँके राजा धर्मवर्मा है। एक बार उस राजाने दान-के तत्त्वको समझनेके लिये बहुत वर्षोंतक तपस्या की। तब आकाशवाणीने उनसे—

द्विष्टु षडधिष्ठानं षडङ्गं च द्विपाकयुक् ।
चतुष्प्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते ॥

—अर्थात् दानके दो हेतु, छः अधिष्ठान, छः अङ्ग, दो फल, चार प्रकार, तीन भेद और तीन विनाश-साधन है। यह श्लोक कहा और मौन हो गयी। नारदजी! राजाके पूछनेपर भी आकाशवाणीने इसका अर्थ नहीं बतलाया। तब राजाने ढिढोरा पिटवाकर यह घोषणा करवायी कि ‘जो इस श्लोककी ठीक-ठीक व्याख्या करेगा, उसे मैं सात लाख गौँैं, उतनी ही स्वर्ण-मुद्राएँ तथा सात गॉव दूँगा।’ हम लोग सब वहाँसे आ रहे हैं। श्लोकका अर्थ दुर्बोध होनेसे उसकी कोई व्याख्या नहीं कर सका है।’

नारदजी यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। वे एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर धर्मवर्माके पास पहुँचे और कहा—‘राजन्। मुझसे श्लोककी व्याख्या सुनिये और उसके बदले जो देनेके लिये ढिढोरा पिटवाया है, उसकी सत्यता प्रमाणित कीजिये।’ राजाने कहा—‘व्रह्मन्। ऐसी बात तो बहुतसे ब्राह्मण कह चुके, पर किसीने वास्तविक अर्थ नहीं बताया। दानके दो हेतु कौन है? छः अधिष्ठान कौन हैं? छः अङ्ग कौन है? दो फल कौन है? चार प्रकार, तीन भेद और तीन विनाश-साधन कौन है? इन सात प्रबन्धोंको यदि

आप ठीक-ठीक बतला सके तो मैं आपको सात लाख गौँैं, सात लाख स्वर्ण-मुद्राएँ और सात गॉव दूँगा।’

नारदजीने कहा—‘श्रद्धा’ और ‘ज्ञान’ ये दो दानके हेतु हैं; क्योंकि दानका योङ्गा या बहुत होना पुण्यका कारण नहीं होता। न्यायोपर्जित धनका श्रद्धापूर्वक योङ्गा-सा भी दान भगवान्की प्रसन्नताका हेतु होता है। धर्म, अर्थ, काम, लज्जा, हर्ष और भय—ये दानके छः अङ्ग हैं। इहलोकके और परलोकके—ये दो फल हैं। ध्रुव, त्रिक, काम्य और नैमित्तिक—ये चार प्रकार हैं। (कुओँ-पोखरा खुदवाना, वगीचा लगाना आदि जो सबके काम आये वह ‘ध्रुव’ है। नित्य दान ही ‘त्रिक’ है। सतान, विजय, स्त्री आदिकी विषयक इच्छापूर्तिके लिये दिया गया दान, ‘काम्य’ है। ग्रहण, सक्रान्ति आदि पुण्य अदसरोपर दिया गया दान ‘नैमित्तिक’ है।) उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ—ये तीन भेद हैं। दान देकर पछताना, कुपात्रको देना, विना श्रद्धाके देना अर्थात् पश्चात्ताप, कुपात्र और अश्रद्धा—ये तीन दानके नाशक हैं। इस प्रकार सत पदोंमें बैधा हुआ जो दानका माहात्म्य है, उसे मैंने तुम्हों सुना दिया।

इसपर धर्मवर्मा बहुत चकित हुआ, उसने कहा—‘मुने! आप कौन है? आप कोई साधारण मनुष्य नहीं हो सकते। मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखकर आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। आप कृपया अपना परिचय दीजिये।’ नारदजीने कहा—‘मैं देवर्षि नारद हूँ। अब तुम जो मुझे भूमि दे रहे हो, इसे मैं तुम्हारे ही पास धरोहर छोड़ रहा हूँ। आवश्यकता पड़नेपर ले लूँगा।’ यो कहकर वे रैवतक पर्वतपर चले गये और वहाँ विचारने लगे कि मैंने भूमि तो पा ली, पर

अब योग्य व्राक्षण कहाँ मिले, जिसे भी भूमिन्दान दूँ। यह सोचकर उन्होंने बाहर प्रश्न यनापे और उन्हें ही गते हुए वे शृणियोंके आवधार प्रियरने लगे। उनके प्रश्न ये—
 (१) नानृता क्या और किन्तु है? (२) पद्मीम वस्तुओंसे यना अनुन एह क्या है? (३) जनेक लप्पजली नीको पर लप्पजार्णी यनानेती रखका जिसे जान है? (४) यनारमें विवित इयारी रखना क्यों जनना है? (५) यनुक्रमें बदा ग्रह जीन है? (६) आठ प्रकारके ब्राह्मण क्यों आवधके दिन कीनसे है? (७) चार उगोंके आवधके दिन कीनसे है? (८) चारह मन्त्रतरोता यारम्भ किस दिन हुआ? (९) चर्चनाग्रण रथर पहले-पहल किस दिन हुआ? (१०) तांड गोरारी तग्र प्राणियोंसे उद्देजर जीन है? (११) टग घोर मन्त्रमें सबसे बदा चुनू बोन है? और (१२) दो मार्ग जीनसे है?

इन प्रश्नोंसे पूछते हुए दो यारी पृथीव धूम आपे पर कहा उनके प्रश्नोंसा नमाशन न हुआ। तो य व्राक्षण न मिलनेके बारग नारदजी वहें दुर्गी हुए और हिमालय पर्वतपर एकान्तमें बैठकर विचारने लगे। शोचते सोचने अक्सात् उनके ध्यानमें आया कि भी इलामाममें तो गता ही नहीं। बड़ों ८४ हजार विद्वान व्राक्षण नित्य तपस्या करते हैं। उर्मन्त्रन्त्रय एवं शूद्रवात्माओंने पुन प्रर्तन देखापि और मन्त्र वही नहते हैं। यों विचारकर ये आमाशमार्पणे कलामान पहुँचे। वहाँ उन्होंने वडे तेजस्वी, विद्वान् एव कर्मनाथ व्राक्षणोंको देखा। उन्हें देखकर नारदजी वडे प्रसन्न हुए। व्राक्षण जहाँ वडे व्राक्षण्वां कर रहे थे, वहाँ जाकर नारदजीने कहा—‘आपलोग यह क्या काँच-नाँव कर रहे हैं। योंदृष्टि सुमझनेजी जाकि है तो मेरे रटिन प्रभासा समाशन र्हीजिये।’

यह सुनकर व्राक्षण अचम्भमें पड़ गये और बोले, ‘याह, नुनाओ तो जरा अपने प्रश्नोंको! नारदजीने अपने बाहर प्रश्नोंको दुष्टग दिया। यह सुनकर ये मुनि कहने लगे, ‘मुने! ये आपके प्रश्न तो वालकोंकिसे हैं। आप यहें जिसे सबसे छोटा और मूर्ख समझते हों, उसीसे पूछिये, वही इनका उत्तर दे देगा।’ अब नारदजी वडे विसरमें पड़ गये, उन्होंने एक वालकसे, जिसका नाम चुतनु था, इन प्रश्नोंको पूछा।

सुतनुने कहा—‘इन वालंचित प्रश्नोंके उत्तरमें मेरा मन नहीं लगता। तथापि आपने मुझे सबसे मूर्ख समझा है, इसलिये कहना पड़ता है—(१) क, अ, आ इत्यादि

५२ अक्षर ही मातृता है। (२) २५ तत्त्वोंसे बना हुआ यह यह धरीर ही है। (३) बुद्धि ही अनेक लूपोंवाली जी है। जब इसके साथ धर्मका संयोग होता है, तर यह एकरूपा हो जाती है। (४) विवित रचनायुक्त कथनको पण्डित ही कहते हैं। (५) उम सास-समुद्रमें लोभ ही महाग्राह है। (६) मात्र, व्राक्षण, श्रोत्रिय, अनूचान, भ्रूण, शृणिकल्य, शृणि योग मुनि—ये आठ प्रसारके व्राक्षण हैं। इनमें जो केवल व्राक्षणकुलमें उत्पन्न है और उनका आदिसे हीन है, वह ‘मात्र’ है। ऋमनारहित होकर सदाचारी वेदोक्त-धर्मकारी व्राक्षण ‘व्राक्षण’ कहा जाता है। अङ्गोसहित वेदोक्त-धर्मकारी ज्ञान प्राप्तकर पश्चर्ममें परायग व्राक्षण ‘श्रोत्रिय’ है। वेदका पृष्ठ तन्वज, शुद्धात्मा, केवल शिष्योंको अच्यापन करनेवाला व्राक्षण ‘अनूचान’ है। यजाविशिष्टोंजी पूर्वोक्त अनूचान ही ‘भ्रूण’ है। लौकिक-वैदिक समस्त ज्ञानसे परिपूर्ण जितेन्द्रिय व्राक्षण ‘शृणिकल्य’ है। ऊर्ध्वरेता, नि सत्य, शाश्वतप्रह-स्वरम, सत्यसन्य व्राक्षण ‘शृणि’ है। सदा ध्यानस्य, मुनिसा और सुर्वर्णमें तुल्य दृष्टिवाला व्राक्षण ‘मुनि’ है।

‘अप सानवें प्रश्नका उत्तर मुनिये। कार्तिक शुक्ल नवमी-को इनयुगमा, वैद्यात्म शुक्ल तृतीयाको त्रेताका, माप कृष्ण अमावास्याको द्वापरमा और भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशीको द्वितीयुगमा आरम्भ हुआ। अत उक्त तिथियों ‘युगादि’ कही जाती है। अब आठवें प्रश्नका भी उत्तर लंजिये। आदिवन शुक्ल नवमी, शार्दूल शुक्ल द्वादशी, चैत्र शुक्ल तृतीया, भाद्रपद शुक्ल तृतीया, काल्युन कृष्ण अमावास्या, पौर शुक्ल एकादशी, अशाढ शुक्ल दशमी, माघ शुक्ल उत्तमी, श्रावण कृष्ण अष्टमी, आषाढ शुक्ल पूर्णिमा, कार्तिकी पूर्णिमा, पाल्युनी पूर्णिमा, चैत्री पूर्णिमा और ज्येष्ठकी पूर्णिमा—ये स्वामसुव आदि चारह मनुओंकी आदि तिथियों हैं। (१) माप शुक्ल सप्तमीको पहले-पहल भगवान् सर्व रथपर सवार हुए थे। (२) सदा माँगनेवाला ही उद्देजक है। (३) पूर्ण चतुर—‘दक्ष’ वही है, जो मनुष्ययोनिका मूल्य समझकर इससे अपना पूर्ण नि श्रेयसादि सिद्ध कर ले। (४) ‘अर्चिं’ और ‘धूम’—ये दो मार्ग हैं। अर्चिमार्गसे जानेवालेको ‘मोक्ष’ होता है और धूममार्गसे जानेवालोंको पुन लैटना पड़ता है।’

इन उत्तरोंको सुनकर नारदजी वडे प्रसन्न हुए और उन्हे धर्मवर्मसे प्राप्त अपनी भूमि दान कर दी। —जा० श० (स्तन्द० माहेश्वर० कुमारिका० अच्याय ३-४)

पूर्ण समर्पण

(तेरा, सो सब मेरा)

(लेखक—श्रीहरकिशनजी इवरी)

राजा वृहदश्व सौ अश्वमेध यज्ञ करना चाहते थे । लगाभग बानवे यज्ञ वे कर चुके थे । उनके गुरु उस समय समाधिष्ठ थे । “राजा सौ यज्ञ पूरा करनेपर स्वर्गका राज्य पायेंगे और तब उनकी आत्मोन्नति मन्द हो जायगी; क्योंकि फिर वे स्वर्गमें एक कल्पतक राज्य करेंगे और क्षीणपुण्य होते ही वे फिर ‘पुनरपि जनन पुनरपि मरण’ के चक्रमें पड़ जायेंगे । यह सब न होने पाये और राजा सीधे आत्मोन्नतिके उन्नत सोपानपर चढ़ जायें ।”—यह विचारकर उनके श्रीगुरुने एक ब्राह्मणके यहाँ जन्म लिया । राजाने जब सौबों यज्ञ प्रारम्भ किया, उस समय उनके गुरु श्रीवामदेवजी नौ वर्षके थे । उनका यजोपवीत हो चुका था । भिक्षा मॉगते समय पिताकी आज्ञा लेकर श्रीवामदेवजी प्रथम भिक्षा मॉगने राजाके पास गये । श्रीवामदेवका अद्भुत बटुकस्वरूप, अनुपम कान्ति, हाथमें दण्ड-कमण्डल इत्यादि देखकर राजा हाथ जोड़कर खड़े हो गये । श्रीवामदेवजीने कहा—“मैं भिक्षा मॉगने आया हूँ ।” अश्वमेध यज्ञके नियमानुसार राजाने उनसे इच्छानुसार मॉगनेको कहा । इसपर श्रीवामदेवजीने कहा—“मैं जो मॉगूँ, वह यदि मुझे न मिला तो फिर क्या होगा ।” इसलिये आप पहले यह संकल्प करें कि मैं जो कुछ मॉगूँगा, वह आप दे चुके हैं ।” ये वहुत मॉगेंगे तो सारा राजपाट मॉग लेंगे और अश्वमेध करनेवालेको मुँहमॉगा देनेके लिये तैयार रहना ही पड़ता है—यह सोचकर राजाने सकल्प करते हुए कहा—“आप जो मॉगेंगे, वह मैंने आपको दे दिया ।” तब वामदेवजीने कहा—“जो तेरा है, वह सब मेरा हो जाय ।” राजा तुरत राज्यासनपरसे हट गये और वामदेवजी उसपर जा विराजे । आपने दानपर दक्षिणा मॉगी, तब राजाने शरीरपरसे आभूषण उतारकर वामदेवजीके चरणोंपर रख दिये । परतु ‘तेरा है, वह सब मेरा हो जाय’ इस वचनके अनुसार राजाकी सभी चीजें श्रीवामदेवजीकी पहले ही हो चुकी थीं । अतएव श्रीवामदेवजीने कहा फिर—“ये आभूषण तो मेरे ही हैं । अब आपके पास यदि कुछ शेष रहा

हो तो उसमेंसे दक्षिणा दीजिये ।” ये शब्द सुनते ही राजा ने सोचा कि वामदेवजीने उनके अश्वमेधका सारा पुण्य भी ले लिया है । अब राजा सोचने लगे कि ‘क्या किया जाय?’ तब वामदेवजीने कहा—“सावधान ! कुछ मत सोचो । कारण, तुम्हारा मन भी तो मेरा हो चुका है । तुमको मैं विचारक नहीं करने दूँगा ।” यह सुनकर राजा मूर्छित हो गये और स्वप्न देखने लगे कि वे मरनेके बाद यमके दरबारमें पहुँचे हैं । वहाँ उनका बड़ा सत्कार हुआ । फिर उनसे कहा गया कि उनका बहुत बड़ा पुण्य है और उन्हें स्वर्गका राज्य मिलनेवाला है परतु कुछ पाप भी है । अतएव यह प्रश्न आया । वे पहले पाप भोगेंगे या पुण्य? उसी स्वप्नावस्थामें राजाने सोचा कि पुण्यके बाद पापके भोगनेमें कष्ट होगा, इसलिये उन्होंने पहले पाप भोगनेकी इच्छा प्रकट की । इसपर वे मरभूमिमें डाल दिये गये । वहाँ सूर्यकी कड़ी धूप और गरमागरम बाल्से राजा मानो छुलसने लगे । उस समय वे विचार करने लगे कि ‘मैंने अपना सब कुछ वामदेवजीको दे दिया है । पुण्य भी दे दिया है, तब फिर यह पाप मुझे क्यों भोगना पड़ रहा है?’ उनके यह सोचते ही वह मरभूमि चन्दनवत् शीतल हो गयी और वामदेवजीने वहाँ प्रकट होकर कहा—“यदि तुम यमके दरबारमें कह देते कि तुमने पाप-पुण्य दोनों मुझे दे दिये हैं तो तुम्हे पाप भोगना न पड़ता । परतु तुम्हें पुण्य भोगनेका मन था, इसलिये यह पाप भी भोगना पड़ा । जब पुण्य तुम भोगते, तब पाप भी थोड़े ही भोगता ।”

राजाकी मूर्छा दूर हो गयी । वे उठकर बैठ गये । सामने श्रीवामदेवजी खड़े थे । अपने गुरुको पहचानकर राजाने उन्हें सादर प्रणाम किया ।

भक्तको इसी तरह अपने मनका साधन करना पड़ता है । मन अर्पण करनेके बाद साधकका कुछ भी नहीं रहता । फिर तो साधक ऐसा काम करेगा ही नहीं, जिससे उसको पाप-पुण्यका वन्धन हो ।

जरा-सा भी गुण देखो, दोष नहीं

ससारे सुखिनों जीवा भवन्ति गुणग्राहका ।
उत्तमास्ते हि विज्ञेया कृष्णवद् दन्तपश्यका ॥
एक वार देवराज इन्द्रने अपनी देवमधामे कहा कि इस

समय मनुष्यलोकमें श्रीकृष्ण देव (कोई राजा) ही सबसे श्रेष्ठ और गुणशाली पुरुष है ।

ऐसे श्रीकृष्णकी बड़ाई एक देवताको अच्छी नहीं

लगी। वह परीक्षा करनेके लिये मरे कुत्तेजा न्यू धारण करके रहतमें पड़ गया। उसके शरीरसे दुर्बल्न्य निकल रही थी। उसका मुँह पट गया था। रास्ते जाते श्रीकृष्णने उस मरे कुत्तेको देखा और कहा—‘अहो, इस मरे कुत्तेके दाँतोंकी पद्धकि कैमी निर्मल, मोती-जैवी दिप रही है।’ इस प्रकार मही

दुर्गन्धके दोषकी ओर उनका ध्यान नहीं गया और उसमें जो जरा-सा गुण था, उमीपर उनकी दृष्टि गयी। यह देखकर देवता कुत्तेजा न्यू त्यागकर अपने न्यूमें प्रकट हो गया और बोला—‘सच्च है, सच्ची गुणग्राहकता और गुण-दर्शनपरायणता तो आपमें ही है। समारम्भ गुणग्राहकलोग ही सुखी हुआ करते हैं।’

एक मुट्ठी अनाजपर भी अधिकार नहीं

एक बड़ा सुन्दर मकान है। उसके नीचे अनाजकी दूकान है। दूकानके मामने अनाजकी ढेरी लगी है। एक बकरा आया। उसने ढेरीपर मुँह मारा। दूकानका मालिक एक तरुण धनी दूकानपर बैठा था। उसके ताथमें नुकीली छड़ी थी। उसने बकरेके भिरपर जोगसे छड़ी मार दी। बकरा मैं-मैं करता हुआ भागा।

श्रीनारदजी तथा श्रीअङ्गिराजी अपनी राह जा रहे थे। बकरेकी उपर्युक्त घटना देखकर नारदजीको हँसी आ गयी। अङ्गिराजीने इस हँसीपर रहस्य पूछा। तब नारदजीने बताया कि ‘यह अनाजकी दूकान परले बहुत छोटी थी। इसके मालिकने इसी दूकानसे अपने व्यापारकी प्रतिष्ठा की। वह अन्तमें करोड़पति हो गया। उसीने यह इतनी बड़ी इमारत

बनवायी। वह बहुत बड़े-बड़े व्यापार करने लगा। परतु अनाजकी बुनियादी दूकानको अपने रहनेके मकानके नीचे ही रखा, क्योंकि इसी दूकानसे उसकी कमशु उत्तराति हुई थी। मालिक मर गया। उसका बेटा उत्तराधिकारी हुआ। वही तरुण दूकानपर बैठा है, जिसने बकरेको छड़ीसे मारकर भगाया है। यह इस दूकानपर रोज बढ़े भर आकर बैठता है। काम-काज तो नौकर नहीं है। मुझे हँसी इस ब्रातपर आ गयी कि दूकानका वह मालिक—इस तरुणका पिता ही बकरे-की योनिमें पैदा हुआ है। यही एक दिन इस दूकानका, मकानका और सारे कारोबारका मालिक था, पर आज एक मुट्ठी अनाजपर भी उसका अधिकार नहीं है। अनाजकी ओर मुँह करते ही मार पड़ती है और जिस पुत्रको बड़े प्यारसे पाल-पोषा, वही मारता है। यही है जगत्‌का स्वरूप।

परोपकारमें आनन्द

स्वर्गकी देवताभासे देवराजने किसी नरेश्वरी दयालुताका वर्णन किया। एक देवताके मनमें राजाकी परीक्षा लेनेकी हच्छा हुई। वे पृथ्वीपर आये और राजासे बोले—‘नरेश। तू मुझे प्रतिदिन एक मनुष्यकी बलि दे, नहीं तो मैं तेरे नगरके सभी मनुष्योंको मार डालूँगा।’

राजाने शान्त चित्तसे कह दिया—‘जो कुछ होनेवाला हो, हो जाय। मैं जान-बूझकर किसी प्राणीकी बलि नहीं दूँगा।’

देवताने ऐसा हृत्य उपस्थित कर दिया जिससे प्रत्येक नगरवासीको आकाशमें एक विश्वाल चट्टान दीपने लगी। लगता था कि चट्टान गिरनेवाली ही है और पूरा नगर उसके गिरनेसे ध्वस्त हो जायगा। नगरके लोग राजाके पास गये और उन्होंने प्रार्थना की—‘मुमूर्ण नगरकी रक्षाके लिये एक वलिदान दे देना चाहिये।’

राजाने स्थिरपावसे स्पष्ट कह दिया—‘जो होनेवाला हो, हो जाय। मैं जान-बूझकर किसी प्राणीकी नहीं मारूँगा।’

नगरके लोगोंने अत परस्पर सलाह की। उन्होंने चदा करके धन एकत्र किया और उससे मनुष्यकी एक स्वर्णमूर्ति बनवायी। अब उन लोगोंने यह बोगणा की—‘जो कोई प्रसन्नतासे अपने घरके किसी व्यक्तिको वलिदानके लिये देगा, उसे यह मूर्ति तथा और भी धन मिलेगा।’

एक लोभी व्यक्तिने धनके लोभसे अपना पुत्र वलिदान-के लिये दे दिया। जर उस लड़केको बलि देनेके स्थानपर पहुँचाया गया तब वह हँस रहा था। राजाने उससे हँसनेका कारण पूछा। लड़का बोला—‘मेरे लिये आज परम मङ्गलका दिन है, क्योंकि एक मेरे प्राण जानेसे पूरे नगरके लोगोंकी रक्षा हो जायगी।’

राजाको अपना कर्तव्य सूझ गया। उन्होंने लड़केको हटा दिया और स्वयं अपनी बलि देनेको उद्यत हो गये। राजाकी दयावृत्तिसे देवता प्रसन्न हो गये। नगरपर गिरती गिला जो दीख रही थी, अदृश्य हो गयी। देवताने राजाको आशीर्वाद दिया। —सु० सि०

आत्मज्ञानसे ही शान्ति

द्वापरान्तमें उज्जैनमें जिलिन्द्रज नामके नरेश थे। उनकी पत्नी चूडाला सौराष्ट्रनरेशकी कन्या थीं। उनी

चूडाला बड़ी विदुपी थीं। युवावस्था दिनों दिन क्षीण हो रही है और वार्षक्य समीप आता जा रहा है, यह उन्होंने

वहुत पहिले अनुभव कर लिया था। राजसदनमें आनेवाले महापुरुषोंसे आत्मतत्त्वकी व्याख्या सुनकर वे उसका मनन करने लगे और मननसे निश्चित तत्त्वमें चित्तको उन्होंने स्थिर किया। इस प्रकार निदित्यासनकी पूर्णता होनेपर उन्हें तत्त्व-बोध हो गया। आत्मजानसम्मन्ना रानीके मुख और शरीरपर टिक्का कान्ति आ गयी। उनका सौन्दर्य अद्भुत हो गया। राजा शिखिध्वजने यह देखकर पूछा—‘रानी! तुम्हे यह विलक्षण शान्ति और अलौकिक सौन्दर्य कैसे प्राप्त हुआ? तुमने कोई औपचार्य सेवन की है? कोई मन्त्र प्रयोग किया है? अथवा और कोई साधन प्राप्त किया है? तुम्हारा शरीर तो ऐसा हो रहा है जैसे पुनः युवावस्था प्राप्त कर रहा हो।’

चूडालने उत्तर दिया—‘मैंने न औपचार्य सेवन की है, न मन्त्रानुष्ठान किया है और न कोई अन्य साधन ही प्राप्त किया है। मैंने समस्त कामनाओंका त्याग कर दिया है। देहात्मभावको त्यागकर मैं अपरिच्छिन्न, अव्यक्तपरमतत्त्वमें स्थित हूँ, इसीसे कान्तिमती हूँ। भुक्त भोगोंके समान ही मैं अभुक्त भोगोंसे भी सतुष्ट हूँ। न मैं क्रोध करती हूँ न हर्षित होती हूँ, न अमतुष्ट होती हूँ। भूषण, सम्मान तथा अन्य भोगोंकी प्राप्तिसे न मुझे हर्ष होता न उनकी अप्राप्तिसे खेद। मैं सुख नहीं चाहती, अर्थ नहीं चाहती, अनर्थका परिहार नहीं चाहती। प्रारब्धसे प्राप्त स्थितिमें सदा सतुष्ट रहती हूँ। राग-द्वेपरहित होकर मैं समझ चुकी हूँ कि निखिल विश्वमें व्याप्त चराचरकी नियामिका गति मेरा स्वरूप है, इसीसे मैं कान्तिमती हूँ।’

राजा शिखिध्वज रानीकी बात समझ नहीं सके। वे बोले—‘तुम अभी प्रौढ़ नहीं हुई हो, तुम्हारी बुद्धि अपरिषक्त है, कोई बान ठीक कहना भी तुम्हें नहीं आता, इमीलिये ऐसी असङ्गत बातें कहती हो। अव्यक्तमें भला, कोई कैसे स्थित हो सकता है। अभुक्त भोगोंमें सतुष्ट होनेका अर्थ ही क्या। ऐसी अटपटी बातें छोड़ दो और भलीभौति राजसुखका उपभोग करती हुई मुझे आनन्दित करो।’

रानीने समझ लिया कि ‘महाराजके आत्मबोधका अवसर अभी नहीं आया है, उनके चित्तका मल अभी दूर नहीं हुआ है, इससे परमतत्त्वकी बात अभी वे समझ नहीं पा रहे हैं। अनविकारीको जानोपदेश करनेसे लाम तो होता नहीं, अनर्थकी ही सम्भावना रहती है। धर्मात्मा नरेशमें जब वैराग्य उत्पन्न होगा और तपसे उनके चित्तका मल नष्ट हो जायगा, तभी वे अन्यात्मतत्त्वको हृदयगम कर सकेंगे।’ ऐसा निश्चय करके पतिके परम कल्याणकी इच्छा रखनेवाली रानी समयकी

प्रतीक्षा करती हुई राजभवनमें पतिके अनुकूल व्यवहार करती रही।

रानी चूडालके मनमें एक बार कुछ सिद्धियोंको पानेकी इच्छा हुई। वे आत्मज्ञानसम्पन्ना थीं और योग-साधनाओंमा रहस्य भी जान चुकी थीं। उन्होंने आमन लगाकर प्राणोंको सयत किया और विधिपूर्वक धारणाका आश्रय लिया। इस प्रकार साधना करके उन्होंने आकाशमें स्वच्छन्द धूमने तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेकी सिद्धियों प्राप्त कर लीं।

धर्मात्मा राजा शिखिध्वजको धर्मपूर्वक प्रजापालन एवं राज्यसुख भोगते हुए वहुत समय बीत गया। उन्होंने देखा कि सासारिक सुखोंके भोगसे वासनाएँ तृप्त होनेके स्थानपर बढ़ती ही जाती हैं, कोई प्रतिकूलता न होने पर भी चित्तको शान्ति नहीं मिलती। यह सब देखकर वे राज्यभोगसे रिवाज हो गये। राजाने ब्राह्मणोंको वहुत धन दान किया, कुच्छु-चान्द्रायण आदि व्रत किये और अनेक तीर्थोंमें धूमे भी, किंतु उन्हें शान्ति नहीं मिली।

अन्तमें राजाके चित्तमें वैराग्यका उदय हुआ। उन्होंने वनमें जाकर तपस्या करनेका निश्चय किया। अपना विचार उन्होंने रानी चूडालको सूचित किया, तब रानीने उनका समर्थन नहीं किया। रानीने कहा—‘जिस कार्यका समय हो, वही करना उचित है। अभी आपकी अवस्था वानप्रस्थ स्वीकार करके वनमें जानेकी नहीं है। वनमें जाकर तप करनेवे ही शान्ति नहीं मिला करती। अभी आप घरमें ही रहें। वानप्रस्थका समय आनेपर हम दोनों साथ ही वनमें चलेंगे।’

महाराजको रानीकी बात जँची नहीं। उन्होंने रानीसे कहा—‘भद्रे! तुम प्रजाका पालन करो और मुझे तपस्याके पवित्र मार्गमें जाने दो। प्रजापालन जो मेरा कर्तव्य है, उसका भार मैं तुमपर छोड़ता हूँ।’

राजा समझते थे कि समझानेसे रानी चूडाला उन्हें वनमें अकेले नहीं जाने देंगी। अतएव आधी रातको जब रानी निद्रामग्न थीं, महाराज उठे और राजभवनसे बाहर निकल गये। सयोगवश रानीकी निद्रा टूट गयी। उन्होंने देखा कि महाराज अपनी शव्यापर नहीं है तो समझ गयीं कि वे वनकी ओर ही गये होगे। योगिनी रानी खिड़कीके मार्गसे निकलकर आकाशमें पहुँच गयीं। शीघ्र ही उन्होंने वनमें जाते अपने पतिको देख लिया। आकाशमार्गसे गुप्त रहकर वे महाराजके पीछे चलती रहीं। वनमें एक सुन्दर स्थानपर सरिताके पास राजाने रुकनेका विचार किया और बैठ गये।

पतिके तपःस्थानको देखनेके अनन्तर चूडाला सोचने लगी—‘मैं इस समय महाराजके पास जाऊँ, यह उचित नहीं

है। उनकी तपस्यामें मुझे वाधा नहीं देनी चाहिये। प्रजापालन-रूप पतिका कर्तव्य मुझे पूरा ही करना चाहिये। प्रारब्धवश यह जो मुझे पति-विवोग प्राप्त हुआ है, उसे भोग लेना ही उचित है। ऐसा निश्चय करके रानी चूड़ाला नगरमें लैट आयी। उन्होंने सम्पूर्ण राज्य संचालन अपने हाथमें ले लिया और प्रजाका भली प्रकार पालन करने लगी।

कुछ काल बीत जानेपर चूड़ालाके मनमें पति-दर्शनकी इच्छा हुई। वे आकाशमार्गसे उस तपोवनमें पहुँच गयीं। महाराज शिविष्वज्ञका शरीर कठोर तप करनेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गया था। वे अत्यन्त कुश, शान्त और उदास दीखते थे। योगिनी चूड़ालाने समझ लिया कि तपस्यासे राजाके चित्तका भल नष्ट हो गया है और विक्षेप भी समाप्त-प्राप्त है, अब वे तत्त्वविद्यके अधिकारी हो गये हैं। परतु श्रद्धाके विना सुने हुए उपदेशमें विद्वास नहीं होता, इसलिये अपने छीवेशसे रानीने महाराजके सम्मुख जाना उचित नहीं समझा। उन्होंने एक युवक शृ॒ष्टि का स्वरूप अपनी सकल्प-शक्तिसे धारण कर लिया और आकाशमार्गसे तपस्वी नरेशके सम्मुख उत्तर पढ़ी।

राजा शिविष्वज्ञने आकाशसे उत्तरते एक तेजस्वी शृ॒ष्टि-को देखा तो उठ खड़े हुए। उन्होंने शृ॒ष्टिको प्रणाम किया और शृ॒ष्टिने भी उन्हें प्रणाम किया। राजाने अर्द्ध आदि-देकर आगत अतिथिका सत्कार किया। यह सब हो जानेपर सत्सङ्ग ग्रामम् हुआ। शृ॒ष्टिरूपधारिणी रानीने पूछा—‘आप कौन हैं?’

राजाने अपना परिचय देकर कहा—‘ससाररूपी भयसे भीत होकर मैं इस वनमें रहता हूँ। जन्म-मरणके वन्धनसे मैं डर गया हूँ। कठोर तप करते हुए भी मुझे शान्ति नहीं मिल रही है। मेरा प्रयत्न कुष्ठित हो गया है। मैं असहाय हूँ। आप मुझपर कृपा करें।’

चूड़ालाने कहा—‘कर्मका आत्मनिक नाश ज्ञानके द्वारा ही होता है। जानी कर्म करते हुए भी अकर्ता है। उसके कर्म उसके लिये वन्धन नहीं बनते, क्योंकि उसमें आसक्ति-कामना नहीं रहती। सभी देवता और श्रुतियों ज्ञानको ही मोक्षका साधन मानती हैं, फिर आप तपको मोक्षका हेतु मानकर क्यों आन्त हो रहे हैं! यह दण्ड है, यह कमण्डल है, यह आसन है, आदि नानात्वके भ्रममें आप क्यों पड़े हैं। मैं कौन हूँ, यह जगत् कैसे उत्पन्न हुआ, इसकी शान्ति कैसे होगी,—इस प्रकारका विचार आप क्यों नहीं करते?’

शिविष्वज्ञने अब उस शृ॒ष्टिकुमारको ही तत्त्वोपदेश करनेका आग्रह किया—‘मैं आपका शिष्य हूँ, आपका अनुगत हूँ; अब आप कृपा करके मुझे ज्ञानका प्रकाश दें।’

चूड़ालाने कहा—‘आपकी पत्नीने तो बहुत पहले आपको तत्त्व-ज्ञानका उपदेश किया था। आपने उसके उपदेशको ग्रहण नहीं किया और न सर्वत्यागका ही आश्रय लिया।’

राजाने सर्वत्यागका ठीक आश्रय नहीं समझा। उन्होंने उस वनके त्यागका सकल्प किया। परतु जब शृ॒ष्टिकुमारने वन-त्यागको भी सर्वत्याग नहीं माना, तब राजाने अपने आश्रमकी ममता भी छोड़ दी। उन्होंने कुटियाकी सब वस्तुएँ एकत्र करके उनमें अग्नि लगा दी। राजामें विचार जाग्रत् हो गया था, अब वे स्वयं सोचने लगे थे कि सर्वत्याग हुआ या नहीं। शृ॒ष्टिकुमार चुपचाप उनकी ओर देख रहे थे। आसन, कमण्डल, दण्ड आदि सब कुछ उन्होंने एक-एक करके अग्निमें ढाल दिया।

‘राजन्! अभी आपने कुछ नहीं छोड़ा है। सर्वत्यागके आनन्दका शूठा अभिनय मत कीजिये। आपने जो कुछ जलाया है, उसमें आपका या ही क्या? वे तो सब प्रकृति-निर्भीत वस्तुएँ थीं।’ अब उस शृ॒ष्टिकुमारने कहा।

राजाने दो धण सोचा और कहा—‘आप ठीक कहते हैं। अभी मैंने कुछ नहीं छोड़ा है, किन्तु अब मैं सर्वत्याग करता हूँ।’

अपने शरीरकी आहुति देनेको उद्यत नरेशको शृ॒ष्टि-कुमारने फिर रोका—‘तनिक ठहरिये। यह शरीर आपका है, यह भी आपका अम है। यह भी प्रकृतिसे ही बना है। इसे नष्ट करनेसे कुछ लाभ नहीं।’

‘तब मेरा क्या है?’ अब नरेश थकेसे बैठ गये और पूछने लगे।

शृ॒ष्टिकुमार बोले—‘यह अहकार ही आपका है। आप इस अहकारको कि यह सब मेरा है छोड़ दीजिये। परिच्छिन्नमें अहमाव छोड़नेपर ही आपका सर्वत्याग पूरा होगा।’

‘अहकारका त्याग!’ शिविष्वज्ञके निर्भल चित्तमें यह बात प्रकाश बनकर पहुँची। अहकारके त्यागके बाद जो रह जाता है, वह तो वर्णनका विषय नहीं है। तत्त्वविद्य प्राप्त हुआ नरेशको और तब शृ॒ष्टिकुमारका रूप छोड़कर चूड़ालाने अपना रूप धारण करके उनके चरण छूए। वे ज्ञानी दम्पति नगरमें लैट आये शेष प्रारब्ध पूर्ण करने।—सु० सि०

बहुत पढ़िए अनुभव कर लिया था। राजसूदनमें आनेवाले महापुरुषोंमें आन्मतत्त्वकी व्याख्या सुनकर वे उनका मनन करने लगे और मननमें निश्चित तत्त्वमें चित्तको उन्होंने स्थिर किया। इस प्रकार निर्दिष्ट्यासनकी पूर्णता होनेपर उन्हें तत्त्व-वौध हो गया। आत्मज्ञानमयना रानीके मुख और शरीरपर दिव्य कान्ति था गयी। उनका मौन्डर्य अद्भुत हो गया। राजा शिखिष्वजने यह देखकर पूछा—‘रानी! तुम्हें यह विलक्षण आन्ति और अलौकिक मौन्डर्य कैसे प्राप्त हुआ? तुमने कोई औपचार्य सेवन की है? कोई मन्त्र प्रयोग किया है? अथवा और कोई साधन प्राप्त किया है? तुम्हारा शरीर तो ऐसा हो रहा है जैसे पुनः युवावस्था प्राप्त कर रहा हो।’

चूडान्तने उत्तर दिया—‘मैंने न औपचार्य सेवन की है, न मन्त्रानुशान किया है और न कोई अन्य साधन ही प्राप्त किया है। मैंने भगवन् कामनाओंका त्याग कर दिया है। देहात्मभावको त्यागकर मैं अपरिच्छिन्न, अव्यक्तपरमतत्त्वमें स्थित हूँ, इसीसे कान्तिमती हूँ। भुक्त भोगोंके समान ही मैं अभुक्त भोगोंसे भी सतुष्ट हूँ। न मैं क्रोध करती हूँ न हार्षित होती हूँ, न अमतुष्ट होती हूँ। भूषण, सम्मान तथा अन्य भोगोंकी प्राप्तिसे न मुझे हर्ष होता न उनकी अप्राप्तिसे देढ़। मैं मुख नहीं चाहती, अर्थ नहीं चाहती, अनर्थका परिहार नहीं चाहती। प्रारब्धसे प्राप्त स्थितिमें सदा सतुष्ट रहती हूँ। यग-द्वेषरहित होकर मैं समझ चुकी हूँ कि निखिल विद्यमें व्याप्त चराचरकी नियामिका शक्ति मेरा स्वरूप है, इसीसे मैं कानिमर्ती हूँ।’

राजा शिखिष्वज गर्नीकी बात समझ नहीं सके। वे बोले—‘तुम अभी प्रौढ़ नहीं हुई हो, तुम्हारी बुद्धि अपरिक्रम है, कोई बात टीक कहना भी तुम्हें नहीं आता; इसीलिये ऐसी अमङ्गत बातें कहती हो। अव्यक्तमें भला, कोई केंसे स्थित हो सकता है। अभुक्त भोगोंमें सतुष्ट होनेका अर्थ ही क्या। ऐसी अटपटी बातें छोड़ दो और भलीमोति राजसुखका उपमोग करती हुई मुझे आनन्दित करो।’

गर्नीं समझ लिया कि ‘महाराजके आत्मवौधका अवसर अभी नहीं आया है, उनके चित्तका मल अभी दूर नहीं हुआ है, दूसरे परमतत्त्वकी बात अभी वे समझ नहीं पा रहे हैं। अनावृत्तारीको जानोपदेश करनेसे लाम तो होता नहीं, अनर्थकी ही सम्भावना रहती है। वर्मात्मा नरेशमें जब वैगमय उत्पन्न होगा और तपसे उनके चित्तका मल नष्ट हो जायगा, तभी वे अन्मततत्त्वको हृदयगम कर सकेंगे।’ ऐसा निश्चय करके पतिके परम कल्याणकी इच्छा रखनेवाली रानी समयकी

प्रतीक्षा करती हुई राजमवनमें पतिके अनुकूलव्यवहार करती रही।

रानी चूडालाके मनमें एक बार कुछ मिद्दियोंको पानेकी इच्छा हुई। वे आत्मज्ञानगम्भन्ना थीं और योग-साधनाओंका गहस्य भी ज्ञान चुकी थीं। उन्होंने आसन ल्याकर प्राणोंको सवत किया और विविष्टक धारणाका आश्रय लिया। इस प्रकार साधना करके उन्होंने आकाशमें व्यञ्जन धूमने तथा इच्छानुसार स्प धारण करनेकी मिद्दियों प्राप्त कर लीं।

धर्मात्मा राजा शिखिष्वजको धर्मपूर्वक प्रजापालन एव राज्यसुख भोगते हुए बहुत समय बीत गया। उन्होंने देखा कि सासारिक मुख्योंके भोगसे वासनाएं वृत्त होनेके स्थानपर वढ़ती ही जाती हैं, कोई प्रतिकूलता न होने-पर भी चित्तको आन्ति नहीं मिलती। यह सब देखकर वे राज्यभोगसे खिंच हो गये। राजने ब्राह्मणोंको बहुत धन दान किया, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि ब्रत किये और अनेक तीर्थोंमें धूम भी, किंतु उन्हें आन्ति नहीं मिली।

अन्तमें गजाके चित्तमें वैराग्यका उदय हुआ। उन्होंने वनमें जाकर तपस्या करनेका निश्चय किया। अपना विचार उन्होंने रानी चूडालाको सृचित किया, तब रानीने उनका समर्थन नहीं किया। रानीने कहा—‘जिस कार्यका समय हो, वही करना उचित है। अभी आपकी अवस्था बानप्रस्थ स्वीकार करके वनमें जानेकी नहीं है। वनमें जाकर तप करनेसे ही आन्ति नहीं मिला करनी। अभी आप घरमें ही रह। बानप्रस्थका समय आनेपर हम दोनों साथ ही वनमें चलेगे।’

महाराजको रानीकी बात ज़ंची नहीं। उन्होंने रानीसे कहा—‘भद्रे। तुम प्रजाका पालन करो और मुझे तपस्याके पवित्र मार्गमें जाने दो। प्रजापालन जो मेरा कर्तव्य है, उसका मार मैं तुमपर छोड़ता हूँ।’

राजा समझते थे कि समझानेसे रानी चूडाला उन्हें वनमें अकेले नहीं जाने देंगी। अतएव आधी रातको जब रानी निद्रामग्नी थी, महाराज उठे और राजभवनसे बाहर निकल गये। मयोगवज रानीकी निद्रा टूट गयी। उन्होंने देखा कि महाराज अपनी अव्यापर नहीं है तो समझ गयी कि वे वनकी ओर ही गये होंगे। योगिनी रानी शिङ्करीके मार्गसे निकलकर आकाशमें पहुँच गयी। शीघ्र ही उन्होंने वनमें जाते अपने पतिको देख लिया। आकाशमार्गसे गुप्त रहकर वे महाराजके पीछे चलती रही। वनमें एक सुन्दर स्थानपर सरिताके पास राजने रुकनेका विचार किया और बैठ गये।

पतिके तपःस्थानको देखनेके अनन्तर चूडाला सोचने लगा—‘मैं इस समय महाराजके पास जाऊँ, यह उचित नहीं

है। उनकी तपस्यामें मुझे वाचा नहीं देनी चाहिए। प्रजागरण-रूप पतिका कर्तव्य मुझे पूरा ही अना चाहिये। प्रारम्भवय यह जो मुझे पतिविद्योग प्राप्त हुआ है उसे मोग लेना ही उचित है।” ऐसा निश्चय करके गर्ना चूड़ाल्य नगरमें लौट आया। उन्होंने सम्झौते गुरु-संचालन अपने शायमें ले लिया और प्रजाका मध्ये प्रचार पालन बरते लगा।

कुछ काल बीं जानेपर चूड़ाल्यके मनमें पति-उर्ध्वनकी इच्छा हुई। वे आकाशमार्गसे उस तपोवनमें पहुँच गए। महाराज शिविलका शरीर कठोर तप करनेके कारण अन्यन्त दुर्बल हो गया था। वे अन्यन्त कुश्य, आन्त और उदास दृख्यते थे। योगिनी चूड़ाल्यने समझ लिया कि तपस्यासे गुरुके चित्तका मठ नष्ट हो गया है और दिनेन भी समाप्त-ग्राय है, अब वे तत्त्ववोदके अविकर्ता हो गये हैं। परन्तु श्रद्धाके विना मुने हुए उपदेशमें विश्वास नहीं होता। उचित्ये अपने छीनेवाले गर्नाने महागुरुके सम्मुख जाना उचित नहीं समझा। उन्होंने एक दुक्ष शृणिका खल्प अपनी सकल-शक्तिसे धारग कर लिया और आकाशमार्गसे तपन्नी नेश्वके सम्मुख उत्तर पढ़ी।

राजा शिविलने आकाशसे उत्तरते एक देवताकी शृणि-को ढेन्हा तो उठ खड़े हुए। उन्होंने शृणिको प्रणाम किया और शृणिसे भी उन्हें प्रणाम किया। राजने अर्व आदि देवक आगत अतिथिया सुनार किया। यह सब हो जानेपर सन्देश ग्रान्म हुआ। शृणिपर्वारिणी गर्नाने पूछा—“आप कौन हैं?”

राजने अपना परिचय देकर बहा—“संसारली भरपुर मीत होकर में उस वनमें रहता हूँ। जन्म-भरणके वन्वनसे मैं दर गया हूँ। अंदोर दउ अरते हुए मी मुझे आनिन नहीं लिल रहा है। मैं प्रयत्न कुण्डित हो गया है। मैं अनहार हूँ। आप मुझपर कृपा करें।”

चूड़ाल्यने कहा—“क्योंका आनंदत्तिक नाश ज्ञानके द्वारा ही होता है। जानी कर्म करते हुए भी अकर्ता है। उसके कर्म उसके लिये वन्वन नहीं बनते क्योंकि उसमें आसक्ति-जानना नहीं रहता। उमी डेवना और श्रुतियों ज्ञानको ही जोक्का साधन जानता है, दिर आप तमको मोक्षका हेतु मानकर करो अन्त हो जाए है? यह दण्ड है, यह अन्डल है, यह आपन है, आदि ननाचके इनमें आप क्यों पड़े हैं। मैं कौन हूँ, यह जगत् क्षेत्र उत्तरन हुआ, इनकी आन्ति कैसे होगी,—इस प्रकारका विचार आप क्यों नहीं करते?”

शिविलने अब उस शृणिकुमारको ही तत्त्वोपदेश करनेका आग्रह किया—“मैं आपका शिष्य हूँ, आपका अनुगत हूँ; अब आप कुगे मुझे ज्ञानका प्रकाश दें।”

चूड़ाल्यने कहा—“आपकी पर्नाने तो बहुत पहले आपको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया था। आपने उसके उपदेशको ग्रहण नहीं किया और न सर्वत्त्वगता ही आश्रय लिया।”

राजने सर्वत्त्वगता टीक आश्रय नहीं समझा। उन्होंने उस वनके ल्यागका संकल्प किया। परंतु उस शृणिकुमारने वन-ल्यागको भी सर्वत्त्वगत नहीं माना, तब राजने अपने आश्रमकी ममता भी छोड़ दी। उन्होंने कुटियार्की सब बनुएँ एकत्र करके उनमें अग्नि ल्या दी। राजमें विचार लापत् हो गया था, अब वे स्वं नोचने लगे थे कि सर्वत्त्वगत हुआ या नहीं। शृणिकुमार चुपचार उनकी ओर देख रहे थे। आपन, कमण्डलु, ढण्ड आदि सब कुछ उन्होंने एक-एक करके अनिमें ढाल दिया।

“राजन! अभी आपने कुछ नहीं छोड़ा है। सर्वत्त्वगत आनन्दका शूदा अभिनन्द मन कीजिये। आपने जो कुछ लड़ाया है, उसमें आपका या ही क्या? वे तो सब प्रकृति-निर्मित बलुएँ थीं।” अब उस शृणिकुमारने कहा।

राजाने दो शुग सोचा और कहा—“आप टीक कहते हैं। अभी मैंने कुछ नहीं छोड़ा है, किन्तु अब मैं सर्वत्त्वगत करगा हूँ।”

अपने शरीरकी आदुति ढेनेको उद्यत नेश्वको शृणिकुमारने निर रोका—“राजक ठहरिये। वह शरीर आपका है, वह भी आपका भ्रम है। वह भी प्रहृतिसे ही बना है। इसे नष्ट करनेसे कुछ लाभ नहीं।”

“तप में क्या है? अब नेश्व यक्ष-से बैठ गये और पूछने लगे।

शृणिकुमार बोले—“यह अहकार ही आपका है। आप इत अहंकारको कि वह सब मेंग है, छोड़ दीजिये। परिच्छिन्नमें अहंमान छोड़नेमें ही आपका सर्वत्त्वगत पूर्ण होगा।”

“अहंकारका ल्याग। शिविलके निर्मल चित्तमें वद वात प्रकाश बनकर पहुँचा। अहकारके ल्यागके बाद जो रह जाता है, वह तो बर्गनका विषय नहीं है। तत्त्ववाद प्राप्त हुआ नेश्वको और तब शृणिकुमारका न्य छोड़कर चूड़ाल्यने अपना न्य वारण करके उनके चरण दूर। वे जानी दम्पति नगरमें लौट आये देश प्रान्तव पूर्ण करने।—३० दि०

जगत् कल्पना है । संकल्पमात्र है ॥

बोराली गाँव तासिके पक्ष मुख्यमात्र शोधिग, अपरिमा ब्राह्मण रहे हैं । शास्त्रज्ञ और पर्वतज्ञ नहीं पल किमिंशि वैराग्य न हो तो शास्त्रज्ञ और पर्वतज्ञको मनसा ही मनो द्वाहिते । गाँविको वैराग्य ही गंगा । वे ब्रह्म-ब्रह्मज्ञानी आद्या द्वीपार मनों तासा करने लाले गये ।

गाँविको मनों पक्ष सोरोरके जलों साथे हँसार तासा प्रारम्भ की । जलों में द्वीपार आकृष्ट गंगा रहे हैं । शमनदूरदूरिके अतिरिक्त घोई बासाना नहीं भी उनके मनों । आठ गहीनिकी कटोर तासाके बाद गगतान् विष्णु उनके चामुच मनों पुण । तासाके गेह धन ही गये । उनका तपस्यार्थी धीर्ण ध्वरीर पुण ही गंगा एवं ही धूणों ।

पार गौंगो ॥ गेह-गगतान् वाणीमि प्रभुनो कहा ।

प्रगो । जीवोंको गोहिरा करनेवाली उस गायकोंमें देखना चाहता हूँ, जिसके पारा यह चंचार जानों आवरा है ॥ तासानों परदान गौंगा, गंगोंकि बहुत विजार परेके चाद भक्त गंगा भा; जगत् वित्त है गा अनिया, तासा है गा अचार—गह उपनी रामानों टीका आता नहीं गा ।

गगतान् घोड़े—अन्ती जात । गायाके तुग देखोंगे और दून उपना त्याग करोंगे ॥

परदान देखर गगतान्जग मरु जलस्य हो गये । कहै दिन नीत गये ब्राह्मणको उसी मनों । अब ने जलों अंडे रहकर तासा नहीं करते हैं । धूणों नीने रहकर पल-गूँड खाकर भजन करते हैं । गायांकि दर्दनाकी प्रदीपांकी में हैं ।

एक दिन रहेनरों स्नान/करणों निपातेप मालिने हाथों गुद्धोंपि जलों जार्त गनाया और जलों हृषकी लालकर अंगरपीणि गन्धना जाकरते छों । यहाँ में मन्त्र शुभ गये । उनके निचानी आद्युत दशा ही गयी । उन्हें छापा कि उकों पर छोट आगे है और वहाँ उनका दरीर छूट गया है । अब में यहाँ शरीरों हैं । उनके रामनी यों रहे हैं । उन्होंने राहग धरीरों जित दंपार देखा कि उनके गूँड देहको रामनी धमान हैं गों और वहाँ उसे नितांगे रखकर जल दिया गया ।

यहाँ शरीरों जित गाँविने जहाँन दिया कि वह गुह-गम्भीर नामा देखको एक गौंगों पक्ष वाण्डाल भीकं गर्मी

पहुँच गया है । वह गुहा नहीं जानिये कि गाँव यह राय फैल जाएगा यह रहे हैं । परदान अन्दें तो जलों जगतान्जके लिये बुबनी लगायी थी । अन्दें जहाँन निया कि वे बाण्डाल-बालक होकर उत्तर दूष । गाव-पियां उस शालकोंका नाम कहें जाए ।

वाण्डाल-बालक यहें भीरे-भीरे बढ़ो लगा । वह एक बलनान् नियाल । तथा हंगेपर विकार फरेंगे बहुत नियुण ही गया । उसका एक वाण्डाल-कल्पांय नियाह ही गया । कालमारे तरको कहै पुष पुण । अनाक उस गौंगों मध्यमारी पौली । वाण्डाल कर्टेंके झी-पुष तासा परिवारों कीमीनी धमारी ही गयी उस गहारारीमें । जब परिवार हीन बीणाकूल कर्टेंज पह गाव बिकार नियाल पहा । उनका देशोंमें वह गुप्ताभ्युक्ता गिरा ।

उस दाय नीरदेशका नीरव भर गया था । उस देशानी प्रभा भी कि शजाको गरेंगर एक गुलिक्षित हाथी छोइ दिया जाता था नगरों और वह हाथी जिसे जानी पीछेपर बैठा छेता था, उसे शजाही दें थी जाती भी । पीरदेशकी दाजालानी शीगीपुरीमें अब वाण्डाल कर्टेंज पुणता दूजा पहुँचा, उस दायर गली प्रवार रजाया गया था । नीन नीरदेशकी गोंज फरेंगे लिये छोला दूजा हाथी नमर्सी पुग रहा था । नगरके छोला गाँवमें भूंडे में और अगवा भूंडे में गह देखनेवो कि यजा हंगेना गीताय निये गिलता है । गहरा हाथी कर्टेंजके पास जाया और उसे दूदूंगे उत्तर उत्तर अपने गतकार बैठा दिया । नगरों नगर भजन छो, अगवानि दंगे छापी नीन नीरदेशके धारातांगी ।

कर्टेंजों जब जाना नाम दिया दिया और जाति भी दिया ही । उनके जाना नाम गवल गतालाना । शजाहानी उत्तरा धाराया दूजा । गवलका सेवालक, शजाहान-गोंग मार दूष उसे । उनका शनियाँ बनायी रखने । भूंडे उत्तरहै उत्तरने नीरदेशमें आठ वर्ष राज्य किया ।

एक दिन नगरके वाण्डालेना वोई उत्तर था । दूसरे दूसरों वाण्डालेनीं गतकार उसीं जाये हैं । वाण्डाल गवली गाँव, नाम-पि नियाल । दूसरूहनाना कीरदेशका नीरव गताकानों अकेला निकला और राजतानाम लहा दंपार वाण्डालेनी उस भीदको देखने लगा । उस भीदों उनके वाण्डाल-मामला पक्ष दूष भी जाया था । उनके रजाने दूजों जिता कर्टेंजों

पहिचान लिया और दूरसे पुकारकर कहा—‘कटज ! तुम यहाँ आ गये हो हमलोगोंको छोड़कर ? वडे भौमाग्य और प्रमन्त्रता-की बात है कि तुम्हें राजगद और वह उत्तम गजभवन प्राप्त हुआ । हमलोगोंका भी कुछ व्यान रखना, भाई !’

राजाने सकेतसे उस वृद्ध चाण्डालको रोकनेकी वहुत चेष्टा की. किंतु वृद्ध अपनी बात तो कह ही चुका था । राजभवनके ऊपरसे गनियों और खोलोंसे चाण्डालोंका उल्लंब देख रही थीं, राजसेवक तथा कुछ मन्त्री भी आसपास थे । उन सबने वृद्ध चाण्डालकी बात सुन ली । सब चौंके—‘यह राजा तो चाण्डाल है !’

अब स्वागत-सत्कार तो दूर, कोई सेवकतक राजाको छूना या उससे बोलना नहीं चाहता था । राजभवन और पूरे नगरमें खलबली मच गयी । लोगोंके समूह एकत्र हुए । विद्वान् ब्राह्मणोंकी सभा जुटी और विचार होने लगा कि ‘आठ वर्ष चाण्डालके सर्वमें सब लोग रहे, सबको उसके साथ खाना-पीना पढ़ा, अब सबकी शुद्धि कैसे हो ?’ विद्वानोंने निश्चय किया कि अब शरीरकी शुद्धि सम्भव नहीं । एक भारी चिता बनाकर उसमें शरीरकी आहुति दे देनी चाहिये ।

नगरके बाहर एक भारी चिता बनायी गयी । नगरके ब्राह्मण, जो राजाके यहाँ भोजन कर चुके थे, उन ब्राह्मणोंके परिवारके लोग, राजसेवक, राजनियों, अमात्यगण—सब उस जलती चितामें कूद पड़े । यह देखकर राजाको बड़ा दुःख हुआ । उसने सोचा—‘यह सब अनर्थ मेरे ही कारण हुआ !’ वह भी उसी चितामें कूद पड़ा ।

उधर चितामें कूदकर चाण्डाल राजा जल्य और इधर सरोवरके जलमें दुवकी लगाये ब्राह्मण गाधिकी चेतना लौटी । उन्हें मन्त्र स्परण हो आया । जप पूरा करके, संध्याकर्म समाप्त हो जानेपर वे सुरोवरसे निकले । उनके मनमें विचित्र विकल्प चल रहे थे—‘मैंने यह सब क्या देखा ? क्या मैं बलमें जागते हुए ही स्वप्न देख रहा था ?’

ब्राह्मण गाधिको बनमें कुछ दिन और बीत गये । एक दिन उनके पास उनके पूर्व-परिचिन एक ब्राह्मण घूमते हुए आये । गाधिने अतिथिका आदरपूर्वक सत्कार किया । फल-मूलादि देकर उन्हें तृप्त किया । इसके बाद दोनों तपस्वी जब स्वस्यचित्त बैठ गये, तब गाधिने पूछा—‘आपका शरीर इतना कुत्रा कैसे हो गया है ?’

अतिथि बोले—‘क्या कहूँ, भाई, भाग्यवश घूमते हुए

मैं उत्तर दिगामें स्थित कीरदेशमें पहुँच गया था । उस समृद्ध देशके लोगोंने मेरा बड़ा सत्कार किया । वहाँ मैं एक मटीने रह गया । वहाँ पता लगा कि उस देशमें एक चाण्डाल राजाने आठ वर्षतक राज्य किया । जब भेद खुला, तब देशके सैकड़ों ब्राह्मण अस्मिमें जल मेरे और वह चाण्डाल भी अस्मिमें जल मरा । यह बात लुनकर उस दूषित देशका अन्न स्वानेसे जो पाप हुआ था, उसका प्रायश्चित्त करने मैं प्रयाग चल आया । प्रयाग-स्नान करके मैंने तीन चान्द्रायण-व्रत किये । तीसरे चान्द्रायणका पारण करके मैं यहाँ आया हूँ, इसीसे मेरा शरीर दुर्बल है ।’

गाधि तो चौंक पड़े—‘आप ठीक कह रहे हैं ?’

ब्राह्मण बोले—‘मैंने कोई बात शूटी नहीं कही है ।’

अब गाधिको कहाँ आन्त मिलती थी । अतिथिके बिदा होनेपर दूसरे ही दिन गाधि उस बनको छोड़कर निकल पड़े और अकेले ही घूमते-फिरते, मार्ग पूछते उत्तर दिगामें भूतमण्डल नामके देशमें जा पहुँचे । उस देशमें उन्होंने उस चाण्डाल-ग्रामको छूँढ़ लिया और उस ग्राममें उस घरको, जिसमें चाण्डाल-रूपसे रहते अपनेको उसने देखा था, शीघ्र पहचान लिया । अब ब्राह्मण गाधिको वे सब स्थान स्परण आने लो, सब पहिचानेसे लगाने लगे, जहाँ चाण्डाल-देहसे उसने अनेक कार्य किये थे । लोगोंसे पूछनेपर भी उसे कटज चाण्डालका वही चरित्र सुननेको मिला, जो उसने अनुभव किया था ।

उस स्थानमें गाधि पूरे एक महीने रहे । आस-पासके लोगोंसे उन्होंने पूछताछ की, किंतु चाण्डाल-जीवनकी बातोंके सत्य होनेमें कोई सद्बेद्धका कारण उन्हें नहीं मिला । वहाँसे वे आगे चले और अनेक कष्ट उठाकर कीरदेश पहुँच गये । कीरदेशकी राजधानी श्रीमतीपुरीमें पहुँचनेपर उन्हें राजभवन, नगर, गलियों आदि सब परिचित लगे । वहाँ उन्होंने आठ वर्षतक एक चाण्डालके राज्य करनेकी बात बहुत लोगोंसे सुनी ।

‘यह सब क्या है ? जलमे मैं दो क्षण डुबकी लगाये रहा और इधर उतने ही कालमें बौद्धतक चाण्डाल-ग्राममें रहा और आठ वर्ष यहाँ राज्य किया । इन बातोंमें सत्य क्या है ?’ ब्राह्मण गाधिका चित्त इस उलझनमें पड़कर अत्यन्त व्याकुल हो गया था ।

कीरदेशकी राजधानीसे चलकर गाधि एक पर्वतकी

गुफामें पहुँचे और फिर तपस्या करने लगे। डेव वर्षतम् उन्होंने केवल एक चुल्लू पानी प्रतिदिन पिया। उनके तपसे भगवान् नारायणने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया। भगवान्ने गायिसे कहा—‘भगवन्। तुमने मेरी मायाको देरें लिया? तुम जिम स्मार्गको देखते हो, सत्य मानते हो, वह केवल भ्रम है। वह आत्माका मनोभाव—सकलमात्र है। भूत, भविष्य, वर्तमानकाल तथा सप्तारके सब दृश्य चित्तके ही धर्म हैं। वह जगत्-रूपी जाल जब चित्तसे ही प्रकट हुआ है, तर उसमें एक चाण्डाल और प्रकट हो गया—इसमें आश्रय क्या है। तुमने जो कुछ देखा, वह सब भ्रमात्मक है और उसके

समान ही यह समस्त दृश्य प्रपञ्च भ्रमात्मक है। अब तुम उठो, शान्तचित्तसे अपने नित्यनैमित्तिक कर्तव्य कर्मको करो।’

ब्राह्मणो आश्वासन देकर उसे यह समझाकर कि ‘जैसे वहुतसे लोग समान स्वान्न देखें, वैसे ही सद्गुर भ्रमके कारण तुमने अपने चाण्डालादि रूप देखे और लोगोंने उन घटनाओंका समर्थन किया। तुम्हारा सकल्य ही सब जगह मृत होता रहा।’ भगवान् अन्तिर्हित हो गये।

ब्राह्मण गायि उस पर्वतपर रहनेर ही भगवान्की आराधना करने लगे।—सु० सिं० (योगवाशिष्ठ)

सर्वत्याग

देवगुरु महर्षि वृहस्पतिके पुत्र कचने युवा होते ही निश्चय किया कि ‘प्राणीका पहला कर्तव्य है—जन्म-मरणके पाशसे छुटकारा पा लेना।’ वे देवगुरुके पुत्र ये, वेद-वेदाङ्गोंके विद्वान् ये। सत्त्विकता उनकी पैतृक सम्पत्ति थी। उन्हें सद्गुरु छुँडना नहीं था। पिताकी सेवामें उपस्थित होकर उन्होंने पूछा—‘भगवन्। इस सप्तरमागरसे मैं कैसे पार हो सकता हूँ?’

देवगुरु बोले—‘पुत्र! नाना अनर्थरूपी समारम्भागरसे जीव सर्वत्यागका आश्रय लेकर अनायास पार हो जाता है।’

पिताका उपदेश सुनकर कचने उन्हें प्रणाम किया और देवलोक त्यागकर वे एक बनमें चले गये। महर्षि वृहस्पतिको इस प्रकार पुत्रके जानेसे न खेद हुआ न शोक और न चिन्ता ही। पुत्र सत्यपर जाता हो तो विचारवान् पिताको प्रसन्नता ही होती है।

कचको देवलोकसे गये आठ वर्ष बीत गये। उनके चित्तकी क्या दद्या है, यह जाननेके लिये महर्षि वृहस्पति उनके तपोवनमें पहुँचे। कचने पिताको प्रणाम किया, उनकी पूजा की और बोले—‘भगवन्। सर्वत्याग किये मुझे आठ वर्ष हो गये, किंतु मुझे शान्ति नहीं मिली।’

‘पुत्र! सभीका त्याग करो।’ केवल इतना कहकर देवगुरु वृहस्पति अदृश्य हो गये। महर्षिके अदृश्य हो जानेपर कचने अपने शरीरपरसे बल्कल उतार दिया। वह दिग्भवर अवधूत बन गया। उसने वह आश्रम छोड़ दिया। अब धूप, शीत या वर्षासे बचनेके लिये वह गुफामें भी नहीं जाता था। एक स्थानपर वह नहीं रहता था। दिग्मव्र-

अवधूत कचका अब न कोई आश्रय या न आश्रम। वह तपस्यासे श्रीणकाय हो गया।

तीन वर्ष और बीत गये। सहसा एक बनमें महर्षि वृहस्पति कचके सामने प्रकट हुए। इस बार उन्होंने पुत्रका आलिङ्गन किया। कचने पितासे कहा—‘भगवन्! मैंने आश्रम, बल्कल, कमण्डल आदि सबका त्याग कर दिया, किंतु आत्मतत्त्वका ज्ञान मुझे अब भी नहीं हुआ।’

वृहस्पतिजी बोले—‘पुत्र! चित्त ही सब कुछ है। तुम उस चित्तका ही त्याग करो। चित्तका त्याग ही सर्वत्याग कहा जाता है।’

देवगुरु उपदेश देकर चले गये। कच बैठकर सोचने लगे कि चित्त है क्या और उसका त्याग कैसे किया जाय? वहुत प्रयत्न करनेपर भी जब उन्हें चित्तका पता नहीं लगा, तब वे सर्वमें अपने पिताकी सेवामें उपस्थित हुए और वहाँ उन्होंने पूछा—‘भगवन्। चित्त क्या है?’

देवगुरुने बतलाया—‘आयुष्मन्! अपना अहकार ही चित्त है। प्राणीमें जो यह देहके प्रति अहमाव है, यही त्याज्य है।’

कचके सामने एक समस्या आ गयी। उन्होंने फिर पूछा—‘इस अहकारका त्याग कैसे हो सकता है? यह तो असम्भव लगता है।’

देवगुरु हँसकर बोले—‘पुत्र! अहकारका त्याग तो कोमल पुष्पको मरल देनेकी अपेक्षा भी सुगम है। इस त्याग-

में कोई हेतु है ही नहीं। जो वस्तु अजानमें उत्पन्न होती है, वह जान होनेपर स्वतः नष्ट हो जानी है। एक ही चेतन सत्ता सर्वत्र व्याप्त है। उस साक्षीके अपरिच्छयके कारण देहमें मोहनग अहभाव हुआ है। अतः साक्षीका परिचय होनेपर वह अहंकार स्वतः नष्ट हो जायगा। जैसे रस्तीमें सर्प प्रतीत होता हो, इसी प्रकार यह समस्त प्रपञ्च एक ही चेतन नक्षमें प्रतीत हो रहा है, वस्तुतः इसकी कोई मत्ता नहीं है। एक, अनादि, अनन्त चैतन्य मात्र ही नव्य है।

‘एक ही चिन्मात्र सत्तामें ये दृश्य क्यों हैं, कैसे हैं, इनका क्या स्वरूप है—यह वात अनिर्वचनीय है, क्योंकि जो वस्तु है नहीं, केवल भ्रमसे प्रतीत हो रही है, उसका विवेचन सम्भव नहीं है। इस भ्रममें सदा, सब समय निर्विकार रूप-

से जो ‘अह’का जान है, वह ‘अह’ देह नहीं है, मन नहीं है; क्योंकि देहादि तो वदलते हैं, नष्ट होते हैं। ‘अह’का लक्ष्य तो वह देश, काल आदिसे अपरिच्छिन्न, निर्मल, निर्विकार, व्यापक, अद्वय, चिन्मात्र सत्ता ही है।

‘देहमें अहभावको त्यागकर जो सबकी आधारभूत चित्त-सत्ता है, व्रस्त है, वही मैं हूँ—ऐसा निश्चय करो। यह तुम्हारी परिच्छिन्न अहंभावना तो कोई वस्तु ही नहीं है।’ देवगुरुने हम प्रकार अपना उपदेश समाप्त कर दिया।

कच्चका अन्तःकरण तपस्यासे शुद्ध हो चुका था। पिता-के उपदेशको ग्रहण करनेमें उन्हे कठिनाई होनी नहीं थी। उनका ममत्व और अहंकार नष्ट हो गये। वे शुद्ध आत्मतत्त्व-में स्थित हो गये।—सु० सिं० (योगवाशिष)

साधुताकी कसौटी

देवराज इन्द्र अपनी देवसभामें श्रेणिक नामके राजके साधु-स्वभावकी प्रशंसा कर रहे थे। उस प्रशंसाको सुनकर एक देवताके मनमें राजकी परीक्षा लेनेकी इच्छा हुई। देवता पृथ्वीपर आये और राजा जिस मार्गसे नगरमें आ रहे थे वाहरसे धूमकर, उस मार्गमें साधुका केश बनाकर एक तालावपर बैठकर मछली मारनेका ढोग करने लगे।

गजा उधरसे निकले तो साधुको यह विपरीत आचरण करते देख बोले—‘अरे। आप यह क्या अपकर्म कर रहे हैं?’

साधुने कहा—‘राजन्। मैं धर्म-अधर्मकी वात नहीं जानता। मछली मारकर उन्हे बेचूँगा और प्राप्त धनसे जाड़ोंके लिये एक कम्बल खरीदूँगा।’



सत्संकल्प

उसका नाम श्रुतावती था; वह महर्षि भरद्वाजकी स्नेहमयी कन्या थी, वालव्रह्मचारिणी थी, उसमें यौवन था, लप और रस था; पर उसका सर्वस्व अपने प्रेमास्पदके चरणोंमें समर्पित था। श्रुतावतीकी तेजस्वितासे महर्षिके आश्रमकी प्रदीपि वढ़ गयी।

X X X X

‘तुम धन्य हो, स्वप्रमाणि, तुम महर्षिके तप और पुण्यकी स्नेहमयी लावण्याद्वाति हो।’ वशिष्ठने श्रुतावतीको आश्रममें समिधा एकत्र करते हुए देखा। यशकी धूमशिखसे उसके कलेवरकी आभा प्राणमयी हो उठी थी।

‘मैं क्या सेवा करूँ महर्षे। मैं अपने आपको छोड़कर अपनी अन्य समस्त वस्तुओंसे आपकी प्रसन्नता-प्राप्तिकी आधा कर सकती हूँ। हृदय मैंने स्वर्गके अधिपति इन्द्रके करकमलोंमें समर्पित कर दिया है, मेरा सत्संकल्प है कि मेरा विवाह उन्होंसे होगा। आज्ञा दीजिये, देव।’ श्रुतावतीने विनम्रतापूर्वक नेत्र नीचे कर लिये, वह सकोच और लज्जासे वर्तीमें गड़ी जा रही थी।

‘मुझे पता है, श्रुतावती! मैं तुम्हारी तपस्याकी शक्ति जानता हूँ, वह शीघ्र ही सफल होगी। भगवान्, सर्वेश्वर

तुम्हारी कामना अवश्य पूरी करेंगे । मेरे लिये पॉच बदरीफल पकाकर रस देनेसे ही सेवा हो जायगी । विशिष्टने अपना रस्ता लिया ।

X X X X

‘सारा दिन बीत गया, जाँच भी तेज है, पर ये बदरीफल अभीतक सिद्ध नहीं हो सके । न जाने भाग्यमें क्या लिप्ता है ? श्रुतावती पिस्तियां थीं । फिर योझी देर बाद उसने पात्रका ढकना हटाकर फलोंको टेराया, पर वे कड़े-के-कड़े थे । सेवामें विच्छ उपस्थित होते देखकर वह चिन्तित हो उठी ।

‘तप ही भगवानकी पूजा है, तपोवलसे यद्दी-ब्रह्मी सिद्धियाँ मिलती हैं ।’ उसने विशिष्टके इन गद्दोंका सरण किया और जब साया ईधन जल गया, तब अपने धूरीरको आगमें लगा देनेका निश्चय किया । उसे यथा कि कहीं विशिष्ट शाप दे दें और आराध्य इन्द्र न मिल पायें ।



विचित्र न्याय

कहते हैं कि प्राचीन रोमनिवासियोंके न्यायालयमें न्यायके स्थानपर एक ऐसी द्वीपी क्रतिमा बनी रहती थी, जिसकी ओर्खोंके ऊपर तो कपड़ेकी पट्टी बैंधी रहती थी और हाथमें तराजू होता था । इसका अर्थ था कि यदि उसके सामने उमसा पिता, पुत्र या पति भी आ जाय तो उसके मायपत्तौलमें वह न्यूनाधिक रुच भी न कर सकेगी । इसी तरह न्यायाधीशको भी वहाँ अपने पुत्र, मित्र, गवु और मत्यस्थ—सभीको एक प्रकारका उचित न्याय वितरण करना पड़ेगा । (देखिये Youths Noble Path, b; F J Gould pp 226)

अन्यान्य देशोंमें यह चाहे जैसा भी रहा हो, पर भारतके प्राचीन इतिहासमें ऐसे न्यायोंकी कमी न थी । राजा दिष्टके पुत्र नाभागने एक वैद्यकन्यासे शादी कर ली थी । वैश्यने राजासे निवेदन किया कि ‘आपके पुत्रने वलपूर्वक मेरी कन्याका अपहरण कर लिया है । आप यथोचित न्याय करें ।’ राजाने



विचित्र सहानुभूति

कोसलका राजा ब्रह्मदत्त प्रायः आखेटमें ही रहता था । जब वह शिकारमें निकलता था, तब उसके पीछे-पीछे उसकी बही भारी देना तथा बहुत-सी प्रजा भी जाती । इस तरह बहुत-से वन्य जन्तुओं एवं मृग, पक्षियोंका भारी सहार प्रतिदिन होता ही रहता था ।

श्रुतावतीने आगमें पैर ढाल दिये, वह जलने लगी, उसे ऐसा लगा कि मानो वह हिमकी सरितामें स्नान कर रही है । उद्देश्यकी सिद्धिके लिये तप कर रही थी वह ।

X X X X

‘देवि ! मैं प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हारी कड़ी-से-कड़ी परीक्षा ले रहा था ।’ एक दिव्य पुरुषने श्रुतावतीका ध्यान आकृष्ट किया । उसके कानमें दिव्य कुण्डल हिल रहे थे, परिधान दिव्य था, उत्तरीय समीरके मन्द-मन्द कप्तनसे आन्दोलित था ।

‘अभिवादन स्वीकार कीजिये ।’ श्रुतावतीने तृप्तिकी सॉस ली ।

मैंने विशिष्टका रूप धारणकर तुम्हें सत्यकी कसौटीपर कमनेका दुस्साहस किया था, क्षमा चाहता हूँ । मैं इन्द्र हूँ, श्रुतावती । इस गरीरको छोड़कर तुम मेरे लोकमें मेरी पत्नीके रूपमें निवास करोगी ।’ श्रुतावती अपलक देखती रही उन्हें ।

—रा० श्री० (महाभारत ० शत्य० अ० ४८)

देखा कि उसका पुत्र विद्रोही-सा बन रहा है तो वह एक छोटी-सी टुकड़ी लेकर उसे पकड़ने चल पड़ा । युद्ध हुआ । युद्धमें शूष्यियोंने राजासे आकर कहा—‘न्यायत तुम्हारा यह पुत्र वैद्य हो गया, क्योंकि यदि कोई उच्च वर्णका व्यक्ति विना अपने वर्णकी कन्यासे विवाह किये किसी निम्न वर्णकी कन्यासे विवाह कर लेता है तो वह उसी वर्णका हो जाता है, जिस वर्णकी कन्या होती है । अतएव अब तुम्हारा, जो क्षत्रिय हो, इस वैश्यसे युद्ध न्यायोचित नहीं है ।’ इसपर युद्ध रुद्ध हो गया ।

अब योझी देरमें नाभाग वैद्यका देष बनाकर राजाके पास उपस्थित हुआ और बोला—‘महाराज ! अब मैं न्यायतः आपकी वैद्य जातिकी एक प्रजा हूँ और मुझे उचित आज्ञा प्रदान करें ।’ तबसे नाभागने कृप्य, वाणिज्य, गोपालन आदि वैश्योचित धर्म-कर्मोंको ही अपना लिया । —जा० श० (Aryan Anecdotes, by R S Pandya)

(आधुनिक सामाजिक संकलन) में एक नन्दीय नामका मृग अपने माता-पिताके साथ सुखपूर्वक निवास करता था । उसे इस महासंहारसे बड़ा कष्ट हुआ । उसने मृग-जन्तुओंकी एक सभा बुलायी । सभने निर्णय किया कि हममें-से एक मृग

प्रतिदिन राजासे मिलने स्वयं चला जाय। इससे बन्ध मृग-पक्षियोंका भयकर संहार रुक जायगा, साथ ही बहुत कुछ शान्ति भी बनी रहेगी। निवेदित किये जानेपर राजाने भी इस प्रम्तावको स्वीकार कर लिया।

बहुत दिनोंके बाद नन्दीयकी वारी आयी। पर उसकी जानि और सौम्यमावने राजाका मन परिवर्तित कर दिया। वह उसके अस्वाभाविक चरित्रसे इतना प्रभावित हुआ कि उसके धनुष-त्राण हाथमें ही रह गये, वह उनका सधान ही न कर सका।

नन्दीय बोल—‘राजन्। तुम मुझे मारते क्यों नहीं?’ राजाने कहा—‘मृग। तुममें बहुत से दिव्य गुण हैं, तुम धर्मात्मा हो, मैं तुम्हें नहीं मार सकता। मैं तुम्हें पूर्ण आयुके उपभोगका सौभाग्य प्रदान करता हूँ।’

‘राजन्। क्या तुम अवशेष मृगोंको इसी प्रकार अभय

अथवा पूर्णायु-उपभोगका सौभाग्य नहीं प्रदान कर सकते?’ मृग बोला।

‘मैं अवश्य कर दूँगा’—राजाने कहा।

‘और क्या तुम इन हवामे उड़नेवाले पक्षियों तथा जलमे रहनेवाली मछलियोंको भी इस प्रकारका आश्वासन नहीं दे सकते?’ मृगने पूछा।

‘अवश्यमेव।’ राजा बोला।

तदनन्तर उसने दूतोद्धारा सारे राज्यमें घोषणा करा दी कि अवश्य सभी बन्ध जन्तु, पक्षी एवं जलचरोंको अभय-दान दिया जा रहा है। कोई भी व्यक्ति इनकी हिंसा न करे।

प्राचीन जातक-कथाएँ बतलाती हैं कि गौनम बुद्धके पूर्वमें सौ अवतार हुए थे। मृगदावका यह नन्दीय मृग भी उन्होंमेंसे एक है।—जा० श०

(जातक भाग ३, कथा ३८५, फ्रांसिस और वैलके अग्रेजी अनुवादसे)

सदुपदेश

प्राचीन कालमें राजा सर्वमित्रके शासनकालमें महात्मा बुद्ध वैदिकत्व-शरीरमें थे। उन्होंने विनम्रता, उदारता, क्षमाशीलता और दान तथा सदाचारके बलपर शक्तिपद प्राप्त कर लिया था। वे शक्तिपदपर रहकर भी कभी ऐश्वर्य और विषय-सुखमें आसक्त न हो सके। सदा प्राणिमात्रके हितमें ही लोग रहते थे। लोगोंको सद्गुण-सम्पन्न देखकर प्रसन्न होते थे।

X X X X

राजा सर्वमित्रको मदिरा पीनेका व्यमन था। वह अपने तो पीता ही था, दूसरोंको—प्रजा तथा राजकर्मचारियोंको भी पिलाकर हर्षित होता था। उसके मदिरा-पानसे राज्यभरमें अराजकता छा गयी। लोग दुराचारी हो गये, पापकी वृद्धि होने लगी। प्रजाका उत्तीर्ण होने लगा। न्याय-अन्याय, मत्य-अमत्य, धर्म-अधर्म और प्रकाग तथा अन्यकार आदिमें लोगोंकी मेट-बुद्धि समाप्त हो गयी। राजा सर्वमित्रको इन वातोंकी तनिक भी चिन्ता नहीं थी। वह तो राग-रगमें निमग्न था।

एक समय राजा पान-गृहमें अधिकारियोंके साथ बैठा हुआ था, मदिरापानका क्रम चलनेवाला ही था कि लोग चौंक उठे।

‘इस पात्रमें सुरा भरी हुई है। इसका मुख सुगन्धित पुष्पोंसे ढका है, इसे कौन खरीदेगा?’ एक ब्राह्मणने राजाके सिंहासनके सामने खड़े होकर घोषणा की। उसका

स्वर्ण वर्ण था, जटाएँ धूलिधूसरित और गुँथी हुई थीं, शरीर-पर बल्कल और मृगन्मर्मका परिधान था। उसके वायें हाथमें सुरा-पात्र था।

‘आप कोई बहुत बड़े मुनि हैं, आपके नेत्रोंसे चन्द्र-ज्वल्लाकी तरह दया उमड़ रही है। अद्भुत तेज है आपका।’ राजाने उठकर चरणवन्दना की। उपस्थित अधिकारियोंने अभिवादन किया।

‘यदि तुम्हें इस लोक और परलोककी चिन्ता न हो, नरक-यातनाका भय न हो तो इसे खरीद लो।’ ब्राह्मणके झब्ड थे।

‘महाराज। आप तो विनित्र दगका सौदा कर रहे हैं, सब अपनी वस्तुकी प्रगता करते हैं, पर आप अपनी वस्तुके सारे दोष प्रकट कर रहे हैं। किंतुने सत्यवादी हैं। आप धर्मपर अडिग हैं।’ सर्वमित्र आश्र्वयमें पड़ गया।

‘सर्वमित्र! न तो इसमें पवित्र फूलोंका मधु है न गङ्गा-जल है, न दूध है और न दही है। इसमें विषमयी मदिरा है। जो पीता है, वह बजामें नहीं रहता। उसे भक्ष्याभक्ष्यका विचार नहीं रहता। राजपथपर लड़खड़ाकर गिर पड़ता है, अपनी की हुई उलटीको आप खाता है, कुच्चे उसका मुख चाटते हैं। इसे खरीद लो, अच्छा अवसर है। इसका पानकर तुम सङ्क-पर नंगे होकर नाचोगे, तुम्हें पत्नी और अपनी युवती कन्यामें

उ नहीं दीर पड़ेगा । इसका पानकर क्यों अपने धनीमें यनी तेरों भी वृक्षसे दाँतकर पीटती है । इसका पानकर बड़े-बड़े नम्र दण्ड हो गये । राजाओंके राज्य सिट गये । पर गमिशानकी भूमि है, पात्री जननी है, यह ऐसे नगरमें ले गती है, जिसने राज-दिन भवित्वात्मा पवक्ती रहती है ।^१ ब्राह्मण—
। समझता था ।

^१ धन, इसका पान ही खोइ क्यों नहेगा । आपने अपने सदुपयोगसे भी आँगने क्षोल दी । आपने मुझे उस तरह दिक्षा दी है जिस तरह दिना पुनरो, गुरु शिष्यसों और मुनि दुनीको

मन्मार्गपर ले जाते हैं । मैं प्रनिजा करता हूँ कि अब कभी मदिरापान नहीं करूँगा । पुरस्कार-रूपमें आपको अच्छे-अच्छे पाँच गाँव, सीधी दासियों और अवश्युक्त दस रथ प्रदान करता हूँ ।^२ सर्वमित्र ब्राह्मणके पैरोंगर गिर पड़ा ।

“सर्वमित्र । मुझे तुम्हारी दिसी वस्तुकी आवश्यकना नहीं है । मेरे पास तो अर्गका बैभव है । मुझसे तुम्हारा पतन नहीं देसा गया, इमील्से ऐसा अर्ग बनाकर मैंने मदिरापानके दोष बताये । मैं इन्द्रपदपर हूँ ।^३ ब्राह्मण-नेपथरी बोधिसत्त्वने रहस्य साष्टि किया । —२० धी० (जावकमाल)

सहनशीलता

भगवान् बुद्ध नियमी उन्मर्म भैसेवी चोनिमें थे । जगती भैसा देनेपर भी बोधिसत्त्व अन्यत शान्त था । उनके शीघ्रपनका साम उठाकर एक बदर उन्हें बहुत तग करता था । यह कभी उनकी पीटपर चढ़कर बूदता, कभी उनके अंग परदस्तर हिलता और उभी पैल गीचता था । कभी-कभी तो उनकी आँखें भी अँगुली ढाल देता था । परतु बोधिसत्त्व अब शान्त ही रहते थे । यह देनेपर देनेवालोंने कहा—“थो शान्तमूर्ति ! इस दुष्ट बदरको दण्ड देना चाहिये । इसने क्या तुमको धरनीद लिया है या तुम इससे

टरते हो ?”

बोधिसत्त्व बोले—“देवगण । न हम बदरने मुझे खरीदा है न मैं इससे ढरता हूँ । इसकी दुष्टना भी मैं समझता हूँ और केवल निरके एक झटकेसे अपने सौंगद्वारा इसे पाइ छालने जिनना वल भी मुझमें है । परतु मैं इसके अपगाय कमा करता हूँ । अरनेसे वलवान्के अपराध तो सभी नियम होमर सहन करते हैं । सहनशीलता तो वह है जब अपनेसे निर्वलके अपराध सहन किये जायें ।”

—२० सिं०

धनका सदुपयोग

भगवान् बुद्धके पहले उन्मर्मी थान है । उस समय वे बोधिसत्त्व अवस्थामें थे । उन्होंने एक समृद्ध शरमें उन्म लिया था । अपनी दानशीलता, उदारता और दरिऊँ तथा भिस्तारियोंकी अंहतुकी सेवाके लिये वे बहुत प्रसिद्ध थे । वे इसीको दुनी और दण्ड नहीं ऐप सुखते थे; अपने पास जो झुट भी था, उसीसे कगालोंकी सेवा करते थे । उनके निये यह थान असद्य थी कि कोई दरवाजेपर आकर लौट जाए, इसलिये लोगोंमें बोधिसत्त्व अविद्या नामसे प्रसिद्ध थे ।

एक दिन प्रातःकाल शव्यासे उठनेपर उन्होंने देखा कि घरकी समस्त वस्तुएँ चोरी लकड़ी गयी हैं, नाममात्रको भी चोरने खुछ नहीं छोड़ा है । उनमें उनकी आसुकि—ममता तो थी नहीं, इसलिये चोरीसे वे सतत नहीं हो सके पर वार-वार यह सोचकर दुर्सी होने लगे कि जित घरसे आजनक कोई भी व्यक्ति खाली हाथ नहीं गया, उसीसे भिजु और कगाल लोग भूले-प्यासे और अनुस चले जायेंगे । अविषय

वे दिन भर उसी हँसियेसे धात्र काटते थे और शाम होनेपर तिरपर गेंडुल रखकर धात्रका बोझा लादकर वाजारमें बेचा करते थे । परिश्रमसे जो कुछ भी पाते थे, उसका भिलमगों और असद्यायोंकी सेवामें सदुपयोग करते थे । कभी-कभी तो ऐसा भी होता था कि खय भूते रहकर दूसरोंकी आवश्यकता पूरी कर देते थे ।

X X X

तुम्हारा घन चोरीमें नहीं गया । तुम्हारी उदारता, दानशीलता और सेवावृत्तिसे उसका अभाव हो चला है । मैं

तुम्हें सावधान करता हूँ कि इस गरीबीमें भी जो कुछ भी पैदा कर लेते हो, उसे आगे के लिये बचाकर रख दो। सब दिन समान नहीं जाते। कण-कण जोड़नेसे पहाड़ खड़ा हो जाता है।^१ एक दिव्य पुरुषने अविष्ट्यको चेतावनी दी।

‘आर्य अनार्य-पथगर कभी पैर नहीं रखते। जिस धनको बटोरनेमें मुझे कजूसकी तरह रहना पड़े, वह मुझे नहीं चाहिये। चाहे मुझे स्वर्गके ही ऐश्वर्य क्यों न मिलें, मैं दान-ब्रतका त्याग नहीं कर सकता। धन आता है, चला जाता है, वह अनित्य है, पर दान आदि सेवोपयोगी सद्गुण बार-बार नहीं मिला करते। उनके सहारे अपने जीवनको समृद्ध करना ही आर्यपुरुषका श्रेष्ठ आचरण है; वे नित्य दिव्य सम्पत्ति हैं, मैं उनका परित्याग किसी भी मूल्यपर नहीं कर सकता।^२ अविष्ट्यने दिव्यपुरुषसे निवेदन किया।

‘तुम धनियोंके योग्य वातें करते हो। तुम तो बड़े गरीब हो, दान देते-देते सब कुछ खो वैठे। जिनके पास खजाने हैं, असर्व दास-दासियाँ हैं, उनके लिये दानशीलता अल्कार है। तुम्हें तो चाहिये कि परिश्रमसे अर्जित धनका योड़ा-सा अग कभी-कभी उत्सव आदिमें भिन्नोंको बुलाकर व्यय कर दो; इससे नाम बढ़ेगा, कीर्ति अमर होगी। दान-वृत्तिका परित्याग ही तुम्हारे लिये श्रेयस्कर है। जब तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है,

→ ◀◀

ब्राह्मण

श्रीसङ्गामजीको तप करते कितने दिन बीत गये। स्त्री, पुत्र एव जगत्की किसी भी वस्तुके प्रति उनके मनमें आसकि नहीं रह गयी थी। ममताके बन्धन छिन्न हो चुके थे। अखण्ड ब्रह्मचर्य उनका व्रत था। ग्रावत शान्तिके पथिकके अदिग मनमें कभी कोई विकार नहीं उत्पन्न हो पाता। पर भगवान् तथागतके दर्घन किये कितने दिन बीत गये थे। उनका मन रह-रहकर भगवान्‌के चरणोंका चिन्तन करता रहता। उन्होंने सुना ‘भगवान् इस समय श्रावस्तीमें अनाथ पिण्डकके जेतवनमें विहार कर रहे हैं।^३ वे भगवान्‌के दर्घनार्थ चल पड़े।

श्रीसङ्गामजी भगवान्‌के समीप कुछ दूरीपर एक सघन वृक्षकी शीतल छायामें विश्राम कर रहे थे।

‘हे श्रमण! उनकी पहली स्त्रीको उनके आनेका समाचार मिल गया था। चरणोंमें मस्तक रखकर उसने निवेदन किया मैं पुत्रवती हूँ। मेरी गोदमें आपका पुत्र है। आप मेरा पालन करें।^४

उस समय यदि दान नहीं दोगे तो क्या विगड़ जायगा?^५ दिव्य पुरुषने अविष्ट्यकी परीक्षा ली।

‘आपका ऐसा आश्रह अनुचित है। दूसरोंके हितकी अपेक्षा अपने स्वार्थकी ओर ध्यान देनेवालोंको भी दान और असहायोंकी सेवामें लगे रहना चाहिये। जो दूसरेके दुःखमें अपने आप तकका दान कर सकता है, उसके लिये स्वर्गका राज्य भी वेकार है। धनकी तरह यह जीवन भी क्षणभहुर है। मैं आर्यपथसे कभी विचलित नहीं हो सकूँगा। यदि मेरी पूर्वस्थिति लौट आयेगी तो दीन-दुखियोंकी प्रसन्नता सीमातीत हो उठेगी। इस असहाय अवस्थामें तो मेरा सर्वस्व उनके लिये है ही।^६ अविष्ट्यने दृढ़तासे कहा।

‘तुम धन्य हो। धन्य हो॥ समस्त सप्तर स्वार्थ और ममतासे अधा होकर धन बटोरता है, अपने सुखके लिये दूसरोंको दुःख देता है; पर तुम धनका परित्याग करके भी सेवा और दीन-दुखियोंकी सहायतामें रत हो। मैं परीक्षा ले रहा था, मैंने ही तुम्हारा धन छिपा दिया है; वह तुम्हे फिर दे रहा हूँ, धनका सदुपयोग तुम कर सकते हो।^७ शक्र (इन्द्र) ने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया, फिर अदृश्य हो गये। —रा० श्री० (जातकमाला)

सङ्गामजीके नेत्र बद हो गये। कोई उत्तर नहीं पाकर पत्नीने पुनः विनीत प्रार्थना की—‘मै आपकी पत्नी हूँ। यह पुत्र आपका है। आपके विना मैं असहाय हो गयी हूँ। आप मुझपर कृपा करके मेरा और इस बालकका पालन करें।’

साधक जड़की भौति निश्चल था। पत्नीने अधीर होकर कुछ रोपसे अपना बचा वहीं धरतीपर रख दिया और कहा—‘इस अवोध बालकके लालन-पालनके लिये मैं क्या करूँ? आप मेरी चिन्ता भले नहीं करें, किंतु इस शिशुका जैसे बने, ध्यान रखें। मैं चली।’

स्त्री चल पड़ी। दूर चली गयी। पर, उसके प्राण सतानके पास थे। हृदय-खण्डको वह कैसे पृथक् कर सकती थी। दूरसे वृक्षकी ओटसे उसने देखा, पति पाषाण-प्रतिमाकी भौति अचल था, उसने पुत्रकी ओर देखा भी नहीं। अन्ततः उसे निश्चय हो गया—‘अब इनके मनमें मेरे तथा पुत्रके लिये ममताकी छाया भी नहीं रह गयी।’

स्त्री लौटी और शिशुको अङ्गमें लेकर चल पड़ी।

स्त्रीकी यह दशा भर्वज प्रभुकी हाइसे छिपी नहीं थी। है और न चले जानेसे विपाद। आसक्तिसे सर्वथा रहित उनके मुँहसे निकल पड़ा—‘उसके आनेसे न उसे हर्ष होता है ब्राह्मण सज्जामज्जी।’—शि० दु०

अभि-परीक्षा

‘कौन जाग रहा है ?’ शकारि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यकी नौद टूट गयी। राजभवनमें दीप टिम टिमा रहा था; हसन्तिका (अँगीठी) जल रही थी। हेमन्तकालीन गीत अपने पूर्ण योगनपर था। रात आधीसे अधिक वीत चुकी थी। प्रहरी मो गये थे।

‘आपका सेवक !’ मातृगुप्तने शयनगृहमें प्रवेशकर दीप-वक्ती प्रत्यलित फर दी। वह शीतसे कोप रहा था। देहपर एक मैला-कुचल बल था, ओढ़ फट गये थे ठड़से। मुग्धपर चिन्ताके बादल थे। नौदसे परित्यक्त था वह अभागा और सत्पानको दी गयी पृथ्वीके समान रात समाप्त होना जानती ही नहीं थी। शयनगृहका पट बदकर वह पहरे-पर आ गया।

मध्याट्-कूद्ददय द्रवित हो गया। मातृगुप्त उच्च कोटिका कवि था। वह अनेक राजाओं और नामन्तोद्वारा सम्मानित था, पर अपनी योग्यताका प्रमाणपत्र वह कान्यकुब्जेश्वर चन्द्रगुप्तसे पाना चाहता था। महाराजने मदा उसके प्रति उपेक्षा दियायी, पर वह विचलित नहीं हो सका, वह जानता था कि सम्भाट् उच्च कोटिके सहित्य-मर्मश और व्यवहार-कुशल जासक है, वे किसी-न-किसी दिन मेरी सेवासे प्रमन्न होकर मुझे पुरस्कृत अवद्य फरंगे। वह इस प्रकार सोच ही रहा था कि महाराजने शयनकक्षसे बाहर आकर एक भोजपत्र दिया।

‘यह पढ़ा नहीं जायेगा, शपथ है। इसे काश्मीरका मन्त्रिमण्डल ही पढ़ सकता है।’ मध्याट् ने काश्मीर जानेका आदेश दिया।

× × ×

काश्मीरराज्यकी सीमामें प्रवेश करते ही उसे पता चला कि मन्त्रिमण्डल काबुक घाटीमें फिसी आवश्यक कार्यसे उपस्थित है। वह भूख-प्याससे परिश्रान्त होकर काबुक पहुँच गया और राजमुद्राङ्कित पत्र मन्त्रिमण्डलके सामने रख दिया।

‘क्या मातृगुप्त आप ही है ?’ मन्त्रियोंके मुखसे अपना नाम सुनकर कवि आश्र्वय-चक्रित हो गया। मन्त्रियोंने कहा कि मध्याट् का एक दूत आपसे पहले आ गया है, हम-लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने राजमिहासनकी ओर सकेत किया।

‘पधारिये, काश्मीरका राजसिंहासन मध्याट् ने आपको सौंपा है। वे आपकी सच्ची सेवा और निष्कपटतासे बहुत प्रसन्न हैं।’ मन्त्रियोंने वैदिक विधिसे काश्मीरके धर्मसिंहासनपर मातृगुप्तका राज्याभिषेक किया।

मातृगुप्तने सम्भाट् विक्रमादित्यके पास आभार-पत्र भेजा, जिसका आशय यह था—‘आप आकारसे तथा गर्वयुक्त भाषणसे दानकी इच्छा प्रकट किये विना ही दे दिया करते हैं। शब्दरहित मेघके द्वारा की गयी वृष्टिके समान आपकी प्रसन्नता फलसे ही गिनी जाती है।’ मातृगुप्तने अग्नि-परीक्षामें सफलता प्राप्त की।—रा० श्री० (राजतरक्षिणी)

सच्ची माँग

‘सिंधुका वेग वट रहा है, महाराज ! सेनाका पार उत्तरना रुठिन ही है।’ सेनापतिने काश्मीरनरेश ललितादित्यका अभिवादन किया।

‘पर हमें पञ्चनद देशमें अपना बल बढ़ाना ही है। काश्मीरके धर्मसिंहासनका व्रत पूरा ही करना है कि आरेतु-हिमाचल प्रदेशमें धर्मकी भावना जाग्रत् हो, जनता सत्यका पालन करे और सर्वत्र न्यायकी विजय हो। इसी कार्यके लिये

हम काश्मीरसे इतनी दूर आ गये हैं।’ महाराज ललितादित्य शिविरसे बाहर निकलकर सिंधुके तटपर टहलने लगे। पटह-ध्वनिसे आकाश गूँज उठा, सैनिकोंने अपने नरेशके प्रति सम्मान प्रकट किया।

× × × ×

‘आपके सत्कार्यमें विलम्ब नहीं होगा, महाराज ! मैंने आजीवन आपका नमक खाया है। काश्मीरकी सेना सिंधु

नदीको पार करेगी ही ।' महामन्त्री चिकुणके शब्दोंसे ललितादित्यके ललाट-देशका पसीना सूख गया । वे आश्रस्त थे ।

'प्रकृतिपर विजय करना हमारे बगकी बात नहीं है, चिकुण । सिन्धुकी उमड़ती जलधारामें हमारे सैनिकोंका पतातक न लगेगा ।' महाराज ललितादित्यका संशय था ।

'आइये, महाराज ।' चिकुणने सैनिक बेड़ेपर महाराज ललितादित्यसे आसन ग्रहण करनेकी प्रार्थना की । वे मध्यधारामें पहुँच गये । चिकुणने मध्यधारामें एक परम दीसिमयी मणि डाल दी । मणिके स्पर्शसे अथाह जल दो भागोंमें बट गया । सरिताका वेग नियन्त्रित होनेपर सेना पार उत्तर गयी । महाराज प्रसन्न थे ।

'और यह दूसरी मणि है ।' चिकुणने मध्यधारामें उसे डाल दिया और उसकी सहायतासे पहली मणि निकाल ली । सिन्धुका प्रवाह पहले-जैसा हो गया । ललितादित्य आश्रयचकित थे ।

'आजतक मैंने पृथ्वीपर भगवान्को छोड़कर किसी दूसरेसे याचना नहीं की । दोनो मणियाँ मुझे दे दो, चिकुण ।' महाराजके इन शब्दोंसे महामन्त्रीके रोंगटे खड़े हो गये ।

'राजकोषमें असर्व रत्न हैं, देव । उसमें इन्हें महत्व

ही क्या मिलेगा । मेरे-जैसे साधारण व्यक्तिके पास रहनेसे ही इनका मूल्य ऑका जा सकता है । चन्द्रकान्त-मणि जब-तक समुद्रसे दूर है, तबतक उसके ज्ञानेका महत्व है, रत्नाकर-में विलीन होनेपर उसकी कीमत घट जाती है ।' चिकुणका निवेदन था ।

'यदि तुम यह समझते हो कि मेरे पास इन मणियोंसे भी उत्कृष्ट कोई वस्तु है तो उसके बदले इन्हें दे दो ।' ललितादित्यने मन्त्रीको अभय दिया ।

'महाराज ! मैं आपके पवित्र आदेशसे धन्य हो गया । मुझे भगवान् बुद्धकी वह प्रतिमा दे दी जाय, जिसको मगध-नरेशने आपके पास उपहारस्वरूप भेजा है । भवसागरसे पार उत्तरनेके लिये वही मेरा परम प्रिय साधन है । लौकिक जलस्तरणमें सहायक हन मणियोंकी शोभा आपके ही राजकोषमें बढ़ेगी ।' महामन्त्रीने प्रार्थना की ।

'सच्ची मौग तो यही है, चिकुण । सत्य वस्तुकी प्राप्ति-की योग्यता तो तुमसे ही है । तुम जीत गये ।' महाराजने पराजय स्वीकार की । चिकुणको वैराग्य हो गया । भगवान् बुद्धकी प्रतिमा लेकर उन्होंने अपनी जन्मभूमि तुषारदेशकी ओर प्रशान्त किया । — रा० श्री० (राजतरक्षिणी)

आत्मदान

'महाराजा मेघवाहनके धार्मिक शासनमें भी असहाय और निरपराधका वध हो—यह तो घोर लज्जाकी बात है; मुझे बचाओ, मेरे प्राण जा रहे हैं ।' वनके मध्यभागमें इन शब्दोंको सुनकर कास्मीर-नरेश मेघवाहनने रथ रोक दिया; सेना आगे निकल गयी । महाराज समुद्र-वेलावनमें दिविजय करते-करते पहुँच गये थे । वे रथसे उत्तर पड़े और नगी तल्लावर लेकर वनके सघन अन्तरालमें जा पहुँचे । वे चौंक पड़े ।

'मुझे बचाइये, भद्रपुरुष । यह शब्द-सेनापति मेरा वध करनेको उद्यत है । इस ससारमें मेरा कोई भी सहायक नहीं रह गया है ।' वध्य पुरुष चण्डिकाकी प्रतिमाके सामने नतमस्तक था, शब्द-सेनापतिके हाथमें नगी तल्लावर थी, वह वध करने ही जा रहा था ।

'तुम्हारे प्राण सुरक्षित हैं, चिन्ता मत करो ।' महाराजने आश्वासन दिया ।

'पर मैं इसे नहीं छोड़ सकता । मेरा पुत्र साधातिक

रोगसे पीड़ित है । वह मरणासन्धि है । इसके बचनेका उपाय देवताओंने मनुष्यका वलिदान बताया है । आप मेरे पुण्य-कर्ममें विघ्न मत डालिये ।' शब्द-सेनापतिने विवशता प्रकट की ।

'असहाय प्राणीका वध करना महापाप है, धिक्कार है तुम्हें । स्वार्थमें अधे होकर लोग इस प्रकारके पापकार्य-में लग सकते हैं, इसका पता मुझे आज चला ।' महाराज चिन्तित थे ।

'देव । यदि असहाय पुरुषकी प्राण-रक्षामें आप इस तरह तत्पर हैं तो मेरे बालकने क्या त्रिगाढ़ा है ? यह वध्य पुरुष तो अपने परिचारमें अकेला है, मेरे परिचारके अनेक प्राणियोंका जीवन इस बालककी प्राण-रक्षापर निर्भर है ।' शब्द-सेनापति अपने बालकके प्राणोंकी भिक्षा मौगने लगा ।

महाराज मेघवाहन दोनोंकी परिस्थितिपर विचार करने लगे । वे वध्यकी करुणा और वधिकाकी विवशतासे अभिभूत होकर अपनी तल्लावरकी ओर देखने लगे ।

X X X X

‘तुम नि शुक्ल होकर मुहपर नज़र से प्रहर करो। मेरे प्राग-द्युनरे असहाय बन्ध और तुम्हारे वालक—दो प्राणियों-सी रक्षा हो जायगी। दोनोंरी प्राग-खला मेरा धर्म है, कर्तव्य है।’ महाराज भेदवाहन चण्डिका की प्रतिमाके सामने नत हो गये। शवर-सेनागति तौपने लगा।

‘महाराज! आपने द्वारा अमरत्य प्राणियोंके प्राग-मुरहित हैं। आप पिंडेश ढाके जीवंशमें ही ऐसा कार्य करनेकी प्रेरणा दे रहे हैं। आप नोच लीजिये। आपका शरीर तो अनेक प्राणियोंसा प्राग-द्युन रक्तके भी सर्वथा रक्षणीय है, यह अनुल्प है, आप उद्देश्यमय भगवान्के अश हैं पृथ्वीपर उनके प्रनिनिरित हैं। राजालेग अनेक प्राणियोंकी रक्षाके लिये धन, धर्म, परिवार—रिमीझी भी चिन्ता नहीं रहते। शवर-सेनागति असहाय पुरुषके वधमर जोर दिया।

‘शवर! तुम अपनी दृष्टि ठीक ही कहते हो। जिस प्रकार मद्देशवासी गङ्गाजलके निर्मल न्याद और ल्लानके सुखको नहीं जानते, उसी प्रकार तुम वनचर्होंको सदाचार-स्वी अमृतके न्वादसा पता नहीं लगा सकता। मैं अपने नव्वर शरीरसे अमर यद्य न्वरीद रहा हूँ, तुम दुरग्रह मत करो। तुम यदि मेरा वध नहीं कर नहते तो मैं अपनी तल्लारसे ही उमका सम्मादन करना हूँ। मेरे आत्मदानसे भगवनी प्रसन्न होंगी। दोनों प्राणियोंको जीवन मिलेगा।’ महाराज आत्मप्रलिङ्गन रहने ही जा रहे थे कि उन्होंने अपने सामने एक दिव्य पुरुषको देवा। शवर-सेनागति, चण्डिका सी मूर्ति, अवन्य पुरुष और वर्ण वालक—सबके सब अदृश्य हो गये।

‘मैं आपके अहिंसा-त्रत और प्रजा-पालनकी परीक्षा ले रहा था। आप धन्य हैं।’ बहणदेव अपना परिचय देकर अन्तर्वान हो गये।—रा० श्री० (राजतरङ्गिनी)

‘जाको राखै साइयों, मारि सकै ना कोय’

गौडेश्वर बन्धुराजका मन राजा मुख्के आदेश-पालन और व्यस्तव्य लिंगयके बीच शूल रहा था। वह जानता था कि यदि राजा मुख्क भोजका न्वनसे ल्यपय मिर न देखेगा तो मुझे जीवित नहीं छोड़ेगा। वह इसी उचित-इच्छनमें था कि सूर्योदात हो गया। पश्चिमकी ललिमामें उत्तरी नगी तल्लार चमक उठी, मानो वह भोजके न्वतकी प्यासी हो।

भुवनेश्वरी-बनके मन्त्रमें वत्सराजने रथ रोक दिया और भोजको राजादेश तुनाया कि मुख्क राजमिहायनका पूरा अशिक्षण-प्रोग चाहता है, उसने तुम्हारे वधकी आज्ञा दी है।

‘तुमको राजाकी आजका पालन करना चाहिये। भगवान् श्रीरामने वनवासका क्लेश सहा, समन्व यादवकुलका निशन हो गया। नल्को गव्यसे च्युत होना पड़ा। सब कालके श्रद्धीन हैं।’ कुमार भोजने अपने न्वनसे वटपत्रपर एक श्लोक लिना मुख्के लिये।

वनकी नीरवतामें काली रात भगानक हो उठी। बन्धुराजके हाथमें ल्पल्पाती-सी नगी तल्लार ऐसी लगाती थी मानो निरपराधीके शूलसे नहानेमें मत्यु सहम रही हो। वत्सराजके हाथसे तल्लार गिर पड़ी, वह मिहर उठा।

‘मैं भी मनुष्य हूँ, मेरा हृदय भी सुख-दुःखका अनुभव करता है।’ उसने कुमारको अपनी गोदमें उठा लिया।

उसके नेत्रोंसे अश्रुकण झरने लगे। अँखेह बढ़ता गया।

× × × ×

‘उसने मरते समय कुछ कहा भी था?’ टिमटिमते दीपके मन्द प्रकाशमें न्वनसे ल्यपय मिर देवन्वर महम उठा सुख। ‘हाँ, महाराज!’ बन्धुराजने पत्र हाथमें रख दिया। ‘उसने ठीक ही लिखा है—

मान्वाता च महीपति कृतयुगालङ्कारमूर्तो गत
मेतुर्येन महोदध्यौ विगचित कासीं डगास्यान्तक।
अन्ये चापि युधिष्ठिरमृतयो याता दिवं भूपते
नैकेनापि भम गता वसुमती मुञ्ज त्वया यास्यति॥

कितना बड़ा महापाप कर डाला मैंने। मैं स्वर्गीय महाराज रिन्दुको क्या उत्तर दूँगा, जिन्होंने पॉन्न वर्षके अल्पवर्षस्क कुमारको मेरी गोदमें रख दिया था? मैंने विवाह सावित्रीकी ममता—मातृत्वकी हत्या कर दी। मुख्क रोने लगा।

राजप्रापादमें हाहाकार मच गया। बुद्धिसागर मन्त्रीने राजके अयन-ग्रहमें किसीके भी जानेकी मनहीं कर दी और लिन्न होकर श्यन-गृहसे सटे समा-भवनमें बैठ गया। वत्सराजने उसके कानमें कहा कि ‘भोज जीवित है, मैंने नकली मिर दिखाया है।’ वह राजभवनसे बाहर हो

गया। राजा ने रातमें ही अग्नि-प्रवेश करना चाहा।

× × × ×

मारी-की-मारी धारा नगरी शोकमागरमें निमग्न थी। रात धीरे-धीरे अपनी भयानकता फैला रही थी। सभाभवनमें एक कापालिकने आकर बुद्धिसागरसे निवेदन किया कि मैं मरे हुए व्यक्तिको जिला सकता हूँ। कटे हुए सिरको घड़से जोड़कर प्राण-सचार कर सकता हूँ। राजा मुझे कापालिक-की धोणा सुनकर सभा-भवनमें आया। ‘महाराज। मैंने महापाप किया है। उसके प्रायश्चित्तके लिये मैंने ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे अग्निमें प्रवेश करनेका निश्चय किया है।

मेरे प्राण कुछ ही क्षणोंके लिये इस शरीरमें हैं। आप कुमार-को जीवन-दान दीजिये।’ मुझने खूनसे रँगा मिर कापालिकके हाथमें रख दिया। बुद्धिसागर कापालिकके साथ तत्क्षण शमगानमें गया।

× × × ×

दूसरे दिन सबेरे धारा नगरीमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी। ‘कुमार भोजको कापालिकने प्राण-दान किया।’ यही बात प्रत्येक व्यक्तिकी जीभपर थी। राजा मुझने राजसिंहासन भोजको सौंप दिया तथा स्वयं तप करनेके लिये वनकी राह पकड़ी। —रा० श्री० (भोजप्रबन्ध)

—○—○—○—○—○—

गुणग्राहकता

मालवेश्वर भोजको राजसिंहासनपर बैठे कुछ ही दिन हुए थे। एक दिन प्रातःकाल वे अपने रथपर समासीन होकर राजकीय उद्यानकी ओर क्रीड़ाके लिये जा रहे थे। सूर्यकी सुनहली फिरें पृथ्वीपर अपनी आभा फैला रही थी। धारापतिका रथ बढ़ी तेजीसे राजपथपर बढ़ा जा रहा था। सहसा महाराज भोजने रथ रोकनेका आदेश दिया। वे रथसे उत्तर पड़े एक ब्राह्मण देवताको देखकर। ब्राह्मणका नाम गोविन्द था। वह देखनेमें मनीषी और कुलीन लगता था। महाराज भोजने सादर अभिवादन किया, ब्राह्मणने दोनों नेत्र मूँद लिये। राजा भोज उसके इस आचरणसे विसर्यमें पड़ गये।

‘न तो आपने स्वस्ति-च्चन किया और न आशीर्वाद ही दिया। आपने मुझे देखते ही दोनों नेत्र बद कर लिये। कारण वतानेकी कृपा कर सकते हैं?’ महाराज भोजने बड़े आदरसे जिजासा प्रकृट की।

‘आप वैष्णव हैं, आप अनजानमें भी दूसरोंको पीड़ा नहीं पहुँचा सकते हैं, न ब्राह्मणोंके प्रति उत्पात कर सकते हैं; इसलिये मुझे आपसे भय नहीं है। आप किसीको कुछ दान भी नहीं देते, लोकोक्ति है कि सबेरे-सबेरे कृपणका मुख देखकर नेत्र बद कर लेने चाहिये। अप्रगल्भकी विद्या,

कृपणका धन और कायरका वाहुबल—ये तीनों पृथ्वीपर व्यर्थ हैं। राजाके पास सम्पत्ति भले न हो; पर यदि वह गुण-ग्राही है तो सेव्य है। दधीचि, शिवि और कर्ण आदि म्वर्ग जानेपर भी अपने दानके बलपर पृथ्वीपर अमर है; लोग उनका यश गाते हैं, उनकी उदारता और दानशीलताकी प्रशसा करते हैं। महाराज। यह देह नश्वर है, अनित्य है; इसलिये कीर्ति ही उपर्जनीय है।’ गोविन्दने महाराज भोजसे अत्यन्त खरा सत्य कहा।

‘मैंने आपके बचनामृतसे परम तृप्ति पायी है। आपने अत्यन्त कोमल ढंगसे मेरे हितकी बात कही है। ससारमें प्रशसा करनेवाले तो अनेक लोग मिलते हैं; पर आप-जैसे मनीषी और हितैषी कम ही दीख पड़ते हैं। आपने मेरे हितकी बात कहकर मेरी आँखें खोल दी हैं। आपने मेरा बड़ा उपकार किया है, वास्तवमें ऐसी औषध नहीं मिलती है, जो हितकर और साथ-ही-साथ स्वादयुक्त भी हो। आपने मेरी दान-वृत्ति जगाकर मुझे नरकमें जानेसे बचा लिया।’ राजा भोजने ब्राह्मणकी सल्कथन-प्रवृत्तिकी सराहना की तथा एक लाख रुपयेसे पुरस्कृत किया। उसके लिये राजप्रासादके दरवाजे सदाके लिये खोल दिये गये। —रा० श्री० (भोजप्रबन्ध)

धनी कौन ?

प्रसेनजित् बड़ा है।

‘तुम्हें पता नहीं।’ पहले भिक्षुने अपनी बातका समर्थन किया। ‘महाराज सेनिय विम्बसारके राज्यकोषकी तुलना कोसलराजसे कैसे हो सकती है।’

मध्याह वेला। भिक्षु भिक्षा कर चुके थे। जेतवनमें विश्राम करते हुए एकने कहा—‘मगधराज सेनिय विम्बसार राज्य एव सम्पत्तिकी दृष्टिसे बड़ा है।’

‘नहीं।’ दूसरे भिक्षुने बात काटकर कहा—‘कोसलराज

प्रसेनजितके वैभवमे भगवान् सेनिय विन्वनार्की तुल्ना नहीं। दूसरे भिन्नते चढ़ते उन्हें दिग्ग 'और ...'

'क्या यह हो रही है?' भगवान् आ निकले। दूसरे भिन्नका मुँह खुल्ने का खुल्ना ही रह गया। प्रथम भिन्न भी मौन था।

भद्रार्थ सेनिय विन्वनार्की और कोनचाज प्रसेनजितमें रुच्य पन एवं वैभवमे दृष्टिसे कौन बड़ा है? इसीपर वच्चा

हो रही थी। तीसरे भिन्नते भगवान् आशन टेकर अन्यत्त विनीत वार्गीमें रहा।

'भिन्नओं!' प्रभु बोले—'प्रव्रजित होनेके बाद तात्पारिक वच्चा ही उचित नहीं। तुम्हें बोलना हो तो केवल धार्मिक वच्चा करो, अन्यथा मौन रहो।'

इच्छा क्षणोंके अनन्त भगवान्ते पुन रहा—'तृणा-क्षयके द्वितीय तुल्यकी तुल्नामें तात्पारिक काम-सुख धूलिके तुल्य है।' —सु० द३०

'योगो भवति दुःखहा ।'

अपनी प्रियमनी यशोपराको, नवजातपुत्र चहूलको, ल्लैटनुर्मिं पिना भरायज शुद्धोदनको तथा वैभवसमन्वय राज्ञको उच्चरार युवावस्थामें ही गौहन घरसे निकले थे। केवल तक्षण्यूण बौद्धिक उन उन्हें कैसे सनुष्ट न लक्षना था। उन्हें तो रोगपर दुष्टानेर और मृत्युपर विजय पानी थी। उन्हें शाश्वत जीवन—अमरत्व अर्मीष था। प्रख्यात विद्वानों, उच्छृं शान्तजनोंके समीप वे गये, किन्तु वहाँ उनका सनोप नहीं हुआ—हो नहीं सकना था। जाश्रमोंसे, विदानोंसे निराश होकर वे गयाके समीप बनमें आये और तपस्या करने लगे।

उद्दा, गरमी और वर्षाम नीं गौतम वृक्षोंके नीचे नन्हे अपनी चेदितामर स्थिर बैठे रहे। उन्होंने सब प्रकारका आहार बढ़ कर दिया था। दीर्घतानीन तपस्यामे कारण उनके दर्परका भाव और रत्न सुव गया। केवल हाँड़ों

नसें और चमड़ा द्यें रहा।

गौतमका धैर्य अविचल था। कष्ट क्या है, हसे वे अनुभव ही नहीं करते थे, किन्तु उन्हें अपना अर्मीष प्राप्त नहीं हो रहा था। तपस्यासे ज्ञान नहीं हुआ करता। उससे

सिद्धियाँ निल्मी हैं। एक सच्चे साधक, सच्चे मुमुक्षुके लिये विद्वियाँ साधक हैं, मारके प्रलोभन हैं। गौतमने उन सब प्रलोभनोंपर विजय प्राप्त कर ली थी।

एक दिन जहाँ गौतम तपस्या कर रहे थे, उस स्थानके समीपके मार्गसे इच्छा गायिकाएँ निकलीं। वे किसी नगरके उत्तरामे भाग लेकर अपने घर लौट रही थीं। गार्मीं मीं नै गातीं, वाजे वजातीं, नाचतीं, आमोद-प्रमोद करती जा रही थीं। वे जब गौतमकी तरोभूमिके पाससे निकलीं, तब एक गीत गा रही थीं। उस गीतका भाव यह था—पितामके तारेंको ढीला भत छोड़ो। ढीला छोड़नेसे वे सुखर नहीं उत्पन्न करेंगे। परतु उन्हें इतना खींचो भी भत कि वे दूट जायें।

गौतमके कानोंमें वह सर्गान-स्वनि पड़ी। उनकी प्रश्नामें सहस्र प्रकाश आ गया। साधनाने लिये घोर तपस्याका मार्ग उपयुक्त नहीं। सद्विमित मोजन तथा नियमित निद्रादि व्यवहार ही उपयुक्त है। यह मध्यममार्ग उनको तपस्या सूझ गया। उसी समय उन्होंने धरना आरन छोड़ दिया और नदीकी ओर चल पड़े।—सु० सि०

अपनी खोज

सन्ध्यक् नन्मोषि प्राप्त करनेके बाद भगवान् दुदृ वारागसी चले आये। नृगदाव श्रुतिपत्तनमें पञ्चवर्गीय विष्योंने समुद्धकर उन्होंने चारिकाविचरणके लिये उत्तरव बनमें प्रोत्यक्तिया और एक धने वृक्षकी छप्पामें पद्मासन लगाकर बैठ गये।

X X X X

'वह इधर ही गयी होगी। किनीं नीच है वह?' किनींने अत्यन्त उद्देश्यमे वरमें चिना प्रकट की।

पर वह इस बन-वृष्टिसे भागकर जायगी कहाँ। कितने अमूल्य ये हमारे रन्नामरण। दूसरेने एक वृक्षकी छायामें उत्तरकर संतोषकी बाँत ली। दूसरे साथी आ गये।

'हम उसके लिये उत्तरव का एक-एक कोना छान मारेंगे। वैद्यका विश्वास करनेवाला घोला खाता ही है।' लोगोंने उत्तरता प्रकट की।

वे उसकी खोजमें एक साथ निकल पड़े। वनके मध्य-

भगमें प्रवेश करते ही उन्होंने विशेष ज्ञानिकी अनुभूति की। कुछ दूर जानेपर उन्होंने भगवान् बुद्धका दर्शन किया। दिव्य पुरुष भमज्जकर उनकी चरण-धूलि मस्तकपर चढायी। भगवान्के कृश शरीरकी स्वर्णिम प्रदीप्तिसे वे विमुग्ध हो गये।

‘आपने उसको इधरसे जाते देखा है?’ तीसो भद्रवर्गीय मित्रोंने भगवान्से निवेदन किया।

‘मुझे आपने-आपके मिथा दूसरा दीख ही नहीं रहा है। इतना ही सत्य है।’ वे मौन हो गये।

‘मन्ते। हमारा आगय एक छीसे है। वह वेद्या है। हमलोग अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ वन-विहार करने आये थे। पत्नीके अभावमें एक मित्रके मनोरञ्जनके लिये वह वेद्या हमारे साथ थी। हमें विशेष राग-रगमें लिस देखकर हमारे कीमती रत्नालंकार आदि लेकर वह इसी वन-

खण्डमें अदृश्य हो गयी है। हमें उसीकी खोज है।’ भद्र जनोंने पश्चात्ताप किया।

‘भद्रो ! जगत्के विषय-भोग और सुख नश्वर और क्षणिक है। रत्नालंकार आदि तो आते-जाते रहते हैं। छीकी खोजसे कहीं अधिक सत्य आत्माकी खोज आवश्यक है।’ भगवान् बुद्धने धर्मचक्षु जाग्रत् किया। अपनी शीतल मुमकान विखेर दी।

‘ठीक है, मन्ते। हमें छीकी आवश्यकता नहीं है, आत्माकी खोज करनी है।’ भद्रवर्गीयोंने भगवान्से प्रव्रज्या-उपसम्पदकी याचना की।

भगवान्ने धार्मिक सत्कथाओंसे उन्हें आत्मज्ञान और सद्धर्मका मर्म समझाया। वे उनके क्षणिक सत्सङ्गसे अपनी खोजमें लग गये।—रा० श्री० (बुद्धचर्या)

वैराग्यका क्षण

वाराणसीके सबसे बड़े सेठका पुत्र यश विलसी और विपरीथा था। उसके विहारके लिये ग्रीष्म, हेमन्त और वर्षाकाल-के तीन अमूल्य प्राप्ताद थे। वर्षाकालीन प्राप्तादमें प्रवेश करनेपर परिचारिकाओं और रमणियों तथा नर्तकियोंके राग-रगमें वह इतना निमग्न हो जाता था कि कोटेपरसे नीचे नहीं उतरता था।

* * *

‘तो क्या भसारका रूप यही है?’ उसकी अन्तरात्मा शिमटिमाते दीपकके मन्द प्रकाशमें सिहर उठी; रात अपने अन्तिम चरणपर थी। उसका अङ्ग पीला पड़ गया; रेतमी परिधानमें शिक्कन पड़ गयी; कानोंके स्वर्णकुण्डल और गलेके रत्नहारोंमें विशेष कम्पनका आभास मिला उसे। क्षण भरके लिये अमित गम्भीर चिन्तामें उसने नेत्र बंद कर लिये। उसने देखा नर्तकियों तथा परिचारिकाएँ चेतनाशून्य थीं, नीदके बगमें थीं। किसीके मुखसे लार टपक रही थी तो किसीके अधरोंपर कफ़न केनिल विकार था। कोई टेढ़ी सो रही थी तो किसीकी अनावृत मुजाएँ वीभत्सता प्रकट कर रही थीं। किसी रमणीके गलेमें भृदङ्ग था तो किसीकी बैंगुली बीणाके तारोंका स्पर्श कर रही थी। उसने देखा कामिनीकी कनक-कायाका कुस्तित रूप और उसका सिर धूमने लगा; नेत्रोंके सामने अँधेरा छा गया।

‘मैं जिसे सत्य समझता था, वह नश्वर और असत्य

दीखता है।’ यश जमीन पकड़कर बैठ गया, उसके हृदयमें उसी क्षण वैराग्यका उदय हो गया। ब्रह्मवेला निकट थी।

‘मुझे सत्यकी खोज करनी चाहिये।’ उसने नीचे उत्तर-कर वर्षाकालीन प्राप्तादका अन्तिम दरवाजा खोला।

‘मुझे प्रकाश पाना चाहिये।’ यश घरसे बाहर निकल गया।

‘मुझे सन्यास लेना चाहिये।’ यश मृगदाव—ऋषिपत्तनके पथपर था। वह भगवान् बुद्धसे सम्यक्-ज्ञान प्राप्त करने जा रहा था। उस समय वे ऋषिपत्तनमें ही थे। सलारकी विषय-बासनाएँ उसका पीछा कर रही थीं और वह आगे बढ़ता जा रहा था।

यशने देखा भगवान् बुद्ध ऋषिपत्तनमें टहल रहे थे। समीरकी चड्ढल गतिसे उनका गैरिक वस्त्र आन्दोलित था। वे उसे देखकर आसनपर बैठ गये।

‘जगत् सत्तस है, पीड़ित है, असत्य है, मन्ते।’ यश विकल था।

‘जगत् असंतत है, अपीड़ित है, सत्य है, कुमार।’ भगवान्ने उसे बैठनेकी आज्ञा दी।

‘मुझे सत्यका रूप बताइये, मन्ते।’ यशने स्वर्णनिर्मित पदत्राण उत्तर दिये, वह उनके समीप बैठ गया।

भगवान् ने आनुबर्ती कथा—दान, शील, धर्म और वासनाक्षयपर प्रकाश डाल। उसे दुखका कारण और उसके नाशका उपाय बताया। यशमें धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ; निर्मल वैराग्य मिला उसे।

X X X

‘मेरी पत्नी, यशकी पत्नी और समस्त परिजन विकल हैं, भन्ते।’ यशके पिताने भगवान् बुद्धको प्रणाम किया। उनके सानिध्यमें सेठने धर्मचक्षु प्राप्त किया। वह उपासक बन गया।

‘तेरी माँ रोती-भीटती है। तेरी पत्नी मनाशून्य है। प्राणका संचार करना चाहिये, तात।’ सेठने यशका आलिङ्गन करना चाहा। यश एक क्षणके बैराग्यके परिणाम-स्वरूप निर्मल हो गया था, दोषमुक्त था।

‘अब यश कामोपभोगके योग्य नहीं है, सेठ।’ भगवान् बुद्धने यशके पिताको सचेत किया।

X X X

सेठके अनुरोधपर श्रमण यशके साथ भगवान् बुद्ध उसके घर भिक्षा लेने गये। माताकी ममता और पत्नीकी आसक्ति निफल हो गयी। वे उपासिकाएँ बन गयीं। यशके अनेक मित्र और परिजनोंने भी बैराग्यके अभय और अकण्टक राज्यमें प्रवेश किया।

बैराग्यका एक क्षण यशके लिये अमृतस्वरूप हो उठा। उसे सासारकी अनित्यताका पता चल गया, सत्यलाभ किया उसने। भगवान् बुद्धने उसे प्रब्रज्या दी।

ब्रह्मचर्यका पालन करो। यह भ्रान्त, सत्य है। इससे दुःखका क्षय होता है।’ यशने भगवान्के इस आदेशका आजीवन पालन किया।—रा० श्री० (बुद्धचर्या)

संन्यासका मूल्य

‘मैं अपने सारे सम्बन्ध, यौवन और धन आदिको ल्यागकर संन्यास लूँगा। प्रव्रजित होना ही मेरे जीवनका लक्ष्य है।’ भगवान्के पिप्पली माणवकका दृढ़ संकल्प था। उसकी मौने उसे वैवाहिक वन्धनमें बाँधनेकी बार-त्वार बेद्या की, पर उसकी स्वीकृति न मिल सकी। माणवकने एक हजार निष्क (स्वर्ण-मुद्रा) की लागतकी एक स्वर्ण-प्रतिमा बनवाकर मौसे कहा—यदि मेरी होनेवाली पत्नी इतनी ही रूपवती होगी तो मैं विवाह कर लूँगा। इस तरह उसने समय टालना चाहा, पर मौने प्रतिमाके साथ कन्याकी खोजके लिये आठ व्राह्मण बाहर भेजे।

व्राह्मणोंने मद्ददेशमें, जाकर एक अत्यन्त रूपवती कन्याका पता लगाया, कन्याके पिताने विवाह करना स्वीकार कर लिया। व्राह्मणोंने माणवकके घर समाचार भेजा। वह चिन्तित हो उठा। उसने अपनी होनेवाली पत्नी भद्रा कापिलायनीको पत्र लिखा कि ‘अपनी जाति, गोत्र और रूप-रणके अनुसार रहस्य-धर्म स्वीकार करना चाहिये। मेरा प्रव्रजित होनेका विचार है।’ इसी अड्युक्त पत्र भद्राने भी लिखा था। दोनोंके पत्र-वाहकोंकी दीचमें ही भेंट हो गयी, उन्होंने पत्र फाइकर अनुकूल पत्र उपस्थित किये। सम्बन्ध हो गया, अपने पहलेके लिये पत्रोंके अनुसार दोनों एक-दूसरेसे खिचे-खिचे रहते थे। दैवयोगदे विवाह

होनेके बाद दोनोंने एक-दूसरेका स्पर्शतक नहीं किया।

इुछ दिनोंके बाद माता-पिताका प्राणान्त होनेपर माणवक कुदुम्बके लिये विचार करने लगा, पर मन विषयासक्त न हो सका। एक दिन सुने हुए धोड़ेपर सवार होकर वह सेरके लिये निकला, एक पेड़के नीचे खड़ा होकर उसने कौआँको कीड़े-मकोड़े खाते देखा। मनमें कहा कि ‘ये तो हमारी भूमिके ही जीव हैं, इनके पापका उत्तरदायित्व मुझपर है।’ इसी प्रकारका विचार धरपर भद्राके मनमें भी उठा। एक-दूसरेसे मिलनेपर दोनोंने संन्यासका पक्ष लिया। बाजारसे मिट्टीके नये पात्र मँगाये गये। दोनोंने एक-दूसरेके केश काटे, प्रव्रजित होकर कधेपर झोली रखकर दोनों घरसे निकल पड़े। जो भी उन्हें मार्गमें देखता था, उसके नयनोंमें अशु उमड़ पड़ते थे।

‘देवि। हमारा एक साथ रहना कदापि शोभन नहीं है। ससारके लोग कहेंगे कि माणवक प्रव्रजित होनेपर भी त्रीके मोहसे मुक्त न हो सका। इस प्रकार हमारे सम्बन्धमें अनेक भावनाएँ कर वे पापके भागी हो सकते हैं।’ माणवक-का हृदय कठोर हो गया।

‘आर्य-पुत्रकी आशा सर्वथा पालनीय है।’ उसने माणवककी चरण-वन्दना की, दूसरा रास्ता पकड़ लिया। भद्रा प्रसन्न थी।

माणवक भगवान् बुद्धका दर्जन करनेके लिये वेणुवन-
की ओर चल पड़ा । गास्ताने उपसम्पदा दी और स्थिर
माणवक (महाकाश्यप) को साथ लेकर चारिका करने
चल पडे ।

राजगृह और नालन्दाके बीचमें एक पेड़के नीचे
तथागत खड़े हो गये ।

‘भगवान्, इस आसनपर विश्राम करे ।’ माणवकने
अपनी रेतमी सधाटी विछा दी ।

‘कितना कोमल है यह ।’ तथागतने परीक्षा ली उसके
बैराग्यकी ।

‘तो भगवान्, इसे धारण करें ।’ माणवक प्रसन्न था ।

‘क्या तुम हमारी जीर्ण-जीर्ण गुदड़ी पहन सकते हो ?
चिथड़ोंको सीकर पहननेवाला ही इसे उपयोगमें ला सकता
है, काश्यप ।’ तथागत उसकी ओर देखने लगे ।

‘जिसे मैंने अपार धन और अत्यन्त रूपवतीके बदले
ग्रहण किया है, उस बैराग्यका भाव गिरने नहीं पायेगा ।
मन्ते । चीवर-परिवर्तन ही हमारे सन्यासका अनितम मूल्य
है ।’ महाकाश्यपने भगवान्का चीवर धारण कर लिया ।

—रा० श्री० (बुद्धचर्या)

परीक्षाका माध्यम

हेमन्तकी सध्या थी, सूर्य अस्ताचलपर अदृश्य होनेवाले ही
ये, पश्चिम गगनकी नैसर्गिक लालिमा अद्भुत और अमित
मनोहारिणी थी । भगवान् बुद्ध राजगृहमें विहार समाप्तकर
चारिकाके लिये बैगालीके पथपर थे । उन्होंने देखा कि उनके
पीछे-पीछे अनेक भिक्षु चले आ रहे हैं । किसीने सिरपर, तो
किसीने बगलमें और कटिदेशमें चीवरोंकी गठरी लद रखली
थी । तथागत व्याश्र्वर्यचकित थे भिक्षु-सङ्घकी सग्रह-वृत्तिपर ।

‘कहों तो भिक्षुओंने जनताके समझ उल्कट त्यागका
आदर्श रखवा और कहों थोड़े ही समयके बाद उन्होंने सग्रह
और सचयमें आसक्ति दिखायी ।’ तथागत चिन्तित थे ।

X X X

रातका पहला पहर था । धीरे-धीरे शीतल समीर ठड़क
फैला रहा था । तथागत बैगालीके गौतम-चैत्यमें समाप्तीन थे;
भिक्षुसङ्घने उनके चेहरेपर उदासीकी छाप देखी । भिक्षुओंने
चरण-वन्दना की, वे अपने-अपने आसनपर चले गये । भगवान्
बुद्धका भन बार-बार यही विचार कर रहा था कि किस प्रकार

सङ्घकी सग्रह-वृत्तिका निवारण हो । उन्होंने चीवरोंको सीमित
करनेका निश्चय किया और अपने-आपको ही कड़ी परीक्षाका
माध्यम स्थिर किया ।

वे गौतम-चैत्यके बाहर आकर जमीनपर सधाटी विछाकर
लेट गये । साधारण ठड़क थी, एक चीवर लेकर शरीर ढक
लिया । ठड़कका वेग रातमें बढ़ गया; बिन्दले पहरमें उन्होंने
दूसरा चीवर ओढ़ लिया । तीसरे पहर अथवा पिछले पहरमें
आकाश लोहित वर्णका हो चला; शीतका उल्कर्ष देखकर
भगवान् बुद्धने तीसरा चीवर ओढ़ लिया । सबेरा हो गया ।

‘प्रत्येक भिक्षुका काम केवल तीन चीवरसे चल सकता
है, अधिकके सग्रहसे पापकी वृद्धि हो सकती है । सङ्घमें
शिथिलता आ जायगी ।’ तथागतने भिक्षु-सङ्घको आमन्त्रित-
कर अनुज्ञा प्रदान की । सङ्घकी बैराग्य-वृत्तिको कलङ्कित होने-
से गास्ताने बचा लिया । उन्होंने अपने जीवनके त्यागमय
अनुभवका दूसरोंके हितमें उपयोग किया । —रा० श्री०
(बुद्धचर्या)

सहज अधिकार

भगवान् बुद्धके जीवनकी घटना है । तथागत छप्पन
सालके थे । अभीतक अपनी परिचर्याके लिये किसी उपस्थाक
(परिचारक) की नियुक्तिकी आज्ञा नहीं दी थी । कभी उनके
साथ परिचर्याके लिये मेधिय, उपवाण या राघ रहते थे तो
कभी नागसमाल भगवान्का पात्र लेकर पीछे-पीछे चलते थे ।

एक समय तथागत श्रावस्तीके पथपर थे । उनके पीछे

पात्र-चीवर लेकर नागसमाल चल रहे थे ।

‘अपना पात्र सम्हालिये । मैं चारिकाके लिये दूसरी ओर
जाना चाहता हूँ ।’ नागसमालका प्रस्ताव भगवान् बुद्धने
स्वीकार नहीं किया । उन्होंने दूसरी बार कहा—तथागत
शान्त थे ।

तीसरी बार नागसमाल पात्र-चीवर भूमिपर रखकर

दूसरा गला पट्टना ही चाहने ये कि महात्रमग्ने चीवर-
पात्र अपने हाथमें ले लिये। नागममाल चले गए।

X X X

श्रावणीमें प्रदंग करके गन्धकुटीने परिवेग (चौक) क
मिथे आकुन्दर भगवान् दुष्ट बैठे ही थे कि नागममाल आ
पहुँचे। उनके मिथें चोट थीं, रामतेमें चांगने पात्र-चीवर
आदि दीन लिये थे। उन्होंने चण्णशब्दना दी और आज-
उल्लहून कनेसर पञ्चात्तर लिया।

मैंने लिये परिचान्क नितन करनेकी आवश्यकता है।
लोग मैंग नाथ आये गन्तेमें ही छांड लिया करते हैं, पात्र-
चीवर रद्दर चले जाते हैं।^{१३} तथागतके इन उद्गारसे
उपस्थित निमुक्त दुर्वा हुआ।

मैंने जन्म-जन्मान्तर आपके उपस्थानके लिये तप मिया
है, मुझे अवसर मिठे।^{१४} आयुष्मान् सारिपुत्रका यह ग्रस्ताव
अर्वाहृत हो गया।

भूमि निष दिशामें चारिका करते हो, वह मुझसे अद्यन्त
रहती है। तुम उपस्थानके गोग नहीं हो।^{१५} तथागतने
मैरें रिया।

महामैदृष्ट्यायन आदि अत्ती महाश्रावकोंने उपस्थान-
का अधिकार माँगा, पर तथागतने स्वीकृति नहीं दी।

‘दगवल उपस्थानका अधिकार दे रहे हैं, मौग लो,
आयुष्मन्।’ दृष्ट लोगोंने स्वाविर आनन्दको प्रोत्साहित मिया।

‘यदि मौगनेसे मिला तो अधिकार है ही नहीं, सेवाका
अधिकार तो सहज ही मिला करता है। भगवान् दगवल मुझे

देंग ही रहे हैं, उचित समझेंगे तो अनुजा प्रदान करेंगे ही।’
स्वाविर आनन्द न्यून था।

‘आनन्दको प्रोत्साहित करना ठीक नहीं है, भिक्षुओं !
वह न्यून ही मैंग उपस्थान करेगा।’ दगवल प्रसन्न थे।

‘मेरे चार प्रतिक्षेप और चार याचनाएँ हैं।’ आनन्दने
तथागतसे निवेदन किया कि भगवान् अपने पावे उत्तम चीवर
मुझे न दें, पिण्ड (मिथा) न दें, एक गन्ध-कुटीमें निवास
न दें, निमन्त्रणमें लेकर न जायें।

‘उनमें दोष क्या हैं, आनन्द ? दगवलने परीक्षा ली।

‘यदि आप इनको मुझे देंगे तो लोग लाल्हान ल्यायेंगे
कि आनन्द अपने न्यार्थ-न्यामके लिये दगवलका उपस्थान
करता है।’ उसने भाव न्यष्ट किया अपने मनका। स्वाविर
आनन्दने कहा कि ‘मेरी चार याचनाएँ ये हैं कि आप मेरे
न्यीनार किये निमन्त्रणमें जायें, वह दूसरे राष्ट्र या परिपद्धते
कोई व्यक्ति दर्शनके लिये उपस्थित हो तो उसके आते ही
म आपना दर्शन नरा पाऊँ, किसी भी समय आपके पास
आनेमें मेरे लिये रोक न रहे, आप मेरे परोक्षमें जो घर्मोपदेश
करें, उसका आकर मुझे भी उपदेश नर दें।’

‘यह सदाचारका पथ है, स्वाविर ! यह आत्मीयताका
अभिव्यञ्जन है, आनन्द। वास्तवमें मेरी सेवाके सहज
अधिकारका वही उपाय है।’ भगवान् तथागतने आनन्दकी
प्रश्ना भी, उसकी समझ मौगें स्वीकार कर ली गयी।
उपस्थानका सहज (स्वाभाविक) अधिकार मिल गया उसे।

—८० श्री० (दुद्दन्धर्या)

निर्वाण-पथ

‘नावन और अनुयान तीयोंमें ही शीत सफल होते हैं
और उनमें अध्यन अध्ययन फल होता है। इसी विचारसे साधु
वाहिय सुशारक तीर्थमें चार करने लगे थे।

वाहियका जीवन अत्यन्त सरल एव सात्त्विक था।
उनके मनमें किसी प्रागीके प्रति वैरप्रिय नहीं था। अपने
साथमें उनकी निशा थी और उनमें वे सतत सलग थे।
उनके तेजने साथ उनकी सम्मान प्रतिष्ठा भी बढ़ने लगी थी।

समीक्षके ही नहीं दूर-दूरमें लोग उनके समाप्त थाते
और चरणोंमें चिर झुकते। सभी उनकी पूजा और देवोचित
आदर करते। चीवर, पिण्डपात, द्ययनासुन और दबा-

बीरो उनको अनायास ही प्रत्युत परिमाणमें प्राप्त हो जाते थे।

‘संसारमें जो अर्हत् या अर्हत्-मार्गारूढ हैं, उनमें एक
में भी हूँ।’ वाहियके मनमें एक दिन विचार उठा।

‘वाहिय मेरा अत्यन्त प्रिय है,’ वाहियके कुलदेवताने सोचा,
‘और सन्मागपर चलनेके लिये निरन्तर ग्रयत्नशील है। इसे
मुक्तिकी प्रत्येक क्षण कामना है। अतएव इसे सावधान करना
चाहिये।’

‘वाहिय ! तुम अर्हत् नहीं हो।’ कृपापूर्वक कुलदेवताने
वाहियके सम्मुख उपास्थित होकर कहा। ‘अर्हत्-मार्गपर आरूढ
भी नहीं हो। अर्हत् या अर्हत्-मार्गारूढ होनेके पथका दर्शन

मी तुम्हे नहीं हो सका है। अभिमान नहीं करना चाहिये। अभिमान निर्वाण-यथका सबसे बड़ा वाघक है।'

'कृपामय !' वाहिय महम गये। कुलदेवताकी ओर कृतज्ञतामरी दृष्टिसे देखते हुए उन्होंने अत्यन्त विनीत स्वरमें पूछा—'इस धरतीपर ऐसे कौन है, जो अर्हत् या अर्हत्-मार्गालंद हो चुके हैं। यह बना देनेकी दया कीजिये।'

'वाहिय !' कुलदेवताने उत्तर दिया 'इसी आर्यधरापर श्रावस्ती नामक पुष्पनगर है। वहाँ इस समय भगवान् बुद्धदेव निवास कर रहे हैं। वे भगवान् तथागत ही स्वयं अर्हत् हो जगत्को अर्हत्-पद प्राप्त करनेका मार्ग-दर्शन करा रहे हैं। उनके परम पवित्र धर्मोपदेशसे जीव चिरकालिक भववादासे त्राण पा रहे हैं, मुक्त होते जा रहे हैं।'

कुलदेवता अदृश्य हो गये और वाहिय भगवान् बुद्धदेवके दर्शनार्थ सुप्पारक तीर्थसे चल पड़े।

X X X X

वाहिय जेतवन पहुँचे। वे सुप्पारक तीर्थसे यहाँतक अनवरत ल्पसे चलते आये थे। यात्राके बीच इन्होंने केवल एक रात्रि विश्राम किया था। इनके नेत्रोंमें सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् बुद्ध जैसे समा गये थे। उन्होंके दर्शनार्थ उक्त पवित्र तीर्थको त्यागकर वे क्रुतगतिसे चल पड़े थे। जेतवनकी पावन भूमि और वहाँके सबन वृक्षोंको देखकर उन्हें अपूर्व शान्ति मिली। उन्हे लगा, जैसे जेतवनकी तर-ल्ता-बल्लरियों ही नहीं, वहाँका प्रत्येक कण निर्वाण प्राप्त कर चुका है। वे अद्वा-विमोर हो गये। उस समय वहाँ कितने ही भिक्षु इधर-उधर टहल रहे थे।

'मन्ते ! एक भिक्षुके समीप जाकर उन्होंने विनीत वाणीमें पूछा; मैं अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान्के दर्शनार्थ सुप्पारक तीर्थसे चलकर आया हूँ। इस समय वे कहाँ विहार कर रहे हैं ?'

'वाहिय ! भिक्षुने उत्तर दिया, 'आप कुछ देर यहाँ विश्राम करें। भगवान् पिण्डपातके लिये इस समय गौवमें गये हैं।'

'मैं भगवान्के दर्शन विना एक क्षण भी विश्राम नहीं करना चाहता। उन्होंने भिक्षुको उत्तर दिया। 'मैं अभी भगवान्के समीप जाऊँगा।'

और भिक्षुके बताये गौवकी ओर वे चल पड़े।

X X X X

वाहिय जेतवनसे दौड़ पड़े थे। उनके पैरोंमें जैसे पत्त उग आये थे। तथागतके दर्शन विना वे अधीरसे हो रहे थे। श्रावस्तीमें पहुँचकर उन्होंने भगवान्को देखा, भगवान् भिक्षापात्र लिये एक साधारण परिवारकी देहरीपर लड़े थे। भगवान्का भुवन-मोहन सौन्दर्य एवं उनकी आकृतिपर कीड़ा करती हुई दिव्य ज्योति देखकर वाहिय चकित हो गये। अत्यन्त संयमी अत्यन्त जान्त एवं शमथ-दमथको प्राप्त प्रभुको देखकर वाहिय उनके चरणोंमें दण्डकी भाँति पड़ गये। अपने हाथोंमें उन्होंने भगवान्के पद-पद्मोंको पकड़ लिया और नेत्रोंसे प्रबाहित अनवरत वारिधारासे वे बहुत देरतक उनका प्रश्नालिङ्क करते रहे।

'मन्ते !' कुछ देर बाद स्वस्य होकर उन्होंने अत्यन्त श्रद्धागूरित नम्र वाणीमें निवेदन किया, 'भगवान् मुझे धर्मोपदेश करें, जिससे मुझे चिरकालिक अक्षय सुख-शान्तिकी प्राप्ति हो। उगत कृपापूर्वक मुझे धर्मोपदेश करें।'

'वाहिय !' भगवान् ने अत्यन्त जान्तिपूर्वक कहा, 'मैं भिक्षाटनके लिये निकला हूँ। यह समय धर्मोपदेशके उपयुक्त नहीं।'

'मन्ते !' वाहियने तुरंत निवेदन किया—'जीवन अत्यन्त अस्थिर है। पता नहीं अगले क्षण भगवान् या मैं ही रह सकूँगा या नहीं। अतएव भगवान् मुझे वह उपदेश करें, जिससे मुझे चिरकालिक अक्षय सुख-शान्ति उपलब्ध हो। भगवान् मुझे शीघ्र उपदेश करें।'

'वाहिय !' दूसरी बार भी भगवान् ने अत्यन्त शान्तिसे उत्तर दिया, 'मैं भिक्षार्थ गौवमें हूँ। गृहस्थ-परिवारकी देहरीपर लड़े हो भिक्षापात्रमें भिक्षा लेनेकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। धर्मोपदेशके लिये यह उचित समय नहीं।'

'मन्ते !' वाहियने तीसरी बार पुनः अनुरोध किया, 'जीवनका ठिकाना नहीं। आम-पल्लवकी नोकपर लट्के जल-सीकरका ठिकाना है, पर जीवनके सम्बन्धमें यह भी निश्चय नहीं। अगले क्षण भगवान् या मैं ही रह पाऊँगा या नहीं, कुछ भी निश्चित नहीं। अतएव जिससे मुझे चिरकालिक अक्षय सुख-शान्तिकी उपलब्धि हो, इस भवाणवसे मैं सदाके लिये मुक्ति प्राप्त कर दूँ, भगवान् मुझे बैसा ही उपदेश दें।'

'अच्छा, वाहिय !' भगवान् उसी अवस्थामें गृहस्थकी

* लोकोत्तर प्रशान्तिमुक्ति और चेतोविमुक्तिकाले उत्तम शमथ और दमथको जो प्राप्त कर चुके हैं। (अट्ठकथा)

देहरीनर अपना रिक्त पात्र लिये अत्यन्त शान्त न्वर्गमें बोले, “तुम्हें अभ्यास करना चाहिये, तुम्हें देखनेमें केवल देखना ही चाहिये, तुमनेमें केवल सुनना ही चाहिये। सैंचने, चरने और सर्व करनेमें केवल सैंचना, चरना, स्वर्य ही रुक्ना चाहिये। जाननेमें केवल जानना ही चाहिये। बाहिर! यदि तुमने ऐसा सीधे लिया अर्थात् देखकर, सैंकर, चरकर, सर्वकर और जानकर उसमें जित नहीं हो सके, आसक्ति तुम्हें न्यून नहीं कर सकी, तो तुम्हारे दुखोंना अब्द हो जायगा। जागिन्त्र आसक्ति ही जातमें आवश्यक रुक्नेवाली है एव इससे ब्राग पाना ही निर्णय है।”

“मन्त्र !” बाहिय पुन भगवान्के चरणोंम गिर पड़े। उन्होंने अनुमय किया भगवान्के उपदेशमात्रसे उनका चिन उपादान (प्राप्तिक जगतकी आशक्ति) से रहित तथा आपको तुल्य हो गया। वे बोले—“मैं आपसा आजीवन मृणी रहेंगा। भगवान्से मुझे मुकिके मूल-नन्दका साक्षात्कार करु दिया।

भगव इस्तरं साय नगगन् भिक्षाटनके लिये आगे बढ़े। बाहिन उनकी ओर लक्ष्यमें अपनक नेत्रोंसे तवनक देखते हैं जरतस वे दृष्टिसे ओङ्क नहीं हो गये।

X X X X

“मन्त्र !” एक भिक्षुने दौड़कर भिक्षाटनसे नगरके बाहर लैटते हुए भगवान्से बहा। वह झाँक नहा था। आगे वह नहीं बोल पाया।

“क्या बात है ? भगवान्ने प्रदन किया।

“मन्त्र !” कुछ क्षिय होकर उसने निवेदन किया—“भगवान्के धर्मोपदेशके अनन्त लैटते हुए, बाहियने एक

सौँइने अपने सींगोंपर उद्याकर जोरमे पटक दिया। बाहियका एहिक जीवन तत्काल समाप्त हो गया। उनका श्रव बुद्ध ही दूरपर पड़ा है।”

भगवान् उठे और दौड़ पड़े। उन्होंने बाहियके शब्दों देखकर एक बुद्ध हुए भिक्षुओंसे कहा—“भिक्षुओ ! यह तुम्हारा एक सब्रह्मचारी (गुरुभाई) था। इसकी निर्जीव देहकी रथी यनामर अग्निमें जला दो और इसके भस्मोंपर स्तूप निर्मित कर दो।

“जैसी आजा !” भिक्षुओंने उत्तर दिया और बाहियके शब्दों अन्तिम सन्दर्भमें लग गये।

X X X X

“मन्त्र !” भगवान्के चरणोंके सर्वोप वैष्णव भिक्षुओंसे एकने चिनप्र निवेदन किया। “भगवान्के आदेशानुसार बाहियकी निर्जीव देह प्रज्ञालिन अग्निमें भस्स कर दी गयी। उनके भस्मोंपर न्यूप उठवा दिया गया।”

तुल्य क्षण रुक्न उसी भिक्षुने पुन निवेदन किया—“भगवान्से हमनेग जानना चाहते हैं कि बाहियकी क्या गति होगी।”

अत्यन्त शान्त एव गम्भीर बार्गामें उन्होंने धीरे-धीरे उत्तर दिया, “भिक्षुओ ! जग कीणाश्रव भिक्षु आन्म-साक्षात्कार कर लेना है, तर वह न्य-प्रन्त तथा सुख-दुःखसे छूट जाता है। बाहियने मेरे बनाये धर्मापदेशको धीरसे ग्रहण कर लिया था, वह निर्णयके मार्गपर आँख हो गया था।”

भिक्षुओंसी आकृतिपर हर्ष नृत्य कर उठा। भगवान् मौन हो गये। धीरतल-मन्द सर्व भगवान्के चरणोंका स्वर्य करके प्रभन्नतामें नृत्य करने लगा। —गि० दु०

कोई घर भी मौतमें नहीं बचा

किसा गौतमीना प्याग इकलौता पुत्र मर गया। उसने यहुत बड़ा ओङ्क हुआ। वह पगली-री हो गयी और पुत्रकी व्यवहारों द्वारा सुनिए चिपटाकर “फोड़ दवा दो, कोई मेरे वन्वेष्टों अच्छा कर दो” चिह्नानी हुई हवन-उधर दौड़ने लगी। लोगोंने यहुत भुमजाया परंतु उसकी भुमझमें बुद्ध नहीं आया। उसकी बड़ी ही दयनीय स्थिति देखकर एक सत्रनने उसे भगवान् बुद्धके पास यह कहकर भेज दिया कि “तुम मामनेके विहारमें भगवान्के पास जाकर दवा माँगो, वे निश्चय ही तुम्हारा दुःख मिया देंगे।”

किसा दौड़ी हुई गयी और वन्वेष्टों किगनेके लिये भगवान् बुद्धसे रोनोकर प्रार्थना करने लगी।

भगवान्ने कहा—“वहा अच्छा किया, तुम यहाँ आ गयी। वन्वेष्टों म जिना दूँगा। तुम गौवमें जाकर, जिसके धरमें आजनक कोउं भी मग न हो, उसे बुद्ध सरसोंके दाने माँग लाओ।”

किसा वन्वेष्टी लावको छारीसे चिपकाये दौड़ी और लोगोंसे सरसोंके दाने माँगने लगी जब किसीने देना चाहा,

तब उसने कहा— तुम्हारे घरमें आजतक कोई मरा तो नहीं है न? मुझे उसीसे सरमों लेनी है, जिसके घरमें कभी कोई मरा न हो।' उसकी इस बातको सुनकर घरवाले बहा—‘मला, ऐसा भी कोई घर होगा जिसमें कोई मरा न हो—मनुष्य तो हर घरमें मरते ही हैं।'

वह श्रव्यर फिरी, पर सभी जगह एक ही जवाब मिला: नव उसकी समझमें आया कि मरना तो हर घरका रिवाज है। जो जन्मता है, वह मरना ही है। मृत्यु किसी भी उपायसे टलती नहीं। टलती होती तो क्यों कोई अपने आरोग्यको मरने देता? एक घरमें ही नहीं—जगतभरमें सभी

जगह मृत्युका विस्तार है। वह, जब यह बात ठीक-ठीक समझमें आ गयी, तब उसने बच्चेकी लाभको ले जाकर झगड़ानमें गाड़ दिया और लौटकर भगवान् द्वारसे भारी बात कह दी। भगवान् ने उसे फिर समझाया कि ‘देखो—यहाँ जो जन्म लेता है, उसे मरना ही पड़ेगा। यही नियम है। जैसे हमारे घरके मरते हैं, वैसे ही हम भी मर जाएँगे। इनलिये मृत्युका जोर न करके उस स्थितिकी खोज करनी चाहिये, जिसमें पहुँच जानेपर जन्म दी न हो। जन्म न होगा तो मृत्यु आप ही मिट जायगी। वह उमझदार आदमीको यही करना चाहिये।’

सच्चा साधु

भगवान् द्वादशका एक पूर्ण नामक शिष्य उनके नमीप एक छिन आया और उसने तथागतसे धर्मोपदेश प्राप्त करके ‘सुनापरत’ प्रान्तमें धर्मप्रचारके लिये जानेकी आशा मौगी। तथागतने कहा—‘उम प्रान्तके लंग तो अत्यन्त कठोर तथा बहुत क्रूर है। वे तुम्हें गाली देंगे, तुम्हारी निन्दा करेंगे, तो तुम्हें कैसा लगेगा?’

पूर्ण—‘भगवन्! मे समझूँगा कि वे बहुत भल लोग हैं क्योंकि वे मुझे थप्पड़-बूसे नहीं मारते।’

द्वाद—‘यदि वे तुम्हें थप्पड़-बूसे मारने लगे तो?’

पूर्ण—‘मुझे पत्थर या डड़से नहीं पीछता, इससे मे उन्हें नुस्खरुप मारूँगा।’

द्वाद—‘वे पत्थर-डडोसे भी पीट सकते हैं।’

पूर्ण—‘वे गत्तेप्रहार नहीं करते. इससे वे दयालु हैं—ऐसा मारूँगा।’

द्वाद—‘यदि वे शत्रु-प्रहार ही करें?’

पूर्ण—‘मुझे वे मार नहीं डालते, इससे मुझे उनकी कृपा दीखेगी।’

द्वाद—‘ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वे तुम्हारे वध नहीं करेंगे।’

पूर्ण—‘भगवन्! यह नसार दुखरूप है। यह शरीर नेंगोंका घर है। आत्मघात पाय है, इसलिये जीवन धारण करना पड़ता है। यदि ‘सुनापरत’ (सीमाप्रान्त) के लोग मुझे मार डाले तो मुझपर वे उत्तरार ही करेंगे। वे लोग बहुत अच्छे सिद्ध होंगे।’

भगवान् द्वाद प्रसन्न होकर बोले—‘पूर्ण! जो किसी दशामें किसीको भी दोषी नहीं देखता, वही सच्चा साधु है। तुम अब चाहे जहों जा सकते हो, धर्म सर्वत्र तुम्हारी रक्षा करेगा।’—सु० सिं०

समझौता

ग्रीष्मकी भयकर ज्वालासे प्राणिमात्र सतत थे। सरोकरों, नालों और वावलियोंका जल सूख गया था, बृक्ष तपन-से ढन्ध थे, जीव-जन्म आङ्कुल थे। कमिलवस्तु और कोलिय नगरकीं भीमा, रोहिणी नढ़ी जेठ भासके प्रकोपसे सिमटकर अत्यन्त श्रीणकाय हो गयी थी। घरती इन्डकीं कृपा—जल-वृष्टिसे बच्चित थी। ऐसी स्थितिमें एक दिन अचानक रोहिणीके तटपर जाकर्यों और कोलियोंमें रोहिणीके पानीके उपयोगपर विवाद छिड़ गया।

सरितामें पानी कम रह गया है। केवल हमारी खेतीके ही लिये इतना पानी पर्याप्त है। बॉथके द्वारा पानी दो भागोंमें बट जानेसे हम दोनोंकी खेती सूख जायगी। शाक्य मजदूरों (कर्मकरों) ने कहा।

‘यही स्थिति हमारी भी है; हमों पानीका उपयोग कर लेंगे तो हानिकी क्या बात है?’ कोलियोंने अपना पछ दृढ़ किया।

कलह बढ़ गया। यह बात दोनों राजकुलोंमें पहुँच

गयी । तनातनी बढ़ गयी । दोनों एक दूरेरें प्रागेंके अनु दो नरे । देशभी आग प्रज्वलित हो उठी ।

‘किन चातना कलह है, महाराजो ॥’ भगवान् बुद्ध उस उमय निमिलचन्तुमें ही रोहिणीके तटर चारिका कर रहे थे । प्रात तालका समय या । दोनों ओरें सैनिकोंने चात्र अन्य रस्तर तथागतकी बन्दना की । वे कन्दका चाण नहीं बता सके ।

‘गोहिर्गे के पार्निका झगड़ा है, भन्ते ॥’ दोनों ओरेंके मजदूरोंने भगवान्‌रे प्रबन्धा सम्मिलित उत्तर दिया ।

‘उद्धों (पानी) का क्या मूल्य है, महाराजो ॥’ भगवान्‌ने दोनों ओरेंके सैनिकों और सैनिकों तथा मजदूरोंसे प्रबन्ध किया ।

‘कुछ भी नहीं है, भन्ते । पानी विना मूल्यके हीं प्रत्येक स्वानं आनानीसे मिल जाता है ॥’ शाक्तों और कोलियोंको

अपनी करनीपर पश्चात्तान हुआ । उन्होंने दृष्टि नत कर ली ।

‘शत्रियों (सैनिकों) का क्या मूल्य है, महाराजो ॥’ भगवान् तथागतके इस प्रबन्धसे लोग अत्यन्त लजित हुए ।

‘शत्रियोंका मूल्य लगाया हीं नहीं जा सकता; भन्ते । वे निनान्त अनमोल हैं ॥’ दोनों पक्षोंने अपनी भूल स्वीकार की ।

‘अनमोल शत्रियोंका लूप सागरण उदकके लिये वहाना क्या उचित है महाराजो ॥’ प्रबन्ध था ।

‘नहीं; भन्ते । हमें प्रकाश मिल गया । समझौतेका पथ प्राप्त हो गया ॥’ उन्होंने सुगतकी चरण-बन्दना की ।

‘शत्रुओंमें अद्यत्र होकर जीना गम सुस है । वैरियोंमें अर्वगी होकर रहना चाहिये । भगवान् बुद्धने अपनी शालमयी वाणिसे लोगोंको आनंदित किया ।

समझौता हो गया शाक्तों और कोलियोंमें ।—रा० श्री० (उद्घार्यां)

सच्चे सुखका वोध

उसके केश और बछर भीगे हुए थे । मुन्दपर वडी उदासी पौर भनमें अन्यन्त प्रियता थी । उसके नेत्रोंमें जिजानाका चित्र या और होड़ोपर कोई अत्यन्त निरूप प्रबन्ध था ।

‘तुम्हारी ऐसी असाधारणी स्थितिरे आश्रय होता है ॥’ भगवान् बुद्धने सूगरमाना विश्वासासे पूछा । वह अभिग्रहन रखे उनके निच्छ वैठ गयी ।

‘इसमें आश्रयस्तीक्ष्ण ब्रात है, भन्ते । मेरे पौत्रका देहानन हो गया है, डसलिये सूनके प्रति यह शोक-आचरण है ॥’ विश्वासाने भगवान्‌के चरणोंमें निवेदन किया, वह म्वस्य दीन्य पही ।

‘विश्वास ! श्रावस्तीमें इस समय जिनने मनुष्य है, तुम उनके पुनर्पौत्रकी इच्छा करती हो ?’ भगवान्‌के प्रसन्नसे आवस्तीने ‘पूर्वांगम विहारका दण-कण चकित हो उठा ।

‘हो, भन्ते । विश्वासाका उत्तर था ।

‘श्रावस्तीमें नित्य कितने मनुष्य मरते होंगे ॥’ तथा गतना दृढ़रा प्रबन्ध था ।

‘प्रतिदिन कम-सेकम दस मरते हैं । किसी-किसी दिन तो मर्या एकनश्च हीं सीमित रहती है । पर कमी नाश नहीं हो पाता । विश्वासा इस प्रसारके प्रबन्धोत्तरसे विस्तित थी ।

‘नो क्या किसी दिन विना भीगे केश और बछरके भी तुम यह सकती हो ?’ शाक्त्यमुनिका तीमरा प्रबन्ध था ।

‘नहीं, भन्ते । केवल उस दिन भीगे केश और भीगे बछरकी आवश्यकता है, जिस दिन मेरे पुनर्पौत्रका देहानन होगा ॥’ विश्वासाका अङ्ग-प्रन्थङ्ग रोमाद्वित हो उठा ।

‘इसलिये यह स्थृ हो गया कि जिसके सौ प्रिय—अपने (सम्बन्धी) हैं, सौ दुख होते हैं उसे, जिसका एक प्रिय—अपना होता है, उसे केवल एक दुख होता है । जिसका एक भी प्रिय—अपना नहीं है, उसके लिये जगत्में कहीं भी दुख नहीं है, वह सुखका वोर पाता हैं सुखस्वरूप हो जाता है ॥’ भगवान्‌से दृढ़व्य सुखका विवेचन किया ।

‘मैं भूलमें थी, भन्ते । मुझे आनंदकाश मिल गया ॥’ विश्वासाने जालानी प्रसन्नता प्राप्त की ।

‘जगत्में सुखी होनेका एकमात्र उपाय यह है कि किसीको भी प्रिय (अपना) न माने, समता न करे अद्योक और विरज (रागरहित) होना चाहे तो कहीं भी सम्बन्ध न स्वीकार करे ॥ तथागतने धर्मकथासे विश्वासाको समुत्तेजित (जाग्रत्) किया । उसने सच्चे सुखका वोध पाया ।

—रा० श्री० (मुद्घचर्या)

गाली कहाँ जायगी ?

भारद्वाज नामका एक ब्राह्मण भगवान् बुद्धसे दीक्षा लेकर भिसु हो गया था। उसका एक सम्बन्धी इससे अत्यन्त क्षुब्ध होकर तथागतके समीप पहुँचा और उन्हे अपशब्द कहने लगा। बुद्धदेव तो देव ही ठहरे, देवताके समान ही वे शान्त और मौन बने रहे। ब्राह्मण अन्ततः अकेला कहाँतक गाली देता, वह थककर चुप हो गया। अब तथागतने पूछा—‘क्यों भाई ! तुम्हारे घर कभी अतिथि आते हैं ?’

‘आते तो हैं।’ ब्राह्मणने उत्तर दिया।

‘तुम उनका सत्कार करते हो ?’ बुद्धने पूछा।

ब्राह्मण खीझकर बोला—‘अतिथिका सत्कार कौन मूर्ख नहीं करेगा।’

तथागत बोले—‘मान लो कि तुम्हारी अर्पित वस्तुएँ अतिथि स्वीकार न करे तो वे कहाँ जायेंगी ?’

ब्राह्मणने फिर झुँझलाकर कहा—‘वे जायेंगी कहाँ, अतिथि उन्हें नहों लेगा तो वे मेरे पास रहेंगी।’

‘तो भद्र !’ बुद्धने शान्तिसे कहा—‘तुम्हारी दी हुई गालियों मैं स्वीकार नहीं करता। अब यह गाली कहाँ जायगी ? किसके पास रहेगी ?’

ब्राह्मणका मस्तक लज्जासे छुक गया। उसने भगवान् बुद्धसे धमा माँगी। —सु० मि०



आकर्षण

‘भगवान् बुद्धदेवकी जय !’

गगन-मण्डल गूँज उठा तथागतके नामधोषसे। कितने दिनों बाद कपिलवस्तुके प्राणप्रिय नरेज शुद्धोदनके पुत्र सिद्धार्थ राजधानीमें पधार रहे हैं। समस्त प्रजा हर्षोत्कुल है। सिद्धार्थ आज बालक सिद्धार्थ नहीं हैं। उन्हें जगत्का मिथ्यात्व-नो व हो गया है। जान उन्होंने प्राप्त कर लिया है, मोक्ष उनके करतलगत है और अखण्ड शान्ति उनका साथ नहीं छोड़ती। पृथ्वीको सुख-शान्ति वितरित करते हुए एक गर यहों पधारनेका उन्होंने कष्ट स्वीकार किया है। नगरकी प्रत्येक देहरीपर आम्र-पल्लवके तोरण वैध है। विविध सुगन्धित पुष्पोंकी मालाएँ टैगी हैं। राजमार्ग और समस्त पथ प्रशस्त हो गये हैं। उनपर जल-सिञ्चन हो गया है और सर्वत्र ही विखरी पुष्परागि दीख रही है। भगवान् अपने सुरोमल चरण धीरे-धीरे रखते हुए आ रहे थे।

उनके पीछे विशाल जनसुद लहरा रहा था। मार्गके दोनों ओर छतोपर चिन्हों मङ्गल-गानके द्वारा उनकी स्तुति करती हुई उनपर पुष्प-नृष्टि कर रही थीं और अपलक नेत्रों-में उनके दर्जन कर रही थीं। आज कपिलवस्तुकी प्रजा धन्य हो गयी थी, आज उसका जीवन सफल हो गया था, वह कृतार्थ हो गयी थी जो अपने भगवान्की दिव्यमूर्तिके प्रत्यक्ष दर्जन कर रही थी। आज कपिलवस्तुके समस्त प्राणी अपनी चिन्ता, शोक और विषाद सदाके लिये भूल

गये हैं। उनके सामने आनन्दको मुक्तहस्तसे वितरित करने-वाले देवता जो आ गये हैं।

‘मैं धन्य हो गया।’ सिद्धार्थके वैमात्रेय भ्राता नन्द नगे पैरों दौड़े आये थे और तथागतके चरणोंमें दण्डकी भौति पड़ गये। उनके नेत्रोंसे बहती अनवरत वारिधाराएँ बुद्धदेवके युगल पठ-पद्मोंका प्रश्नालन करने लगीं। उनका हृदय गद्गद और वाणी अवश्य हो गयी थी। इच्छा होनेपर भी वे बोल नहीं पा रहे थे।

‘प्रिय नन्द !’ बुद्धदेवने नन्दको उठाकर अङ्कसे कस लिया। उनकी विमाता मायादेवी और यह उनका भाई उन्हें कितना प्रिय था, वे कैसे बताते। पर आज तो जगतीका प्रत्येक जीव उनके लिये प्राणाधिक प्रिय हो गया था। वे नन्दके सिरपर हाथ फेर रहे थे। नन्दके नेत्र अब भी अशुर्वार्पा कर रहे थे। बड़ी कठिनाईसे नन्दने कहा—‘आज कपिलवस्तु और उसकी प्रजा धन्य हो गयी। आप-जैसे भाईरु पाकर मेरा जीवन परम पावन बन जाय, इसमें तो कहना ही क्या। आपके अवतरित होनेसे समस्त मेदिनी पुनीत हो गयी। जगत्के पाप-ताप दूर भाग गये। पृथ्वीका भार हल्का हो गया। आज वह पुलकिता...’

नन्द आगे नहीं बोल सके। एक अत्यन्त सुमधुर सित-के साथ बुद्धदेवने उन्हें अपने अङ्कमें पुनः कस लिया और उधर ग्रेमोन्मत्त असरव्य जन-कण्ठोंने उच्चशोष किया—‘भगवान् बुद्धदेवकी जय !’

‘भगवान् बुद्धेवकी जय ।’ नन्दके मुखसे स्वतं निकल गया । उनके नेत्रोंसे प्रैमाश्रु बहते ही जा रहे थे ।

‘बुद्धं शरण गच्छामि ।’

‘धर्म शरण गच्छामि ।’

‘सध शरण गच्छामि ।’

नन्द वास्तवार उच्चारण करते । वौधिसत्त्वके चरणोंका ध्यान एवं उनके उपदेशके प्रतिक्षण मनन करते । ‘जगत्‌री प्रत्येक प्रिय और मनोरम वस्तुका विद्योह होगा । वे छूटेंगी ही । उनका नाश निश्चित है ।’ वौधिसत्त्वकी इस वाणीने उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न कर दिया था । मुक्ति-प्राप्तिके लिये वे प्राणपूर्णे प्रयत्न कर रहे थे । उनकी प्रत्येक क्रिया मुक्तिके लिये ही हो रही थी ।

मित्र जिस प्रकार सधन जल्द-मालके शीत सौदामनी कौंधकर क्षणाद्वारेके लिये धनान्धरारको समाप्त कर देती है, सर्वत्र प्रकाश ढा जाता है, उसी प्रकार नन्दके मस्तिष्कमें एक ऐसी स्मृति उदित हो जाती, जिसके कारण वे क्षणभर-के लिये सहम जाते, उनका सारा प्रयत्न जैसे शिथिल हो जाता । मुक्तिके सम्पूर्ण प्रयत्नपर जैसे पानी फिर जाता ।

‘प्रिय ! शीघ्र लौटना ।’ नागिन-जैसे अपने कृष्ण केशोंको फैलाये चन्द्रमुखी शक्यानी जनपद-क्षण्याणीने अत्यन्त करुण स्वरमें रहा था । उसकी चम्पकलता-सी कोमल काया कँप रही थी और कमल-सरीखे नेत्रोंसे ऑस्कूकी गोल-गोल बड़ी-बड़ी बूँदें लुढ़क रही थीं । नन्दने अपनी प्राणप्रियाके इस रूपको तिरछे नेत्रोंसे एक बार, केवल एक ही बार देखा था, पर उसकी वह करुणमूर्ति वरवस न चाहनेपर भी नन्दके हृदय-मन्दिरमें प्रवेश कर गयी थी—तुपकेसे नेत्रोंमें वस गयी थी ।

पर नन्दने वौधिसत्त्वके तेजस्वी रूपका दर्शन कर लिया था, उनका अमृतमय उपदेश सुन लिया था । ससारकी असारता तथागतके शब्दोंमें अब भी उनके कानोंमें झङ्कृत हो रही थी, फिर वे क्रिस प्रकार पीछे पग रखते । वे बढ़े—बढ़ते गये तथागतके चरणोंमें । जीवमात्रको मुक्तिका मार्ग वतानेके लिये जग भगवान्ने घरित्रीपर पग रखा था, तब नन्दको वे क्यों नहीं दीक्षित करते ?

नन्द विशुद्ध अन्तर्मनसे ब्रह्मचर्यका पालन कर रहे थे । किंतु प्रात्-साय-मध्याह्न या नीरव निशीथमें जब वे एकाकी ‘बुद्धं शरण गच्छामि ।’की आवृत्ति करते होते, तब अचानक

शक्यानी जनपद-क्षण्याणीकी करुणमूर्ति नेत्रोंके सामने आ जाती । उसकी बटी-बड़ी ऑस्कूकी बूँदोंकी स्मृतिसे वे सिहर उठते और उसी समय उन्हें कोकिल-कण्ठका अनुनय सुनायी देता—‘प्रिय ! शीघ्र लौटना ।’

नन्द आकुल हो जाते । उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी । सुविस्तृत मार्गपर वे अपने पग उढ़तासे बढ़ते जायेंगे, इसकी आशा उनके मनसे तिरोहित-सी होती चली जा रही थी ।

‘आहुम् !’ अन्ततः अधीर नन्दने अपने मनकी बात एक भिक्षुपर प्रकट कर दी । ‘मेरा साधन शिथिल होता जा रहा है । ब्रह्मचर्यका पालन सुझसे सम्भव नहीं । मैं इन ब्रत-को त्यागकर पुनः गार्हस्थ्य-जीवनमें लौट जानेका विचार कर रहा हूँ ।’

‘सत्य कहते हो, नन्द !’ भिक्षुने आश्र्वर्यचकित हो पूछा और नन्दकी ओर देखने लगा ।

‘आहुस् !’ नन्दने अवनत-वदन उत्तर दे दिया । ‘मैं सत्य कहता हूँ । पलीकी स्मृति मुझे विकल कर रही है ।’

नन्द चकित थे । उन्होंने ऐसे-ऐसे विस्तृत और रमणीय प्रापाद कभी नहीं देखे थे । मणिमय भित्तियाँ और स्वर्णके दीपिमय केंचे कलश देखकर भन लुच्च हो जाता था । विस्तीर्ण पथ, उपवन और जिस ओर भी दृष्टि जाती, वहीं रुक जाती । नन्दने पूछा—‘मन्ते ! हम कहाँ हैं ?’

‘यह देवलोक है ।’ तथागतने उत्तर दिया और आगे बढ़ गये ।

‘मन्ते ! ऐसा रूप-लावण्य तो मैंने कभी देखा नहीं ।’ नन्दके आश्र्वर्यकी सीमा नहीं थी । अपने नेत्रोंसे उन्होंने जो कभी नहीं देखा और जो कभी सुननेको भी नहीं मिला और मनने जिसकी कभी कल्पनातक नहीं की, वह सब यहाँ दीख रहा था । वे परम विसित थे । शक्यानी जनपद-क्षण्याणी तथा पृथ्वीकी सर्वोत्तम सुन्दरी तो इन लावण्यवतीयोंके सम्मुख पुच्छहीना कुत्सिता कानी कुतियासे भी अत्यधिक कुरुपा और उपेक्षणीय हैं । ‘ये देवियों कौन हैं ?’ पूछ लिया उन्होंने ।

‘ये अप्सराएँ हैं । देवाधिपति शक्की सेवामें उपस्थित हुई हैं ये ।’ वौधिसत्त्वने मुस्कराते हुए कहा । ‘एक बात पूछूँ, वताओगे ?’

‘अवश्य वताऊँगा ।’ नन्दकी दृष्टि अप्सराओंकी ओर थी । ‘आपसे क्या गोप्य है ?’

‘भूलोककी सुन्दरियों इनकी तुलनामें ।’
 ‘कुछ भी नहीं ।’ तथागतका प्रश्न पूरा हुए बिना ही
 नन्दने उत्तर दे दिया । ‘महाकुरुपा हैं वे इनके सामने ।’
 ‘जनपटकल्याणी ।’ तथागतने पुनः पूछा ।

‘वह भी ।’ नन्दने बल टेकर कहा । ‘इस मौन्दर्यकी
 तुलना जगतमें कहों, प्रभो ।’

‘मैं इन पॉच सौ रूपसियोंको तुम्हें दिला दूँगा ।’ तथागतने
 कहा । ‘मेरे वचनपर विश्वास करके तुम ब्रह्मचर्यका पालन करो ।’

‘भन्ते । मैं अवश्य ब्रह्मचर्य-ब्रतका पालन करूँगा ।’
 अत्यन्त उत्साहसे नन्दने उत्तर दिया । ‘आपके वचनका
 विश्वास धरातलका कौन प्राणी नहीं करेगा ।’

नन्दने देखा, वे भगवान्‌के साथ पुनः जेतवनमें आ
 गये हैं । देवलोक अलक्षित हो गया ।

‘पॉच सौ रूपसियोंके लोभसे नन्द ब्रह्मचर्यका पालन
 कर रहे हैं ।’ तीक्ष्ण शूल-जैसी कटूकियोंकी नन्द चिन्ता
 नहीं करते । उन्हें तो दृढ़ विश्वास था भगवान्‌के वचनका ।
 निश्चय ही पॉच सौ अलौकिक लावण्यवतियों सुलभ हो
 जायेंगी । वे दत्तचित्त हो ब्रह्मचर्य-ब्रतका पालन करते जा
 रहे थे ।

विशुद्ध निष्ठा और आत्मसंयमसे वे ब्रतमें लगे रहे । कुछ
 ही समय बाद उन्हें वह प्राप्त हो गया, जिसके लिये प्रवृत्ति
 हुआ जाता है । उनका ब्रत सफल हो गया । ममताका
 वन्धन छिन्न हो गया । इसके बाद कुछ करना शेष नहीं

है । इसे उन्होंने जान लिया । तत्त्वका उन्होंने साक्षात्कार
 कर लिया ।

प्रत्यूप वेला । शीतल पवन मन्थर गतिसे वह रहा था ।
 मर्वंत्र शान्तिका एकाधिप साम्राज्य था । भगवान् शान्त बैठे थे ।

‘भन्ते ।’ नन्दने अभिवादन करनेके पश्चात् कहा,
 ‘जिन पॉच सौ असराओंको मुझे दिलानेका आपने वचन
 दिया था, अब मुझे उनकी आवश्यकता नहीं रह गयी ।’

‘नन्द ।’ बुद्धदेवने वेमी ही शान्तिसे कहा, ‘मुझे विदित;
 हो गया है कि नन्द यहांपर चेतोविमुक्ति, प्रजा-विमुक्तिको
 जान, उनका साक्षात्कार कर चुका है । तुम्हें प्राप्तिक जगत्-
 से मुक्ति मिलते ही मैं अपने वचन-पालनके दायित्वसे मुक्त
 हो गया ।’

कुछ रुककर भगवान्‌ने पुनः धीरे-धीरे कहा—‘काम
 जिन्हें स्पर्श नहीं कर पाता, ममता-पाशमें जो धृंध नहीं पाता
 और सुख-दुःखसे जो प्रभावित नहीं होता, वही सच्चा भिक्षु है ।’

‘भन्ते ! जगत्का आकर्षण मेरे मनसे सर्वथा समाप्त
 हो गया ।’ सीस छुकाकर आशुष्मान् नन्दने निवेदन किया ।
 ‘अब तो मेरे मनमें तीव्रतम आकर्षण है केवल आपके
 पद-पद्मोंमें ।’

तथागत मौन तथा जान्त थे । उनकी आकृतिसे तेज
 छिटक रहा था । नन्द मन-ही-मन आवृत्ति कर रहे थे—‘बुद्ध
 शरण गच्छामि । धर्म शरण गच्छामि । सघ शरण ।’
 —शि० दु०

आत्मकल्याण

‘आत्मकल्याणके अधिकारी पापी, पुण्यात्मा सब हैं ।
 अपने उद्वासकी बात प्रत्येक प्राणी सोच सकता है ।’
 अम्बपालीके मनमें आशाका सचार हुआ ।

‘यान प्रस्तुत है, देवि !’ शूद्धारदासीने वैगालीकी सर्व-
 सुन्दरी गणिकाका ध्यान आकृष्ट किया । वह रथपर बैठकर
 भगवान् बुद्धका दर्जन करने चल पड़ी । शास्त्र उसीके
 अम्बपाली-बनमें भिक्षुओंके साथ विहार करते थे ।

‘जिस यानपर बैठकर मैं राग-रग और आमोद-प्रमोद
 आदिमें समयका दुरुपयोग करती थी, उसीपर बैठकर
 शास्त्रासे धर्मकथा सुनने जा रही हूँ । कितना महान् सौभाग्य
 है मेरा !’ इवेत-परिधान-धारिणी अम्बपालीके मनमें अनेक
 सात्त्विक भावोंका उदय हो रहा था । उसके शरीरपर एक

भी अलकार नहीं था, रथ वेगके साथ चला जा रहा था ।
 राजपथकी शूल्य निर्जनता ही अपर्युद्ध द्वद्योपर शासन करने-
 वाली अम्बपालीकी सङ्ग्रहीनी थी ।

वनके निकट पहुँचकर उसने रथ रोकनेका आदेश
 दिया । वह उत्तर पड़ी । नगे पॉच पैदल चलकर उसने
 शास्त्राका अभिवादन किया । निकट बैठ गयी । भगवान्
 बुद्धने उसको धर्मकथासे समुत्तेजित किया । उसका जीवन
 बदल गया, वह मूर्तिमती विरति-सी दीख पड़ी ।

‘भगवान् भिक्षुओंसमेत कल मेरा भोजन (भात)
 स्वीकार करें ।’ अम्बपालीके निवेदनको तथागतने मौनसे
 स्वीकार किया ।

अम्रपाली अपने प्रामाण्डकी ओर लौट रही थी। उसने देखा कि अनेक रथ नगरसे चंचली ओर आ रहे हैं। उनसे लिंगवी युवक लाल पीले नीले हरे और रेत परिधानसे समलूक होकर तथागतका स्वागत करने जा रहे थे।

‘इतनी प्रगन्नता क्यों है, अम्रपाली?’ लिंगवीयोंने राजपथपर रथ रोक दिये।

‘भद्रो! मुझे आत्मकल्याणका पथ मिल गया है। तथागतने कठके (भात) भोजनका निमन्नण स्वीकार कर लिया है। वे कल मेरे बनमें (पिण्ड-चार) भिक्षा ग्रहण करेंगे।’ गणितने हृदयके समग्र भाव उँडेल दिये।

‘ऐसा कदापि नहीं हो सकता। शास्ता हमारा निमन्नण स्वीकार करेंगे। हम चंडी-से-पड़ी बीमत देकर भात खरीदना चाहते हैं, मिल सकेगा अम्रपाली?’ युवकोंने उनका मन धनसे जीतना चाहा।

‘नहीं, भद्रो। अग ऐसा नहीं हो सकता। धन तो मैंने जीवनभर कमाया, आत्मकल्याणका मूल्य धनसे नहीं लग सकता।’ अम्रपाली स्वस्य हो गयी।

रथ अपनी-अपनी दिशाओंकी ओर चल पड़े।

लिंगवीयोंने भगवान् बुद्धका दर्शन किया। भगवान्को पिण्डचारका निमन्नण दिया, शास्ताने अस्वीकार किया।

X X X X

‘आज मेरे कृतकृत्य हो गयी। भगवान् और भिक्षु-सधने मेरे हाथका परोषा भोजन स्वीकार कर मेरा अनियं जगत्के प्रपञ्चोंसे उद्धार कर दिया।’ अम्रपालीने भगवान् बुद्धके भोजनोपरान्त उनके आसनके निकट बैठकर सतोषकी सोंस ली।

‘सम्यक् सम्बुद्धने मेरे अम्रपाली-बनमें विहार किया है, मैं हम आरामको भिक्षु-सधके हाथोंमें सौंपती हूँ।’ तथागतने अम्रपालीके इस निवेदनपर मौन स्वीकृति दी।

भगवान् बुद्धने उसको धार्मिक कथासे समुच्चेदित किया। अम्रपाली धन्य हो गयी, पवित्र हो गयी। उसका रोम-रोम पुलकित था। उसका कल्याण हो गया।—रा० श्री०

(बुद्धचर्या)

दानकी मर्यादा

भगवान् गौतम बुद्ध श्रावस्तीमें विहार कर रहे थे। एक दिन विशेष उत्सव था। धर्मकथा श्रवणके लिये विशाल जन ममूल उनकी सेवामें उपस्थित था। विशाला भी इस धर्म-परिषद्में सम्मिलित थी। भगवान्के सामने आनेके पहले विहारके दरवाजेपर ही उसने अपना महालता प्रसाधन (विशेष आभरण) उतारकर दासीको नोप दिया था तथागतके सम्मुख यहनकर जानेमें उसे बढ़ा नफोच था।

धर्म-परिषद् समाप्त होनेपर अपनी सुप्रिया नामकी दासीके नाथ विहारमें ही धूमती रही। दासी आभरण भूल गयी।

‘विशालाका महालता-प्रसाधन छूट गया है, भन्ते।’ स्थविर आनन्दने तथागतका आदेश माँगा। परिषद् समाप्त होनेपर भूली वस्तुओंको आनन्द ही सम्हाल करते थे। शास्ताने आभरणको एक ओर रखनेका आदेश दिया।

‘आर्य। मेरी स्वामिनीके पहनने योग्य यह अलङ्कार नहीं रह गया है। आपके हाथसे छू गयी वस्तुको वे विहारकी मम्पत्ति मानती हैं।’ सुप्रियाने विशालाके उदार दानकी प्रशंसा की। वह विहारके दरवाजेपर लौट गयी, विशाला रथ रोककर उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। स्थविर आनन्द दासीके कथनसे विस्मित थे। वे विशालाकी त्यागमयी वृत्ति और विशेष दानशीलतासे प्रसन्न थे।

विशालाने सोचा कि महालता प्रसाधन रखने-रखानेमें महाश्रमणको विशेष चिन्ता होगी। इसका भिक्षु-सधके लिये दूसरी तरहसे भी सद्गुपयोग हो सकता है। उसने प्रसाधन लौटा दिया।

X X X

दूसरे दिन विहारके दरवाजेके ठीक सामने एक भव्य रथ आ पहुँचा। विशाला उत्तर पड़ी। उसने तथागतका अभिवादन किया, बैठ गयी।

‘भन्ते, मैंने धरपर सुनायेको बुलवाया था, प्रसाधनका मूल्य नौ करोड़ उन लोगोंने (गलानेके बाद) निश्चित किया और एक लाख वनवानेका मूल्य लगाया गया। नौ करोड़ एक लाख आपकी सेवामें उपस्थित है।’ विशालाने आदेश माँगा।

‘तुम्हारे दानकी मर्यादा स्तुत्य है। विहारके पूर्व दरवाजेपर सधके लिये चासस्थानका निर्माण उचित है।’ शास्ताने विशालाको धर्मकथा, शील, दान आदिये समुच्चेदित किया।

भगवान् बुद्धकी प्रसन्नताके लिये विशालाने भूमि खरीदी और महालता-प्रसाधनके पूरे मूल्यसे भव्य प्रासादका निर्माण कराया। उसकी श्रद्धा धन्य हो गयी। श्रावस्तीकी अत्यन्त धनी रमणीके अनुरूप ही आन्वरण था उसका। दानकी मर्यादाका ज्ञान था उसे।—रा० श्री० (बुद्धचर्या)

आत्मशान्ति

लगभग तीन हजार माल पहलेकी बात है। भगवान् गौतम बुद्ध कुरुदेवके कलमापदम्य निगम (उपनगर) में विहार करते थे। वे निगमके समीप एक वनखण्डमें विराज-मान थे। चारों ओर जान्ति थी।

‘कितनी स्वर्णिम प्रभा है शरीरकी। ऐसा ल्याता है कि सामात् सुमेरुका ही मानवीय वेषमें पृथ्वीपर अधतरण हुआ हो। मेरी कन्या भी स्वर्ण-वर्णकी है। जिसे बड़े-बड़े नरेन्द्रोंने प्राप्त करनेका प्रयत्न किया, उसे मैं इसी श्रमणको दूँगा। निगमके मागन्दीय नामक ब्राह्मणने तथागतका दर्शन किया, वह सरोबरके तीरपर पानी पी रहा था। और गया। उसने अपनी पत्नीसे सारी बात बतायी। दोनोंने कन्याको विदेश अल्कार, बन्धु और अङ्गराग आदिसे सजाया।

× × ×

‘श्रमणका आसन यहीं था।’ वनखण्डमें प्रवेश करके उसने अपनी पत्नीका ध्यान आकृष्ट किया; कन्या भी साथ थी। वह सौन्दर्यकी सजीव स्वर्णप्रतिमा थी, ऊमलता और चिनय-श्रीलताकी चलनी-फिरती आकृति थी। उसके लावण्यसे समस्त वनखण्ड प्रदीप था।

तथागतके वैठनेके स्थानपर तृण-आसन था। ब्राह्मणीने देखा।

‘काम पूर्ण नहीं होगा उसने पतिसे निवेदन किया। श्रमणने काम (मार) को जीत लिया है, इसलिये तृण इधर-उधर नहीं विलर सके।’ ब्राह्मणीने गम्भीर होकर अपनी कन्याको देखा, चिन्तित थी वह।

‘मङ्गलके समय अमङ्गल नहीं कहना चाहिये।’ ब्राह्मण-ने पत्नीको समझाया। ब्राह्मणीने भगवान् बुद्धका पदचिह्न देखा।



बासी अन्न

आवस्ती नगरीके नगरसेठ मिगार भोजन करने वैठे थे। उनकी सुगील पुत्रवधू विशाखा हाथमें पखा लेकर उन्हें बायु कर रही थी। इसी समय एक बौद्ध-भिक्षु आकर उनके द्वारपर खड़ा हुआ और उसने भिक्षा माँगी। नगरसेठ मिगारने भिक्षुकी पुकारपर ध्यान ही नहीं दिया। वे चुपचाप भोजन करते रहे। भिक्षुने जब फिर पुकारा, तब विशाखा बोली—‘आर्य। मेरे शशुर बासी अन्न खा रहे हैं, अतः आप अन्यत्र पढ़ाओ।’

‘श्रमणका मन काममें लित नहीं है। रागयुक्तका चरण उकड़ होता है, देष्युक्तका पद निकल होता है, मोहयुक्तका पद दग्ग होता है पर मलरहितका पद ऐसा होता है। इस तरहकी बातें पति-पत्नीमें हो ही रही थीं कि भगवान् तथागत पिण्डचार (भोजन) समाप्त करके निगमसे अपने स्थानकी ओर आते दीख पड़े।

‘इस तरहके पुरुष कामोपभोगमें नहीं रमते।’ ब्राह्मणीने उनका तेजोमय भव्य रूप देखा। ‘सुगत अपने आसनपर बैठ गये। ‘आप और मेरी कन्या—दोनों स्वर्ण वर्णकि हैं। इसका पाणिग्रहण करें।’ ब्राह्मणके एक हाथमें जलभरा कमण्डल था, दूसरे हाथसे उसने कन्याकी बॉह पकड़ी।

‘तृणा और रागसे भरी लावण्यमयी स्वर्णीय मार-कन्याओंको भी देखकर मन नहीं विकृत हो सका तो मल-मूत्रसे भरी इस वस्तुका पैरसे भी स्वर्ण नहीं किया जा सकता।’ ऐसा ल्याता था कि शास्त्र ब्राह्मणसे नहीं, किसी दूसरेके प्रति ऐसी बातें कह रहे हैं।

‘यदि अनेक नरेन्द्रोद्वाग प्रार्थित इस रूपराणिको आप नहीं चाहते तो अपनी हृषि, शील, व्रत, जीवनकी भवमें उत्पत्तिके प्रति क्या धारणा है? मागन्दीयकी जिजासा थी।

‘मैंने दृश्योंको देख उन्हें न ग्रहण कर आत्मशान्तिको ही देखा। विवादरहित होनेपर आत्माको शान्ति मिलती है। सजासे विरक्त नहीं बैधता, प्रशाद्वाया विमुक्तको मोह नहीं रहता है। सजा और दृष्टि—नाम-रूपको ग्रहण करनेवाला ही लोकमें धक्का खाता है।’ भगवान् ने ब्राह्मणको आत्मशान्तिका पथ बताया। वह चला गया।—र० श्री० (बुद्धचर्चा)

नगरसेठके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने भोजन छोड़ दिया। हाथ धोकर पुत्रवधूसे बोले—‘तूने मेरा अपमान किया है। मेरे घरसे अभी निकल जा।’

विशाखाने नम्रतासे कहा—‘मेरे विवाहके समय आपने मेरे पिताको बचन दिया है कि मेरी कोई भूल होनेपर आप आठ सद्गृहस्योंसे उसके विषयमें निर्णय करायेंगे और तब मुझे दण्ड देंगे।’

‘ऐसा ही उही !’ नगरसेठको लो नौब चढ़ा था। वे पुनर्वृत्ति निकाल देना चाहते थे। उन्होंने आठ प्रतिष्ठित व्याख्याओंको बुलवाया।

विश्वासाने सब लोगोंके आ जानेपर कहा—‘मनुष्यको अपने पूर्वजन्मके पुण्योंके पूर्णसे ही सम्पत्ति मिलती है।

मेरे क्षशुरको जो सम्पत्ति मिली है, वह भी उनके पहलेके पुण्योंका फल है। इन्होंने अब नवीन पुण्य करना बद कर दिया है, इसीसे मैंने कहा कि ये वासी अन्न खा रहे हैं।’

पच बने पुरुषोंको निर्गत नहीं देना पड़ा। नगरसेठने ही लजित होकर पुत्रवधूसे क्षमा माँगी।—सू० सिं०

चमत्कार नहीं, सदाचार चाहिये

गौतम बुद्धके समयमें एक पुरुषने एक वहुमूल्य चन्दन-का एक रत्नजटित शराप (वडा प्याल) ऊचे खभेपर टॉग दिया और उनके नीचे यह लिप्त दिया ‘जो कोई सारक, सिंड वा योगी इस शारपनो मिना किसी सीढ़ी या अड्डना नादिने, एकनान्न चमत्कारमय मन्त्र वा यौगिक शक्तिसे उना लेगा वे उपर्युक्ती इच्छा पूर्ण करेगा।’ उसने इससी रेप्रेसेल्सके लिये दहों रुप्ता पहरा भी नियुक्त कर दिया।

कुछ ही समयने थाढ़ कथ्यम् नामका एक शैद्ध भिक्षु वहाँ पहुँचा और केवल उधर हाथ बढ़ाकर उम शगवको उना लिया। पहरेके लोग आश्रवन्ति नेत्रोंसे देखते ही नह गये और कथ्यम् उम शगवको लेकर वौद्वन्विहारमें चला गया।

यान-की-नानमें एक भीड़ एकत्रित हो गयी। वह भीड़ भगवान् बुद्धने शाम पहुँची। सबने प्रार्थना की—‘भगवान्। आप नि रुद्धे महान् हैं, क्योंकि कथ्यनें जो आपके

अनुयायियोंमें एक हैं, एक चरावको, जो वडे ऊचे खभे-पर टॉग था, केवल ऊपर हाथ उठाकर उतार लिया और उसे लेकर वे विहारमें चले गये।’

भगवान्का इसे सुनना था कि वे वहाँसे उठ पड़े। वे सीधे चले और पहुँचे उस विहारमें सीधे कथ्यपके पास। उन्होंने झट उस रत्नजटित शरापको पटककर तोड़ डाला और अपने विष्ण्योंनो सम्मोहित नहरे हुए कहा—‘सावधान। मैं तुमलोगोंको इन चमत्कारोंका प्रदर्शन तथा अभ्यासके लिये वाग-वाग मना करता हूँ। यदि तुम्हें इन मोहन, बशीकरण, आरूपण और अन्यान्य मन्त्र-यन्त्रोंके चमत्कारोंसे जनताना प्रलोभन ही इश्वर है तो मैं तुम्हें यन्त्रोंमें कह देना चाहता हूँ कि अद्यावधि तुमलोगोंने यमके सम्बन्धमें कोई जानकारी नहीं प्राप्त की। यदि तुम अगला कल्याण चाहते हो तो इन चमत्कारोंसे वचकर केवल नदाचारग्रा अभ्यास करो।’

—सू० स०

(Guru's Gospel of Buddha, pp 99-101)

४८ धर्मविजय

‘भगवनी स्वर्गलेखा और गोदावरी सुगनिके मन्त्रेश्च—कलिङ्गकी प्रजाने विद्रोह कर दिया है, महाराज ! यदि यह विद्रोह पूर्णत्वसे ददा नहीं दिया जायगा तो भरतवर्षण्ड अग्रनक्ता और अशान्तिका गिकार हो जायगा।’ प्रधानामात्य गथागुनने समवयति अशोकका स्थान आकृष्ट किया, राजसभा-में सन्नाटा छा गया।

‘पाटलिपुत्रका गजनन्त्र साम्राज्यकी प्रत्येक घटनासे परिचित हैं। इस विद्रोहको ददानेका उपाय है युद्ध। पूर्वीय महासुगरनी उचुद्ध तरहाँ हमारी गणभेदीसे प्रकटित हो जायेगी। सागरका नीला पानी शून्यके लूपसे लाल हो जायगा।’ अशोककी भृकुटी तन गयी। सम्राट्ने आक्रमणका आदेश दिया। उन्होंने मैत्य-मचालनका भार स्वय

सम्हाल। कलिङ्ग प्रान्तमें युद्धका वाजा बज उठा।

× × × × ×

विजयश्रीने आपका चण्ण-स्वर्ग किया है, सम्राट्। कलिङ्ग मगवके अधिकारमें आ गया।’ महामन्त्री राधागुप्तने सम्राट्के शिविरमें प्रवेश करके अभिवादन किया।

‘विजयश्री—जिसने मृत्युकी कोखसे जन्म लिया, जिसने मैतैकड़ों धरोंमें हिसाकी विकराल ज्वाल प्रस्तुटि कर असत्य रमणियोंका सिन्दूर धो डाला, अगणित विशुओं और वृद्धोंकी जीविका छीन ली, जिसने हरेमपे खेतोंमें बड़ोंका पहाड़ वडा कर दिया है—मुझे नहीं चाहिये, यह पराजय है। राधागुप्त ! शब्द-अख्यासे प्रात विजय अवर्मकी देन है।’

सम्राट् शिविरसे बाहर निकलकर रणभूमिमें टहलने लगे।

जहाँ दोनों विचारनों मध्ये यह कीमत बदल दी गई है।

वर्षानुकूल आनन्द गमना आवश्यक नहीं है; यसका प्रबोध
द्वयगति। महामन्त्रिर्वाच श्रुतिर्वाच आनन्दगता वापि।

ਕੁਝ ਹੈ ਜੇ ਅਨੁਸਾਰ ਹੈ ਔਰੂਪ ਜੋ ਵਿਸ਼ਾ ਪਾਰਿਆਂ ਦੀ
ਕਾਰ੍ਬਗ ਵਰਗੀ ਸੱਭਾਵ ਹੈ। ਆ-ਵਿਵਚਨ ਵੀ ਹੈ, ਆਂਦੀ ਔਰੂਪ
ਲੰਡੀ ਜਾਂ ਅਨੌਦੀ ਜਾਂ ਮਹਿਸੂਸ ਹੈ। ਪਿਆਂਦੀ ਵੀ ਹੈ। ਪਾਣੀ ਵੀ
ਜੇ ਸੱਭਾਵ ਲੰਘੀ ਜਾਂ ਨਿਰੰਗਿਆ ਪਹਿਲਾਂ ਵੀ ਹੈ। ਤੁਹਾਨੂੰ ਜਾਂ
ਅੰਦਰੋਂ ਵਿਚ ਅਨੁਭਵ ਹੈ।

Y - G - Y - T - Y

- 一 二 三 四 五 六 -

यह अन मेंग नहीं, तम्हारा है

कहते हैं कि गधारु अजानकी वहाँ की वह बात है — एक
अनेक दम्भु वश नारी गजा था । उसके गवर्यों विव-
दही एक वश पर्णी विने हैं और वे ही जीवनी ही कर्मा वी
प्रतापा नहीं था । उसके गवर्यों लांगोंसे लोटीज़ह नहीं
थी । दूर्लभी अमृती और तो कोई लालना ही नहीं था ।
शुभ्र देवी मात्रामूर्ति मानी थी था । अन्यर्थी यों शारीर
महीनी नहीं । नामके दिन विषय बातचीत थी । उसके एक बड़ा गवर्य
गये हैं । वह उन्हें आए हैं इस वहाँ आया था ।

बहुत दिनों बाद ही पुस्तक एक अमर्दंडका ल्लाय करने
न्यायालयमें आये। दोनों ही विचारन थे। एकमें सजा-च्छाय-
दर्शि ! मैंने इनमें और्डरभी जर्मान गर्फ़ताही भी। मैं उनमें उनमें
करता था। एक दिन मंग वाला दर्शक विचार विनियोग करवाया।
मिट्टी छायाकार देखा तो इसमें नहीं; मिट्टी तथा गोलेसी मिट्टी
भी थी। गगकार ! मैंने तो जर्मान विचारी भी। धनदा
प्रकल्प तो गर्फ़ताही नहीं था। अब वहां बृहद वाला भी
नहीं था। मैंने छूनमें कला कि अपना गजाना होता लंड
फारे नहीं एवं भी नहीं मूलने। मैं बिनका आम उप-
करण हूँ।

हृदय कम अन्यायित ! इस बात प्रियकृत नहीं
है। वर ऐसी धम्या, अद्भुती है उनकी मालिकी जिसे आप हैं ?

अंग लालान्दस आनिर्धा मन्दाकिनी वह चर्ची ।
अंगोंके अर्थवौपें साग-काखाग भासतगड़ कन्य हो उठा ।
भिरान्दावांशी (गग गृह तथा आमोर-गमोड़)ने अर्थकाशांशी-
का नाम उठाया और किया । दद्ध-दद्धि के स्थानग्र दंडाक कोंने
टेनिस खिलायाएँ उड़ायीं उषा । बछायुदी प्रसमर्थ, महाल-
कालिनी शुभनं शेषाणा वी—लारी प्रजा मंगी मंवान है । मैं
उपर्युक्त लोकलगामीकक सुप्रआनिकी कामना करता
हूँ ॥—कृष्ण-मुद्रन अर्थवृत्तपत्रा पर्य प्रश्न रखिया ।

—३० श्री०

मैंने नीं जर्मान लगा उपरके अंदर आ कूद आ गव इनकी
बेचकर पुग दूँव दे छिया था। अब उपरके अंदरका नवी
कूद इनकी है। उसे दूखे मिना कारण गता रहे हैं। मैंग
गिर्ह लूटाएँ इनमि।

थीं कहकर होने वाले परम्परा अद्वितीय रूप से आगे बढ़ाने वाले समझाने चुक्कानीसार भी होनामें कोई भी उप धनराजिका लेन-के लिये गर्भी नहीं दृष्टि देता। वे गर्भ ज्यायार्थीत इसे करते। इस उनके दोनों ओर उन लोगोंके लिया और निःस्वार्थ मानकी प्रार्थना मनहीं मन करते रहते। अन्यामें उनके एक उपाय गुण। उन्होंने उन दोनोंमें पूछा कि तुम्हारे फौहं भताने हैं या नहीं? पता लगा कि पकड़के पुत्र हैं, दूधके कन्या हैं और उनमें परम्परा गम्भीर होना है। ज्यायाव्यक्तिने उन दोनोंमें प्रार्थना की कि, 'यदि आप लोगोंमें से कोई भी उप वनकी शक्ति नहीं करना चाहता तो आप अपनी मतानन्दा गम्भीर करके उनकी विवाह कर दीनिरुप और भाग उन उनको थोड़ी शीर्षिंय।'

दृश्यं गदयेत् आपनम् तो विना स्वामियका भाग धन
गहज ही गदयका गद्यन होता । पर आवकी दृष्टिं यह
विनय आपन था; विनय मुकुटमा वा तथा विचित्र ही
त्याय था ॥ —अ० श०

— THE GREEKS —

* दोनों दलों पर एक अद्यता विभिन्नताके बीच आपसमें व्यापक समझौते की आवश्यकता है।

अर्जुनका उदारताका अभिमान-भङ्ग (कर्णका चन्दन-दान)

यह प्रसिद्ध है कि कर्ण अपने समयके दानीयोंमें सर्वश्रेष्ठ थे। इधर अर्जुनको भी अपनी दानगीलताना बड़ा गर्व था। एक बार भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके समझ ही कर्णकी उदारता एवं याचकमात्रको बिना दिये न लौटानेकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की। अर्जुन इसे सह न सके। उन्होंने कहा—‘मात्रव। आप वार-नार कर्णकी प्रशंसा कर हमारे हृष्टयको डेस पहुँचा रहे हैं। मैं नमक्षता हूँ आपको मेरी दानगीलताना जान ही नहीं है, अन्यथा मेरे सामने ही आप इस प्रकारकी चात वारन्वार न कहते। भगवान् तुम रहे।

आग्निर एक दिन डसकी परीक्षाका भी अवसर आ ही गया। एक दिन एक ब्राह्मण अर्जुनके दरवाजेपर पहुँचा और कहने लगा, ‘धनलय। सुना है आपके दरवाजेसे कोई भी याचक लैटकर नहीं जाता। मैं आज वडे ही धर्मस्कटमें पढ़ गया हूँ। मेरी जी आज चल बसी। मरते समय उसने कहा कि ‘मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करो, वह यह कि मेरे दारीरका ढाह केवल चन्दनकी लकड़ियोंसे ही करना।’ क्या आप इतने चन्दनकी लकड़ियोंकी व्यवस्था कर सकियेगा? अर्जुनने कहा ‘क्यों नहीं। अभी इन्धन होता है।’ और कोटारीको बुलाकर आजा दी कि इन्हें तुरगत पचीस मन चन्दनकी लकड़ी तौल दो। दुर्भाग्यवश उस दिन न तो भण्डारमें ही कोई चन्दनकी लकड़ी थी न कहीं बाजारमें ही। अन्तमें कोटारी लचार होकर अर्जुनके पास आया और कहने लगा

कि ‘महाराज। चन्दनकी लकड़ीका प्रवन्ध सर्वथा असम्भव है।’ इसपर ब्राह्मणने पृछा ‘तो क्या मैं किसी दूसरेके दरवाजे जाऊँ?’ अर्जुनने कहा ‘महाराज। अब तो लाचारी है।’

अब वह ब्राह्मण कर्णके यहाँ पहुँचा। वहाँ भी यही हालत थी। उनका भी कोटारी बाजारसे खाली हाय लैट आया। ब्राह्मणने कहा ‘तो महाराज। मैं अब चलूँ।’ रुणने कहा, ‘महाराज। आप नाराज न होइये। मैं अभी आपके दायका प्रवन्ध करता हूँ।’ और देखते-देखते उन्होंने अपने महलके चन्दनके खमे निकलवाकर उसकी माँग पूरी कर दी। यद्यपि उनका महल ढह गया, तथापि उन्होंने उस ब्राह्मणको लैटाया नहीं। ब्राह्मणने पक्कीका दाह-स्त्रकार किया। आमको श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ठहलने निकले। देखा तो एक ब्राह्मण इमशानपर सकीर्तन कर रहा है। पूछनेपर वह कहने लगा—‘वस, वार-नार धन्यवाद है उस कर्णशो, जिसने आज मेरे स्कटको दूर करनेके लिये, अपनी दानकी मनोवृत्तिकी रक्षाके लिये, महलके चन्दनके खमोंको निकलवाकर सोनेसे महलको ढहा दिया। भगवान् उसका भला करें।’

अब श्रीकृष्ण अर्जुनकी ओर देखने लगे और बोले—‘भाई! चन्दनके खमे तो तुम्हरे महलमें भी थे, पर तुम्हे उनकी याद ही नहीं आयी।’ यह देख-सुनकर अर्जुनको मन-ही-मन बही लज्जा आयी।

अर्जुनका भक्ति-अभिमान-भङ्ग (दिगम्बरकी भक्तिनिष्ठा)

ससृनि मूल सूलप्रद नाना। मकन सोक दायक अभिमाना॥
तेहि ते व्रहि कृपानिषि दूरी। रेवक पर ममता अति सूरी॥

एक बार अर्जुनको गर्व हुआ कि ‘भगवान्का सबसे लाडला मे ही हूँ। तभी तो श्रीकृष्ण न्यय ‘पाण्डवाना धनञ्जय,’ कहते फूले नहीं समाते। उन्होंने मेरे प्रेममें आवढ़ होकर अपनी वीहिन सुभद्राको भी सुख सौंप दिया। समराङ्गमें वे मेरे नारथ बने और मेरे निमित्त उन्होंने दैत्यादिका जघन्य कृत्य स्वीकार किया, यहाँतक कि रणभूमिमें स्वय अपने हाथोंसे मेरे घोड़ोंके धावतक भी घोते रहे। मैं यद्यपि उनकी प्रमद्रताके लिये कुछ भी नहीं करता, तथापि मेरे सुझी रहनेसे ही उन्हें बड़ा सुख तथा आनन्द मिलता है। सचमुच मे उनका परम प्रियतम हूँ।’

प्रभुको इसे ताइते देर न लगी। एक दिन वे अर्जुनको वनभूमिके मार्गसे ले गये। अर्जुनने देखा कि एक नम भनुप्य वायें हाथमें तलवार लिये, भूमिपर पढ़े सूखे तृण खा रहा है। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे पृछा, ‘सुखे। यह कौन-सा जीव है?’ श्रीकृष्णने विसमयका अभिनय करते हुए कहा, ‘यह तो कोई जीव (जरारी) मात्रम् पड़ता है। इसका भोजन भी विचित्र ही दिखलायी पड़ता है।’ श्रीकृष्ण को वर्षी एक गिलालगड़र बैठाकर अर्जुन अकेने ही उस नम व्यक्तिनी ओर चले और उसके पास जाकर बोले, ‘पुण्यव्रत मुझे क्षमा करेंगे, मैं अत्यन्त कौतूहलसे भक्त आपनी ओर आकृष्ट हुआ हूँ। मेरी यह जिजाग है कि आपने मानवोचित भोजनका परित्याग करके इस तृणराशिको अपना

खाद्य क्यों बनाया ? क्षीवने कहा—‘जाओ’ तुम्हारा पथ निरापद हो । तुम्हारे कृत्तृहल-निराकरणके लिये मेरे पास जरा भी अवकाश नहीं । साथ ही ग्रासाच्छादन-जैसे तुच्छ पदार्थोंनी भी वृथा चिन्ता करनेका मेरे पास अवसर कहूँ है ।’

अर्जुनने कहा—‘वर्षवेत्ता जन जिजासापूर्ण कृत्तृहल-निवृत्तिको धर्म वतलाते हैं ।’ क्षीवने कहा ‘देखता हूँ तुम्हारे इस दुग्रग्रह-परिहारका कोई उपाय नहीं है । पर तुम्हीं वतलओ मि इस दग्ध उदरकी पूर्तिके लिये क्या कोमल शिशु-तृणगणजिका वध किया जाय ?’ अर्जुनने कहा, ‘योगेश्वर । आपको तथा आमके इस सार्वभौम अहिंसा-महाव्रतको नमस्कार । नयापि आपका चरित्र मुझ जडबुद्धिके लिये तो सर्वथा दुग्रग्राह्य ही है, क्योंकि एक ओर तो तृणपर्यन्त प्राणियोंको अमय देनेवाला आपका यह अहिंसाका सार्वभौम महाव्रत और दूसरी ओर वायें हाथमे यह नम तलवार ।’

नमने कहा—‘देखता हूँ, तुम्हारा कौत्तृहल निरङ्कुश एव दुर्वार है । अच्छा हो तुम इसे अपने मनोब्रलसे ही ध्यान्त कर लो, क्योंकि तुम्हारे कौत्तृहल-निवारणके प्रयत्नमें मेरा जो अपने हृदयस्य सखासे विच्छेद होगा, उसे मैं सहन नहीं कर सकूँगा । तो भी यदि तुम मेरे शत्रुओंको मारनेकी प्रतिज्ञा करो, तो निश्चय ममओं कि मैं तुम्हारा दास हो जाऊँगा ।’

अर्जुनने कहा—‘क्या आपका भी कोई शत्रु है ? यदि एसा है तो वस्तुत वह विश्वका शत्रु है और उसे मारनेके लिये मैं सदा प्रमुत हूँ ।’ क्षीवने कहा—‘और वही अकेला नहां, दो और है । इन तीनोंने मिलकर मेरे प्राणप्रिय सखाओंको अपमानित किया है ।’ अर्जुनने कहा—‘वतलाद्ये, वे कौन हैं और कहाँ रहते हैं ? कौन हैं आपके वे सखा और उनका अपमान कहाँ और कैसे हुआ है ? आप विश्वास रक्खें मैं वृथा स्थापा करनेवाला व्यक्ति नहीं हूँ ।’

उस दिग्म्बरने कहा—‘जगत्तालक प्रभु मेरे भरम मखा जग श्रमसे मो रहे ये, तब उनकी छातीपर एक विप्राथमने तीव्र पादावात किया और जग प्रभुने इसपर भी केवल यही कहा—‘विप्र ! आपके चरणोंमें चोट तो नहीं आर्द्धा ?’ यही नहीं, वे उस ब्राह्मणाथमके चरणों अपनी गोदमें लेकर ढाने लगे । पर उस ब्राह्मणेने उधर दृष्टि भी नहीं डाली । मैं जय-जय ध्यानमें अपने परम मित्रके हृदयको देखता हूँ, तब उस पद-चिह्नको देखकर मेरे हृदयमें शूल होता है । मैं उस चिह्नको मिटा न सका तो उस भू-कलङ्क ब्राह्मणको ही

मिटा डालूँ ।’ अर्जुनने कहा—‘तो क्या इस ब्रह्महत्याके आचरणसे ही आपके कर्तव्यका पालन होगा और वह ब्रह्महत्या भी और किसीकी नहीं, उसकी जो जानीकुलका आदिपुरुष है ?’ क्षीवने कहा—‘उस मेरे प्राणप्रियतम वन्धुके लिये ऐसा कौन-ना अकार्य है, जिसे मैं नहीं कर सकता ?’

अर्जुनने कहा—‘अस्तु । आप और किस पुरुषका विनाश चाहते हैं ?’ क्षीवने कहा ‘पुरुषका ? ऐसा क्यों कहते हो ? किस ल्लीका विनाश चाहते हैं, यह पृथ्वी । क्या तुमने नहीं सुना कि जिसके पॅच्चपाँच पति हैं, उस ल्लीने दुर्वासाके शापसे वचनेके लिये अपना ज़ूँठा जाक मेरे सखाको खिलाया था । यदि वह न्यी कहीं मुझे दीव जाय तो मेरा यह खड़ा उसे अवश्य ही चाट जाय ।’

अर्जुनने कहा—‘हे योगेश्वर ! क्या ब्रह्महत्या और ल्लीहत्या करनेके लिये ही मेरी माँने मुझे स्तनपान कराया था ? यदि ऐसा ही था तो मेरा जन्म न लेना ही अच्छा था; यदि कोई धन्त्रियोनित कार्य हो तो उसे करनेके लिये मुझे आज्ञा दें ।’

यह सुनकर दिग्म्बर बोला—‘यदि तुम्हे थोड़ा भी अपने शौर्यका गर्व हो तो तुम उस धन्त्रियाधम निष्ठष्ट योद्वाका विनाश कर धन्त्रियकुलको निष्कलङ्क करो, जिसने मेरे सखाको घोड़ोंकी ल्गाम हाथमें सौपकर मारथि बनाया था, दूसरेसे गति उधार लेकर जो मनमें अपनेको बीर मानता है ।

तदै धनुस्त इपव. स रथो हयास्ते
सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति ।
सर्वं क्षणेन तद्भूदस्त्रीशारिकं
भस्त्रं हुतं कृदकराद्मिवोषमूष्याम् ॥

(श्रीमद्भा० १ । १५ । ११)

वह कृत्रिम बीर यदि कभी मेरे सामने आ गया तो आततायी समझकर मैं उसे तुरत मार डाकँगा, क्योंकि उसने जगदीश्वरका इतना बड़ा अपमान किया है ।

अर्जुनको अब भान हुआ कि मैं कितने पानीमें हूँ । उन्होंने कहा, ‘योगेश्वर ! यदि आप चाहते हैं कि वह पापिष्ठ अभी लुत हो जाय तो आप अपनी तलवार मुझे दे दीजिये । योगिन् । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ इसी क्षण मैं आपको उसका मुण्ड दिवला रहा हूँ ।’ क्षीवने कहा, ‘तब तो इस तलवारके साथ मेरा वेदोक्त आशीर्वाद लो और शीघ्र विजयी होकर लैटो ।’ सड़ग लेकर अर्जुनने कहा, ‘भगवान् गकरकी कृपासे आपका यह आशीर्वाद पुनरुक्तिमात्र है, मैं आपसे विदा लेता हूँ और साथ ही आपको विदित होना चाहिये

कि आपके नमने की हुई प्रतिग्रस्ते में नर्वथा सुन्दर होकर जा रहा है ।

अर्जुनके लौटनेपर भगवानने कहा—“वह तो भद्रोन्मत्त माइम पड़ता है, मैंने तुम्हें उपर निरन्तर भेजकर ठीक नहीं किया, मुझे चढ़ी चिन्ना हो रही थी ।” अर्जुनने कहा—“वह तो महारुज ! प्रचण्ड दृष्टि धारण किये मुझे ही न्योज रहा है ।” अन्तमें भगवानने उन्हें नार रहस्य नमस्कार

और बतलाया कि “तीनों लोगोंमें वही प्रधान भगवद्गुरु है । प्राणोंका मोह छोड़कर अहिंसावत अमाया, पर प्रभुके अपमानका ध्यान आते ही ब्रह्महत्या, न्यीक्ष्यादिके लिये भी तैयार हो गया । वस्तुत उर्ध्वधर्मान् परिव्यज्य मामेक शरण वज्र का उमीने ठीक अर्थ नमस्का है” अन्तमें वह जीर्ण अर्जुनके देखते-डेखते भगवानके हृदयमें प्रविष्ट हो गया । अर्जुनका अहकार गल्तर पार्ना हो गया ।

श्रीनारदका अभिमान-भङ्ग

एक बार श्रीनारदजीके मनमें यह दृष्टि हुआ कि मेरे नमान उस त्रिलोकीमें कोई सगीतज्ञ नहीं । इसी वीच एक दिन उन्होंने गन्तेमें कुछ दिव्य क्षी पुस्तकोंको देखा जो गायत्र पढ़े थे औं उनके विविध अङ्ग कठे हुए थे । नारदके द्वारा उस त्रिलोकीमें नारण पृष्ठनेपर उन दिव्य देवियोंने आर्त स्वरमें निर्देशन किया—“हम उमी राग-रागिनियोंहैं । पहले हम अङ्ग प्रन्यज्ञोंसे पूर्ण थे पर आजमल नारद नामका एक सगीतानभिग्न व्याकृत दिनरात राग-रागिनियोंसा अलाप करता चलता है । जिससे हमनोगोंका अङ्ग-भङ्ग हो गया है । आप यदि विष्णुलोक ना रहे हों तो कृपया हमारी दुरवस्थाका भगवान् निष्पुस्त निवेदन करेंगे और उनसे प्रार्थना करेंगे कि इमलोगोंने इस कष्टमें शीघ्र बे सुन्दर कर दें ।”

नारदजीने जब अपनी सगीतानभिग्नताकी बात सुनी, नम देव वह दुखी हो गये । जर देव भगवद्गामनों पहुँचे, प्रस्तुते उनका उदास सुवर्मण्डल देवकर उनकी विनाश और उदासीना कारण पृष्ठा । नारदजीने सारी बात बता दी । भगवान् देव, वे भी हम कलाका मर्मज नहीं हैं । यह तो

भगवान् शरन्ने बगीची बात है । अतएव उनके कष्ट दूर करनेके लिये शत्रुरजीने प्रार्थना करनी चाहिये ।”

जब नारदजीने महादेवजीसे सारी बातें कहीं, तब भगवान् भोलेनाथने उत्तर दिया—“मैं ठीक दगसे राग-रागिनियोंका अलाप करूँ तो निस्पद्वेष्ट वे सभी अङ्गोंमें पूर्ण हो जायेंगी पर मेरे सगीतका श्रोता कोई उत्तम अधिकारी मिलना चाहिये ।” अब नारदजीने श्रीर भी क्षेत्र हुआ कि “मैं सगीत चुननेका अधिकारी भी नहीं हूँ ।” जो हो, उन्होंने भगवान् शक्तरसे ही उत्तम सगीत-श्रोता चुननेकी प्रार्थना की । उन्होंने भगवान् नारयणज्ञ नाम निर्देश किया । प्रभुने भी यह प्रस्ताव मान लिया । सगीत-समारोह आनंद हुआ । सभी देव, गन्धर्व तथा राग-रागिनियों वहाँ उपस्थित हुए । महादेवजीके राग अलापने ही उनके अङ्ग पूरे हो गये । नारदजी साधुदृष्ट, परम महात्मा तो है ही । अहकार दूर हो ही चुका था, अब राग-रागिनियोंको पूर्णज्ञ देवकर व वहे प्रभन्न हुए ।

नारदका कामविजयका अभिमान-भङ्ग

हिमाल्य पर्वतपर एक बड़ी पवित्र गुफा थी, जिसके समीर ही गङ्गाजी वह नहीं थीं । वहाँका दृश्य वहा मनोहर तथा पवित्र था । देवर्षि नारद एक बार धूमते गामते वहाँ पहुँचे तो आश्रमकी पवित्रता देवकर उन्होंने वहीं तप करने-की ठानी । भगवानका न्मरण किया, श्वास रोका । मन निर्मल तो था ही, सहज ही समाधि ल्य गयी । सौ, सहस्र, अयुत वर्ष बीत गये । पर नारदजीकी समाधि भङ्ग नहीं हुई । उनकी गति देख इन्होंको वहा भय हुआ । उन्होंने सोचा देवर्षि मेरा पद लेना चाहते हैं । अतएव शट उन्होंने कामदेवको आदरपूर्वक बुलाकर वहा सम्मान किया और पूरी सामग्रीके साथ नारदजीके पास तपोभङ्गके लिये तत्काल विद्यु कर दिया ।

कामदेवने अपनी सारी कलाओंमें प्रयोग किया, पर मुनिर उनकी एक न चली । कागण कि यह वही म्यान था, जहाँ भगवान् शक्तरने कामको जलाया था । गतिके रोनेमेंउनेपर उन्होंने कहा था कि कुछ समय वीतनेपर कामदेव जीवित नो हो जायगा और इसको पुनर्देह भी मिल जायेगी, पर इस स्थानपर यहाँसे जितनी दूरतकरी पुर्वी दिल्लायी पड़ती है, वहाँतक कामके वाणोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । लाचार होकर कामदेव अपने सहायकोंके

* कथितनमदमासाद्य जीविष्टति चुया सर ।

पर त्विह सरोपावश्चरिष्टति न कश्चन ॥

इ यावद् दृश्यते भूजन्नै स्तित्वामरा मदा ।

कामदेवप्रभावोऽन्न न चलिष्यत्यसशयन् ॥

(शिवपुराण, लक्ष्मदिता, २।२।२०००,)

माथ अमरावती लौट गया और नारदजीकी सुगीलताका वर्णन करने ल्या। उसने कहा—‘न तो नारदजीको काम ही है और न क्रोध ही; क्योंकि उन्होंने मुझे पास बुलाकर सान्त्वना दी और मधुर चच्चोंसे आतिथ्य किया।’ यह सुनकर ममी जाश्वर्यसे दग रह गये।

इधर नारदजीकी तपस्या पूरी हो गयी। वे वहाँसे सीधे चलकर भगवान् शङ्करके पास पहुँचे और अपनी कथा सुनायी। शङ्करजीने उन्हे भिखलाया—‘नारदजी।’ इसे अब आप कहीं-भी न कहियेगा। विशेषकर विष्णु भगवान् पूछें भी तो आप इसे छिपा लीजियेगा।’ पर नारदजीको यह सब अच्छा नहीं लगा, वे बीणा लेकर वैकुण्ठको चल टिये और वहाँ जाकर भी काम-विजयका अपना माहात्म्य गाने लगे। भगवान्ने सोचा, इसके हृदयमें सकल शोकदायक अहकार-का मूल अकुर उत्पन्न हो रहा है, सो इसे झट उखाइ डालना चाहिये और वे बोले—‘महाराज। आप ज्ञान-वैराग्यके मूर्त-रूप ठहरे, भला आपको मोह कैसे सम्भव है।’ नारदजीने अभिमानसे ही कहा—‘प्रभो। यह आपकी कृपामात्र है।’

विष्णुलोकसे जब नारदजी भूलोकपर आये, तब देखते क्या हैं कि ‘एक बहुत बड़ा विस्तृत नगर जगमगा रहा है। यह नगर वैकुण्ठसे भी अधिक रम्य तथा मनोहर है। भगवान्की मायाकी वात वे न समझ सके। उन्होंने सोचा ‘यह नगर कहाँसे आ गया। मेरे तो बरबर सप्तरका पर्यटन करता रहता हूँ, आजतक तो यह नगर दीखा नहीं था।’ इधर-उधर, लोगोंसे पूछनेपर पता चला कि इस नगरका राजा-शीलनिधि अपनी लड़की श्रीमतीका स्वयंवर कर रहा है। इसीकी तैयारीमें शहर सजाया गया है। देव-विदेशके राजालोग पश्चार रहे हैं। नारदजी कौतुकी तो स्वाभावसे ही ठहरे। झट पहुँच गये राजाके यहाँ। राजाने भी अपनी लड़कीको बुलाकर नारदजीको प्रणाम कराया। तत्पश्चात् उनसे उस लड़कीका लक्षण पूछा। नारदजी तो उसके लक्षणोंको देखकर चकित रह गये। उसके लक्षण सभी विलम्बण थे। जो इसे विवाह ले, वह अजर-अमर हो जाय, सग्रामक्षेत्रमें वह सर्वथा अजेय हो। सम्पूर्ण चराचर विश्व उसकी सेवा करे। वह सर्वथा सर्वश्रेष्ठ हो जाय। नारदजीने ऊपर-चापरसे राजाको कुछ कहकर छुट्टी ली और चले इस यत्नमें कि कैसे इसे पाया जाय।

मोचते-विचारते उन्हे एक उपाय सूझा। वे झट भगवान्

विष्णुकी प्रार्थना करने लगे। प्रभु प्रकट हुए। नारदजी बोले—‘नाथ। अब मेरा हित करो। आपकी कृपाके विना कोई उपाय उसे प्राप्त करनेका नहीं है।’ प्रभुने कहा—‘वैद्य जिस प्रकार रोगीकी ओषधि करके उसका कल्याण करता है, उसी प्रकार मैं तुम्हारा हित अवश्य करूँगा।’ यद्यपि भगवान् की ये वाते बड़ी स्पष्ट थीं, नारदजी इस समय मोह तथा कामसे अधिसे हो रहे थे, इसलिये कुछ न समझकर ‘भगवान्ने मुझे अपना रूप दे दिया’—यह सोचकर झट स्वयंवर सभामें जा विराजे। इधर भगवान्ने उनका मुँह तो बदरका बना दिया, पर शेष अङ्ग अपने-से बना दिये थे।

अब राजकुमारी जयमाल लेकर स्वयंवर-सभामें आयी। जब नारदजीपर उसकी दृष्टि पड़ी, वह बदरका मुँह देखकर जल-मुन-सी गयी। भगवान् विष्णु भी राजाके रूपमें वहाँ बैठे थे। श्रीमतीने उनके गलेमें जयमाल डाल दी। वे उसे लेकर चले गये। इधर नारदजी बड़े हुःसित और वैचैन हुए। उनकी दशाको दो हरण अच्छी प्रकार जानते थे। उन्होंने कहा—‘जरा अपना मुँह आइनेमें देख लीजिये।’ नारदजीको दर्पण तो नहीं मिला, पानीमें अपना मुँह देखा तो निराल बदर। अब दौड़े विष्णुलोकको। शीघ्रमें ही श्रीमतीके साथ भगवान् मिल गये। नारदजीके क्रोधका अब क्या पूछना। जल्ला पढ़े—‘ओहो! मैं तो जानता था कि तुम भले व्यक्ति हो, पर वास्तवमें तुम इसके सर्वथा विपरीत निकले। समुद्र-मन्थनके अवसरपर असुरोंको तुमने गराव पिलाकर ब्रेहोश कर दिया और स्वयं कौस्तुभादि चार रत्न और-लक्ष्मीतकको ले लिया। शङ्करजीको बहकाकर दे दिया जहर। अगर उन कृपालुने उस समय उस हालाहलको न पी लिया होता तो तुम्हारी सारी माया नष्ट हो जाती। और आज हमारे साथ यह तमाशा। अच्छा चलो, तुमने मेरी अभीष्ट कन्या छीनी, अतएव तुम भी स्त्रीके विरहमें मेरे-जेसे ही विकल होओगे।’

भगवान्ने अपनी माया खींच ली। अब नारदजी देखते हैं, तो न वहाँ राजकुमारी है और न लक्ष्मी ही। वे बड़ा पश्चात्ताप करने लगे और ‘त्राहि-त्राहि’ कहकर प्रभुके चरणोंपर गिर पड़े। भगवान्ने उन्हें सान्त्वना दी और सौ बार शिवनाम जपनेको कहकर आश्रीर्वाद दिया कि अब माया तुम्हारे पास भी न फटकेगी।—जा० शा० (शिवपुराण, रुद्रसहिता अ० २-४)

(रामचरितमानस वालकाण्ड)

इन्द्रका गर्व-भद्रः

शारीपति देवराज हन्द कोई साधारण व्यक्ति नहीं, एक मन्त्रन्तरपर्यन्त रुनेवाले स्वर्गके अधिगति हैं। घड़ी घटोंके लिये जो किसी देशमा प्रधान मन्त्री बन जाता है, लोग उसके नामसे धराते हैं, पर जिसे इन्द्रहत्तर दिव्य युगोंतक अप्रतिहत दिव्य भोगोंका साम्राज्य प्राप्त है, उसे गर्व होना तो स्वाभाविक है ही। इसीलिये उनके गर्वभद्रकी कथाएँ भी बहुत हैं। दुर्वासाने शार देकर स्वर्गको श्रीविद्धीन किया; खृष्णसुर, विश्वरूप, नमुनि आदि दैत्योंके मारनेपर वारन्वार ब्रह्म-हृत्या लगी। वृहस्पतिरे अपमानपर पश्चात्ताप, वलिद्वारा राज्यापद्वरणपर दुर्दशा तथा गोवर्धनथारण, पारिजातदरण आदिमें भी कई बार इनका प्रचुर मानभद्र हुआ ही है। मेघनाद, रावण, द्विष्णुरामपु आदिने भी इन्द्र बहुत नीचा दिवरलया और वारन्वार इन्द्र दुष्ट्यन्त, खट्टवाज्ञ, अर्जुनादिसे सहायता लेनी पड़ी। इस प्रकार इनके गर्वभूतनकी अनेकानेक कथाएँ हैं, तथापि ब्रह्मवैतरं-पुराणमें इनके गर्वपद्मास्तकी एक विचित्र कथा है, जिसे हम नीचे दे रहे हैं।

एक बार इन्द्रने एक बड़ा विशाल प्रासाद बनवाना आरम्भ किया। इसमें पूरे सौ वर्षतक इन्द्रने विश्वकर्माको छुट्टी नहीं दी। विश्वकर्मा बहुत धरराये। वे ब्रह्माजीके शरण गये। ब्रह्माजीने भगवानसे प्रार्थना की। भगवान् एक ब्रह्मण-वालकज्ञ रूप धारणकर हन्दके पास पहुँचे और पूछने लगे—‘देवेन्द्र ! मैं आरके अद्भुत भवननिर्माणकी बात सुनकर यहाँ आया हूँ। मैं जानना चाहता हूँ इस भवनको कितने विश्वकर्मा मिल्कर बना रहे हैं और करतक यह तैयार हो पायेगा।’

इन्द्र बोले—‘पड़े आश्चर्यमी बात है। क्या विश्वकर्मा भी अनेक होते हैं, जो तुम ऐसी बात कर रहे हो ?’ बहुरूपी प्रभु बोले—‘देवेन्द्र ! तुम यस, इतनेमें ही घरा गये। सुषिट कितने ढगकी है, ब्रह्माण्ड कितने हैं, ब्रह्म-विष्णु-गिव कितने हैं, उन-उन ब्रह्माण्डोंमें कितने इन्द्र और विश्वकर्मा पढ़े हैं—यह कोन जान सकता है। यदि कदाचित् कोई पृथ्वीके धूलिकणोंको गिन भी सके, तो भी विश्वकर्मा अयवा इन्डोंकी सख्त्या तो नहीं ही गिनी जा सकती। जिस तरह जलमें नौकाएँ दीखती हैं, उसी प्रकार महाविष्णुके लोम-कूपरूपी सुनिर्मल जलमें असख्य ब्रह्माण्ड तैरते दीख पड़ते हैं।’

इन तरह इन्द्र और बदुर्में सबाद चल ही रहा था कि वहाँ दो नौ गज लगा-चाड़ा एक चाठोंका विशाल समुदाय

दीया। उन्हें देखते ही बदुको सहसा हँसी आ गयी। इन्द्रने उनकी हँसीका कारण पूछा। बदुने कहा—‘हँसता हसलिये हैं कि यहाँ जो ये चीटे दिसलायी पड़ रहे हैं, वे सब कभी पहले इन्द्र हो चुके हैं। किंतु कर्मानुसार इन्हें अब चीटेकी योनि प्राप्त हुई है। इसमें तनिक भी आश्र्य नहीं करना चाहिये, क्योंकि रुमोंकी गति ही ऐसी गहन है। जो आज देवलोकमें है, वह दूसरे ही क्षण कभी कीट, वृक्ष या अन्य स्थावर योनियोंको प्राप्त हो सकता है।’ भगवान् इतना रुद ही रहे थे कि हँसी समय कृष्णाजिनघारी, उच्चवल तिलक लगाये, चटाई ओढ़े एक जानवृद्ध तथा वयोवृद्ध महात्मा वहाँ पहुँच गये। इन्द्रने उनकी यथालव्य उपचारोंसे पूजा की। अब बदुने महात्मासे पूछा—‘महात्मन् ! आपका नाम क्या है, आप आ कहाँसे रहे हैं, आपका निवासस्थल कहाँ है और आप कहाँ जा रहे हैं ?’ आपके मरतकपर यह चटाई क्यों है तथा आपके वक्त-स्थलपर यह लोमचक कैसा है ?’

आगान्तुक मुनिने रुद—‘योङ्गी-सी आयु होनेके कारण मैंने कही घर नहीं बनाया, न विवाह ही किया और न कोई जीविका ही दोजी। वक्त स्थलके लोमचकोंके कारण लोग मुझे लोमश कहा करते हैं और वर्षा तथा गर्मसे रक्षाके लिये मैंने अपने तिरपर यह चटाई रख छोड़ी है। मेरे वक्त स्थलके लोम मेरी आयु-सख्याके प्रमाण है। एक इन्द्रका पतन होनेपर मेरा एक रोओं गिर पड़ता है। यही मेरे उखड़े हुए कुछ रोओंका रहस्य भी है। ब्रह्माके द्विपरार्थवसानपर मेरी मृत्यु कही जाती है। असख्य ब्रह्म मर गये और मर्गें। ऐसी दशामें मेरुपत्र, कलत्र या गह लेनर ही क्या करूँगा। भगवान्-सी भक्ति ही सूचोपरि, सर्वसुखद तथा दुर्लभ है। वह मोक्षसे भी बदकर है। ऐश्वर्य तो भक्तिके व्यवधानस्थलरूप तथा स्वप्रवत् मिथ्या हैं। जानकार लोग तो उस भक्तिको छोड़कर सालेक्यादि मुक्ति-चतुष्टयको भी नहीं ग्रहण करते।

दुर्लभं श्रीहैरेदास्यं भस्त्रिरुक्तेरीयसी ।
स्वप्रवत् सर्वमैश्वर्यं सद्भक्तिव्यवधायकम् ॥

यौं कहकर लोमशजी अन्यत्र चले गये। वालक भी वहाँ अन्तर्धान हो गया। वेचोरे इन्द्रका तो अब होश ही ठढ़ा हो गया। उन्होंने देखा कि जिसकी इतनी दीर्घ आयु है, वह तो एक शासकी शोपड़ी भी नहीं बनाता, केवल चटाईसे ही काम चला लेता है, फिर मुझे कितना दिन रहना

है, जो इस घरके चक्रमें पड़ा हूँ। वस, झट उन्होंने विश्वकर्माको एक लवी रकमके साथ छुट्टी दे दी और आप अत्यन्त विरक्त होकर किसी वनस्थलीकी ओर चल पड़े।

पीछे वृहस्पतिजीने उन्हें समझा-बुझाकर पुनः राज्यकार्यमें नियुक्त किया। —जा० श०

(ब्रह्मवैर्त-पुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय ४७)

गरुड, सुदर्शनचक्र और रानियोंका गर्व-भङ्ग

एक बार भगवान् श्रीकृष्णने गरुडको यक्षराज कुवेरके सरोवरसे सौगन्धिक कमल लानेका आदेश दिया। गरुडको यह अहकार तो या ही कि मेरे समान बलवान् तथा तीव्रगमी प्राणी इस त्रिलोकीमें दूसरा नहीं है। वे अपने पखोंसे हवाको चीरते तथा दिग्गजोंको प्रतिष्ठनित करते हुए गन्धमादन पहुँचे और पुष्पचयन करने लगे। महावीर हनुमान्‌जीका वही आवास था। वे गरुडके इस अनाचारको देखकर उनसे बोले—‘तुम किसके लिये यह फूल ले जा रहे हो और कुवेरकी आजाके त्रिना ही इन पुष्पोंका क्यों विष्वस कर रहे हो।’

गरुडने उत्तर दिया, ‘हम भगवान् श्रीकृष्णके लिये इन पुष्पोंको ले जा रहे हैं। भगवान्के लिये हमें किसीकी अनुमति आवश्यक नहीं दीखती।’ गरुडकी इस बातसे हनुमान्‌जी कुछ गरम हो गये और उनको पकड़कर अपनी कॉखमें दबाकर आकाशमार्गसे द्वारकाकी ओर उड़ चले। उनकी भीषण ध्वनिसे सारे द्वारकावासी संत्रस्त हो गये। सुदर्शनचक्र हनुमान्‌जीकी गतिको रोकनेके लिये उनके सामने जा पहुँचा। हनुमान्‌जीने झट उसे दूसरी कॉखमें दाव लिया। भगवान् श्रीकृष्णने तो यह सब लीला ही रची थी। उन्होंने अपने पाठ्वर्मस्थित रानियोंसे कहा—‘देखो, हनुमान् कुद्द होकर आ रहे हैं। यहाँ यदि उन्हें इस समय सीता-रामके दर्जन न हुए तो वे द्वारकाको समुद्रमें हुवो देंगे। अतएव तुमसे तुरत कोई सीताका रूप बना लो, मैं तो देखो यह राम बना।’ इतना कहकर वे श्रीरामके स्वरूपमें परिणत होकर बैठ गये। अब जानकीजीका रूप जप बननेको हुआ, तब कोई भी न

बना सकीं। अन्तमें उन्होंने श्रीराधारीको सरण किया। वे आर्यों और झट श्रीजानकीजीका स्वरूप बन गयीं।

इसी वीच हनुमान्‌जी वहाँ उपस्थित हुए। वहाँ वे अपने इष्टदेव श्रीसीता-रामजीको देखकर उनके चरणोंपर गिर गये। इस समय भी वे गरुड और सुदर्शनचक्रको बड़ी सावधानीसे अपने दोनों वगलोंमें दबाये हुए थे। भगवान् श्रीकृष्णने (राम-वेशमें) उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा—‘वत्स ! तुम्हारी कॉखोंमें यह क्या दिखलायी पड़ रहा है ?’ हनुमान्‌जीने उत्तर दिया—‘कुछ नहीं, सरकार; यह तो एक दुबला-सा क्षुद्र पक्षी निर्जन स्थानमें मेरे श्रीरामभजनमें बाधा ढाल रहा था, इसी कारण मैंने इसको पकड़ लिया। दूसरा यह चक्र-सा एक खिलौना है; यह मेरे साथ टकरा रहा था, अतएव इसे भी दाव लिया है। और आपको यदि पुष्पोकी ही आवश्यकता थी तो मुझे क्यों नहीं सरण किया गया ? यह बैचारा पखेरु महाबली गिरभक्त यक्षोंके सरोवरसे बलपूर्वक पुष्प लानेमें कैसे समर्थ हो सकता है !’

भगवान्नने कहा, ‘अस्तु ! इन बैचारोंको छोड़ दो। मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ; अब तुम जाओ, अपने स्थानपर स्वच्छन्दतापूर्वक भजन करो।’

भगवान्नकी आशा पाते ही हनुमान्‌जीने सुदर्शनचक्र और गरुडको छोड़ दिया और उन्हे पुनः प्रणाम करके ‘जय राम’ कहते हुए गन्धमादनकी ओर चल दिये। गरुडको गतिका, सुदर्शनको शक्तिका और पट्टमहिषियोंको सौन्दर्यका बड़ा गर्व था। वह एकदम चूर्ण हो गया।

श्रीमारुति-गर्व-भङ्ग

हनुमान्‌जी जब लङ्घा-दहन करके लौट रहे थे, तब उन्हें समुद्रोलहुन, सीतान्वेषण, रावण-भद्र-भर्दन एव लङ्घा-दहन आदि कायोंका कुछ गर्व हो गया। दयाल भगवान् इसे ताड़ गये। हनुमान्‌जी घोर गर्जना करते हुए जा ही रहे थे कि रास्तेमें उन्हे बड़ी प्यास लग गयी। महेन्द्राचलपर उन्होंने दृष्टि दौड़ायी तो उनकी दृष्टि एक मुनिपर गयी, जो शान्त वैठे हुए थे। उनके पास जाकर हनुमान्‌जीने कहा—‘मुने ! मैं श्रीरामचन्द्रजीका सीतान्वेषणका कार्य करके लौटा आ रहा हूँ।

मुने बड़ी प्यास लग रही है; योद्धा जल दीजिये था किसी जलाशयका पता बताइये।’ मुनिने उन्हें तर्जनी अङ्गुलिसे एक जलाशयकी ओर इशारा किया। हनुमान्‌जी श्रीसीताजीकी दी हुई चूडामणि, मुद्रिका और एक ब्रह्माजीका दिवा हुआ पत्र—यह सब मुनिके आगे रखकर जल पीने चले गये। इतनेमें एक दूसरा बदर आया, उसने इन सभी वस्तुओंको उठाकर मुनिके कमण्डलमें डाल दिया। तबतक हनुमान्‌जी जल पीकर लैटे। उन्होंने अपनी वस्तुओंके सम्बन्धमें पूछा। मुनिने

भैदेहके इशारेसे उन्हें कमण्डलकी ओर निर्देश दिया। इनुमानजीने ऊपचाप जाकर कमण्डलमें देखा तो टीक उसी प्रसारसी नमनामाद्वित इजार्ये मुट्ठिकाएँ दिल्लायी पड़ीं। अब वे बहुत धमगरे। उन्होंने पृथा, व्ये सर मुट्ठिकाएँ आगको कहाँसे मिर्ने तथा इनमें मेरी मुट्ठिका कौन-न्हीं है ?

मुनिने उन्नर दिया कि जन-जय श्रीरामादान होताहै और सीता हरणके पधारू, इनुमानजी पता ल्यान्नर लौटते हैं, तब शोध-मुट्ठिका वहाँ छोड़ जाते हैं। वे ही सर मुट्ठिकाएँ इनमें पड़ी हैं। अब तो इनुमानजीमा गवं गल गया। उन्होंने पृथा—मुने ! दिनने गवव यहाँ आये हैं ? मुनिने कहा, ‘‘यह तो मुट्ठिकाओंका गणनासे ही पता चल सकता है।’’ पर इनुमानजीने देखा तो उन मुट्ठिकाओंका कोइं अन्त नहीं था। उन्होंने सोचा, ‘‘भव्य मुक्षन्तैसे किनने लौगाँने ऐसे

कार्य कर रखते हैं, इनमें मेरी क्या गणना !’’ किर वे बहाँसे चलनर अझदादिसे मिलकर प्रभुके पास आये। वहाँ वे अत्यन्त उन्ते हुए कहने लगे—‘‘ग्रमो ! मुझसे एक वज्ञा अपराध बन गया है।’’ और फिर सारा मुनि-बृक्षान्त सुना दिया। प्रभुने कहा—‘‘भद्र ! मुनिलप्ये तुम्हारे कल्याणके लिये मैंने ही वह कौतुक रखा था। देखो ! वह मुट्ठिका तो मेरी अहुलिमें ही लगी है।’’

अब श्रीअख्तीनन्दन, केसरिनियोर इनुमतलाल्का गर्व सर्वथा नष्ट हो गया। उन्होंने प्रभुके विष्णुव्यन्नपत्र विभासु दिया और वही ही अद्वाये वे उनके चरणोपर गिर गये और चिर फालतक लेटे रहे।

(आनन्दरामाया, सारकाट, अव्याय १, इनोक ३८० से ३१६ नक)

भीमसेनका गर्व-भद्र

भीमसेनको अग्नी शक्तिका वज्ञा गर्व था। एक बार वनवास-कालमें जप वे न्योग गन्धमादन पर्वतपर रह गए थे, तब द्वौरकीसे एक सह्लदल-कमल वायुकोगसे उड़ता आता दीक्षा। उसे उसने ले लिया और भीमसेनसे उसी प्रकारका एक और कमल लानेसे रक्षा। भीमसेन वायुकोणकी ओर चल पड़े। चलते समय भीपण गर्जना करना उनका स्वभाव ही था। उनके इस भीपण शब्दसे वाव अपनी गुफाओंको छोड़कर भागने लगे। जगली जीप जहाँ-नहाँ छिपने लगे, पक्षी भयभीत होकर उड़ने लगे और मृगोंके स्फुट घघरगकर जोकड़ी भरने लगे। भीमसेनकी गर्जनासे सारी दिशाएँ गूँज उठीं। वे वरपर आगे बढ़ते जा रहे थे। आगे जानेपर गन्धमादनकी चोटीपर उन्हें एक विश्वाल केलेका बन मिला। महामल्ली भीम दृष्टिहके समान गर्जना करते हुए उसके भीनर शुभ गये।

इस दूसी बनमें महार्पण इनुमानजी रहते थे। उन्हें अग्ने छोटे भाद्र भीमसेनके उधर आनेका पता लग गया। उन्होंने सोचा कि अब आगे न्यंगके मार्गमें जाना भीमके लिये मरणाक होगा। यह सोचकर वे भीमसेनके उत्तमें लेट गये। अब भीमसेन उनके पास पहुँचे और भीपण सिहनाद किया। भीमसेनकी उस गर्जनासे बनके जीव-जन्मुओं और पक्षियोंको वज्ञा त्रास हुआ। इनुमानजीने भी अपनी आँवें झोल्ने और उपेशापूर्वक उनकी ओर देखते हुए कहा—‘‘मैं तो रोगी हूँ, यहाँ आनन्दसे सो रहा था, तुमने आकर क्यों लगा दिया ? समझदार व्यक्तिको जीवोंपर

दया करनी चाहिये। यहाँसे आगे वह पर्वत मनुष्योंके लिये अगम्य है। अत अब तुम मीठे कन्द-मूल-भल खासर यहाँसे लौट जाओ। आगे जाकर व्यर्थ अपने प्राणोंको सकटमें क्यों दालते हो !’’

भीमसेनने कहा—‘‘मैं माँ या बच्चू तुमसे तो इस विषयमें नहीं पूछ रहा हूँ। तुम जरा उठकर मुझे रास्ता दे दो।’’ इनुमानजीने कहा, ‘‘मैं रोगाए पीड़ित हूँ, तुम्हें जाना ही है तो मुझे लाँचकर चले जाओ।’’ भीमसेन बोले—‘‘परमात्मा सुमन्न प्राणियोंके देहमें है, मिसीको लाँचकर मैं उसका अपमान नहीं करना चाहता।’’ इनुमानजीने कहा, ‘‘तो तुम मेरी पूँछ पकड़कर हटा दो और निकल जाओ।’’ इनुमानजीका यह कहना था कि भीमसेनने अवश्यापूर्वक वायें हाथसे इनुमानजीकी पूँछ पकड़कर वहे जोरसे लाँची। पर वे टस-से मस न हुए। अब क्रोधसे भरकर उन्होंने दोनों हाथोंसे उनकी पूँछको न्वीनना आगम्प किया। पर इतनेपर भी उनकी पूँछ टस-से मस न हुई। जब भीमकी सारी शक्ति व्यर्थ चली गयी, तर उनका मुँह लजाए छुक गया। वे समझ गये कि यह बानर कोई सागरण बानर नहीं है। अतएव उनके चरणोंपर गिरकर क्षमा माँगने लगे। इनुमानजीने अग्ना परिचय दिया और बहुत-सी नीतिका उपदेश करके उन्हें वहाँसे लौटा दिया। वहाँ उन्होंने भीमसेनको यह बरदान दिया था कि महामातृ-युद्धके समय मैं अर्जुनकी ध्वजापर वैटकर तुमलोगोंकी सहायता करूँगा। (महामातृ, बनपर्व, अव्याय ४३-४७)

सर्वश्रेष्ठ शासक

प्रियदर्जीं सम्राट् अगोके जन्म-दिनका महोत्सव था। सभी प्रान्तोंके शासक एकत्र हुए थे। सम्राट् की ओरसे घोषणा हुई—‘सर्वश्रेष्ठ शासक आज पुरस्कृत होगा।’

उत्तरसीमान्तके प्रान्तपरिने बताया—‘प्रादेशिक शासनकी आय में तीनगुनी कर चुका हूँ।’

दक्षिणके शासकने निवेदन किया—‘राज्यकोषमें प्रतिवर्षकी अपेक्षा द्विगुण स्वर्ण मेरे प्रान्तने अर्पित किया है।’

पूर्वीय प्रदेशोंके अधिकारीने सूचना दी—‘पूर्वी सीमान्तके उपद्रवियोंको मैंने कुचल दिया है। वे राज्यके विरुद्ध सिर उठानेका साहस फिर नहीं करेंगे।’

एक और प्रान्ताधिप उठे—‘प्रजासे प्राप्त होनेवाली आय बढ़ गयी है, सेवकोंका व्यय घटा दिया है और आयके कुछ दूसरे साधन भी हूँड़ लिये गये हैं। कोषाध्यक्ष श्रीमान्‌को विवरण देंगे।’

अन्तमें उठे मगधके प्रान्तीय शासक। उन्होंने नम्रता-

पूर्वक कहा—‘श्रीमान्। मैं क्या निवेदन करूँ। मेरे प्रान्तने प्रतिवर्षकी अपेक्षा आधेसे भी कम धन राज्यकोषमें दिया है। प्रजाका कर घटाया गया है। राज्यसेवकोंको कुछ अधिक सुविधा दी गयी है। प्रान्तमें सार्वजनिक धर्मशालाएँ तथा मार्गोंपर उपयुक्त स्थलोंमें कुएँ बनवाये गये हैं। अनेक स्थानों-पर रोगियोंकी चिकित्साके लिये चिकित्सालय खोले गये हैं और प्रजाके बालकोंको गिक्षित करनेके लिये पर्याप्त पाठ-शालाएँ खोली गयी हैं।’

सम्राट् सिंहासनसे उठे। उन्होंने घोषणा की—‘मुझे प्रजाका शोषण करके प्राप्त होनेवाली स्वर्णराजि नहीं चाहिये। प्रजाके शरोंकी उचित वातें सुने विना उनका दमन करनेकी मैं निन्दा करता हूँ। प्रजाको सुख-सुविधा दी जाय, यही मेरी इच्छा है। मगधके प्रान्तीय शासक सर्वश्रेष्ठ शासक हैं। इस वर्षका पुरस्कार उनका गौरव बढ़ायेगा। अन्य प्रान्तोंके शासक उनसे प्रेरणा ग्रहण करें।’ —सु० सिं०



अद्भुत पितृ-भक्ति

मनुष्य कैसा भी हो, उसमें कुछ-न-कुछ दुर्बलता भी होती ही है। देवप्रिय सम्राट् अगोकमें अपार सद्गुण थे; साथ ही एक दुर्बलता भी थी। उन्होंने बुद्धप्रेमे विवाह किया था और वे अपनी उस नवी रानी तिष्यरक्षिताके वगमें हो गये थे। उधर तिष्यरक्षिताने महाराज अगोकके ज्येष्ठ पुत्र कुणाल-को जो देखा तो उसका चित्त उसके वशमें नहीं रहा। उसने कुणालको अपने यहाँ बुलवाया। राजकुमार कुणालने सौतेली माताका भाव समझा तो एकदम सहम गये। वे तिष्यरक्षिताका वृणित प्रसादव स्वीकार नहीं कर सके। तिष्यरक्षिताने उनकी अस्वीकृतिसे क्रोधोन्मत्त होकर पैर पटकते हुए कहा—‘तुम्हारे जिन सुन्दर नेत्रोंने मुझे आकूल किया है, उन्हें ज्योतिहीन न कर दूँ तो मेरा नाम तिष्यरक्षिता नहीं।’

महाराज अगोक तो छोटी रानीके बड़में थे ही। तक्षशिलाके सभीप शत्रुओंने कुछ उपद्रव किया है, यह समाचार महाराजके पास आया। तिष्यरक्षिताने महाराजको मन्त्रणा दी—‘कुणाल अब बड़ा हो गया है, उसे युवराज होना है; अतः राज्यकार्य और शत्रु-दमनका अनुभव प्राप्त करना चाहिये उसे। आप मेरी बात मानें तो उसे तक्षशिला इस समय भेजें।’

महाराजकी आशासे कुणाल सेनाके साथ तक्षशिला गये। उनकी पत्नी भी उनके साथ ही गयीं। राजकुमारने अपने नीति-कौशलसे विना युद्ध किये ही शत्रुओंको वशमें कर लिया। उनके निरीक्षणमें वहाँ सुव्यवस्था स्थापित हो गयी।

इधर राजधानीमें तिष्यरक्षिताने महाराजका पूरा विश्वास प्राप्त कर लिया। वह राजकीय मुहर भी अपने पास रखने लगी। अवसर पाकर उसने तक्षशिलाके मुख्य अधिकारीके नाम महाराजकी ओरसे आज्ञापत्र लिखा—‘कुणालने राज्यका बहुत बड़ा अपराध किया है। आज्ञापत्र पाते ही उसके नेत्र लौहशलाका डालकर फोड़ दिये जायें और उसका सब धन छीनकर उसे राज्यसे निकाल दिया जाय।’ आज्ञापत्रपर राजकीय मुहर लगाकर उसने गुसरूपसे वह पत्र भेज दिया।

तक्षशिलाके सभी अधिकारी राजकुमार कुणालकी सच्चरित्रता तथा उदारताके कारण उनसे प्रेम करते थे। महाराजका आज्ञापत्र पहुँचनेपर वे चकित रह गये। आज्ञापत्र कुणालको दिखलाया गया। कुणालने पत्रको देखकर कहा—‘पत्र किसने लिखा है, यह मैं अनुमान कर सकता हूँ; मेरे पिताको इसका पता भी नहीं होगा, यह भी मैं जानता हूँ। किंतु

इस पत्रम् भवत्यज्ञनी मुहर है। अतः गजानना समान व्यवहय होना चाहिये।^१

कोई अधिकारी तब नहीं हुआ और कोई चलाद तक तैयार नहीं हुआ कुणालके नेत्रोंमें लोहेनी शलका डालनेके लिये। तब कोई उद्यत नहीं हुआ; तब उन प्रियमन्त्र रुजु-हुमाने स्वयं अपने नेत्रोंमें लोहेनी कीं छुसेड लीं। नियार्थी आशका समान बननेके लिये वह स्वयं अचा हो गया। लीको साथ लेकर वह वहाँसे निकल पड़ा। अब वह रुक्षा

मिलानी था। अपनी बीणा बलाकर भीख भाँगते हुए वह एक स्थानसे दूररे स्थानपर मटकने लगा।

पार करतज छिगा नह सकता है। रुक्षुमार कुणाल जब मटकता हुआ भगव पहुँचा; पितामहग पहचान लिया गया। उन उद्युने प्रार्थना की—‘मेरी सौतेली माताको क्षमा किया ज़रूर। परन्तु अशोक तिथ्यजिनाको क्षमा नहीं कर सके। उसे प्रागदण्ड मिल। कुणालके पुत्रको भवानजने उत्तराविकारी बनाया।—२०० मि०

सत्यकी ज्योति

‘महेन्द्र विद्रोही हो गया है, सप्त्राट्। वह अविक्षा और ऐश्वर्यमें इतना उन्नत है कि उसे आमके घर्मरुपके सिद्धान्तोंका बनिक भी व्यान नहीं रह गया है। दिन-दोगहर प्रलग्नर मनमाना अत्याचार करना उसका तथा उसके बैनिकों और आश्रित अविक्षाग्योंका कार्य-क्रम हो चला है। प्रजा विद्रोह करेगी, नहागज। नहामन्त्री राजागुप्तने मगधेश्वर भागतसप्त्राट् अशोकके घर्मसिद्धान्तनके सामने नतमस्तक हो अभिवादन किया।

रुज-समामें उपस्थित मन्त्रिगण तथा अन्य सदस्य निस्तित हो उठे। पाटनिपुत्रके भव्य राजमन्त्रमें सन्नाटा था गया। अशोकके नेत्र लाल हो गये। अहिष्क उप्राट् सब कुछ उह सकृते थे, पर प्रजाके अहिष्कमें तहीन रहनेवालोंको दाढ़ देनेमें वे कभी आगा-पीछा नहीं करते थे। सौरिले भाई महेन्द्रका यह महान् अपराव या उनकी दृष्टिमें। सप्त्राट्के आदेशसे महेन्द्र राजसमामें उपस्थित हुआ और अगरावी-कङ्गमें बड़ा हो गया।

‘मूने तुमसे इस प्रकाशके कुनित आचरणकी आद्या नहीं थी। तुमने सप्त्राट् चन्द्रगुप्तके नजरिहासनको लालित लिया है। जानते हो इस अपरावका दण्ड? जानते हो प्रजार्थी शानिको भद्र करनेका परिणाम?’

‘मृत्यु।’ मेरा आचरण बालवमें प्रजाके लिये अहिष्क हो चला था, देव। मृत्यु-दण्ड देनेके पहले सात दिनके अवकाशकी माँग है। यह आपके भाईकी याचना नहीं, पाटलिपुत्रके एक अगरावी नागरिककी याचना है।^२ महेन्द्र नतमस्तक था।

‘आन ठड़ा दिन है, अगरावी। कल तुम्हारे समस्त राग-रग सुमात हो जायेंगे।’ कागुगार-अविक्षार्थीने महेन्द्रको साक्षात् किया।

महेन्द्र अन्वकान्पूर्ण कालकोठरीकी दीवारकी ओर देखने लगा। एक दर्घनसे उसने भगवती गङ्गाकी घवलिमाका दर्शन किया उसपर दूरते दर्शकी लालिमा विकल थी। वह झगेलेके पास आ गया और साथ शानिमें उसने अद्भुत प्रकाश देता।

‘मुझे सत्यकी ज्योति मिल गयी। मैंने मृत्युको लीत किया। वह आमन्दसे नाच उठा।

‘तुम वालवमें मुक्त हो गये अब, महेन्द्र।’ अशोक उनकी वातेसे प्रसन्न थे। वे अन्तिम विदा देने आये थे। सूर्य दूर गया। प्रहरीने एक दिमटिमाता दीपक सोगनपर नक्षकर मारतसप्त्राट्का अभिवादन किया।

‘हूँ मैंना। मुझे अमन्ता मिल गयी। सम्यक् सम्बोधिकी प्राप्ति हो गयी मुझे। घर्म-ज्योति देखी है मैंने।’ उसने सप्त्राट्का आलिङ्गन किया।

‘पाटलिपुत्रका गजप्रानाद प्रतीक्षा कर रहा है, महेन्द्र।’ अशोकने मूर्ति-नटेश्वर सुनाया।

‘नंदा सप्त्राट्। अब तो पहाड़, बन, निर्जन स्थान ही मेरे आश्रय है। मैं घर्मकी ज्योतिसे जनताको सुन्तोषित करूँगा। यह प्रजाके कल्याणका मार्ग है।’ वह जाहगारसे निकलकर पहाड़ीकी ओर चला गया।

‘तुम घन्य हो, श्रमण।’ सप्त्राट् अशोक साठर नतमस्तक थे। —२०० मि०

* इतिहासकारोंने महेन्द्रको अशोकका पुत्र माना है, पर हेन्द्रनाथने कपने भगवन्मृत्युनामें उसे विनाश नाई स्वीकार किया है।

पाँच स्कन्धोंका संघात *

(लेखक—श्रीप्रतापनारायणजी टडन)

एक बार एक ग्रीक राजा एक बौद्ध भिक्षुके पास गया। उसने उस भिक्षुसे, जिसका नाम नागसेन था, पूछा—
 ‘महाराज। आप कहते हैं कि हमारे व्यक्तित्वमें कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जो स्थिर हो। फिर यह बताइये कि वह क्या है, जो सधके सदस्योंको आजा देता है, पवित्र जीवन व्यतीत करता है, उपासना करता है, निर्वाण प्राप्त करता है, पाप-पुण्यका फल भोगता है? आपको सधके सदस्य नागसेन कहते हैं? यह नागसेन कौन है? क्या सिरके बाल नागसेन हैं?’
 भिक्षुने कहा—ऐसा नहीं है।

राजाने फिर पूछा—क्या ये दॉत, मास, मस्तिष्क आदि नागसेन हैं?

उसने कहा—नहीं।

राजाने फिर पूछा—फिर क्या आकार, वेदनाएँ अथवा सक्षार नागसेन हैं?

उसने उत्तर दिया—नहीं।

राजाने फिर पूछा—क्या ये सब वस्तुएँ मिलकर नागसेन हैं? या इनके बाहर कोई ऐसी वस्तु है, जो नागसेन है?

उसने फिर कहा—नहीं।

राजाने अब कहा—तो फिर नागसेन कुछ नहीं है। जिसे हम अपने सामने देखते हैं और नागसेन कहते हैं, वह नागसेन कौन है?

अब भिक्षु नागसेनने राजासे कहा—राजन्! क्या आप पैदल आये हैं?

राजाने उत्तर दिया—नहीं, रथपर।

तब उसने पूछा—फिर तो आप जरूर जानते होंगे कि रथ क्या है। क्या यह पताका रथ है?

राजाने कहा—नहीं।

उसने पूछा—क्या ये पहिये या धुरी रथ है?

राजाने कहा—नहीं।

उसने फिर पूछा—फिर क्या ये रस्सियाँ या चाबुक रथ है?

राजाने कहा—नहीं।

उसने पूछा—क्या इन सबके बाहर कोई चीज है, जो रथ है?

राजाने कहा—नहीं।

उसने कहा—तो फिर रथ कुछ नहीं है। जिसे हम अपने सामने देखते हैं और रथ कहते हैं, वह क्या है?

राजा बोला—ये सब साथ होनेपर ही उसे रथ कहते हैं, महात्मन्।

इसपर भिक्षु नागसेनने कहा—राजन्। ठीक है। ये सब वस्तुएँ मिलकर ही रथ हैं। इसी प्रकार पाँच स्कन्धोंके सघातके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

विद्याका अहंकार

एक बौद्ध ब्रह्मचारी था। अवस्था दीर्घ वर्षकी होगी। चतुर तो था ही, ज्ञानार्जनमें भी कुगल और तत्पर था। वह अपनी प्रगतिके लिये अनेक कलाओंका अभ्यास करना चाहता था और एतदर्थ वह कई देशोंमें घूमता रहा। एक व्यक्तिको उसने वाण बनाते देखा और उससे वाण बनानेकी कला सीख ली। इसी प्रकार एक दूसरे देशमें जाकर उसने जहाज बनानेकी—नौनिर्माण-कला सीख ली। एक तीसरे देशमें जाकर गृहनिर्माण-कला भी सीख ली। इसी प्रकार वह सोलह देशोंमें गया और वहाँसे अनेक कलाओंका विशारद होकर लौटा। वह अपने देशमें पहुँचा तो प्रायः अहकारसे लोगोंको

पूछ वैठता—‘पृथ्वीपर है मुझ-जैसा कोई चतुर व्यक्ति?’

भगवान् बुद्धको इस युवा ब्रह्मचारीकी दशापर दया आयी। उन्होंने उसे एक उच्चतर कला सिखानी चाही। वे एक बृद्ध श्रमणका वेष बनाकर हाथमें भिक्षापात्र लिये उसके सामने उपस्थित हुए।

‘कौन हो तुम?’ ब्रह्मचारीने बड़े अभिमानसे पूछा।

‘मैं आत्मविजयका पथिक हूँ।’ भगवान् ने कहा।

‘क्या अर्थ है तुम्हारे इस कथनका?’

‘इषुकार वाण बना लेता है, नौचालक जहाजपर नियन्त्रण रख लेता है। गृहनिर्माता घर भी बना लेता है।

* एक दार्शनिक ग्रन्थके एक चक्ररणके आधारपर।

पर यह तो भगविदानका ही कार्य है जो अपने शरीरमें नम्मर नियन्त्रण रख सके—आनन्दित्य पा रके।^१

‘किंतु प्रकरं’^२ युवकने प्रश्न किया।

‘यदि सुन्दर उल्लभी प्रशंसाके गीत गाता है तो उत्तरा मन धार्म स्थिर है। यदि उन्मार उच्चे गार्व देता है, तब भी उत्तरा

दिल्लिनामा ठंक है। जो ऐसा है, वही साधक यात्रित तथा निर्वाणको प्रत करता है—ज कि प्रशंसाना इच्छुक।’
उच्चर या भगवद्वक्ता। वह नृनक्ष गया जपनी भूलक्तो।

—३० श०

(Dhamma Pada, Translated by Beal, Section XIV)

सच्ची दृष्टि

प्रार्चान कान्दे तिहल्दीरके अनुराशपुर कारसे बाहर एक दीन था। उसे चैत्यरम्बन कहा जाना था। उत्तरा नहीं निष्प नम्मके एक दोढ़ भिन्नु रहा करते थे। एक दिन वे भिन्ना भौगोले नगरमी और ल रहे थे। नगरमें एक युवती ननी निर्ली। वह अपने पनिसे फ़ग़दा करके अपने निताके घर नगरी ल गई थी। उस तर्को आकर्षण नोद्देव था। भिन्नुको देखकर उन्हें अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये वह हँसने ल्या।

भिन्नु नहातिप्य बरामद चिन्नन करते रहते थे कि भगुप्य-शरीर हड्डी-नालका भिन्ना है। उस कीके हैं उन्मेव भिन्नुकी दृष्टि उसके दोतोंरर गयी। तीके चौन्दर्यकी ओर तो उनकी

नित्तवृत्ति नयी नहीं केवल यह माव उनके मनमें आय कि नह एक हड्डियोंका भिन्ना जा रहा है।

ती आगे चली गयी। योड़ी दूर जनेपर नगरकी ओरसे आता एक पुरुष भिल। वह उत्तर लीका पाति था। अपनी पनीको वह दृट्टने निकला था। उसने भिन्नुसे पूछा—‘नहारज।’ इन भागते गहने पहिने द्वाती किसी चुन्दरी युवती लीको आपने देखा है।

भिन्नु बोले—‘इसरसे कोई पुरुष गया या लीं। इस बातर तो मेरा ज्ञान गया नहीं किंतु इन्हना मुझे पता है कि इस भागते अभी एक अस्तिपङ्कर गया है।’—३० श०

मुक्तिका मूल्य

महाराज विम्बनारको निष्ठा नहीं आ रही थी। तीर्थकर महार्दीने न्यष्ट कह दिया था कि ‘उनको नक्क जाना पड़ेगा।’^३ नक्क—महाराज नरककी कल्पनारे ही नैन उठे थे। उन्होने निश्चय किया—‘रुद्ध भी हो, मैं नरकरे बाग पाउँगा।’ मेरे पास कोप है, नाग्राज्य है, मोक्ष मेरे लिये अल्प्य कैसे रहेगा।

दूनरे दिन तूर्यकी प्रथन निरपेक्षे साथ महाराज पुल्मन्त्रलक्षण तीर्थकरके चरणोंमें उपस्थित हो गये। उन्होने प्रार्थना की—‘प्रभो ! मेरा समर्पण कोष और समूर्ण साम्राज्य श्रीचरणोंमें समर्पित है। नरकसे उद्धर करने कुसे कुन्ज करें।

तीर्थकरके अधर्योन्नर स्तितरेखा आयी। उन्होने देख लिया कि ‘अहम् नै ही यह रूप धारण किया है।’ मैं दान कर रक्षता हूँ, दान करूँगा। यह गर्व है और गर्व जहाँ है, वहाँ मोक्ष कैसा। महाराजको आदेश हुआ—‘अपने राज्यके

पुण्य नामक शावकरे एक सामायिकका फल प्राप्त करो। तुम्हारे उद्धारका यही उपाय है।’

महाराज उत्तर भावकरे उमीर पहुँचे। उनका यथोचित सत्कार हुआ। योड़ी कातरतारे उन्होने कहा—‘शावकभेड़।’ मैं याचना करने आय हूँ। मूल्य जो मौगोंगे दूँगा किंतु मुझे निराश मन करना।’

महाराजकी मौग सुनकर भावकरे कहा—‘महाराज ! सामायिक तो उमताका नाम है। राम-देवकी विषमताको चित्तसे दूर कर देना ही सामायिक है। यह कोई किसीको दे कैसे सकता है। अत उसे खरीदना चाहते हैं, किंतु उप्रदृहोनेके अहकारको छोड़े बिना उठे आप उपलब्ध कर कैसे सकते हैं।’

महाराज सामायिक खरीद नहीं लके किंतु उत्तरकी उपलब्धिका रहस्य वे पा गये। समत्वमें स्थित होनेवर उनको कोई मुक्त करे—यह अपेक्षा ही कहाँ रह गयी।—३० श०

अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्

जैनपुराणकी कथा है कि एक बार श्रीवलदेव, वासुदेव और सत्यकि—ये तीनों विना किसी सेवक या सैनिकोंके बनमें पटक गये। वात यह थी कि तीनोंके घोड़े शीव्रगामी थे। वे नगरसे तो सेवक-मैनिकोंके साथ ही निकले थे, किंतु इनके घोड़े बहुत आगे निकल गये, सैनिक पीछे रह गये। घोर बनमें सैनिकोंसे वे पूर्वक हो गये। संघ्या तो कवकी वीत चुकी थी, रात्रिका अन्वकार फैल रहा था। अब न आगे जाना सम्भव था और न पीछे लैटना। एक सबन वृक्षके नीचे रात्रिविश्राम करनेका निश्चय हुआ। घोड़े वॉव दिये गये और उनपर कसी जीन भूमिपर उतार दी गयी।

रात्रिका प्रथम आधा प्रहर वीत चुका था। अन्तिम आधे प्रहरसे पूर्व तो तीनोंसे ही प्रातःक्लृत्यके लिये उठ ही जाना था। बान केवल तीन प्रहर व्यतीत करनेकी थी। निश्चय हुआ कि वारी-वारीसे एक-एक व्यक्ति जगते हुए रक्षाका कार्य करे और शेष दो निद्रा लें। पहले सत्यकिको रक्षाका काम करना था। जब वलदेव और वासुदेव सो गये, तब वहाँ एक भयकर मिश्राच प्रकट हुआ। वह सत्यकिसे बोल—‘मैं तुम्हें छोड़ दूँगा, इन दोनोंको भद्रण कर लेने दो।’

सत्यकिने उसे हॉटा—‘प्राण बचाना हो तो मार जा यहोसे। तीनिक भी इधर-उधर की तो कचूमर निकाल दूँगा।’

मिश्राचने लाल-लाल अँखें निकाली—‘तू नहीं मानता तो आ जा।’

मिश्राच और सत्यकि भिड़ गये। परंतु सत्यकि जिनना ही क्रोध करते थे, मिश्राचका आकार और बल उतना ही बढ़ता जाता था। उस मिश्राचने सत्यकिको अनेक बार पटका। स्थान-स्थानसे सत्यकिका गरीर छिल गया। उनका मुख नथा बुटने कूज गये।

युद्ध करते हुए जब एक प्रहर हो गया, मिश्राच स्वयं अदृश्य हो गया। सत्यकिने वलदेवजीको जगा दिया और

स्वयं सो गये। परंतु सात्यकिके निद्रामग्न होते ही मिश्राच फिर प्रकट हुआ। वलदेवजीसे भी उसने पहलेके समान बातें कीं और उनसे भी उसका द्वन्द्युद्ध होने लगा। पूरे एक प्रहर द्वन्द्युद्ध चल। मिश्राचका बल और आकार बढ़ता ही जाता था। वलदेवजीको भी उसने भरपूर तंग किया।

रात्रिके पिछले भागमें वासुदेव उठे। वलदेवजीके निद्रित हो जानेवर जब मिश्राच प्रकट हुआ और वासुदेवको उसने निद्रित लोगोंको छोड़कर चले जानेको कहा, तब वे बोले—‘तुम अच्छे आये। तुम्हारे साथ द्वन्द्युद्ध करनेमें एक प्रहर मजेसे बीतेगा। न निद्रा आयेगी और न आलस्य।’

मिश्राच वासुदेवसे भी भिड़ गया। परंतु इस बार उसकी दुर्गति होनी थी। वह जब दोत पीलकर धूसे या घण्ड चलाता था, तब वासुदेव हँस उठते थे—‘ओह, तुम अच्छे बीर हो। तुममें उत्साह तो है।’ इसका परिणाम यह होता था कि मिश्राचका बल व्रावर घटता जाता था और उसका आकार भी छोटा होता जा रहा था। अन्तमें तो वह एक छोटे कीड़े-जितना ही रह गया। वासुदेवने उसे उठाकर पटुकेके छोरमें वॉव लिया।

प्रातःकाल तीनों उठे। सत्यकिका मुख और बुटना इतना फूला था, उसे इतने घाव लगे थे कि उसे टेखते ही वासुदेवने पूछा—‘तुम्हें क्या हो गया है?’

सत्यकिने मिश्राचकी वात बतलायी। उसकी बातें सुनकर श्रीवलदेव बोले—‘ओह ! वहाँ भयंकर मिश्राच था वह। मुझे भी उसने बहुत तंग किया।’

वासुदेवने पटुकेके बोनेसे खोलकर मिश्राचको आगे रख दिया और बोले—‘वह रहा वह मिश्राच। आपलोगोंने इसे पहचाना ही नहीं। यह तो क्रोध है। जिनना क्रोध आप करते गये, उतना वह बढ़ता और बलवान् होता गया। यही इसका स्वरूप है। क्रोध न किया जाय तो इसका बल और विस्तार सब समाप्त हो जाता है।’—सु० सिं०

कथा-प्रेम

अवन्तीप्रदेशके कुरुक्षर नगरमें सातु कोटिर्ण पघारे थे। उनका प्रवचन सुनने नगरके श्रद्धालु जनोंकी भीड़ एकत्र होती थी। श्राविका कातियानी भी निवमपूर्वक कथाश्रवण करती थी। चोरोंने वह अवसर लक्षित कर लिया। एक दिन

जब कातियानी कथा सुनने गयी, चोरोंने उसके घरमें सेंध ल्यायी और भीतर धुस गये। सयोगवज्र कातियानीने एक दासीको भेजा—‘वर जाफर थोड़ा तेल ले आ। कथामें प्रदीप जलना ही है, मेरा तेल भी उसके उपयोगमें आ जायगा।’

दासी वर गरी किंतु केंद्र ल्पी डेवकर वके बाटने ही लैटी और दौड़नी हुईं अपनी स्वामिनीके पास आयी। बद कह रही थी—‘आप शीघ्र वर चलें! वर में चोरोंने सेंप लगायी है।’

कानिकानीने धीरेमे कहा—‘चुनवान बैठ। कथामें विष्म मन कर। चोर धन ही तो ले जायेंगे। मेरे प्राणधर्में इन होगा तो नि भिस्ता किंतु समुन्दरके द्वारा जीवनको पवित्र बनानेवाला ऐसा उत्तरेश्वर किंव कहाँ प्राप्त होगा।’

कानिकानीने अगमे सेंप लगाकर चोर मीनकी छुसे थे और उनका लग्दार वरसे कुछ दूर जड़ा हुआ डेव रहा या कि कोई आना तो नहीं है। कोई वायुकानी बान होनेवर साथियोंको बाबशान कर देना उनका काम या। दासी वरके पास आकर न्य लैटी, तर उन नादाने छिपे-जिपे उसका पीछा किया और इन प्रका वह भी कथास्थलक गया।

कानिकानीनी बातें उसने डुनीं। उसे बड़ी गलानि हुई—‘कहों तो यह धर्मान्मा नारी और कहों मैं अधम पापी कि उनींने वा चोरी वर रहा हैं।’

चोरोंका नादा शीघ्र लैट पड़ा। उसने अपने साथियोंको मिना छुट किये उप वरसे निष्ठ चलनेका आदेश दिया। चोर बहोंसे निष्ठ गये। पन्तु जब कानिकानी कथाते लैट आयी, तब उस चोर अपने सरटानके नाथ उसके वर पिंग आये। वे हाथ जोड़के बोले—‘देवी! आप हमें क्षमा करें।

कानिकानीने कहा—‘भाइनो। मैं तो आपलोगोंको पहचानती ही नहीं। आपने तो मेरा कोई अपराध किया नहीं है।’

इसने आपके परमे नैव लगायी। अब हम प्रतिज्ञा करते हैं कि चोरीका यह पार मिर कमी नहीं करेंगे।’ चोर उस देवीके चरणोंपर गिर पड़े।—सु० सि०

नशा उत्तर गया

नशा ही तो—कानका नशा चढ़ गया था तेढ़ बनदत्तके पुत्रके निरपर। एक नष्ट आपा उनके बहों और उसने अपनी कलाना प्रदर्शन किया, किंतु उसकी कन्याको डेवकर सेठका पुत्र इलायचीकुमार हठ नर बैठा—‘मैं इनीसे विश्वाह करूँगा। वह मुझे न मिली तो आमवात कर देंगा।’

सेठ बनदत्त क्या करते, इलायची उनका एकमात्र पुत्र था, उसकी हठके अगे उहैं छुक्का पड़ा। उन्होंने नयसे प्रस्ताव किया कि वह अपनी पुत्री दे दे, किंतु नष्ट लाल हो उठा—‘अनके मदमें मतवाले मन बनो।’ इम कागाल सही, किंतु हमार भी दुल्घारैख है, निसीका सम्मान पैसोंसे नहीं उरीदा जा सकता।’

नगर-नगर घूमनेवाले नष्टके द्वारा वह अपमान सहकर भी सेठ बनदत्त शान्त रह गये। उन्हें अपने पुत्रके प्रागोंकी चिन्ता थी। अनमें सेठकी अनुनाम-विनयपर नष्ट प्रतन्त्र हुआ। उसने कहा—‘आपका पुत्र मेरे साथ बाहर वर्ष रहकर मेरी कलाका अम्यास करे। जिस दिन किसी नयेदार वह पुरस्त्वन होगा, उसी दिन मेरी पुत्रीका उससे विवाह हो जायगा।’

इलायचीकुमारने नष्टकी बात र्खीकर का ली। मान-पिता, स्वजन तथा अपने वैभवको त्यागकर वह नष्टके साथ निकल पड़ा। बाहर वर्षतक उसने नष्टकी कलाका अम्यास

किया। कठोर श्रम न के वह उस विद्यामें प्रवीग हो गया।

नष्टके साथ इलायचीकुमार बाराणसी गया और वहोंके नयेदार उसकी कला देवकर प्रसन्न हो गये। नयेदारे कहा—‘नष्टकुमार। हम तुम्हारी कलापर प्रसन्न हैं, मौगो क्या मौगते हो?’

उस समय इलायची एक बहुत ऊने स्तम्भके सिरेपर बैठा था। उसकी दृष्टि दूर एक मवनके द्वारपर थी। वह देव रहा था कि वहों उन द्वारपर एक मुनि लड़े हैं और मवनसे एक अल्यन्त सुन्दरी नवविवाहिता युवती उन्हें भिक्षा देने आयी है। युवती पर्यास अधिक भिक्षा ले आयी है, किंतु मुनि योद्धी साम्राजे लेकर कह रहे हैं—‘वस करो, बहिन।’ इसी समय बाराणसीनयेदारका सम्बोधन उसके कानमें पड़ा—‘नष्टकुमार।’ इलायची चोक पड़ा—‘कौन नष्टकुमार? एक नगर-सेठका पुत्र मैं और मेरा इतना पतन।’

इलायचीकुमारका नशा उत्तर गया। उसने स्तम्भसे उत्तरकर सीधे उन मुनिके चरणोंमें उपस्थित होकर मस्तक छुकाया। मुनिसे उनने दीक्षा ग्रहण की। नष्टकुमारके मोहजालसे ही नहीं, मायारूपी नर्तनके मोहजालसे भी वह छूट गया। नाना योनियोंमें जन्म लेकर अनेक रूपसे नष्टकी माँति नाचते रहनेकी परम्परासे छुटकारा पा लिया उसने।

—सु० सि०

प्रतिकूल परिस्थितिसे बचे रहो

क्या हुआ जो स्थूलभद्र पहिले अत्यन्त विलासी थे और उन्होंने वारह वर्ष नर्तकी कोगाके यहाँ व्यतीत किये थे। जब उनके चित्तमें विवेकका उदय हुआ, वे सचमुच जाग्रत् हो गये। दीक्षा लेकर मुनिवेश ग्रहण करनेके अनन्तर उनका सयम, उनकी एकाग्रता, उनका वैराग्य कभी गियिल नहीं पड़ा। आज आचार्य अपने शिष्योंसे पूछ रहे थे—‘वे चातुर्मास्य कहाँ करेंगे?’ आचार्यके दो शिष्य उपयुक्त स्थान चुन चुके थे। तीसरेने कहा—‘मैं सिंहकी गुहामें चातुर्मास्य करूँगा।’ उन्हे भी अनुमति मिल गयी। अन्तमें स्थूलभद्रसे पूछा गया तो वे बोले—‘मैं ये चार महीने कोशाके घर व्यतीत करना चाहता हूँ।’

‘ये चार महीना तो क्या चार जन्म उसी पाप-पङ्कमें व्यतीत करेंगे। वह नर्तकी इन्हे भूल कैसे सकती है।’ गुरु-भाइयोंने परस्पर कानाफूसी प्रारम्भ की। परतु आचार्य गम्भीर हो गये। दो क्षण सोचकर उन्होंने कह दिया—‘तथास्तु।’

कोगा नर्तकी थी, वेश्या थी, किंतु स्थूलभद्रमें उसका सच्चा अनुराग था। स्थूलभद्र जब उसे छोड़कर गये थे—रात-रात जगकर वह रोती रही थी। आज वही स्थूलभद्र उसके यहाँ पधारे थे, क्या हुआ जो अब वे मुनिवेशमें थे। कोशाने उनका स्वागत किया। उनके रहनेकी सुव्यवस्था की। उनको रिक्षानेके प्रयत्नमें ला गयी। वह नर्तकी थी, लोकरचि परखना जानती थी और पुरुषको पहिचान सकती थी। शीघ्र ही उसने समझ लिया कि उसके आभूषण, उसके भव्य वस्त्र, उसका अद्भुत शृगार अब स्थूलभद्रको आकर्षित नहीं कर सकता। यह सब उन त्यागीके चित्तको उससे अधिक विमुख करेगा। नर्तकी कोगाने आभूषण उतार दिये। शृगार करना बद कर दिया। वह केवल एक उज्ज्वल साढ़ी पहिनने लगी। दासीकी भौति स्थूलभद्रकी सेवामें ला गयी। इससे भी जब स्थूलभद्र आकृष्ट नहीं हुए, तब उनके पैरोपर गिरकर एक दिन वह फूट-फूटकर रोने लगी।

स्थूलभद्र बोले—‘कोगा ! मैं वहुत दुखी हूँ तुम्हारे दुःखसे। तुमने मेरे लिये जीवन अर्पित कर दिया, भोग त्याग दिये, किंतु सोचो तो सही कि क्या जीवन इसीलिये है? नारी क्या केवल भोगकी सामग्री मात्र है? तुम्हारे भीतर जो मातृत्व

है, उसे पहिचानो। नारीका सच्चा रूप है माता। वह जगत्को मातृत्वका स्लेह देने उत्पन्न हुई है कोगा बहिन।’

विशुद्ध प्रेम हृदयमें वासना नहीं उत्पन्न करता, हृदयको वासनाशून्य करता है। कोगाका प्रेम शुद्ध था। उसकी वासना स्थूलभद्रके बब्दोंसे ही नष्ट हो गयी। उसने स्थूलभद्रके चरणोंमें मस्तक रख दिया। उन्हींसे दीक्षा ली उसने। उसका जीवन पवित्र बन गया।

चातुर्मास्य समाप्त करके शिष्य आचार्यके पास पहुँचे। स्थूलभद्रके सम्बन्धमें वे अनेक हीन सम्भावना कर रहे थे; किंतु स्थूलभद्र जब पहुँचे उनका जान्त, गम्भीर, ओजपूर्ण भाव देखकर सब जान्त रह गये। आचार्यने उन्हें अपने समीप आसन दिया।

अगला चातुर्मास्य आया तो आचार्यके तीसरे शिष्यने कोशाके यहाँ रहनेकी इच्छा प्रकट की। आचार्य बोले—‘तुम अभी इसके योग्य नहीं हो।’

‘जब सिंहकी गुफामें मैं निर्भय रह सका तो वहाँ भी स्थिर रहूँगा।’ शिष्यने आग्रह किया और आचार्यने खिन्न मनसे अनुमति दे दी।

वे कोगाके घर पहुँचे। कोगा अब नर्तकी नहीं थी। वह बहुत सादे वेशमें, संयमपूर्वक रहती थी। उसने नवीन मुनिका भी स्वागत किया। उनके रहनेकी भी सुव्यवस्था कर दी। कोशामें अब न मादक हाव-भाव था और न मोहक शृगार; किंतु उसके सौन्दर्यपर ही वे मुनि मुग्ध हो गये। अपने मनके सधर्षसे पराजित होकर उन्होंने अन्तमें कोशासे उसके रूपकी याचना की।

स्थूलभद्रकी शिष्या कोगा चौंकी। परतु उसमें नर्तकीका कौशल तो था ही। उसने कहा—‘मैं तो धनकी दासी हूँ। नैपालनरेशसे आप रक्त-कम्बल मॉगकर ला सकें तो आपकी प्रार्थना मैं स्वीकार करूँगी।’

वासना अधी होती है। मुनिका सयम-नियम छूट गया। वे पैदल जगल-पर्वतोंमें भटकते नैपाल पहुँचे और वहाँसे रक्त-कम्बल लेकर लौटे। कोगाने उपेक्षापूर्वक रक्त-कम्बल लिया। उससे अपने पैर पोंछे और फेंक दिया उसे गंदी नालीमें।

इतने श्रमसे प्राप्त उपहारका यह अनादर देरकर सुनि क्रोधपूर्वक बोले—‘मूर्टे ! इस हुर्लभ महामृत्यु कम्भलको तु नालीमें फेंकती है ।’

कोणाने तीक्ष्णस्थरमें उत्तर दिया—‘पहले अपनी ओर देखो कि तुम अपना अमृत्यु शीलगद कहाँ फेंक रहे हो ।’

सुनिको धक्का लगा, उनका सोया हुआ थिवेक जाग

उठा । उन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक चुकाया—‘मुझे क्षमा करो देवि ! तुम मेरी उद्धारिका हो ।’

चातुर्मास्य कवका वीत चुका था । आचार्यके चरणोंमें उपस्थित होकर जब उन्होंने सप्त वातें वतायाँ, तब आचार्य बोले—‘प्रतिकूल परिस्थितिसे वचे ही रहना चाहिये । सयमको स्थिर रखनेके लिये यह नितान्त आवश्यक है ।’ —सु० सि०

अपने बलपर अपना निर्माण

(लेखक—कविरत्न श्रीअमरचन्द्रजी सुनि)

एक बार श्रमण महावीर कुम्भार ग्रामसे कुछ दूर सध्यावेलमें ध्यानस्थ रहड़े थे । एक गोपाल आया और ध्यानस्थ महावीरसे बोला—‘रे श्रमण ! जरा देरते रहना मेरे बैल यहाँ चर रहे हैं, मे अभी लौटकर आगा ।’ दीर्घतपस्वी महावीर अपनी समाधिमें थे ।

गोपाल लौटकर आया तो देसा बैल वहाँ नहीं हैं, परन्तु श्रमण बैसे ही ध्यानमें स्थित है । पूछा—‘मेरे बैल कहाँ हैं ?’ इधर-उधर देसा भी बहुत । पर बैलोंका कुछ भी अत्ता-पता नहीं लगा । वे अपने सहज स्वभावसे चरते-चरते कहाँ दूर निकल गये थे ।

श्रमण महावीरका कुछ उत्तर न पाकर वह कोपमें भरकर बोला—‘धूर्त ! तू श्रमण नहीं, चौर है ।’ इधर वह गोपाल रस्तीसे श्रमण महावीरको मारनेके लिये उद्यत होता है, उधर देवराज इन्द्र स्वर्गसे आते हैं कि कहाँ यह अशानी श्रमण महावीरको सताने न लगे ।

इन्द्रने ललकारकर गोपालसे कहा—‘सावधान, तू जिसे चौर समझता है, वे राजा सिद्धार्थके वर्चम्बी राजकुमार वर्धमान हैं । आत्म-साधनाके लिये इन्होंने कठोर श्रमणत्वको धारण किया है । दीर्घ तप और कठोर साधना करनेके कारण ये महावीर हैं ।’

गोपाल अपने अज्ञानमूलक अपराधकी क्षमा माँगकर चला गया । पर, इन्द्रने श्रमण महावीरसे कहा—‘भते !

आपका साधनाकाल लम्हा है । इस प्रकारके उपसर्ग, परीपह और सकट आगे और भी अधिक आ सकते हैं । अतः आपकी परम पवित्र सेवामें मै आपके समीप रहनेकी कामना करता हूँ ।’

गोपालका विरोध और इन्द्रका अनुरोध महावीरने सुना तो अवश्य । पर अभीतक वे अपने समाधिभावमें स्थिर थे । समाधि खोलकर बोले—

‘इन्द्र ! आजतकके आत्म-साधकोंके जीवन-इतिहासमें न कभी यह हुआ, न कभी यह होगा और न कभी यह हो सकता है कि मुक्ति या मोक्ष अथवा कैवल्य दूसरेके बलपर, दूसरेके श्रमपर और दूसरेकी सहायतापर प्राप्त किया जा सके ।’

आत्म-साधक अपने बल, अपने श्रम और अपनी शक्तिपर ही जीवित रहा है और रहेगा । वह अपनी मस्त जिन्दगीका बादशाह होता है, भिसारी नहीं । वह स्वयं अपना रक्षक है, वह किसीका सरक्ष्य होकर नहीं रह सकता । साधकका कैवल्य मोक्ष साधकके आत्म-ब्रह्मसे प्रसूत होता है । श्रमण भगवान् महावीरके समुख जीवनके दो चित्र थे—गोपाल और इन्द्र । एक विरोधी, दूसरा विनत । एक श्रासक, दूसरा भक्त । परन्तु भगवान् दोनोंको समत्व दृष्टिसे देख रहे थे । न गोपालके अकृत्यके प्रति धृणा और न इन्द्रकी भक्तिके प्रति राग । यह समत्वयोग ही जनोत्थानका मूल-मन्त्र है ।

अभ्यका देवता

(लेखक—कविरत्न श्रीअमरचन्द्रजी सुनि)

विराट-विश्वको अभ्य, अद्वेष और अल्पेदका दिव्य सदेश देनेवाले भगवान् महावीरने साधना-पथपर चलनेवाले साधकोंको सम्बोधित करके कहा—‘साधको ! तुम स्वयं अपने

वैरी हो और स्वयं ही अपने परम मित्र भी । जब आत्मा क्रोधके क्षणोंमें होता है, तब अपना वैरी और जब क्षमाके क्षणोंमें होता है, तब अपना मित्र ।’

एक तपस्वी था। गिर्यके बार-बार कुछ कह देनेपर तपस्वीको क्रोध आया और मारने दौड़नेपर रातके अंधेरेमें खम्भेमें टकराकर मर गया।

तपस्वी मरकर भी अपने तपोवलसे फिर तापस बना। आश्रमका अविष्पति बन गया। नाम था चण्डकौशिक तापम्। एक बार आश्रममें ग्वाल-बाल फल-फूल तोड़नेके अभिग्राहसे आ घुसे और फल-फूल तोड़ने लगे। चण्ड-कौशिकने देखते ही ललकारा; किन्तु वे फिर आ घुसे। अबकी बार चण्डकौशिको प्रचण्ड क्रोध आया। कुल्हाड़ी लेकर दौड़ा मारने। क्रोधावेशमें ध्यान न रहनेसे कूपमें जागिरा और मर गया।

प्रचण्ड क्रोधके क्षणोमें मृत्यु होनेसे वह चण्डकौशिक तापम् उभी बनमें विष-दृष्टि सर्प बना। विषधर और भयङ्कर सर्पके भयसे भीत होकर लोगोंने उधर जाना-आना बद कर दिया।

एक बार परम प्रभु महावीर साधना करते-करते जा निकले उस बनमें। देखनेवाले लोगोंने जानेका निषेध भी बहुत किया। पर अभयको भय क्या? क्षमाश्रमण महावीरको विष-दृष्टि चण्डकौशिक नागराजने ज्याँ ही देखा कि झुकाकार करने लगा, विष-च्वाला उगलने लगा। वीर प्रभु भी उसके विलके पास ही अडिग और अमिट होकर शिर खड़े रहे। क्षमा और क्रोधका सघर्ष काफी देरतक चलता रहा। अपना तीक्ष्ण दग्ध भी मारा भगवान्के चरणमें। वहों तो खूनके बदले दूधकी धार वह निकली। वह हार गया।

क्रोधपर क्षमाकी विजय। अमृतने विषको जीत लिया। परम प्रभु महावीरने शान्त और मधुर स्वरमें कहा—‘चण्ड! चेतो, जरा सोचो-समझो। तुम कौन थे? क्या बन बैठे हो?’ वह समझा और तबसे लोगाको उसने अभय देना सीखा। लोग उसे मारते, तब भी शान्त रहता। अपने जीवनके क्षण पूरे करके वह देव बना।

नारी नरसे आगे

(लेखक—कविराज श्रीअमरचन्द्रजी मुनि)

सतीशिरोमणि राजमती—जिसका घरेलू प्यारका नाम राजुल था, यादववंशी एक उज्ज्वल कन्या-रक्त थी। यद्युकुल-भूपण नमुद्रविजयके तेजस्वी पुत्र नेमिकुमारके साथ राजुलका पाणि-ग्रहण निश्चित हुआ था। यह सयोग रत्न और सर्वांके सयोग जैसा था।

यथासमय नेमिकुमारकी वरयात्रा सज-धजके साथ द्वारकासे मथुरा पहुँची। विधिका विधान विचित्र होता है। कन्याके पिताने वहुत-से पश्चु-पक्षी इसलिये एकत्रित किये थे कि वर-यात्रियोंको अभिलिप्ति मास-भोजन दिया जा सके। एक वाडेमें वट और करुणापूर्ण विलाप करते पश्चु-पक्षियोंको देख, नेमिकुमारका कोमल मानस दयाकी पुकारसे भर गया। दयाशील एव करुणाप्रवण नेमिकुमारने अपना रथ लैटानेका सारायिको आदेश दिया और नयम-साधनाके लिये श्रमण बन गया।

राजुलका सुपुत्र मानस इस घटना-चक्रसे सजग हो गया। उच्च मस्तुतिसे मुस्तृत जीवन अपनी दिशा बदलनेमें विलम्ब नहीं करता। पतिकी जीवन-दिशा ही पत्नीकी जीवन-दिशा

होती है। सुकुमारी राजुल भी भोगसे निकल, कठोर योग-साधनामें सध गयी।

एक बार सती राजुल भगवान् नेमिनाथके दर्शनको रैवतगिरिपर चली। मार्गमें वर्षा हो जानेसे आद्रवसना होकर समीपस्थ पर्वत-गुफामें जा पहुँची वस्त्र सुखाने। सयोगवज्र उसी गुफामें भगवान् नेमिनाथका अनुज भ्राता रथनेमि श्रमण भी ध्यानस्थ खड़ा था।

राजुलका जातरूप देखकर विचलित हो उठा। योगको भूलकर भोगके कर्दममे फैसनेको तैयार हो गया। मानसमें दुषुप्त वासनाकी नागिन झुकाकर उठी। राजुल शितिकी नाजुकताको समझकर सतेज वाणीमें बोली—‘सावधान रथनेमि! अपनेको सेंभालके रख। जिस भोग-वमनका परित्याग कर श्रमणत्व सधारण किया, क्या उस वमनको फिर आस्वादित करेगा? पश्चु जिस गर्हित कर्मको करता है, उस अपकर्मको तू मानव होकर और फिर श्रमण होकर भी करनेको तैयार हुआ है—धिकार है तुझे। जिस-किसी भी नारीके रूपमें विमुख होकर यदि तू नयमकी सीमासे निकला, तो तेरी

स्थिति वही होगी, जो सेवको सतहपर स्थित बानप्रेरित हैंवालकी होनी है। अत अपनेको मैभल्लर न्हूँ ।^१

मत्तगवरज जैसे अंदूद्यसे चन्नागंग पा जाता है वैसे रथनेमि भी राज्ञके सुमाधिन अद्वितीय अमगच्छके प्रजित पथपर लौट आया।

राजुलका जीवन एक नस्कृत जीवन था। जनमानसुके विस्मृत और किल्स सद्भावोंके प्रबोधके लिये एक अनुपम मर्जीवन शक्ति है राजुलका गौरवमय नारी-जीवन। युग-युग-तक राजुलका जीवन-दीय भूलें-चूके गुमराहीको धर्मना सच्चा रासा बताता रहेगा।

भोगमेंसे जन्मा वैराग्य

(खेद—कठिन श्रीमन्नन्दनी मुनि)

मानव-जीवन एक धून्य-विन्दुके सदृश है। दमतक उसका हृष्ट भी मूल्य नहीं, जपतक उनके आगे ल्याग एवं वैराग्यका कोई अङ्ग न लगे। भोग और भोजनमें तथा बसन और मदनमें दिनुग्य रहनेवाले मानव-जीवनमें भी कभी इतना चमत्कारपूर्ण पगवर्त होता है कि वह अपने धून्य होते जीवनके आगे वैराग्यका अङ्ग ल्याकर मर्त्यसे अमृत हो जाना है।

विदेह देशकी राजानी मिथिलके राजा नमि भव-भोगमें अल्पन्त आसक्त रहते थे। भोगके अतिरेकमेंसे दाह-प्लक्ष वह भयकर काल्कुट फूट निकला, जो रात-दिन नमिके प्रिय देहको साल्जा रहता। नमिका जीवन-चुत्तुर जीवन-भारमें परिणत हो गया—सर्वत्र दुख और दर्दकी दुनिया।

वैद्यराजने बानन चन्दनके लेपका आदेश दिया। चन्दन विसुनेका द्वारा लेप करनेका काम राज्ञनियोंने अपने हाथमें ही रक्खा—नमिके प्रिय राजियोंके मनमें क्रितना गहरा अनुराग था।

चन्दन विसुते समय चूड़ियोंके सम्मिलनसे समुत्थित कोल्हापुर भी जब नमिको सज्ज न हो उठा, तब राजियोंने सौभाग्यमसूचक एक-एक चूड़ी रखकर अपना काम चान्द रखा। अब काम होते भी कोल्हापुर नहीं था, बानावणमें शान्ति थी।

नमिने पूछा—क्या चन्दन नहीं विसा जा रहा है? उत्तर मिला—विसा तो जा रहा है, परंतु हर रानीके हाथमें एक-एक चूड़ी होनेसे सर्वप्रणजन्य शब्द नहीं हो पा रहा है।

नमिकी अन्तःचेतना जागी। राजा नमि हृदयके अन्तर्सत्त्वमें उत्तरकर सोन्ने ल्या—एकत्रमें ही वासविक चुत्तुरा अशिष्टान है। एकत्व-भावनाकी, असङ्गत्व-विचारणाकी परकाश्यमेंसे वैराग्य आविर्भूत हुआ, जिसको पाकर नमि एक पलभर भी राजप्रापादोंमें न रह सके। आत्म-साधनाके महापथपर चल पड़े।

भोगका उद्घाट् योगका परिवाट् बनकर आत्म-भावमें भाविन होकर अमर बन गया।

सत्सङ्गका लाभ

राजद्वारा नगरमें रौहिणेय नामका एक चोर रहता था। उसके पिताने मन्ते समय उसे आदेश दिया था—‘गदि तुम्हें अपने व्यवसायमें सफल होना है तो कहीं क्याकार्तन और चांधुओंके उपदेशमें मन जाना ही पड़े तो कान बंद रखना।’^२

सद्योगकी बात—एक बार रौहिणेय कहीं जा नहा था। उसने देखा कि मार्गमें बहुत-से लोग एकत्र हैं। उर्मान पहुँचने पर जात हुआ कि श्रमण नहावार न्वार्मा उपदेश कर रहे हैं। रौहिणेयने चौककर अपने दोनों कानोंमें ऊँगुलियाँ डाल लीं।

लेकिन उसी समय उसके पैरमें कॉट्य तुम गया। विश्व हौकर उसे एक हाथसे वह कॉट्य निकालना पड़ा। इतने समयमें तीर्थेकरके उपदेशका यह अंश उसके कानोंमें पहुँच ही गया—‘देवताओंके शरीरकी ढाया नहीं पड़ती और उनके चरण पृथ्वीका सर्व न करके चार अंगुल उपर ही रहते हैं।’

रौहिणेय उस स्थानसे दूर हट गया। थोड़े दिनों पीछे वह चोरीके अपराधमें पकड़ा गया। राजकम्चारी उसे बहुत दिनोंसे ढूँढ रहे थे, किंतु पकड़ लेनेपर भी वह रौहिणेय ही है या कोई दूसरा व्यक्ति, यह निश्चय करना सरल

नहीं था। रौहिणेयको पहचानता कोई नहीं था और मारने-पीटने तथा अनेक प्रकारका कष्ट देनेपर भी रौहिणेय अपना कोई परिचय दे नहीं रहा था। दूसरा कोई उपाय न देखकर राजकर्मचारियोंने उस चोरको ऐसी औपध दे दी, जिससे वह मूर्छित हो गया। मूर्छित दग्गामें ही वे लोग उसे एक सुसज्जित उपवनमें रख आये।

जब रौहिणेयकी मूर्छा दूर हुई, तब वह अपने चारों ओर-का हृदय देखकर चकित रह गया। उस उपवनमें मणिजिटि मण्डप थे। अद्भुत वृक्ष थे और वहुमूल्य वस्त्राभरणोंसे भूषित क्षियों गाती-नजाती एव नाचती थी। उन युवती क्षियोंने उस चोरको नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बोली—‘देव ! कितने सौभाग्यकी वात है कि आप स्वर्ग पधारे। कृपा करके आप वतलायें कि आप मर्यालोकमें कहाँ किस नामसे जाने जाते ये। आप तो जानते ही हैं कि देवलोकमें

छल करना या झूठ बोलना वर्जित है। यहाँ असत्यका आश्रय लेनेवाला तत्काल च्युत कर दिया जाता है।’

‘मैं स्वर्ग आ गया ! ये स्वर्गीय देवियोंहैं !’ रौहिणेय चौंका। वह अपना परिचय देने ही जा रहा था कि उसे उस दिनके तीर्थेकरके मुखसे सुने बचन सरण हो आये—‘इनके शरीरोंकी छाया पड़ रही है और ये भूमिपर ही खड़ी हैं।’ उसने स्पष्ट कहा—‘मेरे साथ छल करनेकी आवश्यकता नहीं है। राजकर्मचारियोंसे कह दो कि मैं ही रौहिणेय हूँ; किंतु जिनके एक वाक्यके सुननेसे मुझे इतना लाभ हुआ, उन तीर्थेकरके चरणोंमें ही मैं अब अपना जीवन अर्पित कर देना चाहता हूँ।’

रौहिणेयके विचारोंका राजाने सम्मान किया। उसे क्षमा प्राप्त हो गयी और उस चोरने चोरी छोड़कर तीर्थेकरसे दीक्षा ग्रहण की।—सु० सिं०



महत्वपूर्ण दान

पट्टन-साम्राज्यके महामन्त्री उदयनके पुत्र बाहुद्ध जैनोंके ग्रनुज्ञयतीर्थका पुनरुद्धार करके दिवंगत पिताजी अपूर्ण इच्छा पूरी कर देना चाहते थे। तीर्थोद्धारका कार्य प्रारम्भ हुआ तो जनताके लोगोंने भी मन्त्री महोदयसे प्रार्थना की—‘आप समर्थ हैं; किंतु हमें भी इस पुण्यकार्यमें भाग लेनेका अवसर प्रदान करें।’

लोगोंकी प्रार्थना स्वीकार हो गयी। जिसकी जितनी शक्ति और श्रद्धा थी, उसने उतना धन दिया। जब तीर्थका उद्धार हो गया और आर्थिक सहायता देनेवालोंकी नामावली घोषित की गयी, तब लक्ष-लक्ष मुद्रा देनेवाले भी चकित रह

गये। सबसे पहला नाम था भीम नामक एक मजदूरका और उसने सहायता दी थी केवल सात पैसेकी।

मन्त्री महोदयने सम्पन्न लोगोंका रोष लक्षित कर लिया। वे बोले—‘भाईयो ! मैंने स्वयं और आप सबने तीर्थके उद्धारमें जो कुछ दिया है, वह अपने धनका एक भाग ही दिया है। लेकिन भीम पता नहीं कितने दिनोंके परिश्रमके बाद सात पैसे बचा पाया था। उसने तो अपना सर्वस्व दान कर दिया है। उसका दान ही सबसे बड़ा दान है, यह निर्णय करनेमें मुझसे भूल तो नहीं हुई !’

सबने भस्तक छुका रखा था। एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं निकला जो इसका विरोध कर सकता।—सु० सिं०

प्रलोभनोंपर विजय प्राप्त करो

चम्पा नगरीके व्यापारी माकदीके पुत्र जिनपालित और जिनरक्षित वार-न्वार जल्यानसे समुद्री यात्रा करते थे। समुद्री व्यापारमें उन्होंने पर्याप्त धन एकत्र कर लिया था। ऐसी ही एक यात्रामें समुद्रमें अधड़ आ गया; उनका जल्यान लट्ठरोंके चौपटेमें याकर डुकड़े-डुकड़े हो गया। पता नहीं लगा कि भृगु और संक्रांति क्या हुआ; किंतु वे दोनों भाई लकड़ीके

एक पटरेको पकड़कर समुद्रपर तैरते हुए एक द्वीपपर जा पहुँचे।

जिस द्वीपपर जिनपालित और जिनरक्षित वहते हुए पहुँचे थे, उसपर एक यक्षिणीका भवन था। ये दोनों भाई द्वीपपर पहुँचकर कुछ समयतक विश्राम करते रहे। यकावट दूर होनेपर वहाँके सरोवरमें स्नान करके फल-कन्द आदि

हूँढ़ने निरुचे । उसी समय यक्षिणीने उन्हें देखा । वह उन दोनोंको अपने भवनमें ले गया ।

उस यक्षिणीके भवनमें दोनों भाइयोंको कोई कष्ट नहीं था । उनसा भरपूर न्यायन-स्तुतार होता था । उन्हें सब सुखोभोग उत्तम होता था । इन्हुंने यक्षिणी उन्हें उस द्वापरे बाहर नहीं जाने देना चाहती थी । योड़े ही समयमें दोनों भाई अपने नगर जाना अपने सम्बन्धियोंसे मिलनें उत्सुक हो रहे थे । वे वहाँसे निकल मागनेता अवसर हूँढ़ने लगे ।

समय-समयर वे दोनों उन द्वीपमें घूमने निकलने थे । द्वीपके बन्ध प्रदेशमें घूमते समय उन्हें एक द्विनि मिल जो शूलीर चढ़ा दिया गया था । वह मृत्युने निकट पहुँच गया था । उससे जात हुआ नि वह भी व्यापारी है । समुद्रमें जलयानन्दे द्वावनेसे वह भी तैरता हुआ इस द्वीपर पहुँचा था । और यक्षिणीने उनसा भी पहिले पर्याप्त स्तुतार किया था । किंतु कुछ ही दिनों बाद भावारण अग्रवाल दृष्ट होकर यक्षिणीने उसे शूलीर लटका दिया । उसी पुनर्यने बताया—“इस द्वीपपर कुछ निश्चित तिथियोंमें एक यज्ञ योड़के न्यप धारण करके आता हे और पुकारता है—‘मैं निसे पार उतारौं’” उसके पास जाकर ग्रामीण झगड़ेसे वह समुद्र पार उतार देता है । परतु उनसा नियम है कि उसकी पीठपर बैठा व्यक्ति

वहि पीछे दौड़ती यक्षिणीके न्यप एवं हाव-भावपर आसक्त हो जाय तो वह यज्ञ उस व्यक्तिको तत्काल समुद्रमें फेंक देता है ।”

दोनों भाईयोंने उस व्यक्तिको धन्यवाद दिया । निश्चित तिथियाँ यज्ञ आया । सयोगवश यक्षिणी उस समय कहीं बाहर गयी हुई थी । दोनों भाई उस अश्वल्पधारी यज्ञके पास गये और उसने इनकी प्रार्थना न्वीकार कर ली । परतु जैसे ही दोनों भाई उसकी पीठपर बैठकर समुद्र पार होने लगे, यक्षिणी आ पहुँची । उसने बड़ा सुन्दर रूप बनाया था । वह दोनोंको पुकारने लगी—“यारे । तुम मुझे छोड़कर कहों जा रहे हो । तुम तो मुझे बहुत प्यार करने ये ।”

दोनोंमेंसे जिनरक्षितका मन विचलित होने लगा । जिन-पालितने कहा—“मैया । प्रलोभनमें मत पड़ो ।” किंतु वह यक्षिणी अब जिनरक्षितको ही नाना प्रकारसे सम्बोधित करके प्रेमदर्शन कर रही थी । उससे प्रभावित होकर जैसे ही जिनरक्षितने यक्षिणीकी ओर देखा, उस अश्वल्पधारी यज्ञने उसे अपनी पीठसे समुद्रमें फेंक दिया और उस कूर यक्षिणीने उसे मार डाला । जिनपालितपर अपनी वातोंका कोई प्रभाव न पढ़ते देखकर वह लैट गयी । प्रलोभनजीवी जिनरक्षितके ही भाग्यमें अपनी मातृभूमि और परिवारका दर्जन था ।

हमारे कुलमें युवा नहीं मरते

कार्यके राजा ब्रह्मदत्तके उत्तरमें एक ब्राह्मण रहता था—धर्मपाल । उसमें नामके अनुनार ही गुण थे । यहाँतक कि उसके बरके नौकर-चाकरतक वडे सदाचारी, दानी तथा ब्रत-उपवासप्रणाल थे ।

धर्मपालके एक ही पुत्र था । जब वह वयस्क हो गया, तब पिताने उसे पर्याप्त धन देकर तक्षशिला-महाविद्यालयमें पढ़ने मेज़ दिया । वहाँ पांच सौ शिष्य थे । योड़े ही दिनोंमें वह सबसे आगे निकल गया ।

दुर्देवदश एक दिन ऐसा हुआ कि आचार्यका एक युवा पुत्र मर गया । सभी लोग रोने-घोने लगे । अन्तमें इमण्डानसे नौटकर सभी पग्सर बात करने लगे—“देखो, कैसा युवा लड़का था, बेचार चल बगा ।” धर्मपालका लड़का भी वहाँ बैठा सब सुन रहा था । प्रसङ्गविद्यात् उसके मुँहसे निकल गया, “पर याई ! हमलोगोंके यहाँ तो कोई

युवा चक्क नहीं मरता ।” अब तो सभी लड़के उसकी खिल्ली उड़ाने लगे । बात आचार्यतक पहुँची । उन्होंने बुलाकर उससे सारी बात पूछी । उसने कहा—“गुरुदेव ! वर्षका कुछ ऐसा प्रभाव है कि हमारे यहाँ सात पीढ़ियोंतक कोई युवा नहीं मरा ।”

आचार्यको आश्र्वय हुआ । उन्होंने एक व्यक्तिको विद्यालयका भार सीपकर कुछ बकरेकी हाँड़ियों साथमें लैं और चल पड़े काशीकी ओर । पता लगाते हुए किसी प्रकार धर्मपालके गाँवमें भी पहुँच गये । धर्मपालने इनका बड़ा स्वागत किया । कुद्याल-प्रदेशकी बात आनेपर आचार्यने कहा—“धर्मपाल ! तुम्हारा पुत्र सहसा चल बगा । यह महान् क्षेत्रकी बात है ।” इसपर धर्मपाल वडे लोरोंसे हँस पड़ा और बोला—“महाराज ! कोई दूसरा मरा होगा । हमारे यहाँ तो आज सात पीढ़ियोंसे कोई भी युवा नहीं मरा ।”

अब आचार्यने हड्डियों दिखायीं। धर्मपाल बोला—‘महाराज ! ये हड्डियों तो बकरे-कुत्तेकी होंगी। हमारे यहाँ तो ऐसा होता नहीं। इतना कहकर वह फिर खिलखिलाकर हँस पड़ा।

अन्तमे आचार्यने अपने कपिल क्षेत्र खोला और उससे युवावस्थामें किसीके न मरनेका कारण पूछने लगे। धर्मपालने कहा—‘महाराज ! हम धर्मका आचरण करते हैं, पापकर्मोंसे दूर रहते हैं, सत्य खोलते हैं, असत्यसे दूर रहते हैं। सत्सङ्ग

करते हैं, दुर्जनसे दूर रहते हैं। दान देते समय मीठे बचन खोलते हैं। श्रमण, ब्राह्मण, प्रवानी, याचक, दरिद्र—इन सबों-को अन्न-जलसे संतुष्ट रखते हैं। हमारे यहाँके पुरुष पत्रीवत और छियों पतिव्रतका पालन करती हैं। इसी कारण धर्म धर्मचारीकी रक्षा करता है और हमलोग अल्पावस्थामें कभी भी मौतके मुँहमें नहीं जाते। —जा० श०

(जातक १० । ९)

मैं दलदलमें नहीं गिरूँगा

अभिरूप कपिल कौशाम्नीके राजपुरोहितका पुत्र था और आचार्य इन्द्रदत्तके पास अध्ययन करने शावस्ती आया था। आचार्यने उसके भोजनकी व्यवस्था नगरसेठके यहाँ कर दी। किंतु यहाँ अभिरूप कपिल भोजन परोसनेवाली सेविकाके रूपपर मुग्ध हो गया। उस सेविकाने वसन्तोत्सव पास आनेपर अभिरूप कपिलसे उत्तम वस्त्र तथा आभूषण माँगे।

अभिरूप कपिलके पास क्या धरा था; किंतु सेविकाने ही उसे मार्ग दिखलाया—‘श्रावस्तीनरेशका नियम है कि प्रातःकाल सर्वप्रथम उन्हें जो अभिवादन करता है, उसे वे दो माशा स्वर्ण प्रदान करते हैं। तुम प्रयत्न करो।’

अभिरूप कपिलने दूसरे दिन कुछ रात्रि रहते ही महाराजके शयनकक्षमें प्रवेश करनेकी चेष्टा की। परिणाम यह हुआ कि द्वारपालोंने उसे चोर समझकर पकड़ लिया। महाराज-के सामने वह उपस्थित किया गया और पूछे जानेपर उसने सब वातें सच-सच कह दीं। महाराजने उसके भोलेपनपर प्रसन्न होकर कहा—‘मुझे जो चाहो, माँग लो। जो माँगोगे, दिया जायगा।’

‘तब तो मैं सोचकर माँगूँगा।’ अभिरूप कपिलने कहा। और उसे एक दिनका समय मिल गया। वह सोचने लगा—‘दो माशा स्वर्ण तो बहुत कम है—क्यों सौ स्वर्णमुद्राएँ न माँगी जायें ? किंतु सौ स्वर्णमुद्राएँ कितने दिन चलेंगी। यदि सहस्र मुद्राएँ माँगूँ तो ? उँहुँ, ऐसा अवसर जीवनमें क्या फिर आयेगा ? इतना माँगना चाहिये कि जीवन सुखपूर्वक व्यतीत

हो। तब लक्ष्मी मुद्रा ? यह भी अल्प ही है। एक कोटि स्वर्ण-मुद्रा ठीक होगी।’

अभिरूप कपिल सोचता रहा, सोचता रहा और उसके मनमें नये-नये अभाव होते गये, उसकी कामनाएँ बढ़ती गयीं। दूसरे दिन जब वह महाराजके सम्मुख उपस्थित हुआ, तब उसने माँग की—‘आप अपना पूरा राज्य मुझे दे दें।’

श्रावस्तीनरेशके कोई सतान नहीं थी। वे धर्मात्मा नरेश किसी योग्य व्यक्तिको राज्य देकर वनमें तपस्या करने जानेका निश्चय कर चुके थे। अभिरूप कपिलकी माँगसे वे प्रसन्न हुए। यह ब्राह्मणकुमार उन्हें योग्य पात्र प्रतीत हुआ। महाराजने उसको सिंहासनपर बैठानेका आदेश दिया और स्वयं वन जानेको उचित हो गये।

महाराजने कहा—‘द्विजकुमार ! तुमने मेरा उद्धार कर दिया। तृष्णारूपी सर्पिणीके पाशसे मैं सहज ही छूट गया। कामनाओंका अथाह कूप भरते-भरते मेरा जीवन समाप्त ही हो चला था। विषयोंकी तृष्णारूपी दलदलमें पड़ा प्राणी उससे पृथक् हो जाय, यह उसका महान् सौभाग्य है।’

अभिरूप कपिलको जैसे झटका लगा। उसका विवेक जाग्रत् हो गया। वह बोला—‘महाराज ! आप अपना राज्य अपने पास रखें। मुझे आपका दो माशा स्वर्ण भी नहीं चाहिये। जिस दलदलसे आप निकल जाना चाहते हैं, उसीमें गिरनेको मैं प्रस्तुत नहीं हूँ।’

अभिरूप कपिल वहाँसे चल पड़ा; किंतु अब वह निर्दन्द्व, निश्चिन्त और प्रसन्न था।—सु० सिं०

भगवान् प्रसन्न होते हैं

(गिलहरीपर गम-कृपा)

कहा जाना है कि जब लंका-विजयके लिये नल-नील समुद्रपर सेतु बनानेमें लगे थे और अपार बानर-भालुसमुद्राय गिरियाँड़ार तथा वृक्षसमृद्ध लालाकर उन्हें दे रहा था, एक गिलहरी मीर्याडा-मुरुगेत्तमके कार्यमें सहायता करने वृक्षमें उनकर वहाँ आ गया। नर्ही-सी गिलहरी—उसमें न वृक्षकी आग्ना उठ सकती थी और न शिलाखण्ड। लेकिन उसने अपने उपयुक्त एक कार्य निकाल दिया। वह बाग-बार समुद्रके जलमें ज्ञान करके रेतपर लोटपोट होनी और भेतुपर टौड जाती। वहाँ वह अपने गर्भमें लगी सागी रेत झाड देती और फिर ज्ञान करने टौडनी। अधिराम उसका यह कार्य चलता रहा।

महापुनर्य तथा आङ्ग बनाने हैं कि भगवान् साधन-साध्य नहीं हैं। जीवका महान्-न्यै-महान् साधन उन सुर्वेशको न तो विनाश कर सकता और न उनकी प्राप्तिका मूल्य बन सकता। इसलिये किसने कितना जप, तप आदि किया, इसका वहाँ महत्व नहीं है। जीवनिष्ठ साधन तथा भगवन्निष्ठ कृपाके संरोगामे भगवन्निष्ठ होनी है, वह महापुनर्य कहते हैं; किंतु भगवान् तो नित्य कृपाके अनन्त-अनन्त सागर हैं। जीव अप्रमत्त होकर अपनी- शक्तिका पूरा उपयोग करके सच्ची श्रद्धा तथा प्राप्तिमें जब साधन करता है, वे कस्तुरावस्तुत्य प्रसन्न हो जाते हैं। किनने समय या कितना साधन किसीने किया, वह प्रथम वहाँ रहता नहीं। भगवान् प्रसन्न होने हैं· वे नित्य प्रसन्न जो हैं।

गिलहरीकी चेष्टा बड़े कुत्रह-लम्पे, बड़ी एकाग्रतामें मर्याडा-मुरुगेत्तम देख रहे थे। उस क्षुद्र जीवकी ओर

दूसरे किसीका ध्यान नहीं था, किंतु कवीरदासजीने कहा है न—

‘चीरी के पग द्वृशुरु बाजे भो भी भाहव सुनता है।’

ग्रीगवेन्द्रने हनुमानजीको सकेतमे पास बुलकर उस गिलहरीको उठ लानेका आदेश दिया। हनुमान-जीने गिलहरीको पकड़कर उठ लिया और लाकर रघुनाय-जीके किलाल्यकोमल बन्धूकालण हाथपर रख दिया उने। प्रमुने उस नन्हे प्राणीमे पूछा—‘तू सेतुपर क्या कर रही थी ? तुझे भय नहीं लगता कि कपियों या गिराँके पैरके नीचे आ सकती है या कोई वृक्ष अथवा शिलाखण्ड तुझे कुचल दे सकता है ?’

गिलहरीने हर्षमे रोम फुलाये, पूँछ उत्कर श्रीराघव-के करपर गिरायी और बोली—‘मृत्यु दो बार तो आती नहीं, आपके भेवकोके चरणोंके नीचे मेरी मृत्यु हो जाय यह तो मेरा सौमाय होगा। भेतुमें बहुत बड़े-बड़े शिलाखण्ड तथा वृक्ष लगाये जा रहे हैं। बहुत श्रम करनेपर भी नल-नील भेतुको पूरा समनल नहीं कर पा रहे हैं। ऊँची-नीची विषम भूमिपर चलनेमे आपके कोमल चरणोंको बड़ा कष्ट होगा, यह सोचकर पुलके छोड़-दोंदे गड़े मैं रेतसे भर ढेनेका प्रयत्न कर रही थी।’

मर्याडा-मुरुगेत्तम प्रसन्न हो गये। उन्होंने वाम हस्तपर गिलहरीको बैठा रखा था। उस क्षुद्र जीवको वह आसन दे रखा था जिसकी कल्पना विसुवनमें कोई कर ही नहीं सकता। अब दाहिने हाथकी तीन औंगुलियोंमे उन्होंने गिलहरीकी पीठ अपथपा दी। कहने हैं कि गिलहरीकी पीठपर श्रीरामकी औंगुलियोंके चिह्नस्तरप तीन श्वेत रेखाएँ बन गयी और तर्मासे सभी गिलहरीयोंको वे रेखाएँ भूषित करती हैं।

—२१७—

मस्तक-विक्रय

कोसलके राजाका नाम दिग्-दिगन्तमें फैल रहा था । वे दीनोंके रक्षक और निराधारके आधार थे । काशीपतिने जब उनकी कीर्ति सुनी, तब वे जलभुन गये । शट उन्होंने एक बड़ी सेना ली और कोसलपर चढ़ आये । युद्धमें कोसलनरेग हर गये और बनमें भाग गये । पर किसीने काशिराजका स्वागत नहीं किया । कोसलनरेणकी पराजयसे वहोंकी प्रजा रात-दिन रोने लगी । काशिराजने देखा कि प्रजा उसका सहयोगकर कही पुनः विद्वोह न कर बैठे, इसलिये शत्रुको निःशोष करनेके लिये उन्होंने घोपणा करा दी कि—‘जो कोसलपतिको हूँड लायेगा, उसे सौ मोहरें दी जायेगी ।’ जिसने भी यह घोपणा सुनी ऑख-कान बदकर जीभ दवा ली ।

इधर कोसलनरेश दीन-मलीन हो जगलेमे भटक रहे थे । एक दिन एक पथिक उनके सामने आया और पूछने लगा—‘वनवासी । इस बनका कहों जाकर अन्त होता है और कोसलपुरका मार्ग कौन-सा है ?’ राजाने पूछा—‘तुम्हारे वहों जानेका कारण क्या है ?’ पथिक बोला—‘मैं व्यापारी हूँ । मेरी नौका छूब गयी है । अब द्वार-द्वार कहों भीख माँगता फिलूँ । सुना था कि कोसलका राजा बड़ा उदार है, अतएव उसीके दरवाजे जा रहा हूँ ।’ थोड़ी देरतक कुछ सोचकर

राजाने कहा—‘चलो, तुम्हे वहाँतक पहुँचा ही आऊँ । तुम बहुत दूरसे हैरान होकर आये हो ।’

X X X X

काशिराजकी सभामें एक जटाधारी व्यक्ति आया । काशीनरेणने पूछा—‘कहिये किस लिये पधारे ?’ जटाधारीने कहा—‘मैं कोसलराज हूँ । तुमने मुझे पकड़ लानेवालेको सौ स्वर्णमुद्रा देनेकी घोपणा करायी है । बस, मेरे इस साथीको वह धन दे दो । इसने मुझे पकड़कर तुम्हारे पास उपस्थित किया है ।’

सारी सभा सब रह गयी । प्रहरीकी ओंखोंमें भी ओंसू आ गये । काशीपति सारी बातें जान-सुनकर स्तव्य रह गये । क्षण भरके बाद वे बोल उठे—‘महाराज । आज युद्धस्थलमें इस दुरन्त आशाको ही जीतूँगा, आपका राज्य भी लौटा देता हूँ, साथ ही अपना हृदय भी प्रदान करता हूँ ।’ बस, शट उन्होंने उनका हाथ पकड़कर सिंहासनपर बिठला दिया और उनके मलिन मस्तकपर सुकुट चढ़ा दिया । सारी सभा ‘धन्य-धन्य’ कह उठी । व्यापारीको मुहमोंगी मुद्राएँ तो मिलनी ही थीं । —जा० श०

(कवीन्द्र श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कृति बँगला ‘मस्तक-विक्रय’का भाषान्तर)

मातृ-भक्त आचार्य शंकर

बालक श्रीशक्तराचार्यने विद्याध्ययन समाप्तकर मन्यास लेना चाहा; परतु जब उन्होंने मातासे आजा मौंगी, तब माताने नाहीं कर दी । अकर माताके वडे भक्त थे, उन्हे कष्ट देकर सन्यास लेना नहीं चाहते थे । एक दिन माताके साथ वे नदीमें स्नान करने गये । उन्हे एक मगरने पकड़ लिया । इस प्रकार पुत्रको सकटमें देख माताके होग उड़ गये । वह बैचैन होकर हाहाकार मचाने लगी । अकरने मातासे कहा—‘मुझे सन्यास लेनेकी आज्ञा दे दो तो मगर मुझे छोड़ देगा ।’

माताने तुरत आज्ञा दे दी और मगरने शकरको छोड़ दिया । इस तरह माताकी आज्ञा प्राप्तकर वे आठ वर्षकी उम्रमें ही घरसे निकल पड़े ।

माताने कहा—‘अच्छी बात है—बेटा । तुम जाओ; परतु मेरी एक बात माननी पड़ेगी, मेरी मृत्युके समय तुम्हें मेरे पास रहना पड़ेगा ।’ मातृभक्त शकरने इसे स्वीकार किया और माताकी मृत्युके समय आदर्श संन्यासी आचार्य शकर मन्यासके नियमकी परवा न करके माताके समीप रहे ।

कमलपत्रोंपर गङ्गापार

(लेखक—आचार्य श्रीवलरामजी शास्त्री, एम.० ए०, साहित्यरत्न)

स्वामी शकराचार्य दिग्विजय करते हुए काशी पधारे । शास्त्रायंग्रेमी काशीके पण्डितोंसे उनका डटकर शास्त्रार्थ हुआ । शकराचार्यसे ‘अद्वैतवाद’के विषयमें काशीके पण्डितोंने हार मारा । अद्वैतवादका प्रचार करते हुए आचार्य शकर कुछ दिन

काशीमें रुक गये । वे नित्य गङ्गालान और बावा विश्वनाथ-का दर्गन करते और शेष समय सत्सङ्गमें व्यतीत करते थे । एक दिन आचार्य शकर गङ्गातटपर विचर रहे थे कि उनकी दृष्टि गङ्गाके उस पार गयी । आचार्यने देखा एक

भव्य पुरुष उन्हें प्रणाम कर रहा है। आचार्य शकरने उस पुरुषको सीधे चले आनेका सकेत किया। वह भद्र पुरुष सनन्दन थे, जो आचार्य शकरसे दीक्षा लेनेके लिये काशी आ रहे थे। वह पुरुष आचार्यकी आज्ञा समझ चित्तमें घराहट-के साथ विचार करने ल्पा—‘क्या कर्त्त-मैने मनसे उन्हें गुरु माना और उनकी यह आज्ञा कि मीधे चला आऊँ ? पासमें कोई नौका भी नहीं। इस शितिमें आज्ञानुसार मेरा जाना कैसे सम्भव है ?’ किंतु सनन्दनने गुरु-आज्ञाको बलीयसी

मानकर आगे पॉव रख ही दिये। जैसे ही गङ्गामें उनका पॉव पड़ा वहाँपर एक कमलपत्र पैदा हो गया, आगे दूसरा पॉव उन्होंने रखा तो वहाँ भी कमलका पत्र पैदा हो गया। अब सनन्दनको गुष्का प्रभाव समझमें आ गया और धीरे-धीरे नये-नये प्रकट होनेवाले कमलपत्रोंपर पैर रखकर वे गङ्गापर हो गये। सनन्दनजी आचार्यसे दीक्षित होकर अद्वैत-मतके विशिष्ट प्रचारक बन गये। कमलपत्रोंद्वारा गङ्गा-पर करनेके कारण उनका नाम भी ‘पद्मपाद’ पड़ा।

कुत्तेका भय भी अनित्य है

(लेखक—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री एम.० ए०, साहित्यरत्न)

काशीके कुछ पण्डित आचार्य शकरसे द्वौह मानते थे। एक दिन काशीके कुछ पण्डितोंने आचार्य शकरके ऊपर एक कट्ठे कुत्तेको काटनेके लिये ललकारा। अपने ऊपर कुत्तेको झपटते देख आचार्य शकर एक ओर हट गये। आचार्यको हटते देखकर पण्डितोंने कहा—‘आप जब अद्वैतवादके

समर्थक हैं, तब इस नागवान् शरीरसे क्या डर और वही एक नियन्ता तो कुत्तेमें भी वर्तमान है।’ आचार्यने कहा, ‘तथात्त्व, जिस प्रकार यह शरीर अनित्य है, उसी प्रकार कुत्तेसे भय करना भी तो अनित्य है।’ पण्डित लोग इस तर्कसे अवाक् हो गये।

वैदिक धर्मका उद्धार

(लेखक—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम.० ए०, साहित्यरत्न)

महाराज काशीनरेणुकी एक कन्या थी, जो परम विद्वानी और धार्मिक भावनासे युक्त होकर दिन-रात धर्मकी चर्चा किया करती थी। उसे वैदिक धर्मसे स्नेह था, किंतु वैदिक धर्म तो बौद्ध धर्मकी ओट्टमें छुत हो रहा था। कुमारी कन्याको वैदिक धर्मके उद्धारकी प्रवल चिन्ता थी। इसी चिन्तामें वह दिन-रात चिन्तित रहा करती थी। एक दिन अपनी खिड़कीपर बैठकर वह वैदिक धर्मके उद्धारके लिये अत्यन्त ग्लानिके साथ भविष्यका चिन्तन कर रही थी। अकस्मात् उसके प्रासादके नीचेसे एक भव्य आकृतिवाला ब्रह्मचारी गुजरा। कुमारी कन्याकी ऑर्लेंसे गर्म-नार्म आँसू, ब्रह्मचारीके शरीरपर टपक पड़ा। उण्ण अशुके स्पर्शसे ब्रह्मचारीका ध्यान उधर आकर्षित हुआ; जहाँसे अशुविन्दु टपके थे। ब्रह्मचारीने देखा कि कुमारी रो रही है। ब्रह्मचारीको महान् आश्रय हुआ—भला, एक राजकन्या इस प्रकार खिड़कीपर बैठकर रोये ? क्या रहस्य है इसका ? ‘आप क्यों रो रही हैं ? आपके रोनेका क्या कारण है ?’ कुमारिले पूछा। वह कुमारी कन्या साधारण वालिका नहीं थी। उसने परिस्थित और पुरुषको भली प्रकारसे समझ लिया।

‘वैदिक धर्मके उद्धारके लिये मुझे चिन्ता है। कौन ऐसा पुरुष है, जो वैदिक धर्मका उद्धार कर सकेता ?’ राजकुमारीने कहा। ‘कुमारी ! इसके लिये तनिक भी चिन्ता भय करो। यह कुमारिलभट्ट ही वह पुरुष है जो वैदिक धर्मका उद्धार करेगा।’ कुमारिलभट्टने धीरताके साथ कुमारीको आश्वासन दिया।

X X X

कुमारिलभट्टने जो प्रतिजा की, वह बहुत दुस्तर प्रतिजा थी। कुमारिलने समझ लिया कि वैदिक धर्मके उद्धारके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि बौद्धधर्मका, जो इस समय पाखण्डियोंके हाथमें है, खण्डन किया जाय। पर यह साधारण बात नहीं थी। सर्वग्रथम बौद्धदर्शनका अध्ययन और तब उसका खण्डन सम्भव था। बौद्धदर्शनके अध्ययनके लिये काशीका त्याग आवश्यक था, क्योंकि विना तक्षशिला गये बौद्धर्म और वौद्धदर्शनका अध्ययन सम्भव न था। ब्रह्मचारी कुमारिले लिये काशी-त्याग एक भयानक समस्या हो गयी। परन्तु वही परीक्षाका अवसर था। ब्रह्मचारी कुमारिल चल पड़े तक्षशिलाके लिये और तक्षशिला पहुँचनेपर ब्रह्मचारी कुमारिलका बहुत आदर-सत्कार हुआ।

तक्षशिलाके आचार्यने कुमारिलको बहुत प्रेमसे वौद्धधर्मके तत्त्वों और वौद्धदर्शनका अध्ययन कराया। प्रतिभागाली कुमारिल थोड़े ही दिनोंमें वौद्धधर्मके गहन तत्त्वों और वौद्धदर्शनके पूर्ण ज्ञाता हो गये। एक दिन कुमारिलको अपनी पूर्वप्रतिज्ञा स्परण हो आयी और उन्होंने अपने पूज्य गुरुसे ही शास्त्रार्थ करनेकी अभिलापा प्रकट की। एक ओर ब्रह्मचारी कुमारिल, दूसरी ओर वौद्धधर्मके समस्त आचार्य। विषय था—ईश्वरकी सत्ता और उसके कर्मनियन्ता होनेका प्रमाण। शास्त्रार्थ छिड़ गया। दोनों ओरसे मध्यस्थताकी आवश्यकता पड़ी। मगधराज सुधन्वा मध्यस्थ बनाये गये। गात्रार्थ प्रारम्भ हुआ। कुमारिलकी जिहापर जान पड़ता था कि सरस्वती आकर वैठ गयी। विषयका निर्णय असम्भव हो गया। मध्यस्थके लिये कुछ भी निर्णय देना असम्भव था। अन्ततोगत्या ब्रह्मचारी कुमारिलके आगे वहाँकी अध्यापक-मण्डलीको छुकना पड़ा। कुमारिलकी प्रतिभा और शास्त्रार्थसे सभी प्रभावित हुए; किंतु ईश्वरके अस्तित्वको यो ही तर्कसे माननेके लिये वौद्ध आचार्य तैयार न थे। ईश्वर-सत्ता-का प्रत्यक्ष निर्णय करनेके लिये थोड़ोंने एक युक्ति सोची और घोषित किया ‘यदि दोनों वक्ता अपना पञ्च सिद्ध करके विजय प्राप्त करना चाहते हैं तो पर्वतकी ऊँची चोटीसे कूदने-पर उनमें जो सुरक्षित रह जायगा, वही विजयी माना जायगा, अतः दोनों गात्रार्थीं पर्वतकी ऊँची चोटीसे कूदकर अपने पक्षकी विजय सिद्ध करे।’ कुमारिल उक्त घोषणासे तनिक

नहीं ध्वराये और समस्त राजर्कर्मचारियोंके सम्मुख पर्वतकी ऊँची चोटीपर चढ़कर उन्होंने भगवान्‌का स्परण किया और स्पष्ट घोषणा की—‘वेद प्रमाण है। भगवान् ही रक्षक हैं। सर्वज्ञता ईश्वर ही गतिमान हैं। आत्मा अन्त्येत है। सत्य ही अमर है।’ यह कहकर ब्रह्मचारी कुमारिल कूद पड़े उस ऊँचे शिखरसे। कुमारिलका बाल भी वॉका नहीं हुआ। थोड़ोंने उसे ‘जादुई चमत्कार’ कहा और जब उनके आचार्यकी बारी आयी; तब वे भाग खड़े हुए। उस घटनासे वैदिकधर्मकी पताका समस्त भारतमें फहरा गयी। काशी-की राजकुमारी और काशीवासियोंको उस घटनासे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। कुमारिलकी विजयकी चर्चा समस्त भारतमें व्याप्त हो गयी, लोग कुमारिलका यजोगान करने लगे।

कुमारिलको उस विजयपर गर्व नहीं हुआ, किंतु उनके मनपर उलटा ही प्रभाव पड़ा। शास्त्रार्थमें गुरुको पराजित करनेका जो ‘पाप’ हुआ, उसका उन्होंने प्रायश्चित्त करना चाहा; क्योंकि वैदिकधर्ममें गुरुका अपमान महान् अपराध माना जाना है। वस, कुमारिल प्रयाग पहुँचे प्रायश्चित्तके लिये। उस समय भारतके कोने-कोनेसे विद्वान् और आचार्य कुमारिलका प्रायश्चित्त देखने पहुँचे। सुना जाता है कि स्वयं शक्तिराज्य भी वहाँ पधारे थे। वीरात्मा कुमारिलने गात्रानुसार ‘तुपाग्नि’से झनैः-झनैः। अपने शरीरको जलाकर प्रायश्चित्त करके शरीरका त्याग किया। किंतु वैदिक-धर्मका उद्धार करके वे अमर हो गये।

भगवान् नारायणका भजन ही सार है

महान् भूत श्रीविष्णुचित्त पेरि-आल्वारमें वाल्यकालसे ही भगवद्गतिके चिह्न दीखने लगे थे। यजोपर्वात-स्सकार होनेके बाद ही वाल्कने विना जाने-पहचाने अपना तन-मन और प्राण भगवान् श्रीनारायणके चरणोंमें समर्पित कर दिया था। श्रीनारायणके रूपका ध्यान, उनके नामका जप तथा श्रीविष्णुउत्तरतानामका गायन वे किया करते थे। युवावस्थामें पदार्पण करते ही उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति बेचकर एक उर्वरा भूमि ले ली और उसमें एक सुन्दर वर्गीक्षा लगाया। प्रतिदिन वे प्रातःकाल उठकर ‘नारायण’ नामका जप करते हुए पुण्य-चयन करते और उसकी माला बनाकर भगवान् नारायणको पहनाते और मन-ही-मन प्रसन्न होते। एक दिन रात्रिमें उन्हें श्रीनारायणने स्वप्नमें कहा—‘तुम मदुराके धर्मात्मा नजा बलदेवसे मिलो, वहाँ सब धर्मोंके लोग एकत्र होंगे। वहाँ

जाकर तुम मेरे प्रेम और भक्तिका प्रचार करो। तुम वहाँ भगवान्‌के नविशेष रूपकी उपासना ही आनन्द प्राप्त करनेका सच्चा और सरल मार्ग है,’ यह प्रमाणित कर दो।’

विष्णुचित्त भगवान्‌का आदेश पाकर प्रसन्नतासे खिल उठे। वे बोले, ‘प्रभो। मैं अभी मदुराके लिये प्रस्तान करता हूँ, किंतु मुझे शास्त्रोंका किंचित् भी ज्ञान नहीं। आपके चरणोंको अपने हृद्देशमें विराजितकर मैं सभामें जा रहा हूँ। आप जैसा चाहें, यन्त्रवत् मुझसे करा लें।’ विष्णुचित्त मदुरा चले।

X X X

बलदेव नामक राजा मदुरा और तिन्नेबेली जिलोंपर शासन करते थे। उन्हें प्रजाके सुखका अत्यधिक ध्यान था। इसी कारण वे कभी-कभी अपना वेश बदलकर रात्रिमें धूमा

भरते थे। एक दिन रात्रिमें धूमते हुए उन्होंने वृक्षके नीचे विश्राम करते हुए एक ब्राह्मणको देखा। राजा ने उनसे परिचय पूछा और ब्राह्मणने बताया कि मैं गङ्गास्नान करने गया था और अब सेहू नदीमें ज्ञान करनेके लिये जा रहा हूँ। रातभर विश्राम करनेके लिये यहाँ टहर गया हूँ। राजा ने उनसे कुछ अनुभवकी चात पूछी। ब्राह्मणने कहा—

वर्पार्थमस्तु प्रयत्नेत मासान् निशार्थमर्थं द्विवर्मं यत्नेत ।
वार्द्धक्यहेतोवैश्यमा नवेन परव्रह्मेतोरिहजन्मना च ॥

राजा के पृष्ठनेपर उन्होंने अर्थ किया—‘मनुष्यों का व्याहित्ये कि आठ महीनेतक सूख परिन्माण करे, जिससे वह दर्पण-शूलमें चुपचारक रह सके, द्विनमर इसलिये परिश्राम करे कि रातों चुपकी नौद मो सके, जवानीमें बुटापेके लिये मग्नह फरे और इस जन्ममें परतोकके लिये कमार्ह फरे।’

हन उपदेशसे राजा बहुत प्रभावित हुए। ब्राह्मणने उनके मनमें भक्तिका बीज डाल दिया था। लौटकर उन्होंने समग्र धर्मकि आचार्योंको एकत्रकर उपर्युक्त निश्चय किया था, जिससे उन्हें सर्वोक्ता सङ्ग एवं

उनका उपदेश सुननेका अवमर मिल जाय ।

X **X** **X**

पण्डित मण्डलीमें विष्णुचित्त जान्तभावसे भगवान् श्री-नारायणका सरण करते हुए बैठे। उन्होंने सबकी शङ्खाओंका बढ़े ही सरल शब्दोंमें समाधान कर दिया। उनका प्रभाव सम्पर पड़ा। उन्होंने चिस्तारसे समझाया—“भगवान् श्री नारायण ही सृष्टिके निर्माता, पालक एव प्रलयकालमें समेट लेनेवाले हैं। वे ही सबोंपरि देव हैं। सर्वतोभावेन अपना जीवन उनके चरणप्रान्तमें अर्पित कर देना ही कत्याणका एकमात्र मार्ग है। वे ही हमरे रक्षक हैं। महात्मा पुरुषोंकी रक्षा एव दुर्योंका दलन करनेके लिये वे ही समय-समयपर पृथ्वीपर अवतरित होकर धर्म सम्पादनका कार्य करते हैं। इस मायामय जगत्से त्राण पानेके लिये विश्वासपूर्वक उनपर तन-मन न्योद्घावकर उनकी आराधना करनी चाहिये। उनके नामका जप एव उनके गुणोंका गान करना चाहिये।”

भगवान् नारायणका भजन ही जीवनका सार है । इनके दिव्य उपदेशसे सभी प्रभावित हुए और भगवान् नारायणकी भक्तिमें लगा गये । —गि० दु०

भगवान्से विवाह

कर्फै पूर्वफालुन्या तुलसीकाननोद्भवम् ।
पाण्ड्ये विश्वरा कोटा बन्दे श्रीरङ्गनायकीम् ॥

पुण्यन्ययन करते समय ग्रात श्रीविष्णुचित्तने तुलसी-
काननमें एक नवजात कन्या देखी । उसे उठाकर उन्होंने
श्रीनारायणके चरणोंमें रखकर निवेदन किया, ‘दयामय । यह
तुम्हारी सभ्यति है और तुम्हारी ही सेवाके लिये आयी है, इसे
अपने चरणकमलोंमें आश्रय दो ।’ श्रीविष्णुसे उत्तर मिला—
‘इस बालिकाका नाम कोशी रखनो और अपनी ही
पत्रीकी भाँति इसका लालन-पालन करो ।’

‘कोद्यी’का अर्थ होता है ‘पुष्पतुल्य कमनीय’। सयानी होनेपर जब इस वालिकाने भगवान्‌का प्रेम प्राप्त कर लिया, तब इसका नाम ‘आण्डाल’ हो गया।

भगवान्‌के आदेशानुसार श्रीविष्णुनित्यं रन्याका लालन-पालन करने लगे । लड़कीकी वाणी खुली तो वह 'विष्णु'के अतिरिक्त कुछ बोल ही नहीं सकती थी । वह बाटिकसे सुगन्धित पुण्य तोड़ती और हार गूँथकर भगवान्‌को अर्पण करती । बड़ी होनेर भगवान् श्रीरङ्गनाथको वह पतिके रूपमें

भजने लगी। अत्यन्त मुन्द्र हार गूँथकर वह स्वयं पहन लेती और दर्पणके सामने खड़ी होकर अपना रूप देख-देखकर रुहती; ‘क्या मेरा सौन्दर्य मेरे प्रियतमको आकर्षित नहीं कर सकेगा?’ और फिर वही माला वह भगवान्को धारण करनेके लिये भेज देती। एक दिन पुजारीने देखा—मालके साथ बाल लगा हुआ है। हम कारण उसने माला वापस कर दी। दूसरे दिन भी पुजारीकी शिकायत रही कि माला मुर्दायी हुई है। विष्णुचित्तने सोचा कि अवश्य ही हममें कोई कारण होना चाहिये। वे पता लगाने लगे। एक दिन उन्होंने अपनी लड़कीको प्रभुको अर्पित की जानेवाली माला पहने दर्पणके सामने खड़ी देखा और सुना कि वह मन-ही-मन प्रभुसे बात कर रही है। वे दौड़कर समीप गये और घोले, ब्वेटी। तुमने यह क्या किया। भगवान्को अर्पित की जानेवाली वस्तुका स्वयं किसी प्रकार भी पहले उपयोग नहीं करना चाहिये।’ और उस दिन उन्होंने नयी माला बनाकर भगवान्को पहनायी। किंतु उसी रात्रिमें भगवान्ने विष्णुचित्तको स्वप्नमें कहा, ‘मुझे आण्डालकी धारण की हुई माल धारण करनेमें

विद्योग आनन्द मिलता है। इसलिये मुझे वही चढ़ाया करो।’ अब विष्णुचित्तको निश्चय हो गया कि वह कोई अद्भुत वालिका है और वे उसकी पहनी हुई माला भगवान्को पहनाने ल्ये।

आण्डालकी मधुगमावकी उपासना चरम सीमापर पहुँच गयी थी। वह शरीरसे ऊपर उठी हुई थी। उसे वाहर-भीतर, आगे-पीछे, भर्वन्त्र उसके प्राणवह्नभ ही दीखते रहते थे। शरीरसे वह विष्णुचित्तकी बाटिकामे रहती, पर मनसे वह बृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका दर्शन करती रहती। कभी-कभी वियोगमें बड़वडा उठती।

एक दिन वह अपने प्रियतम श्रीरङ्गनाथके विरहमें अत्यन्त व्याकुल हो गयी। श्रीरङ्गनाथसे मिलनेके लिये वह अधीर थी, भगवान् श्रीरङ्गनाथने मन्दिरके अधिकारियोंको दर्शन देकर कहा—‘मेरी प्राणप्रिया आण्डालको मेरे पास ले

आओ।’ और विष्णुचित्तको स्वप्नमें दर्शन देकर प्रभुने कहा—‘आण्डालको जीघ मेरे पास पहुँचा दो। मैं उसका पाणिग्रहण करूँगा।’ भगवान्ने आण्डालको भी स्वप्नमें दर्शन दिया। उसे लगा कि ‘वही ही धूमधामसे मेरा विवाह भगवान् श्रीरङ्गनाथके साथ सम्पन्न हो रहा है।’

दूसरे ही दिन श्रीरङ्गनाथजीके मन्दिरसे आण्डाल और उसके धर्मपिता विष्णुचित्तको लेनेके लिये कई पालकियों और सामग्रियों आयी। दोल वजने लगे, वेदपाठी व्राह्मण वेद पढ़ने लगे, शहू-ध्वनि हुई। भक्तलोग श्रीरङ्गनाथ और आण्डालकी जय बोलने लगे। प्रेमोन्मत्त आण्डाल मन्दिरमें प्रवेश करते ही भगवान्की शेषगत्यापर चढ़ गयी। लोगोंने देखा, उस समय एक दिव्य प्रकाश छा गया और आण्डाल सदाके लिये अपने प्राणनाथमें लीन हो गयी। प्रेमी और प्रेमात्पद एक हो गये। वह भगवान् श्रीरङ्गनाथमें मिल गयी।

—शि० दु०

नम्रताके औँसू

(लेखक—श्रीयुत तिं० न०आनेय)

उस गाँवमें कुलगोखर एक विद्वान् और ईश्वरभक्त व्यक्ति थे। रोज उनके घरके पार्वतीर्थी मन्दिरमें कथावाचनका क्रम चलता था। कथा सुनानेमें कुलगोखर वडे प्रव्यात थे। गाँवके अधिकारी लोग उनकी कथा सुनने नित्य एकत्र होते थे।

नवियार उसी गाँवके एक मजन थे। विद्वत्तमें कुलगोखरकी वरावरी तो नहीं कर सकते थे, फिर भी विजलोगोंमें इनकी भी गिनती थी। आज ये भी कुलगोखरके समान ही एक संत माने जाते हैं।

मानव-महज दोष कभी-कभी सतोकी भी परीक्षा ले लेते हैं।

एक दिन नवियारके मनमें ईर्ष्याका अनुभव होने लगा। वे मनमें सोचने लगे कि ‘लोग कथा सुनने कुलगोखरके ही पास क्यों जाते हैं? मेरे पास क्यों नहीं आते? मैं कुलगोखरसे किस बातमें कम हूँ।’

देखते-देखते यह ईर्ष्या द्वेषका रूप वारण करने लगी।

एक दिन सद्गारको नवियार वाहरसे थके-म्होडे घर आये। भूख लगी थी। उनकी पत्नी कहीं वाहर गयी थी। बैठे-बैठे कुलगोखरके ही बारेमें सोचते रहे। नवियारके मनमें गङ्गा

उत्पन्न हुई कि उनकी पत्नी भी कहीं कुलगोखरकी कथा सुनने तो नहीं गयी।

पर्यास प्रतीक्षा की। फिर भी पत्नी नहीं आयी। कुछ और समय पढ़ीकी बाट देखते बैठे। तब भी पत्नी नहीं आयी। लगभग घटाभर बीत गया। नवियारकी भूख जोर पकड़ रही थी। अबतक भी पत्नी घर न आयी। अब उनसे सहा नहीं गया। उन्हे विश्वास हो चला कि हो-न-हो उनकी पत्नी निश्चय कुलगोखरकी कथा सुनने ही गयी है।

नवियार मन-ही-मन झाँड़ा उठे। घरसे वाहर निकल पड़े। क्रोधमें घरका किंवाङ्क कंवंद करना भूल गये। लंबे-लंबे ढग रखते हुए सीधे उस मन्दिरके सामने जा पहुँचे।

रामायणकी कथा चल रही थी। कथा सुनानेमें सब लोग लीन थे। नवियारको द्वारपर खड़े-खड़े दो-तीन मिनट बीत गये। किसीका ध्यान उनकी ओर नहीं गया। नवियारने जब देखा उनकी पत्नी भी वहाँ बैठी कथा सुन रही है, तब तो वे अपना आपा खो बैठे, उनका विवेक जाता रहा। दो कदम बढ़कर कठोर स्वरसे चिल्डा उठे—‘तुम मूर्ख हो, तुम कथा सुनाना क्या जानते हो, ये सारे लोग तुमसे बढ़कर मूर्ख हैं जो तुम्हारी कथा सुनने आते हैं।’

सबै-सब चकित रह गये। कथा बद हो गयी। लोग नवियारकी और ताकने ल्यो। स्वयं कुल्लशेखर भी मृकवत् बने रहे। किसीने कुछ न कहा। नवियारकी पनी सभामें से उठकर घरकी ओर चल दी। कुछ देखक नवियार इसी प्रकार सम्बद्ध-असम्बद्ध प्रलाप करते रहे और यह लौट पड़े। कथा जो शीर्षमें बंद हुए सो पिर नहीं चली। सब उठ-उठ-कर अरने घर चढ़ दिये। कुल्लशेखर भी विषप्पवदन हो पोथी समेटकर उठ चले।

श्र फूलचकर नवियार अपने बचे नोबको अपनी पल्ली-पर उतारकर विलग्नपर जा लेट गये। उनकी भूत मर गयी थी। उनको लिलनेकी पल्लीकी सारी चेष्टा निष्पल रही। पल्ली भी भूती सो गयी।

नवियारके मनमा क्रोध कदाचित् शान्त भी हो गया हो। परतु उन्हे नींद नहा आयी। विलग्नपर कन्धट बढ़लते रहे। बाहर कड़ाकेकी सर्दी पड़ रही थी, भीतर नवियार परीना पौछ रहे थे।

लंबी देरके बाद नवियारकी नव जगी। गिलास भर पानी पी देके फिर लेटे। रह-रहकर वे ही मारी सध्याकी बाते बाद आने लगी। भरी सभामें वे कुल्लशेखरका अपमान कर आये थे। कुल्लशेखरने उनका कुछ भी विगाहा नहीं था। कुल्लशेखर बिदान् है। उनमा जीवन भी पवित्र है। यिना कारण ही नवियारने उनका अपमान किया।

नवियारका साग क्रोध पश्चात्तापमें बदल गया। जितना-जितना दे सौचते गये, उतना-उतना उनका पश्चात्ताप बढ़ता गया। विस्तरपर वे तिलमिलने लगे। लेटे रहना उन्हे असम्भव हो गया।

अन्तमें उन्होंने निर्गाय कर लिया कि कुल्लशेखरसे क्षमायाचना किन्ते विना उनके इस अपराधका निस्तार नहीं। परतु अभी आधी रात है। कुल्लशेखर सो नहे होंगे। इस समय उन्हे जगाया किसे जाय? सुवैरेतक बेदना सहनी ही पड़ेगी।

छतके छेदमें से नवियारने देखा शुक्रका तार पूरबमें चमक उठा है। नवियार विस्तर छोड़कर उठे। अपराधके बोझसे ददा हुआ मन और पश्चात्तापके आवेगसे सतस हृदय लेकर कुल्लशेखरके घर जानेके लिये घरसे निकले। एकमात्र उनको

जल्दी थी कि वब मैं कुल्लशेखरके चरणोंमें अपना मस्तक झुका दूँ और मनका भार उतारें।

टिमटिमाती हुई बत्ती उनके हाथमें थी, मानो उनके क्षीणहृदयका प्रतिविम्ब ही हो। ज्यों ही वे किंवाइ खोलकर बाहर आये तो दरवाजेके पास भीचे कोनेमें कंडड बस्तु दिखी। अधेरमें नवियार पहचान नहीं सके। बत्ती ऊँची करके देखा तो कोई व्यक्ति कबल थोड़े बैठे दिखा। वह व्यक्ति ऊँच रहा था। जान पड़ता था लंबे समयसे बैठा था।

‘कौन हो भाई?’ नवियारने पूछा। नवियारका शब्द निकलना था कि झटसे उस मनुष्यने उठकर नवियारके चरणोंमें अपना मस्तक रख दिया। अजात व्यक्तिको प्रणाम करते देख नवियारको सकोच हो आया। एक कदम पीछे हटकर झुके हुए व्यक्तिको उठाया। सान्त्वनापूर्ण स्वरमें फिर प्रश्न किया—‘कौन हो भाई, क्या बात है?’

अजात व्यक्तिने सिर उठाया। अंधेरा था। नवियार पहचान नहीं सके। परतु उस व्यक्तिके स्वरसे पहचान गये कि वे तो कुल्लशेखर हैं।

कुल्लशेखर बोलते गये; परतु नवियारके कानोंमें एक भी शब्द प्रवेश न कर पाया। अन्तिम शब्द इतने ही सुन पड़े—‘आपने मुझे मेरा देय दिखा दिया, इसका मुझे मतोप ही है। परतु मैं यह समझ नहीं सका कि मुझसे क्या अपराध हो गया। अनजानमें मुझसे कुछ-न-कुछ अपराध अवश्य हो गया है, तभी आप मुझपर अस्तुष्ट हैं। मुझ पापीपर आप दयाभाव रखें और मुझे क्षमा करें।’

इतना कहकर कुछ क्षण मौन रहे और औरतें पौछकर फिर कहने लगे—‘मुझे पता नहीं अब आपसे क्षमायाचना करने आकर मैंने आपके किस काममें बाबा डाली। अब आपको अधिक रोकूँगा नहीं, परतु आप जाते-जाते मुझे क्षमा कर जायें।’

नवियारका मन पहलेसे ही पश्चात्तापसे सतस था। तिसपर कुल्लशेखर सब आकर अपने किसी अजात अपराधके लिये क्षमायाचना कर रहे हैं।

नवियारकी जिहा मानो जकड़ गयी, गला सूख गया, उनके मुँहसे एक भी शब्द न निकल सका। उनका मनोभार कम क्या होता, अब तो दूभर हो गया। हृदय उमड़ पड़ा। और धूलमें मिल गया।

स्त्रीके सहवाससे भक्तका पतन

भक्त ब्राह्मण श्रीविग्रनारायण भक्तपदेणुने वेदाध्ययन करनेके उपरान्त अपना जीवन भगवान् श्रीरङ्गनाथके चरणोंमें अर्पित कर दिया । मन्दिरके चारों ओर एक वर्गीचा लगाया । प्रातःकाल ही वे उसके पुष्प उतारते और हार बनाकर भगवान्को अर्पित करनेके लिये नियमसे देते । स्वयं एक बृक्षके नीचे साधारण झोपड़ीमें रहते । मन्दिरका प्रसाद पाकर शरीर-निर्वाह करते हुए भगवान्का स्मरण तथा नाम-जप करते रहते । उन्हे जगत्की कोई सुधि नहीं रहती । श्रेष्ठश्यापर भगवान्को श्रद्धन करते देखकर उनका शरीर प्रेमसे शिथिल हो जाया करता था ।

किंतु भगवान् वडे विलक्षण हैं । वे अपने प्रियजनोंकी परीक्षा कब किस प्रकार लेते हैं, कहा नहीं जाता । श्रीरङ्गनाथजीके मन्दिरमें एक अत्यन्त लवण्यवती देवदासी रहती थी, जिसके सौन्दर्यपर स्वयं राजा मुग्ध थे । उसका नाम देवदेवी था । एक दिन वह अपनी छोटी वहिनेके साथ वाटिकामें घूमते हुए श्रीविग्रनारायणके समीपसे निकली, किंतु उसने देखा कि उक्त साधारण ब्राह्मणने उसकी ओर दृष्टिक नहीं डाली । उसके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ । अपनी वहिनेसे उसने कहा—‘देखो, मेरे रूपपर स्वयं नेत्रा मुग्ध हैं, पर यह अहकारवश मेरी ओर देख भी नहीं रहा है ।’ वहिनेने उत्तर दिया—‘नहीं वहिन, जिन्होंने अपना जीवन भुवनमोहन परमेश्वरको अर्पित कर दिया है, उन्हे जगत्का कोई रूप अपनी ओर आकर्षित करनेमें सफल नहीं होता ।’ देवदेवीने साभिमान कहा—‘यदि छः मासमें इसे मैं अपना दास नहीं बना लूँ, अपने पीछे-पीछे नहीं द्विमा दूँ, तो छः मासतक तुम्हारी दासी होकर रहूँगी ।’ छोटी वहिनेने भी कह दिया—‘यदि तुमने इसपर अपना प्रभाव डाल दिया तो छः मासतक मैं तुम्हारी दासीकी भौति सेवा करूँगी ।’ दोनों वहिनोंमें होइ ल्या गयी ।

एक दिन देवदेवीने सन्यासिनीके वेषमें आकर विग्रनारायणसे अत्यन्त करुण स्वरमें कहा—‘महाराज ! मेरी माता मुझे अपना धर्म वेचनेके लिये विवश कर रही है, इस कारण भागकर मैंने यह वेष अपनाया है । मैंने निश्चय किया है कि अपना जीवन भगवान्के चरणोंमें अर्पित कर दूँगी । मुझे कहीं आश्रय नहीं । आप कृपापूर्वक अपनी झोपड़ीके बाहर रहनेसी आज्ञा मुझे दे दें । मैं आपकी झोपड़ीमें प्रवेश नहीं करूँगी और भगवान्की सेवा करती हुर्व अपना जीवन

सफल कर लूँगी । आपने इतनी कृपा नहीं की तो मेरा जीवन नरकगामी बन जायगा ।’

सरल ब्राह्मण देवदेवीकी कपटचातुरीको नहीं समझ सके । उन्होंने उसे अनुमति दे दी । देवदेवी वहाँ रहने लगी ।

एक वारकी बात है, मावका महीना था । वर्षा हो रही थी । शीत समीर तेज छुरीकी भौति शरीरको जैसे काट रहा था । देवदेवी जलसे भीग गयी थी । गीली साड़ीमें वह कॉप रही थी । विग्रनारायणका करुण हृदय द्रवित हो गया । उन्होंने उसे भीतर आनेकी आज्ञा दे दी और सूखा वस्त्र पहननेके लिये दिया ।

एकान्तमें स्त्री-पुरुषको नहीं मिलना चाहिये । कन्या, वहिन और युवती माताके साथ भी एकान्तमें रहनेकी आज्ञा आज्ञा नहीं देते । देवदेवीका जादू चल गया । वह विग्रनारायणको पराजित करनेमें सफल रही । विग्रनारायणका मन भगवान्के चिन्तनसे हटकर मानवी-वेश्याका चिन्तन करने लगा ।

देवदेवी वहाँसे चली गयी । विग्रनारायण उसके घर जाने लगे । वे उसके यहाँ जाते नियमित रूपसे । धरि-धरि उसने विग्रनारायणकी समस्त सम्पत्ति हड्डप ली । इनके पास कुछ नहीं रहा । धनलुब्धा वेश्या फिर इन्हे कैसे पूछती, उसने दुतकार दिया । ये अधीर रहने लगे । देवदेवीके बिना इन्हें कुछ अच्छा नहीं लगता था । कई दिन ब्रीत गये ।

‘यह सोनेका थाल ले लो, विग्रनारायणने भेजा है । मैं उनका नौकर हूँ ।’ आवाज सुनकर देवदेवीने द्वार खोला और सोनेका थाल पाकर वह बड़ी प्रसन्न हुई । उसने तुरत विग्रनारायणको बुलवाया । विग्रनारायणकी प्रसन्नताका क्या कहना । दौड़े उसके घरकी ओर ।

दूसरे दिन हल्ला हुआ, भगवान् श्रीरङ्गनाथकी स्वर्ण-थाली नहीं मिल रही है । गुप्तचर फैले । देवदेवी पकड़ी गयी । उसने बताया—‘विग्रनारायणका नौकर मुझे दे गया ।’ विग्रनारायणने निवेदन किया—‘मुझ दरिद्रके पास नौकर कहाँसे आया ।’

चोरीका माल स्वीकार करनेके कारण देवदेवीको राज्यकी ओरसे दण्ड दिया गया और विग्रनारायणको निगलापुरीके राजाने हिरासतमें रखा । उनका विश्वास था कि विग्रनारायणजी भक्त हैं, इस प्रकारका कर्म इनसे कैसे सम्भव हुआ ?

हजारों रात्रिमें नम हुआ, औनकरके वेदमें देवदेवीको याली दे जानेका काम मैंने किया था। विग्रनाराजण वहक गता था। अब उसे नुक्क कर दो, जिससे जाकर मेरे मजलमें लग सके।” हजाने उन्हें ही वडे आठरसे विग्रनाराजणको छोड़ दिया।

इस घटनासे विग्रनाराजणके ज्ञानेत्र खुल गये। उनका हृष्टप यशोत्तमनी आगसे जड उत्ता। वे भगवान्के चरणोंमें गिरकर नोते रहे। अथल्य कच्छ धूम्रोंमें उन्होंने कहा—
“प्रभो! म अन्यत्त नीच और पतित हूँ, तथापि आमने मेरी रक्षा दी। मैंने सुदाचाको तिलखलि दी, आमको भूल गया और याजागकी एक वेद्याके ल्पजालमें उलझ गया। अपना विवेक और आपका मजल—उत्र छोड़ दिया मैंने।

प्रभो! तुम्हों मेरी माता हो, तुम्हों मेरे पिता हो, तुम्हों मेरे गुरु और तुम्हों मेरे सर्वन्त हो। अब मुझे तुम्हारी इनके लिवा और लिंगीका भनोता नहीं है। अब मुझे अपने चरणोंसे किनी प्रनार मी पृथक् मत होने देना, नाथ। विग्रनाराजणजी नेते नहे, वहूं देखतक रोते रहे।

उनका जीवन बदल गया। उन्होंने भूमिपदगेणु अपना नाम रखवा। लिङ्गतां वे भगवान्के ल्पका ध्यान और उनके नामना जर करते रहे। देवदेवीको भी पामसे बृणा हो गयी। वह अपनी सारी सम्पत्ति श्रीरङ्गनाथजीको मंट करके उनकी सेवामें लग गयी। इस प्रकार श्रीमक्तपदगेणु और देवदेवी दोनोंका ही जीवन प्रभुभूमिपदमामें समर्पित होकर सफल हो गया। —शि० द०



ब्राह्मणके कंधेपर

सुनिवाहन—तिरुप्पनाल्यवार जातिके अन्यज भाने जाते थे। धानके खेतमें पड़े हुए एक अन्यजको मिल गये थे। उसने इनका अन्यत्त प्याससे लान्नमान्न लिया था। वर्मपिता गानविद्यामें निपुण थे, इसलिये इन्होंने मी संगीतका अच्छा अभ्यास कर लिया था। वीगा ये अन्यत्त तन्मपतसे बनते थे, किंतु भगवान्के मधुर नामके अनिरिक्त वे और हृष्ट नहीं गाते। भगवान्का नाम सुनते ही वे भावविहळ हो जाता करते। श्रीरङ्गनाथके दर्शनकी इनको तांत्र उत्कण्ठा थी, किंतु अन्यज होनेके कारण वे मन्दिरमें जाकर मन्दिरकी मर्मांडा नष्ट करना नहीं चाहते थे। वे तो अहर्निश भगवान्के नामका जर और उनके स्वरूपके ध्यानमें तन्मय रहते। अब यही ध्यान-मङ्ग होनेके बाद वे उनके दर्शनके लिये आकुल हो जाते। प्रेमके कारण उनके नैवोंसे वशु-सन्ति प्रवाहित होने लगती। हिन्दुकियाँ वेद जारी।

वे निशुल्पपुरी नामक अद्यूतोंकी वस्त्री छोड़कर श्रीरङ्गदेवतमें चले आये और कावेरीके दक्षिण तटपर एक छोटी-नी क्षोपड़ी बनाकर रहने लगे। यतन्दिन भगवान्के नाम-गुणोंका वर्तन और उनका स्वरण करने लगे। उसवोंके अवलरपर नव भगवान् श्रीरङ्गनाथकी तवारी निकलती, नव दूसे उनके दर्शन करके वे उन्मत्तसे हो जात। इनका मन-मरुर नृत्य करने लगता। वे वडे संदरे भगवान् श्रीरङ्गनाथका भाग स्वच्छ कर आया करते, जिससे मक्तजनोंको दर्शन करने जाते समय किसी प्रकारका कष्ट न हो।

इन्हें न कोई बुलाता और न वे कहीं जा सकते थे। इस प्रकार भजनके लिये इन्हें पर्याप्त त्रुतिया मिल गयी थी। एक दिन इन्होंने देवा झोपड़ीमें एक महात्मा आये हैं। वे महात्माके चरणोंपर गिर पड़े। इनके आश्वर्यकी सीमा नहीं थी। वे सोचने लगे, क्या मैं न्वन्त तो नहीं देज रहा हूँ। महात्माने बताया—“मैं भगवान् श्रीरङ्गनाथका तुच्छ चेष्टक हूँ। आपको कथेपर चढाकर मन्दिरमें ले चलनेके लिये भगवान्ने मुझे आजा दी है, इसलिये आप मेरे कंधेपर आ जायें और अपना चरण-स्तर्य करकर मुझे कृतार्थ दर्ते।”

सुनिवाहन वडे सुकोचमें पड़े, पर उनकी एक नहीं चर्ली। वे भगवान्के आंदशानुसार उच्चकुलके ब्राह्मणके कथेपर चढ़कर चले। उनका हृष्टय भर आया था। भगवान्की कृपा और उनका अद्युत प्यार देखकर वे कहन कल्पन कर रहे थे। अशु दर्करनहीं रहे थे। वे मन्दिरमें पहुँचे। भगवान्का दर्शन करके कृतार्थ हो गये। उन्होंने रोते-रोते कहा—“प्रभो! आपने मुझे कृतार्थ कर दिया। मेरे कर्मके बन्धन तमात कर दिये। म निस प्रकार आपके गुण गाँूँ, दयामय।” इस प्रकार स्तुति करते-करते उनकी वाणी रुक गयी। उनका शरीर चमकने लगा। लोगोंने देखा उनके मस्तकपर भगवान्का चरण नक्का हुआ है और चारों ओर दिव्य प्रकाश आया हुआ है। देखते-देखते मुनिवाहन उस दिव्य प्रकाशमें लीन हो गये। —शि० द०



छोटी कोठरीमें भगवद्दर्शन

सरोयोगी अथवा पोयगै आळवार, भूतत्ताळवार और पेयाळवार—ये तीनों ही अद्भुत जानी एव भगवान्‌के भक्त थे। ये निर्लोभी और भगवान्‌के गुणगानमें तन्मय रहते थे। ये चाहते तो नरेशके कोपसे अगाध सम्पत्ति प्राप्त कर सकते थे, पर इन्हें सम्पत्तिका करना ही क्या था।

एक बार ये तीनों संत तिरुक्कोइलूर नामक क्षेत्रमें गये और वहाँ तीनोंका एक साथ मिलन हुआ। इसके पूर्व ये लोग एक दूसरेसे सर्वथा अपरिचित थे। भगवान्‌की पूजाके बाद शत्रिके समय सरोयोगी एक भक्तकी कुटियामें आकर लेट गये। वहाँ धना अन्धकार था और कुटिया बहुत छोटी थी। वे लेटे हुए भगवान्‌का ध्यान कर रहे थे कि सुनायी पड़ा—‘भीतर रातभर मुझे आश्रय मिल सकता है क्या?’ सतने तुरंत उत्तर दिया—‘अवश्य मिल सकता है।’ इस कुटियामें स्थान है—एक आदमी लेट सकता है और दो आदमी बड़े मजेसे वैठ सकते हैं। आइये, हम दोनों वैठ रहें।’ आगन्तुक भीतर आया और परस्पर भगवद्वच्चर्चा होने लगी।

इसी वीचमें पुनः शब्द सुनायी पड़ा—‘रातभरके लिये आश्रय मिल सकता है?’ सरोयोगीने उत्तर दिया—‘अवश्य आइये, इस कुटियामें इतना स्थान है कि एक आदमी लेट सकता है, दो वैठ सकते हैं और तीन खड़े रह सकते हैं।’ तीनों खड़े होकर भगवान्‌का ध्यान करने लगे। इन्हें लगा कि हम तीनोंके वीचमें कोई चौथा व्यक्ति खड़ा है। देखनेपर कोई दीखा नहीं। तब ध्यानके नेत्रोंसे देखा तो पता चला कि भगवान्‌ श्रीनारायण हमारे वीचमें खड़े हैं। तीनों एक साथ ही भगवान्‌का दर्शन करके कृतार्थ हो गये। उनका जीवन सफल हो गया। भगवान्‌ने वर माँगनेके लिये कहा, तब तीनोंने कहा—‘ग्रनो। हम जीवनभर आपका गुणगान करते रहें; आप हमें यही वरदान दें कि हमसे आपका गुणगान कभी न छूटे।’ भगवान्‌ने कहा—‘प्यारे भक्तो! मैं तुमलोगोंके प्रेममें इतना जकड़कर बँध गया हूँ, कि तुमलोगोंको छोड़कर कहाँ जा सकता हूँ।’ उस समय इन लोगोंने भगवान्‌की महिमाके सौ-सौ पद रचे, जो ‘ज्ञानका प्रदीप’ के नामसे प्रसिद्ध है।

—शि० द०

भगवान् लूट लिये गये

भक्त नीलन्-तिरुमर्गैयाळवार भगवान्‌के दास्यभावके उपासक थे। ये वाणविद्यामें अत्यन्त कुगल और योद्धा थे। चोलदेशके राजाने इनकी वीरतासे प्रभावित होकर इन्हें अपने सेनापतिके पदपर प्रतिष्ठित किया था।

ये दक्षिणके तिरुवालि नामक क्षेत्रमें रहनेवाली कुमुदवल्ली नामक सुन्दरी कन्यासे विवाह करना चाहते थे। उस लवण्यवतीसे विवाह करनेके लिये कितने ही बड़े राजा भी हच्छुक थे। कुमुदवल्लीका पालन एक भक्तने किया था। यह नारायणकी भक्ता थी। नीलन्‌के आग्रहपर उसने उत्तर दिया—‘विष्णु-भक्तसे ही मेरा विवाह हो सकता है।’ उत्तर सुनकर नीलन्‌ एक वैष्णव भक्तसे दीक्षित होकर उसके सम्मुख उपस्थित हो गये। कुमुदवल्लीने कहा—‘मुझसे विवाह करनेके लिये इतना ही पर्याप्त नहीं। एक वर्षतक प्रतिदिन एक सहस्र आठ भक्तोंको भोजन कराकर उनका प्रसाद लाकर मुझे देना होगा।’ नीलन्‌ने यह भी स्वीकार किया और उन दोनोंका विवाह हो गया। प्रतिदिन एक सहस्र आठ भक्त भोजन करने लगे। इससे नीलन्‌के जीवनमें महान् परिवर्तन होने लगा। उनका

मन धीरे धीरे भगवान् नारायणके चरणोंमें अनुरक्त होने लगा और पहलेकी अपेक्षा अत्यधिक प्रेमसे ये भक्तोंकी सेवा करने लगे। पर सम्पत्ति कितने दिन साथ देती। वह समाप्त हो गयी। यहाँतक कि चोलदेशके राजाको वार्पिक कर देनेके लिये जो रूपया बचा था, वह भी खर्च हो गया। नरेशको पता चला तो उन्होंने इनके विरुद्ध सेना भेज दी। पर इनकी वीरताके सम्मुख सेना टिक न सकी, भाग गयी। दूसरी बार राजाने बड़ी वाहिनी भेजी, वह भी इनके सम्मुख नहीं टिक सकती थी, पर उनकी वीरताकी प्रशसा करके राजाने सधिका प्रस्ताव रखा और कर न देनेके कारण इनको कारावासमें डाल दिया। ये एक सहस्र आठ भक्तोंको भोजन करनेका व्रत भज्ज नहीं करना चाहते थे और कारागारमें इसकी व्यवस्था सम्भव नहीं थी; इस कारण ये उपवास करने लगे। भक्तप्राणधन भगवान्‌ने उन्हें स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—‘काञ्चीनगरीमें वेगवती नदीके तटपर अमुक स्थानमें विपुल सम्पत्ति गाड़ी हुई है, उससे ‘कर’ देकर अपना सेवाकार्य चालू कर सकते हो।’ नीलन्-

ने दोषवे दर्श उठा रह देखते दर नहीं ने बहुत
एक अस्त्रियों के सम उठाए दर्जे उने दिग । तिर्यक
लगाकर दिह दूर दूर हिंडी । निष्ठने दर्शनिय गत-
को दर के दिग और वर्षाको भोजन दर्व लगाकर गत-
का चम्पे लग । लक्ष्मि लगाकर लक्ष्मि लगाकर
दर्शन दिये औं देवताओं के दर्शनों औं तिक्षण गे रह-
कि निष्ठन अवश्य उद्धर औं भगवन्के दर हैं ।
उद्धरने निष्ठने दर्शन दर हैं

नह यह भी मैं दौँदा गए यह निकल देता उनके दर्शनों
उठने पर वह गधर्ये रुद्ध नहीं रहे। निकलते लाइकर
कह—इसके लिए उड़ाने के लिए जो कि यह तिथि है।
दमनिए दें—कृष्ण ने हाथ बढ़ाया तुम्हारा
ज्ञान तरह। पुनर्जन्म जन्म दें जैसे कहा—अ० जन्म
नह चाहा। यह जन्म दृढ़त ही निकलते जिक्र देना
हो गयी। उनके दर्शने से विद्युत-चक्र प्रविष्ट हो गयी।
उन्होंने अपने होलिक देवता तो उन्होंने छोड़ नहीं पा।
उन्होंने हाथ लग उठा। वहाँ गद्दर नगदर शिल्प
नगदर, दिलेन थे। निकल दृढ़त था उन। वे विक
गये। नगदर के अकुल हृषि उनका अनुलिंग सहे। वे
हुए देख ही नहीं पाए। जो कहर-कल्पन उन्होंने और
नगदर के प्रथम करने। उनके प्रथम उग्रता नगदर
में रहा—प्रिय नीलं नै तुन्ह इन्द्र हैं। हुन जन्म
मन्दिनि न करो। अब तुम ही रक्षा उक्त वहाँ नीलंको
ही अब दो और प्रभुकी तुम्हारा अद्वितीय पूजा करो।
अद्वितीय में भी और भी में देखा उक्त करो। यह उ
नगदर अनन्त में वहाँ तुला दृढ़ते निखोगे।—छिं दु०

भगवान्की मृति वोल उठा

बहु कर्तव्ये गुणा नन नम्भदर-दृष्टिर या।
वे विद्युत्तद्—पर्वतमें उत्कृष्ट दुर्योग। इन्हे जल सेवा
ही नाम-करने इसे भगवान्दे विद्युत्तमें बेटा चह दिया
और करते ही पर्वतमें प्रदेश बनते ही में बन्धे लोगे दे और
पर्वतके सभी इन्हे पेटुते केवलमें उक्त लोड दूरदूर
स्थाप्त हो गये। इन्हे शंख-पत्र विद्युत्त नहीं या
हृत्तिमें इन्हे अद्यतोर भी चह नहीं है। इन्हें बहुत्ते
दृष्टिरात्रेष्ये उक्त दृष्टिरात्रेष्ये गुणमें है जो अन्वेषण
कारके वस्तु उनकी रक्षा है।

त्रिपुरा भगवान् अनुष्टुप्प कीरि विद्युते लक्षणम्
युन त्रिपुरा भगवान् कीरि लक्षणम् उद्धोते अस्ति वृत्ते
प्राप्त श्रीकृष्णके चरणम् हे उच्च रक्षा दी । इतर
मुख्ये उच्च मित्र—क्या तुम्हे शब्दोमना चरित न गाया
हे ? कदम्बे उच्च दिग्गं जहाँ प्रभो ! हल करे । अह
मे अहम् अग्रका वज्र कहाँगा । इतके बार उद्धोते
अस्ति युन त्रिपुरा भगवान् कीरि लक्षणम् जोड़ दी । तत्
प्राप्त श्रीकृष्णके भगवान् श्रीकृष्णके सन्माने देवते पद्मो गङ्गा
कुमा रुद्र भूर्भुव वैष्णव उठी—ये हृषीर अध्यात (नद्
शक्ति) हैं । —क्षिं हु०

गुरु-प्राप्ति

बहु जवि निदकोद्र नम्ब सन्म एक भावें
त्रस के नहीं उत्तम हुदे। ते वेदके अच्छे इन ये किंतु
इन्हें दोन कि नाम लहरी अच्छे दिन वेदन जनका कोई
नूस नहीं। इन्हें भगवान्का प्रतिश्रुति अभिष्ट थी।
एक दिन वे गङ्गात्पर घूम रहे ये वि दक्षि की ओर इन्हें
प्रकाश दिलाये दिय। यह प्रकाश इन्हें विल दिनों प्रक दीजा। इल

प्रलङ्घने प्रभावित होकर ये त्विवेस्तिवे उसी द्वारा बदले गये। प्रलङ्घने पश्चात् यह आगे इन दोनों नहीं होते हैं। ये कहाँ गये। इन्होंने नामित होने पर इन्हें कोइसमें चम्पविलय देना चाहे हवाहे दर्शन हुए। इन्होंने उनके उपदेश के लिये प्रत्यक्षार्थी, परं दोसरीकी रूप विनहा सुर्खि। आवाज द्वारा दाढ़ी बड़वी पर बोइं उचर नहीं मिल। न विदेशी दीवाल्यर

पत्थर मारा, पर महात्मापर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। विवरणः मधुर कविने साहस किया और कोटरके समीप जाकर बोले— ‘महाराज। मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता था। यदि सत्-प्रदार्थ-(सूक्ष्म चेतन गति) असत् (जड़ प्रकृति) के अदर ही आविर्भूत हो जाय, तो वह क्या खायेगा और कहाँ

विश्राम करेगा?’ योगीने अब उत्तर दिया—‘वह उसीको खायेगा और वहांपर विश्राम करेगा।’ मधुर कविने अपने गुरुको पहचान लिया, जिनकी वे इतने दिनोंसे खोज कर रहे थे। वे इस असत्-शरीरके अदर सत् (परमात्मा) के रूपमें विद्यमान थे। —शि० दु०

भगवान्‌का पेट कब भरता है?

(लेखक—प० श्रीगोविन्द नरहरि वैजापुरकर)

प्राचीन कालमें एक परम गिवभक्त राजा था। एक दिन उसे कल्यना मूँझी कि आगामी सोमवारको अपने इष्टदेव शंकरका हौद दूधसे लवालव भर दिया जाय। हौद काफी गहरा और चौड़ा था। उसने प्रधानसे मन्त्रणा की। प्रधानने लगे हाथ हुग्गी पिट्ठा दी—‘सोमवारको सारे ग्वाले शहरका पूरा दूध लेन्ऱर मन्दिर चले आयें। हौद भरना है, राजाकी आजा है। जो इसका उल्लङ्घन करेगा, वह कठोर ढण्डका भागी होगा।’

सारे ग्वाले धवरा उठे। उस दिन किसीने धूँट भर भी दूध अपने बच्चोंको नहीं पिलाया। कुछने तो बछड़ोंको गायको मुँह लगाते ही छुड़ा लिया।

दूध आया और हौदमें छोड़ा गया। हौद थोड़ा खाली ही रह गया। राजा बड़ी चिन्तामें पढ़ गया। इसी बीच एक बूढ़ी आयी। भक्ति-भावसे उसने लुटियाभर दूध चढ़ाकर भगवान्से कहा कि शहरभरके दूधके आगे मेरी लुटियाकी क्या विसात। फिर भी भगवन्, बुद्धियाकी श्रद्धाभरी वे दो दूँदें स्वीकार करो।’

दूध चढ़ाकर बुद्धिया बाहर निकल आयी। सभीने देखा—भगवान्‌का हौद एकाएक भर गया। उन्होंने राजासे जाकर कहा। राजाके आश्रयका ठिकाना न रहा।

दूसरे सोमवारको राजाने फिर वैसा ही आदेश दिया और गौवभरका दूध महारेवके हौदमें छोड़ा गया, फिर भी हौद खाली ही रहा। पहलेकी तरह बुद्धिया आयी और उसकी लुटियाका दूध छोड़ते ही हौद भर गया। राजसेवकोंने राजाको जाकर वृत्तान्त सुनाया।

अपना काम स्वयं पूरा करें

एक राजाके चार पनियों थी। राजाने हर एकको एक-एक काम सेंप दिया। पहलीको दूध दुहनेका काम बताया, दूसरीको रसोई पकानेका, तीसरीको बाल-बच्चे सेंभालनेका और चौथीको अपनी सेवा करनेका।

राजाका आश्र्वय उत्तरोत्तर बढ़ता गया। अबकी बार उसने स्वयं उपस्थित होकर रहस्यका पता लगानेका निश्चय किया।

तीसरा सोमवार आया और पुनः गौवभरका दूध राजाने अपने सामने हौदमें ढलवाया। हौद खाली ही रहा। इसी बीच बूढ़ी आयी और उसके लुटिया उँड़ेलते ही हौद भर गया। बुद्धिया पूजा करके निकल गयी।

राजा भी उसके पीछे हो लिया। कुछ दूर जानेके बाद उसने बुद्धियाका हाथ पकड़ा। वह कॉपने लगी। राजाने अभय दिया और इसके रहस्यकी जिजासा करते हुए कहा—‘वताओ क्या बात है, तुमने कौन-सा जादू कर दिया जो हौद एकाएक भर गया?’

बुद्धियाने कहा—‘वेटा! जादू-चादू कुछ नहीं। बरके बाल-बच्चों, ग्वालवालों—सभीको पिलाकर बच्चे दूधमेंसे एक लुटिया लेकर मैं आती हूँ। सभीको तृप्त करके बेघ दूध भगवान्से चढ़ाते ही वे प्रसन्न हो जाते, भावसे उसे ग्रहण करते हैं और हौद भर जाता है। किंतु तुम राजपलसे गौवके सारे बाल-बच्चों, ग्वालवालों, रुण-बूढ़ोंका पेट काटकर, उन्हें तड़पता रखकर सारा दूध अपने कब्जेमें करते और उसे भगवान्से चढ़ाते ही तो उनकी आहसे भगवान् उसे ग्रहण नहीं करते। उतनेसे उनका पेट नहीं भरता। इसीलिये हौद खाली रह जाता है।’

राजाको अपनी भूल समझमें आयी। वह बुद्धियाको प्रणाम करके लौट गया और ऐसी हरकतोंसे विरत हो गया।

—प्राचीन कथाएँ

कुछ दिनों तो चारोंने ठीक-ठीक अपना-अपना काम किया। पर आगे चलकर हर एकको यह मालूम पड़ने लगा कि मैं ही क्यों रसोई पकाऊँ, राजाकी सेवा क्यों न करूँ; मैं ही दूध क्यों ढुँडँ, बच्चोंको क्यों न खिलाऊँ। इस तरह एक-दूसरी

आपमर्म लड़ने लगीं। फलत धर्म काम भी रुक जाता।

राजा द्वय यहरस्त्वें भीता ही-भीतर बहा उदाम रहता। एक बार उसके यदों एक महात्मा आये। राजाने अर्ध्य-पाण्डिमे उनकी सम्मानना नी। महात्माने राजाका उदाम चेहरा देखकर जाण पृथा। राजाने साग फिटा कह मुनाया। महात्माने उसे आश्वासन देकर इसका उपाय कर देना स्वीकार किया।

महात्माने अनन्दिष्ट लगायी। क्षणदेहे काणोंका पता पा लिया और गजाको लखर पहली रानीके गहाँ जाये। उगरे प्रग्र—‘तुम्हें धूष दुर्देहोंका काम दिया गया है न?’ उगरे रहा—‘हाँ।’ महात्माने बताया—‘तो सुनो, पूर्वजन्ममें तुम गाय थी। दिनभर यार्ला चरती और आमने वर्णके घर गिरायग आ अपने सानोंकी दुर्घटारसे उनपर अभिपूर करती थी। पर वीचमें ही मृत्यु हो गयी। उम पुण्यमें गनी उनी, पर आगधना पूर्ण नहा हुई थी। इसीलिये राजाने तुम्ह दूष दुर्देहोंको कहा। धूष दुर्देहर शकर ममक उन्हें पिलाती जाओ, इसीमें तुम्हारा कल्याण है।’

उनीने ‘तनाम्तु’ बहकर नमस्कार किया।

मात्मा आगे बढे। दूसरी रानीके पास आकर वहा कि नुग रसों दरनेमें क्यों भागती हो। अरो, पूर्वजन्ममें तुम गरीब ब्राह्मणकी पत्नी थी। सोमगारका व्रत करती और

प्रतिदिन रोरा अन्न भिक्षामें माँग लाती तथा पकाकर भगवान्-को भोग लगाती थीं। उसी पुण्यसे तुम रानी बनी। इसीलिये रसोंद पकाया करो और सबकी आत्मा तृप्तकर भगवान्-को प्रसन्न करो।’ उसने भी ‘तनाम्तु’ कहा।

महात्मा तीसरी रानीके पास गये। उससे कहा—‘पूर्वजन्ममें तुम बानरी थीं। अच्छे-अच्छे फल तोड़कर शकर-को चढ़ाती थीं। इसीलिये रानी बनी और बाल पच्चे हुए। हन्दे ही सेभालनेमें तुम्हारा कल्याण और शकरकी प्रसन्नता है।’ तीसरीने भी मान लिया।

महात्मा चौथी रानीके पास आये। उससे कहा—‘पूर्वजन्ममें तुम चील थीं। आकादामें उइतीं और दोपहरमें जगलके एक महादेवके सिरपर छाँह करके उन्हें नित्य धूषसे बचाती थीं। इसीलिये तुम्हें भगवान्-ने रानी बनाकर छपर-पलगापर नियाया। इसीलिये तुम भी राजाको यहीं बैठकर सुन दो, उनकी सेवा करो, इसीमें तुम्हारा कल्याण है।’ उसने भी स्वीकार कर लिया।

महात्मा चले गये। चारों रानियाँ अपना-अपना रुत्तंध पूर्वजन्म प्राप्त नमस्कर उन-उन कामोंको बड़े प्रेमसे करने लगा। दूसरेका काम अच्छा और अपना बुरा, यह कभी भी मनमें न लाती। एक-दूसरेकी इन्द्र्योंसे बचकर बड़े प्रेमसे रहने लगीं। राजाके भी आनन्दका ठिकाना न रहा। —गो वै
—ग्रामीन कथाएँ

सवके कल्याणका पवित्र भाव

गुरुदेवने श्रीरामानुजाचार्यको अष्टावर नारायण-मन्त्रका उपर्देश रखके नमस्कारा—‘वत्स ! यह परम पावन मन्त्र एक बार भी जिसके कानम पड़ जाता है, वह समस्त पापोंसे छूट जाता है। भरनेपर वह भगवान्-नारायणके दिव्य वैकुण्ठधारममें जाता है। जन्म मृत्युके बन्धनमें वह फिर नहीं पड़ता। यह अत्यन्त गुण मन्त्र है। इसे किसी अनधिकारीको मत सुनाना।’

श्रीरामानुजाचार्यके मनमें उसी समय द्वन्द्व प्रारम्भ हुआ—‘जप इस भगवन्मन्त्रको एक बार सुननेसे ही धोर पापी भी पाप मुक्त होकर भगवद्वामसका अधिकारी हो जाता है, तब ससारके ये प्राणी क्यों मृत्युपात्रमें पड़े रहे। क्यों न इन्हें यह परम पावन मन्त्र सुनाया जाय। लेकिन गुरु-आश्रामका उल्लङ्घन महापाप है—ऐसा पाप, जिसे कोई दूर नहीं कर सकता।’

दृद्यमें सपर्य चलता हो, तब निद्रा कैसे आती। रात्रि हो गयी थी, सब लोग सो गये थे, फिरु रामानुज जाग रहे थे। वे धीरेसे उठे और कुटियाके छपरपर चढ़कर पूरी शक्तिसे चिल्डाने लगे—‘नमो नारायणाय ! नमो नारायणाय !’

आम-पासके सभी लोग चौंककर जाग उठे। गुरुदेवने रामानुजको छपरसे नीचे आनेको कहा। नीचे आनेपर पूछा—‘तू यह क्या कर रहा है ?’

रामानुजने उत्तर दिया—‘भगवन् ! आपकी आशा भज्ञ करनेका महापाप करके मैं नरकमें जाकूँगा, इसका मुद्दे कोई दुख नहीं है। ये सब प्राणी आपके हारा उपदिष्ट मन्त्रका अचण करके भगवद्वाम तो पहुँच जायेंगे।’—

गुरुदेवके नेत्र भर आये। उन्होंने रामानुजको हृदयसे की जिसे इतनी चिन्ता है, वही प्राणियोंका उदारक बनेगा।' लगाते हुए कहा—‘तू ही सच्चा शिष्य है। प्राणियोंके उदार-

—सु० मि०

भक्त आचार्यकी आदर्श विनम्रता

(लेखक—आचार्य स्वामीजी श्रीराधवाचार्यजी महाराज)

शेषावतार श्रीरामानुज महामुनीन्द्रके पवित्र सम्प्रदायमें श्रीवैष्णव जगत्के महान् आचार्य श्रीवेङ्कटनाथका प्राकृत्य विक्रम संवत् १३२५ मेरे विजयादगमीके दिन हुआ था। ये वहुत बड़े विद्वान्, प्रचारक, महान् भक्त, परम आदर्श-चरित्र महात्मा थे। श्रीवेदान्तदेविकका चमत्कारपूर्ण जीवन सर्वथा बन्दनीय है। श्रीदेविकजीके जीवनकी एक घटना यहाँ दी जाती है। श्रीदेविककी प्रतिष्ठासे जलनेवाले कुछ लोग इनसे द्वेष करते थे और वे सदा यही सोचा करते थे कि किसी प्रकार श्रीदेविककी प्रतिष्ठा भङ्ग हो।

एक दिन कुछ ईर्ष्यालु लोगोंने मिलकर आपके द्वारपर जूतोंकी माला लटका दी। वह इतनी नीची थी कि बाहर निकलते ही उसका सिरमे लगना अवश्यम्भावी था। जब

श्रीदेविकजी अपनी कुटीरसे बाहर निकले तो उन्होंने इस कुकृत्यको देखा। देखकर वे गान्तिपूर्वक बाहर निकल आये और यह कहने लगे—

कर्मावलम्बकाः केचित् केचिज्ज्ञानावलम्बकाः।
वयं तु हरिदासानां पादरक्षावलम्बकाः॥
अर्थात् ‘कोई कर्ममार्गका अनुसरण करते हैं और कोई जानमार्गका अनुसरण करते हैं, किंतु हम तो हरिदासो—भगवद्गत्कोंके जूतोंके अनुयायी हैं।'

इन शब्दोंको सुनकर आस-पासके लोग वहुत प्रभावित हुए, और जिन लोगोंने यह कुकृत्य किया था, उनको बड़ी लज्जा आयी। वे आकर श्रीदेविकके चरणोंपर गिर पड़े और क्षमा माँगने लगे।

विद्यादान न देनेसे ब्रह्मराक्षस हुआ

वात उम समयकी है, जब श्रीरामानुजाचार्य अपने प्रथम विद्यागुरु श्रीयादवप्रकाशजीसे अध्ययन करते थे। यादव-प्रकाशजी अपने इस अद्भुत प्रतिभाशाली गिर्यसे डाह रखने लगे थे। उन्हीं दिनों काञ्चीनेऱेकी राजकुमारी प्रेत-नाभासे पीड़ित हुई। अनेक मन्त्रज बुलाये गये, किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। नरेशका आमन्त्रण पाकर शिरोंके माथ यादव-प्रकाशजी भी काञ्ची पहुँचे। उन्होंने जैसे ही मन्त्रप्रयोग प्रारम्भ किया, राजकुमारीके मुखसे प्रेत बोल—‘तू जीवन-भर मन्त्रपाठ करे तो मेरा कुछ विगाइ नहीं सकता। उलटे मैं तुझे चाहूँ तो अभी धर पटकूँ। मैं सामान्य प्रेत नहीं हूँ, ब्रह्मराक्षस हूँ।'

यादवप्रकाशजी डरकर हटने लगे। उस समय श्रीरामानुजाचार्य आगे आये। उन्होंने पूछा—‘ब्रह्मन् ! आपको यह दुःखदायिनी योनि क्योंकर मिली?’

रोकर ब्रह्मराक्षस बोला—‘मैं विद्वान् था, किंतु मैंने अपनी विद्या छिपा रखी। किसीको भी मैंने विद्यादान नहीं किया, इससे ब्रह्मराक्षस हुआ। आप समर्थ हैं। मेरे मस्तकपर आप अपना अभय कर रख दें तो मैं इस प्रेतत्वसे छूट जाऊँ।’

श्रीरामानुजने राजकुमारीके मस्तकपर हाथ रखकर जैसे ही भगवान्का स्मरण किया, वैसे ही ब्रह्मराक्षसने उसे छोड़ दिया, क्योंकि वह स्वयं प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया।—सु० मि०

प्रेमपात्र कौन ?

विल्वमङ्गलके पिताका श्राद्ध था। विवश होकर विल्वमङ्गलको घर रहना पड़ा। जैसे-तैसे दिन वीता; क्या हुआ, कैसे हुआ—यह सब किसे पता था। विल्वमङ्गल ब्रेमन-

से सब काम कर रहे थे। एक-एक क्षण उन्हें भारी हो रहा था। कब इस उल्जनसे छूटें और कब अपनी प्रेयसी वेश्या चिन्तामणिके पास जायें—यही चिन्ता थी उन्हें।

मन्दासो गिर्वमझल्ले छुट्टराहा मिला । दौड़े दौड़े नदी-
निनारे गये तिनु उसी समय आनाशमें पटाएँ ज्ञ गयीं,
बेगकी खांधी आयी, चांगे और अन्यरा आ गया । नोडे
नेचट नदी निनारे मिल नहीं । नौना हैंडनेमें नें तुर्हु ।
गवि हो गयी । जर नोडे जागन पार जानेरो नहीं मिला, तर
गिर्वमझल नदीमें इद पड़े । नयोगमन एक बहना नुरां
मिल गया । उसे लकड़ी सुमझकर गिर्वमझलने पकड़ लिया
और उसीरे नहरे नदी-पार हुए ।

आँधी-गानीके मारे बेघाने अपने बच्चा द्वार तथा
खिड़िस्ताँ बढ़ कर दी थीं । गिर्वमझलके घर शाद होनेसे
उसके आनेकी जात थी ही नहीं, अत बेघा निश्चिन्त
सो गयी थी । गिर्वमझलने उसे द्वारपर पहुँचनर बहुत
पुकार, द्वार गटनदाया, तिनु वर्षा तथा ओरीके कारण
उनका शब्द बेघा सुन नहीं सकी । विजली चमनी,
गिर्वमझलको एक गिरदकीसे नस्ती-जैसा कुछ लटकता
दीया । वे उसे पकड़कर ऊपर चढ़ गये । वह गिरदकी
सयोगवश खुली थी, अत भीतर पहुँच गये ।

जगायी जानेपर चिन्तामणि पानीसे भीगे गिर्वमझलको
देगमर चाँक गयी । उसने पृष्ठा—‘तुम इतनी रात गये
कैसे आये ? तुम्हारे शरीरने इतनी दुर्गम्य क्यों आ रही है ?’
गिर्वमझलने बताया कि वे लकड़ीके तख्तेपर बैठकर नदी

पार हुए थे और रेगमकी रसीके सहारे धरमें पहुँचे । वर्षा
रुक गयी थी । चिन्तामणि दूषक लेकर देखा तो खिड़की-
में बाहर भयन्न सर्व लकड़ रहा था । अत तो वह गिर्वमझल-
के साथ नदीतटतक गयी । वहाँ वह जलजीवोंसे स्थान-
स्थानफर नुचा, सड़ी दुर्गम्य देता मुर्दा पड़ा था, जिसे काढ
समक्षकर, जिसपर बैठकर गिर्वमझल नदी-पार हुए थे ।

बेघामा भन शृणासे भर गया । उसने कहा—‘ग्रामण-
कुमार ! आज तुम्हारे पिनामा शाढ था और कि भी तुम
मेरे यहाँ दौड़े आये । जिसके प्रेममें तुम्हें सड़े मुद्देकी
दुर्गम्य नहीं आयी, राला नाग तुम्हें रेगमकी ढोरी जान
पड़ा, वह तुम्हारा प्रेमगात्र कौन है—यह आँख खोलकर
देख ले । यह मेरा देह भी हसी मुद्देजैसा है । इसमें भी
ऐसा ही माम, हड्डियाँ, शृणित मल-मूत्र, नर्त, मज्जा-मेद ही
है । यह मुर्दा है तुम्हारा प्रेमगात्र ? अरे ! जिनना प्रेम
तुम्हारा इस मुद्देसे है, उसका एक अश भी श्रीकृष्णसे होता
तो तुम निश्चय कृतार्थ हो जाते ।’

बात टिकाने लग गयी । गिर्वमझलने बेघा चिन्तामणि-
को प्रणाम किया—‘तुम्हीं मेरी गुरु हो !’ वे वहाँसे चल पड़े
ब्रजकी ओर । सचमुच प्रेमपात्र कौन है, यह आज उन्होंने
जान लिया था ।—मु० मिं०

सत्याग्रह

विक्रीय ठमड़ी शताब्दीनी जात है । एक दिन
कार्यार्थनरेग महागज यशस्वदेव अपनी गजसभामें बैठकर
किसी गम्भीर विषयना चिन्तन कर रहे थे कि प्रायोपवेशन-
अधिकारीने सूचना दी कि एक व्यक्ति गजद्वारपर प्राण-
त्याग करनेके लिये प्रस्तुत है । महागज चिसित हो उठे,
उनके गत्यमें प्रजा लुप्ती, व्यस्य और सम्पन्न थी । कहीं
चोरीका भय नहीं था, लोग धर्मपर आलंड थे, जीवनके
प्रत्येक क्षेत्रमें सत्यपरक आचरण होता था । महाराजने
तत्क्षण उस व्यक्तिको सभा-भवनमें बुलाया ।

‘किसी दन्यु या अनायने तुम्हारे बड़े कर्ममें विप्र तो नहीं
उपस्थित किया ? ऐसा तो नहीं है कि किसी राजकर्मचारीने
अनजानमें तुम्हारे प्रति अनागरिकताका वर्ताव किया हो ?’
महागज उच्चगकी प्रतीक्षा कर रहे थे ।

‘भगवती चितक्ता (झेलम) की पवित्र जलधाराए
लालित आपके विशाल रुपमें नुस्खे किसीसे भय नहीं है ।

मेरे साथ रात्यके न्यायाधीशोंने अन्यायका व्यवहार किया है,
मैंने उनसे मन कुछ सत्य नहा, पर उन्होंने मेरे धनी अनु-
के पक्षमें ही निर्णय दिया ।’ व्यक्तिने अपने प्राण-त्यागका
कारण बताया ।

‘बात क्या है ? द्यष्ट कहो, नागरिक । मैंने कभी न्यायका
भाव निरने नहीं दिया । मुझपर विश्वास रक्खो ।’ महागज-
ने आव्वासन दिया ।

‘म पहले आपकी ही राजवानीमें रहता था । मेरे पास
अपार सम्पत्ति थी, पर अलधमीके प्रकोपपे मैंने दरिद्र होकर
उसे बैच दिया । बरतन बैच ढाला, पक्कीकी जीविकाके लिये
मकानके सोनानके पासका कूप छोड़ दिया था । गर्मीमें उसपर
माली बैठकर फूल बैचा करते थे और कुछ पैसे मेरी
पक्कीको भी मिल जाते थे । मैं रप्या कमाने बिटेश चला
गया तो मकान खरीदनेवाले मेरी पक्कीको बल्पूर्वक कूप-
परसे हट्ट दिया । वह मजदूरी करने लगी—लैटनेपर मैंने

न्यायालयका दरवाजा खटड़वाया तो उनने मेरे सत्यकी उपेक्षा कर दी।^१ नागरिकने स्पष्ट किया।

X X X X

‘हमलोगोंने भोच-समझकर निर्गय किया हैं, महाराज।’ न्यायावीजोंने अपना पछ ढूढ़ किया। सभाभवनमें श्रेष्ठ नागरिक उपस्थित थे। जिसने मकान खरीदा था, वह भी था। महाराज धर्म-सिंहासनपर विगजमान थे। नागरिक कीमती अँगूठी पहने हुए थे। महाराज कौतूहलमें उनकी अँगूठियों हाथमें लेकर पीक्षण कर रहे थे। मकान खरीदनेवाले व्यक्तिकी अँगूठी हाथमें आते ही महाराज लोगोंको बैठे रहनेका आदेश देकर बाहर आ गये। उस मुद्रिकाको सेठके घर भेजकर महाराजने सेवकसे उसके बदले-में वह वही मँगायी, जिसमें मकानके विक्रय-पत्रका विवरण लिखा था।² ‘उन्हेंने उसको पढ़ा।

वे वही लेकर धर्म-सिंहासनपर बैठ गये। महाराजने

न्यायावीजोंको समझाया कि विक्रय-पत्रके अधिकरण-मुद्रामें सेठने राजलेखकको एक हजार दीनार दिये हैं। यह यात भमझमें नहीं आती कि एक सावारण कामके लिये इतना धन क्यों व्यय किया गया। मुझे ऐसा लगता है कि लेखकने उत्कोच (घूम) पाकर ‘सोनान-कूपरहित मकान’ के स्थान-पर ‘सोनान-कूपसहित मकान’ लिख दिया है। सभामें सन्नाटा छा गया। ‘महाराज यशस्करदेवके आदेशसे न्यायालय-के लेखको सभाभवनमें उपस्थित होना पड़ा। वह लंबित था। ‘महाराज न्यायका खून मैंने किया है। ‘रहित’ के बदले महित मैंने ही लिखा था।’ लेखकने प्रमाणित किया।

‘सोनान, कूप, मकान—सब कुछ नागरिकका है।’ महाराजने न्यायको धोखा देनेके अपराधमें मकान खरीदनेवालेको आजीवन देश-निर्वासनका ढण्ड दिया।

नागरिकके सत्याग्रहने विजय प्राप्त की। न्यायने सत्यकी पहचान की।—रा० थी०

(राजनरस्ती)

धर्मकी सूक्ष्म गति

लगभग एक हजार वर्ष पहलेकी बात है। महानज यशस्करदेव कामीरमें शासन करते थे। प्रजाका जीवन धर्म, सत्य और न्यायके अनुन्म पथ। महाराज स्वयं रात-दिन प्रजाका हित-चिन्तन किया करते थे। एक दिन वे सायकालिक सुव्या-वन्दन समाप्त करके भोजन करने जा ही रहे थे कि द्वारपालने एक ब्राह्मणके गजदारपर आमरण अनशनकी सूचना दी। महाराजने भोजनका कार्यक्रम स्थगित कर दिया; वे तुरत बाहर आये। उन्हेंने ब्राह्मणको दुखी देखा और उनका हृदय कशणसे त्रासित हो गया।

‘महाराज ! आप अपने गज्यमें अन्यायका प्रचार कर रहे हैं। प्रजाका मन धर्ममें सुख मान नहा है। यदि आप ठीक तगड़ न्याय नहीं करेंगे तो राजदार ब्राह्मणकी समाधिके रूपमें परिणत हो जायगा।’ ब्राह्मणने यशस्करदेव-को सावधान किया।

‘मैंने आपके कथनका आश्रय नहीं समझा, ब्राह्मण-देवता ! मुझे अपने न्याय-विवानपर भरोसा है। आप जो कुछ कहना चाहते हैं, कह डालिये। कहीं ऐसा तो नहीं है कि द्वारपालके बह कहनेसे कि मुझसे कल मेंट हो सकेरी, आपने प्राण-त्यागका निश्चय कर लिया है।’ महाराजकी शुक्र्यी तन गई।

नहीं, महाराज ! मैंने विदेशसे सौ स्वर्ण-मुद्राएँ उपार्जित करके आपके राज्यमें प्रवेश किया। मुझे पता चला कि आपके शासन-कालमें कामीरमें सुराज्य आ गया है। रास्तेमें मैंने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया। पर लवणोत्स ग्रामके निकट आते-आते मैं थक गया। रातमें एक रमणीय उद्धानमें पेड़के नीचे मैं शयन करने लगा। दैवयोगसे मेरे शयन-स्थलके निकट धाससे आच्छादित एक कूप था, जिसका पता मुझे नहीं था; उसमें मेरी स्वर्ण-मुद्राओंकी गठरी गिर पड़ी। सवेग होनेपर मैंने कूपमें कूदकर प्राण-त्यागका निश्चय किया ही था कि ग्रामवाले एकत्र हो गये। उसमेंसे एक साहसी व्यक्तिने कहा कि ‘यदि मैं गठरी निकाल ढूँ तो क्या दोगे ?’ मैंने कहा कि ‘उस धनपर मेरा अधिकार ही क्या रह गया है, तुमको जो ठीक लगे, वह मुझे दे देना।’ उसने गठरी निकाल ली और मुझे केवल दो मुद्राएँ दी। मैंने इसपर आपत्ति की तो उसने कहा कि महाराज यशस्करदेवके गज्यमें व्यवहार मनुष्यके बचनपर चलते हैं। सरलताके कारण इस औपचारिक बचनके कथनसे मेरा धन उसने हड्प लिया। इसका उत्तरदायित्व आपपर है, अन्याययुक्त व्यवहार राज्यमें आपके नामपर होता है।’ ब्राह्मणने अपनी कथा सुनायी। महाराजने कहा कि निर्णव कल

होगा और ब्रह्मान् साथ ही भोजन करने चाहे गये ।

X X X X

दूसरे दिन लवगोल ग्राम में लोग महाराजके आदेशसे सुभासवनमें उपस्थित हुए । ब्राह्मणने पोटली निजाल्लेवार्ड वर्णिको आड़तिसे प्रहरणा । महाराज वर्ष-आननद थे ।

‘ब्राह्मणने लो हुठ भी कहा है; वह अब्जन्या ठीक है । रेते उन्हका पालन किया है । वचनके अनुसार आचरण किया है, मनुष्यज । पोटली निजाल्लेवार्डने यशस्विनेवको सुन्दरी श्वाङ्कनिसे विस्तित कर दिया । वे गम्भीर होने लोचने लगे ।

‘अदानवे दुष्टादृष्टि ब्राह्मणको दी जाएँ और दो पोटली

निजाल्लेवार्डको है ।’ महाराजने निर्णय दिया, लोग अद्वित हो उठे ।

‘उक्त अवधिग दमन करनेके लिये दौहते हुए महामहिम धर्मकी गति गम्भीर विचाराद्य निश्चित की जाना है । उस प्रगाढ़ अन्वयालका नाम करना है, वर्म अवर्मका उन्मूलन दर देता है । ब्राह्मणने यह नहीं कहा कि जो देते हो, वह दो ऐसा कहा कि जो ठीक लगे वह दो । पोटली निजाल्लेवार्डको दो मुआई दर्जकर नहीं थीं, इन्हिये उन्हें ब्राह्मणने दे दिया, जो अच्छी लगीं; उनको रख दिया । यह अन्याय था ।’ महाराजने शङ्ख-उमावान किया । उनके जयनादसे न्यायाल्य गौज उठा ।—८० श्री० [गजगङ्गिरा]



सच्ची प्रशंसा

कल्पीजके महामहिम शासक महाराज हर्षकी हृपासे मानुषुनका कान्दनरके रिहायुननद गद्यामिष्टक हुआ । मानुषुतर्की उदासी, काव्यप्रियता और द्यन्यालाले आड़ा दोकर बड़ेबड़े विदानों, अविदों और गुणजोनि कामीनी गजसुपा समर्पण की ।

महाराज मेष्ट सानकी शतार्दीके महान् कवितोमें प्रगिराति थे । एक दिन गज मानुषुनको द्यन्यालने मेष्टके आगमनकी झड़ना दी, गजने वड़ी प्रत्यलता प्रकट की । घूम-वाससे उनका स्वागत किया । मानुषुनने मेष्टसे अपना प्रतिष्ठ काव्य हर्योन-बद्ध सुनानेकी प्रार्थना की ।

‘आपपर सरखती और लक्षी दोनों अनुदूल हैं । वन्य हैं आप ।’ कवि मेष्टने गजकी प्रशंसि गारी और उसके गद आव्य सुनाना आरम्भ किया ।

सुमन्त गुजसुपा काव्य-श्रवणके आनन्दसे श्रूम उठी, पर मेष्टका सुख उकरा हुआ-सा था । उनके नवनोंमें विस्तय था कि हत्ती सुन्दर स्तना होनेपर भी गजने काव्य-श्रवणके सम्य एक बार भी ‘मानुषाद’ नहीं किया । कवि मेष्टके मनमें विचार उठा कि मानुषुनने लीबनके पहले चरणमें द्युग्धतान अनुमत किया और तायद्वीपाथ मुझे अपने दोदा कवि भी समझा है, अपनी काव्य-दुष्टिपर गजको

अभिमान हो गया है । ऐसे गजने पुनर्स्तारकी भी आशा नहीं थी जा सकती । मेष्टने काव्य सुनानेके बाद खिल मनसे उसके पत्रोंको बेष्टनमें बॉधना आरम्भ किया कि सहना मानुषुनने पत्रोंने नीचे एक न्यायाल्य रखवा दिया । गजके नवनमें यह अपूर्व कार्य था, विदानों और राजमन्त्रियोंने आश्रयका ठिकाना नहीं रखा ।

इस पात्रको नीचे रक्षनकी बोर्ड आवश्यकना नहीं है, महाराज !’ कविने स्वामिनान प्रकट किया ।

‘अविद ! आप ऐसी बात क्यों लेहते हैं । आप जानते ही हैं कि इस काव्यमें वितना अमृत भय हुआ है । इसका एक क्षणिका भी नूमिपर गिर पड़ती तो मुझे वितना हुख होता । मैं वन्य हो गया, मित्र !’ मानुषुनने रिहायुनसे उद्धर मेष्टको हृदयसे लाया लिया ।

‘आज आपके शासन-कालमें श्री और सरखतीका अपूर्व मंगम हुआ है महाराज !’ जनताने अपने नेशका जयनाद किया ।

‘और मुझे सच्ची प्रशंसा मिल गयी ।’ मेष्टने मानुषुतर्की और देखा । ऐसा लगता था मानो चन्द्रमा सुर्यके प्रति कृतदत्ता प्रकट कर रहा है अमृत-द्युनके लिये ।

—८० श्री० [राजगङ्गिरा]



जीरादेई

स० ७०१ की बात है। मकरान (वल्लचिस्तान) मेरा राजा सहसराय राज्य करते थे। ये भारतीय शूद्र थे तथा बौद्धमतके अनुयायी थे। इनके पुत्र सुबल एवं प्रबलराय बड़े ही उत्ताही तथा साहसी थे। एक बार छाँ नामक ग्राहणने इनपर आक्रमण किया और इनका राज्य छीन लिया। सहसराय तो लड़ाईमे काम आये, पर दोनों राजकुमार महलसे निकलकर भारतकी ओर चले। प्रबलरायको एक नाधुकी दयासे अक्रीफ नामका एक बहुमूल्य रत्न प्राप्त हो गया और वह गुरौलमें गढ़ बनाकर राज्य करने लगा।

इधर सुबलरायने चम्पारण (चम्पारन) मेरे प्रवेश किया। उसे सुदूर बनमें एक ज्योति दीख पड़ी। उसकी ओर वे बढ़ते गये। अन्तमें देखा कि वह ज्योति और कुछ नहीं, एक कुमारीके ताटङ्कङ्की आभामात्र थी। वह कुमारी एक डाकूकी कन्या थी, जिसका नाम था जीरादेई। वह सुबलरायपर मुर्ध हो गयी।

जब डाकू लैटकर आया, तब वही कठिनतासे उसने जीरादेईका प्रस्ताव स्वीकार किया। राजकुमारसे बातें करते हुए उसने बतलाया कि 'जीरादेई भारतीय नरेश रतिबलरायकी पुत्री है। उसके ईरानविजयके समय मैं उस राजाके पास ही था। वह मुझे बहुत मानता था। पर इस कन्याके लिये मैंने उसके साथ विश्वासघात किया और इसे ले भागा। तत्पश्चात् इस जगलमें आश्रय लिया। जब यह कन्या वही हुई, तब मैंने इसके योग्य वर खोजनेके लिये अङ्ग, वज्ञ, कलिङ्ग—सभी देशोंको छान डाला; पर कहीं सफलता न मिली। पर आज तुम्हारे यहाँ

आ जानेसे वह मेरी कामना स्वयमेव पूरी हो गयी।'

अन्तमें उसने कन्याके पिता रतिबलरायको भी बुलाया। उन्होने आकर अपने हाथों कन्यादान किया। तत्पश्चात् वही एक गढ़ बनाकर जीरादेईके साथ सुबलरायने शासन आरम्भ किया; गढ़का नाम उसने सुरौल रखा। दोनों पति-पत्नी बड़े धर्मात्मा एवं मात्त्विक थे। तथापि उनसे एक अपराध बन गया, जिससे पाँच वर्षतक वहाँ अनावृष्टिका कुचक्क चल पड़ा। इस घोर अकालसे प्रजाका त्राण करनेके लिये राजा सुबलराय तथा जीरादेई तन-मनसे प्रजाकी भेवामें लग गये। सारा राज्य-कोप समाप्त हो गया। अब राजदम्पति शरीर-त्याग करनेपर तुल गये। तब राज्यके धनाढ्य लोगोंने आकर स्थिति सँभालनेका आव्वासन दिया। फिर वृष्टि भी हुई। प्रजाका कष्ट भी दूर हो गया। पर सुबलरायकी अवस्था नहीं सुधरी। वे इस आधातको सहन न कर सके और अन्तमें उनका शरीर छूट गया। रानी जीरादेई भी उनके साथ सती हो गयी। चितापर उनके अञ्चलसे अपने-आप अग्निकी लपट निकल पड़ी।

रानी जीरादेई जहाँ सती हुई थीं, उस ग्रामका नाम जीरादेई पड़ गया। अब भी उसका यही नाम है। सुरौल भी, जिसे अब सुरक्ष कहते हैं, पासमे ही है। जीरादेई पूर्वोत्तर रेलवेके भाटपोखर स्टेशनसे दो मील दक्षिण है। भारतसङ्गके अद्यतन अध्यक्ष देशरत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसाद-की जन्मभूमि होनेका सौभाग्य इसी ग्रामको प्राप्त है।

—जा० श०

(History of Persia by V A Smith)

दुष्टोंको भी सौजन्यसे जीतिये

एक बार एक तग रास्तेपर काशिराज और कोसलराज दोनोंके ही रथ आमने-सामने आ गये। अब बिना रास्तेसे एक और हटे दूसरे रथको निकलनेकी गुजाहश न थी। काशिराजके सारथिने कहा—'मेरे रथपर महाराज काझीनरेश है, तुम रास्ता दो, हम निकल जायें।'

'नहीं-नहीं, तुम रास्ता छोड़कर हट जाओ। तुम्हें मुझे रास्ता देना चाहिये; क्योंकि मेरे रथपर कोसलके राजा बैठे हैं।' दूसरे सारथिने कहा।

'जो अवस्थामें छोटा हो, वह बड़ेको जाने दे।' दोनोंको यह बात पसद आ गयी। पर कोई हल न निकलसका, क्योंकि दोनों राजाओंकी अवस्था सर्वथा समान थी।

'जो बड़ा राजा हो, उसे प्रथम निकलनेका अधिकार होना चाहिये' इसे दोनों सारथियोंने उचित समझा। पर यह भी कोई हल न बन सका; क्योंकि दोनों राजाओंका राज्य समान—तीन सौ योजनका था।

'जो अधिक सदाचारी हो, उसे प्रथम निकलनेका अधि-

कार है ।' दोनोंने फिर एक हल्का मार्ग छूँढ़ा ।
कोसलराजके सारथिने बतलाया 'मेरे राजा भलेके साथ
भल तथा अठके साथ अठताके साथ व्यवहार करते हैं । यह
इनका महान् गुण है ।'

काणिराजके सारथिने बतलाया 'तब तो मेरा रथ ही

निकलेगा, क्योंकि मेरे राजा सद्व्यवहारसे ही दूसरोंके हुगुणोंको
दूर करते हैं ।'

इसपर कोसलराजने स्वयं काणिराजको मार्ग दे दिया ।

—जा० श०

(The Jataka, Eng Translation by Cowell, Vol II,
Story 151)

दानका फल

प्रतिष्ठानपुर-नरेश सातवाहन आखेटको निकले और
मैनिकोंसे पृथक् होकर बनमें भटक गये । बनमें भटकते भूखे-
प्यासे राजा सातवाहन एक भीलकी झोपड़ीपर पहुँच गये ।
भील उन्हें पहचानता नहीं था, फिर भी अतिथि समझकर
उसने उनका स्वागत किया । भीलकी झोपड़ीमें धरा क्या था;
सत्त् था उसके पास । राजाने वह सत्त् राकर ही क्षुधा दूर
की । रात्रि हो चुकी थी, भीलकी झोपड़ीमें ही वे सो रहे ।

रात्रि शीतकालकी थी । शीतल वायु चल रही थी । भील
स्वयं झोपड़ीसे बाहर सोया और राजा सातवाहनको उसने
ओपड़ीमें सुलाया । रात्रिमें वर्षा भी हुई । भील भीगता रहा ।
उसे सर्दी लगी और उसी भर्दीसे रात्रिमें ही उसकी मृत्यु
हो गयी ।

प्रात काल राजाके सैनिक उन्हें छूँढ़ते पहुँचे । सातवाहनने
वडे सम्मानसे भीलका अन्तिम सत्कार कराया । भीलकी
पत्नीको उन्होंने बहुत-सा धन दिया । मह सब करके भी
नरेशको शान्ति नहीं हुई । वे नगर लौट तो आये, किंतु

उदास रहने लगे । उनका शरीर दिनोंदिन हुर्बल होने
लगा । मन्त्री तथा देशके विद्वान् क्या करते ? राजाको चिन्ता-
का रोग था और उसकी ओषधि किसीके पास नहीं थी ।

वेचारे भीलने मुझे सत्त् दिया, मुझे झोपड़ीमें सुलाकर
स्वयं बाहर सोया और उसकी मृत्यु हो गयी । दान और
अतिथि-सत्कारका ऐसा ही फल होता हो तो कौन दान-पुण्य
करेगा ! राजाकी चिन्ता यही थी ।

कई महीने बीत गये, अन्तमें भगवती सरस्वतीके कृपा-
पात्र पण्डित वरस्वचि प्रतिष्ठानपुर पधारे । राजाकी चिन्ताका
समाचार पाकर वे राजभवन पधारे और राजाको लेकर नगर-
सेठके घर गये । नगरसेठके नवजात पुत्रको राजाके सामने
लाया गया । पण्डितजीके आदेशसे वह अबोध बालक सहसा
बोल उठा—'राजन् ! मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ । आपको
सत्तू देनेके फलसे भीलका शरीर छोड़कर मैं नगरसेठका पुत्र
हुआ हूँ और उसी पुण्यके प्रभावसे मुझे पूर्वजन्मका सरण
भी है ।'—सु० सिं०

केवल इतनेसे ही पतन

मनुष्यके जीवनमें सर्वमकी वडी आवश्यकता है । यहस्थ,
नपम्बी और सन्यासी—सब-के-सब इन्द्रिय-सर्वम और सात्त्विक
आचार-विचारसे समुच्चित करते हैं । जीवन क्षणभरके ही
असर्वम और असावधानीसे विनष्ट हो जाता है ।

लगभग तीन हजार वर्ष पूर्वकी बात है । मगध (विहार)
प्रान्तमें माही नदीके तटस्थ बनमें एक उद्धरामपुत्र नामके
महात्मा रहते थे । वे उच्चकोटिके सिद्ध थे, अपनी वैगिक
सिद्धियोंके लिये बहुत प्रसिद्ध थे । मगधेश्वरके निमन्त्रणपर
प्रतिदिन दोपहरको आकाशमार्गसे उड़कर भिक्षा करने आया
करते थे । मगधपति उनका यथाशक्ति सम्मान करते थे ।

X X X X

'आज मुझे वडे आवश्यक कार्यसे नगरके बाहर जाना है ।
राजप्रासादमें हइ योग्य कोई नहीं है कि उद्धरामपुत्रको भिक्षा
करवा सके । महात्माके आनेका समय हो गया है ।' महाराज
मगधपतिने अपने एक परिचारककी कन्याको उद्धरामपुत्रके
स्वागत-सत्कारका पवित्र कार्य सौंपा । वह अत्यन्त शुद्धाचरण-
बाली थी, अल्पवयस्ता और देखनेमें रूपवती थी । उसने
महाराजको प्रणाम किया और मगधपतिका रथ वडे वेगसे
राजद्वारसे बाहर आकर राजपथपर अद्वय हो गया ।

'स्वागत है, महाराज ।' दासीने योगसिद्धिसे राजप्राङ्गणमें
उड़कर आये हुए तपस्वी उद्धरामपुत्रका स्वागत किया ।

'कितनी दुन्दरी है यह ! अज्ञोमे कितना लावण्य है ?

वाणी तो अमृतरससे सम्पूर्ण आप्लावित है।^१ महात्मा उद्रराम-
पुत्रने आसन ग्रहण किया। वे भोजन करने लगे।^२ परिचारक-
की कन्या उनकी सेवामें तत्पर थी।

‘नहीं, अब कुछ नहीं चाहिये।’ उद्ग्रामपुत्र उसीको देखने लगे। दासी सकोचमें पड़ गयी।

योगीने आकाशमार्गसे उड़कर तपोवनमें जानेकी बड़ी चेष्टा की, पर उनकी शक्ति कुण्ठित हो गयी। वे लज्जासे न त हो गये।

‘दासी। आज मेरा उड़कर जानेका विचार नहीं है। राजधानीमें घोपणा कर दी जाय कि संन्यासी उद्ग्रामपुत्र अमरल्य नागरिकोंको अपने दर्शनसे तृप्त करेंगे, उनकी

—oo;oo—

आत्मयज्ञ

‘देश, धर्म और स्वराज्यकी बलिवेदीपर, प्रत्येक भारतीयको चढ़ जाना चाहिये; यह पवित्र कार्य है। इसीमें आत्मसम्मानका सरक्षण है।’ महाराज दाहिरके थे अन्तिम वाक्य थे। मुहम्मद विन कासिमकी सेनाने सिंधके अधिपतिका प्राणान्त कर डाला। राजधानी अलोरमें उदासी छा गयी महाराजके स्वर्ग-प्रस्थानसे। उनके पुत्र जयसिंहने अरवी सेनाका पीछा किया। किलेमें भयानक नीरखता थी।

‘भाता । महाराजके आकस्मिक स्वर्ग-गमनसे सारा-का-सारा नगर क्षुब्ध हो गया है; पर हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि शत्रुंगी की छाया भी हस किलेमें नहीं आ सकती ।’ सेनापतिने तलवार खींच ली; वह रणभूमिके लिये प्रस्थान करनेवाला ही था, पर सहसा ठहर गया ।

‘वोलो, अम्बा ! आदेश दो ।’ उसने फिर प्रार्थना की । दाहिंगकी महारानी गहरी चिन्तामें थीं; वे बड़ी गम्भीरतासे कछु सौच रही थीं कि जयसिंहने चरणाभिवादन किया ।

‘अनु किलेके द्वारपर आ पहुँचे हैं, वे शीघ्र ही भीतर प्रवेश करेंगे।’ जयसिंह कुछ और कहने जा रहे थे कि महारानीके नेत्र लाल हो उठे, वे गरज उठीं, मानो महिषमर्दिनी दुर्गाका उनपर आवेश हो।

‘अत्रु किलेमें नहीं प्रवेश कर सकते, हम उन्हें अपने सतीत्वकी आगमें स्वाहा कर देंगी।’ महारानीने सेनापतिके हाथमें नगी तलवार रख दी महाराज दाहिरकी।

चिरकालीन पिपासा आन्त करेंगे ।' महात्माने वात बदल दी ।

राजपथपर अगणित लोगोंने अचानक पैदल चलकर दर्शन देनेवाले महात्माके जथनादसे धरती और गगनको प्रकम्पित कर दिया । वे अपने आश्रमतक पैदल गये । ०० उनकी योगसिद्धि समाप्त हो गयी केवल एक क्षणके लिये युवतीका रूप देखनेसे । उनका तपोबल नष्ट हो गया उससे पलभरके लिये एकान्तमें बात करनेसे । उनकी बहुत दिनोंसे दवायी गयी वासनाकी आग प्रज्वलित हो गयी नारीके नक्षर सौन्दर्यसे । उनका आत्मबल क्षीण हो गया ।

वे मगधके राजप्रासादमें आकाशमार्गसे फिर कभी नहीं
जा सके। सथमके मार्गसे च्युत हो गये थे वे। —रा० श्री०

‘मैं, मुझे इसकी शपथ है, विदेशी हमारी पवित्र स्वाधीनताको कलंदित नहीं कर सकेंगे।’ सेनापति ने कुमार जयसिंहके साथ किलेसे बाहर निकलना चाहा।

‘रण आज किलेमें ही होगा, अधर्मका अस्तित्व समाप्त करनेके लिये धर्मयुद्ध होगा, असत्यका मस्तक उड़ा देनेके लिये युद्ध-ऐसे सत्कार्यका आरम्भ यहीं होगा।’ महारानीने भीतरी प्राङ्गणमें प्रवेश किया सेनापति और कुमार जयसिंहके साथ।

अनेक चिताएँ सजायी गयी थीं । नगरकी कुलधुर्घे
उपस्थित थीं । अत्यन्त भयकर हृत्य था । किलेके द्वारपर
रणका बाजा बज रहा था । शत्रु द्वार तोड़नेकी चेष्टामें थे ।

‘वीरो ! हमलोग आपसे पहले स्वर्ग जा रही हैं ; पर सरण रहे कि शत्रु हमारे चिताभस्मका भी स्वर्ग न कर सकें । इस सत्कर्मकी पवित्रता कलङ्कित होगी तो हिमालयका उघ्रत दिव्य भाल सदाके लिये लजासे नत हो जायगा । स्वतन्त्रता, स्वधर्म और स्वदेशकी रक्षाके लिये मर मिटना ही वीरता है । भगवान् सहायता करेंगे ।’ महारानी अन्य नगर बधुओंके साथ धधकती चितामें कद पड़ी ।

अलोर किलेके रक्षाके लिये भीषण युद्ध हुआ। अर्द्धोंने भीतर प्रवेश किया; पर उनमें इतना साहस नहीं था कि वे अग्निकी लपटोंके सामने खड़े हो सकें। —रा० श्री०

सच्ची क्षमा

गांतगोपिन्द्रं दत्तां भनश्चेष्ट महारुपि जयदेव तीर्थ-
मात्रासो निरुपे थे । एक नरेशने उनका बहुत सम्मान किया
और उन्हें बहुआन्ना धन दिया । धनसे लेनसे कुछ डाकू
उनके नाम हो लिये । एकान्न व्यानम् परुचनेपर डाकूओंने
आपमण वरं जयदेववर्जी दो पटर दिया; उनके हाथ पैर
काटकर उन्हें एक कुएँमें टान दिया और धनर्णी गढ़गी
नेपर चलते रहे ।

मयोगमा उम कुएँमें पानी नहीं था । जयदेवजीनो
जर चेतना लैटी, तर कुएँमें ही भगवत्तामर्दीर्तम करने लगे ।
उत्तरसे उसी दिन गौड़भर राजा लक्षणसेनकी सदाची
निकर्णी । कुएँके भीनसे मनुष्यका शब्द आता भुनाया पड़ा
उन्हें । नरेशकी धानसे जयदेवजी याहर निकाले गये ।
जयदेवजीको नेत्र नरेश राजशाही आये । नरेशपर जयदेवजी-
की विद्वना तथा भगवन्नकिसा इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने
जयदेवजीनो अपनी पञ्चलनभारा प्रधान बना दिया और
सर्वान्दत्ता भार भी उन्हें सौंप दिया ।

बहुत दृढ़नेपर भी नरेशनो जयदेवजीने अपने हाथ-पैर
काटनेवालोंना हुनिया बताया नहा । एक बार राजमहल
में कोई उत्पत्त था । बहुत अधिक भिक्षुक, साधु तथा
ब्राह्मण भोजन करने आये थे । उन्होंमें जयदेवजीके हाथ-
पैर काटनेवाले डाकू भी सामुखी वेशमें आये थे । दूले, पहुं
चयदेवजीको वहाँ सर्वाध्यत देखकर टाकूओंके प्राण सुख
गये । जयदेवजीने भी उन्हें पहचान लिया और राजासे
बोल—“मेरे कुछ पुराने मित्र आये हैं । आप चाहे तो
उन्हें कुछ धन दे सकते हैं ।”

नरेशने डाकूओंनो पास बुलवाया । डाकूओंने समझा
कि अप प्राण नहीं बचेंगे, किंतु राजाने उनका बड़ा सत्कार
किया, उन्हें बहुत अप्रिक धन दिया । डाकू शीघ्र वहाँसे चले
जाना चाहते थे । नरेशने उन्हें साथु और जयदेवजीना मित्र
समझकर बहुत धन दिया था । कुछ सेवक उनके साथ
कर दिये, जिसमें वे सुरक्षित थर पहुँच मरे ।

मार्गमें राजसेवकोंने न्मभाववत्र प्राप्त—‘श्रीजयदेवजी-
से आउलोगोका क्या सम्बन्ध है ?’

डाकू बोल—‘हमलोग एक राज्यमें ही कर्मचारी थे ।
तुम्हारा जो आज भर्वाध्यक्ष है, उसने वहाँ ऐसा कुकर्म किया
कि राजाने इसे प्राणदण्डकी आजा दी । लेकिन हमलोगोंने
दया करके इसे हाथ-पैर कटवाकर जीवित छुड़वा दिया ।
हम उग्रका भैद न खोल दें, इस ढरसे उसने हमारा इतना
सम्मान कराया है ।’

डाकूओंना पाप अव सुष्ठिकर्ताको असह हो गया ।
उसी समय वहाँ पृष्ठी कटी और सब डाकू उसमें समा गये ।
राजसेवक धन लेकर लैटे । श्रीजयदेवजीको समाचार मिला
तो बहुत दुखी हुए । उन्होंने राजासे सब वार्ते सच-सच वता
दीं और बोले—‘मैंने सोचा या कि ये बेचारे दरिद्र हैं ।
धनके लोभसे पाप करते हैं । धन मिल जायगा तो पाप
करनेसे बचेंगे, किंतु मैं ऐसा अभावा हूँ कि मेरे कारण
उन्हें प्राण खोने पड़े । भगवान् उन्हें क्षमा करें । उनकी
सद्गति हो ।’ इसी समय जयदेवजीके हाथ-पैर पहलेके
समान हो गये ।—सू० सिं०

धन्य भामती

(लेखक—श्रीयुत पस० एम० वीरा)

राजिका समय है । दक्षिणभारतके एक छोटे-से गौवकी
एक छोटी-सी कोट्टीमें रेडीके तेलका दीपक जल रहा है ।
कोट्टीका कच्चा अँगन और मिट्टीकी दीवालें गोवरसे लिप्ती-
पुती वडी स्वच्छ और सुन्दर दिखायी दे रही हैं । एक
कोनेमें कुछ मिट्टी पड़ी है, एक ओर पानीका धड़ा रखा है,
दूसरे कोनेमें एक चक्की, मिट्टीके कुछ वरतन और छोटी-सी
एक चारपाई पड़ी है । दीपकके समीप कुंडके आसनपर एक
पण्डितजी बैठे हैं, पास ही मिट्टीकी दावात रक्खी है और

हाथमें कलम लिये वे वडी एकाग्रतासे लिख रहे हैं । बीच-
बीचमें पास रक्खी पोथियोंके पन्ने उलट-पलटकर पढ़ते हैं,
फिर पन्ने रखकर आँखें गूँद लेते हैं । कुछ देर गहरा बिचार
करलेके पश्चात् पुनः आँखें खोलकर लिखने लगते हैं । इतनेमें
दीपकका तेल बहुत कम हो जानेके कारण वत्तीपर गुल आ
गया और प्रकाश मन्द पड़ गया । इसी बीच एक ग्रौडा
खाने आकर दीपकमें तेल भर दिया और वह वत्तीसे गुल
झाझने लगी । ऐसा करते दीपक बुझ गया । पण्डितजीका

हाथ अँधेरेमें रुक गया। स्त्री बत्ती जलाकर तुरत वहाँसे लौट रही थी कि पण्डितजीकी दृष्टि उधर चली गयी। उन्होंने कौतूहलमें भरकर पूछा—‘देवी! आप कौन हैं?’ ‘आप अपना काम कीजिये। दीपक बुझनेसे आपके काममें विन्दु हुआ, इसके लिये क्षमा कीजिये।’ स्त्रीने जाते-जाते बड़ी नम्रतासे कहा। ‘परतु ठहरें, बताइये तो आप कौन हैं और यहाँ क्यों आयी हैं।’ पण्डितजीने बल देकर पूछा। स्त्रीने कहा—‘महाराज! आपके काममें विन्दु पड़ रहा है, इस विशेषके लिये मैं बड़ी अपराधिनी हूँ।’

अब तो पण्डितजीने पन्ने नीचे रख दिये, कलम भी रख दी, मानो उन्हें जीवनका कोई नया तत्व प्राप्त हुआ हो। वे बड़ी आतुरतासे बोले—‘नहीं, नहीं, आप अपना परिचय दीजिये—जबतक परिचय नहीं देगी, मैं पन्ना हाथमें नहीं ढूँगा।’ स्त्री सकुचायी, उसके नेत्र नीचे हो गये और बड़ी ही विनयके साथ उसने कहा—‘स्वामिन्। मैं आपकी परिणीता पत्ती हूँ, ‘आप’ कहकर मुझपर पाप न चढाइये।’ पण्डितजी आश्चर्यचकित होकर बोले—‘हैं, मेरी पत्ती! विवाह कब हुआ था?’ स्त्रीने कहा—‘लगभग पचास साल हुए होगे, तबसे दासी आपके चरणोंमें ही है।’

पण्डितजी—तुम इतने वर्षोंसे मेरे साथ रहती हो, मुझे आजतक इसका पता कैसे नहीं लगा?

स्त्री—प्राणनाथ! आपने विवाहमण्डपमें दाहिने हाथसे मेरा वायों हाथ पकड़ा था और आपके बाये हाथमें ये पन्ने थे। विवाह हो गया, पर आप इन पन्नोंमें सलग्न रहे। तबसे आप और आपके ये पन्ने नित्यसङ्गी बने हुए हैं।

पण्डितजी—पचास वर्षका लबा समय तुमने कैसे बिताया? मैं तुम्हारा पति हूँ, यह बात तुमने इससे पहले मुझको क्यों नहीं बतलायी?

स्त्री—प्राणेश्वर! आप दिन-रात अपने काममें लगे रहते थे और मैं अपने काममें। मुझे बड़ा सुख मिलता था इसीमें। कि आपका कार्य निर्विन्द्र चल रहा है। आज दीपक बुझनेसे विन्दु हो गया। इसीसे यह प्रसङ्ग आ गया।

पण्डितजी—तुम प्रतिदिन क्या करती रहती थीं?

स्त्री—नाथ! और क्या करती; जहाँतक बनता, स्वामीके कार्यको निर्विन्द्र खेलनेका प्रयत्न करती। प्रातःकाल आपके जागनेसे पहले उठकर धीरे-धीरे चक्की चलाती। आप उठते तब आपके शौच-स्नानके लिये जल दे देती। तदनन्तर मन्या आदिकी व्यवस्था करती, फिर भोजनका प्रवन्ध होता।

रातको पढ़ते पढ़ते आप सो जाते, तब मैं पोथियाँ बॉधकर ठिकाने रखती और आपके सिरहाने एक तकिया लगा देती। एव आपके चरण ढाबते-दबाते वहीं चरणप्रान्तमें सो जाती।

पण्डितजी—मैंने तो तुमको कभी नहीं देखा।

स्त्री—देखना अकेली आँखोंसे थोड़े ही होता है, उसके लिये तो मन चाहिये। दृष्टिके साथ मन न हो तो फिर ये चक्षु-गोलक कैसे किसको देख सकते हैं। चीज सामने रहती है, पर दिखायी नहीं देती। आपका मन तो नित्य-निरन्तर तल्लीन रहता है—अध्ययन, विचार और लेखनमें। फिर आप मुझे कैसे देखते।

पण्डितजी—अच्छा, तो हमलोगोंके खान-पानकी व्यवस्था कैसे होती है?

स्त्री—दुपहरको अवकाशके समय अडोस-पडोसकी लड़कियोंको बैल-बूटे निकालना तथा गाना सिखा आती हैं और वे सब अपने-अपने घरोंसे चावल, दाल, गेहूँ आदि ला देती हैं, उसीसे निर्वाह होता है।

यह सुनकर पण्डितजीका दृद्य भर आया, वे उठकर खड़े हो गये और गद्दाट कण्ठसे बोले—‘तुम्हारा नाम क्या है, देवी?’ स्त्रीने कहा—‘भामती।’ भामती! भामती! मुझे क्षमा करो; पचास-पचास सालतक चुपचाप सेवा ग्रहण करनेवाले और सेविकाकी ओर आँख उठाकर देखनेतककी शिष्टता न करनेवाले इस पापीको क्षमा करो’—यो कहते हुए पण्डितजी भामतीके चरणोंपर गिरने लगे।

भामतीने पीछे हटकर नम्रतासे कहा—‘देव! आप इस प्रकार बोलकर मुझे पापग्रस्त न कीजिये। आपने मेरी ओर दृष्टि डाली होती तो आज मैं मनुष्य न रहकर विषय विमुग्ध पशु बन गयी होती। आपने मुझे पशु बननेसे बचाकर मनुष्य ही रहने दिया, यह तो आपका अनुग्रह है। नाथ! आपका सारा जीवन शास्त्रके अध्ययन और लेखनमें वीता है। मुझे उसमें आपके अनुग्रहसे जो यत्किञ्चित् सेवा करनेका सुअवसर मिला है, यह तो मेरा महान् भाग्य है। किसी दूसरे घरमें विवाह हुआ होता तो मैं ससारके प्रपञ्चमें कितना फँस जाती। और पता नहीं, शूकर-कूकरकी भाँति कितनी वश-वृद्धि होती। आपकी तपश्चर्यासे मैं भी पवित्र बन गयी। यह सब आपका ही प्रताप और प्रसाद है। अब आप कृपापूर्वक अपने अध्ययन-लेखनमें लगिये। मुझे सदाके लिये भूल जाइये।’ यों कहकर वह जाने लगी।

पण्डितजी—भामती! भामती! तनिक रुक जाओ, मेरी बात तो सुनो।

मामनी—नाथ ! आप अपनी कीवनमदिनीं सावनका मिलरण करने क्यों नहीं करते हैं और सुझतों में व्यापक दामनदूरमें रहते हैं ।

पण्डितजी—मामनी ! मैं तुझे धामनदूरमें नहीं उड़ाना चाहता । मैं तो अपने लिये भौति रहा हूँ कि मैं पापनार्तमें गिरा हूँ या किसी उच्चारणर लिया हूँ ।

मामनी—नाथ ! आप तो उड़ता हैं आप जो उच्च लिखेंगे उसमें जगत्का उदा लेगा ।

पण्डितजी—मामनी ! 'तुम सच मानो' यागत आमने द्वारा तब अनेक बाद उस बेदानलक्ष्यन प्रस्तुती न्वन की और मैंने कीवनमर उड़ान पठन एवं मनन किय रखतु तुम विश्वास करो कि मेरा यह समझ पठन मनन मेरा सन्दर लिखेक, यह मात्र बेदान तुम्हों परिव्र भृष्ट तरोन्पर कीवनजी तुल्यमें सर्वथा नगार है । व्यापुनगवनने प्रथम किया परन्तु तुम तो दूर्विमन् बेदान हो गए । यो छहते कहते पण्डितजी पुन उड़के चरणोंपर गिरने लगे ।

मामनीने उन्हें उडाक्क दिनप्रभावसे कहा—परितेव । यह क्या कर रहे हैं ! मैंने तो अपने जीवनमें आपनी देवतां अतिरिक्त कर्मी उड़ा चाहा नहीं । आगे हृषीकेशी देवान् सुवर्णर दिया- यह आपना सुउड़ा, मतान उड़ान है । आपनक ने प्रतिदिन आपके चरणोंपर हुआमें भौति नीट

नीती नहीं हूँ यो इन चरणोंमें ही भोनी-भोनी भद्रानित्रमें पहुँच लड़े तो मेरा महान् भाव हो ।'

पण्डितजी—'मामनी !' तुमों मैंने अपना भन जीवन इन पलोंकि छिवनेमें ही बिना दिया । परन्तु तुमने मेरे पीछे जूँड़ा जीवन दियागा है, उसके सामने उड़े अपना जीवन अन्यल लुढ़ और नगार प्रतीन हो गया है । उड़े हूँ प्रथमें प्रथ-एवं पलोंमें 'क-एवं परिमें और अशु-अश्रुमें तुल्याग जीवन दिल्ल गया है । अतः जगत्में यह प्रथम अद्व तुम्हारे ही लालसे प्रसिद्ध होगा । तुमने मैंने लिये तो अपूर्व नगर दिया उमर्की चिन्मूलिके लिये तेज वह अनुग्रह व्यक्तार रहे ।' प्रभो ! अत ऐसा कर्त्तिर्वद जिसमें इन अनुर्वाप अन्यद्यगदे सामने हृषी-जैसे लुढ़ मनुष्यको जगत् सूल जय । आप अपने कालमें लिये देव ! यो उड़ान भामनी जाने लाया । नव धूम्को लड़ों जाना हो जाओ । परन्तु यह मैं जीवन नूरिमन् बेदानको छोड़कर बेदानके सूत शब्दा न्यर्व नहीं बना चाहता । यो उड़ाक्क पण्डितजी-ने पोथी-यच्च बॉद्ध दिये ।

पण्डितजीके द्वारा निचन जगत् प्रथम बेदानदर्शन (बेदाक्क) का अपूर्व भाष्य आज मैं बेदानका एक अप्रतिम रूप भाना जाना है । इस प्रथमता नाम है 'मामनी' और उड़के के रक्ष है—प्रसिद्ध पण्डितशिगेनगि श्रीवत्तवर्णनि द्विः ।

किसीकी हँसी उड़ाना उसे शत्रु बनाना है (दुर्योधनका अपमान)

वर्णराज युविष्टिका गजदूर यह समझ हो गय था । वे भूम-इच्छके कक्षवर्ती उप्राद्यन्कार कर लिये गये थे । वज्रमें पवरे नेत्र तथा धन्य अतिथि-अन्यान विदा हो उड़े थे । केवल दुर्योधनके वस्त्रवर्गके लोग तथा श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्तमें नह गये थे ।

गजदूर उड़के सन्दर दुर्योधनके गाढ़वेणा जो विष्ट दैप्य देना था ! उसमें उड़के चिनमें दृष्ट्याकी अति उच्च उठा र्थी । उसे वज्रमें आप नेत्रोंके उपरान न्वनका करनेका अर्थ मिला था । केवल उड़के लेन जो अक्षित नूस्तरी अन्यल दुर्लम इन्द्र वर्णराजको देनेके लिये के अपे, दुर्योधनको ही उन्हें लेकर कोगतामें रखना पड़ा । उनको देन-उड़कर दुर्योधनकी दृष्टि बट्ठी ही गयी । अब उननां हो जानेर जब सब्र अतिथि चढ़े गये, तब एक दिन वह हाथमें नंगी तज्ज्वर

लिये अपने भाइयोंके साथ पाण्डवोंसी गज्जपतमें हुड़ करो याते रहता प्रविष्ट हुआ ।

उस समय नय दानवद्वारा निर्मित गजममामें वर्मान युविष्टिं अपने भाइयों तथा द्रौपदींमें साथ दैटे थे । श्रीहणाचन्द्र भी उनके सर्वाम ही विचनमान थे । दुर्योधनने सुन्दरासे समामें प्रत्येक दिया । नय दानवने उन समामें ब्रह्म अद्वृत द्वारा बनाया था । उसमें अनेक स्थानोंर लोगोंको भ्रम हो गया था । सूत्र सूल जलरूपं स्मोकर जन पड़ते थे और जलरूपं स्मोकर सूत्र सूल-जैसे रहने थे । दुर्योधनको भी उस दिन यह भ्रम हो गया । वैसे वह अनेक दिन उस समामें आ चुका था किन्तु आवश्यम होनेके अपने वह सबोंको पहचान नहीं मिला । सूत्र सूल-जैसे स्मोकर उसमें अपने दक्ष उड़ा लिये । जब पना लगा कि

वह स्थल गदा है, नव उसे संकोच हुआ। लोग उसकी ओर देख रहे हैं, वह देखकर उमड़ा क्रोध और बढ़ गया। उसने अब छोड़ दिये और वेरापूर्वक चलने लगा। आगे ही जलपूर्ण नगेवर था। उसे भी उसने नग्ना स्थल समझ लिया और अल्ले समान ही वर्तों भी आगे बढ़ा। फल वह हुआ कि वह जलमें गिर पड़ा। उसके बछर मांग गये।

दुर्योधनको गिरने देखकर भीमसेन उच्चमरसे हँस पड़े। द्वौपदीने हँसते हुए व्यंग किया—‘अधेका पुनः अधा ही तो होगा।’

युधिष्ठिरने सबको रोका; किंतु ब्रात कही जा चुकी थी और उसे दुर्योधनने सुन लिया था। वह क्रोधसे उन्मत्त हो

उठा। जलसे निकलकर भाइयोंके माथ शीघ्रगतिसे वह रज-संभासे बाहर चला गया और विना किसीसे मिले रथमें बैटकर हस्तिनापुर पहुँच गया।

इस घटनासे दुर्योधनके मनमें पाण्डवोंके प्रति इतनी धोर व्यतीत जग गयी कि उसने अपने मित्रोंसे पाण्डवोंको पराजित करनेका उपाय प्रृष्ठना प्रारम्भ किया। शशुनिकी मलाहसे जुएमे छलपूर्वक पाण्डवोंको जीतनेका निश्चय हो गया। आगे जो जुआ हुआ और जुएमे द्वौपदीका जो दोर अपमान दुर्योधनने किया, जिस अपमानके फलस्वरूप अन्तमें महाभारत-का विनाशकारी संग्राम हुआ, वह सब अनर्थ इसी दिनके भीमसेन एवं द्वौपदीके हँस देनेका मर्यंकर परिणाम था।

(श्रीमद्भागवत १०। ७५)

परिहासका दुष्परिणाम (यादव-कुलको भीपण शाप)

द्वारकांत पास पिटारक्षेत्रमें स्वभावतः धूमते हुए कुछ आर्प आ गये थे। उनमें ये विद्यामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भूगु, अङ्गिरा, कड्यप, वामदेव, अर्ति, वशिष्ठ तथा नारदजी-जैसे विसुवनवन्दित महर्षिं एव देवर्षिं। वे महापुरुष परम्पर भगवच्चार्चा करने तथा तच्चविचार करनेके अतिरिक्त दूसरु नार्य जानते ही नहीं थे।

यदुवंशके गजकुमार भी द्वारकासे निकले ये धूमने-खलने। वे सब युवक थे, म्बद्धन्त थे, वल्लार्न् थे। उनके नाथ कोई भी वयोवृद्ध नहीं था। शुश्रावस्या, राजकुल, शर्मश्वल और धनवल और उसपर हँस समय पूरी स्वच्छन्दता प्राप्त थी। ऋषियोंको देखकर उन यादव-कुमारोंके मनमें परिहास करनेकी मुद्दी।

जाम्बवनी नन्दन साम्बको यत्रने सार्वा पहिनायी। उनके पेटपर दुष्ट वन्न बौद्ध दिया। उन्हें माय लेकर सब ऋषियोंके समीप गये। साम्बने तो धूम्बट निकालकर मुख छिपा रक्षा या दूसरेंने क्वात्रिम नम्रतासे प्रणाम करके पूछा—‘महर्षिण ! यह सुन्दरी गर्भवती है और जानना चाहती है कि उसके गर्भसे क्या उत्पन्न होगा। ऐसिन लक्षाके मारे सर्वं पूछ नहीं पाती। आपलोग तो सर्वज्ञ हैं, भविष्यद्गर्भी हैं, इसे बता दें। यह युत जाहनी है, क्या उत्पन्न होगा इसके गर्भसे ?’

महर्षियोंकी सर्वज्ञता और अक्षिका यह परिहास था।

दुर्वासाजी कुद्ध हो उठे। उन्होंने कहा—‘मूर्खों ! अपने परे कुलका नाश करनेवाला मूसल उत्पन्न करेगी यह।’ ऋषियोंने दुर्वासाका अनुमोदन कर दिया। भयभीत यादव-कुमार धवर-वर वहोंसे लौटे। साम्बके पेटपर बैधा बछर खोला तो उसमेंसे एक लौहेका मूसल निकल पड़ा।

अब कोई उपाय तो था नहीं, यादव-कुमार वह मूसल छिपे राजसमामे आये। सब घटना राजा उग्रसेनको वताकर मूसल सामने रख दिया। महाराजकी आजासे मूसलको कूटकर चूर्ण बना दिया गया। वह सब चूर्ण और कूटनेसे बचा छोटा लौहरण्ड समुद्रमें फेंक दिया गया।

महर्षियोंका शाप मिथ्या कैसे हो सकता था। लौहचूर्ण लहरोंसे व्रहकर किनारे लगा और एकका नामक धासके रूपमें उग गया। लौहेका बचा ढुकड़ा एक मछलीने निगल लिया। वह मछली मछुओंके जालमें पड़ी और एक व्याधको बैची गयी। व्याधने मछलीके पेटसे निकले लौहेके ढुकड़ेसे बाणकी नोक बनायी। इसी जरा नामक व्याधका वह बाण श्रीकृष्ण-चन्द्रके चरणमें लगा और यादव-वीरजव समुद्र-न्तटपर परस्पर युद्ध करने लोग मटोन्मत्त होकर, तब शब्द समाप्त हो जानेपर एरका धास उखाइकर परस्पर आश्रात करते हुए उसकी चोटसे समाप्त हो गये। इस प्रकार एक विचारहीन परिहासके कारण पूरा यदुवश नष्ट हो गया।

भगवन्नामका जप करनेवाला सदा निर्भय है (प्रह्लादकी निष्ठा)

दैत्यराज हिरण्यकशिषु हैरान था । जिस विष्णुको मारने के लिये उसने सहलों वर्षतक तपसा करके वरदान प्राप्त किया, जिस विष्णुने उसके सगे भाइको वाराहरूप धारण करके मार डाला, उसी विष्णुका स्वरण, उसीके नामका जप, उसीसी उपासना चल गही है हिरण्यकशिषुके जीते-जी उसके राज्यमें ही नहीं, उसके राजसदनमें और वह भी उसके सगे पुत्रके द्वारा । नन्हा-सा वालक होनेपर भी प्रह्लाद अद्भुत हठी है । वह अपना हठ किसी प्रकार छोड़ नहीं रहा है । सबसे अधिक चिन्ताकी वात यह है कि जिस हिरण्यकशिषुकी भौंहोंपर गल पड़ते ही समस्त लोक और लोकपाल यथरथर कॉपने लगते हैं, उसके कोथकी प्रह्लाद राई-रत्ती भी चिन्ता नहीं करता ।

प्रह्लाद जैसे ढरना जानता ही नहीं और अब तो हिरण्यकशिषु स्वयं अपने उस नन्हे पुत्रसे चिन्तमें भय खाने लगा है । वह सोचता है—‘यह वालक क्या अमर है ? क्या इसे समस्त पदार्थोंपर विजय प्राप्त है ? कहाँ इसके विरोधसे मेरी मृत्यु तो नहीं होगी ?’

हिरण्यकशिषुकी चिन्ता अकाशण नहीं थी । उसने दैत्योंको आज्ञा दी थी प्रह्लादको मार डालनेके लिये, किंतु दैत्य भी क्या कर सकते थे, उनके गाँड़ प्रह्लादका शरीर छूते ही ऐसे टूट जाते थे, जैसे हिम या चीनीके बने हों । उन्होंने पर्वतपरसे फेंका प्रह्लादको तो वह वालक ऐसे उठ खड़ा हुआ जैसे पुष्पराशिपर गिरा हो । समुद्रमें डुबानेका प्रयत्न भी असफल रहा । सर्प, सिंह, मतवाले हाथी—पता नहीं क्यों, सभी क्लू जीव उसके पास जाकर ऐसे बन जाते हैं मानो युग्मोंसे उसने उन्हें पाला हो । उसे उपवास कराया गया लवे समय

तभि, हालाहल विष दिया गया, सब तो हो गया । प्रह्लादपर क्या किनी मारक कियाका प्रभाव पड़ेगा ही नहीं ! कोई मारक पदार्थ क्यों उसे हानि नहीं पहुँचाना ?

एक आद्वानन मिला दैत्यराजको । उसकी वहिन होलिकाको एक बच्चा मिला था किसीसे, जिसे ओढ़कर वह अग्निमें बेटनेपर भी जलती न थी । वह इस बार प्रह्लादको पकड़कर अग्निमें बैठेगी । सखी लकड़ियोंका पूरा पर्वत खड़ा कर दिया दैत्योंने । उसमें अग्नि लगा दी । होलिका अपना वरदानी बब्र ओढ़कर प्रह्लादको गोदमें लेकर उस लकड़ियोंके पर्वतपर पहले ही जा बैठी थी ।

हिरण्यकशिषु स्वयं देखने आया था कि इस बार क्या होता है । अग्निकी लपटोंमें कुछ देर तो मुछ दिसायी नहीं पड़ा और जब कुछ दिसायी पड़ा, तब दैत्योंके साथ वह दैत्यराज भी नेत्र फाइकर देखता रह गया । होलिकाका कहीं पता नहीं था । वह भस्म बन चुकी थी और प्रह्लाद अग्निकी लपटोंमें बैठा मन्त्र-मन्द मुसकरा रहा था । हिरण्यकशिषुने पूछा—‘तुम्हे दर नहीं लगता ?’ प्रह्लाद बोले—

रामनाम जपता चुको भय सर्वतापशमनैकमेषजम् ।
पश्य तात भस्म गात्रसनिधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽबुना ॥

समस्त सतापोंको नष्ट वरनेवाली एकमात्र औषधरूप रामनामका जप करनेवालेको भय कहो । पिताजी ! देखियेन, इस समय मेरे शरीरसे ल्पानेवाली अग्निकी लपटें भी मेरे लिये जलके समान शीतल हो गयी हैं ।

हिरण्यकशिषु भला, क्या कहता । वह चुप चाप हठ गया बहासे । (विष्णुपुराण १ । १५—२०)

भगवन्नाम समस्त पापोंको भस्म कर देता है (यमदूतोंका नया अनुभव -)

कबीजके आचारन्युत एव जातिन्युत ब्राह्मण अर्जामिलो झुलटा दासीजो पल्नी बना लिया था । न्याय-अन्यायसे जैसे भी धन मिले, वैसे प्राप्त करना और उस दासीको संतुष्ट करना ही उसका काम हो गया था । माता पिताकी सेवा और अपनी

विवाहिता साङ्गी पत्नीका पालन भी कर्तव्य है, यह वात उसे सर्वथा भूल चुकी थी । उनकी तो उसने खोज खेवर ही नहीं ली । न रहा आचार न रहा सथम, न रहा धर्म । खाद्य अखाद्यका विचार गया और करणीय-अकरणीयका ध्यान भी

जना नहा । अजामिल ब्राह्मण नहीं रहा, मलेच्छप्राय हो गया । पापन्त गमर जीवन हो गया उसका और महीनेदो-महीने नहीं, पूरा जीवन ही उसका ऐसे ही पारोंमें रीता ।

उस कुछ दार्शनि अजामिलके कई संतानें हुईं । पहलेका जिया युव नहायच हुआ जिसी सनुदृष्टका उन्देश जाय अर गया । अपने मग्ने छोटे पुत्रका नाम अजामिलने ‘नागरण’ रखा । उदामिलीं अलिम नतानपर पितॄका अनार मोह होता है । अजामिलके प्राप्त जैसे उन छोटे बालकमें ही बहते थे । वह उसीके प्राण-दुलगमें लगा रहता था । गल्क कुछ देरको भी दूर हो जब तो अजामिल व्याकुल होने लगता था । इसी मोहन्ता द्वयमें जीवनमन्त्र समान हो गया । मृत्युन्ध वडी आ गयी । यमराजके भयंकर दूत हायोंमें पाय लिये आ बम्बे और अजामिलके सूक्ष्मरागरको उन्होंने बोध लिय । उन विकरल दूतोंको देखते ही भयरे व्याकुल अजामिलने पास खेलते अपने पुत्रों कातर स्नानमें पुकार—‘नागरण ! नागरण !’

‘नागरण !’ एक भरणामन्त्र प्रार्थिकी कातर पुकार सुनी सदा नर्वव अग्रन्तः अपने स्त्रीमिके जनोंकी रक्षामें नत्पर रहने-वाले भगवन्नार्थदेवे और वे दौड़ पडे । यमदूतोंना पाय उन्होंने छिन्नमिश्र कर दिया । वल्मीर्क दूर हडा दिया यम-दूतोंको अजामिलके पासउे ।

केवरे यमदूत हक्केनके देखते रह गये । उसका ऐसा अपमान नहीं नहीं हुआ था । उन्होंने इतने तेजस्वी देखता भी नहीं देखे थे । सबकेसब इन्दीवर-सुन्दर, कमललोचन, रत्नभरणमूर्षित, चतुर्सुज, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म लिये, अस्तितेजस्वी—इन अद्भुत देवताओंसे यमदूतोंका कुछ बद्य भी नहीं चल सकता था । लाहून करके वे भगवत्पार्थदेवे देखे—‘आमलंग कौन है ? हम तो धर्मराजके सेवक हैं । उनकी आज्ञारे पार्श्वको उनके समझ ले जाते हैं । जीवके पाप-पूर्यके दलका निर्गम तो हमरे स्वामी सयमनीज्ञाय ही करते हैं । आप हमें अपने कर्तव्यपालनसे बंगे नेकते हैं ।

भगवन्नार्थदेवे तानिक फट्टार दिय—‘तुम धर्मराजके सेवक रहा हो, किंतु तुम्हें वर्मका ज्ञान ही नहीं है । जानकर वा अनज्ञनमें ही जिमने ‘भगवान् नागरण’ का नाम के लिया वह पारी नहीं कहा । संकेतसे, हँसीमें छलसे, गिरनेपर वा और किसी भी बहाने लिया गया भगवन्नाम जीवके जन्म-जन्मान्तर-के पारोंको बैसे ही भल्ल कर देना है जैसे अनिकी छोटी चिनगारी सूर्खा लकड़ीयोंकी महान् ढंगिको भल्ल कर देती है ।

उन पुरुषने पुत्रके बहाने सही, नाम तो नारायण प्रभुका लिय है; तिर इसके पाप रहे रहते हैं । तुम एक निष्पानको कष्ट देने भी धृष्टता मन करो ।’

यमदूत कथा करते, वे अजामिलको छोड़कर यमलोक आ गये और अपने स्त्रीमिके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये । उन्होंने उन धर्मराजसे ही पूछा—‘स्वामी ! क्या छिड़का आगे अनिक भी कोई शासक है ? हम एक पारिको लेने गए थे । उमने अपने पुत्र नारायणको पुकारा मिनु उसके ‘नागरण’ कहते ही वहाँ कई तेजोमय सिद्ध पुरुष आ वक्ते । उन मिद्दोंने आपके पाप तोड़ डाले और हमारी वडी दुर्गति भी । वे अन्ततः हैं कौन ; जो निर्भय आपकी भी अवज्ञ करते हैं ?’

दूतोंकी बात सुनकर यमराजने हाथ जोड़कर किसी अलब्दको भस्तक छुकाया । वे बोले—‘द्यामय भगवान् नारायण में अग्रगत ज्ञान करें । मेरे अजानी दूतोंने उनके जनकी अवहेलना की है ।’ इसके पश्चात् वे दूतोंसे बोले—‘सेवको ! समस्त जगत्के जो आदिकारण हैं, तुष्टिस्थिति-संहार जिनके भ्रूभङ्गमात्रसे होता है, वे भगवान् नारायण ही रहेंश्वर हैं । मैं तो उनका कुद्रतम सेवकमात्र हूँ । उन नारायण भगवान्के नित्य साक्षात् पार्षद तदा-सर्वत्र उनके जनोंकी रक्षाके लिये घूमते रहते हैं । मुझसे और दूसरे समस्त नक्दीसे वे प्रभुके जनोंकी रक्षा करते हैं ।’

यमराजने बताया—‘तुमलोग केवल उमी पारी जीवको लेने जाया करो, जिसकी जीभसे कभी किसी प्रकार भगवन्नाम न निकला हो, जिसने कभी भगवत्कथा न सुनी हो; जिसके पैर कभी भगवान्के पावन लीलास्थलोंमें न गये हीं अथवा जिसके हाथोंने कभी भगवान्के श्रीविग्रहकी पूजा न की हो ।’ यमदूतोंने अपने स्त्रीमिकी यह आज्ञा उमी दिन भली-भाँति रटकर सरण कर लीं क्योंकि इसमें प्रमाद होनेका परिणाम वे भोग चुके थे ।

यमदूतोंके अद्वय होते ही अजामिलकी चेतना सजग हुई; किंतु वह कुछ पूछे वा बोले, इससे पूर्व ही भगवत्पार्थद भी अद्वय हो गये । भले भगवत्पार्थ अद्वय हो जायें, किंतु अजामिल उसका दर्शन कर चुका था । यदि एक श्वरके कुञ्जने उसे पापके गड्ढमें ढकेल दिया था तो एक श्वरके सन्सज्जने उसे उठाकर ऊपर खड़ा कर दिया । उसका दृद्य बदल चुका था । आनक्ति नष्ट हो चुकी थी ।

अपने अवधारों के दिन, जो वहाँ पर उम्मीद हुई गई थी, उसका दूर हो गया।

ਤੰਦਰ ਸਾਡੇ ਹੋਣੇ ਵੀ ਅਸਿਥ ਤੁਹਾ। ਕਿਨ੍ਹੋਂ
ਇਸ ਬੰਦੂ ਤੋਂ ਤੁਲਾਮਾਂ ਤੁਲਾ ਕੋਈ ਪਾਲਨ ਵੀ ਨ ਥਾ।
ਚਿਨ੍ਹਾ ਚਿਨ੍ਹਾਂ ਦੁਟੇ ਕਢ ਕਦ ਗੱਲੇ ਜਿਉਗ ਕੀਂਹ ਕਢ ਪਛਾ।
ਬੰਧੇ ਪੰਡੇ ਕਹ ਹੋਵੇ ਪਹੁੰਚ ਗੜ। ਪਹੁੰਚ ਮਾਰੀ ਪਸੰਗ ਕਵੀ
ਪਾਂਗ ਰਾਖੇ ਨਿਤ ਆਜ ਪੀਂਹੇ ਤੁਲਾ ਵੀ ਆਲੂ ਲਗੁ ਕਰ

• अपनी ज्ञान विद्या की विजय के लिए बहुत खुश हैं।

उम्मुने ने उन दोनों की बहर किन्तु जब अन्नसिंह
दो आयु समाप्त हुई, वह भा. नहीं। वह तो देह ल्याकर
मृत्युके चलने लगी थी औ गय। अग्रदृश के ही पास
सिमान लेन्दर रहे औ उस विमलमें दैदिक अन्नसिंह
मरणहास चढ़ गय।

(श्रीमद्भागवत ८। ५-३)

कृन्तका त्याग

हुन्नर्सित हैं जो उठाएंगे उन्हें यह देखें
हुन्नर्से हुन्नेवन्ने वा उन्नन्न नम्म लम्मे रुद्ध चर्वेन
मान्न लन्नाय और अंडे वा युन्नग्गुने लम्नाकुन्नाक
उन्ने वा युन्न युन्निन्ने वा आज लिन्न दी कि युन्नलोग
वहाँ उच्च छुन्न दिन न्हो और मान्न चैन्ने वा उन्न
उन्ने यान्नमें रुद्धो ।

दुर्विकामे अर्यन् चंटल-कौकड़ीमें दृष्टि निश्चय किया था
कि गोहवें बर्दू नहीं लगाने रखिये किसी तिन गविने समय आग
लगा दें तब्बी और चंटला लग्ज तुरंत पाइडवेसर्ट भल्ल
हो जाए। घृतगड्ढों इन हुरी नार्योंना दून नहीं य
जनु किसी नह किटुन्को पना छग गाना औ निहुण्डे उनके
बच्चोंसे बच निगलनेके लिये अद्वर्द्ध-अंडें एक सुगा बनाया
दी तथा लार्वेनिंद मार्गमें अपिटिक्कों का गहरा तथा दूर
निकलनेका दशा मुख्या दिया।

वाडव वहाँसे रव लिखते और अगले को छिपक
एक-दूसरा नगरमें पक्क शब्दाके रथ तकर रहने लगे। उस
नगरमें वह बड़ा एक बड़ा रथ रथाम रखता था। उसके
पीछे लिखा वहाँ लिखा था कि नगरके प्रमुख वर्षे लिख
कर्त्ता सुने पक्क आदर्मा उसके लिये विविध मांडनमन्तर्मा
लेकर उसके पास जाय। वह दुष्ट अन्य नामांकनके नय
दृम अपनीदोर्मा वा जाता था। जिस व्राह्मणे वा वाडव
चिक्के थे, एक दिन उसकी बारी आ गयी। ब्राह्मणे वा
हुहगम रव गय। ब्राह्मण उसकी पर्नी कल्प और पुत्र
अपने-अपने प्रगटेक दूसरे तर्फ आकर्षक आज्ञा करने लगे।
उस दिन वर्ष्णु—आड चाँपे पांड तो लिखते लिखते वाहर
गये थे। डंग हुनी और घीकरने थे। हुनीने नर्स गाँवे
हुनी तो उनका हृदय दयासे न गया। उन्होंने वह
ब्राह्मण-विवाहसे हैमकूल बढ़ा—मढ़ा—। आमलोग नैति

कहें । या वे चिना न करें । हमनेग आपके आश्रयमें
स्थित हैं । मेरे पाँच लड़के हैं, उनमें से एक लड़केहोंगे जो
मोन्टेन्सरी होंगे गुरुमुके बड़े भेज दीजिए ।

ब्राह्मने इदा— नहा ! ऐना कैसे हो सकता है । आम हूनो अनियित है । अगरने प्राप्त इच्छाके लिये हम अनियित हैं इसीलिए ऐना अवश्य इसमें दर्शा नहीं हो सकता ।

हृन्दने समझते कहा—“पर्विनी ! आप जग में
लिला न छहे। मा लटका मैंम बढ़ा देहे है। उसमे
अद्यत्क किन्तने ही गृह्णते भा है। वह अवश्य इस गङ्गाम-
को मैं भा देगा। मिर यान लौटने पर कठिनित वह न मैं
भा भजा तो क्या होगा। मेरे पाँचमें भा तो चब ही नहींगे।
इस लोग कर पक भाड़ नहूङ पक ही पीवारन्देसे हो गये हैं।
अप बुद्ध है, वह ज्ञान है। मिर हम आपके आश्रयमें रहते
हैं। दर्म अवश्यमें आप बुद्ध और पूर्वन्य होकर मी गङ्गातके
सूखमें नहीं और मा लड़ना ज्ञान और वल्लाम् होकर वर्णमें
सह लियाएँ दैद्य नहीं वह कैसे हो सकता है।

ब्रह्मगमीवाने दिर्ज तग्ह भी जूँ कुन्नांचा प्रसादव
न्वाका नदी किं नवू कुन्ना देवीने उन्हे हूऱ तग्हासे महू
तिक्कासु दिलाग कि र्क्षासुन अवश्य ही गढवाळो माकर
आयेगा औं कहा कि 'मृदुले' आप यडे नदी मानेगे तो
र्क्षासुन आपको बल्दुर्वक गेवकर चला जायगा । मैं उसे
दिलासे देणी औं आप उसे गंक नदी संभरो ।

ଦୟ ଲ୍ୟାଜର ହୋଇ ଅନ୍ଧାରେ ଦୂର୍ବଳ ଅଗୁଣୀ
କେବା ଛିଦ୍ର ।

मनाकी अद्वा पक्का नीबूमेन वडी प्रसवतासे जनने को
देता हो गये। उसी वर्ष युक्तिशुद्ध आठ चारों भार्ट लैट्रकर
जा दिए जे। युक्तिशुद्ध जूल नामकी बात सुनी, तो उसने वडी

दुःख हुआ और उन्होंने माताजी उसके लिये उलाहना दिया। इसपर कुन्तीदेवी बोली—

‘युधिष्ठिर ! तू पर्मात्मा होकर भी इस प्रकारकी बातें कैसे कह रहा है ? भीमके बलका तुक्षको भलीभौति पता है, वह राक्षसको मारकर ही आयेगा, परतु कदाचित् ऐसा न भी हो, तो इस समय भीमसेनको भेजना ही क्या धर्म नहीं है ? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—किसीपर भी विपत्ति आये तो बलवान् थक्षियका धर्म है कि अपने प्राणोंको सकटमें डालकर भी उसकी रक्षा करे। ये प्रथम तो ब्राह्मण हैं, दूसरे निर्वल हैं और तीसरे हमलोगोंके आश्रयदाता हैं। आश्रय देनेवालेका बदला चुकाना तो मनुष्यमात्रका वर्म होता है। मैंने आश्रयदाताके उपकारके लिये, ब्राह्मणकी रक्षारूप क्षत्रिय-धर्मका पालन करनेके लिये और प्रजाको सकटसे बचानेके

लिये भीमको यह कार्य समझ-बूझकर सौंपा है। इस कर्तव्य पालनसे ही भीमसेनका क्षत्रिय-जीवन सार्थक होगा। क्षत्रिय वीराज्ञना ऐसे ही अवसरोंके लिये पुत्रको जन्म दिया करती हैं। तू इस महान् कार्यमें क्यों बाधा देना चाहता है और क्यों इतना दुखी होता है ?’

धर्मराज युधिष्ठिर माताकी धर्मसम्मत वाणी सुनकर लजित हो गये और बोले—‘माताजी ! मेरी भूल थी। आपने धर्मके लिये भीमसेनको यह काम सौंपकर बहुत अच्छा किया है। आपके पुण्य और शुभाशीर्वादसे भीम अवश्य ही राक्षसको मारकर लौटेगा।’

तदनन्तर माता और बड़े भाईकी आज्ञा और आशीर्वाद लेकर भीमसेन बड़े ही उत्साहसे गाक्षसके यहाँ गये और उसे मारकर ही लौटे।

अद्भुत क्षमा

(द्रौपदीका मातृ-भाव)

महाभारतका युद्ध जिस दिन समाप्त हो गया, उस दिन श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवोंके साथ उनके गिरिरमें नहीं लौटे। वे सत्यकि तथा पाण्डवोंको लेकर गिरिरसे दूर वहाँ चले गये, जहाँ युद्धकालमें द्रौपदी तथा अन्य रानियों रहती थीं। उसी रात्रिमें द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने पाण्डवोंके गिरिरमें अग्नि लगा दी और पाण्डवपक्षके बचे हुए बीरोंको उसने सोयी दग्धमें मार डाला। उसने द्रौपदीके पॉचों पुत्रोंको भी मार दिया था।

प्रातःकाल श्रीकृष्णचन्द्रके साथ पाण्डव लौटे। गिरिरकी दग्ध देखकर जो दुःख उन्हें हुआ, नारियोंमें जो क्रन्दन व्याप्त हुआ, उसका वर्णन व्यर्थ है। महारानी द्रौपदीकी व्यथाका पार नहीं था। उनके पॉचों पुत्रोंके मरतकहीन शरीर उनके सामने पड़े थे।

‘मे हत्यारे अश्वत्थामाको इसका दण्ड देंगा। उसका कटा मरतक देखकर तुम अपना गोक दूर करना।’ अर्जुनने द्रौपदीको आश्वासन दिया।

श्रीकृष्णचन्द्रके साथ जग गाण्डीवधारी अर्जुन एक रथमें बैठकर चले, तत्र ऐसा क्रोह कार्य नहीं था जो उनके द्वारा पूर्ण न हो। अश्वत्थामा व्रहास्त्रका प्रयोग करके भी वच नहीं सका।

अर्जुनने उसे पकड़ लिया, किंतु गुरुपुत्रका वध करना उन्हे उचित नहीं जान पड़ा। रस्सियोंसे भली प्रकार बौधकर रथमें डालकर वे उसे ले आये और द्रौपदीके सम्मुख खड़ा कर दिया।

अश्वत्थामाको देखते ही भीमसेनने दॉत पीसकर कहा—‘इस दुष्टको तल्काल मार देना चाहिये। एक क्षण भी इसे जीवित रहनेका अधिकार नहीं।’

दयामयी देवी द्रौपदीकी दग्ध ही भिज थी। पॉच-पॉच पुत्रोंकी लाश सम्मुख पड़ी थी और उनका हत्यारा सामने खड़ा था; किंतु उन दयामयीको पुत्र-शोक भूल गया। पश्चुके समान बैधे, लज्जासे मुख नीचा किये अश्वत्थामाको देखकर वे बोली—‘हाय। हाय। यह क्या किया आपने ? जिनकी कृपासे आप सबने अस्त्रज्ञान पाया है, वे गुरु द्रोणाचार्य ही यहाँ पुत्रस्तप्यमें खड़े हैं; इन्हें क्षटपट छोड़ दीजिये, छोड़ दीजिये। पुत्र-शोक कैसा होता है, यह मै अनुभव कर रही हूँ। इनकी पूजनीया माता कृपी देवीको यह गोक न हो, वे मेरे समान रुदन न करें। इन्हे अभी छोड़िये !’

द्रौपदीकी दग्ध विजयिनी हुई। अश्वत्थामाके मरतककी मणि लेकर अर्जुनने उसे छोड़ दिया। (श्रीमद्भागवत १। ७)

उमे आप कर नहीं सकते, इसलिये उसका बताना व्यर्थ ही है।

मिश्रजीने फिर कहा—‘आप उमे बताये, मैं अवश्य करूँगा। जिस किसीने जो उपाय मुझे बताया है, उसे मैंने अवश्य किया है। आप सकोच न करें। इसके लिये मैं मर्याद-त्याग करनेको भी तैयार हूँ।’

श्रीपुण्डरीकाश—‘आपने अभीतक अधोसे ही यह बात पूछी है, ऑखवालोंसे नहीं। अधोंकी लकड़ी पकड़कर भला, आजतक कोई गन्तव्य स्थानपर पहुँचा है।’

मिश्रजी—‘हौं, ऐसा ही हुआ है। मैंने ढोकर खाकर इसका अनुभव किया है। तभी तो ऑखवालोंके पास आया हूँ।’

श्रीपुण्डरीकाश—‘आपके उस अनुभवमे एक बातकी कसर रह गयी है। आपमें ऑखवालोंकी पहचान नहीं है, नहीं तो मेरे पास क्यों आते।’

मिश्रजीके बहुत अनुनय विनय करनेपर आचार्य

पुण्डरीकाशजीने उन्हे छः महीने पीछे बतानेको कहा। जब अवधि बीतनेपर मिश्रजी फिर आये, तब सतने कहा—‘दूररोका पाप छिपाने और अपना पाप कहनेसे धर्ममें दृढ़ता प्राप्त होती है।’

इस सुन्दर उपदेशको सुनकर मिश्रजीने गङ्गा स्वरसे कहा—‘भगवन्। कृपाके लिये धन्यवाद। मुझे अपने सदाचारीपनका बड़ा गर्व था और दूररोकी बुराइयों सुनकर उन्हे मुँहपर फटकारना और भरी सभामे उन्हे बदनाम करना अपना कर्तव्य समझता था। उसी अधेकी लकड़ीको पकड़कर मैं भवसारको पार करना चाहता था। कैसी उलटी समझ थी।’

अपनी भल समझकर पश्चात्ताप करनेसे जीवनकी घटनाओंपर विचार करनेका दृष्टिकोण ही बदल जाता है। तब मनुष्य अपनी अल्पज्ञतासे सधे हुए दृष्टिकोणको छोड़कर भगवदीय दृष्टिकोणसे देखने और विचार करने लगता है।

गोस्वामीजीकी कविता

एक बार श्रीसूरदासजी बादगाह अकबरके दरवारमे विराज रहे थे। उनसे पूछा गया कि ‘कविता सर्वोत्तम किसकी है, निष्पक्ष भावसे बतलाइये।’ श्रीसूरदासजीने कहा—‘कविता मेरी सर्वोत्तम है।’ इसपर बादगाहको सतोप न हुआ। उसने आश्र्वयसे पूछा—‘मैं समझ नहीं सका। आपने अपनी कविताको सबसे उत्तम कहा भी कैसे? क्या इसमें कोई रहस्य है? गोस्वामी तुलसीदामजीकी कविताके

सम्बन्धमे आपका क्या मत है?’

श्रीसूरदासजीने हँसकर कहा—‘गोस्वामीजीकी कविता तो कविता है ही नहीं, मैं तो उसे सर्वोत्तम महामन्त्र मानता हूँ। मैंने जो अपने काव्यकी श्लाघा की सो तो इसलिये कि उसमे सर्वत्र भगवन्नाम—यश अङ्गित है।’

इसके बाद सूरदासजीने गोस्वामीजीका पूरा परिचय तथा बड़ी प्रशंसा सुनायी।

सूरदास और कन्या

उस समय मुगलमस्त्राट् अकबर राज्य कर रहा था। उसके बहुत-सी हिंदू वेगमे भी थीं। उनमेंसे एकका नाम था जोधाबाई।

एक दिन जोधाबाई नदीमे नहाने गयी। वहाँ उसने ढेखा कि एक छोटी-सी सुकुमार लड़की पानीमे छूब-सी रही है। उसको दया आ गयी। उसने उस लड़कीको उठा लिया और घर ले आयी तथा अपनी गर्भजात कन्याकी भौति बड़े स्नेहसे उसका लालन-पालन करने लगी। जब लड़की ग्यारह-वारह वर्षकी हो गयी, तब एक दिन जोधाबाईने देखा कि वह उसकी पेटी खोल रही है। जोधाबाई छिपकर देखने

लगी कि देखूँ, वह क्या करती है। लड़कीने पेटी खोलकर एक सुन्दर-सी साड़ी पहन ली और अपनेको सजा लिया। सजकर वह ऊपर छतपर जाकर खड़ी हो गयी। वह रोज ऐसे ही करती।

एक दिन जोधाबाईने पूछा—‘वेटी। तू ऐसा क्यों करती है?’

लड़की चुप रही, पर बार-बार आग्रह करनेपर बोली—‘मैं। उस समय मेरा पति गाय चराकर लौटा करता है। उसके सामने मलिन वेगमें रहना ठीक नहीं, इसीलिये मैं ऐसा करती हूँ।’

जोधावाई—‘क्या तुम मुक्षको मी उसे दिखा दोगी ?’

लड़कीने कोई उत्तर नहीं दिया, मिन्तु दूसरे दिन जोधावाई भी ऊपर चर्चा गर्ना। कहते हैं कि उस दिन उसे केवल मुरलीकी कीण ल्पनि सुनायी पड़ी।

एक दिन जोधावाई बुछु चिन्तित-भी बैठी थी। लड़कीने अपनी धर्ममातासे हमका कारण पूछा। मौने कहा—‘वेटी। मैं बूढ़ी हो गयी हूँ, इसलिये तेग पिता मुझे प्यार नहीं करता ! क्या त मुझे एक दिन अपने हाथसे मजा देगी ?’

लड़कीने अपने हाथसे माँसा शृङ्खार कर दिया।

उधरसे अक्षय निकला और जोधावाईका मौन्दर्य देखकर चौकित हो गया। उसने पूछा कि ‘तुम इतनी सुन्दरी कैसे हो गर्ना ?’ जोधावाईने टालनेकी बहुत चेष्ठा की, पर अक्षय धीरे पड़ गया। अन्तमें जोधावाईने चात बता दी और कहा कि ‘मेरी धर्मकी वेटीने मुझे इतना सुन्दर बना दिया है।’ अक्षयके मनमें आया कि ‘मैं उस लड़कीसे विचाह कर लूँ।’ किंतु ज्यो ही यह विचार आया त्यो ही उसके शरीरमें विजलीका करेंट-सा ल्पा और वड़ी तीव्र जलन होने ल्पी। उसने बहुत कोशिश की कि औपचार्यके द्वारा यह जलन मिट जाय। पर पीड़ा बढ़ती ही गयी। अन्तमें उसने धीरेल्से उपाय पूछा। उसने कहा कि ‘आपके मनमें कोई दुग्ध नहीं कर सका।’

मेरी आँखें पुनः फूट जायें

महात्मा श्रीसूरदासजी जन्मान्य थे। एक बार वे अपनी मस्तीमें कहाँ जा रहे थे। रातेमें एक सूखा कुओं था। वे उसमें पिंजर गये। सात दिन हो गये। वे भगवान्की बड़े करुण कण्ठसे प्रार्थना कर रहे थे, उस समय भगवान्से आकर उनको बाहर निकाल दिया। बाहर आकर वे अपनी नेत्रहीनतापर पछताने लगे कि ‘मैं पास आनेपर भी भगवान्के दर्जन नहीं कर सका।’

एक दिन वैठे हुए वे ऐसे ही विचार कर रहे थे कि उन्हें श्रीकृष्ण और श्रीराधाकी बातचीत सुनायी दी।

श्रीकृष्ण—‘आगे नत जाना, नहीं तो वह अथा टॉग पकड़ लेगा।’

श्रीराधा—‘मैं तो जाती हूँ।—कहकर वे सूरदाससे पूछने लगा—‘क्या तुम मेरी टॉग पकड़ लोगे ?’ सूरदासजीने कहा, ‘नहीं, मैं तो अधा हूँ, क्या पकड़ूँगा।’ तब श्रीराधा उसके पास

विचार आया है। आप सूरदासनीको बुलाडवे। वे चाहे तो ठीक कर दे मन्त्रते हैं।’

अक्षयने वड़ी विनय करके सूरदासजीको बुलाया। उनके आते ही उसकी जलन मिटने लगी। उसी समय वह लड़की वहाँ आयी और सूरदासजीसे बोली—‘आप कैसे आ गये, महात्मा ?’

सूरदासजीने हँसकर कहा—‘जैसे आप आ गयीं।’

इतनेमें वह लड़की फुर्मे जल गर्नी। वहाँ केवल थोड़ी-सी राख चल गयी। यह देखकर जोधावाई रोने लगी।

सूरदासजीने जोधावाईसे कहा—‘आप रोइये मत। मेरे उद्देश्य हैं। जब मैं गोपियोंको समझाने गया था, उस समय मैं एक दिन किसी निकुञ्जकी ओर विना पूछे चल पड़ा। महसा वहाँ ललिताजी आ गयीं। ललिताजीने कहा—‘यह हमारा राज्य है, आप उधर मत जाइये।’

‘मुझे वड़ा दु स हुआ। मैंने उनसो मर्त्यलोकमें जन्म घरान करनेका शाप दे दिया। उन्होंने भी तुरत बैसा ही आप मुझे भी दिया। इसीसे मैं एक अशसे सूरदास हुआ हूँ और ललिताजी एक अशसे आपके यहाँ आयी थी।’

सूरदासने वह राख बटोरकर अपने सिरपर चढ़ा ली तथा वे चुप-चाप शाही महलसे बाहरकी ओर चल पड़े। —‘राधा’

जाकर अपने चरणका स्पर्श कराने लगीं। श्रीकृष्णने कहा—‘आगे से नहीं, पीछेसे टॉग पकड़ लेगा।’

फिर तो सूरदासने मनमें सोचा कि ‘श्रीकृष्णने तो आजा दे ही दी, अब मैं क्यों न पकड़ूँ।’ यह सोचकर वे भी तैयार होकर वैठ गये। वैसे ही उन्होंने चरणस्पर्श कराया कि सूरदासने पकड़ लिया। किंतु श्रीजी भाग गर्नी, हॉ, उनकी पजनी खुलकर सूरदासके हाथमें आ गयी।

श्रीराधा—‘सूरदास ! तुम मेरी पेजनी दे दो, मुझे राम करने जाना है।’

सूरदास—‘मैं अथा क्या जानूँ, किसकी है। मैं तुमको दे दूँ, फिर कोई दूसरा मुझसे मौगे तो मैं क्या करूँगा ? हॉ, मैं तुमको देख लूँ तब तो मैं दे दूँगा।’ तब श्रीराधाजी हँसी और उन्होंने सूरदासको दर्जन दे दिया।

श्रीकृष्ण और श्रीराधाने प्रसन्न होन्तर सूरदाससे

कहा—‘सूर्योदाम। तुम्हारी जो इच्छा हो, मौग ले ।’
 सूर्योदासने कहा—‘आप देंगे नहीं।’
 श्रीकृष्णने कहा—‘तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है ।’
 सूर्योदाम—‘वचन देते हैं?’
 श्रीनवाच—‘अवश्य ।’

सूर्योदासने कहा—‘जिन ओँखोंसे मैंने आपको देखा,
 उनसे मैं ससारको नहीं देखना चाहता । मेरी ओँखें पुनः
 फूट जायें ।’

श्रीराधा और श्रीकृष्णकी ओँखें छल-छल करने लगीं और
 देखते-देखते सूर्योदासकी दृष्टि पूर्ववत् हो गयी । —राधा

समर्पणकी मर्यादा

महाप्रभु यह सुनकर अश्वर्यंचकित हो गये कि भगवद्-
 विग्रहके नज़्मोगके लिये इच्छा अभगव हो चला है ।

मोनेमी कठोरी गिरवी रख दी जाय,’ महाप्रभु
 श्रीबल्लभाचार्यके आदेशका तुरंत पालन हुआ । भगवान्
 श्रीनाथजीके समझ राजभोग प्रस्तुत किया गया, पर महाप्रभुके
 मक्कोने इस बानपर वडी चिन्ता प्रकट की कि आचार्यने स्वयं
 प्रसाद नहीं ग्रहण किया । केवल इतना ही नहीं—महाप्रभुने दो
 दिनतक उपवास भी किया, अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं
 किया । वैष्णवोंने कारण पूछनेका साहस नहीं किया ।

दो दिनोंके बाद इच्छ आनेपर उन्होंने प्रसाद न्वीकार
 किया । वैष्णवोंद्वारा कारण पूछनेपर आचार्यने कहा कि
 ‘सोनेकी कठोरी पहलेसे ही भगवत्सेवामे अर्पित थी; उसर
 भगवान्का ही अधिकार था; उसके बदलेमें लाया गया भोग
 भगवान् तो प्रहण कर सकते हैं, पर उनके इस भोगका
 प्रसाद लेना मेरे लिये महापातक था ।’ आचार्यने व्यवस्था कर
 दी कि मेरे बंगमें या मेरा कहलाकर जो कोई भगवद्भव्यका
 उपयोग करेगा उसका नाश हो जायगा । —रा० श्री०

भागवत-जीवन

मध्यकालीन भक्त सत कुम्भनदासका जीवन समग्ररूपसे
 श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें समर्पित था । वे उच्चक्रोटिके त्यागी
 थे । ब्रजके निकट जमुनावतो ग्राममें खेती कर अपनी जीविका
 चलाने और भगवान् श्रीनाथजीकी सेवामें उपस्थित होकर
 महाप्रभु श्रीबल्लभाचार्यकी आज्ञासे कीर्तन सुनाया करते थे ।

एक नमयकी बात है । बादशाह अकबरके दाहिने हाथ
 महाराजा मानसिंहका ब्रजमें आगमन हुआ था । जिस समय
 वे श्रीनाथजीका आगती-दर्शन कर रहे थे, उस समय वीणा
 और मृदुजङ्कके सहारे महात्मा कुम्भनदासजी प्रेमोन्मत्त होकर
 प्रभुके चरणोंमें कीर्तन समर्पित कर रहे थे । महाराजा उनकी
 कीर्तन-शैलीसे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने उनके
 निवास-स्थानपर जाकर मिलनेका निश्चय किया ।

X X X

राजैमवने भगवान्के भक्तका दग्धवाजा खटखटाया ।
 महाराजा मानसिंह उनके घरपर उपस्थित हुए । कुम्भनदाम
 ज्ञान करने तिलक करने जा रहे थे कि महाराजाने उनको
 साद्घान्न प्रणाम किया ।

‘मेरा दर्पण और आमनी तो लओ ।’ कुम्भनदामने
 अपनी भतीजीको आदेश दिया ।

वाया, दर्पण पड़ियाने पा लिया है और आमनी भी
 खा गयी । भतीजीके सुन्नने ऐसे शब्द सुनकर मानसिंह
 अश्वर्यंचकित हो गये और जब उन्हे पता चला कि वे

पानीमें सुख देखकर तिलक लगाते हैं और पुआलसे आसनीका
 काम लेते हैं, तब उनकी श्रद्धा गङ्गा और यमुनाकी बाढ़के
 समान बढ़ गयी । उन्होंने अपना सोनेका दर्पण कुम्भनदासके
 हाथमें रख दिया ।

‘मेरा अग तो एक झोपड़ीमात्र है । इस दर्पणसे मेरी
 आन्तरिक शान्ति नष्ट हो जायगी और चोर-डाकू जान लेनेपर
 तुल जायेगे ।’ महालमाने दर्पण लौटा दिया ।

‘महाराज ! मेरी वडी इच्छा है कि जमुनावतो ग्राम
 आमके नाम लग जाय ।’ मानसिंहका मस्तक नत था संतके
 चरणपर ।

‘मेरी सबसे बड़ी जागीर है श्रीनाथजीकी सेवा ।’ कुम्भन-
 दासने प्रस्ताव अस्तीकार कर दिया । गजा मानसिंहने मोहरोकी
 थैली मेंटमे दी ।

‘नरेश ! ब्रजके करील और वेर मेरे सबसे बड़े मोदी हैं ।’
 कुम्भनदासने थैली लौटा दी ।

महाराजा मानसिंहका रोम-रोम पुलकित हो उठा । कण्ठ
 अवरुद्ध हो गया ।

‘महाभागवत ! मैंने आपका दर्जन पाकर परमधन प्राप्त
 कर लिया । आपका भागवत-जीवन धन्य है । ब्रजदेशकी
 श्रीकृष्णभक्तिकी गोद सदा फूले-फले । मुझे प्रकाश मिल
 गया । राजा मानसिंहने सादर अभिवादन किया और
 चले गये । —रा० श्री०

व्याधोमें थाम लिया

एक बार मत्त चतुर्भुजशस्त्री अपने गुदके साथ कहाँ तीर्थ-यात्रा करने जा रहे थे। पर उनका मन ज्ञानेका नहीं था क्योंकि वहाँके भगवान्‌से उनका मन बहुत रम रहा था।

मिन्तु जब जाना पड़ा, तब वे बहुत व्याकुल हो गए और एक पेड़पर चढ़कर भान्डार्को टेजने लगे। देखते-देखते इतने भला हो गये कि पेड़से गिर पड़े। उसी समय भगवान् वहाँ आ गये और उन्होंने अपने हाथोमें थाम लिया। उस समय भगवान्‌के विरहमें जो पद उन्होंने गाया, वह इस प्रकार है। कहते हैं श्रीनायजीने उसी समय उन्हें यह बगदान दिया कि जो कोई इच पदको भावसे प्रतिदिन गायेगा, उसे वे साक्षात् दर्शन देनेकी वाद्य होगे। पद इच प्रकार है—

श्रीनोवरधनवाली मौनें लाल, तुम विन गँड़ी न जाय।
ब्रजनन लहैं लहैं हो, तुम विन नहीं न जाय॥
कह चित्तैं सुनुकाय कैं लाल, सुदर बडन दित्ताल।
लोचन दलहैं मील ज्यालाल, पल-ठिन कलप विहाय॥
महक खर बधान नौं दलाल, मेहन वैतु बजाय।
मुरन मुहर्ड चौत्रि र लाल, नमुर्द-मवुर्द गाय॥
रमिक रसेन्ही बहनी लाल, मिरि चड गैम्हौं तुलाय।
गौंग बुन्दर्द घूनरी नैक ऊँची टेर सुनाय॥

दृष्टि परे जादिवस ते लाल, तब ते रहै न आन।
खनीं नैद न अर्द, मौहि निमरथी भोजन-पान॥
दरमन जौं नवना तर्द लाल बचन मुनन झाँ जान।
मिलिवे नै हिवरा तपै, मेरे निय के लीन प्रान॥
पूरन सति मुद्द देवि रलाल, चित चाँध्यो वहि ओर।
दृष्टि सुवा रस पान कैं लाल, साडर कुमुद-चकोर॥
मन अमिलापा हूँ रही लाल, लगै न नयन निमेस।
इकट्ठ देहैं माँती प्यारी नागर नटवर मैय॥
लोक लाल कुरु कैट कौलाल, छाँध्यौ सकल विवेक।
कमल कली रसि व्यों बढें लाल, छिन-छिन प्रीति विसेस॥
कैटिक मननथ बारने लाल, देखन टगनगि चाल।
जुबती जन-नन फठना लाल, अबुज नयन विमाल॥
कुन्ज-नवन जीडा करौ लाल, नुखनिवि मठनगुपाल।
हन श्रीवृदावन नारदो, तुम मौगी मनर मुचाल॥
यह रट लागी लाडिले लाल, जैसैं चातक मोर।
प्रेन नैल वरग करौ लाल, नववन नटकिसोर॥
जुग जुग अविचल रास्तिय लाल, यह सुख सैल निवास।
श्रीगोविन्दनवर रूप दे, वकि जाय चतुर्भुजास॥

भगवान्‌की छाराए उनके गुरजीके मनमें भी आ गया
कि उनको न ले जायें, वस, उनको वहाँसे वापस लैटा दिया।

व्यासजीकी प्रसादनिष्ठा

(लेखक—श्रीनानुदेवजी गोस्तामी)

महात्मा हणिगुम व्यासजी घर छोड़कर सवन् १६२२ में औरछासे बृन्दावन चले आये थे। उस समय इनकी अवस्था ४५ वर्षकी थी। श्रीरामाङ्गणकी लीलाओंमें इनका मन रम चुका था। भक्तोंको ये अपने इष्टदेवके सुमान मानते थे। भगवान्‌के प्रसादकी पावनता इनके विचारसे सर्वोपरि थी और वे मानते थे कि—

स्वान प्रसादहि छाँ गयाँ, क्रौञ्च गयो विद्यारि।
दोऽक पावन व्यास के कह भाँति विचारि॥

इनसे इस प्रकारकी वातें तुनकर कुछ लक्षणोंने प्रसादके प्रति इनकी उत्तम प्रसन्न निष्ठाकी परीक्षा लेनेका विचार किया। एक दिन व्यासजीके निकटसे श्रीदाकुरजीका प्रसाद और उत्तोके मोजनका जूँझन लिये हुए एक भगिन निकली। उसे देखकर

उन लोगोंने व्यासजीसे कहा—‘महाराज ! श्रीरजीका प्रसाद तो इससे लीजिये।’ यह दुनते हीं व्यासजीने उस भगिनके सामने प्रसादके लिये हाथ फैला दिये। पहले तो वह भगिन कुछ क्षिक्षकी, मिन्तु जब अन्य लोगोंने व्यासजीको प्रसाद देनेके लिये उसे प्रोत्तिहित किया, तब उसने अपनी डालियामेंसे एक पकौड़ी उठाकर व्यासजीकी हयेलीपर रख दी। भगवान्‌के उत्त प्रसादका वडी श्रद्धासे भोग लगाकर व्यासजी गाने लगे—

हनारी जीवन मूरि प्रसाद।

अनुस्तित महिना कहत मामन, नेटन सत्र प्रस्तिवाद॥
जो बटनास ब्रननि झाँने फूल सौ एक नीय के स्तान॥

देन-लेत जो करै अनादर, सो नर अधम गवाद ।
श्रीगुरु मुकुल प्रताप 'व्यास' यह रस पायौ अनहाद ॥
यह देखकर सभी लोग दंग रह गये । व्यासजीने उन्हें सुनाया—

'व्यास' जानि तजि भक्ति कर, कहत मागवत टैरि ।
जानिहि भक्ति हि ना बनै, ज्यों केरा छिग बैरि ॥
'व्यास' कुर्लिनि कोटि मिलि पडित लास पचीस ।
स्पैच भक्त की पानही तुझै न निन के सीस ॥

'व्यास' मिठाई विश्र की तामे लागे आग ।
बृद्धावन के स्पैच की जूँठिन खेये माँग ॥

व्यासजीके इस प्रकारके अनेक पुनीत चित्र हैं, जिन्हे
देखकर ही महात्मा श्रुद्धासजीने उनके लिये लिखा था—
प्रेम-मगन नहि गन्यौ कल्यु वरनावरन विचार ।
सवन मध्य पायौ प्रगट ल प्रसाद रस-सार ॥

अनन्य आशा

(लेखक—भक्त श्रीरामगणदासजी)

कवि श्रीपतिजी निर्धन ब्राह्मण थे, पर थे वडे तपस्वी,
धर्मपरायण, निर्भीक भगवद्भक्त । भगवानमें आपका पूर्ण
विश्वास था । आप भिक्षा माँगकर लाते, उसीसे अपने
परिवारका पालन-पोषण करते । ब्राह्मणी आपसे वार-वार कहती
—'नाथ ! आप कोई काम कीजिये, जिससे घरका काम
चले ।' पर आप उसे यही उत्तर देते कि 'ब्राह्मणोंका परम
धर्म भजन करना ही है ।' एक दिन पक्कीने आपको बहुत
विवश करके प्रार्थना की—'आप इतने वडे कवि हैं और
आपका काव्य-सौन्दर्य अत्यन्त मन-मोहक है । सुना है
बादशाह अकबरको कविता सुननेका बहुत गौक है । आप
उनके दरवारमें एक बार अवश्य जायें ।' पक्कीके बहुत आग्रह
करनेपर श्रीपतिजी अकबरके दरवारमें गये और गुणग्राही
बादशाहको जब अपनी स्वरचित कवितामें भगवान् श्रीरामके
गुणसमूहको सुनाया, तब बादशाह गढ़गद हो गये और इनको
अपने दरवारमें रख लिया । वे दरवारी कवि हो गये, परतु
इन्होंने बादशाहकी प्रशंसामें कभी एक भी रचनानहीं की, वे केवल
भगवत्समन्वयी रचना ही करते थे । दरवारके दूसरे कविगण
दिन-रात बादशाहके गुण-गानमें ही लोग रहते थे । वे मानो
भगवान्की सत्ताको ही भूले हुए थे । अकबर श्रीपतिजीकी
कविनापर प्रसन्न होकर उन्हें समय-समयपर अच्छा इनाम
दिया करते थे, इससे वे सब इनसे जलते थे । उन सबने
मिलकर इन्हें नीचा दिखानेकी युक्ति सोची और बादशाहको

समझानेकी चेष्टा की कि श्रीपति तो आपका अपमान करता है ।

एक दिन दरवारमें सबने मिलकर एक समस्या रखी—
'करौ मिलि आस अकब्रकी' और प्रस्ताव किया कि कल सब कवि
इसी समस्याकी पूर्ति करें । सबने सोचा—'देखें अब श्रीपति
क्या करते हैं ।' उन्हें कहाँ पता था कि यह लोभी डुकड़िलोर
ब्राह्मण नहीं है, वह तो भगवान्का परम विश्वासी है । दूसरे
दिन दरवारमें भीड़ लग गयी । सभीकी दृष्टि श्रीपतिजीकी
ओर थी । इधर श्रीपतिजी भगवान्पर विश्वास करके निश्चिन्त
अपने स्थानपर बैठे प्रभुका स्मरण कर रहे थे । सब कवियोंने
बारी-बारीसे बादशाहकी प्रशंसामें लिखी कविताएँ सुनायीं ।
सबने दिल खोलकर अकबरकी प्रशंसाके पुल बैधे ।

तदनन्तर भक्त श्रीपतिजीकी बारी आयी । वे निर्भय निश्चिन्त
मुसकराते हुए उठे और उन्होंने निम्नलिखित कवित सुनाया—

अबके सुलता फनियान समान हैं, वाँचत पाग अटब्रकी ।
तजि एक को दूसरे को जु भजै, कटि जीभ गिरै वा लब्रकी ॥
सरनामात 'श्रीपति' रामहि की, नहि त्रास है काहुहि जब्रकी ।
जिनको हरिमें परतीति नहीं, सो करौ मिलि आस अकब्रकी ॥

इस कवित्तको सुनते ही सब द्वेषी लोग भौचकके हो
गये, उनके होश गुम हो गये और चेहरे फीके पड़ गये ।
भगवत्प्रेमी दरवारी और दर्शकोंके मुख खिल उठे । बादशाह
प्रसन्न हो गये श्रीपतिजीकी निष्ठा और रचना-चातुरी देखकर ।
धन्य विश्वास !

ब्रज-रजपर निष्ठावर

लगभग ढाई सौ वर्ष पहलेकी बात है । बादशाह
मुहम्मदशाहके लास-कलम—मीर-मुड़ी ये कविवर बनानन्द ।
वे ब्रजसके महान् रसिक थे । जीवनके अन्तिम दिनोंमें
किसी घटना-विद्वेषके कारण बादशाहने उन्हें दिल्ली

छोड़ देनेका आदेश दे दिया । तब वे बृन्दावन चले
आये और एक पेड़के नीचे संन्यास ग्रहण करके श्रीकृष्ण-
की भक्तिमें रँग गये ।

नादिरशाहने भारतवर्षपर आक्रमण किया । उसके

सैनिकोंने दिल्लीके आस-पासके जनगदोंमें भयकर लूटपाटका दृश्य उपस्थित कर दिया। सैनिक हत्या और लूटपाट करते बृन्दावन पहुँच गये। उन्हें पता चल गया कि वादगाहके मीर-मुझी बृन्दावनमें ही रहते हैं। वे धनानन्दके पास पहुँच गये।

‘जर, जर, जर।’ सैनिकोंने खजाना माँगा। उनका विश्रास था कि वादगाहके आस-कलमको खजानेका पता अवश्य होगा। पर धनानन्द तो आज श्रीकृष्णके भक्त-रथके खजाची थे। उनके पास परमधन व्रजरथके

सिवा दूसरा पदार्थ था ही क्या।

‘रज, रज, रज’—तीन बार ‘रज’ शब्दका उच्चारण करके गणिक सतने मैनिकोंके शरीरपर धूलि फैक दी। सैनिकोंने समझा कि मीर-मुझी विनोद कर रहे हैं, उन्होंने तत्काल धनानन्दका एक हाथ काट डाला।

‘मेरे प्राण अधरतक आ गये हैं और सुजान—श्री-कृष्णका सदेश लेकर निकलना चाहते हैं।’ उनके अन्तिम शब्द थे। धनानन्दने व्रजरथपर अपने-आपको निष्ठावर कर दिया।—रा० श्री०

प्रसादका अपमान

प्रसादो जगदीशस्य अन्नयानाभिं च यन् ।
अह्मवचिर्विकार हि यथा विष्णुलयैव तत् ॥

नरेशका हृदय जला जा रहा था। वे मन-ही मन छठपटा रहे थे। अगान्ति यद्यनी जा नहीं थी। वात यह यी कि वे निरमयूर्वक प्रतिदिन भोजनके पूर्व प्रभु श्रीजगन्नाथजीका प्रसाद लिया करते थे। प्रसादके विना वे भोजनका सर्व भी नहीं रखते थे। प्रसादमें वड़ी निष्ठा थी उनकी। किंतु उन दिन पाकगालमें पुजारीने प्रसाद नहीं दिया था। कारण यह था कि महाराज चौपट खेल रहे थे। खेलमें वे तन्मय थे। उसी समय पुजारीजी भगवत्-प्रसाद लेकर पहुँचे। नरेशने चौपट खेलते हुए प्रसादको वायें हाथसे स्वर्ग कर दिया। पुजारीजीसे प्रसादका अपमान नहीं सहा गया और उस दिन उन्होंने पाकगालमें प्रसाद नहीं दिया। उन्होंने नरेशनो प्रसाद देनेका अधिकारी नहीं समझा।

धार्मिक नरेश घृणित थे। उनका हृदय बैठा जा रहा था। ‘प्रसादका अपमान करनेवाला अङ्ग अनावश्यक है।’ अपनी इस धारणाके अनुसार उन्होंने अपना दाहिना हाथ अल्पा कर देनेका निश्चय कर लिया था।

‘मेरे धर्यनक्षममें खिड़कीसे हाथ ढालन् एक ग्रेत प्रतिदिन मुझे डराता है।’—नरेशने हाथ कटानेकी युक्ति सोच कर अपने मन्त्रीसे कहा।

‘रात्रिमें आपके साथ मैं भी शयन करूँगा’ मन्त्रीने नरेशको निर्मीक रहनेका आव्वासन दिया।

× × × ×

दूसरे दिन प्रात रात जब मन्त्रीको चिदित हुआ कि खिड़कीसे हाथ ढालन् विलनेवाले महाराज ही थे और ग्रेतके विचारसे मैंने अपनी तीर्ण तलजारसे परम पुण्यात्मा नरेशका दाहिना हाथ काटकर अल्प कर दिया है, तब उनके मनमें बड़ा खेद हुआ। वे पश्चात्ताप करने लगे। किंतु नरेश आनन्द-निमित्त थे। उनकी आकृतिपर हँसी खेल रही थी।

× × × ×

श्रीपुजारीजीको प्रसाद लाते देखकर नरेशने दौड़कर उनका स्वागत किया और प्रसादके लिये लक्ष्मकर एक हाथ बढ़ाया, तो दूसरा हाथ भी निकल आया, यह पूर्व हाथकी अपेक्षा अधिक सुन्दर था। राजाके नये हाथके निकल आनेमें मन्त्री और मारी प्रजा भगवान्नकी जय-जयकार करने लगी।

गहर प्रसाद हाथ जमि आयी। सकल पुरी जय-जय-रव छायी॥

× × × ×

श्रीजगन्नाथजीके आदेशानुसार पुजारीजीने नरेशका कटा हाथ एक खेतमें गाड़ दिया। वही दानाके पौदोंके रूपमें उग आया। ‘दाना’ भगवान्नको अवतक नित्य चढाया जाता है। उसकी सुगन्ध प्रभुको अल्पत्त प्रिय लगती है।—शि० दु०

लीलामयकी लीला

‘मन बढ़ा चञ्चल होता है।’ श्रीनारायणदासजी वदारिकाश्रम-से मथुरा आये थे। वहाँ प्रभुके दर्शनार्थियोंका तोता लगा रहता था। दर्शनार्थी अपने-अपने उपानहूँ छोड़कर दर्शन करने जाते थे। उन्हें देखकर वे मन-ही-मन विचार कर रहे थे,

भक्त-गण भगवान्नके दर्शन करने तो जाते हैं, किंतु उनका मन उनानहोंकी चिन्तामें पूर्ण पवित्र नहीं रह पाता होगा।’ वस, उन्होंने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया।

वे प्रभुकी देहरीसे थोड़ी दूरपर खड़े रहते। भक्तगण

दर्घनके लिये आते । आप अत्यन्त आदर तथा प्रेमसे उनके उपानहोंकी देख-भाल करते । दर्घनार्थी निश्चिन्त होकर प्रभुके दर्शन कर आते । इससे दर्घनार्थीयोंको बड़ी सुविधा रहने ल्पी और श्रीनारायणदासजीको इससे बड़ी तृप्तिकर शान्ति प्राप्त होती थी ।

X X X

‘मेरी गठरी सिरपर रख ले और मेरे साथ चल ।’
भक्तकी अत्यन्त सरलता देखकर एक व्यक्तिने अभिमानके साथ कहा ।

‘अच्छी बात है ।’ आपने गठरी सिरपर उठा ली और उस व्यक्तिके साथ हो लिये । भगवदिच्छा समझकर उन्होंने गठरी ढोनेमें भी आपत्ति नहीं की । व्यक्ति उन्हें साधारण मनुष्य समझ रहा था ।

‘महाराज !’ गठरी ढोते हुए श्रीनारायणदासजीके युगल चरणोपर एक परिचित पुरुष गिर पड़ा । ‘आप यह क्या कर रहे हैं ?’ सहसा उसके मुँहसे निकल गया । वह आश्रय-विस्फारित नेत्रोंसे श्रीनारायणदासजीकी ओर देख रहा था ।

‘प्रभुकी इच्छा ही अपनी इच्छा है ।’ वैराग्यके प्रतीक साधुने सीधे गब्दोंमें उत्तर दे दिया ।

गठरीवाला व्यक्ति अब उन्हे समझ सका । उसका

मस्तक आपके चरणोंपर था । उसके नेत्र अश्रु वरसा रहे थे । वह मन-ही-मन छटपटा रहा था ।

‘तुम्हारा कोई दोप नहीं है, भैया ।’ वडे प्यारसे उसे उठाकर सहलाते हुए आपने कहा । ‘यह तो उस लीला-मयकी लीला है ।’

सत-स्पर्शसे उस व्यक्तिके पाप धुल गये । उसका मन पवित्र हो गया । पूर्वके शुभ-स्तकार जाग्रत् हो गये । वह मन और कर्म दोनोंसे दुष्ट था । परतु उस दिन उसने श्रीनारायणदासजीसे दीक्षा ले ली और फिर घर लौटकर नहीं गया । उसका जीवन बदल गया । वह स्वयं तो सिद्ध साधु हुआ ही, उसके सम्पर्कमें आनेवालोंको भी प्रभु-प्रेमकी प्राप्ति हुई ।

X X X

भक्त श्रीनारायणदासजीकी ससारमें तनिक भी आसक्ति नहीं थी । प्रभुमे भक्ति और प्रेम आपका अद्वितीय था । आप सदैव भगवन्नामका जप किया करते थे । साधु-सत तथा दीन-दुखी, छी-पुरुष, सवकी—उन्हे नारायणका स्वरूप समझकर—आप वडे प्रेमसे सेवा करते थे और इस प्रकार अपूर्व सुखका अनुभव करते थे । आपके द्वारा ब्रदरिकाश्रमके मनुष्योंका तो उपकार ही हुआ, अन्यत्र भी जहाँ कहाँ जो भी आपके सम्पर्कमें आया, उसका जीवन पावन हो गया । वह प्रभुके चरणोंकी प्रीति पाकर कृतार्थ हो गया । —शि० दु०

मरते पुत्रको बोध

ठाकुर मेघसिंह वडे प्रजाप्रिय और न्यायकारी जागीरदार थे । भगवान्के विश्वासी भक्त थे । वे इतने साधु-स्वभाव थे कि बुरा करनेवालेमें भी भलाई देखते थे ।

भगवत्-कृपा तथा भगवान्के मङ्गल-विधानमें उनका अद्वृत विश्वास था । ठाकुर मेघसिंहके एक ही कुमार था—सज्जनसिंह । सोलह वर्षकी उम्र थी । शील, सौन्दर्य और गुणोंका भडार था वह । अभी तीन ही महीने हुए उसका विवाह हुआ था । भगवान्के विधानसे वह एक दिन श्वेतेरे गिर पड़ा और उसके मस्तकमें गहरी चोट आयी । थोड़ी देरके लिये तो वह चेतनाशून्य हो गया, परतु कुछ ही समय बाद उसको चेत हो आया । यथासाध्य पूरी चिकित्सा हुई, पर धावमें कोई सुधार नहीं हुआ । होते-होते धाव बढ़ गया और उसका जहर सारे शरीरमें फैल गया । अब सवको निश्चय हो गया कि सज्जनसिंहके प्राण नहीं चलेंगे । सज्जनसिंहसे भी यह बात छिपी नहीं रही । उसके चेहरेपर कुछ उदासी आ गयी । ठाकुर

मेघसिंह पास बैठे विष्णुसहस्रनामका पाठ कर रहे थे । उसे उदास देखकर उन्होंने हँसते हुए कहा—‘बेटा ! तुम्हारे चेहरेपर उदासी क्यों है । अभी तुम मेरे पुत्र हो, मेरी जागीरके मालिक हो, तुम्हें मेरे कुँअरका पद मिला है । यह सब तुम्हारे गोपालजीके मङ्गलविधानसे ही हुआ है । अब उन्होंके मङ्गलविधानसे तुम साक्षात् उनके पुत्र बनने जा रहे हो । अब तुम्हे उनके कुँअरका पद मिलेगा और तुम दिव्यधामकी जागीरीके अधिकारी बनोगे । यह तो बेटा । हर्षका समय है । तुम प्रसन्नतासे जाओ, मङ्गलमय प्रभुसे मेरा नमस्कार कहना और यह भी कहना कि मेघसिंहके आपके धाममें तवादिलेकी भी कोई व्यवस्था हो रही है क्या ? मुझे कोई जलदी नहीं है; क्योंकि मुझे तो सदा चाकरीमें रहना है, चाहे जहाँ रखतें, परतु इतना अवश्य होना चाहिये कि आपकी चाकरीमें हूँ, मुझे इसका सरण सदा बना रहे ।

‘बेटा ! यहाँके स्योग-वियोग सब उन लीलामयके

लीलासकेतसे होते हैं और होते हैं हमारे मङ्गलके लिये । इस वातका जिसको पता है, वह न तो दुखके सयोगसे दुःखी होता है न सुखके वियोगसे । उसे तो सभी समय सभी संयोग वियोगोंमें, सभी दुःख-सुखोंमें सदा अखण्ड सुख, अखण्ड शान्ति और अखण्ड तृतीका अनुभव होता है । तुम भगवान्‌के मङ्गलभक्तेतसे ही यहाँ आये और उनके मङ्गल-सकेतसे मङ्गलमयनी चरणधूलि प्रत्यक्ष प्राप्त करने जा रहे हो । इसमें जरा भी सदेह मत करो । सगयवान्‌का ही पतन होता है । विश्वासी तथा श्रद्धालु तो हँसते-हँसते प्रभुके धाममें चला जाता है । तुम श्रद्धाको हृदयाके साथ पकड़े रहो, विश्वासको जरा भी इधर-उधर मत होने दो । यहाँसे जाकर तुम वहाँ उस अपरिसीम अनन्त आनन्दको प्राप्त करोगे कि फिर यहाँकी सभी सुखकी चीजें उसके सामने तुम्हें तुच्छ दिखायी देंगी । रही कुञ्चरानीकी वात भी उसकी कोई चिन्ता मत करो । वह पतिव्रता है । यहाँ साधुभावसे जीवन विताकर वह भी दिव्यधाममें तुम्हारे साथ ही श्रीगोपालजीकी चरणसेविकाका पद प्राप्त करेगी । वेटा । विषयोंका चिन्तन ही पतनका हेतु होता है, फिर द्वी-पुरुषके विषयी जीवनमें तो प्रत्यक्ष विषय-सेवन होता है । प्रत्यक्ष नरक-द्वारोंमें अनुराग हो जाता है । अतएव वह पतनका निश्चय हेतु है । भगवान्‌ने दया करके उन नरक-द्वारोंकी अनुरक्षा और सेवासे कुञ्चरानीको मुक्त कर दिया है । वह परम भाग्यवती और साच्ची है, इसीसे उसपर वह अनुग्रह हुआ है । वह तपोमय जीवन वितानेगी और समर्पण पर भगवान्‌के दिव्यधाममें तुमसे आ मिलेगी । तुम्हारी माताको

तो भगवान्‌के मङ्गलविद्यानपर अखण्ड विश्वास है ही । उसे तो सर्वत्र सर्वथा मङ्गल ही दीखता है । वेटा । तुम सुखसे यात्रा करो । स्वयं हँसते-हँसते और सबको हँसाते हुए जाओ । जब सबको यह विश्वास हो जायगा कि तुम वहाँ जाकर यहाँकी अपेक्षा कहीं अनन्तरुने विशेष और अधिक सुखकी स्थितिको प्राप्त करोगे, तब तुम्हारे वियोगमें दुःखका अनुभव होनेपर भी सच्चे प्रेमके कारण तुम्हारे सुखसे वे सभी परम सुखी हो जायेंगे । पर यह विश्वास उन सबको तभी होगा, जब तुम विश्वास करके हँसते-हँसते जाओगे ।

ठाकुरकी इन सच्ची बातोंना सज्जनसिंहपर वहाँ प्रभाव पड़ा । उसका मुखमण्डल दिव्य आनन्दकी निर्मल ज्योतिसे उद्भासित हो उठा । उसके होठोंपर मधुर हँसी छा गयी, उसना ध्यान भगवान् गोपालजीके मधुर श्रीविग्रहमें लग गया और उसके मुखसे भगवन्नामका उच्चारण होने लगा । फिर देखते ही-देखते ब्रह्मण्ड फटकर उसके प्राण निकलकर दिव्यधाममें पहुँच गये ।

ठाकुर, ठकुराइन, कुञ्चरानी—सभी वहाँ उपस्थित थे । परतु सभी आनन्दमग्न थे । मानो अपने किसी परम प्रिय आत्मीयको शुभ आनन्दमय स्थानकी शुभ यात्रामें सहर्ष सोल्फुल हृदयसे विदा दे रहे हैं ।

ठाकुर ठकुराइन, कुञ्चरानी—तीनोंने ही अपने जीवनको और भी वैराग्यसे सुसम्मन किया, भगवत्-रग्में विशेषरूपसे रँगा और अन्तमें यथासमय इस अनित्य मर्त्यलोकसे सदाके लिये छूटकर भगवद्वाममें प्रगाण किया ।

चोरका हृदय पलटा

श्रीगद्वाधर मह वडे ही रसिक तथा भगवद्विश्वासी भक्त थे । ये श्रीवैतन्यमहाप्रभुके समरकालीन थे । एक दिन रातको भट्टजीके घरमें एक चोरने सेंध लगायी । मालमतेकी गठरी वाँधकर चोर ले जाना चाहता था, परतु गठरी वहुत भारी हो गयी थी, वह उसे उठा नहीं पा रहा था । इतनेमें भट्टजी लघुशङ्काको उठे और चोरकी यह दशा देखकर उन्हें वडी दया आयी । उन्होंने प्रेमसे कहा ‘ले, मैं उठाये देता हूँ ।’ चोरने भट्टजीके देखते ही भागना चाहा । भट्टजीने उसे आशासन

देते हुए कहा—‘भैया । मारते क्यों हो । कोई ढर नहीं है, तुम्हें जन्मरत थी, इसीसे इतनी अँधेरी रातमें तुम इतने कष्टसे लेने आये हो ।’ चोर लज्जित हो गया । भट्टजीके वडे आग्रहसे चोर गठरी अपने घर ले गया, परतु उसका मन बदल चुका था । वह सवैरे गठरी लेकर लौटा और भट्टजीके चरणोंपर पिंकर कर रोने लगा । भट्टजीने उसे हृदयसे लगा लिया । चोरका अन्त करण शुद्ध हो गया । वह सदाके लिये साधुचरित्र हो गया ।

सम्पत्ति के सब साथी, विपत्ति का कोई नहीं

धनदत्त नामक सेठ के घर एक भिखारी आया। सेठ उसे एक मुँही अन्न देने लगे तो उसने अस्वीकार कर दिया। छुँझलाफ़र सेठ बोले—‘अन्न नहीं लेता, तब क्या मनुष्य लेगा?’

भिखारी भी अद्भुत हठी था। उसे भी क्रोध आ गया। उसने कहा—‘अब तो मैं मनुष्य ही लेकर हँड़ूँगा।’ बैठ गया वह सेठ के द्वारपर और अन्न-जल छोड़ दिया उसने। सेठ घरवाये, उन्होंने उसे बहुत धन देना चाहा; किंतु भिखारी तो हठपर आ गया था। वह अङ्गा हुआ था—‘या तो मैं यहीं मरँगा या मनुष्य लेकर उँड़ूँगा।’

सेठजी गये राजा के मन्त्री तथा अन्य अधिकारियों के पास सम्मति लेने। सबने कहा—‘मर जाने दो उस मूर्खको।’

सेठजी लौट आये, किंतु ये बुद्धिमान्। उनके मनमे यह बात आयी कि अभी तो मन्त्री तथा राजकर्मचारी यह बात कहते हैं, किंतु यदि भिक्षुक सचमुच मर गया तो मेरी रक्षा करेगे या नहीं, यह देख लेना चाहिये। वे फिर मन्त्री के पास गये और बोले—‘भिक्षुक तो मर गया।’

मन्त्री चौंक पड़े। कहने लगे—‘सेठजी! यह तो बुरा हुआ। आपको उसे किसी प्रकार मना लेना था। यह मूल्य आपके द्वारपर हुई। नियमानुसार इसकी जॉच होगी और उसमें आप निमित्त सिद्ध होंगे। पता नहीं आपको क्या दण्ड मिलेगा। मेरा कर्तव्य है इस काण्डकी रुचना राजा को दे देना। आप मुझे क्षमा करें। सरकारी कर्मचारी होनेसे मैं आपको कोई सलाह नहीं दे सकता।’

सेठजीने कहा—‘धन्यवाद। मैं हँसी कर रहा था। वह अभी जीवित है।’

घर लौटकर सेठजीने कुछ सोचा और पत्नी को ले जाकर भिक्षुक के सामने खड़ी करके बोले—‘तुम्हे मनुष्य ही लेना है न। इनको ले जाओ।’

भिक्षुक उठ सङ्घा हुआ। वह बोला—‘ये तो मेरी माता है। मैं अपनी बात सत्य करनेको अङ्गा था, वह सत्य हो गयी। भगवान् आपका मङ्गल करें।’ वह चल गया वहाँसे। —सु० सिं०

श्रीधर स्वामीका संन्यास

परम भागवत श्रीधर स्वामी पूर्वश्रिमद्देविजयी पण्डित थे। एक समय वे दिविविजय करके घर लौट रहे थे। रास्ते में डाकुओंने आपको धेर लिया। तब वे ऑखें मूँदकर मन-ही-मन अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रका सरण करने लगे। उसी क्षण डाकुओंको दिखायी दिया कि एक नवदूर्वादिल-श्याम तेजस्वी तरुण धनुप्राण लिये ललकार रहा है। डाकू ढर गये और उन्होंने श्रीधरजीके चरणोंपर गिरकर दीन

भावसे कातर प्रार्थना की—‘महाराज। आपके साथी ये श्याम-सुन्दर युवक हमे वाणीसे मार डालना चाहते हैं—बचाइये, बचाइये।’ यह सुनकर श्रीधरजी मन-ही-मन बड़े दुखी हुए और उन्होंने सोचा कि तुच्छ धनकी रक्षाके लिये मेरे प्रभुको कितना कष्ट सहना पड़ रहा है। उन्हे वैराग्य हो गया और वे उसी क्षण ससार छोड़कर काञ्जी चले गये और वहाँ श्रीपरमानन्द स्वामीजीसे सन्यास लेकर श्रीनृसिंह-मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त की।

विकट तपस्वी

‘महाराज। हमें जिनकी खोज थी, वे मिल गये।’ मन्त्रीने गिविरमें प्रवेश करके महाराजा वीरसिंहको शुभ सूचना दी। महाराजा सरिता-तटकी ओर चल पड़े। उन्हें स्वप्नमें किसी महान् शक्तिने प्रेरणा दी थी कि महात्मा मधुसूदन सरस्वतीकी सेवा करनेमें सतान-प्राप्ति होगी। महाराजा वीरसिंह अपनी राजधानीसे थोड़ी दूरपर एक सरिताके किनारे

कई दिनोंसे जिविरमें निवास कर रहे थे। वे प्रसन्नतासे आगे बढ़ रहे थे और उनके पीछे-पीछे महामन्त्री और असर्व सैनिक थे।

‘महाराज। भगवान् की कृपासे आपका दर्जन हो सका।’ राजाने तपस्वीसे सपनेकी बात कही, पर वे कुछ बोले ही नहीं। उन्होंने पलक उठाकर देखा तक नहीं। पिछले चौदह

वर्षोंसे नयनोंको बद करके तथा मौन-ब्रत लेकर वे एकान्त-सेवनमें लीन थे। राजा वीरसिंह उनकी विकट तपस्यासे आश्र्वयचकित हो गये, पर उनके मनमें यह बात अच्छी तरह बैठ गयी कि उन्हे मधुसूदन सरस्वतीका दर्शन हुआ है। महामन्त्रीको उस स्थानपर एक विशाल मन्दिरके निर्माणका आदेश देकर वे अपनी राजधानीमें लौट आये।

X X X

तीन वर्ष बीत गये। एक दिन अचानक महात्मा मधुसूदन सरस्वतीने नेत्र खोल दिये। उन्होंने अपने आपको एक विशाल राजमन्दिरमें पाया। भगवान्के श्रीविग्रहका दर्शन

किया। मन्दिरमें राजभोग आदिका उत्तम प्रबन्ध देखकर वे किसी विशेष चिन्तामें लीन हो गये।

‘भैया ! इस माया-मन्दिरका निर्माण किसने कराया ? मेरी कुटी कहाँ चली गयी ?’ महात्माने पुजारीसे प्रश्न किया।

पुजारीके सुखसे वीरसिंहका बृत्तान्त सुनकर वे आश्र्वयचकित हो गये।

दो-चार क्षण विचार करनेके बाद वे उठ पड़े। उन्होंने सदाके लिये मन्दिरका परित्याग कर दिया और तपस्याके लिये बाहर निकल गये।

कितने विकट तपस्वी थे वे। उनका जीवन धन्य था।

—रा० श्री०

निर्मलाकी निर्मल मति

पण्डित विश्वनाथजी भगवान् रामके परम भक्त थे। उनकी एकमात्र सतान निर्मल वही गुणवती थी। विश्वनाथजीने परम सुगील सुन्दर और सदाचारी युवक गुलावरायसे उसका विवाह किया। पर विधाताका विधान कौन टाल सकता है। साल भरके बाद ही हैजेसे उसका देहान्त हो गया। विश्वनाथपर मानो वज्रपात हुआ, उनका हृदय आकुल हो उठा, परतु प्रभु रामजीकी भक्तिने उनको सँभाला। आकुलतामें ही उनका मन रामजीके चरणोंमें चला गया। विश्वनाथजी रो-रोकर मानसिक भावोंसे रामजीकी पूजा करने लगे। प्रभु रामजीने भक्तपर कृपा की। वे स्वप्नमें अपने सत-सुखदायो सर्वदुखहारी मङ्गलमय युगल स्वरूपमें दिव्य-सिंहासनसहित प्रकट हो गये और भक्त विश्वनाथजीको ढाढ़स बैधाते हुए बोले—‘भैया विश्वनाथ ! इतने आतुर क्यों हो रहे हो ! जानते नहीं मेरा प्रत्येक विधान मङ्गलमय होता है ! निर्मलाको यह बैधव्य तुम्हारे और उसके कल्याणके लिये ही प्राप्त हुआ है। सुनो ! पूर्वजन्ममें भी तुम सदाचारी ब्राह्मण थे। वहाँ भी निर्मला तुम्हारी कन्या थी। तुम्हारा नाम था जगदीश और निर्मलाका नाम था सरस्वती। तुममें और सरस्वतीमें सभी सद्गुण थे। परतु तुम्हारे पहोचमें एक क्षत्रियका घर था, वह बहा ही दुष्टद्वय था। वह मनसे बहा कपटी, हिंसक और दुराचारी था, परतु ऊपरसे बहुत मीठा बोलता था। वह बातें बनानेमें बहुत चतुर था। सद्गुणी होनेपर भी उसके कुसङ्गसे तुम्हारे हृदयपर कुछ कालिमा आ गयी थी, वह सरस्वतीको कुदृष्टिसे देखता था। उसके बहकावेमें

आकर सरस्वतीने अपने पतिका घोर अपमान किया था और तुमने उसका समर्थन किया था। सरस्वतीके पतिने आकुल होकर मन-ही-मन सरस्वतीको और तुमको शाप दे दिया था। यद्यपि उसके लिये यह उचित नहीं था, तथापि दुःखमें मनुष्यको चेत नहीं रहता। उसी शापके कारण निर्मला इस जन्ममें विधवा हो गयी है और तुम्हें यह सताप प्राप्त हुआ है। पतिके तिरस्कारके रिवा सरस्वतीका जीवन बड़ा पवित्र रहा। उसने दुराचारी पड़ोसीके बुरे प्रस्तावको ठुकरा दिया। जीवन भर तुलसीजीका सेवन, एकादशीका ब्रत और रामनामका जाप करती रही। तुम हसमें उसके सहायक रहे। इसीसे तुमको और उसको दूसरी बार फिर वही ब्राह्मणका शरीर प्राप्त हुआ है और मेरी कृपासे तुम दोनोंके हृदयमें भक्ति आ गयी है। मेरी भक्ति एक बार जिसके हृदयमें आ जाती है, वह कृतार्थ हुए बिना नहीं रहता। भक्तिका यह स्वभाव है कि एक बार जिसने उसको अपने हृदयमें धारण कर लिया, उसको वह मेरी प्राप्ति कराये बिना नहीं मानती। बड़ी-बड़ी रुकावटोंको हटाकर, बड़े-बड़े प्रलोभनोंसे छुड़ाकर वह उसे मेरी ओर लगा देती है और मुझे ले जाकर उसके हृदयमें बसा देती है। मैं भक्तिके बश रहता हूँ—यह तो प्रसिद्ध ही है। तुमलोगोंपर यह जो दुःख आया है, यह भक्तिदेवीकी कृपासे तुम्हारे कल्याणके लिये ही आया है। यह दुःख तुम्हारे सारे दुखोंका सदाके लिये नाश कर देगा।’ इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

विश्वनाथ विचित्र स्वप्न देखकर जो हुए पुरुषकी मौति चकितसे रह गये। इतनेमें ही निर्मल सामने आ

गयी। निर्मलाको देखकर विश्वनाथका हृदय फिर भर आया। उनके नेत्रोंसे आँख बहने लगे। वे दुःसह मर्मपीडासे व्यथित हो गये। परतु निर्मलाकी साधना बहुत ज़ंची थी। वह अपने वैधव्यकी हालतको खूब समझती थी, परतु वह साधनाकी जिस भूमिकापर स्थित थी, उसपर वैधव्यकी भीपणताका कुछ भी प्रभाव नहीं था। उसने कहा, ‘पिताजी! आप विद्वान्, जानी और भगवद्भक्त होकर रोते क्यों हैं? शरीर तो मरणधर्म है ही। जड़ पञ्चमूर्तोंसे बने हुए शरीरमें तो मुर्दापन ही है। फिर उसके लिये शोक क्यों करना चाहिये? यदि शरीरकी दृष्टिसे देखा जाय तो छोटी अपने स्वामीकी अद्वाङ्गिनी है। उसके आधे अङ्गमें वह है और आधे अङ्गमें उसके स्वामी हैं। इस रूपमें स्वामीका विछोह कभी होता ही नहीं। सती शोका स्वामी तो सदैव अर्धाङ्गरूपमें उसके साथ मिला हुआ ही रहता है। अतएव सती छोटी वस्तुतः कभी विधवा होती ही नहीं। वह विलासके लिये विवाह नहीं करती, वह तो धर्मतः पतिको अपना स्वरूप बना लेती है। ऐसी अवस्थामें—पृथक् शरीरके लिये रोनेकी क्या आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त सबसे महस्त्वकी वात तो यह है कि सारा जगत् ही प्रकृति है, पुरुष—स्वामी तो एकमात्र भगवान् श्रीखुनाथजी ही हैं। श्रीखुनाथजी अजर, अमर, नित्य, शाश्वत, सनातन, अखण्ड, अनन्त, अनामय, पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। प्रकृति कभी उनके अदर सोती है, कभी बाहर उनके साथ खेलती है। प्रकृति उनकी अपनी ही

स्वरूपा जाक्ति है। इस प्रकृतिसे पुरुषका वियोग कभी होता ही नहीं। पुरुषके विना प्रकृतिका अस्तित्व ही नहीं रहता। अतएव हमारे खुनाथजी नित्य ही हमारे साथ हैं। आप इस वातको जानते हैं, फिर भी आप रोते क्यों हैं। कर्म की दृष्टिसे देखें तो जीव अपने-अपने कर्मवश जगत्में जन्म लेते हैं, कर्मवश ही सबका परस्पर यथायोग्य सयोग होता है, फिर कर्मवश ही समयपर वियोग हो जाता है। कर्मजनित यह सारा सम्बन्ध अनित्य, क्षणिक और मायिक है। यह नश्वर जगत् सयोग-वियोगमय ही तो है। यहाँपर नित्य क्या। इस संयोग-वियोगमें हर्ष-विपाद क्यों होना चाहिये।

‘फिर भगवान्का भक्त तो प्रत्येक वातमें भगवान्के मङ्गलमय विधानको देखकर विधानके रूपमें स्वयं विधाता-का स्वर्ण पाकर प्रफुल्लित होता रहता है, चाहे वह विधान देखनेमें कितना ही भीपण क्यों न हो। अतएव पिताजी! आप निश्चय मानिये—भगवान्ने हमारे परम मङ्गलके लिये ही यह विधान किया है, जो जगत्की दृष्टिसे बड़ा ही अमङ्गलरूप और भयानक है। आप निश्चिन्त रहिये, हमारा परम कल्याण ही होगा।’

निर्मलाके दिव्य वचन सुनकर विश्वनाथजीकी सारी पीड़ा जाती रही। उन्होंने कहा—‘वेटी! तू मानवी नहीं है, तू तो दिव्यलोककी देवी है। तभी तेरे ऐसे भाव हैं। तूने मुझको शोकसागरसे निकाल लिया। मैं धन्य हूँ, जो तेरा पिता कहलाने योग्य हुआ हूँ।’

मेरा उगना कहाँ गया?

वाणेश्वर महादेवके समक्ष विद्यापति मधुर कण्ठसे कीर्तन करते रहते और आँखोंसे झार-झार अश्रु झारता रहता—

कद्मन हरव दुख मोर।

हे मोलानाथ।

दुखहि जनम भेल दुखहि गमापव।

सुख सपनहु नहि भेल, हे मोलानाथ।

X X X

मन विद्यापति मोर मोलानाथ गति।

देहु अमय वर मोहि, हे मोलानाथ॥

आशुतोपको प्रसन्न होते कितनी देर ल्याती। एक दिन एक व्यक्ति आया। जितना वह सुन्दर था और जैसी उसकी मीठी वातें थीं—विद्यापति मन्त्रमुग्ध-से उसकी ओर देखते रह गये।

आखिर उसने विद्यापतिसे अपनेको नौकर रख लेनेकी याचना की। विद्यापतिने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। उसका नाम था ‘उगना’। अब आगे उगना ही विद्यापतिकी समस्त सेवाएँ किया करता।

‘उगना! भैया! पानी पिला सकोगे? बड़ी प्यास लगी है।’—चलते-चलते विद्यापति थक गये थे। लंबी यात्रा थी। साथमें केवल उगना था।

उगना समीपकी वृक्षावलीकी ओटमें गया और कुछ ही देर बाद हाथमें जलसे भरा लोटा लेकर लैट आया। विद्यापति जल पीने लगे, किंतु जलका स्वाद भी कहीं इतना मधुर होता है। यह तो निश्चय ही भागीरथीका जल है।—विद्यापति एकटक अपने सेवकको देख रहे थे।

‘उगना’ वह तो निलंदेह गजानन है। नहीं पाया तुम्हे!—आरनार विद्यामति पृथ्वे और उच्चरमें उगना केवल इतना ही कह देता—‘निरुद्धे ही लगा हूँ।’

निरुद्धनि गहाजन एवं शूर-जन्मका भेद न कर गड़े, पर मृगभव नहीं। उगनाका उत्तर उनका समावान न कर सका। किंतु यह उगना भी कक्षना के—यह तो कोचनेकी बात ही नहीं। य क्या नहीं, मौन हो गये। किंतु तो सहस्र उगनामें नगनमर उनके आगमेंद्र नगदान् अरररा शीपिग्रह घन क्षे गता और विद्यामति उनके र्गत्वाणामें लोटने लगे। उगनी उठासे देखे ही सुरनगिरी धारा प्रवर्तित होरर आरामामें दिर्गन दोनी जा रही थी और आर्मी उम लोंगमें जह उम एनांत प्रवासे ही आया था।

‘रिक्षानि! नुहै छोदर मै रह नहीं उठना। किंतु मावधान। इत्यन्धरो त्रिनीमर प्रस्तु न करना, अन्यथा उगना को किंतु नहीं देता पायेगे।’—आशयमें ये अद्व गैंडने रहे और किंतु उन देवाविद्यके न्यानमर उगना हृष्टने लगा।

यानाते लौटे हुए अरने परिता गृहणीने न्यागत सिया। उगनने भी रहन्वानिनीसी बदना की; किंतु अब विद्यामति दूरते थे। एक श्वग माँ उन्हें उगनाके विना चेन नहीं। सेवाके न्यामें भी पर्यात पत्नर था। ‘उगना मेरे न्यामीनी सेवा करता है या मेरे न्यामी उगनासी मतुहार रहते हैं?—

गृहणीके निये यह समस्यासी बन गयी थी और वह अपने नौनरके दश व्यवहारसे पद-पदपर चिढ़ने लगी थी।

‘तवका गता तू अब आ रहा है, कव मैने तुझे मेजा था वह लनेके लिये। वहुत सिर चढ गता है तू।’—एक मोटासा दैधनन चैल लेकर गृहस्तामिनी उगनामर दृढ़ पड़ी।

‘अर्ही, हाय गी अधमे! क्या कर नहीं है? मेरे स्वामी साजन् महादेवको चैलेसे मारेगी तू।’—विद्यामतिने अपनी पलासो दौड़कर घफ़ा दे दिया। किंतु अब उगना तो अन्तर्दित हो चुका था।

विद्यामति विश्वित होकर न जाने कितने दिन पुनराते गे—

उगना रे मोर ज्ञेष गेला ।
ज्ञेष गेला निव कौद्धु भेला ॥
मैंग नहि बहुआ रमि वैसलाह ।
जहि देहि अनि देल, हैस उत्तलाह ॥
जे मोर छहता डाना यदेस ।
ताहि देवओ फर कैगना कैम ॥
नडन बनम भेटल महेस ।
गंति मन हरजिन भेटल क्लेस ॥
विद्यापति मन उगना सो काज ।
नहि हितकर मेर विभुक्त राज ॥

गृह-कलह रोकनेके लिये आत्मोत्सर्ग

राजगूतोंमें विजयादव्यमीके दिन आगेट करनेकी प्रथा चन्द्री आ रही है। मेवाइके गणा प्रताप तथा उनके छोटे भाई शक्तिह मैनिरोंने साथ इस तिदिनो आगेटके लिये निकले थे। दोनों भाइं साथ ही प्राप्तेट रह रहे थे। सयोगवद्या एक मृग दोनोंकी दृष्टिमें एक ताप पड़ा। दोनोंने उत्तर साथ ही वाग चलाया।

मृग तो आजोंके आवातसे मर गता, किंतु एक विवाद उठ खड़ा हुआ कि मृग भग किसके वाणसे। राणा कह रहे थे—‘मेरे वागसे वह भरा।’ शक्तिह उह रहे थे—‘मेरे मैने भरा है।’ यह दोनोंसी बात इतनी बढ़ गयी कि दोनों भाइयोंने तल्वार चौंच ली। दोनोंमें युद्ध छिड़ गता।

‘ठहरो! युद्ध बंद करो।’ राजपुरोहितने दूरसे ही दोनोंको पुनरातर रोका और दौड़े हुए बहों आये। दोनोंनो

उन्होंने समझाया—‘ऐश्व इस समय सकटमें है। विद्यमियोंके आजमण आने दिन होते ही रहते हैं। ऐसे समय वह कैसी नूरता है कि मेवाइकी आशाके दो आधार परस्तर ही लड़ मरनेको उद्यत है।’

आह्वाने राणाको समझाया कि शक्तिहको बालक सुमझकर उसीको विजयी मान लें। शक्तिहको समझाया कि वे ही वडे भाईका सम्मान करें। दोनोंको शपथें दीं, किंतु दोधमे अच्छे विचारवान् भी विवेकशून्य हो जाते हैं। दोनों भाइयोंमें कोई छुकनेको प्रत्युत नहीं था।

कोई उपाय नहीं रहा, तब राजपुरोहित नगी तलवार लिये परस्तर आवातको उद्यत दोनों भाइयोंके बीचमें खड़े-खड़े गोले—‘यदि रक्तपानके विना तुम्हारा क्रोबल्पी पिशाच

शान्त नहीं होता तो वह ब्राह्मणका रक्त-पान करे। मैंने मेवाड़का अन्न खाया है, मेवाड़की मिट्टीसे वह अरीर बना है, मैं मेवाड़को गृह-कलहसे नष्ट होते नहीं देख सकता।'

ब्राह्मणने कठार निकालकर अपनी छातीमें मार ली। दोनों भाइयोंके बीचमें उनका शरीर भूमिपर गिर पड़ा। दोनों भाइयोंके मस्तक लजासे झुक गये।—न३० सिं०

स्वामिभक्ति

मारवाड़—जोधपुरके अधिनिति जसवतसिंहके स्वर्गवासके बाद दिल्लीनगर औरगजेवने महारानीके पुत्र अजीतसिंहका उत्तराधिकार अस्वीकार कर दिया। उसने जसवतसिंहके दीवान आशकरणके बीर पुत्र दुर्गादासको आठ हजार स्वर्ण-मुद्राओंका उत्कृच प्रदानकर अल्पवयस्क राजकुमार और उसकी माताकी रक्षासे विमुख करना चाहा, पर दुर्गादास वशमेन आ सके। औरगजेवने अपने राजमहलमें ही अजीतसिंहके पालन-पोषणका आश्वासन दिया, पर राजमूतोने उसका विश्वास नहीं किया। दुर्गादासने राजकुमारकी प्राण-रक्षा की और जवतक वह राजकार्य संभालनेके योग्य नहीं हो सका, तबतक उसको इधर-उधर छिपाते रहे। दुर्गादासकी स्वामिभक्ति तथा वीरतासे अजीतसिंहने मारवाड़का अधिपत्य प्राप्त किया।

X X X

‘आपने बचपनमें मेरी बड़ी ताइना की है। आपने मेरा अभिभावक बनकर मुझे जितना दुःख दिया, उसे सोचने-पर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। क्या आप जानते नहीं थे कि मैं एक दिन मारवाड़के राजसिंहासनपर बैठूंगा? कठोर वर्तमानके लिये मैं आपको कड़ेसे-कड़ा दण्ड प्रदान करता हूँ।’ अजीतसिंहके इस कथनसे समस्त राजसभा चिसित थी। हृष्ट दुर्गादासके चेहरेपर तनिक भी शिकन नहीं थी। उनका मौन प्रकट कर रहा था कि वे स्वामीकी आज्ञासे प्रसन्न हैं।

‘आप एक मिट्टीका टूटा-फूटा करवा लेकर जोधपुरकी गलियोंमें भिजान लीजिये। इतना दण्ड पर्याप्त है।’ अजीतसिंहका आदेश था।

दुर्गादासने अपने नरेशका अभिभावन किया और राज-

दण्डको कार्यरूप प्रदान करनेके लिये राजसभासे बाहर निकल गये।

X X X

एक दिन महाराजा अजीतसिंह घोड़ेकी पीटपर सवार होकर राजप्रासादकी ही ओर जा रहे थे। उनके साथ अनेक सेवक थे। वे राजसी ठाटमें थे। महाराजाने सहसा घोड़ेकी रास रोक ली राजपथपर। दुर्गादास एक धनीके मकानके सामने खड़े थे। हाथमें वही फूटा मिट्टीका करवा था, तनपर फटे बल्ल थे, चेहरेपर छुरियों थीं, पर ऑखरमें विचित्र तेज था।

‘आप प्रसन्न तो हैं?’ महाराजाका प्रश्न था।

‘मेरी प्रसन्नताकी भी कोई सीमा है क्या? आपकी राजधानीमें सब-के-सब समृद्ध है, सोने-चाँदीके पात्रमें भोजन करते हैं। अच्छे-अच्छे कपड़े पहनते हैं। केवल मैं बिना घरका हूँ; कभी भोजन मिलता है, कभी फॉका करना पड़ता है। केवल करवा ही मेरी एकमात्र सम्पत्ति है। यदि मैंने आपको कड़ाईसे न रक्खा होता, आपमें अनेक शिथिलताएँ आने देता, तो मैं भी आज इन्हीं लोगोंकी तरह सुखी रहता और ये लोग एक अन्यायी जासकके राज्यमें दरिद्र हो जाते।’ दुर्गादासने अजीतसिंहको ग्रेमभरी दृष्टिसे देखा। वे प्रसन्न थे।

महाराजा घोड़ेपरसे कूद पड़े। उन्होंने दुर्गादासका आलिङ्गन किया। ऑखरोंसे सावन-भादों वरस रहे थे दोनोंकी।

‘मैं आपकी स्वामिभक्तिकी परीक्षा ले रहा था, इसीलिये दण्डका स्वॉग किया था। आप तो मेरे पिताके समान हैं।’ महाराजाने अपने अभिभावकके साथ पैदल चलकर राजप्रासाद-में प्रवेश किया।—रा० श्री०

आतिथ्य-निर्वाह

मारवाड़के ही नहीं, समग्र भारतीय इतिहासमें दुर्गादास एटौड़ीका नाम अमर है। जिस समय औरगजेवकी सारी कुचेष्ठाओंको विफलकर वे कुमार अजीतसिंहकी रक्षामें तत्पर थे, दिल्लीक्ष्यरने अपने पुत्र आजम और अकवरकी अव्यक्षता-

में मेवाड़ और मारवाड़को जीतनेके लिये महती सेना भेजी। अकवर दुर्गादासके शिष्ट व्यवहार और सौजन्यसे प्रभावित होकर उनसे मिल गया। औरगजेवको वह बात अच्छी नहीं लगी, वह हाथ घोकर दोनोंके पीछे पड़ गया। अकवर

ईरुन चल गया। दिल्लीश्वरसे जब यह पता चल कि अकब्रके पुत्र बुलंद अख्तर और पुत्री उफायतुनिशा जोवपुरमें ही हैं तो उन्हें दिल्ली लानेके लिये उसने इंश्वरदास नागरको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा। दुर्गादासने दोनोंको इस बातपर लौटाना स्वीकार कर लिया कि औरगजेव जोधपुरके राजसिंहासननर जसवतिंहने पुत्र अजीतसिंहना आधिपत्य स्वीकार कर ले। वे उफायतुनिशाजो साथ लेकर दरवारमें उपस्थित हुए; पर बुलंद अख्तरको जोवपुरमें ही रखता, जिससे औरगजेव उन्हें शिवाजी महाराजकी ही तह घोस्ता न दे सके।

X X X

‘वेटी। तुमने अपने जीवनको विद्महकि संखणमें विताया है। तुम्हें हमारे धर्मका तनिक भी ज्ञान नहीं है। इत्यलिये तुम्हें तुरत कुरुनके पाठमें ल्पा जाना चाहिये।’ औरगजेवने अपनी सोलह सालकी पौत्रीको समझाया वह ग्रहापुरीके शिविरमें था।

‘यह आप क्या कह रहे हैं, वडे अब्बा? सम्माननीय दुर्गादासने केवल पुत्रीनी तगह मेरा लालन-पालन ही नहीं किया, स्वामिमानी राजपूत सरदारने मुझे कुरुनका पाठ

पढ़ानेने लिये एक मुस्तिल्लम मीहिला भी नियुक्त कर दी थी। मुझे साह-का-सारा कुरान कष्ट है। विश्वास न हो तो इंश्वरदास नागरसे ही पृथ्वी लंजिये।’

‘वाह! क्या बटिया बात तुनायी तुमने। इन हिंदुओंकी धार्मिक सहिष्णुता तो इन्होंकी मौलिक सम्पत्ति है। अतिथ्यका भर्म क्वोड इनसे सीखे।’ औरगजेवका भस्तक आदरसे विनत हो गया।

‘वह तो हमारा कर्तव्य था, दिल्लीश्वर। समस्त प्राणिमात्र परमात्माकी संतान हैं। सरे धर्मोंमें परमात्माकी ही सत्ता—सत्यकी महिमाका ही वर्णन है। हमारा वैर दिल्लीके राजसिंहासनके अन्यायी अधिगतिसे है, औरगजेव और उसकी पौत्रीसे द्वेष ही नहीं है।’ दुर्गादासने शिविरमें प्रवेश करके दिल्लीश्वरको अपने कथनसे मुख्य कर लिया।

‘आप देवता हैं, दुर्गादास! अतिथिका सम्मान करने-बाला परमात्माका प्यारा होता है।’ औरगजेवने वीर राठोड़को सम्मानपूर्ण स्थाननर आसन प्रदान किया। अजीतसिंह जोवपुरके महाराज मान लिये गये। दुर्गादासने आदरपूर्वक बुलंद अख्तरको दिल्ली भेज दिया।—रा० श्री०

परमात्मा सर्वव्यापक है

गुरु नानकदेवजी यात्रा करते हुए कराची, विलोनिस्तान-के स्थलमार्गसे मझा पहुँच गये थे। जब यात्रि हुई, तब वे कावाकी पन्निकामें कावाकी और ही पैर करके सो रहे। सबैरे नौलियोंने उन्हें इस प्रकार सोते देखा तो कोइसे लाल होकर छाँटा—‘तू कौन है? खुदाके घरकी और पैर पसारे पड़ा है, तुझे शरम नहीं आती?’

गुरुने आँखें खोले और धीरेसे कहा—‘मैं तो यक्काहारा मुसाफिर हूँ। जिवर खुदाका घर न हो, उघर मेरे पैर मेहरवानी करके कर दीजिये।’

मौलिकी लोगोंको और कोब आया। उनमें एकने गुरु नानकका पैर पकड़कर झटकेसे एक और सोचा, किन्तु उसने देखा कि गुरुके पैर जिवर हटाता है, कावा तो उघर ही दीख पड़ता है। अब तो वे लोग उन महान् सतके चरणोंपर गिर पड़े।

गुरु नानकदेवने उन्हें समझाया—‘परमात्मा सर्वव्यापक है। उसका घर कियी एक ही स्थानमें है, यह मानना अज्ञान है।’—द्वा० निं०

गरीबके दानकी महिमा

गुजरातकी प्रसिद्ध राजमाता मीणलडेवी वडी उदार थी। वह सबा करोड़ सोनेकी मोहरें लेकर सोमनाथजीका दर्शन करने गयी। वहाँ जाकर उसने स्वर्ण-तुलादान आदि किये। माताकी यात्राके पुण्य-प्रसङ्गमें पुत्र राजा तिद्रहजने प्रजाको लाखों रुपयेका लगान माफ कर दिया। इससे मीणलडेवीके मनमें अभिमान आ गया कि मेरे समान दान करने-

वाली जगतमें दूसरी कौन होगी। राजिको भगवान् सोमनाथजीने त्वंप्रमें कहा—‘मेरे मन्दिरमें एक बहुत गरीब लड़ी यात्रा करने आयी है, तू उससे उसका पुण्य माँग।’

सबैरे मीणलडेवीने सोचा, ‘इसमें कौनसी वडी वात है। दपये देकर पुण्य ले लैंगी।’ राजमाताने गरीब लड़ीकी लोजमें आदमी भेजे। वे यात्रामें आयी हुई एक गरीब

ब्राह्मणीको ले आये । राजमाताने उससे कहा—‘अपना पुण्य मुझे दे दे और बदलेमें तेरी इच्छा हो, उतना धन ले ले ।’ उसने किसी तरह भी स्वीकार नहीं किया । तब राजमाताने कहा—‘तूने ऐसा क्या पुण्य किया है, मुझे बता तो सही ।’

ब्राह्मणीने कहा—‘मैं घरसे निकलकर सैकड़ों गाँवोंमें भीख मँगती हुई यहाँतक पहुँची हूँ । कल तीर्थका उपवास था । आज किसी पुण्यात्माने मुझे जैसा-तैसा थोड़ा-सा विना नमकका सत्तू दिया । उसके आधे हिस्सेसे मैंने भगवान् सोमेश्वरकी पूजा की । आधेमेंसे आधा एक अतिथिको दिया और शेष बचे हुएसे मैंने पारण किया । मेरा पुण्य ही क्या है । आप बड़ी पुण्यवती हैं; आपके पिता, भाई, स्वामी और पुत्र—सभी राजा हैं । यात्राकी खुशीमें आपने प्रजाका ल्यान माफ करवा दिया । सबा करोड़ मोहरोंसे गकरकी

पूजा की । इतना पुण्य कमानेवाली आप मेरा अल्प-सा दीखनेवाला पुण्य क्यों मँग रही हैं ? मुक्षपर कोप न करें तो मैं निवेदन करूँ ।’

राजमाताने क्रोध न करनेका विश्वास दिलया । तब ब्राह्मणीने कहा—‘सच पूछे तो मेरा पुण्य आपके पुण्यसे बहुत बढ़ा हुआ है । इसीसे मैंने रूपयोंके बदलेमें इसे नहीं दिया । देखिये—१. बहुत सम्पत्ति होनेपर भी नियमोका पालन करना, २. शक्ति होनेपर भी सहन करना, ३. जवान उम्रमें ब्रतोंको निवाहना और ४. दरिद्र होकर भी दान करना—ये चार बातें थोड़ी होनेपर भी इनसे बड़ा लाभ हुआ करता है ।’

ब्राह्मणीकी इन बातोंसे राजमाता भीणलटेवीका अभिमान नष्ट हो गया । शकरजीने कृपा करके ही ब्राह्मणीको भेजा था ।

‘अंत न होइ कोई आपना’

सबारने एँड़ लगायी और घोड़ा रक गया भैसावा ग्रामकी सीमापर ।

‘समुद्दि लेओ रे मना भाई ।

अंत न होइ कोई आपना ॥’

महात्मा ब्रह्मगिरिके गिर्ध्य साधु मनरगीर बड़ी मस्तीसे यह पद गा रहे थे । ‘…… सबारने घोड़ा रोक दिया, हृदयमें सतके गब्द-न्याण लग चुके थे, इसलिये विकलता बढ़ती जा रही थी ।

‘महाराज ! आप अपने चरणोंमें मुझे स्थान दीजिये । आपके गब्दामृतसे मुझे नया जीवन मिल गया । मेरा कल्याण हो गया ।’ सबारने घोड़ेसे उत्तरकर अस्यन्त श्रद्धापूर्वक महात्मा मनरगीरके चरणोंमें माथा टेक दिया ।

शेरको अहिंसक भक्त बनाया !

गडमण्डलके राजा पीपाजी राजकाज छोड़ रामानन्द स्वामीके बिष्णु बने और उनकी आजासे द्वारकामें हरिदर्शनार्थ गये । दर्शन करके अपनी पत्नीसहित लौट रहे थे कि रास्तेमें उन्हें एक महाव्याघ मिला ।

रानी शेरको देर पकातर हो उठी । राजाने उसे समझाया—‘अरी ! घवराती क्यों है । गुरुदेवने सर्वत्र हरिरूप देखनेका

‘अब मुझसे हरकरेका काम नहीं हो सकता, चाहे भामगढ़के राव साहव प्रसन्न हों या अप्रसन्न । मैं भगवान्के भजनामृतका त्याग करके सासारिक प्रपञ्चका विष नहीं पी सकता ।’ सबारके उद्गार थे ।

‘सिंगाजी ! वास्तवमें आपने सतका हृदय पाया है । आप धन्य हैं ।’ महात्मा मनरगीरने सिंगाजीके त्यागकी प्रशंसा की । वे मध्यप्रदेशके नीमाड़ मण्डलमें भामगढ़के राव साहव की ढाक ले जाया करते थे । उनका वेतन एक रुपया था । सिंगाजीने राव साहवकी नौकरी छोड़ दी और साधु मनरगीरकी कृपासे पीपात्याके जगलमें कुटी बनाकर भगवान्के भजनमें तल्लीन हो गये । उन्होंने अनेक पद रचे । सत सिंगाजी तुलसीदासके समकालीन थे ।—रा० श्री०

जो उपदेश दिया था, वह भूल गयी ? मुझे तो इसमें हरिरूप ही दीख रहा है । और हरिसे भय कैसा ।’

रानी कुछ आश्रस्त हुई । राजाने गलेसे तुलसी-माला निकाल व्याघके गलेमें ढाल दी और उसे एक कृष्ण-मन्त्रका उपदेश देते हुए कहा—‘मृगेन्द्र ! इसे जपो, इसीके प्रतापसे वाल्मीकि, अजामिल, गजेन्द्र—सभी तर गये ।’

राजार्जी निशा और नर्वन देवदृष्टि गेत्यर भी ऋग रह गयी। उसने हाथ जोड़ा और वह जरुर करने लगा। पीपाजी वहाँ से चले गये।

मात्र दिनतरु ऐर जगत्में धूमता, मास स्यागर सूरे

पत्ते चगाता हरिजन फरता रहा। अन्तमें उसने हरि-भजन फरते हुए प्राण त्यागा। दूसरे जन्ममें वही जूनागढ़का परम हरिभक्त नरसी मेहता बना। गो० न० वै०

(भक्तिविजय, अध्याय २६)

संसारसे सावधान !

चर्याजी पतना सुपुत्र नारायण वन्यवनस्पे ही विक्कन्ता रहा, तप और जानार्जनमें ही उत्तमा वन्यवन चीता। माँ पुनरधूमा भूमि देवनेके लिये उत्तापनी हो गही थी। यासिर पितामें वह योग पुश्या ही दिया।

बाहर वर्षना निशोर नारायण वरातियोंकी भीड़में धूम-धाम और जाजे-गाजेके माथ निजात मण्डपमें पहुँचा। ब्राह्मणोंने अन्त पट लगाया। एक ओर वधु हाथमें सौभाग्य-गाल लेकर अमण्ड सौभाग्यरे लिये गोरीरो मना गही थी तो दूसरी ओर वरगज प्रात ज्ञानके आधानपर प्रपञ्चसे साम्यान

रहनेका चिन्तन कर रहे थे। आजार्जी ही देर थी।

मङ्गलाष्टक शुरू हुए। ब्राह्मणोंने 'शुभ मङ्गल, सावधान !' कहा। 'संसारकी दु सप्रद वेदी तुम्हारे पैरोंमें पड़ने जा रही है, इसलिये सावधान !' नारायणको यह अर्थ समझते देर न लगी। 'प्रदावाक्य जनर्दन ' नारायण तत्काल उठकर भाग निकला।

बाहर वर्ष कठोर तप और फिर अखिल भारतके तीर्थोंकी यात्रा करता, प्रपञ्चमें परमार्थ-माध्यनाके साथ सावधानताका उपदेश देता वह साधु अपने इष्ट-देवकी कृपासे 'रामदास' और फिर 'समर्थ' बन गया। गो० न० वै० (साधुसत्ताच्या गोटी, प्रथम भाग)

जो तोकौं काँटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल !

समर्थ रामदाम शिष्योंके साथ शिवाजी महाराजके पास जा रहे थे। राम्तेमें ईरका खेत पड़ा। शिष्योंने गने तोड़तोड़कर चूप लिये। खेतमा मालिक दीदा। उसे देखकर शिष्य भाग गये। रेवल समर्थ ही एक पेड़के नीचे रैठे थे। मालिकने सोचा—'भी गोकार्णने हमारे गने तुड़वाये हैं। उसने उन्हें घूम पीया और वहोसे भगा दिया। धोरेत्रीके समान अन्तरमें अपार धमा आन्ति रसनेवाले समर्थने चूँतक नहीं किया।'

वे शिवाजी महाराजके पास पहुँचे। समर्थकी पीठपर कोइंके धाव देख उन्होंने जाँच करवायी। ईरका मालिक गिरफ्तारकर उनके सामने लाया गया। शिवाने पूछा— 'गुरो ! इसे क्या दण्ड दूँ ?'

समर्थने सारा दोप अपने ऊपर ले लिया और शिवाजी महाराजसे उसे क्षमा कर देनेके लिये कहा। इतना ही नहीं, उन्होंने ईरका वह खेत उसे इनाममें दिलवा दिया। गो० न० वै०

(साधुसत्ताच्या गोटी, भाग १)

अम्बादासका कल्याण

(लेखक—श्रीशुत मा० पराढे)

इन श्रीकल्याणजीका पहल नाम था—अम्बादास। छोटी उम्रमें ही इनका गुरु श्रीसत रामदासजीसे सम्बन्ध हो गया था। गुरुजीने देखा कि यह तो पका हुआ फल ही है। अत उन्होंने इनको अपने साथ ही सेवामें रहनेकी अनुमति दे दी। तबसे ये एकाग्रचित्त होकर अपने गुरुजी सेवामें रहे।

अम्बादासकी तपस्या पूरी हुई, परतु अभीतक उन्हें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन नहीं हुए। वे इसके लिये

परम व्याकुल हो उठे। श्रीरामदासजीने भी देखा कि इसकी सेवा पूर्ण हो चुकी है, अत अब यह भगवान्के शुभ दर्शनका पात्र हो गया है।

एक दिन श्रीरामदासजी सहज ही शिष्योंके साथ एक बड़े कुर्लेके समीप एक वृक्षके नीचे आराम कर रहे थे। उस वृक्षकी एक शाखा विलकुल कुर्लेके ऊपरका पहुँच गयी थी। रामदासजीने सोचा कि 'यह मध्याह्नका समय है। इसी

समय प्रभु श्रीगमचन्द्रका प्राकृत्य (अवनार) हुआ था। और यह समय अपने गिर्य अम्बादासके सौभाग्योदय होनेके बोग्य भी है। माय ही इर्मा समय गुरुके अब्दोंपर अम्बादासजी कितनी श्रद्धा तथा विश्वास है, इसकी भी परीक्षा हो जायगी।

गुरुजी श्रीगमदासजीने महज भावसे अम्बादासको पास उल्लासा। सुझे गुरुजीने बुलाया है, इसी बातसे अम्बादासको महान् आनन्द हुआ। बृहकी उस कुएँपर पहुँची हुई आखाको अद्भुतिसे दिखाकर गमदासजी बोले—‘अम्बादास। तुम उस ढार्यतक जा मकोगे।’ तत्परतासे अम्बादासने उत्तर दिया—‘हूँ जी। सहज ही जा सकूँगा।’

‘तो फिर ऐसा क्यों, करौत साय ले जाओ। उम आखापर जाकर उसे काट डालो।’ गुरुजीने आज्ञा दी।

आजाको ही अनुग्रह माननेवाले अम्बादासने ‘जी, अभी गया’ कहकर अपनी धोतीको अच्छी तरहसे बांधकर पेझपर चढ़नेकी तैयारी की। वे चढ़ ही रहे थे कि गुरुजीने फिर कहा—‘टेक्को, अच्छी तरह काटना। परंतु एक काम करना, शाखाके अगले भागकी ओर पीठ करके आखापर खड़े होकर शाखाको अपने सामनेसे काटना।’

सब गिर्य तो यह सुनकर देखते ही रह गये। इस आजाके अनुभाव काटनेपर तो अम्बादास भी आखाके साथ ही कुएँमें गिरेंगे। इसका कुछ भी विचार गुरुजीने नहीं किया।

परंतु अम्बादासके मनमें कोई दूसरा विचार ही नहीं आया। ‘जो आजा’ कहकर वह जीव ही उस आखातक पहुँच गया। और जैसे गुरुजीने कहा था, उसी तरह आखाके अगले भागपर खड़े होकर उसे काटना आरम्भ किया। उसके मनमें सठेह उत्पन्न करनेके लिये गमदासजी बोले—‘मूढ़। यों काटोगे तो तुम स्वयं गिर जाओगे। कुएँमें पड़कर छूओगे।’

अम्बादासने उसी जगहसे प्रणाम करके विनयपूर्वक कहा—‘गुरुदेव। आजाका पालन करते समय मुझे कुछ भी नहीं हो सकता। जब आपकी कृपासे में संसार-सागरमें ही तर जाऊँगा, तब इस जगहसे कुएँकी तो बात ही क्या है।’

‘ठीक है।’ गुरुजीने मतोपसे कहा—‘इतनी श्रद्धा है तो जरूर काटो।’

अम्बादासने आखाको आधा काटा होगा कि वह दूटकर वड़ी आवाजके साथ अम्बादासके सहित कुएँमें गिर-

पड़ी। शिव-मण्डली कॉपकर हाहाकार कर उठी। श्रीराम-दासजीने सबको वहाँ चुपचाप बैठे रहनेजी आज्ञा दी। व्ययित-चित्तसे सब वहाँ बैठ गये। वे तरह-तरहकी कल्पना करने लगे कि ‘जलमें डवकर अम्बादासका देहान्त तो नहीं हो गया होगा।’ दूतने वडे कुएँमें तो गिरनेकी आगङ्कासे ही आदमी मग जाता है और अम्बादास तो प्रत्यक्ष गिरा है।’ गिरते समय मारे भयके उसकी चेतना छुत हो गयी होगी। तभी कोई आवाज नहीं आयी। देखें, अब उसकी आवाज आयेगी।’ परंतु समर्थ श्रीरामदासजी तो वडी आन्तिसे पहली बाते आगे चलाने लगे, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

अम्बादास सीधा कुएँके बीचमें गिरा। न मालूम शाखा और करौत कहो गयी। जलमें गिरते समय उसने अपने गुरुका और प्रभु श्रीगमचन्द्रजीका स्मरण किया। एक बार जलसे ऊपर आकर ऑखे सोलीं तो देखा कि जिनके पुण्य तथा दुर्लभ दर्शनके लिये अनेकों साधकोंने अपने प्राण-मन अर्पण कर दिये, जिनके लिये वह स्वयं वडी आतुरता तथा अधीरतासे प्रतीक्षा कर रहा था, वे ही भास्कर-कुल-दिवाकर रघुवंशिरोमणि सच्चिदानन्दधनविग्रह भगवान् श्रीरामचन्द्र उसके सामने मन्द-मन्द मुसकराते हुए खड़े हैं। पता नहीं, जल कहो चला गया। निर्निमेष नेत्रोंसे टकटकी ल्पाये अम्बादास देखता ही रहा। अत्यन्त तेजःपुल्ल शरीरसे मधुर-मधुर दिव्य सुगन्ध निकलकर मनको मुख कर रही थी। अति सुन्दर श्यामसुन्दर शरीर था। प्रभुके एक हाथमें बाण और दूसरेमें बनुप था। मस्तकपर अति प्रखर सुवर्ण-मुकुटसे विखरे हुए बाल बाहर निकलकर कबोतक फैले हुए थे। सुन्दर पीताम्बर फहरा रहा था।

बस, अम्बादास सित-मुख्य होकर देखता ही रह गया। उसके नेत्रोंसे प्रेमानन्दके ओसू बहने लगे। तदनन्तर बाह्य चेतना आनेपर वह प्रभुके चरणोंपर गिर गया। उसका जीवन कृतार्थ हो गया। एकमात्र दिव्य सुखानुभूतिके अतिरिक्त कोई भी सवेदना उसके मनमें उस समय नहीं रह गयी। हाथमें और सिरमें समीप सटे हुए भगवान्के कोमल चरण-कमल और सिरपर प्रभुका वरद हस्त। इसके अतिरिक्त सारा जगत् उसके लिये विस्मृत अयवा विलुप्त हो गया। वह अनन्त सुखमागरमें निमग्न हो गया।

ऊपर बृक्षके नीचे बैठे हुए गिर्याने देखा कि वहुत देर हो गयी है और स्वामीजी उसी पूर्वप्रसङ्गको शान्तिपूर्वक चला रहे हैं। तब अबीर होकर एक शिव्यने हाथ जोड़कर विनती की—‘महाराज। जगतक हम अम्बादासको नहीं

निकल नेत्रे, ददक हैं उल्ल किंवी मी ददक इन नहीं
हो नहा है। हाँ कर्त्त आज देहमें उसे देखे।” दुर्गरुदे
दुर्ग भास्तव्य उत्तरे वही स्टेट्टेट्ट तुम्हा—ज्यों कल बात
कैप्पे व्य हो नहा है।

सब अन्य दाता वही हैं जो दूर करते हैं। दूर करने वालों की ओर देख। इसी दौलत प्रदान अन्यतर नहीं हो सके। अन्य दातों वही हैं जो दाता बनाते हैं उन दिव्य—इनमें कृष्ण ही प्रभु कल्पना है, मात्र ही! वह वासन्तरूप है।

मिन्ह एवं उनके हुए हैं वाहर निश्चलकर अन्दाजापत्र में
दसर्य अंतर्गत अनुचित है तभी, इनके स्थिति। आनन्द तथा प्रसरण
व्याकुण्ठ के उनके चारों ओर बोला हुआ खेलकित व्यापर और
गहड़ वारी के छह बोल — धनवधू। उनके में व्यापार
जब दिया है वो कहते कहते उसकी वारी दक गयी। दूसरे
दियों उनके अनुचित अन्दाजापत्र में यह उनके दैर्घ्य लगाया।

दर्दने वे अल्प दाढ़का नाम प्रत्यय हुआ। अंगत
गम्भीर हुने वे उपाय जैसे जाते हैं।

अहंकार नाश

(ଶିକ୍ଷାଗାନ୍ଧି ମୁଦ୍ରଣ ପରିଷଦ୍)

किंव गद्यादारं द्वयन्वर द्वया तान् । ते व्यन्देत्तन्त
द्वयोऽग्ने कर्ता लक्ष्मी व अभिनन्दन इव प्रवेश ग इति
है तद उत्तरे जग्म द्वेत्तिवार्ता उल्लिख वाह तो दूर रथ
किये हुए जनेर भी वर्णन व्यन्देत्तन्त विन्द्य नहीं ल्याता । तर
यदि उत्तरे द्वयात्मन् द्वन्द्व चर दिना गता तो वह यद्यपि
पिन्दरत् द्वयुं ही इत्ताहै । इन प्रकार की अनेक कथाएँ इन्हें
ही इत्तलम्पुण्यादित्तें हैं । अमी केवल २५० वर्द पूर्वी एक
द्वयोऽग्ने इत्त प्रकार हैं ।

दहुन बड़ा जारी चल रहा है इन्होंने हुई किसी नी जकर
देखें। उसीसे चल आता। वह वह विवर 'इस स्थानका
मानोदृश और उन्हें लीवॉश गठन हुआ ही करण हो
रहा है।' सद्युद्धे श्रीमुखद्वय यह उनकर श्रीसिवानी म्भागम-
को अपनी वन्यजा प्रवीत हुई और उन्होंने कहा—'यह सब
उन सद्युद्धे श्रीरामचंद्रा एक है।'

हिंदूम्ब उन्नतस्त्रक श्रीगिराजे नहायजने सहुर
थेसमयं नलदाट स्वामी नद्यापन्ना दत्त उम्भर्य और उन्नता
चिंग हुआ रहितार्थ अलौकिक है। उद्युक्ते द्वारा निर्दिष्ट
भाग का दालुला दर्शक श्रीगिराजे नद्यापन्ना श्रीगिराजे
नहायजने कर्त दिके लित लिने। उत्तर उन्नत तिन्होंना बड़ा
महत्व था। इलिन्दे जीवे हुए जिन्होंने ठंक करवलेका
एवं नने किलोके लिन्हां न आर्द तड़ा चला रहा था
और इह कार्यमें हड्डी नन्हूँ सबु लो हने थे। उन्नत द
नालक तिन्होंका लिन्हां हो नहा था एक दिन उद्युक्त
उन्हें किंतु श्रीगिराजे नहाय- बहाँ गने। वहाँ बहुत सक्त
श्रीगिराजे कार्य करते हेक्क उन्हें नन्हैं एक ऐसी अकंक-
भरी नवनाला अकुर उल्लल हो अब जि मेरे बारा ही
इतने उड्डेका उद्युक्तिवाह कल नहा है। इर्द विकासमें
वे तटर बूँ रहे थे। उन्नद्यार्थ उद्युक्त श्रीगिराजे दत्त
बद्धो लन गदे लौर ज्य ज्य रुद्धर समय की रट
लाचे हुए अक्षलाल न जाने कहाँ चर्हाँ अ रहुचे। उन्हें
देखते ही श्रीगिराजे नहायजने आगे उठक डाव्हर-गाम
किया और पृष्ठा उद्युक्तका उन्नगमन कहाँचे हुआ ?
ईचर श्रीगिराजे बोले—सिवदा ! मैंने तुना कि नहौं तुम्हर

इन प्रकार बासवीत वर्ते हुए के किन्हें नीचे लहो
मानिनांका जर्न हो गह या ला पहुँचे। नगरे दले
हुए भागमें एक विद्युत छिल अर्क वैज्ञा ही पड़ी थी। उसे
देखकर उद्घृतने पूछा—पह छिल यहो विचर्मने व्यों पढ़ी
है? उद्धर लिल—भारका निर्ना हो लगेर हुए तोड़कर
बास्तें ले लिया जाया। अल्पज्ञुर दोचे—नहीं, नहीं
कानको हाथों हाथ ही कर डाढ़ा चाहिये, अन्यथा जो काम
पीछे नह जाता है वह हो नहीं पाया। अन्य असरपाको
हुलाज्ञ इतने दीचते दो भाग करा दो। तुरंत कार्यपाको
हुलाज्ञ गर और उन्हियने उन दो हुक्में न दिये गये।
मुदोले देखा कि चिलके अंदर एक भागमें उल्लंघिता
गहर एक गड्ढा था जिसमें वर्षा जल भग या और उत्तरै
एक मैदाक वैश दुआ था। उसे देखकर श्रीलक्ष्मी दोचे—
‘पह बहु विद्या बन्ध हो तुम’ इन विलक्षण अन्त मी
नुमने जल रखकर इन मैदाको पी। की व्यवस्था कर रखी
है। वह, पर्वत ये इन्हे द्याव श्रीविद्यालक्ष्मीके लिये।
उनके चिन्हमें प्रत्यक्ष हुआ। उन्हे असने अहकाङ्का पता
लग गया और रक्त लगने ही इन्हे लोगोंके देट मैं मरता
हूँ—इस अनिनाननीति का तुरंत नाश हो गया। उन्होंने
तुरंत श्रीलक्ष्मीके चरा नह छिये और असरके स्वी
छन्याचन्या की।

कुर्तेको भी न्याय (रामराज्यकी महिमा)

अङ्गिष्ठकर्मा राजराजेन्द्र, राघवेन्द्र श्रीरामसद्की राजसमा इन्द्र, यम और वरुणकी समाके समकक्ष थी। उनके राज्यमें किसीको आविन्याधि या किसी प्रकारकी भी वाधा थी ही नहीं। तथापि एक दिन श्रीलक्ष्मणको प्रभुने आज्ञा दी कि देखो बाहर कोई व्यवहारी या ग्रार्थी तोउपस्थित नहीं है। कोई हो तो उसे बुलाओ, उसकी वात सुनी जाय। एक बार लक्ष्मणजी छौट गये और कहा कि 'दरवाजेपर कोई भी उपस्थित नहीं है।' प्रभुने कहा—'नहीं, तुम ध्यानसे देखो, वहाँ जो कोई भी हो उसे तत्परतापूर्वक बुला लाओ।' इस बार जब लक्ष्मणजीने देखा तो मनुष्य तो कोई दरवाजेपर था नहीं, पर एक श्वान वहाँ अवश्य खड़ा था, जो बार-बार दुःखित होकर रो रहा था। जब लक्ष्मणजीने उससे भीतर चलनेको कहा तो उसने बतलाया कि 'हमलोग अधम योनिमें उत्पन्न हुए हैं और राजा साक्षात् धर्मका विग्रह ही होता है, अतएव महाराज ! मैं राजदरवारमें प्रवेश कैसे करूँ ?'

अन्तमे लक्ष्मणजीने भगवान्से पुनः आज्ञा लेकर उसकी प्रभुके पास पेशी करायी। भगवान्ने देखा तो उसके मस्तकमें छोट लगी हुई थी। भगवान्ने उसे अभयदान देकर पूछा—'बतलाओ, तुम्हें क्या कष्ट है, निडर होकर बतलाओ, मैं तुम्हारा कार्य तत्काल सम्पन्न कर देता हूँ।'

कुर्ता बोला—'नाय ! मैंने किसी प्रकारका अपराध नहीं किया तो भी सर्वार्थसिद्धि नामक भिक्षुने मेरे मस्तकपर प्रहार किया है। मैं इसीका न्याय कराने श्रीमान्के द्वारपर आया हूँ।' भगवान् रामने उस भिक्षुको बुलाकर पूछा—'तुमने किस अपराधके कारण इसके मस्तकपर लाठीका प्रहार कर इसका सिर फोड़ दिया है।'

भिक्षुने कहा—'प्रभो ! मैं क्षुभातुर होकर भिक्षाटनके लिये जा रहा था और यह श्वान त्रियम दृगसे मार्गमि आ गया। भूखसे व्याकुल होनेके कारण मुझे क्रोध आ गया। मेरे अपराधी हूँ, आप कृपापूर्वक मेरा शासन करें।'

इसपर भगवान्ने अपने समासदोंसे न्याय-व्यवस्थानुसार

दण्ड बतलानेको कहा। ब्राह्मण अदण्ड्य होता है अतः समासदोंने कुर्तेको ही प्रमाण माना। कुर्ते भगवान्से कहा कि 'यदि प्रभो ! आप मुझपर ग्रसन हैं और मेरी सम्मति चाहते हैं तो मेरी प्रार्थना है कि इस भिक्षुको कालंजर मठके कुलपति पदपर अभिपिक्त कर दिया जाय।' कुर्तेके इच्छानुसार भिक्षुको मान-दानपूर्वक हाथीपर चढ़ा-कर वहाँ भेज दिया गया। तदनन्तर समासदोंने वडे आश्र्य-पूर्वक श्वानसे पूछा, 'भैया ! यह तो तुमने उस भिक्षुको वर ही दे डाला, शाय नहीं।' कुर्ता बोला—'आपलोगोंको इसका रहस्य विदित नहीं है। मैं भी पूर्वजन्ममें वहाँका कुलपति था। यद्यपि मैं वडा सावधान था और वडा विनीत, शील-सम्पन्न, देव-द्विजकी पूजा करनेवाला, सभी प्राणियोंका हित-चिन्तक तथा देव-द्रव्यका रक्षक था। तथापि कुलपतिलिंगके दोपसे मैं इस दुर्योगिनिको प्राप्त हुआ; फिर यह भिक्षु तो अत्यन्त क्रोधी, असंयमी, वृशंस, मूर्ख तथा अधार्मिक है। ऐसी दशामें वहाँका कुलपतिलिंग इसके लिये वरदान नहीं, अपितु घोर अभिशाप है। किसी भी कल्याणकामी व्यक्तिको मठाधिपतिलिंगको तो मूलकर भी नहीं स्वीकार करना चाहिये। मठाधिपत्य सात पीढ़ियों तकको नरकमें डाल देता है। जिसे नरकमें गिराना चाहे, उसे देवमन्दिरोंका आधिपत्य दे दे। जो ब्रह्मस, देवाश, स्त्रीधन, बालधन अथवा अपने दिये हुए धनका अपहरण करता है, वह सभी इष्ट-मित्रोंके साथ विनाशको प्राप्त होता है। जो मनसे भी इन द्रव्योंपर बुरी दृष्टि रखता है, वह घोर अवीचिमान नामक नरकमें गिरता है। और फिर जो सक्रिय इनका अपहरण करता है उसका तो एक-से-दूसरे नरकोंमें वरावर पतन ही होता चलता है। अतएव मूलकर भी मनुष्य ऐसा आधिपत्य न ले।'

कुर्तेकी वात सुनकर सभी महान् आश्र्यमें झूव गये। वह कुर्ता जिधरसे आया था उधर ही चला गया और काशी आकर प्रायोपवेशनमें वैठ गया।

(वा० रामायण, उत्तरकाण्ड, अध्याय ५९ के वाद प्रक्षिप्तसर्ग अ० १)

सिंहिनीका दूध !

ठत्रपति शिवाजी महाराज समर्थ नुव रामदासन्नामीके एकनिष्ठ भक्त थे । समर्थ भी सभी शिष्योंसे अधिक उन्हें प्यार करते । शिष्योंको भावना हुई कि शिवाजीके राजा होनेके कारण समर्थ उनसे अधिक प्रेम रखते हैं । समर्थने तत्काल उनका सदेह दूर कर दिया ।

समर्थ शिष्यमण्डलके साथ जगलमें गये । सभी रासा भूल गये और समर्थ एक गुफामें जाकर उदरश्यल्का बहाना करके लेट गये ।

इधर शिवाजी महाराज समर्थके दर्ढनार्थ निकले । उन्हें पता चल कि वे इस जंगलमें कहीं हैं । खोजते-खोजते एक गुफाके पास आये । गुफामें पीड़ासे चिह्न शब्द लुनामी पड़ा । भीतर जाकर देखा तो साक्षात् गुरुदेव ही विकल्पासे करवटें बदल रहे हैं । शिवाजीने हाथ जोड़कर उनकी वेदनाका कारण पूछा ।

समर्थने कहा—‘शिवा, भीषण उदरपीड़ासे निकल हूँ ।’
‘महाराज । इसकी दवा ?’

‘शिवा । इसकी कोई दवा नहीं, रोग अत्यन्त है । हाँ,
एक ही दवा काम कर सकती है, पर जाने दो ।’

‘नहीं, गुरुदेव । नि सकोच वत्तायें, शिवा गुरुको सत्य
किये विना चैन नहीं ले सकता ।’

‘सिंहिनीका दूध और वह भी ताजा निकाल हुआ,
पर शिवा ! वह सर्वथा दुष्पाप्य है ।’

पासमें पड़ा गुरुदेवका तुंवा उठाया और समर्थको
प्रणाम करके शिवाजी तत्काल सिंहिनीकी खोजमें निकल पड़े ।

कुछ दूर जानेपर एक जगह दो सिंह-शावक दींदा
पड़े । शिवाने चोचा—निश्चय ही यहाँ इनकी माता आयेगी ।

संगोगसे वह आ भी गयी । अपने बच्चोंके पास अनजाने मनुष्यको देख वह शिवापर दृट पड़ी और अपने जवाहरमें उनकी नर्यर्द पकड़ ली ।

शिवा कितने ही शूर-चीर हों, पर यहाँ तो उन्हें सिंहिनी-
का दूध जो निकालना था । उन्होंने धीरज घारण किया
और हाथ जोड़कर वे सिंहिनीसे विनय करने लगे—

‘मौं । मैं वहाँ तुम्हें मारने वा तुम्हारे बच्चोंको उठा ले
जानेको नहीं आया । गुरुदेवको न्यस्य करनेके लिये तुम्हारा
दूध चाहिये, उसे निकाल लेने दो । गुरुदेवको दे आजँ,
मिर भले ही तुम नुस्खे खा जाना ।’—शिवाजीने ममताभरे
हाथसे उसकी पीठ सहलायी ।

मूक प्राणी भी ममतासे प्रार्गके अधीन हो जाते हैं ।
सिंहिनीका क्रोध शान्त हो गया । उसने शिवाका गल छोड़ा
और निल्मीकी तरह उन्हें चाटने लगी ।

मौका देख शिवाजीने उसकी कोखमें हाथ ढाल दूध
निचोड़ तुंवा भर लिया और उसे नमस्कार कर बड़े
आनन्दके साथ वे निकल पड़े ।

इधर तभी शिष्य भी गुरुसे आ मिले । गुरु उन्हें साथ ले
एक आश्र्य दिलाने पीछेके मार्गसे जगलमें बढ़े । शिवा बड़े
आनन्दसे आगे बढ़ रहे थे कि समर्थ शिष्योंसहित उसके
पीछे पहुँच गये । उन्होंने आवाज लगायी ।

शिवाने पीछे मुड़कर गुरुदेवको देखा । पूछा—‘उदर-
शूल कैसा है ?’

‘आखिर तुम सिंहिनीका दूध भी ले आये, घन्य हो
शिवा ! तुम्हारे-जैसा एकनिष्ठ शिष्य रहते गुरुको पीड़ा ही
क्या रह सकती है ।’—समर्थने सिरपर हाथ रखते हुए कहा ।
—गो० न० वै० —(‘समर्थांचे नामर्थ’)

प्रेम-द्याके विना व्रत-उपवास व्यर्थ

वेल्यांव जिले (दक्षिण कर्नाटक) के मुरगोड स्थानके चिदम्बर दीक्षित सनातन वैदिक धर्मके बहुत बड़े उदारक, भक्ति-ज्ञानके प्रसारक और प्रेम, सेवा एवं परोपकारके साकार विग्रह माने जाते थे ।

एक बार एक जी सतान न होनेसे अत्यन्त लिन्ह हो
दीक्षितकी कृपा पानेके लिये आ पहुँची । वह अनेक व्रत-

उपवासादि करती, पर उसका चित्र प्रेम-द्यादि गुणोंसे सर्वथा
रहित था । दीक्षितने पासमें पड़े भूने चनेकी दो मुझी उसे
देकर कहा—‘जा, दूर चैठ, तुलांँ, तब आना ।’

वह दूर जाकर चना चवाने चैठी । लेल्ये-लेलने वहाँ
पाँच-सात बच्चे आये । कुछ उसके मुँहकी ओर देख रहे थे
तो कुछने हाथ भी पसारा । ‘एकको देनेपर सभीको देना

पड़ेगा' यह सोच वह खी मुँह छिपाकर चने खाने लगी। उसने एक दाना भी किसीको नहीं दिया।

दीक्षितने उसे पास बुलाकर कहा—‘अरी, जब फोकटमें मिले चनोंमें से चार दाने भी तुमसे किसीको देते नहीं बना,

तब भगवान् तुम्हें हाङ्ग-मासके बच्चे कैसे देंगे। प्रेम और दयाके बिना कोरे ब्रत-उपवासोंसे भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होते।’ उपस्थित लोगोंने यह शिक्षा गोठ बाँध ली। —गो० न० ब० (सत्चरित्रमाला, पृ० २११)

परधर्मसहिष्णुताकी विजय

शिवाजी अपने तबूमें बैठे सेनानी माधव भामलेकरके आनेकी चिन्तापूर्ण प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी बीच हाथमें एक ग्रन्थ लिये सेनानी पहुँचे। उनके पीछे एक ढोल लिये दो सैनिक आये। ढोल रखकर वे चले गये।

सेनानीने प्रसन्नमुद्रासे कहा—‘छत्रपते ! आज मुगलसेना दूरतक खदेड़ दी गयी। बेचाय बहलोल जान लेकर भागा। अब ताकत नहीं कि मुगल सेना यहाँ पुनः पैर रख सके।’

शिवाजीने ढोलेकी ओर देखते हुए गम्भीरतापूर्वक पूछा—‘यह क्या है ?’

अट्टहास करते हुए सेनानीने कहा—इसमें मुसलिम रमणियोंमें सुन्दरताके लिये प्रसिद्ध बहलोलकी बेगम है, जो महाराजको भेट करनेके लिये लायी गयी है और यह मेरे हाथका कुरान लीजिये। हमारी हिंदू-स्सकृतिसे खिलबाड़ करनेवालोंका जी भर कर प्रतिशोध लीजिये।

शिवाजीने कुरान लेकर चूम लिया और ढोलेके पास-आकर पर्दा हटाया और बहलोलकी बेगमको बाहर आनेको कहा। उसको ऊपरसे नीचे तक निहारकर कहा—‘सच्चमुच्च तू बड़ी ही सुन्दर है। अफसोस है कि मैं तेरे पेटसे पैदा नहीं हुआ, नहीं तो मैं भी कुछ सुन्दरता पा जाता।’

उन्होंने अपने एक अन्य अधिकारीको आदेश दिया कि ससम्मान और पूरी सुरक्षाके साथ बेगम तथा कुरान-शरीफको बहलोलखाँको जाकर सौप आहये।

फिर शिवाजीने सेनानीको फटकारा—‘सेनापते ! आप मेरे साथ इतने दिन रहे, पर मुझे नहीं पहचान सके। हम वीर

हैं; वीरकी यह परिभाषा नहीं कि, अबलाओंपर प्रहार करें, उनका सतीत्व लूटें और धर्मग्रन्थोंकी होली जलायें। किसीकी सस्कृति नष्ट करना कायरता है। ऐसे कायरोंका शीघ्र अन्त हो जाता है। परधर्म-सहिष्णु ही सच्चा वीर है।’

सेनापतिको अपनी मूर्खतापर लज्जा आयी।

इधर पत्नी और कुरानको ससम्मान लौटाया देख बहलोलखाँ-जैसा क्रूर सेनापति भी पिघल गया। शिवाजीने उसे दिल्ली लौट जानेका जो पत्र भेजा, उसे भी उसने पढ़ लिया और अन्तमें यही निश्चय किया कि इस फरिश्तेको देखकर दिल्ली लौटूँगा।

बहलोलने सैनिक भेजकर शिवाजीसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। साथ ही भेटके समय दोनोंके निःशब्द रहनेकी प्रार्थना की। शिवाजीने भी स्वीकार कर लिया।

नियत तिथि और समयपर शिवाजी मशाल लिये नियत स्थानपर बहलोलकी प्रतीक्षा करते खड़े थे। इसी बीच बहलोलखाँ आ पहुँचा और ‘फरिश्ते’ कहकर शिवाजीसे लिपट गया। फिर शिवाजीके पैरोंपर गिरकर कहनेलगा—‘माफ कर दे मुझे। बेगुनाहोंका खून मेरे सर चढ़कर बोलेगा। खुदके लिये तू तो माफ कर दे। अब मुझ-जैसे नापाक इन्सानको इस दुनियामें रहनेका कोई हक नहीं। सिर्फ तेरे पाक कदम चूमने की झ्वाहिश थी। यिदा ! अल्विदा !!’

बहलोल छुरा निकाल आत्महत्या करना ही चाहता था कि शिवाजीने हाथ पकड़ लिया और छुरा दूर फेंक उसे गले लगा लिया। —गो० न० ब०

शिवाका आदर्श दान

सन् १६५६ की बात है, शिवाजी महाराज रायगढ़से चलकर सताराके किलेमें आकर निवास कर रहे थे। एक दिन वे वहीं राजवाड़में बैठे थे कि नीचेसे ‘जय-जय रघुवीर समर्थ !’ की आवाज आयी।

शिवाजी तत्काल नीचे उतर आये। देखा, सामने साक्षात् गुरुदेव भिक्षाकी झोली लिये खड़े हैं। उन्होंने प्रणाम किया और भिक्षा लानेके लिये वे भीतर आये।

भिक्षाके लिये अब-बस्त्र, सोना-मोती, मणि-माणिक्य

—बो भी उठाते, उन्हें शोड़ा है जैवन। एक एक उन्हें कलन दूरी। अन्नदाता के करण इच्छा और उसको लेकर वारं आते। सभयने शोड़ पढ़ाई और शिवने उन्हें वर्त चिर्ट हड़ दी।

सभयने कहा—शिव ! अग्रे हनुमाने यहाँ अच्छे धन्दकी उदासे आये थे। नर तुम कागज्ञा दुर्जा हस्ती और मैं इन्हें इनकर इक्ष भट्ट कर देहे हो। हर्ष नर काटा हल्ले तो उन्हें गोटी भी बनारस स्वा उक्ते थे।

महाराज ! ऐसी मैंने निका ही दार्शनी और हुठ नहीं कह कर ! शिवने निष्पत्ति समझ कहा।

सभयने उद्घवते निष्ठी निकाल पढ़ाते लिये कहा। उद्घव चिर्ट पढ़ाने लगा—

अन्नदाता के लग हुआ सुन गवर व्याप्ति चूप्ते मैं करना चाहता हूँ। —शिवराज और यह गुप्तकर्ता दूरा।

सभयने कहा—‘ओर शिव ! अब तुम क्या करेंगे ?’ श्रीकृष्ण देव के लिये क्या आहा है ? ‘ओर उठाओ और त्वं मेरे साथ भीह माँगने।

शिवराज निष्ठुरको ले सभयने गौतम नर मिळा नार्गी। निर नदीते तरंगर आकर रसोई बनारी गर्या और सदने नोन्न लिखा।

सभयने कहा—शिव ! हम वैग्यरियोंने राज्यते क्या काम। तुम्ही इसे चैनलो।

शिवर्व दैवर ही न होते थे। सभयने अनन्ती पाठुकार्दै और झोलीना नगद बक्क लज्जके लिये दे अपने प्रतिलिपि-नमै शिव ने गृह चक्रविका आँख लिया। शिवाजीने देवनन्द उत्ते निकाला। —गो० न० द०

(सन्दर्भ सूचना, ४१९)

पहले कर्तव्य पीछे पुत्रका विवाह

‘महाराज ! इनके गम्भीरते क्या होना नहीं है ?’

‘हुठ नहीं शिव ! यदी कि आत्मात भी किलोंर तेरी निकाले त्वया नहर ही है तिन बेत्ता कीवके इस कोडगा दुर्गम ही त्वयोंना अधिक्षय क्यों ? मैं वहाँ रहना चाहता हूँ।’

‘जो अज्ञ अनार्ददी ! —शिवाजीने न्यायाल कर लिया और त्वया एक दब त्वयोंके नाम लिखा—महाराजी आज है कि कोडगा दुर्ग उनी ज्वह किया जय। यह अभ तुम ही ज्ञ भुजते हो !’

दन्तार्थ अपने पुत्रके निकाली चैरार्पम लो ये। व्याप्ति पत्र पते ही उन्होंने वयतिर्पते कहा—‘पहले कोडगा दुर्गांते अह, तिन मेरे देवका व्याह !’

तुल नानार्जी देना लेक निकल पड़े। निष्ठेक चढ़ने के लिये दाढ़ी बो पड र्तन दाग गिरी। देखा भानने कहा—पैरे अग्नहुनी परन नहीं। अवर्जी दर न चढ़ी तो डकडे डकडे उर फलेंगा।

बोन्ड निकल गर्या। त्वयों दुर्गमर चढ़ गये। नीचे दोर डालकर देनाको चढाया। वहाँ जमकर युद्ध हुआ। कोडगामर विजय प्राप्त की गर्या—नाह हाथ लगा, पर सिंह त्वार्ज, शिवाजीकी दूर्गी प्रतिमूर्ति और उनके दाल साथी वहाँ दान आ गये।

शिवाजीको त्वयों निकले ही उनके हुँहेहे निकल पड़ा—माह धान पा लिह गेला। नवते उन दुर्गका नाम परिहगद रखता गया। —गो० न० द०

समय-सूचकांक सम्मान

शिवदेवे जैनीगेके अभागे दीवन अवर्जी हरि नित्रेका लूल करके उनकी पनी और दो पुत्रोंको देच भी दिया। यह दो पनीकी चुग्गई थी कि अविक नूल्यक्षेत्रोमर्ने वे उनपुरमें देवे गये और उन्हें इनके नन्ने लर्हुड लिया। पनी चुल्जाई १७ वर्षीय प्रथम पुत्र अवर्जी, द्वितीय विलगाजी और लालेन नहे अन्य भर्जको लेकर वहाँ रहने ली।

दालाजीने शिवाजी महाराजके वहाँ नौकरीके लिये

आवेदन करते हुए लागी बठना लित मेजी थी। संदोगवद्य हुठ ही दिनों वार लडाईते लौटते हुए शिवराजका राजापुरमें ही पड़ान पड़ा। अवसर देख वालाजी उनके मित्र और महाराजने त्वया उनके अपने वहाँ लेसके स्थानमर रखलिया। महाराज उत्ते उन्दर अवर्गेन दुष्प ये, अत मातके हठ पकड़नेमर वे माताप्रियत तीनों भाइयोंको रामगढ़ ले गये।

शिवराज पर्यङ्कर पौड़े कागजपत्र देख रहे थे। सूचना

पाकर बालजी आ पहुँचे । महाराजने पूछा—‘प्रातः हमने एक पत्रका उत्तर लिखनेके लिये तुमसे कहा था, सो लिखा ही होगा ।’ बालजीने कहा—‘हाँ, महाराज !’ ‘तो दिखाओ ।’—शिवाजीने प्रश्न किया । बालजीने कहा—‘अभी साफ नहीं किया, कल दरबारमें साफ करके सुनाऊंगा ।’

‘क्या, साफ किये विना पत्र नहीं पढ़ना चाहिये ।’ शिवाजीने आग्रहपूर्ण खरमें कहा ।

थैलीसे कागज निकाल, ‘जैसी महाराजकी इच्छा ।’ कहते हुए बालजी पढ़ने लगा—

‘श्रीः | परमेश्वरप्रतिनिधि साक्षात् तीर्थरूप श्रीपितृचरणोंमें बालक शिवाका त्रिकाल सादाङ्ग नमस्कार । अनन्तर—

आपका पत्र ग्रास हुआ । आशय ख्यानमें आया । आपने लिखा कि जिस कार्यका बीड़ा उठाया, उसके लिये सर्वदा कटिवद्ध रहो, सो आपका आदेश हमारे लिये ईश्वरका आदेश है । अनन्तर आपने शुभ कामना प्रकट की है कि तुम्हारे शत्रुओंकी पलियों अपने गरम-गरम अश्रुओंसे अपने सत्तस हृदयको शीतल करें, सो आपके तथा पूर्वजोंके पुण्यसे आपका यह आशीर्वाद सदा सफल रहा है । अनन्तर आपने लिखा है कि शिवा, यदि तू मेरा पुत्र है तो मेरा अपमान करनेवाले, मुझे बदी बनानेवाले नीच बाजी घोरपड़ेका आसन होना चाहिये, सो आपके प्रतापसे वह नीच घोरपड़े उसी प्रकार नष्ट होगा, जिस प्रकार गजराजपर सामनेसे आक्रमण करनेवाला बनराज इति अलम् । आशीर्वादेच्छु—’

महाराजको पत्र पसद आ गया । उन्होंने कल साफकर दरबारमें लानेको कहा । और आजा लेकर बालजी चला गया । सारी धरना देख और सुनकर शिवाजीका सेवक रायबा मुसकरा रहा था ।

बालजीके जानेपर शिवाजीने उससे मुसकरनेका कारण पूछा । रायबाने अपराधके लिये क्षमा माँगकर कहा—‘बालजी आपकी आज्ञा पाकर धूर्ततासे सदा कागज पढ़ रहा था, हसीलिये हँसी आयी ।’ शिवाजीके आश्र्वयका ठिकाना न रहा ।

दूसरे दिन दरबार लगानेपर शिवाजीने बालजीसे पत्र

साफ करनेकी बात पूछी । बालजीने पत्र निकाल सामने रख दिया । शिवाजीने पास पढ़े सादे कागजको उठा बालजीको देते हुए कहा—‘यह तुम्हारे इस पत्रकी प्रथम प्रति, जो तुमने कल पढ़ी, लो और ठीक उसी तरह पढ़ो । अगर एक भी गलती हुई तो मॉ भवानी ही तुम्हारी रक्षा कर सकती है ।’

सरदार आबाजीको पत्र देते हुए कहा—‘आप इससे मिलाइये, यह जो पढ़ेगा ।’

बालजीने सिर अङ्गलिमें छिपाकर कहा—क्षमा हो महाराज ! कार्यव्यस्तातसे लिख नहीं पाया । महाराजकी आज्ञा हुई तो ‘नहीं’ कहनेका साहस भी नहीं हुआ और ‘और’ ।

महाराजने कहा—‘और सादा कागज इस तरह पढ़ दिया मानो लिखा हुआ ही पढ़ रहे हो । पर बिल्लीके ओंखें मूँदनेसे दुनिया अधी नहीं हो जाती । दरवारियो ! इसने धोखा दिया है । बतायें, क्या दण्ड दें ?’

दरबारी चुप रहे । महाराजने कहा—‘अच्छा मैं ख्यं दण्डविधान करता हूँ । बालजी ! तुमने गम्भीर अपराध किया, इसलिये दण्ड भी गम्भीर भुगतना होगा । आगे आओ ।’

बालजी आगे आ सिर ढुकाकर खड़ा हो गया । महाराजने सेवकको सकेत किया । सेवक आच्छादित चौदीका थाल ले आया । शिवाने उसमेंके वस्त्र उलटकर पगड़ी निकाली और बालजीके सिरपर धर दी ।

बालजीने आनन्द और आश्र्वयके साथ कहा—‘महाराज !’

शिवाजीने कहा—‘हाँ, बालजी । आजसे तुम दरबारके मन्त्री नियुक्त किये गये । अबसे सरकारी पत्र-व्यवहार-विभाग तुम्हारे अधीन रहेगा । तुम्हारे अपराधका दण्ड यही है कि आजसे तुम अपनी यह समय-सूचकता, अद्भुत समरण-शक्ति, अलौकिक चारुर्थ और अपने मोतीके समान अक्षरोंका उपयोग स्वदेश-हितको छोड़ और किसी काममें न लानेकी शपथ लो ।’

बालजीने जमीनपर सिर लगाकर शपथ ली ।—गो०न०बै०

उदारताका त्रिवेणी-सञ्ज्ञम

(शिवाजीका ब्राह्मण-प्रेम, तानाजीकी स्वामिनिष्ठा और ब्राह्मणकी प्रत्युपकार-बुद्धि)

और गजेवने भेटके बहाने शिवाजीको दिल्ली बुलाकर कैद कर लिया और शिवाजीने भी धोखा देकर आगेरसे भाग उसे हसका करता जबाब दिया । भागते समय उनके साथ

उनके पुत्र सभाजी और दो अन्य अनन्य स्वामिभक्त येसाजी और तानाजी थे ।

रास्तेमें एक शाड़ीके बीच उनकी शेरसे मुठभेड़ हुई ।

शेर मार गया, पर भरते-भरते वह शिवाजीके कषेपर पड़े चढ़ कर ही गया। माथिरोने पानी और आत-पात तुल्म पेड़ और ल्नाओंकी पत्तियोंसे उनकी मरन-पटी की खौर तभी आगे दड़े।

सुर्यिंदानाद पहुँचते ही शिवाजीने एक जोरोंसे ढुकार चढ़ आया। खुली रकमें उनका निरुपद रहना असुभव जान साधियोंने नजरमें कुछ दिन शास्त्रके लिये सोल की। कोई भी इन गुत्तेशायी अवधितोंने सान देनेको तैयार न हुआ। आखिर शिवाजीने नामक एक महान् विद्वान् और दयालु ब्राह्मणने इन नवको आशय दिया। वह निर्नी भयकर प्रसन्नते निगारी बनकर नाथके नाथ रहे रहता और सुग अन्न माँगकर जीविता चलता था।

देवके घर रहकर शिवाजीका न्वास्त्य हुरने लगा। पर पूर्ण न्वस्त्य होनेके लिये कुछ दौरं जबवि अपेक्षित थी। शिवाजीने जागियोंसे कहा—‘आप दोनों समाजीको लेकर दक्षिण पहुँचिये, तपतक मैं न्वस्त्य होकर आ नहा हूँ। मेरे पीछे मेरे द्वारा खड़े निये गये गव्यकी (नौव) निरी तह हिलने न पाये।

लचार हो साधियोंने शिवाजीना आश्र नाम स्था और प्रगामनरवे नमाजीके साथ निकल पड़े। कुछ दूर जाकर तानाजीने देनाजीसे कहा—‘आप सावधानीसे समाजीको दक्षिण ले जाओ। मैं यहाँ आत-पात छिया रहकर स्वामीको देतरेख करता रहूँगा और स्वस्त्र होनेपर साय लेकर पहुँच जाऊँगा।’

इबर ब्राह्मण निल भिन्ना माँग लाता और तीनोंका निर्वाह चलता। शिवाजीके त्वस्त्र होनेपर ही एक दिन ब्राह्मणको भिन्ना कम भिली तो उसने भोजन बनाकर दोनोंको खिला दिया और न्वयं भूखा रह गया। यह बात शिवाजीकी नजरमें आ गयी। उन्होंने सोचा—‘ब्राह्मण कितने दिनोंसे ऐसा कर रहे हैंगे? नोब्राह्मण-प्रतिगाल्क’ शिवाजे लिये ब्राह्मण भूखा रहे, यह उन्हे अमर्य हो उठा। किस प्रकार उसकी मदद की जाय। यही ने नार-वार सोचने लगे। इन्हें दक्षिण ले जाना निरुपद नहीं और वहाँसे थन भेजनेपर भी वह इसके हाथ ल्पोगा ही, इसका क्या भरोता? और यह बात कहाँ प्रकट हो गयी तो इसपर क्या बोतेगी? अन्तमें एक निश्चयपर वे पहुँच ही गये।

ब्राह्मणसे उन्होंने कागज और स्याही-क्लम मँगायी और एक पत्र लिख उसे सूबेदारको दे आनेके लिये भेजा।

अबलान् अनिर्वारित व्यक्तिके हाथों आये पत्रने सूबेदारकी उत्कण्ठा बढ़ गयी और उसने उसे सूलकर पटा—

शिवाजी इस ब्राह्मणके घर टिका है। इसके नाथ आये और खुदीसे पकड़ लें। पर स्थान रहे कि शिवाजीको पकड़ने-के लिये शोषित इनामके दो हजार रुपये इस ब्राह्मणको जल्द दें। अगर इसमें शोत्राधी की तो पछताना पड़ेगा।’

पत्र पढ़ते ही सूबेदारको विलक्षण आनन्द हुआ। शिवाजीने दिल्ली-दन्वारमें हाजिरकर शाहनगाहसे एक सदा वकीर पानेतक वह नमोराज्य कर दैठ। यह सब काम उत्तमान कर तस्माट्को अपनी कुशलनामर आश्र्वयचक्रित करनेकी सोच वह अपने पासमें दो हजारकी यैली लेकर ब्राह्मणके घर पहुँचा। ब्राह्मणके आगे यैली उडेलकर वह गोनाह (शिवाजी) को अपने साथ ले गया। ब्राह्मण यह सब चमकार देख ठक्का रह गया। उसे मेदका कुछ भी पता न चल। फिर भी घर आपे अतिथिको यकनद्वारा ले जाते देख वह बड़ा ही दुःखी हुआ। उसे चैन नहीं पड़ता था।

इसी बीच दूसे उसी गोवाइके एक साथीको आते देख देवने उसे तकाल पहचान लिया। अपने स्वामीको गिरफ्तार कर ले जाते हुए उसने अपनी चाँखों देखा और पहलेसे ही पता ल्या लिया कि कल अनुक समय, अमुक रात्तेसे उन्हें दिल्ली लाया जायगा।

साथीने आकर ब्राह्मणसे सारी हकीकत पूछी और चिह्न हो ब्राह्मणने ज्यो-कान्त्यों साथ किस्सा चुना दिया। साथीके व्यानमें बात जा गयी कि स्वामीने ब्राह्मणके उपकारका बदला चुकानेके लिये अपनेको इस संकटमें ढाला है। फिर भी उसने निश्चय किया कि मरते दमतक उन्हें इस सकटसे उत्थारकर ही रहूँगा।

ब्राह्मणको सज्जा और विश्वस्त पाकर आखिर साथीने सारा रहस्य खोल दिया—‘भूदेव।’ ये और कोई नहीं, स्वयं गोब्राह्मण-प्रतिपालक उत्पत्ति शिवराज थे, वह बड़ा उनका पुत्र संभाजी, मैं उनका सेवक तानाजी और दूसरे येसाजी थे।’

तानाजी आगे कह ही रहे ये कि ब्राह्मण मूर्छित हो गया। तानाजीने उसे संभाला। होश आनेपर वह अपनी करनीपर विलख-विलखकर रोने लगा और इन दो हजारके महरे किसी तरह उनको छुड़ानेका हर सम्बवयत करनेके लिये तानाजीकी विनती करने लगा।

तानाजीने ब्राह्मणदेवताको आशापन दिया तथा स्वयं

पटानका वेष धारणकर और उन रूपयोंसे पचास आदमियोंको साथ ले उस झाड़ीमें छिप गया, जहाँसे होकर सूवेदार शिवाजीको ढिल्ही ले जानेवाला था।

मध्यरात्रिके बाद सूवेदारकी सवारी पचीस सिपाहियोंके साथ शिवाजीको लेकर झाड़ीके पास आ पहुँची। तानाजीने अचानक हळ्डा बोल दिया और एक ही साथ पचासों जवान उनपर टूट पड़े। सूवेदारके पास तानाजीसे कमलोग थे और

वे असावधान भी थे। इसलिये इसका परिणाम क्या हुआ, यह सहज ही समझा जा सकता है। सूवेदारसहित सारी पलटन-का सफाया कर तानाजी शिवाजीको लेकर ब्राह्मणके घर लौट आये।

ब्राह्मण आनन्दसे फूला नहीं समाता था। तीनों उदार नेताओंका सगम वहाँ त्रिवेणी और तीर्थराजका दृश्य उपस्थित कर रहा था।—गो० न० वै० (नीतिवोध पृ० ७०)

धन है धूलि समान

(लेखक-श्रीताराचन्द्रजी अडालजा)

‘आप घर तो नहीं भूल गये हैं। मैं इस सम्मानका पात्र नहीं हूँ।’

‘भूले नहीं हैं, निश्चय ही हम आपकी ही सेवामें उपस्थित हुए हैं।’

‘मेरी सेवा। मैं तो पामर प्राणी हूँ। सेवा तो विट्ठल भगवान्की करनी चाहिये भाई।’

‘आप जगदीश्वरके परम भक्त हैं, यह सुनकर महाराजा छत्रपति शिवाजीने आपका स्वागत करनेके लिये ये हाथी, धोड़े, पालकी और सेवकगण भेजे हैं। आप हमारे साथ पधारनेकी कृपा करें।’

भक्तराज तुकाराम हँस पड़े—‘अरे भाई! यदि मुझे जाना ही होगा तो ईश्वरके ढिये हुए पैर तो मौजूद हैं। फिर इस आडबरकी क्या जरूरत?’

गाँवके लोगोंको हँसी उड़ानेका अवसर मिला—‘वाह, अब तुका भगत भक्ति छोड़कर राजदरबारमें विराजेंगे।’

सत तुकाराम नम्रतापूर्वक कहनेलो—‘आप छत्रपतिको मेरा सदेश कह दें कि मेरा आपको सदा-सर्वदा आशीर्वाद है। कृपा करके मुझे मेरे विट्ठल भगवान्की सेवासे विमुख न करें। मैं जहाँ और जैसे हूँ, वहाँ वैसे ही ठीक हूँ। मेरी यह कुटिया ही मेरा राजमहल है, और यह छोटा-सा मन्दिर ही मेरे प्रसुका मेरा राजदरबार है। वैभवकी वासनाको जगाकर मुझे इस भक्ति-मार्गसे विचलित न करें। मेरे विठोवा उनका कल्याण करें।’

इकट्ठे हुए गाँववाले फिर हँस पड़े—‘कैसे गँवार हैं तुका भगत! सामने आये हुए राज-वैभवको ढुकराते हैं, घर आयी लक्ष्मीको धक्का मारते हैं।’

छत्रपति शिवाजीने जब तुकारामकी अठल निःस्पृहताकी बात सुनी, तब वे ऐसे सच्चे सतके दर्शनके लिये अधीर हो उठे और स्वयं तुकारामके पास जा पहुँचे।

देहू गाँवकी जनताको आज और आश्वर्यका अनुभव हुआ। देहू-जैसे छोटे-से गाँवमें छत्रपति शिवाजी महाराजका शुभागमन। जय-धोपणासे दिजाएँ गूँज उठों।—‘छत्रपति शिवाजी महाराजकी जय!’

तुकारामको देखते ही शिवाजी उनके चरणोंमें लोट गये।

‘हैं, हैं छत्रपति! राजाको ईश्वरस्वरूप माना जाता है। आप तो पूजनीय हो।’ तुकारामने शिवाजीको उठाया और प्रेमसे हृदयसे लगा लिया।

‘आज आप-जैसे सतके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया। मेरी प्रार्थना है कि मेरी इस अल्प सेवाको आप स्वीकार करें।’

राजाने स्वर्ण-मुद्राओंसे भरी थैली तुकारामके चरणोंमें रख दी।

‘यह आप क्या कर रहे हैं महाराज? भक्तिमें बाधा डालने-वाली मायामें मुझे क्यों फैसाते हैं? मुझे धन नहीं चाहिये। मुझे जो कुछ चाहिये वह मेरे विट्ठल प्रसुकी कृपासे अनायास मिल जाता है। जब भूख लगती है, तब भिक्षा माँग लाता हूँ। रास्तेमें पड़े चिठ्ठियोंसे शरीरको ढूँक लेता हूँ। कहीं भी सोकर नींद ले लेता हूँ। फिर मुझे किस बातकी कमी है। मैं तो मेरे विठोवाकी सेवामें परम सुख-सर्वस्वका अनुभव कर रहा हूँ महाराज! आप इस धनको वापस ले जाइये। प्रभु आपका कल्याण करें।’

शिवाजी चकित हुए। वे बोल उठे—‘धन्य हो भक्त-शिरोमणि! ऐसी अनुपम निःस्पृहता और निर्भयता मैंने कमी

नहीं देरी । आपको मेरा कोटि-कोटि प्रणाम ।’
‘धन है धूलि-समान’ इस सूत्रको ज्ञानपूर्वक आचरणमें
लानेवाले इस अद्भुत सतकी चरण-धूलि मस्तकपर चढ़ाकर

उनको बन्दन करते हुए गिवाजी वापस लौट गये ।

इधर भक्तराज तुकारामने प्रभुसे प्रार्थना की—‘ऐसी
माया कभी पिर न दिखाना मेरे प्रभु !’

पितरोंका आगमन

सत एकनाथजीके पिताका श्राद्ध था । घरमें श्राद्धकी
रसोई वन रही थी । हल्वा पकने लगता है तब उसकी सुन्दर
सुगन्ध दूरतक फैल जाती है । अतएव इनके भी घरके बाहर-
तक सुगन्ध छा रही थी । इसी समय कुछ महार सपरिवार
उधरसे जा रहे थे । सुगन्ध उनकी नाकोंमें भी गयी । महारके
एक बच्चेने कहा—‘माँ । कैसी मीठी महक है । कैसे बढ़िया
पक्कान्न बने होंगे ।’ मौने उदास होकर कहा—‘वेटा ! हम-
लोगोंके नसीबमें ये चीजें कहाँ रखती हैं । हम अभागोंको तो
इनकी गन्ध भी दुलंभ है ।’ सत एकनाथजीने उनकी यह
धात सुन ली । उनका हृदय द्रवित हो गया । उन्होंने सोचा—
‘सप्त शरीर भगवान् के ही तो मन्दिर हैं—इन महारोंके द्वारा
भी तो भगवान् ही भोग लगायेंगे ।’ उन्होंने तुरत महारोंको
बुलाया और अपनी पक्की गिरिजावाईसे कहा कि ‘यह रसोई
इनको दे दो ।’ गिरिजावाईका भाव और भी सुन्दर था,
उन्होंने कहा—‘अब तो बहुत है, इनको सब बाल-बच्चों
और छियोंसहित बुलवा लीजिये, सप्तको अच्छी तरह परोसकर
जिमाया जाय । भगवान् सर्वत्र हैं, सब प्राणियोंमें हैं, आज
भगवान् ही इनके द्वारा यह अब चाहा है, अतएव आज
इन्होंको तुस करके भगवान्की सेवा करनी चाहिये ।’

सबको बुलाया गया, रास्तेपर पत्तलें रक्खी गयीं
और बड़े आदर-सङ्कारके साथ सब पक्कान्न बाहर
लाकर, उनको भोजन कराया गया । जिनकी गन्ध
भी कभी नसीब नहीं होती, उन चीजोंको भरपेट
राकर महार और उसके स्त्री-बच्चोंको कितना आनन्द
हुआ, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता । इस भोजनसे
तो उनको अपरिमित प्रसन्नता हुई ही, इससे भी अधिक
सुख मिला उनको सत एकनाथ और साढ़ी गिरिजावाईके

प्रेमपूर्ण नम्र व्यवहारसे । उनके अङ्ग-अङ्ग एकनाथजीको
मूक आशीर्वाद देने लगे । गिरिजावाईने पान-सुपारी देकर
उन्हें विदा किया ।

तदनन्तर वर्णाश्रमधर्मको माननेवाले एकनाथ और
गिरिजावाईने घर-आँगन धोया, वर्तन मले, नया
शुद्ध जल मँगवाया और फिरसे श्राद्धकी रसोई बनवायी ।
परतु जब निमन्त्रित ब्राह्मणोंने सब हाल सुना तब उन्होंने
भोजन करनेसे इन्कार कर दिया । एकनाथजीने हाथ जोड़कर
उनसे प्रार्थना की—‘पूजनीय ब्राह्मणगण ! पहली रसोई बनी
तो थी आपलोगोंके लिये ही, परतु जब उसकी गन्ध अन्यज
परिवारके नाकोंमें पहुँच गयी, तब वह उच्छिष्ठ अब आपको
कैसे परोसा जाता । वह अब उन लोगोंको खिला दिया गया
और फिरसे सारी सामग्री इकट्ठी करके आपके लिये नयी
रसोई बनायी गयी । आप हमें क्षमा करके इसे ग्रहण कीजिये ।’
बहुत अनुनय-विनय की, परतु ब्राह्मणोंको उनकी बात नहीं
ज़ंची । एकनाथजीको चिन्ता हुई । उनके यहाँ श्रीखडिया
तो रहता ही था । श्रीखडियाने उनसे कहा—‘नाथजी !
आपने रसोई पितरोंके लिये बनायी है न ? फिर चिन्ता क्यों
करते हैं ? पत्तलें परोसकर पितरोंको बुलाइये । वे स्वयं आकर
भोजन क्यों नहीं करेंगे ?’ एकनाथजीने ऐसा ही किया ।
पत्तलें लगा दी गयीं और ‘आगतम्’ कहते ही सूर्यनारायण,
चक्रपाणि और भानुदास तीनों पितर आकर अपने-अपने
आसनोंपर बैठ गये । एकनाथजीने बड़े भक्तिभावसे उनका
पूजन किया और भोजन परोसकर उन्हें जिमाया । तीनों पितर
हृत होकर आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये । जब ब्राह्मणोंको
यह सब हाल मालूम हुआ, तब उन्होंने एकनाथजीका महत्व
समझा और अपनी करनीपर पश्चात्ताप किया ।

नाथकी भूतदयाकी फल-श्रुति

श्राद्धीय अब चमरको खिला देनेसे पैठणके ब्राह्मण
एकनाथ स्वामीपर रुद्ध हो गये थे । फिर नया स्वयपाक बना,
उन्हें बुलानेपर भी वे न आये । नाथके घर भगवान्का पानी

भरनेवाले श्रीखडियाने उस दिन नायके साक्षात् पितरोंको
बुलाकर श्राद्धीय अन्न खिला दिया । ब्राह्मण इस कृत्यसे और
भी चिट गये ।

उन्होंने नाथको जाति-बहिष्कृत तो पहले ही कर दिया था। अब एक समामे उन्हें बुलाकर इस पापका प्रायश्चित्त करनेको कहा।

नाथने कुछ पाप तो किया ही न था। उन्होंने विनीत भावसे कहा—‘भले ही आपलोग मुझे बहिष्कृत रखें, पर मैं प्रायश्चित्त नहीं करूँगा। मेरे माई-बाप श्रीकृष्ण वैठे हुए हैं, मैं किस बातका प्रायश्चित्त करूँ ।’

ब्राह्मणोंने कहा—‘एकनाथजी। यह तो हमलोग भी जानते हैं कि भगवान् तुम्हारे रक्षक हैं। फिर भी हमलोगोंकी बात रखकर आप प्रायश्चित्त अवश्य कर लें ।’

एकनाथ तैयार हो गये। उनके समक्ष नाथने नदीमें हृषकी लगायी। शरीरमें भस्त्र, गोमय और पञ्चगव्य मला। ब्राह्मण जोर-जोरसे मन्त्र पढ़ रहे थे।

इसी बीच वहाँ अकस्मात् नासिक व्यम्बकेश्वरसे एक ब्राह्मण आया और ‘एकनाथ कौन और कहाँ है ।’ यह पूछने लगा। उसके सर्वाङ्गमें कुष्ठ हो गया था, तिल रखनेको ख्यान न था।

ब्राह्मणोंने कहा—‘देखो, वह नदी-किनारे प्रायश्चित्त कर रहा है। आखिर तुम्हें उससे क्या काम है ।’

अभ्यागत ब्राह्मणने बताया—‘मैंने व्यम्बकेश्वरमें कठोर अनुष्ठान किया। भगवान् शकरने प्रसन्न हो मुझे आदेश दिया कि पैठणमें जाओ। वहाँ विष्णुभक्त एकनाथने श्राद्धके दिन एक चमारको अन्न खिलाकर भूतदयाका अपूर्व पुण्य कमाया है। यदि वह तुम्हे उसमेंसे कुछ पुण्य दे देगा तो तुम्हारा कुष्ठ मिट जायगा।’

ब्राह्मण आश्र्यके साथ आपसमें तरह-तरहके वितर्क करने लगे। कोदी ब्राह्मणने एकनाथके पास पहुँचकर सारा हाल कह सुनाया।

नाथने कहा—‘अवश्य ही उस दिन अन्त्यजको अन्नदान कराकर भगवान् शकरने मुझे भूतदयाका पुण्य प्राप्त कराया है। लो, उनकी आज्ञा है तो उसका थोड़ा भाग तुम्हे भी दिये देता हूँ।’

प्रायश्चित्त करनेवाले ब्राह्मण एकटक देखते रहे। नाथने हाथमें जल ले उस पुण्यका अशदान कर उस ब्राह्मणपर प्रोक्षण किया। देखते-देखते उसकी काया स्वर्ण-सी चमक उठी। कुष्ठका नामोनिशान न था। प्रायश्चित्त करनेवालोंने ही नाथसे क्षमा माँग अपने सत-द्रोहका प्रायश्चित्त किया।

—गो०न०व० (भक्ति-विजय, अ० ४६.)

क्षमाने दुर्जनको सज्जन बनाया

दक्षिणके पैटण नगरमें गोदावरी-स्नानके मार्गमें ही एक सराय पड़ती थी। उस सरायमें एक पठान रहता था। मार्गसे स्नान करके लौटते हिंदुओंको वह बहुत तग किया करता था। दूसरोंको छेड़ने तथा सतानेमें ही उसे अपना बड़प्पन जान पड़ता था।

श्रीएकनाथजी महाराज भी उसी मार्गसे गोदावरी-स्नानको जाते थे। वह पठान उन्हे भी बहुत तग करता था। दूसरे लोग तो बुरा-भला भी कुछ कहते थे; किंतु एकनाथ महाराज कभी कुछ बोलते ही नहीं थे। एक दिन जब श्रीएकनाथजी स्नान करके सरायके नीचेसे जा रहे थे, तब उस पठानने उनके ऊपर कुछ कर दिया। श्रीएकनाथजी फिर नदी-स्नान करने लौट गये; किंतु जब वे स्नान करके आने लगे, तब पठानने फिर उनपर कुछ किया। इस प्रकार कभी-कभी चार-पाँच बार एकनाथजीको स्नान करना पड़ता था।

‘यह काफिर गुस्सा क्यों नहीं करता ?’ पठान एक दिन श्रीएकनाथजीके पीछे ही पड़ गया। वह बार-बार कुछ करता और एकनाथजी बार-बार गोदावरी-स्नान करके लौटते गये। पूरे एक सौ आठ बार उसने कुछ किया और उतनी ही बार एकनाथजीने स्नान किया।

संतकी क्षमाकी अन्तमें विजय हुई। पठानको अपने कामपर लजा आयी। वह एकनाथजीके पैरोंपर गिर पड़ा—‘आप खुदाके सच्चे बदे हैं। मुझे माफ कर दें। अब०मै कभी किसीको तग नहीं करूँगा।’

‘इसमें क्षमा करनेकी क्या बात है। आपकी कृपासे आज मुझे एक सौ आठ बार गोदावरीका पुण्य स्नान प्राप्त हुआ।’ एकनाथजीने उस पठानको आश्वासन दिया।

—सु० सिं०

तुकारामजीकी शान्ति

मत तुकारामजी अपने गेतसे गन्ने ला रहे थे। रात्सेमें लोगोंने गन्ने मैंगी, उन्होंने दे दिये। एक गन्ना बच रहा, उसे लेकर के घर पहुँचे। घरमें वही गरीबी थी और भौजनका अभाव था। सिर, उनकी पक्की जीजीवाई थी भी यदे वरारे न्यायामी। उसने हृष्णलालर गन्ना उनके हाथसे

छीन लिया और उसे बड़े जोरसे उनकी पीठपर दे मार। गन्नेके दो ढकड़े हो गये। तुकारामजीने हँसकर कहा—‘हम दोनोंके न्यायसे लिये मुझे दो ढकड़े करने ही पड़ते। तुमने महज ही कर दिये, वहाँ अच्छा किया।’

पतिसेवासे पति वशमें

रेम्लर के निकट डेवगाँवके आउटेक्सी कन्या वहिणागाई और उसके पति गङ्गाधरराय पाटक पट्टीदारीके झगड़ेसे ज़खर कर भर त्याग नॉन्टापुरमें आकर बत गये। वहाँ मकान-मालिक दिरकटने उन्हें एक सपना क्षितिल गया कि उसके बिना उसे एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता।

उन दिनों कोन्नापुरमें समर्थ-पचायतनके प्रसिद्ध सत जयराम स्वामीका भीतर चल रहा था। वहिणागाई भी वहाँ पहुँची और साथमें बढ़ाइको लेनी गयी। स्वामीका चरण दूकर वह उन्हीं पास बढ़ाइसहित बैठ गयी। भारिंजी एकादशीके कारण बढ़ती भीद देय प्रवन्धकोंने बढ़ाइको बहोसे बाहर ले जाकर घोंघ दिया। बठड़ा जोर-जोरसे रँभाने लगा और वहिणा भी अनमनी हो उठी। स्वामीको पता चलते ही उन्होंने बढ़ाइको भीतर बुलाया और दिव्य दृष्टिसे दोनोंको अधिकारी जन उनका विदेष गौण निया।

फिर क्या था। चारों ओर वहिणाकी चर्चा चल पड़ी। तर्भी कहा करते—‘इतने बड़े साधु जर वहिणागाईका इतना नम्मान करते हे, तब निश्चय ही वह पहुँची हुई होगी।’ वैसे रुद्धस्य होते हुए भी वहिणागाईका भारा समय भजन-पूजन और गोसेवामें ही बीतता।

गङ्गाधररायको यह पसद न था। वहिणाका गृहस्थीते विराग और निवृत्तिसे अनुराग देख वे भीतर-ही-भीतर उसपर कुछते थे। यह विराग त्याग देनेके लिये उन्होंने कई बार वहिणाका मन विषयोंकी ओर मोड़ना चाहा, पर वे कभी सफल न हुए।

जगरामस्वामीकी इस घटनाने तो आगमे धीका काम कर दिया। रावका कोध भड़क उठा और उन्होंने वहिणाको इतना पीटा कि बेचारी सप्ताहों जटियापर पड़ी रही। उसे कभी दोष आता हो कभी बेहोश हो जाती। पता लगानेपर जयराम

न्यायी उसकी खबर लेने आये और रावको समझाकर भविष्यमें उसपर हाथ चलानेसे रोका, पर परम ससारी रावको यह अमृत-उपदेश भी कहुआ लगा।

इधर मर्मस्यानोंकी चोटसे वहिणाकी दशा दिन-भर-दिन मिगड़ने लगी। इसी बीच एक दिन वहिणाको स्वप्नमें किसी द्राक्षणने आकर कहा—‘बच्ची, सचेत हो जाओ।’ स्वप्नमें ही उसने जयरामस्वामीकी जय बोली और तुकारामकी प्रार्थना की। तुकारामने स्वप्नमें ही वहिणाको मन्त्रोपदेश दे दीक्षित किया।

जागनेके साथ ही वहिणाके स्वास्थ्यमें आश्र्यजनक परिवर्तन हो गया। उसकी सारी पीड़ा हवा हो चली। चेहरा दिव्य रूपनितसे दीप हो उठा। अब तो वह मगवदा-नन्दमें औरभी रमने लगी। उसके अन्तरमें तुकोवाके प्रत्यक्ष दर्शनकी तीव्र उकण्ठा जाग उठी। दुश्य जयदेवस्वामी उसके घर पधारे। अब तो सारा कोल्हापुर वहिणाके घर टूट पड़ने लगा। वहिणाका घर साथकोंका अलाद़ा बन गया।

यह सब देखकर गङ्गाधरराय अत्यन्त निराश हुए। शुद्ध जातिके तुकारामकी शिष्या बननेमें गौरव माननेपर वहिणासे वे और भी चिढ़ गये। उन्हें सप्ताहसे विराग-सा हो गया। उन्होंने भर त्याग कहीं चले जानेकी सोची और एक दिन जानेके लिये निश्चित भी कर लिया।

वहिणाको इसका पता चलते ही उसे भारी दुःख हुआ। पतिद्वारा परित्यका होनेकी कल्पनासे ही वह काँर उठी। उसने बहुत अनुभय-विनय किया, पर राव उससे-मस नहीं हुए।

लानार वहिणा निर्वलके बल गमको मनाने लगी—‘प्रभो! मैंने कौन-सा ऐसा महान् अपराध किया जो आप इतना कटोर दण्ड दे रहे हो? सच कहती हूँ, पति मुझसे अलग हो गये तो मैं प्राग दे दूँगी। पत्यरके पण्डरिनाथ और स्वामिक

तुकारामके लिये प्रत्यक्ष देवता पतिको त्यागनेके लिये मैं कभी तैयार नहीं। नारीके जीवनका विश्राम एकमात्र पति ही होता है दयालो ! दया करो और पति रक्खो !'

भगवान्ने पतिव्रताकी पुकार सुन ली। घर त्यागनेसे ठीक पहले दिन रातमें गङ्गाधररावको अकस्मात् जोरका ज्वर आ गया और उनकी यात्रा रुक गयी।

साथी वहिणाको अवसर मिला और उसने उसका पूरा-पूरा लाभ उठाया। उसने लगातार एक मासतक एकनिष्ठासे

पतिकी सेवा-शुश्रूषा की। पति-सेवामें वह नींद ही क्या, भूख-प्यासतक भूल गयी।

वहिणाकी इस अद्भुत सेवासे रावको अपनी करनीपर अनुत्ताप हुआ और उसीके बाद उनका ज्वर-ताप भी मिटा। वे वहिणाको लेफर देहु आये और तुकाराम महाराजके अनन्य भक्त बन गये। पतिव्रताकी सेवाने परम ससारी पतिको परमार्थका पथिक बना लिया।—गो० न० वै०

(धेनुकथा-संग्रह)

तुकारामका गो-प्रेम

संत वहिणावार्द्ध और उनके पति गगाधरराव अपनी प्यारी कपिलाके साथ देहमें तुकाराम महाराजके दर्ढनार्थ आये थे। रात्से एक दिन गगाधररावको तुकारामसे जलनेवाले वर्हीके एक ब्राह्मण मवाजी मिले। रावके आनेके कारणका पता चलते ही वे आपेके बाहर हो उठे और लोग तुकोवाको अनाप-शनाप कहने। गगाधररावसे सहा नहीं गया, उन्होंने कहा—‘महाराज। आप मेरी निन्दा प्रसन्नतासे कीजिये पर भगवद्भक्त तुकोवाकी निन्दा कर व्यर्थ ही पापकी गठरी क्यों वॉच रहे हैं ?’

यह सुनकर मवाजी रावपर आगवबूला हो उठे और बदला लेनेपर उत्तार हो गये।

एक दिन वहिणा और राव तुकोवाके भजनमें मग्न थे। मौका पाकर मवाजी धीरेसे उनकी कपिलाको खोल ले गये और उसे वेदम मारकर तहखानेमें छिपा दिया।

भजनके बाद कपिलाको न देखकर वहिणा शोक करने लगी। गॉवधर खोजवाया गया, आस-पासके गॉवोंमें भी लोग भेजे गये, पर कपिलाका कहीं पता न चला। वहिणा उसके विछोहसे विहळ हो उठी।

वहिणाकी गाय गुम होनेका तुकोवाको भी भारी क्लेश हुआ। उनका चित्त उद्विग्न हो उठा। दो दिन बाद

अकस्मात् स्वप्नमें आकर कपिला फूट-फूटकर रोने लगी और तुकोवासे उत्तरानेकी बार-बार प्रार्थना करने लगी। गायकी गुहार सुन तुकोवाकी ओँखें खुलीं—गायपर पड़ी मारसे तुकोवाकी पीठपर बड़े-बड़े फफोले हो गये थे और सारा शरीर बेरहमीकी मारसे दर्द कर रहा था।

तुकोवाने अपने दर्दकी कुछ परवा नहीं की और गायके लिये अपने सर्वस्व आराध्य प्रभुसे प्रार्थना की।

भगवान्ने तुकाराम महाराजकी प्रार्थना सुनी। एकाएक मवाजीके घरमें आग लगी और अग्निदेव धू-धूकर उनका सर्वस्व स्वाहा करने लगे। लोग आग बुझाने दौड़ पड़े। इसी बीच उन्हें गायका डकारना सुनायी दिया। सभी ठक्के से रह गये। गाय कहाँ ? खोज होने लगी। आखिर तहखाना खोला गया। गाय निकाली गयी। उसकी पीठ मारसे सूज गयी थी। तबतक मवाजीको सत-निन्दा और गोधातका पूरा प्रायश्चित्त प्राप्त हो गया। उनका गगनन्तुम्बी प्रासाद और उसका सारा सामान राखका ढेर बन गया।

सत तुकारामको पता चलते ही वे दौड़ते आये और कपिलाको साण्डाङ्ग दण्डवत्कर उसके मुँहपर हाथ फेर आँख बहाने लगे। सतका यह गो-प्रेम देख वहिणावार्द्धके शरीरपर सात्त्विक अष्टभाव उमड़ पड़े, वह रोमाञ्चित हो उठी।

—गो० न० वै०

(धेनुकथा-संग्रह)

भगवान् थाल साफ कर गये

पढ़रपुरमें दामाजी सेठ नामक एक दर्जी (छोपी) भगवान् विछलनाथके बड़े ही भक्त थे। उनके सुपुत्र नामाजीको भी बचपनसे वही लत लग गयी थी।

दामाजीका नित्य नियम था कि रसोई बननेपर थाल परोसकर विछलनाथके पास जा उन्हें भोग ल्याते और फिर घर

आकर भोजन करते। एक दिन दामाजीको किसी दूसरे गाँव जाना था। जाते समय वे स्त्रीसे कहते गये कि मैं आँख तब-तक प्रतिदिन नामाके हाथ विछलनाथको भोग भेजती रहना, मेरा नियम भङ्ग न होने पाये।

दूसरे दिन वालक नामदेव परोसी हुई थाली लेकर

विष्णुनाथके मन्दिर पहुँचा और थाली रखकर भोग खानेके लिये आग्रह करने लगा। उनकी निर्मल बालबुद्धिमें वह विजय ही नहीं उठा कि पत्थरकी मूर्ति कैसे खायेगी? 'भगवन्'। क्या मेरे हाथका भोग आपको नहीं भाला? मैं अश्वान बचा हूँ, इसीलिये मेरी उपेक्षा कर रहे हो? और, पिताजी हाट राये हैं, इसीलिये माताजीने आप सुकृत मेजा। अगर तुम न खाओगे तो लोग सुकृत पारी कहेंगे और माताजी ऊपरसे मारेंगी। मेरे लिये दुनियामें सैंह दिखाना सुनिक्ल हो जायगा। ग्रभो! तुम ही मेरी उपेक्षा करोगे तो मैं किसी शरण लज़ूर्गा। अगर नहीं खाओगे तो मैं यहीं भूजा नहकर प्राण डे दूँगा।'—इह करणामें शब्दोंमें भगवान्को मनाने लगा।

नामदेव समझता था कि भगवान् रोज भोग खाते हैं और आज ही नहीं खा रहे हैं? इसीलिये वह भगवान्के चरणोंमें अन्न-सच्चायाह कर बैठ गया। और अन्तमें सरलदृढ़य नामदेव-की भक्तिसे प्रश्न छोकर भगवान्ने वह भोग पा ही लिया।

नामदेव प्रसन्न हो बर आया और मातासे बड़े आनन्दसे कहने लगा कि मेरे नन्हा होनेमर भी भगवान्ने मेरे हाथसे भोग खा दिया। माने थाल देता। सचमुच वह खाली था। माता-

को दृढ़ विश्वास था कि मेरा पुत्र कभी झूट नहीं बोल सकता।

दूसरे दिन दामाजीके घर पहुँचनेमर उचने सारी बात इह सुनायी तो उन्हें भी आश्र्वय हुआ कि पत्थरकी मूर्ति कैसे भोग खा गयी। दामाजीका भी नामदेवनर पूर्ण विश्वास था कि वह कभी झूट नहीं बोलता। अन्तमें उन्होंने नामारे कहा—'आज भी तु ही मन्दिरमें भोग ले चल। मैं तेरे पीछे-पीछे आ रहा हूँ। देखता हूँ, वह तेरे हाथसे खाता है या त् झूट बोलता है।'

नामदेव परोत्ता थाल लेकर भगवान्के पास आया और उनसे उसे खानेके लिये अत्यन्त करणसे मनाने लगा—'प्रभो! अगर आज तुमने भोग न खाया तो व्यर्थ ही मैं उठा उहँगा और मातापिनाका मुक्तशरसे विश्वास भी उठ जायगा। भगवन्। सिवा आपके मेरी लज कौन रख सकता है?'

भगवान् फिर उसकटमें पड़े। मनका सकट दूर करने और उसकी लज रखनेके लिये भोग खानेके सिवा दूसरा उपाय ही न देख भगवान्को पुनः उसे खाना पड़ा। दामाजी ऐसे यह देख अनेको धन्य-धन्य मानने लगे।—गो० न० वै०

(भक्तिविजय, अध्याय ४)

कच्चा वर्तन

मुझे चलाह दी। क्या यहीं 'पथमग्रासे मक्षिकापात'?

आविर नामदेव कह ही बैठे—भगवान्, आप वडे सत कहलाते हैं और शङ्करकी पिण्डीमर पैर धगते हैं।'

विठोत्राने कहा—'नामा! मैं बूदा जर्जर हो गया हूँ। तुम्हीं मेरे पैर उठाकर उन जगह रख दो, जहाँ शिवकी पिण्डी न हो।'

नामदेवने उनके पैर पकड़कर पिण्डीसे उतार अन्यत्र रखते। वहाँ भी शिवकी पिण्डी दीड़ पड़ी। वह जहाँ-जहाँ उनके पैर उठाकर रखता वहीं सर्वत्र शिवकी पिण्डिका दीड़ पड़ती। नामदेव असमजउमें पड़ गया। उसने विठोत्रा खेचके चण्ण पकड़ सर्वत्र शिव-ही-शिव दील पड़नेकी बात कही और इसका गहस्य पड़ा।

विठोत्राने नामदेवके सिंगर अभय कर गवकर अद्वैतका वोध कराया। नामदेवकी द्वैततुष्टि मिट गयी।

दूसरे दिन सन-समाके दीन भगवान्ने नामदेवको लक्ष्मनर सनोंसे सर्व कहा—'अब वह भाजन भी पक्का बन गया।'

—गो० न० वै० (भक्तिविजय, अध्याय १८)

सत-मण्डलीके साथ जानेश्वर महाराज गोगु कुम्हारके धर आये। नामदेव भी साथ थे। जानदेवने गोगुसे कहा— तुम कुशल कुम्भकार हो। बताओ, इनमेंसे कौन-सा वर्तन कच्चा है।'

गोगुने पिण्डी लेकर पीटना शुरू कर दिया। सभी उत मार खाकर भी शान रहे। नामदेवकी वारी आयी तो वे एक-दम बिगड़ उठे। चट गोगु बोला—'यहीं कच्चा भाजन है।'

नामदेव वडे ही दुखी हुए। सब संतोके दीन गोगु-द्वारा किये गये असमानकी उहँने भगवान्से शिकायत की।

भगवान्ने कहा—'नामा! सच है कि तू मेरा परम भक्त है और मैं तेरे लिये सदा सब कुछ करनेको तैयार रहता हूँ। फिर भी तुझमेंसे देरेतेरेका मेंद न मिटनेसे तू कच्चा ही है। वह तो बिना गुरुकी शरण गये मिट नहीं सकता। यिवालरमें विठोत्रा खेचर परम सन है। उनके पास जाकर ज्ञान प्राप्त कर आ।'

नामदेव विठोत्रने पास गये। विठोत्रा सो रहे थे। उनके पैर शिवकी पिण्डीमर धरे देख नामदेवको बड़ी अश्रद्धा हुई। उसने चोचा—क्या ऐसे ही अविकारिये जान पानेकी ग्रस्त

योगक्षेमं वहान्यहस्

भगवान्की भक्तिसे तब्बीन नामदेवका घरसे विल्कुल ही ज्ञान जाना रहा। उनकी पत्नी राजाईको पुत्र भी हो चुका था। घर दाने दानेके लिये मुहूर्ताज हो गया। पात-पडोसके लोग व्यग्य कसने लगे। माता गोणाई भी नामदेवको उनकी करनीपर कठोर बच्चन कहा करती।

एक दिन इन्हाँ सरसे अत्यन्त अनुत्त हो नामदेव घरसे निकल पडे और पंदरिनाथके द्वारपर आकर सजल नेत्रोंसे उनकी प्रार्थना करने लगे—‘ताथ! क्यो आपने मुझे संसारके इस कठोर द्वन्द्वमे बोधा। कहो हो? आओ, शीघ्र सहारा दो।’ भगवान्ने प्रकट होकर नामदेवको आधारन दिया।

इधर नामदेवके घरसे चले जानेपर उनकी माता गोणाई किसी तरह पेटकी ज्वाला जानत करनेके निमित्त इधर-उधरसे कुछ मौगनेओं निकल पड़ी। इसी बीच भगवान् केव सेठका लप धारण कर नामदेवके घरका पता पूछते-पूछते वहाँ आ पहुँचे। पास-पड़ोसकी खियों हँसी उड़ाती गजाईके पास दौड़ी आर्यों और कहने लगी—‘पाहुने आयेहैं, आद-भगत करो न।’

राजाई वडे सकटमें पढ़ गयी। वह उनसे कहने लगी—‘वरमे एक दाना अन्न नहीं और ये अतिथि आये हैं। क्या कहूँ? कह दूँ, ये नहीं हैं, उनके आनेपर पधारियेगा।’

अतिथि दरखाजेके बाहरसे सारी बातें तुन रहा था। उसने गजाईको पुकारकर कहा—‘नामदेव मेरा वचपनका माथी है। मुझे पता चला कि इन दिनों वह वडी विपत्तिमे है। इन्हिये मैं अर्गर्फियोंकी यैलियों लाया हूँ। इन्हें ले

लीजिये। वस, इतना ही काम है।’

राजाई बाहर आयी और उसमे थैलियों ले ली। अतिथि जाने लगा तो राजाईने कहा—‘जरा ठहरिये, नहा-धोकर भोजन कीजिये और फिर जाइये।’ अतिथिने कहा—‘नहीं, नामदेवके बिना मैं ठहर नहीं सकता।’ और वह चला गया।

राजाई भीतर जाकर अर्गर्फियोंकी थैलियों डैंडेलीं, सोनेका ढेर देख वह आनन्द-विभोर हो उठी। तत्काल कुछ अर्गर्फियों ले दूकानदारके पास पहुँची और बहुत-सा सामान खरीदकर घर ले गयी। फिर जल्दीसे विविध पकवान बनानेमें जुट गयी।

इधर माता गोणाई कुछ सामान मॉगकर भगवान् विट्ठलके मन्दिर पहुँची।

नामदेवको लेकर घर आयी। राजाईको प्रसन्नमुखसे विविध पकवान बनाने देख उनके आश्र्वयका ठिकाना न रहा। राजाईने माताके चरण छुये और पतिको प्रणाम कर उनके मित्र केशव सेटका सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

नामदेवको रहस्य समझते देर न लगी। उनकी ऊर्जासे अश्रुधाराएँ दहने लगीं। अपने लिये भगवान्को यह कष्ट देख उन्होने प्रभुसे बार-न्वार क्षमा माँगी। उनका हृदय द्रवित हो उठा।

इसी उपलक्ष्यमे नामदेवने गाँवके सब ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया और भरपेट भोजन कराकर सारा धन उन्हें छुटा दिया।
—गो० न० वै०
(भक्तिविजय, अध्याय ४)

सबमें भगवान्

दृपुरुकी कार्तिक-जात्राका मेला लगा था। अनेको माधु-मत पधारे थे। एकादशीका निर्जल उनवास करके द्वादशीके दिन पारणके लिये सभी उत्तावले दीख रहे थे। कोई आदा नानना, कोई रोटी बनाता तो कोई रसोई बनाकर भगवान्को भोग न्याता था।

इसी बीच एक काल कुत्ता वहाँ आ पहुँचा। साधुओंकी एकादशीका उसपर भी जाफी असर दीख रहा था। कदाचित् पहले दिन कुछ भी न मिलनेमे वह भूखा कुत्ता किसीके आदेमे दूँह डालता, किसीकी पक्की रोटी छूता तो किसीकी परोसी शारीरमें ही मुँह डालता। प्रत्येक साधु उसे दुन्कारता

मारता, भगाता था। कोई कहता—‘हमारा अन्न छू गया, अब वह खानेयोग्य नहीं रहा। दूसरा महात्मा कहता—‘अरे। यह काल कुत्ता है, धर्मजात्राओंमे पढ़ा है कि इसकी छूत नहीं लगती।’

चारो ओरसे तिरस्कृत कुत्ता नामदेवके पास आया और उनकी सेकी रोटी लेकर भागा। वह देख नामदेव पासमे खखली धीकी कटोरी ले उसके पीछे-पीछे दौड़े और कहने लगे—‘भई। लखी रोटी मत खाओ, पेटमे दर्द होगा। यह धी है, मैं इसमे रोटी चुपड़कर डेता हूँ, फिर खाओ।’ नामदेव धी चुपड़कर अपने हाथों उसे रोटी खिलने लगे।

सभी साधु-महात्मा नामदेवकी करनीपर हैंमने लगे और कहने लगे—‘नामदेव पागल हो गया है’। पर नामदेवने उनकी परवा नहीं री।

अन्तर्में पेट भर जाने के बाद श्वानने मनुष्य-वाणीमें नामदेवसे कहा—‘गामदेव। सचमुच तुम्हारी सभी प्राणियोंमें समान है।’ यन्हें उटे हुए इन महात्माओंकी अभी गिरमहाइ मिटी

नहीं, पर तुमने ‘सर्वत्र समहाइ’ रखनेका मेरा आदेश अपने अन्तर्में भर लिया।’

यह कहना श्वानन्प भगवान् अन्तर्धान हा गये। उपस्थित सभी साधु-महात्मा नामदेवका भाव सरहने लगे और भगवान्को गिलनेका अवसर पाकर भी उसे खो देनेपर पछतान लगे।—गो० न० व० (भक्तिविनय, अध्याय २०)

नामदेवका गौके लिये प्राणदान

गत जाने पर और मत नामदेव महाशज तीर्थ यात्रा करते रहते हमिनापुर (दिल्ली) पहुँचे। मतोंके आनेसे दिल्लीमें नामदेवके रीतनकी धूम मच गई। हजारोंकी सम्माने लोग जुटने और कर्नन सुनकर आनन्दमय हो जाते।

यह रात शादगाहने जानेंतर पहुँची। नामदेवके रीतनकी प्रचण्ड ध्यनिसे दिल्लीकी गली-गली गूँजती देख उसके कोथरा पारुदार न रहा। एक दिन रातम रोता हुआ वह इस प्रचण्ड दोलाहल्से जाग उठा। तल्काल धोइपर मचार हो दहर रीतन खलपर पहुँचा। उसने औंगों देरया कि लाखोंकी भीड़ बहाँ जुटी है।

शादगाह लैंड आया। उसने इस काफिर नामदेवको सूप गजा चढ़ानेका निश्चय किया। सोंचा—हिंदू गायभी कुर्वानीसे ठिक्काने आने है। अत दीक रीतनके समय उसीके सामने यह किया जाय और नामदेवकी सर्त देनी जाय।

दूसरे दिन कीर्तनक समय उसीने सामने बाढ़गाहने अपने हाथों गांहत्या करके नामदेवसे कहा—‘यदि तुम सच्चे कर्ता हो तो इसे जिन्नओं तभी हिंदूर्भर्मपर तुम्हारा प्रम

माना जायगा। नहीं जिच समोगे तो इसे टाग मानकर तुम्हारा मी सिर उड़ा दूँगा।’

गोहन्यासे नामदेवका हृदय पार्न-पानी हो गया। वे भगवान्को मनाने लगे—‘प्रभो। जन्मी आओ और सनातन-धर्मकी तथा इस देवताकी रक्षा करो।’ नामदेवकी औंखोंसे औंसु-ओंकी धारा वह चली। गो-माताका सिर गोदमं लेकर वे बड़ी ही करुणासे भगवान्की गुहार करने लगे।

ओर करते करते नामदेवको मूर्छा आ गयी और वे राजाहीन हो गिर पड़े। उनके प्रिय परमात्माको देया आयी। वे वहों प्रकट हुए और नामदेवको जगाने लगे—‘नामा। उठो, प्यारी गायकी रक्षाके निमित्त प्राण देनेवाले तुम धन्य हो। मैं तुम्हारे सहायतार्थ आ गया हूँ। देखो, गाय तुम्हें चाट रही है, उठो।’

नामदेव पुन सजायुक्त हुए। उन्होंने औंखे खोली। सचमुच गाय उन्हें चाट रही थी। शादगाहने नामदेवके चरणपर मिर धरकर लगा मौंगी। —गो० न० व० (धनुकथा-भगव)

पारस-कंकड़ एक समान

नामदेवकी पक्षी राजाहृ अपनी सेली परिसा भागपतरकी पक्षीके पास गयी। घेरलू सुप दुखकी कथाके प्रमङ्गमे राजाहैने अपने घरसी अत्यधिक विप्रतारी राम-कहानी सुनायी।

परिसाकी पक्षीने कहा—‘सखि ! मेरे पास माता रकिमाणी-की दी हुई एक पारसमणि है। मैंने वन्तु से लोहेको उसे छुल्कर सोना बनाया और वह सारी सम्पत्ति तहस्वानेमें धरी है। तू भी उसे ले जा और योंदे से लाहेका उससे स्वर्ण कराके सोना बना ले तथा मेरी मणि शीघ्र मुझे ला दे। किसीको यह मेद न बताना।’

राजाहै पारस ले आयी। लेमे उसका सर्व करते ही वहुत-सा सोना बन गया। उसे बाजारमें बैचकर वह वहुत-सा सामान रखी लगी और विविव व्यञ्जन तैयार करके बैठ गयी।

नामदेव भोजनके लिये धर आये। वर्ग नया रग देय उन्हें आश्र्वर्य हुआ। पक्षीसे सब कुछ साफ-साफ बतानेको कहा। राजाहैने मारी घटना कह सुनायी। तब नामदेवने कहा—‘दिखाओ मुझे।’

राजाहैने मणि लाकर नामदेवके हाथमें धर दी। नामदेव

उसे लेकर मध्याह्न-स्नानके लिये चल पड़े। चन्द्रभागमें स्नान करके आहिकके लिये बैठे और उस पारसमणिको चन्द्रभागमें डाल दिया।

इधर राजाईंको देर होते देख परिसा भागवतकी पक्षी आयी और उससे पारस मॉगने लगी। राजाईंने घाटपर पहुँच-कर नामदेवसे उसे मॉगा तो उन्होंने कहा—‘उसे तो चन्द्रभागाने ले लिया।’

दुःखित और लजित हो राजाईंने आकर भागवतकी पक्षीको यह बात सुनायी। बेचारी खाली हाथ घर लौटी।

भागवतके घर आनेपर उन्होंने मणि न देखकर अपनी पक्षीसे पूछा। उसने सारा हाल कह सुनाया। उसने सर्वत्र प्रचार किया कि नामदेवने पारस चुरा लिया। लोगोंमें एक तहल्का मच गया।

देखते-देखते चन्द्रभागापर भीड़ लग गयी। भागवतने आकर नामदेवसे सीधेमे पारस दे देनेको कहा। नामदेवने कहा—‘उसे मैंने तो चन्द्रभागमें डाल दिया। चाहिये तो निकालकर दिखा दूँ।’

लोग हँसने लगे। नदीके गर्भमें गयी मणि कैसे निकल सकती है।

नामदेवने हुब्रकी लगायी, अङ्गलिपर कुछ ककड़ निकाले और कहा—‘लीजिये, इतने सारे पारस।’

मजाक करते हुए लोगोंने लोहेके टुकड़े उन कंकड़ोंसे स्पर्श कराये। सचमुच वे सोनेके बन गये। लोगोंके आश्र्यका ठिकाना न रहा। —गो० न० वै०

(भक्तिविजय, अध्याय १८)

धूलपर धूल डालनेसे क्या लाभ ?

रँका-बॉका पति-पक्षी थे। वडे भक्त और प्रभुविश्वासी थे। सर्वथा निःस्फृह थे। भगवान्ने उनकी परीक्षा करनेकी ठानी। एक दिन वे लकड़ी लाने जगल्को जा रहे थे। पति आगे-आगे चल रहे थे, पक्षी पीछे-पीछे आ रही थी। राहमें किसी चीजकी रँकाजीको ठोकर लगी। उन्होंने देखा, सोनेकी मोहरेंसे भरी थैली खुली पड़ी है। वे उसे देखकर जल्दी-जल्दी धूल डालकर उसे ढकने लगे। इतनेमें बॉकाजी आ

पहुँचीं। उन्होंने पतिसे पूछा, ‘क्या कर रहे हैं ?’ रँकाजीने पहले तो नहीं बताया, पर विशेष आग्रह करनेपर कहा—‘सोनेकी मोहरें थीं। मैंने समझा, इनपर कहाँ तुम्हारा मन न चल जाय; इसलिये इन्हें धूल डालकर ढक रहा था।’ बॉकाने हँसकर कहा—‘वाह, धूलपर धूल डालनेसे क्या लाभ है ? सोनेमें और धूलमें भेद ही क्या है, जो आप इन मोहरेंको ढक रहे हैं ?’

जब सूली पानी-पानी हो गयी !

एक शूद्र अपनी पक्षीके साथ कार्तिकी यात्राके निमित्त पढ़रपुर गया। उसके साथ उसकी नन्ही-सी पुत्री जनी भी थी। उत्सव समाप्त होनेपर वह अपने घर लौटने लगा। जनीका मन पढ़रपुरमें भगवान्नके भजन-कीर्तनमें इतना रम गया कि वह माता-पिताके साथ घर जानेके लिये तैयार नहीं हो रही थी। माता-पिताने बहुत समझाया, पर उसने एक मीन मानी। लाचार माता-पिता उसे विद्वल-मन्दिरमें ही छोड़कर चले गये।

भजन समाप्त होनेपर जब सभी भक्त चले गये, तब नामदेवकी दृष्टि जनीपर पड़ी। उसके अभिभावकको वहाँ न देख उम अनाथाको वे अपने साथ घर ले आये। अब जनी नामदेवके घर दासी बनकर रहने लगी।

नामदेवके यहाँ नित्य ही वडे-वडे साधु-सत आते। जनीको अनायास उनका सत्सङ्ग प्राप्त होता। सत्सङ्गकी महिमासे धीरे-धीरे उसका मन भगवान्नमें इतना रमने लगा कि वह अपना नित्यका काम भी भूल जाती। उसने अपना चित्त प्रभु-चरणोंमें समर्पित कर दिया। इस कारण भक्तवत्सल भगवान्नको उसके काम पूरे करने पड़ते। कई बार ऐसा हुआ कि वह भजनकी बुनमें कितने ही घरके काम करना भूल गयी। नामदेवकी माता गोणाई ज्यों ही उसे डॉटने-फटकारने लगतीं त्यों ही भगवान् उन कामोंको स्वयं रूप बदलकर कर देते।

प्रातःकाल आटा पीसनेका काम जनीके जिम्मे रहा। एक दिन वह सो गयी। भगवान्ने तल्काल पहुँचकर उसे जगाया और आटा पीसनेमें उसका साथ स्वयं देने लगे। आटा

पीसते-पीसते सुवह हो गयी । भगवान् जल्दीसे उठे और मन्दिरमें जाकर बैठ गये । इसी वीच उनके गलेका जड़ाऊ हार बहों रह गया ।

पूजाके समय पुजारीने हार न देखकर शोर मचाया । सभीकी तरह जनीसे भी पूछा गया । पर उसने साफ इनकार कर दिया । वेचारी कुछ जानती ही न थी । जनीपर जलनेवालेने उसके घरकी तलाशी लेनेको कहा और जॉचमें हार उसीकी कोठरीसे बरामद हुआ ।

भगवान्के गलेका हार चुराने और इनकार करनेके अपराधमें लोगोंने जनीको सूलीपर चढ़ानेका कठोर दण्ड दिया । भीमाके तटपर सूली बैठायी गयी और जनीको उसपर चढ़ानेका उपकम हो ही रहा था कि अपने निरपराध भक्तको बचानेकी बात भगवान्ने सोच ली । लोगोंके देखते-देखते सूली पानी-पानी हो गयी और लोग जनीवाहको निर्दोष बता उसे गौरव देने लगे ।—गो० न० वै० (भक्तिविजय, अ० ३१)

नित्य-नियमका कठोर आचरण

बार्षी नगरमें जोगा परमानन्द नामक प्रसिद्ध हरिभक्त नित्य पूजाके बाद गीताका एक-एक श्लोक कहकर पढ़रिको ७०० बार साठाङ्ग नमस्कार करता । नमस्कार किये बिना कभी उसने अन्न-जल ग्रहण नहीं किया । एक बार महाद्वारमें एक व्यापारी आया । रातमें पानी वरसनेसे कीचड़ हो गया था । जोगा नित्यकी तरह उस दिन मी आया और उसने नमस्कार शुरू कर दिये । उसकी देह कीचड़से सन गयी ।

व्यापारी यह स्थिति देख अत्यन्त प्रमावित हुआ । पासकी दूकानसे एक वहुमूल्य पीताम्बर खरीदकर वह जोगाको देने लगा । जोगाने कहा—‘भाई ! मुझपर दया आती हो तो कोई फड़-पुराना बख दे दो । यह वहुमूल्य बख तो भगवान्को ही फवता है । इसे भगवान्को ही चढाओ ।’ व्यापारी नहीं माना, उसका अत्याग्रह और निष्ठा देख जोगाने पीताम्बर स्वीकार कर लिया ।

दूसरे दिन जोगा पीताम्बर पहनकर नमस्कार करने लगा । उसका मन रह-रहकर पीताम्बरको कीचड़से बचानेमें ही लग जाता । फलत, मध्याह्न हो गया, पर उसके नमस्कार पूरे नहीं हुए । जोगाको यह बात ध्यानमें आते देर न लगी । पीताम्बरके कारण नित्यके नियममें विनाप पड़ते देख वह बड़ा दुखी हुआ और सोच-विचार करता भगवान्के महाद्वारके बाहर आ अनमना-सा बैठ गया । अपने कियेपर पश्चात्तपके कारण उसकी आँखोंसे अविरल अशुघारा वह चली ।

इसी वीच एक किसान सुन्दर बैलोंकी जोड़ीपर हल्की

धुर रखवे जाता दीख पड़ा । जोगा अपने अपराधके प्रायश्चित्तकी एक अद्भुत कल्पना अनायास सूझ पड़नेसे उछल पड़ा । उसने हरवाहेको रोककर कहा—‘मैया ! यह वहुमूल्य पीताम्बर ले लो और यह बैलोंकी जोड़ी मुझे दे दो । कृपाकर मुझे हल्के बौंध दो और बिगड़कर बैलोंको दो चाबुक जड़ो; ताकि बैल मुझे घसीटते दूर ले जायें । फिर तुम आकर बैलोंको ले जाना ।’

पीताम्बर बैलोंसे अधिक मूल्यका देख किसान लोभमें आ गया और ‘लोभमूलानि पापानि’—उसे कुछ भी करनेमें विवेक नहीं रहा । हल्के जोगाको बौंध उसने बैलोंपर चाबुक फटकारा । बैल प्राण लेकर भाग निकले ।

वहुत दूर धोर जगलमें पहुँचकर बैल रुके । पत्थरों, ककड़ों और कॉटोंसे जोगाका सारा शरीर लहू-लुहान हो गया था । प्राण निकलना ही चाहते थे कि जोगाने अपनेको संभालकर भगवान्की अन्तिम स्तुति आरम्भ की । भक्तकी नियमनिष्ठा पूरी हो गयी । भक्तवत्सलसे अब रहा नहीं गया । पीताम्बर पहने बनमाली बैलोंके बीच आविर्भूत हो गये और उन्होंने उसे हल्के बन्धनसे मुक्त किया ।

भगवान्के श्रीहस्तका स्पर्ग होते ही जोगाकी सारी पीड़ा, सरे धाव हवा हो गये । नित्य-नियमका ऋठोर आचरण करनेवाले अपने इस भक्तको भगवान्ने सदाके लिये अपना बना लिया ।—गो० न० वै०

(भक्तिविजय, अव्याय २०)

प्रेम-तपस्विनी ब्रह्मविद्या

देवर्षि नारद ब्रजभूमिमें अमण कर रहे थे। श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार हुआ नहीं था; किंतु होने-वाला ही था। घूमते हुए वे एक यमुनापारके बनमें पहुँचे। देवर्षिको आश्र्य हुआ—सृष्टिमें इतनी शान्ति भी सम्भव है? लगता था कि उस काननमें पवनके पद भी शिथिल हो जाते हैं। पशु-पक्षी कहीं दीखते नहीं थे। पूरा कानन निस्पंद-गतिहीन और आश्र्य-तो यह था कि वहाँ पहुँचकर देवर्षिकी वीणा भी मूक हो गयी थी। उनकी गति भी शिथिल होती जा रही थी और उनका मन भी लगता था कि विलीन होने जा रहा है।

‘कौन है यहाँ? किसका प्रभाव है यह?’ देवर्षिने इधर-उधर देखा। एक अद्भुत शान्त वहाँ सर्वत्र व्याप्त थी; किंतु उसमें तमस् नहीं था। शुद्ध सत्त्वमयी शान्ति। जैसे आलोक एवं आनन्दसे परितु स्कण-कण अपनी गति खोकर खिर हो गया हो।

‘तुम कौन हो देवि?’ एक अद्भुत ज्योतिर्मयी देवी वृक्षमूलमें बैठी दीख पड़ी। वह तपस्विनी थी, शृङ्गर और आभूषणसे रहित थी। उसमें लगता था कि कोई पार्थिव अंश है ही नहीं, केवल

ज्योतिका पुङ्गीभाव है वह। देवर्षिको लगा कि वह चिरपरिचिता है, फिर भी अपरिचित है। उसे पहचानकर भी पहचाना नहीं जा पाना।

‘मैं ब्रह्मविद्या हूँ।’ देवीका स्वर प्रणवके परानादके समान गूँजा।

‘ब्रह्मविद्या! आप? आप क्या कर रही हैं यहाँ?’ देवर्षिने श्रद्धासे मस्तक झुका दिया।

‘आप देख ही रहे हैं कि तपस्या कर रही हूँ।’ देवीने उत्तर दिया।

‘परंतु आपका प्राप्तव्य क्या है?’ देवर्षि नहीं समझ पाते थे कि जिनकी प्राप्तिके लिये ऋषिगण युग-युगके तपसे पवित्र मनके द्वारा ध्यान करते हैं, मनन-निदिध्यासन करते हैं, उस ब्रह्मज्ञानकी साक्षात् अधिदेवताको पाना क्या हो सकता है। जो निखिल कामनाओंकी निषेधरूपा हैं, उनमें कामना क्या और विना कामनाके तप क्यों?

‘मैं गोपीभावसे श्रीनन्दननन्दनके चरण-कमल पाना चाहती हूँ।’ ब्रह्मविद्याके नेत्र सज्जल हो गये। ‘उनकी कृपाके बिना उनके श्रीचरण मिला नहीं करते देवर्षि!'

—पञ्चपुराण, पातालखण्ड ७२

हंसोंके द्वारा भीमको मन्देश

महामारु शुद्धके १०वें दिन भीमपितामहके ही बगलाने जाएंसे दिग्बर्डीकी आड़ेलेकर अहुने उन्हें बायल कर दिया और अल्पतोगल्ला उन्हें रखते गिरा दिया। उस समय सूर्य उन्होंने रहे थे और उस दिन पाँच कुण्ड पक्षीर्थी थी। तबतक सूर्य दक्षिणायन ही थे। भीमजीके शरीरमें भीमी औरसे बाग चिंता हुए थे। इनलिये गिरनेपर भी वे उन बाणोंके ऊपर तृप्ति देंगे गये। धरतीसे उनका स्पर्श न हो सका। तबतक उनमें तिक्ष्ण मात्रा आवेद हो गया और उन्हें वह पदा चल गया कि यह दक्षिणायन रात भग्नेके उपयुक्त नहीं है। इनलिये उन्होंने अपने दोषहत्याकर्ताके बावें तथा प्राणोंका भी त्याग नहीं किया। तब-तक आकाशमें दिक्ष्य बर्जी हुई कि—‘सुन माझोंके देखा भीमजीने इष्टी सूर्य दक्षिणायनमें कैसे स्वीकार कर ली?’

भीमजीने कहा—‘मैं अमी जीवित हूँ और उत्तरायण अनेक अपने दानोंने जैव रक्खा हूँ।’ इद उत्तरी मात्रा भगवदी सर्वार्थी रक्षको मन्त्रसहृदा, नव उन्होंने महापिंडीको हंसके रूपों

उनके पास भेजा। तबन्तर सानसुरेश्वरकी राजधानी हंस भीमपितामहके दर्शनके लिये बढ़ी आये जहाँ राम्पलमें वे शशव्यापर पड़े थे। हंसनवर्गी मृत्युवोने उनकी प्रशंसिगा की। वहाँ उन हंसोंने आगममें हुठ आमलपा-विचार-चिमर्ज किया और कहने लगे—‘भीमजी तो वह महान्‌म है। मला वे दक्षिणायनमें शरीरत्याग क्योंकर करें? ऐसा कहकर वे चलने लगे। भीमजी उन हंसोंको पहचान गये। वे बोले—“हंसगण! मैं दक्षिणायन सूर्यमें कभी भी परलोक-यात्रा नहीं करता। इसका अप पूर्ण विद्याम रक्षते। मैंने उत्तरायण सूर्यमें परदोक जानकी चान मनमें पहलेसे ही जिक्रिय कर रखी हूँ। पितामह ब्रह्मानसे सूर्य में अर्धान हूँ। अत्येव तबतक ग्राम धारण करनेमें मुझे कोई कठिनाई या दशा नहीं उपचिन होती।”

ऐसा कहकर वे शशव्यापर मो रहे और हंस-गण उड़ने हुए दक्षिण दिग्गार्डी और चले गये

(नं० ३०३ अंतर्गत अन्तिम २२५)

संत बनना सहज नहीं

रोजन गाँवमे एक ब्राह्मण नित्य वात-वातपर पल्लीसे झगड़ता और जब-तब कहता—‘नहीं मानोगी तो सतोवा पवारके पास चला जाऊँगा; फिर खूब दुर्दशा भोगोगी।’ पल्ली पतिकी इस धमकीसे परेशान हो गयी थी।

एक दिन संतोजी उनके घर भिक्षार्थ आये। ब्राह्मण-पल्लीने अपनी रामकहानी उन्हें सुनाकर दयाके लिये ग्रार्थना की। सतोवाने कहा—‘अब जब कभी वह ऐसा कहे, तब तुम साफ कह देना कि ‘अभी जाइये।’ यों उसे मेरे थास भेज देना। मैं मन्त्र फूँक दूँगा, फिर वह तुम्हारे बश हो जायगा।’

सत चले गये। पतिदेव आये। भोजनमें विलम्ब देख बिगड़ने लगे और अपना नित्यका अख चलाया—‘यदि ऐसा ही करोगी तो मैं जाकर सतोवा बन जाऊँगा।’ पल्लीने कहा—‘देर क्यों? इसी दम जाइये।’

ब्राह्मण पेचमे पढ़ गया। वह लौटा और कुछ वस्त्र ले पगड़ी-कुरता पहन निकल पड़ा। सतोजीके पास आकर उसने अपने-को पूर्ण वैराग्य हो जानेकी वात कही और उसे गिर्यवना लेनेकी ग्रार्थना की। संतोवाने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। ब्राह्मण वहीं रह गया।

संतोवाका आदेश पाकर वह तूँवा भर जल लाने नदी-

पर गया। इसी नीच संतोवाने उसके सारे कपड़े फाढ़कर पेड़पर फेंक दिये। ब्राह्मण भूखसे तड़फड़ता ऊपर आया।

संतोवाने उसे लँगोटी लगवायी। संतोवा-दम्पती कन्द-मूल खाने लगे। ब्राह्मणको भी वही दिया गया। खाते हुए उसने कहा—‘तीता ला रहा है। कुछ भीठी चीज दीजिये।’ सतोवाने पासके पेड़से कड़वा नीम तोड़कर दिया। ब्राह्मण उसे मुँहपर रखते ही दुखी हो उठा। उसने सोचा—धरपर सूखी रोटी तो मिलती थी, मैंने यह चिपक्कि क्यों मोल ली। वह रोने लगा।

सतोवाने कहा—‘जब वैराग्यका यह पहला पाठ ही पढ़नेमें तुम रोने लगे, तब फिर संसारमें रहकर उदास क्यों रहते हो। वार-वार संतोवा बननेका डर दिखाकर पल्लीको क्यों छलते हो। क्या संत बनना सहज है?’

अब तो उसने क्षमा माँगी और भविष्यमें पल्लीको कभी ऐसा न कहनेकी प्रतिजा की।

संतोवाने लँगोटी पहने ही उसे उसके घर भिजवा दिया। सतोवाद्वारा पहलेसे समाचार मिला होनेके कारण पल्लीने तल्काल उसे वस्त्र पहननेको दे दिया। तबसे वह सुखसे रहने लगा।—गो०न०व०

(भक्तिविजय, अ० ५६)

सभीका ईश्वर एक

‘नरहरि! भगवान् विष्वलनाथने प्रसन्न हो मुझे पुत्र दिया। मैं आज उन्हें रक्षजित कमरपट्टा चढ़ाने आया हूँ। पंदर-पुरमें सिवा तुम्हारे कोई उसे गढ़ नहीं सकता। इसलिये उठो, भगवान्की कमरका नाप ले आओ और शीघ्र उसे तैयार कर दो।’—एक साहूकारने आकर नरहरि सुनारसे कहा।

नरहरिने पढ़रपुरमें रहकर भी कभी भूलकर विष्वलनाथ-का दर्शन नहीं किया था। वह परम श्रेव था। शिवके भजन-पूजनमें सदा अनुरक्त वह भक्त वैष्णवोंके देव विष्वलनाथसे इतना बचता कि वाहर निकलते समय सिर नीचा कर चलता, ताकि धोखेमें विष्वल-मन्दिरका शिखर-दर्शन भी न हो जाय।

नरहरिने मन्दिरमें जाना स्पष्टतः अस्वीकार कर दिया। लाचार हो व्यापारी स्वय ही जाकर नाप ले आया। कमरपट्टा

बना और भगवान्को पहनाया गया तो छोटा होने लगा। फिर नरहरिके पास उसे लाया गया। नरहरिने वड़ी कुशलता-से उसे बड़ा कर दिया। अबकी बार वह अपेक्षासे अधिक बड़ा हो गया।

साहूकार चिन्तित हो उठा—‘क्यों सचमुच भगवान् हमपर अप्रसन्न हो गये? क्योंकर वे इसे स्वीकार नहीं करते?’ उसने आकर नरहरिसे वड़ी अनुनय-विनय की। अन्ततः नरहरि मन्दिर चलने और स्वय नाप लेनेको तैयार हुआ—इस गर्तपर कि, मेरी आँखोंपर पट्टी बौध ले चलो और मैं हाथोंसे टटोलकर नाप ले लूँगा।

आँखोंपर पट्टी बौधे नरहरि सुनार पकड़कर मन्दिरमें लाया गया। उसने मूर्तिको टटोल तो दशमुज, पञ्चवदन, भुजङ्गभूषण, जटाधारी शक्त ईटपर खड़े मालूम पड़े। अपने

आगाम्यदेवतों पासर उनके दर्शनसे बचनेकी अपनी दुर्दिपर उसे तरस आयी और उसने अत्यन्त अनुत्स द्वे आँखोंसे पट्टी गोली । पट्टी गोलते ही पुन पीनाम्बरथारी बनमालीको देरप बह नक्षत्रामा और पुन पट्टी बौध ली । फिर हाथोंमे टटोला तो ये ही भगवानीगति भोलामाथ और पट्टी गोलते ही रुक्मिणीरमण पाण्डुरन्द इन्द्रपर सहे तथा कठिपर हाथ धरे दियायी पढ़ने ।

नरहरि बहे अगमजन्ममें पड़ गया । उसे ईंधरमें भेद-बुद्धि रखनेपर अच्छा पाठ मिल गया । गिरका अनन्य भक्त-

होनेके कारण उसे अब ईश्वराद्वैतका रहस्य समझते देर नहीं लगी । उसने दीनवाणीसे प्रभुकी प्रार्थना की ।

भगवान् प्रसन्न हो उठे । ईश्वरमें भेदबुद्धि नष्ट करना ही उनका लक्ष्य था । उसके सिद्ध हो जानेपर भक्तकी अनन्यताके बशीभूत हो उन्होंने उसकी प्रसन्नताके लिये अपने सिरपर शिवलिङ्ग धारण कर लिया । तभ्यसे पढ़रपुरके विद्वल भगवान्के सिरपर आज भी शिवलिङ्ग विराजमान है ।—गो०न००५०

(भक्तिविजय, अन्याय २०)

अकालपीडितोंकी आदर्श सेवा

एक वार धामणगाँवमें बहुत बड़ा अकाल पड़ा । लोग अनन्यके लिये तदृप तदृपकर मर रहे थे । गाँवके पटवारी माणकोजी बोथलासे यह देखा नहीं गया । स्वय पति-पत्नी और पुत्र तथा पुत्रवधूमात्रके इस छोटेसे परिवारमें भगवान्नसी दयासे कार्यी धन धान्य और पशु-सम्पत्ति थी ।

माणकोजीने भगवा अब भडार लुटा दिया । देते-देते अब समाप्त हो गया, पर अकाल-पीडितोंको राहत न मिली । माणकोजीने पत्नी और पुत्रवधूके गहने बैच अकाल-पीडितोंको अब पहुँचाया । बैचारेंनो पशु भी बैच देने पड़े, फिर भी अकाल पीडितोंरा तांता दूरा नहीं ।

पटवारीने नोचा कि अब कुल्हाड़ी ले जगलसे लकड़ी तोड़ लायें और उन्हें बैच अकाल पीडितोंकी सेवा की जाय । वह जगलमें गया, लकड़ी भी लाया, पर उसे बैचनेपर केवल तीन पेसे उसे मिले । एक पेसा उसने भगवान्को चढाया, दूसरेसे पूजन-सामग्री ले नित्यका भगवत्पूजन किया और बाकी बचे वैसेका आद्य अँगोंठेमे बौध अतिथिकी प्रतीक्षा करने लगा ।

पाटिलकी दयनीय दशा देख अब कोई उसके निकट अतिथि बन आनेको प्रस्तुत न था । माणकोजीको हार्दिक दुःख हुआ । सेवा और दान नसीर न होनेसे वह अनमना हो उठा ।

भगवान्से यह देखा नहीं गया । ब्राह्मणका रूप धरकर वे स्वय उसके अतिथि बनकर आये । माणकोजीने बहे आनन्दसे आदा उन्हें दे प्रणाम करके कहा—‘मुझे आज इतनी ही अनुकूलता है, क्षमा करें ।’

ब्राह्मण-वेषपात्री भगवान् उसे मन्दिरमें ले गये । अहरे लाये । इसी बीच ब्राह्मणी भी भूख-भूख करती वहाँ आ पहुँची । ब्राह्मणने तीन टिक्कर बनाये । उनमेंसे एक उसने ब्राह्मणीको दिया, एक स्वय लिया और एक पटवारीको खानेको दिया । आधा खाते-खाते ब्राह्मणी और ब्राह्मण तृप्त हो गये । पटवारी अकाल पीडितोंकी सेवाका साफल्य मान फूल नहीं समाता था ।—गो० न००५०

(साधु-सत्तोंच्या गोष्टी, पृष्ठ ८५)

अग्नि भी वशमें !

परली बैजनाथके नागारिक वहाँके जगन्मित्र नामक ब्राह्मण-की विरक्ति और भक्तिमें अत्यधिक प्रभावित थे । प्रतिदिन रातमें कीर्तन-प्रसङ्गमें उनकी अमृत-नाणी सुन सभी गद्दद हो उठते । जगन्मित्र नित्य गाँवसे भिक्षा माँग परिवारका भरण-पोषण करते ।

सासारमें ऐसे भी लोगोंकी कमी नहीं, जो दूसरेका उत्कर्ष सहन नहीं कर पाते । जगन्मित्रसे जल्नेवाले भी परलीमें पैदा

हो गये और वे भाँति-भाँतिके अपशब्दोंसे उनकी निन्दा करते । फिर भी कोई उनकी बातोंपर ध्यान नहीं देता था ।

सीक्षकर उन दुर्जनोंने जगन्मित्रको सपरिवार झूँक देनेकी सोची । रातमें सुनसान हो जानेपर उन्होंने ब्राह्मणके छपरमें मशालोंसे आग लगा दी । भीतर ताप और उजाला पाते ही जगन्मित्रको यह समझते देर न लगी । बाल-बच्चे गाढ निद्रामें सो रहे थे । अपघातकी स्थिति देख जगन्मित्रने

सबको उठाया और एक साथ बैठ प्रभुके भजनमें रह चिता दी।

भौरमे जगते ही लोगोंको आग दिखायी दी। उन्होंने सोचा—हो-न-हो, आग रातमें देरीसे लगी हुई है। वे शोक करते दौड़ पढ़े—हरे। हरे। फिस दुष्टने जगन्मित्रके घरको आग लगायी। निश्चय ही सपरिवार भक्त इसमें भस्त हो गया होगा।

छप्परके ईंधनको जलाकर अग्निदेव जान्त हो गये। जगन्मित्रके भजनने उन्हे बधामे कर लिया था, फिर वे कैसे उसके घरके भीतर जलाने पहुँच सकते। लोग दरवाजा सोल भीतर छुमे। जगन्मित्र सपरिवार भगवद्भजनमें ही रहे थे। छप्परकी भीषण आगकी एक चिनगारी, रास्त या कोयला—कुछ भी घरके भीतर दिखायी न पड़ा। लोग भक्त जगन्मित्रकी भक्तिको श्रद्धापूर्वक नमस्कार करने लगे।—गो० न० व०

(भक्तिविजय, अन्याय १०)

—०००—

साधुसे छेड़छाड़ न करें

नये दारोगाने जगन्मित्रकी जमीन जास करनेका निश्चय किया। लोगोंने उसे समझाया—‘इस परम सतको हमलोगोंने यह भूमि इनाममें दी है और इसकी सेवाके निमित्त हमलोग ही जमीनकी देख-भाल करते हैं। हमपर दया करो, सतसे छेड़खानी मत करो।’

दारोगा अपनी ही हठपर अड़ा रहा। उसने एक शर्त रखकी। जगन्मित्रके पास आकर कहने लगा—‘मेरी कन्याका विवाह है। हमारे कुलदैवत शेर है। उनका रहना विवाहके समय जल्दी है। यदि तुम उसे ला दो तो तुम्हारी जमीन छोड़ देगे।’

दारोगाने सतसे यह दूसरी भयानक छेड़छाड़ की। सतने ‘तथास्तु’ कहा और वह जगलमें निकल पड़ा। शेर दिखायी न पड़ा। उसने भगवान्को पुकारा। भगवान् स्वयं शेर बनकर उसके सामने आकर खड़े हो गये। जगन्मित्रने शेरको प्रणाम करके कधेपरसे गमछा उतारा और उसके गलेमें ढाल उसे लेकर घरकी ओर लैटे।

गौकी तरह शेरको बोध लाते देख रहस्तके लोग

—०००—

अपकारका प्रत्यक्ष दण्ड

भक्त भानुदास मदैव हरिभजनमें रहे रहते। जवतक माता-पिता जीवित रहे, भानुदासकी पत्नी तथा बाल-बच्चोंका पालन पोषण करते रहे, पर उनके मरनेके बाद वे भूखों मरने लगे।

पास पड़ोसके सजनोंको दया आयी। सौ रुपये चदा करके उन्ह कपड़े खरीद दिये और बाजारके व्यापारियोंको राजी करके उन्ह जीवननिर्धार करनेकी सलाह दी। व्यवसायियोंने भानुदासको व्यापारका क्रम और भाषा भी पढ़ा दी।

आश्रयके साथ दूर भागते जा रहे थे। नगरके पास पहुँचते ही नागरिकोंमें कुहराम भूमि गया। सभी दारोगाकी दुष्टताकी कोस रहे थे। शेरने दहाइ लगायी; पुरद्वार, जिसे लोगोंने भयसे बद कर रखा था, गड़गड़ाकर गिर पड़ा। जगन्मित्र शेरको ले भीतर धुमा।

लोग किलेपर चढ़कर यह दृश्य देखते और भयसं कॉप रहे थे। जगन्मित्र दारोगाके घर पहुँचा। घरके कपाट बद थे। घरके बाल-बच्चे कोठरीमें बद थे। जगन्मित्रने दरवाजा खुलवाया। शेरको देख दारोगा यरथर कॉपने लगा। उसकी पत्नीने, जो घरपर बैठी पतिकी दुष्टताकी कोस रही थी, पतिसे कहा—‘नाथ! अब भी सतकी जरण जायें और लोगोंकी रक्षा करें।’

दारोगाने जगन्मित्रके चरण पकड़े—‘सत! आप सचमुच जगत्के मित्र हैं। भूलसे आपसे छेड़छाड़ की, अग्र करे और सबको जीवदान दे।’

जगन्मित्र शेरको पकड़कर जगल चला गया।—गो० न० व०

(भक्तिविजय, अन्याय १५)

भानुदास व्यापारमें जरा भी असत्यका सहाय लेना अनुचित मानते। ग्राहक आते ही माल, उसका सार, उसका सच्चा मूल्य बताकर यह भी कह देते—‘इसमें मुक्कों दृतना नफा है।’ इस कारण उसकी अच्छी साल बाजारमें जम गयी।

भानुदासका व्यापार दिनोदिन बढ़ने लगा और बाजारके अन्य व्यवसायियोंका काम ठप पड़ने लगा। व्यापारी भानुदाससे जलने लगे। समझदार व्यापारी उसकी सञ्चारिकी

प्रदाता भी रहते और उनकी उन्नतिका मूल उनीको मानते । पर दुराग्रही व्यापारियोंका रोप नमग बढ़ने लगा ।

एक दिन एकादशीके निमित्त नगरमें एक प्रसिद्ध कीर्तनकारना कीर्तन था । भक्त भानुदास इन हारिभक्तिके नुस्खमय ग्रसदनो कैसे छोड़ सकते थे । उस दिन जल्दी-से दूसरे बदाफर भानुदासने पासपड़ोसके व्यापारियोंसे प्रार्थना की—‘मैं जरा कीर्तनमें जाता हूँ, दूकानका आपलोग कृपया स्थान रखियेगा ।’ उन्होंने गोप्तमें कहा—‘हम नहीं जानते, तुम अपना देखो ।’ भानुदासने परवा नहीं की । मल लादनेका घोड़ा वहाँ दूकानपर बौधकर सीधे मन्दिरमें कीर्तनके लिये चले गये ।

व्यापारियोंने बदला लेनेका अच्छा अवसर टेक्का उसके घोड़ोंको छोड़ दिया और सामान निकालकर पासके ही एक गहरे गड्ढेमें भर दिया और उसे ऊपरसे ढक दिया । किंतु शोर मचा दिया कि चोरोंने भानुदासका सामान चुग लिया । घोड़ा कुछ दूर गया तो उन्होंने प्रभुको चिन्ता हुई, जिनके

भजनमें भानुदास रातभर लीन रहे । एक व्यापारीका स्पष्ट धर कुछ दूरपर घोड़ोंको पकड़कर बैठे रहे ।

भानुदाससे इस तरह छल करके व्यापारी अपनी-अपनी दूकानें बद करके जा रहे थे कि चोरोंका एक गिरोह हाँथियारोंसे लैस हो वहाँ आ धमका । उन्होंने व्यापारियोंको खबू पीटा, उनके घोड़े छुड़ा लिये और उनकी दूकानोंका भरपेट सामान लटकर बे भाग गये । व्यापारियोंने अपनी करनीका फल पाया । कुआँ सोदेवालेको खाइ तैयार है ।

कीर्तन समाप्त होनेपर कुछ रात जोप रहते ही भानुदास अपनी दूकान देखने आये । रस्तेमें एक अपरिचितको भागते हुए घोड़ोंको पकड़कर अपने हवाले करते देख उन्हें बड़ा आश्र्य हुआ और उससे भी अधिक आश्र्य हुआ व्यापारियोंको रोते-कल्पते देखकर ।

व्यापारियोंने गड्ढसे कपड़ोंकी गाँड़ें निकाल भानुदासको समर्पित कीं और अपनी दुर्जुदिके लिये उनसे शमा मॉगी । —गो० न० बै०

(मत्तिविजय, अ० ४०)

उज्जुपनका इनाम

अबे ए जोगड़े । सवरक्षार, मेरी धोतीको छुआ तो । नरा हटकर जा, मैंने यह धोती पूजके लिये सुखायी है !— दस बर्पके एक बाल्कने यो ही कह दिया ।

नोगडा और कोई नहीं, प्रत्यक्ष गाहू महाराज थे और आलक भाहुलीके एक कुलकण्ठीका आवाय लड़का दोपहरके पूर्व कृष्णमें नहा रहा था । गाहू महाराजको शिकारा भारी गौँफ था । देर हो जानेसे जल्दी अकेले ही वे कधेपर भाला रखकर लोट रहे थे । लड़ी दाढ़ी और गरीरपर कफनी-जैसा बख्त—मन्मुच उनका यह बैप एक साधुको ही फवने-चाला था ।

‘नहीं चारा, तुम्हारी धोतीको न छूँगा ।’—कहकर हँसते हुए महाराज आगे बढ़ गये ।

थोड़ी देरमें दो सिपाही बाल्कके पास आ धमके । उन्होंने उने बताया कि वे जोगडा नहीं, महाराज थे । बाल्क टण्डकी कल्पनासे कौप उठा ।

शाहू महाराजके समक्ष लाये जानेपर उन्होंने मुरक्करते हुए आलकसे पूछा—‘तुम्हारा नाम क्या है और अकेले नदीपर तुम क्यों आये ?’

‘मेरा नाम विदू, माहुलीके कुलकण्ठीका पुत्र । मैं सुग्रह बहुत पिंडी—काम नहीं करता, खाने न दूँगी ।

निकल जा धरसे ।’ इसीलिये निकल पड़ा । नहा-घोकर पूजा करके मधुकरी मॉगने गाँव जानेवाला था ।

‘तो फिर काम क्यों नहीं करते ?’

‘वह मेरे मनलायक काम नहीं बताती । और जो बताती है, वह मुझे पसद नहीं । मुझे घोड़ेपर बैठकर दौड़ना और शिकार करना पसंद है, पर मॉ मुझे धरमें ही बढ़ करके रखती है ।’

महाराजने सेवकोंको आदेश दिया—‘महीने-भर बाल्कमें ही इसके भोजनकी व्यवस्था की जाय । इसे एक टट्टूला दो और यह जहाँ जाय, जाने दो । एक महीने बाद मुझे पुन लखर दो ।’

बालकके मनकी मुराद अनायास पूरी हो गयी । राजगाही भोजन ऊपरसे । सुरह-गाम सदैव वह अच्छे से टट्टूपर बैठकर भरपेट धूमता । धर आनेपर स्वयं टट्टूकी देख-भाल, खाना-सफाई करता । तबेले के अन्य टट्टूओंकी भी कभी-कभी सेवा कर देता । बालक सभीको प्रिय हो गया । वह नित्य महाराजके साथ शिकारके लिये भी जाने लगा ।

एक दिन महाराजके साथ नित्यकी तरह शिकारके लिये जानेपर महाराजने एक सुखरके पीछे पड़कर उमर गोली

दग्धी; पर निगाना चूक गया और सूअर वच निकला तथा सीधे महाराजकी ओर झपट पड़ा। संयोगकी बात यह थी कि विहू या विठ्ठल सूअरके पीछे था। उसने उसे लश्यकर भाला फेंका और उसे घायल करके तत्काल घोड़ेसे उतर दोनों हाथोंसे सूअरको रोक रखा।

गाहू महाराज तत्काल उसके पास आये और सूअरका काम तमामकर बालककी समयसूचकताकी प्रगति की।

महाराजने तत्काल उसके लिये सौ बुड़सवारों और बड़ी-सी जागीरकी व्यवस्था कर दी।

यही विहू आगे चलकर विठ्ठल शिवदेव विचुरकर नामसे प्रसिद्ध हुआ, जिन्होंने पचास-साठ सालतक मराठा-साम्राज्यकी निष्ठासे सेवा की। —गो० न० वै०

(मराठ्याच्या राज्यकथा, १२८)

अपनेको पहचानना सहज नहीं

‘क्यों री! आज सागरमें नमक डालना भूल गयी?’
—ऐठनके परम कर्मठ पट्टगाळी वहिरभट्टने अपनी पक्कीसे पूछा।

पक्कीने जवाब दिया—‘साठ साल बीत गये, अमीतक आपकी जीभका चटोरपन नहीं गया। अब तो कुछ नियन्त्रण करते!’

वहिरभट्टने पक्कीसे विनम्रतापूर्वक कहा—‘तुमने आज दिव्य अळजन लगाकर मेरी ओँखें खोल दीं।’ और तत्काल वे आत्मजान प्राप्त करके जीवन सार्थक करनेके लिये निकल पड़े।

कुछ दूर एकान्तमें जाकर उन्होंने सोचा—‘क्या करूँ? यहस्य वना रहें तो मंसारसे पिण्ड नहीं छूटता और सन्यास लेलें तो भी सासार नहीं छोड़ता।’ अन्तमें वे एक निष्कर्षपर पहुँचे। पुन ही एक काजीके घर गये और उससे मुस्लिम-धर्मकी दीक्षा ले ली, ताकि अपने लोगोंसे पिण्ड छूटे।

वहिरे खाँको वहाँ भी गान्ति नहीं मिली और वे पुनः गङ्गातीरपर आकर अपनी भूलनर विलव-विलखकर रोने लगे। ब्राह्मणोंको दया आ गयी और उन्होंने उन्हें शुद्धकर पुनः हिंदू वना लिया।

अप तो वहिरभट्ट और भी लोगोंकी चर्चाका विषय बन गये। मुसलमान आकर कहने लगे—‘हमारे मियोंको तुमने हिंदू क्यों बनाया?’ हिंदू कहने लगे—‘हमारे वहिरभट्टोंही तुमने वहिरे खाँ बनाया, पहला अपराध तुम्हारा ही है।’

वहिरभट्ट वडे असमंजसमें पड़ गये। वे पागल हो उठे, उन्होंने कहा—‘आखिर मै कौन हूँ? यदि वहिरे खाँ हूँ तो मेरा कान विंधा ही हुआ है, उसके छेद अभीतक भर नहीं गये और वहिरभट्ट हो गया तो सुन्नत किया मास फिर कहाँ आया है, देखो।’

पगला वहिरभट्ट यह जाननेके लिये कि ‘मै कौन हूँ?’ वहाँसे निकल पड़ा और इधर-उधर भटकने लगा। भटकते-भटकते वह एक स्थानपर आया, जहाँ सिद्ध नागनाथ अपने शिष्योंद्वारा स्वयं जीवित समाधि लेनेकी तैयारी करा रहे थे। वहिरभट्टने कहा—‘हाँ, यहाँ मै कौन?’ इसका पता चलेगा।

उसने सिद्धसे भी जाकर यही प्रश्न और वितर्क किया। सिद्ध विगड़ उठे। उन्होंने पासका दण्ड उठाकर भट्टके सिरपर दे मारा। वहिरभट्टका गरीर चैतन्यविहीन हो गया।

फिर सिद्धने शिष्योंद्वारा उसके पिण्डको कूट-काट, गोली वना अभिमें दे दिया। अभिग्रान्त होते ही सिद्धके देखनेके साथ राखमे प्राण संचरित हो गया। वहिरभट्ट पुनः खड़े हो गये। गुरुने पूछा—‘तू कौन?’

वह चुप हो गया। सिद्धने भट्टके सिरपर हाथ रक्खा और उसे सिद्धान्त-ज्ञानका उपदेश दिया। वस, वहिरभट्ट अपने-आपको समझ गया। —गो० न० वै०

(भक्तिविजय, अध्याय ४४)

दानाध्यक्षकी निष्पक्षता

रामशास्त्री प्रभुणे पेशवार्द्दके प्रमुख विचारपतिमा काम कर रहे थे। माथ ही दानाध्यक्षका काम भी उन्होंके अधीन रहा। एक बार दण्डिणा वॉटने समय शास्त्री बोयाके साथ भार्ड दण्डिणा लेने पहुँचे।

पासमें ही नाना फङ्गनरीस वैठे थे। नानाने कहा—‘नो भमरता हूँ, आप अपने बन्धुओं वीस रुपये दण्डिणा दें।’

भेरे भार्द फोई विगोप विद्वान् नहीं, साधारण है।

इसलिये अन्य ब्राह्मणोंकी तरह इन्हे भी दो रुपये देना ही ठीक होगा। नाना! मेरे भाईके नाते जो कुछ इन्हें देना हो, मैं स्वयं दूँगा। दानाध्यक्ष रामशास्त्रीके यहाँ भाई-भतीजेके प्रति किसी प्रकारके पक्षपातकी गुजाइग नहीं।

नाना फङ्गनरीस चुप हो गये। रामशास्त्रीने भाईको दो रुपये दिये और वे उसे लेकर चुपचाप चलते बने।

—गो० न० वै०

मूर्ख छन्दानुरोधेन

मिरजका अधिकारी दिलेव्वान गतयें गङ्गत लगाता जयराम स्वामीके कीर्तनमें पहुँचा। स्वामीने कहा—‘साधुके रस्तेसे जानेपर तत्काल रामका दर्शन मिलता है।’

दूसरे दिन तडके जयराम स्वामी बुलाये गये। खानने कहा—‘साधु जिस रस्तेसे जाय, मैं चलनेको तैयार हूँ, मुझे आप रामका दर्शन करा दें। नहीं तो शुद्ध कहनेके लिये आपको कटोर दण्ड भुगतना पड़ेगा। जाइये, कलतक इसकी व्यवस्था कीजिए।’

जयराम स्वामी वडे ही असमजउमें पड़ गये। लो हाथ वे न नदीके किनारे पहुँचे। समर्थ आहिक कर रहे थे। सारी घटना सुनाकर समर्थसे उन्होंने इस विपत्तिसे उत्तरानेकी प्रार्थना की। पहले तो उन्होंने जयराम स्वामीको हुक्कार दिया, पर पीछे तैयार हो गये।

खानको सूचना भेजी गयी कि ‘आज ही तुम्हें रामके दर्शन कराये जायेंगे। हमलोग आहिकसे निवृत्त होकर चल रहे हैं। तुम हमारे पीछे-पीछे आना।’

खान आकर तैयार हो गया। समर्थ और जयराम स्वामी भी निवृत्त हो चल पड़े। खान उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

कुछ दूर जानेपर मिरजका किला आया। किलेके बाहर कुछ छेद बने थे, जो भीतरसे बंदुकोंका बार करनेके काममें आते थे। समर्थ सहम रूप बनाकर चट्टरे उसके भीतर झुस गये। भीतरसे ही जयराम स्वामीसे कहा—‘चले आओ।’ वे भी भीतर चले आये।

फिर समर्थने खानसे कहा—‘खान। तुम भी जल्दी इसी रस्ते चले आओ, साधु-सत इसी रस्तेसे आये हैं। देखो, ये रामचन्द्र खड़े हैं। जल्दी आओ और उनके दर्शन कर लो।’

खान अपनी मूर्खता और दुष्टापर बड़ा ही लचित हुआ। उसने समर्थसे क्षमा माँगी और भविष्यमें किसी हिंदू साधुसे छेइ-छाइ न करनेका वचन दिया। —गो० न० व०

(समर्थचे भास्मर्थ)

डाकूसे संत

(लेखक—श्रीमाणिकनाथ शक्तिलाल राणा)

बड़ोदाके शेडखी नामक गाँवमें भृत रविसाहेवका निवास था। एक समय उत्तर गुजरातके कुछ प्रेमी भजनीक शेडखी-की ओर जा रहे थे। रास्तेमें डाकू कवाजीसे उनकी भेट हो गयी। भजनीक लोग मर्सीसे भजन गा रहे थे। उनका कवाजीपर प्रभाव पड़ा और उसके मनमें भी शेडखी जाकर रविसाहेवके दर्शन करनेकी इच्छा जाग उठी। वह भेप वट्ठकर शेडखी पहुँचा। रविका समय था। सतधाममें भजन-की धूम मची हुई थी। डाकूने अपने जीवनमें रविसाहेव और भजनकीर्तनको पहली ही बार देखा। रविसाहेवने अवश्य ही उसको पहचान लिया।

कवाजी बहोंका सात्त्विक प्रभाव लेकर रात्रिके अध्यकारमें ही लौट गया। एक दिनकी बात है। एक नवविवाहित वर-कन्या शेडखीके संतके चरणोंमें प्रणाम करके उनका शुभा-शीर्वाद प्राप्त करनेके लिये जा रहे थे। अनेकों सेहले वैधे चरोंको वरातसहित निर्दयतासे लट्ट लेनेवाले क्षूर डाकू कवाजीने उनकी देख लिया। पर रविसाहेवका नाम सुनकर कवाजीने

उनको छोड़ ही नहीं दिया अपितु उसके मनपर एक चोट लगी। उसके पुत्र नहीं था, इससे दूसरे ही क्षण उसके मनमें वास्तव्यभाव जाग उठा—मानो उसीका पुत्र विवाह करके शेडखी सतधाममें जा रहा हो। सोनेकी मोहरोंसे मरी एक थैली उनके हाथोंमें सौपते हुए उसने कहा—‘यह रविसाहेवकी सेवामें हे देना और कवाजी डाकूके प्रणाम कहना।’

दोनों वर-कन्या संतधाम पहुँचे। थैली चरणोंमें रखकर उन्होंने सतको कवाजीके प्रणाम कहे। उन स्वर्गी मुद्राओंको सतने स्वयं न लेकर नवविवाहित वर-कन्याको दे दिया और उन्हें आशीर्वाद देकर विदा किया।

एक बार एक बड़ी सत-मण्डली पहाड़ी रस्तेसे शेडखी जा रही थी। रविसाहेव साधु हैं, इतने सतोंका स्वागत-सत्कार वे कैसे करेंगे, इधर मेरे पास बहुत धन है, यह सोचकर कवाजीने एक गेटरी बॉदी और शेडखी जाकर उसे अतिथि-सत्कारमें ल्यानेके लिये सत-चरणोंमें आग्रहपूर्ण प्रार्थना की।

डाकूकी रक्तसे सनी धनराशिको अस्तीकार करते हुए

उतने उसको फटकारकर कहा—“तू बड़ा निर्दय है, असहाय वात्रियोंको लूटता है ! यहाँ हठ मत कर, आज तू धन देने आया है, कल इसी धनके लिये निरपराध मनुष्योंका खून करके उन्हें लूटेगा । अत्याचारी ! तू यहाँसे चला जा ।”

सतके इन अपमान-भरे आवेदायुक्त शब्दोंको कवाजीने शान्तिसे सुना और नम्रतासे शपथ करते हुए कहा—“महाराज !

आजसे डकैतीका पेड़ा मेरे लिये हराम है ।” यों कहकर उसने तलवार, ढाल, वाण, तरकस—सब सत-चरणोंमें डाल दिये और रविसाहेबके चरणोंमें डडेकी तरह गिर पड़ा । संतने उसका हाथ पकड़कर उठाया और उसे हृदयसे लगा लिया । उसी दिनसे ब्रूर कवाजी डाकू सरल साधुहृदय भक्त बन गया और तबसे पहाड़ी रास्तोंमें उसका स्थान मतोंका आतिथ्य-घाम बन गया ।

अपनी कमाईका पकवान ताजा !

एक बृद्ध महाशय अपने बचपनके साथी श्यामजीके युत्र रामजीके यहाँ आये । उन्होंने कहा—“वच्चे रामजी ! दुःख है कि श्यामजीको गुजरे साल बीत गया, पर मैं तुम्हारी खोज-खबर लेने नहीं आया । वेटा । अब तुम्हारे सिरपर कोई नहीं, समझ-धूँझकर अच्छे चाल-चलनसे रहना । क्या, सब ठीक चल रहा है न ?”

बूढ़ा रामजीके चाल-चलनसे भलीभौति परिचित था । उसे मालूम था कि वह आपका पैसा पानीकी तरह मौज-मस्ती और मित्रमण्डलीमें उड़ा रहा है ।

रामजीने कहा—“चाचाजी, अब आप ही मेरे लिये मिताजीकी जगह हैं । बड़ा अच्छा हुआ जो आप आ गये । कुछ ही दिनों बाद दीवाली है । चार दिन यहाँ विताइये । आपका मुझपर बहुत प्रेम है । बताइये, आपको कौन-सा पकवान अच्छा लगता है ? भगवानकी दयासे मुझे कोई कमी नहीं है ।

बूढ़ेकी पसदका गूजा बना । मित्रमण्डली दीवालीके स्नान आदिसे निवृत्त हो भोजनको बैठी । बूढ़े चाचाजी भी पक्षियाँ न्या बैठे । भोजन परोसा गया । चाचाजीकी थालीमें

तला हुआ ताजा गूजा परोसा गया । मुँहमें रखते ही उन्होंने कहा—“वेटा । गूजा बासी है, छिः ।”

रामजीने समझाया—“चाचाजी ! गूजा अभी-अभी तल-कर झरनेसे उतारा गया है । धी नियरनेपर आपको फगेसा गया है । सारा सामान ताजा है । फिर आप बासी कैसे कह रहे हैं ?”

बूढ़ेने कहा—“वेटा । इसमे पचीस साल पुरानी गन्ध आ रही है । यह बहुत ही बासी है । मेरे साथी श्यामजीने कितने कष्टसे पैसा कमाया । उन्हें गुजरे एक ही साल हुआ, इसी बीच तुमने आधी सम्पत्ति उड़ा दी; तब आगे क्या करोगे । तुम अपने परिश्रमसे कमाये धनसे गूजा बनाते तो मैं उसे ताजा कहता । ताजा गूजा मुझे बड़ा ही पसद है; पर मालूम पड़ता है कि वह मेरे नसीयमें नहीं ।”

“बूढ़ेकी बाते सुन सभी मित्र मन्त्रपक्षाये । रामजीने उनके चरण छुए और कसम खायी कि अवसे मैं अपने श्रमकी ही रोटी खाऊँगा । अगले साल जरूर आइये, आपकी पसंदका गूजा निश्चय खिलाऊँगा ।” —गो० न० बै०

(बेनुकथा-संग्रह प० २३)

बाजीराव प्रथमकी उदारता

बाजीराव प्रथम उर्फ बाजीराव बलाल पेशवा और निजाम-उल-मुल्कके बीच सन् १७२८ में गोदावरीके किनारे लड़ाई हुई । मराठे जीत गये और मुस्लिम सेनामें अन्नका भारी तोड़ा आ गया । इसी बीच एक मुस्लिम त्योहार आया । निजामने बाजीरावके पास दूत भेजकर अपील की कि “सेनामें भोजनकी वज़ी कमी आ गयी है, इसलिये अन्न और किरानेवी गदद भेजिये ।”

बाजीरावने अपने प्रमुख सहायकोंकी गुस बैठक बुलायी और निजामकी यह अपील उनके समक्ष रखकर निर्णय माँगा । प्रायः सभीने यही सलाह दी कि “निजामको कुछ भी न भेजा जाय । इस तरह अनायास शत्रुको भलीभौति तंग करनेका मतलब सध जायगा ।”

पेशवाको यह निर्णय पसद नहीं आया । उन्होंने कहा—“हम सैनिकोंके लिये यह कदापि उचित नहीं कि

शत्रु वीमार, भूखा या सोया हुआ हो तो धोखेमें उसे नष्ट कर डाला जाय। नवाग्ने जितनी माँग की है, उससे अधिक भेजकर उसका सम्मान किया जाय।'

पेशवाने पॉच हजार वैलोंपर सारी सामग्री रखकर

निजामके पास भिजवा दी। निजाम अत्यन्त प्रमाणित हुआ और शीघ्र ही सलाह-मशविरा होकर दोनोंकी भेंट हुई।

—गो० न० वै०

(नीतिवोध, पृष्ठ ८४)

मधुर विनोद

एक मुसलमान भक्त थे। उनका नाम अहमदगाह था। उन्हे प्रायः भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन होते रहते थे। अहमदगाहसे वे विनोद भी किया करते थे। एक दिन अहमदगाह एक बड़ी लड़ी टोपी पहनकर बैठे हुए थे। भगवान्को हँसी सज्जी। वे उनके पास प्रकट होकर बोले—‘अहमद। मेरे हाथ अपनी टोपी बेचोगे क्या?’ अहमद श्रीकृष्णकी बात सुनकर प्रेमसे भर गये। पर उन्हें भी विनोद सज्जा। वे बोले—‘चलो हटो, दाम देनेके लिये तो कुछ है नहीं और आये हैं टोपी खरीदने।’

भगवान्—‘नहीं जी। मेरे पास बहुत कुछ है।’

अहमद—‘बहुत कुछ क्या है, लोक-प्रलोककी समस्त सम्पत्ति ही तो तुम्हारे पास है। पर वह लेकर मैं क्या करूँगा?’

भगवान्—‘देखो अहमद! यदि तुम इस प्रकार मेरी उपेक्षा करोगे तो मैं ससारमें तुम्हारा मूल्य घटा दूँगा। इसीलिये तो तुम्हें लोग पूछते हैं, तुम्हारा आदर करते हैं कि

तुम भक्त हो और मैं भक्तके हृदयमें निवास करता हूँ। किंतु अब मैं कह दूँगा कि अहमद मेरी हँसी उड़ाता है, उसका आदर तुमलोग मत करना। फिर ससारका कोई व्यक्ति तुम्हें नहीं पूछेगा।’ अब तो अहमद भी बड़े तपाकसे बोले—‘अजी! मुझे क्या डर दिखाते हो! तुम यदि मेरा मूल्य घटा दोगे तो तुम्हारा मूल्य भी मैं घटा दूँगा। मैं सबसे कह दूँगा कि भगवान् बहुत सस्ते मिल सकते हैं, वे सर्वत्र रहते हैं, सभके हृदयमें निवास करते हैं। जो कोई उन्हें अपने हृदयमें झाँककर देखना चाहेगा, उसे वहीं मिल सकते हैं। कहाँ जानेकी जरूरत नहीं। फिर तुम्हारा आदर भी घट जायगा।’

भगवान् हँसे और बोले—‘अच्छा मैया! न तुम चलाओ मेरी न मैं चलऊँ तेरी।’

ये अहमद निरन्तर भगवान्के ध्यानमें ही तल्लीन रहा करते थे। रात्रि

रहस्य-उद्घाटन

रहीमकी रक्षा

(कुमारी श्रीराधा)

रहीम खानखाना मुसलमान होनेपर भी श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे। एक बार दिल्लीके बादशाहकी आश्रमे उन्होंने दक्षिण भारतके एक हिंदू राजापर चढ़ाई की। घोर युद्ध हुआ तथा अन्तमें विजय रहीम खानखानाकी हुई। उस हिंदू राजाने रहीमके पास यह प्रस्ताव भेजा कि ‘अग जीत तो आपकी हो ही गयी है, ऐसी स्थितिमें हमलोग परस्पर मित्र बन जाते तो मेरे लिये एक गौरवकी बात होती।’ रहीम बड़े सज्जन थे। उन्होंने राजाका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, क्योंकि किसीको भी नीचा दिखाना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। दूसरे दिन राजाने रहीमसे यह प्रार्थना की कि आप

यहाँसे जानेके पूर्व मेरे घर भोजन करें। रहीमने यह भी मान लिया तथा सध्या-समय एक सिपाही साथ लेकर भोजन करने चले। वे किलेके फाटकपर पहुँचे तो उन्हें एक बालक मिला। बालकने पूछा—‘खाँ साहब! कहाँ जा रहे हैं?’

रहीम—‘राजाके यहाँ भोजन करने जा रहा हूँ।’

बालक—‘मत जाइये।’

रहीम—‘क्यों?’

बालक—‘इसलिये कि राजाके मनमें पाप है। उसने आपके भोजनमें जहर मिला दिया है। आपको मारकर फिर

वह युद्ध करेगा तथा आपकी सेनाको मार भगा देगा ।'

रहीम—पर मे तो बचन दे तुका हूँ कि भोजन करूँगा ।'

वालक—‘बचन तोड़ दीजिये ।’

रहीम—‘यह मेरे लिये बड़ा कठिन है ।’

इसपर वह वालक बड़ी देरतक रहीमको समझाता रहा । पर रहीम जाकर भोजन करनेके पश्चामें ही रहे । उन्होंने यह दोहा कहा—

अमी पियावत मान विनु, कह रहीम न सुहाय ।

प्रेम सहित मरिवौ भलो, जो विष देय बुलाय ॥

किंतु वालक फिर भी उन्हें रोकता रहा । अन्तमेर हीमने हँसकर कहा—‘क्या तू भगवान् श्रीकृष्ण है जो मैं तेरी बात मान लूँ ।’

अब तो वालक गिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला—‘कहा मैं श्रीकृष्ण ही होऊँ तो ।’

रहीम उम गलककी ओर आश्र्यभरी दृष्टिसे देखने लगे । इतनेमें वहाँ परम दिव्य प्रकाश फैल गया और वालकके स्थानपर भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये । माथेपर भोर-मुकुट एवं फेटमें बड़ीकी विचित्र निराली जोमा थी । रहीम उनके चरणोंपर गिर पड़े । भगवान् बोले—‘अब तो नहीं जाओगे न ?’

रहीम—‘जैसी प्रभुकी आजा ।’

भगवान् अन्तर्धान हो गये और रहीम वहाँसे लौट पड़े । आकर उसी समय उन्होंने किलेपर चढाई कर दी । एक पहरके अदर उन्होंने राजाको बदी बना लिया ।

बदी-वेपमे राजा रहीमके पास आया तो रहीमने पूछा—‘क्यों राजा साहब ! मित्रको भी जहर दिया जाता है ?’ राजाने सिर नीचा कर लिया, पर उसे अत्यन्त आश्र्य था कि रहीम जान कैसे गये, क्योंकि उसके अतिरिक्त और किसीको भी इस बातका पता नहीं था । उसने हाथ जोड़कर पूछा—‘रहीम ! मैं जानता हूँ कि मुझे मृत्युदण्ड मिलेगा, पर मृत्युसे पहले कृपया यह बताये कि आप यह भेद जान कैसे गये ?’ रहीमने कहा—‘मैं अपने मित्रकी हत्या नहीं करूँगा, आपको मृत्युदण्ड नहीं मिलेगा । पर वह बात मैं नहीं बताना चाहता ।’

राजाने पृथ्वीपर सिर रखकर कहा—‘मुझे प्राणोंकी भीख न देकर केवल उसी बातको बता देनेकी भीख दे दें ।’

रहीम बोले—‘अच्छी बात है; लीजिये, मेरे एवं आपके प्रभु श्रीकृष्णने यह बात बतायी है ।’

राजा फूट-फूटकर रोने लगा । रहीमने उसकी हयकड़ी-वेढ़ी खोल दी और उसे हृदयसे लगा लिया । दोनों उस दिनसे सच्चे मित्र बन गये ।

मर्यादाका औचित्य

छत्रपति शाहुजी महाराजके दाहिने हाय श्रीमत पेशवा बाजीराव थे । उनकी कामना थी कि भगवती कृष्णके तटसे सिन्धु-प्रदेशक छत्रपति शिवाजीकी अश्रय कीर्तिका प्रतीक भगवा ध्वज लहर उठे । वे अपने समयकी बहुत बड़ी शक्ति थे । महाराज जयमिंह द्वितीयकी हार्दिक इच्छा थी कि तत्कालीन सुगलस्म्राट् सुहम्मदश्याह और श्रीमत पेशवासे सधि हो जाय । मुगल्मप्राट् के आदेशसे जयसिंहने पेशवाको दिल्ली पधारनेका निमन्त्रण दिया । अपने साथ अपार सेना लेकर पेशवाने छत्रपति शाहुकी आजासे पूनासे प्रस्थान किया । दिल्ली पहुँचनेके पहले उन्होंने उद्यपुरकी सीमामें गंवंग किया पर भ्यान देनेकी बात यह है कि पेशवाके साथ ही सैनिक थे, शेष सैनिकोंको उन्होंने बाहर-ही-बाहर

दिल्ली जानेका आदेश दिया । उन्होंने सेनाके साथ मेवाड़ीकी पवित्र भूमिपर चरण रखना अनुचित समझा ।

महाराणा जगतरिंहने उनका धूम-धामसे स्वागत किया । समस्त नगरमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी । महाराणाने चम्पा वागमें उनके ठहरनेकी व्यवस्था की और दूसरे दिन उनके सम्मानमें विशेष उत्सवका आयोजन किया ।

X X X

‘हिंदूपदपातशाहीके प्राण—श्रीमत पेशवाकी जय हो । हिंदू-स्वत्व-सरकार महाराणा अमर हो ।’ मागध और बन्दी-जनोंकी प्रगतिसे राजसभा-भवन परिव्याप्त हो उठा ।

‘आओ, मित्र !’ महाराणाने पेशवाका आलिङ्गन किया । बाजीराव गम्भीर थे, पर अधरोपर सुसकानकी ज्योतिमर्यी

गरिमा थी। पेशवाके चरण सिंहासनकी ओर बढ़ते गये। वाजीरावकी गति दिखिल हो गयी; आगे बढ़नेमें विवशता थी।

मेवाड़के कोने-कोनेमें सामन्त पेशवाके भव्य दर्घनके लिये उपस्थित थे। पेशवाके दिल्लीस्थित प्रतिनिधि महादेवमङ्ग और जयमिहके दीवान मलजी भी दैवयोगसे आ गये थे। पेशवाने महाराणामी गजसभाका ऐश्वर्य देखा, वे सोचने लगे।

‘आओ, बीर। महाराणाने फिर कहा। उन्होंने दो मर्यादिहासन मजाये थे, सिंहासन एक पक्षिमें थे।

‘महागणा! यह वापा गवलका रिंहासन हैं, इस सिंहासनमें महारानी पश्चिनीकी आन, महागणा सौंगामी बीरता, पद्मावायका स्वार्थ गलिदान और गजरानी मीराकी भक्ति अद्वित है। इस सिंहासनपर विराजमान होकर महागणा प्रतापने व्यदेश, म्वराज्य और म्वधर्मका मन्त्रानुष्ठान किया, धासकी रोटी खा-

कर इसकी प्रदीपिति अक्षुण्ण रखली। इस सिंहासनमें महाराणा राजसिंह और सग्रामसिंहका ऐश्वर्य मनिहित है।’ पेशवा खड़े थे।

‘मित्र! इस सिंहासनपर वैठनेवाला मेवाड़ाधिपति अपने समक्ष आमन प्रदानकर आपका अभिनन्दन करता है।’ जगतसिंहने हाथ बढ़ाया।

‘महाराणा! मे इस सिंहासनके समक्ष आसनपर किस तरह वैठ सकता हूँ। यह छत्रपति शिवाजीके पूर्वजोंका सिंहासन है। मैंने भीमोदिया वगका नमक खाया है। मेरे पूर्वजोंने सतारा और सिंहगढ़मे इस सिंहासनका जयगान गाया है। मे मर्यादा-मङ्ग नहीं कर सकता।’ पेशवा सिंहासनके नीचे वैठ गये।

‘मेवाड़-क्षेत्रीकी जय हो!’ वाजीरावने आजीर्वाद दिया।

—रा० श्री०

—→३६५←

हम-सरीखोंको कौन जिमाता है

मानकोजी वोधला भगवान्के परम भक्त थे, उनको भगवान्के दर्घन तथा उनमें वातावापका सौभाग्य प्राप्त था। एक बार वातावापमें भगवान्ने कहा—‘मुझे भक्तका प्रेम-प्रमाद बड़ा अच्छा लगता है। वडी-बड़ी दिल्लावटी जेवनारोंमें मैं नहीं जाता, क्योंकि वहाँ मुझे कौन पृथ्वी है।’ वोधलाने कहा—‘महाराज। ऐसा क्यों होगा।’ भगवान् बोले—‘अच्छा, कल अमुक सेठके वहाँ एक हजार ब्राह्मण-भोजनका आयोजन है। मिठाड़यों बन रही हैं। तुम कल जाकर कौतुक देखना।’

आशानुसार दूसरे दिन ठीक समयपर वोधला वहाँ जा पहुँचे। देखा पक्षियाँ ल्पी हैं, हजार पत्तलें परसी गयी हैं, सेठके मुनीम निमन्त्रित ब्राह्मणोंको स्वी-नाम देख-देखकर बैठा रहे हैं। सेठजी खड़े हैं, कोई फालतू आदमी न आ जाय—इस निगरानीमें। इतनेमें ही वही बूढ़ा कुवड़ा ब्राह्मण कमरमें एक टाटका ढुकड़ा ल्पेटे लाठी टेकता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसने सेठसे कहा—‘सेठजी। बड़ी भूख लगी है।’ सेठजीने कहा—‘आपको निमन्त्रण योड़े ही मिल या, यहाँ तो निमन्त्रित ब्राह्मणोंको छोड़कर और कोई नहीं जीम सकता।’ ब्राह्मणने कहा—‘सेठजी। गरीब हूँ, वहुत ही

भूखा हूँ। आपके वहाँ तो पूरे हजार ब्राह्मण भोजन करेंगे, एक ज्यादा ही हो गया तो क्या हर्ज है।’ सेठजीने जरा बुढ़कर कहा—‘नहीं-नहीं, यों दिना बुलाये आनेवाले मिलमगरोंको खिलाने लगें तो फिर क्या पता लगे। जाओ, जाओ।’ यहाँ बुछ नहीं मिलेगा।’ ब्राह्मणने कहा—‘भूखके मारे प्राण जा रहे हैं, चला नहीं जाता, मैं तो खाकर ही जाना चाहता हूँ।’ यों रुक्कर ब्राह्मण एक पत्तलपर जाकर बैठ गया। यह देखकर सेठजी जामेसे बाहर हो गये। उन्होंने पुकारकर कहा—‘है कोई? इस बुढ़वाको पकड़कर बाहर तो निकालो।’ जमादार दौड़े, बूढ़े ब्राह्मणको पकड़कर ले घसीटने। ब्राह्मणने कहा—‘भूखों मर रहा हूँ, भाई। दया करो।’ सेठजीका गुस्ता और भी बढ़ गया, उन्होंने कहा—‘निकालो धक्के देकर बाहर। इसका वाप यहाँ रकम जमा करवा गया था सो यह उसे लेने आया है। कमवरखत कहाँका, बड़ा शैतान है, अपने मनसे ही जाकर पत्तलपर बैठ गया है, मानो इसके वापका धर है।’ वोधला दूर खड़े यह सारा तमाशा देख रहे थे। सेठके चौकीदारोंने ब्राह्मणको घसीटकर बाहर निकाल दिया। ब्राह्मण बाहर निकलकर वोधलकी ओर देखकर मुसकराया और बोल—‘देखा न? यहाँ हम-सरीखोंको कौन जिमाता है।’

भक्तपराध

एक बार भक्त श्रीरूपगोस्वामीजी ध्यानमें यह ज्ञाँकी कर रहे थे कि श्रीनाथजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण खड़े हैं और आपसमें एक दूसरेके मुहमें पान लिल रहे हैं।

उत्ती समय श्रीरूपगोस्वामीजीकी बड़ी स्थाति सुनकर एक गरीब ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचा। गोस्वामीजी अपने ध्यानमें तन्मय थे। वे उससे कुछ नहीं बोले। वह देखकर उसके

मनमें बहुत दुःख हुआ तथा वह गरीब भक्त यह सोचकर चल गया कि मुझ गरीबसे कौन बोलता है। उस भक्तके दुखी होकर जाते हीं श्रीगोस्वामीजीके अन्तस्तलसे भगवान् अन्तर्हित हो गये। उसके बाद उनके मनमें ऐसा लगा मानो कोई कह रहा है कि 'तुमने भक्तका अपराध किया है।' उन्होंने उस भक्तका पता लगाकर जब उससे धमा माँगी, तभी उन्हें फिर भगवद्गीत हुए। सचमुच भक्त भगवान् से भी बढ़कर है।

ध्यानमें मधुर लीलादर्शन

श्रीजीकगोस्वामीजीके समयकी बात है। उनके प्रेमी एक महात्मा कदमखड़ीमें बैठे श्रीराधा-माघवकी मधुर लीलाका ध्यान कर रहे थे। उनको दिखायी दिया कि श्रीप्रियाजी एक बुद्धकी शाखापर लगे हुए मनोहर पुष्पको तोड़ना चाहती हैं, किंतु शाखा ऊँची होनेसे वहाँतक उनका हाथ पहुँचता नहीं। उनको उदात देखकर श्रीव्यामसुन्दरसे उन्हें अपने

कथेपर चढ़ा लिया और श्रीजीको वह शाखा पकड़ा दी। श्रीजी पुष्प तोड़नेका उपक्रम करने लगा। विनोदप्रिय श्रीव्यामसुन्दरने जब देखा कि श्रीजीने शाखा पकड़ ली है तो आप तुरंत हट गये। श्रीप्रियाजी शाखामें लटककर झूलने लगा। यह देखकर ध्यानस्थ महात्मा जोरसे हँस पड़े।

ध्यानकी लीला

श्रीराधाके भक्तोंको एक दिव्य रूप प्राप्त होता है। उसीसे वे उनके दर्दन प्राप्त कर सकते हैं। भक्त श्रीनिवासजी भी श्रीराधाके भक्त थे। अतः उनको वह रूप प्राप्त था। वे प्रतिदिन भगवान्‌का ध्यान करते थे। एक दिन वे इस तरह ध्यान कर रहे थे कि राधाकृष्णमें श्रीराधा-कृष्ण सब सखियोंके साथ विहार कर रहे हैं। इसी समय श्रीराधाका एक कुण्डल जलमें तिर गया। श्रीराधाजीने उनको उसे हँड़कर लनेकी जागा दी, वे उसको हँड़ने ल्ये। वहाँका तो एक मिनट बीता, पर यहाँके सात दिन बीत चुके थे। उनके घरवाले सब धवरा गये। अन्तमें

उन सबोंने उनके एक मिन्न रामचन्द्रजीको छुलाया। उनको भी दिव्य रूप प्राप्त था। वे जान गये कि श्रीनिवासजी इस समय कहों हैं। उन्होंने भी कुण्डल हँड़ना आरम्भ कर दिया। कुण्डल एक दिव्य कमलके नीचे पड़ा था। रामचन्द्रजीने उसे लेकर श्रीनिवासजीके हाथमें दे दिया। वे उसे श्रीराधाको दे आये। श्रीराधाने अपने मुहका आधा पान श्रीनिवासजी तथा आधा श्रीरामचन्द्रजीको दे दिया। इधर उनकी ऊँचे खुलीं और उन्होंने अपने मुहको उस दिव्य पानसे भरा हुआ पाया।

यह उदारता !

मत्वकालीन इतिहासमें अकवर वादशाहके सेनापति रहीम खानखानाका नाम बहुत प्रसिद्ध है। उनपर सरस्वती और लक्ष्मी दोनोंकी कृपा समानलूपसे थी। वे उच्चकोटिके दानी और काव्यमर्मज थे।

एक समय वे पालकीसे कहाँ जा रहे थे। रास्तेमें एक व्यक्तिने उनकी पालकीमें पैचसेरी (पैचसेरका लोहेका बाट) रख दी। खानखानाको इससे तनिज भी क्रोध नहीं आया और इसव्यार्थ-

के लिये उन्होंने उतने ही तौलका सोना ब्राह्मणको दिलवा दिया।

साथमें चलनेवाले सैनिक आपसमें इस घटनाकी आलोचना करने लगे।

'भाई ! इस मनुष्यने मुझे पारस समझकर पैचसेरीसे कसना चाहा था, इसे सोनाके सिवा दूसरी बस्तु दी ही न्या जाती। रहीम खानखानाकी दानप्रियता और उदारतासे लोग आश्र्यर्चकित हो गये। —रा० श्री०

प्रकाशानन्दजीको प्रवोध

काशीमें वेदान्तके प्रकाण्ड पण्डित, सगुण-उपासनाके विगेधी म्वामी प्रकाशानन्द मरम्बती रहते थे। श्रीचैतन्यदेव जग पुरीमें प्रेमभक्तिका प्रवाह वहा गहे थे, तब उनपर कुछ नाराज होकर म्वामीजीने एक श्लोक लिखकर उनके पास भेजा—

यत्रास्ते मणिकर्णिकामलसर म्वर्दीर्षिका दीर्घिका
रत्न तारकमक्षर तनुमृते शम्भु स्वय यच्छति ।
तस्मिन्नुत्तवामनि सररिपोर्निर्वाणमार्गे स्थिते
मूढोऽन्यन्त्र मरीचिकासु पशुवद् प्रत्याशाया धावति ॥

‘जहाँ मणिकर्णिका हैं, अमल सरोवर आदि पुष्टिनोया तलाई और तालाव ह तथा जहाँ शम्भु स्वय जीवोंको ‘तारक’ यह दुर्लभ अक्षर-रत्न प्रदान नहते ह, कामशत्रुके ऐसे मुक्तिपथम्बरुप अन्नुत स्थानका परित्याग करके मूर्ख-लोग ही पशुवन् प्रत्याशाकी मोहिनी मूर्तिपर विमुग्ध होकर मरीचिकाके लोभसे इव-उदय भटकते हैं।’

श्लोक पढ़कर श्रीचैतन्यदेव मुसकराये और उत्तरमें निम्नलिखित श्लोक लिखकर भेज दिया—

घर्माम्भो मणिकर्णिका भगवत् पादाम्बु भागीरथी काशीना पतिरद्धमस्य भजते श्रीविश्वनाथ स्वयम् । एतम्यैव हि नाम शम्भुनगरे निस्तारक तारक तस्मात् कृष्णपदाम्बुज भज सर्वे श्रीपात्रनिर्वाणदम् ॥

‘जिनके पसीनेके जलसे मणिकर्णिकासी उत्पत्ति हुई, जिनके चरणकमलोंका धोवन ही भागीरथी गङ्गा है, श्रीविश्वनाथ जिनका आधा अङ्ग वने हुए है और श्रीशम्भु जिनका तारक नाम देकर जीवोंका निस्तार करते रहते हैं, हे सखे। तुम उन्होंने मुक्तिदाता श्रीकृष्णके चरणकमलोंका भजन करो।’

इस श्लोकको पढ़कर प्रकाशानन्दजीके मनमें दद्धा परिवर्तन हो गया। इसके बाद श्रीचैतन्यदेव जब काशी पधारे, तब स्वामी प्रकाशानन्दजी दो महीने उनके सत्सङ्गमें रहकर श्रीकृष्ण-भक्त बन गये।

भगवानुकी प्रसन्नता

महात्मा रामलिङ्गम् इस बातमें सोचकर सदा खिल रहते थे कि मेरे पापोंना क्या नहीं हो रहा है। वे रात-दिन इसी चिन्तासे परिश्रान्त रहते थे। इस समय उनकी अवस्था केवल सोलह सालकी थी। भगवान् शिवमें उनकी वडी निष्ठा थी, वे अच्छी तरह समझते थे कि शिवकी प्रसन्नता और कृपासे उनके पापोंका अन्त हो जायगा।

एक दिन वे मद्रासके निकट तिक्कतुरुर मन्दिरमें भगवान् शिवके श्रीविग्रहकी परिक्रमा कर रहे थे। वे अपने पापोंका स्मरण करके चिन्तित हो उठे और भगवान् महादेवका स्मरण करने लगे।

मन्दिरमें उस समय केवल वे ही थे। अन्नानक उन्हें एक दिव्य पुरुषका दर्शन हुआ। रामलिङ्गम् शिवकी प्रशस्ति गा गहे थे। वडी श्रद्धा और विश्वास से वे अपने

आराध्यदेवका दृद्यमें आवाहन कर रहे थे। एक दिव्य पुरुष सिद्धयोगीके रूपमें दीख पड़े। रामलिङ्गम् उनके पैरोंपर गिर पड़े।

‘मैं इस असार ससार-सागरमें द्व्य-उत्तर रहा हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये। मुझे पाप-पङ्कमें गिरनेसे बचा लीजिये।’ रामलिङ्गमने योगीसे निवेदन किया।

‘वत्स ! मैं तुम्हारी सच्ची श्रद्धा और स्वाभाविक भक्तिसे प्रसन्न हूँ। ससारमें रहकर भगवदाश्रय कल्पनाला व्यक्ति निस्सदेह पाप और पुण्यके पचड़ेसे मुक्त हो जाता है।’ दिव्य पुरुष अदृश्य हो गये।

रामलिङ्गम् आश्र्वर्यचकित थे। उन्हें विश्वास हो गया कि साक्षात् शिवने ही कृपा की। वे उनके श्रीविग्रहको वार-वार देखने लगे। —रा० भी०

संतका सम्पर्क

सत त्यागराजके जीवनकी एक घटना है। उनकी राम-भक्ति और दिव्य सगीत-माधुरीसे जिस समय समस्त दक्षिण भारत भगवतरसमें निमग्न हो रहा था, उस समय तजौर-

नरेशके मनमें सतके दर्शनकी इच्छा जाग पड़ी। वह त्याग-राजको अपनी राजसभामें बुलाना चाहता था, पर त्यागराज नहीं गये। उन्होंने कहलवा दिया कि ‘मेरा मन रामभजनमें ही

मुख मनना है। उसे गजबंध और घनोगर्जनकी ओर्ह आवश्यकता नहीं है।’ उन्होंने गजके निमन्त्रणकी उपेक्षा कर दी।

X X X X

एक दिन आवी रातको मार्शिमोर होकर सत ल्यागगज अपने मनको समझा रहे थे कि वे मन ! सुन्दर गजमार्ग गृह्ण हुए तुम गणितोंका आश्रय क्यों लेते हो। मुक्तिके लिये भक्तिमार्ग सुलभ है। कुमारमें पड़कर क्यों नष्ट होते हो।’ इस मावका सरस पट वे अपने सिनागर गा रहे थे कि सहसा चौक पड़े। उन्हें ऐसा ल्या कि उनके सिवा ओर्ह दूसरा व्यक्ति भी उस्थित है। उनका अनुमान ठीक निकल

तंजौर-नरेश छतमें छेड़ करके उनका मर्गीत सुन रहे थे। वे आपके भयमें सामने आ गये और चण्णोपर गिरकर ध्रुमायाचना की।

‘महाराज ! मैंग कल्याण हो गया। आपने ठीक ही कहा है कि हे सुन्दर राजा ! गजनय छोड़कर तुम रहस्यमार्गसे मेरे वरमें क्यों आ गये।’ गजके मुखमें अपने पदका विलक्षण वर्थ सुनकर तथा उसके सच्चे भावसे प्रभान्त होकर ल्यागरजने उन्हें पद सुनाया। राजा निहाल हो गये सतकी गममत्ति-माधुरीसे। उनका सच्चमुच कल्याण हो गया।

—८० श्री०



में श्रीकृष्णसे मिलने जा रहा हूँ

ल्यागम भी वर्ष पहलेकी बात है। सौगढ़के प्रणिद्व वैष्णव कवि अभिनव नरसी मेहता—द्यागम भाईने श्रीकृष्ण-र्णामपर मग्न गान लिखकर अपने आपको अमर कर लिया। उनका नमस्त जीवन रासनिक नन्दनन्दनके चण्णोपर न्यर्पित था। वे उन्होंके लिये नारे बाम करते थे। उन्होंकी प्रनक्षनाके लिये ब्रह्म-पीते और कपड़ा पहनते थे। वे कांगती-से-कांगती कपड़े पहनकर अपने आगव्यडेवका दर्शन करने के लिये मन्दिरमें जाया करने थे।

एक दिन वे अच्छी तरह बन-उनकर कही जा रहे थे। उनका बागी बड़ा सुन्दर और सुख कान्तिपूर्ण था। उन्होंने हर्नी किनारीकी अहमदाबादी बोती पहन रखी थी, वंडी झीनी मल्लमल्की थी और बैगरवा बड़ा सुन्दर था निपर लाल रंगकी

नारी पगड़ी थी। वगलमें सितार दबाये वे चले जा रहे थे कि किसी मित्रने छेड़ ही नो दिया कि ‘कहाँ जा रहे हैं ?’ किसीसे मिलनेका कार्यक्रम तो नहीं है।’

द्यागम भाईका रोम-रोम मित्रके प्रवनसे पुलकित हो उठा। बौद्धोंसे प्रेमाश्रु बरने लो। वे कुछ देरतक आत्म-विमोर होकर जड़के नमान लड़े रहे।

‘भैया ! श्रीकृष्णसे बढ़कर मेरे लिये दूसरा कौन है। उनकी रूप-माधुरीसे वर्डी मेसारमें दूसरी वस्तु है ही क्या। आपने कितनी सुन्दर बात पूछी है। वडे भाग्यसे आपका दर्शन मिल गया। इस नमव में अपने परमाराव्य प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलने जा रहा हूँ।’ द्यागम भाईने मित्रके प्रति आभार प्रकट किया और चल पड़े।—८० श्री०

नामनिन्दासे नाक कट गयी

एक बार भक्त हरिदासजी मृतग्रामके जमीदार हिरण्य मन्त्रमदारके बत्ते हरिनामका माहात्म्य बतान करते हुए बोले कि ‘भक्ति-रूपक हरिनाम लेनेते जीवने हृदयमें जो भक्ति-प्रेमज्ञा सचार होता है, वही हरिनाम लेनेका फल है।’ इसी वालचानके निर्मित्यें जमीदारके गोपाल चक्रवर्ती नामक एक कर्मचारीने हरिनामसी निन्दा की और यह कहा कि—‘नव भावुकतार्दी बातें हैं। यदि हरिनामसे ही मनुष्यकी

र्जुनिना मिट्नी हो तो मैं अपनी नाक कटवा डालूँ।’ हरिदासजीने भी वर्डी दृढ़तासे उत्तर दिया कि—‘भाई ! यदि हरिनाम-स्तरण और हरिनाम-जग्मे मनुष्यको मुक्ति न मिले तो मैं भी अपनी नाक कटवा डालूँगा।’ कहते हैं कि दो-तीन महीने बाद ही गोपाल चक्रवर्तीकी नाक कुप्तरोगसे गल्कर गिर पड़ी। हरिनाम-निन्दाका फल प्रत्यक्ष हो गया।

सर्वत्र गुणदृष्टि

श्रीगदाधर भट्टजीसे श्रीमद्भागवतकी भावपूर्ण कथा सुननेके लिये भावुक भक्तोंका समुदाय एकत्र हुआ करता था। श्रीमद्भागवत प्रक तो वैसे ही भक्तोंका दृढ़यधन है, भावनाओंका अमृत-सागर है, दूसरे भक्तश्रेष्ठ गदाधरजी-जैसे वक्ता थे। वक्ता भूल जाते थे कि वे कथा सुनाने वैठे हैं और श्रोता भूल जाते थे कि वे घर-द्वार छोड़कर आये हैं। वक्ता गहरद हो जाते थे। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा चलने लगती थी। श्रोताओंमें से भी प्रायः सभीके नेत्र टपकने लगते थे। श्रोताओंमें एक महंतजी भी आते थे। उनके ही नेत्रोंसे अश्रु नहीं आते थे। उन्हें इससे लजा होती थी कि लोग कहंगे, इसमें तनिक भी मर्क्ख-भाव नहीं है।

महंतजीने एक उपाय निकाल लिया। वे एक बछरमें लाल मिर्चका चूर्ण बाँध लाते थे। कथामें जब ऐसा प्रसङ्ग आता कि सब श्रोता भाव-विहृल हो उठते, सबके नेत्रोंसे अश्रु निकलने लगते, तब महंतजी भी नेत्र पोछनेके बहाने लाल मिर्चकी पोटली नेत्रोंपर राड लेते। इससे उनके नेत्रोंसे भी आँसू निकलने लगते।

महंतजीके पास वैठे किसी श्रोताने उनकी चतुरता जान ली। कथा समाप्त होनेपर वह अकेलेमें भट्टजीके पास गया

और बोला—‘महाराज ! आपकी कथामें जो महंत आता है, वह बड़ा ढोगी है। उसमें भगवद्गतिका तो नाम नहीं है, किंतु कथामें दूसरोंको दिखानेके लिये आँखोंमें लाल मिर्चकी पोटली लगाकर आँसू बहाता है, जिससे लोग समझें कि वह कथा सुनकर अश्रु बहा रहा है।’

भट्टजीने पूछा—‘आप सब कह रहे हैं ?’

श्रोता—‘मैंने स्वयं देखा है।’

भट्टजी तो उठ खड़े हुए। वे बोले—‘वे महात्मा धन्य हैं ! मैं अभी उनके दर्शन करने जाऊँगा।’

भट्टजीके साथ उनके कुछ शिष्य-सेवक भी मठमें गये। मठाधीश महंतको भट्टजीने भूमिपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया और बोले—‘मैंने सुना है कि कथामें नेत्रोंमें स्वाभाविक आँसू न आनेके कारण आप उनमें लाल मिर्च लगाते हैं। आप-जैसे भगवद्गतिका दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया। मैंने पढ़ा है और सत्पुरुषोंके मुखसे सुना है कि भगवान्के गुण तथा लीलाको सुनकर भी जिन नेत्रोंमें जल न आये, उन्हें दण्ड देना चाहिये; किंतु इस बातको कियात्मकरूप देनेवाले महात्माके दर्शन तो मुझे आज हुए हैं !—सु० सिं०

चोरोंका सत्कार

(लेखक—वादू महिन्द्रसिंहजी)

करीब डेढ़ सौ वर्ष बीत चुके होंगे। चम्पारनमें केशरिया थानके अन्तर्गत एक ढेकदा गाँव है। वहाँ गण्डक नदीके किनारे श्रीकर्त्तारिम वावा और श्रीध्वलराम वावाका मन्दिर था। मन्दिरके अंदर कुल ढाई-तीन बीघा जमीन थी। उसी जमीनकी फसलसे अतिथियोंका स्वागत होता था तथा भूजकी रसियाँ बनाकर हाटों-नाजारोंमें बेचकर मन्दिरके दीपक धूत्यादिका इतजाम वावालोग किया करते थे।

अगहनका महीना था। दोनों वावा अपने मन्दिरमें सोये थे, मन्दिरकी जमीनमें कुछ धन पका था। वावा लोगोंका विचार उस फसलको काटनेका था। उसी रातको करीब पंद्रह-वीस चोरोंने वावाके कुल पके हुए धानको काटकर

बाँध लिया। जब उन लोगोंने वोझोंको उठाकर सिरपर रखा और उन्हें ले जानेका विचार किया, तब उनको रास्ता ही नहीं सूझा। वे खेतमें ही अंथे हो गये। समूची रात वे जाड़ेसे काँपते हुए उसी खेतमें भटकते रहे।

रातके चौथे प्रहरमें कर्ताराम वावा जागते ही ध्वलराम वावाको जगाकर उन चोरोंके लिये खानेकी सामग्री भेजी। ध्वलराम वावाके खेतमें पहुँचते ही सब चोर लजित हो गये। वावा तो क्षमागृहीत थे ही, उन्होंने उन लोगोंको सान्त्वना दी, खानेको दिया और साथ ही धानके बोझोंमेंसे उनको उचित मजदूरी भी दी। उन चोरोंका चोरीका पेशा उसी दिनसे छूट गया।

डाकूसे महात्मा

(लेखक—वैद्य श्रीभगवदासजी साधु आयुर्वेदाचार्य)

मवत् १७०० के लगभग जैसलमेर राज्यान्तर्गत वारू ग्राममें चौहान धनिय माधवसिंहजी हुए। ये स्वभावसे बहुत ही रजोगुणी थे। डाकूओंका मधटन करके आसपासमें लूट करना इनका दैनिक व्यवहारसा बन गया था। ये बिगेपकर जगलेमें रहते और उधरसे माल लेकर जब कोई व्यापारी निकलते तो ये उन्हें लूट लेने। इस कारण प्रायः सिंधसे इधर वस्तुअंका आना-जाना बंदसा हो गया था। फिर भी, अकालके समय कमी-कमी लोग निकटवर्ती मार्गसे जलदी आने-जानेकी बात सोचकर अपने जॉटोंसे वस्तु लाया-ले जाया करते थे। वे कई बार माधवसिंहजीद्वारा लूट लिये जाते थे। यह क्रम कई बारंतक चलता रहा। लोग इनके नामसे ही कॉपने लगे थे। एक समय टेगमें भयकर दुष्काल पड़ा, चारों ओर हाहाकार मच गया। उस समय जॉटोंपर अनाज लंकर कई यात्री सिंधसे आ रहे थे। जिस झाड़ीले जगलमें माधवसिंहजी रहते थे, उसके पास पहुँचते-पहुँचते सूर्य अस्त हो गया। कतारिये रात्रिकी भयानकताको देखकर आगे चलना नहीं चाहते थे और वहाँ ठहरनेसे लुट जानेका डर था। हैवगति विनिव्र होती है, वे वहाँ ठहर गये। खानेके लिये गेटियों बनाने लगे। उनमेंसे एकने कहा—‘यहाँ ठहर

तो गये, कहो माधवसिंह आ गये और लूट लिया तो बाल-बच्चे सब नष्ट हो जायेंगे।’ दूसरेने कहा—‘अब तो श्री-रघुनाथजी ही बचायेंगे।’ रात्रिके अन्यकारमें वहीं पास खड़े माधवसिंह वे सब बातें सुन रहे थे। इनकी बातें सुनकर उनका हृदय द्रवित हो गया। वे अपनेको रोक नहीं सके, हठात् कतारियोंके सामने जा पहुँचे। इनको देखते ही वे सब गेटियों छोड़कर चिलाने लगे। उनको रोते-कराहते देखकर माधव-सिंहने कहा—‘भाई। डरो भत, तुम रोटी खाकर यहाँसे चले जाओ। मैं तुम्हे नहीं लूँगा। मेरी सम्मतिके बिना मेरे साथी भी तुम्हें कष्ट नहीं देंगे।’ यो कहकर उन लोगोंको वहाँसे बिदा कर दिया। माधवसिंह रातभर अग्री जलाकर वहाँपर बैठे रहे। उन्होंने अपने सारे कपड़े जला दिये। सबेरे जब उनके साथी आये और पूछा—‘यह क्या किया?’ तब आपने कहा—‘भाई! तुमलोगोंमेंसे जो भाई सत्य और अहिंसासे अपना उद्धार करना चाहे, वह मेरे साथ रहे। मैं अब कलङ्कको धोकर अपने जीवनको पवित्र करूँगा।’ माधवसिंहजीके व्रताच और कथनसे प्रभावित होकर सभीने डकैतीका त्याग करके धर्मान्वित कार्य करना शुरू किया। आगे चलकर वे ही माधवदासजी वीतराग महात्मा हुए, जिनका स्थान कोडमदेसर है।

पापका बाप कौन ?

पण्डित चन्द्रशेखरजी दीर्घ कालतक न्याय, व्याकरण, धर्मशास्त्र, वेदान्त आदिका अध्ययन करके काशीसे घर लैटे थे। सहसा उनसे किसीने पूछ दिया—‘पापका बाप कौन?’ पण्डितजीने बहुत सोचा, ग्रन्थोंके पृष्ठ भी बहुत उलटे; किंतु कहीं उन्ह इनका उत्तर नहीं मिला। सच्चा विद्वान् सच्चा जिग्मु होता है। पण्डित चन्द्रशेखरजी अपने प्रश्नका उत्तर पाने फिर काशी आये। वहाँ मीं उन्हे उत्तर नहीं मिला तो उन्होंने यात्रा प्रारम्भ कर दी। अनेक तीयोंमें, अनेक विद्वानोंके स्मानोंर वे गये; किंतु उनका मंतोप कहाँ नहीं हुआ।

पण्डित चन्द्रशेखरजी देशाटन करते हुए प्रसाके सदाशिव पंडम जा रहे थे। वहोंकी विलासिनी नामकी वेदवा ज्ञानेष्वर

बैठी थी। उसकी दृष्टि चन्द्रशेखरजीपर पड़ी। चतुर वेश्या दासीसे बोली—‘यह ब्राह्मण रग-ढगसे विद्वान् जान पड़ता है; किंतु यह इतना उदास क्यों है? तू पता तो लगा।’

दासी भवनसे बाहर आयी। उसने ब्राह्मणको प्रणाम किया और पूछा—‘महाराज ! मेरी स्वामिनी पूछती हैं कि आप इतने उदास क्यों हैं?’

ब्राह्मणने कहा—‘मुझे न कोई रोग है न धनकी इच्छा। अपनी स्वामिनीसे कहना कि वे मेरी कोई सहायता नहीं कर सकती। यह तो आश्चर्य बात है।’

दासीने इठ किया—‘कोई हानि न हो तो आप वह बात बता दें।’

ब्राह्मणने प्रश्न बता दिया। वे कुछ ही आगे बढ़े थे कि

दासी दौड़ती हुई आयी और बोली—‘मेरी स्वामिनी कहती हैं कि आपका प्रश्न तो यहुत सरल है। उसका उत्तर वे वतला सकती हैं; किंतु इसके लिये आपको यहाँ कुछ दिन रहना पड़ेगा।’

चन्द्रशेखरजीने सहर्ष यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उनके लिये वेद्यने एक अलग भवन ही दे दिया और उनके पूजा-पाठ तथा भोजनादिकी सुव्यवस्था करा दी। चन्द्रशेखरजी वडे कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। अपने हाथसे ही जल भरकर स्वयं भोजन बनाते थे। विलातिनी नित्य उनको प्रणाम करने आती थी। एक दिन उसने कहा—‘भगवन्! आप स्वयं अभिके सामने बैठकर भोजन बनाते हैं, आपको धुआँ लगता है—यह देखकर मुझे बड़ा कष्ट होता है। आप आज्ञा दें तो मैं प्रतिदिन लान करके, पवित्र वस्त्र पहिनकर भोजन बना दिया करूँ। आप इस सेवाका अवसर प्रदान करें तो मैं प्रतिदिन दस स्वर्णनुद्राएँ दक्षिणारूपमें अर्पित करूँगी। आप ब्राह्मण हैं, विद्वान् हैं, तपस्वी हैं। इतनी दया कर दें तो आपकी इस कुच्छ सेवाएँ मुझ अपवित्र पापिनीका भी उद्धार हो जायगा।’

सरल-हृदय ब्राह्मणके चित्तर वेद्याकी नम्र प्रार्थनाका प्रभाव पड़ा। पहले तो उनके मनमें वडी हिचक हुई, किंतु

फिर लोभने प्रेरणा दी—‘इसमें हानि क्या है? वेचारी प्रार्थना कर रही है, ज्ञान करके गुद्ध बत्त पहनकर भोजन बनायेगी और यहाँ अपने गाँव-धरका कोई देखने तो आता नहीं। दस सोनेकी मोहरें मिलेंगी। कोई दोष ही हो तो पीछे प्रायश्चित्त कर लिया जा सकता है।’ चन्द्रशेखरजीने वेद्याकी वात स्वीकार कर ली।

भोजन बनाया वेद्याने। वडी श्रद्धासे उसने ब्राह्मणके पैर धुलाये, सुन्दर पट्टा विछा दिया और नाना प्रकारके सुखादु सुगन्धित पकवानोंसे भरा बड़ा-सा थाल उनके सामने परोस दिया। किंतु जैसे ही ब्राह्मणने थालीमें हाथ डालना चाहा, वेद्याने धाल ढीक्रतासे खिसका दिया। चकित ब्राह्मणसे वह बोली—‘आप मुझे क्षमा करें। एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मणको मैं आचारन्युत नहीं करना चाहती थी। मैं तो आपके प्रश्नका उत्तर देना चाहती थी। जो दूसरेका लाया जल भी भोजन बनाने या पीनेके काममें नहीं लेते, वे शाल्वश, सदाचारी ब्राह्मण जिसके बशमें होकर एक वेद्याका बनाया भोजन स्वीकार करनेको उद्यत हो गये, वह लोभ ही पापका बान है।’—सु०सिं०

विचित्र दानी

रहीम खानखाना अपने समयके उदार और दानी व्यक्तियोंमेंसे एक थे। वे यहुत वडे गुणग्राहक और भगवद्भक्त थे। उन्होंने अपने जीवनकालमें दागणित व्यक्तियोंको लाखों रुपयोंसे पुरस्कृतकर सम्मानित किया था।

एक सन्य सुल्ला नजीरी नामक व्यक्तिने रहीम खानखानाते निवेदन किया कि मैंने अपने समस्त जीवनमें कभी एक लाख रुपयेका देर नहीं देखा है।

‘एक लाख रुपयेका देर शीघ्र लाया दिया जाय।’ खानखानाका आदेश होते ही उनके कोपाध्यक्षने रुपयोंका

देर लगा दिया।

‘परमात्माको धन्यवाद है। उनकी कृपासे खानखानाने एक लाखका देर लाया दिया।’ सुल्ला नजीरी प्रसन्नतासे नाच उठे। इधर परमात्माको धन्यवाद देते देखकर रहीमका भक्त-हृदय पिघल उठा।

भुल्लाको एक लाख रुपयेका देर सदाके लिये सौंप दिया जाय, जिससे वे इतनी ही सचाई और भक्तिसे एक बार फिर परमात्माको धन्यवाद दे सकें। महादानी खानखाना-के अधर स्पन्दित हो उठे; वे अनन्दमग्न थे।—रा० श्री०

सहनशीलता

प्रसङ्गके बाहरकी वात हो गयी, अब—हमलोग अपने मूल विषयपर विचार करें।

शाल्वजीका पाण्डित्य विपक्षको पराजित कर पाता या नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता; किंतु उनकी सहन-शीलताने विपक्षको तत्काल पराजित कर दिया। दूसरे पक्षके विद्वान् लजित होकर उनसे क्षमा माँगने लगे। —सु० सिं०

भट्टजीकी जाँधोंपर भगवान्

बृन्दावनमें श्रीभट्ट नामक एक महात्मा रहते थे। लोगोंका कहना था कि उनकी दोनों जाँधोंपर श्रीराधा-कृष्ण आकर बैठा करते हैं।

एक दिन एक ग्यारह वर्षके बालकने सोचा कि मैं भी जाकर भगवान्के दर्शन करूँ। वह भागकर भट्टजीके सभीप आया। आकर उसने महात्माको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

महात्माने उसे बुलाया और खड़े रहनेका कारण पूछा। लड़केने अपनी इच्छा बता दी। इसपर उन्होंने पूछा कि 'तुमको मेरी जाँधपर कुछ दिखायी पड़ता है?' लड़केने कहा—'नहीं।'

महात्मा—'वेदा। तुम्हारी ओंखें अभी खराब हैं। लेकिन इसके ठीक होनेका एक उपाय है। तुम जाकर वारह वर्षतक गोवर्धन पर्वतकी परिक्रमा करो। तब तुम्हारी ओंखें ठीक हो जायेंगी। वहाँ जब तुमको भूख लगे, माँग-कर खा लेना और जहाँ नींद आये सो जाना।'

लड़का चला गया और विश्वासपूर्वक वारह वर्षतक ऐसे ही करता रहा। वारह वर्ष बीत जानेपर उसने सोचा कि अब मुझको भगवान्के दर्शन होगे। यह सोचकर वह वहाँ आया।

महात्माने फिर पूछा—'अब तुमको कुछ दिखायी देता है?' उसने कहा—'नहीं।' वह निराश हो गया। किंतु महात्माने कहा—'अच्छा, तुम फिर जाओ। इस बार तुम्हारी ओंखें जल्स ठीक हो जायेंगी।'

वह फिर गया और वैसे ही परिक्रमा करने लगा। वारह वर्ष बाद वह लौटा। इस बार जब महात्माने पूछा—'तुमको कुछ दिखायी पड़ता है?' उत्तरमें उसने उल्लिखित होकर कहा, 'मुझको आपकी एक जाँधपर श्रीराधाजी और दूसरीपर श्रीकृष्ण बैठे दिखलायी पड़े हैं।'

फिर तो उसे उस समयसे दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गयी और वे सज्जन आगे चलकर एक प्रसिद्ध महात्मा बने, जिनकी बनायी हुई एक बड़ी सुन्दर लीलाकी पुस्तक है। सभी उनके आगे सिर छुकाते थे।—'राधा'

काशीमें मरनेसे मुक्ति

एक महात्मा थे। वे काशीमें रहते थे। उनके पास एक विल्ली थी, वह मर गयी। महात्माने उसको लाल कपड़ेमें बौधकर गङ्गाजीमें डाल दिया।

दूसरे दिन महात्मा जब ध्वन कर रहे थे, तब एक लड़की साझी पहने हुए उनके पास आयी और बोली— 'महात्माजी! प्रणाम।'

महात्मा—'वेटी। तू कौन है?'

लड़की—'आपने मुझे नहीं पहचाना। मैं वही कलवाली विल्ली हूँ। आपने दया करके मुझे गङ्गाजीमें डाल दिया था, इससे अब मैं जिवलोकको जा रही हूँ। आपको प्रणाम करने आ गयी।'

यह कहकर लड़की अन्तर्धान हो गयी।—'राधा'

ईमानदारी सबसे बड़ी सिद्धि

रुद्र, १७४० चिठ्ठी में गुजरात-सौराष्ट्रमें भारी अकाल पड़ा था। अबके बिना मनुष्य और वृणके बिना पश्च तड़प रहे थे। वर्षा-ऋतु व्यतीत हो रही थी, किंतु आकाशमें बादलका नाम नहीं था।

तत्कालीन नरेशने यज्ञ कराये, सातु-महात्माओंसे प्रार्थना की। किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। एक दिन किसीने नरेशने कह दिया—'आपके नगरके असुक व्यापारी चाहे तो वर्षा हो न रही है।' राजा स्वयं गये उस व्यापारीके यहाँ। व्यापारीने

नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'अन्नदाता! मैं तो तुच्छ मनुष्य हूँ, मेरे कहनेसे कहीं वर्षा हो सकती है।'

परतु नरेशको जिसने सम्मति दी थी, उसकी बातपर उन्हं विश्वास था। वे हठ करके बैठ गये—'आपको दीन प्रजाके ऊपर और मूक पशुओंपर दया करनी पड़ेगी। जबतक वर्षा नहीं होती, मैं आपके द्वारपर बैठा रहूँगा।'

व्यापारीने देखा कि उसका ऐसे छुटकारा नहीं हो

सकता । उसने अपनी तराजू उठायी और बाहर आकर बोला—‘देवता और लोकपाल साक्षी हैं, यदि इस तराजू से मैंने कभी कम-च्यादा तौला न हो, यदि यह तराजू सत्य और ईमानका सौदा ही तौलता रहा हो तो देवराज इन्द्र वर्षों करें।’

स-से वड़ी सिंडि तो है ईमानदारी । व्यापारीकी बात पूरी होते-न-होते तो ऑर्धेका शब्द सुनायी पहने लगा । कुछ क्षणोंमें आकाश मेघोंसे ढक गया और प्रवल बृष्टि पृथ्वीको शीतल करने लगी । —सु० सिं०

धर्मके लिये प्राण-दान

बात शाहजहाँके शासनकालकी है । स्थालकोटके एक छोटे मदरसेमें बालक इकीकतराय पढ़ता था । एक दिन मौलिनी साहब रह्ये थाहर चले गये । अवसर पाकर बालक रेखने लगे । मुसलमान लड़के स्वभावसे हकीकतरायको छेड़ते रहते थे । उन सर्वोंने उस दिन भी हकीकतरायसे तग करना प्रारम्भ किया, उसे गालियाँ दीं और पिर हिंदुओंके देवी-देवताओंको गालियाँ देनी प्रारम्भ की ।

जब हकीकतरायसे नहीं सहा गया, तब उसने रहा—‘अगर तुम्हारे पैगम्बरको भी यही बातें रही जायें तो ?’

मुसलमान लड़कोंने गुस्सेसे कहा—‘तुम इतनी हिम्मत कर सकते हो ! जए कहकर तो देखो ।’

बालक हकीकतरायने वे ही शब्द दुहरा दिये । लेकिन वहाँ तो मुसलमान लड़कोंकी यह दशा हो गयी मानो प्रलय हो गयी हो । उन्होंने बातका बतगड़ बना लिया । मौलिनी साहबके पास सब दौड़े गये और नमक-मिर्च ल्याकर सब बातें कहीं ।

हकीकतरायको झूठ नहीं बोलना था । फल यह हुआ कि मौलिनी साहबने मामला उस स्थानके हाकिमकी अदालतमें पहुँचा दिया । हकीकतराय गिरफ्तार कर लिया गया । नन्हे

बालकके हाथ-पैर हथकड़ी-बेड़ीसे जकड़कर उसे अदालतमें खड़ा किया गया ।

‘अगर तू मुसलमान बन जाय तो मरनेसे बच सकता है ।’ काजीने बालकके सामने यह प्रखाव रखा ।

बालक इकीकतरायके माता पिता से रहे थे । उसकी बालिका पत्नी मूर्च्छित हो गयी थी । माता तो कह रही थी—‘वेटा ! तू काजीकी बात मान ले । तू मुसलमान होकर भी जीता रहेगा तो हम तुझे देख तो सकेंगे ।’

काजीने प्रलोभन दिया—‘मुसलमान होनेपर तुम्हें ऊँचा ओहदा दिया जायगा ।’

हकीकतराय बालक था, किंतु उसका चित्त धर्मवीरतासे पूर्ण था । उसने मातसे कहा—‘माँ ! मैं अमर होकर तो उत्पन्न नहीं हुआ हूँ । जब एक दिन मरना ही है तो अपना धर्म छोड़कर योड़े जीवनके लिये पतित क्यों बनूँ । धर्म-भ्रष्ट होकर जैनेसे तो मरना बहुत उत्तम है ।’

‘मैं अपना धर्म नहीं छोड़ सकता ।’ काजीको उस बालकने स्पष्ट सुना दिया । खुले मैदानमें जल्पानी तलवारने उस बालकका सिर बड़े अलगा कर दिया । —सु० सिं०

सज्जनता

सर प्रभागङ्कर पट्टनी लदनकी सड़कपर पैदल निकले थे । भारतीय बेग, लड़ी दाढ़ी और हाथमें मोटा सोटा लिये यह भारतीय बुद्धा अग्रेज लड़कोंको विचित्र लगा । कुछ बालकोंका समुदाय एकत्र हो गया । लड़के सर प्रभागङ्करपर कंकड़ियाँ फैक्ने लगे ।

सर प्रभागङ्कर न झल्लाये और न लड़कोंको उन्होंने

डॉटा । वे बोले—‘वाह ! बालको ! तुममें उत्साह और स्फूर्ति तो है । आओ । मैं तुम्हें जल्पान करनेके लिये आमन्त्रित करता हूँ ।’

बालक इस अद्भुत बृद्धकी सुन्दर अग्रेजी और मधुर स्वरसे ग्रामाचित हुए । सर प्रभागङ्कर उन्हें पासके होटलमें ले गये और अपने पैसोंसे उन्हें जल्पान कराया । —सु० सिं०

सच्चे भाईचहन

लघी लाठी कधेपर रख्ने, कमरमें तलवार बॉथे फतहसिंह अपनी खी राजूलाको ससुरालसे विदा करके घर

जा रहा था । उसका घर दूर था, सूर्यास्त हो चुका था और मार्गमें डाकुओंका भय था । मार्गके गोवर्में कुछ लोगोंने उसे

रोका भी कि वह रात्रि गँवमें व्यतीत करके तब आगे बढ़े; किंतु जगानीका जोग ठहरा; भला, पत्नीके सम्मुख वह अपनेको दुर्वल कैसे स्वीकार करता। उसने यात्रा जारी रखी।

स्वाभाविक था कि मार्गमें स्त्री कुछ पीछे रह जाती। पुरुषके समान तेज चालसे वह कैसे चल सकती थी। इतनेमें डाकका थैला बहलमें लटकाये, धूधुरुका शब्द करते, तलवार बॉधे 'जटा-हरकारा' नामसे पुकारे जानेवाले जटाशङ्कर महाराज उसी मार्गसे निकले। राजूलाने उन्हे प्रणाम किया।

'कौन? अभ्यराम काकाकी कन्या राजूला वहिन, अँधेरा होनेपर दूधधर कहाँ जा रही है?' जटागकर महाराजने उसे पहिचान लिया और अपनी चाल धीमी करके वे उसके साथ हो गये। फतहसिंहके पूछनेपर राजूलाने वता दिया कि जटागकर महाराज उसीके गँवके हैं, उसके पड़ोसी हैं।

ये लोग कुछ ही आगे बढ़े थे कि एक सोतेके किनारे बबूलके बृक्षोंके छुरमुटमें छिपे ऑबला गँवके बारह कोइरी तलवार लिये निकले। उन्होंने फतहसिंहको ललकारा—'चुपचाप तलवार रख दो।'

बारह कोइरियोंको देखकर फतहसिंहकी हेकड़ी भूल गयी। उन्होंने चुपचाप तलवार नीचे डाल दी। लुटेरोंने फतहसिंहके हाथ बॉध दिये और उन्हें एक ओर बैठा दिया। अब वे राजूलाके शरीरपरसे गहने उतारने लगे। राजूला भयके कारण पुकार उठी—'जटागकर भाई! दौड़ो! बचाओ!'

जटागकर महाराज जान-बूझकर कुछ पीछे आ रहे थे, जिससे राजूलाके पतिको सकोच न हो। अब पुकार सुनकर उन्होंने डाकका थैला फेंक दिया और तलवार खींचकर दौड़े।

सच्ची शिक्षा

रविगकर महाराज एक गँवमें सवा सौ मन गुड़ बॉट रहे थे। एक लड़कीको वे जग गुड़ देने लगे, तब उसने इन्कार करते हुए कहा—'मैं नहीं लौंगी।'

'क्यों?' महाराजने पूछा।

'मुझे शिक्षा मिली है कि यौं नहीं लेना चाहिये।'

'तो कैसे लेना चाहिये?'

'श्रवने दो हाथ तथा दो पैर दिये हैं और उनके नीचमें पेट दिया है। इसलिये मुफ्त कुछ भी नहीं लेना चाहिये। यह तो आप मुफ्त दे रहे हैं, मजदूरीसे मिले तो ही लेना चाहिये।'

लुटेरोंने उनसे कहा—'जटा महाराज। तुम अपने रास्ते जाओ, व्यर्थ क्यों लड़ाई मोल लेते हो।'

जटा महाराजने गर्जना की—'अपनी बहिनको अपनी ऑखोंसे मैं लुटती हुई देखूँ तो मेरे जीवनको धिक्कार है।'

जटाशंकर महाराज तलवारके मँजे हुए खिलाड़ी थे। उनके सधे हाथ पड़ने लगे। कोइरियोंने भी उनपर एक साथ आक्रमण कर दिया। छपाछ्य तलवारें चलने लगीं; किंतु जटा महाराजने जब दसको तलवारके घाट उतार दिया, तब शेष दो भाग खड़े हुए। महाराजने उनका भी पीछा किया और उनमेंसे एकको काट गिराया; किंतु दूसरेने उनपर पीछेसे आघात किया। जटागकर महाराज भी गिर पड़े।

फतहसिंहने अब अपने हाथ खोल लिये, लाठी उठाली और तलवार बॉध ली। पक्षीसे वे बोले—'चल जलदी।'

राजूलाने कहा—'अब मैं कहाँ जाऊँ। जिसने तीन पद साथ चलकर मेरे लिये अपने प्राण दे दिये, मेरी इजत बचानेके लिये जो जूझ गया, उसकी लाश सियारोंसे नोची जानेको छोड़कर मैं तुम्हारे साथ ससारके सुख भोगने जाऊँ। मेरा सच्चा भाई मरा पड़ा है, उसके देहके साथ मैं अपनी देहकी आहुति दूँगी।'

'तेरे-जैसी स्त्री मुझे बहुत मिलेगी।' कहकर कायर फतहसिंह तो चल गया, किंतु राजूला वहाँ जटाशंकर महाराज-के शरीरके पास रातभर बैठी रही। सब्रेग होनेपर उसने लकड़ियाँ एकत्र करके चिंता बनायी। उस चिंतामें सच्चे भाईके देहके साथ वह सच्ची वहिन भी भस्स हो गयी। उस सोतेपर उन दोनोंके स्मारककी आज भी पूजा होती है।

—सु० सिं०

महाराजको आश्र्य हुआ। इसको ऐसी शिक्षा देनेवाला कौन है, यह जाननेके लिये उन्होंने पूछा—'तुझे यह सीख किसने दी?'

'मेरी माँने।'

महाराज उसकी माँके पास गये और पूछा—'तुमने लड़कीको यह सीख कैसे दी?'

'क्यों महाराज? मैंने इसमें नयी बात क्या कही? भगवानने हाथ-नग दिये हैं, तेथे मुफ्त क्यों लेना चाहिये?'

'तुमने धर्मगाला पढ़े हैं?'

‘ना’

भुज्हार्ग आर्जिता किस प्रकार चली है ?

भगवन् भिन्नर बोला है। मैं लड़का छाट लानी हूँ और उसे अपने अपने लायें लाना है। लड़के गाँव लौटी है। वे मन्दूरी से हमारे गुडान दुखनों से साथ निम न्न है।

‘तो इस लड़के के पिता— . . . ।

वह यहि उद्घान हो गया हूँ तो उसे उद्घान बोल— ‘लड़के तिता शोर्डा उम्र लेकर आये थे। नवानीमें ही वे हमें कहले छोड़कर चढ़ गये। यद्यपि आपने नील गंगे उद्घान और दो दैड़ वे छोड़ गये थे। तो मैं मैंने चिचार किया कि इन नवानीमें मेरा कदा लेनाना है, मैं कब इनके लिये पहली बदले गयी थी ? अथवा यदि मैं पुणीनी हुदिग होना या अंदर अथवा अगल होना तो अपने लिये समर्पिता उपयोग मी बनी। अनु एर्सा तो मैं थी नहीं। मेरे मनमें आया कि इस नवानीका व्या कहूँ

और नवानीने ही सुने यह नुडाव दिया कि यदि यह समर्पिता गाँवके किसी भगवन्ने काममें लगा तो जाय तो बहुत अच्छा हो। मैंने सोचा, ऐसा कौनना चार्ष हो नकता है—मेरा नमज्जमें यह आग कि इस गाँवमें लड़का बहुत तकर्त्ता है। उसलिये हुआ बनता हूँ। मैंने समनि बैच दी और उससे मिश्री हुई नमज पक्के बैठको साँझकर उनने कहा कि ‘आप इन दैसोंने पक्के हुए बनता हैं।’ ऐसा मठ आठमी थे। उन्होंने परिष्रम और कोशल करके हुएके साथ ही उसी नमजमें पश्चात्याके उड़पीके लिये खेल मी बनता दी।

इन प्रकार उस बहिनने परिकी समर्पिता हृक लोड करके उसका सदृश्य किया। उसे नहीं तो उसके हृदयको तो उन्होंने यिक्का अवध्य मिली होगी कि ये जो परिको आही गयी हूँ सो नवानीके लिये नहीं, पर उद्धगकी—सम्पर्की प्राप्तिके मार्गमें आगे कहनेके लिये ही आही गयी हूँ। इस प्रकारकी समज तथा मुख्यात्मे बढ़कर और कौनसी यिक्का हो सकती है।

संतके सामने इसमें नहीं चल सकता

वगालमें द्वारका नदीके तटस्थ तायरी एक प्रतिद्वंद्वान है। हृषि ही नाट पहुँचकी बात है, एक सुन्दर तायरीके उद्घान उद्घान करनेके लिये तायरी आये। उद्घान मण्णनीन उद्घान करनेके पहुँचे द्वारका नदीमें जान लगके आहिक हृष्य समान करनेका चिचार किया।

वे जान करके नदीके तटस्थ बैठकर आहिक कर रहे थे। उनी उम्र अधोरी नंदु वालडेगा नदीमें जान कर रहे थे। वे हृष्य-हृष्य उच्च सुन्दर उच्च सुन्दरके लग लगके छोटे पैकने लगे। उच्चनको पता नहीं या कि वे भद्रान्मा वालडेगा हैं।

‘कूम अपे हो ? इस नमयमें आहिक कर रहा हूँ और तुम चिक ढाल रहे हो। उच्चन किंगडेने लगे। वे बहुत

वडे जमीदार थे।

‘तुम आहिक कर रहे हो या कलकचेकी मूर अव्यानीमें बैठकर जूते नगिड रहे हो ? वामाडेगा तर्जाचे पानीके ओटे फैकने लगे।

जमीदारको बडा आश्रम हुआ, उसे पता चल गया कि वे बौद्ध असावाग महान्ना हैं।

‘ही महान्ना ! मैं यहीं सोच रहा था कि मूर अव्यानीमें जूते नगिडचर कर लाऊँगा।’ जमीदार उनके फैगेंर गिर पड़ा।

‘वेवकार्में इसमें नहीं जग्ना चाहिने।’ महान्ना वालडेगा हैमने हुए तायरीमें चढ़े गये।—५० श०

संतकी सर्वसमर्थता

हृषि ही दिनों पहुँचकी बात है, एक भगवन्नने हृष्यात्में एक सुन्दरको बैठकर दीर्घ चौड़ ली। पूछनेवर उन्होंने बद्रापा कि एक उत्ताहमें तुम्हें दौँप काट लेना तुम्हार्य सून्य हो जायगा। भगवन्नने उनको बनासु जनेका आठेगा किया और कहा कि मार्गिकिका वाटफर एक भत नहीं है, वे हीं तुम्हारे प्रागोकी रक्षा करेगे। वे बनासु गये, बनासु तुम्हान्नने विकल्पाता प्रकट की और तायरी जलेकी उम्हरदी।

‘तायरीमें भगवन्ना वालडेगा नहीं है। वे हीं तुम्हारे प्रागोकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं।’ कार्यात्मक महान्नाके बहनेले वे तायरी आये।

‘तायरी वगालमें एक प्रतिद्वंद्व चिर्दीवाई है। उसमें बहुतसे मंत्रोनि उमर-उमर, निकास करके चमत्का की है। सुन्दरने उमयानन्मिमें प्रवेश करते ही मगवनी तारको प्रगाम किया। उन्होंने द्वारका नदीके तटस्थ तायरी गिर्द निकट

ही प्रसिद्ध अधोरी संत वामाक्षेपाका दर्शन किया और उनका विकराल रूप देखकर सहम गये ।

‘वाचा ! मेरे प्राण वचाइये; देखिये, यह सौप मेरा पीछा कर रहा है ।’ सज्जनने सत समर्थका दरवाजा खटखटाया । सौप भाग गया ।

‘मैं क्या कर सकता हूँ, कालपर किसका वश चलता है; सौप तुम्हें काटेगा अवश्य, पर मॉ ताराकी कृपासे तुम बच सकते हो ।’ वामाने आश्वासन दिया । अन्तिम दिन था सौपके काटनेका । सज्जनको अपने प्राणकी आशा नहीं थी; फिर भी सतकी सर्वसमर्थतापर उनके मनमें सच्चा विश्वास था ।

वामाक्षेपाने कहा कि आधी रातको सौप तुम्हें काटेगा, पर तुम ताराका पवित्र नाम उस समय भी लेते रहना ।

उन्होंने एक लकीर खींच दी और उसीके भीतर रहनेका आदेश दिया ।

सौप ठीक आधी रातको आया । उसने उनको काट खाया, पर सज्जन सत-वाक्यपर प्रा भरोसा कर ताराका पवित्र नाम उच्चारण करते रहे ।

वामा इस दृश्यको देखते रहे । अचानक उनके सामने तारा प्रकट हो गयी ।

‘मॉ ! वचा लो मृत्युसे इसे ।’ वामाका इतना कहना था कि सौपका विघ उत्तर गया । सज्जनके प्राणकी रक्षा हो गयी । तारा अन्तर्धान हो गयीं अपने सेवककी सर्वसमर्थता प्रमाणित करके । वामा उनके दर्शनसे निहाल थे । —रा० श्री०

कुलीनता

और अमरा अदृश्य हो गया । ०००००

‘वचाओ, वचाओ’ वेदनाभरी पुकार सुनते ही दादू मियोंने लकड़ीका बौजा अलग रख दिया । घने बनमें एक चिड़ियाकी भी आवाज नहीं सुनायी पड़ती थी । वे दौड़ पड़े ।

‘तुम कौन हो, भाई ! कराहते क्यों हो ? तुम्हारे साथ यह दूसरा व्यक्ति कौन है ? डाकुओंने तुम्हें लूटा और धायल भी कर दिया, कितने निर्दयी होते हैं ये ।’ दादू मियोंने सारथिसे पूछा, वह कुछ-कुछ होशमे था ।

‘इस रथमें जैसलमेर-नरेश महाराज पीथल परमारका राजकवि ईहर बारहट है । डाकुओंने हमलोगोंको कहाँका न रखा । बारहटकी हालत तो अत्यन्त शोचनीय है । हम लोग गोहिलवाड़से गौतमेश्वर महादेवका दर्शन करके गुह दत्तात्रेयका दर्शन करनेके लिये गिरनार जा रहे थे ।’ सारथिने सक्षित परिचय दिया, उसके वक्षदेशसे खून वह रहा था । दादू मियोंने लकड़ी जंगलमें ही छोड़ दी, उन्हें इस बातकी चिन्ता नहीं रही कि आज परिवारके लोग क्या खायेंगे । लकड़ी बेचकर ही वे गरीबीके दिन काट रहे थे, उन्होंने अतिथियोंकी सेवाको ही अपना महान् धर्म समझा । वे उन्हे घर लाये, घर क्या था—एक छोटी-सी झोपड़ी । दादूने उनको पेझके नीचे चारराई विछाकर लिया दिया । वे उनकी सेवामें लग गये ॥

स्टेजी ! माण्डवीमे आप ही हमारे परिचित हैं । घरमें दो अतिथि आ गये हैं । आपको मेरी दीन-दग्गाका पता है

ही । अतिथियोंको डाकुओंने बुरी तरह धायल कर दिया है । मैंने नाऊको बुलाया था । वह मलहम-पट्टीके लिये प्रस्तुत है, पर कहता है कि तीन मासतक दवा चलेगी । हजार रुपये लेंगे । सेठजी ! आप विश्वास रखिये कि आपका पैसा छब्बने नहीं पायेगा ।’ दादू मियों रोने लगे । उनकी औंखोंसे सावन-भादों बरसने लगे । सेठका हृदय पिघल गया । उन्होंने रुपये दे दिये और कहा कि मैं जानता हूँ तुम लकड़ी बेचकर परिवारका पोषण करते हो; रुपये लौटानेकी आवश्यकता नहीं है; तुम्हारे-ऐसे तपस्वी और परोपकारीद्वारा परहितमें यदि ये रुपये लग जायेंगे तो वही अच्छी बात है ।

‘मैं एक-एक पैसेकी भरपाई कर दूँगा सेठजी !’ दादू मियोंका निश्छल हृदय बोल उठा । दादूने कृतज्ञतासे देखा ।

तीन मासकी चिकित्साके बाद बारहट अच्छा हो गया । उसने सारथिको बुलाकर जैसलमेर चलनेकी इच्छा प्रकट की ।

‘मैं अपने दयालु उपकारीका दर्शन करना चाहता हूँ ।’ सबेरे-सबेरे बारहटके सुखसे ऐसी बात सुनकर सारथि चकित हो गया । बारहटका नियम था, दिन चढ़नेके सबा पहर बाद ही किसी मुसलमानका मुख देखनेका ।

‘पर जर उन्हे यह पता चला तो उन्होंने अपने घरसे दूर इस स्थानपर आपके रहनेका प्रबन्ध किया, वे आपके नियमको भङ्ग नहीं करना चाहते थे । वे चिकित्साका सारा सामान समयपर भेज दिया करते थे ।’ सारथिके नेत्रोंमें अशुकण आ गये ।

‘भैया ! वे मुसल्मान नहीं हैं, वे अल्लाहके पवित्र और निष्पाप सेवक हैं। ऐसे व्यक्तिके दर्शनसे जन्म-जन्मके पाप भस्स हो जाते हैं।’ ईहर वारहटका हृदय भर आया।

‘मैंने क्या किया, सब कुछ अल्लाह करते हैं। मेरे-ऐसे साधारण व्यक्तिकी प्रशासामें अपनी अमृत-वाणीका व्यय न कीजिये।’ दादू मियों आ पहुँचे। वारहटने उनको भर आँख देसा। वह धन्य हो गया।

‘आपके एक वैलको डाकुओंने धायल कर दिया है। रथमें मेरा वैल जोत लीजिये। इसपर लकड़ी भी कम लद पाती है, मेरे अपने कधेपर अधिक चोशा रखकर ला सकता हूँ।’ दादू मियोंकी कुलीनता भयानक गरीबीमें भी चमक उठी। वारहटने प्रस्थान किया।

X X X

‘वे देवता हैं देवता, मैंने आजतक ऐसा आदमी ही नहीं देखा था, महाराज।’ वारहटने राजसभामें उपस्थित होकर पीथल परमारके सामने दादू मियोंकी प्रगता की। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि राजा उन्हें अच्छे पदपर नियुक्त कर ले। ‘वारहटके कहनेसे राजाने दादू मियोंको जैसलमेर आनेका निमन्त्रण दिया और आनेपर वडे ठाठ-वाटसे उनका स्वागत किया। पीथल परमारने उन्हें देखते ही अपने मायकी सरहना की और कल्के लकड़ी काटनेवालेकी ढाई हजार सैनिकोंके अध्यक्ष-पदपर नियुक्त हो गयी। दादू मियोंके दिन सुखसे बीतने लगे।

‘पीथल परमार मेरे भाईको आज फाँसीपर लटका देंगे। आपने जीवनमें कभी अन्यायका साथ नहीं दिया। अन्याय और असत्यका समर्थन न करनेके कारण आपको अपनी जन्मभूमितक छोड़नी पड़ी थी, टोड़के राजा सवाई सतारने आपको जमादार-पदसे हटाकर राज्यसे बाहर कर दिया था।’ दादूकी पक्की दोल रॉक्से के प्राण बचानेकी प्रार्थना की।

‘अन्याय नहीं होने पायेगा जबतक मेरी तलवारमें धार है। तुमने जिसे धर्मका भाई मान लिया है, वह मरने नहीं पायेगा। उसने अपराध ही क्या किया है।’ दादूने आशासन दिया, वे राजप्रापादकी ओर चल पड़े।

‘महाराज। आपकी राजकुमारी दोलासे प्रेम करती है। दोलामें इतना साहस नहीं है कि वह राजकन्यापर कुद्दिष्ठ-पात करे।’ ककल सेठने पीथल परमारसे निवेदन किया, पर राजाने आदेश नहीं दिया।

‘यह अन्याय है महाराज। राजस्थानकी पवित्र भूमिको

न्यायके क्लूनसे रेंगना कदापि उचित नहीं है। मेरी सेना विद्रोह करेगी, मैं जैसलमेरके राजसिंहासनको पापसे कलंकित नहीं होने दृगा।’ दादू मियोंने तलवार खींच ली। राजा सोचने लगे।

‘दोनोंका विवाह हो ही जाना चाहिये।’ ककल सेठने राजाको विश्वास दिलाया, वारहटकी कृपासे वह जैसलमेरका लघ्घप्रतिष्ठ नागरिक था।

‘दोल रॉक मुसल्मान नहीं है, महाराज। वह अपनी मोंके साथ आपकी राजधानीमें ही रहता है। सबके दिन समान नहीं होते। वह टोड़के राजा सवाई सतारकी विधवा रानी चदा गौरीका लाङ्गोला पुत्र है। राजाने अपने जीवन-कालमें ही स्वामीभक्त जमादारको हटाकर अमरा डाकू-को मन्त्रीपदपर रखा। वे सिद्ध करना चाहते थे कि गरीबीमें मनुष्य कुलीनताका ल्याग कर देता है और राजाकी कृपासे चोर या डाकू भी समृद्धि प्राप्तकर कुलीन हो सकता है। पर राजाके स्वर्गवासके बाद राज्य हड्पनेके लिये उसने दोलारायको मार डालनेका विचार किया। दादू मियों और उनकी पक्कीको भी इस रहस्यका पता नहीं है, दोलाराय उनके घर आता-जाता है।’ ककल सेठकी बातसे पीथल परमार सज्ज हो गये। चदा गौरी भी घटनास्थलपर आ गयी थी अपने पुत्रका प्राण बचानेके लिये।

‘धर्म। आपने सुझे भी अपने आनेकी सूचना नहीं दी। मैंने तो जीवनभर आपका नमक खाया है।’ दादू मियों चदा गौरीके पैरपर गिर पड़े, उन्होंने राजपुत्र दोलको फॉसीके तख्तसे पलभरमें उतारकर हृदयसे लगा लिया। नयनोंकी सजल निर्झरिणी बहती ही रही।

पीथल परमारकी कन्यासे दोलारायका विवाह हो गया। उन्होंने टोड़का राज्य-अधिकार मैनिकवलसे प्राप्त किया। ककल सेठके समझानेपर अमरको ग्राणदान देकर राज्यसे निकाल दिया। ककल, सेठने मन्त्रित्व और दादू मियोंने सेनापतिका भार सम्हाला।

X X X

कन्छनरेत्र रणमलकी राजकन्या मारुका पत्र पाकर दोलारायने प्रस्थान किया। वह कन्छके राजप्रापादमें कुछ दिनतक ठहर गया।

‘यह लंबी कहानी है, वेदा। मैं अपनी रानी हसावलीके साथ भगवान् गौतमेश्वरके पूजनके लिये गोहिल्वाह गया था। दैवयोगसे तुम्हारे पिता भी सप्तलीक बहाँपर थे।

तुम और मग—दोनों अलवयस्क थे। तुम दोनोंकी मँगानी चाही हो गयी। चज्जूपकन्या दूसरी बार विवाह नहीं किया करती। उसी सानमर रंगमें मंग मी हो गया था। इहर वा हठने हुन्होंने प्रियका यन नहीं गाया; वे अपकारीत नहीं रह सके। उन्होंने असमयके बर स्वर्ग प्राप्त कर लिया। रघुनन्दने सौंडर्नरु कैटे दोलान्दम्पतिको आद्यीवर्द दिया। ... सौंडर्नी चल पड़ी ...।

“चूडावाचमें भूतोंका अहा है।” मालने पतिको चावधान किया हीं था कि किर्चाने नहीं तलवारसे दोनोंमर आक्रमण

किया। पर प्रहर करनेके पहले ही किर्चाने पीछेसे आक्रमण कारीके सिरके दो ढुकड़े कर दिये।

“दादू मियो, आप !” दोलारावने घूमकर पीछे देखा। “हो महाराज ! मैं जानता था कि, अमर बदला लेया। उसे मात्रके साथ आपके विवाहकी बात जात थी। - वह जानता था आप इस रात्तेसे मारुके साथ लैटेंगे।” दादू मियोने नमकका मूल्य पूरा किया।

“आप देवता हैं, दादू मियो !” दम्पति नतमस्तक थे।

—८० की०

ब्रह्मज्ञान कब होता है ?

दक्षिणेश्वरमें एक दिन एक अवश्यूत आये। उनके केवा और नज़ बढ़े हुए थे, चरीर धूलिते रहा था, मैली पट्टी गुदड़ी पहिन रखती थी उन्होंने। जब भिलारियोको भोजन दिया जाने लगा; तब भिलारियोने भी उनके गदे बेशके कारण उन्हें उपर्युक्त पोक्समें नहीं बैठने दिया। वे चुम्चाम बहोरे हट गये। जब उब उब लोग मोजन कर चुके और जड़ी पत्तले कैक दी गयी तब लोगोंने देखा कि एक पत्तलमें उच्चे अन्दरको एक कुत्ता ला रहा है और कुत्तेके गलमें एक हाथ डाले वे महात्मा भी उर्च पत्तलका अन्न खा रहे हैं।

परमहंस उमहरुगदेवने “हृदयसे कहा—“लोग इन्हें

पागल समझते हैं, किन्तु वे तो परन जानी हैं। चरीराभिमानते वे उपर उड़ चुके हैं।”

साधीकर जब वे जाने लगे, तब हृदय उनके पीछे लगे गया। उसने प्रार्थना की—“महाराज ! मुझे ब्रह्मज्ञान कब होगा ?”

रंतने गुड़कर देखा हृदयकी ओर और अपनी मस्तीमें ही बोले—“जब तुझे नालीके गंदे पानी और गङ्गाजलमें कुछ भेद नहीं जान पड़ेगा, तब ब्रह्मज्ञान होगा।”

—८० सिं०

मैं मूर्खता क्यों करूँ

श्रीगुरुकृष्ण परमहंसके रामें नामूर हो गया था। उस सम्बद्ध शर तर्जुडामणि परमहंसदेवने पाठ जाये थे। उन्होंने कहा—“आप यदि मनको एकत्र करके उह लोग चढ़ा जा !” तो निश्चय नेत्र चला जाया।”

परमहंसदेव जोडे—“आप विद्वान् होकर मुझे ऐसी सम्माने मेंते हैं। जो मैं संचिदानन्दमनी मोक्ष का सारण करनेते लिये मुझे निय हैं उसे बर्त्ते हटान्तरमें हाइभासके नियमें लगाऊँ ।”

परंतु शिष्योंको इससे संतोष नहीं हुआ। उब लोगोंने निक्कर आग्रह किया—“आप मासे ही प्रार्थना करें कि यह रोग मिया दो।”

परमहंसदेव बोले—“मैं ऐसी मूर्खता क्यों करूँ। मैं दयाली हूँ, सर्वन हूँ और समर्थ हूँ। उन्हें जो मेरे कल्याणके लिये उचित लगता है, वह कर ही रही है। उनकी व्यवस्थामें हाथ डालेका छिड़ोरपन मुझसे नहीं होगा।”

—८० सिं०

हक्से अधिक लेना तो पाप है

श्रीगुरुकृष्ण परमहंसदेवके अनुगामी महाराजा जी नाम दरर नाम ब्रह्मरुके नामसे जाने जाते हैं। इनके घरकी निर्मित प्रदर्शन नहीं थीं। गिरा नौकरी करते थे चावारगासी

और दे होमिनोपैथिक दवा करते थे, लेकिन इनके अधिकार्य नेगी गरीब होते थे। नाम महादाय उन्हें ओपरायिके अविरिक्त पथके लिये दैनंदी मी प्रायः अपने पात्रसे दे देते थे। इनके

पिता जिनके यहाँ नौकरी करते थे उस कुदम्बकी एक महिलाको इन्होंने कष्टसाव्य रोगसे मुक्त किया। वे लोग सम्मन्न थे; नाग महाशयको उन्होंने कुछ धन देना चाहा, पर इन्होंने केवल वीत रूपये लिये। पिता को यह सब पता लगा तो वे अतंतुष्ट हुए।

नाग महाशयने मितासे कहा—‘पिताजी ! चौदह रूपये हुए मेरी सात दिनकी फीसके और छः रूपये औषधका मूल्य। इस प्रकार वीत रूपये ही मेरे हक्के हैं। हक्से अधिक लेना तो पाप है। मैं अधिक कैसे ले सकता था।’
—चू० सिं०

सेवा-भाव

नाग महाशयका सेवा-भाव तो अद्भुत ही था। एक दिन इन्होंने एक गरीब मनुष्यको अपनी झोपड़ीमें भ्रमिपर पढ़े देखा। आप चर गये और घरसे अपना विछौना उठा लाये। अपने हाथस विछौना लगाकर उस रोगी व्यक्तिको उत्पर लियाया।

एक बार एक रोगीको जाड़ीमें ठिठुरते देखकर नाग महाशयने उसे अपनी ऊनी चहर उड़ा दी और स्वयं रातभर उसके पास बैठकर उसकी सेवा करते रहे।

कलकत्तेमें हुए पड़ा था। महामारीके उन दिनोंमें निर्धनोंकी झोपड़ियोंमें नाग महाशयको ढोइकर और कोई जाँकनेवाल नहीं था। आप एक झोपड़ीमें पहुँचे तो वहाँ एक मरणासन रोगी रो रहा था। आपने उसे आव्वासन देना चाहा; किंतु वह कह रहा था—‘मुझ पापीके भाग्यमें दो बूँद गङ्गाजल भी नहीं जो आज मुझे गङ्गान्किनरे तो पहुँचा दे।’

‘आप रोयें नहीं। मैं ले चलता हूँ आपको।’ नाग महाशयने अकेले ही उसे कंधेपर उठाया और गङ्गा-किनरे ले गये। जगतक उसका शरीर छूट नहीं गया, उसे गोदमें लिये बैठे रहे और शरीर छूट जानेपर उसका शब्द-दाह करके तब घर लौटे।

X X X

एक दिन नाग महाशयके घर एक अतिथि आ गये। जाड़ीके दिन थे। जोरकी वर्षा हो रही थी। घरके भीतर चार कोठरियाँ थीं; किंतु तीनमें इतना पानी चूता था कि बैठनेको भी स्थान नहीं था। केवल एक कोठरी सूखी थी। अतिथिको निशामके लिये आपने वह कोठरी दे दी और पत्नीके साथ स्वयं वरामदेमें आ बैठे। पत्नीसे बोले—‘आज हमारा बड़ा सौभाग्य है। आओ, भगवान्का सरण करनेमें यह रात्रि व्यतीत करें।’ —चू० सिं०

जीव-दया

नाग महाशय जैसे दयाकी नूरि थे। इनके घरके सामनेसे मछुए यदि मछली लेकर निकलते तो आप तारी मछलियाँ खरीद लेते और उन्हें ले जाकर तालाबमें ढोड़ आते। एक दिन एक सर्प इनके वर्गीचेमें आ गया। ऊने इन्हें पुकारा—‘काल साँप ! लाडी ले आओ !’

नाग महाशय आये, किंतु खाली हाथ। आप बोले—

‘जंगलका सर्प कहाँ किसीको हानि पहुँचाता है। यह तो मनका सर्प है जो मनुष्यको मारे डालता है।’

इसके पश्चात् आप सर्पसे बोले—‘देव ! आपको देखकर लोग डर रहे हैं। कृपा करके आप यहाँसे बाहर पधारें।’

सचमुच वह सर्प नाग महाशयके पीछे-पीछे बाहर गया और जंगलमें निकल गया। —चू० सिं०

नाग महाशयकी साधुता

परमहंस रामकृष्णदेवके भक्त शिष्य डा० दुर्गाचिरण नाग आदर्श पुरुष थे। एक समय वे अपने देशमें थे। पुआलसे छाये हुए घरकी छान छूट गयी थी। उससे जल गिरता था। नागजीकी मालाने छान ठीक करानेके लिये थर्वर्ड (छानेवाले) को बुलाया। थर्वर्डके घरमें आते ही नाग महाशय चिन्तामें

पड़ गये। उन्होंने उसे आदरपूर्वक बैठाया, चिलम सजा दी। कुछ देर बाद जब वह छानपर चढ़कर काम करने लगा, तब तो नाग महाशय हाथ जोड़कर उससे नीचे उत्तर आनेके लिये विनय करने लगे। जब वह नहीं उतरा, तब सिर पीट-पीटकर कहने लगे ‘हाय परमहंसदेव ! तुमने क्यों

मुझको गृहस्याक्रममें नहनेके लिये आदेश दिया; मेरे सुखके लिये दूसुंगको कष्ट हो नहाँ है। नाग महाशयकी व्याकुलता देखकर थवड़ नीचे उत्तर आया। नाग महाशयने उसके लिये फिर

चिलम सजा दी और खड़े होकर उसे हवा करने लगे। यकावट दूर होनेपर उसको दिनभरका मेहनताना देकर विदा किया।

किसीके कष्टकी वातपर अविश्वास उचित नहीं

कलकत्तेके कुछ कॉलेजके विद्यार्थी बहाँका ‘फ्लोर विलियम’ निला देखने गये थे। सहसा उनके एक साथीके शरीरमें पीड़ा होने लगी। उसने अपने मित्रोंसे अपनी पीड़ा बतायी और वह साड़ीद्वारा बैठ गया। लेकिन उसके साथियोंने उसकी वातपर विश्वास नहीं किया। उसकी हँसी उड़ाते हुए वे सब ऊपर चले गये।

ऊर पहुँचकर एक विद्यार्थीके मनमें संदेह हुआ—‘कहाँ सन्मुच्च ही तो उसे पीड़ा नहीं है?’ वह लौट पड़ा।

नीचे आकर देखता है कि वह विद्यार्थी मूर्छित पड़ा है। ज्वरसे उसका शरीर जल रहा है। दूसरे विद्यार्थीनि दौड़कर एक गाड़ी मँगायी और उसे गाड़ीमे रखकर घर ले गया। उसके अन्य साथियोंको जन पता लगा, तब उन्हे बड़ा पश्चात्ताम हुआ।

उस विद्यार्थीका नाम जात नहाँ, जो बीनार था, किंतु जो उसे गाड़ीमे रखकर घर ले आया था, वह था नरेन्द्र। आगे चलकर मंसारने उसे स्वामी विवेकानन्दके नामसे पहिचाना।

—सु० सिं०

आत्मीयता इसका नाम है

स्वामी विवेकानन्दके पूर्वाश्रमकी वात है। उस समय उनका नाम नरेन्द्र था। वे कभी-कभी परमहंस रामकृष्णदेवके दर्शनके लिये दक्षिणेश्वर मन्दिरमें भी जाया करते थे। वे कहा करने थे कि ‘दूड़े सन्नातीके पास मैं उपदेश सुनने नहीं जाता हूँ, मुझप्रेमर्मी शक्ति उनके पास अपने-आप खांच ले जाती है।’

अन्नानक नरेन्द्रके निताना देहान्त हो गया। वे बी० ए० की परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। बकालत पढ़नेके लिये उन्होंने कॉलेजमें प्रवेश किया ही था कि परिवारके भरण-योपयणका भाग उन्होंने कर्यापर आ पड़ा। आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। नौकरीके लिये कलकत्तेकी एक-एक गली छान डाली, पर कहाँ सुरक्षा नहीं मिली। भूखों मरनेतकनी नौकर था गरी।

एक दिन वे अपने मित्रोंके साथ दक्षिणेश्वर मन्दिरमें परमहंस रामकृष्णके सामने बैठे हुए थे।

नरेन्द्रके मिताका देहान्त हो गया है। आजकल इसकी दशा अच्छी नहीं है। धरपर लोग भूखों मर रहे हैं। भक्तोंको चाहिये कि इसकी सहायता करे। परमहंसदेवने अपने प्रेमियोंको प्रोत्साहित किया। वे नरेन्द्रकी दीन अवस्थासे बहुत चिन्तित थे। रात-दिन सौचा करते थे कि किस प्रकार उनकी चिन्ता दूर हो।

भक्त चले गये। मन्दिरमें रह गये केवल नरेन्द्र।

‘महाराज ! आपने ऐसा क्यों कहा। न जाने ये लोग मेरे सम्बन्धमें कैसी धारणा बनायेंगे।’ नरेन्द्र लज्जासे न थे।

‘तुम यह क्या कहते हो, नरेन्द्र ! प्यारे नरेन्द्र ! मैं तुम्हारे लिये सब कुछ कर सकता हूँ। मैं तुम्हें सुखी रखनेके लिये जोली लेकर गली-गलीमें और दरवाजे-दरवाजेपर मीख मँग सकता हूँ।’ उनके नेत्रोंसे अश्रु बरस पड़े। उन्होंने नरेन्द्रके कधेपर अपना हाथ रखा। परमहंस रामकृष्णके सर्वसे वे धन्य हो गये।

—रा० श्री०

शिष्यकी परीक्षा

‘दक्षिणेश्वर मन्दिरके परमहंसदेव नमर्थ हैं मेरी विपत्ति दूर ननेके निवे। वे सुन्ने कितना चाहते हैं ! नरेन्द्र (मित्रनानन्द) ने दक्षिणेश्वर जानेका निश्चय किया। निताके देहान्तरे वाद उनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब हो

गयी थी। उन्होंने नौकरीके लिये वर्डा चेष्टा की पर असफल रहे।

X X X

‘आप कालीके बहुत बड़े उपासक हैं। मॉकी आपपर अपार कृपा है, आप मेरी दरिंदिताका नाग कर सकते हैं। नष्ट

तर दीजिये न !' युवक नरेन्द्रने परमहंसदेवसे प्रार्थना की ।

'चत्स ! मैं जानता हूँ कि कालीने संसारमें तुम्हें अपने कार्यके लिये भेजा है । तुम्हारे कंधेपर बहुत बड़े और अत्यन्त पवित्र कार्यके सम्पादनका भार है । जबतक मेरा शरीर पृथ्वीपर है, तबतक तुम्हें इस वातकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये ।' परमहंसदेवने मुस्करा दिया ।

'पर इस समय मेरी दरिद्रताको दूर करनेका प्रश्न उपस्थित है ।' नरेन्द्रने अपनी वात दुहरायी ।

'तो तुम स्वयं कालीसे क्यों प्रार्थना नहीं करते ?' रामकृष्णने माँके श्रीविग्रहके सम्मुख जानेकी प्रेरणा दी । और नरेन्द्रने माँसे कहा—

'जगदमा ! मुझे अपनी भक्ति दो, अपने नामके प्रचार-

की शक्ति दो, जिससे लोग आपका नाम सरणकर धन्य हो जायें । माँ ! संसार-सागरसे पार होनेके लिये हाथका सहारा दो ।' नरेन्द्र पवित्र श्रद्धारे सम्पन्न हो उठे । आवेशमें उन्होंने जगदम्बासे सांसारिक ऐश्वर्यके स्थानपर दिव्य सम्पत्तिकी याचना की । रामकृष्ण परमहंसने फिर प्रार्थना करनेके लिये कहा और नरेन्द्र किसी अदृश्य शक्तिद्वारा माँके विग्रहके सामने खींच लिये गये । उन्होंने पूर्ववत् याचना की । तीसरी वार माँगे गये तो जान और वैराग्यके ही लिये प्रार्थना की ।

'महाराज ! आपने मेरा परम कल्याण किया । मुझे माँकी कृपा मिल गयी, संसारका नश्वर वैभव नहीं चाहिये मुझे ।' नरेन्द्रमें भावी विवेकानन्दके बीज अङ्गुरित हो उठे । वे परमहंसदेवकी परीक्षामें सफल हुए । —रा० श्री०

केवल विश्वास चाहिये

स्वामी विवेकानन्द परिव्राजकके रूपमें राजस्थानका ग्रमण करते-करते अलवर जा पहुँचे । राजाके दीवान ये मेजर रामचन्द्र । वे आध्यात्मिक मनोवृत्तिके व्यक्ति थे । संतोंमें उनकी बड़ी श्रद्धा और निश्च थी । उन्होंने सदुपदेशके लिये स्वामीजीको अपने निवासस्थानपर आदरपूर्वक निमन्त्रित किया । दैवयोगसे अलवरनरेश महाराज मंगलसिंहजी भी सत्सङ्गमें उपस्थित थे ।

'वावाजी ! मूर्तिपूजामें मेरा तनिक भी विश्वास नहीं है । मुझे उसमें कोई सार्थकता नहीं दीखती ।' मंगलसिंहने स्वामीजीसे निवेदन किया ।

'आप मुझसे मजाक तो नहीं कर रहे हैं ?' स्वामीजी आश्र्वयचकित थे ।

'नहीं-नहीं, यह विनोद नहीं है; मेरे जीवनकी सत्य अनुभूति है ।' राजाने अपनी वात दुहरायी ।

'तो फिर इसपर थूक दो ।' स्वामीजीने उपस्थित लोगोंसे राजाके चित्रपर थूकनेका संकेत किया । दीवानकी बैठकमें मंगलसिंहका एक भव्य चित्र टैंगा हुआ था । लोग स्वामीजीके आदेशसे विसित हो उठे । राजकी ओर देखने लगे । मंगलसिंहजीकी समझमें भी कोई वात नहीं आ सकी । स्वामीजी मौन थे ।

'हमलोग ऐसा किस तरह कर सकते हैं, यह हमारे राजा-का चित्र है ।' लोगोंका उत्तर था ।

स्वामीजीने दीवानको भी आदेश दिया, पर उसने भी असमर्थता प्रकट की ।

'राजा साहब ! आपमें इन लोगोंकी श्रद्धा है, आप इनके इष्ट हैं; इसलिये आपके चित्रपर ये लोग किसी भी स्थितिमें नहीं थूक सकते । यह निश्चित है कि आप यह चित्र नहीं हैं; पर यह भी सच है कि इस चित्रमें लोगोंको आप उपस्थित दीख पड़ते हैं । ठीक यही वात मूर्तिके सम्बन्धमें है । मूर्ति-पूजा वे ही लोग करते हैं, जिनकी उसमें इष्टभावना है । इस प्रकार घट-घटमें व्यापक सबके इष्ट भगवान् मूर्तिमें विद्यमान हैं, इस सत्यको समझनेके लिये केवल विश्वास चाहिये ।' स्वामीजीने मूर्तिपूजाकी सार्थकता सिद्ध की ।

राजा मंगलसिंह स्वामीजीके पैरोंपर गिर पड़े । 'आपने मेरा संशय नष्ट कर दिया । मेरे हृदयमें विश्वासका दीप जलाकर आपने मुझे आश्वत सत्यका दर्शन करा दिया ।' राजकीय ऐश्वर्यने वैराग्यकी अभिवन्दना की । राजा मंगलसिंह-जीकी श्रद्धा स्वामी विवेकानन्दके चरणोंमें स्थिर हो गयी ।

—रा० श्री०

साधुताका परम आदर्श

सन् १८४४ ई०में कलकत्ते के मस्कृत कालेजमें एक व्याकरणाभ्यापककी आवश्यकता हुई और प्रबन्ध-समितिने ईश्वरचन्द्र विद्यासागरको वह पद दिया। विद्यासागरको उस समय पचास रुपये मासिक मिलते थे और अब नये स्थानपर उन्हें नव्वे रुपये मिलते। पर आश्र्य। विद्यासागरने सोचा कि उनके मित्र तर्कचाचस्ति व्याकरणमें उनसे अधिक दक्ष हैं और उन्होंने समितिके सामने इस पदको उन्होंको दिये जानेका प्रस्ताव रखा। अन्तमें समितिने विद्यासागरकी

सम्मति मान ली। इससे विद्यासागरको अपार आनन्द हुआ। वे आनन्दके आवेशमें अपने मित्रको उसका समाचार देनेके लिये कलकत्तेसे कुछ दूरतक चले गये।

जब तर्कचाचस्ति विद्यासागरके मुँहसे यह सारी कहानी सुनी, तब वे आश्र्यचकित रह गये। वे बोल उठे— ‘विद्यासागर। तुम मनुष्य नहीं, वल्कि मनुष्य-वेषमे साक्षात् देवता हो।’ —जा० श०

—००००००००००—

महापुरुषोंकी उदारता

सन् १८६५ ई०की बात है। बगालमें भीण अकाल पड़ा था। सभी लोग क्षुधासे व्याकुल होकर इधर-उधर भाग रहे थे। अब कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता था। इसी समय वर्द्धानमें एक अत्यन्त दुर्बल दीन वालक ईश्वरचन्द्र विद्यासागरके पास आया। उसने उनसे एक पैसा माँगा। वालकका मुँह सूखकर पीला हो रहा था, पर उसके मुँहपर एक व्योतिसी छिटक रही थी।

‘मान लो मैं तुम्हें चार पैसे दूँ तो।’ विद्यासागरने उससे पूछा।

‘महानुभाव। कृपया इस समय उपहास न करें, मैं वडे कष्टमें हूँ, वालक बोला।

‘नहीं, मैं उपहास या परिहास कुछ नहीं करता। बतलाओ, तुम चार पैसोंसे करेगे क्या?’

‘दो पैसोंसे कुछ रानेकी चीज़ खरीदूँगा और दो पैसे अपनी मॉको दूँगा।’

‘और मान लो, मैं तुम्हें दो आने दूँ तो।’ विद्यासागरने पुन शुद्धा।

लड़केने अपना मुँह फेर लिया और वहाँसे चलने लगा; पर विद्यासागरने उसकी बौह पकड़ ली और कहा—‘बोलो।’

वालकके नपोलॉपर ऑग्नि टपक पड़े, उसने कहा ‘चार पैसुंगे तौ मैं चापल या कोई मोजन खरीद लूँगा और अवश्यै अपनी माताजी दे दूँगा।’

‘और यदि तुम्हें चार आने दे दूँ?’

‘मैं दो आनोंका तो दो दिनोंके भोजनमें उपयोग कर लूँगा और दो आनेका आम खरीद लूँगा, जिन्हें चार आनेमें बेचकर अपनी मॉके तथा अपने जीवनकी रक्षा करूँगा।’

विद्यासागरने उसे एक रुपया दे दिया और लड़का प्रसन्नताके मारे खिल उठा। वह दौड़कर ऑखोंसे ओझल हो गया।

दो वर्षके बाद विद्यासागर पुनः वर्द्धान गये। एक बली युवा पुरुष अपनी दूकानसे बाहर आया और उसने उन्हें सलाम किया।

‘श्रीमान्! क्या आप मेरी दूकानमें क्षणभर बैठनेकी दया करेंगे?’ युवा बोला।

‘मैं तुम्हें विलकुल पहचान नहीं पाता, भाई! विद्यासागरने कहा।

लड़केकी ऑखोंमें ऑसू उमड़ आया। उसने दो वर्ष पूर्वी की सारी कथा ईश्वरचन्द्रसे सुनायी। अब वह केरीबाला हो गया था और उसकी एक छोटी पूँजी तथा व्यवसाय हो गया था। विद्यासागरने उसे बड़ा प्रोत्साहन तथा आशीर्वाद दिया। वे बड़ी देरतक उसकी दूकानमें बैठे बातें करते रहे।

विद्यासागरकी उस केरीबालेके साथ सुहृद-जैसी गोष्ठी देख लोग आश्र्य-सागरमें छून गये। —जा० श०

अतिथि-सत्कार

श्रीईश्वरचन्द्र विद्यासागर उस समय खर्मा टाँड़में रहते थे। आवश्यकतावश उन्हें छूँड़ता एक व्यक्ति पहुँचा। उससे ज्ञात हुआ कि वह कई दिनसे विद्यासागरजीको छूँड़ रहा है और कलकत्ते तथा अन्य कई स्थानोंमें भटकता हुआ आया है। विद्यासागरजीने उससे कहा—‘देखिये, भोजन तैयार है। पहले आप भोजन कर लें, फिर बातें होंगी।’

वह एक साधारण मनुष्य था। गरीबको कौन पूछता है। जहाँ-जहाँ वह गया था, किसीने उसे पानी पीनेतकको नहीं पूछा था। विद्यासागरजी-जैसे प्रतिष्ठित व्यक्तिका ऐसा उदार व्यवहार देखकर उसके नेत्रोंसे आँख टपक पड़े। विद्यासागर-जीने पूछा—‘आप रोते क्यों हैं? भोजनके लिये आपको मैंने कहा है; इसमें कुछ अनुचित हो तो क्षमा करें। मेरे यहाँ

आप भोजन न कर सकें तो स्वयं भोजन बना लें। मैं अभी व्यवस्था कर देता हूँ।’

उस व्यक्तिने कहा—‘मुझे तो आपकी दयालुताने रुचाया है। इधर मैं कितना भटका हूँ, कई दिनोंसे कुछ मिला नहीं है; किंतु किसीने बैठनेको भी नहीं कहा और आप...’

परंतु विद्यासागरजी अपनी प्रशंसा सुननेके अभ्यासी नहीं थे। उन्होंने उसे बीचमें ही रोककर कहा—‘इसमें हो क्या गया। अपने यहाँ कोई अतिथि आये तो उसका सलार करना सभीका कर्तव्य है। आप झटपट चलकर भोजन कर लीजिये।’

जब वह भोजन कर चुका, तब उससे विद्यासागरजीने पूछा कि वह किस कामसे उनके पास आया है।—सु० सिं०

स्वावलम्बन

बंगालके एक छोटे-से रेलवे-स्टेशनपर द्रेन खड़ी हुई। सच्च धुले बछर पहिने एक युवकने ‘कुली! कुली!’ पुकारना प्रारम्भ किया। युवकके पास कोई भारी सामान नहीं था। केवल एक छोटी पेटी थी। भला, देहातके छोटे-से स्टेशनपर कुली कहाँ। परंतु एक अधेड़ व्यक्ति साधारण ग्रामीण-जैसे कपड़े पहिने युवकके पास आ गया। युवकने उसे कुली समझकर कहा—‘तुमलोग वडे सुस्त होते हो। ले चलो इसे।’

उस व्यक्तिने पेटी उठा ली और युवकके पीछे चुपचाप चल पड़ा। घर पहुँचकर युवकने पेटी रखवा ली और मजदूरी देने लगा। उस व्यक्तिने कहा—‘धन्यवाद! इसकी

आवश्यकता नहीं है।’

‘क्यों?’ युवकने आश्वर्यसे पूछा। किंतु उसी समय युवकके वडे भाई घरमेंसे निकले और उन्होंने उस व्यक्तिको प्रणाम किया। अब युवकको पता लगा कि वह जिससे पेटी उठवाकर लाया है, वे तो बंगालके प्रतिष्ठित विद्वान् ईश्वरचन्द्र विद्यासागर हैं। युवक उनके पैरोंपर गिर पड़ा।

विद्यासागर बोले—‘मेरे देशवासी व्यर्थ अभिमान छोड़ दें और समझ लें कि अपने हाथों अपना काम करना गौरवकी बात है। वे स्वावलम्बी बनें, यही मेरी मजदूरी है।’

—सु० सिं०

कोई वस्तु व्यर्थ मत फैक्सो

श्रीईश्वरचन्द्र विद्यासागरके यहाँ खुदीराम बोस नामके एक सजन पधारे। विद्यासागरने उन्हें नारंगियाँ दीं। खुदीरामजी नारंगियोंको छीलकर उसकी फाँकें चूस-चूसकर फैक्से लगे। यह देखकर विद्यासागर बोले—‘देखो भाई! इन्हें फैक्सो मत, ये भी किसीके काम आ जायेंगी।’

खुदीराम बोले—‘इन्हें आप किसे देनेवाले हैं?’

विद्यासागरने हँसकर कहा—‘आप इन्हें लिङ्कीके

बाहर रख दें और वहाँसे हट जायें तो अभी पता लग जायगा।’

लिङ्कीके बाहर उन चूसी हुई फॉकोंको रखनेपर कुछ कौए उन्हें लेने आ गये। अब विद्यासागरने कहा—‘देखो, भाई! जबतक कोई पदार्थ किसी भी प्राणीके काममें आने योग्य है, तबतक उसे व्यर्थ नहीं फैक्सना चाहिये। उसे इस प्रकार रखना चाहिये कि धूल-मिट्टी ल्याकर वह नष्ट न हो जाय और दूसरे प्राणी उसका उपयोग कर सकें।’—सु० सिं०

एक बात

उन दिनों विद्यासागर ईश्वरचन्द्रजी वडे आर्थिक सकटमें थे। उनपर ऋण हो गया था। यह ऋण भी हुआ था दूसरोंकी सहायता करनेके कारण। उस समय उनका प्रेस, प्रेसकी डिपाजिटरी और अपनी लिखी पुस्तके ही उनकी जीविकाके साधन थे। ऋण चुका देनेके लिये उन्होंने प्रेसकी डिपाजिटरीका अधिकार वेच देनेका निश्चय किया। उनके एक मित्र थे श्रीब्रजनाथजी मुखोपाध्याय। विद्यासागरने मुखोपाध्यायजीसे चर्चा की तो वे बोले—‘यदि आप डिपाजिटरीका अधिकार

मुझे दें तो मैं उसे आपके हङ्गामुसार चलानेका प्रयत्न करूँगा।’

विद्यासागरने सब अधिकार ब्रजनाथजीको दे दिया। यह समाचार फैलनेपर अनेक लोग विद्यासागरके पास आये। कई लोगोंने तो कई-कई हजार रुपये देनेकी बात कही; किंतु विद्यासागरने सबको एक ही उत्तर दिया—‘मैं एक बार जो कह चुका, उसे बदल नहीं सकता। कोई बीस हजार रुपये दे तो भी अब मैं यह अधिकार दूसरोंको नहीं दूँगा।’—सु० सिं०

सच्ची दानशीलता

श्रीईश्वरचन्द्र विद्यासागर मार्ग चलते समय भी देखते जाते थे कि किसीको उनकी सेवाकी आवश्यकता तो नहीं है। एक दिन वे कलकत्तेमें कहाँ जा रहे थे। उनकी दृष्टि एक व्यक्तिपर पड़ी, जो सिर छुकाये, बहुत उदास चला जा रहा था। विद्यासागरने पूछा—‘आप इतने उदास क्यों हैं?’

विद्यासागर न उसे पहचानते थे और न वह इन्हें। एक अपरिचितको इस प्रकार पूछते देखकर उसने लंबी श्वास ली और बोला—‘विपत्तिका मारा हूँ, भाई।’

‘कौन हैं आप? क्या विपत्ति है आपपर?’ विद्यासागरने फिर पूछा; किंतु बहुत सादे कपड़ोंमें रहनेवाले विद्यासागरको उसने एक साधारण निर्धन मनुष्य समझकर कहा—‘आप सुनकर क्या करेंगे! आप कोई सहायता नहीं कर सकते।’

विद्यासागर यों छोड़ देनेवाले नहीं थे। उनके आग्रह करनेपर उसने अपनी विपत्ति बतलायी। वह एक गरीब ब्राह्मण था। अपनी पुत्रीके विवाहमें ऋण लेना पड़ा था उसे और अब महाजनने दावा कर दिया था। रुपये देनेका कोई प्रबन्ध हो नहीं रहा था। विद्यासागरने उसका नाम, पता तथा मुकदमा किस अदालतमें है, यह पूछकर ब्राह्मणके साथ सहानुभूति प्रकट की और वे चले गये।

मुकदमेकी तारीखपर ब्राह्मण अदालतमें उपस्थित हुआ तो उसे पता लगा कि उसकी ओरसे किसीने रुपये जमा कर दिये हैं, मुकदमा समाप्त हो चुका है। वह सोचने लगा—‘किस उदार पुरुषने उसपर दया की?’ किंतु मार्गमें मिले अत्यन्त साधारण दीखनेवाले उस दिनके व्यक्तिका यह काम हो सकता है, यह बात उसके ध्यानमें आ ही कैसे सकती थी।

—सु० सिं०

आदर्श नम्रता

श्रीभूदेव मुखोपाध्यायने अपनी एक लाख, साठ हजारकी सम्पत्ति दान करके अपने पिता श्रीविश्वनाथ तर्कभूपणकी स्मृतिमें ‘विश्वनाथ फड़’ खापित किया था। इस फड़से देशके सदाचारी, विद्वान् ब्राह्मणोंको विना मौगे प्रतिवर्ष पञ्चास रुपयेकी सहायता मनीआर्डरसे उनके घर भेजी जाती थी। पण्डितोंको न तो सहायता पानेके लिये प्रार्थना करनेकी आवश्यकता थी और न फड़के कार्यालयमें आनेकी। इस फड़के प्रथम वर्षकी वृत्तियोंका विवरण ‘एञ्जुकेशन गजट’ में

देनेके लिये एक कर्मचारीने सच्ची बनायी। उसमें लिखा था—‘इस वर्षमें जिन-जिन अध्यापकों एवं विद्यार्थियोंको ‘विश्वनाथ-वृत्ति’ दी गयी, उनकी नामावली।’

श्रीभूदेव बाबूने वह मूच्ची देखी तो अप्रसन्न होकर बोले—‘तुमने यह क्या लिख मारा है? इसे इस प्रकार लिखो—‘इस वर्षमें जिन-जिन अध्यापकों और विद्यार्थियोंको ‘विश्वनाथ-वृत्ति’ स्वीकार करनेकी कृपा की, उनकी नामावली।’

—सु० सिं०

सर्वमें आत्मभाव

हुगोलीके सरशगी बरील न्यगीन शशिभूषण बन्दोगामाय
एक दिन वैगान्वरे महीनेम दोगहरकी नदिनती द्वये एक
प्रियदेवी गाड़ीमें वैटर एक प्रतिष्ठित व्यक्तिके घर पहुँचे।
वे एक आद्यत्यक नायके आये थे। उनका वहाँ न्यागत
हुआ। पिर उस न्यन्ति ने पृथा—“इस भयर दोगहरमें
आनने आनेसा नष्ट क्यों दिया? आप किसी नौजनके हाथ
पर भेज देते तो भी यह राम हो जाता।”

श्रीगंशिभूषणजीने कहा—“मैंने पहले नौकरको ही
भेजनेसा पिचार किया था और पत्र भी लिख लिया था, किंतु
वाहरसी प्रचण्ड गरमी तथा दूर देखकर मैं किसी भी नौकर-
को भेजनेसा साहस नहीं कर सका। मैं तो गाड़ीमें आया हूँ,
उस वैचारेसो तो पैदल आना पड़ता। उसमें भी तो वही
आत्मा है, जो मुझमें है।”—मु० सिं०

मातृभक्ति

श्रीआशुनोप मुगुर्जी कलक्ता द्वार्टरेटके जज और
विधिविद्यालयके वाइस चान्सलर थे। उनके मित्र उन्हें
प्रियायत जानेसी सलाह देते थे जो “स्वय उनकी भी हृदय
विलायत जानेसी थी, किंतु उनकी माताने सुन्दर्यात्रा उन्हेसी
प्रनुभति नहीं दी, इसलिये यह पिचार उन्हेसे सर्वथा त्याग
दिया।

लार्ड कर्नन भारतके गवर्नर-जनरल होकर आये।
उन्होंने एक दिन श्रीआशुतोर मुगुर्जीसे प्रियायत जानेसी
सम्मति दी। श्रीमुगुर्जीने नहा—“मैंने माताकी इच्छा नहीं है।”

लार्ड कर्नने तनिक सत्ताके स्वरमें कहा—“जाकर
अपनी मातासे कहिये कि भारतके गवर्नर-जनरल आपको
विलायत जानेसी आज्ञा करते हैं।”

श्रीमुगुर्जी-जैसे मातृभक्त स्वाभिमानीका उत्तर था—
“यदि ऐसी वात है तो मैं माननीय गवर्नर-जनरलसे कहूँगा कि
आशुनोप मुगुर्जी अपनी माताकी आज्ञा भङ्ग करके दूसरे
किसीकी आज्ञाका पालन नहीं कर सकेगा, पिर भले वह
भारतका गवर्नर-जनरल हो या उससे भी वहाँ कोई
अधिकारी हो।”—मु० सिं०

मेरे कारण कोई झूठ क्यों बोले

कलकत्तेके लुग्गिद्व सुधारक विद्वान् श्रीरामतनु लाहौदी
उन दिनों कृष्णनगर कालिजियट स्कूलके प्रधानान्यापक थे।
वे एक दिन कलकत्तेमें सइरकी एक पटरीसे कहाँ जा रहे
थे। श्रीअश्विनीकुमारजी उनके पीछे चल रहे थे। अचानक
लाहौदीगावू श्रीप्रतासे दूसरी पटरीपर चले गये। अश्विनी-
कुमारजीने उनसे ऐसा करनेसा कारण पूछा। लाहौदीगावूने

पहली पटरीसे जाते एक व्यक्तिकी ओर सकेत करके कहा—
“उन सबनेसे मुक्तसे कुठ लप्पे उधार लिये हैं। जब वे
मुक्तसे मिलते हैं, तभी कोई-नकोई तिथि बताते हैं कि
उस तिथिको रुपया दे देंगे। परतु सम्भवत, अपनी
परिस्थितिसे वे विवश हैं। अपनी वात वे सत्य नहीं कर पाते।
उन्हें देखकर मैं इधर चला आया कि मेरे कारण किसी-
को झूठ क्यों बोलना पड़े।”—मु० सिं०

सत्यके लिये त्याग

श्रीअश्विनीकुमार दत्त जग हार्डन्कूलमें पढ़ते थे, तब
कलकत्ता विधिविद्यालयका नियम था कि सोलह वर्षसे कम
अवस्थाके विद्यार्थी हार्डन्कूलकी परीक्षामें नहीं बैठ सकते थे।
इस परीक्षाके समय अश्विनीगावूकी अवस्था चौदह वर्ष थी,
किंतु दूसरोंकी भौति उन्होंने भी सोलह वर्षकी अवस्था
स्थिरायी और परीक्षामें बैठे। इस प्रकार वे मैट्रिक
पास हो गये।

ठीक एक वर्ष पश्चात् एफ० ए० के प्रथम वर्षकी परीक्षामें
उत्तीर्ण हो जानेपर अश्विनीकुमारजीको अपने आचरणमें जो

असत्यका दोष था, उसका मान हुआ। उन्हें अपने
असत्याचरणपर बड़ी ग़लानि हुई। अपने कालेजके
प्रिन्सिपलसे उन्होंने सब वातें प्रकट करके इस असत्यके
सुधारनेकी प्रार्थना की। प्रिन्सिपलने उनकी सत्यानियुक्ती
प्रशंसा की, निंतु जो कुछ हो गया, उसे सुधारनेमें असमर्थता
बतायी। अश्विनीकुमारजी विधिविद्यालयके रजिस्ट्रारसे मिले,
परतु वहाँ भी उत्तर मिला—“यदि वात हाथसे बाहर हो
गयी।” लेकिन अश्विनीगावूने प्रायश्चित्त किया। दो वर्ष छुटी
उमर बढ़ाकर जो लाम उठाया गया था, उसके लिये उन्होंने
दो वर्ष पढ़ाई बद रखी।—मु० सिं०

माता-पिताके चरणोंमें गणेशजी

देवता सभी पूज्य हैं; किंतु एक बार देवनाओंमें विवाद हो गया कि उनमें प्रथम पूज्य कौन है ? जब परस्पर कोई निर्णय न हो सका, तब वे एकत्र होकर लोकपितामह ब्रह्माजीके पास पहुँचे। बूढ़े ब्रह्माजी बहुत कार्यव्यस्त रहते हैं। उन्हें सृष्टिके कार्यसे दो पलका भी अवकाश नहीं। पञ्चायत करनेको समय निकाल पाना उनके लिये कठिन ही या। अपना नवीन सृजन-कार्य करते-करते ही उन्होंने देवताओंकी वात सुन ली और एक निर्णय दुना दिया—‘जो पृथ्वीका प्रदक्षिणा करके सबसे पहले मेरे पास आ जाय वही अबसे प्रथम पूज्य माना जाय।’

देवराज इन्द्र अपने ऐरावतपर चढ़कर दौड़े, अग्नि-देवने अपने भेड़ेको भगाया, धनाधीश कुवेरजीने अपनी सर्वार्ग द्वानेवाले कहारोंको दौड़नेकी आज्ञा दी। वरुणदेवका वाहन ठहरा मगर, अत उन्होंने समुद्री मार्ग पकड़ा। सब देवता अपने-अपने वाहनोंको दौड़ाते हुए चल पड़े। सबसे पहुँचे रह गये गणेशजी। एक तो उनका तुन्दिल भाग भरकम शरीर और दूसरे वाहन मूपक। उन्हे लेकर वेचारा चूहा अन्तः: किनना दौड़ाता। गणेशजीके मनमें प्रथम पूज्य बननेकी लालसा कम नहीं थी, अतः अपनेको सबसे पिछड़ा देख वे उदास हो गये।

संयोगकी वात—सदा पर्यटन करनेवाले देवर्षि नारदजी खड़ाऊँ खटकाते, बीणा बजाते, भगवदगुण गाते उधरमें आ निकले। गणेशजीको उदास देखकर उन परम दयालुको दया आ गयी। उन्होंने पूछा—‘पार्वती-नन्दन ! आज आपका मुख म्लान क्यों है ?’

गणेशजीने सब बातं बतायीं। देवर्षि हँस पड़े, बोले—‘वस !’ गणेशजीमें उसाह आ गया। वे उन्कण्ठागे पूछ उठे—‘नारदजी ! कोई श्रुति है क्या ?’

‘श्रुद्धिके देवताके लिये भी युक्तियोंका अभाव !’ देवर्षि निज हँसे और बोले—‘आप जानते ही हैं कि माना न कात् पृथ्वीस्ता होनी है और पिता परमात्माके

ही रूप होते हैं। इसमें भी आपके पिता—उन परम-तत्त्वके ही भीतर तो अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्ड है !’

गणेशजीको अब और कुछ सुनना-समझना नहीं था। वे सीधे कैलास पहुँचे और भगवती पार्वतीकी अँगुली पकड़कर छोटे शिशुके समान खींचने लगे—‘मौं ! पिताजी तो समाधिमग्न है, पता नहीं उन्हे उठनेमें कितने युग बीतेगे, तू ही चलकर उनके वामभागमें तनिक देरको बैठ जा ! चल बैठ जा मौं !’

भगवती पार्वती हँसती हुई जाकर अपने ध्यानस्थ आराध्य-के समीप बैठ गयीं; क्योंकि उनके मङ्गलमूर्ति कुमार इस समय कुछ पूछने-वालेकी मुद्रामें नहीं थे। वे उतावलीमें थे और केवल अपनी वात पूरी करनेका आग्रह कर रहे थे।

गणेशजीने भूमिमें लेटकर माता-पिताको प्रणाम किया, फिर चूहेपर बैठे और सात बार दोनोंकी प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके पुनः साष्टाङ्ग प्रणाम किया और माता कुछ पूछें इससे पहले तो उनका मूषक उन्हे लेकर ब्रह्मलोककी ओर चल पड़ा। वहाँ ब्रह्माजीको अभिवादन करके वे चुपचाप बैठ गये। सर्वज्ञ सृष्टिकर्ताने एक बार उनकी ओर देख लिया और अपने नेत्रोंसे ही मानो स्वीकृति दे दी।

वेचारे देवता वाहनोंको दौड़ाते पूरी शक्तिसे पृथ्वी-प्रदक्षिणा यथाशीघ्र पूर्ण करके एकके बाद एक ब्रह्मलोक पहुँचे। जब सब देवता एकत्र हो गये, ब्रह्माजीने कहा—‘श्रेष्ठता न शरीरबलको दी जा सकती, न वाहनबलको। श्रद्धासमन्वित द्विद्विल ही सर्वश्रेष्ठ है और उसमें भवानीनन्दन श्रीगणेशजी अप्रणी सिद्ध कर चुके अपनेको।’

देवताओंने पूरी वात सुन ली और तब चुपचाप गणेशजीके समुख मस्तक झुका दिया। देवगुरु वृहस्पतिने उस समय कहा था—‘सामान्य माता-पिताका सेवक और उनमें श्रद्धा रखनेवाला भी पृथ्वी-प्रदक्षिणा करनेवाले से श्रेष्ठ है, फिर गणेशजीने जिनकी प्रदक्षिणा की है, वे तो विश्वमूर्ति हैं इसे कोई असीकार कैसे करेगा।’

जाको राखै साइयाँ. मार सकै ना कोय

(१)

गमतारग चम्पवीं नामके एक उड्डन छलक्तेमें विशी च्यागर्ग पर्में काम करते थे। उनके पर्में क्री और दन्तचाहर वर्षदो एक लड्काके लिवा दूनप बोटे न था। एक दिन कानान्दसे लौटनेवर उन्होंने टेग कि उनकी क्री और लड्काके नहे आनन्दसे एक पन पठ रही है। उन्होंने पूछा पुलिसरा पत्र है, क्या कान द ? लड्की बोल—क्या नामने नहीं दुना ? तीटे समझा पिल है, उन्होंने आनको क्री अम्बेगोंदो टेश नेटे लिंगे पिंगे अंगहूँक पत्र लिया है। गमतारग कानू प्रस्तु नेत्रोंसे अपनी क्रीकी दो टेलरर रोते—अन्तर्गत, बत है, चलो, इतने दिनों कान तुम्हारे छोटे भाईकी एक व्यस्ता नो हुई। जरा पत्र तो टेन्हूं। इतना कहकर ने पत्र पढ़ने रगे।

विश्वरूप दिनगे एक नतह नह गया। गमतारग वारू म्बेल्लसे इउ दिनोंके लिये छुट्टी लेकर टेश जनेकी चैमानी रहने लगे। परंपरे याशन दिन आ गया। विश्वरूपवर्म उन्होंने लिये हवडा अंडेगना जाकर यात्रमय देनर सुनार होकर वे टेशकी और चले। लिंग स्वेच्छनपर उन्हें उत्तमा था, कहो गड़ी दोमहको पहुँची। स्वेच्छनसे उनकी उमुगल ११ मील दूर थी और वैलगाइके लिवा वहो ज्ञानके लिये दूसरु कोई साधन न था। गमतारग कानू एक वैलगाइकी माझा करके भगवान्का नाम लेकर चल पड़े। गाईवान उनके साथ तग्ह-तग्हकी बाँहें करने लगा और सुलहृदय गमतारग वारूने भी निष्पट भावसे सुनी बाँहें उससे रख डाली। यद्योंतर कि वे विश्वाम जा नहे हैं तजा नायमें नहनेकरइ तथा दपेरें-पैसे ह—यह बात भी उनके सुखते निकल गयी। चम्बर्ती महायत वर्दि इन वातामे वीचमें गाईवानके हृदकी और विशेष व्यान देकर देस्त लेते तो उन्हें मालूम हो जता कि उसके दोनों नेत्र कितने कुर्दिल और हिंचभावसे मर गये हैं, परंतु अत्यन्त मुरल्हृदय होनेके कारण वे कुछ भी ताड़ न सके।

वलाई धीरे-धीरे एक बनके बाद दूसरे बन, एक मदानके बाद दूनरे मैदानको पा करती हुई चली। गमतारग वारू अपनी क्री और लड्काको नाना प्रकारके प्राकृतिक दृश्य दिखलाते हुए प्रसन्न चिच्चसे विभिन्न प्रकारकी बातें करते रहे। इतनेमें गाईवानने एक नदीके किनारे

पहुँचकर गाईको बोक दिया। नदीमें उस समय बड़ी भयानक धारा वह रही थी। गाईसे पार करनेवर विगतिकी उम्मावना थी। नदी उत्तरी गहरी नहीं थी, लेकिन बहुत चौड़ी थी, अतएव चन्द्रतीर्थ महायत बहुत डर गये। गाईवानने चम्बर्ती महायतकी ओर देखकर कहा—‘गाईजी ! तुमीं ही हमारा परिचित गोव हैं। हम वहसि लियोंगो तुला लंबे हैं। एक और आदमीकी सहायता मिलेसे नहीं पार होनेमें विशेष कष्ट न होगा।’ चम्बर्तीजी उसीमें रहजी हो गये। तब गाईवानने उन लोगोंको गाईसे उन नेके लिये नहर बैलोंको गाईसे तोल दिया। बैल छुट्टी पाकर आनन्दसे नदीके लिनारे धारा चलने लगे।

लगभग आव बटेके बाद गाईवान एक दूसरे आदमीको साथ लेकर पहुँचा। उस दूसरे आदमीकी वमदूतके समान कुनाइति तथा हिंसानी त्रृदृष्टि देवकर चम्बर्तीजी मन-ही-मन ढाने लगे, परंतु उनके दुःखसे कोई बात न निकल सकी। गाईवान और उसका साथी दोनों चम्बर्तीजीके समीप आकर लामने खड़े हो गये और तड़कर बोले कि ‘तुम्हारे पास जो कुछ है, सो तुरत दे दो, नहीं तो इस छुरेसे तुम्हार काम तमाम करके नदीमें हुतो देंगे।’ इतना कहकर दोनोंने खड़े तेज शान बनाये हुए छुरे निकाल लिये। चम्बर्ती महायत, उनकी क्री और लड्की—उस छर्के मारे चिल्ला उठे। दोनों डाकू छुरे हाथमें लिये उनकी और चढ़े। चम्बर्ती महायत बहुत अनुनादिनय करने लगे और प्राण-क्षाके लिये दोनों डाकूओंके चण्ठोंर पिर पड़े। डाकूओंने कहा—‘तुम्हारे पास जो कुछ गहनेकरहे और दपें-पैसे हैं, सब अपी हमारे हवाले कर दो।’ चम्बर्तीजीने कोइ उपाय न देखकर सारे सप्तवे तथा गहने दोनों डाकूओंको दे दिये। घन हमियानेके बाद दोनों डाकू बोले कि ‘वर्दि तुम बचे रहोगे तो पुलिसमें खबर देकर हमनो परझिला दोगे।’ अतएव तुमलोगोंको मारकर हम इस नदीमें हुआ देंगे।’

इतना कहकर दोनों डाकू छुरे लिये उनकी ओर बढ़े। चम्बर्तीजी और उनकी लड्की प्राणोंके भयसे भीत होकर रोते-रोते विश्वविदारण भगवान् मधुसूदनको जोर-जोरसे पुकारने लगे। डाकू छुरे मांक ही रहे थे कि अन्नानक एक अवटन घटना बड़ी

दोनों बैल समीप ही घास चर रहे थे। कोई नहीं कह सकता कि क्या हुआ; पर दोनों बैल सींग नीचे करके आकर विजलीकी तरह टूट पड़े और दोनों डाकुओंको सींगोंसे मारने लगे। सींगोंकी भयानक चोटसे दोनों डाकू घायल होकर दूर गिर पड़े। जहाँ-जहाँ सींग लगे थे, वहाँ-वहाँसे बहुत जोरसे खून बहने लगा। वे बेदनासे छटपटाते हुए मिट्टीमें लेटने लगे। सहसा इस अद्भुत घटनाको देखकर चक्रवर्ती महागय, उनकी छोटी और लड़की विस्मयसे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर पत्थरके समान स्तब्ध रह गये। इसी बीच उसी मार्गसे दूसरे यात्री आ निकले। उन्होंने इस भीषण हश्यको देखकर चक्रवर्ती महागयसे पूछ-ताछ की। चक्रवर्तीजीने निष्पट भावसे सारी बातें कह डाली। उन यात्रियोंमें एक आदमी चौकीदार था। वह उसी समय उन दोनों डाकुओंको बॉधकर थानेमें खबर देने चला। चक्रवर्तीजीने दूसरे यात्रियोंकी सहायतासे एक दूसरी बैलगाड़ी ठीक करके अपने गन्तव्य स्थानकी राह ली।

अदालतमें मुकदमा चलनेपर दोनों डाकुओंको कठोर कारणारका दण्ड मिला। चक्रवर्तीजीने बहुत प्रयत्न करके उन दोनों बैलोंको खारीदकर अपने घरमें रखा और उनकी सेवा की। इसके बाद जब कभी भी कोई उस घटनाके विषयमें उनसे पूछता तो वे भक्तिसे गद्ददिवित होकर कहते कि ‘कौन कहता है भगवान् जीवकी करुण प्रार्थना नहीं सुनते। नहीं तो, उनके लिना इन दो अवोध प्राणियों (बैलों) को दोनों डाकुओंका दमन करनेके लिये किसने प्रेरित किया? ये यन्त्र हैं, वे यन्त्री हैं’—इतना कहकर चक्रवर्ती महागय भावावेशमें रो पड़ते।

(२)

डेवन नगरके बब्बाकूम्ब (Babbacombe) गाँवके निवासी जॉन ली (John Lee) की घटना ऐसी है, जिसपर जल्दी विवास नहीं होता; किंतु है वह सोलहों आने सत्य। श्रीमती केयीज (Mrs Keyes) की हत्याका अभियोग लगाकर लीलों फॉसीकी आज्ञा हो गयी थी। मृत्युसे तनिक भी

भयभीत होनेकी अपेक्षा लीने न्यायाधीशोंके समक्ष उनकी सम्मतिके विरुद्ध अपनेको निर्दोष बताया और कहा, ‘मैंने यह काम नहीं किया है। भगवान् जानते हैं कि मैं निर्दोष हूँ। वे कभी मुझे फॉसीसे मरने नहीं देंगे। उन्होंने मुझसे निर्भय रहनेके लिये कहा है।’

उधर फॉसीकी सारी व्यवस्था हो गयी। रस्सीकी जाँचके लिये एक पुतला लटकाया गया। सब कुछ ठीक सायित हुआ। इस दृश्यको देखनेके लिये एक उन्मत्त भीड़ सॉस खींचे खड़ी थी। सिपाहियोंने लीको यथास्थान खड़ा कर दिया। फिर उसको एक काली कुलही उढ़ाकर खटका खींच लिया गया। पर ली जहाँ-का-तहाँ ही खड़ा रह गया। आश्र्वर्यचकित होकर एक निरीक्षक सिपाही कैदीकी जगह स्थित जाकर खड़ा हो गया। इस बार जब खटका खींचा गया, तब सिपाही खड़ामसे नीचे आ गिरा और उसका एक पैर भी टूट गया। फॉसीकी सजाको एक ससाहके लिये स्थगित कर दिया गया। पर दूसरी बार भी लीको फटेमें लटकानेकी चेष्टा फिर व्यर्थ सिद्ध हुई। जबतक पुतलोंको लटकाकर परीक्षा की जाती, तबतक तो खटकेका खींचना सार्थक होता; पर जब लीको वहाँ लाकर खड़ा कर दिया जाता, तब खटका काम ही नहीं करता। उस स्थानका अधिकारी (शरिफ) एक धर्मपीर और श्रद्धालु पुरुष था। उसने तार ढेकर गृहसचिवसे परामर्श मॉगा। वहाँसे यही कठोर उत्तर आया—‘फॉसीका काम पूरा करो।’

स्थानीय नागरिकोंने अत्यन्त उत्तेजित होकर लीके छोड़ दिये जानेकी मॉग की। परतु शरिफ बैचोरेको तो हुक्म बजाना था। उसने फिर इस धोर कर्मको पूरा करनेकी चेष्टा की, परतु वह सफल नहीं हुआ। चार पृथक्-पृथक् दिन फॉसी देनेका प्रयत्न किया गया, पर हर बार खटकेका यन्त्र कुण्ठित हो जाता। इतनेमें गृहसचिवका फिर शीघ्र ही तार आ गया, जॉन लीके प्राणदण्डकी आज्ञा रद्द कर दी गयी थी। कुछ समय बाद, उसको क्षमा प्रदान करके छोड़ भी दिया गया।

सर गुरुदासकी कट्टरता

कलकत्ता हाईकोर्टके जज स्वर्गीय श्रीगुरुदास बनजी अपने आचार-विचार, खान-पानमें बड़े कट्टर थे। ‘मार्डन-रिव्यू’ के पुराने एक अङ्कमें श्रीअमल होमने इस सम्बन्धमें

उनके जीवनकी एक घटनाका उल्लेख किया था। लार्ड कर्जन-के समय जो ‘कलकत्ता-विश्वविद्यालय-कमीशन’ नियुक्त हुआ था, उसके गुरुदास भी एक सदस्य थे। उसका कार्य समाप्त

हेतुर शिवन्मसे दे बाटुरुपके कुम टनकी नियन्में कलक्षये
कर रहे थे। कानुगमे ब्रह्मपुरुषने उन्हें अनन्ते हिन्दून्में हुल्ल
भेज। शिवन्में द्वन्द्व हेतुक चन्द्रशिवकी सिंहिशोऽनुभवन्में
बास्तव नहीं नहीं। इनन्में ही शोदशके नवनेत्र सुनय हो
गया। बाईरुपरने श्रीगुणटापुरे जगा कि ऐस्तु अब अन
भी जोक्कन करीन्द्रे। उन्होंने इसे छिन्द्रे शब्दवाच देते हुए
कहा—‘मैं भेन्में कुछ नहीं नाम।’ वह सुनकर बाईरुपरने
उड़ा आश्वर्य हुआ और उन्हें विश्वासन हुआ। उन्होंने तिन
पूजा तो उच्च निः—‘मैं रेत्यें कुछ गद्यन्म रनवा हूँ
औं देवत उक्तिरो धारा हूँ।’ इन्हर बद्धपुरने तिन् एक
‘तदनिर आपन लक्ष्मा क्या करेगा।’ श्रीगुणटापुरे कहा—
‘जनक मैं उपवास करता हूँ, वह दस्त क्षेत्र सुक्ता है।’
धर्मी नन्हीं हुई उपरके पत्र कुछ निर्दार्श है भूत लगाती है
तो कर उठे त्वा नेत्रा है।’ बद्धपुरने कहा—‘तो तिन् भैं
मौं नहीं नामङ्गाः, लक्ष्मा आप नहीं त्वा देते। अगे किनी
नियन्मर गाड़ी उड़ी नहीं और दग्ध अनन्ते नियन्मुक्त
भोजन अर लैं।’ श्रीगुणटापुरे बहुत समझाया कि इसकी
आवश्यकता नहीं है, आगको कष्ट होगा पर बाईरुपरने एक
मौं न हुनी और अने ८० दी० शी० (शर्हरन्दक) को

तुम्हर दुष्कर पूजा कि ‘अग्निं किस न्यैश्वनम् गाड़ी खड़ी
होगी।’ उन्होंने उच्च निः—‘हुजूर, दलहात्तेन।
बद्धपुरने कहा—‘अच्छी बात है लक्ष्मक दाक्षर इनज्ञीका
भोजन नहीं हो जाता, हम वहीं ठहरें।’ प्रयाग लंगुनम
स्वेशल रुक गयी, मिन्युत्र दोनोंने जक्क लगानकर कन
किया और त्रिवेणीन्द्रकी रेतीर दाढ़भात बन लगार जव
लैटे, दो कहीं गाड़ी आगे बढ़ी।

श्रीगुणटापुर कहा करते थे कि नहीं भी, किस किनीके राय,
लोहुन्म भोजापी लेसे ज्वरि लारी है या नहीं यह दूसरी बात
है पर इन नियमोंके पालनने आनंदनन और अनुशासननी
नियनी अच्छी शिवा निःनी है, नियन्मा वैवनमें कुछ कम
सूख नहीं है। नियन्मालमें किर्तीकी लक्ष्मा देवता उपका
उपहास मढ़े ही किन जय, पर हृदयमें उत्तरे प्रति आदि-
मात्र मौं विना लक्ष्मू हुए न रहेगा। लाडं कर्त्तननीवे
उद्घट बाद्धपुरनको मौं इस कृष्णर उनाननीते व्यहमों का
आदर करना पड़ा, परतु आज्ञकल तो अनुशासन और सदन्मा
कुछ सूख ही नहीं है। उन्हें तो न्यतन्त्रा और सुखमें बाबा
पड़ी है। लक्ष्मक तो नीवनका मन्त्र है—न्यतन्त्रा और
मोग। वैद्य ही पूज मौं मिल रहा है।

महेशकी महानता

रहा है। वज्र प्राण निकला ही चाहते हैं। बताओ, कैसे
विश्वास कहें ?

मौं दुगंकि प्रति अविश्वासकी बात सुनकर महेशकी आँखोंमें
पानी भर आया। महेशने कहा—‘लो न, मौं दुगाने तुन्हारी
मीत्र नेरे हाय मेर्नाहै। तुम गोओ मत।’ चावल-गाल दब
खेपूको देकर महेश हँसता हुआ भरको चला। खेपूको अल देकर
महेश भानो अपनेओ बृत्यर्य मान रहा था। उसने सोचा—
‘आज एसादरी है। जीवनमें कर्मी एकादर्शका ब्रन नहीं
किया। कल दर्शनी थी। कुछ जाया नहीं। आज उपवास
हो गया, इससे ब्रह्मका नियम पूर्ण सब गया। अब मगवान्
देंगे तो कल द्वादशीका पाण हो ही जायगा। एक दिन न
सानेहे भर योहे ही क्योगी ?’

इन प्रकार सोचता-निचारता महेश वर पहुँचा। महेशको
देखते ही जीने सानने आकर कहा—‘जल्दी चावल दो तो
भात बना दूँ। बचा शादद आज नहीं बचेगा। बड़ी देनेसे
नुखके मारे देहोद्य पहा है। दूसे चावल दो, मैं चूल्हेम

महेश मंदिर लिया था नम श्वर—चालाल। दिनमर
मन्दूरी कन्के कुछ पैसे लाता, उर्सि अपना तथा अपनी छाँ,
पुत्र, कन्या—चर्हेका पेट भरता। आज दो दिनका उपवास
था, महेशने दड़ी मुक्तिन्मसे छा आने पैसे कमाये। बाजारसे
दो केर चवच उर्द्दो और पार जनेके लिये नर्मारं पहुँचा।
नर्मारं बाटर त्रैपू महापुर दिखाना दिये।

त्रैपू उद्धर लैह बाटर लड़े थे। महेशने ब्राह्मणका
चैद्य उन्ना हुआ देवतन्म पूजा कि व्यरमें उच्च लुद्धल दो
है। त्रैपूने लक्ष्म दिना ‘क्या बराऊँ?’ मौं दुगाने भैं नर्मारंमें
कुछ निःका ही नहीं। कहो भैं भर्त्यर नहीं मिर्ची। दीन दिनेहे
वर्ष में किसीले कुछ नहीं जाया। आज भर जनेम लनी लोग
मरणास्त्र ही मिलें। इसी चिन्तामें छूट रहा हूँ। महेशने
कहा—‘विरतिमें मौं दुगाकि दिवा भौं, जैन रक्षा कर्नेवाल
है। बहुत लज्जेको देता है और कही नहीं देता। इनाय तो
क्राम है बहु, नक्कि आगे रोना। उनके आगे गुकारकर गेनेहे
जल्ल नाल लियेगी।’ त्रैपूने कहा—‘भादं। अब यह
विश्वस नहीं रहा। देखते हो दुन्हके सारमें इद-उद्धर

चढ़ाऊँ और तुम जाकर बच्चोंको सँभालो ।' महेशने कहा—
‘मॉ दुर्गाका नाम लेकर बच्चोंके मुँहमें जल डाल दो । माँकी
दयासे यह जल ही उसके लिये अमृत हो जायगा । खेपू
महाराजके बच्चे तीन दिनसे भूखे हैं । आज खानेको न मिलता
तो मर ही जाते । मैं दो सेर चावल लाया था, सब उनको
दे आया हूँ ।' महेशकी छीने कहा, ‘आज उनको देकर
आधा ले आते तो बच्चोंको दो कौर भात दे देती । तीन वर्षका

बच्चा दो दिनसे बिना खाये बेहोश पड़ा है । अब क्या होगा ।
मॉ दुर्गा ही जाने ।'

महेशने कहा, ‘यदि मॉ काली बचायेगी तो कौन मारने-
वाला है, अवश्य ही बच जायगा और यदि समय पूरा ही
हो गया है तो प्राणोंका वियोग होना ठीक ही है । खेपूका
सारा परिवार तीन दिनसे भूखा है । पहले वह बच्चे । हमारे
भाग्यमें जो कुछ बदा है, हो ही जायगा ।’

सदूच्यवहार

सेठ रमणलाल भगवान्के भक्त तथा साधुस्वभावके पुरुष थे । एक बार रसोइयाने भूलसे हल्लुएमें चीनीकी जगह नमकका पानी बनाकर डाल दिया और तरकारियोंमें नमककी जगह चीनी डाल दी । वह अपनी पत्नीकी बीमारीके कारण रातभरका जगा हुआ था और पत्नीकी इण्णताके कारण उसके मनमें चिन्ता भी थी । इसीसे भूल हो गयी । सेठ रमणलाल भोजन करने वैठे तो उन्हें हल्लुआ नमकीन और तरकारी मीठी किंतु बिना नमककी मालूम हुई । उन्होंने रसोइयाके चेहरेकी ओर देखा, उसका चेहरा उदास था । सेठने हार्दिक सहानुभूतिके स्वरमें उससे पूछा—‘महाराज । आज उदास कैसे हो ?’ लाभशंकर रसोइयाने जवाब दिया—‘ब्राह्मणी बीमार है, इसीसे चेहरेपर कुछ मलिनता आ गयी होगी ।’ उसने रात जगनेकी बात नहीं कही । पर सेठ उसकी उर्नांदी आँखोंको देखकर ताङ गये । उन्होंने कहा—‘लाभशंकर । तुम खाकर जल्दी घर चले जाओ—ब्राह्मणी अकेली है, उसे सँभालो; यहाँ दूसरा आदमी काम कर लेगा । तुम भला, आये ही क्यों । फिर भैया । तुम्हारे घरमें दूसरा कोई है भी तो

नहीं । तुम रातभर जगे भी होओगे । मैं एक आदमी भेजता हूँ, वह बैठेगा । तुम कुछ देर थाराम कर लेना ।’ रसोइयाको बड़ी सान्त्वना मिली । वह मन-ही-मन आशीर्वाद देता हुआ घर चला गया ।

लाभशंकरके चले जानेपर सेठ रमणलालने अपनी पत्नी चम्पानार्हसे धीरेसे कहा—‘देखो, बेचारा डरके मारे छीको बीमार छोड़कर कामपर आ गया । रातकी नॉंद थी और ब्राह्मणीकी चिन्ता थी । इससे उसने भूलसे हल्लुएमें नमक और तरकारियोंमें चीनी डाल दी है । अगर इन चीजोंको घरके सब लोग, नौकर-न्वाकर आदि खायेंगे तो बेचारे ब्राह्मणकी हँसी उड़ायेंगे और उसे भारी दुःख होगा । अतएव ये चीजें गोशालामें ले जाकर गायोंको खिला दो और जल्दीसे दूसरी बार हल्लुआ-तरकारी बनवा लो, जिसमें लाभशंकरकी भूलका किसीको पता भी न चले ।’ साव्वी चम्पानार्हने बैसा ही किया । बात बहुत छोटी, परतु इससे सेठ रमणलालकी विश्वाल-दृदयता और सदाशयताका पता लगता है !

पुजारीको आश्र्वय

बृन्दावनमें एक महात्मा हो गये हैं । उनका नाम या नारायणस्वामी । वे कुसुमसरोवरपर रहा करते थे । वहाँ मन्दिरका एक पुजारी भी रहता था । एक दिन पुजारीने देखा—नारायणस्वामी पागलकी तरह कुसुमसरोवरसे गिरिराज-की ओर दौड़े जा रहे हैं । गिरिराजके पास जाकर वे फिर पीछेकी ओर लैटे तथा कुसुमसरोवरके पासतक दौड़ आये । पुनः गिरिराजकी ओर दौड़े और वैसे ही फिर पीछे लैटे आये । इस प्रकार किंतनी बार उस ओर दौड़े, फिर पीछे लैटे और पुनः उसी ओर दौड़ गये । पुजारीको आश्र्वय हुआ,

पर उसने कुछ पूछा नहीं । किंतु दूसरे दिन भी नारायण-स्वामीजी वैसे ही दौड़ते रहे । आज सध्याके समय पुजारीने उनके चरण पकड़कर पूछा—‘महाराज । इस प्रकार आप दौड़ते क्यों रहते हैं ?’ नारायणस्वामीजीने कुछ भी उत्तर देना नहीं चाहा । पर पुजारी उनके पीछे पड़ गया । अन्ततोगत्वा उसका अतिशय प्रेम देखकर स्वामीजी बोले—‘देखो, भैया । मैं जाता हूँ कि मुझे दीखता है—भगवान् श्रीकृष्ण कुछ दूरपर खड़े हैं । उस समय उनकी सुन्दर शोभा देखकर मैं

पासल हो जाता हूँ और उन्हें पकड़ने दौड़ता हूँ, मिन्तु वे भाग चलते हैं। मैं पीछे-पीछे दौड़ता हूँ। गिरिशजैसे पास पहुँचनेपर दीसता है कि वे मेरे पीछेकी ओर खड़े हैं और मैं उन्हें पकड़नेके लिये पीछे दौड़ पड़ता हूँ। इसी प्रकार आज कई दिनोंसे दौड़ रहा हूँ।

पुजारीने पूछा—“महाराजजी! उनसे कोई बात आप नहीं पूछते?”

भगवान्का नृत्य-दर्शन

वात्रा खड़गसेनजी वडे ही प्रेमी भक्त थे। उनके जीवन-धन बजेन्द्र-नन्दन श्रीकृष्णचल्द थे। वे उन्हेंकि सरण-चिन्तन एव स्वचनमें व्यस्त रहते थे। श्रीकृष्णलीला-दर्शन, श्रीकृष्ण-कथा-श्वरण और श्रीकृष्ण-नामके अवलण्ड-जपके अतिरिक्त इनका और कोई कार्यक्रम नहीं था। वे श्रीकृष्णमें ही रम गये थे, जगतके जानसे सर्वथा शून्य थे।

अपने परमारब्ध श्रीकृष्णकी मधुर लीलाके सहायक गोप और गोपिकाओंके माता-पिताका नाम अन्योंसे हँड़-द्वृँढ़कर इन्होंने वडे परिश्रमसे पुस्तक तैयार की। दधि-दान-लीला, श्रीकृष्ण-केलिलीला और रास आदिका वडा ही सरस और मधुर चित्रण किया इन्होंने। जीवनका परमोद्देश्य यही था और इसीमें इनका जीवन समाप्त हुआ।

स्वामीजी बोले—“पहले तो बहुत-सी बातें याद रहती हैं। सोचता भी हूँ कि यह पूछ लूँगा, वह पूछ लूँगा, किंतु उनके दीखते ही और सब भूल जाता हूँ, केवल उनकी याद बच रहती है।”

इन नारायणस्वामीको भगवान्की दिव्य लीलाओंके भी दर्शन कई बार हुआ करते थे।

निलोंभी कर्मचारी

रामदुलाल सरकार कलकत्ता हटलोलाके दत्तवाहुओंके यहाँ नौकरी करते। वेतन था पाँच रुपये मासिक। वे अपने मालिकोंके वडे कृपापात्र थे। एक दिन गङ्गाजीमें एक जहाज झँब गया। उसका माल नीलाम होनेको था। जहाजमें चने भरे थे। नीचेके चने सब भीग गये थे। ऊपर अच्छे थे। नीलामकी ढाक पड़ने लगी। रामदुलाल भी नीलाममें ढाक लगा रहे थे। रामदुलालने वडी दक्षताके साथ चने बहुत सत्ते दामोंमें ढाक लिये। कुछ ही देर बाद एक व्यापारीने वे सब चने एक लाख रुपये नगद मुनाफेमें देकर रामदुलालसे खरीद लिये। एक ही घटेमें यह सब ही गया। यिनांकिसी खर्चके एक लाख रुपये नकद लेकर रामदुलाल मालिकोंके पास आये और उन्हें सब हाल मुनाया। मालिकोंको कुछ पता ही नहीं था। मालिकोंने सब बातें सुनकर कहा—“रामदुलाल! इन रुपयोंपर तो तुम्हारा ही हक है। तुमने

ये ग्वालियरमें रहते थे। इनके यहाँ प्रतिदिन नियमपूर्वक रासलीला होती और उसे वे वडी अद्वा-भक्तिसे देखते थे। शरत-पूर्णिमाकी रात्रि थी। निर्मल आकाशमें पूर्णचन्द्र हँस रहा था। शीतल, मधुर वयार वह रही थी। श्रीखड़गसेनजी श्यामा-श्यामकी भुवन-मन-मोहिनी, सतजन-चित्ताकर्पिणी लीलाका अपलक नेत्रोंसे पान कर रहे थे। मधुर वाद्य वज रहे थे। भगवान् धीरे-धीरे नृत्य कर रहे थे। स्वर्गीय सौन्दर्य-सुख उत्तर आया था भूतलपर। श्रीखड़गसेनजी आनन्दसे गँद्ध हो गये थे। इनकी आँखें अशुकुकाओंकी माला पिरो रही थीं। सहसा वे श्यामसुन्दरके चरणोंपर गिर पड़े और सदैवके लिये उनके पावन धाममें चले गये।—शिं० दु०

अपने बुद्धिकौशलसे वे रुपये कमाये हैं। हम इसमें कुछ भी हिस्सा नहीं लेना चाहते। भगवान्ने कृपा करके तुम्हें वे रुपये दिये हैं। इनके मालिक तुम्हाँ हो। हमलोग वडी ही प्रसन्नतासे तुम्हें वे रुपये लेनेके लिये कह रहे हैं।

उस समयके लाख रुपये आजके करोड़के वरावर थे। रामदुलालने बहुत प्रयत्न किया। कहा, मेरा कोई हक नहीं है। परतु मालिकोंने नहीं माना। धन्य है पाँच रुपयेका नौकर रामदुलाल और वैसे ही धन्य हैं उसके निःसार्थ मालिक। रामदुलालका भाग जागा, उनके पास लाखों रुपये हुए। पर वे अन्ततक मालिकोंसे पाँच रुपये मासिक लेते रहे और सदाके नौकरकी भाँति ही आवरण भी करते रहे। रामदुलालके देहान्तके बाद उनके पुत्र भी वे ही पाँच रुपये मासिक लेकर अपनेको धन्य मानते थे।

राक्षसीका उद्धार (पुण्यदानकी महिमा)

पवित्र सह्याचलके अञ्चलमें पहले कोई करवीरपुर नामका एक नगर था। वहाँ धर्मदत्त नामका एक पुण्यात्मा ब्राह्मण रहता था। एक बार कार्तिक मासमे वह एकादशीके दिन जागरणके बाद थोड़ी रात रहते पूजन-सामग्री लिये भगवान्के मन्दिरमें चला जा रहा था। रास्तेमे उसने देखा कि भयंकर नाद करती हुई एक विकराल राक्षसी उसकी ओर दौड़ी चली आ रही है। अब तो बेचारा ब्राह्मण भयसे काँप उठा। भगवान्का नाम तो वह ले ही रहा था। बस, सारी पूजनसामग्रीको उस राक्षसीपर दे मारा। भगवन्नामयुक्त तुलसीदल आदिके सर्वपर्श्वसे वह राक्षसी निष्पाप-सी हो गयी। उसी क्षण उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया। वह तत्क्षण ब्राह्मणके सामने साढ़ाङ्ग प्रणाम करती हुई पृथ्वीपर लेट गयी और कहने लगी—‘प्रियव्र ! अपने पूर्वके कर्मोंके कारण मैं इस दुर्दशाको प्राप्त हुई हूँ। अब मैं पुन उत्तम दशाको कैसे प्राप्त होऊँ, बतलानेका कष्ट करें।’

धर्मदत्तको अब दया आ गयी। उसने उसके जन्मान्तरके कर्मोंकी जिज्ञासा की। राक्षसी कहने लगी—‘ब्रह्मन् ! सौराष्ट्र नगरमें पहले मिक्षु नामका एक ब्राह्मण था। मैं उसीकी पत्नी थी। मेरा नाम कलहा था। मेरा स्वभाव अत्यन्त दुष्ट एवं निष्ठुर था। अधिक क्या, मैंने वाणीसे भी कभी अपने पतिका हित नहीं किया। भोजन बनाकर स्वयं तो मैं सभी अच्छी वस्तुओंको पहले खा लेती थी, बाद निस्सार अवशिष्ट चीजें अपने पतिके भोजनके लिये रख छोड़ती थी। मुझ कलहाकी यह दशा थी कि पति जो कुछ भी कहते थे, मैं ठीक उसके ग्रतिकूल आचरण करती थी। एक बार मेरे पतिने अपने मित्रसे मेरी कथा कही। थोड़ा सोच-विचार कर उन्होंने मेरे पतिसे कहा कि ‘आप ‘निषेधोक्ति’से (उलटा कहकर) कहें तो आपकी स्त्री आपके कार्यको ठीक-ठीक कर देगी।’ तत्पश्चात् मेरे पतिने मुझसे आकर एक बार कहा—

‘देखो, मेरा मित्र बड़ा दुष्ट है, उसे तुम भूलकर भी भोजनके लिये निमन्त्रित न करना।’ इसपर मैंने कहा, ‘नहीं-नहीं, वह तुम्हारा मित्र तो सर्वथा साधु है। मैं आज ही उसे बुलाकर भोजन कराऊँगी।’ ऐसा कहकर मैंने उसे बुलाकर उसी दिन भोजन कराया। उस दिनसे मेरे पतिने सदा ‘निषेधोक्ति’से ही कहना आरम्भ किया। एक दिन मेरे श्वशुरका श्राद्ध-दिवस आ पहुँचा। मेरे पतिने कहा—‘प्रिये ! मैं पिताका श्राद्ध नहीं करूँगा।’ मैंने कहा—‘तुम्हें बार-बार धिक्कार है। मालूम होता है तुम्हे पुत्र-धर्मका जरा भी ज्ञान नहीं। भला बतलाओ तो श्राद्ध न करनेसे तुम्हारी क्या गति होगी ?’ बस, मैं तुरत जाकर ब्राह्मणोंको निमन्त्रित कर आयी। तब मेरे पतिने कहा, ‘प्रिये ! बस एक ही ब्राह्मणको भोजन कराना, विस्तार मत करना।’ यह सुनकर मैं अठारह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित कर आयी। मेरे पतिने कहा—‘पक्षान्न तुम मत बनाना।’ बस, मैंने पक्षान्न बनाकर रख दिया। पतिने कहा, ‘पहले हम-तुम दोनों भोजन कर लें तो पीछे ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाय।’ मैंने कहा—‘तुम्हें बार-बार धिक्कार है। भला, ब्राह्मणोंके सिलानेसे पहले खाते तुम्हें लाज नहीं लगती ?’

“इसी प्रकार निषेधोक्ति से ही मेरे पतिने सारी श्राद्ध-क्रिया जैसेत्तैसे सम्पन्न कर ली। दैववशात् अन्तमें उन्हें निषेधोक्तिकी याद भूल गयी और बोल उठे—‘प्रिये ! इन पिण्डोंको किसी सत्तीर्थमें डाल आओ।’ बस, मैंने उन्हें विष्टाकूपमें डाल दिया। अब तो वे खिन्च होकर हाहाकार कर उठे। थोड़ा सोचकर उन्होंने फिर कहा—‘अच्छा ! देखना इन पिण्डोंको बाहर मत निकालना।’ मैं झट शौचकूपमें उतरकर उन पिण्डोंको बाहर निकाल लायी। तब उन्होंने कहा—‘इन्हें किसी अच्छे तीर्थमें न डाल देना।’ तब मैंने बड़े आदरसे उन्हें ले जाकर तीर्थमें डाल दिया।

“अन्तमें मेरी दुष्टामे ज्यधित होकर मेरे पनिने दूसरा विवाह करनेका निश्चय किया। यह सुनकर मैंने जहर खाकर प्राण-परित्याग कर दिया। तनश्चात् यमदृत मुझे बौंचकर ले गये। यमराजने मुझे देखकर चित्रगुप्तमे पृथा। चित्रगुप्तने कहा—‘इसके द्वारा शुभकर्म तो कभी हुआ ही नहीं। यह नदा न्दय मिठाइयाँ खानी थी और पनिको निस्सार उच्छित देनी थी। अन इन्हे ज़िंगुर्का गेनि प्राप्त हो। यह पनिके साथ सड़ा द्वेष तगा कश्च अर्नी थी अन चित्र-भक्ती शूकरी योनिमें भी रहे। जिन पात्रोंमें भोजन चलानी थी, उन्होंमें यह चानी भी रहती थी, उन्हें इन्हे स्वजानापत्यमक्षिणी वैटार्ड-योनि भी मिले। पनिके अकल्याणके लिये इसने आम-हल्ता कर दार्ढी है, इसन्हें चिरकालक इन्हे प्रेतयोनिमें भी रखवा जाय।’ वस, चित्रगुप्तका यह कहना या कि यमदृतामें मुझे मर्देशमें ढकेल दिया। एक बार एक च्यापागी उग्गमे आ रहा था। मैं उसके गरीरमें धुस गया। जब उसके साथ यहाँ कृणावेगीके तथ्यर पहुँची, तब पिण्डु तथा त्रिवक्ते दूतोंने बलात् मुझे मारकर उसके गरीरमें अलग कर दिया। मैं इधर-उधर भड़क ही रही थी, तब तक तुम दीख पडे। तुम्हारे द्वाग तुलसी-जल फैके जानेपर मैं पाप सब नष्ट हो गये। अब मुनिश्रेष्ठ! मैं तुम्हारे चरणोंका अरण हूँ। आगे होनेवाली पिंडाल, शूकरादि तीन योनियाँ तथा दीर्घकालिक इस प्रेत-आराममे

तुम्हीं त्राण दे सकते हो।”

धर्मदत्तको इसपर बड़ी दफा लगी। उसने सोचा, ‘सावरण पुण्यांसे तो इसका उद्धार होगा नहीं। अनेक पने वाचजीवन जितना भी कार्तिक ब्रत किया है, उसका आवा भाग इसे दे दूँ।’ ऐसा सोचकर धर्मदत्तने द्वादशाक्षर मन्त्र तथा तुलसीडलने उसका अभियंक कर दिया और अपना संकन्पिन पुण्य दे दाला। वस, तक्षण वह राक्षसी प्रज्वलित अग्निके समान उर्जनी-जैसी सौन्दर्य-रागिमें परिणत हो गयी। इवर आकाशसे एक विमान उत्तरा। उसपर पुण्यशील और सुर्जील ये दो भगवान्के गग थे। धर्मदत्तने ब्रिस्मिन होकर उन्हें साधारण प्रणाम किया। गगोंने उन्हें उठाकर गले लगाया और धन्यवाद दिया। वे बोले, ‘त्रिप्रश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, जो दीनोंपर इस प्रकारकी दया करते हो। तुम्हारी कृगामे इसके सारे पाप नष्ट हो गये। यह अन्तकालक विष्णुओंके रहेगी। अब तुम्हारा पुण्य दूता हो गया। अनेक तुम भी अपनी दोनों ब्रियोंके साथ मरनेपर वहीं आओगे। अगले जन्ममें तुम राजा दशरथ होओगे। तब तुम्हारी दोनों ब्रियोंके साथ अर्द्धपुण्यमागिनी यह छों भी कैंकेनी नामसे तुम्हारी ली होंगी। वहाँ भी तुम्हें भगवान् पुत्रहृतसे प्राप्त होंगे। तदनन्तर तुम्हें परमवामकी पुन ग्रासि होंगी। —जा० श० (आनन्दरामाण, सारकांड अव्याप्त ४, पद्मपुराण, उत्तरार्ध श० १०६-७)

परोपकारका आदर्श (सुलक्षणापर शिवकृपा)

काशीपुरीकी उत्तर दिग्में उत्तर अर्ककुण्ड है, जहाँ भगवान् भूर्य उत्तरार्ध नाममे निवास करते हैं। वहाँ एक प्रियवन नाममे ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नी अन्यन्त सुन्दरी तथा पतित्रना थी। उन दोनोंसे एक कल्या उलझ हुई जिसका नाम सुलक्षणा था। सुलक्षणाका जन्म मूल नक्षत्रके प्रथम चरणमें हुआ था

तथापि इसके केद्रमें वृहस्पति थे। वह कन्या धीरे-धीरे बढ़नेलगी। वह बड़ी रूपकर्ती, विनीत, सदाचारिणी तथा माना-पिताकी अनि प्रियकारिणी थी। धीरे-धीरे वह विवाहके योग्य हुई। अब उसके पिताको चिन्ना हुई कि इसके योग्य उत्तम वर मुझे कहाँ मिलेगा जो कुल, अवस्था, शील, सभाव, शास्त्राध्ययन, रूप और धनसे

सम्पन्न हो ॥ इस भयंकर चिन्ताज्जरसे ग्रस्त होकर बेचारे प्रियत्रत अन्तमें मृत्युको प्राप्त हो गये । प्रियत्रत की पहाड़ी भी पातिव्रत्यका पालन करती हुई उनके साथ सती हो गयी ।

अब माता-पिताके सरनेपर सुलक्षणा दुखसे व्याकुल हो उठी । उसने किसी प्रकार उनका और्ध्वदैहिक तथा दशाह आदि संस्कार किये । अब वह अनाथा सोचने लगी—‘मैं असहाय अबला इस संसारको कैसे पार करहूँगी ? खीभाव सबसे तिरस्कृत ही होता है । मेरे माता-पिताने मुझे किसी वरको अर्पण भी नहीं किया । ऐसी दशामें मैं स्वेच्छासे किस वरको वरण करूँ ॥ यदि मैंने किसीका वरण किया भी और यदि वह कुलीन, गुणवान्, सुशील और अनुकूल न मिल पाया तो उसका वरण करनेसे भी क्या लाभ होगा ॥’ यद्यपि उसके पास कई युवक इस इच्छासे आये भी, पर उसने किसीको वरण नहीं किया । वह सोचने लगी—‘अहो ! जिन्होंने मुझे जन्म दिया, बड़े लाइ-प्यारसे पाला, वे मेरे माता-पिता कहाँ चले गये ? देहधारी इस जीवकी अनित्यताको धिक्कार है । जैसे मेरे माता-पिताका शरीर चला गया, निश्चय ही उसी प्रकार मेरा यह शरीर भी चला ही जायगा ।’

ऐसा विचार कर सुलक्षणाने उत्तरार्कके समीप घेर तपस्या आरम्भ की । उसकी तपस्याके समय प्रतिदिन एक छोटी-सी बकरी उसके आगे आकर अविचल भावसे खड़ी हो जाती । फिर शामको वह कुछ धास तथा पत्ते आदि चरकर और उत्तरार्क-कुण्डका जल पीकर अपने खामीके घर चली जाती । इस प्रकार छः वर्ष बीत गये । तदनन्तर एक दिन भगवान् शङ्कर-पराम्बा भगवती पांवतीके साथ लीलापूर्वक विचरते हुए वहाँ आये । सुलक्षणा वहाँ दूँठकी भोंति खड़ी थी । वह तपस्यासे अत्यन्त दुर्बल हो रही थी । दयामयी भगवतीने भगवान् शङ्करसे निवेदन किया, ‘भगवन् ! यह सुन्दरी कन्या बन्धु-बान्धवोंसे

हीन है, इसे वर देकर अनुगृहीत कीजिये ।’ दयासागर भगवान् भी इसपर सुलक्षणासे वर माँगनेको कहा ।

सुलक्षणाने जब नेत्र खोले, तब देखा, सामने भगवान् त्रिलोचन खड़े हैं । उनके बामाझमे उमा विराजमान हैं । सुलक्षणाने हाथ जोड़कर उन्हे प्रणाम किया । इतनेहीमे उसकी दृष्टि अपने आगे खड़ी उस बेकरीपर पड़ी । उसने सोचा—‘इसे लोकमे अपने खार्थके लिये तो सभी जीते हैं, पर जो परोपकारके लिये जीता है, उसीका जीवन सफल है ।’ वह बोली—‘कृपानिधान । यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो पहले इस बकरीपर कृपा करें ।’

सुलक्षणाकी बात सुनकर भगवान् शङ्कर बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने पार्वतीसे कहा—‘देवि ! देखो, साधुपुरुषोंकी बुद्धि ऐसी ही परोपकारमयी होती है । वास्तवमे एक मात्र परोपकार ही संग्रहणीय है; क्योंकि सभी संग्रहोंका क्षय हो जाता है, पर एकमात्र परोपकार ही चिरस्थायी होता है । अब तुम्हीं बतलाओ, इसे बकरी एवं सुलक्षणाका मैं कौन सा उपकार करूँ ॥’

तदनन्तर पराम्बा जगज्जननी पार्वतीने कहा—‘यह कुभलक्षणा—सुलक्षणा—तो मेरी संखी होकर रहे । यह बालब्रह्मचारिणी है, अनपव मेरी बड़ी प्रिया है, इसलिये यह दिव्य शरीर, धारणकर सदैव मेरे पास रहे और यह बकरी काशिराजकी कन्या हो और बादमे उत्तम भोगोंको भोगकर मोक्षको प्राप्त हो । इसने शीत आदिकी चिन्ता न कर पौष मासके रविवारको सूर्योदयके पूर्व द्वान किया है । इसलिये इस कुण्डका नाम आजसे बर्करीकुण्ड हो जाय । यहाँ इसकी प्रतिमाकी सभी लोग पूजा करें ।’

‘एवमस्तु’ कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये । इस प्रकार सुलक्षणाने अपने साथ उस बकरीका भी परम कल्याण सिद्ध कर लिया ।

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, ४८ धूं अध्याय)

शास्त्रज्ञानने रक्षा की

महाराज भोजके नगरमे ही एक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। वे स्यु याचना करते नहीं थे और विना मौगे उन्हे द्रव्य कहाँसे मिलता। दरिद्रता महादुःखदायिनी है। उससे व्याकुल होकर ब्राह्मणने राजभवनमे चोरी करनेका निश्चय किया, वे रात्रिमे राजभवनमे पहुँचनेमे सफल हो गये।

ब्राह्मण दरिद्र थे, दुखी थे, धन-प्राप्तिके इच्छुक थे और राजभवनमे पहुँच गये थे। वहाँ सब सेवक-सेविकाएँ निश्चिन्त सो रही थीं। स्वर्ण, रत्न आदि बहुमूल्य पात्र इधर-उधर पड़े थे। ब्राह्मण चाहे जो उठा लेते, कोई रोकनेवाला नहीं था।

परतु एक रोकनेवाला था और ब्राह्मण जैसे ही कोई वस्तु उठानेका विचार करते थे, वह उन्हे उसी क्षण रोक देता था। वह या ब्राह्मणका शास्त्रज्ञान। ब्राह्मणने जैसे ही स्वर्णराशि उठानेका सकल्प किया, वुद्धिमे स्थित शास्त्रने कहा—‘स्वर्णचौर नरकगामी होता है। स्मृतिकार कहते हैं कि स्वर्णकी चोरी पॅच महापापोमेंसे है।’

ब्रह्म, रत्न, पात्र, अन्न आदि जो भी ब्राह्मण लेना चाहता, उसीकी चोरीको पाप बतानेवाले शास्त्रीय वाक्य उसकी स्मृतिमे स्पष्ट हो उठते। वह ठिक जाता। पूरी रात्रि व्यतीत हो गयी, सबेरा होनेको आया, किंतु ब्राह्मण कुछ लं नहीं सका। सेवक जागने लगे। उनके द्वारा पकड़े जानेके भयसे ब्राह्मण राजा भोजकी शथ्याके नीचे ही छिप गया।

नियमानुसार महाराजके जागरणके समय रानियों और दासियों सुसज्जित होकर जलकी झारी तथा दूसरे उपकरण लेकर शथ्याके समीप खड़ी हुईं। सुहृद्वर्गके लोग तथा परिवारके सदस्य प्रातःकालीन अभिवादन करने द्वारपर एकत्र हुए। सेवकसमुदाय पक्षिवद्ध प्रस्तुत हुआ, उठते ही महाराजका स्वागत करनेके लिये सजे हुए हाथी तथा धोडे भी राजद्वारसे बाहर प्रस्तुत किये गये। राजा भोज जगे और उन्होंने यह सब देखा। आनन्दोल्लासमे उनके मुखसे एक श्लोकके तीन चरण निकले—

‘चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः
सद्वान्धवाः प्रणयगर्भगिरङ्गच भृत्याः।

वलगन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः’

इतना बोलकर महाराज रुक गये तो उनकी शथ्याके नीचे छिपे विद्वान् ब्राह्मणसे रहा नहीं गया, उन्होंने श्लोकका चौथा चरण पूरा कर डिया—

‘सम्मीलने नयनयोर्न हि किञ्चिदस्ति ॥’

अर्थात् नेत्र बढ़ हो जानेपर यह सब वैभव कुछ नहीं रहता। महाराज यह सुनकर चौंके। उनकी आज्ञासे ब्राह्मणको शथ्याके नीचेसे निकलना पड़ा। पूछनेपर उन्होंने राजभवनमे आनेका कारण बतलाया। राजा भोजने पूछा—‘आपने चोरी क्यों नहीं की?’

ब्राह्मण बोले—‘राजन्। मेरा शास्त्रज्ञान मुझे रोकना रहा। उसीने मेरी रक्षा की।’

राजा भोजने ब्राह्मणको प्रचुर वन दिया।

विक्रमकी जीव-दया

महाराज विक्रमादित्य प्रजाके कायोका पता लगानेके लिये ग्राय अकेले धूमा करते थे। एक बार वे धोडेपर चढ़कर एक वनमेंसे जा रहे थे। सध्या हो चुकी थी। भयझकर पशुओंसे पूर्ण वनसे उन्हें शीघ्र बाहर चले

जाना था, किंतु उन्हे एक गायकी डकराहट सुनायी पड़ी। महाराजने उस शब्दकी दिशा पकड़ी। वर्षा-ऋतु-मे नदीकी बाढ़ उत्तर रही थी। नालोंमे चढ़ आया नदीका जल नीचे जा चुका था, किंतु उनमे एकत्र

पक ढल-ढल बन गया था। ऐसे ही एक नालेकी ढल-ढलमें एक गाय फँस गयी थी। गायके चारों पैर पेटनक ढल-ढलमें ड्रव चुके थे। वह हिलनेमें भी असमर्थ होकर डकरा रही थी।

महागज विक्रमादित्यने अपने वक्ष उतार दिये और वे गायको निकालनेका प्रयत्न करने लगे। उन्होंने बहुत परिश्रम किया। मूँहं कीचड़में लथपथ हो गये, अन्वकार फैल गया, किन्तु गायको निकालनेमें वे सफल नहीं हुए। उत्तर गायकी ढकराहट सुनकर एक सिंह वहाँ आ पहुँचा। महाराज अब अन्वकारके कारण कुछ कर तो सकते नहीं थे, तलवार लेकर गायकी रक्षा करने लगे, जिसमें सिंह उसपर आक्रमण न कर दे। सिंह वार-वार आक्रमण कर रहा था और वार-वार महाराज उसे रोक रहे थे।

नालेके समीप एक भारी वठबृक्ष था। उसपरसे एक शुक बोला—‘राजन् ! गाय तो मरेगी ही। वह

अभी न भी मरे तो ढल-ढलमें हृवक्त्र कल्पक मर जायगी। उसके लिये तुम क्यों ग्राण दे रहे हो। यहाँमें शीघ्र चले जाओ या इस वृक्षपर चढ जाओ। सिंहनी तथा दूसरे बन-गशु आ जायेंगे तो तुम्हारे ग्राण सकटमें पड जायेंगे।’

महाराज बोले—‘पक्षिश्रेष्ठ ! मुझे अवर्मका मार्ग मन दिखलाओ। अपनी रक्षा तो सभी जीव करते हैं, किन्तु दूसरोंकी रक्षामें जो ग्राण दे देने हैं, वही अन्य है, वैसे स्वामीके विना मेना व्यर्थ है, वैसे ही दयाके विना अन्य सब पुण्य कर्म व्यर्थ है। अपने ग्राण नेकर भी मैं इस गायको बचानेका प्रयत्न करूँगा।’

पूरी रातभर महाराज गायकी रक्षा करते रहे, किन्तु प्रात काल उन्होंने देखा कि वहाँ न गाय है, न सिंह है और न शुक पक्षी ही है। उनके बदले वहाँ देवगज इन्द्र, धर्म और भू देवी खड़ी हैं। देवगज इन्द्रने प्रसन्न होकर महाराजको कामधेनु गौ प्रदान की।

सर्वस्वदान

(हर्पवर्धनकी उडारता)

‘भारतके सार्वभौम-सम्भाट् महागजाविगज शिलादित्य—हर्पवर्धनकी जय हो वे चिंगयु हों।’ सरस्वती-पुत्रोंने प्रशस्ति गायी। गङ्गा-यमुनाके सङ्घमके ठीक सामने ऊँची सैकन-मूमिपर असल्य जनताकी भीड़ एकत्र थी। देव-देवके सामन्त और कामल्प, गौड़, बल्लभी आडिके नरेशोंमें परिवेष्टित महागज हर्पने मोक्ष-समामें पदार्पण किया। वहिन राज्यत्री साथ थी। विशेष अतिथि-आसनपर चीनके धर्मदूत हैनसाग उपस्थित थे। उनके गैरिक कौशेय परिधान, ठिगने और पीत वर्णके शरीर तथा छोटी-छोटी दाढ़ीने लोगोंके लिये अद्भुत कौतूहल उपस्थित किया था।

‘महागज ! आपने समस्त धर्मोंके प्रति उडारता

प्रकटकर आर्य-स-स्कृतिकी उडार मनोवृत्तिका परिचय दिया है। आपने पाँच वर्षमें संचित कोपरागिका इन पचहत्तर दिनोंमें दानकर इस ‘महादान भूमि’ पर जो दिव्य कीर्ति कमायी हैं, उसमें इन्द्रकी मी स्वर्व-वृत्ति बढ़ गयी है। आप अन्य हैं।’ चीनी यात्री हैनसागकी प्रशस्ति थी।

‘महाराज ! दजवल और दिक्पालोंकी पूजाका समय आ गया।’ धर्माचार्यने सम्भाट्का ध्यान आकृष्ट किया। सम्भाट् गम्भीर हो उठे।

वसन्त-ऋतुका पहला चरण था। शीतल मल्यानिल सङ्घमके स्पर्शमें अपने-आपको पवित्र कर रहा था। मोक्ष-समाका अन्तिम उत्सव था यह और सम्भाट् स्थाप्तीश्वर-

गमनका आदेश महामन्त्रीको दे चुके थे ।

‘महाराजकी दान-वृत्ति सराहनीय है, सत्य दानकी ही नींवपर स्थित है । दान सर्वश्रेष्ठ धर्म है, पर ।’ एक ब्राह्मणने सभामे अचानक प्रवेशकर लोगोंको आश्वर्य-चकित कर दिया । यह एक विचित्र घटना थी ।

‘कहो विग्र, कहो ! यह धर्मसभा है, इसमे सत्यपर कोई रोक नहीं है ।’ महाराज दिक्पालोंके पूजनके लिये प्रस्थान करना चाहते थे ।

‘आपने हरिश्चन्द्र, शिवि, दधीचि, रघु और कर्णके दान-यशको अमर कर दिया है सप्ताट् ।’ वह उनके स्वर्णमुकुट और कण्ठ-देशकी रत्नमालाकी ओर ही देख रहा था ।

‘मैं ‘पर’का आशय समझ गया ।’ सप्ताटने अपनी शेष सम्पत्ति (मुकुट और रत्नमाला) ब्राह्मणके करकमलोंमें रख दी । उनकी जयसे जनताकी कण्ठ-नाणी

सम्प्लावित थी ।

‘बहिन ! भारत-सप्ताटने आजतक किसीसे याचना नहीं की ।’ हर्षने राज्यश्रीको देखा । वह चकित थी ।

‘मेरे पास दशबल और दिक्पालोंके पूजनके लिये अब कोई वस्त्र शेष नहीं है । मैंने शत्रुसे केवल उनके सिरकी ही याचना की है । मुझे इन्द्रके सिंहासन-की भी अपेक्षा नहीं है ।’ सप्ताटने भिक्षा माँगी ।

‘भैया ! इस महादानभूमिमें आपके पहनने योग्य मेरे पास भी कोई वस्त्र नहीं रह गया है । इस पवित्र तीर्थसे दुछ भी बचाकर ले जाना दानराज्यमे अधर्म है ।’ देवी राज्यश्रीने एक जीर्ण-शीर्ण वस्त्र सप्ताटके हाथमें रख दिया ।

हर्ष प्रसन्न थे मानो उन्हें सर्वस्व मिल गया । सप्ताट भगवान् दशबल और दिक्पालोंकी पूजामे लग गये ।

बैलोंकी चोट संतप्तपर

श्रीकेवलरामजी ऐसे ही थे । श्रीकृष्णके नयन-शरके लक्ष्य ये हो चुके थे । श्रीकृष्णके अतिरिक्त इनकी आँखोंमें और कोई था ही नहीं । ये विषय-न्वासनाको बहुत दूर छोड़ आये थे । मायाकी छाया भी इनको स्पर्श नहीं कर पाती थी । कहणा और प्रेमके आप मूर्तिमान् स्वरूप थे ।

‘भिक्षा दो, मौं !’ किसीकी देहरीपर पहुँचकर ये आवाज लगा देते । माताएँ चावल, दाल, शाक और धूतादि लेकर आपके सामने आतीं तो आप कहने लगते—‘अत्यन्त प्रेमपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करें, मेरी यही भिक्षा है ।’ और उल्टे पाँव लौट पढ़ते । बड़ा प्रभाव पड़ता इनकी बातोंका सुननेवालोंपर । इसी प्रकार ये प्रत्येक लौ-पुरुषको श्रीकृष्ण-प्रेम-पथपर अग्रसर करनेके लिये सतत प्रयत्न करते रहते ।

‘मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करें !’ किसी अनाचारी वैष्णव-को देखते ही ये ज्ञाटसे विनय-पूर्वक कहते । ये भगवद्भक्त थे । इनके मनमें अविरल शान्ति लहरें लेती रहती । पर श्रीकृष्णके पूजा-प्रचारके लिये जैसे इनके मनमें आग लगी रहती

थी । जिस किसीको देखते ही ये उसके पीछे पड़ जाते थे । श्रीकृष्णका नाम-जप करनेका बचन ले ही लेते थे । विनय और आग्रहको देखकर वैष्णव पूछ बैठते ‘क्या कहते हैं ?’

‘आप श्यामसुन्दरकी प्रतिदिन नियमपूर्वक अन्तर्दृदयके विशुद्ध प्रेमसे पूजा किया करें ।’ कहते हुए ये श्यामसुन्दरकी मनोहर प्रतिमा सामने रख देते । साथ ही इनकी आँखें छलक पड़तीं ।

साधु इनका ढग देखकर दग हो जाते । उनके मनमें पश्चात्ताप होता और प्रभुकी प्रतिमा लेकर प्रेमपूर्वक उपासनामें लग जाते ।

एक बारकी बात है, आप एक गाड़ीवानके साथ चल रहे थे । गाड़ीवान गाड़ीपर बैठा गाड़ी हॉकता जा रहा था और श्रीकेवलरामजी पृथ्वीपर पैदल ही गाड़ीवानको श्रीकृष्ण-कथा सुनाते जा रहे थे ।

एक स्थानपर बैल थोड़ेसे रुके तो गाड़ीवानने क्रोधित होकर दोन्तीन साँटियाँ जोरसे उनकी पीठपर दे भारी । बैल

सॉटीरे भयसे दौड़ने लगे। गाढ़ीगानने कथा सुननेके लिये श्रीनेत्रगमनीयी ओर देखा तो वे नहीं थे। गाढ़ीवानने गाहृपर उड़े होकर देखा तो आप पीछे मूर्छित होकर गिर पड़े थे।

गाढ़ीगान घरगास्तर गाढ़ीने कूद पड़ा और उसने दौड़कर श्रीनेत्रगमनीयी अपनी गोदमें उठा लिया। उसने देखा जो गैंडी उसने बैलझो मार्ही थी, वह श्रीनेत्रगमनीयी पीढ़पर लगी थी। उसना निधि सप्त दीप रहा था।

ये भत उत्तरी उच्चारोटिपर पहुँच गये हैं, इसकी गाढ़ीवानके मनमें अत्यन्त भी नहीं थी। वह उनके चरणोपर

गिरकर क्षमा-प्रार्थना करने लगा। गाढ़ीपर और भी कई आदमी थे। सभ-के-सभ श्रीकेवलरामजीके चरणोंपर माथा रखकर क्षमाकी याचना कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्ण प्रेम और क्षमाके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। सुषिके कर्ता, पालक और विनाशक वे ही हैं। माया-मोह उन्होंकी देन है, पर जो सबको त्यागकर उनके वरण-कमलोंके भ्रमर बन जाते हैं, वही सरलतासे वे भवसागर पार कर लेते हैं। तुमलोग श्रीकृष्णके बन जाओ। बस, वे म्यव क्षमा कर देंगे। फहकर श्रीकेवलरामजी हँसने लगे, पर उपस्थित व्यक्तियोंकी अँखोंसे अशु-सरिता प्रवाहित हो गही थी।—शि०८०

संत-दर्शनका प्रभाव

‘इस ससारके मन प्राणी अपने ही हैं, कोइं भी पराया नहीं है। पापी धृणारा पात्र नहीं है, उससे निष्कपट प्रेम करना चाहिये। भगवान् पापीके ही उद्धारके लिये अवतार लेते हैं।’ महात्मा हरनाथने निर्भयतापूर्वक अपने प्रेमियों और शिष्योंको ममजाया और उस और चल पड़े, जिधर टाकू गमनान रहता था। उसके अत्याचार और लूटपाटसे समलू इट्टु प्रदेश सनस्त था। उसके भयसे लोग यर-यर कँपते थे और घोरेसे भी उसका नाम नहीं लेते थे।

‘पागल’ हरनाथने उस बनमें प्रवेश किया, जिसमें उस टाकूका निवास-स्थान था। निर्जन बनमें महात्माने भीण आकाशवाले एक व्यक्तिजो देखा और समझ गये कि यह रामलाल ही है। वे बढ़ते गये और दो-चार क्षणके बाद ही टाकू उसके भासने रुक्ख था।

‘पिताजी। मैंने बानतक पाप-ही-पाप किये हैं। मैंने अपने पाप और अत्याचारकी कथा किसीसे नहीं कही। मेरे उद्धारका समय आ पहुँचा है। मैं इस निर्जन पश्चिम खड़ा होकर केवल आपकी राह देख रहा था। जगत्के किसी भी पदार्थमें मुझे सुख नहीं मिल सका। मुझे भवसागरके पार उतारिये।’ टाकू रामलालकी वृत्ति बदल गयी। एक क्षणके

लिये ही संतके समर्कमें आनेसे उसके पाप नष्ट हो गये और वह पागल हरनाथके चरणोंपर गिर पड़ा। वह तिसक रहा था। महात्मा हरनाथने उसका बड़े प्रेमसे आलिङ्गन किया और कहा कि ‘परमात्माके राज्यमें शाश्वत और परम आनन्दकी प्राप्ति हो सकती है, तुमने पश्चात्तापकी आगमें अपने समस्त पाप जला दिये।’

‘मुझे रास्ता दिखाइये। प्रकाश दीजिये। मैं आपका दात हूँ।’ रामलालने कातर स्वरूपे कहा।

‘भगवान् का नाम ही मन्त्रराज है। सोते-जागते, उठते-बैठते और खाते-पीते उस मधुर नामामृतका पान करते रहना चाहिये। वे प्रभु सर्वसमर्थ हैं। जीवमात्रसे प्रेम करो, सज्जा प्रेम ही प्रभुकी प्राप्तिका सुगम पथ है।’ महात्मा हरनाथने उसे अपनी अहैतुकी कृपासे धन्य कर दिया।

रामलालने संन्यास ले लिया और बृन्दावनमें यमुनातटस्थ किसी रमणीय स्थानमें निवास करके वे भगवान् श्रीकृष्णका भजन करने लगे। सतदर्शनकी महिमाका बखान नहीं किया जा सकता। बड़े भाग्यसे ही सतका दर्शन मिलता है।

—रा० श्री०

रामूकी तीर्थयात्रा

एक सत किसी प्रसिद्ध तीर्थस्थानपर गये थे। वहाँ एक दिन वे तीर्थ-स्थान करके गतको मन्दिरके पास सोये थे। उन्होंने स्वप्नमें देखा—दो तीर्थ-देवता आपसमें बातें कर रहे हैं। एकने पूछा—

‘इस वर्ष कितने नर-नारी तीर्थमें आये?'

‘लगभग छः लाख आये होंगे।’ दूसरे उत्तर दिया।

‘क्या भगवान् ने सबकी सेवा स्वीकार कर ली?'

तीर्थके माहात्म्यकी बात तो जुदी है, नहीं तो उनमें

वहुत ही कम ऐसे होगे, जिनकी सेवा स्वीकृत हुई हो ।
‘ऐसा क्यों ?’

‘इसीलिये कि भगवान् में श्रद्धा रखकर पवित्र भावमें तीर्थ करने वहुत औद्दे ही लोग आये, उन्होंने भी तीर्थोंमें नाना प्रकारके पाप किये ।’

‘फोर्ड ऐसा भी मनुष्य है जो कभी तीर्थ नहीं गया, परतु जिसको तीर्थोंका फल प्राप्त हो गया हो और जिसपर प्रभुकी प्रसन्नता वरस रही हो ।’

‘कर्ड होंगे, एकका नाम बताता हूँ, वह है रामू चमार, यहाँमें वहुत दूर केरल देशमें रहता है ।’

इतनेमें सतकी नींद टूट गयी । उन्हें बड़ा आश्रय हुआ और इच्छा हुई केरल देशमें जाकर भगवान् रामू चमारका दर्शन करनेकी । मत उत्साही और दृढ़निश्चयी तो होते ही हैं, चल दिये और वही कठिनतासे केरल पहुँचे । पता लगाते-ल्याते एक गाँवमें रामूका घर मिल गया । मतको आया देखकर रामू बाहर आया । मतने पूछा—‘क्या करते हो, भैया ?’

‘जूते बनाकर बेचता हूँ, महाराज !’ रामूने उत्तर दिया ।

‘तुमने कभी तीर्थयात्रा भी की है ?’

‘नहीं, महाराज । मैं गरीब आदमी—पैसा कहाँसे लाता तीर्थयात्राके लिये । यात्राका मन तो था परतु जा सका नहीं ।’

‘तुमने और कोई बड़ा पुण्य किया है ?’

‘ना, महाराज । मैं नीच पुण्य कहाँसे करता ।’

तब मतने अपना स्वप्न सुनाकर उससे पूछा—

‘फिर भगवान् की इतनी कृपा तुमपर कैसे हुई ?’

‘भगवान् तो दयालु होते ही हैं, उनकी कृपा दीनोंपर विशेष होती है । (इतना कहते रहते वह गद्गद हो गया, फिर बोला—) महाराज ! मेरे मनमें वर्णोंसे तीर्थ-यात्राकी चाह थी । वहुत मुश्किलसे पेटको खाली रख-रख कर मैंने कुल पैमे बचाये थे, मैं तीर्थ-यात्राके लिये जानेवाला ही था कि मेरी सी गर्भवती हो गयी । एक दिन पड़ोसीके घरसे मेथीकी सुगन्ध आयी । मेरी मौजे कहा—मेरी इच्छा है मेथीका साग खाऊँ; पड़ोसीके थाँव बन गहा है, जरा माँग लाओ । मैंने जाकर साग माँगा । पड़ोसिन बोली—ले जाइये, परतु है यह वहुत अपवित्र । हमलोग सात दिनोंसे सब्बके सब भूखे थे, प्राण जा रहे थे । एक जगह एक मुर्देपर चढ़ाकर साग फेंका गया था । वही मेरे पति शीन लाये । उसको मैं पका रही हूँ ।’ (गमू फिर गद्गद होकर कहने लगा—) मैं उसकी बात सुनकर कॉप गया । मेरे मनमें आया, पड़ोसी सात-सात दिनोंतक भूखे रहे और हम पैसे बटोरकर तीर्थयात्रा करने जायें । यह नो ठीक नहीं है । मैंने बटोरे हुए सब दैसे आदरके साथ उनको दे दिये । वह परिवार अब-वस्त्रसे सुखी हो गया । गतको भगवान्-ने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—‘वेटा ! तुझे सब तीर्थोंका फल मिल गया, तुझपर मेरी कृपा वरमेगी ।’ महाराज । तबसे मैं सचमुच सुखी हो गया । अब मैं तीर्थस्वरूप भगवान्को अपनी आँखों-के सामने ही निरन्तर देखा करता हूँ और वह आनन्दसे दिन कट रहे हैं ।’

रामूकी बात सुनकर मत रो पड़े । उन्होंने कहा—सचमुच तीर्थयात्रा तो तूने ही की है ।

रंगनादकी पितृभक्ति

तुम्हारे पिताको यिना किसी जमानत तथा प्रतिभूके नहीं जाने दे सकता ।’

लड़केने वडे उत्साहके माथ कहा, ‘मेरे पास धन तो है नहीं जो जमानत-मुच्चलकेकी बात करूँ । पर मैं पिताके स्थानपर स्वयं ही जेलमें बद रहूँगा ।’

जजका हृदय पिघल गया । उसने उसके पिताकी मुक्ति-सम्बन्धी कागजातपर हस्ताक्षर करके उसे छोड़ दिया । दोनों पिता-पुत्र उसी रात धर पहुँचे । उचित समयपर श्राद्ध-क्रिया सम्पन्न हुई ।

यही रंगनाद आगे चलकर पद्रह भाषाओंमें अच्छी तरह बोल और लिख लेनेवाला प्रसिद्ध गनाद शास्त्री हुआ ।

कृतज्ञता

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपनी जगीम उदागताके कारण मगार हो जुके थे । एक समय ऐसा जाया जब उनके पास उनने पैमं नहा थे कि आगे हुए पत्रोंका उत्तर भेज गए । तो पत्र आते थे, उनका उत्तर लिखकर लिपाफो बढ़ करके भारतेन्दुजी भेजर रख देते थे । उनपर टिकट लगानेके पैमं हा तो पर भेजे जायें । पत्रोंकी एक ढेरी एकत्र हुए गयी उनकी भजगर । उनके एक मित्रने उन्हें पॉच रुपयेके टिकट लागर दिये और तप व पत्र दाकमें ढाले गये ।

भारतेन्दुजीकी स्थिति कुछ ठीक हुई । अब जब वे मित्र

मिलते थे, तभी भारतेन्दुजी बल्पूर्वक पॉच रुपये उनकी जेपमें दाल डेते और रहते—‘आपको सारण नहीं, आपके पॉच रुपये मुक्षपर छूटा हैं ।’

अन्तमें मित्रने एक दिन बहा—‘मुझे अब आपसे मिलना नद कर देना पड़ेगा ।’

भारतेन्दु बाबूके नेत्र भर आये । वे बोले—‘भाइ ! तुमने ऐसे समय मुझे पॉच रुपये दिये थे कि मैं जीवनभर प्रतिदिन तुम्हें अब पॉच रुपये देता रहूँ, तो मी तुम्हारे शूणसे छूट नहीं सकता ।’—सुनिं।

गुरु-निष्ठा

आर्यमाजके प्रमर्तन स्वामी दयानन्दजीको बड़ी नींजके गाढ़ विरजानन्दनेमें परम वेदज महात्माका दर्शन हुआ । विरजानन्द अधेरे थे । उन्होंने दयानन्दको गिरिय बना लिया ।

स्वामी दयानन्द मगमवती अपने गुरुनो प्रसन्न राजनेके लिये मठा प्रयत्नशील रहते थे । उनकी सेवाका न मठा ध्यान रहते थे । विरजानन्द तीनों ऋनुओं यमुना-जलसे स्नान किया रहते थे । दयानन्द वडे गर्वे उनके लिये वाह घडे यमुना-जल लाते थे और उनके बाट निवास स्थानमें झाड़ बाहर किया रहते थे ।

एक दिन दयानन्दजी महागज नाड़ द रह थे । दैवयोगमें

कहांपर थोड़ा-सा कुड़ा थोप गृह गया था और उसपर विरजानन्दना पैर पड़ गया । वे दयानन्दने डड़ेसे पीटने लगे । स्वामी दयानन्दने उस् तक नहीं किया ।

‘गुरुदेव !’ आप मुझे ओर मत मारिये । दुख सहते-सहते मेरी पीट पत्थर-जैसी हो गयी है । इसपर प्रहार करते रहते आपके हाथोंमें पीड़ा होती होगी ।’ स्वामी दयानन्दजी महाराज अपने गुरुके हाथ महलाने लगे ।

स्वामी विरजानन्दने वडे प्रेममे उन्हे गले लगा लिया और उनकी गुरुनिष्ठाकी मगहना की । ग० श्री०

स्वामी श्रीदयानन्दजी सरस्वतीके जीवनकी कुछ कथाएँ

(लेखक—श्रीगवृगमजी गुप्त)

कानपुरमें एक दिन आप अपनी मोजमें गङ्गामें लेटे हुए थे । योर्डी दूरपर एक मगरमच्छ निकला । फिनारे खड़े श्रीपार्वतीलालने चिल्लाकर कहा, ‘महाराज ! देखिये वह मगरमच्छ निकला है ।’ ईश्वर-विश्वासी, निर्भय दयानन्द बोले, ‘भाई ! जब हम इसका कुछ नहीं विगड़ते, तब हमें यह क्यों दुख देगा ।’

एक बार कुम्हके अवमगर एक साधुने कहा, स्वामीजी ! आप ज्ञानी होकर भी भिक्षुककी तरह ईश्वरसे

प्रार्थना करते रहते हैं । ये तो अज्ञानियोंके कर्म हैं । बड़ी गम्भीरतासे आपने उत्तर दिया, ‘यह सत्य नहीं है कि ज्ञानीजन परमात्मामें प्रार्थना नहीं करते । वास्तविक सत्य यह है कि जैसे भूख-यासको अन-जलादिसे तृप्त किया जाता हे, वैसे ही आत्मिक न्यूनताएँ ईश्वराराधना और बलयाचनाके बिना पूरी नहीं हो सकतीं ।’

फर्रुखाबादके कमिश्नर स्काट साहिब एक दिन पूछने लगे—‘स्वामीजी ! पिछले जन्मके कर्मोंका क्या

सबूत है ?” स्वामीजीने कहा, ‘पहले यह बताइये, आपके पाँवमें यह नुक्स क्यों है ?’ (साहिव कुछ लँगड़ाकर चलने थे।) साहब बोले, ‘खुदाकी मर्जी है ।’ स्वामीजीने कहा—‘खुदाकी मर्जी न कहिये । वह तो बड़ा दयालु तथा न्यायकारी है । जब किसी कष्टका कारण इस जन्ममें मालूम और दिखायी न दे तो समझ लेना चाहिये कि यह किसी पिछले जन्मका पापफल है ।’

एक साधु ‘पुरुषार्थ और प्रारब्धमेंसे किसकी मान्यता है ?’ पूछने लगे । कहा, ‘दोनों आवश्यक हैं । प्रारब्ध पिछले कर्मों तथा उनके भोगका नाम है और पुरुषार्थ इस जन्मके नये कर्म करनेका ।’

अनूपशहरमें किसीने स्वामीजीको पानमें विष दे दिया । उनके मुसल्मान भक्त सैव्यद मुहम्मद तहसील-दारको पता चला तो विष देनेवाले व्यक्तिको पकड़ मँगवाया । दयानन्दके दरवारमें अपराधी पेश किया गया । महाराजने कहा, ‘इसे मुक्त कर दो । मैं संसारमें लोगोंको कैद कराने नहीं अपितु छुड़ाने आया हूँ ।’

कायमगजमें किसीने कहा, ‘आपके पास पत्र नहीं है । कमण्डलु तो होना चाहिये ।’ हँसकर बोले, ‘हमारे हाथ भी तो पत्र हैं ।’

स्वामीजी अपने आरम्भिक जीवनमें केवल एक कौपीनसे निर्वाह करते थे । एक दिन एक सज्जनने आकर कहा, ‘महाराज ! आपके पास एक ही लँगोटी है । मैं यह नयी लँगोटी लाया हूँ ।’ दयानन्दजी बोले, ‘अरे, मुझे तो यह अकेली लँगोटी बोझ हो रही है । तू और ले आया है, जा, ले जा; भाई, इसे ले जा ।’

फर्लखावादमें एक देवी अपने मृत वालकका शव लेकर पाससे गुजरी । लाश मैले-कुचले कपड़ोंसे लपेटी हुई थी । स्वामीजीने कहा—‘माई, इसपर सफेद कपड़ा क्यों नहीं लपेटा ?’ ‘मेरे पास सफेद कपड़ा और उसके लिये पैसे कहाँ, महाराज ।’ रोकर उसने कहा । ठंडी

साँसके साथ करुणानिधि दयानन्दके आँसू उमड़ आये और वे बोले, ‘हाँ ! राजराजेश्वर भारतकी यह दुर्दशा कि आज उसके बच्चोंके लिये कफनतक नहीं ।’

अमृतसरमें एक साधारण व्यक्तिने एक दिन पूछा, “दीनबन्धु वनी लोग तो दान-पूण्यसे धर्मशालाएँ बना और धर्मकार्योंमें दान देकर तर जायेंगे, महाराज ! गरीबोंके लिये क्या उपाय है ।” कहा, ‘तुम भी नेक और धर्मात्मा बन सकते हो । ससारमें जहाँ एक पुरुष दान देने और परोपकारसे पार हो सकता है, वहाँ दूसरा बुराई न करनेसे, परनिन्दासे बचते हुए, नेक बन सकता है । पाप न करना संसारकी भलाई करना है ।’

वरसातकी ऋतु थी । बनारसमें वायुसेवन करते-करते दाढ़पुर नगरकी सड़कपर आप जा निकले । देखा एक गाड़ीके बैल और पहिये कीचड़में फँसे हुए हैं । पास खड़े लोग, तमाशाइयोंकी तरह तरकीवें बता रहे हैं । करुणासागर दयानन्दसे यह दृश्य कैसे देखा जाता । समीप जाकर बैलोंको खोल दिया । अखण्ड ब्रह्मचारी दयानन्दके कंधेपर आयी गाड़ी ढलदलसे निकलकर पार हो गयी ।

शाहजहाँपुरमें अपने कर्मचारियोंको नियत समयसे आध घटे देरसे आये देखकर बोले—‘आज हमारे देशवासी समयकी महानताको भूल गये हैं । समयकी सारताका तब पता चलता है जब मृत्युशास्यापर पढ़े किसी रोगीको देखकर वैद्य कहता है, यदि पाँच मिनट पहले मुझे बुला लिया होता तो बच जानेकी सम्भावना थी । अब लाखों खर्च करनेपर भी नहीं बच सकता ।’

बम्बईमें एक सेठजीके साथ आये हुए उनके दशवर्षीय पुत्रको पास बुलाकर बड़े प्यारसे कहा, ‘प्रातःकाल उठकर हाथ-मुँह धोकर माता-पिताको प्रणाम किया करो । अपने पुस्तकोंको आप ही उठाया करो, नौकरोंसे

नहीं। मार्गमें कोई माता मिले तो दृष्टि नीचे रक़ज़ा करो। ऐसा किया करो तो कल्याण होगा।'

सन् १८९२ में वीरभद्रि चित्तौड़ पश्चारे। एक दिन कुछ राजकर्मचारियोंके साथ भ्रमण कर रहे थे। मार्गमें एक मन्दिरके पास छोटे-छोटे बालक खेल रहे थे। उनमें

एक पञ्चवर्षीय बालिका भी थी। स्नामी दयानन्दने उस बालिकाको डेखकर सीस झुका दिया। सायियोंने मर्मको न समझने हुए इधर-उधर देखा। दयानन्दजीने उनके आश्र्यको बड़ी गम्भीरतामें यह कहकर दृग कर दिया, 'देखने नहीं हो, वह मातृआकृति सामने खड़ी है।'

मौन व्याख्यान

एक दिनकी बात है। योगिराज गम्भीरनाथ अपने कपिलवार्ग पहार्डीबाले आश्रममें अन्यन्त आन्त और परम गम्भीर मुद्रामें बैठे हुए थे। वे आत्मानन्दके विन्ननमं पूर्ण निमग्न थे। उर्मी समय उनके पवित्र दर्शनसे अपने आपको बन्ध करनेके लिये कुछ गिक्कित वगाली सज्जन आ पहुँचे। उन्होंने विनम्रतापूर्वक योगिराजमे उपदेश देनेके लिये निवेदन किया। योगिराजके अवगेपर मुसकानकी मृदुल शान्ति थी, उनकी दृष्टिमें कल्याणप्रद आर्द्धार्दका अमृत था, उन्होंने बड़ी आत्मीयतामें उन सज्जनोंको आसन ग्रहण करनेका सक्रिय किया।

सज्जनोंने उपदेशके लिये बड़ा आग्रह किया, योगिराजकी विनम्रता मुखरित हो उठी—'वास्तवमें मैं

कुछ भी नहीं जानता, आपको मैं क्या उपदेश दूँ।' आगन सज्जन महापुरुषकी विनम्रतामें बहुत ही ग्रमाविन हुए, पर उनका यह दृढ़ विश्वास था कि वात्रा गम्भीरनाथ आध्यात्मिक उत्तिकी पराकाष्ठापर पहुँचे हुए हैं। अतएव उनके हृदयमें योगिराजके श्रीमुखसे उपदेश श्रवण करनेकी उत्सुकता कम न हो सकी। उन्होंने अपना आग्रह फिर उपस्थित किया और योगिराजने भी विनम्रताके साथ अपने पहले उत्तरको दुहरा दिया। उनके उत्तरमें किसी प्रकारका दम्भ या दिखावा नहीं था, योगिगजने मौन सक्रिय किया कि 'यदि वे वास्तवमें जिज्ञासु हैं तो मेरे आचरणको देखें तथा सत्य—वस्तु-तत्त्वकी खोज अपने भीतर करें।'

—४० श्री०

पैदल यात्रा

'महागज ! आपका पैदल जाना कठापि उचित नहीं है। गस्ता ऊखड़-बावड़ है तथा शान्तिपुरमें नीछाचलनक पैदल जानेमें स्वास्थ्य विगड़ जायगा।' शिव्योंने महान्मा विजयकृष्ण गोस्तामीसे प्रार्थना की।

'तुमलोग अपने भावके अनुसार विलुप्त ठीक कहते हो। पर मुझे अपने पूर्वज अद्वैताचार्यका, जिन्होंने महाभावमें निमग्न महाप्रसु श्रीचैतन्यकी दीदाका रसास्वादन किया था, समग्न होते ही मनमें विश्वास हो जाता है कि भगवान् जगन्नाथ मेरा प्रेममें आलिङ्गन करनेके लिये तथा

अपने चरणोंमें स्थान देनेके लिये कितने उत्सुक हैं। तुम्हें यह बात अच्छी तरह विडित ही है कि मेरे पिताने नीछाचल क्षेत्रकी दण्डौती यात्रा पूरी की थी। उनके चरणोंमें बड़े-बड़े छाले पड़ गये थे, तल्बेसे गत वह रहा था, पर उन्होंने यात्रा पूरी कर दी। अतएव मैं पैदल ही जाऊँगा केवल लाठी लेकर, मेरे साथ कोई दूसरा नहीं जायगा।' उनका गेम-गेम पुलकित था। नयनोंमें अशुपात हो गहा था। वे चल पड़े। उनकी श्रद्धा साकार हो उठी।

'महागज ! बड़े भास्यमें इस जन्ममें हमलोगोंको

आप-ऐसे पुण्यात्माका साथ मिला है । हमें अपने सज्जने वश्चित न कीजिये ।' कुछ गिर्योंने उनके हृदयकी करुणाका दरवाजा खटखटाया । अन्तमे इस यात्रामे पचास गिर्योंने उनका साथ डिया । शेष व्यक्ति अपने-आपको नहीं सम्भाल सके । वे उनके वियोगकी आशङ्कामे फृट-फृटकर रोने लगे ।

'आपलोग यह क्या कर रहे हैं । आशीर्वाद दीजिये कि जगन्नाथदेव मुझे खीकार कर ले; आपलोग प्रार्थना करे कि वे मुझे अपने चरणोंमे झरण दे ।'

महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामीने पैदल यात्रा आरम्भ की । उनके जय-जयमारसे यात्रापथ धन्य हो उठा । उनके हृदयकी श्रद्धा फलवती हो उठी । —८० श्री०

भाव सच्चा होना चाहिये

प्रसिद्ध सत महात्मा रूपकल्पीजीके बचपनकी बात है । वे उस समय प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे । वे अपने दो-तीन मित्रोंके साथ नदी-ज्ञानके लिये जाया करते थे । एक दिन वे अपने दो मित्रोंके साथ नदीमें ज्ञान कर रहे थे कि अचानक सरिताका वेग बढ़ आया, लहरें उठने लगीं और उनके साथी नन्दकुमार बाबू मध्य धाराकी ओर बढ़ चले ।

'प्रभो ! आपने यह क्या किया । मैं घर जाकर नन्दकुमारके माता-पिताको क्या उत्तर दूँगा । क्या आप चाहते हैं कि मेरा अपयश हो ?' वे श्रीसीतारामका

स्मरण करने लगे, जोर-जोरसे भगवान्‌का परम मधुर नाम लेने लगे । भगवान् तो भावके भूखे हैं, सच्चे भाव और निष्कपट व्यवहारसे वे दयामय बहुत प्रसन्न होते हैं । इधर भगवानसहाय गिडगिडाये और उधर जल-का वेग जान्त होने लगा । देखते-ही-देखते किसी अदृश्य शक्तिकी प्रेरणासे नन्दकुमार बाबूको लहरोंने किनारेपर फेंक दिया । वे अचेत थे ।

रूपकला जोर-जोरसे भगवत्ताम-कीर्तन करने लगे । उनके सच्चे भावने नन्दकुमार बाबूको नया जीवन प्रदान किया । —८० श्री०

—→३५५←—

जीवनचरित कैसे लिखना चाहिये

आर्यसमाजके सस्थापक श्रीस्वामी दयानन्दजी सरस्वतीके अत्यन्त निकटके श्रद्धालु भक्तोंमे थे पजावके पण्डित श्रीगुरुदत्तजी विद्यार्थी । स्वामीजीके देहावसानके अनन्तर उनके एक दूसरे श्रद्धालु अनुयार्थीने पण्डित गुरु-दत्तजीसे कहा—'पण्डितजी ! स्वामीजी महायोगी थे । आपको उनके धनिष्ठ सम्पर्कमे रहनेका सुअवसर मिला है । आपको उनके सम्बन्धमे विस्तृत जानकारी है । आप स्वामीजीका एक जीवनचरित क्यों नहीं लिखते ?'

पण्डित गुरुदत्तजी बड़ी गम्भीरतासे बोले—'स्वामी-

जीका जीवनचरित लिखनेका मै प्रयत्न कर रहा हूँ । थोड़ा प्रारम्भ भी कर चुका हूँ ।'

बड़ी उत्सुकतासे उस श्रद्धालुने पूछा—'यह जीवन-चरित कव सम्पूर्ण होगा ? कवनक प्रकाशित हो जायगा ?'

गुरुदत्तजी बोले—'आप यह वारणा मत बनायें कि मै कागजपर कोई जीवनचरित लिख रहा हूँ । मेरे विचारसे तो महापुरुषोंका जीवनचरित मनुष्योंके स्वभावमे लिखा जाना चाहिये । मैं इसी प्रकार प्रयत्न कर रहा हूँ कि मेरा जीवन स्वामीजीके पद-चिह्नोपर चले ।'

—सु० सिं०

दयालुता

स्वर्गीय श्रीयुत सी० वार्ड० चिन्नामणिने महामना पागल हो जाते हैं, छूनेपर काट लेते हैं। तुम इस मालवीयजीके सम्बन्धमें कहा था—‘वे सिरने पैरतक खतरेमें न पड़ो तो अच्छा है।’ हृदय-ही-हृदय हैं।

महामनाके शिक्षाकालकी घटना है। उन्होंने दंखा कि एक कुत्तेके कानके समीप धाव हो गया है, वह पीड़ा-से छटपटाता कुत्ता इधर-से-उधर भाग रहा है। ऐसे धावमें सड़े कुत्ते हम-आप देखते ही रहते हैं, देखकर उधरसे मुख फेर लेते हैं, किंतु मालवीयजी ऐसा नहीं कर सके। उन्होंने अपना काम ढोड़ा और ढौड़े गये ओपथाल्यमें। वैधजीने उनकी बातें सुनीं। दबा तो दे ढी वैधजीने, पर वे बोले—‘मढ़नमोहन।’ ऐसे कुत्ते प्राय

मालवीयजी ऐसी समाति कव सुननेवाले थे। उन्होंने ओपन ली, एक लबे बॉसमें कपड़ा लपेटा और कुत्तेको छूँझने लगे। कुत्ता एक सँकरी गलीमें बैठ गया था। मालवीयजी बाँस लेकर डट गये दबा लगानेमें। कुत्ता गुर्रता था, दाँत निकालता था, झपटनेका ढग भी बनाता था, किंतु मालवीयजी बिना झिझकें लगे रहे। औषध भलीभाँति लग जानेसे कुत्तेकी पीड़ा कम हुई और वह सो गया, तब मालवीयजीको जान्ति मिली।

—सु० मिं०

संकटमें भी चित्तशान्ति

सन् १८९७ कीवात है, लोकमान्य तिलक दाजी साहेब खरेके बँगलेपर उतरे। रातके ९॥ वजे एक यूरोपियन पुलिस सुपरिटेंडेंट आया और उसने तिलकको बाहर बुलाकर १२४ बारके अन्तर्गत वारट दिखाया।

उसे पाँच मिनट ठहरनेको कहकर तिलक भीतर आये और दाजी साहेबके साथ उस धारापर चर्चा की तथा दाजी साहेबपे कहा—‘आप मजिस्ट्रेटके बँगलेपर

जाकर जमानतके लिये प्रार्थना-पत्र दीजिये और उसका निर्णय जेलमें आकर बताइये।’

तिलक दस बजेके करीब पुलिसके साथ जेल गये। १०॥ वजे जेलमें पहुँचते ही वे निश्चिन्त होकर विस्तारपर सो गये। तकाल उन्हें गाड निद्रा आ गयी। ११॥ वजे दाजी साहेब आये। तब तिलक सो रहे थे। उन्होंने दो बार आग्राज लगायी, तब जाकर वे जागे।

—गो० न० वै०

विद्या-व्यासङ्करी रुचि

तिलक महागजके एक मित्रने ब्रातचीतके प्रसङ्गमें उनसे कहा—‘बलवतगव। स्वराज्य होनेपर आप कौन-सा काम अपने हाथमें लेंगे—आप प्रधान मन्त्री बनेंगे या परराष्ट्रमन्त्री?’

तिलकने तकाल उत्तर दिया—‘नहीं, भैया। जब स्वराज्य स्थापित हो जायगा, तब मैं किसी खदेगी

कालेजमें गणित त्रियके प्रोफेसरका काम करूँगा और सार्वजनिक आन्दोलनसे सन्यास ले लूँगा। राजनीनिमे मेरा जी ऊब गया है। ‘डिफरेण्यल कैल्क्युलस’ पर एक आध पुस्तक लिखनेकी मेरी अब भी इच्छा है। देशकी स्थिति बड़ी बुरी है और आपमेसे कोई कुछ नहीं करता, इसलिये मुझे इस ओर समय लगाना पड़ता है।

—गो० न० वै०

कागज-पत्र देखना था, रमणी नहीं

प्रत्येक महान् पुरुषके यशका बीज उसके शुद्ध-चरणमे ही समाया होता है। सन् १८९६ सालकी घटना है, श्री ल० रा० पागारकर और लोकमान्य तिलक बैठे हुए बातचीत कर रहे थे।

इसी बीच किसी बड़े रईसकी पल्ली कुछ कागज-पत्र और नीचेकी अदालतका निर्णय लेकर अपील तैयार कर ढेनेके निमित्त तिलकजीके पास आयी। लोकमान्य डेढ़ घटेतक उन कागज-पत्रोंको देखते रहे

और साथ ही उस रमणीसे आवश्यक प्रश्न भी करते रहे।

रमणीका साग मामला समझकर उन्होने उससे कहा—‘आप आठ दिन बाद आइये, तबतक मैं अपील तैयार किये देता हूँ। आप अभी जा सकती हैं।’

रमणी चली गयी। आश्र्वयकी बात यह कि रमणी डेढ़ घटेतक दरवाजेके बीच खड़ी थी और तिलक महाराजने उससे प्रभोत्तर भी किये। पर उन्होने एक बार भी सिर उठाकर नहीं देखा कि रमगी कैसी है।

—गो० न० वै०

विपत्तिमें भी विनोद

कठिन समयमें भी तिलक महाराजका विनोदी स्वभाव बना ही रहता। समयकी कठिनता उनपर कुछ भी असर नहीं करती थी।

उनका एक मुकदमा हाईकोर्टमें चल रहा था। उनके बैरिस्टरको आनेमें थोड़ा विलम्ब हुआ। वहाँके एक युवक बैरिस्टर अपने एक मित्र दूसरे बैरिस्टरके साथ लोकमान्यके निकट पहुँचे और कहा—‘आपके

बैरिस्टरको आनेमें विलम्ब हुआ तो कोई बात नहीं, हमलोग आपकी मददके लिये तैयार हैं।’

तिलकने हँसते हुए कहा—‘किसी पोडशीके लिये बीस-बाईस सालके पूर्ण युवककी जगहपर दस-दस सालके दो किशोर वर क्या कभी चल सकते हैं?’

हाईकोर्टमें हँसीकी धूम मच गयी। दोनों बैरिस्टर अपना-सा मुँह लेकर चले गये।—गो० न० वै०

स्थितप्रज्ञता

सन् १९१६ की २३ जुलाईको लोकमान्य तिलककी ६०वीं वर्षगांठ थी। दो वर्ष पूर्व ही वे मॉडलेमे छ वर्षकी सजा भोगकर छूटे थे। उनका यह हीरक-जयन्ती-उत्सव सभीने धूम-धामसे मनानेका निश्चय किया। सार्वजनिक अभिनन्दनका पूनामे आयोजन करके एक लाख रुपयोंकी थैली उन्हे देनेका निर्णय हुआ।

वह शुभ दिन आ गया। देशके कोने-कोनेसे अनेक राष्ट्रिय नेता एवं तिलकभक्त उनके अभिनन्दनार्थ पूनामे पधारे थे। आयोजन गायकवाड़ेमें किया गया था। सभी कुशलप्रश्न, हँसी-मजाक और तिलकके कार्यसे

कृतकृत्यताका अनुभव करनेमें लौं थे। स्वयं तिलक महाराज भी सम्भाषणोंमें विलक्षण रीतिसे मग्न थे।

इसी बीच जिला पुलिस सुपरिंटेंडेंट आये और उन्होने तिलकको एक नोटिस दिया। नोटिसमें लिखा था—‘आपके अहमदनगर और बेलगांवमें दिये गये भाषण राजद्रोहात्मक हैं, इसलिये एक वर्षतक नेकचलनीका बीस हजारका मुचल्का और दस-दस हजारकी दो जमानते आपसे क्यों न ली जायें?’

किसी स्थितप्रज्ञकी तरह तिलकने नोटिस ले लिया और फिर समारम्भमें आकर उसी तरह समरस हो गये।

दुःखेष्वनुद्विशमनाः !

लोकमान्य निलक उनके स्थितप्रज्ञथे, यह उनके जीवनकी अनेक घटनाओंमें प्रकट हैं।

एक बार वे अपने कार्यालयमें किसी महत्त्वपूर्ण प्रभापर विचार कर रहे थे। प्रभ बड़ा ही जटिल और राजनीतिक था। इधर उनके ज्येष्ठ पुत्र कई दिनोंमें बीमार थे।

एकाएक चपगसीने आकर कहा—‘बड़े लड़के साहबकी त्रिप्रयत बहुत खगड़ है।’ निलकने कुछ भाष्यान नहीं दिया। वे अपने काममें लगे रहे।

योडी देर बाड़ उनके एक सहयोगीने आकर

कहा—‘पुत्र इनना अस्वस्थ हैं कि कब क्या हो जाय’ कहा नहीं जा सकता। फिर भी आप अपने काममें ही उलझे हैं।’

निलकने प्रभोत्तरोंसे काममें बाधा होती देख बड़ी उपेक्षामें कहा—‘उसके लिये डाकठरोंको कह दिया है। वे देख ही लेंगे। मैं जाकर क्या करँगा। यह काम तो मुझे ही न करना है।’ साथी चला गया।

काम पूरा करके लोकमान्य गामको घर लौटे तो पुत्रका प्राणोक्तमण हो चुका था। लगे हाथ कपड़े उतार वे उसकी महायात्राकी तैयारीमें जुट पड़े।—गो० न० वै०

सत्याचरण

श्रीगोपालकृष्ण गोखले जब बालक थे और पाठ्यालामें पढ़ते थे, उस समय एक दिन उनके अध्यापकने कुछ अङ्गगणितके प्रश्न प्रियार्थियोंको घरसे लगा लानेको दिये। उनमें एक प्रश्न गोखलेको आता नहीं था, उसे उन्होंने दूसरे प्रियार्थियसि पूछकर लगाया।

पाठ्यालामें गिरकने प्रियार्थियोंके उत्तरोंकी जाँच की। केवल गोपालकृष्णके सभी उत्तर ठीक थे। गिरकने प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा की और उन्हें कुछ पुरस्कार देने लगे। किन्तु गोखले तो फ़टफ़टकर नने

लगे। आश्चर्यपूर्वक शिक्षकने पूछा—‘तुम गेते क्यों हो?’

गोखले बोले—‘आपने समझा है कि सब प्रश्नोंका उत्तर मैंने स्वयं लिखा है, किन्तु एक प्रश्न मैंने अपने मित्रकी सहायतामें लगाकर आपको बोखा दिया है। मुझे तो पुरस्कारके स्थानमें दण्ड मिलना चाहिये।’

गिरक गोखलेकी सत्यप्रियतामें बहुत सतुष्ट हुए। वे बोले—‘अब यह पुरस्कार मैं तुम्हें तुम्हारी सत्यप्रियताके लिये देता हूँ।’—सु० चिं०

जिह्वाको वशमें रखना चाहिये

श्रीमहादेव गोविन्द गनठेके यहाँ एक दिन उनके किसी मित्रने आम भेजे। श्रीगन्डेकी पल्ली रमावार्डीने वे आम बोकर, बनाकर रानडेके समुख रखे। गनठने आमके ढो-एक टुकड़े खाकर उनके साठकी प्रशंसा की और कहा—‘इमे तुम भी खाकर देखो और सेवकोंको भी देना।’

रमावार्डीको आश्र्वय हुआ कि उनके पतिडेवने आम-

के केवल दो-तीन टुकडे ही क्यों खाये? उन्होंने पूछा—‘आपका स्वास्थ्य तो ठीक है?’

रानडे हँसे—‘तुम यहीं तो पूछती हो कि आम स्वादिष्ट हैं, सुपाच्य हैं तो मैं अधिक क्यों नहीं लेता? देखो, ये मुझे बहुत स्वादिष्ट लगे, इसलिये मैं अधिक नहीं लेना।’

यह अच्छा उत्तर है कि स्वादिष्ट लगता है, इसलिये

अधिक नहीं लेना है। पनिकी यह अटपटी बात रमावाई समझ नहीं सकी। रानडेने कहा—“तुम्हारी समझमें मेरी बान नहीं आती दीखती। देखो, वचपनमें जब मैं बवईमे पढ़ता था, तब मेरे पढ़ोसमें एक महिला रहती थीं। वे पहिले सम्पन्न परिवारकी सदस्या रह चुकी थीं, किंतु भायके फेरसे सम्पत्ति नष्ट हो गयी थीं। किसी प्रकार अपना और पुत्रका निर्वाह हो, इतनी आय रही थी। वे अनेक बार जब अकेली होतीं, तब अपने-आप कहती थीं—‘मेरी जीभ बहुत चटोरी हो गयी है। इसे बहुत समझाती हूँ कि अब चार-छ साग मिलनेके दिन गये। अनेक प्रकारकी मिठाइयाँ

अब दुर्लभ हैं। पकवानोंका स्मरण करनेसे कोई लाभ नहीं। फिर भी मेरी जीभ मानती नहीं। मेरा वेटा रुखी-सूखी खाकर पेट भर लेता है, किंतु दोन्हीन साग बनाये त्रिना मेरा पेट नहीं भरता।’”

श्रीरानडेने यह घटना सुनाकर बताया—‘पडोसमे रहनेके कारण उस महिलाकी बाते मैंने बार-बार सुनीं। मैंने तभीमें नियम बना लिया कि जीभ जिस पदार्थको पसंद करे, उसे बहुत ही योड़ा खाना। जीभके वशमें न होना। यदि उस महिलाके समान दुख न भोगना हो तो जीभको वशमें रखना चाहिये।’—सु० मिं०

अद्भुत शान्तिप्रियता

एक बार महात्मा गांधीके पास एक उद्घत युवा पुरुष आया और उसने उनसे लगानार प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी। बहुत-मेरे बेसिंग-पैरके प्रश्न कर लेनेके बाद उसने उनसे व्यङ्ग्यपूर्वक पूछा—‘आपको जब कन्याकुमारीके मन्दिरमे लोगोंने प्रवेश करनेसे गोक दिया था, तब आप अदर क्यों नहीं गये? आप तो ससारकी दिव्य ज्योति हैं, फिर वे आपको गोकनेवाले कौन होते थे।’ गांधीजीने उसके सारे प्रश्नोंका उत्तर बड़े शान्तिपूर्ण ढंगमे दिया था। उसके इस प्रश्नपर वे योड़ा मुसल्कराये और बोले—‘या तो मैं ससारकी ज्योति नहीं था और वे लोग मुझे बाहर रखकर न्याय करना चाहते थे अथवा यदि मैं जगत्‌की ज्योति था तो मेरा यह कर्तव्य नहीं था कि मैं बलपूर्वक धुसनेकी चेता करता।’

उस युवकने उनसे पुन पूछा—‘अस्तु! आपको मालूम होना चाहिये मौलाना मुहम्मद अलीने कहा है—‘गांधीजीकी अपेक्षा तो एक दुराचारी मुसल्मान भी श्रेष्ठ है।’ फिर क्या इननेपर भी आप हिंदू-मुसलिम-

एकताकी आगा करते हैं?’

‘क्षमा कीजिये! गांधीजी बोले—‘उन्होने ऐसा बिल्कुल नहीं कहा। अलवत्ता उन्होने यह कहा था कि ‘ऐसा मुसल्मान केवल एक बातमें बड़ा है और वह है अपने धर्ममें। और वह भी केवल कहनेका एक सुन्दर ढग मात्र था। उसे हम इस तरह क्यों न समझनेकी चेष्टा करे—‘मान लीजिये मेरे पास कोहिनूर हीरा है और यदि किसीने इसपर यह कहा कि गांधीजीके पास हीरा है, इस अर्थमें वे अमुक जमांदारसे अच्छे हैं’ तो इसमे क्या दुरा कहा। इसी प्रकार अपने मजहबको सर्वोत्तम समझनेका सबको वैसा ही अधिकार है, जैसे किसी पुरुषको अपनी स्त्रीको सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी समझनेका अधिकार है। आपने पढ़नेमें भूल की है। मुहम्मद अलीका तर्कपूर्ण दृष्टिकोण सर्वथा निर्दोष है, क्योंकि धार्मिक मामलोंमें मैं सचमुच बड़ा ढीला-ढाला हूँ।’

युवक निस्तर होकर चला गया। —जा० श०

हस्त-लेखका मूल्य

१०२६, के जूनमें, जब गार्डीजीका खार्डी-प्रचार और खार्डी बोगण करना ।'

दग चरण-उद्योगका प्रयत्न चल रहा था, डेंग-दर्जु चिन-वन नमने उनमें डार्जिनिंगमें लगने वाले ट्रॉकर कुल दिन विधान कानून नम्र प्रलाप करवा । गार्डीजीने दर्जी पॉच दिन ट्रॉना नीकार कर दिया । जब देंगवन्नुर्जाका दर 'ज. आर्कार्डिगम' केन्द्र वन गया और डार्जिनिंगका दर्जनीय म्यान चान्गने गूज उठा ।

उन दिनों गार्डीजीके पास एंट्रोप्रेशनरों तथा हस्त-लेख-संग्रहकों (autograph-hunters) की खासी र्मडर्नी रहती । यह गार्डीजी उन गोंगोंमें अपना मृत्यु-छुड़ ले लेते । वे करते कि हमारा मृत्यु अधुनिक है और यह है—‘अग्र वंश प्रतिदिन चरखा कानना

एक दिन एक लड़की अपनी न्हहन्त-लेख-संग्रह-पुस्तिका (autograph book) के साथ महात्मा गार्डीके पास आया । जब गार्डीजीने परिस्थिति बतायी, तब उसने बैना करने (चर्खी कानने तथा खार्डी पहनने) की प्रतिज्ञा की । गार्डीजीने—‘तो बन्धवाड’ लो मै यह अपना न्हहन्त-लेख (autograph) दिये देना है । कहने हुए यो उमर्का पुस्तिकार छिप दिया—‘Never make a promise in haste Having once made a promise, fulfil it even at the cost of your life (जन्मीमें कर्मी कोई प्रतिज्ञा न करो । पर एक बार प्रतिज्ञा कर लेनेपर उन्हें प्रागमणमें निभा दो ।’

—ज० श०

काले अंडेका भी स्वागत

२३ मार्च १९३१ को ननमे लाहौर ज़िलमें भगत-सिंह सुन्हेव और गजगुरुकों श्रीगार्डीजी आदिकों नाम चेष्टाके बाद भी फौसी दे दी गयी । म्यानाचार मिन्हे ही देशमें तीव्र गेय फैल गया । नेहरूजीने कहा—‘भगतसिंहको नाम इर्लैंड तथा हमलोगोंके ग्रीष्मने दरार-जैमी रहेगी । ‘भगतसिंह जिदावाड’ का नाम भागतभन्ने गूँज उठा । अंग्रेज अधिकारियोंने चेतावनी दी कि उनकी छिपों इम दिनोंके घरने वाहर न निकलें । सर्वत्र गेम्पूर्ण प्रदर्शन हुए । कल्कत्तेमें तो प्रदर्शनकारियोंकी पुस्तिसे मुठभेड हो गयी और बहुत बड़ी संख्यामें लोग मारे गये और बायल हुए । उन्हीं दिनों कर्तृकीमें काग्रेस-अधिवेशनके लिये उसके सदस्याग पूकर हो रहे थे । गार्डीजी भी आये । वे ज्यों ही स्टेशनपर उतरे नवजीवन-सभाके मदस्थोंमें, जो लाल कुर्ते पहने हुए थे—‘गार्डी, कौट जाओ—‘गार्डीवाड नष्ट हो’ के नामे लगाये । नाय ही ‘भगतसिंह

जिदावाड’ । ‘गार्डीजीकी युद्धविराम-घोषणाने ही भगत-सिंहको फौसीके तखलेपर भेजा है’ आडि नार्गेंके साथ काले झड़े भी दिखलाये गये ।

पर गार्डीजी इसमें ननिक भी अप्रसन्न न हुए । उल्टे उन्होंने एक वक्तव्य प्रकाशित करके उनकी प्रशंसा की । उन्होंने कहा—‘यद्यपि वे अन्यत दुर्बल तथा कुछ थे—वे चाहते तो मुझे शारीरिक क्षमि पहुँचा सकते थे तथा वे अन्य कई प्रकारमें मुझे अधिक अपमानित कर सकते थे किर भी उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया । केवल काले फूल तथा कपडोंमें मेरा स्वामत किया । जहाँतक मैं समझता हूँ, इससे उन्होंने उन तीन स्तरीय देशभक्तोंके फूल (भस्म) का अभिप्राय व्यक्त किया है । मैं उनसे वैश्वक समास होनेका इसी शिष्टनाकी आशा करता हूँ, क्योंकि वे यह जानते और मानते हैं कि मैं भी उसी लन्धके लिये प्रयत्नशील हूँ, जिसके लिये वे प्रयत्न कर रहे हैं । भेड़ केवल इतना ही है कि

हमारे मार्ग कुछ-कुछ भिन्न है। भगतसिंहकी वीरता तथा त्यागके सामने किसका सिर न झुकेगा; पर मेरा यह अनुमान भी गलत नहीं है कि हमलोग जिस देश-कालमें रह रहे हैं, यह वीरता कम मिलेगी। फिर पूर्ण परिचय दिया।—जा० श०

अहिंसाका पालन तो शायद इससे भी बड़ी वीरता है।' गांधीजीके शब्दोंका उनपर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने तत्काल उनके प्रति अपने हार्दिक प्रेमका कालमें रह रहे हैं, यह वीरता कम मिलेगी। फिर पूर्ण परिचय दिया।—जा० श०



कर्मण्येवाधिकारस्ते

महात्मा गांधी और लेनिन

(लेखक—प० श्रीवनारसीदासजी चतुर्वेदी)

गांधीजी

उड़ीसा-यात्रा—

'हाँ, अब मुझे ठीक तौरपर प्रणाम करो। तुम जानते हो कि मेरा रक्तका दबाव १९५ है,'

महात्माजीने डाक्टरके छोटे बच्चेके सोनेके बटन छपट-कर हँसते हुए कहा और तत्पश्चात् डाक्टरसे भी अनेक मजाक किये। डाक्टर बेचारे अत्यन्त चिन्तित थे। यन्त्र लगाकर उन्होंने हालमें ही देखा था। वे सोच रहे थे कि यह क्या हुआ। बापूने कोई बदपरहेजी तो नहीं की। सबेरे तो रक्तका दबाव कुल जभा १८२ ही था, शामको एक साथ इतना क्यों बढ़ गया? कारण, आखिर क्या हुआ? कारणका व्यौरा ख० महादेव भाईंके शब्दोंमें सुन लीजिये—

'अपनी उड़ीसाकी यात्रामें गांधीजीको बेशुमार मेहनत करनी पड़ती थी। यद्यपि सब लोग उनसे यही प्रार्थना करते थे कि आप कुछ आराम कर ले, इतना कठोर श्रम न करें, फिर भी वे किसीकी क्यों सुनने लगे। उन्हें ज्ञात हुआ कि एक कार्यकर्ताने उनके भाषणको गलत समझा है। उन्होंने उससे तथा उसके साथियोंसे गरमागरम बहस की और उन्हें अपना दृष्टिकोण समझाने-की भरपूर कोशिश की। डाक्टरने बापूको कह रखा था कि वे अधिक बात न करें, पर वे कहते थे—'उड़ीसा आनेके बाद मेरा यह फर्ज हो जाता है कि मै

अपना सर्वोत्तम समय और पूर्ण शक्ति यहाँके कार्यकर्ताओं-को अर्पित कर दूँ। भला, ऐसा किये बिना मैं यहाँसे कैसे लौट सकता हूँ।' बापूने उन लोगोंको एक बार बत्त दिया, दुबारा बत्त दिया और अन्तिम दिन तिबारा समय दिया। वे अत्यन्त थके हुए थे। उन्हें ज्ञात था कि इस जगहपर कुष्ठाश्रम है, जहाँ वे दो वर्ष पहले गये थे। बापूने उस आश्रमके मित्रोंको कलकर्त्तोंसे आये हुए फूल भेटखस्तूप भेजे। आश्रमके सुपरिटेंडेंटकी स्वभावत, यह इच्छा हुई कि बापू एक बार फिर कुष्ठाश्रममें पधारें। गांधीजी अबकी बार नारगियोंकी दोकरीलेकर बहाँ गये। अध्यक्ष महोदयके प्रार्थनानुसार उन्हें आश्रमका निरीक्षण भी करना पड़ा। आध घटे धूपमें इधर-उधर धूमना पड़ा, यद्यपि स्वास्थ्यकी वर्तमान दशामें उनके लिये यह असह्य था। निवास-स्थानपर लौटे तो अत्यन्त थके हुए। डाक्टर साहब शामको आये तो उन्हें कार्यकर्ताओंसे बातचीत करते हुए पाया।'

डाक्टर साहबने कहा—'महात्माजी! आप भी ज्यादती कर रहे हैं—दूसरे मरीजोंकी तरह।'

महादेव भाईंने लिखा था—'बापू अपने अद्वास्यमें मानो अपने घोर कष्टको डुबो देना चाहते थे। कठोर परिश्रम करना उन्होंने अपना स्वभाव ही बना लिया था।'

'प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।'

वधी—

बापूने रातको नौ बजेसे आध घंटेका समय बातचीत-के लिये मुझे दिया था। बापू खूब हँसते और हँसाते रहे, फिर गम्भीरतापूर्वक बोले—‘अब साढ़े नौ बज चुके। मैं रातके डेढ़ बजेका उठा हुआ हूँ और दोपहरको सिर्फ पचीस मिनटके लिये आराम किया है।’ रातके डेढ़ बजेसे लेकर रातके साढ़े नौ बजेतक पूरे बीस घंटे ! मैं चकित रह गया। मद्रासके भाई हरिहर शर्मसि, जो उन दिनों वहाँ थे, दूसरे दिन मैंने पूछा—‘बापू इतनी मेहनत क्यों करते हैं ?’ उन्होंने तुरंत ही उत्तर दिया—‘प्रायश्चित्तस्खण ! हम सब लोग आलसी हैं, उसीका तो प्रायश्चित्त बापू कर रहे हैं।’

काशी—

२ अक्टूबर। ‘आज तो महात्माजी ! आपने और भी अधिक काम किया।’ श्री-श्रीप्रकाशजीने कहा। ‘भाई, आज मेरी वर्षगाँठ है न ?’ बापूने उत्तर दिया।

हरिजन-आश्रम, दिल्ली—

‘महात्माजी ! क्या आपकी घड़ी बंद हो गयी थी ? आप तो ढाई बजे रातसे ही काम कर रहे हैं !’ श्रीत्रियोगी हरिजीने पूछा। महात्माजीने उत्तर दिया—‘घड़ी तो मेरी बिलकुल ठीक चल रही है। मेरी नींद पूरी हो चुकी थी सो अपनी डाक निपटानेमें लग गया। अब साढ़े पाँच बच चुके हैं।’

विश्ववन्द्य महात्मा गांधीजीके जीवनकी ऐसी सैकड़ों ही घटनाएँ लिखी जा सकती हैं। वे अपने क्षण-क्षणका हिसाब रखते थे। उनकी तपस्या अद्वितीय थी।

लेनिन

और वैसी ही साधना की थी एक अन्य तपसीने। सन् १९१९ की बात है। मास्को-कजान रेलवे

कई जगहपर दूटी पड़ी थी। खसी मजदूरोंने उस वक्त अपनी शनिवारकी छुट्टीको, जो कानूनन उन्हें मिलती थी, स्वेच्छापूर्वक राष्ट्रके अर्पित कर दिया था। उस दिन भी वे कामपर आते थे। लेनिनने उस समय कहा था—‘मजदूरोंका यह त्याग इतिहासमें अनेक साम्राज्यवादी युद्धोंकी अपेक्षा अधिक उल्लेखयोग्य तथा महत्वपूर्ण घटना है।’

यद्यपि लेनिनके गलेमें तकलीफ थी, एक गुमराह साम्यवादी लड़कीने उनपर छोरेभरी पिस्तौल चला दी थी। कुछ छोरे अभी भी गलेमें रह गये थे और वे कष्ट देते थे, फिर भी नवयुवक सिपाहियोंका साथ देनेके लिये लेनिन खुद अपने कंधोंपर लट्टे उठाकर सबेरेसे शामतक काममें जुटे रहते थे। लोग मना करते कि आप कोई हल्का काम ले लें; पर वे नहीं मानते थे। जब सालभरतक इसी प्रकार अपने शनिवारोंको बिना किसी इनाम या मजदूरीके उन श्रमजीवियोंने व्यय किया और इस ‘यज्ञ’ की वर्षगाँठ मनायी गयी, तब लेनिनने कहा था—

‘साम्यवादियोंका श्रम समाजके निर्माणके लिये होता है—वह किसी इनाम या पुरस्कारकी इच्छासे नहीं, बल्कि ‘बहुजनहिताय’ अर्पित किया जाता है। स्वस्थ शरीरके लिये श्रम तो एक अनिवार्य वस्तु है।’

श्रमकी महिमाके उपर्युक्त दो दृष्टान्त क्या हमारे लिये पर्याप्त ग्रेणायद नहीं हैं ? १९५ रक्तके दबावमें धूपमें आध घंटे चलना और बीस-बीस घंटे मेहनत करना—यह थी बापूकी साधना; और गलेमें पिस्तौल-का छर्रा लिये हुए सबेरेसे शामतक सिपाहियोंके साथ कंधेपर लट्टे उठाना—यह था लेनिनका तप।

पूरे सालभर आम नहीं खाये !

एक बार गांधीजीके यहाँ, जब कि वे आठ वर्षके थे, कोई उत्सव था। उस दिन भोजनके लिये कई लोग

आमन्त्रित थे, जिनमें गांधीजीके एक समवयस्क मित्र भी थे। उस दिन भोजनमें प्रधान खाद्य वस्तु थी आम-

का फल । भूलसे उस दिन उचित समयपर उस मित्र-को सूचना नहीं मिल सकी । अतएव वह सम्मिलित नहीं हो सका । गांधीजीको इससे बड़ा आधात पहुँचा । बस ! शिष्टाचारकी इस चूकके प्रायश्चित्तमे

उस दिनसे उन्होंने आम न खानेका ब्रत ले लिया और पूरे एक वर्षतक आम नहीं खाये । उनके माता-पिता तथा पूर्वोक्त मित्रने भी बड़ा आग्रह किया कि वे इस ब्रतको छोड़ दें, पर उन्होंने अपनी टेक पूरी करके ही छोड़ी ।

—जा० श०

मारे शरमके चुप !

गांधीजीके बचपनके एक मित्र थे—शेख मेहताब साहब । इन मित्रके कारण उनमे पहले अनेको बाल-सुलभ दुर्गुण भी आ गये थे, जिन्हें गांधीजीने पीछे अपने मित्रके साथ ही बड़ी कठिनतासे एक-एक करके परित्याग किया । इन्हीं महोदयने कृपा करके इन्हें एक दिन वेश्यालय भी पहुँचा दिया था । पर भगवत्कृपासे या जन्मान्तरके सस्कार या अज्ञानसे ये कैसे बच गये, इसका विस्तृत विवरण स्थय उन्हींके शब्दोंमे पढ़िये—

—मैं मकानमें दाखिल तो हुआ; पर ईश्वर जिसे बचाना चाहता है, वह गिरनेकी इच्छा करता हुआ भी बच सकता है । उस कमरेमें जाकर मैं तो मानो अवा हो गया । कुछ बोलनेका औसान ही न रहा । मारे शरमके चुपचाप उस बाईकी खटियापर बैठ गया । बाई झल्लाई और दो-चार बुरी-भली सुनाकर सीधा दरवाजे-का रास्ता दिखलाया ।

‘उस समय तो मुझे लगा, मानो मेरी मर्दनिगीको लाज्जन लग गया और धरती फट जाय तो मैं उसमे समा जाऊँ । पर बादको इससे मुझे उत्तर लेनेके लिये मैंने ईश्वरका सदा उपकार माना है । मेरे जीवनमें ऐसे ही चार प्रसङ्ग और आये हैं । पर मैं दैवयोगसे बचता गया हूँ । विशुद्ध दृष्टिसे इन अवसरोंपर मैं गिरा ही

समझा जा सकता हूँ, क्योंकि विषयकी इच्छा करते ही मैं उसका भोग तो कर चुका । फिर भी लौकिक दृष्टिसे हम उस आदमीको बचा हुआ ही मानते हैं, जो इच्छा करते हुए भी ग्रल्यक्ष कर्मसे बच जाता है । और मैं इन अवसरोंपर इतने ही अशतक बचा हुआ समझा जा सकता हूँ । फिर कितने ही काम ऐसे होते हैं, जिनके करनेसे बचना व्यक्तिके तथा उसके सम्पर्कमें आनेवालों-के लिये बहुत लाभदायक सावित होता है । और विचार-शुद्धि हो जानेपर उस कर्मसे बच जानेमें व्यक्ति ईश्वरका अनुग्रह मानता है । जिस प्रकार न गिरनेका यत्न करते हुए भी मनुष्य गिर जाता है, उसी प्रकार पतनकी इच्छा हो जानेपर भी मनुष्य अनेक कारणोंसे बच जाता है । इसमे कहाँ पुरुषार्थके लिये स्थान है, कहाँ दैवके लिये अयथा किन नियमोंके बशवर्ती होकर मनुष्य गिरता है या बचता है, ये प्रश्न गूढ़ है । ये आजतक हल नहीं हो सके हैं । और यह कहना कठिन है कि इनका अन्तिम निर्णय हो सकेगा या नहीं ।’

सचमुच इन विचारोंमें गांधीजीकी सरलता तथा महत्ता साफ़ छूट पड़ती है ।

—जा० श०

अद्भुत क्षमा

जिसने दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास पढ़ा होगा, वह भलीभौति जानता होगा कि निरपराध होते तथा परोपकार करते हुए महात्मा गांधी-जितना दूसरा

कोई भी व्यक्ति न पिटा होगा । इतनेपर भी इन्होंने किसीपर हाथ उठाना तो दूर रहा, अपने प्रतिरोधीके अकल्याणकी बात कभी मनमे भी न आने दी । क्षमा

तो उसे तुरत कर ही दिया, दण्डसे भी बचानेकी भरपूर चेष्टा की। इतना ही नहीं, जहाँतक हो सका, वडे प्रेमसे शक्तिभर जी लगाकर उसकी भलाई की। आदिसे अन्ततक ऐसी घटनाओंको पढ़कर मानवहृदय सर्वथा दुखित, चकित, विस्मित और क्या-क्या होता जाता है, यह कौन बताये। ऐसी घटनाएँ उनके जीवनमें एक-दो नहीं, पग-पगपर और जीवनके अन्ततक होती दीखती हैं, उनकी गणना कौन करे? पर इनमें ट्रान्सवाल (दक्षिण अफ्रीका) की एक घटना बड़ी मर्मस्पर्शी है। वह नीचे दी जाती है—

जनवरी १९०८ की बात है। ट्रान्सवालमें उपनिवेशवाद (भारतीयोंके वहाँ बसने-न-बसने) का सत्याग्रह चल रहा था। कुछ लोगोंने मिलकर गांधीजी-के एक पुराने मवक्किल मीर आलमको उनके विरुद्ध बहकाया और उनको मारनेके लिये ठीक किया। एक दिन वे फॉन ब्राडिस स्कायर स्थित एशियाटिक आफिसमें आम मार्गसे चले जा रहे थे। वे गिन्सनको कोठीके पार ही हुए थे कि मीर आलम उनकी बगलमें आ गया और उनसे पूछा, ‘कहाँ जाते हो?’ गांधीजीने पहले दिनके दिये भापणके अनुसार बतलाया कि ‘मैं दस अगुलियोंकी निशानी देकर रजिस्ट्रीका सर्टिफिकेट लेने जा रहा हूँ। अगर तुम भी चलो तो तुम्हें दसों अगुलियोंकी निशानी न देकर केवल दोनों अगूठेकी निशानी देनेपर ही पहले सर्टिफिकेट दिल्ला दूँ।’ गांधीजी अभी यह कह ही रहे थे कि इतनेमें उसने तावडतोड़ उनके सिरपर लाठी बरसाना आरम्भ किया। गांधीजी तो पहली लाठीमें ही ‘हे राम’ कहकर गिर पड़े और बेहोश हो गये। गिरते समय उनका शिरोभाग एक नुकीले पत्थरपर गिरा, परिणामतः ऊपरका ओठ और ढुँडी बुरी तरह फट गयी, एक दाँत टूट गया। दूसरे नुकीले पत्थरसे ललाट फटा और तीसरेसे आँख।

इतनेपर भी आलम और उसके साथी गांधीजीको लाठियों और लातोंसे मारते ही रहे। उनमेसे कुछ इसप मियाँ और थम्बी नायदूको भी लगे।

शोर हुआ। गोरे आ गये। आलम और उसके साथी भागने लगे। पर गोरोंने उन्हें पकड़ लिया। गांधीजीको लोग मिठा गिप्सनके दफ्तरमें ले गये। होश आते ही उन्होंने पूछा—‘मीर आलम कहाँ है?’ रेवरेंड डोक उनके पास थे। उन्होंने बतलाया ‘वह और उसके सभी साथी पकड़ लिये गये हैं।’ गांधीजीने तुरत कहा—‘उन्हें छूटना चाहिये।’ लोगोंने लाख समझाया कि अभी इतनी क्या जल्दी है, अभी आप आराम करें, पर गांधीजीने एक न सुनी और ऐटर्नी-जेनरलके नाम तुरत तार भेजा—‘मीर आलम और उनके साथियोंने मेरे ऊपर जो हमला किया, उसके लिये मैं उन्हें दोषी नहीं मानता। उनपर फौजदारी सुकदमा न चलाकर मेरी खातिर उन्हें तुरत छोड़ दिया जाय।’ इस तारके उत्तरमें वे छोड़ दिये गये।

पर जोहान्सबर्गके गोरोंने तुरत ऐटर्नी-जेनरलको एक कड़ा पत्र लिखा—‘गांधीजीके निजी विचार यहाँ नहीं चल सकते। अपराधियोंने उन्हें सरेआम बीच रास्तेमें मारा है। यह सार्वजनिक अपराध है। अपराधियोंको पकड़ना ही होगा।’ फलत वे पुनः पकड़ लिये गये। गांधीजीकी छुड़ानेकी चेष्टाके बावजूद भी उन्हें तीन मासकी सख्त सजा मिली।

मुश्किलसे चार महीने बीते होंगे। जुलाईकी एक सभामें मीर आलमको गांधीजीने देखा। उसने सभामें अपनी भूल खीकार की और उनसे क्षमा माँगी। गांधीजीने उसका हाथ पकड़ लिया और वडे स्लेहसे उसे दबाते हुए कहा—‘मैंने तुम्हारे विरुद्ध कभी कुछ नहीं सोचा। इसमें तो तुम्हारा कोई अपराध था ही नहीं। तुम विल्कुल निश्चिन्त रहो।’ —जा० ग०

सहनशीलता

महात्मा गांधीजी उन दिनों चम्पारनमे थे। एक दिन वे वहाँमे वेतिया जा रहे थे। रातका समय था, देन खाली थी। महात्माजीको चलना तो तीसरे दर्जे मे ही ठहरा। वे एक सीटपर सो गये। उनके दूसरे साथी दूसरी सीटोपर बैठ गये। आधी रातको गाड़ी एक स्टेशनपर खड़ी हुई तो एक किसान उसी डिव्वेमे चढ़ा। उसने डिव्वेमें धूसते ही सीधे महात्माजीको धक्का देकर उठाया—‘उठो, बैठो! तुम तो ऐसे पसरे पड़े हो जैसे गाड़ी तुम्हारे ही वापकी है।’

महात्माजी उठकर बैठ गये और उनके पास ही बैठकर वह किसान गाने लगा—

‘धन धन गाँधीजी महाराज हुसीका हुख मिटानेवाले।’

वह महात्माजीका दर्शन करने वेतिया जा रहा था। उसे क्या पता कि उसने जिन्हे धक्का दिया है, वे ही महात्माजी हैं और उसका गीत सुनकर अब मुसकरा रहे हैं।

वेतिया स्टेशनपर हजारों व्यक्ति महात्माजीके स्वागतके लिये एकत्र थे। देनके स्टेशनपर पहुँचते ही जयघ्निसे आकाश गूँजने लगा। अब किसानको अपनी भूलका पता लगा। वह फट-फटकर रोने लगा और महात्माजीके पैरोंपर गिर पड़ा। महात्माजीने उसे उठाया और आशासन दिया।—सु० सि०

रामचरितमानसके दोष

एक वार गांधीजीको उनके मित्रोंने लिखा कि ‘रामचरितमानसमे खीजातिकी निन्दा है, वालि-वध, विभीषणके देशब्रोह, जाति-द्वेषकी प्रशसा है। काव्य-चारुर्य भी उसमे कोई नहीं, फिर आप उसे सर्वोत्तम ग्रन्थ क्यों मानते हैं?’

इसके उत्तरमे उन्होंने लिखा था—“यदि आपलोग जैसे कुछ और अधिक समीक्षक मिल सकें तो फिर कहना पड़ेगा कि सारी रामायण केवल ‘दोपोंका पिटारा’ है। इसपर मुझे एक बात याद आती है। एक चित्रकारने अपने समीक्षकोंको उत्तर देनेके लिये एक बड़े सुन्दर चित्रको प्रदर्शिनीमें रखा और उसके नीचे लिख दिया—‘इस चित्रमे जिसको जहाँ कहीं भूल या दोप डिखायी दे, वह उस जगह अपनी कलमसे चिह्न कर दे।’ परिणाम

यह हुआ कि चित्रके अङ्ग-प्रत्यङ्ग चिह्नोंसे भर गये। परतु वस्तुस्थिति यह थी कि ‘वह चित्र अत्यन्त कलायुक्त था।’ ठीक यही दशा रामायणकी आपलोगोने की है। ऐसे तो वेद, वाइकिल और कुरानके आलोचकोंका भी अभाव नहीं है। पर जो गुणदर्शी है, उनमे दोपोंका अनुभव नहीं करते। तब मैं रामचरितमानसको सर्वोत्तम इसलिये नहीं कहता कि कोई उसमे एक भी दोप नहीं निकाल सकता, पर इसलिये कि उसमें करोड़ों मनुष्योंको शान्ति मिली है। और यह बात इस ग्रन्थके लिये दावेके साथ कही जा सकती है।

“‘मानस’का प्रत्येक पृष्ठ भक्तिमे भरपूर है। वह अनुभवजन्य ज्ञानका भडार है।”—जा० श०

मैं खून नहीं पी सकता !

महात्मा गांधीजीने कहा है—‘मैंने गुरु नहीं बनाया, किन्तु मुझे कोई गुरु मिले हैं तो वे हैं

—रायचद भाई।’

ये रायचद भाई पहले वर्षोंमें जवाहरातका व्यापार

करते थे। उन्होंने एक व्यापारीसे सौदा किया। यह निश्चित हो गया कि अमुक तिथितक, अमुक भावमें इतना जवाहरात वह व्यापारी देगा। व्यापारीने रायचंद भाईको लिखा-पढ़ी कर दी।

संयोगकी बात, जवाहरातके मूल्य बढ़ने लगे और इतने अधिक बढ़ गये कि यदि रायचंद भाईको उनके जवाहरात वह व्यापारी दे तो उसे इतना धाटा लगे कि उसका अपना घरतक नीलाम करना पड़े।

श्रीरायचंद भाईको जवाहरातके वर्तमान बाजार भावका पता लगा तो वे उस व्यापारीकी दूकानपर पहुँचे। उन्हें देखते ही व्यापारी चिन्तित हो गया। उसने कहा—‘मैं आपके सौदेके लिये स्वयं चिन्तित हूँ। चाहे जो हो, वर्तमान भावके अनुसार जवाहरातके घाटेके रूपये अवश्य आपको दे दूँगा, आप चिन्ता न करें।’

रायचंद भाई बोले—‘मैं चिन्ता क्यों न करूँ? तुमको जब चिन्ता लग गयी है तो मुझे भी चिन्ता होनी ही चाहिये। हम दोनोंका चिन्ताका कारण यह

लिखा-पढ़ी है। इसे समाप्त कर दिया जाय तो दोनोंकी चिन्ता समाप्त हो जाय।’

व्यापारी बोला—‘ऐसा नहीं। आप मुझे दो दिन-का समय दें, मैं रूपये चुका दूँगा।’

रायचंद भाईने लिखा-पढ़ीके कागजको टुकड़े-टुकड़े करते हुए कहा—‘इस लिखा-पढ़ीसे तुम वैव गये थे। बाजार-भाव बढ़नेसे मेरा चालीस-पचास हजार रुपया तुमपर लेना हो गया। किंतु मैं तुम्हारी परिस्थिति जानता हूँ। ये रूपये तुमसे मैं लें तो तुम्हारी क्या दशा होगी? रायचंद दूध पी सकता है, खून नहीं पी सकता।’

वह व्यापारी तो रायचंद भाईके पैरोंपर गिर पड़ा। वह कह रहा था—‘आप मनुष्य नहीं, देवता हैं।’

क्या ही अच्छा हो कि छल-कपट, ठगी-मक्कारी, झूँ-फरेव करके किसी प्रकार दूसरेकी परिस्थितिसे लाभ उठानेको आतुर आजका समाज इन महापुरुषोंके उदार चरितसे कुछ भी प्रेरणा ले।—सु० सिं०

चिन्ताका कारण

सन् १९२७ में ‘स्टूडेंट्स वर्ल्ड फेडरेशन’ का अधिवेशन मैसूरमें हुआ। अमेरिकाके रेवरेंड मॉटू उसके अध्यक्ष थे। वे जब भारत आये, तब गांधीजीसे मिलनेके लिये उन्होंने समय चाहा। उन दिनों गांधीजीको अवकाश बहुत कम मिलता था। इसलिये उन्होंने उन्हें रातमें सोनेके पहले दस मिनटका समय दिया। कई लोग इस कुत्तहलसे कि ‘देखें दस मिनटमें ये लोग क्या बातें करते हैं’ वहाँ जा उपस्थित हुए।

गांधीजी आँगनमें सोये हुए थे। रेवरेंड मॉटूने अपने प्रश्न लिख रखे थे और उन्हें लेकर वे एक वैचपर बैठ गये। उन्होंने पूछा कि ‘आपको ऐसी क्या वस्तु दिखी, जिससे अधिक आश्वासन मिलता है?’

गांधीजीने कहा—‘कितनी ही छेड़छाड़ करनेपर भी यहाँके लोगोंके मनसे अहिंसा-वृत्ति नहीं जाती। इससे मुझे बहुत आश्वासन मिलता है।’

‘और कौन-सी ऐसी चीज है, जिससे दिन-रात आप चिन्तित तथा अस्वस्थ रहते हैं?’ मॉटूने पूछा।

‘शिक्षित लोगोंके अंदरसे दयाभाव सूखता जा रहा है। इससे मैं सर्वदा चिन्तित रहता हूँ।’

गांधीजीके उत्तरसे मॉटू तथा दर्शक चकरा गये। कालेजकर्जीके मनपर इसका इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने तत्काल ‘प्राम-सेवा-अभ्यासक्रम’ आरम्भ किया।

एक बार एंग्लो-इंडियनने, जो किसी जेलका साधारण नौकर था, गांधीजीसे autograph (साक्षरी-

—अपने हाथका लिखा कोई वाक्य तथा हस्ताक्षर) कहते हैं कि इस वाक्यसे उस व्यक्तिका स्वभाव ही मौगा । उन्होंने लिखा—'It does not cost to be kind—(दयालु बननेमें कुछ भी खर्च नहीं पड़ता) ।'

विलक्षण संकोच

गांधीजीने जब दक्षिण अफिकामे आश्रम खोला था, तब अपना सर्वस्व वहाँके आश्रम अर्थात् देशवासियोंको दे डिया । गोकी नामकी इनकी बहिन थीं; जिनका निर्वाह करना कठिन था । गांधीजीके पास अपनी कोई सम्पत्ति थी नहीं । बड़ी कठिनतासे डा० प्राणजीवन मेहतासे कहकर दस रुपये मासिककी व्यवस्था करवायी ।

थोड़े ही दिनोंके बाद गोकी बहिनकी लड़की भी विवाह हो गयी । गोकीने गांधीजीको लिखा—'अब

कहते हैं कि इस वाक्यसे उस व्यक्तिका स्वभाव ही बदल गया ।—जा० श०

खर्च बढ़ गया है । हमे पडोसियोंका अनाज पीसकर काम चलाना पड़ता है । कोई उपाय हूँड़ो ।'

जवाबमे गांधीजीने लिखा—'आठा पीसना बड़ा अच्छा है । तुम दोनोंका सास्य अच्छा रहेगा । हम भी आश्रममें आठा पीसते हैं । जब जी चाहे आश्रममे रहने तथा जन-सेवा करनेका तुम दोनोंका पूरा अधिकार है । पर मैं घरपर कुछ नहीं भेज सकता, न इसके लिये अपने मित्रोंसे ही कह सकता हूँ ।'—जा० श०

भगवत्-विस्मृतिका पश्चात्ताप

एक बार गांधीजीको दक्षिणभारतके दौरसे चर्खा-दंगल देखनेमें बड़ी रात हो गयी । वहाँसे जब वे लौटे, तब इतने थक गये थे कि एक चारपाईपर लेटते ही उन्हें नींद लग गयी । दो बजे उनकी नींद खुली तो स्मरण आया कि सोनेके पूर्व प्रार्थना करना भूल गये । फिर तो वे सारी रात सोये नहीं । उनके मनपर

बड़ा आघात पहुँचा । शरीर थर-थर कॉपने लगा । सारा बदन पसीनेसे लथपथ हो गया । प्रातःकाल लोगोंने जब पूछा, तब सारी बात बतलाते हुए उन्होंने कहा—‘जिसकी कृपासे मैं जीता हूँ, उस भगवान्‌को ही भूल गया, इससे बढ़कर बड़ी गलती और क्या होगी ।’

—जा० श०

गोरक्षाके लिये स्वराज्य भी त्याज्य

कांग्रेसका २६ वाँ अधिवेशन मद्रासमें हो रहा था । गांधीजी श्रीनिवास आयगरके मकानपर ठहरे थे । वे उन दिनों प्रायः राजनीतिसे अलग-से रह रहे थे । शामको श्रीआयगर महोड़य एक मसविदा उनके सामने लाये, जिसमे हिंदू-मुस्लिम समझौतेकी बात थी । गांधीजीने उसे हाथमें लेकर कहा—‘इसे मुझे क्या दिखाना है । किसी भी शर्तपर हिंदू-मुस्लिम समझौता

हो सके तो वह मुझे मजूर ही है ।’ तत्पश्चात् शामकी प्रार्थनाके बाद वे सो गये ।

प्रातः उठते ही उन्होंने महादेव देसाईको जगाया, काका कालेलकरको भी बुलाया और कहने लगे—‘रात बड़ी गलती हो गयी । मैंने मसविदेपर बिना ही विचारे कह दिया कि ‘ठीक है’ उसमें मुसलमानोंको गो-वध

करनेकी आम इजाजत दी गयी है। भला, यह मुझसे कैसे वर्दास्त होगा। मैं तो स्वराज्यके लिये भी गोरक्षाका आदर्श नहीं छोड़ सकता। अतएव उन लोगोंको जाकर तुरत कह आओ कि यह प्रस्ताव मुझे विलकुल मान्य

नहीं है। परिणाम चाहे जो हो, पर मैं वेचारी गौओंपर इस प्रकार आपत्ति नहीं ढहा सकता।'

बस, तत्काल उनके आदेशानुसार व्यवस्था की गयी।

—जा० श०



अन्यायका परिमार्जन

डाक्टर प्राणजीवन मेहता गाधीजीके मित्रोंमें थे। रेवाड़कर जगजीवनदास इनके भाई थे। पहले गाधीजी जब वर्ष्वर्ड जाने तब प्राय इनके ही मकानमें ठहरते थे। एक दिन वहाँ आनन्दस्वामी भी गाधीजीके साथ थे। उनकी रेवाड़करजीके रसोइयेके साथ कुछ बोलचाल हो गयी। बात-बातमें उसने आनन्दस्वामीका अपमान कर दिया। स्वामीजीने क्रोधवेगमें कसकर उमे पृक्ष चौटा जड़ दिया। शिकायत वापूतक पहुँची। वापूने स्वामीजीसे कहा—‘अगर बड़े लोगोंसे तुम्हारा

ऐसा शगड़ हो जाता तो उन्हें तो तुम थण्डे नहीं लगाते। वह नौकर है, इसलिये तुमने उसे चाँटा जड़ दिया। अभी जाकर उससे क्षमा माँगो।’ जब आनन्दस्वामीने आनाकानी की, तब आपने कहा—‘यदि तुम अन्यायका परिमार्जन नहीं कर सकते तो तुम मेरे साथ नहीं रह सकते।’

आनन्दस्वामी सीधे गये और उन्होंने रसोइयेसे क्षमा माँगी।

नल-राम-युधिष्ठिर पूजनीय हैं

किसीने महात्मा गाधीजीसे पूछा कि ‘रामचन्द्रने सीताका अनिमं प्रवेश कराया और उसका त्याग किया। युधिष्ठिरने जुआ खेला और द्वौपदीकी रक्षा करनेकी भी हिम्मत नहीं बतलायी। नलने अपनी पलीपर कलङ्क लगाया और अर्घनग्न-अग्रस्थामें उसे घोर बनमें अकेली छोड़ दिया। इन तीनोंको पुरुष कहें या राक्षस ?’ इसके उत्तरमें महात्माजीने उनको लिखा—

‘इसका जवाब सिर्फ दो ही व्यक्ति दे सकते हैं— या तो स्वयं कवि या वे सतियाँ। मैं तो प्राकृत दृष्टिसे देखता हूँ तो मुझे ये तीनों ही पुरुष बन्दनीय लगते हैं। रामकी तो बात ही छोड़ देनी चाहिये। परतु आइये, जरा देरके लिये ऐनिहासिक रामको दूसरे दोनोंकी पक्लिमें रख दें। ये तीनों सतियाँ इतिहासमें सती न बखानी गयी होतीं यदि वे इन तीनों महापुरुयोंकी अर्धाङ्गनाके रूपमें न रही होतीं। दमयन्तीने नलका

नाम रसनासे नहीं छोड़ा, सीताके लिये रामके सिवा इस जगत्में दूसरा कोई न था। द्रौपदी धर्मराजपर भौंहें ताने रहती थीं, फिर भी उनसे जुदा नहीं होती थीं। जब-जब इन तीनोंने इन सतियोंको सताया, तब-तब हम यदि उनकी हृदय-गुफामें बैठ गये होते तो उसमें जलती हुई दुखानि हमे भस्म कर डालती। रामको जो दुख हुआ है, उसका चिन्त्र भवभूतिने चिन्तित किया है। द्रौपदीको फलकी तरह रखनेवाले भी वे पाँचों भाई थे। उसके बोल सहनेवाले भी वही थे। नलने जो कुछ किया, वह तो अपनी अचेत-अग्रस्थामें। नलकी पली-परायणताको तो देवता भी उस समय आकाशमें झाँककर देख रहे थे, जब वह ऋतुपर्णको लेकर आया था। इन तीनों सतियोंके प्रमाणपत्र मेरे लिये बस हैं। हाँ, यह सच है कि कपियोंने इनको पतियोंसे विशेष गुणवत्ती चिन्तित किया है। सीताके

विना रामकी क्या शोभा ? दमयन्तीके विना नलकी क्या शोभा ? और द्रौपदीके विना धर्मराजकी क्या शोभा ? पुरुष विहूल, उनके धर्म-प्रसङ्गानुसार भिन्न-भिन्न और उनकी भक्ति 'व्यभिचारिणी' है। पर इन सतियोंकी भक्ति तो खच्छ स्फटिक-मणिकी तरह अव्यभिचारिणी है। खीकी क्षमाशीलताके सामने पुरुष-की क्षमाशीलता कोई चीज नहीं। और क्षमा तो वीरता-का लक्षण है। इसलिये ये तीनों सतियाँ अबला नहीं वन्कि सबला थीं। पर मानना चाहें तो यह दोष

पुरुषमात्रका मान सकते हैं, नलादिका विशेषरूपसे नहीं। कवियोंने इन सतियोंको सहनशीलताकी साक्षात्-मूर्ति चित्रित किया है। मैं तो इनको सती-शिरोमणिके रूपमें पहचानता हूँ। परतु इनके पुण्यरूप पतियोंको राक्षसके रूपमें नहीं देखना चाहता। उन्हें राक्षस माननेसे सतियों दूरित होती हैं। सतियोंके पास आसुरी भावना रह ही नहीं सकती। हाँ, वे सतियोंसे कनिष्ठ भले ही माने जायें; पर दोनोंकी जाति तो एक ही है, दोनों पूजनीय हैं।

संत-सेवा

अहमदावादके प्रसिद्ध संत महाराज सरयूदासके जीवनकी एक घटना है; उनके पूर्वाश्रमकी बात है। वे साधु-संतोंकी सेवामें बड़ा रस लेते थे। यदि उनके कानमें साधु-महात्माओंके आगमनका समाचार पड़ जाता तो सारे काम-काज छोड़कर वे उनका दर्शन करने चल पड़ते थे।

एक दिन वे अपनी दूकानपर बैठे हुए थे, इतनेमें अचानक उन्हे पता चला कि गाँवके बाहर पेड़के नीचे कुछ संत अभी-अभी आकर विश्राम कर रहे हैं। उन्होंने हुरंत दूकान बंद कर दी और खड़ी दोपहरीमें उनके दर्शनके लिये दौड़ पड़े। मध्याह्न-कालका सूर्य वडे जोरसे तप रहा था। तेजीसे चलनेके नाते उनका शरीर श्रान्त-क्लान्त हो गया और पसीनेसे भीग गया था।

'महाराज ! दास सेवामें उपस्थित है। इस गाँवका परम सौभाग्य है कि आपने अपनी चरण-धूलिसे इसको

पवित्र कर दिया। वडे पुण्यसे आप-ऐसे महात्माओंका दर्शन होता है।' सरयूदासने उनका चरणस्तर्पण किया और उनकी चरण-धूलिगङ्गामें स्नान करके स्वस्थ हो गये।

मध्याह्नकाल समाप्त हो रहा था। ऐसी स्थितिमें गाँवमें भिक्षा माँगनेके लिये निकलना कदापि उचित नहीं था। संतोंको बड़ी भूख लगी थी, पर वे सकोचवश कुछ कह नहीं पाते थे। श्रद्धालु सरयूदाससे यह बात छिपी नहीं रह सकी। वे तुरंत घर गये। भोजनालयमें देखा तो आटा केवल दो-ढाई सेर ही था। उन्होंने धरवालोंको छेड़ना उचित नहीं समझा और स्वयं आठेकी चक्कीपर गेहूँ पीसने बैठ गये। भोजनकी सारी आवश्यक सामग्री लेकर वे संतोंकी सेवामें उपस्थित हुए। उन्होंने वडे प्रेमसे भोजन किया। वे सरयूदासजी-की श्रद्धा और सेवासे बहुत प्रसन्न हुए तथा उनके संत-प्रेमकी बड़ी सराहना की।—८० श्री०

आदर्श सहनशीलता

अहमदावादके प्रसिद्ध सत सरयूदासजी महाराज एक बार रेलगाड़ीकी तीसरी श्रेणीमें बैठकर डाकोर जा रहे थे। गाड़ीमें बड़ी भीड़ थी। कहीं निल छींटनेका

भी अवकाश नहीं था। महाराजके पास ही बगलमें एक हज्जा-कड्डा पठान बैठा हुआ था। वह महाराजकी ओर अपने पैर बढ़ाकर बार-बार ठोकर मार रहा था।

‘माझे ! सकोच मन करो । दिखाओ, तुम्हारे लगे । उनकी ओर कस्तगामी दृश्ये देखा ।

पैरमें किस स्थानवर पीड़ा हो रही हैं । तुम नेरि आओ, पैर बद्धकर भी पीछे खीच लिया करने हो । मैं तुम्हारा ही हूँ ।’ सरयूदासजी नहागज पैर पकड़कर सहाने

‘महागज ! मैंग अपराव क्षमा कीजिये । आप औंचिता हैं, यह बान मुझे अब विडित हो सकती है ।’ वह आमा गया । उसने बडे दैन्यमें महागजका चरणस्तर्ग लिया, क्षमा-याचना की । —रा० श्री०

विलक्षण क्षमा

स्वार्मी उग्रानन्दजी बहुत अच्छे सन थे । बडे सहिष्णु नथा सर्वत्र भगवद्द्युद्दिन न्युनेवाले थे । एक बार आप उच्चाव जिलेके किसी ग्राममें पहुँचे । संथा हो गयी थी । आप ब्राह्मनन्दकी मर्दानमें निमग्न एक पेड़के तले गुदडी विद्युक्त लेट गये । गविमें उसी गाँवमें किसी किसानके बैलको चोर चुनकर ले गये । गाँवमें थोड़ी देर बाद ही हळ्डा मचा और सबने कहा कि ‘चलो, बैलोंको हँड़े, कही चोर जाना हुआ मिल ही जायगा ।’ ऐसा विचार करके बहुतने गाँवकाले लाठी लेंखकर बैलको हँड़ने निकले । हँड़ने-हँड़ने वे उस जगहपर आये, जहाँ न्यार्मीजी पेड़के नीचे सो रहे थे । उनमेंसे एक आठमीको स्वार्मीजी दिखायी दिये । उसने सबको पास बुलाकर कहा कि ‘यो, चोरका पना तो लग गया । देखो । यह जो पेड़के नीचे पड़ा हुआ है उसके साथी तो बैल आगे लेकर माग गये हैं और यह यही रह गया है । यों कहकर उन सबने स्वार्मीजीको चोर समझकर पकड़ लिया, उनकी गुदडी थीन थी और सबने मिट्टकर उन्हें खूब माग । किंतु स्वार्मीजी विकुल आन्त रहे और कुछ भी नहीं बोले । पिटने-मिट्टने स्वार्मीजीके मुखमें खूनकक बहने लगा । फिर वे

उन्हें बैंधकर गाँवमें ले आये और उन्हें किसी चौपाल-

पर ले जाकर एक कोर्टमें बढ़ करके डाढ़ लिया । जब प्रान काल हुआ, तब सबने उन्हें उस कोर्टमें निकाला और पकड़कर उन्हें थानमें ले जाने लगे । थानेदार स्वार्मीजीको अच्छी तरहने जानता था और वह स्वार्मीजीका बड़ा प्रेमी था । जब गाँववाले उन्हें लेकर वहाँ पहुँचे, तब थानेदारने दूरमें उन्हें देख लिया । वह कुर्सी थोड़कर भाग हुआ वहाँ आया और स्वार्मीजीके पैरमें पड़कर उसने प्रणाम किया । थानेदारको प्रणाम करते देखकर गाँववाले बहुत घबराये कि यह क्या बान है । थानेदारने सिपाहियोंको बुलाकर कहा कि ‘मारो इन दुष्टोंको, ये स्वार्मीजीको क्यों पकड़कर लाये हैं ।’ किसानलोग थरथरा काँपने लगे । जब सिपाही उन्हें पकड़ने चले, तब न्यार्मीजीने उन्हें ऐसा करनेमें गेका और किस थानेदारमें कहा कि ‘देख, जो तू मैंग प्रेमी है तो तू उन्हें कुछ भी दण्ड न दे और उन्हें थोड़ न तथा सबको मिठाड़ी मँगवाकर लिया ।’ थानेदारने बहुत कुछ कहा, परतु स्वार्मीजी नहीं माने । उन्होंने थानेदारमें मिठाड़ी मँगवाकर उन्हें लिखायी और तब लौट जानेकी आज्ञा दी । थानेदार यह देखकर ढग रह गया और बोला कि ‘ऐसा महान्मा तो आजतक कभी नहीं देखा ।’ स्वार्मीजीके साथ ऐसी घटना और भी एक बार हुई थी ।

घट-घटमें भगवान्

लगभग पचास वर्ष पहलेकी बात है। दक्षिण-भारतके प्रसिद्ध संत औलिया साईं बाबाने अध्यात्म-जगतमें बड़ा नाम कमाया। एक समयकी बात है। वे किसी विचारमें मग्न थे कि सहसा उनके अधरोंपर मुसक्कराहट थिरक उठी।

‘तुम्हारे पास मन्दिरमें अन्य व्यक्ति भी आते हैं ?’
उन्होंने बड़े प्रेमसे प्रश्न किया अपने प्रसिद्ध शिष्य
उपासनी महाराजसे । वे बाबाकी आज्ञासे शिरडीकी
सीमापर नदीतटपर श्मगान-भूमिके निकट ही खण्डोबाके
दूटे-फूटे मन्दिरमें निवास करते थे । वे ब्राह्मण थे,
इसलिये द्वारिका माई (मस्जिद) में रहनेमें उन्होंने
आपत्ति की । वे नित्य बाबाका दर्शन करते रहते थे ।
अपने हाथसे भोजन बनाकर नित्य दोपहरको मस्जिदमें
बाबाके लिये ले जाया करते थे । साईं बाबाके भोजन
करनेके बाद ही अन्न-जल ग्रहण करते थे ।

‘वहौँ कोई नहीं जाता, बाबा !’ उपासनी महाराजका
उत्तर था ।

‘अच्छा, कभी-कभी मैं आता रहूँगा।’ बाब्राने
महाराजपर कृपा की।

X **X** **X**

खड़ी दोपहरीका समय था । सूर्यकी प्रखर किरणोंसे पृथ्वी पूर्ण सतह थी । महाराज कड़ी धूपमें भोजनकी थाली लेकर गुरुके पास जा रहे थे । अचानक वे मार्गि रुक गये । उन्होंने एक काला कुत्ता देखा, जो भ्रुखसे

व्याकुल था । महाराजने सोचा कि गुरुको भोजन समर्पित करनेके बाद ही इसे खिलाना उचित है । वे आगे बढ़ रहे थे कि सहसा विचार-परिवर्तन हुआ; पर काला कुत्ता अदृश्य हो गया ।

‘तुम्हें इतनी कड़ी धूपमें आनेकी क्या आवश्यकता थी। मैं तो रास्तेमें ही खड़ा था।’ साईं बाबाके कथनसे महाराजको कुत्तेका स्मरण हो आया, वे पश्चात्ताप करने लगे। साईं बाबा मौन थे।

दूसरे दिन भोजनकी थाली लेकर महाराज ज्यों ही मन्दिरसे बाहर निकले थे कि दीवारके सहारे खड़ा एक शूद्र दीख पड़ा । महाराजने मस्तिष्ककी ओर प्रस्थान किया । भूखे शूद्रकी ओर देखा तक नहीं । वह गिडगिडाने लगा, पर महाराजको गुरुके पास पहले पहुँचना था ।

‘तुमने आज फिर व्यर्थ कष्ट किया । मैं तो मन्दिरके पास ही खड़ा था ।’ साईं बाबाने अपने प्यारे शिष्यकी आँख खोल दी ।

‘कुत्ते और शूद्र—सबमें एक ही परमात्माका वास है। मैंने उनके रूपमें आत्म-सत्य प्रकटकर तुम्हें वेदान्त-प्रतिपाद्य परब्रह्म परमात्माकी सर्वव्यापकताका रहस्य समझाया है। सबमें परमात्मा हैं, प्रत्येकके प्रति सद्भाव रखकर यथोचित कर्तव्यका पालन करना परम श्रेयस्कर है। भगवान् घट-घटमें परिव्याप्त हैं। उन्हें पहिचानो, जानो, मानो।’ साईबाबाने आशीर्वाद दिया।—रा० श्री०

मैं नहीं मारता तो मुझे कोई क्यों मारेगा

ऋषिकेशके जगलमें पहले एक महात्मा रहते थे ।
उनका नाम था द्वारकादासजी । वे बिल्कुल दिगम्बर
रहा करते थे ।

एक बार एक साहब उस जंगलमें शिकार करने गये। उन्होंने एक बाघके जोड़ेमेंसे बाघको तो मार दिया, किंतु बाघिन बचकर भाग गयी। तब साहबका

उसको भी मारनेका मन हुआ । वह, वे दूद सेंभज्जर मचानंगर बैठ गये ।

इर्द्दी समय द्वारकादासजी साहबके पास गये और उसमे कहा कि ‘आज वापिनको मत मारना, मह दुर्दी है ।’ यह कह्यत वे घटी लेट गये ।

इनमें वाधिन आयी । यह देखकर साहबने बदूक तार्ना । द्वारकादासजी डैचे स्वरमें चिल्डाये—‘तुझे मना किया था न, जिर त क्यों नहीं मानता ।’

साहब रुद गये । वापिन आर्यी और उनके चारों तरफ चम्कर लगाकर आपस चर्चा गयी ।

यह देखकर साहबको बड़ा आश्वर्य हुआ । वे आकर उनसे पूछने लगे—‘महाराज ! आपको वाधिनने क्यों नहीं मारा ।’

महात्मा—‘मैं किसीको नहीं मारता, तब वह मुझे क्यों मारेगी ।’

साहब—‘आपको ढर नहीं लगता क्या ?’

महात्मा—‘नहीं ।’

साहब—‘मुझे भगवान्के दर्शनका कुछ उपाय बतला दीजिये ।’ महात्माने उसको कुछ उपाय बता दिये ।

(४० रुधा)

प्रसादका स्वाद

एक गहला ये । वे किसीके यहाँ भोजन करने गये । भोजनमें उनको योजी-सी खीर मिली । उसमें उनको अमूर्द लाड गित्र । उन्होंने योजी-सी और मौंगी, भोजन परसनेगाने लाजर दे दी । किन्तु उसमें वैसा चाद नहीं आया । उन्होंने इसका धारण पूछा । उन सज्जनने वहुन आग्रह करनेके प्रधात् बताया—‘जब मैं

भगवान्से प्रार्थना करता हूँ, तब वे कभी-कभी कोई चीज आकर खा लेते हैं । आज छोटी कट्टेरीकी खीर तनिक-सी उन्होंने खा ली थी । वही खीर मैंने आपको पहली बार दी थी । किन्तु दूसरी बार आपके मौंगनेपर मैंने दूसरी खीर दी, क्योंकि भोगवाली खीर तनिक भी बची नहीं थी ।’

भगवन्नाममय जीवन

लोग उन्हें काढ़ी बाबा कहते थे । वे जानिके काढ़ी ये और साथ होनेसे नहीं, बृद्ध होनेसे उस प्रदेशकी प्रथाके अनुसार बाबा कहलाते थे । वेसे वे बगीचेमें मजदूरीका काम करते थे, दिनभर परिश्रम करते थे । शामको सरोवरके किनारे मालती-कुञ्जके नीचे रोटियाँ संककर खा लेते और वहाँ सो रहते थे ।

रात्रिमें किसीको शौच जाना हो तो मालती-कुञ्जवाले धाटपर ही हाथ धोनेकी सुविधा थी । धाटपर पहुँचते ही सुनाशी पड़ता था स्पष्ट—‘राम, राम, राम’ । यह किसीकी जप-अन्नि नहीं थी । निद्रामग्न काढ़ी बाबाके

शाससे यह स्पष्ट ध्वनि आया करती थी ।

एक दिन काढ़ी बाबाने नगरमें आकर बगीचेके स्वामीसे रसगुल्ला खानेकी इच्छा प्रकट की । भर-पेट रसगुल्ला खिलाया गया उन्हें । दूसरे दिन फिर पूछा गया—‘काढ़ी बाबा । रसगुल्ला खाओगे ?’

काढ़ी बाबा बोले—‘बाबू ! ऐसा पाप मैं फिर कभी नहीं करूँगा । मिठाई खानेसे मेरे रामजी रात नहीं आये ।’

नित्य वे बृद्ध श्रीरामजीका दर्शन पाते थे । उन्होंने फिर कभी मिठाई खायी ही नहीं ।—सु० सिं०

परोपकारके लिये अपना मांस-दान

त्रावणकोर राज्यके तोरुर ग्राममे एक साहूकारका हाथी किसी कारणसे उन्मत्त हो उठा । उसने अपने महावत नारायण नायरको सूँडसे पकड़कर पृथ्वीपर पटक डिया और उनकी पीठमे ढाँतसे आघात किया । संग्रेग अच्छा था, दूसरे लोगोंने हाथीको झटपट बगमें कर डिया । नारायण नायरके प्राण बच गये । वे मूर्छित थे, उठकर अस्पताल लाये गये ।

डाक्टरने महावत नारायण नायरके धावकी जाँच की । हाथीका ढाँत भीतरतक पीठमे छुस गया था । धाव बड़ा था, वह टैंकेसे बद होने योग्य नहीं था । उसने रक्तका प्रवाह चल रहा था । डाक्टरने बताया—“रोगीका जीवन सकटमे है । किसी जीवित मनुष्यका लगभग डेढ़ पौण्ड (तीन पाव) मास मिले तो उसे

धावमे भरकर धावपर टैंका दिया जा सकता है ।”

अपने शरीरमेंसे तीन पाव मास कौन काटने दे । रोगीके परिवारमे, मित्रोंमें, परिचितोंमे ऐसा कोई उसका शुभचिन्तक नहीं निकला जो इतना त्याग उसके लिये कर सके । किंतु भारतकी पवित्र भूमि कभी अलौकिक त्यागियोंसे शून्य नहीं हुई है । समाचार पाकर पानावली ग्रामके एक सम्पन्न कुटुम्बके सदस्य श्रीकन्नडकृष्ण नायर डाक्टरके पास पहुँचे । उन्होंने डाक्टरसे अपना मास लेनेको कहा । डाक्टरने उनकी जाँधसे मांस लेकर रोगीके धावमें भरा और टैंका लगाया, इससे महावत नारायण नायरके प्राण बच गये । श्रीकन्नडकृष्ण नायरको भी जाँधका धाव भरनेतक अस्पतालमें रहना पड़ा ।—सु० सिं०

गुप्ताज्ञ फॉली

विवास कीजिये—विल्कुल सन्य वात है—यह एक मकानका नाम है, जो उत्तर प्रदेशके एक विख्यात शहरमे ही है । इस विचित्र नामकरणका कोई रहस्य तो होगा ही और वह यह है कि गुप्ता महोदय जब मकान बनवा रहे थे, तब उस जमीनके सिलसिलेमे एक

झगड़ा हुआ और मुकड़मेवाजी हो गयी । हजारों रूपये खर्च करनेके बाद श्रीगुप्ता जीत तो गये, पर उन्हे इस प्रसङ्गमे जो हानि और ग्लानि हुई, उससे उन्होंने अपने मकानको अपनी मूर्खताका परिणाम मान लिया और उसका नामकरण ही कर दिया तुसाज्ञ फॉली (गुप्ताकी मूर्खता) । —जा० श०

विचित्र पञ्च

कल्कत्तेमे श्रीलक्ष्मीनारायणजीं मुरोदिया नामक एक सतत्यभावके व्यापारी थे । एक बार किंहीं दो भाइयोंमे समत्तिको लेकर आपसमे झगड़ा हो गया और बैट्वारेमे एक अँगूठीपर बात अड़ गयी । दोनों ही भाई उस अँगूठीको लेना चाहते थे । श्रीमुरोदियाजीं पञ्च थे, उन्होंने समझाया कि एक भाई अँगूठी ले ले और दूसरा भाई कीमत ले ले, पर वे नहीं माने । तब मुरोदियाजींने युक्ति सोची और ठीक बैसी ही एक अँगूठी अपने

पाससे बनवायी । फिर, जिस भाईके पास अँगूठी थी, उसको समझाया कि ‘देखो, मैं उसे समझा दूँगा, पर आप अँगूठी पहनना छोड़कर उसे घरमे रख दीजिये ताकि उसको उसकी याद ही न आये ।’ उसने बात मान ली । तदनन्तर दूसरे भाईके पास जाकर उसे अपनी बनवायी हुई अँगूठी देकर कहा कि ‘देखो, मैंने तुमको अँगूठी ला दी है, परतु इस बातको किसीसे भी कहना नहीं । नहीं तो, तुम्हारा भाई अपनी हार समझ-

कर दुखी होगा । अँग्रेजीको धरमे रख देना, उमे पहनना ही मत । तुम्हें अँग्रेजीसे काम था सो मिल गयी । अब इसकी चर्चा ही, मत करना !’ उसने खुशी-खुशी अँग्रेजी ले ली और बात मान ली । दोनों भाइयोंमें निपटारा और मेल हो गया । दो-तीन साल बाद जब यह भेड़ खुला, तब दोनों

भाट्योंको बडा आर्थर्य हुआ और वे अँग्रेजी लौटाने गये, पर मुरोडियाजीने यह कहकर कि, ‘देखो मैं आपलोगोंमें बडा हूँ और इसलिये मुझे अधिकार है कि मैं अपनी ओरसे आपको कुछ उपहार दूँ’ अँग्रेजी नहीं ली ।

तुलसीका चमत्कार

श्रीठाकुरसाहब लडणा (जयपुर) के पास एक मुसल्मान सज्जन आये, उनके गले में तुलसीकी कढ़ी बँधी हुई थी । ठाकुरसाहबने पूछा कि ‘आप मुसल्मान होते हुए तुलसीकी कढ़ी कैसे पहने हुए हैं ?’ उत्तरमें उन्होंने कहा कि “ठाकुरसाहब ! इसके लिये एक समय मैंने ग्रत्यक्ष बडा चमत्कार देखा है, तभीमें यह तुलसीकी माला हमेशा रखता हूँ । चमत्कार क्या देखा, सो आपसे निवेदन करता हूँ—

“एक समय मैं पैदल ही किसी दूसरे गाँव जा रहा था । रस्तेमें एक जागू था । उस जागूमें एक पेड़के नीचे बडे आकारके दो मनुष्य मिले । मैं उनको देखकर ढर गया । मुझे डरा हुआ जानकर उन्होंने विश्वास दिलाया कि ‘धवराओं मत, आपको कुछ नहीं कहेंगे । हम यमराजके दूत हैं । अभी थोड़ी देरमें एक मनुष्य गाड़ी लेकर यहाँ आयेगा, उसके बैलकी जोनी (जो जुआसे बैलके कवेपर बौंधी जाती है) दृट जायगी । फिर हम बैलस्त्री काल बनकर उसको मारकर

यमलोक ले जायेंगे ।’

“यह बात सुनकर मैं भी बहाँ ठहर गया । थोड़ी देर बाद एक गाड़ीजान गाड़ी लेकर आया और उसी जगह वह जोती दृट गयी और गाड़ीजान सुवारनेके लिये नीचे उतरा, उसी समय बैलने उसके पेटमें इनने जोसे सींग मारा कि तत्पाल वह एक पेड़के झुरमुटमें जागिरा और उसके प्राण छूट गये ।

“तब यमके दोनों दूत निराग होकर मुझसे बोले कि ‘हम तो खाली हाथ जा रहे हैं, अब हमारा इसपर अधिकार नहीं रहा ।’ इसे भगवान्‌के दूत ले गये जो आपके नजर नहीं आये ।’ मैंने यमदूतोंसे कारण पूछा, तब बोले कि ‘उस झुरमुटमें तुलसीके पौधे थे । इसके गरीरसे उनका सर्वश हो गया । अब इसे यमलोकमें ले जानेका अधिकार नहीं रहा ।’

“इस प्रकार मैंने स्वयं जब तुलसीका चमत्कार देखा, तभीसे मैं तुलसीकी माला पहनता हूँ ।”



भगवान्‌के भरोसे उद्योग कर्तव्य है

भिखारिणीका अक्षय भिक्षापात्र

घर दुष्काल पड़ा था । लोग दानेदानेके लिये भटक रहे थे । भगवान्‌दुःखसे जनताका यह कष्ट सहा नहीं गया । उन्होंने नागरिकोंको एकत्र किया । नगरके सभी सम्पन्न व्यक्ति जब उपस्थित हो गये, तब तथागतने उससे प्रजाकी पीड़ा दूर करनेका कुछ प्रबन्ध करनेको कहा ।

नगरके सबसे बडे अन्नके व्यापारीकी ओर प्रभुने देखा । वे उठकर खड़े हो गये और बोले—‘मैं अपना सभी संचित अन्न देनेकी प्रस्तुत हूँ, किन्तु वह इतना नहीं है कि उससे पूरी प्रजाको एक सप्ताह भी भोजन दिया जा सके ।’

नगरसेठने निवेदन किया—‘प्रभु आज्ञा दें तो मैं अपना सम्पूर्ण कोष लुटा दे सकता हूँ; किंतु प्रजा-को दस दिन भी भोजन उससे मिलेगा या नहीं—सदेहकी बात है।’

स्वयं नरेशने भी अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। सम्पूर्ण सभा मौन हो गयी। सबने मस्तक झुका लिये। तथागतके मुखपर चिन्ताकी रेखाएँ झलकने लगीं। इतनेमें सभामें सबसे पीछे खड़ी फटे मैले वधोंवाली एक भिखारिणीने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया और बोली—‘प्रभु आज्ञा दें तो मैं दुष्कालपीडित जनोंको भोजन दूँगी।’

एक ओरसे सबकी दृष्टि उस कगाल नारीकी ओर उठ गयी। सबने देखा कि वह तो अनाथपिण्डदक्षी

कन्या है। अपना ही पेट भरनेके लिये उसे प्रतिदिन द्वार-द्वार भटककर भीख मँगना पड़ता है। तथागत उस भिखारिणीकी ओर देखकर प्रसन्न हो गये थे। किसीने क्रोधपूर्वक पूछा—‘तेरे यहाँ कहाँ खजाना गँड़ा है कि तू सबको भोजन देरी ?’

विना हिचके, विना भयके उस नारीने कहा—‘मैं तो भगवान्‌की कृपाके भरोसे उद्योग करूँगी। मेरा कर्नव्य उद्योग करना है। मेरा कोप तो आप सबके घरमें है। आपकी उढारतासे ही यह मेरा भिक्षापात्र अक्षय बनेगा।’

सचमुच उस भिखारिणीका भिक्षापात्र अक्षय बन गया। वह जहाँ भिक्षा लेने गयी, लोगोंने उसके लिये अपने भण्डार खोल दिये। जबतक वर्षा होकर खेतोंमें अन्न नहीं हुआ, अनाथपिण्डदक्षी कन्या प्रजाको भोजन देती रही।

अहिंसाका चमत्कार

लाभगतीन हजार साल पहलेकी बात है। एक समय भगवान् बुद्ध राजगृहमें विहार कर रहे थे। देवदत्त उनसे ईर्ष्या करता था। बहुत-से भिक्षुओंको साथ लेकर पूर्वाह्नके समय पात्र, चीवर लेकर पिंड-चार (भिक्षा) के लिये उन्होंने नगरमें प्रवेश किया ही था कि देवदत्तके आदेशसे महावतने राजपथपर नालागिरि नामका प्रचण्ड गज छोड़ दिया। मतघाल हाथी सूँड उठाकर बड़े बेगसे भगवान्‌की ओर झपट पड़ा, उसके कान फट-फट शब्द करते हिल रहे थे।

‘भन्ते ! नालागिरि आ रहा है। प्राण ले लेगा। पयसे हट जाइये।’ भिक्षुओंने सुगतके चरणोंमें निवेदन किया।

‘अहिंसा-बल श्रेष्ठ है, भिक्षुओ !’ तथागतने आश्वासन दिया।

राजपथके दोनों किनारोंके प्रासाद, हर्म्य और छतपर खड़े जन-समूह चिन्तामग्न थे।

दुराचारियोंने सोचा कि सुगत मारे जायेंगे। सदाचारियोंने उनकी प्राण-रक्षाकी कामना की।

नालागिरि अति निकट आ गया। शाक्यसिंहने उसको मैत्री-भावनासे भर दिया। उनकी करुणादृष्टिसे वह पानी-पानी हो गया। अहिंसाकी तेजस्विनी ज्योतिसे उसके नेत्र चमकते हो उठे। उसकी हिंसा-वृत्ति समाप्त हो गयी। हाथीने सूँड नीची कर भगवान्‌की बन्दना की, चरण-धूलिसे अपना मस्तक पवित्र किया, ऐसा लगता था मानो गजराजने अहिंसाके राज्यमें प्रवेश कर अपना राज्याभिपेक किया हो। हिंसाने नतमस्तक होकर आत्मसमर्पण कर दिया। अहिंसाके पद-देशमें हाथी अपने स्थानको लौट गया।—बुद्धचर्या

हृदय-परिवर्तन

अंगुलिमालका परिवर्तन

अंगुलिमालके नामके श्रवणमात्रसे ही समस्त कोशल-राज ब्रह्म और सत्त्व हो उठा था । गुत्के दक्षिणाख्यूषप मैत्रार्गीपुत्र वनमें रहता था और यात्रियोंको मारकर उनकी अंगुलियोंकी माला पहनता था; धन या वस्तु आँखिका वह अपहरण नहीं करता था । श्रावस्तीके प्रसेनजित् और उनकी प्रजा उसमें भयभीत थी ।

X X X

‘इस वनमें ढाकू अंगुलिमाल रहता है, भन्ते । वह प्राणियोंका वध करता है ।’ गोपालकों और किसानोंने भगवान् बुद्धको आगे बढ़नेसे रोका । वे श्रावस्तीमें पिण्डचार समाप्त कर वनमें जा रहे थे निहारके लिये । भिक्षु-संघके मना करनेपर भी वे आगे बढ़ते गये ।

अंगुलिमालको आश्रय हुआ कि लोग समूहमें भी नेरे पास आनेमें डरते हैं और यह श्रमण तनिक भी भय नहीं मानता है । उसने इनको मार डालनेका संकल्प किया; पर केवसे दौड़नेपर भी वह तथागतके पास नहीं पहुँच सका ।

‘खडे रहो, श्रमण !’ अंगुलिमालने संकेत किया ।

‘खड़ा हूँ, अंगुलिमाल ! प्राणियोंके प्रति दण्डका त्याग करनेसे स्थिन हूँ । तुम अस्थित हो ।’ तथागतने ग्रन्थद्वारा किया ।

‘श्रमण असत्य भाषण नहीं कर सकता है । मैं अंबा हो गया था । मैंने वडे-बडे पाप किये हैं ।’ वह दौड़कर तथागतके चरणोंपर गिर पड़ा और भगवान्नने ‘आ भिक्षु ! कहकर उसे उपसम्पदा दी । वह प्रवर्जित हो गया ।

X X X

‘कुशल तो है, प्रसेनजित् ॥’ भगवान् बुद्धने

कोशलपतिको पाँच सौ घुडसवारोंके साथ आते देखकर प्रभ किया । प्रसेनजितने चरण-कन्दनाकी ।

‘अंगुलिमालका ठमन करने जा रहा हूँ, भन्ते । उसके उत्पातसे जनता आनंदित है ।’ राजाके शब्द थे ।

‘परि वह कायायवेयवारी प्रवर्जित हो गया हो तो कैसा व्यवहार करोगे ?’ शास्त्रा गम्भीर थे ।

‘उसका सागत होगा, भन्ते । श्रावस्ती चौत्र, पात्र और आसनकी व्यवस्था करेगी पिण्डके लिये निमन्त्रित करेगी ।’ राजा का उत्तर था ।

‘तो यह है अंगुलिमाल ।’ तथागतने उसकी ओर दृष्टिप्राप्त किया । कोशलनरेशका हृदय धर-थर कौपने लगा । प्रसेनजितने सम्मान प्रकट किया ।

‘जिसे हम शक्ति-अक्षसे भी न जीत सके वह यों ही जीत लिया गया ।’ राजाने तथागतकी प्रदक्षिणाकर राजग्रासादकी ओर प्रस्थान किया ।

X X X

तथागतके आदेशसे पिण्डचारके लिये उसने श्रावस्ती-में प्रवेश किया । भोजनके उपरान्त उसने एक ऐसी छीको देखा जिसका गर्भ निष्पाण था । अंगुलिमालका हृदय व्यथित हो गया ।

‘यदि जानकर मैंने प्राणिवध न किया हो तो छीका मङ्गल हो, गर्भका मङ्गल हो ।’ भगवान्नने छीके सामने जाकर उसे ऐसा कहनेका आदेश दिया ।

‘पर यह तो असत्य भाषण है ।’ अंगुलिमालने विवरण ग्रकृत की; भगवान्नकी प्रेरणासे उसने आदेशका पालन किया और छीका मङ्गल हो गया, गर्भका मङ्गल हो गया ।

श्रावस्तीसे लौटनेपर उसका सिर फट गया था, खूनकी धारा वह रही थी; जनताने उसे पत्थरसे मारा था पर उसने किसीका भी चिरोंव नहीं किया। उसके जब दूट गये थे, चौकर फट गया था। स्थिरने सहनशीलताका परिवर्त दिया।

‘सन्य भाषण और अविरोध व्रतसे तुम्हारा अन्त-कारण शुद्ध हो गया है, स्थिर! अपूर्व हृदय-परिवर्तन है वह।’ तथागतने धर्मकथासे उसे समुत्तेजित किया। अगुलिमालका नाम मिट गया; उसने नये जीवनका प्रेक्षाशा प्राप्त किया। —डृढ़चर्चा

इन्द्रिय-संयम

नर्तकीका अनुताप

मधुराकी सर्वश्रेष्ठ नर्तकी, सौन्दर्यकी मूर्ति वासवदत्तकी दृष्टि अपने बातायनसे राजपथपर पड़ी और जैसे वहाँ टक्का गयी। पीत-चीकर ओड़े, मिक्षापात्र लिये एक मुण्डितमस्तक युवा निझु नगरमें आ रहा था। नगरके प्रतिष्ठित धनी-मानी लोग एवं राजपुरुषनक जिसकी चाटुकारी किया करते थे, जिसके राजभवन-जैसे ग्रासादकी देहलीपर-चक्र काटते रहते थे, वह नर्तकी मिझु-को देखते ही उन्मत्तप्राप्त हो गयी। इतना-सौन्दर्य! ऐसा अद्भुत तेज। इतना सौमन् मुख! —नर्तकी दो क्षण-तौ ठिक्की देखनी रह गयी और फिर जितनी शीतला उसमें हो सकी, उतनी शीतलासे दौड़ती हुई सीढ़ियों उतरकर अपने द्वारपर आयी।

‘कत्तौ! नर्तकीने मिझुको पुकारा।

‘फड़े! निझु आकर मस्तक छुकाये उसके सम्मुख खड़ा हो गया और उसने अपना मिक्षापात्र आगे बढ़ा दिया।

‘अप ऊपर पवारे! नर्तकीका मुख लज्जासे लल हो उठ गया, किन्तु वह अपनी बात कह गयी—‘हूँ मेरा भड़न, मेरी सब सम्पत्ति और स्वयं मैं अब आपका हूँ। मुझे आप स्वीकार करे।’

‘मैं फिर तुम्हारे पास आज़ँगा।’ मिझुने मस्तक ऊपर उठाकर बड़ी बेवक दृष्टिसे नर्तकीकी ओर देखा और देता नहीं क्या सोच लिया उसने।

‘कैव? नर्तकीने हयोंदुल होकर पूछा।

‘सन्य आनेपर! मिझु यह कहते हुए आगे बढ़

गया था। वह जबतक दीख पड़ा, नर्तकी द्वारपर खड़ी उसीकी ओर देखती रही।

X X X
मधुरा नगरके द्वारसे बाहर यमुनाजीके मार्गमे एक ली मूमिपर पड़ी थी। उसके बल अन्यन्त मैले और फटे हुए थे। उस लीके सारे शरीरमें धात्र हो रहे थे। पीव और रक्तसे भरे उन धात्रोंसे हुर्गन्त्र आ रही थी। उवरसे निकलते समय लोग अपना मुख दूसरी ओर कर लेते थे और नांक दबा लेते थे। यह नारी थी नर्तकी वासवदत्ता। उसके दुराचारने उसे इस भयंकर रोगसे ग्रस्त कर दिया था। सम्पत्ति नष्ट हो गयी थी। अब वह निराश्रित मार्गपर पड़ी थी।

सहसा एक मिझु उवरसे निकला और वह उस दुर्दशाग्रस्त नारीके समीप खड़ा हो गया। उसने पुकारा—‘वासवदत्ता! मैं आ गया हूँ।’

‘कौन?’ उस नारीने बड़े कष्टसे मिझुकी ओर देखनेका प्रयत्न किया।

‘मिझु उपग्रह! मिझु बैठ गया वहीं मार्गमे और उसने उस नारीके धाव धोने प्रारम्भ कर दिये।

‘तुम अब आये? अब- मेरे पास क्या धरा है। मेरा यौवन, सौन्दर्य, धन आदि सभी कुछ तो नष्ट हो गया।’ नर्तकीके नेत्रोंसे अशुभार चल पड़ी।

‘मेरे आनेका समय तो अभी हुआ है।’ मिझुने उसे धर्मका गान्तिदायी उपदेश देना प्रारम्भ किया। ये मिझुश्रेष्ठ ही देवप्रिय सन्नाट अशोकके गुरु हुए।

निष्पक्ष न्याय

रानीको दण्ड

काशीनरेशकी महारानी अपनी दासियोंके साथ बरुणा स्तान करने गयी थीं। उस समय नदीके किनारे दूसरे किसीको जानेकी अनुमति नहीं थी। नदीके पास जो झोपड़ियाँ थीं, उनमें रहनेवाले लोगोंको भी राजसेवकोंने वहांसे हटा दिया था। माधका महीना था, प्रातःकाल स्तान करके रानी शीतसे कॉपने लगीं। उन्होंने इधर-उधर देखा, किंतु सूखी लकड़ियाँ वहाँ थीं नहीं। रानीने एक दासीमें कहा—‘इनमेंसे एक झोपड़ेमें अग्नि लगा दे। मुझे सर्दी लग रही है, हाथ-पैर सेंकने हैं।’

दासी बोली—‘महारानी ! इन झोपड़ीमें या तो कोई साधु रहते होंगे या दीन परिवारके लोग। इस शीतकालमें झोपड़ा जल जानेपर वे वेचारे कहाँ जायेंगे।’

रानीजीका नाम तो करुणा था; किंतु राजमहलोंके ऐश्वर्यमें पली होनेके कारण उन्हें गरीबोंके कटका भला क्या अनुभव ? अपनी आज्ञाका पालन करानेकी ही वे अभ्यासी थीं। उन्होंने दूसरी दासीसे कहा—‘यह बड़ी दयालु बनी है। हटा दो इसे मेरे सामनेसे और एक झोपड़ेमें तुरत आग लगाओ।’

रानीकी आज्ञाका पालन हुआ। किंतु एक झोपड़ेमें लगी अग्नि वायुके वेगसे फैल गयी। सब झोपड़े भस्त हो गये। रानीजी तो इससे प्रसन्न ही हुई। परतु वे राजभवनमें पहुँचीं और जिनके झोपड़े जले थे, वे दुखी प्रजाजन राजसभामें पहुँचे। राजाको इस समाचारसे बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अन्त पुरमें जाकर रानीसे कहा—‘यह तुम्हें क्या सूझी ? तुमने प्रजाके

घर जलवा कर कितना अन्याय किया है, इसका कुछ ध्यान है तुम्हें !’

रानी अत्यन्त रुपवती थीं। महाराज उन्हें बहुत मानते थे। अपने रूप तथा अधिकारका गर्व था उन्हें। वे बोलीं—‘आप उन धासके गदे झोपड़ोंको घर बता रहे हैं ! वे तो फँक देने ही योग्ये थे। इसमें अन्याय-की क्या बात ?’

महाराजने कठोर मुद्रामें कहा—‘न्याय सबके लिये समान होता है। तुमने लोगोंको कितना कष्ट दिया है। वे झोपड़े गरीबोंके लिये कितने मूल्यवान् हैं, यह तुम समझ जाओगी।’

महाराजने दासियोंको आज्ञा दी—‘रानीके बल तथा आभूषण उतार लो। इन्हें एक फटा बल पहिना-कर राजसभामें ले आओ।’

रानी कुछ कहें, इससे पहिले महाराज चले गये अन्त पुरसे बाहर। दासियोंने राजाज्ञाका पालन किया। एक भिखारिनीके समान फटे बल पहिने, रानी जब राजसभामें उपस्थित की गयीं, तब न्यायासनपर वैठे महाराजकी घोपणा प्रजाने सुनी। वे कह रहे थे—‘जबतक मनुष्य स्थ विपत्तिमें नहीं पड़ता, दूसरोंके कटोंकी व्यथा समझ भी नहीं पाता। रानीजी ! आपको राजभवनसे निर्वासित किया जा रहा है। वे सब झोपड़े, जिन्हें आपने जलवा दिया है, मिक्षा माँगकर जब आप बनवा देंगी, तब राजभवनमें आ सकेंगी।’

अहिंसाकी हिंसापर विजय

अर्जुनमाली बड़ी श्रद्धापूर्वक एक यक्षकी नित्य पूजा करता था। एक दिन उसने जैसे ही पूजा समाप्त की, छ. ढाकू आ धमके। उन दुर्जनोंने अर्जुनको रस्सियोंसे

बाँध दिया और उसके घरको लूट लिया। उसकी पली-के साथ भी वे दुर्जनवहार करने लगे।

अब अर्जुनमालीको क्रोध आया। वह बँधा-बँधा

दाँत पीसने लगा और मन-ही-मन कहने लगा—‘मैंने इतने दिनों व्यर्थ इस यक्षकी पूजा की। इसके सामने ही मेरी तथा मेरी पत्नीकी यह दुर्गति हो रही है। मैं जानता कि यह इतना कापुरुष तथा असर्मर्थ है तो इसकी प्रतिमा यहाँसे उठा फेंकता।’

अर्जुन क्रोधमें भी सच्चे भावसे मान रहा था कि प्रतिमा जड़ नहीं है, उसमें सचमुच यक्ष है। उसके इस भावसे यक्ष संतुष्ट हो गया। अर्जुनके शरीरमें ही यक्षका आवेश हुआ। अब तो आवेशमें अर्जुनने अपने बन्धन तोड़ डाले और मूर्तिके पास रखा एक लोहेका मुद्रगर उठा लिया। अर्जुनमें यक्षका बल था, उसने छः ढाकुओं तथा अपनी छांटोंकी भी तत्काल मार दिया। परंतु इसके पश्चात् यक्षके आवेशमें अर्जुनमाली जैसे उन्मत्त हो गया। वह प्रतिदिन सात मनुष्योंको मारने लगा। राजगृहमें हाहाकार मच गया। लोगोंने घरोंसे निकलना बद कर दिया।

उन्हीं दिनों भगवान् महावीर राजगृहके समीप उद्धानमें पथारे। उनके आगमनका समाचार सेठ सुदर्शनको मिला। तीर्थकरका दिव्योपदेश श्रवण करने उन्हें अवश्य जाना था। घरके लोगोंने उन्हें मना किया कि

अर्जुन राजपथपर मुद्रर लिये धूम रहा है, तो वे बोले—‘वह भी तो मनुष्य ही है, मैं उसे समझा जाऊँगा।’

सेठ सुदर्शन राजपथपर पहुँचे। अर्जुन आज छः व्यक्तियोंका बध कर चुका था और सातवेंकी खोजमें था। सेठको देखते ही वह मुद्रर उठाकर ढौड़ा; किंतु सेठ स्थिर खड़े रहे। प्रहारके लिये उसने मुद्रर उठाया तो मुद्ररके साथ स्थयं भूमिपर गिर पड़ा। उसके शरीरमें आविष्ट यक्ष एक नैष्ठिक आचारवान् अहिंसकका तेज सहन नहीं कर सका था, इसलिये वह भाग गया था।

सेठ सुदर्शनने पुकारा—‘उठो अर्जुन ! मेरी ओर क्या देख रहे हो भाई ! आओ ! हम दोनों साथ चलकर आज तीर्थकरकी पवित्र वाणी श्रवण करें।’

सेठने हाथ पकड़कर उसे उठाया और सचमुच उठा लिया जीवनके पाप-पंकसे; क्योंकि तीर्थकरके सम्मुख पहुँचते ही अर्जुन उनके चरणोंमें नत हो गया। वह दीक्षित हो गया। नगरवासी उसे मुनिवेशमें देखकर भी उसके द्वारा मारे गये अपने सजनोंका बदला लेनेके लिये उसे पत्थरोंसे मारते थे, उसपर दण्डप्रहार करते थे; किंतु वह अब शान्त रहता था। उसे आदेश जो मिला था—मा हतो।

वैभवको धिकार है !

भरत और वाहुवलि

सप्तांश्च भरतको चक्रवर्ती बनना था। वे दिग्विजय कर चुके थे, किंतु अभी वह अधूरी थी; क्योंकि उनके छोटे भाई पोटनापुरनरेश वाहुवलिने उनकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। वाहुवलिके पास सदेश भेजा गया तो उन्होंने उत्तर दिया—‘महासप्तांश्च पिता श्री-ऋषभदेव महाराजने मुझे यह राज्य दिया था। मैं अपने ज्येष्ठ भ्राताका सम्मान करता हूँ, किंतु वे इस राज्यपर कुदृष्टि न ढालें।’

भरतको तो चक्रवर्ती सप्तांश्च बनना था। वे अपनी दिग्विजय

अपूर्ण रहने देना नहीं चाहते थे। वाहुवलिके उत्तरसे उनका क्रोध भड़क उठा। रणभेरी बजने लगी। चतुर मन्त्रियोंने सम्मति दी—‘व्यर्थ नरसहार करनेसे क्या लाभ ? भाई-भाईका यह युद्ध है सप्तांश्च। आप दोनों दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध तथा मलयुद्ध करके परस्पर ही जय-पराजयका निर्णय कर लें।’

दोनोंने यह सम्मति स्वीकार कर ली। परंतु दृष्टियुद्ध और जलयुद्धमें वाहुवलि विजयी हो गये। सप्तांश्च भरतने वाहुवलिको मलयुद्धके लिये ललकारा। दोनों

भाई अखाड़ेमें उतरे। इस सवर्षमें भी भरतको जब जीनेकी आज्ञा नहीं रह गयी, तब क्रोधपूर्वक उन्होंने छोटे भाईपर अपने पितासे ग्रास अमोघ अल 'चक्ररत्न' का प्रयोग कर दिया। वे क्रोधमें यह भूल ही गये कि 'चक्ररत्न' कुटुम्बियोंपर नहीं चलेगा। किंतु उन्हें अपनी भूल शीघ्र ज्ञान हो गयी। 'चक्ररत्न' वाहुवलिके समीप पहुँचकर लौट गया।

भरतने अन्याय किया था। उनके अन्यायसे वाहुवलि क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने अपनी प्रचण्ड मुजाओंमें भरतको पृथ्वीमें ऊपर उठा दिया—ऊपर उठा दिया अपने

सिरसे भी। एक क्षणमें वे भरतको पृथ्वीपर पछाड़ फेंकनेवाले थे। सहसा प्रजाका उड़य हुआ। वाहुवलिने धीरेसे भरतको सामने खड़ा कर दिया और बोले— 'भाई ! क्षमा करना। इस राज्य और वैभवको विकार है, जिसके मदसे अंधा होकर मनुष्य छोटेबडेका मान करना भी भूल जाता है।'

भरत पुकारते रहे, प्रजाके लोग पुकारते रहे, किंतु वाहुवलि मछुआलासे जो निकले तो फिर नहीं लौटे। उन्होंने दीक्षा ले ली। मोह-मायाकी सब गाँठें खोलकर वे निर्मन्य हो गये।

शूलीसे स्वर्णसिंहासन

गजपुरोहित तथा सेठ सुदर्शनकी प्रगाढ़ मैत्री थी। पुरोहितजीकी पत्नीने सेठके सदाचारकी परीक्षा लेनेका निर्थय किया। एक दिन जब पुरोहितजी घरसे कहीं गये थे, उनकी पत्नीने सेठजीके पास संदेश भेजा— 'आपके मित्र अस्थस्थ हैं।'

सेठ सुदर्शन पुरोहितजीके घर पहुँचे तो पुरोहित-पत्नीका पापपूर्ण प्रस्ताव सुनकर वे कौप उठे। उन्होंने कानोंपर हाथ रखकर कहा—'मुझे क्षमा करो वहिन !', और वहाँसे चले आये।

राजपुरोहितकी पत्नी चम्पानरेणकी रानीके साथ दूसरे दिन धर्मचर्चा करते हुए बोली—'आज भी पृथ्वीपर सच्चे सदाचारी विद्यमान हैं।'

रानी हँसी—'तभीतक, जब्रतक कोई सुन्दरी नारी अपने कटाक्षका उन्हें लक्ष्य नहीं बनाती।'

पुरोहितानी—'आपका भ्रम है रानीजी ! ऐसे महापुरुष भी हैं जिन्हें देवाङ्गनाएँ भी विचलित नहीं कर सकतीं। इतिहास साक्षी है।'

रानी—'वे बातें लिखने तथा पढ़नेकी ही हैं।'

पुरोहितानी—'आप चाहें तो परीक्षा कर देखें। सेठ सुदर्शन वे जा रहे हैं राजपथसे।'

रानीको बात लग गयी। उसने दासी भेजकर सेठ सुदर्शनको राजभवनके अन्त पुरमें बुलवाया। परंतु रानी विफल हुई। उसके हाव-भाव, प्रलोभन तथा धमकियोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ऐसे अवसरोंपर प्रायः पराजित नारी जो करती है, रानीने भी वही किया। उसने सेठ सुदर्शनपर आरोप लगाया कि वे छिपकर अन्तपुरमें पहुँचे और रानीको भष्ट करना चाहते थे।

सेठ सुदर्शन मौन बने रहे। उनका अपराध ही ऐसा बताया गया था कि नरेण क्रोधान्ध हो उठे। उन्होंने आज्ञा दी—'इसे इसी समय शूलीपर चढ़ा दो।'

सेठ सुदर्शन शूलीपर चढ़ाये जाने लगे, किंतु नरेण, वृत्तिक तथा सभी उपस्थित लोग चक्रित रह गये यह देखकर कि शूली सहसा स्वर्णसिंहासन बन गयी। अब जाकर रानीके पापका भण्डाफोड़ हुआ। परंतु सेठने उसे जीवनदान दिला दिया

आडिग निश्चय—सफलताकी कुंजी

राष्ट्रीय स्थायसेवक सम्बूद्धके मूल संस्थापक स्वनामधन्य डाक्टर श्रीकेशवराव बलिराम हेडगेवर किसी कारणवश एक बार शनिवारके दिन कुछ साथियोंको लेकर अडेंगॉव गये द्वारा थे। वहाँ कार्यक्रममें सध्या हो गयी। यह गॉव नागपुरसे वत्तीस मीलकी दूरीपर स्थित है; रास्ता बहुत ही विकट है। गॉव नागपुर अमरावतीकी पक्की सड़कसे भी नौ-दस मील दूर है। डाक्टर साहब-का नागपुर पहुँचना आवश्यक था; क्योंकि उनका नियम था कि प्रत्येक रविवारको प्रभातकी परेडमें वे स्थायं नाग-पुरमें उपस्थित रहते थे। साथियोंने अनुरोध किया कि आज रात यहाँ ठहरें। पर वे उनके निश्चयको परिवर्तित नहीं कर सके।

रात अँधेरी, रास्तेमें कीचड़ और पैर मिट्टीसे सने द्वारा, इसपर पैरमें एक काँड़ा गहरा चुभा छुआ। इतनी दूरकी पैदल यात्रा। कुछ भी हो, प्रत्येक बाधापर पैर रखकर नि.शङ्क आगे बढ़ते जाना तो उनकी आदत हो गयी थी। उनका विश्वास था कि लक्ष्य-ग्रासिके मार्गमें कठिनाइयाँ तो आयेंगी ही। इसलिये निश्चय

करके उत्साहपूर्वक उन्होंने यात्रा प्रारम्भ कर दी।

डाक्टरजीके यात्रा प्रारम्भ करते ही धनघोर मूसलाधार वृष्टि आरम्भ हो गयी। पर संकटोंने अधिक देरतक उनकी परीक्षा नहीं ली। भगवान् सम्भवतः उनके साहसको ही परखना 'चाहते थे। डाक्टरजी इस कस्तौटीपर खरे उतरे। कुछ ही मील पैदल चलनेपर उसी रास्ते नागपुर जानेवाली मोटर लगभग ग्यारह बजे रातको मिल गयी। इमाइरने डाक्टरजीको पहचानकर गाड़ी खड़ी की और उसमें चढ़ा लिया। गाड़ी खचाखच भरी थी, फिर भी किसी प्रकार पावदान आदिपर खड़े होकर साथियोंने जगह ली। ढाई-तीन बजे रातको सब नागपुर पहुँच गये। निश्चयानुसार डाक्टरजी प्रभातमें परेडके कार्यक्रममें उपस्थित रह सके।

डाक्टरजीकी सफलताकी यही कुंजी है। उनका निश्चय अटल था। आत्म-विश्वास तथा आत्म-श्रद्धा उनमें भरपूर थी। कठिनाइयों और विपत्तियोंका सामना करनेमें उन्हें आनन्द आता था। साहस, शौर्य, निश्चयपर अडिग रहना उनका स्वभाव था।

सर्वत्र परम पिता

(लेखक—श्रीलोकनाथप्रसादजी दॉडनिया)

लाला बलदेवसिंहजी देहरादूनके रईस थे। वे प्राणि-मात्रमें भगवान्नकी ज्योतिका निरन्तर अनुभव करते थे। ग्रेम-नन्दका उच्चकोठिका अनुभव उन्हें ग्रात था। प्राणिमात्रसे उनका ग्रेमका वर्ताव प्रत्यक्ष था। कोई भी प्राणी किनना ही उनके विरुद्ध अपना भाव या आचरण रखना हो, उनके ग्रेममें किसी प्रकारकी कमी नहीं होती, वन्निकं विरोधियोंके प्रति तो उनका विशेष ग्रेम दिखायी देता था। उनके जीवनके कई अनुभव और अदर्श विलक्षण घटनाएँ मेरे देखने-सुननेमें आयी हैं। उनमें से दो घटनाएँ सक्षेपमें लिख रहा हूँ।

डाकूके रूपमें परम पिता

एक बार उन्हें कुछ डाकुओंका एक पत्र मिला। जिसमें लिखा था 'अमुक तारीखको हमलोग आपके यहाँ डाका डालने आयेगे।' इसको पढ़कर उनको बड़ी प्रसन्नता छुई। उनके चेहरेसे और बातचीतसे यही प्रकट होता था कि मानो साक्षात् भगवान् ही या उनके अपने पूर्वजोंके आत्मा ही डाकुओंके रूपमें पथारेंगे। इसलिये उस दिन उनके स्वागतके लिये

लालजीने हल्लआ, पूरी आडि बहुत-सी चीजें बनवायीं और बडे उत्साह तथा आनन्दके साथ उनकी प्रतीक्षा की गयी। लालजीके भनीजे श्रीअनिरुद्धकुमारके नाम भी ऐसा ही पत्र आया था। वे पत्र पढ़कर बहुत घबरा गये। उन्होंने पुछिस सुपरिटेंट तथा जिलावीशको मूचना दी और अपनी रक्षाके लिये बड़ी तैयारी की। वे जब बल्डेवर्सिंहजीके पास इस पत्रकी सूचना देने आये, उस समय मैं वहाँ भौजूद था, मैंने देखा—उनके चेहरेपर बड़ी बवाहट थी। लालजीने उनको बहुत समझाया और कहा कि ‘भैया! मेरे पास भी ऐसी चिढ़ी आयी है। पर मुझे तो इस बातमे बहुत हर्ष हो रहा है। पना नहीं, भगवान् ही उनके रूपमें पश्चार रहे हैं या हमारे-तुम्हारे वाप-दादोंकी आत्मा उन्हींके रूपमें आ रही है। इसलिये मैं तो उनके स्वागतके लिये आनन्द और उत्साहके साथ तैयारी कर रहा हूँ, तुमको भी ऐसा ही करना चाहिये और बहुत आनन्द तथा हर्ष मनाना चाहिये। यह तो परम पिताकी बहुत बड़ी कृपा है। यदि उन लोगोंके कामकी चीज होगी और वे ले जायेंगे तो बहुत ही आनन्दकी बात होगी।’ लाल बल्डेवर्सिंहजीकी ये बातें अनिरुद्धकुमारजीको अच्छी नहीं लगी थीं। वे मनमें कुछ नाराज़-मे भी हुए थे, परंतु जिस तारीखको डाकूओंने आनेकी सूचना दी थी, उस तारीखको कोई आया नहीं। लालजीको इसका विचार हुआ और डाकूओंके स्वागतके लिये वे हुए हल्लआ-पूरी आडिको हमलोगोंने खाया।

प्रजाके रूपमें परम पिता

इनके भनीजे श्रीअनिरुद्धकुमारजी जर्मांदार थे। एक बार मालगुजारीका रूपया बसूल न होनेके कारण उन्होंने रैयतोंको घमकाया और डॉटा। कुछ कहासुनी हो गयी। इसपर प्रजाके लोगोंने दुखी होकर उनके विरुद्ध फौजदारी कोर्टमें मामला कर दिया। मामला सुन्चा था और दूसरे लोगोंके पास काफी मवूत

थे अनेक मामला कुछ संगीत हो गया। अनिरुद्धकुमारजीने अपने चचा लाल बल्डेवर्सिंहजीमे सलाह पूछी। दोनों ओरके बक्सील-वैरिस्टर लोग मामलेको अपने-अपने पक्षपर व्यूव सजाकर लड रहे थे। लालजीने अनिरुद्धकुमारजीको समझाया कि ‘जिनको तुमने रैयत समझा और जिनके साथ ऐसा बर्नाव किया वे तो साक्षात् भगवान्के ही रूप हैं, मध्यमे परम पिताजीकी ज्योति ही प्रकाशित हो रही है। अथवा पना नहीं, उनके भीनर हमलोगोंके वाप-दादोंकी आत्मा ही आयी हुई है। तुमको उनसे माफी माँग लेनी चाहिये तथा उनका सत्कार-सम्मान करना चाहिये।’ परंतु अनिरुद्धकुमारजीको यह बात पसंद नहीं आयी। इस स्थितिमें मामलेकी तारीखके दिन स्वयं लाल बल्डेवर्सिंहजी कोर्टमें गये। उनको देखकर न्यायावीशने उनका सम्मान किया और अपने समीप कुर्सीपर आढरसे बैठाया। दोनों ओरसे बक्सील-वैरिस्टर पैरवी कर रहे थे। इस बीच लालजीने हाकिमसे कहा—‘आपको इसमे व्यर्थ तकलीफ हो रही है। मैं जानता हूँ अज्ञानताके कारण अनिरुद्धकुमारमे भूल हुई है। इन लोगोंको अनिरुद्धकुमारने प्रजा समझा और अपना लगान बमूल करनेके लिये ऐसा बर्नाव किया। यह वडे खेदकी बात है। जिनको ये रैयत समझते हैं, उनमें परम पिता परमात्माकी ही प्रत्यक्ष ज्योति है और न मालूम उनके भीनर हमारे ही वाप-दादोंकी आत्मा इस रूपमें आयी हुई है। इसलिये मेरी यह इच्छा है कि अनिरुद्धकुमार तुरत प्रजासे माफी माँग लें और प्रजा इन्हें ऐसा उचित दण्ड दे, जिसमे प्रजाकी आत्माको सनोप हो।’

यों कहकर वे उठकर नीचे आ गये और अनिरुद्धकुमारका हाथ पकड़कर प्रजाके समुख ले गये और बोले—‘हाथ जोड़कर इनमे माफी माँगो।’ इतना सुनने ही प्रजाके सब लोग चिन्ह ले गये और लालजीके तथा अनिरुद्धकुमारजीके चरणोंपर गिरने लगे। लालजीके इस बर्नावसे वे लोग आनन्द-ग्रन्थ हो गये। मामला उसी समय कोर्टसे उठ

लिया गया। लालाजीने प्रजाके सब लोगोंको अनिरुद्धकुमार-
जीने गले लगाया। उनको परस्पर हृदयमे हृदय लगाकर
मिलाया और प्रजाके लोगोंके लिये अपने यहाँ प्रीनिमोज
कराया। सब ओर प्रसन्नता छा गयी। सारा वैमनस्य

झणोंमें दूर हो गया और दोनों पक्ष अपनेको दोस्री
वनाकर क्षमाप्रार्थी हो गये। कचहरी तथा सारे शहरमें
यह बात फैल गयी। चारों ओर सद्भावनाका प्रसार
हो गया। लोगोंको आश्वर्यमंश्रित अमृतपूर्व आनन्द मिला।

संन्यासी और ब्राह्मणका धनसे क्या सम्बन्ध ?

(लेखक—मक श्रीगमधुरणदासजी)

परम पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय पं० श्रीइङ्गरुदत्तजी
महाराज वडे ही उच्चकोटिके विद्वान्, परम त्यागी, तपसी,
पूर्ण सदाचारी, कर्मकाण्डी, अनन्य भगवद्वक्त ब्राह्मण थे।
मेरठके एक ग्राममें रहा करते थे। एक छोटी-सी संस्कृतकी
पाठशाला थी, उसीमें आप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके
छड़कोंको संस्कृत पढाया करते थे, पर लेने किसीसे
एक पाई भी न थे। विना माँगे कही किसीसे कुछ आ जानातो
उसीमें संतोष करते थे। भगवान्‌की वृग्यासे आपको
धर्मज्ञी भी परम तपसिनी और संतोषी मिली थी। दोनों-
का सारा समय भगवान् शालिग्रामकी सेवामें व्यतीत होता
था। आप किसीसे माँगते नहीं थे, इसलिये कर्मी-कर्मी
कई दिनोंनक मोजन किये विना रह जाना पड़ता था।

एक दिनकी बात है कि अक्समात् एक ढण्डी संन्यासी
गाँवमें आ गये और उन्होंने आकर किसी कर्मकाण्डी
ब्राह्मणका मकान पूछा। उन्हें मिला करनी थी। लोगोंने
पण्डित इङ्गरुदत्तजी महाराजका मकान बता दिया। स्वामीजी
आपके पास आये। स्वामीजीको देखने ही पण्डितजी
गद्दाढ़ हो गये और श्रीचरणोंमें सिर टेककर बड़ी श्रद्धा-
भक्तिये बैठाया। मिक्की प्रार्थना की। स्वामीजी तो
मिला करने आये ही थे। पण्डितजी वरमें गये और
धर्मज्ञामें स्वामीजीके लिये मिला बनानेको कहा।

स्वामीजीने कहा—‘नाय ! धर्में तो एक डाना भी नहीं
है, मिला कैसे बनेगा ?’ पण्डितजी बड़ी चिन्तामें पड़े।
अन्तमें यह तय हुआ कि न माँगनेकी ग्रतिजा आज
कोही जाय और पड़ोसीके घरसे आद्य ले आया जाय।

ब्राह्मणी आद्य-डाल ले आयी और मिला तैयार हो गयी।
दोनों कई दिनोंके भूखे थे, पर उन्हें अपनी चिन्ता नहीं
थी। चिन्ता यह थी कि धरपर आये ढण्डी संन्यासी
कहीं भूखे न चले जायें। पण्डितजीने भरसक प्रयत्न
किया कि इस बातका तनिक्र मी स्वामीजीको पता न
लगे। बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे रसोई तैयार हो जानेपर सबसे
पहले श्रीइङ्गरुदत्तजी महाराजको भोग लगाया गया और फिर
स्वामीजीको बड़े ग्रेमसे मिला करायी गयी। पर न जाने कैसे
स्वामीजीको आपकी निर्वनताका पता लग गया और
स्वामीजीने मन-ही-मन कहा कि ‘देखो किन्तने वडे
उच्चकोटिके विद्वान् हैं, फिर भी उन्हें कई दिनों भूखे
रह जाना पड़ता है और संतोष तथा त्याग इतना कि
ये किसीको मालूम भी नहीं पड़ने देते।

स्वामीजीको पण्डितजीपर बड़ी दया आयी और उन्होंने
पण्डितजीका दुख-डादिय दूर करनेका निश्चय कर
लिया। स्वामीजी रसायन बनाना जानते थे और आपके पास
सोना भी था। आपने पण्डितजीको पास बैठाकर कहा कि
‘पण्डितजी ! मैं श्रीहरिद्वार जा रहा हूँ। आप अमुक दिन
श्रीहरिद्वारमें जन्मर आइये। मैं अमुक स्थानपर मिलूँगा।’
पण्डितजी इस रहस्यको नहीं समझ सके और उन्होंने
स्वामीजीकी आजाका पालन करनेकी दृष्टिसे श्रीहरिद्वार
जाना स्वीकार कर लिया। आप ठीक समयपर श्रीहरिद्वार
पहुँच गये और स्वामीजीसे मिले। स्वामीजी आपको
पाकर वडे प्रसन्न हुए। अगले दिन स्वामीजी और
पण्डितजी दोनों श्रीगङ्गामानके लिये गये और वहाँपर

पण्डितजीने बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे शाकानुसार स्नान-ध्यान किया । जब आप भजन-पूजनसे निवृत्त हो गये, तब स्थामीजीने पण्डितजीको अपने पास बुलाकर अपनी एक झोली निकाली और उसमेंसे आपने एक तो बहुमूल्य सुवर्णकी पाँच-सात तोलेकी मूर्ति निकाली और एक बड़ी सोनेकी डली निकाली तथा उसे हाथमें लेकर पण्डितजी महाराजसे कहा कि ‘इंगरदत्त । देखो यह सुवर्णकी मूर्ति है और यह कई तोले सुवर्णकी डली है, यह सब तुम ले लो । तुम वडे निर्धन ब्राह्मण हो । इसीलिये मैंने तुम्हें बुलाया था । जाओ अब तुम्हें इतना माल दे दिया है, तुम्हारी सारी निर्धनता भाग जायगी ।’

पण्डितजी महाराज स्थामीजीके हाथसे सब चीजें अपने हाथमें लेकर एकदम उठे और साथे श्रीगङ्गाजीके अदर गहरे जलमे जा पहुँचे । सन्यासीजी इस रहस्य-को न समझ सके । पण्डितजीने जाकर मन्त्र बोलते हुए उन बहुमूल्य मूर्तिको और सोनेकी डलीको एकदम जलमें बहा दिया और सब बाहर निकल आये । आपको इतने बड़े धनको न लेते प्रसन्नता हुई और न फेंकते हुए हुआ ।

जब स्थामीजीने यह देखा तो वे आश्वर्यमें छब गये और उन्हें इस घटनासे महान् दुख हुआ तथा उन्होंने क्रोधमें भरकर पण्डितजीको बड़ी डॉफ-फटकार सुनाते हुए कहा—‘अरे इंगरदत्त । दूसे यह क्या किया? हमने तुझे यह सब इस लिये नहीं दिया था कि तू हमें श्रीगङ्गाजीमें के जाकर फेंक दे ।’

पण्डितजीने हाथ जोड़कर नम्रतासे कहा—

पण्डितजी—महाराज । क्षमा करो तो बनाऊँ ?

स्थामीजी—ब्रताओ ।

पण्डितजी—महाराज । मैंने यह ठीक ही किया ।

स्थामीजी—कैसे ठीक किया ?

पण्डितजी—अपना भी कल्याण किया और आपका भी कल्याण किया ।

स्थामीजी—अरे मेरे पास भी नहीं रहने दिया और अपने पास भी नहीं रहने दिया । क्या यही कल्याण किया ?

पण्डितजी—जी हाँ महाराज, यही कल्याण किया ।

स्थामीजी—कैसे ?

पण्डितजी—महाराज ! मेरा तो कल्याण इस लिये हुआ कि हम ब्राह्मणोंको भला धनसे क्या मतलब ? हमारा धन तो तप ही है । इस तुच्छ धनमें फँसकर हम प्रसुको भूल जाते । और आपका कल्याण इसलिये हुआ कि शाश्वतमें सन्यासीके लिये द्रव्यका स्पर्श करना भी महान् पाप तथा निषिद्ध बतलाया है । इसलिये अब आपसे भी यह झक्कट छूट गया । इस प्रकार मेरा और आपका दोनोंका ही कल्याण हो गया ।

स्थामीजी महाराज तथा सैकड़ों दर्शनार्थी इस विलक्षण त्यागके दृश्यको देखकर चकित हो गये और दाँतोंतले अगुली दबा गये तथा कहने लगे ‘ऐसे कलिकालमे इस प्रकारके त्यागी ब्राह्मण मौजूद हैं । मैंने तो व्यर्थ ही सन्यास लिया । असली सन्यासी तो यही हैं । पण्डित इंगरदत्तने वास्तवमें अपना और मेरा दोनोंका कल्याण किया । इनका कहना बिलकुल सत्य है । त्याग ही ब्राह्मण और सन्यासियोंका भूषण है ।’

स्वप्नके पापका भीषण प्रायश्चित्त

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

परम सत श्रीबाबा वैष्णवदासजी महाराज बड़े ही उच्चकोटिके श्रीरामभक्त—सत थे । आपका सारा समय श्रीरामभजनमें व्यतीत होता था । जो भी दर्शनार्थी आपके पास आता, आप उसे किसी भी जीवको न सताने,

सबपर दया करने, जीवमात्रको सुख पहुँचाने और श्रीरामभजन करनेके लिये उपदेश देते थे । आपके सत्सङ्गसे हजारों मनुष्योंने जीवोंकी हत्या करना, मास-मछली, अड़े-मुर्गे खाना, किसीको सताना छोड़ दिया

था और श्रीरामभजन करना प्रारम्भ कर दिया था । श्रीहनुमान्‌जी महाराजकी प्रसन्नताके निमित्त आप बंदरोंको लड्डू खिलाते थे और मीठे रोटका भोग लगाते थे । आप मन, कर्म, वचन तीनोंसे किसीको न कभी सताते, न दुःख पहुँचाते थे । और सभीको इसी प्रकारका उपदेश दिया करते थे ।

खप्तमें किये पापका प्रायश्चित्त—शरीरका त्याग

एक दिन नित्यकी भौति जब भक्त आपके पास आये तो सबने देखा कि आज महात्माजीका चेहरा सदाकी भौति प्रसन्न नहीं है । क्या कारण है, इसका कुछ पता नहीं है । एक भक्तने उन्हें उदास देखकर पूछा—

भक्त—महाराजजी ! कुछ पूछना चाहता हूँ ?

महात्माजी—पूछो !

भक्त—आज आप कुछ उदास-से प्रतीत होते हैं ?

महात्माजी—हौं, ठीक, बिल्कुल ठीक ।

भक्त—महाराजजी ! क्यों ?

महात्माजी—हमसे आज एक घोर पाप हो गया ।

भक्त—महाराज ! क्या पाप हो गया ?

महात्माजी—पूछो मत ।

भक्त—पाप और आपसे हो गया । यह तो असम्भव है । बतलाइये, क्या हुआ ?

महात्माजी—नहीं भैया ! हो गया—बस हो गया, पूछो मत, घोर पाप हो गया ?

भक्त—नहीं महाराज ! बताना ही होगा ।

महात्माजी—पाप ऐसा हुआ है कि जिसके कारण खाना, पीना, सोना सभी हराम हो गया है ।

भक्त—महाराज ! आखिर क्या पाप हो गया ?

महात्माजी—आज रात्रिको हमने खप्त देखा और आगे मत पूछो भैया !

भक्त—नहीं महाराज, बताओ क्या हुआ ?

महात्माजी—अरे भैया ! हुआ क्या, खप्तमें हमसे घोर

पाप बन गया जो कि महात्माओंसे नहीं होना चाहिये । खप्तमें देखा कि हमने खप्तमे अपने हाथोंसे किसी बदरको मार डाला है । यही पाप अब हमें चैनसे नहीं बैठने दे रहा है । हाय ! मुझसे खप्तमे बदर मारा गया । मालूम होता है कि मुझसे श्रीहनुमान्‌जी महाराज अप्रसन्न हैं तभी तो मुझसे ऐसा घोर पाप हुआ ।

भक्त—महाराज ! आप चिन्ता न करें । यह तो खप्त है, खप्त दीखते ही रहते हैं ।

महात्माजी—क्या मुझे ऐसे ही खप्त दीखने चाहिये थे ? क्या अच्छे खप्त मेरे भाग्यमे नहीं लिखे थे । बदर मारना तो घोर पाप है । इससे बढ़कर और घोर पाप क्या होगा ? शास्त्रोंमें लिखा है कि यदि भूलसे भी बंदर मर जाय तो नरक जाय और जबतक पैदल चारों धार्मोंकी यात्रा न कर ले, पाप दूर नहीं होता । हाय ! मुझसे खप्तमें बदर मारा गया, बड़ा पाप हुआ ।

भक्त—महाराज ! आप खप्तकी बातोंमें व्यर्थ दुखी होते हैं ।

महात्माजी—अरे, खप्तमे ऐसा घोर पाप होते देखना क्या उचित था ?

भक्तोंने महात्माजीको खूब समझाया, पर महात्माजी-का दुःख दूर नहीं हुआ । आपने खप्तमें बंदर मारे जानेके कारण खाना-पीना सब छोड़ दिया और दिन-रात श्रीहनुमान्‌जी महाराजसे क्षमा-प्रार्थना करनी प्रारम्भ कर दी । एक दिन भक्तोंने आकर देखा कि महात्माजीके शरीरपर कुछ मला हुआ है और आपके मुखसे श्रीराम-रामका उच्चारण हो रहा है और आपका शरीर जल रहा है । भक्त देखकर भागे पर महात्माजीने उन्हें पास आनेसे रोका और कहा ‘वहीं रहो, मुझे न छूओ । मैं पापी हूँ, मैंने खप्तमें बदर मार दिया है, अब मैं अपने पापोंका सहर्ष प्रायश्चित्त कर रहा हूँ । सत वह है जो खप्तमें भी किसी जीवको न सताये, किसीका जी न दुखाये ।’

भगवत्सेवक अजेय है

महावीर हनूमान्‌जी

जयत्यतिवलो गमो लक्ष्मणश्च महावलः ।

राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याङ्गिष्ठकर्मणः ।

हनूमान् शत्रुंसन्यानां निहन्ता मास्तात्मजः ॥

न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिवर्लं भवेत् ।

शिलाभिश्च प्रहरतः पाठपैश्च सहस्रशः ॥

अर्द्धित्वा पुरीं लङ्घामभिवाद च मैथिलीम् ।

समृद्धार्थों गमिष्यामि मिष्टां सर्वरक्षसाम् ॥

—वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड ४२ । ३३ से ३६

महावीर श्रीहनूमान्‌जी समुद्र-लङ्घन करके लङ्घोमें पहुँच गये थे । उन्होंने अशोकवाटिकामें श्रीजानकीर्जीके दर्शन कर लिये थे और उनको श्रीराघवेन्द्रका कुण्डल-सत्राद सुना दिया था । अब तो वे श्रीविदेहनन्दिनीकी अनुभवि प्राप्त करके अशोकवाटिकामें पहुँच गये थे ।

त्रिभुवनजी गङ्गसराज गवणका परमप्रिय वाटिका घृता हो रही थी । वृक्षोंकी पक्कियाँ धरणायी पड़ी थीं । तरुणाखाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी थीं । जहाँ-तहाँ टूँठ खड़े थे और उनके मध्य हेमाभ, पर्वताकारदेव, प्रचण्टमर्ति श्रीपवनकुमार वार-वार हुकार करते कृट रहे थे, गिराते-नोडते जा रहे थे वृक्षोंको । उपवनके रक्कोमें से एक किसी प्रकार साहस करके आगे बढ़ा । कुछ दूरमे ही उसने पूछा—‘निर्भाक कपि ! तू कौन है ?’

जैसे विश्वाल पर्वतके समुख छोटा-सा भैंसा खड़ा हो । वृक्षोंमें भी ऊपर मस्तक उठाये केजरीकुमारके समुख कुछ दूर खड़ा वह राक्षस—एक बार उसकी ओर देखा श्रीरामदूतने । वे स्थिर खड़े हो गये और उनकी मुवनघोषी हुकार गूँज उठी—‘अमित पराक्रम श्रीगंधवेन्द्रकी जय ! महावलगाली कुमार लक्ष्मणकी जय ! श्रीरघुनाथजीद्वारा रक्षित वानरराज सुग्रीवकी

जय ! मैं अद्वृतकर्मा कोसलेन्द्र श्रीरामका दूत हूँ । राक्षस ! शत्रुग्नेनाके सहारक मुझ पत्रनपुत्रका नाम हनूमान् है । मुन ले भली प्रकार । पर्वतगिरियों और सहस्रों वृक्षोंमें मैं जब प्रहार करने लगूँगा, तब सप्राप्तमें एक सहस्र रावण भी मेरा सामना नहीं कर सकेंगे । तुमलोग सावधान हो जाओ ! इस उपवनको ही नहीं, पूरी लङ्घापुरीको चौपट करके, श्रीजानकीको प्रणाम करके, तुम सब राक्षसोंके देखते-देखते मैं अपना कार्य पूर्ण करके यहाँसे जाऊँगा ।’

यह निर्भय गर्जना गर्वकी नहीं थी । यह थी अपने सर्वसमर्पण स्वामीके प्रति विद्यासकी अभय गर्जना । भुवनविजयी रावण देखता रह गया और उसकी लङ्घा भस्म कर दी—अकेले हनूमानने भस्म कर दी । कैलासको उठा लेनेवाला रावण, महेन्द्रको बड़ी बनानेवाला मेवनाट और सुरासुरजयी राक्षसवीर—सभी थे, सभी देखते रहे, किन्तु किसीके किसे कुछ नहीं हो सका । लङ्घाको भस्म करके श्रीजनकलन्दिनीके चरणोंमें प्रणाम करके समस्त राक्षसोंके देखते-देखते हनूमान् सकुगल लौट गये । त्रिभुवनके स्वामीके सेवकको पराजित कर कौन सकता है ? वह तो नित्य अजेय है ।

दीनोंके प्रति आत्मीयता

(प्रेषक—श्रीवज्गोपालदासजी अग्रवाल)

श्रीधाम पुरीके ‘बड़े बाबाजी’ सिद्ध श्रीरामरमणदास-जीके विद्यार्थी-जीवनका नाम राइचरण था । उस समय इनकी आयु दस-बारह वर्षकी थी । इस अवस्थामें आप सदैव परहितमें तत्पर रहते थे । एक दिन विद्यालयसे आते समय एक विद्यार्थीको बिना छातेके आता हुआ देखकर आपने अपना छाता उसे दे दिया और स्वयं धूपमें तपते घर आये । एक दिन एक व्यक्तिको बबाभावसे जाडेमें कष पाते देख आपने अत्यन्त आग्रहपूर्वक अपना मूल्यवान् शीतवस्त्र उसे दे दिया और स्वयं शीतसे कॉपते हुए घर लौटे । मौसे डरकर कहा—‘मौं, मेरी अलवान कहीं खो गयी ।’ मौं कनकसुन्दरी दुख करने लगी । इसपर उनके कुछ साथियोंने कहा कि ‘नहीं माँ ! राइचरण झूठ बोल रहा है, कल स्कूलसे आते समय एक गरीबको जाडेसे कॉपते देखकर यह अपनी अलवान उसे दे आया है ।’ यह सुनकर देवी कनकसुन्दरी हँसकर कहने लगी—‘अच्छा ! गरीबको दे आया, बहुत अच्छा किया । माँ जगदम्बा तुझे और

देंगी ।’ माता और पुत्रके इस व्यवहारको देखकर सभी अवाक् रह गये । जैसी दयामयी माँ, वैसा ही दयार्द्धदय वेटा ।

एक दिन राइचरणने देखा कि एक बृद्ध बाजारसे लौटते समय ज्वराकान्त हो गया है । वह दाल-चावलादि सामान बाजारसे खरीदकर घर ले जा रहा था । अब वह उस सामानको लेकर घर जानेमें असमर्थ है । आपने शीघ्रतासे उसका गढ़र उठाकर अपने सिरपर रख लिया और उसके घर ले जाने लगे । वह भय एव सकोचसे कहने लगा—‘बाबूजी । आप मेरा बोझ अपने सिरपर न रखें, मैं तो नीच जाति धोवी हूँ ।’ आपने उत्तर दिया—‘तुम कोई भी क्यों न हो, परिचयसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं । इस समय तुम पीड़ित हो, चलो, तुम्हें घर पहुँचा दूँ ।’ बृद्धको पहुँचाकर घर लौटनेमें इन्हें देर हुई, स्नेहमयी माँ रोने लगीं । कुछ समय पश्चात् जब आप घर पहुँचे तो बात सुनकर माता आनन्दमग्न हो गयीं ।

संस्कृत-हिंदीको छोड़कर अन्य भाषाका कोई भी शब्द न बोलनेका नियम

(लेखक—भक्त श्रीरामगणदासजी)

पूज्यपाद गोखामी श्रीगुल्लजी देववाणी—संस्कृत, हिंदी या ब्रजभाषाको छोड़कर दूसरी भाषाका एक शब्द भी नहीं बोलते थे । उन्होंने एक दिन सुना कि उनके पुत्र गोखामी श्रीराधाचरण अग्रेजी पढ़ रहे हैं, तब आपने उन्हे अपने पास बुलाया और बहुत समझाया । एक बार आप श्रीसाहूजी साहेब श्रीलितकिंगोरीजीसे

मिले थे । बातों-ही-बातोंमें बदूकका प्रसङ्ग सामने आ गया । आपका कड़ा नियम था कि संस्कृत और ब्रजभाषाको छोड़कर एक शब्द भी नहीं बोलेंगा । आपने बदूक चलानेका वर्णन इस प्रकार ब्रजभाषामें किया—

—‘लौहनलिकामें इयाम चूर्ण प्रवेश करिके अभिः दीनी तो भङ्गम शब्द भयौ ।’

गो-व्राह्ण-भक्ति

स्वर्गीय धार्मिक नरेंग परम भक्त महाराज प्रतापसिंहजी काश्मीरके जीवनकी घटनाएँ
(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

स्वर्गीय राजभीरुनगेश महाराज प्रतापसिंहजी वडे ही कठर अनिक, भर्दमगयग तथा गो-व्राह्णगोंके अनन्य भक्त थे। व्राह्णगोंके देवताएँ ही गांडे हो जाते थे और उनका बदा आश्रमनान करन थे। आपके यहाँ सैकड़ों व्राह्ण रहा रहने थे। कोई मिदान् व्राह्ण र्दीपा पाठ करते, तो कोई चण्डीजा पागयग, कोई लक्ष्मीका पठन करते तो कोई जग-अनुष्टुप, कोई पूजा-अर्चना तो कोई वेदपाठी व्राह्ण वेदपाठ दरने। आप प्रतिदिन वर्षी श्रद्धा-भक्तिने व्राह्ण-भोजन करते थे और हर महीने उन्हें दान-दक्षिणा देवत प्रसन्न करते थे। एक बार जब आपने धरमाञ्जने कला कि ‘महाराज ! आपने इन सैकड़ों व्राह्णगोंका गर्व वर्य ही क्यों वौंध रखा है, इससे क्या लाभ है?’ यह सुनकर आपको बड़ा दुःख हुआ और आपने उन्हें उत्तर दिया कि ‘भाई ! देवो वहुतमे राजा-नाम चिन्तास तथा दुगचारमें धन तथा जीवन विता रहे हैं। उनमें तो हमारा यह कार्य लारोंगुना अच्छा है जो हमें पूज्य व्राह्णोंके निष्पत्रनि दर्शन करनेका सामाय प्राप्त होता है और उनके द्वारा पूजा-पाठ करनासे हमाग जन्म सफल हो रहा है। वेदध्वनि, वेदपाठ, देव-पूजा आदिके कारण देश सुख-शान्तिकी

ओर जा रहा है। यह व्यर्थ खर्च नहीं है वल्कि इसीमें धनकी सार्थकता है।’ यह सुनकर सब शान्त हो गये।

गोमानाके भी आप ऐसे अनन्य भक्त थे कि आपकी चियासनमें असी ग्रनित मुसलमान होनेपर भी गोवध सर्वथा निपिद्ध था। गायें निर्भय होकर विचरा करती थीं। महाराजको चलते समय रास्तेमें यदि गाय मिल जाता थी तो आप गायको बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे सिर छुकाते थे और दाहिनी ओर लेते थे। एक बार आप जा रहे थे तो आगे रास्तेमें कहाँ गाय बैठी थी, नौकरोंने दोइकर गायको उठा दिया ताकि महाराजके लिये रास्ता साफ हो जाय। आपने उस नौकरको वडे जोरसे ढाँटकर कहा कि ‘आनन्दसे बैठी गोमाताको कष्ट पहुँचाना बडा अपराध है। इससे बढ़कर और क्या पाप होगा ? जिस गोमाताकी रक्षाके लिये परमात्मा श्रीकृष्ण अवतार लेकर आने हैं और नगे पौंछ उन्हें चराते जगल-जगल भटकते हैं, उसी गोमाताको मेरे लिये कष्ट पहुँचाना बडा पाप है। हम क्षत्रियोंका जन्म गोमेवाके लिये हुआ है, गोमाताको कष्ट पहुँचानेके लिये नहीं। आगेको मूँसे भी ऐसा किया तो दण्ड दिया जायगा।’

आजादकी अद्भुत जितेन्द्रियता

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

सुप्रसिद्ध महान् देशभक्त क्रान्तिकारी तरुण वीर चन्द्रशेखर आजाद वडे ही दृढ़प्रतिज्ञ थे। हर समय आपके गलेमें यज्ञोपवीत, जेवमें गीता और पिस्तौल साथ रहा करती थी। आप कठर आस्तिक, ईश्वरपरायण, सदाचारी, ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय और सयमी थे। व्यभिचारियोंको बड़ी धृणाकी दृष्टिसे देखा करते थे

और कहा करते थे कि जो कामी कुत्ता है और परखीगमी है, वह न तो देश-जातिकी सेवा कर सकता है और न अपना ही उत्थान कर सकता है। आप चाहते थे कि भारतमें एक भी व्यभिचारी पुरुष न रहे और एक भी व्यभिचारिणी ली न हो। जहाँ भी किसीने आपके सामने तनिक भी लीका प्रसङ्ग चलाया

तो आप आपत्ति किये बिना नहीं रहते थे और आप कहा करते थे कि खीसे दूर रहनेमें ही देशमक्तका कन्याण है।

एक बार आप अपने एक मित्र महानुभावके यहाँ ठहरे हुए थे। उनकी नवयुवती कन्याने उन्हें काम-जालमें फँसना चाहा, आजादजीने डॉट्कर उत्तर दिया ‘इस बार तुम्हे क्षमा करता हूँ, भविष्यमें ऐसा हुआ तो गोलीसे उड़ा दूँगा।’ यह बात आपने उसके

पिताको भी बता दी और भविष्यमें उनके यहाँ ठहरनातक बद कर दिया।

आपके पास क्रान्तिकारी दलके हजारों रुपये भी रहते थे, परतु उसमें अपनी कराहती माँको भी कभी एक पैसा आपने नहीं दिया। जब किसीने इस सम्बन्धमें उनसे कहा तो आपने उत्तर दिया ‘यह पैसा मेरा नहीं, राष्ट्रका है। चन्दशेखर इसमें एक भी पैसा व्यक्तिगत कायेमें नहीं लगा सकता।’

सिगरेट आपकी तो उसका धुआँ किसका?

(लेखक—स्वामीजी श्रीप्रेमपुरीजी)

एक बार कैलासाश्रम ऋषिकेशसे ब्रह्मलीन महात्मा स्वामीजी श्रीप्रकाशानन्दपुरीजी होशियारपुरसे हरद्वार पधार रहे थे। रेलके अम्बाल छावनी स्टेशनपर खड़ी होते ही तीन-चार पहलवान सेवकोंके साथ एक नव-शिक्षित युवक धूम्रपान करता हुआ स्वामीजीवाले डिव्वेमें चढ़ा। जिन नाक, आँख, मुखको प्रथम कभी सिगरेटके धुएँका परिचय नहीं था, उनको इससे बड़ा कष्ट हुआ। परतु उस अल्हड़ युवकसे कुछ कहना तो दूर रहा, उसकी ओर झाँकनेकी भी हिम्मत किसीकी न हो सकी। यह करण दृश्य स्वामीजीसे नहीं देखा जा सका। उन्होंने युवकसे कहा—‘आप नीचे प्लेटफॉर्मपर उतरकर धूम्रपान करें।’ युवक—‘क्यों? हम क्यों नीचे उतरें? हमारा सिगरेट पीना जो सहन न कर सकता हो, वही उतर जाय।’ स्वामीजी—‘आप देख रहे हैं कि आपके अतिरिक्त अन्य किसीको भी सहन नहीं हो रहा है, ऐसी दशामें सबके उतरनेकी अपेक्षा अकेले आपको ही यह कष्ट करना उचित है।’

युवक—‘सिगरेट हमारी है, हम पी रहे हैं, इसमें तुम्हारा क्या विगड़ता है? अपनी चीजका उपयोग करनेमें हम खतन्त्र हैं, हमें नीचे उतारनेका तुम्हें क्या

अधिकार है? हाँ, तुमसे न सहा जाता हो तो लो हमसे सिगरेट लो और तुम भी पियो।’ स्वामीजी शान्त, सौम्य, परतु प्रभावोत्पादक ढगसे बोले—‘जो कुछ विगड़ रहा है वह तो सबके सामने है, इस बीमत्स धूमसे अनम्यस्त इन बच्चे एवं माताओंकी मुखमुद्रा तो देखिये। आप खतन्त्र हैं, ईश्वरके अनुग्रहसे पूर्ण खतन्त्र बने रहें, किंतु खच्छन्दी बनकर दूसरोंकी खतन्त्रताका विधात न करे। हम-आप सभी भारतीय हैं, इस नाते आपसे उपर्युक्त निवेदन करनेका हमे पूरा अधिकार है। आप हमें सिगरेट भेंट कर रहे हैं, यह आपकी उदारता है, आप और भी उदार बनें, किंतु उड्डाऊ (दूसरोंके मुखपर धुओं उड़ानेवाले) मत बनें। सिगरेट आपकी है तो उसका धुआँ किसका है? वह भी आपका ही होना चाहिये। आप अपनी सिगरेट अपने ही मुखमें रखें और उसके धुएँको भी अपने ही मुखमें छिपाये रखें।’

युवकको कुछ प्रभावित हुआ-सा देख स्वामीजी और भी अधिक उत्साहसे उसे उपदेश देने लगे—‘मैं आपसे सिगरेटकी आशा नहीं रखता, प्रत्युत इस विनाशकारी व्यसनको सदाके लिये

छोड़ देनेकी आगा अवश्य रखता हूँ, मुझे आप कुछ देना चाहते हैं तो यही दीजिये। युवक तो आप हैं ही, कुलीन भी मालूम होते हैं, किंतु आपके मुख्यपर यौवनकी आभा कहाँ है? इस सत्यानाशी व्यसनने सब नष्ट कर डाला है। गरीबका स्थान्य अमृत्य है, मनके स्थान्यका महस्य इसमे भी कहीं अधिक है, सिगरेट दोनोंको चौपट कर देती है। मानवमे दानव बना डालनेवाले व्यसनमे मनुष्य जितना आसक्त रहता है उनना ही आरुक्त वह यदि व्यसनियोंके भी जीवनदाता प्रभुमें रह सके तो दानवमे देव बन जाता है।’

युवक ध्यानमे मुन रहा था, अन. स्थामीजीने प्रसन्ननापूर्वक अपना वक्तव्य चालू रखा—‘हम अपने जीवनकी लम्हाईको यथापि नहीं बढ़ा सकते, तथापि उसकी चौडाई, गहराई एव ऊँचाईको अवश्य बढ़ा सकते हैं और इसके लिये जीवनको दुर्बलसनोंसे ऊपर उठाना आवश्यक है। निर्मल वस्तुके ससर्गमे हमें निर्मलताका अनुभव नहीं होता, परतु मलिन वस्तुके तो स्फर्गमात्रसे ही मलिनताका चेप प्रत्यक्ष अनुभवमें आ जाया करता है। शुभ सस्कार सहसा नहीं पड़ते, अशुभ अभ्यास सहज ही हो जाता है। कपडेपर दाग लगनेमें देर नहीं लगती, देर लगती है दागके क्षुङ्गनेमें। उसके लिये खर्च तथा परिश्रम भी करना पड़ता है, इतनेपर भी सम्भव है, दाग सर्वथा साफ न हो, थोड़ा-बहुत धब्बा रह जाय। अपने जीवनकी भी यही दशा है।

जीवनको कलङ्कित करनेवाले व्यसनके लग जानेकी आशक्षा पद-पदपर रहती है, अत सदा सावधान रहना उचित है, असावधानीसे भी एक बार व्यसन लग गया तो फिर घोर परिश्रमके बिना उसका छूटना असम्भव है। दीर्घकालका व्यसन स्वभाव बन जाता है और स्वभाव (भला या बुरा, जैसा भी हो) सुदृढ़ हो जाता है। तात्पर्य कि व्यसनको शीघ्रतिशीघ्र छोड़नेके प्रयत्नमें तन-मनसे तत्पर हो जाना चाहिये। सुखकी आगा अयवा दुखके डरसे हम समझमें न आनेशारी और विचार करनेपर असत्य प्रतीत होनेवाली मान्यताओंको तो जोरसे पकड़े रहते हैं और सत्यको छूनेमें भी सकुचाते हैं। आप तो नि स्पृह एव निडर मालूम देते हैं, यही नहीं, सौम्य एव सुज्ञ भी प्रतीत होते हैं। मेरी बातें आपने ध्यानसे सुनी हैं, यदि हितकर जँची हों तो इनपर अभीसे अमल शुरू होना चाहिये और इस दुराप्राही दुर्व्यसनका त्याग करनेकी हिम्मत करनी चाहिये। वस, यही भिक्षा मैं आपसे चाहता हूँ। परम दयानिधान परमात्मा आपको सद्बुद्धि दें, शक्ति दें, साहस दें।’

युवकका सस्कारी हृदय पुकार उठा,—‘दूँगा, दूँगा, स्थामीजीको मनचाही भिक्षा अवश्य दूँगा।’ उसने सिगरेटका डिब्बा फेंक दिया और सबके सामने ही स्थामीजीके चरण पकड़कर प्रतिज्ञा की ‘मगवन्। मर जाना कबूल, पर सिगरेट पीना हराम है।’ खानदानी, श्रद्धालु तथा युवा हृदय स्थामीके उपदेशाभृतसे प्रभावित था।

कर सौं तलवार गहौ जगदंबा

‘जग जीवन जानि युकारि कहै कर सौं तलवार गहौ जगदंबा।’

उसी समय एक बिल्कुल नेंगी स्त्री हाथमें तलवार लिये वहाँ आयी और चोरोंसे सब धन जीवन मिश्रको दिल्ला दियातथा चोर अचे होगे। कुछ दिनों बाद जब चोरोंने जीवन मिश्रकी बहुत खुशामद की, तब उनकी आँखें ठीक हुईं।

जीवन मिश्र नामके एक पण्डित थे। वे देवीके भक्त थे। एक दिन वे कहींसे देवीकी पूजा करवाके आ रहे थे। उनके पास बहुत रूपये थे। रास्तेमें उनको चोरोंने घेर लिया और कहा—‘तुम्हारे पास जो कुछ है सब दे दो, नहीं तो, हम तुमको मार डालेंगे।’ तब जीवन मिश्रने कहा—

जीव ब्रह्म कैसे होता है

(लेखक—श्रीयोगेश्वरजी निपाठी, दी० ए०)

वाचा श्रीमास्त्ररानन्दजी अपनी गङ्गातटकी कुटियामे वैठे भगवन्नामका जप कर रहे थे। सहसा आहट पाकर उनकी दृष्टि सामनेकी ओर गयी। बोले—‘आओ, माधवदास! कैसे आ गये?’

अभिवादनादिके बाद बैठकर माधवदासने विनम्र भावमे पूछा—‘महागजजी! क्या कसी जीव ब्रह्मके पदको ग्रास कर सकता है? यदि कर सकता है तो कैसे?’

वाचाजीने कहा—कमरेकी दीवाल दूटनेसे जैसे कमरेका आकाश बाहरके आकाशसे मिलकर एक हो जाता है, वह है तो एक अब भी, परंतु दीवालके कारण अलग मानता है। वैसे ही मायादूषी दीवालके हट जाने पर जीव ब्रह्म हो जाता है। अयत्रा यों समझो कि एक छोय घड़ा, जिसमे घोड़ा जल है, नदीमें वहता जा रहा है, घड़ा फूट जाता है तो घड़ेका जल नदीके जलमें मिलकर एक हो जाता है, है तो जल अपनी जातिसे एक ही, पर घड़ेके कारण अलग दीखता है, वैसे ही मायादूषी घड़ेके फूट जानेपर जीव ब्रह्ममें मिल जाता है।

न समझमें आया हो तो जाओ भीतरसे लोहेकी डिविया उठा लाओ। आज्ञा पाते ही माधवदास अंदर-

से डिविया ले आये और वाचाजीसे पूछने लगे—‘इसमें क्या है?’

वाचाजी बोले—इसमें पारसकी वटिया है।

माधवदासके आश्र्वयका ठिकाना नहीं रहा, उन्होंने पूछा—‘महाराज! मैंने तो सुन रखा है कि पारसके स्पर्शसे लोहा सोना हो जाता है, फिर यह लोहेकी डिविया लोहेकी ही कैसे रह गयी?’

‘समझ जाओगे भैया! जरा इसे खोलो तो’ वाचाजीने कहा। माधवदासने तुरंत डिविया खोली, देखा कि कोई वस्तु पतली कागजकी झिल्लीमे लपेटी रखी है।

वाचाजी बोले—‘भैया! इस कागजकी झिल्लीको निकालकर वटियाको डिवियामे रख दो।’ आज्ञा पाकर माधवदासने ऐसा ही किया और डिविया सोनेकी हो गयी। वाचा श्रीमास्त्ररानन्दजीने कहा—‘देखो—लोहेकी डिवियामें पारस था, पर कागजकी झिल्लीका व्यवधान बीचमे था। पारसका स्पर्श नहीं हो पाता था। इसीसे लोहा लोहा बना रहा। इसी प्रकार यह पतली-सी माया है जिसने स्वरूपतः एक होनेपर भी ब्रह्मसे जीवको अलग कर रखा है। माया हटते ही जीव ब्रह्म हो जाता है।’

भगवत्-प्रेम

एक समयकी बात है। महात्मा ईसा अपने शिष्यों-से घिरे हुए एक स्थानपर विश्राम कर रहे थे। कुछ देर पहले उपदेश देकर कहाँ बाहरसे आये हुए थे।

कुछ गिष्ठ महिलाएँ उनके दर्शनके लिये आ पहुँचीं। शिष्योंने उनको महात्मा ईसाके पास जानेसे रोक दिया। उनकी गोदमें भोले-भाले नन्हे बच्चे थे।

‘उन्हें मेरे पास आने दो। ये बच्चे स्मरण दिलाते हैं कि ईश्वरके प्रेमराज्यमें आनेके लिये इन्हींके समान सीधा-सादे निष्कपट हृदयसे भगवत्तेमकी आराधना करनी चाहिये।’ महात्मा ईसाने शिष्योंको भगवत्तेमका रहस्य समझाया।—४० श्री०

ये भगवत्तेमकी निर्मल मूर्ति हैं। महात्मा ईसाने बच्चों-को गोदमे ले लिया और अपने स्नेहामृतसे उन्हे धन्य करने लगे।

‘परमात्मा प्रेम हैं। उनके दिव्य राज्यमे—भक्ति-साम्राज्यमें प्रवेश करनेका साधन प्रेम, केवल प्रेम है। बच्चेके समान सीधे-सादे निष्कपट हृदयसे भगवत्तेमकी आराधना करनी चाहिये।’ महात्मा ईसाने शिष्योंको भगवत्तेमका रहस्य समझाया।

पड़ोसी कौन ?

एक बार कोई वर्षा इनानसीहके पास आया और कहने लगा—‘प्रभो ! मुझे अमरत्व-प्राप्तिके लिये क्या करना होगा ?’ ईसाने बहा—‘तुम्हारे कानूनमें क्या लिखा है ?’ कर्णीउने उत्तर दिया—‘प्रभो ! कानूनमें नो यह लिखा है कि दृमें भगवान्को हटायमें सर्वाल्मना ग्रेम करना चाहिये । तन, मन, शक्ति, जीवन सबको भगवान्में लगा देना चाहिये और अपने पड़ोसी डृमियोंको भी भगवान्ने सम्बद्ध कर देना चाहिये ।’

ईसाने कहा—‘विल्लुड ठीक तो कहा । बस, तुम दसीका आचरण करो और तुम अपनेको नित्य सनानन अङ्गन-जीवनमें प्रगिष्ठ समझो ।’

‘तर पड़ोसी नेग कौन है ?’—वर्णीउने ठीक-ठीक समझना चाहा ।

‘इना बोले—‘देवो ! एक व्यक्ति जेन्सअसे जेरि-
को जा रहा था । वीचमें उसे कुछ चोर मिल गये ।
उन्होंने उसका साग बन दीन लिया तथा वे उसे मार-
पीछर अवमरी स्थितिमें छोड़कर छलने बने । स्योग-
वश उसमें एक पाढ़री आया । उसने उम्य व्यक्तिको
बहाँ पड़े देखा और देखकर वह एक ओर किनारे

खिसक गया । इसी प्रकार एक दूसरा छोटा पाढ़री आया और वह भी उसे देखकर एक ओर चलना बना ।

पर उसी रात्नेमें एक समरियाका यात्री भी जा रहा था । उसने उस आहत व्यक्तिको देखा । उसे उस-
पर दया आयी, उसने उसके पास जाकर धार्वोकी
मरहम-पट्टी की । उसे कवेपर टॉक्कर एक वर्मशालामें
पहुँचाया और उसकी सेवा-शुश्रूषा की । दूसरे
दिन जब वह जाने लगा, तब वर्मशालावालोंसे कहता
गया—‘डेंगो, तुमलोग इसका ध्यान रखना । इसकी
सेवामें तुम्हारे जो कुछ व्यय होगा, मैं लौटकर तुम
लोगोंको चुका दूँगा ।’

‘अब कहो इन तीनोंमेंसे उस धायल आदर्माका
सगा पड़ोसी कौन हुआ, दोनों पाढ़री या वह
अपरिचित यात्री ?’

‘वह अपरिचिन, जिसने उसपर दया डिखायी ।’
वर्णील बोला ।

‘तो बस, तुम भी इने समझकर बैसा ही आचरण
करो, बैसे ही बनो ।’—जा० श०

दर्शनकी पिपासा

महान्मा ईसाने जेरियो नगरमें ग्रेवेड किया । क्षण-
मात्रमें उनके दर्शन और उपनेड-श्रवणके लिये एक वर्डी
भीड़ एकत्र हो गयी । महान्मा ईसा राजपथपर आगे
बढ़ने लगे और भीड़ उनके पीछे थी ।

‘मैं महान्माका दर्शन अवश्य करूँगा । मुझे इस
दर्शनसे कोई नहीं रोक सकता है । यह सच बात है
कि महात्माओंके दर्शनसे कल्याण होता है ।’ नगरका
शुल्क-आदाता जैकियस सोच रहा था । महात्माके दर्शन-
की प्यास बढ़ रही थी । भीड़ निकट आ गयी, महात्मा

ईसा भीडसे इस तरह विरे थे कि उनका दर्शन उसके
लिये कठिन हो गया । उसका कद (आकार) भी
नाय था । पर अचानक उसने उपाय सोच लिया ।

राजपथपर ही योड़ी दूरपर अंजीरका एक बृक्ष था ।
जैकियस दौड़कर उसपर चढ़ गया । वह बैठने ही जा
रहा था कि जनसमूह आ पहुँचा । अचानक भीड़
बृक्षके नीचे ही रुक गयी । शुल्क-आदाता (टैक्स
कल्कर) को बड़ा आश्र्वय हुआ जब महात्मा ईसाने

उसका नाम लेकर नीचे आनेको कहा ।

‘जैकियस । शीघ्र नीचे उतरो । आज मैं तुम्हारे घरपर निवास करूँगा ।’ महात्मा ईसाने उसके सन्धावपर

प्रसन्नता प्रकट की । जैकियसकी दर्शनकी प्यास निवृत्त

हो गयी और उसने अपने-आपको धन्य माना ।

—रा० श्री०

परमात्मामें विश्वास

‘वीर सैनिक ! धूम जाओ, आगे बढ़नेपर प्राण चले जायेंगे ।’ राजकन्याने धोड़के सवारको सावधान किया । वह सुन्दर-से-सुन्दर वक्ष पहने समुद्रतटपर किसीकी प्रतीक्षा कर रही थी ।

‘परमात्मामें विश्वास रखनेवाला, उनकी कृपापर निर्भर रहनेवाला किसीसे भी नहीं डरता, मृत्यु भी उसके सामने आनेमें सकोच करती है ।’ सैनिक आगे बढ़ आया, उसके हाथमें तलवार और भाला था ।

राजकन्या उसे देखकर आपादमस्तक सिंहर उठी । पीछे कुछ दूरसे लोग जोर-जोरसे चिल्हा रहे थे, वे दल-दलवाली पहाड़ीपर बने नगरके प्राचीरपर खडे होकर समुद्रकी ओर देख रहे थे ।

‘इस समुद्रमेंसे अभी कुछ ही क्षणोंमें एक काला नाग निकलनेवाला है । समुद्रकी नीली-नीली तरङ्गोंका रंग काला होता जा रहा है । इस नागने अनेक बार हमारे नगरमें प्रवेशकर अनेक पशु-पक्षी और प्राणियोंका प्राणान्त कर डाला है । प्रत्येक वर्ष एक कुमारी इसकी पूजाके लिये इस स्थानपर उपस्थित होती है और नाग उसका भक्षण करता है । यदि नगरकी ओरसे उसे पूजा नहीं मिलती है तो वह नित्य नगरमें प्रवेश कर उत्पात करता है ।’ राजकन्या शवराने अपनी उपस्थिति-का कारण बताया ।

‘तुमलोग भगवान्‌को नहीं मानते हो इसीसे यह उत्पात हो रहा है । भगवद्गत्कोंका इन त्रिपैले पदार्थोंसे कोई अमङ्गल नहीं हो सकता ।’ इगलैंडकी राज-कन्याका सैनिक जार्जने समाधान किया ।

समुद्रकी उत्ताल तरङ्गे केनिल हो उठीं और भयकर नाग विपन्नमन करता हुआ समुद्रतटपर आ गया । उसके मुखसे विकराल ज्वाला निकल रही थी । नागने जार्जपर आक्रमण किया । जार्जने भाला चलाया, पर उसके हजार टुकडे हो गये । वीर जार्ज शान्त चित्तसे भगवान्‌की प्रार्थना करने लगे । नागकी शक्ति कुण्ठित हो गयी । भगवान्‌के भक्तने उसे अपने वशमें कर लिया ।

शवरा और जार्ज नगरकी ओर बढ़ने लगे और नाग शान्तिसे उनके पीछे-पीछे चलने लगा । बाजारमें पहुँचते ही लोग नागको देखकर इधर-उधर भागने लगे ।

‘भाई ! डरनेकी बात ही नहीं है । परमात्माकी शक्तिमें विश्वास करो; परमात्माकी भक्ति प्रदान करनेके लिये ही मैंने नागको अपने पीछे-पीछे आनेकी प्रेरणा दी है ।’—जार्जने राजधानीके लोगोंमें परमात्माके प्रति विश्वास पैदा किया । वे ईश्वर-विश्वासीके सम्पर्कसे आस्तिक हो गये । सत जार्जके जीवनकी यह एक महान् धर्म कही जाती है ।—रा० श्री०

विश्वासकी शक्ति

साइमन नामक एक प्रेमी व्यक्तिने महात्मा ईसामसीहको भोजनके लिये अपने घर निमन्त्रित किया ।

एक नगर-महिलाने साइमनके घरमें प्रवेश किया । उसने महात्मा ईसाके चरण पकड़ लिये; धोकर उनपर

तेल मलना आरम्भ किया । उसके नेत्रोंसे अशुक्त झरने लगे । साइमन महिलाकी उपस्थितिसे आश्चर्य-चकित हो गया । मैगडलनके दुश्शरित्रिसे नगरका बच्चा-बच्चा परिचित था । लोग उससे धृणा करते थे ।

साइमनने सोचा कि यदि ईसा भगवान्‌के दूत होंगे तो मैगडलनको पापिनी समझकर उसे अपने सामनेसे हटा देंगे।

‘मुझे तुमसे कुछ कहना है साइमन !’ महात्मा ईसाके गव्वथे। उनके चरणोंको मैगडलनके अश्रुकण श्रद्धापूर्वक धो रहे थे। ईसाके इतना कहते ही वातावरण में अद्भुत शान्ति छा गयी।

‘अवश्य कृपा कीजिये !’ साइमनने आदर प्रकट किया।

एक महाजनसे दो व्यक्तियोंने क्रमशः पाँच सौ पेस और पचास पेसका ऋण लिया था। जब उनके पास ऋण भरनेके लिये कुछ भी नहीं रह गया, तब महाजनने दोनोंको ऋणमुक्त कर दिया। क्षमा प्रदान की। बताओ तो उनमेंसे कौन व्यक्ति उसे अधिक चाहेगा ? ईसाका प्रश्न था।

‘मेरा अनुमान है कि जिसपर उसने अधिक कृपा की वही महाजनको विशेषरूपसे चाहेगा !’ साइमनका निवेदन था।

‘तुमने ठीक कहा !’ महात्मा ईसाने साइमनकी प्रशासा की और मैगडलनकी ओर पहले-पहल दृष्टिपात किया।

‘साइमन ! तुम देखते हो इस महिलाको। मैंने

तुम्हारे घरमे प्रवेश किया, तुमने मेरे चरणोंके लिये पानी नहीं डिया, पर इस पत्रित्र देवीने अपने अश्रुओंसे मेरे चरण धोये और केशोंसे पोछ दिये। तुमने मेरे सिरपर तेलतक नहीं रखा, पर इसने मेरे पैरोंकी तेलसे मालिश की। मेरी यकात्र दूर की। मैं तुमसे निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि इसके पाप, जो अनेक थे, इस श्रद्धामयी और पवित्र तथा निष्काम सेवासे धुल गये। इसके पाप क्षमा कर दिये गये। इसने अधिक प्रेम प्रकट किया।’ ईसाने साइमनकी शङ्का-निवृत्ति की।

‘तुम्हारे पाप क्षमा कर दिये गये !’ ईसाने मैगडलनको आश्वासन दिया।

‘इन्हे दूसरोंके पाप क्षमा करनेकी शक्ति कहाँ है ?’ उपस्थित भीड़ने शान्ति भङ्ग की।

मैगडलन रो रही थी। उसके हृदयके पश्चात्तापका प्रपात नयनोंसे प्रवाहित हो रहा था।

‘तुम्हारा यह विश्वास कि सत और महात्माकी सेवासे पाप नष्ट हो जायेंगे, सफल हुआ। विश्वासमें वडी शक्ति होती है। यह सत्यकी शक्ति है, इससे परमात्मा मिल जाते हैं।’ ईसाने मैगडलनको अपने कृपामृतसे परम पवित्र कर दिया। —र० श्री०

दीनताका वरण

संत फ्रासिसके जीवनकी वात है। इटलीके अस्सीसाई नगरमें अपनी युत्रावस्थाके दिन उन्होंने राग-रंग और आमोद-ग्रमोदमें विताये। धनियोंके लडकोंके साथ वे कपडे पहनने और विलासपूर्ण ढंगसे रहनेमें होड़ लगाया करते थे। एक दिन उनके जीवनमें विचित्र परिवर्तन हुआ।

उन्होंने अपने रेशमी कपडे फाड़ डाले और चीथड़े पहनकर वे घर गये।

‘फ्रासिस ! तुमने कैसा रूप बना लिया है ?’ इस

पागलपनका अर्थ क्या है ?’ पिताने क्रोध प्रकट किया।

‘पिताजी ! मैं पागल नहीं हूँ। यदि आप मुझे पागल हीं समझते हैं तो यह आपकी वडी कृपा है। मुझे इस जीवनसे संतोष है। मेरी अन्तरात्माने मुझे दीनताको वरण करनेके लिये विवश किया है। मैंने उसका पाणिग्रहण किया है। वह मुझे भगवान्से मिला देगी।’ फ्रासिसका उत्तर था।

‘तुम्हें अस्सीसाईके लोग गाली देते हैं, कल जो तुम्हारे साथ थे, वे ही मित्र आज तुमपर ढेले वरसाते

हैं; धूलि और कीचड़ फौंकते हैं। समझउरीसे काम लो फ्रासिस ! हमलोग कहींके न रह जायँगे ।' पिता-ने पुत्रको बड़े स्नेहसे देखा ।

'पिताजी ! आप गलत सोच रहे हैं। मेरा जीवन भगवान्‌के चिन्तनसे धन्य हो रहा है। दीनता-सुन्दरी-की ज़क्कि अपार है। उसका सहारा लेनेपर—हाथ पकड़नेपर भगवान्‌की कृपा मिलती ही है। हमलोगों-का सम्मान बढ़ गया दूसरोंकी दृष्टिमें। हमें इन्द्रद्वारा

निर्मित प्रत्येक वस्तुसे ग्रेम करना चाहिये। भगवान्-सबके रक्षक हैं। उनकी शरणमें जानेपर जीवका कल्याण हो जाता है।' फ्रासिसकी मीठी-मीठी वातोंने पिताको पूर्ण संतुष्ट कर दिया ।

फ्रासिस नगरमें घूम-घूमकर लोगोंको सादे जीवन और उच्च आचार-विचारका उपदेश देने लगे। भगवान्-के राज्यमें प्रवेश करनेका साधन दैन्य ही है—इसका उन्हें आजीवन स्मरण था।—रा० श्री०

दरिद्रनारायणकी सेवा

यूरोपियन सत-साहित्यके इतिहासमें इटलीके प्रसिद्ध सत अस्सीसाईवाले फ्रासिसका नाम अमर है। विरक्त जीवनसे पूर्ण समयकी एक धटना है। वे नौजवान थे। राग-रंगमें उनकी बड़ी रुचि थी। कलाकारों और संगीतज्ञोंका वे बड़ा सम्मान करते थे तथा साथ-ही-साथ वारहवाँ शताब्दीके इटलीके प्रसिद्ध धनी व्यापारी वरनर्डोनके पुत्र होनेके नाते उदारता और दान-शीलतामें भी वे सबसे आगे थे। कोई भिखारी उनके सामनेसे खाली हाथ नहीं जाने पाता था ।

एक समय वे अपनी रेशमी कपड़ेकी दूकानपर बैठे हुए थे। उनके पिता दूकानके भीतर थे। फ्रासिस एक धनी ग्राहकसे बात कर रहे थे कि अचानक दूकानके सामने उन्हें एक भिखारी दीख पड़ा। वह कुछ पानेके लोभसे खड़ा था। फ्रासिस बातमें उलझ गये थे। सौदेकी बात हो जानेपर ग्राहक चला गया तब फ्रासिसको भिखारीका स्मरण हो आया, पर वह वहाँ था ही नहीं ।

'कितना भयानक पाप कर डाला भैने !' वे भिखारीकी खोजमें निकल पड़े। दूकान खुली पड़ी रह

गयी। लोगोंकी सम्पत्ति थी, पर इसकी उन्हें तनिक भी चिन्ता नहीं थी ।

वे प्रत्येक दूकानदार और यात्रीसे उस भिखारीके सम्बन्धमें पूछते दौड़ रहे थे। उनका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ था। लोगोंने समझा कि भिखारीने माल चुरा लिया है। फ्रासिसके हृदयकी बेदना अद्भुत थी; उनके नयन तो भिखारीको ही खोज रहे थे और वे अपने आपको धिक्कार रहे थे कि अतिथि भिखारीके रूपमें दरवाजेसे तिरस्कृत होकर लौट गया। अचानक उनका मन प्रसन्नतासे नाच उठा। भिखारी थोड़ी ही दूरपर दीख पड़ा और वे दौड़कर उससे लिपट गये ।

'मैया ! मुझसे बड़ी भूल हो गयी । रुपये-पैसेका सौदा ही ऐसा है कि आदमी उसमें उलझकर अंधा हो जाता है।' फ्रासिसने त्रिवशता बतायी; अपने पासके सारे रुपये उसे दे दिये और कोट पहना दिया ।

'आपका कल्याण हो ।' भिखारीने आशीर्वाद दिया। फ्रासिसने संतोषकी सौंस ली दरिद्रनारायणको प्रसन्न देखकर।—रा० श्री०

अमर जीवनकी खोज

‘हे देव ! अमर जीवन—ईश्वरीय जीवन प्राप्त है, मेरे साथ चलो ।’ महात्मा ईसाने कृपावृष्टि की । करनेका मुझे उपाय बताइये । जगत्की वस्तुओंमें मुझे शान्ति नहीं दीखती ।’ एक धनी युवकने नतमस्तक होकर महात्मा ईसाकी चरणधूलि ली । वे उस समय अपने शिष्योंके साथ गैलिलीमें भ्रमण कर रहे थे । शिष्य धनी युवककी जिज्ञासासे विस्मित थे ।

“वस ! तुमने मुझे ‘देव’ सम्बोधनसे स्मरण किया है । देव—परमदेव तो केवल परमात्मा ही है, मैं तो उनके कृपाराज्यका एक साधारण-सा सेवक हूँ । मेरे विचारसे अभी तुम्हें आचार-विचार और सम्यम तथा नैतिक वल-प्राप्तिकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये, परमात्मा प्रसन्न होंगे ।” उन्होंने युवकपर स्वेह-दृष्टि डाली । समस्त वातावरण उनकी पवित्र उपस्थितिसे धन्य हो गया ।

‘मैंने इनका दृढ़ अभ्यास किया, पर अमर जीवनकी प्राप्तिका प्रकाश मुझे नहीं दीख पड़ा । मैंने बचपनसे ही इनकी ओर ध्यान दिया था ।’ युवकने उद्विग्नता ग्रकट की । ईसा उसकी सदाचारपरक वृत्ति और सत्कथनसे बहुत प्रसन्न थे ।

‘बस, तुममें केवल एक बातकी कमी है । जाओ, अपनी सारी वस्तुएँ बेच दो और सम्पत्ति गरीबोंको दे दो । विश्वास रखो, तुम्हारे लिये स्वर्गका ऐश्वर्य सुरक्षित

धनी युवकके मुखपर उदासी छा गयी । बिना कुछ कहे ही वह चल दिया । उसके पास महती सम्पत्ति थी और उसे छोड़ना उसके लिये सम्भव नहीं था ।

शिष्योंको उसकी दशापर बड़ा आश्वर्य ढुआ । महात्मा ईसा शान्त थे ।

‘धनी (धनाभिमानी) व्यक्तिके लिये ईश्वरीय राज्यमें प्रवेश बहुत ही कठिन है । यह सम्भव है कि ऊँट सूर्खकी नोकमेंसे निकल आये, पर धनी व्यक्ति, जो पूर्ण रूपसे धन और सांसारिक वस्तुओंमें ही आसत्त है, ईश्वरीय राज्यमें प्रवेश नहीं कर सकता । परमात्माके प्रेममें धनाभिमानी और सांसारिक विषय-वासनाओंमें लिस जीवन अत्यन्त बाधक है । सांसारिक मनुष्यके हृदयमें कभी कृपामय ईश्वरके पवित्र प्रेमका उदय ही नहीं हो सकता ।’ महात्मा ईसाने शिष्योंको सदुपदेश दिया ।

‘ईश्वरीय प्रेम-प्राप्तिका उपाय क्या है ?’ शिष्योंका प्रश्न था ।

‘परमात्माकी कृपासे ही यह सम्भव है । उनकी कृपा और निष्काम भक्तिसे ही लोग सासार-सागरसे तर सकते हैं ।’ ईसाने समाधान किया ।—रा० थी०

प्रभु-विश्वासी राजकन्या

करमान देशके राजा बडे भक्त और ईश्वर-विश्वासी थे । उनके एक परम भक्तिमती बुन्दरी कन्या थी । राजाने निश्चय किया था कि मैं भगवान्‌पर परम विश्वास रखनेवाली अपनी इस कन्याको उसीके हाथोंमें सौंपूँगा, जो सच्चा त्यागी, और अडिग प्रभुविश्वासी होगा । राजा खोज करते रहे, परतु ऐसा पुरुष उन्हें नहीं मिला । लड़की बीस वर्षकी हो गयी । एक दिन राजाको एक

प्रसन्नमुख त्यागी नवयुवक मिला । उसके तनपर कपड़ा नहीं था और न उसके पास कोई वस्तु ही थी । राजाने उसे भगवान्‌की मूर्तिके सामने बड़ी भक्तिभावनासे ध्यान-मन देखा । मन्दिरसे निकलनेपर राजाने उससे पूछा—‘तुम्हारा धर कहाँ है ?’ उसने कहा, ‘प्रभु जहाँ रखें ।’ राजाने पूछा—‘तुम्हारे पास कोई सामग्री है ?’ उसने कहा—‘प्रभुकी कृपा ही मेरी सामग्री है ।’ राजाने फिर

हो गये। अन्तमेसुकरातने अपने सिद्धान्तको प्रकाशित करते हुए कहा—‘प्रेम’ ईश्वरीय सौन्दर्यकी भूख है। प्रेमी प्रेमके द्वारा अमृतत्वकी ओर अग्रसर होता है। विद्या, पुण्य, यश, उत्साह, शौर्य, न्याय, विश्वास और श्रद्धा—ये सभी उस सौन्दर्यके ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। यदि एक शब्दमें कहा जाय तो आत्मिक सौन्दर्य ही परम सत्य

है। और सत्य वह मार्ग है, जो सीधे परमेश्वर तक पहुँचा देता है।

सुकरातके इस कथनका प्लेटोपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह उसी दिनसे उसका शिष्य हो गया। यही प्लेटो आगे चलकर यूनानके सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकोंमें परिणित हुआ।

—जा० श०

मुझे एक ही बार मरना है

जूलियस सीजरके विरुद्ध उसके शत्रु षड्यन्त करनेमें लगे थे। उसके शुभचिन्तकों तथा मित्रोंने सलाह दी—‘आप अपने अङ्गरक्षक सिपाहियों तथा शत्रुके बिना अकेले खाली हाथ घूमने अब न निकला करें।’

सीजरने उत्तर दिया—‘कोई अमर होकर ससारमें नहीं आता, सबको मरना ही पड़ता है। किंतु मुझे एक ही बार मरना है, मृत्युसे भयभीत रहनेवाले तो पल-पल मृत्युकी पीड़ा भोगते रहते हैं।’ —सु० शिं०

गर्व किसपर ?

आलिसब्राइडिस नामक एक सम्पन्न जर्मांदार था। उसे अपनी सम्पत्ति और जागीरका बड़ा गर्व था। एक दिन सुकरातके पास जाकर उसने अपने ऐश्वर्यका वर्णन प्रारम्भ किया। सुकरात उसकी बात कुछ देर चुपचाप सुनते रहे। थोड़ी देर बाद उन्होंने पृथ्वीका एक नक्शा माँगा। नक्शा फैलाकर वे उस जर्मांदारसे बोले—‘अपना यूनान देश इसमें आप देखते हैं ?’

‘यह रहा यूनान !’ जर्मांदारने नक्शेपर अँगुली रखी।

‘और अपना ऐटिका प्रान्त ?’ सुकरातने फिर पूछा।

बड़ी कठिनाईसे कुछ देरमें जर्मांदार अपने छोटे-से प्रान्तको हूँड़ सका। परंतु उससे फिर पूछा गया—‘इसमें आपकी जागीरकी भूमि कहाँ है ?’

‘श्रीमान् ! नक्शेमें इतनी छोटी जागीर कैसे बतायी जा सकती है !’ जर्मांदारने उत्तर दिया। अब सुकरातने कहा—‘भाई ! इतने बड़े नक्शेमें जिस भूमिके लिये एक बिन्दु भी नहीं रखा जा सकता, उस नहीं-सी भूमि-पर तुम गर्व करते हो ? इस पूरे ब्रह्माण्डमें तुम्हारी भूमि और तुम कहाँ कितने हो, यह सोचो और विचार करो कि यह गर्व किसपर ? कितनी क्षुद्रता है यह !’ —सु० शिं०

विषयान

‘इसका सबसे बड़ा अपराध यही है कि यह नगरके देवी-देवनाओंमें अविश्वास प्रकटकर नवयुवकोंको सत्य शिक्षणके नामपर गलत रास्तेपर ले जाता है। यूनानकी सस्कृति और नागरिकताका यह सबसे बड़ा शत्रु है। इसे मृत्यु-दण्ड दिया जाय।’ मेलिटस और उसके साथियों—अनीटस और लीसनने अभियोग

लगाया। एथेंसवासियोकी बहुत बड़ी सख्ता न्यायालयके बाहर निर्णयकी प्रतीक्षा कर रही थी।

‘नाटककार एरिस्टोफनीसने अपने क्लाउड नाटक-में सुकरातको खर्ग-पातालकी बात जाननेवाले और हन्ता-में उड़नेवालेके रूपमें चित्रित कर यह सिद्ध कर दिया है कि यह जनताको असत्य और अनाचारका पाठ

पढ़ता है। मेलिट्सने उसपर अभियोग चलाकर हमारे देशका बड़ा उपकार किया है। अपराधीको विषपानके द्वारा मृत्यु-वरणका दण्ड दिया जाता है। न्यायालयके इस निर्णयसे उपस्थित नागरिक विश्वाद्य हो उठे। सुकरात मौन था। उसे कारागारमें डाल दिया गया।

X X X

‘मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप अब भी अपने प्राण वचा सकते हैं। इस कारागारसे निकल भग्नमें हमलोग आपकी पूरी-पूरी सहायता करेंगे।’ क्रीटोने सुकरातको समझाना आरम्भ किया।

‘तुम सत्यसे अधिक कीमती और महत्वपूर्ण मृत्युको समझते हो। क्रीटो। सत्य अमर और अविनश्वर ज्ञान है, वह शाश्वत प्रकाश है, उसे मृत्युके अन्धकार से ढकना कदापि सम्भव नहीं है। सत्यकी वलिवेदीपर प्राण चढ़ा देना ही मेरा कर्तव्य है। इससे न्यायका भाल उक्त होगा।’ सत्तर वर्षका बृद्ध सुकरात इस तरह क्रीटोको सदाचारकी शिक्षा दे ही रहा था कि मृत्युका समय आ पहुँचा।

न्यायपतियोंके सेवकने विषसे भरा प्याला सुकरात-के हाथमें रख दिया। समस्त वातावरणमें विचित्र शोक परिव्याप्त था।

‘अभी विष पीनेका समय नहीं आया है, सुकरात। दिन-का कुछ अअ शेष है।’ क्रीटोने उस समय विष पीनेसे मना किया। उसका प्रश्न था कि अन्त्येष्टि किया किस

तरह सम्भव हो।

‘अपने भीतरकी चेतन आत्माका ज्ञान प्राप्त करो। यह ज्ञान ही सर्वव्यापक सत्य है। अपने-आपको पहिचानो। तुम शरीर नहीं, आत्मा हो, जो अमर है, चिरन्तन, शाश्वत और अक्षय है। मेरे भीतर स्थित आत्मसत्यको समझो क्रीटो। मृत्यु देहका नाश कर सकती है, आत्माके राज्य-में उसका प्रवेश नहीं है। —प्राणान्त होनेपर शरीर-को समाधिस्थ कर देना।’ सुकरातने विषका प्याला ओढ़ोसे लगा लिया। वह न्यायपतिके आदेशके अनुसार ठहल-ठहलकर विष पी रहा था। उसके पैर लड़खड़ाने लगे।

‘तुम समझते होगे कि मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी और तत्काल विष पीना आरम्भ कर दिया। मैं सत्यके अमरलोकमें प्रवेश करनेमें क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं करना चाहता था। अब हम दोनों एक दूसरेसे अलग हो रहे हैं। तुम जीवनकी ओर जा रहे हो और मैं मरण-पथपर हूँ। जीवन और मरणमें कौन श्रेष्ठ है—इसका ज्ञान परमात्मा—केवल परमात्माको ही है।’ सुकरात बहुत देरतक अपने-आपको नहीं सँभाल सका। क्रीटोकी सहायतासे वह भूमिपर लेट गया। आँखोंके सामने अन्धकार था। क्रीटोने उसके मुखको कपड़ेसे ढक दिया।

आत्मवादी सुकरात सत्यके लिये विषपान कर धरतीपर अमर हो गया। —रा० श्री०

सत्यभाषणका प्रताप

हगरीका राजा मत्थियस अपने गड़ेरियेको बहुत मानता था। वह कभी झूठ नहीं बोलता था।

एक दिन प्रिणियाके राजा मत्थियसके साथ उसीके राजमहलमें भोजन कर रहे थे। प्रिणियाकी अविवाहिता राजकन्या भी उपस्थित थी। वात-ही-वातमें हगरीके राजाने अपने गड़ेरियेके सत्यभाषणकी प्रशसा की। प्रिणिया-

के राजाको यह बात अच्छी नहीं लगी। उसने कहा—‘यह नितान्त असम्भव है। मैं उसे असत्यमाषणके लिये विवश कर दूँगा।’

‘और यदि वह ऐसा नहीं कर सके तो?’ मत्थियसका प्रश्न था।

‘मैं अपना आधा राज्य हार जाऊँगा और यदि

वह असत्य बोलेगा तो तुम्हें आधा राज्य देना पड़ेगा ।’
प्रगियाके राजाका उत्तर था । वह चिन्तित था ।

रातभर उसे नींद नहीं आयी, वह उपाय सोचता रहा, पर कोई बात उसके मनमें न बैठ सकी ।

‘मत्थियसके पास सुनहले रंगका एक मेमना है । मैं बड़ी-से-बड़ी घूस टेकर गडेरियेसे मेमना माँग लूँगा । उसके गायब हो जानेपर वह राजाके सामने कोई कल्पित कथा कहकर ग्राण बचायेगा, असत्य बोलनेके लिये विवश होगा ।’ उसे नींद आ गयी ।

× × × ×

‘मैं किसी भी मूल्यपर सुनहला मेमना आपको नहीं दे सकता । मैंने अपने राजाका नमक खाया है; मेमना आपको देकर मैं राजसिंहासनके सामने झूठ नहीं बोल सकता ।’ गडेरियेके इस उत्तरसे प्रशियानरेशकी आशाओंपर पानी पड़ गया । वह सवेरे-सवेरे उससे चरागाहपर मिलने गया था ।

‘मैं तुम्हें इतना धन दे दूँगा कि उससे तुम्हारा जीवन-निर्वाह हो जायगा । मेमना मुझे दो और अपने मालिकसे झूठ बोल दो कि उसे भेड़िया उठा ले गया ।’ प्रशियानरेशने फिर प्रयत्न किया । गडेरियाने उसका प्रस्ताव अस्त्रीकार कर दिया ।—राजाने अपनी लड़की मेजी । उसे विश्वास था कि लड़कीके सौन्दर्यसे विसुव होकर गडेरिया मेमना अवश्य दे देगा ।

‘मैं तुम्हें धनसे पूर्ण तृप्ति कर दूँगी, तुम्हें किसी बातकी चिन्ता नहीं रहेगी, पर मेमना मुझे दे दो । मेरे पिताको इसकी बड़ी आवश्यकता है ।’ राजकन्याने मोहरोंकी थैली दिखायी और पीनेके लिये पेय प्रदान किया ।

गडेरियाने कहा कि ‘मैं अपने सत्यव्रतसे एक इंच भी पीछेनहीं हट्टूँगा, मुझे सारे संसारका साम्राज्य क्यों न मिले, पर मैं झूठ नहीं बोल सकता ।’—राजकन्याकी

प्रार्थनापर पेय पदार्थ-सेवनसे उसकी चेतना जाती रही । उसने अस्त्रस्थ दशामे मेमना राजकन्याको सौंप दिया । राजकुमारीको केवल मेमनेके सुनहले बालकी आवश्यकता थी, जिससे यह प्रमाणित हो सके कि गडेरियेने मेमना दे दिया था ।—प्रशियानरेशकी प्रसन्नताकी सीमा न रही । वह यही सोचने लगा कि कब सबेरा हो और मैं मत्थियसके राजमहलमे जा पहुँचूँ ।

× × × ×

गडेरियाने चेतना प्राप्त की । उसे अपनी करनीपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ । उसने सोचा कि मैं राजासे कह दूँगा कि मेमना भाग गया ।

‘पर यह असम्भव है । ऐसा कभी नहीं हो सकता । मेमनेके साथ-ही-साथ पूरे छुड़को भाग जाना चाहिये था ।’ उसकी अन्तरात्माने धिक्कारा कि यह झूठ है, ऐसा कभी नहीं कहना चाहिये । वह राजमहलकी ओर बढ़ता गया । उसके मनमें यह बात आयी कि मैं राजासे कह दूँगा कि मेमना कुएँमे गिर पड़ा और उसीमें छब्बकर मर गया ।

‘यह ठीक नहीं है । ऐसा होता तो दूसरे भेड़ भी गिर पड़ते ।’ उसके मनने फटकारा कि झूठ बोलना महापाप है ।

अचानक वह प्रसन्न हो उठा । उसने सोचा कि मैं राजाको समझा दूँगा कि मेमनेको भेड़िया खा गया । पर इस बातसे भी उसका मन सतुष्ट नहीं हुआ ।

राजमहलमें प्रवेश करते ही गडेरिया हँस पड़ा । ‘मैं एक शुभ समाचार सुनाना चाहता हूँ, नरेश ।’ गडेरियेने मत्थियस और उसके अतिथि प्रशियानरेश और उसकी कन्याको अभिवादन किया । प्रशियानरेश समझता था कि गडेरिया झूठ बोलेगा, पर उसके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ने लगीं ।

‘मैंने आपके मेमनेको बदलकर काले रंगका मेमना

ले लिया है। और महस्त्वूर्ग वान तो यह है कि यह नया सौंदर्य सुनहले नेमनेमे कहीं अविक दुन्दर है।' गड़ेरिया प्रसन्न था। प्रशिगानरेश्वरा चेहरा उसके सत्यमापगमे दर गया। वह लिन था।

"नै तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने बन, सौन्दर्य और पेय-किर्त्ति भी कीमतनर असन्ध नापण नहीं किय। इन्हीं तीनोंसे अवा होकर भनुप्य बड़े-मेवडा पाप कर दाला है। तुम्हारी सत्यनिधाने सुजे प्रशियानरेश्वरके आवे राज्यका अधिकार दिया है और यह आवा गच्छ मै तुहें सौंपना हूँ। तुम्हारे सत्यवतका यह पुरस्कार है।"

हांगरीके राजाके बचन थे।

'और यह है काले रंगका भेमना।' गड़ेरिये दुन्दरी राजकल्पार्की ओर मत्तियसका ध्यान आकृष्ट किय।

'यह गजकल्पा मैं अपनी ओरमे तुम्हें प्रदान करता हूँ असन्धविजयके उग्लक्षण।' प्रशियानरेश्वरे उदारता-पूर्वक अपना कर्तव्य पूरा किय।

गड़ेरिये का सुन्दरी राजकुमारीमे जिवह हो गया। सत्यमापगके प्रतापने गड़ेरिया एक विशाल राज्यका अधिकारी घोपित किया गया।—२० श्री०

पिताके सत्यकी रक्षा

जापानके सामन्तराज सातोमी वडी कठिनाईमेपड़ गये थे। शत्रु-नेनाने उनके दुर्गको तीन महीनेमे घेर रखा था। यह ठीक था कि पर्वतनर बना और गहरी खाईसे विरा छढ़ दुर्ग शत्रुने प्रबल आक्रमणके सम्मुख भी मस्तक उठाये खड़ा था; किंतु दुर्गामियोंका भोजन समाप हो गहा था। भूखों भरनेका अवसरा आ गया था। अन्तमें सातोमीने घोपगा की—'शत्रुके सेनापनिका सिर जो काट लायेगा, उसे छह अपनी एकमात्र पुत्री व्याह देना।'

पहाड़ीपर शीतकालकी भूतना देनेत्राले 'शाम' पुष्प लिठने लो। एक दिन शामसे ही हिमपान प्रारम्भ हो गया। सामन्तराज उस गत निश्चय निन्ति हो उठे। उनका प्यारा कुत्ता जान सुव्रसा कहीं दीख नहीं रहा था। वह शिकारी जानिका ऊँचा, बलवान् और स्वामिमल जानवर पता नहीं कहाँ चला गया था। कहीं हिम्मानमें बाहर रह गया तो बाफ उसे जमा ही देनी और दाकूकी दृष्टिमें वह पड़ गया तो गोलीसे भून दिया जायगा। परंतु कुत्ता उस रात मिला नहीं। दूसरे दिन सबरे भी नहीं मिला।

दूसरे दिन सामन्तराजने अपने सब मित्र और

नामक एकत्र किये। उनमे मन्त्रणा ग्राम्यम हुई कि अब युद्धके विपरमें क्या करना चाहिये। इसी समय सातोमीका कुत्ता सुव्रसा कहाँ आ पहुँचा। उस कुत्तेके मुखमें रक्से ल्यथथ लेंवे बालोंवाला एक मानवसिर था। देखनेपर निश्चय हो गया कि वह शत्रुके सेनापनिका ही मस्तक है।

सामन्तराज सातोमीके दुर्गम आनन्दकी जय-घनि गूँज उठी। उनके सैनिक दुर्गका द्वार खोलकर शत्रु-नेनापर टूट पड़े। सेनापनिर्हीन शत्रुनेना छिन-मिन हो गयी। उसके कुछ सैनिक भारे गये और कुछ भाग गये।

सातोमीकी विजय हुई, विपत्ति कट गयी। किंतु जिसके द्वारा यह सब कार्य हुआ, कहीं कुत्ता अब सातोमीको अपना परम शत्रु जान पड़ने लगा। जापानके समुराइजे बचनका मूल्य होना है। भागनके गजपूतके समान वह दृढ़प्रतिज्ञ माना जाना है। सातोमीको अपनी प्रतिज्ञा संरण आती और वे ज्ञानिमे भर उठते—'छि।' उनकी प्रतिज्ञा पूरी करके कुत्ता उनकी पुत्रीका अधिकारी हो गया है। किनना अभागा दिन था, जब उन्होंने वह प्रतिज्ञा की।'

इस ग्लानिका परिणाम यह हुआ कि कुत्तेके प्रति उनके मनमे घृणा और द्वेषके भाव प्रवल हो गये। वह स्वामिभक्त कुत्ता अब पास आता तो उसे वे तत्काल मारकर भगा देते। सामन्तराजके सेवक भी अपने स्वामीकी देखा-देखी कुत्तेको मारने तथा भगाने लगे। उसे भोजन देना एकदम बंड कर दिया गया। लोग चाहते थे कि भ्रूख और अपमानसे पीड़ित होकर वह स्वयं कहाँ भाग जाय।

सामन्तराज सातोमीकी एकमात्र संतान थी उनकी पुत्री। उस उड़ार राजकुमारीको कुत्तेके प्रति लोगोंके वर्तमान व्यवहारको देखकर बड़ा खेद हुआ। उसने सोचा—‘मेरे पिता और पूरे राज्यको बचानेवाले इस उपकारी प्राणीकी रक्षा और सेवा हमारा कर्तव्य होना चाहिये। फिर पिताकी प्रतिज्ञाकी रक्षा करना संतानका धर्म है। मेरे पिताने प्रतिज्ञा कर दी और अब मेरे मोहके कारण इस उपकारी पशुका तिरस्कार करते हैं, ऐसी दशा में पिताके सत्यकी रक्षाके लिये इस कुत्तेका पालन मुझे करना चाहिये।’

राजकन्या जानती थी कि उसके विचारोंका कोई समर्थन नहीं करेगा। भय यह था कि उसके विचार प्रकट होनेपर लोग उस उपकारी कुत्तेकी हत्या ही न कर दें, इसलिये कुत्तेको साथ लेकर वह रात्रिमे दुर्गसे निकल गयी। सबेरे जब कुत्ता और राजकुमारी दुर्गमें नहीं मिले, तब कुहराम भव गया। सामन्तराज पुत्रीके वियोगमें व्याकुल हो उठे। चारों ओर सैनिक भेजे गये, किंतु कहीं राजकन्याका पता नहीं लगा।

राजकन्या वनके मार्गसे भटकती, नदी-नाले पर करती एक धने वनमे पहुँची। उसने एक पर्वतकी गुफाको धर बनाया। राजसुखमे पली वह देवी तपस्तिनी बनी। कुत्ता अब छायाके समान उसके साथ लगा रहता था। दिनमे वह राजकन्याके साथ घूमता था वनमें और रात्रिमें उसकी चौकीदारी करता था।

राजकुमारी अब अपना निर्वाह करती थी मिश्ना माँगकर। उसका समय अब उपासनामें व्यतीत होता था और उसकी प्रार्थना थी तथागतके चरणोंमें ‘प्रभो ! इस स्वामिभक्त प्राणीको अपने चरणोंमें स्त्रीकार करो। जन्म-मृत्युके पाशसे इसे मुक्त करो।’

अपने लिये राजकुमारीको कोई कामना नहीं रह गयी थी। वह अपने साथ धर्मग्रन्थ ले आयी थी और उसीका पाठ किया करती थी। इस प्रकार दिन-पर-दिन बीतते चले गये। अचानक एक दिन सामन्तराज सातोमीका एक सैनिक आखेट करता हुआ उस वनमे पहुँच गया। उसने दूरसे जात-सुबूसा को देखा। अपने स्वामीके कुत्तेको देखते ही वह पहचान गया और पहचानते ही उसने बदूक सीधी की—‘इस दुष्ट कुत्तेके कारण ही राजकन्या कहीं चली गयीं और हमारे स्वामी पुत्रीके शोकमें व्यथित रहते हैं।’

सैनिककी बदूक तडप उठी और कुत्ता भूमिपर लुढ़ककर छटपटाने लगा। एक सुकुमार कण्ठसे उसी समय चीत्कार निकली। सैनिक दौड़कर पास आया तो उसने देखा कि कुत्तेकी आडमे ही राजकुमारी प्रार्थना करने वैठी थी और बदूककी गोली कुत्तेके साथ उन्हें भी समाप्त कर चुकी है।—सु० सि०

आतिथ्यका सुफल

जापानके किसी नगरमे एक वृद्ध व्यक्ति रहता था। वह और उसकी पत्नी दोनों बड़े उड़ार थे। पशु-पक्षियोंके प्रति उनके हृदयमे बड़ा प्रेम था। दोनों ने एक गौरेया पक्षी पाल रखा था। वह नित्यप्रति उड़-

कर उनके आँगनमे आया करता था और दाना चुगकर चला जाता था। उन दोनोंके कधींपर बैठकर वह मीठे स्वरसे चहचहाया करता था।

एक दिन वह बूढ़ी ओरत अपने बगीचेमें थी कि

उसकी दुष्ट पड़ोसिनने कहा कि 'तुम अपने प्राणप्यारे गौरैयेको फिर कभी नहीं देख सकोगी। मैंने उसकी जीभ काट डाली है। वह मेरी धानकी खेती नष्ट कर दिया करता था।' द्वेषी पड़ोसिन हँसने लगी।

बृद्ध दम्पति इस घटनासे बहुत दुखी हुए। उन्होंने अपनी पड़ोसिनपर रोप प्रकट किये बिना ही जगलमें गौरैयेकी खोजमें धूमना आरम्भ किया। वे भयभीत थे कि ऐसा न हो कि गौरैया भूखसे तड़प-तड़पकर प्राण दे दे। दैवयोगसे एक हरे-भरे खेतके निकट गौरैयेका धोंसला मिल गया। गौरैया अपने प्रेमदाताओंको देख कर आनन्दसे नाच उठा।

'आज मेरा सौभाग्य है कि मेरे प्रेमदाता अतिथि-रूपमें मेरे निवासस्थानपर उपस्थित हैं।' गौरैयेने अपनी पत्नीसे कहा और वे अपने बच्चोंसहित बृद्ध दम्पतिके स्थागत-सत्कारमें लग गये। दो-चार दिनोंतक आमोद-प्रमोद होता रहा।

बृद्ध दम्पतिके चलते समय गौरैयेने दो टोकरियाँ उनके सामने रख दीं और पूछा कि 'आप छोटी टोकरी साथ ले

जायेंगे या बड़ी?' दोनों बूढ़े हो चले थे, इसलिये दूरतक हाथसे ढोनेमें सुविधाके नाते उन्होंने छोटी टोकरी पसद की, पर रास्तेमें वह एक पेटीके रूपमें परिणत हो गयी। घर आकर उन्होंने पेटी खोली तो उसमें रेशमी कपड़े तथा अन्य उपयोगी सामान देखकर आश्चर्यचकित हो गये।

बूढ़ी पड़ोसिनको जब इस बातका पता चला, तब उसने झूठ-मूठ रोकर कहा कि 'कभी-कभी मनुष्यकी बुद्धि बिगड़ जाती है और वह अकारण क्रोध कर बैठता है। गौरैया मुझे अवश्य क्षमा कर देगा।' यों सोचकर उसे धोखा देनेके लिये वह भी धोंसलेपर जा पहुँची। गौरैयेने बिना खागत-सत्कार किये ही दो टोकरी सामने रखकर प्रश्न किया, 'बड़ी लोगी या छोटी?'

'बड़ी!' बुद्धियाका उत्तर था। वह बड़ी टोकरी लेकर चल पड़ी। रास्तेमें वह अपने मनपर नियन्त्रण नहीं रख सकी। उसने यह देखनेके लिये कि टोकरीमें कितने कीमती सामान और रेशमी कपड़े हैं, टोकरी खोल ली। दैवी प्रेरणासे उसमेंसे दो भूत निकलते दीख पड़े और उस स्थानपर उसे उडाकर ले गये, जिसमें पशु-पक्षियोंके सतानेवालोंको यातना दी जाती है।—रा० श्री०

धर्मप्रचारके लिये जीवनदान

चीनसे भारत आनेवाले यात्री ह्यु-एन-साँग केवल धूमकड़ यात्री नहीं थे। वे थे धर्मके जिज्ञासु। विद्याकी लालसा ही उन्हें दुर्गम हिमालयके इस पार ले आयी थी। भारतके सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय नालन्दाने उनका स्थागत किया। ह्यु-एन-साँग नालन्दाके छात्र रहे और अध्ययन करके उसके अध्यापक भी रहे। भारतने विद्याका सम्मान करनेमें कोई भेदभाव सीखा ही नहीं।

ह्यु-एन-साँग कई वर्ष भारतमें रहकर अपनी जन्मभूमि लौट रहे थे। उन्होंने चीनमें बौद्धधर्मकी व्यवस्थित शिक्षाके प्रचारका निश्चय किया था। बहुत-से धर्मग्रन्थ वे अपने साथ ले जा रहे थे।

नालन्दाके कुछ उत्साही भारतीय विद्यार्थी उनके साथ थे। सिंधु नदीके मुहानेतक इस यात्रीदलकी यात्रा निर्विन्न पूरी हुई, किंतु जब वे नौकासे सिंधु नदी पार करने लगे, तब आँधी आ गयी। मुहानेके पास समुद्रमें आया तूफान अपना प्रभाव दिखलाता ही है। स्थिति ऐसी हो गयी कि 'नौका अब छूटी, अब छूटी' लगते लगा।

'मेरा पूरा परिश्रम व्यर्थ गया। ह्यु-एन-साँग मस्तकपर हाथ रखकर बैठ गये। परतु भारतीय विद्यार्थियोंने एक दूसरेकी ओर देखा। एकने अपने साथियोंसे कहा—'भार कम हो जाय तो वाहन बच सकता है।'

क्या धर्मप्रन्थोंकी रक्षासे होनेवाले धर्मप्रचारकी अपेक्षा हमारा जीवन अधिक मूल्यवान् है ?

उस निधार्थिको शब्दोंमें उत्तर नहीं मिला । उसके

साथी पलक झपकते नदीके अथाह जलमे कूदकर अदृश्य हो गये । सबसे अन्तमे कूदनेवाला वह स्वयं था ।—सु० सिं०

मृतकके प्रति सहानुभूति

लाभग ढाई हजार वर्ष पहलेकी बात है । चीनके महान् तत्त्वविवेचक महात्मा कनफ्युसियसने घोड़ागाड़ीसे वी नगरमे प्रवेश ही किया था कि उस घरमे रोने-पीटनेकी आवाज आयी कि जिसमे कुछ ही दिनो पहले वे अतिथि थे । उन्हें यह बात समझनेमें देर न लगी कि किसी प्राणीकी मृत्यु हो गयी है ।

उन्होंने वडी शान्तिसे उस घरमे प्रवेश किया और विलाप करनेवालेकी दशासे उनका हृदय विचलित हो उठा, नयनोंसे अश्रुवृष्टि होने लगी ।

वे उस शोकपूर्ण स्थितिसे इतने प्रभावित हुए कि अपनी गाड़ीके घोड़ोंको उन्होंने मृतककी उत्तम गतिके लिये दान कर दिया ।

‘घरमें प्रवेश करते ही मेरा हृदय शोकसे इतना

बोझल हो गया कि बिना रोये मैं रह नहीं सकता था । मृतकके प्रति रोने-पीटनेका मिथ्या प्रदर्शन दम्भके सिवा और कुछ भी नहीं है । यदि मेरे अश्रु दिखावेके लिये होते तो मुझे बड़ी धृणा होती अपने आपपर । मृतककी पारलैकिक शान्तिके लिये यदि हम चेष्टा नहीं करते या उसके लिये प्रेम अथवा आत्मीयता नहीं व्यक्त करते तो यह तो उसके प्रति अपने आपमे अपनत्वका अभाव है और यदि उसे मृतककी स्थितिमे देखकर भी ऐसा व्यवहार करते हैं जैसा जीवित प्राणीके प्रति किया जाता है तो यह भी कदापि उचित नहीं है, क्योंकि यह हमारी मूर्खता अथवा विवेकहीनताका धोतक है ।’ महात्मा कनफ्युसियसके उद्गार थे उस अवसरपर ।—रा० श्री०

सच्चा बलिदान

लाभग चौबीस सौ वर्ष पहलेकी बात है । खुतन देशमें नदीका जल सूख जानेसे घोर अकाल पड़ गया । प्रजा भूखो मरने लगी । खुतन-नरेश वहुत चिन्तित हो उठा । मन्त्रियोंकी सम्मतिसे वह राज्यमे ही निकटस्थ पहाड़ीपर निवास करनेवाले एक वौद्ध भिक्षुकी सेवामे उपस्थित हुआ ।

‘देव ! मेरे राज्यमे अन्यायका प्रावल्य तो नहीं हो गया है ? ऐसा तो नहीं है कि मेरा पुण्यफल संसारके समस्त प्राणियोंको समानरूपसे नहीं मिल रहा है ? मैंने आजतक प्रजाका कभी उत्पीड़न नहीं किया । जब

मेरा कोई अपराध ही नहीं है, तब प्रजाको दुखका मुख क्यों देखना पड़ रहा है ? देव ! ऐसा उपाय बताइये कि नदीमें जल फिर आ जाय ।’ खुतन-नरेशने चिन्ता प्रकट की ।

श्रमणने नदनागकी पूजाका आदेश दिया । राज्यकी जनताने नदीके तटपर जाकर धूम-धामसे पूजा की; राजा अपने प्रमुख अधिकारीवर्गके सहित उपस्थित था ।

‘मेरा पति (नाग) सर्वास्थ हो गया है । इसीलिये हमारे कार्यका क्रम बिगड़ गया है ।’ नागपत्रीने कमर्नीय

रमणीवेमें नव्य वायर प्रकट होकर एक राज्यकार्य-
कुलाल अचिक्षी नाँग की।

गजा उत्तरी इच्छापूर्तिकर आवासन देखा
गजवानीमें औट आया।

X X X X

‘देवराज (राजार्थी उपाधि) ! आप इतने चिरिता
क्यों हैं ? नेश जीवन आजतक ठीक तरह प्रबोक्षे हितमें
नहीं लग सका । यथार्थ चिरने लदेशकी सेवार्थी
प्रवृत्ति सदरही, किं भी उसको कर्त्यरूपमें पणित करनेका
अनीतक अवसर ही नहीं आया था ।’ प्रवाननन्दीने
नरेशकी चिन्ता कम की ।

‘तु म प्रवाननन्दी ही राज्यका दुर्ग होता है ।
वह स्फुल्त देशकी द्वन्द्व सन्मति है । उसका प्राण
किसी भी भूम्यर मी निश्चार नहीं किया जा सकता ।’
रुजा न्मीर हो उठा ।

‘अप ठीक ही सोच रहे हैं, पर प्रजा और देशके
हितके सामने साकारण मन्त्रीके जीवनका कुछ नी महस्त
नहीं है । नन्दी तो सहायकमात्र है । किंतु प्रजा मुख्य
द्वाह है राज्यका । यह सच्चा विद्वान है, महँगा नहीं है
देवराज !’ प्रवाननन्दीका उत्तर था ।

मन्त्रीने नामभूतमें जानेकी व्यवस्था की । नामादिक्रीमें
उसके मुमानमें भोजका आयोजन किया । वह पक्ष संकेत
दोइपर संकर हो गया । उसका बदला भी लेत था । उसने
दोइक्षी पीठकर बैठे हुए नदीमें प्रवेश किया; पर किसी भी
स्वनाम इतना जड़ नहीं था कि वह उसमें अद्वस्तुत द्वृक्षर
अड्डव्य हो सके । मन्त्रीने मध्यवागमें पहुँचकर जड़को
दोइसे प्रताड़ित किया । अशाह जड़ादि उनड़ पड़ी
और प्रवाननन्दी नदीके गहरे जलमें चिरित हो गया ।
लोग तटपर खड़े होकर उत्तरी जय दोष रहे थे । योड़ी
देशके बाद घोड़ा जलके ऊपर तैरते लगा । उत्तरी
पीठपर चलनका पृष्ठ नगार बैंधा था । पक्ष पक्ष भी
या, उसमें लिंगा था कि ‘कुतन-नरेशकी प्रस्तुतार्थी
सदा दृढ़ि होती रहे, प्रजा स्वस्य और सुखी रहे । जिस
समय राज्यमर शाशुका आक्रमण होगा, उस समय नगार
अपने-आप बजने लगेगा ।’—नदी जलसे परिष्णि
हो उठी ।

‘कुतन-राज्यके प्रवाननन्दीने आम्ल्यागता आदर्श
उपस्थितकर अपना ही जीवन नहीं सफल कर किया,
सार्वकी महान् सेवा भी की । सार्वन्यागकी नहिमा
अक्षयीय है ।—८० श्री०

संतकी एकान्तप्रियता

निश देशके ग्रासिद्र संत दत्यानीने अठाह सौ वर्ष
पहले जो नाम कलाया, वह विश्वके संतसाहित्यकी पक्ष
अमूल्य निति है । वे मिसिरिकी पहाड़ीपर एकान्त स्थानमें
निवास करते हुए भगवान् द्वा चिन्तन किया करते थे ।

एक समयकी बात है वे अलेक्जन्ड्रियामें आये हुए थे
जलताको इद्वत्तिन्नके मार्गपर आनेके लिये । अपना
कर्तव्य पूरा करके वे पहाड़ीकी ओर प्रत्यान करनेकी
व्यवस्था करते लगे । इस सनातारसे लोग आकुल हो उठे ।
वे सुनेको अपने प्राणोंसे भी अविक चाहते थे । एक

क्षणके लिये भी उनका वियोग नहीं सह सकते थे ।
उनकी कुटीके सामने बात-कर्त्ता-बातमें पक्ष वड़ी भीड़
एकत्र हो गयी ।

‘आप हमारे बाचमें ही निवास कराजिये । हमें
आपकी वड़ी आवश्यकता है । अपने दृश्यमृतसे हमारे
प्राणोंके निय सांचते रहिये ।’ अलेक्जन्ड्रियाके
प्रशासकने संतके चरणोंमें मत्तका विनियोग निवेदन
किया । भीड़ने उसके प्रज्ञाकका सुनर्यन किया । सुन
सौंचने लगे ।

‘भाई! मछली जलसे बाहर भूमिपर आ जानेपर जलके अभावमे छटपटाकर विकल्पासे प्राण छोड़ देती है। इसी प्रकार सत-महात्मा जनसमूहमे आनेपर अपने एकान्त मौनव्रतसे पतित—च्युत हो जाते हैं। जिस प्रकार जल-

की ओर बड़े आवेगसे मछली दौड़ती है, उसी प्रकार हमलोग अपने पहाड़ी स्थानोमे पहुँचकर आन्ति प्राप्त करते हैं।’ सतने विनष्टतापूर्वक अपना मत व्यक्तकर पहाड़ीकी ओर प्रस्थान किया।—रा० श्री०

प्रार्थनाकी शक्ति

लगभग सोलह सौ वर्ष पहलेकी बात है। सत स्कालस्टिका प्रत्येक वर्ष अपने भाई संत वेनडिक्टसे मिलने जाया करती थी, दिनभर आध्यात्मिक विषयपर बात करके वह शामको अपने स्थानको लौट जाया करती थी, क्योंकि स्कालस्टिकाका यह नियम था कि वे रातको अपने मठमे ही निवास करती थीं और वेनडिक्ट भी कैसिनीकी पहाड़ीपर स्थित अपने मठमे चले जाते थे। स्कालस्टिकाको कैसिनी मठमें जानेकी आज्ञा नहीं थी। इससे वर्षमे एक दिन वेनडिक्ट भी मठसे कुछ दूर आ जाते थे वहिनसे मिलनेके लिये और वहिन स्कालस्टिका भी आ जाती थी। एक साल वह संत वेनडिक्टसे मिलने गयी थी। उसे ऐसा लगा कि यह उसकी अन्तिम भेट है।

‘मेरी बड़ी इच्छा है कि आज आप अपने मठमे न जायें। मैं सारी रात आपसे भगवान्‌के सम्बन्धमें बात करना चाहती हूँ।’ स्कालस्टिकाने संत वेनडिक्टसे प्रार्थना की। उसका हृदय भारी हो चला था और नयनोमें अश्रुका प्रवाह था।

‘वहिन ! तुम ठीक कहती हो, पर मैं अपने नियमसे विवश हूँ। मेरे लिये मठसे बाहर रातमे रहना अत्यन्त कठिन है। दिनमें तो हमलोगोंने भगवान्‌की स्तुति और

स्मरण तथा चिन्तनमे अपने समयका सदुपयोग किया ही है।’ संत वेनडिक्टने अपने साथियोंके साथ कैसिनीकी पहाड़ीपर स्थित मठकी ओर प्रस्थान करना चाहा, जो स्कालस्टिकाके द्वीपवेरियोलावाले मठसे पाँच मीलकी दूरीपर था।

भाईके दृढ़ निश्चयसे स्कालस्टिकाका गला भर आया। वह मनमे भगवान्‌का ध्यान करने लगी। सूर्यास्तका समय था, ज्यो-ज्यो अँधेरा बढ़ता जाता था—त्यो-त्यो उसकी उडासी भी बढ़ रही थी। अचानक आकाशमें बादल छा गये, विजली चमकने लगी, पवनका वेग बढ़ गया और वृष्टि होने लगी।

‘वहिन ! ईश्वर क्षमा करें। तुमने यह क्या कर डाला?’ संत वेनडिक्ट मुस्कराने लगे।

‘मैंने आपका दरवाजा खटखटाया, पर आपने मेरी पुकारकी उपेक्षा कर दी। मैंने भगवान्‌से प्रार्थना की; उन्होंने अपनी कृपासे मुझे निहाल कर दिया। अब तो आप रुकेगे ही।’ स्कालस्टिका प्रसन्न थी।

‘प्रार्थनाकी शक्ति अमोघ है।’ वेनडिक्ट ठहर गये। उन्होंने रातमे अपनी वहिनसे भगवच्चर्चा-सम्बन्धी बात की। निस्तदेह यह उनकी अन्तिम भेट थी।—रा० श्री०

संतकी निर्भयता

परमात्माके भक्ति-साम्राज्यमे निवास करनेवाले सत सदा अभय होते हैं। वे किसीसे भी नहीं डरते। सोलह सौ वर्ष पहलेकी एक घटना है मिश्र देशके

प्रसिद्ध सत हिलेरियोके पूर्वाश्रमकी। बचपनसे ही उनकी सतोके चरणोमें श्रद्धा थी। वे संत एन्टोनीकी प्रसिद्धिसे आज्ञाष्ट होकर उनसे मरुस्थलमें मिलने गये थे।

वे उनके समीप दो मासूलक रह गये। घर लैटनेपर उन्हें अपने माता-पिताकी मृत्युका समाचार मिला। इस समय उनकी अवस्था केवल पंद्रह वर्षकी थी। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति सम्बन्धियों और गरीबोंको दे दी और स्वयं भगवान्‌का भजन करनेके लिये घरसे बाहर निकल पड़े।

उन्होंने मरुस्थलमें रहनेका निश्चय किया, जो समुद्र-तटसे थोड़ी दूरपर अवस्थित था तथा झाड़-झाड़ोंसे अमित भयानक दीख पड़ता था। मित्रोंने सावधान किया कि वह स्थान लूटपाट और मार-काटके लिये प्रसिद्ध है; दिन दहाड़े डाकूलोग सारी वस्तुएँ छीनकर मार डालते हैं।

‘मुझे भगवान्‌का भरोसा है। संसारमें मैं किसीसे नहीं डरता। केवल मृत्युका भय लगता है।’ हिलेरियोने मरुस्थलके लिये प्रस्थान किया।

‘यदि आपको इस मरुस्थलमें कोई मार डाले तो आप क्या करेंगे? यदि चोर और डाकू छेड़-छाड़ करें तो उनसे आप कैसा व्यवहार कीजियेगा?’ कुछ अपरिचित व्यक्तियोंने संतसे पूछा।

‘गरीब और नंगे-भूखे रहनेवाले किसीसे भी नहीं डरते हैं।’ संतका उत्तर था।

‘पर वे आपको जानसे मार सकते हैं।’ उन लोगोंने अपने वचन दोहराये।

‘यह नितान्त सच है। यही कारण है कि मैं उनसे नहीं डरता। मैं भरनेके लिये सदा प्रस्तुत हूँ।’ संत हिलेरियोकी निर्भयताने अपरिचित व्यक्तियोंको भी आश्चर्य-चकित कर दिया। वे मरुस्थलके डाकू थे, जो वेष वंदल-कर संतकी परीक्षा लेने आये थे।—रा० श्री०

सौन्दर्यकी पवित्रता

स्पेनके पेरु ग्रान्टके लिया नगरमें सोलहवीं शताब्दीमें संत रोजका जन्म हुआ था। वह असाधारण रूपवती थी। उसके मनमें यह धारणा परिपूष्ट हो गयी थी कि मेरा सौन्दर्य भगवान्‌के लिये है और जब वह भगवान्‌के लिये है—तब परम पवित्र है। सौन्दर्य सांसारिकोंकी दृष्टि पड़नेपर अपवित्र हो जाता है। वह इस दिशामें सदा सावधान रहती थी कि कहीं उसका शारीरिक सौन्दर्य दूसरोंके मनमें विकार उत्पन्न न कर दे। अपने नियास-स्थानसे बाहर निकलनेपर वह अपने मुखपर लाल मिर्चकी बुकनी पोत लिया करती थी; इससे मुख सूज जाता था और उसकी आकृति भद्दी दीख पड़ती थी।

‘यह तो सर्वांकी सुन्दरी है। कितने सुन्दर और चिकने हैं इसके हाथ! इसके बनानेवालेने अपनी सारी

कला इसके सृजनमें समाप्त कर दी है।’ एक नवयुवकके उद्धार थे संत रोजके प्रति। वह घरसे बाहर कहीं जा रही थी। रोजके खुले हाथोंकी ओर उसकी दृष्टि चली गयी थी। नारीके अङ्ग इसीलिये ढके रहने योग्य हैं। अस्तु।

रोज उसके इस कथनसे बहुत दुखी हुई। जो सौन्दर्य दूसरोंके मनमें वासना उत्पन्न कर दे, वह इस शरीरपर रहने योग्य नहीं है—यह सोचकर वह घरमें चली गयी। उसने अपने दोनों सुन्दर और स्निध हाथोंको खौलते चूनेके पानीमें तल्काल डालकर विकृत कर दिया। अपने शरीरसे अपवित्र सौन्दर्य समाप्तकर वह प्रसन्नतासे नाच उठी।—रा० श्री०

संतकी सेवा-वृत्ति

मिश्र देशके प्रसिद्ध संत सेरापियोकी त्याग-वृत्ति उच्च कोटिकी थी। चौथी शताब्दीके संत-साहित्यमें

उनका नाम अमित प्रसिद्ध है। वे सदा मोटे कपड़ेका चौगा पहनते थे और समय-समयपर दीन-दुखियोंकी

सहायताके लिये उसे बेच दिया करते थे । कभी-कभी तो आवश्यकता पड़नेपर अपने-आपको भी निश्चित अवधि-के लिये बेचकर गरीबोंको आर्थिक सहायता देते थे ।

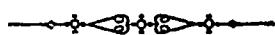
एक समय उनकी अपने घनिष्ठ मित्रसे भेट हुई । वह उनको बिल्कुल फटे-हाल देखकर आश्चर्यचकित हो गया ।

‘भाई ! आपको नगा और भूखा रहनेके लिये कौन विवर कर दिया करता है ?’ मित्रने पूछा ।

‘यह बात पूछनेकी नहीं, समझनेकी है । गरीब और असहाय लोगोंकी आवश्यकताको देखकर मैं अपने आपको नहीं सम्भाल पाता । मेरी धर्म-पुस्तकका आदेश है कि दीन-दुखियोंकी सेवाके लिये अपनी सारी वस्तुएँ बेच डालो । मैंने भगवान्‌की आज्ञाके पालनको ही अपने

जीवनका उद्देश्य बनाया है ।’ सतने मित्रका समावान किया । ‘पर आपकी वह धर्म-पुस्तक कहाँ है ?’ मित्रका प्रश्न था ।

‘मैंने असहायोंकी आवश्यकताके लिये उसे भी बेच दिया है । जो पुस्तक परसेवाके लिये सारे सामान बेच देनेका आदेश देती है, समय पड़नेपर उसको भी बेचा जा सकता है । इसमे दो लाभ हैं; पहला तो यह है कि जिसके हाथमे ऐसी दिग्य पुस्तक पड़ेगी, वह धन्य हो जायगा, उसकी त्याग-वृत्ति निखर उठेगी, और दूसरा यह कि पुस्तकके बदलेमे जो पैसे मिलेंगे, उनसे असहायों और दुखियों तथा अभावग्रस्त व्यक्तियोंकी ठीक-ठीक सेवा हो सकेगी ।’ सेरापियोने सरलता और विनम्रतासे उत्तर दिया ।—४० श्री०



संत प्रचारसे दूर भागते हैं

ऐसा ग्राय. देखा जाता है और सतोंके जीवन-वृत्तान्तसे पता चलता है कि वडे-बडे सत विज्ञापन, प्रचार और प्रसिद्धिसे दूर भागते हैं, उन्हें ये कॉटोंकी तरह चुमते हैं ।

पैंचवाँ शताब्दीके प्रसिद्ध सत अरसेनियस प्रचार और प्रसिद्धिसे बहुत ध्वराते थे । वे नितान्त एकान्तसेवी थे । सदा अपनी गुफामें निवास करते हुए परमात्माका स्मरण किया करते थे ।

एक दिन सिकन्दरिया नगरके कुल्पति यियोफिल्सके सकेनपर एक रोमकी महिला मेलनिया उनसे मिलने आयी । वह इटलीसे मिश्र केन्वल उनका दर्शन करनेके लिये ही आयी थी । सत अपनी गुफासे बाहर निकल रहे थे कि धनी महिलाने उनकी चरणधूलि अपने मस्तकपर चढ़ा ली ।

‘खीको अपना घर छोड़कर अकेले बाहर नहीं जाना

चाहिये । आप हमारे पास इसलिये आयी है कि आप रोममे पहुँचकर लोगोंसे यह कह सके कि आपको मेरा दर्शन हुआ है । इस तरह आप लोगोंको मेरे पास आनेमे प्रेरणा देंगी । है न यही ध्येय ?’ अरसेनियसके प्रश्नसे महिला लजित हो गयी ।

‘आप मुझे सदा याद रखियेगा और भगवान्‌से मेरे कल्याणके लिये प्रार्थना कीजियेगा ।’ महिलाने दीनता-पूर्वक निवेदन किया ।

‘मैं तो यह प्रार्थना करूँगा कि मेरे मस्तकसे आपका स्मरण ही मिट जाय ।’ संतका कथन था ।

महिलाको इस उत्तरसे बड़ा दुःख हुआ पर उसके सिकन्दरिया पहुँचनेपर यियोफिल्सने सान्त्वना दी कि अरसेनियसका आशय शारीरिक स्मरणसे था, सत तो दूसरोंके आत्मकल्याणके लिये सदा भगवान्‌से प्रार्थना किया ही करते हैं । —४० श्री०



गरजनेके बाद बरसना भी चाहिये

सुकरातकी पत्नी अंटीपी अत्यन्त कर्कशा थी । बोले—‘बहुत गर्जनाके बाद कुछ वर्षा भी तो होनी वह अकारण ही पतिसे झगड़ा किया करती थी । ही चाहिये थी ।’
एक बार किसी बातपर असंतुष्ट होकर वह सुकरातको भली-बुरी सुनाने लगी । सुकरात चुपचाप उसके कठोर वचन सुनते रहे । कोई प्रलुत्तर न मिलनेसे उसका क्रोध बढ़ता ही गया । अन्तमें उसने एक पानी भरा वर्तन उठाकर सुकरातके सिरपर उड़ेल दिया । सुकरात

सुकरातके एक मित्रने उनकी दुर्दशा देखकर कहा—‘ऐसी कर्कशा नारी छड़ीसे ही ठीक करने योग्य है ।’

सुकरात हँसकर बोले—‘आप चाहते हैं कि हम दोनों झगड़े और आप तमाशा देखें ?’ मित्र इस शान्त पुरुषके सम्मुख लज्जित हो गये ।—सु० सिं०

कलाकी पूजा सर्वत्र होती है

क्रियों यूनानके एथेंस नगरका एक नवयुवक गुलाम था । उसके जीवन-कालमें राज्यका कानून था कि कोई गुलाम कलाकी उपासना नहीं कर सकता । लित कलाओंको सीखनेका उसे अधिकार नहीं था । क्रियों बड़ा गरीब था; वह संगमरमरकी कलापूर्ण मूर्ति बनाकर जीविका चलाता था । कानून बन जानेपर वह विवश हो गया ।

वह अपनी वहिनकी सम्मतिसे एक गुफामें रहने लगा । वह चोरी-चोरी संगमरमरकी मूर्ति बनाया करता था । एक समयकी बात है । एथेंसमें कला-प्रदर्शनी ढूँढ़ी । क्रियोंको पेरिक्लीज़ने* पुरस्कार पानेकी आशा थी । उसने संगमरमरकी कई मूर्तियाँ भेज दीं, प्रदर्शनीमें स्थियं न जाकर अपनी वहिनको भेज दिया ।

प्रदर्शनीमें दर्शकोंने क्रियोंकी मूर्तियाँ बहुत पसंद कीं । अन्य कलाकार इस बातसे जल उठे ।

‘ये किसकी मूर्तियाँ हैं ?’ उनमेंसे एकका प्रश्न था । क्रियोंकी वहिनके अधर निस्पन्द थे ।

सुकरात, फिडियस आदिके साथ पेरिक्लीज़ भी

आ पहुँचे । पर उनके पूछनेपर भी वह दास-कन्या मौन रही । पेरिक्लीज़ने तत्काल उसे कारागारमें डाल देनेका आदेश दिया, पर क्रियों आ पहुँचा । उसके पैरोंमें धूलि लिपटी थी, लंबे-लंबे बाल पीठपर लटक रहे थे । चिन्ता और भूखसे मन उदास था ।

‘महाशय ! मेरी वहिनका कोई अपराध नहीं है । दोष तो मेरा है जो गुलाम होकर भी मैंने कलापूर्ण मूर्तियाँ बनायीं ।’ क्रियों पेरिक्लीज़के पैरोंपर गिर पड़ा ।

‘इसे कारागारमें डाल देना चाहिये ।’ अन्य कलाकारोंने माँग की ।

‘नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता । यह कानून कठोर है । नवयुवकके लिये कारागार उपयुक्त नहीं है, वह तो मेरी बगलमें बैठनेका अधिकारी है । सच्ची कला सबकी वस्तु है । उसे वर्गविशेषकी अपेक्षा नहीं है ।’ पेरिक्लीज़ने क्रियोंको अपनी बगलमें बैठ लिया और एस्पीसियाने क्रियोंके सिरपर मुकुट रख दिया । सच्ची कलाकी उपासनाने उसके हृदयके सौन्दर्यसे एथेंस-निवासियोंका मन मुाघ कर लिया ।—रा० श्री०

* पेरिक्लीज़ एथेंसका सर्वश्रेष्ठ राज्याधिकारी था । एस्पीसिया उसकी पतीका नाम था ।

मौनकी शक्ति

सतका मौन बहुत बड़ा और दिव्य भूपण है। वाणीके मौनसे सतोंने आश्र्यजनक वडे-वडे कार्योंका सम्प्रदान किया है। ग्यारहवीं शताब्दीके दूसरे चरणकी बात है। सम्राट् हेनरी द्वितीय कुछ दिनोंके लिये इटली गये हुए थे। उन्होंने संत रोमाल्डको सम्मानपूर्वक अपनी राजसभामें पधारनेका निमन्त्रण दिया, पर उन्होंने जाना स्वीकार नहीं किया। सम्राट् अपने प्रयत्नमें संलग्न थे, कुछ शिष्यों और भक्तोंके विशेष आग्रह और ग्रार्थनासे संतने सम्राट्की राजसभामें प्रवेश किया। सम्राट्सहित सारे सभासद् उनके सामने उठ खडे हुए। उनके आसन ग्रहण करनेपर सारी राजसभामें दिव्यता और शान्ति छा गयी।

‘मेरी सबसे बड़ी इच्छा यही है कि मेरी आत्मा

आपकी ही तरह भगवान्‌के चरणदेशमें समर्पित रहे।’ सम्राट् अपने सिंहासनसे उठ खडे हुए, सादर अभिवादन किया। लोग समझते थे कि संत कुछ कहेगे, पर उनको नितान्त मौन देखकर वे आश्र्यचकित हो गये। सम्राट् ने सोचा कि संत मौन रहकर मानो मेरी ग्रार्थनाको स्वीकार कर रहे हैं। उस मौनमें ऐसी सहज पवित्रता थी कि सम्राट्‌के मनमें यह कल्पना भी नहीं आँयी कि संतका यह आचरण अभिमानजनित है और यों मेरे प्रति उनके मनमें उपेक्षाका भाव है। बल्कि सम्राट् ने इस मौनके मूलमें संतकी विनम्रता और कृपा समझी। सम्राट्‌को संतके मौन-धारणसे बड़ी प्रसन्नता हुई।—रा० श्री०

दैन्यकी चरम सीमा

फ्रान्सके प्रसिद्ध सन इवोहिलारीका समस्त जीवन दैन्यका प्रतीक था। तेरहवीं शताब्दीके यूरोपके इतिहासमें उनका नाम अमर है। अपने निवासस्थान विट्नी नगरमें वे परम दीन होकर रहनेका यत्न करते थे और अपने-आपको साधारण-से-साधारण मानवके रूपमें प्रकट करते थे। उनके पास कहनेके लिये इस संसारमें अपना कुछ भी नहीं था; फसल कटते ही सारा अन्न गरीबों और दीन-दुखियोंको देकर वे महती प्रसन्नताका अनुभव करते थे।

एक समय वे अपनी कुटीमें ही बैठकर किसी

पादरीसे बात कर रहे थे। घरमें केवल एक रोटी बची थी। उस रोटीको उन्होंने गरीबोंमें बौँट देनेका आदेश दिया। पादरीकी इच्छा देखकर आधी रोटी उसे दे दी। वह आश्र्यचकित हो गया।

‘आप क्या भोजन करेंगे?’ पादरीका प्रश्न था।

‘भूख लगानेपर भगवान् जो कुछ भी भेज देगे, उसीसे ही काम चल जायगा।’ संतने शान्तिपूर्ण उत्तर दिया और उनके आदेशसे शेष आधी रोटी गरीबोंको दे दी गयी।

किनना उच्च था उनका दैन्य-वरण।—रा० श्री०

—२४७—

निष्कपट आश्वासन

संत डोमिनिकने तेरहवीं शताब्दीके स्पेनको अपनी स्थितिसे पवित्र किया था। वे वडे उदार, दानी और परसेवावाली थे। दूसरोंकी सेवासे उन्हें बड़ी प्रसन्नता

होती थी। वे अपना सब कुछ दीन-हीन और असहायों-को देकर रात-दिन भगवान्‌का भजन किया करते थे।

‘वेटा! मेरे पुत्रको मूरके हाथसे बचा लो। वह

केवल कुछ रूपयोंके कारण दास बना लिया गया है।' एक बुद्धियाने संतसे निवेदन किया। उसके नेत्रोंसे अश्रुकी धारा प्रवाहित थी, सिर हिल रहा था, कपड़े फटे और मैले थे; ऐसा लगता था मानो साक्षात् दरिद्रता ही संतके सेवात्रतकी परीक्षा ले रही है।

'माँ ! मेरे पास तो सोना-चाँदी कुछ भी नहीं है। इस समय इस शरीरपर मेरा पूरा-पूरा अधिकार है।

मेरा इड़ विश्वास है कि इससे मैं आपकी सेवा कर सकूँगा। माँ ! मैं इसे मूरके हायोंमें निःसंकोच सौंप-कर तुझ्हारे पुत्रका उद्धार करूँगा।' संत डोमिनिकने आश्वासन दिया।

'वेठा ! तुम भी तो मेरे ही वेटे हो। चिरंजीवी हो, भगवान् भला करें।' बुद्धियाने आशीर्वाद दिया और चर्ली गयी।—रा० श्री०

समयका मूल्य

मनुष्यके जीवनका प्रत्येक क्षण अमूल्य है। समय ऐसा धन है, जो चले जानेपर वापस नहीं आया करता। निवेदीकी पुरुष समय-ब्रह्मताकी ओर सदा ध्यान रखते हैं।

जार्ज वार्शिंगटन ठीक समयपर भोजन करते थे तथा ठीक (निश्चित) समयपर सोते थे। उनके जीवन-का प्रत्येक कार्य निर्धारित समयपर पूरा होता रहता था।

वे चार बजेके छागभग भोजन किया करते थे। एक दिन उन्होंने अमेरिकी कांग्रेसके नये सदस्योंको

भोजके लिये निमन्त्रित किया। सदस्योंके आनेमें कुछ देर हो गयी। राष्ट्रपति वार्शिंगटन भोजन करने लगे। नये सदस्योंको बड़ा आश्वर्य हुआ।

'भाई ! इसमें आश्वर्यकी क्या वात है ! मेरा रसोइया कभी यह नहीं देखता कि सब-के-सब निमन्त्रित अतिथि आ गये हैं या नहीं; वह तो पूर्णनिश्चित समयपर भोजन सामने रख दिया करता है।' राष्ट्रपति वार्शिंगटन भोजन करनेमें व्यस्त हो गये।—रा० श्री०

भद्रमहिलाका स्वच्छन्द धूमना उचित नहीं

चार सौ वर्ष पहलेकी वात है। यूनानमें सरेनस नामके एक धनी व्यक्ति रहते थे। वे एक विशाल राज्यके अधिपति थे। सश सगे-सम्बन्धियों और मित्रोंसे घिरे रहते थे। विषय-भोगमें बड़े सुखसे जीवन बीतता था, पर एक समय सहसा उनके मन-में वैराग्य उमड़ आया। जगत्की वस्तुओं और सम्बन्धोंके प्रति उनकी रुचि घटने लगी। उन्होंने दूर देशमें जाकर एकान्त-सेवन करनेका निश्चय किया; एक तपसीकी तरह ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए परमात्माके निष्काम भजन और चिन्तनमें ही समयका सदुपयोग करना उन्हें अच्छा लगा। उनके वैराग्यपूर्ण जीवनमें सहज सरलताकी स्वच्छ-निर्मल

निर्वारिणी प्रवाहित हो उठी।

सरेनसने हंगेरीमें आकर सरमियम नामके स्थान-में एक वगीचा खरीदा। अपने कड़े परिश्रमसे उन्होंने वगीचेको हरा-भरा कर दिया। वगीचेके फल आदि-से निर्वाह करके वे संसारसे पूर्ण तटस्थ होकर भगवान्-के भजनानन्द-सागरमें निमान हो गये। उनका निवास-स्थान सात्स्विक नीखता और पनित्र सादगीसे सम्पन्न हो उठा। लोक-प्रसिद्धि उस स्थानसे कोसों दूर थी।

एक दिन दोपहरको अपनी दो कन्याओंके साथ एक महिलाने वगीचेमें प्रवेश किया।

'तुम्हें यहाँ किसकी खोज है ?' सरेनसने अपनी कुड़ीसे बाहर निकलकर ग्रन्थ किया।

‘मुझे इस बगीचेमें घूमनेमें विशेष आनन्द मिलता है।’ महिलाके गव्व थे।

‘पर तुम्हारी-ऐसी उच्च कुछ और गिष्ठ घरानेकी महिलाका इस समय वाहर—बगीचेमें खच्छन्द घूमना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता इस समय तो तुम्हें घरपर ही आराम करना चाहिये।’ ऐसा लगता है कि आनेका कारण कुछ और है। मेरी सम्मति है कि भविष्यमें तुम्हे अपने समय और चरित्रके प्रति विशेष सावधान रहना चाहिये।’ सरेनसने उसे घर लौट जानेका आदेश दिया। उनके शब्दोने महिलाके कोमल हङ्गमपर बड़ी चोट पहुँचायी। उने अपनी अवहेलनापर बड़ा दुख हुआ। उसने बढ़ला लेनेका निश्चय किया।

उमका पति सम्माट् मैक्सीमियनका अङ्गरक्षक था। महिलाने पत्रद्वारा अपमानकी सूचना ढी।

‘दूर देशमें हमलोग आपकी सेवामें नियुक्त हैं, घरपर हमारी पत्रियोंकी लोग थोड़ी-थोड़ी सी बातेमें अवज्ञा करते हैं।’ पतिने न्यायालयमें सम्माट् के सामने आवेदन उपस्थित किया।

सम्माटने सरमियम प्रान्तके अध्यक्षके नामसे एक लिखित सदेश दिया, अङ्गरक्षक पत्र लेकर अध्यक्षकी सेवामें उपस्थित हुआ।

‘सम्माट्का पवित्र आदेश है कि मेरी (उनके अङ्गरक्षकका) अनुपस्थितिमें मेरी खीके प्रति किये गये अपमानका पूर्ग-पूरा बढ़ला लिया जाय।’ महिलाके पतिने आवेदनमें कहा।

‘पर वह अगिष्ठ है कौन, जिसने आप-जैसे सज्जन-की पत्नीका अपमान किया?’ अन्यक्षने विस्मित होकर कहा।

‘वह तो एक ब्रज तिहानी है, सरेनस नामका एक मूर्ख मार्ली है।’ अङ्गरक्षकने अपराधीका परिचय दिया।

सरेनसको तन्काल न्यायालयमें उपस्थित होना पड़ा। ‘यह सरेनस है।’

‘तुम क्या करते हो?’ अध्यक्षका प्रश्न था।
‘मैं एक माली हूँ।’ सरेनसने उत्तर दिया।

‘तुमने सम्माट्के अङ्गरक्षककी पत्नीको अपमानित करनेका दु साहस क्यों किया?’ न्यायालयका दूसरा प्रश्न था।

‘मैं समझता हूँ कि मैंने जीवनमें आजतक किसी-की भी पत्नीका अपमान नहीं किया है।’ सरेनसके उत्तरमें निष्कपट सरलता थी।

‘सम्माट् के अङ्गरक्षककी पत्नीकी अवहेलना और अपमान करनेवालेको दण्ड देनेके पहले गराहोंका न्यायालयमें उपस्थित होना आवश्यक है, यह प्रमाणित हो जायगा कि अपराधीने अपने बगीचेमें एक शिष्ट महिलाको किस प्रकार अपमानित किया था।’ अध्यक्षने आदेश दिया।

सरेनसके मस्तिष्कमें बगीचेवाली घटना नाच उठी। सारा-का-सारा चित्र औरोंके सामने घूमने लगा।

‘हाँ, मुझे स्मरण है, एक दिन कुसमयमें एक गिष्ठ महिला अपनी दो कन्याओंके साथ मेरे बगीचेमें घूमने आयी थी। मैंने उससे निर्भयतापूर्वक कहा था कि तुम्हारा इस समय आना कदापि उचित नहीं है। तुम घर चली जाओ। मुझे उसकी नीयतमें कुछ संदेह हुआ, इसीलिये विवश होकर सावधान करना पड़ा।’ सरेनसने समाधान किया।

इस सद्भावपूर्ण उद्भारसे महिलाका पति विस्मित हो उठा। मालीके साधारण वेशमें उसने महान् सतका दर्शन किया। उसका सिर लज्जासे नत हो गया।

‘मैं आपके उपकारका बढ़ला नहीं चुका सकता।’ उसने सतका समिनय अभिवादन किया।

सत सरेनसके नेत्रोंसे मृदुल सादगी टपक रही थी, अंधरोंपर दिव्य मुसकान थी। सम्माट्का अङ्गरक्षक न्यायालयके बाहर चला गया। —रा० श्री०

कष्टमें भी क्रोध नहीं

इतिरीक्षे एक वर्षभाजक (पाठी) पर बड़ेबड़े कष्ट आये, परन्तु उनके मनमें कभी ताद नहीं आया। लोग उन्हें गालियाँ बफने और वे हँसने रहते तथा उन्हें भीठा उत्तर देते। किसीने पूछा—‘आपमें इनी महनशक्ति कहोमें आ गयी?’ धर्मभाजकने कहा—‘मैं उपरकी तरफ देखकर सोचता हूँ कि मैं तो वहाँ जाना चाहता हूँ, पिर यहाँके किसी व्यक्तिगत अपना मन

क्यों बिगड़ूँ? नीचे नज़ार करता हूँ तो देखता हूँ कि मुझे उठने-बैठने और सोनेके लिये जर्मान ही किननी चाहिये। आसपास देखता हूँ तो मनमें आता है किनने लोग मुझमें भी अविक कट भोग रहे हैं। बस, इन्हीं विचारोंके काण में मस्तिश्च भीनल हो गया है आग अब वह किसी भी दुखमें नाम नहीं होता।’



‘न मे भक्तः प्रणश्यति’

‘मुझे जरण दीजिये, मैं दुर्भाग्यकी मारी एक दीन-हीन अवश्य हूँ। एक छीने किसीनके महान् भन मरणियनसकी गुफाके सामने जो-जोगमे चिछाना आरम्भ किया। आशी गन बीत चुम्ही थी। ऐसे समयमें नगरमें दूर निर्जन पहाड़ीपर एक बीकी आवाज बड़ी आदर्शर्थपर्याँ थी। आकाशमें तारे चमक रहे थे, पर पृथ्वीपर धना अन्धकार था। सन अपनी गुफामें जाग रहे थे, वे उसकी पुकार सुनकर बाहर आये और गुफाके बाहर उमे टहरनेका स्थान बताकर भीतर चले गये। खीका नाम ‘जो’ था।

दूसरे दिन प्रात काल उन्होंने उम रमणीको देखा, वह बड़ा रूपवती थी, उसका शरीर सोनेके आभरणोंमें भजा था। उसने अपने घन और रूपमें मतको गिगाना चाहा और अन्यन्त लिष्ट तरीकेने दृष्टित प्रस्ताव उपस्थित किया, मनके मनपर भी उसकी कुम्भृतिका प्रभाव पड़ा। वे उसके जालमें गिरनेवाले ही थे कि अचानक गुफाके बाहर उन्हें कुछ लोगोंकी उपस्थितिका संकेत मिला, वे ढर्ढन करनेके लिये नगरमें पहाड़ीपर आये थे। सनने बाहर निकलकर उन्हें उपदेश दिया। खी गुफाके बाहर आ गयी।

उपदेश समाप्तकर मरणियनसने गुस्सामें प्रवेश किया। थोड़ा डरमें कराहनेकी आवाज सुन पड़ी। गमणीने भीतर प्रवेश किया और मनके दोनों पैरोंको आगमें जलते देखकर वह चीख उठी। ‘जो’ को अह-प्रत्यह चौप उठे।

‘चहिन! इसमें चीखनेकी बात ही क्या है। यहि मैं इस जगत्की साधारण आगकी ज्वाग नहीं सह सकता तो नगरकी यानना किस प्रकार जेल मकना हूँ।’ मनके बचनमें गमणीको अपने पाप-ग्रन्थात्मक पञ्चात्ताप हुआ, वह उनके पैरेपर गिर पड़ी।

‘उठो, चहिन! भगवानने हम दोनोंको बचा लिया। वे अपने भक्तकी रक्षा करते हैं। खी-पुरुषका टकालका मिलन ही अत्यन्त नाशक है। प्रभुने यात्रियोंको ठीक मौके पर भेजकर बड़ा अनुग्रह किया। ससाम्ने मनुष्यका पनन बन, छी और मानके काण होना है। परमामाने बन और छीके बन्धनमें मुक्त कर किननी बड़ी कृपा की।’ सन मरणियनस प्रसन्न थे। गमणीक मनमें पवित्र विचार जाग उठे। वह अपने निवाम-स्थान सीजरिया नगरमें लौट गयी।—रा० श्री०

व्यभिचारीका जीवन बदल गया

सत इग्नाशियस लायलके जीवनकी एक घटना है। उनकी कृपासे एक भयानक व्यभिचारी पुण्यात्मा हो गया।

रातका समय था। बड़े जोरका हिमपात हो रहा था। नदी और तालाब आदिका पानी शीतसे जमता जा रहा था। एक दुर्व्यसनी विलासी युवक किसी दुरचारिणी खीसे मिलनेके लिये अपने रास्तेपर चला जा रहा था, अचानक उसके पैर एक तालाबके किनारे रुक गये, वह चेष्टा करनेपर भी आगे नहीं बढ़ पाता था।

‘कहाँ जा रहे हो! क्या तुम ईश्वरीय न्यायकी कड़कती विजली नहीं सुन पा रहे हो? वह अभी तुम्हारे सिर-

पर धहरानेवाली है।’ एक आव्रज उसके कानोंके परदे फाड़ने लगी।

‘नहीं रुकोगे?’ तो जाओ। तुम्हारे पांपोंका फल मैं भोग लेंगा। कहीं ऐसा न हो भगवान्‌का कोप तुम्हारे पर धहरा पडे। मैं परमात्माको मनाऊँगा।’ दूसरी आव्रजसे पापी नवशुद्ध अपने-आपको नहीं सम्हाल सका। उसके भाव बदल गये, उसने देखा कि सत इग्नाशियस लायला गलेतक जमे तालाबमें खड़े उसके कल्याणके लिये भगवान्से ग्रार्थना कर रहे हैं।

वह सतके पैरोंपर गिर पड़ा, उसने क्षमा माँगी; संत लायलकी कृपाद्विषे उसका जीवन परम पवित्र हो गया।—रा० श्री०

पवित्र अन्न

गुरु नानकदेवका अनुभव

गुरु नानकदेव अपनी यात्रामें धूमते हुए एक ग्राममें रुके थे। उस दिन उनके पास गाँवका एक लुहार मक्केकी दो मोटी रोटियाँ ले आया। उसी गाँवके जर्मांदार भी उसी दिन अपने यहाँसे उत्तम पकवान बनवाकर गुरु नानकके पास ले गये। गुरु नानकने जर्मांदारके पकवानकी ओर देखा ही नहीं। उन्होंने लुहारके लाये मक्केके टिक्कर प्रसन्नतापूर्वक खाकर चल पी लिया।

जर्मांदारको दुख हुआ अपना लाया भोजन स्वीकार न होनेसे। उन्होंने इसका कारण पूछा। गुरु नानक-देवने लुहारकी रोटियोंका एक टुकड़ा छोड़ दिया था। एक हाथमें उन्होंने उस टुकडेको लिया और एक हाथमें जर्मांदारके लाये भोजनका थोड़ा भाग लेकर दोनों हाथोंके

पदार्थोंको दबाकर निचोड़ा। लुहारकी रोटीके टुकड़ेसे दूधकी कुछ बूँदें टपकीं; परतु जर्मांदारके अन्नसे रक्तके विन्दु गिरे।

‘यह क्या बात है?’ जर्मांदारने पूछा।

गुरु नानकदेवने बताया—‘लुहारने परिश्रम करके कमाया है। उसका अन्न उसके परिश्रमसे ईमानदारीके साथ आया है। इसलिये वह शुद्ध अन्न है। उसमें सात्त्विकता है। उसका भोजन करनेसे चित्तमें निर्मलता बढ़ेगी। तुम्हारा अन्न दूसरोंको सताकर, दूसरोंका उचित अधिकार (हक) मारकर लाया गया है। यह दूसरोंका रक्त चूसकर एकत्र होनेके समान है। इसलिये यह रक्तान्न है, अपवित्र है। इस भोजनसे चित्तमें पापवृत्तियाँ प्रवृल होंगी।’

गुरुभक्ति

और गजेवकी आज्ञामे गुरु तेगबहादुरकी दिल्लीमें वृशसतपूर्वक हत्या कर दी गयी। बादशाहको इतनेसे सतोप नहीं हुआ। उसने आज्ञा दी—‘इस मृत देहका किसी प्रकारका संस्कार नहीं हो सकेगा। नगरमें चौराहेपर जहाँ वध किया गया है, वहाँ पड़ा-पड़ा वह देह सड़ा करेगा। कोई उमे उठाने या छूनेका प्रयत्न करेगा तो उमे भी प्राणदण्ड दिया जायगा।’ कुछ सैनिक नियुक्त कर दिये गये वहाँ, जिससे कोई उस देहको उठा न ले जाय।

गुरु गोविन्दसिंहजी उस समय सोलह वर्षक बालक थे। ‘पिताके शरीरका अन्येष्टि-स्स्कार चाहे जैसे हो, बरना ही है।’ इस निश्चयसे वे पजावसे दिल्ली जा रहे थे, किन्तु कुर और गजेव उनके साथ कैसा व्यवहार घरेगा, इसका कोई ठीक ठिकाना नहीं था। सभी लोगोंमें बड़ी चिन्ता व्याप्त थी। उपाय भी कुछ नहीं था, क्योंकि गुरु गोविन्दसिंहजी पिताका अन्तिम-स्स्कार छोड़ देनेको प्रस्तुत हों, यह कहा भी कैसे जाय।

‘आप यहाँ गुप्तस्थपसे ठहरें। हम दोनों गुरुदेवका शरीर यहाँ ले आयेंगे। दिल्ली नगरमें जाना आपके लिये किसी ग्रकार निरापद नहीं है।’ एक निर्धन गाड़ीगले सिखने अपने पुत्रके साथ दिल्ली जानेका निश्चय कर लिया और उसने नगरसे कई मील दूर ही गुरु गोविन्दसिंहको रुकनेका आग्रह किया। उन पिता-पुत्रके आग्रहको गुरुने स्वीकार किया।

वे पिता-पुत्र दिल्ली आये। पूछ-ताछकर उन्होंने गुरु तेगबहादुरके शरीरका पता लगा लिया। अब उस शरीरसे तीव्र दुर्गन्ध आने लगी थी। वहाँ नियुक्त सैनिक पर्याप्त दूर हट गये थे और निश्चिन्त होकर आमोद-ग्रमोदमें लगे रहते थे। लोगोंने वह मार्ग प्राय छोड़ दिया था। कोई उवरसे आता भी था तो मुख दूसरी ओर करके, नाक दबाकर दूरसे ही चला जाता था।

दोनों पिता-पुत्र जब वहाँ पहुँचे, तब पिताने पुत्रसे कहा—‘हम दोनोंमेंसे एकको प्राणत्याग करना चाहिये, क्योंकि यदि इस शब्दके स्थानपर दूसरा शब्द यहाँ ढक-कर नहीं रखा जायगा तो पहरेदार सैनिकोंकी दृष्टि पड़ते ही वे सावधान हो जायेंगे। और गजेवके सैनिक सिखोंके एकमात्र आधार बालक दम्भे गुरुको छूँकने निकल पड़ेंगे। तुम युवक हो। तुम्हारा शरीर सत्रल है। गुरुके इस शरीरको उठाकर तुम भलीप्रकार ले जा सकते हो। इसलिये मुझे मरने दो।’

पुत्र कुछ कहे, इससे पहले तो पिताने अपनी कट्टर अपनी छातीमें मार ली और वह गिर पड़ा। पुत्रने अपने पिताका शब्द वहाँ मार्गमें लियकर ढक दिया और गुरु तेगबहादुरका शरीर कधेपर उठाकर चल पड़ा। वह निर्विन्द नगरसे निकल गया, क्योंकि जहाँ इतना त्याग एवं श्रद्धा होती है, वहाँ सम्मुख आनेमें विनोंके देवताके भी पैर काँपते हैं।

सत्य निष्ठा

गुरु रामसिंह

‘सत्य ही एकमात्र धर्म है। सत्यको पकड़े रहनेसे सम्प्रदायके सम्पादक गुरु रामसिंहजीका।

सभी धर्मके अङ्ग खतः सिद्ध हो जाते हैं। सत्य ही एक बार अन्वालामें कसाइयों और हिंदुओंमें झाड़ा मुक्तिका साधन है।’ यह प्रधान उपदेश या कृका हो गया। कसाई एकत्र होकर बड़त-सी गार्योंको

जुल्स बनाकर वधके लिये ले जा रहे थे। मार्गिं हिंदुओंके लिये यह दृश्य असह्य हो गया। उन्होंने कसाइयोंके हाथसे गायोंको बलपूर्वक छीन लेनेका प्रयत्न किया। बहुतसे लोग धायल हुए, किंतु कसाई सख्तामें अधिक थे। हिंदू सफल नहीं हो सके। परंतु उसी रात्रिको कुछ लोग कसाइयोंके घरमें छिपकर धुस गये और उन्होंने उनको मार डाला। फलत् सुवरेसे ही पुलिसने लोगोंकी धरणकड़ प्रारम्भ की। ऐसे अवसरोंपर प्रायः जैसा होता है, उस समय भी हुआ। अधिकार्ग निरपराध लोग पकड़े गये। उनके विरुद्ध झट्टी गत्राहियों पुलिसने तैयार कीं।

गुरु रामसिंहको जब यह समाचार मिला, तब वे बहुत दुखी हुए। अपने शिष्योंके मध्यमें वे बोले— 'हिंदुओंने बहुत कायरतापूर्ण कार्य किया है। उन्हें कसाइयोंको मारना ही था तो सामने ललकारकर छड़ते। अब तो वे और भी पाप कर रहे हैं कि ख्य छिप गये हैं और निरपराध लोग दण्ड भोग रहे हैं।'

उस समय गुरु रामसिंहकी मंडलीमें एक ऐसा उनका शिष्य भी था, जो इस काण्डमें सम्मिलित था।

पंजाब-केसरीकी उदारता

पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह कहीं जा रहे थे। अकस्मात् एक ढेला आकर उनके लगा। महाराज-को बड़ी तकलीफ हुई। साथी ढौड़े और एक बुढ़िया-को लाकर उनके सामने उपस्थित किया।

बुढ़िया भयके मारे कौप रही थी। उसने हाथ जोड़कर कहा—'सरकार! मेरा बच्चा तीन दिनोंसे भूखा था, खानेको कुछ नहीं मिला। मैंने पके बेलकी देखकर ढेला मारा था। ढेला लग जाता तो बेल टूट पड़ता और उसे खिलाकर मैं बच्चेके प्राण बचा सकती, पर मेरे अभाग्यसे आप दीचमें आ गये। ढेला आपको लग गया। मैं निर्दोष हूँ, सरकार! मैंने ढेला आपको

उसने अपना अपराध गुरुके समुख स्वीकार किया। गुरु रामसिंहने पूछा—'तुम्हारे साथ जो लोग थे, उनमें क्या और कोई भी मेरा शिष्य था?'

उसने कहा—'नहीं, उनमें और कोई कूका नहीं था।'

गुरु रामसिंह—'तब तुम्हें सरकारी अधिकारियोंके समुख उपस्थित होकर अपना अपराध स्वीकार कर लेना चाहिये। तुम्हारे साथियोंमें कोई मेरा शिष्य होता तो उससे भी मैं यही करनेको कहता। परतु तुम्हे किसी भी कष्टके भय या प्रलोभनमें पड़कर अपने साथियोंके साथ विश्वासघात नहीं करना चाहिये। उनका नाम बतलाना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है। यह उनका कर्तव्य है कि वे अपना अपराध स्वीकार करें।'

गुरुकी आज्ञा मानकर 'वह व्यक्ति' सरकारी अधिकारियोंके सामने उपस्थित हुआ। उसने 'अपना अपराध स्वीकार कर लिया। किंतु उससे किसी प्रकार उसके साथियोंका नाम नहीं पूछा जा सका। उसे ऑफिसी न्यायने फॉसी दी, किंतु धर्मराजका न्याय उसे पुण्यात्माओंके लोक स्वर्गमें भेजेगा, यह भी क्या सद्देह करनेकी बात है?'

नहीं मारा था। क्षमा कीजिये।'

बुढ़ियाकी बात सुनकर महाराज रणजीतसिंहजीने अपने आदमियोंसे कहा—'बुढ़ियाको एक हजार रुपये और खानेका सामान देकर आदरपूर्वक घर भेज दो।'

लोगोंने कहा—'सरकार! यह क्या करते हैं। इसने आपको ढेला मारा, इसे तो कठोर दण्ड मिलना चाहिये।'

रणजीतसिंह बोले—'भाई! जब विना प्राणोंका तथा विना बुद्धिका वृक्ष ढेला मारनेपर सुन्दर फल देता है, तब मैं प्राण तथा बुद्धिवाला होकर इसे दण्ड कैसे दे सकता हूँ।'

नामदेवकी समता-परीक्षा

‘अरे नामू ! तेरी घोनीमे खून कैमे लग रहा है ?’

‘यह तो माँ ! मैंने कुन्हाडीमे पुगको टीलकर देखा था ।’ मैंने घोनी उठाकर देखा—पैरमे एक जगहकी चमड़ीमाससहित छील दी गयी है । नामदेवता ऐसे चढ़ रहा था मानो उसको छुछ हुआ ही नहीं । नामदेवकी मौने सिर पूछा—

‘नामू ! तू बड़ा मूर्त है । कोई अभने पैग्यर भी कुन्हाडी चढ़ाना करता है ? पैर टूट जाय तो लैंडा होना पड़े । बाबू पक जाय या नड़ जाय तो पैर छलानेकी नौकर आवे ।’

‘तब पैडको भी कुन्हाडीमे चोट लगती चाहिये । उन दिन ने कृष्णमे मै पलामके पैडकर छुँहाडी

चलाकर उसकी ढाढ़ उतार लीजा था । मेरे मनमे आयी कि अग्ने पैरकी ढाळ भी उतारकर देखूँ, मुझे कैसी लगती है । पलासके पैडको कुछ हुआ होगा, जहा जाननेके लिये मैंने ऐसा किया माँ !’

नामदेवकी माँको यद आया कि मैंने-नामदेवके उन दिन काढ़ेके लिये पत्तासकी ढाढ़ लाने भेजा था । नामदेवकी माँ ने पड़ी, उसने कहा—‘वेद नामू ! मांझम होता है तू महान् मातृ होगा । पैडोंमे और दूनरे जीव-जन्मउम्मी भी मनुष्यके ही जैसा जीव है । अग्ने चोट लगानपर दुख होता है ईसा ही उनको भी होना है ।’

बड़ा होनेपर वही नाम ग्रसिद्ध भक्त नामदेव हुए ।

एकत्तायजीकी अक्रोध-परीक्षा

पैठणमे कुछ दूर्घोंने मिलकर घोणा की कि ‘जो कोई एकत्ताय भहाजको क्रोध दिला देगा, उसे दो सौ रुपये इनाप दिया जायगा ।’ एक ब्राह्मण युद्धकले बीड़ा उथाया । वह दूर्घोंने दिन प्रात दाढ़ एकत्तायजीके वर पहुँचा । उस समय एकत्तायजी पूजा कर रहे थे । वह विना हायग्रे बोने और विना दिसीये पूँछ-जौचे भीत्रा पूजावरमे जाकर उनकी गोडमे जा चैठा । उसने सोचा था—ऐसा करनेपर एकत्तायजीको जल्द क्रोध होगा, परन्तु उन्होंने हँसकर कहा—‘भैग ! तुम्हें देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ । मिलने तो बहुतमे लोग हैं, परन्तु तुम्हारा प्रेम तो बिल्कुल है । वह देखना ही रह गया । उसने सोचा कि इनको क्रोध दिलाना तो बहुत कठिन है । पर उसे दो सौ रुपयेका लोभ था,

इसमे किर दूसरी बार चेष्टा करनेका विचार किया । भोजनके समय उसका आसन एकत्तायजीके पास ही लगाया गय । भोजन परोसा गया । श्री परोसनके लिये एकत्तायजीकी पत्ती गिरिजावाई आयी । उन्होंने यो ही छुककर ब्राह्मणकी दाढ़में थी प्रगिमना चाहा, व्यो ही वह लम्फकर उनकी पीठपर चढ़ गया । एकत्तायजीने पत्तीमे कहा—‘देखना ब्राह्मण कहीं गई न पड़ ।’ गिरिजावाई भी एकत्तायजीकी ही वर्मजीती थी । उन्होंने मुनकलने हुण कहा—‘कोई दग्धकी बात नहीं है; मुझे हरि (एकत्तायजीके पुत्रका नाम था) को पीठपर लाडे काम करनेका अभ्यास है । उस बच्चेको मै कोने मिलने दूँगी ?’ गह देख-मुनकर तो ब्राह्मणकी नारी आगा टूट गया । वह लुडककर एकत्तायजीके चेहरोमे पिंप उड़ा और क्रमा माँगने लगा ।

तुकारामका विश्वास

तुकाराम मराठ-इतिहासमे एक स्मरणीय तथा अलौकिक पुरुष हो गये हैं। वे अत्यन्त चतुर तथा विनोदी थे। प्रपञ्चोंसे वे सदा दूर रहते थे। व्यक्ति-पूजा उनकी प्रकृतिके विरुद्ध बात थी। वे परम त्यागी तथा उच्चकोटिके भगवद्गत्त थे। १६२९-३० के भीषण अकालमे उनके स्त्री-पुत्र रोटी-रोटी करते कालकवलित हो गये, पर उनके अडिंग भगवद्विश्वासमे तनिक भी अन्तर न आया।

इनका पशु-पक्षियोंपर भी अपार अनुराग था। एक

बार एक किसानने उन्हे अघने खेतकी रखवालीपर नियुक्त किया। कुछ लुटेरे आये और खेतको पशुओं तथा अपने हाथोंसे उजाड़ दिया। ध्यानमग्न संत तुकाराम कुछ न बोले। किसान आया और उन्हें खेत उजाड़ने-का अपराधी ठहराया। पर आश्चर्य! जब तुकारामने उस खेतपर दृष्टि ढाली तो वह खेत पूर्ववत् लहलहा उठा। इससे प्रसन्न होकर किसान उन्हें कुछ अनाज देने लगा, पर तुकारामने अस्वीकार कर दिया।

सेवा-भाव

समर्थका पनवड्हा

समर्थ स्वामी रामदासजी बुद्ध हो गये थे। छत्रपति शिवाजीने उनकी सेवाकी व्यवस्था कर दी थी। अनेक सेवक नियुक्त कर दिये थे सेवामे। परतु श्रीसमर्थ अपने विशेष कृपापात्रोंसे ही सेवा लेते थे। श्रीसमर्थको ग्रसाद लेनेके पश्चात् पानकी आवश्यकता होती थी। बहुत समयसे ताम्बूल-सेवनका उन्हें अभ्यास था। दौत न होनेसे ताम्बूल पनवड्हेमे कूटकर उन्हें दिया जाता था।

एक दिन पानमे कुछ चूना अधिक हो गया। श्री-समर्थके मुखमे धाव हो गये उस पानको खानेसे। पान देनेकी सेवा जिसकी थी, उसे समर्थने तो कुछ कहा नहीं, किंतु वह स्वयं बहुत दुखी हो गया। ‘ऐसा कष फिर गुरुदेवको न हो, इसका उपाय कौन-सा है?’ वह इस चिन्तामे पड़ गया। अन्तमें उसे एक उपाय सूझ गया। उसकी सेवा चलती रही। फिर समर्थके पानमें चूना कभी अधिक नहीं हुआ।

अचानक एक दिन उस सेवकका वह उपाय दूसरे सेवकने देख लिया। वह दूसरा सेवक तो ग्लानिसे सिहर उठा। उसी समय वह छत्रपतिकी सेवामे उपस्थित

हुआ। छत्रपतिने उसकी बात सुनी और सुनते ही उनका चेहरा क्रोधके मारे तमतमा उठा। वे तुरत श्रीसमर्थके आश्रमपर पहुँचे।

असमयमे छत्रपतिको आया देख समर्थने पूछा—‘शिवा! इस समय कैसे आये?’

शिवाजीने मस्तक चरणोपर रखकर प्रणाम किया। वे हाथ जोड़कर बोले—‘सुना है, स्वयं ताम्बूल चबाकर सेवक वह उच्छिष्ट आपको देता है।’

जैसे कुछ जानते ही न हो, इस भोलेपनसे श्री-समर्थ बोले—‘ऐ! ऐसा करता है वह? कहाँ है? बुलाओ तो।’

सेवक आया। छत्रपतिने ही उससे पूछा—‘गुरुदेव-को तुम्हीं ताम्बूल देते हो? कूटकर ताम्बूल देते हो न?’ जिस पनवड्हेमे ताम्बूल कूटते हो, वह पनवड्हा ले तो आओ।’

सेवक चला गया। कुछ देरमे हाथमे एक थाल लिये वह लौटा। उसका शरीर रक्तसे लथपथ हो रहा था।

चाकूसे अपना पूरा जबड़ा काटकर उसने थालमे रख दिया था । थाल धर दिया उसने छत्रपतिके सम्मुख ।

‘यह पनवट्ठा ।’ श्रीसमर्थने बड़े रेहसे देखा था । उनके नेत्रोंसे ठपाठप अशु गिर रहे थे ।

थालीमें रखे जबडेकी ओर और अपने चरणोंमें पड़े प्राण त्यागते सेवककी ओर । शिवाजीने मस्तक झुका दिया था । उनके नेत्रोंसे ठपाठप अशु गिर रहे थे ।

देशके लिये वलिदान

रुस और जापानका युद्ध चल रहा था । पिछले महासमरकी बात नहीं कही जा रही है । रुस या जारका साम्राज्यवादी रुस और जापान था एशियाकी निकासोन्मुख शक्ति । जारने कहा था—‘रुसी टोपियाँ फेंक देंगे तो जापानी बौना पिस जायगा ।’

युद्धके मैदानमें सभीको कभी आगे बढ़ने और कभी पीछे हटनेका अवसर आता है । एशियन फौजोंके द्वावसे जापानी सैनिकोंको एक पर्वतीय टीला खाली करके पीछे हटना पड़ा । दूसरी सब सामग्री तो हट्य ली गयी, किंतु एक विशाल तोप पीछे छूट गयी ।

सारी सेना पीछे सुरक्षित हट गयी थी, निश्चिन्त थी; किंतु तोपचीको गान्ति नहीं थी । ‘मेरी ही तोपसे कल शत्रु मेरे देगके सैनिकोंको भूलना प्रारम्भ करेगा ।’ तोपचीको यह चिन्ता खाये जा रही थी । रुसी सैनिकोंके पास बड़ी तोपें नहीं थीं । यह पहिली बड़ी तोप उन्हें मिलनेवाली थी । तोपचीसे रहा नहीं गया । वह रात्रिके अन्धकारमें डिविरसे निकल पड़ा । वृक्षोंकी आड़ लेता, घेटके बल खिसकता पहाड़ीपर जा पहुँचा ।

तोपची तोपके पास पहुँच तो गया, किंतु करे

क्या ? इतनी भारी तोप उस अकेलेसे हिलतक नहीं सकती थी । वह उसका एक पुर्जा भी तोड़ने लगे तो गत्रु जाग जाय और उमे पकड़ ले । अन्तमें कुछ सोचकर वह तोपकी भारी नलीमें घुस गया । बाहर वर्फ पड़ रही थी, तोपकी नलीके भीतर तोपचीकी हड्डियाँ तक जैसे फटी जा रही थीं । वह दाँत-ग्र-दाँत दबाये पड़ा था । उसकी पीड़ा असह हो गयी थी ।

सबेरा हुआ । एशियन सैनिक-सेनानायकोंने तोपको चारों ओरसे घूमकर देखा । उसकी परीक्षा करनेका निश्चय करके गोला-त्राखूद भरवाया उसमें । पलीता दिया गया और सामनेका वृक्ष रक्तमे लाल हो गया । नलीमें घुसे तोपचीके चिथडे उड़ चुके थे ।

अन्धविश्वासी जारके सैनिक चिलाये—‘धूर्त जापानी तोपपर कोई जाढ़ कर गये हैं । इसमें शैतान बैठा गये हैं जो नलीसे खून उगल रहा है । पहाड़ी छोड़कर मागे जल्दी ।’

तोपको वहीं छोड़कर वे सब भाग खड़े हुए । जापानी सेना फिर लौटी वहाँ और उसके नायकने तोपचीके समानमें वहाँ स्मारक बनाकर सलामी दी ।—सु० मिं०

उदारता

इंगलैंडकी प्रसिद्ध सथा ‘रॉयल एकडेमी’की चित्र सजानेवाली समितिकी बैठक हो रही थी । एकडेमी हालमें सुसज्जित करनेके लिये डेश-विदेशके चित्रकारोंने अपने श्रेष्ठतम चित्र भेजे थे । जितने चित्र सजाये

जा सकते थे वे सजा दिये गये थे, अब एक चित्र मी लगानेको स्थान नहीं था । किंतु एक नवीन चित्रकारका चित्र सामने था और सुन्दर था । एक सदस्यने कहा—‘चित्र तो उत्तम है, किंतु इसे अब लाया कहाँ जाय ?’

इंगलैंडके विख्यात चिन्हकार टर्नर भी उस समितिके सदस्य थे, वे बोले—‘माननीय सदस्योंको चित्र पसद आयेगा तो उसे लगानेके स्थानका अभाव नहीं होगा ॥’ ‘आष कहाँ लगायेंगे उमे ॥’ सदस्योंने पूछा। टर्नर

उठे, उन्होंने स्थय अपना एक चित्र उतारा और उस चित्रको वहाँ लगा दिया। टर्नरका चित्र उस चित्रसे बहुत उत्तम था, किंतु उन्होंने कहा—‘नवीन कलाकारको प्रोत्साहन प्राप्त होना चाहिये।’ —सु० सिं०

सार्वजनिक सेवाके लिये त्याग

वर्मसे इवेत्रु गाँवके पास एक बड़ा बॉथ बनाया गया था । आसपासके गाँवोंके किसानोंने उसे बनानेमें सहयोग किया था । वर्षा समाप्त हो जानेपर किसानोंके खेत बॉथके पानीसे सींचे जा सकेंगे, यही आगा थी । परतु सभी आयोजनोंके साथ भय लगा रहता है । अचानक रातमें घोर वृष्टि हुई । नदीमें बाढ़ आ गयी । ऐसा प्रतीत होने लगा कि नदीका जल किनारा तोड़कर बॉथमें प्रवेश कर जायगा और यहि बॉथ टूट गया—यह सोचकर ही किसानोंके प्राण सूख गये—तो बॉसके टड्डोसे बने घर बाढ़के प्रवाहमें कितने क्षण टिकेगे? मनुष्य और पशुओंका जो विनाश होगा, वह दृश्य सामने जान पड़ने लगा ।

कोई उपाय तो था नहीं, मौग स्थिय उस छेष्टको अपने शरीरसे दबाकर खड़ा हो गया ।

ऊपरसे वर्षा हो रही थी, शीतल वायु चल रही थी और जलमें जलके वेगको शरीरसे दबाकर मांग खड़ा था। उसका शरीर शीतसे अकड़ा जाता था, हड्डियोंमें भयकर दर्द हो रहा था। अन्तमें वह बेदनासे मृद्धिन हो गया। किंतु उस वीरका देह फिर भी जलके वेगको रोके बौवसे चिपका रहा।

‘माँग गया कहाँ?’ गैंवके दूसरे लोगोने थोड़ी देरमें
खोज की, क्योंकि बॉधके निरीक्षणके सम्बन्धमें उन्हें
कोई सूचना माँगने दी नहीं थी। लोग स्थय बॉध देखने
निकले। बॉधसे चिपका माँगका चेतनाहीन शरीर उन्होंने
देख लिया।

‘मॉग !’ परतु मॉग तो मूर्छित था, उत्तर कौन देता ।
लोगोंने उसके देहको बहाँसे हटाया तो वाँधमे नढ़ीका
प्रवाह आने लगा । दूसरा मनुष्य उस छेदको दबाकर
खड़ा हुआ । कुछ लोग मूर्छित मॉगको गाँधमे उठा ले
गये और दूसरे लोगोंने उस छेदको बंड किया ।

माँगकी इस वीरता और त्यागकी कथा बर्मी मातारें
आज भी अपने बालकोंको सुनाया करती है।—सू० सि०

सत्यकी शक्तिका अद्भुत चमत्कार

(लेखक-श्रीरघुनाथप्रसादजी पाठक)

स्काटलैंडके लोगोने इंगलैंडके राजाके विरुद्ध विद्रोह किया । विद्रोहके असफल हो जानेपर विद्रोहियोंको

बड़ी निर्दयतापूर्वक दण्डित किया गया। लोग कतारमें खड़े किये और गोलीसे उड़ा दिये जाते थे। एक 'बार

एक पद्रहवर्थीय लड़का गोलीसे उड़ाये जानेके लिये कतारमें खड़ा किया गया। सेनापतिको उस बालकपर दया आयी। उसने कहा 'बच्चे। यदि तुम क्षमा माँग लो तो तुम मृत्यु-दण्डमें बच सकते हो।' लड़केने क्षमा माँगनेमें इनकार कर दिया। इसपर सेनापतिने लड़केमें कहा—'मैं तुम्हें चौबीस घटेकी छुट्टी देना हूँ। तुम्हारा कोई प्रिय जन हो तो जाकर उससे मिठ आओ।' लड़का अपनी अकेली माँमें मिलने वर चला गया। जाकर देखा कि माँ बेहोश पड़ी है। माँको होशमें ले आनंदपर कहा 'माँ। मैं आ गया हूँ।' अपने एकलैने बेटेका मुँह देखकर और यह सोचकर कि पुत्रकी जान बच गयी है, माँको अपार हर्ष हुआ। उसने बालकको गोटमें विठाकर उसे जी भरकर प्यार किया।

समय समाप्त होना जानकर बालक जानेकी तैयारी करने लगा। माँने पूछा, 'वेठा! कहाँ जाते हो?' बालककी ओर्खोमें ऑसू आ गये। हृदयको सँभालकर उत्तर दिया, 'माँ। मुझे चौबीस घटेकी छुट्टी मिली थी। मृत्युदण्ड पानेके लिये कैम्पको जाता हूँ। ईश्वर तुम्हारा रक्षक है।' माँको कुछ कहनेका अवसर दिये त्रिना ही बालक वरसे निकल गया और ठीक समयपर सेनापतिके पास पहुँच गया। सेनापतिको उस बालकके लौटनेकी आशा न थी। बालककी सचाईसे सेनापतिपर इतना प्रभाव पड़ा कि उसने तत्काल उसकी मुक्तिकी आज्ञा जारी कर दी।

वस्तुत सत्यसे चरित्रमें बढ़ आता, मनुष्यका विश्वास बढ़ता और कठोर-से-कठोर हृदयमें भी कोमलना और दयाका संचार हो जाता है।

सत्यवादितासे उन्नति

पांप पाइस नक्षमको एक दिन विचित्र पत्र मिला जिसमें स्याहीके अनेक बच्चे थे। बहुत-सी भूलें थीं। कागज अन्यन्त मैला था। उमे रोमके अडोस-गडोसके एक गाँवमें रहनेवाले बालकने भेजा था और मृत्यु-दण्डायापर पड़ी हुई माँकी सेना-तुशूगा और दबाके लिये सहायता माँगी थी। बालकने अन्यन्त असहाय स्थितिमें पत्र लिया था, उसके पास एक पैसा भी नहीं था, जो कुछ था सां पहले ही समाप्त हो चुका था, उसे विवास था कि वर्मगुरु और ईश्वरके परम भक्त होनेके नामे पोप अवश्य मद्यायना करेंगे।

× × × ×

'मैं पोपसे मिलना चाहता हूँ।' बालकने पोपके निवास-स्थानपर पहुँचकर द्वारपालको पत्रोत्तर दिखाया था जिसमें पोपने दूसरे दिन सवेरे मिलनेकी इच्छा प्रकट की थी।

पोप बड़े उदार थे। उन्होंने बालकको एक स्वर्ण-

मुद्रा दी। उसकी ओर बड़े स्लेहसे देखकर कहा कि 'जीव ही वर जाकर माँका यथाविधि उपचार करो।'

'पर यह तो केवल बीस ही लाइरका है। इतनेमें काम न चलेगा।' बालकके नयनोंमें करुण याचना थी।

'क्षमा करो, भाई। मुझे तुम्हारे पत्रका स्मरण ही नहीं रहा।' पोपने एक मुद्रा और दी।

'पर यह तो मेरी आवश्यकतासे अधिक है। मेरे पास फुटकर सिक्के भी नहीं हैं, कल सवेरे शेष पैसे अवश्य लौटा दूँगा।' बालकने पोपको धन्यवाद दिया और चला गया।

× × × ×

दूसरे दिन सवेरे-सवेरे वह पोपके सामने अपने बचनके अनुसार उपस्थित हुआ। शेष पैसे लौटाने ही जा रहा था कि पोपने उसकी सत्यवादिताकी बड़ी प्रशंसा की। उन्होंने बालकके आनेके पहले ही अपना

* लाइर-मध्यकालीन इटलीका एक सिक्का।

जिगेव सेवक भेजकर बालक और उसकी माँकी स्थितिका पूरी-पूरी व्यवस्था कर दी है।’ ऐसे पाइसने बालकको पता लगा दिया था। वे बालकको देखकर बहुत आश्वासन दिया।
प्रसन्न हुए।

‘मैंने तुम्हारी गिरिधारी और मानकी सेवा-गुश्यूषकी कमाया।—रु॰ श्री॰

उनकी हृषसे बालकने आगे चलकर बड़ा नाम

सच्ची मित्रता

सिसर्थीकं सिगक्यृज नगरके राजा ड्योनिसियसने समान्य अमरावतमें डेमन नामके एक व्यक्तिको प्राणदण्डकी आज्ञा दे दी। डेमनने प्रार्थना की—‘मुझे एक वर्षका समय दिया जाय तो श्रीस जाकर अमनी सम्मति और परिवारका प्रबन्ध करके ठीक समयमर लौट आज़ँगा।’

राजाने कहा—‘तुम्हें केवल एक शर्तमर छोड़ा जा सकता है—कोई तुम्हारी जमानत ले और वचन दे कि तुम न लौटे तो तुम्हारे स्थानपर वह फँसीपर चढ़ेगा।’

राजाके निर्णयको सुनकर डेमनका मित्र पीथियस आगे आया। उसने डेमनकी जमानत ली। पीथियस न जरखंद दिया गया और डेमन छोड़ दिया गया। दिन बीतने लगे, वर्ष पूरा होनेको आया; किंतु डेमनके लौटनेका कोई सनाचार नहीं मिला। पीथियसको फँसीपर चढ़ानेका समय आ गया। लोगोंने कहा—‘पीथियस कितना मूर्ढ है। भला प्राणदण्ड पानेके लिये कोई स्वयं उपस्थित हो सकता है।’

उबर पीथियस प्रसन्न था। उसे विश्वास था कि उसका मित्र अवश्य समयमर लौटेगा। परंतु वह सोच रहा था—‘कितना अच्छा हो जि समुद्रमे तूफान आवे, डेमनका जहाज मार्ग भटक जाय। डेमन समयपर न

पहुँचे। मेरे मित्रके प्राण वच जायें और उसके बदले राजा मुझे फँसीपर चढ़ा दे।’

सचमुच डेमन निश्चित समयतक नहीं लौटा। पीथियसको प्राणदण्ड देनेकी आज्ञा हो गयी। उसे वध-स्थलपर पहुँचाया गया। परंतु उसी समय हॉफ्टां-टौड़ता डेमन ववश्वल्यर पहुँचा और दूरसे ही चिल्लाया—‘मैं डेमन हूँ। मेरे मित्रको फँसी मत दो! मैं आ गया।’

डेमन चला था समयसे ही; किंतु उसका जहाज समुद्री तूफानमे पड़ गया। किसी प्रकार किनारे पहुँचकर डेमन, जो भी सवारी मिली उसीसे, दौड़ा। उसका अन्तिम घोड़ा टौड़नेके बेगके कारण गिरकर मर गया था। डेमन कई दिनोंसे भूखा था, उसके पैरोंमें दौड़नेसे छाले पड़ गये थे। उसके बाल त्रिखर रहे थे। उसे एक ही धुन थी कि समयमर पहुँचकर अपने मित्रके प्राण बचा ले।

राजा इन दोनों मित्रोंका यह परस्पर प्रेम देखकर चकित हो गया। उसने डेमनका प्राणदण्ड क्षमा कर दिया और प्रार्थना करके स्वयं भी उनका मित्र बन गया। दोसे तीन सच्चे मित्र हो गये।—सु॰ शिं॰

दो मित्रोंका आदर्श प्रेम

एक देशमें दो आदमी दुर्भाग्यसे गुलाम बन गये थे। एकका नाम एन्डेनिओ था और दूसरेका नाम रोजर। दोनों एक ही जगह काम करते, खाते-पीते

तथा उठते-बैठते थे। धीरे-धीरे उनमें परस्पर बना प्रेम हो गया। छुट्टीके समय दुख-सुखकी बातें करनेसे उनको गुलामीका असह दुख कुछ कम जान

पड़ता या ।

वे दोनों समुद्रके किनारे एक पर्वतके ऊपर रात्सा खेड़नेका बाह्य प्रनिभिन कहते थे । एक दिन एन्टोनिओने पकड़म काम छोड़ दिया और समुद्रकी ओर नजर करके एक लंबी साँस छोड़ी । वह अगले मित्रमे कहने लगा—‘समुद्रके उस पर मेरी बहुत सी प्यारी बहुए हैं । प्रनिभिन युंग ऐसा लगता है कि भानो मेरी दी लौर लड़के समुद्रके किनारे आकर एक दृष्टिमे इस ओर देख रहे हैं और यह निश्चय करके कि मैं मर गया हूँ, ने रहे हैं । नेरी इच्छा होती है कि मैं तैरकर उनके पास पहुँच जाऊँ ।’ एन्टोनिओ जर्मी उस बगड़ कान काने जाना, तरी समुद्रकी ओर दृष्टि ढालने ही उसके नन्मे दे किचार उन्नन्न होते थे । बढ़को एक दिन एक जहाजको जाने देखकर उसने गेजरसे कहा—‘मित्र ! इनसे दिनों बाद अब हमारे हु खोका अन्त आ गया है । देखो, वह एक जहाज लग दाढ़कर खड़ा है । यहाँसे दोनों कोससे अविक दूरीम नहीं है । हम समुद्रमें कूद पड़े तो तैरते-तैरते उस जहाज-तक पहुँच जा सकते हैं । यदि नहीं पहुँच सकेंगे और मर जायेंगे तो इस डासन्कर्य अपेक्षा वह मौत भी सौभूती अच्छी होगी ।’

वह हुन्कर गेजरने कहा—‘तुम इस तरह अपने-को बचा सको तो इसने मैं बड़ा सुखी होऊँगा । तुम देखसे पहुँच जाओगे तो मुझे भी अविक दिन हु-ख नहीं भोगना पड़ेगा । यदि तुम सही-सलामन इस हु खसे हृट्कर घर पहुँच जाओ तो मेरे घर आकर मेरे माँ-बापकी खोज करना । बुड़ापेके करण तया मेरे शोकने जायद वे मर गये हों । पर देखना, यदि वे जीते हों तो उनसे कहना कि—‘इनना कहते-कहते एन्टोनिओने उने रोक दिया और वह बोला—‘तुम ऐसा क्यों सोच रहे हो कि मैं तुम्हारे इस अवसरमें धकेला छोड़कर जाऊँगा ? ऐसा कर्मी नहीं हो सकता,

तुम और मैं तुम नहीं । या तो हम दोनों छूटेंगे या दोनों ही मरेंगे ।’ एन्टोनिओकी बात सुनकर रोजर बोल—‘तुम जो कहते हो वह ठीक है; पर मैं तैरना नहीं जानता, इसलिये तुम्हारे साथ कैसे जा सकता हूँ ।’ एन्टोनिओने कहा—‘इसके लिये न बवराझो । तुम मेरी कमर पकड़ लेना । मैं तैरनेमें कुनाल हूँ, इसलिये तिना किसी अड़चनके तुम्हारों लेकर जहाजका पहुँच जाऊँगा ।’ रोजरने कहा—‘एन्टोनि ! इसमें कोई आपत्ति नहीं, पर कठाचिद् भयमान होकर मैं तुम्हारी कमर छोड़ दूँ या खाँचनाल करके तुम्हारों भी ढुका दूँ । इसलिये ऐसा करना जहरी नहीं है । मेरे माघमे जो होना होगा, वह होगा । तुम अगले बचावका उपाय करो और व्यर्य सुनय न गौंधाओ । आओ, हम अन्तिम भेट कर लें ।’

इनना कहकर रोजरने आँखेमी एन्टोनिओका आदिक्षण किया । तब एन्टोनिओने कहा—‘मित्र ! यह गेनेका समय नहीं, वार-वर ऐसा अवसर न प्राप्त होगा ।’

एन्टोनिओने इनना कहकर अपने मित्रका उत्तर सुननेकी बाद न जोहने उसको टकेकर समुद्रमें गिरा दिया और अपने भी उसके पीछे कूद पड़ा । रोजरने समुद्रमें गिरते ही बवराकर जानकी आशा छोड़ दी, पर एन्टोनिओने उसको हिम्मत डिलाकर बहुत मेहनतसे अपनी कमर पकड़ा दी और वह तैरते हुए जहाजकी ओर जाने लगा ।

उस जहाजके आदमियोंने इन दोनोंको पहाडपरसे कूदते हुए देखा था, पर इनसेमें ऐसा माझम हुआ कि गुआनोंकी सैमाल रखनेवाले आदमी उनको पकड़नेके लिये नौकर लेकर आ रहे हैं । रोजर इससे बवराकर बोला—‘मित्र एन्टोनि ! तुम मुझे छोड़कर अकेले चले जाओ । वह नावबाला मुझे पकड़ने लगेगा, इनसेमें तुम तिना बाबा जहाजपर पहुँच जाओगे । इसलिये अब

तुम मेरी आशा छोड़कर अपना ही बचाव करो । नहीं तो वे हम दोनोंको पकड़कर वापस ले जायेंगे ।'

इतना कहकर रोजरने एन्टोनिओकी कमर छोड़ दी । पर उत्तम प्रेमका प्रभाव देखिये । एन्टोनिओने उसको कमर छोड़कर पानीमे झूवते हुए देखा और तुरत ही उसको पानीसे बाहर निकालनेके लिये डुबकी मारी । थोड़ी देरतक वे दोनों पानीके ऊपर ठाँख न पड़े । इससे नौकावाले आठमी,—यह निश्चय न करके कि किधर जायें—रुक गये । जहाजके आठमी डेकसे इस अद्भुत घटनाको देख रहे थे । उनमेसे कुछ खलासी भी एक नावको समुद्रमे ढालकर उनकी खोज करने लगे । उन्होंने थोड़ी देरतक चारों ओर बेकार प्रयत्न किया । फिर देखा कि एन्टोनिओ एक हाथसे रोजरको नज़्रबूतीसे पकड़े हुए हैं और दूसरे हाथसे नौकाकी ओर जानेके लिये बहुत मेहनत कर रहा है । खलासियोंने यह देखकर दयासे गङ्गद होकर अपनेमे जितना बल था, उनने ढॉड मारना शुरू किया । देखते-देखते वे वहाँ पहुँच गये और उन दोनोंको पकड़कर उन्होंने नावमें चढ़ा लिया ।

उस समय एन्टोनिओ इतना यक गया था कि मिनटमर और देर लगती तो वे दोनों पानीमे झूव जाते । 'तुम मेरे मित्रको बचाओ'—कहते-कहते वह अचेत हो गया । रोजर भी तवतक अचेत था, परंतु उसने कुछ ही क्षणोंमें आँखें खोलीं और एन्टोनिओको अचेत-अवस्थामें पड़ा देखकर वह बहुत ही व्याकुल हो गया । एन्टोनिओके अचेतन शरीरका आलिङ्गन करके वह ऑसू वहाते हुए बहने लगा—'मित्र ! मैंने हीं तुम्हारा बध किया है । तुमने मेरी गुलामी छुड़ाने और मेरे प्राण बचानेके लिये इननी मेहनत की, पर मेरी ओरसे उसका यहीं बदला

मिला । मैं बहुत ही नीच हूँ । नहीं तो, तुम्हें मरा देखकर मैं क्यों जी रहा हूँ ? तुमको खोकर अब मेरे जीनेसे क्या लाभ ?'

इस प्रकार शोकातुर होकर वह एकदम खड़ा हो गया और यदि खलासी उसे बलपूर्वक रोक न लेते तो वह समुद्रमे कूट पड़ा होता । फिर वह बहुत ही विलाप और पश्चात्ताप करके कहने लगा—'क्यों तुमलोग मुझे रोकते हो ? मेरे ही कारण इसके प्राण गये हैं ।' इतना कहकर वह एन्टोनिओके शरीरके ऊपर पड़कर कहने लगा—'एन्टोनि । मैं जरूर तुम्हारा साथी बनूँगा । प्यारे खलासियो ! तुम्हें परमेश्वरकी शपथ है । तुम अब मुझको न रोको । मुझे अपने मित्रका साथी बनने दो ।' पर इतनेमें ही एन्टोनिओने एक लंबी सौंस ली । रोजर उसे देखकर आनन्दसे अधीर हो उठा और उच्च खरसे बोला—'मेरा मित्र जीवित है । मेरा मित्र जीवित है । जगदीश्वरकी कृपासे अब-तक इसके प्राण नहीं गये हैं ।' खलासी उसको होशमे लानेके लिये बहुत प्रयत्न करने लगे । थोड़ी देरके बाद एन्टोनिओने आँखे खोलकर अपने मित्रकी ओर दृष्टि ढालते हुए कहा—'रोजर ! तुम्हारी प्राण-रक्षा हो गयी—इसके लिये जगदीश्वरको धन्यवाद दो ।' उसके अमृत-जैसे वाक्य सुनकर रोजर इतना प्रसन्न हुआ कि उसकी ओँखोसे आँसुओंकी धारा बहने लगी ।

थोड़ी देरमें वह नाव जहाजपर पहुँच गयी । जहाजके सभी आठमी खलासियोंके मुँहसे सारी बातें सुनकर उनके ऊपर बहुत स्लेह दिखलाने लगे । वह जहाज माल्टाकी ओर जा रहा था । वहाँ पहुँचनेपर दोनों मित्रोंको किनारे उतार दिया गया और वहाँसे वे अपने-अपने घर गये और सुखसे रहने लगे ।

सद्भावना

द्वायिन्सकी पोलैंडका बहुत बड़ा देशभक्त था, अपने आन्मचिन्तन और दार्शनिक विचारोंके लिये भी वह बहुत प्रसिद्ध था। लोग उसका बड़ा सम्मान करते थे।

एक दिन बड़ी भयानक जलवृष्टि हो रही थी। द्वायिन्सकी अपने घरसे बाहर गया हुआ था। रास्तेमें उसकी एक मित्रमे मेंट हुई जो उसे देखकर आश्चर्यचकित हो गया। ब्रात यह थी कि द्वायिन्सकी एक कुत्तेको बड़े प्यारसे थपथपा रहा था और कुत्ता कीचड़से लथपथ होकर उसके गरीरकी ओर उछल-उछलकर कपड़ोंको गंडा कर रहा था। द्वायिन्सकी बहुत प्रसन्न दीखना था।

‘भाई ! आपका कुत्तेके प्रति यह बर्ताव मुझे अन्यत्त आश्चर्यचकित कर रहा है। यह आपके कीमती कपड़ोंको कीचड़में गंडा कर रहा है और इसको हटानेके

बढ़ले आप प्यार ढे रहे हैं।’ मित्रके इन शब्दोंको सुनकर द्वायिन्सकी हँस पड़ा।

‘कुत्ता मुझे पहले-पहल मिला है, मेरे प्रति उसने बड़ी आत्मीयता प्रकट की है, मेरे सामने उछल-कूदकर तथा मेरे पैरेसे लिपट-लिपटकर वह मुझे मित्र समझ रहा है। इसकी भावनाएँ सगहर्नीय हैं। यदि मैं कीमती कपड़ोंके मोहसे इसे हटा दूँ तो इसकी आत्मीयताको किलना बड़ा बक्का लगेगा और वेचारेका प्रेमोत्साह समाप्त हो जावगा।’ द्वायिन्सकीने अपने मित्रका समाधान किया।

‘कीमती कपड़ोंका इसके प्यारके सामने कोई मूल्य ही नहीं है। प्रत्येक प्राणीमें भगवान्‌का निवास है, उसके साथ आनंदवद् वर्नाव करना ही श्रेयस्कर है, इस शुभ कार्य और सद्भावनामें भगवान् प्रसन्न होते हैं। वास्तवमें यही भगवत् जीवन है।’ द्वायिन्सकीने कुत्तेको प्रेममें देखा और मित्रमें विदा ली।—८० श्री०

‘स्वर्ग ही हाथसे निकल जायगा’

यूरोपके इतिहासमें मार्टिन ल्यूथरका नाम लर्णाकर्गमें अद्वित है। वे अपने समयके बहुत बड़े आध्यात्मिक नेता थे, उन्होंने मध्यकालीन यूरोपमें वार्मिक क्रान्ति की थी। यूरोपियन राजाओं और सामन्तोंकी दृष्टिमें वे बड़े सम्मानित व्यक्ति थे।

एक समयकी बात है। ल्यूथर बाउगरकी रानीके साथ मोजन कर रहे थे। रानीने उनके कायेकी प्रशंसा की

और कहा कि ‘बड़ा अच्छा हो यदि आप आनेवाले चालीस वर्षोंतक जीवित रहें।’

‘महोदया ! मैं समझता हूँ कि यदि मैं चालीस सालतक और जीवित रहा तो इतने समयमें मेरे हाथसे स्वर्ग ही निकल जायगा।’ ल्यूथरके शब्द थे। रानी महात्मा ल्यूथरके उद्गारसे स्तव्य हो गयी।—८० श्री०

प्रार्थनाका प्रभाव

छासाने तवाकू पीनेकी आदत छोड़नेका अभिन प्रयत्न किया, पर वह सफल न हो सकी। चालीस सालकी अवस्थामें पहुँचनेपर उसका मन तंत्राकू पीनेमें इतना आसक्त हो गया कि उसे अन्य कोई पदार्थ अच्छा

ही नहीं लगना था। वह अनवरत बहुत समयतक भगवान्‌में प्रार्थना करती रही, पर इस निष्ठा व्यसनसे अपना पीछा न छुड़ा सकी। उसके मनमें विश्वास था कि भगवान् निष्प्रति मेरी प्रार्थना सुनते हैं और किसी-

न-किसी दिन वे मुझे अपनी कृपासे धन्य करेगे ही । वह नित्य एकान्तमें बैठकर धंटों कहा करती थी— ‘हे भगवान् ! मैं अपनी कमजोरियोपर आजतक विजय नहीं प्राप्त कर सकी, मैं बहुत दुखी और चिन्तित हूँ ।’

एक दिन लक्ष्मा आग ताप रही थी कि अचानक उसने आवाज सुनी—‘तवाकू पीना बद करो ।’ ‘क्या मेरे व्यसनका अन्त हो जायगा ?’ लक्ष्माके मुखसे शब्द निकल पडे । वह चौंक उठी ।

‘लक्ष्मा तंवाकू पीना बंद करो । हुक्का अलग रख दो ।’ आवाज उसके कानोंके अत्यन्त निकट आ गयी ।

लक्ष्मा उठ पडी । उसने हुक्का अंगीठीके निकट ही काठकी एक आलमारीपर रख दिया । उसने सदाके लिये तवाकू पीनेका त्याग कर दिया । तंवाकू पीनेवालोंको देखकर या उसकी गन्धसे भी वह कभी तंवाकूकी ओर आकृष्ट नहीं हो सकी ।—रा० श्री०

जीवन-न्रत

‘आपको अवश्य जाना चाहिये, सिकन्दर उदार है; अभी कल ही उसने पोरस (पुरु) महाराजके साथ राजाकान्सा वर्तावकर जो उदारता दिखायी है, उसके कारण भारतीय इतिहासमें वह अमर हो गया ।’ महात्मा मन्दनीसने कालानूस (कल्याण) को अपने दर्शनसे धन्य करनेकी प्रेरणा दी । दोनों उच्च कोटिके संत थे । तक्षशिलासे तीन मीलकी दूरीपर नदी-तटके एक नितान्त निर्जन वनमें एकान्त-सेवन करते थे । मृगचर्म और मिट्टीके करवा तथा मिक्षाद्वारा प्राप्त अन्न ही उनके जीवन-निर्वाहके साधन थे । उनका आचरण अत्यन्त तपोमय था । यूनानी शासक सिकन्द्रकी बड़ी इच्छा थी उनके दर्शनकी ।

‘सिकन्द्रका अलंकार महती सेना है, संतमण्डलीसे उसका क्या काम है ? वह नदी, पहाड़ और पृथ्वीपर शासन करनेवाला है, हमारा मन और आत्मापर शासन है । यह कदापि उचित नहीं है कि मैं उसके साथ भारतसे बाहर जाऊँ ।’ कालानूस इस तरह निवेदन कर ही रहे थे कि सिकन्द्रने घोड़ेसे उतरकर दोनों सतोंका अभिवादन किया । यूनानी विजेता कुण्डके आसनपर बैठ गया ।

‘मैं समझता हूँ कि मेरे साथ आपको वह शान्ति नहीं मिलेगी जो आप भरतखण्डके पवित्र पञ्चनद-

देशमें प्राप्त कर रहे हैं, पर आप ही वतायें कि सुकरात, प्लेटो और अरिस्टाटिल (अरस्तू) तथा पीथागोरसका देश यूनान किस प्रकार भारतीय ज्ञानामृत-सागरमे स्थान कर सकेगा ? आप मेरे लिये नहीं तो यूनानके असंख्य प्राणियोंको ज्ञान देनेके लिये अवश्य चलें । एक विदेशी जगद्गुरु भारतसे दूसरी मिक्षा ही क्या माँग सकता है ?’ सिकन्द्रने संतकी कृपादृष्टिकी याचना की और मन्दनीसके संकेतपर कालानूसने सिकन्द्र-के साथ जानेकी स्वीकृति दे दी ।

× × × ×

‘ज्ञराक्रान्त होना हमारे जीवनकी पहली घटना है, सिकन्द्र !’ तिहत्तर सालकी अवस्थावाले सतने फारसके शिविरमें अपनी बीमारीका विवरण दिया । जलवायु अनुकूल न होनेसे वे रुण थे ।

‘पर आपका जीवन-न्रत तो अमित भयुंकर है । यह तो आपके देशके महात्माओंका हठ मात्र है कि रुण होनेपर शरीर-स्थाग कर दिया जाय ।’ सिकन्द्र बडे आश्चर्यमें था ।

‘यह हठ नहीं, जीवनकी कठोर वास्तविकता है । हमारे सदाचार और ब्रह्मचर्य-पालनमें इतना बल है कि रुणता क्या—मृत्युको भी एक बार लौट जाना पड़ता है ।’ भारतीय महात्मा कालानूसने चिता प्रज्ञलित करनेका संकेत किया ।

‘यह शरीर अपवित्र है, इसमें पवित्रतम चिन्मय सजीव नहीं रख सकता।’ कालानूस जलती चितामें तत्त्व-आत्मा (परमात्मा) का वास अब मेरे लिये सह बैठ गये। लाल-लाल लपटोंने गगनके अधर चूम नहीं है। रोग पापसे आते हैं। मैं अपने पाप-शरीरको लिये। —रा० श्री०

आप बड़े डाकू हैं

जिस समय सिकन्दर महान्‌की सेनाएँ दिविजय करती हुई सारे विश्वको मैसीदोनियाके राजसिंहासन-के आधिपत्यमें लानेका प्रयत्न कर रही थीं, ठीक उसी समय एक नाविकने सिकन्दरको अपनी निर्भाकतासे आर्थर्यचकित कर दिया था।

नाविकका नाम धौमेदस था। वह अपनी एक लंबी-सी नावपर बैठकर समुद्र-यात्रियोंके जहाजोंपर छापा मारकर उनके सामान आदि छूट लिया करता था। एक दिन अचानक वह पकड़ लिया गया और अपराधीके रूपमें सिकन्दरके सामने लाया गया।

‘तुम्हारा यह काम पापपूर्ण है। दूसरोंको चोरी-से छूट लेना अच्छा नहीं कहा जा सकता है। तुम किस तरह मेरे राज्यमें समुद्रकी शान्ति भङ्ग करनेका साहस करते हो। तुम्हें वड़ी-से-वड़ी सजा मिलनी चाहिये। तुम डाकू हो।’ सिकन्दरने क्रोध प्रकट किया।

‘आपको ऐसी बात कहते लजा नहीं आती है ?

मुझसे बड़े—कहाँ बड़े—डाकू तो आप हैं। मैं तो एक छोटी-सी नावका अधिपति हूँ और कभी-कभी पेट पालनेके लिये लोगोंको छूट लेता हूँ। मुझसे कम हानि होती है। पर आप तो बड़े-बड़े जहाजी बैड़ोंके मालिक हैं; रात-दिन विशाल पुरुषोंपर असंख्य प्राणियोंको मृत्युके घाट उतारकर धन-जनका संहार करते रहते हैं। बड़े-बड़े देशोंको छूटा है आपने, कितनी महान् क्षति होती है आपके द्वारा। मुझमें और आपमें अन्तर केवल इतना ही है कि मैं छोटा डाकू हूँ तो आप बड़े डाकू हैं। यदि भाग्य मेरा साथ दे तो मैं आपसे भी बड़ा डाकू हो सकता हूँ।’

धौमेदसने यों सिकन्दरकी कड़ी-से-कड़ी आलोचना की। सिकन्दर महान् उसकी निर्भाकता और सत्य कथन-से बहुत प्रभावित हुआ। उसने डाकूको क्षमा कर दिया और एक बड़े राज्यका आधिपत्य सौंप दिया। डाकूने अपना डकैतीका पेशा छोड़ दिया। —रा० श्री०

(जेस्टा रोमानोरम)

सिकन्दरकी मातृभक्ति

कहते हैं कि सिकन्दर अपने मित्रोंको अत्यन्त प्यार करता था। पर उसकी मातृभक्ति इतनी प्रबल थी कि वह उनसे हजारगुना माताकी प्रतिष्ठा करता था। एक बारकी बात है कि जब सिकन्दर बाहर था, तब अंटीपेटर नामक उसके एक मित्रने सिकन्दरको लिखा—‘आपकी माताके हस्तक्षेपसे राजकार्यका परिचालन बड़ा कठिन हो गया है। उनका स्वभाव आप जानते

ही हैं, वे स्त्री होनेपर भी सदा राजकार्यमें हस्तक्षेप करती रहती हैं।’

सिकन्दरने इस पत्रको पढ़ा और हँसकर लिख दिया—‘मेरी माताका एक बूँद आँसू तुम्हारी हजारों चिट्ठियोंको पोंछ डाल सकता है। इसका सदा ध्यान रखना।’

कलाकारकी शिष्टता

प्राचीन समयकी बात है। यूनान अपनी कला और दर्शनके लिये दूर-दूरके देशोंमें प्रसिद्ध था। यूनानके कारिन्थ प्रदेशमें पेरियंडर नामका एक राजा था जो बहुत संगीत-प्रेमी, साहित्य-मर्मज्ञ और कलाविद् था। उसकी राजसभामें एरियन नामक एक गायक रहता था जो वीणावादनमें बहुत ही कुशल था। वह समय-समयपर राजाका मन अपनी संगीत-माधुरीसे बहलाया करता था। अचानक उसने अन्य देशोंके भ्रमणकी बात सोची और 'वह सिसली चला गया। वहाँ थोड़े ही समयमें वह बहुत धनी हो गया और सम्मानित व्यक्तियोंकी श्रेणीमें आ गया, पर इतनी समृद्धि और प्राकृतिक सौन्दर्यकी गोदमें निवास करनेपर भी उसका मन सिसलीमें नहीं लगा। कारिन्थके सम्मान और सरस वातावरणमें उसे जो सुख मिला करता था, उसकी विदेशमें उसे गन्ध-तक नहीं मिली।

X X X X

'यह तो असाधारण धनी है। देखो न, इसके पास सोनेके सिक्कों और आभूषणोंसे भरी कितनी पेटियाँ हैं।' जहाज चलानेवालोंने आश्वर्य, प्रकट किया। जहाज अपनी प्रबल गतिसे अथाह सागरका वक्ष चीरकर कारिन्थकी ओर बढ़ रहा था। समीरके मन्द-मन्द संचारसे प्रसन्न होकर अपनी वीणापर एरियन नये संगीतकी स्वरलिपि कर रहा था। अपने मित्र पेरियंडरके मनोरञ्जनके लिये नयी ध्वनि निकाल रहा था तारोंसे। मल्लाहोंने उसे घेर लिया और प्राण लेनेकी धमकी दी। उनकी ओंखोंमें नाच रही थीं धनकी पेटियाँ।

'यदि तुम मेरे प्राण ही लेना चाहते हो, तो मेरी एक प्रार्थना है। मैं समझता हूँ कि तुम्हें धन चाहिये। ये पेटियाँ तुम्हारी हैं। मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक एक गीत गा लेने दो और इस समुद्रमें अपने ढंगसे प्राण-विसर्जन करने दो।' एरियनका निवेदन था। वह बहुत बढ़िया

बल धारणकर अपने स्थानपर बैठ गया। वीणाके तारोंपर उसकी अङ्गुलियाँ मृत्यु-गीतकी प्रतिलिपि कर रही थीं। मल्लाहोने उसे अनुमति दे दी। एरियन झूम-झूमकर बड़ी मस्तीसे वीणा बजाने लगा—रविरशिमयोंकी अरुणिमासे सागरकी चंचल लहरोंमें नयी गतिं आ गयी थी, उनकी प्रदीपि बढ़ गयी थी। एरियन वीणा-वादन समाप्त करते ही संसुद्धमें कूद पड़ा। लहरोंने उसको अपनी गोदमें छिपा लिया 'और जहाज तेज गतिसे आगे बढ़ चल। धनलोलुप मल्लाह निश्चिन्त और प्रसन्न थे।

X X X X

'तुमलोगोंको मेरे मित्र एरियनका पता अवश्य होगा। वह सिसलीमें तुमसे मिलने आता रहा होगा। उसके अभावमें मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है।' पेरियंडरने मल्लाहोंसे पूछा। कारिन्थ पहुँचनेपर राजसभामें उपस्थित होनेका उन्हें आदेश दिया गया था।

'एरियन बहुत स्वस्थ और समृद्ध है। वह धन कमाकर ही कारिन्थ लौटेगा।' मल्लाहोंने उत्तर दिया। 'यहाँ देखो, यह कौन है।' राजाने मल्लाहोंको सहसा स्वव्य कर दिया। राजमहलके एक कमरेसे बाहर निकलकर एरियनने उनको विस्मयमें डाल दिया।

इस प्रकार तुमलोग धनके लोभसे दूसरोंके ग्राण लिया करते हो। कारिन्थका राजन्याय तुम्हे क्षमा नहीं कर सकता। संसुद्धकी लहरोंकी सहायतासे एरियन कारिन्थ आ पहुँचा। राजाने मल्लाहोंके लिये मृत्यु-दण्डकी आङ्गा दी।

'ऐसा अपराध फिर कभी नहीं करेगे हम। क्षमा कीजिये।' मल्लाहोने एरियनकी ओर बड़ी करुण दृष्टिसे देखा।

मैं इतना कठोर नहीं हूँ जितना तुम समझ रहे हो।

समरण रक्खो, कल्पकारका हृदय कठोर नहीं होता है। तुमने जो कुछ मेरे प्रति किया, वह तुम्हारे दृष्टिकोणसे ठीक था, मैं उसमें दोप नहीं देखता, पर भगवान् मेरा

दृष्टिकोण ऐसा कभी न होने दें।' एरियनका हृदय पिघल गया। उसकी जिष्ठाने मल्लाहोंको क्षमा —रा० श्री०

सुलेमानका न्याय

इजरायलके इतिहासमें बादशाह सुलेमानका नाम अमर है। वह बड़ा न्यायी और उदार था। उसके राज्यमें प्रजा बहुत सुखी थी।

एक दिन सुलेमान अपने न्यायसिंहासनपर विराजमान था कि दो महिलाएँ आ पहुँचीं। उनमेंसे एक बहुत उडास थी और उसके नेत्रोंमें अशुश्वर रहे थे। दूसरी वडी निर्मम और दुराग्रही थी। उसकी गोदमें एक छोटा-सा नवजात गिर्गु रो रहा था। राजसभाके सदस्य उन दोनोंको देखकर निस्तित थे।

'मेरी बात सच है। इस महिलाने मेरा बच्चा छीन लिया है। कल रातमें इसने कत्वट ली और इसका नवजात गिर्गु दब जानेके कारण मर गया। इसने मृत शिशुको धोखेसे मेरे पलगपर रख दिया और यह मेरा बच्चा उठा ले गयी।' पहली लड़ीने बादशाहसे न्याय-याचना की।

'नहीं, यह झूठ कह रही है। यह मेरा बच्चा लेना चाहती है। मैं अपने प्राणप्यारे लालको नहीं दे सकती।' दूसरी लड़ीने प्रतिवाद किया।

'तुम दोनों ही अपने-अपने भावके अनुसार ठीक कहती हो। मैं यह नहीं जानता कि तुम दोनोंमेंसे कौन इसकी माँ है, पर न्याय कोमल और कठोर दोनों होता है। इस बच्चेका अधिकार तुम दोनोंको है। ऐसी स्थितिमें इसके दो टुकडे कर दिये जायें और एक-एक तुम दोनोंको दे दिया जाय।' सुलेमानने न्यायकी घोषणा की। दूसरी महिला अपनी जगहपर कठोरता और निर्ममताकी सजीव मूर्ति-सी खड़ी थी।

'मैं ऐसा नहीं होने दूँगी। आप इस बच्चेके दो टुकड़े न करें। मेरा हृदय फटता जा रहा है। मुझे आपका न्याय नहीं चाहिये।' पहली महिलाकी ममता जाग उठी। वह न्यायालयसे बाहर जानेवाली ही थी कि बादशाह बोल उठा—'ठहरो।' और वह रुक गयी।

'तुम सच कहती हो। इस बालककी माता तुम्हीं हो। तुम्हारी ममताने न्यायकी आँख खोल दी।' सुलेमानने पहली महिलके प्रति आदर प्रकट किया। उसे बच्चा मिल गया और दूसरीके सुखपर कालिया छा गयी।—रा० श्री०

चोरीका त्याग

लगभग सोलह सौ साल पहलेकी बात है। चीन देशके चागनान राज्यमें इतिहासप्रसिद्ध फाहियानने जन्म लिया था, उसका बचपनका नाम कुग था। उसके माता-पिताने उसको अपने ग्रामके बौद्ध-विहारकी देख-रेखमें रख दिया था, उनकी तीन सतानें मर चुकी थीं इसलिये उन्होंने सोचा कि विहारको सौंप देनेसे कुंग जीवित रहेगा। विहारमें रहनेवाले धर्माचारणके साथ-ही-साथ जीविकाके

लिये खेती भी करते थे। खेत विहारसे ही सम्बद्ध होते थे और वे अधिकाग विहारकी सीमामें ही थे। विहारमें रहनेवाले बालकोंके साथ दसवर्षीय कुग भी कुछ-न-कुछ काम करता ही रहता था।

एक समय कुग अपने समवयस्कोंके साथ धानका खेत काट रहा था। धान अच्छी तरह पक गये थे। देखनेमें वडे सुन्दर लगते थे। खेतपर चोरोंकी कुद्दिय

पहले ही पड़ चुकी थी; वे फसल काटकर ले जानेका अवसर खोज ही रहे थे कि विहारकी ओरसे खेत कटना आरम्भ हो गया।

चोर बल्पूर्वक खेतमें आ गये और बालकोंको खदेड़ दिया, पर कुंग नहीं गया। वह गमीर होकर कुछ सोचने लगा। चोरोंने विचार किया कि यह अकेला क्या कर लेगा। उन्होंने फसल काटकर अनेक बोझे बनाये और सिरपर लाठकर चलनेवाले ही थे कि कुगके सम्बोधनसे ठहर गये।

‘भाइयो ! आपलोगोंकी अवस्था आधीसे भी अधिक समाप्त हो गयी। आप क्यों इस प्रकारके पाप-कर्म करते हैं ? सच्चाईसे पैसा कमाकर जीवनका निर्वाह करनेसे स्वर्ग मिलना है, अगले जन्ममें सुख मिलता है। पाप कमानेसे तो कहीं अच्छा भूखों मर जाना है।’ कुंगने चेतावनी दी।

चोरोंने बोझे पठक दिये और वे बालककी ओर देखने लगे।

‘आपलोगोंने पहले जन्ममें अशुभ कर्म किये। दया, दान, पुण्य, परोपकार और सेवा आदिसे बहुत दूर रहे। अशुभ कर्मोंके परिणामस्थरूप इस जीवनमें आप दरिद्र पैदा हुए। मुझे आपलोगोंकी दशापर बड़ी दया आ रही है और साथ-ही-साथ यह सोचकर दुःख हो रहा है कि आप अपना अगला जन्म भी दुःखमय बना रहे हैं, इस जन्ममें शुभ कर्म करनेकी बात तो दूर रही; आप चोरी करने लगे और इस कुर्कर्मके बदले आपको अगले जन्ममें अनेक भीषण सकटोंका सामना करना पड़ेगा।’ कुंग इतना कहकर विहारकी ओर चला गया, पर उसका मन व्यथित था।

चोरोंके आगे जमीन धूमने लगी। उनके नेत्रोंमें अंधेरा छा गया। वे कुगके सत्य कथनसे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने सदाके लिये चोरी छोड़ दी।—रा० श्री०

~~.शृंग~~

सम्यता

कहा—‘श्रीमान् ! एक भिक्षुकको आप इस प्रकार अभिवादन करें, यह क्या उचित है ?’

हेनरीने सरलतासे उत्तर दिया—‘फ्रान्सका नरेश एक भिक्षुक-जितना भी सम्य नहीं, यह मैं सिद्ध नहीं करना चाहता।’—सु० सिं०



देशभक्ति

‘इंगलैंड नैपोलियन बोनापार्टकी निरहुशता नहीं सह सकता है। माना, फेंच क्रान्तिकारियोंने समता, स्वतन्त्रता और वन्धुताका प्रकाश फैलाया, पर नैपोलियन-ने अपनी साम्राज्यवादी कुस्तित भनोवृत्तिसे उसे कळङ्कित कर दिया है।’ इंगलैंडके सामुद्रिक वेडेपर महावीर नेलशनने पैर रखे। नेलशनका प्रण था कि या तो इस सामुद्रिक युद्धमें नैपोलियन हारेगा या मैं

मृत्युका वरण कर लूँगा। स्पेन और फ्रासकी सेनाएँ दहल उठीं।

समुद्रकी नीली-नीली उत्ताल तरङ्गोंके वक्ष चीरकर अंग्रेजी बेड़ा आगे बढ़ रहा था; ‘इंगलैंड अपने प्रत्येक निवासीसे कर्नव्य-पालनकी आशा करता है।’—यह उसकी पताकापर अङ्कित था।

‘हाय हार्डी ! हाज़ुओंने मेरा काम तमाम कर

दिया ।' नेलग्रन शत्रुकी गोलीसे धायल होकर लुडक पड़ा । जहाजके कस्तान हाड़नि उमे निम्बकश्म में रखा । 'वाँय-व्राँय' चारों ओर गोलियाँ वरसने लगी ।

'हमारे बीर क्या कर रहे हैं, हार्डी ? इंगलैंडका सुख सदा उज्ज्वल रहेगा, उनसे कहो ।' नेलग्रन अन्तिम ज्वासें ले रहा था ।

'शत्रुके पंद्रह जहाजोंने झड़े छुका दिये ।' हार्डी-ने युद्धकी गति-विधिपर प्रकाश ढाला ।

'बहुत अच्छा हुआ । भगवान्‌की कृपा है, हार्डी !

बीस जहाजोंका सौटा किया था मेरे प्राणोंने । इंगलैंड विजयी होगा ।' नेलग्रन अचेत हो रहा था ।

अचानक उसकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया । अझ-अझमें भयानक बेदना और पीड़ा थी ।

'मुझे बिडा दो, हार्डी ! भगवान्‌की कृपासे मैंने अपना कर्तव्य पालन किया । मेरा काम पूरा हो गया ।' नेलग्रनके दो-तीन आस शेष थे । हार्डीने उसका हाथ चूमा और नयनोंसे अश्रुपात होने लगा ।

'ईश्वर ! बन्धवाद है ॥ मेरा काम पूरा हो गया ।' नेलग्रनके प्राण निकल गये ।—रा० श्री०

कर्तव्य-पालन

फ्रासकी विग्राल सेनाने स्पेनके जारगोजा नगरको घेर लिया । नागरिकोंने प्राणरक्षाका कोई उपाय न देखकर किलमें एकत्र होना उचित समझा । आक्रमण-कारियोंने किलमें खाद्य पदार्थ जानेसे रोक दिया । लोग भूखों मरने लगे । अन्तमें उन्होंने सामूहिक मौर्चेकी व्यवस्था की । फ्रासके सेनापति लक्ष्मोरके सैनिक बड़ी तत्परतासे गोली वरसा रहे थे । नागरिकोंका मुखिया था जोजड़े पेलफाक्स मेल्जी ।

यह नहीं कहा जा सकता था कि विजयी किस पक्षके लोग होंगे, पर फ्रासके सैनिकोंमि किंवेष उत्साह था । उन्हें आगा थी कि हमलोग विजयी होंगे ।

'मैं आ गयी, घबराओ नहीं, बीर । सत्य हमारी ओर है ।' उसने सहसा बंदूक अपने हायमें ली धायल सैनिकके हाथसे, जो शत्रुकी गोलीका निशाना बनकर अपना अन्तिम आस तोड़नेके लिये बंदूकपर गिर पड़ा था । फ्रासकी सेनाको विश्वास हो गया था कि उसके प्राणान्तसे किलेपर अधिकार हो जायगा । वह द्वार-रक्षक था ।

'यह कौन आ गयी । कितना भीषण युद्ध कर रही है । यह तो साक्षात् रणकी देवी ही है ।' फ्रासका सेनापति बोल उठा ।

मैं मृत्यु हूँ तुमलोगोंकी । तुम जारगोजाके किलेका मोह छोड़ दो । स्पेनका प्रत्येक व्यक्ति इसके समानमें प्राण न्यौछावर कर देगा ।' मेरिया अगस्टीनके शब्द थे । वह शत्रुओंपर धूआँधार गोली वरसा रही थी किलेके प्रधान दरवाजेसे । कुमारीकी बीरता देखकर शत्रु आश्वयमें पड़ गये ।

X X X X

'तुम जारगोजाकी देवी हो, अगस्टीन ! शत्रु किले-पर अधिकार कर लेते यदि तुमने अचानक अपना कर्तव्य-पालन न किया होता ।' जारगोजा मोर्चेके सेनापतिने मेरियाके प्रति कृतज्ञता प्रकट की ।

'यह तो मेरा सर्वकर्तव्य था, सेनापते । अपने देशके अन्नजलसे पले गरीरका इससे बढ़कर दूसरा उपयोग ही क्या होता कि वह सतन्त्रताके नामपर युद्धकी अग्नि-विभीषिकामें खाहा हो जाय ।' अल्पवयस्क नगर-कन्याकी बातसे लोग प्रसन्न हो उठे ।

'देवी अगस्टीनकी जय ।' नागरिकों और सैनिकोंने मेरियाका अभिनन्दन किया ।

स्पेनके मध्यकालीन इतिहासमें जारगोजाकी देवी मेरिया अगस्टीनका नाम अमर है ।—रा० श्री०

आनन्दधनकी खीझ

मैया मोहि दाऊ बहुत खिलायौ। मो सौं कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कवजायौ ॥

श्रीनन्दरानी, अपने ग्राङ्मणमें कुछ उन्गुन गाती कन्हाईके कलेजकी सामग्री एकत्र करने जा रही थीं। बड़ा चश्चल है उनका श्याम। वह दो घड़ी भी घरमें नहीं रहता। बालकोंके साथ दिन-भर घूमता रहता है। परंतु उससे क्षुधा सही नहीं जाती। अभी दौड़ा आयेगा और दो क्षण भी माखन मिलनेमें देर हुई तो मचल पड़ेगा। एक बार कहीं मोहन रुठ गया तो फिर उसे भना लेना सरल नहीं होता।

‘मैया ! मैया !’ सहसा पुकारता दौड़ा आया कन्हाई। मैया चौंक पड़ी; आज उसके लालके स्वरमें उछास क्यों नहीं ? क्यों रोता-सा खर है मोहनका।

‘तुझे किसने मारा है ?’ मैया चाहती थी कि श्याम उसकी गोदमें आ जाय। किंतु कन्हैया उसके सामने आकर खड़ा हो गया। लगभग ढाई वर्षका कृष्णचन्द्र, विखरी अलकें, आलपर नन्हा-सा गोरोचन तिलक, नेत्रोंमें कञ्जल, वक्षपर छोटे मोतियोंकी माला, कटिमें पतली-सी कछनी, धूलि-धूसरित अङ्ग। आज इसके बड़े-बड़े लोचन भरे-भरे-से हैं।

‘दाऊ बहुत बुरा है। मैया ! वह कहता है

कि तू यशोदाका पुत्र नहीं है। नन्दरानीने तो तुझे मटकीभर दही देकर खरीदा है।’ मोहनने द्वारकी ओर इस प्रकार देखा मानो दाऊ पीछे खड़ा हो द्वारके।

‘मैया ! वह मुझे बहुत चिढ़ाता है। कहता है कि ब्रजराज और ब्रजरानी तो गोरे हैं, तू सॉबला क्यों हैं ? बता तो कि तेरा पिता कौन है ? तेरी माता ही कौन है ?’ नन्हा कन्हाई बहुत रुष्ट हो रहा है आज बड़े भाईपर।

‘दाऊ अकेला ही चिढ़ाता तो कोई बात भी थी, उसने सब सखाओंको सिखा दिया है। सब ताली बजाकर मेरी हँसी उड़ाते हैं। मैं उनके साथ खेलने नहीं जाऊँगा।’ परंतु मैया तो कुछ बोलती नहीं, इससे श्याम उसपर भी रुष्ट हुआ—‘तूने तो मुझे ही मारना सीखा है, दाऊको कभी डॉटती भी नहीं।’

‘मेरे लाल !’ मैयाने देखा कि अब उसका नन्हा कृष्ण मचलनेवाला है तो गोदमें खींच लिया उसे। ‘बलराम तो जन्मसे ही धृष्ट है।’ वह व्यर्थ चुंगली करता है। तू जानता है न कि ब्रजकी देवता गायें हैं ! उन गायोंकी शपथ ! मैं तेरी माता हूँ और तू मेरा लाल है।’

आज्ञापालन

‘सीडलीट्जका पता चला’^१ प्रगियाके सम्राट् फ्रेडरिक महान् वंशी-वादनमें मस्त थे। रातकी कालिमा अपने पूरे उत्कर्षपर थी। वे अपने गिविरमें बैठकर सोच रहे थे युद्धकी गतिशिथि।

‘आज सेनापति किसी कठिन मोरचेपर उलझ गये हैं। उनका कहना है कि पोमेरनिया (यूरोपका एक जनपद) के युद्धमें विजय प्राप्त करके ही रहेंगे। वे इस समय नहीं उपस्थित हो सकेंगे, सम्राट्। दृढ़तेजि अभिवादन किया।

‘हमें इस जार्नलार्फ ग्राममें गिविरमें रहते बहुत दिन हो गये और हमारे खस्ती शत्रु अमी रणमूमिमें डटे हैं, फिर भी सेनापतिने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किस तरह किया? मेरी आज्ञा न माननेका अर्थ है मृत्यु।’ सम्राट्ने वंशी-वादन वंद कर दिया। रात बढ़ती जा रही थी, चारों ओर भयानक नीरवता थी।

‘मुझे सीडलीट्जका सिर चाहिये।’ सम्राट्का इतना कहना था कि चरके हाथसे मसाल नीचे पिर पड़ी; वह कौपने लगा। ‘मेरी आज्ञाके उल्लङ्घनका मूल्य केवल सिर है।’ फ्रेडरिककी ओंखे लाल हो गयीं। चर गिविरके बाहर हो गया। रात सौंय-सौंय कर रही थी।

× × × ×

युद्ध अपनी चरम सीमापर था। खस्ती सैनिक प्रगाके (जर्मनी) सैनिकोंका डटकर सामना कर रहे थे। सेनापति सीडलीट्ज एक क्षणके लिये भी असावधान नहीं थे। दृत आ पहुँचा। सेनापति आश्वर्यचकित हो गये फ्रेडरिककी आज्ञासे।

‘सम्राट्से कहो कि युद्धके समाप्त होनेपर मैं यह सिर उनकी नगी तल्वारकी प्यासी धारको भेट कर दूँगा, पर इस समय युद्धभूमिमें प्रशाके सम्राट् और प्रजाकी सेवाके लिये मैं इसका उपयोग तो करूँगा ही। मुझे इस पवित्र कार्पसे कोई भी जागतिक ग्रक्ति विमुख नहीं कर सकती।’ सीडलीट्जका स्पष्ट उत्तर था और उन्होंने सेनाको आगे बढ़नेका आदेश दिया।

× × × ×

‘इस विजयका श्रेय तुम्हें है, सीडलीट्ज !, सम्राट्ने शिविरसे बाहर आकर सेनापतिका अभिनन्दन किया।

‘आपके चरणोंमें मेरा सिर उपस्थित है सम्राट् ! आपकी नंगी तल्वार जिसकी प्रतीक्षा कर रही थी उसे स्वीकार कीजिये।’ सेनापतिने गम्भीरता प्रकट की।

‘इस सिरने असत्य सिर उन्नत किये हैं, इसने मृत्युको अमरतामे बढ़ा दिया है। इस सिरपर प्रजाकी जनता पुष्प-वृष्टि करेगी।’ फ्रेडरिकने सेनापति सीडलीट्जको गले लगा लिया। दोनोंके रोम-रोम सिहर उठे।

‘मैंने तुमको आज समझा है। तुम रल हो, रल। तुमने देशके हितके लिये, राष्ट्रके सम्मानरक्षणके लिये मेरी असामयिक आज्ञाके उल्लङ्घनसे जो यश कमाया है वह यूरोपके इतिहासकी एक पवित्र मौलिक घटना है। कर्तव्यपरायणता और आज्ञापालनका मर्म निगृह है।’ सम्राट् प्रसन्न होकर वंशी वजाने लगे। चारों ओर मूक संगीतका माधुर्य बातावरणमें परिव्याप्त हो उठा।—रात्री०

आत्मप्रेम

खसो उस समय बाल्क था। रविवारके दिन पाठ-आलीकी छुट्टीमें उसे अपने चाचाके यहों गये त्रिना चैन नहीं पड़ती थी। उसके चाचाका एक कारखाना

था। खसो एक रविवारको अपने चचेरे भाई फेजीके साथ चाचाके कारखानेमें थूम रहा था। अचानक उसने एक मठीनके पहियेपर हाथ रख दिया। उस-

समय फेजीका इधर ध्यान नहीं था । उसने उसी मशीन-का पहिया धुमा दिया । फल यह हुआ कि रूसोकी अँगुलियों परिस गर्या, नाखून फट गये, रक्तका फव्वारा छूट पड़ा । वह चीख उठा ।

फेजी चौंका । उसने झटपट पहियेको उल्टा धुमाया । रूसोकी अँगुलियाँ निकर्णी मशीनसे । डरा और घबराया फेजी ढौड़कर रूसोके पास आया और अत्यन्त कातरतापूर्वक बोला—‘भैया ! चिल्हाओ मत । मेरे पिता सुन लेंगे तो मुझे बहुत पीटेंगे । जो होना था, वह तो हो ही गया ।’

रूसो वालक था । उसकी पीड़ा असद्य थी, किंतु उसने बलपूर्वक मुख बंद कर लिया । फेजीके कधे-पर उसने मस्तक रख दिया । केवल उसके नेत्रोंसे आँसूकी धारा चलती रही । दोनों वालक वहाँसे

पानीके पास गये । बहुत देर होनेपर रूसोकी अँगुलियोंसे रक्त जाना बंद हुआ । एक कपड़ा फाड़कर फेजीने अँगुलियोंपर मिठ्ठीकी पट्टी बौध ढी ।

‘भैया ! तुम्हारे घरके लोग क्या कहेंगे ?’ फेजी अभीतक अत्यन्त चिन्तित था ।

‘तुम कोई चिन्ता मत करो ।’ रूसोने उसे आश्वासन दिया ।

‘तुम्हारे हायको क्या हुआ है ?’ स्वाभाविक था कि घरके लोग और दूसरे लोग भी हायमे पट्टी बैधी देखकर रूसोसे पूछते ।

‘मेरी भूलसे चोट लग गयी, हाथ कुचल गया ।’ रूसोने सवको गोलमोल उत्तर दिया । पूरे चालीस वर्ष-तक किसीको इस घटनाका पता नहीं लगा ।—सु० सिं०

उत्तम कुलाभिमान

इंग्लैंडनरेश जेम्स द्वितीयका पौत्र प्रिन्स चार्ल्स युद्धमे जार्ज प्रथमके सेनापनिसे पराजित हो गया था और ग्राण बचानेके लिये भाग गया था । उसे पकड़ने या मारकर उसका मस्तक लानेवालेको बहुत बड़ा पुरस्कार देनेकी घोषणा हुई थी । उस समय शाही सेनाके एक कसानने एक हार्डलेंडर वालकसे पूछा—‘तुमने इस मार्गसे प्रिन्स चार्ल्सको जाते देखा है ?’

उस वारह वर्षके वालकने कहा—‘देखा तो है; किंतु बनाऊँगा नहीं ।’

कसानने तलवारकी म्यानसे वालकको पूरे जोरसे

मारा और गरज उठा—‘तुझे बतलाना पड़ेगा ।’

वालक चीख उठा; किंतु बोला—‘मारकी चोटसे मैं चीखा अवश्य हूँ, किंतु स्मरण रखिये कि मेरा जन्म ‘मेक्फर्सन’ वशमे हुआ है । विश्वासघात करके विपत्ति-मे पड़े राजाके शत्रुको पकड़वा देनेका निन्दित काम मुझसे कदापि नहीं हो सकता ।’

कसान वालककी तेजस्विता तथा निर्भयतासे इतना प्रसन्न हुआ कि उसने वालकको पुरस्कारखूप एक चाँदीका क्रास दिया । इस क्रासको मेक्फर्सन वंश-के लोग आज भी समानपूर्वक सुरक्षित रखते हैं ।

—सु० सिं०

अपनी प्रशंसासे अरुचि

एक बार लियेन्स नगरके विद्वानोंने एक लेखके लिये पुरस्कारकी घोषणा की । उस समय नेपोलियन युवक थे । पुरस्कार-प्रतियोगिनामे उन्होंने भी लेख भेजा और उनका लेख ही प्रथम पुरस्कारके योग्य माना गया ।

सम्राट् होनेपर नेपोलियनको यह बात भूल चुकी थी, किंतु उनके मन्त्री टेलीरान्तने एक विशेष व्यक्तिको भेजकर लियेन्ससे नेपोलियनके उस लेखकी मूल प्रति मँगायी । लेखको सम्राट् के आगे रखकर उसने हँसते हुए

पूछा—‘सन्नाट् इस लेखके लेखकको जानते हैं?’ किंतु नेपोलियनने अजित होकर सिर झुका दिया और

टेर्णगन्तको आगा थी कि उसके इस कार्यमे लेखको उठाकर उसने जल्ती अँगीठीमे ढाल दिया। मन्त्री सन्नाट् उमभाग प्रमन्त्र होंगे और वह पुरम्भार पायेगा, महोदय तो अपने सन्नाट्का मुख देखते रह गये। —सु० सिं०

संयम मनुष्यको महान् बनाता है

अपने अध्ययनके दिनोंमें नेपोलियनको एक बार अझोर्नी नामक स्थानमें एक नार्टके घर रहना पड़ा था। नेपोलियन बहुत मुन्द्र युवक थे और उनकी आकृति गुरुमार थी। नार्टकी छोटी उनमें सुख हो गयी और उन्हें अपनी ओर आकर्षित करनेके प्रयत्न करने लगी। किंतु नेपोलियनको तो अपनी पुस्तकोंमें अवकाश ही नहीं था। वह नीं जब उनमें हँसने-बोलनेका प्रयत्न करती, तभी उन्हें किसी पुस्तकको पढ़नेमें निमान पाती।

वही नेपोलियन जब देशके प्रधान मेनापनि चुने जा चुके, तब फिर उस स्थानमें एक बार गये। नार्टकी छोटी दृकानपर बैठी थी। वे उसके सामने जा खड़े हुए और बोले—‘तुम्हारे यहाँ एक बोनार्ट नामका युवक रहता

था, कुछ सरण हैं तुम्हें उसका?’

नार्टकी छोटी झुँझलाकर बोली—‘रहने भी ठीकिये महोदय! ऐसे नीरस व्यक्तिकी चर्चा करना मैं नहीं चाहता। उसे न गाना आता या न नाचना। किसीसे मुँह भर भीठी बात करना तक उसने नहीं सीखा था। पुस्तक, पुस्तक और पुस्तक—वह तो बस, पुस्तकोंका कीड़ा था।’

नेपोलियन हँसे—‘ठीक कहती हो देवि! संयम ही मनुष्यको महान् बनाता है। बोनार्ट तुम्हारी रसिकतामें उलझ गया होता तो देशका प्रधान सेनापति होकर आज तुम्हारे सामने खड़ा नहीं हो सकता था।’

—सु० सिं०

मानवता

एकमेडरके युद्धके बाद नेपोलियन आस्ट्रियाकी राजधानी मियना नगरके पास पहुँचे। उन्होंने सधिका झड़ा लेकर एक दूत नगरमें भेजा, किंतु नगरके लोगोंने उस दूतको मार दाया। इस समाचारमें नेपोलियन कुद्द ही उठे। उनकी अपार मेनाने चारों ओरसे नगरको घेर लिया। कार्सीसी तोपें आग उगलने लगी। नगरके भवन धूत होने लगे।

सहसा नगरका द्वारा खुला और एक दूत सधिका झड़ा डिये निकला। नेपोलियनने दूतका सम्मान किया। उस दूतने कहा—‘आपकी तोपें नगरके केन्द्रमें जहाँ गोले गिर रही हैं, वहाँ समीप ही गजमहलमें हमारे सन्नाट्की पार्गी पुत्री वीमार पड़ी हैं। कुछ और गोला-

वारी हुई तो सन्नाट् अपनी वीमार पुत्रीको छोड़कर अन्यत्र चले जानेको विवर होंगे।’

नेपोलियनके सेनापतियोंने बताया—‘हम शीत्र चिजवी हीनेवाले हैं। नगरके केन्द्रमें तोपोंका गोला गिराना युद्धनीनिकी दृष्टिसे इस समय अत्यन्त आवश्यक है।’

नेपोलियन बोले—‘युद्धनीनिकी बात तो ठीक है, किंतु मानवता कहती है कि एक रुणा राजकुमारीपर दया की जाय।’

अपनी आसन विजयको संदिग्ध बनानेकी आशङ्का लेकर भी नेपोलियनने नगरके केन्द्रमें गोला गिरानेवाली तोपोंको वहाँसे हटा लेनेकी आज्ञा दे दी।—सु० सिं०

सद्गुव

सम्राट् नेपोलियन दुद्रमे पराजित हो गये थे। अंग्रेजोंने उन्हे बंडी बना लिया था। एक अंग्रेजी जहाजमे वे सेंट हेलेना द्वीप भेजे जा रहे थे। जहाजके छोटे कर्मचारी नाविक आठि फ्रान्सीसी भाषा बोल-समझ लेते थे। अनेक बार नेपोलियन उनसे दुमाणियेका काम लेते थे। एक बार एक नाविकसे उन्होंने कुछ डेर बातेका और अन्तमे बोले—‘कल तुम मेरे साथ भोजन करना।’

बैचारे नाविकके लिये यह अकलियत बात थी। जहाजके ही कमान आदि उच्च कर्मचारी उसे भोजनके लिये अपनी मेजपर नहीं बैठने दे सकते थे, फिर फ्रान्सके

सम्राट्के साथ भोजन करनेकी बात तो बहुत बड़ी थी। उसने कहा—‘आपकी उडारताके लिये धन्यवाद। परंतु जहाजके अधिकारी ऐसा होने नहीं देंगे।’

नेपोलियनने कहा—‘मैं स्वयं पूछता हूँ।’

नेपोलियनके पूछनेपर जहाजके कसानने कहा—‘जब आप स्वयं उसके साथ भोजन करना चाहते हैं, तब इसमे कोई बाधा नहीं होगी।’

उस नाविकको नेपोलियनने अपने साथ भोजन कराया, इससे उसे कितनी प्रसन्नता हुई होगी, यह समझा जा सकता है।—सु० सिं०

अद्भुत साहस

नेपोलियन एन्ना छोड़कर जब पारिक्लकी ओर जा रहे थे, तब उनके एक सेनापति मरचेराने छ हजार सेना लेकर उनका मार्ग रोका। वह नेपोलियनको समाप्त कर देना चाहता था। नेपोलियनके साथ भी सेना थी और वह इतनी कम नहीं थी कि सरलतासे पराजित की जा सके, किंतु नेपोलियनने कहा—‘मैं अपने ही देशवासियोंका रक्त नहीं बहाना चाहता।’

अपनी सेना छोड़कर नेपोलियन घोड़ेपर चढ़कर अकेले शत्रुसेनाकी ओर चल पड़े। लोग हक्केवक्के देखते रहे; किंतु नेपोलियनने तो शत्रुसेनामे सौ हाथ दूर आकर घोड़ा भी छोड़ दिया और वे पैदल ही आगे बढ़े। इस बार वे केवल दस हाथ दूर रह गये शत्रुसेनासे।

शत्रुसेनापतिने नेपोलियनको लक्ष्य करके अपनी सेनाको गोली चलानेकी आज्ञा दी। एक अगुली हिलती और फ्रासका भाग्य बड़ल जाता; किंतु कोई

अंगुली नहीं हिली। सेनापतिके आदेशपर सैनिकोंने ध्यान ही नहीं दिया। अब तो नेपोलियनने गम्भीर स्वरमे कहा—‘सैनिको ! तुममेसे कोई अपने सम्राट्की हत्या करना चाहे तो अपनी इच्छा पूरी कर ले। मैं यहाँ खड़ा हूँ।’

कोई बोल नहीं ! सैनिकोंने बंदूके हुक्का दीं और एक-एक करके उन्हें पृथ्वीपर गिराने लगे। पूरी सेना स्वयं निश्च छ हो गयी। सैनिक पुकार रहे थे—‘सम्राट् नेपोलियनकी जय !’

नेपोलियनने एक बूढ़े सैनिककी दाढ़ी आदरपूर्वक हिलाकर कहा—‘तुमने मुझे मारनेको बंदूक उठायी थी ?’ सैनिकके नेत्र भर आये। उसने अपनी बंदूक डिखा दी। बंदूकमे गोली थी ही नहीं, पूरी सेनाने बंदूकोंमे केवल शब्दमात्र करनेके लिये बारूद भर रखी थी।—सु० सिं०

भारको सम्मान दो

नेपोलियन महान् सम्राट् होनेके अनन्तर एक महिलाके साथ पेसिमं घूमने निकले थे । वे एक पनले रस्तेमे जा रहे थे । महिला आगे थीं कुछ पैड । सामनेमे एक मजदूर भारी भार लिये आ रहा था । महिलाको अपने उच्च कुल, धन और पदका गर्व या और इस समय तो वे बाढ़ाहके साथ थीं । एक मजदूरके लिये वे कैसे मार्ग छोड़ देनीं । वीच मार्गमे वे ऐसे चली जा रही थीं

जैसे मजदूरको उन्होंने देखा ही न हो । सम्राट् नेपोलियन मार्गके एक ओर हट गये और हाथ पकड़कर उन्होंने महिलाको खींचा—‘मैडम ! भारको सम्मान दो ।’

जिनके सिरपर भार है चाहे वह भारी गढ़र हो या हल्का । वे सम्माननीय हैं, यह बात नेपोलियनने एक वाक्यमें समझा दी ।—सु० सि०

न्यूटनकी निरभिमानता

लन्डनके वेल्स बिनिस्टरके विशाल मन्डिरमे आइनक न्यूटनकी समाधि है । वहाँ बहुतने ली-पुरुष और वच्चे उसकी समाधिके पास जाकर कुछ क्षण रुक जाते हैं, कुछ चिन्तन करते हैं, क्योंकि उने बड़ा भारी प्रतिभाशाली और चिन्तनशील व्यक्ति समझते हैं और वह या भी ऐसा ही ।

न्यूटनका जन्म १६४२ के २५ वीं दिसम्बरको हुआ था । दुनिया भरकी विगतियोंके बावजूद भी उसने केवल वाईस वर्पकी अवस्थामें ही (Binomial theorem) वीजगणितके द्विध दिक्षान्तका आविष्कार किया था । उसने प्रकृतिका गमीर अध्ययन किया और ‘गुरुत्वाकर्णण’ (The force of gravitation) आदि सिद्धान्तोंका आविष्कार किया । सूर्यकी किरणोंमें सात रंग क्यों हैं । सूर्य-चन्द्रमाकी क्षीणना और पूर्णताके कारण समुद्रमें ज्ञार-भाटा क्यों होता है, ये सभी गुरुत्वाकर्णणसिद्धान्त-के अन्तर्गत समझे जाते हैं । न्यूटनकी विद्या-वुद्धिपर

सारे इंग्लैंडको गर्व था और है । इतनेपर भी न्यूटनको स्वयं अपनी विद्या-वुद्धिका कोई गर्व न था, लेगमात्र भी अहकार न था ।

न्यूटनको एक दिन एक महिला मिली, जिसने उसकी बड़ी भारी प्रशंसा की और उसकी विद्या-वुद्धिकी मुक्त-कण्ठसे सराहना की ।

न्यूटनने कहा—‘अरे ! (तुम कहाँकी बातें कर रही हो)—मैं तो उस वच्चेके ही समान हूँ जो सत्यके विशाल समुद्रके किनारे बैठा हुआ केवल ककड़ोंको ही चुनता रहा ।’ अर्थात् विद्याके अगाध वारिथिमें तो मैंने प्रवेश ही नहीं किया* । न्यूटनके मौखिक शब्द हैं—“Alas ! I am only like a child picking up pebbles on the shore of the giant ocean of truth” । १९

(F J Gould's Youth's Noble Path PP 84)

—जा० श०

* अपने यहाँ महाराज भर्तृहरिकी उक्ति भी ऐसी ही है—

यदा किञ्चिज्जोऽह द्विप इव मदान्व. समभव तदा सर्वशोऽसील्यमवदलिप्त मम मन ।

यदा किञ्चिक्तिचिद् बुधजनसकाद्याद्वगत तदा मूलोऽसीति ज्वर इव मदो मे व्यपगत ॥

एक अन्य मुसलिम कविजा भी कथन कुछ ऐसा ही है—

‘जाना था कि इल्मसे कुछ जानेंगे । जाना तो यही जाना कि कुछ भी न जाना ।’

गरीबोंकी उपेक्षा पूरे समाजके लिये धातक है

स्काटलैंडके एक नगरमें विपत्तिकी मारी एक दरिद्र स्त्री आयी। उसके पास न रहनेको स्थान था और न भोजन-को अन्न। वह बुढ़िया हो चुकी थी, इससे मजदूरी करनेमें भी असमर्थ थी। उसने घर-घर भटककर शरण चाही कि अस्तबलके ही एक कोनेमें उसे कोई आश्रय दे दे, किंतु किसीने उसकी दुर्दशा देखकर भी दया नहीं की। उसे नगरके बाहर एक खुले स्थानमें पड़े रहना पड़ा। भूख और सर्दीके मारे वह बीमार हो गयी। भला दरिद्रकी चिकित्सा कौन करता, बीमारी बढ़ती गयी और अन्तमें वह दृश्यत फैलनेवाली बीमारीमें बदल गयी।

वह दरिद्र बृद्धा तो मर गयी, किंतु उसके शरीरमें

रोगके जो कीटाणु उत्पन्न हुए थे, उन्होंने पूरे नगरमें वह रोग फैला दिया। ऐसा घर कोई कठाचित् ही बचा हो जिसमें उस रोगसे उस समय कोई मरा न हो। नगरमें हाहाकार भच गया।

अंग्रेज विद्वान् कार्लाइलने इस घटनाके सम्बन्धमें लिखा है—‘इन धनवानोंने तो जीवनमें उस दरिद्र नारीको अपनी बहिन स्त्रीकार नहीं किया था; किंतु उसकी मृत्युके पश्चात् उन्हें स्त्रीकार करना पड़ा कि सचमुच वह उनकी भगिनी थी; क्योंकि उसके सुख एवं खास्त्यमें ही पूरे नगरका सुख और स्वास्थ्य सनिहित था।’—सु० सिं०

लोभका बुरा परिणाम विचित्र बाँसुरीवाला

जर्मनीके वर्न्सर्वीक प्रदेशमें ग्रमसुख नगर है नोवर। इसके पास ही हैमेलिन नामका एक शहर है। इसकी एक ओर तो हैमेल नामकी छोटी नदी है, पर दक्षिणकी ओर बेसर नदी बहुत बड़ी है। पहले यह और भी गहरी तथा चौड़ी थी। यह नगर अपनी किले-बंदीके लिये प्रसिद्ध रहा है। आजसे प्रायः ६०० वर्ष पूर्व सन् १३७६ की २२ जुलाईको वहाँ एक बड़ी विचित्र घटना घटी थी। वहाँ चूहे इतने अधिक बढ़ गये थे कि लोग उनसे बेतरह तग आ गये थे। बिल्ली और कुत्तेतक उनसे परेशान हो रहे थे और उनकी कोई चिकित्सा सफल नहीं हो रही थी।

अन्तमें वे लोग टाउनहालमें एकत्र हुए और एक स्वरसे बोले—‘हमलोगोंका मेयर (प्रशासक) किसी काम-का व्यक्ति नहीं है। हमारी विपत्तिका इसे कोई ध्यान नहीं है। अतएव इसे बद करके कहीं भेज देना चाहिये अथवा नदीमें डुबो देना चाहिये।’ उनके इस

प्रस्तावको सुनकर प्रशासक तथा कारपोरेशन (सभा) का कलेजा कॉप उठा। पर भगवत्कृपासे उसी क्षण एक विचित्र वेषधारी बाँसुरी बजानेवाला व्यक्ति वहाँ आया। उसे देखते ही प्रशासकने बड़ी व्याकुलतासे उसका खागत किया। बजानेवालेने कुशल-प्रश्नके द्वारा सब कुछ जानकर कहा—‘मैं आपकी इस विपत्तिको तत्क्षण दूर करनेमें समर्थ हूँ, क्योंकि पृथ्वीपरके सारे जीवोंको मैं आकृष्ट कर सकता हूँ। अभी हालमें ही याराटीके राजाको मैंने मच्छरोंके कष्टसे मुक्त किया है। साथ ही एशियामें (भारत) निजामका चमगादडोंसे पिंड छुड़ाया है। पर पहले यह तो बतलाइये कि इसके बदले आपलोग मुझे देंगे क्या? क्या एक सहस्र (गिल्डर) मुद्राएँ आप मुझे दे सकते हैं?’ इस-पर मेयर तथा कारपोरेशनके लोग चिछा उठे—‘एक सहस्र क्या हमलोग पचास सहस्र मुद्रा दे देंगे। आप चूहोंको भगाइये।’

वेचारे वशीवालेने अपनी बाँसुरी उठायी । पहले तो वह तनिक सुसकराया, फिर अपनी बाँसुरीको उसने अपने ओठोंपर लगाया और धीरे-धीरे शहरकी गलियोंसे चलना आरम्भ किया । वह जैसे-जैसे बाँसुरी बजाते हुए चलता था, पीछे से चूहोंकी पक्षियाँ उसका अनुगमन करती थीं । अन्तमें धीरे-धीरे नगरके सारे चूहे उसके पीछे लग गये और वह बेसर नदीमें प्रवेश कर गया । सारे चूहे नदीमें हूँकर नष्ट हो गये, पर एक चूहा उनमें बड़ा हृष्ट-पुष्ट था, वह किसी प्रकार तैरकर पार कर गया । सभी लोग इस तमाशेको देख रहे थे । ज्यों ही यह विपत्ति किनारे लगी, प्रशासकने लोगोंने चिल्ड्रकर कहा—‘अरे दौड़ो, जाओ, चूहोंकी सारे बिलोंको अब बद कर दो और उनके रहनेके स्थानोंको तोड़फोड़ दो ।’ तबतक बाँसुरीवालेने बहों पहुँचकर पूर्व प्रतिश्रुत एक हजार मुद्राएँ मार्गी ।

‘इन हजार गिन्डर ॥’ मेयरकी आँखें लाल हो उठीं । ‘मिन्न ! हमलोगोंको बोला नहीं दिया जा सकता । चूहे तो हमारी आँखोंके सामने ही नदीमें ल्य हो गये । अब उनका पुन आना असम्भव है । हजार गिल्डरकी बात तो हमारी मजाक मात्र था । आओ, यचास मुद्राएँ जलपानके लिये तुम्हें दे दें ।’

बाँसुरीवाला बोला—‘देखो, खेल भत करो । मैं क्षण भर भी नहीं रुँगा; क्योंकि दोपहरके भोजनके समय मैंने खलीफामे बगढाद पहुँचनेकी प्रतिज्ञा की है । उस बेचारेको बिच्छूओंने परेगान कर रखा है और जो तुम यह सोच रहे हो कि मैं अब तुम्हारा बुरा ही क्या कर देंगा तो मैं दूसरे प्रकारकी बाँसुरी भी बजाना जानता हूँ । याद रखो, इस लोभका बहुत बुरा परिणाम होगा । बचन देकर यों सुकर जाओगे तो तुम्हें बुरी तरह रोना पड़ेगा ।’

इसपर प्रशासक बड़ा लाल-पीला हुआ । उसने कहा—‘देखो, तुम-जैसे अशिष्ट तथा तुच्छ व्यक्तिका

तिरस्कार हम सहनेवाले नहीं । तुमसे जितना भी बने, अपनी बाँसुरी बजाकर हमारा अनिष्ट कर लो । तुम बाँसुरी बजाते मर भी जाओ तो भी हमारा अब कुछ नहीं बिगड़ता ।’

बाँसुरीवालेने फिर एक बार गलीमें पैर रखा और फिर बाँसुरी बजायी । इस बार नगरके सभी बालक-बालिकाएँ उसके पीछे हो लिये । मेयर चुपचाप यह सब देख रहा था । न तो उसमें बोलनेकी शक्ति थी, न हिलने-डुलनेकी । बाँसुरीवाला उनके आगे-आगे जा रहा था और सभी बालक उसके पीछे-पीछे । बेसर नदीके किनारे से होकर वह कोपेलर्ग पहाड़ीकी ओर मुड़ा । अब मेयर प्रसन्नतासे खिल उठा । लोगोंने समझा—चलो, यह उस पहाड़को अब किसी प्रकार लॉघ न सकेगा । पर आर्थर्य । ज्यों ही वह पर्वतके समीप पहुँचा, उसमें एक दरवाजा खुल पड़ा और वह बाँसुरी-वाला उन बच्चोंके साथ उसमें प्रविष्ट हो गया । और सबके अटर धुसते ही वह दरवाजा पूर्ववत् बद हो गया । कैबल एक लॅगडा लड़का जो बहुत पीछे छूट गया था, उनके साथ न जा सका ।

हैमेलिनके लोगोंके पश्चात्तापका क्या कहना था । उन्होंने लाख मिन्नतें मार्नी । पर वह कब लौटेवाला था । यह कथा वहाँकी शुकाके एक पत्थरपर आज भी खुदी बर्तमान है । कहते हैं कि ट्रान्सिल्वानियाँमें कुछ मिन्न खमाकके परदेशी व्यक्तियोंकी एक जाति रहती है । उनका कहना है कि उनके पूर्वज एक भूर्गमृश कारागृहसे निकले थे, जो वर्न्सीशीक प्रदेशके हैमेलिन नगरके निवासी थे । पर वे क्यों और कैसे निकले, ये वे नहीं जानते, तथापि उनकी वातोंसे इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि वे पर्वतद्वारसे प्रविष्ट बालक ही इनके तथाकथित पूर्वज थे । बचन देकर लोभवश उसके पूरा न करनेका यह दुष्परिणाम है ।

(The Pied Piper of Hamelin)

उसकी मानवता धन्य हो गयी

पिछली शताब्दीकी बात है। एक फ्रेच व्यापारी जिसका नाम लब्ट था, दैवयोगसे बीमार पड़ गया और आठर नदीके ठटपर एक रमणीय स्थानमें रहने लगा।

एक दिन सवेरे-सवेरे उसने देखा कि नदीके दूसरे किनारेपर एक सवार अपने घोड़ेसे उलझ रहा था। कभी वह लगाम ढीली करता था तो कभी कड़ी करते ही घोड़ा दोनों आगोवाले पैर उठाकर खड़ा होनेका यत्न करता था। सवारका जीवन खतरेमें था। अचानक वह घोड़ेद्वारा उछाल दिया गया और नदीकी मध्यधारामें झूँकने लगा। बूढ़े व्यापारीसे यह इश्य नहीं देखा गया। झूँकते नवयुवक-की प्राण-रक्षाके लिये वह नदीमें कूद पड़ा। यह मानवताकी पुकार थी। उसे अपने कीमती बखोका कोई

ध्यान नहीं था। यद्यपि वृद्ध व्यापारी अच्छा तैराक था तथापि झूँकते हुए युवकको बचाना उस समय आसान काम नहीं था। उसका गरीर हृष्ट-पुष्ट और भारी था।

‘ऐसा कदापि नहीं हो सकता कि मेरे रहते एक असहाय मानवके प्राण चले जायें।’ बूढ़ेने फिर हाथ-पैर मारे और उसे किनारेतक लानेमें सफल हो गया।

‘पवित्र मानवता ! मैं तुम्हारा कितना ऋणी हूँ। मैंने तुम्हारे नामपर अपने पुत्रके ही प्राण बचा लिये।’ वह आश्वर्यचकित हो उठा। उसका हृदय प्राणिमात्रके लिये करुणा और दयासे पिघल गया। वृद्ध लब्टने अपने नौजवान बेटेको छातीसे लगा लिया।—रा० श्री०

प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरेका सेवक है

अप्रीकामें कमेराका हृषी राजा बहुत अभिमानी था, वह ऐश्वर्यके उन्मादमें सदा मान रहता था। लोग उससे बहुत दरते थे और उसकी छोटी-से-छोटी इच्छाकी भी पूर्ति करनेमें दत्तचित्त रहते थे।

एक दिन वह अपनी राजसभामें बैठकर ढींग हॉक रहा था कि सब लोग मेरे सेवक हैं। उस समय एक वृद्ध हृषीने, जो वडा बुद्धिमान् और कार्यकुशल था, उसके कथनका विरोध किया। उसका नाम बोकबारथा।

‘प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरेका सेवक है।’ वृद्धके इस कथनसे राजा सिरसे पैरतक जल उठा।

‘इसका आशय यह है कि मैं तुम्हारा सेवक हूँ। मुझे विवश कर दो अपनी सेवा करनेको। मैं तुम्हें सौ गायें पुरस्कारस्वरूप प्रदान करूँगा। यदि तुम शामतक मुझे अपना सेवक नहीं सिद्ध कर सकोगे तो मैं तुम्हे मार डालूँगा और लोगोको समझा दूँगा कि मैं तुम्हारा मालिक हूँ।’ कमेरानरेशने बोकबारको धमकी दी।

‘बहुत ठीक’ बोकबारने प्रणाम किया। वृद्ध होनेके नाते चलनेके लिये वह अपने पास एक छड़ी रखता

था। ज्यों ही वह राजसभासे बाहर निकल रहा था त्यों ही एक भिखारी आ पहुँचा।

‘मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं इस भिखारीको कुछ खानेके लिये दूँ।’ बोकबारने राजासे निवेदन किया।

दोनों हाथमें भोजनकी सामग्री लेकर वह बुद्धापेके कारण राजाके निकट ही थर-थर कॉपने लगा। बगलसे छड़ी जमीनपर गिर पड़ी और उसके कपड़ेमें उलझ गयी तथा वह बक्षकर गिरनेवाला ही था कि उसने राजासे छड़ी उठा देनेकी ग्राहना की। राजाने बिना सोचे-समझे छड़ी उठा दी। बोकबार ठाकर हँस पड़ा।

‘आपने देखा कि सज्जन लोग एक दूसरेके सेवक होते हैं। मैंने भिखारीकी सेवा की और आप मेरी सेवा कर रहे हैं। मुझे गायोंकी आवश्यकता नहीं है। आप उन्हे इस दीन भिखारीको दे दीजिये।’ बोकबारने अपने कथनकी सत्यता प्रमाणित की।

राजाने प्रसन्न होकर बोकबारको अपना मन्त्री बना लिया।—रा० श्री०

परिश्रम गौरवकी वस्तु है

अमेरिकामें स्वातन्त्र्य-सप्रामके समय एक किलेवन्डी हो रही थी। कुछ सैनिकोंके द्वारा एक नायक उस कामको करा रहा था। सैनिक किलेकी दीवारपर एक भारी लकड़ी चढ़ानेका प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु सफल नहीं हो रहे थे। नायक उन्हें आज्ञा दे रहा था और प्रोत्साहित भी कर रहा था, किन्तु स्वयं लकड़ी उठानेमें हाय नहीं लगाना था।

उधरसे घोड़ेपर बैठे एक सज्जन निकले। उन्होंने नायकमें कहा—“आप भी लकड़ी उठानेमें लग जायें तो लकड़ी ऊपर चढ़ जाय।”

नायकने उत्तर दिया—“मैं इस टुकड़ीका नायक हूँ।”

‘आप मुझे क्षमा करें।’ वे सज्जन घोड़ेपरमें उत्तर पड़े। अपना कोट उन्होंने उतार दिया, दोषी अलग रख

दी और कमीजकी वाहें ऊपर चढ़ाकर सैनिकोंके साथ जुट गये। उनके परिश्रम तथा सहयोगका परिणाम यह हुआ कि लकड़ी ऊपर चढ़ गयी।

‘धन्यवाद महोदय।’ नायकने उन सज्जनको लकड़ी चढ़ जानेपर कहा।

अपना कोट पहिनते हुए वे बोले—‘इसमें धन्यवाद-की तो कोई वात नहीं। आपको जब कभी ऐसी आवश्यकता हो तो अपने प्रधान सेनापतिके पास सदेश भेज दिया करे, जिससे मैं आकर आपकी सहायता कर जाया करूँ, क्योंकि मुझे पता है कि परिश्रम करना हीनताकी नहीं, गौरवकी वस्तु है।’

‘प्रधान सेनापति।’ वेचारा नायक तो हक्का-वक्का रह गया। परतु प्रधान सेनापति घोड़ेपर चढ़कर शीघ्रतापूर्वक वहाँसे आगे निकल गये।—मु० सिं०

क्षमाशीलता

अब्राहम लिंकन अमेरिकाके गणपति थे। उनके आसनकालमें अमेरिका बहुत समृद्ध और समुन्नत था। पर कभी केवल इस वातकी थी कि उन्हें किसीको मृत्यु-दण्ड देनेमें वज़ा सकोच होता था। वे कहा करते थे कि किसीको मृत्यु-दण्ड देना किन्तु कठिन है, लेखनीमें इतनी अक्षि है कि उसकी एक चाल अपराधीको प्राप्त हो सकती है।

अमेरिकन सेनाकी एक टुकड़ीमें एक नवयुवक काम करता था। उसका काम पहरा देनेका था। किसी समय सेनामें ही उसका एक मित्र बीमार पड़ा। नवयुवक को उसकी देखभालके साथ-ही-साथ अपना काम भी पूरा करना पड़ता था। बीमार आदमीकी सेवा-शुश्रूपाके कारण वह थककर अपनी जगहपर सो गया। शत्रुका आक्रमण होनेवाला था, ऐसे समयमें उसका सो

जाना कदाचित नहीं था। सेनापतिने उसे मृत्यु-दण्ड दिया। अब्राहम लिंकनको पूरा-पूरा अधिकार था कि उसे क्षमाकर प्राणदान दे दे। वे उससे स्वयं मिलने गये।

× × × ×

‘भाई। तुम्हें गोलीसे दागा नहीं जायगा, मेरी वात मानो। तुम्हारे इस कथनमें मेरा विश्वास है कि तुम थकावट और टोहरे कामके कारण सो गये। मैं तुम्हें सेनामें फिर भेज रहा हूँ; पर इस समय मैं वडे धर्म-सकटमें पड़ गया हूँ कि तुम देय धन (विल) भर सकोगे या नहीं।’ अमेरिकाके राष्ट्रपतिने युवकको आश्वासन दिया।

‘यदि यह पौँच सौ डालरसे अधिक नहीं होगा तो मैं अपने मित्रोंकी सहायतासे इसे चुका दूँगा।’ अपराधी-का निवेदन था।

‘नहीं भाई ! यह तो बहुत अधिक है । इसे तुम, केवल तुम चुका सकते हो, मैं तुम्हे चाहता हूँ, चिलियम स्काट !’ राष्ट्रपति लिंकनने बात स्पष्ट की ।

लिंकनने कहा कि तुम सेनामे जाकर अपने कर्तव्यका पूर्णरूपसे पालन करो । जब मरने लगो, तब यह समझ सको कि मेरे बचनके अनुसार तुमने आजीवन आचरण कर अपनी शेष आयु सार्थक की । इस तरह देय धन

(बिल) की भरपाई हो जायगी । राष्ट्रपति ने उसे क्षमा कर दिया ।

X X X X

‘आपने मुझे एक वीर सैनिककी तरह युद्धस्थलमें प्राण देनेका सुनहला अवसर दिया । आपकी क्षमाझीलता धन्य है ।’ चिलियम स्काटने मरते समय लिंकनको पत्र लिखा था । एक वीरकी तरह अपने देशके सम्मानके लिये लड़कर युद्धमें जीवन-लीला समाप्त की ।—रा० श्री०

+---+---+

श्रमका फल

अब्राहम लिंकनका बचपन अत्यन्त दुखमय था । उन्होंने अत्यन्त साधारण और गरीब परिवारमें जन्म लिया था । कभी नाव चलाकर तो कभी लकड़ी काटकर वे जीविका चलाते थे । उन्हे महापुरुषोंका जीवन-चरित पढ़नेमें बड़ा आनन्द आता था, पर अर्थभावमें पुस्तक खरीदकर पढ़ना उनके लिये कठिन था ।

वे अमेरिकाके प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटनके जीवनसे बहुत प्रभावित थे । एक समय उन्हे पता चला कि एक पड़ोसीके पास जार्ज वाशिंगटनका जीवन-चरित है, वे प्रसन्नतामें नाच उठे, पर मनमें भय था कि पड़ोसी पुस्तक देगा या नहीं । पड़ोसीने पुस्तक दे दी । अब्राहमने शीघ्र ही लौटा देनेका वादा किया था ।

अब्राहम लिंकनने पुस्तक समाप्त नहीं की थी कि एक दिन अचानक बड़े जोरकी जलवृष्टि हुई । अब्राहम लिंकन झोंपड़ीमें रहते थे; पुस्तक वर्षासे भीगकर खराब हो गयी । अब्राहमके मनमें बड़ा दुख हुआ, पर वे निराग नहीं हुए ।

X X X X

‘मुझसे एक बहुत बड़ा अपराध हो गया है ।’ सोलह सालकी अवस्थावाले असहाय बालक अब्राहमकी बातसे पड़ोसी आश्वर्यचकित हो गया । वह बालककी सरलता और निष्कपटतासे बहुत प्रसन्न हुआ ।

अब्राहमने कहा कि मैं पुस्तक लौटा नहीं सकूँगा । यद्यपि वह जलवृष्टिसे भीगकर खराब हो गयी है तो भी मैं आपको नयी पुस्तक देंगा ।

‘तुम नयी किस तरह दे सकोगे ? घरपर एक पैसेका भी ठिकाना नहीं है और बात ऐसी करते हो ?’ पड़ोसीने झिड़की दी ।

‘मुझे अपने श्रमपर विश्वास है । मैं आपके खेतमें मजदूरी कर पुस्तकके दूने दामका काम कर दूँगा ।’ अब्राहम लिंकन आशान्वित थे । पड़ोसीको उनका ग्रस्ताव ठीक लगा ।

अब्राहम लिंकनने मजदूरीके द्वारा पुस्तकके दामकी भरपाई कर दी और जार्ज वाशिंगटनकी जीवनी उन्हींकी सम्पत्ति हो गयी । अपने श्रमसे उन्होंने अपने पुस्तकालयकी पहली पुस्तक प्राप्त की । —रा० श्री०

अन्त भला तो सब भला

एथेन्समें सोलन नामका एक बड़ा भारी विद्वान् रहता था । उसे देशाफनका बड़ा शौक था । एक बार वह वृमता-धामता लीडिया देशके राजा कार्लोके दरबारमें

पहुँचा । कार्ल अत्यन्त धनी था । उसे अपनी अतुल सम्पत्तिका बड़ा गर्व था । उसने सोलनको अपनी अपरिमित अर्थराशि दिखलाकर यह कहलाना चाहा कि

‘काहँने बढ़कर ससारमें और कोई लुड़ी नहीं है।’ पर जानी सोलनके चिचर उसके वैमवका कोई प्रभाव न पड़ा। उसने केवल यही उत्तर दिया कि ‘संसारमें मुख्ती वही कहा जा सकता है, जिसका अन्त सुखमय हो।’ इसमग्र काहँने बिना किसी विग्रह सच्चारके सोलनको अग्ने वहाँमें विड़ा कर दिया।

कालान्तरमें काहँने पारसके राजा साइरसग्र आक्रमण

किया। वहाँ वह हार गया और जीने पकड़ लिया गया। साइरसने उने जीवित जलनेकी आज्ञा दी। इसी समय उसे सोलनकी याद आ गयी। उसने नीन वार ‘हाय। सोलन। हाय सोलन’ की पुकार की। तब साइरसने इसका नार्पे पूछा तो उसने सोलनकी सारी बातें सुना दी। इसका साइरसपर अच्छा प्रभाव पड़ा और उसने काहँको जीवन-दान तो दिया ही, साथ ही उसका आठर-सच्चार मी किया।—जा० ग०

उद्यमका जादू

इट्टीके क्रोसिन नामक किसानने अपने उद्योगके बड़ौलन इतनी अच्छी पैदावार की कि लोगोंको अत्यन्त आश्रप्त होने लगा। उन्होंने सोचा—निश्चय ही यह कोई जादू करता होगा।

उन्होंने न्यायालयमें इसकी अरीष की। न्यायावीजनने बारीका वयान सुननेके बाद प्रानिवारी किसान क्रोसिनसे पूछा—‘इसमग्र तुम्हारा क्या कहना है?’

क्रोसिनने अपनी पक्का हृष्ट-पुष्ट लड़की, अपने खेनी-के औंजार, बैंल आदिको अडालनके समक्ष खड़कर कहा—‘मैं खेन जोन और खाड ढाल उमे अच्छा तैयार करता हूँ। मेरी लड़की बीज बोनी और पानी आदि देकर खेनकी अच्छी देखरेंव करती है। इसी तरह मेरे औंजार भी टूट-जूटे न होकर अच्छे काम लायक है।

और मेरे बैंल देखिये। किन्तु लुमात्रनी जोड़ी है। मैं इन्हे खूब खिलाता-गिलाना, इनकी भेत्रा-शुश्रूषा करता हूँ। इसीलिये ये हमारे बैंल प्रदेशमरमें स्थानिकास और बैंजोड़ है। मेरे खेनमें कफी पैदावार होनेमें ये जादूका असर बताते हैं वह जादू इन्हींमें है। दावा करनेवाले चाहें तो इस जादूका उपयोग कर लें तब उन्हे मेरे इस कथनकी सत्यता प्रमाणित होगी।’

ये बातें सुनकर न्यायावीजनने कहा—‘आजतक अनेक अपनावी मेरे सामने आये, पर अपनेपर किये गये अभियोगोंके निवारणार्थ इतने सबल प्रमाण किसाने भी उपस्थित नहीं किये। इसलिये इनकी जिन्हीं प्रश्नसार्की जाय योड़ी है।’

यह कहकर न्यायावीजनने क्रोसिनको निर्दोष प्रित्तर्दि दी।
(नीतिगोब)

न्यायका सम्मान

इगर्डेका चतुर्थ हेनरीका व्येष्टुप्रत्र, जो आगे हेनरी पञ्चम नामसे प्रसिद्ध हुआ, वडा ही गूर्जीर और राज-काजमें भी अन्यन्त दल था। किन्तु वचपनमें राज्याल्पद्ध होनेके पूर्व वह वडा ही उजड़ और मुँहफ़ट था। वह उच्चर्वोंकी संगति कर नीच-मूर्खतापूर्ण काम मी करता था।

एक बार उसके एक मित्रको बिसी अपरावपर मुख्य

न्यायावीजने कैडकी सजा सुनायी। गजपुत्र अडालनमें उपस्थित था। सजा सुनते ही वह विगड़ उठा और न्यायावीजके साथ बैअडवी कर अपने मित्रको छोड देनेके लिये उन्हे हुक्म देने लगा। उसने कहा—‘राज-पुत्रके मित्रको कैडकी सजा देना अनुचित है और मैं प्रिंस आफ बैल्सके नाते आपको आदेश देता हूँ कि

यह मेरा मित्र है, इसलिये रास्तेके साधारण चोरकी तरह इसके साथ कभी वर्ताव न करें।’

न्यायाधीशने उत्तर दिया—‘मैं यहाँ प्रिंस आफ वेल्स-को बिल्कुल नहीं पहचानता। न्यायके काममें पक्षपात नहीं कहूँगा’ यह मैंने शपथ ली है। इसलिये जो बात न्याय दीखेगी, उसे बिना किये न रहूँगा।’

राजपुत्र आगवृला हो उठा। आपेसे बाहर हो वह अपने मित्र उस कैदीको छुड़ानेका यत्न करने लगा। न्यायाधीशने पुन साफ चेतावनी दी—‘इसमें हाथ डालनेका आपको अधिकार नहीं। व्यर्थ ही अदालतमें दंगा मत कीजिये।’ राजपुत्रके तलवेकी आग ब्रह्मण्डमें पहुँच गयी और उसने भरी अदालतमें न्यायाधीशके गालपर थप्पड जमा दी।

न्यायाधीशने राजपुत्र और उसके मित्रको तल्काल जेलमें भेजनेका आदेश दिया। उन्होंने कहा—‘इसने न्यायाधीशका अपमान किया है। इसलिये यह दण्ड है।’

न्यायाधीशने राजपुत्रको सम्बोधन करके कहा—‘आगे आपको ही राज्याखड़ होना है। यदि स्वयं आप अपने राज्यके कानूनोंकी इस तरह अवज्ञा करेंगे तो प्रजा आपका आदेश क्या मानेगी।’

राजपुत्रके हृदयमें तल्काल प्रकाश हुआ। वह बड़ा लज्जित हुआ। सिर नवाकर न्यायाधीशको मुजरा किया और जेलकी ओर चल पड़ा।

राजा हेनरी चतुर्थको पता चलनेपर उसने कहा—‘सचमुच मैं धन्य हूँ, जिसके राज्यमें न्यायका निष्पक्ष स्थापन करनेवाला ऐसा न्यायाधीश है।’

स्वयं हेनरी पञ्चम बननेपर राजपुत्रने न्यायाधीशसे कहा—‘आपके साथ मैंने जैसा वर्ताव किया, यदि मुझे ऐसा ही पुत्र हुआ तो उसकी ओरोंमें ऑंजन डालनेवाला आप-जैसा ही न्यायाधीश मुझे सौभाग्यसे मिले, यही मैं चाहता हूँ।’ —गो० न० वै०(नीतिवोध)

स्वावलम्बनका फल

स्काटलैंडके एक सरदार सर रावर्ट इन्नेसपर एक समय बड़ा सकट आ गया और वह बड़ी विपत्तिमें पड़ गया। अन्य लोगोंकी तरह उसने न तो अपने इष्ट-मित्रोंपर बोझ डाला और न सरकारसे मदद माँगी। उसे कोई काम भी न आता था। पर अपने श्रमपर खावलम्बी रहनेकी उसे दृढ़ निष्ठा थी। फलत, उसने पलटनमें सिपाहीगिरीका काम स्वीकार कर लिया।

एक दिन वह छावनीपर निगरानी कर रहा था कि एक व्यक्ति, जो उसे जानता था, यों ही किसी कामके लिये पलटनके कर्नलके पास आया। कर्नल किसी अन्यसे बातें कर रहे थे, तबतक वह इस पहरेदारसे बातचीत करता खड़ा रहा। उसे स्पष्ट हो गया कि यह पहरेदार साधारण व्यक्ति नहीं, रावर्ट इन्नेस है।

कर्नलसे मिलनेपर उसने कहा—‘सचमुच आप बड़भागी हैं। आपके यहाँ कितने ही राजा नौकरी करते होंगे। यही रावर्ट इन्नेसको देखिये न ! कितना बड़ा सरदार है।’

कर्नलने दूसरे पहरेदारको भेजकर रावर्टको बुलाया और कहा—‘क्या आप रावर्ट इन्नेस हैं ? यदि हाँ तो, यह हल्का काम क्यों करते हैं ?’

‘हाँ, यह सच है। मेरे पास एक पाई भी न बचनेके कारण मैंने सोचा कि दूसरेका मरा अन्न खानेकी अपेक्षा अपनी पदवी आदिको दो दिनके लिये भूलकर अपने श्रमपर निर्वाह करना श्रेष्ठ है। इसीलिये यह नौकरी स्वीकार की।’

कर्नलको विश्वास हो गया और वे उसके धैर्य तथा श्रमनिष्ठापर खिल उठे। उन्होंने रावर्टको उस दिन

छुट्टी दे दी और अपने यहाँ भोजनको बुलाया । कपडे अभी मेरे पास पड़े हैं ।

एक साथ भोजन करनेके बाद वे अपनी पोशाकमें से एक पोशाक उसे देने लगे ।

रावर्टने कहा—‘धन्यवाद । पर मुझे इसकी जरूरत नहीं है । सिपाहीगिरी करनेसे पहलेके कुछ व्याह दी ।—जो० न० बै० (नोतिवोध)

कर्नल उत्तरोत्तर उससे और भी प्रभावित हो चले और उसने रावर्टको एक बड़े सम्मानकी नौकरी दी तथा अन्तमें उसके साथ अपनी लड़की भी जागी रही गयी ।

निर्माता और विजेता

किसी ग्राममें एक विद्वान् ली-पुरुष तथा उनके दो बच्चे रहते थे । वडा लड़का शान्त स्वभावका, पठन-शील और प्रिचारप्रिय था । छोटा बालक केवल त्रिनोदी, चब्बल स्वभावका तथा खेल-कूदप्रिय था ।

एक दिन सध्यासमय नित्यकी तरह वडा लड़का अपने माँ-ब्रापके पास बैठा हुआ कोई इतिहासकी पुस्तक पढ़ रहा था । इधर छोटा बालक एक कार्डका मकान बनानेमें लगा था । वह उसके गिरनेके भयसे श्वास भी नहीं लेना था । इतनेमें ही वडे लड़केने पुस्तक अलग रख दी और अपने पितासे पूछा—‘पिताजी ! कुछ बीर तो साम्राज्य-विजेता कहे जाते हैं और कुछ साम्राज्य-स्थापक कहे जाते हैं । क्या इन दोनों

भिन्न शब्दोंके भाव भिन्न-भिन्न हैं ?’

पिता अभी कुछ उत्तर देनेकी बात सोच ही रहा था कि तबतक छोटे बालकने कार्डका दूसरा महल तैयार कर लिया और प्रसन्नतासे उछल पड़ा । वह बोल उठा—‘मैंने यह तैयार कर लिया ।’

वडा भाई उसके कोलाहलपर विगड़ पड़ा और एक इआरेसे उसके सारे घरको जिसके निर्माण करनेमें उसे इतना श्रम और समयका व्यय हुआ था धराशायी कर डाला ।

पिताने कहा—‘मेरे पुत्र ! बस, तुम्हारा छोटा भाई ‘निर्माता’ और तुम ‘विजेता’ हुए ।’—जा० श०

स्वावलम्बी विद्यार्थी

ग्रीसमें किलेन्यिस नामक एक युवक एयेंसके तत्त्ववेत्ता जीनोकी पाठगालामें पढ़ता था । किलेन्यिस बहुत ही गरीब था । उसके बदनपर पूरा कपड़ा नहीं था । पर पाठगालामें प्रतिदिन जो फीस देनी पड़ती थी, उसे किलेन्यिस रोज नियमसे दे देता था । पढ़नेमें वह इतना तेज था कि दूसरे सब विद्यार्थी उससे ईर्पा करते । कुछ लोगोंने यह सदेह किया कि ‘किलेन्यिस जो दैनिक फीसके दैसे देता है, सो जरूर कहीसे चुराकर लाता होगा, क्योंकि उसके पास तो फटे चियड़ेके सिवा और कुछ है ही नहीं ।’ और उन्होंने आखिर उसे चोर बता-

कर पकड़वा दिया । मामला अदालतमें गया । किलेन्यिसने निर्भयताके साथ हाकिमसे कहा कि ‘मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ, मुझपर चोरीका दोष सर्वथा मिथ्या लगाया गया है । मैं अपने इस बयानके समर्थनमें दो गवाहियाँ पेश करना चाहता हूँ ।’

गवाह बुलाये गये । पहला गवाह था एक माली । उसने कहा कि ‘यह युवक प्रतिदिन मेरे बगीचेमें आकर कुर्सेसे पानी खींचता है और इसके लिये इसे कुछ पैसे मजदूरी-के दिये जाते हैं ।’ दूसरी गवाहीमें एक बुद्धिया माईने कहा कि ‘मैं बूढ़ी हूँ । मेरे घरमें कोई पीसनेवाला

नहीं है। यह युवक प्रतिदिन मेरे घरपर आता पीस जाता है और बदलेमें अपनी मजदूरीके पैसे ले जाता है।

इस प्रकार शारीरिक परिश्रम करके किलेन्यिस कुछ आने प्रतिदिन कमाता और उसीसे अपना निर्वाह करता तथा पाठशालकी फीस भी मरता। किलेन्यिसकी इस नेक कमाईकी बात सुनकर हाकिम बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे इतनी सहायता देनी चाही कि जिससे उसको

पढ़नेके लिये मजदूरी करनी न पड़े; परंतु उसने सहायता लेना स्वीकार नहीं किया और कहा कि 'मैं स्वयं परिश्रम करके ही पढ़ना चाहता हूँ। किन्होंने दान लेनेकी मुझे आवश्यकता नहीं है।'

उसके गुरु जीनो महाशयने भी उस खावलम्बी युवककी बातका समर्थन किया और उसके सहायता न लेनेपर प्रसन्नता प्रकट की।

आदर्श दण्ड

फ्रेडरिककी सेनामें एक मनुष्य कभी लेफ्टेनेंट कर्नल के पदपर रहा था। काम न होनेसे उसे अलग कर दिया गया। वह बार-बार फ्रेडरिकके पास आता और उसी पदके लिये उसपर दबाव डालता। फ्रेडरिकने बार-बार उसे समझाया—भैया! अभी कोई जगह खाली नहीं है। परंतु उसने एक भी नहीं सुनी। आखिर फ्रेडरिकने हैरान होकर उन्हे बड़ी कड़ाईके साथ वहाँ आनेके लिये मने कर दिया। कुछ समय बाद किसीने फ्रेडरिकके सम्बन्धमें एक बड़ी कड़ी कविता लिखी। शान्तस्वभाव होनेपर भी फ्रेडरिक इस अपमानको न सह सका। उसने मुनाफ़ी करता दी कि इस कविताके लेखकको पछड़कर जो मेरे सामने हाजिर करेगा उसे पचास सोनेकी मोहरे इनाम दी जायेगी। दूसरे दिन फ्रेडरिकने देखा वही आदमी सामने हाजिर है। फ्रेडरिकने क्रोध और आश्र्वयमें भरकर पूछा, 'तू फिर यहाँ कैसे फृट निकला?' उसने कहा— 'सरकार! आपके विरुद्ध जो कड़ी कविता लिखी गयी थी। उसके लेखकको पकड़ा देनेवालेको आपने पचास सोनेकी मोहरे देनेकी मुनाफ़ी करवायी है न?'

'हाँ हाँ, तो इससे क्या?' फ्रेडरिकने शान्तभावसे पूछा।

'तब तो सरकार! वह इनाम मुझे दिये बिना आपका छुटकारा नहीं।' उसने कहा।

'क्यों?' फ्रेडरिकने सकोचसे पूछा।

'इसलिये सरकार!' कि उस कविताका लिखनेवाला यही आपका सेवक है। आप सरकार! मुझे भले ही दण्ड हें, परंतु क्या मेरे भूजों मरते हुए ही-बच्चोंको अपनी धोयणाके अनुसार इनाम नहीं देंगे मेरे कृपालु स्तम्भी।'

फ्रेडरिक एकदम लाल-पीला हो उठा। तुरंत ही एक कागजके ढुकड़ेपर कुछ लिखकर उसे देते हुए फ्रेडरिकने कहा—'ले इस परवानेको लेकर स्पाष्टो किलेके कमाण्डर-के पास चला जा। वहाँ दूसरोंके साथ कैद करनेका मैंने तुझको दण्ड दिया है।'

'जैसी मर्जी सरकारकी। परंतु उस इनामको न भूलियेगा।'

'अच्छा सुन। कमाण्डरको परवाना देकर उससे ताकीद कर देना कि भोजन करनेसे पहले परवाना पढ़े नहीं। यह मेरी आज्ञा है।' गरीब बेचारा क्या करता, फ्रेडरिककी आजाको अनुसार उसने स्पाष्टोके किलेपर जाकर परवाना वहाँके कमाण्डरको दिया और कह दिया कि भोजनके बाद परवाना पढ़नेकी आज्ञा है।

दोनों खानेको बैठे। वह बेचारा क्या खाता। उसका तो कलेजा कॉप रहा था कि जाने परवानेमें क्या लिखा है। किसी तरह भोजन समाप्त हुआ, तब कमाण्डरने

मना पढ़ा और पढ़ने ही वह प्रसन्न होकर पत्रबहकको बधाइयोंगवार्डको देने लगा। उनमें किंवा या—

‘इन पत्रबहक पुस्तको आजरे मैं न्यायदोके किलेका रमाण्डल नियुक्त करना हूँ। अनप्य इसके नव काम नन्दगार और सारे अधिकार नीनकर तुम पोर्टमैनके किंवा चले जाओ। तुम्हें बहाँकर कमाण्डर बनाया खुशी हुई।’

—मंडू देशी

अन्यायका पेसा

जाने क्यों, सत्राद्यकी नीट एकाज्ञ उड़ गयी। पद्धत्याग परे रहनेवें बढ़ले बाढ़आद् उठाऊ बाहर निकल आया। निम्नव गति थी। पहरेदारे अभी-अभी बाहर के बढ़ रहाएं थे।

पासके बैठकावनमें तेज गेयर्नार्की पका बहिया दिगा जड़ रही थी। सत्राद्यने कौनहल्लव उम और पैर छढ़ाये।

बर्निंग्लॉक टेको बीचमें, अग्रविभागका प्रवान मन्त्री (Revenue Minister) किर्मा गही चिनामें डूबा बैठा गा। सत्राद्यके पैरोंकी शीर्ष आहट सुननेकरी उमें सुख नहीं पाई। सत्राद्यपर अचानक झोट भागी चिरति आ पड़ी हो और उने दूर करनेका उपाय सोच रहा हो—वह इस प्रकार ध्यानमग्न था।

समाद् कुछ देखका यह दृश्य देखता रहा, और मेरे गत्तें जँचे अधिकारियोंमें पैरे परिमी और लगावले पुरुन हैं, यह जानकर उने अभिमान हुआ।

‘क्यों बड़ी चिनामें डूब रहे हो, क्या बात है?’ सत्राद्यने कहा।

मन्त्रिने उत्तर भत्राद्यकर स्वातं किया। अर्ना चिनाका कारण बनाने हुए मन्त्रिने कहा—‘न र्क्षिती अरेका इस वर्ष लगानकी बन्दीके आँकड़े कुछ उग्राह थे। इसलिये मैंने स्वयं ही इसकी जँच करनेका निर्देश किया।

जाना है, इनमें तुमको मी नियेष लाम होगा। उसी बीचमें इस नये कमाण्डरके बाढ़वच्चे मी सोनेकी पत्रास मोहरे लेकर पहुँच रहे हैं।’

पत्रबहक पत्राना सुनकर आनन्दसे उछल पड़ा और पुगने कमाण्डरको भी अगरी इन नवदीर्घ्यमें बड़ी खुशी हुई।

‘इस वर्ष लगान अविक आया है, इसका तो सुने भी पना है, परंतु ऐसा क्यों हुआ, यह मालूम नहीं।’ मन्त्राद्यने यह कहकर आयमन्त्रीकी बातका समर्थन किया।

‘उम काण्डको खोज निकालनेके लिये ही मैं जागरण कर रहा हूँ सुन्कार। सारे बहीदारे उच्छ डाले, कहीं खास परिवर्तन नहीं मालूम हुआ। संवत मी बहुत अच्छा नहीं था। आयमन्त्रीने असुल बात कहनी शुरू की।

‘नो द्विसावम भूल हुई होगी।’

‘द्विसाव भी जँच दिया। ज़ोड़वार्की सब ठीक है।’

‘तब तुम जानो और तुम्हारा काम जाने। लगान तो बढ़ा ही है न? इसमें चिन्ताकी कौन-सी बात है? गत बहुत चर्चा गयी है, अब इस बजेडेको कल्पर रखो।’ मन्त्राद्यने उत्तराका मुँह फेर दिया।

‘आमनी बड़ी है यह ठीक है, परंतु यही तो साम्राज्यके लिये चिन्ताका कारण है। लगानकी कर्मी सही जा सकती हैं, परंतु अन्यमकी अगर पका कौड़ी मी खड़ानेमें आ जाती है तो वह सारे साम्राज्यके अहोन्ये छट्टहटकर निकलती है।’ आयमन्त्रीने अपने उठेगका इनिहास बीरे-बीरे कहना आम्भ किया। ‘सक्तार! यहाँ भी पेसा ही हुआ है। किसानोंके पैदायश नामात्रकी है। गया सब गर्भी बहुत पड़ी थी, इससे गहान्यमुना-जैसी भरी-पूरी नदियोंका जल भी सूख चला था। जल सूख जानेमें किनारेकी जमीन निकल-

आयी थी। इस जमीनमें लोगोंने कुछ बाड़े बनाये और उन्हींके द्वारा सरकारी खजानेमें कुछ धन ज्यादा आया। आमदनी बढ़नेका यही गुप्त रहस्य है।'

'नदियों सूख गयी, जल दूर चला गया और लगान बढ़ा।' मन्त्रीकी चिन्ताने सम्राट्के दिलपर भी चिन्ताका चेप लगा दिया। कुछ देरतक इन्हीं शब्दोंको वह रटता रहा।

'नदीका जल सूखना भी तो एक ईश्वरीय कोप है। इस कोपको सिर लेकर लगानकी मौज उड़ानेवाली बादशाही कबतक टिकी रह सकती है? यह अन्यायका

पैसा है। मेरे खजानेमें ऐसी एक कौड़ी भी नहीं आनी चाहिये।' सम्राट्ने अपनी आङ्गा सुना दी। आयमन्त्रीकी चिन्ता अकारण नहीं थी, सम्राट्को इसका अनुभव हुआ।

'इन गरीब प्रजाका लगान लौटा दो और मेरी ओरसे उनसे कहला दो कि वे रात-दिन गङ्गा-यमुनाको भरी-पूरी रखनेके लिये ही भगवान्‌से प्रार्थना करे। लगानकी बढ़ती नहीं, परतु यह न्यायकी वृत्ति ही इस साम्राज्यकी मूल भित्ति है।' सम्राट्ने जाते-जाते यह कहा। धन्य।

ईश्वरके विधानपर विश्वास

एक अप्रेज अफसर अपनी नवविवाहिता पत्नीके साथ जहाजमें सवार होकर समुद्र-यत्रा कर रहा था। रास्तेमें जोरसे तूफान आया। मुसाफिर घबरा उठे, पर वह अप्रेज जरा भी नहीं घबराया। उसकी नयी पत्नी भी व्याकुल हो गयी थी। उसने पूछा—‘आप निश्चिन्त कैसे बैठे हैं?’ पत्नीकी बात सुनकर पतिने भ्यानसे तलवार खाँचकर धीरेसे पत्नीके सिरपर रख दी और हँसकर पूछा कि ‘तुम डरती हो या नहीं?’ पत्नीने कहा—‘मेरी बातका जवाब न देकर यह क्या खेल कर रहे

है?’ आपके हाथमें तलवार हो और मैं डर्हूँ, यह कैसी बात? आप क्या मेरे बैरी है, आप तो मुझको प्राणोंसे भी अधिक चाहते हैं।’ इसपर अफसरने कहा—‘साधी! जैसे मेरे हाथमें तलवार है वैसे ही भगवान्‌के हाथमें यह तूफान है। जैसे तुम मुझे अपना सुहृद् समझकर नहीं डरती, वैसे ही मैं भी भगवान्‌को अपना परम सुहृद् समझकर नहीं डरता। भगवान्‌का अपने जीवोंपर अगाध प्रेम है, वे वही करेंगे जो वास्तवमें हमारे लिये कल्याणकारी होगा। फिर डर किस बातका?’

दीपक जलाकर देखो तो युद्धके समय एक सैनिकका अनुभव

युद्धके समय अपरिचित देशोंमें मैं एक अनाय शिशुकी तरह अकेले रह रहा था। फिर भी मैं सदा सुखी और स्वस्थ रहा एवं मैंने नित्य अपनेको सुरक्षित पाया।

कुछ दिनों पूर्व, मानो मेरी श्रद्धाको कसौटीपर कसनेके लिये, ठीक मेरे मुँहपर अचानक एक फोड़ा निकल आया। अपने काममें मुझे सदा भरे समाजके

सामने रहना पड़ता था। मैं डरा, घबराया और किंकर्तव्यविमूँह-सा हो गया। सबने सलाह दी कि डाक्टरको अवश्य दिखाना चाहिये। मेरा कोई परिचित डाक्टर नहीं था। एक डाक्टरने, जो हमारे पुस्तकालय और पुस्तकोंकी दूकानके संरक्षक भी थे, इस बढ़ते छुए सूजनभरे फसादको देखा। उन्होंने दूसरे दिन तड़के ही इसे चीर देनेका निश्चय कर लिया।

मैंने अपने किंवाड़ वद कर लिये, अपने रहनेके कमरेमें चला गया और प्रसुको पुकारा। मैंने सच्ची प्रार्थना की। उस प्रार्थनामें मेरे हृदय और आत्माका अमूलपूर्व संयोग था। अपने एकान्त घरमें, प्रसुके साथ निश्छल हृदयसे घटों वाटें करते-करते यक्कर मैं सो गया। या तो मैं स्वप्न देख रहा था, अथवा कोई मुझसे कह रहा था—‘दीपक जलाकर दर्पणमें देखो तो।’ सुननेके साथ ही मैंने अद्भुत ज्ञान्ति, चेननता और सुखका अनुभव किया। एक स्वप्नके व्यापारकी तरह मैं जाग पड़ा। मेरा हाथ

ठीक दीपकपर गया और मैंने उसे जला दिया। जब मैंने दर्पणमें देखा तो मेरा चेहरा पहलेकी तरह चिकना, स्वच्छ और बिल्कुल साफ दिखायी दिया। सारा दोष और रोग छूट्मंतर हो गया था।

फिर तो मैंने अपने प्रार्थनाविटपके इस फलको देखकर भगवान्को न जाने किनना धन्यवाद दिया। प्रात काल जब डाक्टर साहब आये, तब उनको अपनी आँखोंपर विश्वास ही नहीं होता था। मेरे दूसरे मित्रोंकी भी यही ढगा थी।

दया

अमेरिका संयुक्तराज्यके एक प्रेसीडेंट एक बार राजसमामें जा रहे थे। रास्तेमें उन्होंने एक सूअरको कीचड़में धूँसे देखा। सूअर कीचड़से निकलनेके लिये जीतोड़ प्रयत्न कर रहा था, पर वह जितना ही प्रयत्न करता उतना ही अधिक कीचड़में बँसा जाता। सूअरकी यह दयनीय दशा देखकर प्रेसीडेंट साहेबसे नहीं रहा गया। वे अपनी उसी पोगाकसहित कीचड़में कूद पड़े और सूअरको खीचकर बाहर निकाल लाये। समय हो गया था, इसलिये वे उन्हीं कीचड़भरे कपड़ोंको पहने राजसमामें गये। सभाके सदस्य उन्हें इस दजामें देखकर अचरजमें पड़ गये। लोगोंके पूछनेपर उन्होंने सारा हाल

सुनाया। तब लोग उनकी दशालुनाकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। इसपर प्रेसीडेंट साहेबने कहा—‘आपलोग व्यर्थ ही मेरी तरीफ कर रहे हैं। मुझे सूअरपर कोई दया नहीं आयी थी, उसे बुरी तरह कीचड़में फँसे देखकर मुझे दुख हो गया और मैंने अपने दुखको मिटानेके लिये ही उसे बाहर निकाला। इसमें मैंने सूअरकी कोई मलाई नहीं की, अपनी ही मलाई की, क्योंकि उसे बाहर निकालते ही मेरा दुख दूर हो गया।’

असलमे प्राणिमात्रके दुखसे दुखी होकर उन्हें दुखसे छुड़ानेकी चेष्टाका ही तो नाम ‘दया’ है।

अद्भुत त्याग

अठारहवीं शताब्दीके इटली देशके प्रसिद्ध संत अल्फान्सस लियोरी अपने पूर्वाश्रममें बकीलका काम करते थे।

एक समयकी बात है। वे न्यायालयमें वहस कर रहे थे। उनकी वहसकी शैलीसे प्रभावित होकर न्यायालय अपना निर्णय उनके पक्षमेंदेना चाहता था। विरोध पक्षके बकीलने केवल इतना ही कहा कि अल्फान्सस महोदयको अपनी वहसपर एक बार फिर चिचार कर लेना चाहिये। अल्फान्ससको अचानक स्मरण हो आया कि एक ऐसी

नकारात्मक बातकी उन्होंने उपेक्षा कर दी है, जिससे विरोधी पक्षका लाभ हो सकता था, पर न्यायालयने उन्हें विश्वास दिलाया कि यह ऐसी बात नहीं है जिससे निर्णयमें कोई अन्तर आये और उपस्थित लोगोंने उनकी वहसकी बड़ी प्रशसा की।

पर उन्हें तो अपनी भूल खटकती रही। वे न्यायालयके सामने सादर बिनत हो गये।

‘द्वृकी दुनियाँ। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। मैं

तुम्हें समझ गया और तुमसे भर पाया ।' कहते हुए उन्होंने वकालत छोड़ दी, वे अभी नौजवान थे पर उन्होंने जीविकाके

मिथ्या साधनको तिलाङ्गलि देकर आत्माकी खोज आरम्भ की परमात्माके प्रेमराज्यमें प्रवेश करनेके लिये ।

—राठी०

दयालु बादशाह

जर्मनसप्राट् द्वितीय जोसेफ वहुत दयालु हृदयके पुरुषथे । वे अक्सर साधारण कपड़े पहनकर प्रजाकी हालत जाननेके लिये अकेले ही निकल पड़ते । एक बार वे इसी प्रकार गलियोंमें घूम रहे थे कि एक गरीब लड़का उनके सामने आया और बोला, 'महाशय ! कृपा करके मुझे कुछ पैसे दीजिये ।' लड़का सप्राट्को पहचानता नहीं था; परंतु सप्राट्के दयालु चेहरेको देखकर उसको साहस हो गया और उसने पैसोंकी याचना की । लड़के का करुणाभरा मुँह देखकर बादशाहको दया आ गयी । उन्होंने कहा—'वच्चे ! तेरा चेहरा देखनेपर ऐसा लगता है कि दूने थोड़े ही दिनोंसे भीख माँगनी शुरू की है ।'

वच्चेने कहा—'महाशय ! मैंने कभी भीख नहीं माँगी । हमारी स्थिति जब बहुत बिगड़ गयी, तब आज मैं पहले पहल माँगने निकला हूँ । कुछ दिन हुए मेरे पिताजी मर गये । हम दो भाई हैं । हमारे पास कुछ भी नहीं है, जिससे हम अपना पेट भर सकें और न कोई मदद ही करनेवाला है । एक माँ है जो सख्त बीमार है और वेहाल खटियापर पड़ी है ।' यों कहते-कहते लड़केका गला भर आया ।

सप्राट्ने पूछा—तेरी मौकी दवा कौन करता है ?

लड़केने कहा—सरकार ! दवा कौन करता ? हमारे पास दवाके लिये पैसा कहाँ है ? इस दुखसे ही तो मैं आज लाचार होकर भीख माँगने निकला हूँ ।

लड़केकी बात सुनकर सप्राट् जोसेफका हृदय करुणासे भर गया । उन्होंने बालकसे धरका पता पूछकर उसके हाथमें कुछ रूपये देते हुए कहा—'जा, जल्दी

डाक्टरको ले जाकर मौको दिखला ! राहमें कहाँ देर न करना भला ।' बच्चा खुशी होकर डाक्टरको बुलाने दौड़ा ।

इधर बादशाह हँड़ते-हँड़ते उसके घर पहुँचे; उन्हें मालूम हो गया कि उसकी माँकी हालत बहुत खराब है । उन्होंने देखा, वह खटियापर पड़ी है और उसका एक छोटा बच्चा पास बैठा रो रहा है । बादशाहने अपनेको डाक्टर बताकर उससे बीमारीका हाल और कारण पूछा । बादशाहके शब्दोंमें बड़ी मिठास थी और उनमें स्लेह भरा था । यह देखकर उस स्थीने कहा—'महाशय ! मेरे रोगका कारण तो असलमें हमारी यह बुरी हालत है । कुछ दिन पहले मेरे पतिका देहान्त हो गया । जो कुछ पूँजी थी, सब महाजनोंमें दूब गयी । बच्चे अभी बहुत छोटे हैं, मेरे पास ऐसा कोई साधन नहीं, जिससे मैं उनका पेट भर सकूँ । मुझे अपने मरनेकी चिन्ता नहीं है, पर पीछे मेरे अनाथ बच्चोंका क्या होगा । इसी विचारसे मेरा जी जला करता है । मुझे बहुत दुखी देखकर बड़ा लड़का आज मेरी दबाके लिये कहाँ पैसेका प्रबन्ध करने गया है ।'

गरीब मौ-बेटोंकी दुर्दशा देखकर बादशाहने ओँसू-भरी आँखोंसे कहा—'बहिन ! घब्राओ मत । भगवान्की कृपासे तुम जल्दी ही अच्छी हो जाओगी और तुम्हे पैसे भी मिलेंगे । मुझे एक कागजका टुकड़ा दो तो मैं तुम्हारे रोगकी दवा लिख दूँ ।'

घरमें और कागज तो था नहीं, उसने लड़केके पढ़नेकी पोटीका पिछला पन्ना फाड़ दिया ।

बाडगाहने उसपर कुछ लिखकर उने रोगिणीको दे दिया और कहा—‘मैंने इसमें दवा लिख दी है, इसीसे तुम्हारी सारी बीमारी मिट जायगी।’ इतना कहकर वे वहाँने चले गये।

कुछ देरके बाद लड़का डाक्टरको लेकर आया। लड़केने आते ही खुशीके साथ कहा—‘माँ! तू धवग मन, मुझे रुपये भी मिल गये हैं और मैं डाक्टरको भी ले आया हूँ।’ लड़केको प्रसन्न देखकर माँको बड़ी प्रसन्नता छूट और उसकी आँखोंसे हर्षके आँसू निकल पडे। उसने बच्चेका मुँह चूमकर कहा—‘वेद्रा ! प्रभु तुम्हे लड़ी जिंदगी दें। अभी एक डाक्टर आया था, वह कागजपर कोई दवा लिख गया है। डाक्टर बड़ा ही दयालु था वेद्रा !’

उसकी बान सुनकर लड़केके साथ आये हुए डाक्टरने कागज लेकर पढ़ा और उसमें स्वयं समादृ जोसेफके हस्ताक्षर देखकर आश्वयसे कहा—‘अब तेरा सारा संकट गया ही समझ। मेरे पहले जो डाक्टर

आया था, वह कोई मामूली डाक्टर नहीं था। वह जो दवा लिख गया है, वैसी दवा देनेकी मुझमें ताकत नहीं है। उस दवाने तुझे बड़ा लाभ होगा। वहिन। वह स्वयं जर्मनीका बाडगाह दूसरा जोमेक था, और इस कागजपर वह हुक्म लिख गया है कि तुझे खजानेमें बहुत बड़ी संख्यामें रुपये दिये जायँ।’

यह सुनकर उस स्त्री और उसके बच्चोंका हृदय कृनश्चित्तासे भर गया। वे हर्षसे सरावोर हो गये। कुछ भी बोल नहीं सके। जब जवान खुली तव वे गद्‌गद बाणीसे प्रभुमे जोसेफ बादशाहके अच्छे राज्य और दीर्घ जीवनके लिये प्रार्थना करने लगे। उनका रोम-रोम आशीर्वाद देने लगा।

डाक्टरने भी दवा दी और वह स्त्री जल्दी ही अच्छी हो गयी। सब सुखमे रहने लगे। बादशाहकी दयालुता और बच्चेका मातृ-स्नेह—जिसके कारण वह भीख माँगने निकला—जगत्के लिये आदर्श हो गया।

परोपकार और सचाईका फल

दोब्रीवेंकी पढ़ाई समाप्त हो गयी। उसका जन्म-दिवस आया। जन्म-दिनके उपलब्धमें उसके यहाँ बहुत कीमती सौंगतका देर लग गया। उसके पिताने कहा—‘वेद्रा ! तुम्हारी पढ़ाई हो गयी, अब तुम्हें संसारमें जाकर धन कमाना चाहिये। अबतक तुम बहुत अच्छे साहसी, बुद्धिमान् और परिश्रमी विद्यार्थी रहे। इतना बड़ा बन तुम्हारे पास हो गया है। मुझे तुम्हारी योग्यनापर निश्चास है। जाओ और संसारमें फलो-झलो।’

दोब्रीवे प्रसन्न हो रठा। वह अपने माना-पिताको ग्रणाम करके अपने सुन्दर जहाजकी ओर चल दिया।

उसका जहाज समुद्रकी छानीपर लहरोंको चीरता हुआ चला जा रहा था। रास्तेमें एक तुर्की जहाज उनके पते पूछे और उनको वे जिन-जिन देशोंके थे, वहाँ-वहाँ पहुँचा दिया। परंतु एक सुन्दर लड़की और

और चिल्डाना सुनायी दिया। उसने चिल्डाकर तुर्की कसानसे पूछा—‘भाई ! तुम्हारे जहाजमें लोग रो क्यों रहे हैं ? लोग भूखे हैं या बीमार ?’

तुर्क कसानने जवाब दिया—‘नहीं, ये कैदी हैं, इन्हें गुलाम बनाकर हम वेचनेके लिये ले जा रहे हैं।’

दोब्रीवेने कहा—‘हरो, शायद हमलोग आपसमें सौड़ा कर सकें।’

तुर्क कसानने जाकर देखा कि दोब्रीवेका जहाज व्यापारिक सामानोंसे लड़ा है। वह अपना जहाज बदलनेके लिये तैयार हो गया। दोब्रीवे तुर्की जहाज लेकर चल पड़ा। उसने उसपर रहनेवाले सारे कैदियोंने उनके पते पूछे और उनको वे जिन-जिन देशोंके थे, वहाँ-वहाँ पहुँचा दिया। परंतु एक सुन्दर लड़की और

उसके सायवाली एक बुढ़ियाका पता उसे न लग सका । उनका घर बहुत दूर था और रास्ता माछम न था । लड़कीने बतलाया कि ऐसके जारकी पुत्री हूँ और बुढ़िया मेरी दासी है । मेरा घर लौटना कठिन है, इसलिये मैं बिटेशमें ही रहकर अपनी रोटी कमाना चाहती हूँ ।'

दोब्रीवे बोल उठा—‘सुन्दरी ! यदि तुम मुझसे व्याह करो तो तुम्हें किसी बातकी चिन्ता न होगी ।’

लड़की उसके स्वभाव और रूप-रंगसे उसपर मुख्यी, राजी हो गयी ।

जब जहाज उसके घरके सामने बंदरगाहपर लगा तो दोब्रीवेका पिता उससे मिलने आया । उसके बेटेने कहा—‘पिताजी ! मैंने आपके धनका कितना अच्छा उपयोग किया । देखिये, इतने दुखी आदमियोंको मैंने सुखी बनाया और एक इतनी सुन्दर दुलहिन ले आया जिसके सामने सैकड़ों जहाजोंकी कीमत नहींके बराबर है ।’

यह सुनते ही उसके बापका प्रसन्न चेहरा बदल गया । वह ब्रिगड़िकर अपने बेटेको बहुत बुरा-भला कहने लगा ।

कुछ दिनोंके बाद यह समझकर कि लड़का अब कुछ होशियार हो गया, दोब्रीवेके पिताने दूसरा व्यापारी जहाज तैयार करके उसके साथ उसे बिड़ा किया ।

जहाज जैसे ही दूसरे बंदरगाहपर लगा, दोब्रीवे देखता क्या है कि कुछ सियाही गरीब आदमियोंको कैद कर रहे हैं और उनके बाल-बच्चे उन्हें देखकर विलख रहे हैं । पता लगानेपर माछम हुआ कि उनपर राज्यकी ओरसे कोई टैक्स लगाया गया है जिसे वे अदा नहीं कर सकते, इसलिये कैद किये जा रहे हैं । दोब्रीवेने अपने सारे जहाजका सामान बेचकर टैक्स चुका दिया और उन गरीब आदमियोंको कैदसे छुड़ा दिया ।

घर वापस लौटनेपर उसका बाप इतना बिगड़ा कि उसने दोब्रीवे, उसकी ली और बुढ़ियाको अपने घरसे निकाल बाहर किया । परतु अडोस-पड़ोसके लोगोंने उसे किसी प्रकार समझा-बुझाकर शान्त किया ।

तीसरी बार उसके बापने दोब्रीवेसे कहा कि ‘अपनी लीको देखो, अबकी बार तुमने यदि पहले-जैसी मूर्खता की तो याद रखना कि यह आखिरी मौका भी तुमने खो दिया और अब इसको भूखों मरना पड़ेगा ।’

इस बार दोब्रीवे जहाजपर सवार हुआ । वह बहुत दूर देशमें एक बंदरगाहपर पहुँचा । वहाँ उत्तरते ही उसने देखा कि एक राजसी पोशाक पहने हुए कोई पुरुष सामने टहल रहा है और उसकी ओर बड़े ध्यानसे देख रहा है । पास जानेपर उस आदमीने कहा कि ‘आपने जो अँगूठी पहनी है वह मेरी लड़कीकी अँगूठीसे मिलती-जुलती है, आपने इसे कहाँ पाया ? यह अँगूठी रूसके जारकी लड़कीकी है । किनारे चलिये और अपनी कहानी सुनाइये ।’

दोब्रीवेकी बातें सुनकर जार और उसके मन्त्रीको विस्वास हो गया कि जारकी खोयी गयी लड़की दोब्रीवेकी ली है, जार प्रसन्न हो उठा, उसने दोब्रीवेसे कहा कि ‘तुम्हें आधा राज्य दिया जायगा ।’ उसने उसे लड़की-को और दोब्रीवेके माता-पिताको लाने भेज दिया । साथमें भेटके साथ अपने मन्त्रीको भी भेज दिया ।

इस बार दोब्रीवेके बापने उससे कुछ न कहा । उसके घरके सब लोग प्रसन्नतापूर्वक जहाजपर सवार होकर रूसके लिये चल दिये ।

जारका मन्त्री बड़ा डाही था । उसने रस्तेमें मौका पाकर दोब्रीवेको जहाजसे ढकेल दिया । जहाज तेज जा रहा था । दोब्रीवे समुद्रमें किनारे पहुँचनेके लिये जोरसे हाथ-पैर चलाने लगा । भाग्यसे एक पानीकी लहर आयी और उसने उसे समुद्रके किनारे जा लगाया ।

परतु वहाँ पहुँचनेपर उसने देखा कि वह एक वीरान चट्ठान है। दोनीन दिनोंतक उसने किसी तरह अपने प्राण बचाये। चौथे दिन एक मछुआ अपनी नौका लिये उस रास्ते से आ निकला। दोब्रीवेने उसमे अपनी सारी कथा कह सुनायी। वह मछुआ इस गर्त-पर उसे खसके बंदरगाह पर पहुँचानेके लिये राजी हुआ कि 'दोब्रीवेको जो कुछ वहाँ मिलेगा उसका आवा हिस्सा वह उसको देगा।'

मछुएकी नौका उस पार समुद्रके किनारे टारी। दोब्रीवे राजमहलमें पहुँचा। जारके आनन्दका ठिकाना न रहा। दोब्रीवेने उसमे प्रार्थना की कि 'मन्त्रीका अपराध क्षमा किया जाय।' दोब्रीवेकी उदारता देखकर जारने अपना सारा राज्य उमे दे दिया और अपना शेष जीवन शान्तिपूर्वक एकान्तमें भगवान्के भजनमें विताया।

जिस दिन दोब्रीवेके सिरपर राजमुकुट रखा गया,

जीवन-दर्शन

एमरसन अमेरिकाके महान् दर्शनिक और चिचारक थे। वे अपने समयके बहुत बड़े तत्त्वज्ञ थे। उनका सम्पूर्ण जीवन अन्तर्रात्मा-परमात्माके चरणोंपर समर्पित था। वे कहा करते थे कि परमात्मासे ही सम्बन्ध रखना चाहिये। उनके चिन्तनसे जीवन अमृतमय हो उठा है। ससारकी वस्तुएँ नश्वर और क्षणमङ्गुर हैं। उनका विश्वास नहीं करना चाहिये।

एक दिन वे एकान्तमें बैठकर भगवान्का चिन्तन कर रहे थे कि अचानक एक मित्रने उनकी परीक्षा ली। मित्रने अपने-आपको विशेष चिन्तासे संतप्त प्रकट किया।

'कुछ कहेंगे भी कि क्या बात है। तुम्हारी चिन्ता-का कारण मैं भी तो जानूँ।' एमरसन अपने मित्रकी ओर देखने लगे।

उस दिन एक बूढ़ा मछुआ उसके सामने उपस्थित हुआ। उसने कहा—'सरकार! आपने अपना आवा धन मुझे देनेका बचन दिया है।'

दोब्रीवे चाहता तो सियाहीको इगारा करके बूढ़ेको दग्वारसे बाहर निकलता देता। परतु उसने उसका स्वागत किया और कहा—'हाँ, महाशय। पधारिये। राज्यका नकशा देखकर हम आवा-आवा बाँट लें और उसके बाद चलकर खाना भी बाँटें।'

अकस्मात उस बूढ़ेको सफेद बाल सुनहरे हो गये और वह सफेद पोशाकमें बौल उठा—

'दोब्रीवे! जो दयालू है उसके ऊपर भगवान् दया करता है।' और अन्तर्घान हो गया।

देवदूतके इस वाक्यको सामने रखकर दोब्रीवेने बड़ी आन्तिके साथ अपने देशका शासन किया। उसके राज्यमें प्रजा सुख और चैनकी बंडी बजाती रही।

जीवन-दर्शन

'भाई! कुछ मत पूछो। हमलोगोंके भावमें ऐसा ही होना था। क्या आप जानते नहीं हैं कि आज रातको ही सम्पूर्ण ससार कालके गालमें समा जायेगा। प्रलय उपस्थित है।' मित्र विस्मित था।

एमरसनके मनमें आनन्द घिरकर उठा। वे इस समाचारसे बहुत प्रसन्न दीख पड़े।

'मित्र! आपने बड़ी अच्छी बात बतायी। इससे बढ़कर शुभ समाचार दूसरा हो ही क्या सकता है? इस ससारके बिना भी मनुष्य बड़े आराम और सुखसे रह सकता है। इश्वरीय राज्य आयेगा और मनुष्य अपने क्षणमङ्गुर जीवनमें सच्ची शान्ति और वास्तविक सत्य-का अनुभव करेगा।' एमरसनने धन्यवाद दिया, वे निश्चन्त थे। मित्र अपना सामुँह लेकर नौ-दोप्पारह हो गया। —४० श्री०

मृत्युकी खोज

‘ठन्-ठन्-ठन्’, गिर्जाघरकी घटी बजते ही तीनों मित्रोंने अचानक आमोद-प्रमोदसे मन फेर लिया। फलेंडरस जनपदमे किसी व्यक्तिकी मृत्युकी सूचना दी घण्टी-नादने और वे राग-रंग भूलकर शरीरकी नश्वरतापर विचार करने लगे।

‘भाई ! हमलोगोंने आजतक रंगरेलियोंमें अपने अमूल्य जीवनका दुरुपयोग किया। समय बड़ी निर्ममतासे बीतता जा रहा है। हमलोगोंको भी किसी-न-किसी दिन इसी तरह मरना पड़ेगा। हमें मृत्युकी खोजमें लग जाना चाहिये। मनुष्यशरीर अत्यन्त दुर्लभ है।’ एक मित्रका प्रस्ताव था और तीनों मृत्युकी खोजमें निकल पड़े। वे उस गाँवकी ओर चले जिसमें असंख्य प्राणी महामारी आदिसे काल-के गालमें समा रहे थे।

‘हम मृत्युकी खोज कर रहे हैं। उसने हमारे अनेक बन्धु-बान्धवोंका नाश किया है। अनेक शिशुओं-को पितृहीन कर दिया है। असंख्य युवतियोंको वैधव्य प्रदान किया है।’ उन्होंने एक बूढ़े व्यक्तिसे पूछा जो उन्हें गाँवमें प्रवेश करते ही दीख पड़ा। उसके शरीरपर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं, कमर छुकी हुई थी और सिर हिल रहा था।

‘मृत्युकी खोज बहुत ही कठिन है। तुम उसके पीछे पड़कर अपनी जान क्यों दे रहे हो। वह बड़ी स्वार्थी, कठोर और भयकर है। यदि तुम उसे देखना ही चाहते हो तो मैंने उसको पेड़के नीचे छोड़ दिया है। सावधान ! है वह बड़ी त्रिकराल।’ बूढ़ेने योड़ी दूरपर स्थित

एक जगली पेड़की ओर सकेत किया। वे दौड़ पड़े।

‘हमलोग कितने भाग्यवान् हैं। देखो न, बूढ़ेने हमे कितना धोखा दिया। इस पेड़के नीचे तो अपार स्वर्ण-राशि है जिससे हमलोग कई वर्षोंतक आमोद-प्रमोदसे जीवन बिता सकते हैं।’ सबसे छोटे मित्रने प्रस्ताव किया कि रात होते ही इसे घर ले चलना चाहिये; दिनमे कोई देख लेगा तो प्राण चले जायँगे। तीनोंकी सम्मतिसे सबसे छोटेको ही भोजनकी सामग्री लाने-के लिये बाजार जाना पड़ा।

× × × ×

‘हम दोनों अकेले ही इस धनको आपसमें बॉट लें तो हमारा जीवन विशेषरूपसे सुखमय हो जायगा।’ दोनोंने राय की और छोटेके आते ही उसे कटारसे मार डालनेका निश्चय किया।

इधर छोटे मित्रके मनमें भी धनका लोभ पैदा हुआ। उसने भोज्य और पेय पदार्थमें विष मिला दिया था उन दोनोंकी जीवन-लीला समाप्त कर देनेके लिये।

छोटे मित्रका बाजारसे लौटना था कि धनके लोभ-से अधे होकर दोनोंने उसका प्राणान्त कर डाला। पीठमें कटार भोक्कर और भोज्य और पेय पदार्थोंको प्रहण कर आनन्दसे आमोद मनाने लगे। धीरे-धीरे विषका प्रभाव बढ़ता गया और थोड़ी देरमें उन दोनोंने भी सदा-के लिये आँखें मूँद लीं। चले थे तीनों मृत्युका नाश करने और नष्ट हो गये स्वयं।

‘मृत्युका दर्शन जंगली वृक्षके नीचे होगा।’—बूढ़ेकी यह बात वातावरणमे परिव्याप्त थी।—रा० श्री०

लड़का गाता रहा

हाइटहेवनमें वेलिंगटन नामक एक कोयलेकी खान थी। उसके निकट ही दोन्हीन झोपड़ियाँ थीं।

एक झोपड़ीमें अपनी मॉ और दो बहिनोंके साथ एक दशवर्षीय लड़का रहता था।

एक दिन अचानक बड़ी दीवार गिर पड़ी और उसके नीचे पूरा-का-पूरा परिवार ढब गया। मजदूर और खानमें कान करनेवाले लोग धटना-स्थलपर पहुँच गये। जिसी दीवारके नीचे एक मधुर छनि ऊपर उठी-सी उत्तारी पड़ी।

'गाने रहो, गवर्ट कार्डन ! गाने रहो !' मजदूरोंने चिन्ह दीवार तथा अन्य सामानोंको हड्डना आरम्भ किया

और थोड़ी देरमें सारा-का-सारा कूड़ा सफ हो गया।

कार्डनकी माँ और एक वहिनी कालके मुखमें जा उक्की थी। दूसरी वहिनी थोड़ी चोट आयी थी और उसीको प्रसन्न रखने तथा मजदूरोंको प्रोत्साहित करने-के लिये ही मृत्युकी गोड़में पड़ा अन्यवयस्क कार्डन बड़ी तन्मयनामे गाना रहा। उसीकी सद्वृत्तिने वहिनीके प्राणोंकी रक्षा की।—ग० श्री०

महल नहीं, धर्मशाला

महाराज जीनूतकेतुके ऐवर्यका पार नहीं था। उन्होंने देवराज इन्द्रकी उपसना करके कल्पवृक्ष प्राप्त किया था। उनका राजभवन इन्होंने भव्य था कि देवना भी उने देवकर मुग्ध हो उठे थे। एक धार्मिक नदेश सांसारिक वैभवमें ही आसक्त रहे और मनुष्य-जीवन व्यर्थ व्यर्थान छर दे, यह योग्य कार्य नहीं है। वर्मकर सच्चा फल तो भोगोंमें लिया तथा मोक्षका प्राप्ति ही है। मग्नान् दत्तात्रेयको दृष्टि आ गयी राजा जीनूतकेतुर। वे मठिन वन्द पहिने, कैंगा विञ्चराये, धूतिधूसर अवघूत वेशमें थाये और गजभवनमें राजोंके पलगमर ही जा दिये।

राजमेवक ढे, किंतु आगत आग्नुक लो कि एक पान्छ जान पड़ना था, उसके मुखका तेज कुछ घेसा था कि कोई सेवक उने रोकते था हवनेका साहस नहीं कर सका। अपनी वन्यामर एक उन्मत्त मिथारिको बैठे देवकर राजा जीनूतकेतु को ग्रस्ये लाल हो उठे। वे उसके पास आकर बोले—'तू कौन है ? यहाँ राज-भवनमें क्यों घुस आया ? निकल यहाँसे !'

अवघूत दत्तात्रेय बड़ी तिक्खित्तनामे बोले—'भाई !

अप्रसन्न क्यों होने हो ? यह तो धर्मशाला है। तुम भी इसमें छ्वरो, मैं मी छ्वरता हूँ !'

'यह मेरा राजभवन है, धर्मशाला नहीं। समझे ! चलो, बाहर जाओ !' राजाने दौँद।

अवघूत—'तो इसमें सड़ासे—हजार दो हजार वर्षसे तुम्ही हो !'

राजा—'कैसा पान्छ है, मुझे तो जन्म लिये अभी पचास वर्ष हुए !'

अवघूत—'उससे पहले इसमें कौन था ?'

राजा—'मेरे पूज्य मिता !'

अवघूत—'वे कहाँ गये ? कब लौटेंगे ?'

राजा—'उनका वरीरान्त हो गया। वे अब कभी नहीं लौटेंगे !'

अवघूतने इसी प्रकार कई बार पूछा और राजाने बताया कि मिलासे पूर्व मिलामह, उनमें पूर्व प्रमिलामह उस भवनमें रहते थे। अवघूत हँसे और बोले—'भले आइमी ! जहाँ मनुष्य आकर कुछ काल ठहरकर चला जाय, फिर न लौटे वह धर्मशाला नहीं, तो है क्या ?'

दानका फल

जर्मीके दिन थे, धूप तेज थी, पृथ्वी जल रही थी। महाराज मोजके राजकानि किसी आक्रमक कार्यको सम्बन्ध करके नगरकी और लौट रहे थे। मार्गमें उद्धोने

देखा कि एक दुर्वल मनुष्य नगे पैर लड्डाता हुआ चल रहा है। उसके पैरोंमें सम्भव छाले पड़ गये हैं। वार-वार दीर्घ बास लेता है, दौड़नेका प्रयत्न करता है,

किंतु अपनी दुर्बलताके कारण भाग नहीं पाता । कविके सुकुमार हृदयसे यह देखा नहीं गया । आज वे भी पैदल ही थे । परतु उस पुरुषके पास जोकर उन्होंने अपने जूते उतार दिये, और बोले—‘भाई ! तुम इन्हें पहिन लो ।’

‘कभी नगे पैर चलनेका अभ्यास नहीं, कोमल चरण और सतस भूमि—कविको तो लगा कि वे मार्गमें ही मूर्छित होकर गिर पड़ेंगे । उनके पैरोंमें शीघ्र ही छाले पड़ गये । परतु वे प्रसन्न थे एक दुखी प्राणीकी सेवा करके । इसी समय राजाके हाथीको महावत उधरसे ले आ रहा था । राजकविको, पहिचानता तो वह था ही, उसने उन्हे हाथीकी पीठपर बैठा लिया । सयोग

ऐसा हुआ कि राजा भोज नगरमें निकले थे उस दोपहरीमें ही । नगरमें प्रवेश करते ही कवि और नरेशकी भैट हो गयी । नरेशने हँसीमें ही पूछा—‘आपको यह हाथी कहाँ मिल गया ?’ कविने उत्तर दिया—

उपानहं मया दत्तं जीर्णं कर्णविवर्जितम् ।

तत्पुण्येन गजारुद्धो न दत्तं वैहि तद्रतम् ॥

‘राजन् । मैंने अपना पुराना, कर्णरहित (फटा) जूता दान कर दिया, इस पुण्यसे इस समय हाथीपर बैठा हूँ । जिस द्रव्यको दान नहीं हुआ, वह तो व्यर्थ नष्ट हुआ ।’

उदार नरेशने वह हाथी कविको ही दे दिया ।

एकान्त कहीं नहीं

दक्षिण भारतके प्रतिष्ठित संत स्वामी वादिराजजीके अनेकों शिष्य थे; किंतु स्वामीजी अपने अन्त्यज शिष्य कनकदासपर अधिक स्वेच्छा रखते थे । उच्चरणके शिष्योंको यह बात खटकती थी—‘कनकदास सच्चा भक्त है’ यह गुरुदेवकी बात शिष्योंके हृदयमें बैठती नहीं थी ।

स्वामी वादिराजजीने एक दिन अपने सभी शिष्योंको एक-एक केला देकर कहा—‘आज एकादशी है । लोगोंके सामने फल खानेसे भी आदर्शके प्रति समाजमें

अश्रद्धा बढ़ती है । इसलिये जहाँ कोई न देखे, ऐसे स्थानमें जाकर इसे खालो ।

थोड़ी देरमें सब शिष्य केले खाकर गुरुके समीप आ गये । केवल कनकदासके हाथमें केलां ज्यो-का-त्यों रखखा था । गुरुने पूछा—‘क्यों कनकदास ! तुम्हें कहीं एकान्त नहीं मिला ?’

कनकदासने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—‘भगवन् ! वासुदेव प्रभु तो सर्वत्र है, फिर एकान्त कहीं कैसे मिलेगा ।’

उदार स्वामी

गुजरातके धोलनगरके नरेश वीरधवल एक दिन भोजन करके पलापर लेटे थे, और उनका सेवक राजाके पैर दबा रहा था । राजाने नेत्र बद कर लिये थे । उन्हें निर्दित समझकर सेवकने उनके पैरकी अँगूठीसे रक्तजटित अँगूठी निकालकर मुखमें छिपा ली ।

नरेशने अँगूठीकी कोई चर्चा नहीं की । उन्होंने वैसी ही दूसरी अँगूठी पहिन ली । दूसरे दिन, पैर दबाते समय सेवकने फिर अँगूठी निकाली तो राजा बोले—

‘अब यह अँगूठी तो रहने दो । कल जो अँगूठी तुमने ली है, वह तो मैं तुम्हे दे चुका ।’

सेवक राजाके पैरेपर गिर पड़ा । उदार नरेश बोले—‘डरो मत ! दोप मेरा ही है । थोड़े बेतनसे तुम्हारी आवश्यकता पूरी नहीं होती, इसलिये तुम चोरी करनेपर विवश हुए हो । मुझे तुम्हारी आवश्यकताको पहले समझ लेना चाहिये था । आजसे तुम्हारा बेतन दुंगुना किया गया ।’

विषयोंमें दुर्गन्ध

कोई भक्त राजा एक महात्माकी पर्णकुटीपर जाया करते थे। उन्होंने एक बार महात्माको अपने महलोंमें पश्चानेके ट्रिये कहा, पर महात्माने यह कहकर टाल डिया कि 'मुझे तुम्हारे महलमें वडी दुर्गन्ध आती है, इसनिये मैं नहीं जाता।' राजाको बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने मन-ही-मन सोचा—'महलमें तो डत्र-फुलेल छिड़का रहता है, वहाँ दुर्गन्धका क्या काम। महात्माजी कैने कहते हैं पता नहीं।' गजाने सकोचसे फिर कुछ नहीं कहा। एक दिन महात्माजी राजाको साथ लेकर घूमने निकले। घूमते-गमते चमारोंकी वस्तीमें पहुँच गये और वहाँ एक पीपलकी छायामें खड़े हो गये। चमारोंके घरोंमें कहीं चमड़ा कमाया जा रहा था, कहीं सूख रहा था तो कहीं ताजा चमड़ा तैयार किया जा रहा था। हर घरमें चमड़ा था और उसमेंसे वडी दुर्गन्ध आ रही थी। हवा भी डबरकी ही थी। दुर्गन्धके मारे राजाकी नाक फटने लगी। उन्होंने महात्मासे कहा—'भगवन्। दुर्गन्धके मारे खड़ा नहीं रहा

जाता—जल्दी चलिये।' महात्माजी बोले—'तुम्हारी दुर्गन्ध आती है? देखो चमारोंके घरोंकी ओर—कितने पुरुष, बिंदी और बाल-बच्चे हैं। कोई काम कर रहे हैं, कोई खाती रहे हैं, सब हँस-खेल रहे हैं। किसीको तो दुर्गन्ध नहीं आती, फिर तुम्हारीको क्यों आने लगी?' राजाने कहा—'भगवन्! चमड़ा कमाते-कमाते तथा चमड़ेमें रहते-रहते इनका अभ्यास हो गया है। इनकी नाक ही ऐसी हो गयी है कि इन्हें चमड़ेकी दुर्गन्ध नहीं आती। पर मैं तो इसका अभ्यासी नहीं हूँ। जल्दी चलिये—अब तो एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहरा जाता।' महात्माने हँसकर कहा—'भाई! यही हाल तुम्हारे राजमहलका भी है। विषय-भोगोंमें रहते-रहते तुम्हें उनमें दुर्गन्ध नहीं आती—तुम्हारा अभ्यास हो गया है। पर मुझको तो विषय देखते ही उल्टी-सी आती है। इसीमें मैं तुम्हारे घर नहीं जाता था।'

राजाने रहस्य समझ लिया। महात्मा हँसकर राजा-को साथ लिये वहाँसे चल दिये।

रुपया मिला और भजन छूटा

एक धनवान् सेठकी कोठीके नीचे ही एक मोची बैठा करता था। वह जूते बनाता जाता था और भजन गाता जाता था। सेठ उदार थे, धर्मात्मा थे, भगवद्-भक्त थे। वैने तो अपने कार्य-न्यापारमें व्यस्त होनेके कारण मोचीकी ओर उनका ध्यान काहेको जाता, किंतु वे एक बार ब्रीमार पड़ गये। रोग-शब्दापर पड़े-पड़े मोचीके द्वारा गाये जाते भजन उन्हें बड़े प्रिय लगे। उन भजनोंको सुनकर मन भगवान्-में लगा रहा। चित शरीरके रोगका चिन्तन न करके दूसरी ओर लगा रहे तो रोगके कष्टका बोध ही नहीं होता। सेठीको भी मोचीके भजनोंके कारण कष्ट नहीं हुआ। इसमें प्रमन्न-होकर उन्होंने मोचीको बुलवाया और उसे पचास

रुपये दिये।

रुपये लेकर मोची गया और उसका भजन गाना बढ़ हो गया। दूसरे दिन सबेरे वह मोची सब्य सेठीके पास पहुँचा। नेठीने पूछा—'तुमने भजन गाना क्यों बढ़ कर दिया?'

मोची बोला—'इसीलिये तो मैं आपके पास आया हूँ। कृपा करके अपने ये रुपये ले लीजिये। स्पष्ट मिले और भजन छूटा। मैं इन्हें सम्बालकर रखनेतेरा यह सोचनेमें व्यस्त हो गया कि इनका कैसे उपयोग कहँगा। गत्रिमे इनकी चिन्ताके मारे नींद भी ठीक नहीं आयी। मैं-परिश्रम करके-जो पाता हूँ, वही मेरे लिये बहुत है।'

धनका परिणाम—हिंसा

दो सगे भाई थे, ब्राह्मण थे और दण्डि थे। वहुन कम पढ़े-लिखे थे तोनो। कगालीसे उत्तर कर दोनों साथ ही घरसे निकले और समुद्र-किनारेकी एक वस्तीमें पहुँचे। वहाँ मछुओंके घर ही अधिक थे। बड़ी ऊँची पगड़ी, भव्य तिलक और पोशियोकी बड़ी-बड़ी गठरी थी दोनों भाइयोंके पास। दोनोंने अपनेको ज्योतिषी प्रसिद्ध कर रखा था। मन्त्र-तन्त्र, झाड़-झाँक सभी करते थे वे। दोनोंने उन अपढ़-सीधे, श्रद्धालु मछुओंको भरपूर ठगा। कुछ दिनोंमें ही उनके पास पर्याप्त धन हो गया। दोनों जब घर लौटने लगे, तब उनके पास उनके कमाये धनके रूपमें सोनेकी मोहरोंसे भरी थैली थी।

बड़ी त्रिचित्र दउ थी। मोहरोंकी थैलीको वारी-वारी-से वे अपने पास रखते थे। परतु जिसके पास थैली रहती थी, उसीके मनमें विचार आता था—‘मैं यदि अपने मार्डको मार डालूँ तो पूरा धन मेरा हो जाय।’

दोनों सगे भाई थे। दोनोंमें प्रगाढ़ प्रेम था। इसलिये दोमेसे किसीने अपने पापपूर्ण त्रिचारको कार्य-रूप नहीं दिया। उलटे घरके समीप पहुँचकर जिसके पास थैली नहीं थी, उसने दूसरेसे कहा—‘भैया। क्षमा करना। जब-जब यह थैली मेरे पास आयी, तब-तब मेरे मनमें तुम्हे मार देनेकी इच्छा हुई। इसलिये यह धन तुम्हीं रखो।’

दूसरे भाईने कहा—‘मेरी भी यही दशा है। थैली मेरे पास है, इसलिये इस समय भी मेरे मनमें यही विचार उठ रहे थे। हम दोनों ही भ्रातुत्वका नाश

करनेवाले इस धनका त्याग कर दे, यही उत्तम होगा।’

घरके समीप ही एक गहूँ था, जिसमें घरका कूड़ा-कच्चग ढाला जाता था। दोनोंने वह थैली उसीमें फेंक दी। यह भी चिन्ना नहीं की कि उसे ढक दिया जाय। वे उसे फेंककर घर चले गये। परंतु उनकी बहिन थोड़ी देरमें ही फल तथा शाकके छिल्के उस गहूँमें ढालने आयी। थैली लुढ़की पड़ी थी। मोहरों कुछ बाहर गिरी दीख रही थीं। उस नारीने उस बनको उठाकर वस्त्रोंमें छिपाना प्रारम्भ किया, जिससे रात्रिमें अपने पतिके पास उसे भेज सके।

‘आप कूड़ेके गहूँमें क्या कर रही है?’ दो भाइयोंमें एककी ली किसी कामसे घरमें बाहर निकली और अपनी ननदको कूड़ेके गहूँमें कुछ करते देख उसके पास पहुँचकर पूछने ली। ननदने समझा कि भाभीने मोहरों देख ली है। हाथमें फल काटनेकी छुरी थी ही, उसे उसने भाभीके पेटमें भोक दिया।

छुरी लगनेसे एक चीकार की धायल लीने। उस चीकारको सुनकर उसका पनि दौड़ आया। बहिन बवराकर भागने लगी तो उसकी बगलमें दबी थैली नीचे गिर पड़ी। अब बहिनको और कुछ नहीं सूझा, उसने वह छुरी अपने पेटमें भी मार ली।

‘भैया! पापसे कमाये इस धनने फेंक देनेपर भी इतना अनर्थ किया।’ दूसरा भाई भी दौड़ आया था। जो पहले आया था, वह सिर पकड़कर बैठ गया था वहाँ। —सु० सिं०

डाइन खा गयी

दो भाई राजपूत जवान ऊँटपर चढ़कर कमाईके लिये परदेश जा रहे थे। उन्हे दूरमें ही एक साधु ढौड़ना सामने आता दिखायी दिया। पास आते-आते

उसने कहा—‘भाइयो! आगे मत जाना, बड़ी भयावनी डाइन वैठी है। पास जाओगे तो खा ही जायगी।’ राजपूत सवारोंने साधुसे ठहरनेको कहकर उससे इसका

स्थानीकरण कराना चाहा, पर वह तो दौड़ता ही चला गया। ठहरा नहीं।

उसके चले जानेपर राजपूत भाईयोने विचार किया कि 'साधु निहत्या है, डर गया है। हमारी जानान उत्त्र है, शरीरमें काफी बल है, बदूक-तलवार हमारे पास है। डाइन हमारा क्या कर लेगा।' फिर, डरना तो कायरोंका काम है। हम तो वहादुर राजपूत हैं।' यो विचारकर वे आगे चल दिये। कुछ दूर जानेपर उन्हें एक जगह सोनेकी मोहरोंकी थैलियाँ पड़ी दिखायी दीं। वे ठहर गये, ऊंटसे उतरकर देखा तो सचमुच सोनेकी मोहरें हैं और गिनेपर पूरा दस हजार मोहरें हुईं। उन्होंने कहा—'बड़ा चालाक था वह साधु। वह जरूर कोई सवारी लाने गया है। हमलोगोंको डाइनका डर दिखाकर वह चाहना था कि ये उधर न जायें तो सवारी लाकर मैं मोहरोंको ले जाऊँ। बड़ा अच्छा हुआ जो हमलोग उसके बोखेमें नहीं आये और निढ़र होकर यहोंतक पहुँच गये।' दोनों बहुत प्रसन्न थे। अब कहीं परदेश जानेकी आवश्यकता रही ही नहीं। बिना ही कुछ किये तकड़ीर खुल गयी। सोचा—दिनभरके भ्रमें हैं—कुछ खायी ले तो फिर घर लौटे। बड़े भाईने कहा—'गोव ज्यादा दूर नहीं है, जाकर खानेके लिये हल्ला-पूरी ले आओ तो खा लें।' छोटा भाई हल्ला-पूरी लाने चला गया।

इधर दस हजार मोहरें देखकर बड़े भाईका मन ललचाया। विचार आया—'हाय! इनका आधा हिस्सा हो जायगा। डसकी जगह पाँच हजार ही मुझे मिलेंगी। क्या मुझे सब नहीं मिल सकतीं।' लोभ यापका बाप है। लोभने बुद्धि बिगड़ दी। तत्काल निश्चय कर लिया। मिल क्यों नहीं सकतीं। अब तो अवश्य ये दसों हजार मोहरें मेरी ही होंगी। बदूक भरकर रख लैँ। वह मिठाई लेकर लौटना ही होगा। बस, सामने आते ही गोली दाग दूँगा। वह मर ही

जायगा। कौन देखता है यहाँ। यहीं कहीं गढ़ा खोदकर लाश गाड़ दूँगा। बस, फिर सारी मोहरें मेरी हो ही जायेंगी। घर जाकर कह दिया जायगा—भाई हैंजेसे मर गया। विचारके अनुसार ही काम हुआ। बदूक तैयार कर ली गयी।

उधर छोटे भाईके मनमें भी लोभ जागा। उसने भी दस हजार मोहरे पूरी मिलनेकी बात सोची। उसकी भी बुद्धि बिगड़ी। उसने निश्चय करके सखिया खरीदा और उसका चूर्ण करके हल्लेमें मिला दिया। सोचा—'मैं जाकर कहूँगा—मैथा।' तुम पहले खा लो। मैं अभी यका हूँ, पीछे खाऊँगा। वह खा ही लेगा और खाते ही काम तमाम हो जायगा। बस, यों सहज ही सारी मोहरें मेरी हो जायेंगी, फिर उसकी लाशको गाड़कर घर चला जाऊँगा।'

इसने यही किया। हल्ला-पूरी लेकर ज्यों ही पहुँचा कि दनादन दोनों गोलियाँ लगीं। धड़ामसे गिर पड़ा। प्राण-घरेलू तत्काल उड़ गये। अब तो बड़े भाईके आनन्दका पार नहीं रहा। मनुष्य जब पाप करके सफल होता है, तब वह उसका परिणाम भूलकर प्रमत्त हो जाता है। सफलताके आनन्दमें वह मस्त हो गया, मनमें आया कि 'पहले हल्ला-पूरी खा लैं, पीछे लग गाडनेका काम करूँगा।'

हल्ला खाया। उसमें तीव्र विष था ही, खाते ही चक्कर आने लगे और वह कुछ ही क्षणोंमें बहीं ढेर होकर गिर पड़ा। भागवतमें ब्राह्मणने कहा है—'इस अर्थ नामधारी अनर्थसे दूर ही रहना चाहिये।' इसमें पढ़ह अनर्थ पैड़ होते हैं—चोरी, हिंसा, असत्य, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहकार, भेद-बुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्फटता, जूआ और ग्राव। बड़े प्यारे सम्बन्धी भाई-ब्रन्धु, ली-पुत्र, माना-पिता आदिके मन भी एक-एक कोडीको लेकर फट जाते हैं और थोड़ेसे बनके लिये वे क्षुब्ध और क्रोधित

होकर सारे सौहार्द—प्रेमको भूलकर एक दूसरेका राजपूत भाइयोंको धनमङ्गली डाइनने ब्रात-की-ब्रातमें प्राण लेनेपर उतारू हो जाने हैं।' यही यहाँ भी हुआ। खा लिया।

यह वत्सलता !

लड़नके साउशवार्काली गलियोंमें गरीबोंकी वस्ती थी। उसमें मजदूरों और श्रमिकोंके लिये छोटे-छोटे मकान बने हुए थे। दिनभर कारखानोंमें मजदूरी कर वे रातको इन्हीं गरीब गलियोंमें विश्राम करते थे।

एक दिन यह निश्चय किया गया कि हृदी मनाने तथा मनव्रहलायके लिये छोटे-छोटे बच्चोंको देहाती क्षेत्रमें भेजा जाय। इस निश्चयके अनुसार बच्चोंको गाड़ीमें बैठा दिया गया। बच्चोंके गरीब माता-पिता गाड़ी छूटनेके समय उन्हें देखने आये थे। प्लेटफार्मपर बड़ी भीड़ थी; गरीबोंकी भीड़ ऐसी लगती थी मानो दरिद्रताने चलता-फिरता रूप धारण कर लिया हो।

बच्चोंके लिये खाने-पीनेके सामान गाड़ीमें रखे जा रहे थे। विस्तरे बिछाये जा रहे थे। मॉ-वाप अपने-अपने बच्चोंको जलपान आदिके लिये पैसे दे रहे थे। सब-केसब प्रसन्न थे। अचानक उन महिलाओंमें से किसी एककी दृष्टि छोटी-सी कोमल बच्चीपर पड़ी जो उडास थी, जिसके चेहरेपर दरिद्रताकी रेखाएँ अङ्कित थीं और ओर्खोंमें दुखके काले-काले बादल थे। बच्ची देखनेमें बड़ी प्यारी लगती थी। वह महिला उस बच्चीके पास गयी जो गाड़ीमें एक किनारेपर दुवकी-सी बैठी हुई थी।

'बेटी ! तुम्हारे मॉ-वाप कहाँ हैं ? वे यहाँतक पहुँचाने क्यों न आ सके ? तुम्हारे वहन-भाई आदि कहाँ हैं ?' महिलाने अपने हृदयकी वत्सलता—ममता

डॉले दी। बच्चीकी ओरोंमें अश्रुकण थे, वह कुछ न बोल सकी। उसके पास जलपान आदिके लिये पैसे भी नहीं थे। पता लगानेपर महिलाको यह बत विदित हो सकी कि उसका पिता मर चुका है। परिवारमें केवल मॉ है जो मजदूरी करके पेट पालती है; वह इसलिये उसे पहुँचाने नहीं आ सकी कि भय या कहीं मजदूरीके पैसे न कट जायें। महिलाका हृदय भर आया। वह करणाका बैग समेटकर लोगोंके देखते-देखते किसी ओर चली गयी।

थोड़ी देरमें गाड़ीने सीटी दी। वह खुलनेवाली ही थी कि महिला प्लेटफार्मपर आ पहुँची।

'जल्दी कीजिये !' गाड़ने सावधान किया।

महिलाने बच्चीको मिठाईकी एक टिकिया दी और उसके हाथमें कुछ पैसे रखकर स्नेहभरी दृष्टिसे देखा। बच्चीका कुछलाया चेहरा खिल उठा; उसके लाल-लाल ओरोंकी लालिमा बढ़ गयी।

कौन जानता था कि छोटी बच्चीकी मुसकराहटके लिये उस गरीब महिलाने, जिसके शरीरका अलकार काली ओढ़नी और शालके सित्रा और कुछ भी नहीं था, अपनी शाल बेच दी होगी।

गाड़ी चल पड़ी और महिला वत्सलताकी सजीव मूर्ति-सी प्लेटफार्मपर खड़ी होकर खिडकीसे झाँकती बच्चीको ही देखती रही।—रा० थी०

वह अपने प्राणपर खेल गयी

इंडिय कवेल एक अग्रेज परिचारिका थी । वह प्रथम महायुद्धके समय घायलोंकी सेवा-गुश्रूषा करनेके लिये वेलजियम गयी हुई थी । वह शत्रु-मित्र सबकी समान रूपसे सेवा करती थी । पश्चि वाँधते समय इस ब्रातका उसे तनिक भी विचार नहीं रहता था कि वह शत्रु-सैनिकका उपचार कर रही है या अपने पक्षके शीरोंकी सेवा कर रही है ।

उमे इस ब्रातसे धृणा अवश्य थी कि जर्मन सैनिक वेलजियमके नागरिकोंको अपने देशके प्रिलद्ध काम करनेके लिये विविध करें । जर्मन विजेताओंद्वारा नागरिकोंको दास बनाया जाना उसके लिये सर्वथा असहा था । ऐसी स्थितिमें वह सत्रस्त लोगोंको अपने शिविरमें शरण देती थी और उन्हें हालैड या फान्स भाग जानेके लिये प्रोत्साहन और सहायता देती थी ।

एक दिन जर्मन सैनिकोंने उसको ऐसा करते देख लिया । वह बदी बना ली गयी । दोनों ओरकी सेनाओंमें हाहाकार मच गया । उसके मृत्यु-दण्डकी वेष्यणा की गयी ।

अनेक देशोंके राजदूतोंने मानवता और अन्तारांत्रिय नैतिकताके नामपर इस दण्डका विरोध किया, पर जर्मन-न्यायालयने उनके कथनकी उपेक्षा कर दी ।

× × × ×

‘मुझे तुमलोग कहाँ ले आये ?’ कवेलने अँधेरी रातमें जर्मन-सैनिकसे पूछा । वह निश्चिन्त और सख्त थी ।

‘मृत्युके उपरामें’—उत्तर था । कवेलने अपने-आपको एक रमणीय उपन्नमें पाया ।

ईश्वर और सत्य साक्षी हैं कि केवल देशभक्ति ही मनुष्यके लिये पर्याप्त नहीं है । देशभक्तिका अर्थ यह नहीं है कि अपने देशकी सम्मान-वृद्धिके लिये दूसरे देशके नागरिकोंको सताया जाय । किसी भी प्राणीके प्रति भेरे मनमें धृणा और कदुताका माव नहीं है ।’ परिचारिका कवेलका इतना कहना था कि शत्रुके पिस्तौलने उसके जीवनका अन्त कर दिया । इंडिय कवेलने पवित्र परिचारिका—सेवावृत्तिके परिणाम-स्वरूप स्वर्गकी यात्रा की ।—रा० श्री०

मनुष्यका गर्व व्यर्थ है

इंगलैंडके इंजिनियरोंने वर्षों सरतोड परिश्रम किया था । सैकड़ों मजदूर लंबे समयतक काम करते रहे थे । प्रसिद्ध जलयान टिटैनिक जिस दिन जलमे उत्तरा गया, स्वयं इंगलैंडके बाढ़जाह वहाँ उपस्थित थे । इतना विग्राल, इतना भव्य और इतना सुदृढ़ जलयान कि विश्वमें किसीने कल्पना न की हो । एक पूरे नगर जितना विस्तृत था वह । उसमें विश्राम, भोजन आदिके स्थान तो थे ही, उद्धान थे, क्रीड़ामन्द थे । फुटबॉलका मैदान था । ऐसी कोई सुविधा उसमें अप्राप्य नहीं थी जो इंगलैंडके नागरिकों पृथ्वीपर किसी नगरमें मिल सकती थी । निर्माताओंने बार-बार

धोषणा की थी—‘टिटैनिकको कोई तृफान तोड नहीं सकता । टिटैनिक अमेद है ।’

विशेषज्ञोंने इस धोषणाका समर्थन किया था । समूचे इंगलैंडका मस्तक गर्वसे ऊँचा हो गया था । टिटैनिक जलमें उत्तरा और अमेरिकाकी यात्रापर निकला । इंगलैंडके प्रख्यात पुरुष उसमें थे । लार्ड किचनर भी उसीमें थे । वहुतसे पर्लियामैटके सदस्य, लार्ड-सभाके सदस्य, विख्यात पत्रकार तथा दूसरे प्रसिद्ध पुरुषोंको उनके परिवारके साथ लेकर टिटैनिकने अपनी पहिली यात्रा प्रारम्भ की ।

अनन्त समुद्रके वक्ष स्थलपर गर्वसे टिटैनिक चला

ना रहा था। आज विश्वने देखा कि मानव क्या कुछ कर सकता है। विश्वाल टिटैनिक—उसके यात्री अपने आमोइ-ग्रमोइमें निमग्न थे। बेतारके तारसे सूचना मिली—‘सावधान रहना चाहिये।’

विश्वान पत्र ‘रिव्यू ऑफ रिव्यू’ के स्वामी मिं० स्टेड भी उसी यानमें थे। सूचना पाकर वे जहाजके कसानके पास गये। कपान हँसा—‘व्यर्थकी बान। आप निञ्चिन्त रहे। हमारा टिटैनिक अजेय है। उसकी लौह-तीव्रारे अभेद हैं।’

परतु पूरे दस मिनट भी नहीं बीते थे इस बातको जब कि टिटैनिक फट गया था समुद्रमें बहते हुए, एक विश्वाल हिमपर्वतसे टक्कारकर। उसमें समुद्रका जल वेगपूर्वक प्रवेश कर रहा था। यात्री जीवनकी आगा छोड़ चुके थे और कपान बेतारके तारपर बार-बार सदेश भेज रहा था—‘टिटैनिक इव रहा है। हमारी शीघ्र सहायता कीजिये।’

मनुष्यकी शिद्या-दुद्धिके गर्वका प्रतीक टिटैनिक अपने महामहिम यात्रियोंके साथ इव गया सागरके अतल जलमें।—सु० मिं०

अच्छी फसल

जर्मनीकी सेनाके कोई उचाधिकारी किसी युद्धके समय अपने शिविरसे कुछ सैनिकोंके साथ घोड़ोंके लिये धास एकत्र करने निकले। समीपमें एक गॉवके किसानको उन्होंने पकड़ा—‘चलकर बताओ कि इस गॉवमें किस खेतमें अच्छी फसल है।’

विवश होकर किसान उन सैनिकोंके साथ चल पड़ा। खेत लहलहा रहे थे। बहुत उत्तम फसल थी। सैनिक चाहते थे कि उन खेतोंकी फसल काट लें, किंतु किसान बार-बार कहता जाता था—‘कुछ और आगे चलिये, बहुत उत्तम फसल आपको बताऊँगा।’

धीरे-धीरे सैनिकोंको किसान लगभग गॉवकी सीमाके खेतोंतक ले गया। वहाँ उसने एक खेत बतलाया।

सैनिकोंने उस खेतसे फसल काटकर गढ़े बोंधे और घोड़ोंपर रख लिये। सैनिक अधिकारीने रुप्त होकर किसानको ढोया—‘व्यर्थ त् हमे इतनी दूर क्यों ले आया? इससे अच्छी फसल तो पासके खेतोंमें ही थी।’

किसानने कहा—‘मै जानता था कि आपलोग खेतके स्वामीको फसलका मूल्य देनेवाले तो हैं नहीं। मै किसी दूसरेका खेत आपलोगोंको बताकर उसकी हानि कैसे कराता। यह मेरा अपना खेत है और यह तो आप भी मानेगे ही कि मेरे लिये तो इसीकी फसल सबसे अच्छी फसल है।’

सैनिक अधिकारी लजित हो गया। उसने किसान-को फसलके मूल्यके साथ पुरस्कार देकर सम्मानित किया।—रा० श्री०

महान् वैज्ञानिककी विनम्रता

अलवर्ट आइस्टीनने हमारे जगत्का चित्र ही बदल दिया। परमाणु युग, वह चाहे हमारे दृष्टि या विनाश जिस किसीका भी हेतु क्यों न हो, उसके पिता आइस्टीन ही रहे। उन दिनों जब वे परमाणु-व्रम-सम्बन्धी अनुसधान-में व्यस्त थे, प्राय व्यग करते हुए कहते—‘यदि मेरी खोज, मेरा सिद्धान्त ठीक सिद्ध हुआ तब तो जर्मनी मुझे

महान् जर्मनवासी कहकर अभिनन्दन करेगा और फासवाले कहेंगे कि आइस्टीन विश्वका महान् नागरिक है। पर यदि यह मिथ्या सिद्ध हुआ तो ये ही फासवाले मुझे जर्मनवासी कहने लगेंगे और जर्मनवाले मुझे यहूदी कहेंगे।’

१९५२ के नववरमे इसराइलके अध्यक्ष डाक्टर

चैम वेजमेनकी मृत्युपर इसगइल सरकारने आइस्टीनसे अध्यक्षता स्थीकार करनेकी प्रार्थना की । पर उन्होंने यह कहकर उनके प्रस्तावको अस्थीकार कर दिया कि 'यद्यपि मैं आपके इस प्रस्तावका बड़ा आभारी हूँ, पर मैं इस

पदके योग्य नहीं हूँ, क्योंकि जन-सेवा-कार्य तथा राजनीति क्षेत्रमें मैं अपनेको तनिक भी दक्ष अथवा कुशल नहीं मानता ।'

इसपर इसराइलकी नवनिर्मित यहूदी सरकार आश्रयसे दग रह गयी ।

प्रेमका झरना

सत बोनीफेसके जीवनकी एक सरस कथा है । उनका पालन-पोषण देशके पहाड़ी वातावरणमें हुआ था । वचपनसे ही वे एकान्तमें निवास कर भगवान्के प्रेमामृतका रसाखादन किया करते थे । उनके पिताने बोनीफेसको पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी थी कि वे आजीवन भगवान्का भजन करते रहें तथा दीन-दुखियों और असहायोंकी सेवामें लगे रहें । उनका जीवन पूर्ण भाग्यत था ।

एक समयकी बात है । वे भगवान्की मधुर भक्तिका प्रचार करनेके लिये जर्मनीके किसी देहाती क्षेत्रमें जा रहे थे । दैवयोगसे काले बन (ब्लैक फोरेस्ट) में पहुँच गये । वे यकान्ट और प्याससे परिश्रान्त थे । साग शरीर गिथिल हो गया था । पानीके लिये व्याकुल थे, पर उस निर्जन बनमें पानी मिलना कठिन ही था ।

'मौं ! योङ्ग-सा दूध मुझे भी दे दो, नहीं तो प्राण निकल जायेंगे ।' सतने एक महिलासे निवेदन किया, जो योङ्गी दूरपर गाय दुह रही थी । बोनीफेस-को देखकर उसके हृदयमें दयाके धन उमड़ आये ।

वह दूध देनेवाली ही थी कि उसका पति आ गया और उसे ऐसा करनेसे रोक दिया ।

बोनीफेस धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे ; वे गिरते-पड़ते कुछ दूर गये ही थे कि एक शिलाखण्डके निकट पहुँचते ही पृथ्वीसे एक सोता फूट निकला, जिसका जल अत्यन्त निर्मल और शीतल था । बोनीफेसने भगवान्की कृपाको धन्यवाद दिया और उस प्रेम निर्झरणीके मनोरम तटपर बैठकर अपनी प्यास शान्त की ।

बह महिला भी जलको देखकर प्रसन्नतासे नाच उठी और घड़ा लेकर पहुँच गयी ।

'माँ ! तुम्हारे हृदयमें दीन-दुखियोंके लिये अपार दया है । तुम इस प्रेमके झरनेका पानी ले सकती हो । पर स्मरण रखो कि द्वेषी, अक्षमागील और दूसरोसे घृणा करनेवाले व्यक्तिका कर-स्पर्श होते ही निर्झरणीका जल सूख जायगा ।'

उसका नाम बोनीफेस-निर्झरणी है और उसके तटपर जाते ही लोगोंका मन प्राणिमात्रके प्रति प्रेम-भावसे सम्पन्न हो उठता है । —रा० श्री०

बुद्धिमानीका परिचय

चीनके एक बादशाहके शासन-कालमें प्रजाको अनेक प्रकारके कर देने पड़ते थे । बाहरसे आनेवाली बस्तुओं-पर बड़ा शुल्क देना पड़ता था । बादशाहसे इस सम्बन्धमें शिकायत करनेका किसीने साहस नहीं किया ।

एक दिन बादशाह अपने सभा-सदस्योंके साथ नगरके बाहर ठहलने गया था । वह लौटनेवाला था कि आकाशमें काली-काली घटा धिर आयी । पानी बरसनेवाला ही था । बादशाहने प्रस्ताव किया कि

हमलोगोंको यथारीत्र लौट चलना चाहिये ।

‘हरनेकी कोई वात नहीं है । वाढ़ल नगरमें प्रवेश ही नहीं कर सकते ।’ एक बुद्धिमान् समासदस्यने अवसरका सदुपयोग किया ।

वाढ़आहके कारण पूछनेपर उसने कहा कि ‘उन-

पर अधिकाधिक कर लग जायगा और वे प्रवेश करनेमें असमर्थ हो जायेंगे ।’

बादशाहने उसके कथनका मर्म समझ लिया और उसकी बुद्धिमानीकी बड़ी प्रशंसा की । उसने प्रजापर लगाया हुआ आवा कर छोड़ दिया । —ग० श्री०

प्रार्थनाका फल

जार्ज मूलरका प्रार्थनामें अठल विश्वास था । अपने गया है ।
जीवनमें उन्हे किसी भी दिन निराश नहीं होना पड़ा ।
एक समयकी वात है । वे जहाजसे कनाडा जा रहे थे ।
अचानक चारों ओर घना कोहरा छा गया । जहाज
किसी तरह आगे ही नहीं बढ़ पाता था । कप्तान
निराश हो गया । उसे जहाज रोक देना पड़ा । चौबीस
घटे बीत गये, पर आकाश साफ नहीं हो सका ।

‘कप्तान ! मुझे गनिवारको तीसरे पहर क्यूबेक पहुँचना ही है ।’ मूलरने अपना कार्यक्रम सूचित किया ।

‘यह असम्भव है ।’ कप्तानने विश्वासा प्रकट की ।

‘ठीक है, यदि आपका जहाज मुझे नहीं पहुँचा सकता तो परमात्मा कोई दूसरा रास्ता निकालेंगे ही । मैंने पिछले सत्तावन सालोंमें किसी भी दिन अपना कार्यक्रम नहीं तोड़ा है । चलिये, हमलोग भगवान्से प्रार्थना करें ।’ मूलरने निवेदन किया ।

कप्तान सोचने लगा कि न जाने किस पागलसे पाला पड़ गया है । पता नहीं है कि किस पागलखानेसे आ

‘मूलर महोदय ! क्या आप देखते हैं कि कितना घना कोहरा है ?’ कप्तानने उनका प्रस्ताव ठाल दिया ।

‘मेरा ध्यान कोहरेके घनत्वपर नहीं है, मैं तो चिन्मय परमात्माकी शक्तिमत्ताका चिन्तन कर रहा हूँ; उनकी शक्ति और कृपासे मेरे जीवनकी प्रत्येक परिस्थिति नियन्त्रित है ।’ ऐसा कहकर मूलरने बिनत होकर भगवान्से प्रार्थना की, प्रार्थना समाप्त करनेपर उन्होंने कप्तानको प्रार्थना करनेसे रोक दिया ।

‘भाई ! आपको प्रार्थना करनेकी आवश्यकता नहीं है और न तो आपका इसमें विश्वास ही है । कप्तान ! मैं अपने ईश्वरको अच्छी तरह जानता हूँ । मेरे जीवनमें एक दिन भी ऐसा नहीं है जिस दिन उनकी कृपाका मुझे साक्षात्कार न हुआ हो । उठो, दरवाजा खोलो । कोहरा उड़ गया है ।’ मूलरने विश्वास दिलाया ।

कोहरा निःसंदेह उड़ गया था । जार्ज मूलर ठीक समयपर क्यूबेक पहुँच गये । उन्हे प्रार्थनाका पूरा-पूरा फल मिल गया —ग० श्री०

सच्चा साहसी

‘तुमलोगोंको किला छोड़नेके पहले सारे नगरको जलाकर नष्ट कर देना चाहिये । तुम्हारी संख्या दो सौ है, तुम्हें किसी वातका भय नहीं होना चाहिये ।’ बल-गेहियाके सेनापतिने शेष सैनिकोंको आगे बढ़नेका

आदेश दिया । कब्लाके किलेमें केवल दो सौ सैनिक रह गये । कब्ला एजियन सागरका एक बंदरगाह है ।

नागरिकोंने इस वातका समाचार पाते ही अपने घरके दरवाजे बंद कर लिये । वे विश्वा और निराश्रित

थे । पर वद्रगाहपर एक मछली पकड़नेवाला रहता था । उसने शत्रुओंसे नगरको सुरक्षित रखनेका उपाय सोचा ।

कपलासे अठारह मीलकी दूरीपर थसोस नामका एक द्वीप था । अठारह मील जलीय मार्गको पार करना कठिन कार्य था । पर अपने सत्कर्तव्यसे अनुग्राणित होकर उसने उस पार पहुँचनेका निश्चय कर लिया । थसोस-में यूनानी जहाजी बेड़ा था, उन दिनों यूनान और बल-गेरियामें युद्ध चल रहा था, इसलिये तुर्की मछुआहेने इस स्थितिका सदुपयोग अपनी जन्मभूमिकी रक्षाके लिये किया ।

सूर्यकी किरणें महाप्रसानके पथपर थीं । चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार था । पीले-पीले तारे आकाश-में टिमटिमा रहे थे । शत्रुसेनाकी आँख बचाकर वह अपनी छोटी-सी नौकापर सवार होकर थसोसके लिये चल पड़ा ।

मृत्युकी धारी

उनीसरीं शताव्दीके दूसरे चरणके कुछ साल बाद ही अंग्रेजी और तुर्की सेनातथा रूसी सेनामें कालेसागर-के तटपर युद्ध आरम्भ हो गया । उमर पाशा और अंग्रेजी सेनापति रेगलनकी सम्मिलित सेनाएँ बालकलाला स्थानपर एकत्र होकर सेवर्स्टपूल किलेका भाग्य-निर्णय कर रही थीं और रूसी सेनाध्यक्ष मेन्सीकाफके सैनिक रक्षात्मक कार्यमें सलझ थे ।

‘कोई आ रहा है !’ सैनिकोंने धीरेसे कारड़ी-जनके सामन्तसे कहा । वह बालकलाला की एक खाई-में छँ सौ सात सैनिकोंके साथ अब्र-शाखसे सजित होकर आक्रमणकी प्रतीक्षा कर रहा था । सामन्त इस टुकड़ीका नायक था । वह सावधान हो गया ।

‘अभी इसी समय आक्रमण करना होगा ।’ नायक नोडने सामन्तको लुसनका आदेश मुनाया । लुसन

सारी रात वह नौका खेता रहा । सबेरा होते-होते वह द्वीपपर आ गया । यूनानी बेड़ेके निकट ही वह जोर-जोरसे चिल्लाने लगा ‘दौड़ो, बचाओ परमात्माके नामपर हमारी जन्मभूमिकी रक्षा करो, अन्यथा बलगेरियाकी सेना कपलाको जलाकर नष्ट कर देगी ।’

दिन निकलते-निकलते एक सच्चे साहसीके सत्कर्तव्यपालन और साहससे यूनानी सेनाने बलगेरियाकी सेनाको कपलासे निकाल बाहर किया । नागरिकोंने घरके दरवाजे खोल दिये, उन्होंने यूनानी नौसेनापति-का स्थागत किया । कपला शत्रुके हाथ नष्ट होनेसे बच गया ।

कपलाके नागरिकोंने यूनानी सेनापतिके स्थागतमें शोभायात्रा निकाली । शोभायात्राके पीछे-पीछे एक दुबला-पतला आदमी चल रहा था, जिसकी आँखोंमें प्रसन्नताकी ज्योति थी, मनमें सतोष था कि उसने अपने नगरको बचा लिया । — रात्रि० श्री०

उसका उच्च अधिकारी था । सामन्तसे मन-ही-मनमें डाह करता था । उसकी हार्दिक इच्छा थी कि रूसी तोपचियोंके बाहर-दूर से उसका प्राणान्त हो जाय ।

‘मोरचा कठिन है, सामन्त ! सैनिक-दृष्टिसे इस आज्ञा-का पालन करना हमारा कर्तव्य है, पर हमारी सख्त्य बहुत कम है और अचानक आक्रमण करनेका अर्थ है पूरी-की-पूरी रूसी सेनासे भिजना ।’ सैनिकोंने अपने नायकको समझाया ।

‘मुझे तो यह आदेश धोखा लगता है । लुसन तुमसे बदला लेना चाहता है नायक !’ कप्तान नोडने आदेशकी निर्धकताकी पुष्टि की ।

‘चाहे धोखा हो, चाहे असत्य हो या निर्धक हो, इस समय हमारे लिये यह महान् सत्य है । हमारे उच्च

अविकारीका आदेश है। हम रुसी बाखदमे अपने प्राण स्वाहाकर सेनानायकके आदेशका पालन करेगे।' कारडीजनके सामन्तने अपनी टुकड़ीको आगे बढ़नेका आदेश दिया।

'बढ़े चलो! देशके स्वामिमानकी रक्षाका प्रश्न है। पीछे पैर पड़ेगे तो दुनियामे महारानी विकटोरियाका नाम कलङ्घित हो उठेगा। यूरोप हमारी काली करनीपर थूकेगा और इगलैंडके निवासी लज्जासे नतमस्तक हो जायेगे।' सामन्त आगे बढ़नेवाली टुकड़ीको प्रोत्साहित हो गया कि सामन्त बच गया।

कर रहा था। रुसी सैनिक बड़ी निर्दियतासे गोली बरसा रहे थे। इगलैंडके बीर सैनिक बालकलग्नाकी खाईमे — मृत्युकी धाटीमे आज्ञापालनकी पवित्र बलिवेदीपर आत्मयज्ञ कर रहे थे। लुसन यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गया कि सामन्त बच गया।

'कारडीजनका सामन्त बीर आत्मा है।' लुसनके अधर उसकी ग्रन्थसामे स्पन्दित थे। उसकी आज्ञाके परिणामस्वरूप मृत्युकी धाटीमे पौंच सौ बीर सैनिकोंने प्राण निछावर कर दिये। —रा० श्री०

ईश्वर रक्षक है

एक आचार्य सत एक वृक्षके नीचे अकेले सो रहे थे। उनका एक विरोधी वहाँ पहुँचा और उसने ललकारा—'अरे, उठ और देख कि अब तेरी रक्षा करनेवाला यहाँ कौन है।'

आचार्य उठे। निर्भीक स्वरमे उन्होने उत्तर दिया 'मेरा प्रभु मेरा रक्षक है' और झटकर विरोधीके हाथकी तलवार उन्होने छीन ली। अब उन्होने पूछा—'अब तू बता कि तेरी रक्षा करनेवाला कौन है?'

विरोधी कॉप गया। सूखे सुख वह बोला—'अब यहाँ मेरी रक्षा करनेवाला तो कोई नहीं है।'

आचार्यने तलवार फेक दी और उससे कहा—'अपनी तलवार उठा ले और आजसे दया करनेकी मुझसे शिक्षा ले।'

वह लज्जित हो गया और आचार्यके चरणोपर गिर पड़ा। वह उसी दिनसे उनका अनुयायी बन गया।

—सु० सिं०

दयालु स्वामीके दिये दुःखका भी स्वागत

हकीम लुकमान बचपनमे गुलाम थे। एक दिन उनके स्वामीने एक ककड़ी खानी चाही। मुँहमे लगाते ही जान पड़ा कि ककड़ी अत्यन्त कड़वी है। स्वामीने ककड़ी लुकमानकी ओर बढ़ा दी—'ले, इसे तू खा ले।' लुकमानने ककड़ी ले ली और विना मुँह विचकारे वै उसे खा गये।

लुकमानके स्वामीने समझा था कि इतनी कड़वी ककड़ी कोई खा नहीं सकता। लुकमान इसे फेंक देगा। परतु जब लुकमानने पूरी ककड़ी खा ली तो वह आश्चर्यचकित होकर पूछने लगा 'तू इतनी कड़वी ककड़ी कैसे खा सकता?'

लुकमान बोले—'मेरे उदार स्वामी ! आप मुझे प्रतिदिन स्वादिष्ट पदार्थ ग्रेमपूर्वक देते हैं। आपके द्वारा प्राप्त अनेक प्रकारके सुख मैं भोगता हूँ। ऐसी अवस्थामे एक दिन आपके हाथसे कड़वी ककड़ी मुझे मिली तो उसे मैं क्यों आनन्दपूर्वक नहीं खाऊँ ?'

वह व्यक्ति समझदार था, दयालु था और धर्मात्मा था। उसने लुकमानका आदर किया। वह बोला—'तुमने मुझे उपदेश किया है कि जो परमात्मा हमे अनेक प्रकारके सुख देता है, उसीके हाथसे यदि कभी दुःख भी आवे तो उस हुँखको प्रसन्नतापूर्वक भोग लेना चाहिये। आजसे तुम गुलाम नहीं रहे।'

—सु० सिं०

ईश्वरके साथ

सन खैयास अपने शिष्यके माम बनमें जा रहे थे । नमाजका समय दूजा और इनमें पार्नामे 'बजू' करके ढोनोंने चढ़ार्ग, नमाज पढ़ने खड़े हुए । इनमें पास ही कर्त्तृ, निवृत्ते गर्जना की । शिष्यके तो प्राग सूख गये । वह भास्तु पासके बृश्वर चढ़ गया और वहाँ भी था-या काप गहा था ।

सिंह आग और चढ़ गया । खैयासमी और उसने देखानक नहीं और खैयासमी ही कहों फुसन वी कि तिहरी ओर देखने । वे नमाज पढ़ रहे थे, चुपचाप नमाज पढ़ने रहे । सिंहके चले जानेवा शिष्य भी पेड़ने

उनग और उसने भी नमाज पढ़ी ।

नमाज पूरी हुई । ढोनोंने चढ़ार्ग उठाया और गस्ता पकड़ा । अचानक एक मच्छरने खैयासकी नाकपर बैठकर काय । खैयास चीख उठे । शिष्य बोला—सिंह पासमे चढ़ा गया, तब तो आपने उमकी ओर देखा-तक नहीं और अब नहेंने मच्छरके काटनेमे चीख रहे हैं ॥

खैयास बोल—‘भाई ! उस समय मैं खुदके साथ या और उस समय मनुष्यके (तेरे) साथ हूँ ।

—सु० शिं०

भगवान् सब अच्छा ही करते हैं

बट्ठा मिश्रद्वारकी है । वहाँके एक भगवद्वक्त गृहस्थ-की झोपड़ी बनाए सभीर थी । उमके घरमे उमकी पत्नी-के अनिक्षित तीन प्राणी और थे । एक बैठ या, जो बोझा ढोनेके ब्राम आना था । वही उम परिवारकी आर्जाविकाका साधन था, क्योंकि उसीकी पीठपर लाडका सामग्री बेचने वह व्यक्ति जाना था । एक कुत्ता था जो उस भगवती प्रदेशमें गतिको चौकीदारी करके उस परिवारकी रक्षा करता था । एक तोता या था और वह उस सतान-हीन पनियतीको बहुन व्याग था । वह तोता गतिके अन्तिम प्रह्लादमें उस गृहस्थको सुआ जगा दिया करता था ।—‘उठो ! भगवानका भजन करो ।’

एक गति बनने निकालका सिंह आया और उसने गृहस्थके बैठको मार दिया । बेचाग कुत्ता सिंहके भयमें ही भागकर घरमें छिप गया था । गृहस्थ सबरे लठा । मरे हुए बैठको उसने देखा और बोला—‘अच्छा हुआ, भगवान् जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं । यह उनका विधान है, इसलिये अच्छा ही है ।’

पतिकी बात सुनकर पत्नी झङ्गायी, परंतु कुछ

बोली नहीं । विपत्ति अकेली नहीं आया करती । उसी दिन किसी प्रकार तोना पिंजडेमे निकल गया और घरके कुत्तेने ही उसे मार दिया । पुरुषको समाचार मिला तो बोला—‘अच्छा हुआ । प्रभु जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं ।’

खीने इस बार सिर पीट दिया, वह उसी दूखी थी कि कुछ बोलनेका उसमे साहस ही नहीं था । योड़ी ही देरमें किसीने बताया कि पना नहीं क्या हुआ, उनका कुत्ता मार्गमें लोट-पोट होने लगा और अब मरा पड़ा है । पुरुष फिर बोला—‘अच्छा हुआ, भगवान् जो करते हैं, वह हमारे हितके लिये ही करते हैं ।’

इस बार खी उबल पड़ी—‘अब आर्जाविकाहीन रहकर घरमें पड़े रहो और खराट लेकर सबेरेतक सोओ, क्योंकि भोजन देनेवाला बैठ नया जगानेवाला तोता तो चढ़ा गया । कुत्ता भी गया, इसमे रातमें कोई चीना-भेड़िया हमें-नुम्हें भी पेड़में पहुँचा देगा ।’

जो हो गया था, उसे बदलनेका उत्तर नहीं था । पुरुष इसे भगवान्की कृपा मानकर संतुष्ट था और खी

दुखी थी; किंतु दोनोंको जीवनक्रम तो चलाना ही था। सम्भावना नहीं की जा सकती।

दिन गया और रात्रि आयी। दोनों सो गये। सबेरे उठे तो देखते हैं कि पूरे गाँवमें लाशें-ही-लाशें त्रिष्ठी हैं। रात्रिमें डाकुओंने आक्रमण किया था। एक व्यक्ति भी जीवित उन्होंने नहीं छोड़ा। झोपड़ियोंके फटे वर्तन-तक वे उठ ले गये थे। इस झोपड़ीको सुन-सान समझकर वे छोड़ गये थे; क्योंकि जगलके पासके गाँवमें जिस झोपड़ीमें कुत्ता न हो, उसमें किसीके रहनेकी

पुरुष अपनी पत्नीसे बोला—‘साधी। यदि कुत्ता होता तो हम मारे जाते और बाहर बैल बैंधा दीखता तो भी मारे जाते। तोता सबेरे हमें जगा देता तो भी डाकू आहट पाकर आ धमकते। तीनों जानवरोंकी मृत्यु-का विभान दयामय प्रभुने किया था और हमारे मङ्गलके लिये किया था। आज हम इसीलिये जीवित बचे हैं कि वे जानवर हमारे यहाँ नहीं थे।’—सु० सिं०



सब अवस्थामें भगवत्कृपाका अनुभव

संत उसमान हैरी एक बार नगरकी गलीसे जा रहे थे। किसी भवनकी दासीने बिना नीचे देखे एक थाल चूल्हेकी राख फेंका। सबकी सब राख हैरीपर पड़ी। सत हैरीने अपना सिर तथा कपड़े झाड़े और हाथ जोड़कर बोले—‘दयामय प्रभु ! तुझे धन्यवाद ।’

एक व्यक्ति सतके साथ चल रहा था। उसने

पूछा—‘इसमें परमात्माको धन्यवाद देनेकी क्या बात हो गयी ?’

हैरी बोले—‘मैं तो अग्निमें जलाया जाने योग्य था, किंतु प्रभुने दया करके राखसे ही निर्वाह कर दिया, इसीसे मैं उस परमोदार खासीको धन्यवाद दे रहा हूँ।’

—शि० दु०

दो मार्ग

‘उसके समान कोई मूर्व नहीं, जो अत्यन्त दुर्बल होनेपर भी अमित बल-सम्पन्नसे प्रियोध करता है।’ संतकी यह वाणी सुनकर मस्तिष्ठानसे अपने नौकरोंके साथ जाना हुआ राजकुमार समीप आ गया और सत ऊन्नुनसे इस कथनका तात्पर्य पूछ बैठा। संतने बताया—‘मनुष्य अत्यन्त दुर्बल ही नहीं, सर्वया असहाय है, किंतु वह सर्वशक्तिसम्पन्न परमेश्वरका प्रियोधी बनता है। यह उसकी महान् मूर्खताके अतिरिक्त और क्या है ?’

राजकुमार उदास हो गया, पर बिना कुछ बोले वहाँने चला गया। कुछ दिन बाद वह पुन संत ऊन्नुनके पास आया और अत्यन्त कातर वाणीमें उसने

पूछा—‘महात्मन् ! प्रभु-प्राप्तिका मार्ग क्या है ?’

भगवान् को पानेके दो रास्ते हैं—सतने बताया। ‘एक साधारण और दूसरा असाधारण। यदि तुम साधारण मार्गसे उसतक पहुँचना चाहते हो, तो ससारके समस्त पाप और इन्द्रियोंकी प्रवृत्तियोंका त्याग करो और यदि असाधारण मार्गका अनुसरण करना चाहते हो तो अन्त करणको पिष्य-शून्य अत्यन्त निर्मल बनाकर उसे ईश्वरमें लगा दो। ईश्वरके अनिरिक्त और सब कुछ भूल जाओ।’

राजकुमारने असाधारण मार्गका अनुसरण किया। वह राजकुमारोंका वेश छोड़कर फकीर बन गया और पहुँचा हुआ प्रसिद्ध संत हुआ। —शि० दु०



अहंकार तथा दिखावटसे पुण्य नष्ट

एक सुसल्मान फकीर थे हाजी महम्मद। वे साठ वर्ष का उम्र से नमाज पढ़ते थे। एक दिन हाजी महम्मद साहेबने सप्तनमें देखा—‘सर्वाय दूत वेंत हाथमे लिये स्वर्ग और नरकके बीचमें खड़ा है। जो भी यात्री आता है, उसके भले-बुरे कर्मोंका परिचय जानकर वह किसीको स्वर्ग और किसीको नरकमें भेज रहा है। हाजी महम्मद इनके सामने आये तब दूतने पूछा—‘तुम किस सत्कार्यके फलस्वरूप सर्वमि जाना चाहते हो?’ उत्तरमें हाजी साहेबने कहा—‘मैंने साठ बार हज किया है।’ सर्वाय दूत बोला—‘यह तो सत्य है; परन्तु जब कोई तुमसे नाम पूछता तो तुम गर्वके साथ बोलते—“मैं हाजी महम्मद हूँ।” इस गर्वके कारण तुम्हारा साठ बार हज करनेका पुण्य नष्ट हो गया। तुम्हारा और कोई पुण्य हो तो बताओ?’

हाजी साहेबका, जो अपनेको सहज ही सर्वका यात्री मानते थे, मुँह उतर गया। उन्होंने कौपते हुए सर्वाय दूतसे कहा—‘मैंने साठ सालनक नित्य नियमित

रूपसे प्रतिदिन पाँच बार नमाज पढ़ी है।’

सर्वाय दूतने कहा—‘तुम्हारी वह पुण्यकी ढेरी भी नष्ट हो गयी।’

हाजी महम्मदने कौपते-कौपते पूछा—‘सो कैसे? मेरे किस अपराधसे यह तप नष्ट हो गया?’

सर्वाय दूतने कहा—‘एक दिन बाहरके बहुत-से धर्मजिज्ञासु तुम्हारे पास आये थे, उस दिन तुमने उनके सामने उन लोगोंको दिखानेके लिये दूसरे दिनोंकी अपेक्षा अधिक देरतक नमाज की थी। इस लोग-दिखाऊ भावके कारण तुम्हारी साठ वर्षकी तपस्या नष्ट हो गयी।’

सर्वाय दूतकी बात सुनते ही बूढ़े हाजी चिल्लाकर रो पड़े। चिल्लानेकी आवाज कानोंमें पड़ते ही उनकी नींद टूट गयी। जागनेपर भी स्नपकी बातका स्मरण करके वे भयसे कौपते और कराहते रहे। उन्हें अपनी भूल माल्हम छुई और उस दिनसे उनका गर्व दूर हो गया, वे दीन बन गये। भगवान् ने सभमें सावधान करके उनपर बड़ी कृपा की।

सेवककी इच्छा क्या

हजरत इब्राहीम जब बलखके बादशाह थे, उन्होंने एक गुलाम खरीदा। अपनी स्वाभाविक उदारताके कारण उन्होंने उस गुलामसे पूछा—‘तेरा नाम क्या है?’

गुलामने उत्तर दिया—‘जिस नामसे आप मुझे पुकारें।

बादशाह—‘तू क्या खायेगा?’

गुलाम—‘जो आप खिलायें।’

बादशाह—‘तुझे करड़े कैसे पसद हैं?’

गुलाम—‘जो आप पहिननेको दें।’

बादशाह—‘तू काम क्या करेगा?’

गुलाम—‘जो आप करायें।’

‘आखिर तू चाहता क्या है?’ बादशाहने हैरान होकर पूछा।

‘हुजूर! गुलामकी अपनी चाह क्या।’ गुलाम शान्तिपूर्वक खड़ा था।

बादशाह गद्दीसे उठे और बोले—‘तुम मेरे उस्ताद हो। तुमने मुझे सिखाया कि परमात्माके सेवकको कैसा होना चाहिये।’ —सु० सिं०

सच्चा साधु

एक साधुसे हजरत इब्राहीमने पूछा—‘सच्चे साधुका लक्षण क्या है ?’ साधुने उत्तर दिया—‘मिला तो खा लिया, न मिला तो सतोष कर लिया ।’ हजरत इब्राहीम हँसे—‘यह तो हर कुत्ता करता है ।’

साधुने पूछा—‘कृपा करके आप ही साधुका लक्षण बता दें ।’ इब्राहीमने बताया—‘मिला तो बॉटकर खाया और न मिला तो प्रभुकी कृपा मानकर प्रसन्न हो गया कि दयामयने उसे तपस्याका सुअवसर प्रदान किया ।’

— सु० सिं०

सच्चे भक्तका अनुभव

साधु मुहम्मद सैयद सच्चे भक्त संत थे । इनके पास कोई भी संग्रहकी वस्तु नहीं रहती थी । यहाँतक कि लगोटी भी ये नहीं पहनते—नगे रहते थे । शाहजहाँ इन्हें बहुत मानता था । दाराशिकोह तो इनका प्रधान भक्त ही था । ये प्रायः सदा एक गीत गाया करते थे, जिसका भाव है—‘मैं सच्चे सत भक्त फुरक्कनका शिष्य हूँ । मैं यहूदी भी हूँ, हिंदू भी और मुसल्मान भी । कावाके मस्जिदमे और हिंदुओंके मन्दिरमें लोग एक ही परमात्माकी उपासना करते हैं । एक जगह यही प्रभु काले पत्थरका रूप धारण करते हैं, जिनकी कावामे पूजा होती है और दूसरी जगह (हिंदू-मन्दिरमें) मूर्तिका रूप धारण करते हैं ।’

और गजेव दाराका घोर शब्द था । वह सैयद साहबसे भी चिढ़ता था । उसने उन्हें पकड़ मँगवाया और उन्हें धर्मद्रोही घोषितकर मुल्लाओंके हाथमे निर्णय सौंपा । निर्दय वर्मान्ध मुल्लाओंने धर्मके नामपर उन्हें शूलीकी आज्ञा दे दी, पर सैयद साहबको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई । वे शूलीका नाम सुनकर आनन्दसे उछल पड़े । शूलीके काठपर चढ़ते समय वे बोल उठे—‘अहा ! आजका दिन मेरे लिये बड़े सौभाग्यका है । जो शरीर आत्माके साथ प्रियतम परमात्माके मिलनेमे बाधक था, आज इसी शूलीकी कृपासे वह छूट जायगा ।’ वे गाने लगे—‘मेरे दोस्त ! आज तू शूलीके रूपमें आया । तू किसी भी रूपमें क्यों न आवे, मैं तुझे पहचानता हूँ ।’

—जा० श०

फकीरी क्यों ?

इब्राहीमसे एक दिन किसीने पूछा—‘आप तो राजा थे । जगत्के समस्त वैभव आपके चरणोंमें सिर झुकाते थे । फिर आपने सबको ठोकर मारकर फकीरी क्यों ले ली ?’

महात्मा इब्राहीमने बड़ी गम्भीरतासे उत्तर दिया—‘भाई ! मुझे राज्यमुख अमित सुख दे रहा था, किंतु एक दिन मैंने शीशेमें देखा कि मेरे महलके स्थानमें इपशानका प्रतिविम्ब पड़ रहा था । उक्त इमशानमें

केवल मैं था । माता-पिता, भाई-बहिन और पत्नी-पुत्र कोई भी वहाँ नहीं थे । अत्यन्त विस्तृत एवं भयानक पथ था । वहाँ एक तेजस्वी न्यायाधीश थे । उनके सामने मेरे निर्देश होनेका युक्तिपूर्ण दिया हुआ प्रमाण सर्वथा अनुपयुक्त सिद्ध हो रहा था । मैं विवश, असहाय और निरुपाय था । इसी कारण सब कुछ छोड़कर मैंने फकीरी ले ली ।’ —शि० हु०

अत्यधिक कल्याणकर

एक वारकी बात है। सुफ़ियानने महात्मा फजलके साथ सारी रात धर्मचर्चमि वितायी। दूसरे दिन चलते समय उन्होंने वडी प्रसन्नताके साथ कहा—‘आजकी रातको मैं अत्यन्त सुखदायिनी समझता हूँ कि धर्मचर्चा चलती रही। किनना अनन्दग्रद सत्सङ्ग होता रहा।’

‘ना ना, आजकी रात तो व्यर्थ ही चली गयी।’ फजलने जवाब दे दिया।

‘वह कैसे?’—चिन्तित मन सुफ़ियानने पूछा।

फजलने कहा—‘सारी रात तुमने वाणी-विलाससे मुझे सतुष्ट करनेमें और मैंने तुम्हारे प्रश्नोंका अच्छे-से-अच्छा उत्तर देनेमें विता दी। इस प्रयत्नमें हमलोग भगवान्को तो भूल ही गये थे। एक दूसरेको प्रसन्न करनेवाले सत्सङ्गकी अपेक्षा अत्यधिक कल्याणकर तो प्रभु-स्मरण है।’ —शि० दु०

जीवन-क्षण

एक वार किसीने दृढ़ सत वायजीदसे पूछा—‘आपकी आयु क्या है?’

आपने उत्तर दिया—‘चार वर्ष।’

वह आदमी चुप हो गया। वायजीदने समझाया—

‘मेरे जीवनके सत्तर वर्ष सासारिक प्रपञ्चमें वीते। अब केवल चार वर्षसे उस प्रभुकी ओर देख रहा हूँ। जीवनके जितने क्षण प्रभुके समीप वीते हैं, वास्तवमें वही जीवनका काल है।’ —शि० दु०

चेतावनी

एक शराबीको नगेमें चूर लड़खड़ाते पैर चलते देखकर सत हुगेनने कहा—‘भैया! पैर सेंभाल-सेंभालकर रखवो, नहींतो गिर जाओगे।’ शराबीने उत्तर दिया—‘महोदय! मुझे समझानेवाले आप कौन होते हैं? मैं तो ग्रसिद्ध शराबी हूँ। सब जानते हैं कि मैं शराब पीता

हूँ और उसके नगेमें वैसुध भी हो जाया करता हूँ। मैं गिर जाऊँगा तो स्नान करके साफ हो जाऊँगा, पर कहीं आपके पैर डगमगाये तो आप कहींके नहीं रहेंगे।’ यह सुनते ही हुसेन लजित हो गये।

—शि० दु०

शिक्षा

एक वारकी बात है। एक सुन्दर युवनी वृंदेष्ट विना ही लजागृन्यकी तरह सत हुमेनसे अपने पतिकी प्रेम-शून्यता और निर्ममताकी निन्दा करने लगी। सतने कहा—‘पहले अपने कपड़े सेंभाल लो, मुँह तो ढक लो, किर जो कहना हो कहो।’ युवनीने असतुष्ट होकर कहा—‘अरे, मैं तो भगवन्निर्मित एक नश्वर प्राणीके प्रेममें इतनी उन्मत हो गयी हूँ कि अपने तन-मनकी सुविध मुझे

नहीं रह गयी है, मैं उसे हँड़नेके लिये वाजारमें निकल आयी हूँ, पर यह कितने आश्चर्यकी बात है कि आप प्रभुप्रेमी कहलाकर भी मेरे खुले मुँहकी सुविध सके।’

सत हुसेन इस उत्तरसे चकित हो गये। भगवान्की दी हुई शिक्षा समझकर वे अत्यधिक तन्मयतासे उनके भजनमें लग गये।

—शि० दु०

अस्थिर दृष्टि

एक सतके यहाँ एक दासी तीस वर्षसे रहती थी, पर उन्होंने उसका मुँह कभी नहीं देखा था। एक दिन उन्होंने दासीसे कहा—‘वहिन। भीतर जाकर उस दासीको बुला तो देना।’ दासीने विनम्र वाणीमे कहा—‘तीस वर्षसे

मैं आपके समीप रह रही हूँ, तब भी आप मुझे नहीं पहचानते। वह दासी तो मैं ही हूँ।’ संतने उत्तर दिया, ‘तीस वर्षसे भगवान्‌के अतिरिक्त मैंने स्थिरदृष्टिसे किसीको देखा ही नहीं, इसी कारण तुम्हें भी नहीं पहचानता।’ —गि० दु०

निष्कपट स्वीकृति

संत हुसेनके साथी तपस्वी मलिक दिनार थे। वे अत्यन्त सरल एवं पवित्र हृदयके महात्मा थे। एक दिन एक लीने उनको ‘कपटी’ कहकर पुकारा। अत्यन्त

आदरसे विनयपूर्वक तुरंत उन्होंने कहा—‘वहिन। इतने दिनोंमें मेरा सच्चा नाम लेकर पुकारनेवाली केवल तुम ही मिल सकी हो। तुमने मुझे ठीक पहचाना।’—गि० दु०

सुरक्षार्थ

एक सौदागर था नेशापुरमे। उसके यहाँ एक दासी थी अत्यन्त सुन्दरी। उसका एक ऋणी गाँव छोड़कर चला गया। सौदागरको तकाजोंके लिये जाना था; किंतु लावण्यमयी युवती दासीको कहाँ रख्ते, यह प्रश्न था। गाँवमे उसकी दृष्टिमें एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं था, जिसके वहाँ वह उसे रख जाता। अन्तमे उसे संत अबु उस्मान खैरीका स्मरण आया। वह उनके पास गया और दासीको अपने पास रख लेनेकी प्रार्थना की। पहले तो उन्होंने अखीकार किया, किंतु बहुत प्रार्थना करनेपर मान गये। दासी उस्मानके यहाँ आकर रहने लगी। दैवयोगसे एक दिन उस्मानकी दृष्टि दासीपर पड़ी। उसका सौन्दर्य देखकर वे मुख्य हो गये। उनका चित्त अस्थिर रहने लगा। प्रयत्न करनेपर भी उनका मन स्थिर नहीं होता, वे अशान्त रहने लगे। रह-रहकर उनका मन उस सौन्दर्यमयी पुत्तलिकाकी स्मृतिमें लग जाता। विवशतः वे धर्मचार्य अबु हाफिजके पास पहुँचे और अपनी सम्पूर्ण व्यया-कथा उन्हें सुनायी। हाफिजने कहा—‘आप संत यूसुफके पास जायें। तलाश करते हुए वे यूसुफके नगरमे पहुँचे। उन्हें देखकर लोगोंने कहा—

‘आप फकीर हैं, आपका चरित्र निर्मल है। आश्चर्य है, आप सर्वथा चरित्रहीन और विधर्मी यूसुफके पास जाना चाहते हैं। उसके पास जानेसे अपयशके अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं आ सकेगा।’

निराश होकर अबु उस्मान पुनः नेशापुर लौट आये। अबु हाफिजने सारा समाचार सुनकर पुनः समझ-बुझाकर उन्हे महात्मा यूसुफके पास भेजा। अबकी बार उन्होंने यूसुफकी और अधिक निन्दा सुनी। पर अबकी बार उन्होंने संतसे मिलनेका निश्चय कर लिया था।

पूछते हुए वे यूसुफकी झोपड़ीके समीप पहुँचे। उन्होंने देखा झोपड़ीके द्वारपर एक तेजस्वी वृद्ध पुरुष बैठ है और उसके पास बोतल और प्याला पड़ा है। उस्मानने उन्हें सलाम किया और उनके चरणोंमें बैठ गये। यूसुफने उन्हें बहुत अच्छे उपदेश दिये। भगवान्‌की भक्ति, उनका प्रेम तथा जीवनका उपयोग आदि अत्यन्त मूल्यवान् बाते बतलायीं। जिससे उस्मान बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने विनयपूर्वक निवेदन किया—‘आपकी विद्या-बुद्धि, ज्ञान-वैराग्य, तप-

तेज आदि सभी अद्भुत हैं; किंतु आप अपने नहीं देते ॥

पास बोतल और प्याल छिये लोगोंपर बुरा प्रभाव कर्ने डार्ने हैं । इसमें आपकी बड़ी निन्दा होती है ।

यूसुफने बया—‘मेरे पास पार्नीके छिये कोई चर्नन नहीं हैं । इसनिमें बोतल नाप करके इसमें पार्नी भर दिया है । पार्नी पीनेके छिये यह प्याल रख दिया है ।’

उस्मानने नियमूर्फ़ि के निवेदन किया—‘पर बद-नामी तो इर्में नहीं है । लोग व्यर्थ ही भौंति-भौंतिके आदेष घस्तने हैं । आप इने फैक क्यों

यूसुफने उत्तर दिया—‘इसीलिये तो मैंने यह बोतल और प्याल रख द्योड़ा है । चरित्रहीन एवं निन्दित प्रसिद्ध होनेके कारण ही तो मेरे पास कोई नहीं आता । मैं निश्चिन्त होकर भगवद्भजनमें लगा रहता हूँ । यदि मेरी ख्याति हो जाय तो मेरे पास भी कोई सौढागर अपनी सुन्दरी दासी नहीं रख दे । किनने लाभमें हूँ मैं, सोच लो ।’

उस्मान समझ गये । वे महात्मा यूसुफके चरणोंपर गिर पड़े और बड़ी देरतक रोते रहे ।—यिं० दु०

विवरणा

बात है नेरह नो रघ्यमें भी अधिकारी । रहोंका व्यापार करनेवाला एक जोनी या व्यवसायकी दृष्टिसे वह ग्रस्यात रोग नगरमें गया और वहोंके मन्त्रीमें भिन्ना । मन्त्रीने उम्रका स्वागत किया । मन्त्रीका अनुरोधसे जौहरी बोउंपर सगर होमर भ्रमणार्थ नगरके बाहर गया । कुछ दूर जानेवर सगर बन भिन्ना । वहौं उसने देखा मणि-मुक्ताओं एवं गृन्धगान् रलोंसे सजा हुआ एक मण्डन है और मण्डपके आगे शुसञ्जित सैनिकदल चारों ओर तूमकर प्रदक्षिणा कर रहा है । प्रदक्षिणाके बाद सैनिकदलने रोमन भागमें कुछ कड़ा और वह एक ओंग चन्द्र गया । इनके अनन्तर उन्नज्ञ परिधान पहने दृद्धोंका समृह आया । उमने भी बंसा ही किया । इसके बाद चार सौ पण्डित आये । उन्होंने भी मण्डपकी प्रदक्षिणा की ओर कुछ बोलकर चले गये । इसके अनन्तर दो सौ रुपवती शुवतियाँ मणि-मुक्ताओंसे भरे थाल छिये आयीं और वे भी प्रदक्षिणाकर कुछ बोलकर चली गयीं । इसके बाद मुख्य मन्त्रीके साथ सम्भाटने प्रवेश किया ओर वे भी उसी प्रकार बापस चले गये ।

जौहरी चकित था । वह कुछ भी नहीं समझ पा

रहा था कि यह क्या हो रहा है । उसने अपने मित्र मन्त्रीसे पूछा । मन्त्रीने बताया—सम्भाटके धन-वैभवकी सीमा नहीं । किंतु उनके एक ही पुत्र था । भरी जगानीमें चल बसा । यहाँ उसकी कब्र है । प्रतिर्वर्ष सम्भाट अपने सैनिकों तथा पारिवारिक व्यक्तियोंके साथ बालकके मृत्यु-दिवसपर आते हैं और जो कुछ करते हैं, वह तुमने देखा ही है । सैनिकोंने कहा था—‘हे राजकुमार ! भूतलपर कोई भी अमित गति होती तो उसका ध्वसकर हम तुम्हें निश्चय ही अपने पास ले आते, पर मृत्युपर अपना कोई भी वश नहीं । हम सर्वथा प्रिय थे, इसी कारण तुम्हारी रक्षा नहीं कर सके ।’

दृद्धसमुदायने कहा था—‘वत्स ! यदि हमारी आशीर्वामें इतनी शक्ति होती तो इस प्रकार धरतीमें तुम्हें सोने हम नहीं देख सकते, पर कराल कालके सम्मुख हमारी आशीर्वाकी एक नहीं चल पाती ।’

पण्डिनोंने दुखी मनसे कहा—‘राजकुमार ! ज्ञान-गिजान अयत्रा पाण्डित्यसे तुम्हारा जीवन सुरक्षित रह पाता तो हम तुम्हें जाने नहीं देते, पर मृत्युपर हमारा कोई वश नहीं ।’

सौन्दर्य-पुत्तलिकाओं दुखी होकर कहा था—
‘अन्नदाता ! धन-सम्पत्ति अथवा रूप-लावण्य-यौवनसे
हम तुम्हारी रक्षा कर सकतीं तो अपनी बलि दे देतीं, पर
जीवन-मरणकी नियामिका शक्तिमें अपना कोई वश नहीं।
वहाँ धन-सम्पत्ति, रूप-लावण्य-यौवनका कोई मूल्य नहीं।’

अन्तमे सप्ताटने कहा था—‘प्राणप्रिय पुत्र ! अमित
वल-सम्पन्न सैनिक, तपोनिधि वयोवृद्ध-समुदाय, ज्ञान-
विज्ञान-सम्पन्न विद्वत्-समुदाय और रूप-लावण्य-यौवन-
सम्पन्न कोमलाङ्गियाँ—जगत्की सभी वस्तु तो मैं यहाँ
ले आया, किंतु जो कुछ हो गया है, उसे मिटानेकी

सामर्थ्य तेरे इस पितामे ही नहीं, विश्वकी सम्पूर्ण शक्तिमें
भी नहीं है। वह शक्ति अद्भुत है।’

मन्त्रीकी इन बातोंको सुनकर जौहरीका हृदय अशान्त
हो गया। ससार उन्हे जैसे काटने दौड़ रहा था। व्यव-
साय आदिका सारा काम छोड़कर वे बसरा भागे और
उन्होंने प्रतिज्ञा की कि ‘जबतक मेरे काम-क्रोधादि
विकार सर्वथा नहीं मिट जायेंगे, तबतक मैं जगत्के
किसी कार्यमें सम्मिलित नहीं होऊँगा। न कभी हँसूँगा
और न मौज-शौक कर सकूँगा।’ उसी समयसे वे प्रमु-
स्मरणमें लग गये। —शि० दु०

संत-स्वभाव

एक संत कपड़े सीकर अपना निर्वाह करते थे।
एक ऐसा व्यक्ति उस नगरमें था जो बहुत कपड़े सिल्वाता
था और उनसे ही सिल्वाता था, किंतु सदा सिलाईके
रूपमें खोटे सिक्के ही देता था। संत चुपचाप उसके
सिक्के ले लेते थे। एक बार वे सत कहीं बाहर गये थे।
उनकी दूकानपर उनका सेवक था। वह व्यक्ति सिलाई
देने आया। सेवकने सिक्का देखा और लौटा दिया—‘यह

खोटा है महोदय ! दूसरा दीजिये।’

संत लौटे तो सेवकने कहा—‘अमुक व्यक्ति खोटे
सिक्के देकर मुझे ठाने आया था।’

सत बोले—‘तुमने सिक्का ले क्यों नहीं लिया। वह
तो सदा मुझे खोटे सिक्के ही देता है और उन्हें लेकर
मै भूमिमें गाड़ देता हूँ। मै नहीं लूँ तो कोई दूसरा
व्यक्ति ठग जायगा।’ —सु०सिं०

सहनशीलता

‘सहनशीलता किसे कहते हैं ?’ किसीने हुसेन निकले, उसे सहनशील समझना चाहिये।
मंसूरसे प्रश्न किया।

उन्होंने उत्तर दिया—‘हाथ-पैर काटकर शरीरको शूलीपर
लटका दिया जाय, फिर भी जिसके मुँहसे उफ् तक नहीं

इतिहास साक्षी है, जीवनके अन्तिम कालमें इन्होंने
इसी प्रकारकी सहनशीलताका परिचय दिया था।
मंसूरकी शूली प्रसिद्ध है। —शि० दु०

सुहृद्

एक दिन संत इब्राहिमने रास्तेमें एक मूर्छित
शराबीको देखा। उसका गरीर धूलमें सन गया था,
मुँहमें धूल लिपटी हुई थी और उसपर मक्खियाँ भिन-
भिना रही थीं। उन्होंने वडे प्यारसे उसे गोदमें उठाकर
पानीसे उसका मुँह धोया और बोले—‘भाई ! जिस मुँहसे

भगवान्‌का पवित्र नाम लेना चाहिये, उसे तू इतना
गंदा रखता है ?’ होश आनेपर जब उस व्यक्तिको यह
समाचार विदित हुआ, तब उसके मनमें बहुत पश्चात्ताप
हुआ और उसने सदाके लिये शराब छोड़ दी। दो-
एक दिन बाद संतने ईश्वरीय वाणी सुनी—‘अरे

इब्राहिम ! तूने केवल एक दिन मूर्छिन जराबीका मुँह अन्त करण बोया करता हूँ ?” इब्राहिम चिल्ला उठे—धोया है और मैं तो प्रतिदिन, प्रनिक्षण तेरा मठिन ‘प्रभो ! तुमसे बढ़कर सुहृद् और कौन है ?”—शिंदु०

मनुष्यका मांस

एक बारका बात है। एक आठमी मस्तिष्ठमें जाकर भीख माँग रहा था। उमे देखकर जुन्नेदने कहा—‘तुम नीरोग और बलवान् हो, परिश्रम करने योग्य हो, फिर भीख किसलिये माँग रहे हो’” उसी रातको उन्होंने स्वप्न देखा कि कपड़ेसे ढके हुए वर्ननसे आवाज आ रही है—‘ले खा, ले खा।’ चकित होकर जुन्नेदने कपड़ा उठाया तो उसमें भिंडीगीका गव दिखायी दिया। घबराकर उन्होंने कहा—‘मैं आठमीका मास कैंसे खाऊँ ?’

उम पात्रमे पुन आवाज आयी—‘आठमीका मास तो तूने आज सबरे मस्तिष्ठमें खा ही लिया था।’

जुन्नेद सच्चे उपासक थे। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि आज मस्तिष्ठमें भिंडुकका अपमान करना पड़े। —शिंदु०

करनेका यह परिणाम है। उन्हें मन-ही-मन पश्चा-ताप होने लगा। वे दो दिनतक भगवान्तकी उपासनामें उगे रहे। इसके बाद उस भिंडुकको हूँडनेके लिये निकले। उन्होंने देखा, वह भिंडुक नदी-किनारे हरी-हरी धासोंको धोकर खा रहा है। जुन्नेदको देखने ही भिंडुक बोल उठा—‘मस्तिष्ठमें तूने मुझे पीड़ित किया था, उसका प्रायश्चित्त कर लिया ?’

‘हाँ,’ जुन्नेदने कहा, ‘मुझसे बड़ी भूल हुई थी। मैंने प्रायश्चित्त कर लिया है।’

भिंडुकने सजग करते हुए कहा—‘तो ठीक है, अब लौट जा। मेरा प्रायश्चित्त तो वह ईंव्र स्तीकार करता है। साक्षात् रहना, कहीं फिर प्रायश्चित्त न

संतका व्यवहार

उमा संत कड इहड चढ़ाई।

मंड करत जो करइ भलाई॥

—तुलसीदास

नीरव निरीय। सन वायजीड कविस्तान जा रहे थे। गस्तेमें उन्होंने देखा, एक स्वस्य तरुण तँवूरा वजाकर विषय-सुख ले रहा था। प्रभो ! दू ही महान् और अमर है। उसके समीरसे यह कहते हुए वे निकल गये।

बाबा पड़ी युवकके बिलासमें। उसने तँवूरा वायजीडके सिरपर दे माग। वायजीडका सिर तो फटा हीं, उसका तँवूरा भी टूट गया। पर सत नम्रभावसे आगे चले गये।

दूसरे दिन उन्होंने अपने एक गिर्यको उस युवकके पास भेजा। उसके साथ कुछ रुपये और एक याल मिठाड़ीयाँ थीं। सतके आदेगानुसार गिर्यने युवकसे कहा—‘वायजीडने अन्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया है कि आपका तँवूरा गन रात्रिमें टूट गया था, कृपया उसका मूल्य स्तीकार कर लीजिये और वह मिठाई दा लीजिये, जिससे आपका क्रोध आन्त हो जाय।’

सतका यह व्यवहार देखकर विषयगामी युवकका हृदय द्रवित हो गया। दौड़ता हुआ आकर वह संत-चरणोंमें गिर पड़ा और रो-रोकर क्षमा-याचना करने लगा। उसका जीवन परिवर्तित हो गया। —शिंदु०

क्रोधहीनताका प्रमाण

एक बार एक पुण्यात्मा गृहस्थके घर एक अतिथि आये। उसके शरीरपर सारे कपड़े काले थे। गृहस्थने तनिक विन्नतासे कहा—तुमने काले कपड़े क्यों पहन रखे हैं?

मेरे काम, क्रोबादि मित्रोंकी मृत्यु हो गयी है। उन्होंके शोकमें ये काले वस्त्र धारण कर लिये हैं। अनिन्दिते उत्तर दिया।

गृहस्थने उक्त अतिथिको घरमें बाहर निकाल देनेका आडेड़ दिया। नौकरने तकाल आज्ञा-प्राप्तन की।

योड़ी देर बाद उन्होंने उस अतिथिको बापस बुलाया और पास आते ही फिर निकाल देनेकी आज्ञा दी। इस प्रकार गृहस्थने उक्त अतिथिको सत्तर बार बुलाया और प्रत्येक बार उसे अमानित करके नौकरसे बाहर निकलवा दिया। किंतु अतिथिकी आकृतिपर तनिक भी क्रोब या विपादके भाव परिलक्षित नहीं हुए।

अत्तमे गृहस्थने आगे बढ़कर अतिथिका माया सूँधा और बड़े ही चिनयसे कहा—सचमुच आप कावे (काले वस्त्र) पहननेके अधिकारी हैं, क्योंकि सत्तर बार अपमानके साय घरसे बाहर निकाल देनेपर भी आपके मनोभावमें परिवर्तन नहीं हुआ। आप सच्चे चिनयी तथा क्षमाशील भक्त हैं, मैंने आपको क्रोध दिलानेके प्रयत्न करनेमें कोई कसर नहीं रखी, पर आखिर मैं ही हारा।

अतिथि बोले—बस करो, बस करो; अधिक प्रशंसा मत करो। मुझसे अधिक स्वभावसे ही क्षमाशील और धर्मात्मा तो बेचारे कुत्ते होते हैं जो हजारों बार बुलाने और दुल्कारते रहनेपर भी बराबर आते-जाते रहते हैं। यह तो कुत्तोंका धर्म है। इसमें प्रशंसाकी कौन-सी बात है।

यों कहकर अतिथि अपने प्रशंसकोंका मुँह पकड़ लिया। —गि० दु०

साधुता

संत जाफर सादिकका नाम प्रसिद्ध है। एक बार एक आदर्मीके रूपयोंकी थैली चोरी चली गयी। भ्रमवश उसने इन्हें पकड़ लिया।

आपने पूछा—‘यैलीमें कुछ किनने रुपये थे?’
‘एक हजार’ उसने बताया।

आपने अगर्ना ओरसे एक हजार रुपये उसे दे दिये। कुछ समय बाद असली चोर पकड़ा गया, रुपयेका लगा। —गि० दु०

स्वामी धवराया और एक हजार रुपये ले जाकर उनके चरणोंपर रखकर भ्रमके लिये उसने क्षमा-याचना की।

आपने बड़ी नम्रतासे उत्तर दिया—‘दी हुई वस्तु मैं बापस नहीं लेना।’

आपके साधुतापूर्ण उज्ज्वल व्यक्तित्वपर वह मुख हो गया और अपने पूर्वकृत्यपर पश्चात्ताप करने लगा। —गि० दु०

सहिष्णुता

अबु उस्मान हयरी नामक एक सत हो गये हैं। एक दिनकी बात है। रात्से एक आदर्मीने कोयलेकी बेकरी इनके ऊपर ढाँड़े दी। आपके परिचित सज्जन

क्रोधित हो उसे ढॉटने लगे। आपने उन लोगोंको रोकते हुए कहा—‘वन्धुओ! यह तो धन्यवादका पात्र है। मेरेजैसे प्राणीपर तो प्रज्जलित अज्ञारोंकी बृष्टि होनी

चाहिये, यह वैचारा तो ठड़ा कोयला ही फेंक रहा फेंकनेवाला लजित होकर मन-हौमन पश्चात्तापकी है। इसने तो मुझपर उपकार ही किया है।' कोयला जालामे जलने लगा।—सु० ड०

संतका सदूच्यवहार

हजरत अलीका एक सेवक उनसे झागड़कर भाग गया था। एक दिन जब कुफा गहरमें अली सवेरेकी नमाज पढ़ रहे थे, वह छिपकर मस्जिदमें घुस आया। सभी लोग नमाज पढ़नेमें तल्लीन थे। अवसर पाकर उस नौकरने तल्लारका एक भरपूर प्रहार अलीपर किया और भाग खड़ा हुआ।

लोगोंने गीघतापूर्वक नमाज पूरी की। हजरत अलीको भारी चोट लगी थी। कुछ लोग उनकी सेवामें लग गये और कुछ उस हत्यारेको पकड़ने दौड़े। धावमें-

से अधिक रक्त निकल जानेके कारण अलीको प्यास लगी। उनके लिये लोगोंने शरवत बनवाया। इतनी देरमें दूसरे लोग दौड़कर उस अपराधीको पकड़ चुके थे। वे उमे अली साहबके सामने ले आये।

हजरत अलीने कहा—‘यह शरवत पहिले मेरे मारनेवालेको दो। वह दौड़ते-दौड़ते थक गया है, हाँफ रहा है और पसीनेसे छथपथ है। अवश्य वह प्यासा होगा।’

लोगोंने उसे शरवत पिलाया और अलीने उसे क्षमा कर दिया।—सु० सिं०

क्रोध असुर है

एक सत एक बार अपने एक अनुयायीके समीप बैठे थे। अचानक एक दुष्ट मनुष्य वहाँ आया और वह उस व्यक्तिको दुर्वचन कहने लगा, जिसके समीप वे सत साहब बैठे थे। उस सत्पुरुषने कुछ देर तो उसके कठोर वचन सहे, किंतु अन्तमें उसे भी क्रोध आ गया और वह भी उत्तर देने लगा। यह देखकर सत उठ खड़े हुए।

वह व्यक्ति बोला—‘जबतक यह दुष्ट मुझे गालियाँ

दे रहा था, तबतक तो आप बैठे रहे और जब मैं उत्तर दे रहा हूँ तो आप उठकर क्यों जा रहे हैं?’

सत बोले—‘जबतक तुम मौन थे, तबतक तो देवता तुम्हारी ओरसे उत्तर देते थे, किंतु जब तुम बोलने लगे तो तुम्हारे भीतर देवताओंके बदले क्रोध आ बैठा। क्रोध तो असुर है और असुरोंका साथ छोड़ ही देना चाहिये, इसलिये मैं जा रहा हूँ।’

क्या यह तुझे शोभा देगा ?

प्रसिद्ध वादशाह हारून-अल-रशीदके एक लड़केने एक दिन आकर अपने पितासे कहा कि ‘अमुक सेनापतिके लड़केने मुझको माँकी गाली दी है।’ हारूनने अपने भन्त्रियोंसे पूछा कि ‘इस मामलेमें क्या करना उचित है ?’ किसीने कहा ‘उस बदमाशकी जीम निकलवा लेनी चाहिये।’ किसीने कहा ‘उसे दण्ड देकर देशनिकाला दे देना चाहिये।’ इसपर हारूनने अपने पुत्रसे कहा—‘वेदा ! दू यदि अपराधीको क्षमा कर सके तब तो सबसे अच्छी बात है। क्रोधका कारण उपस्थित रहनेपर भी

किसीने कहा ‘उस बदमाशकी जीम निकलवा लेनी चाहिये।’ किसीने कहा ‘उसे दण्ड देकर देशनिकाला दे देना चाहिये।’ इसपर हारूनने अपने पुत्रसे कहा—‘वेदा ! दू यदि अपराधीको क्षमा कर सके तब तो सबसे अच्छी बात है। क्रोधका कारण उपस्थित रहनेपर भी

जो पुरुष शान्त रहकर बातचीत कर सकता है, वही तू भी उसे वही गाली दे सकता है; परंतु यह क्या तुझे सच्चा वीर है। परंतु यदि तुझमे ऐसी शक्ति न हो तो शोभा देगा ?'

दायें हाथका दिया बायाँ हाथ भी न जान पाये

खर्गके देवदूतोंने भगवान्‌से एक दिन प्रश्न किया—
‘प्रभो ! क्या संसारमें ऐसी भी कोई वस्तु है जो चट्ठानोंसे अधिक कठोर हो ?’

भगवान्‌ने उत्तर दिया कि ‘हाँ, लोहा चट्ठानोंसे अधिक कठोर है, क्योंकि यह उन्हे तोड़ डालता है।’

‘और क्या ऐसी भी कोई वस्तु है जो लोहे से भी कठोर और मजबूत हो ?’ देवदूतोंने पुन पूछा।

‘हाँ, अग्नि ! क्योंकि यह उसे पिघला देता है।’ भगवान्‌ने उत्तर दिया।

‘और अग्निसे कठोर क्या है ?’ देवदूतोंका पुन प्रश्न हुआ।

‘पानी, जो अग्निको दुःख डालता है।’ उत्तर रहा प्रभुका।

‘और पानीको भी मात करनेवाली चीज क्या है ?’

देवदूतोंका प्रश्न बढ़ता ही गया।

‘हवा जो जलके प्रवाहको तरङ्गके रूपमे परिणत कर डालता है, उसके उत्पत्तिस्थान मेघोंको भी जब चाहे एकत्र या तितर-तितर कर सकता है।’

‘और क्या प्रभो ! अब भी कोई चीज ऐसी है जो इनकी अपेक्षा भी अधिक बलवत्तर हो ?’

‘हाँ, हाँ, वह दयालु हृदय, जो इतनी गुप्त रीतिसे दान देता है, इतना छिपाकर देता है कि जिसका बायों हाय भी नहीं जान पाता कि दाहिना हाथ क्या कर रहा है ?’ (फिर दूसरे तो जान ही क्या पायेंगे ?—) (Yes, the kind heart that gives alms is secret, not letting the left hand know what the right hand is doing.) वह इस वायुकी अपेक्षा भी बलवत्तर है। सबसे बलवत्तर है, सबसे महान् है।—जा० श०

अच्छा पैसा ही अच्छे काममें लगता है

एक ईश्वरविश्वासी, त्यागी महात्मा थे; वे किसीसे भीख नहीं माँगते, टोपी सीकर अपना गुजारा करते। एक टोपीकी कीमत सिर्फ दो पैसे लेते। इनमेंसे जो याचक पहले मिलता, उसे एक पैसा दे देते। वचे हुए एक पैसेसे पेट भरते। इस प्रकार जबतक दोनों पैसे वरत नहीं जाते, तबतक नयी टोपी नहीं सीते। भजन ही करते रहते।

इनके एक धनी शिष्य था, उसके पास धर्मदेवी निकाली हुई कुछ रकम थी। उसने एक दिन पूछा, ‘भगवन् ! मैं किसको दान करूँ ?’ महात्माने कहा, ‘जिसे सुपात्र समझो, उसीको दान करो।’ शिष्यने

रास्तेमे एक गरीब अधेको देखा और उसे सुपात्र समझकर एक सोनेकी मोहर दे दी। दूसरे दिन उसी रास्तेसे शिष्य फिर निकला। पहले दिनवाला अंधा एक दूसरे अधेसे कह रहा था कि ‘कल एक आदमीने मुझको एक सोनेकी मोहर दी थी, मैंने उससे खूब शराब पी और रातको अमुक वेश्याके यहाँ जाकर आनन्द लेता।’

शिष्यको यह सुनकर बड़ा खेद हुआ। उसने महात्माके पास आकर सारा हाल कहा। महात्मा उसके हाथमे एक पैसा देकर बोले—‘जा, जो सबसे पहले मिले उसीको पैसा दे देना।’ यह पैसा टोपी सीकर कमाया हुआ था।

शिष्य पैसा लेकर निकला, उमे एक मनुष्य मिला, उसने उसको पैसा दे दिया और उसके पीछे-पीछे चलना शुरू किया। वह मनुष्य पक्का निर्जन स्थानमें गया और उसने अपने कपड़ोंमें छिपाये हुए एक मरे पक्षीको निकालकर फेंक दिया। शिष्यने उसमे पूछा कि 'तुमने मरे पक्षीको कपड़ेमें क्यों छिपाया था और अब क्यों निकालकर फेंक दिया?' उसने कहा—'आज सात दिनमें मेरे कुटुम्बको दानाग्रानी नहीं मिल। भीख माँगना मुझे पस्त नहीं, आज इस जगह मरे पक्षीको पड़ा देख मैंने लाचार होकर अपनी और परिवारकी मूल मिटानेके लिये उठा लिया था और इसे लेकर मैं घर जा रहा था। आपने मुझे बिना ही माँगे पैसा दे दिया,

इसलिये अब मुझे इस मरे पक्षीकी जखरत नहीं रही। अतएव जहाँमे उठाया था, वही लाकर ढाल दिया।'

शिष्यको उसकी बात सुनकर बडा अचरज हुआ। उसने महात्माके पास जाकर सब वृत्तान्त कहा। महात्मा बोले—'यह स्पष्ट है कि तुमने दुराचारियोंके साथ मिलकर अन्यायपूर्वक धन कमाया होगा; इसीसे उस धनका दान दुराचारी अंधेको दिया गया और उसने उससे सुरापान और वेद्याग्रमन किया। मेरे न्यायपूर्वक कमाये हुए एक पैसेने एक कुटुम्बको निपिद्ध आहारसे बचा लिया। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। अच्छा पैसा ही अच्छे काममें लगता है।'

धनके दुरुपयोगका परिणाम

बहुन दिनोंकी बात है। वगदादमें हसन नामका एक व्यक्ति रहता था। वह खलीफाके यहाँ नौकर था। उसने नौकरीमें बहुत धन कमाया और सोने-चॉदीकी व्यास बढ़ती देखकर वह वर्डी दीनता और सादगीसे जीवन विताने लगा। धीरे-धीरे उसकी आलच बढ़ने लगी। उसने अपनी सारी कमाई जमीनमें गाइ दी।

'फानिमा ! तुम बाजारमें लोगोंसे कह दो कि खलीफाने मुझे कारागारमें ढाल दिया है। यह सुनकर लोग तुम्हारे प्रति सहानुभूति प्रकट करेंगे और भोजन तथा जीवन-निर्वाहके लिये रुपये-पैसे देंगे। रही मेरी बात सो मैं रातमें घर आया करूँगा।' हसनने अपनी पलीको समझाया। इस प्रकार धन कमानेका एक और उपाय उमे सूझ पड़ा। लोभ तो सदा बढ़ता ही जाता है। हसनको इस उपायमें भी सतोप न हुआ। उसने अपने सम्बन्धियोंको भी धोखा देना आरम्भ किया। ज्यो-ज्यों धन बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों उसकी कृपणताके परख निकलने लगे और बात यहाँतक आ

पहुँची कि खलीफाके महलसे वह नित्यप्रति एक-एक रत लाने लगा।

'इन रतोंको स्वर्ण-मुद्राओंसे बदलकर हमलोग वगदादसे दूर भाग चलेंगे। सुखपूर्वक जीवन वितायेंगे।' हसनने फानिमासे कहा।

X X X

'बाजारमें तुम्हारी पलीने राजमहलसे चोरी गया एक रत बेचना चाहा। यह बात साफ है कि तुम चोर हो। तुम्हारे पास खाने-पीनेके लिये काफी धन था, पर तुमने उसका दुरुपयोग तो किया ही, साथ-ही-साथ बाजारवालों, सम्बन्धियों और मुश्किलोंको धोखा दिया। इतने बड़े अपराधका दण्ड यह है कि बाजारवालोंको तुम धन दो, सम्बन्धियोंको ठगनेके अपराधमें तुम्हें सिरसे पैरतक पीटा जाय और राजमहलमें चोरी करनेके लिये तुम दोनोंको शूलीपर चढ़ा दिया जाय।' खलीफाने न्यायालयका निर्णय सुनाया। पर दोनोंके बहुत चिल्हन-घिरियानेपर उन्होंने आदेश दिया कि वैश्मानी और बोखेसे कमाये धनको अपने गलेमें बाँधकर घर जाओ। सारे बाजारमें

उनकी ओरसे घोषणा कर दी गयी कि 'कोई व्यक्ति हसन और उसकी पतीको सोनेके सिक्कोंके बदले खाने-पीने और पहनने-ओढ़नेका कोई सामान न दे।'

धर आनेपर हसनदम्पति बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने सिक्कोंको गिनना आरम्भ किया। दो-एक दिनके बाद वे भूखों मरने लगे। उनकी समझमें धनके दुरुपयोगका परिणाम आ गया। खलीफाके न्यायालयमें

उपस्थित होकर दोनोंने सारी सम्पत्ति रख दी। खलीफाने बाजारवालों तथा सम्बन्धियोंमें उसका समवितरण कर दिया।

हसन-दम्पति अपनी कमाईपर निर्भर होकर सरलता, निष्कपटता और सच्चाईसे जीवन बिताने लगे। उन्हें इस बातका ज्ञान हो गया कि धन एकत्र करनेमें नहीं, उसके सदुपयोगमें महान् लाभ है। —रा० श्री०

दरिद्र कौन है ?

एक बारकी बात है। एक संतके पास एक धनवान्‌ने रुपयोंकी थैली खोलकर उसे स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। संतने उत्तर दिया—

'अत्यन्त निर्धन और दरिद्रका धन मैं स्वीकार नहीं करता।'

'पर मैं तो धनवान् हूँ। लाखों रुपये मेरे पास हैं।' मुदितमन धनवान्‌ने उत्तर दिया।

'धनकी और कामना तुम्हें है या नहीं ?' संतने

प्रश्न किया। 'अवश्य है।' धनवान्‌ने संतके सम्मुख मिथ्याभाषण नहीं किया।

'जिन्हें धनकी कामना है, उन्हें रात-दिन धन-संचयकी चिन्ता रहती है। धनके लिये नाना प्रकारके अपकर्म करने पड़ते हैं। उनके-जैसा कोई दरिद्र नहीं।'

धनवान् धनसहित वापस लौट गया। —शि० दु०

स्वावलम्बीका बल

प्राचीन अरबनिवासियोंमें हातिम-ताईका नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। वह अपनी अमित दातृत्व-शक्ति किंवा सतत दानशीलताके लिये बड़ा विख्यात था।

एक दिन उसके मित्रोंने उससे पूछा, 'हातिम ! क्या तुम किसी ऐसे व्यक्तिको भी जानते हो जो तुम्हारी अपेक्षा भी अतिशय श्रेष्ठ रहा हो ?'

• 'हाँ' हातिमने उत्तर दिया।

'वह कौन था ?' मित्रोंने पूछा।

हातिमने कहा—'एक दिन मैंने बहुत बड़ा भोज दिया था और उसमें हजारों आदमियोंको निमन्त्रित किया। उसी दिन कुछ समय बाद कुछ अरब मुरकोंके साथ मैं वहाँकी मरुस्थलीमें वनस्थलीकी ओर धूमने निकल गया। वहाँ मैंने एक लकड़हारेको देखा जिसने

एक बोझा कॉट काट रखा था। मैंने उससे पूछा—'भाई ! तुम हातिमके भोजमे आज क्यों नहीं सम्मिलित होने चले गये, जो यहाँ इतना श्रम कर रहे हो ?' उसने उत्तर दिया 'जो अपने जीविकोपर्जनमे खयं समर्थ हैं, उन्हे हातिमकी दानशीलता या भोजकी कोई अपेक्षा नहीं है।' हातिमने बतलाया, 'मित्रो ! मैं उस लकड़हारेको अपनी अपेक्षा सर्वथा श्रेष्ठ मानता हूँ, क्योंकि मेरी दृष्टिमें उन दानियोंकी अपेक्षा जो दूसरोंका धन लेकर दान देते हैं या उन व्यक्तियोंकी अपेक्षा जो दूसरोंके भोजके लिये सदा मुँह ताकते रहते हैं, खयं परिश्रम कर उससे अपना पोषण करनेवाला व्यक्ति अतिशय श्रेष्ठ है।'

हातिमके मित्र इसे सुनकर लजित हो गये। —जा० श०

नित्य अभिन्न

(उमा-महेश्वर)

सदा शिवाना परिभूपणायै सदा शिवानां परिभूपणाय ।

शिवान्वितायै च शिवान्विताय नम्. शिवायै च नम्. शिवाय ॥

यह भी एक कथा ही है; किंतु ऐसी कथा नहीं, जो हुई और समाप्त हो गयी। घटना नहीं—सत्य है यह और सत्य शाश्वत होता है।

सृष्टि थी नहीं। प्रलय था—ऐसा भी नहीं कह सकते। प्रलय तो सृष्टिकी अपेक्षासे होता है। एक अनिर्वचनीय स्थिति थी। एक सच्चिदानन्दघन सत्ता और वह सत्ता सत्के साथ चित् है तथा आनन्दरूप भी है तो यह सत्तःसिद्ध है कि शक्ति-शक्तिमान् समन्वित है। शक्ति-शक्तिमान् जहाँ नित्य अभिन्न हैं। जहाँ आनन्द अनुभूति-स्वरूप है।

हमारी यह सृष्टि व्यक्त हुई। सृष्टिका संकल्प और संचालन एक अनिर्वचनीय शक्तिने प्रारम्भ किया। वही शक्ति-शक्तिमान्, वही नित्य अभिन्न सच्चिदानन्दघन। परंतु जगत्के जीव कहते हैं—‘वे हमारे पिता-माता हैं।’ इस स्वीकृतिमें जीवों-की सार्थकता है।

‘जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥’

सृष्टि चल रही है। सृष्टिका साक्षित्व और पालन दोनों चल रहा है। चल रहा है उसी नित्य अभिन्न परम तत्त्व एवं पराशक्तिके द्वारा। हम जगत्के प्राणी कहते हैं—‘वे हमारे ब्राता हैं, आश्रय हैं।’ इस स्वीकृतिमें हमारा मन्त्रल है।

समय आता है—ब्रह्माण्डका यह खिलौना किसी अचिन्त्यके उद्दाम नृत्यमें चूर-चूर हो उठता है। किसीकी नेत्रज्वाला इस पिण्डको भस्सराशि बना देती है। प्रलयावधिमें यह बुलबुला विलीन हो जाता है। अपने-आपमें स्थित हो जाता है वह महाकाल और उससे नित्य अभिन्न है उनकी क्रियाशक्ति महाकाली। मानव कहते हैं कि ‘वे मुक्तिप्रदाता हैं।’ इस स्वीकृतिमें मानवकी मुक्ति निहित है। वह मृत्युसे परिव्राण पा लेता है उन परम तत्त्वके सरणसे।

जगत्की यह नित्य-कथा जिनमें निहित है, जगत्के उन आदिकारण उमा-महेश्वरके चरणोंमें चार-चार प्रणिपात।

मित्र चोर निकला

एशियाके दमक नगरमें मुस्तफा नामका एक धनी और बुद्धिमान् व्यापारी रहता था। वह अपने पुत्र सैयदको दूरदर्शी और विचक्षण बनाना चाहता था। सैयद अपने मित्रमें, जो एक आरमनी (अरमनियानिवासी) था, वडा विश्वास करता था। कई बार उस मित्रने रूपये-मैसेके सम्बन्धमें उसे धोखा भी दिया, पर सैयदकी मित्रतामें कोई कमी नहीं आयी।

एक समय मुस्तफा और सैयद दोनोंको व्यापारके सम्बन्धमें बगदाद जाना था।

‘मैं अपनी अपार सम्पत्ति किसके भरोसे छोड़कर बगदाद चलूँ !’ मुस्तफाने सैयदसे पूछा।

‘पिताजी ! मेरे मित्रसे बढ़कर दूसरा ईमानदार आदमी ही कौन मिल सकता है ?’ सैयदने उसी आरमनीको सम्पत्ति सौंपनेकी सम्मति दी।

‘तो फिर इस बक्सको अपने मित्रके यहाँ पहुँचा दो !’ मुस्तफाका आदेश पाते ही बक्स आरमनीके यहाँ सैयदने पहुँचा दिया।

× × ×

दो महीने बाद दोनों अपार धन कमाकर बगदादसे

दमक लौट आये। मुस्तफाने—बक्स लानेके लिये सैयदको मित्रके घर भेजा।

‘आपने मेरे मित्रका अविश्वास किया; यह अपमान असहा है। आपने बक्समें ककड़-पत्थर भरकर उसको मेरे मित्रके पास भेजा था।’ सैयद कुछ ही क्षणोंमें अपने मित्रके घरसे लौट आया, वह क्रोधोन्मत्त था पर मुस्तफाका चित्त शान्त और खस्थ था।

‘तुम्हारे ईमानदार मित्रको ककड़-पत्थरका पता चला किस तरह ? निस्सदेह उसने तीनों ताले तोड़कर बक्स खोल लिया था। तुम्हारी समझमें अब यह बात आ गयी होगी कि यह अच्छा ही हुआ कि मैंने अशर्फ़ी और मोहरोंके स्थानपर ककड़-पत्थर ही रख दिये थे।’ मुस्तफाने सैयदकी ओर देखा।

‘पिताजी ! मुझे क्षमा कीजिये। यह मेरी बहुत बड़ी भूल थी कि मैं आपके बचनकी उपेक्षा कर उसका विश्वास किया करता था। आपकी कृपा और दूरदर्शितासे मुझे पता लग गया कि बाहर-बाहर मित्र दीखनेवाले किस तरह गला काट लिया करते हैं। वास्तवमें वह चोर निकला।’ सैयदका मस्तक लजासे नत था मुस्तफाके सामने। —रा० श्री०

आप सुलतान कैसे हुए ?

बादशाह होनेके पश्चात् एक बार किसीने हसनसे पूछा—‘आपके पास न तो पर्याप्त धन था और न सेना थी, फिर आप सुलतान कैसे हो गये ?’

हसनने उत्तर दिया—‘मित्रोंके प्रति मेरा सच्चा प्रेम, शत्रुके प्रति भी मेरी उदारता और प्रत्येक मनुष्यके प्रति

मेरा सदूभाव—इतनी सामग्री क्या सुलतान होनेके लिये पर्याप्त नहीं है ?’

उन्नतिकी कामना रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके लिये हसनका यह सूत्र खर्णसूत्र ही है। —मु० सिं०

सद्भावना-रक्षा

अद्भुत डाकू था वह। फकीरोंके वेशमें रहता, वहाँसे जाने लगा। सरदारने पुकारा—‘यहाँ कैसे हाथमें उसके तसवीह रहती। वह डाका डालता, पर अधिकाश धन गरीबोंमें बाँट देता। इतना ही नहीं, प्रत्येक शुक्रवारको वह नमाज पढ़ता था। उसके दलके प्रत्येक सदस्यको शुक्रवारकी नमाज आवश्यक थी। आज्ञाल्लङ्घन करनेवाला टलसे पृथक् कर दिया जाता था।

एक बार व्यापारियोंका समुदाय उसी पथमें जा रहा था, जिस्र डाकुओंका यह दल रहता था। डाकुओंने छठना शुरू कर दिया। एक व्यापारी अपने धनको लेकर छिपानेके लिये भागता हुआ, उस तबूमें जा पहुँचा, जहाँ डाकुओंका सरदार फकीरके वेशमें तसवीह लिये बैठा था। व्यापारीने कहा—‘मैं बड़ी विपत्तिमें पड़ गया हूँ। सारा धन डाकू छट रहे हैं। कृपापूर्वक थाप इसे अपने पास रख लें। बादमें मैं इसे ले जाऊँगा।’ सरदारने कहा—‘उस कोनेमें रख दो।’ धनकी थैली रखकर व्यापारी चला गया।

कुछ देर बाद जब डाकू समस्त व्यापारियोंको छटकर चले गये, तब वह व्यापारी अपना धन लेनेके लिये उस तबूमें आया। किंतु तबूके भीतर उसने जो कुछ देखा, उससे उसका शरीर काँपने लगा। आकृति-पर स्वेद-कण झलकने लगे। वहाँ डाकू छटके बनको बाँट रहे थे। व्यापारी डाकूके ही पास धन रखनेकी अपनी भूलपर मन-ही-मन पछता रहा था। वह धीरेसे

वहाँसे जाने लगा। सरदारने पुकारा—‘यहाँ कैसे आया था?’

व्यापारीने कौपते हुए कहा—‘मैं अपनी धरोहर वापस लेने आया था, पर मुझसे भूल हो गयी, मैं अभी यहाँसे जा रहा हूँ।’

‘रुको।’ सरदारने उत्तरमें कहा—‘अपनी धरोहर लेते जाओ। वह उसी जगह पड़ी है।’

व्यापारीको विश्वास नहीं हो रहा था। उसने तिरछे नेत्रोंसे देखा, सचमुच उसकी थैली जहाँ-की-तहाँ रक्खी हुई थी। उसने थैली उठा ली और प्रसन्नतापूर्वक चला गया।

‘यह क्या किया आपने?’ डाकुओंने सरदारसे पूछा—‘इस प्रकार हाथका माल वापस करना कहाँ तक उचित है?’

‘तुमलोग ठीक कहते हो।’ सरदारने हँसते हुए शान्त-स्वरमें उत्तर दिया। ‘किंतु वह आदमी मुझे ईश्वरका भक्त, फकीर, सच्चा और ईमानदार समझ-कर धन मेरे पास रख गया था।’ ईश्वरको प्रसन्न करनेवाले इस वेशके प्रति जो सद्भावना है, उसकी रक्षा करना मेरा परम कर्तव्य है। ईश्वर करे मेरा यह सभाव आजीवन बना रहे।’

डाकुओंका यही सरदार आगे चलकर फजल अयाज नामक प्रसिद्ध महात्मा हुआ।—शि० दु०

तालूकता

नगापुरमें एक व्यापारी था। वह धन कमानेमें निरन्तर लगा रहता था। अच्छे और दुरे कर्मसे उसे कुछ लेना-देना नहीं था। उसे तो केवल धन चाहिये और वह चाहे किसी भी मार्गसे आये। एक बारकी बात है। उसे रुपया गिनते-गिनते बहुत देर हो गयी।

भोजनका समय नहीं मिला, पर रुपयोंका ढेर गिननेके लिये पड़ा ही था। उसने दासीको वहीं भोजन ले आनेकी आज्ञा दी। सेविका भोजनका थाल लाकर उसके समीप बहुत देरतक खड़ी रही, पर धनबानका ध्यान उबर नहीं जा सका। दासी भोजन वापस ले

गयी। कुछ देर बाद उसने पुनः दासीको भोजन ले आनेकी आज्ञा दी। दासी फिर भोजनका थाल लिये आयी और उसके समीप खड़ी हो प्रतीक्षा करने लगी, किन्तु उसका ध्यान उधर नहीं जा सका। वह रूपये गिननेमें तच्छीन था। इसी प्रकार कई बार उसने दासीको भोजन लानेकी आज्ञा दी, दासी भोजन लाती और खड़ी-खड़ी प्रतीक्षा करती, पुनः निराश होकर

लौट जाती। अन्ततः भोजन मँगानेपर दासी भोजनका थाल ले आयी और थोड़ा-सा भोज्य-पदार्थ उसके ओठोंपर लगा दिया। धनीको भोज्य-पदार्थका स्वाद मिला, तो उसने समझा कि मैंने भोजन कर लिया है। उसने तुरत हाथ-मुँह धोया और फिर रूपये गिननेमें लग गया। ऐसा ध्यान भगवान्‌मे लगे तब जीवन सार्थक हो।

—शि० दु०

माताकी सेवा

‘म्रमो। मेरे दुखी पुत्रपर सुख-गान्तिकी वर्गा करना। सत उसपर प्रसन्न रहें तथा उसका जीवन पवित्र तथा प्रभु-प्रेममय रहे।’

सत वायजीद देहरीसे अपने लिये माताकी यह प्रार्थना सुन रहे थे। वर्षों बाहर रहकर उन्होंने कठोर-तम साधना की थी और उससे लाभान्वित होकर माता-के दर्शन करनेका निश्चय किया था। किलने दिनो बाद वे अपने घरके द्वारपर पहुँच सके थे।

‘माँ! तेरा दुखी पुत्र आ गया है।’ वायजीदका हृदय मातृस्नेहसे भर आया था। विहूल होकर उन्होंने आवाज दी।

पुत्रकी आवाज पहचानकर माताने तुरत दरवाजा खोला और वायजीदको हृदयसे लगा लिया। बृद्धा-की ओर्खोंसे अशुसरिता प्रवाहित हो रही थी। मस्तकपर हाथ फेरते हुए माँने कहा—‘वेदा। वहुत दिनो बाद तूने मेरी सुविली। तेरी यादमें रोते-रोने मैं मौतके दरवाजेपर आ गयी हूँ।’

‘माँ! रोते हुए तपसी सतने कहा—‘मैं बहुत मूर्झ हूँ। जिस कार्यको गौण समझकर मैं यहाँसे चला-गया था, उसका महत्व अब समझमे आया है। कठोर तप करके मैंने जो लाभ उठाया है, यदि तुम्हारी सेवा, करता रहता, तो वह लाभ अबतक कभीका सरलतासे मिल गया होता। अब मैं तुम्हारी सेवाके अतिरिक्त और कुछ नहीं करूँगा।’

वायजीद माताकी सेवाका निरन्तर ध्यान रखते। एक रात माताने पानी माँगा। वायजीदने देखा, घरके किसी बर्तनमे पानी नहीं था, वे नदीसे पानी लेने गये। पानी लेकर लौटे तो देखा मॉको नींद आ गयी है। वे चुपचाप बर्तन लिये खडे रहे। सर्दीसे अंगुलियों ठिठुर रही थीं, पर वे बर्तन इसलिये नहीं रख रहे थे कि इसके रखनेकी आवाजसे मॉकी नींद खुल जायगी। जल-भए बर्तन लिये वे खडे रहे। माँकी नींद खुली, तब उन्हे पानी पिलाकर आशीष प्राप्त किया।

—शि० दु०

करुणाका आदर्श

एक कारवाँ एक मरुभूमिको पार कर रहा था। रास्तेमें पानीका सर्वथा अभाव हो गया। अन्तमे थोड़ा-सा जल उनके पास बच रहा। अब यात्री उसे मापसे

परस्पर बाँटने लग गये। उस मापका प्रकार यह था कि एक प्यालेमें एक छोटा कंकड़ डाल दिया गया था। जब जल ककड़के ऊपर आ जाय तब वह एक व्युत्पत्तिका

उचित भाग मान लिया जाता था । वह जल भी केवल उसके प्रथान लोगोंके हिस्से पड़ता था ।

जब पहले दिन जल बौद्ध जाने लगा, तब प्रथम माप काव-इन्न-मम्माहको दिया जाने लगा । वह उसे लेना ही चाहता था कि उसकी दृष्टि नामीर जातिके एक आदमीपर पड़ी जो बड़ा ध्यान लगाये उसकी ओर सतृष्णा दृष्टिये देख रहा था । उसने जल बौद्धनेगलेको कहा, ‘भड़या ! मेरा हिस्सा कृपया इस व्यक्तिको दे दो ।’ उस व्यक्तिने जल पी लिया और काव-इन्न-मम्माहको बिना जलके ही रह जाना पड़ा ।

दूसरे दिन पुन जलका विभाजन आरम्भ हुआ और उस नामीर जातिका वह पुरुष पुन बड़े ध्यानसे उधर

देखने लगा । ‘काव’ ने पुन, अपना भाग उस व्यक्तिके लिये दिला दिया ।

पर अब जब कारबाँ चलने लगा, तब कावको इतनी भी शक्ति न रह गयी थी कि वह किसी प्रकार ऊँटपर बैठ सके । वह मरुस्थलमे ही लेट गया । सत्रोंने देखा कि अब कोई यहाँ ठहरता है तो सभी नष्ट होंगे, अतएव किसीने उसकी सहायताका साहस नहीं किया और मासलोंमी हिंस्त जन्तुओंके भयसे उसके ऊपर कुछ बछड़ालकर चलते बने ।

वस्तुत काव करुणाका आदर्श था, जिसने अपनी जान दे दी । पर दया-कातरताका तिरस्कार करनेका साहस वह न का सका ।—गा० श०

अतिथिकी योग्यता नहीं देखनी चाहिये

महात्मा इत्नाहीमका नियम था कि किसी अतिथिको भोजन कराये बिना भोजन नहीं करते थे । एक दिन उनके यहाँ कोई अतिथि नहीं आया । इसलिये वे स्थय किसी निर्धन मनुष्यको हूँड़ने निकले । मार्गमें उन्हें एक अत्यन्त वृद्ध तथा दुर्बल मनुष्य मिला । उसे भोजनका निमन्त्रण देकर वडे आदरपूर्वक वे घर ले आये । हाथ पैर बुलाकर भोजन करने बैठाया ।

अतिथिने भोजन सम्मुख आते ही ग्रास उठाया । उसने न तो भोजन मिलनेके लिये ईश्वरको वन्यवाद दिया, न ईश्वरकी बन्दगी की । इत्नाहीमको इस व्यवहारसे क्षोभ हुआ । उन्होंने अतिथिसे इसका कारण पूछा । अतिथिने कहा—‘मैं तुम्हारे वर्षको माननेवाला नहीं हूँ ।

मैं अग्निपूजक (पारसी) हूँ । अग्निको मैंने अभिवादन कर लिया है ।’

‘काफिर कहाँका ! चल निकल मेरे यहाँसे ।’ इत्नाहीमको इतना क्रोध आया कि उन्होंने वृद्धको धक्का देकर उसी समय घरसे निकाल दिया ।

‘इत्नाहीम ! जिसे इतनी उम्रतक मैं प्रतिदिन खूराक देता रहा हूँ, उसे तुम एक समय भी नहीं खिला सके । उलटे तुमने निमन्त्रण देकर, घर बुलाकर उसका तिरस्कार किया ।’ इस आकाशवाणीको, जो उसी समय हुई, इत्नाहीमने सुना । अपने गर्व तथा व्यवहारपर उन्हें अत्यन्त दुख हुआ ।—सु० सिं०

उचित न्याय

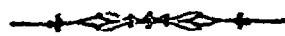
वावरका पिता उमरअेख समरकदवा रजा था । वह-अपनी न्यायप्रियताके लिये बड़ा प्रसिद्ध था । एक बार चूनी यात्रियोंका एक समुदाय पूर्वसे पश्चिमकी ओर

यात्रा कर रहा था । वीचमे ही प्रचण्ड हिमस्थ झंझावात-मे पड़ जानेके कारण वह दल-का-दल पहाड़ियोंमे ही नष्ट हो गया । उनके पास बहुत बड़ी अर्थराशि थी,

जो उमरगेखशासनकी सीमाके अन्तर्गत पड़ रही थी। उमरगेखकी उन दिनों आर्थिक दशा वडी चिन्तनीय हो रही थी, वह चाहता तो ब्रिना किसी टटे और श्रमके अपने वहाँ मैंगता लेता। पर उसने ऐसा नहीं किया। उसने वहाँ कठिन शासन लगाकर कड़ा पहरा बैठा दिया,

ताकि उनकी असुरक्षित सम्पत्तिमें कोई कुछ ले न ले। उसने उनके घरवालोंको सूचना दी और पूरे एक वर्षतक, जबतक वे लोग आकर अपनी-अपनी सम्पत्ति ले नहीं गये, तबतक उसने वहाँका पहरा नहीं हटाया।

—जा० श०



उपासनामें तन्मयता चाहिये

बादशाह अकबर राजधानीसे बाहर निकले थे। अनेक बार एक-दो विद्वानोंको साथ लेकर ब्रिना किसी धूम-धड़के और आडम्बरके प्रजाकी दगाका स्थ निरीक्षण करने वे निकलते थे। उस दिन नमाजका समय होनेपर बादशाहने मार्गमे ही 'जायेनमाज' ब्रिद्धा दिया; क्योंकि मार्गको छोड़कर इधर-उधर सच्छ भूमि थी नहीं।

बादशाह नमाज पढ़ रहे थे। साथके जो एक-दो व्यक्ति थे, वे पासके वृक्षोंकी ओर चले गये। इतनेमें एक लड़ी आयी और बादशाहके 'जायेनमाज'पर पैर रखती आगे चली गयी। बादशाहको क्रोध तो बहुत आया, किंतु वे नमाज पढ़ रहे थे, इसलिये बोले नहीं।

योड़ी ही देरमे वह लड़ी उधरसे ही लौटी। बादशाह नमाज पूरी कर चुके थे। उन्होंने उस नारीसे पूछा—‘तू इधर छहाँ गयी थी?’

खीने कहा—‘मेरे स्त्रीमी परदेश गये है। समाचार मिला था कि वे आ रहे हैं। मैं उन्हें देखने गयी थी; किंतु समाचार ठीक नहीं निकला।’

बादशाहने उसे ढॉया—‘पूर्ख लड़ी ! तुझे जाते समय दीखा नहीं कि मैं नमाज पढ़ रहा हूँ। तू मेरे 'जायेनमाज' (नमाज पढ़ते समय नीचे ब्रिद्धी चहर)को कुचलती चली गयी।’

उस खीने उत्तर दिया—‘जहाँपनाह ! मेरा चित्त तो एक सासारिक पुरुषमे लगा था, इसलिये मैं आपको और आपके 'जायेनमाज'को देख नहीं सकी, किंतु आप तो उस समय ब्रिद्धके स्त्रीकी प्रार्थनामें चित्त लगाये हुए थे, आपने मुझे इधरसे जाते देख कैसे लिया ?’

बादशाहने सिर नीचा करके उस लड़ीको क्षमा कर दिया।

—सु० श०

उत्तमताका कारण

बादशाह अकबर बहुत उत्सुक था अपने सङ्गीताचार्य तानसेनके गुरु स्त्री श्रीहरिदासजीका सङ्गीत सुननेके लिये। परंतु वे परम वीतराग ब्रजभूमि छोड़कर डिल्ली पधारेंगे, इसकी सम्भावना तो यी ही नहीं। यह भी सम्भावना नहीं थी कि वृन्दावनमें भी बादशाहके सम्मुख वे गायेंगे। तानसेनने एक मार्ग निकाला। बादशाह साधारण बेशमे वृन्दावन पहुँचे और स्त्री श्रीहरिदासजीकी कुटियाके बाहर छिपकर बैठ गये।

तानसेन कुटियामें गये और प्रणाम करके गुरुदेवको अपना सङ्गीत सुनाने लगे, जान-बूझकर तानसेनने खरमें भूल कर दी। शिष्यकी भूल सुधारनेके लिये गुरुने उससे बीणा ले ली और स्थ गाकर बताने लगे। बादशाहकी इच्छा इस प्रकार पूर्ण हुई।

दिल्ली लौटकर बादशाहने तानसेनसे फिर वही राग सुनना चाहा और तानसेनने सुनाया भी; किंतु उसे

मुनकर बादशाह बोले—‘तानमेन ! तुम उनना उत्तम क्यों नहीं गा सकते ? खार्षी हरिदासजीके सरका तो सौन्दर्य ही कुछ और या ।’

नव्रतपूर्वक तानमेननं बहा—‘जहाँपनाह ठीक

फरमा रहे हैं, लेकिन मेरे पास कोई उपाय नहीं है । मेरे गुरुदेवके स्वरकी उत्तमताका कारण है । मैं केवल हिंदुस्तानके बादशाहके लिये गाना हूँ और वे गाते हैं सारी दुनियाके मात्रिक सर्वेश्वरके लिये ।’—सु० सिं०

आजसे मैं ही तुम्हारा पुत्र और तुम मेरी माँ

कहते हैं कि बादशाह अकबरके खजाचीकी श्रीका रूप बड़ा ही अपूर्व था । एक बार कहीं उमे देवकर बादशाह महामोहमें पड़ गया और छाँटों रुपये व्यवहरये, भी उमर्मी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करने लगा । पर ‘पित्रि प्रिधिचेष्टिनम्’ । भर्तृहरिने बड़ा ही सुन्दर कष्ट था—मैं जिसकी चिन्तामें सनत व्याकुल हूँ वह मुझे मिन्कुल नहीं चाहता । पर यह बात नहीं कि वह मर्यादा भवारमें उपरत है अथवा वह किसीको चाहती ही न हो । नहीं-नहीं, वह तो दुरी तकहमे एक ऐसे आदर्मीपर आसक है, जो उमे न चाहकर मिसी दूसरी नायिकापरों चाहता है और वह नायिका भी उमे न चाहकर किसी कारणनिशेषमें मुश्किल प्रमत्त है । ओह ! मुश्किलों, इस प्रिद्वनाके मृद कामदेवको तथा तत्तत् खी-मुरुणोंको बार-बार धिक्कार है ।

या चिन्तयामि भवनं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यभिच्छति जनं म जनोऽन्यसक ।
अन्मत्कुते च परितुप्पति फाचिदन्या
धिकूता च तं च मदनं च इमां च मां च ॥

(नितिगतक २)

हौं तो, भर्तृहरिके अब्दोंमें कामदेवने खजाचीकी श्रीको भी यही बेडव रास्ता दिखलाया । वह बादशाहसे तो शृणामे नाक-भैंसिकोइने लगी, पर अद्वृ रहीम खानखानापर आसक्त हुई । खानखानाजी श्रीकृष्णभक्त थे । वह इनमें सीधे प्रस्ताव तो कैसे रखती, पर एक दिन माका पाकर उनमे निचेउन किया—‘खानखानाजी ! मैं आप ही जैसा सुन्दर एक पुत्रत चाहती हूँ ।’ खानखानाजीको फिर वह एकान्त स्थानमें ले गयी । भक्तवर रहीमने भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण किया और एकान्त पाते ही उममे बोले—‘देवि ! कौन जाने हमारे-जैसा पुत्र तुम्हें हो-न-हो, इमलिये लो आजमे मैं ही तुम्हारा पुत्र और तुम मेरी मन्ची मौं और यों कहकर उसके स्तनोंको पीने लग गये । भगवान्की कृपामे उसमें भी वात्सल्य आ गया और उसके स्तनोंमें दृढ़ झग्ने लगा । तबसे रहीमने उमे मदा ही अपनी माता माना । कहते हैं जहाँ कहीं भी अपने प्रन्थोंमें खानखानाजीने अपनी माताका स्मरण किया है, यहाँ उसी महिलाका स्मरण तथा उल्लेख दिया है, अपनी असुउ मौंका नहीं । तबमे उस खीका भी चित्त सर्वथा पवित्र हो गया और इबर बादशाह भी इसे जानकर सन्मार्गस्थ हो गया ।—जा० श०

१. इहा जाता है कि भर्तृहरिको किसी महात्माने एक अमर फल दिया । भर्तृहरिने भोचा कि जीवनके अन्ततक मेरी रानी उनी नहीं तभी मैंग जीना सार्थक होगा । अतएव उसने वह फल गनीसी दे दिया । (गनी अपने दागेगापर आसक थी) गनीने देखा कि ‘जौद मेरे जीने वह दारोगा मर गया तो इसमें भयानक झेंग क्या होगा ?’ अतएव उसने उसे दागेगान्ते ही दे दिया । इधर दागेगा एक वेद्यापर अनुगक्त था, उसने वह फल वेद्यासी दे दिया । वेद्याने देखा कि मैं अधिक जीनी हूँ तो केवल पाप ही सचय फँसँगी, सो जगत्के ऋत्याणके लिये इसे पग्म धर्मात्मा राजा भर्तृहरिको देना चाहिये । उसने लाकर गही कल राजाको दे दिया । गजा उस फलको देवकर तथा उसके इतिहासको जानकर सर्वथा चक्षित रह गया । निर्विण धोकर उसने वह द्व्योक गाया तथा राजगाटको तुरत छोड़कर साढ़ु हो गया । इसके बाद महाराज विकमादित्यने, जो उसका छोटा भाई था, राजगाट सँभाला ।

ऐसा कोई नहीं जिससे कोई अपराध न बना हो

एक दिन बादशाह अकबरके दरवारमें बड़े जोरोंका कोलाहल सुनायी पड़ा। सभी लोग वीरबलके विरुद्ध नारे लगा रहे थे। आजाज आ रही थी 'वीरबल बड़ा नीच है, भारी बदमाश है, बड़ा घातक है।'

बादशाहको क्रोध आ गया। आज्ञा हो गयी—'बस, वीरबलको तुरत शूलीपर चढ़ा दिया जाय।'

दिन निश्चित हुआ। शूली तैयार हुई। वीरबलने बादशाहसे अन्तिम बात कर लेनेका अवसर मौंगा। बातचीतमें उसने कहा—'मैंने सारी चीजें तो आपको बतला दीं, पर मोती बोनेकी कला आपको न सिखा सका।'

अकबरने कहा—'सच! क्या तुम इसे जानते हो? तो ठीक जबतक मैं यह सीख न लूँ, तबतक तुम्हें जीनेका अवसर दिया जाता है।'

वीरबलने कतिपय विशिष्ट महलोंकी ओर सकेन करते हुए कहा—'इन मकानोंको ढहवा दिया जाय, क्योंकि इसी जमीनमें उत्तम मोती पैदा हो सकते हैं।'

मकान ढहवा दिये गये। ये महल उन्हीं दरवारियोंके थे, जिन्होने वीरबलके विरुद्ध झूठी शिकायत की थी—वहाँ वीरबलने जौ बुनवा दिये। एक निश्चित दिनपर उसने सब लोगोंको पौधोंको दिखलानेके लिये बुलाया और कहा कि 'कल प्रातःकाल ये पौधे मुक्ता उत्पन्न करेंगे और कल ही इन्हें काटा जायगा।'

सभी लोग पधारे। ओसकी बूँदें जैके पौधों और पत्तोंपर मोतीकी तरह चमक रही थीं। वीरबलने कहा—'अब आपलोगोंमेंसे जो सर्वथा निरपराशी—दूधका बोया हो, इन मोतियोंको काटले। सावधान! यदि किसीने कभी एक भी अपराध किया होगा तो ये मोती पानी होकर गिर पड़ेंगे।'

सभी शान्त थे। वीरबलने अकबरको हाथ बढ़ानेके लिये कहा। पर बादशाह समझ गया—सभीसे अपराध होते हैं। वीरबलका कोई दोष था भी नहीं, यह तो दरवारियोंका एक षड्यन्त्र मात्र था। वीरबलको अभियोगसे मुक्त कर दिया गया।—जा० शा०

तू भिखारी मुझे क्या देगा

बादशाह अकबर विद्वानों, साधुओं और फकीरोंका सम्मान करते थे। उनके यहाँ प्राय देशके विभिन्न भागोंसे विद्वान् आया करते थे। किसी त्यागी साधु या फकीरको उनके पास पहुँचनेमें कठिनाई नहीं होती थी। एक बार एक फकीर बादशाहके पास पहुँचे। बादशाहने उन्हें सम्मानपूर्वक बैठाया। परतु नमाजका समय हो गया था, इसलिये फकीरसे अनुमति लेकर बादशाह वहाँ पासमें नमाज पढ़ने लगे।

नमाज पूरी हो जानेपर बादशाह प्रार्थना करने लगे—'पाक परवरदिगार! मुझपर रहम कर। मेरी

फौजको कामयावी दे। मेरा खजाना तेरी मेहरबानीसे बढ़ता रहे। मेरे शरीरको तन्दुरुस्त रख।'

फकीरने बादशाहकी प्रार्थना सुनी और उठकर चलते हुए। बादशाह नमाज तो पढ़ ही चुके थे, शीघ्रतासे फकीरके पास आये और बोले—'आप क्यों चले जा रहे हैं? मेरे लायक कोई खिदमत फरमावें।'

फकीरने कहा—'मैं तुझमें कुछ माँगने आया था, किंतु देखता हूँ कि दू तो खुद कगाल है। दू भी किसीसे माँगता ही है। जिससे दू माँगता है, उसीसे मैं भी माँग लूँगा। तू भिखारी मुझे 'क्या देगा।'

न्यायकी मर्यादा

ठिठ्ठीका वादग्राह गयासुदीन बाणसे निशाना मारनेजा अन्यास कर रहा था। अचानक एक बाण तख्यमें भटक गया और एक बालकको लगा। बेचाग बालक बाण लगनेमें बहीं ढेर हो गया। बालककी माना ठिठ्ठीके प्रधान काजी सिराजुदीनके पास रोनी हुई गयी। काजीने उसे दूसरे दिन न्यायालयमें उपस्थित होनेको कह दिया।

न्यायनिष्ठ काजीने वादग्राहके पास संदेश भेज दिया कि उनके विरुद्ध हत्याका अभियोग है, अत वे न्यायालयमें उपस्थित रहें। सुलतान गयासुदीन साम्राज्य वेशमें अदान्तमें उपस्थित हुए। काजीने उनका कोई सम्मान नहीं किया। उठके उन्हें साम्राज्य अपराधीकी भाँति उड़े रहनेको कहा गया। सुलतान शान्त खड़े रहे। उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया। बालककी माताजे मार्फी मार्फी और उसे बहुत-मा वन देनेका वचन दिया। बालककी मातासे राजीनामा लिखाकर सुलतानने काजीको दिया।

यह सब हो जानेपर काजी न्यायासनसे उठे और



शरणागत-रक्षा

वादग्राह अलाउदीनके दरवामें एक मगोन्स-सरदार था। वादग्राह उसकी घूरता तथा ईमानदारीमें बहुत सतुष्ट थे, किन्तु निरहुआ लोगोंकी समीपता प्राय भय्रप्रद होती है। वह सरदार वादग्राहका मुँहलगा हो गया था। एक दिन उससे कोई साम्राज्य भूल हो गयी, किन्तु वादग्राह इतने अप्रसन्न हो गये कि उन्होंने उस सरदारको प्राणदण्डकी आज्ञा दे दी। सरदार किसी प्रकार दिल्लीमें वचकर निकल भागा। परतु वादग्राहके अपराधीको शरण देकर त्रिपति कौन मोल ले? अनेक

आने आकर उन्होंने झुककर सुलतानको सलाम किया। वादग्राहने अपने ब्रह्मे ठिठी एक छोटी तलवार निकालकर ठिखाते हुए कहा—‘काजी साहब! आपकी आज्ञामें न्यायका सम्मान करने मैं अदालतमें आया था। अच्छा हुआ कि आपने न्यायालयकी मर्यादा रखी। यदि मैं देखता कि आप न्यायसे तनिक भी विचलित हो रहे हैं तो यह तलवार आपका गर्दन उड़ा देती।’

काजी सिराजुदीनने अब पीछे बूमकर अपने न्यायासनके पास रखा वेत उठाया। वे बोले—‘जहाँपनाह! अच्छा हुआ कि आपने न्यायालयका ठीक सम्मान किया और अपराध स्वीकार कर लिया। आप तनिक भी हीलाह-गला करते तो यह वेत आज आपकी चमड़ी उधेड़ देता।’

सुलतान इससे सतुष्ट हुए। वे कह रहे थे—‘मेरे राज्यमें ऐसे न्यायाधीश हैं जो इस व्रातको समझते हैं कि न्याय सबके लिये समान है, न्यायके नियमोंसे अधिक कोई श्रेष्ठ नहीं, इसके लिये मैं परमात्माका आभार जानता हूँ।’ —सु० सि०

स्थानोंपर भटकनेपर भी किसीने उसे अपने यहाँ रहने नहीं दिया। त्रिपतिका मारा सरदार रणथम्भौर पहुँचा। वहाँ उस समय सिंहासनपर थे राणा हमीर। उन्होंने उस यवन-सरदारका स्वागत किया और कहा—‘शरणागत-की रक्षा राजपूतका प्रथम कर्तव्य है। अत आप यहाँ सुखपूर्वक निवास करें।’

उत्तर दिल्ली समाचार पहुँचा तो अलाउदीन क्रोधसे तिलमिला उठा। उसने सदेश भेजा—‘गज्यके अपराधीको शरण देना, तख्तकी तौहीन करना है।

हमारा कैदी हमे दे दो, नहीं तो ईट-से-ईट
बजा दी जायगी ।'

राणा हमीरने उस दूतको यह उत्तर देकर लौटा
दिया—‘एक आर्त मनुष्य प्राणरक्षाकी पुकार करता
गजपूतके पास आयेगा तो राजपूत उसे शरण नहीं देगा,
ऐसा हो नहीं सकता । हमने अपने धर्मका पालन
किया है । राज्यके विनाश या प्राणके भयसे हम
शरणागतका त्याग नहीं करेगे ।’

कुछ सरदारोंने राणाको समझाया भी—‘बादशाहसे
शत्रुता मोल लेना उचित नहीं । यह मगोल-सरदार
भी मुसलमान ही है । यह अन्तमें अपने लोगोंमें मिल
जायगा । आप जान-वूझकर विनाशको क्यों आमन्त्रित
करते हैं ।’

परतु राणा हमीरका निश्चय अठल था । उन्होंने
स्पष्ट कह दिया—‘शरणागत कौन है, किस धर्म या
जातिका है, उसने क्या किया है आदि देखना मेरा
काम नहीं है । मैं लोभ या भयसे अपने कर्तव्यका
त्याग नहीं करूँगा ।’

राणाका उत्तर दिल्ली पहुँचते ही बादशाहने
रणथम्भौरपर चढ़ाई करनेके लिये सेना भेज दी; किंतु
रणथम्भौरका दुर्ग कोई खिलौना नहीं था, जिसे खेल-खेलमें
द्वहा दिया जाता । शाही सेनाके छक्के छूट गये । बार-
बारके आक्रमणोंमें सदा उसे भुँहकी खानी पड़ी ।
अन्तमें दुर्गपर घेरा डालकर शाही सेना जम गयी ।
पूरे पाँच वर्षतक शाही सेना रणथम्भौरको घेरे पड़ी रही ।

इस पाँच वर्षके दीर्घकालमें दोनों पक्षोंकी भारी

क्षति हुई । सैकड़ों सैनिक मारे गये; किंतु गाही सेनाको
बराबर सहायता मिलती गयी । उवर रणथम्भौरके दुर्गमें
सैनिक घटते गये, भोजन समाप्त हो गया । उपवास
करके कवतक युद्ध चलता । उस मगोल-सरदारने राणासे
प्रार्थना की—‘महाराज ! आपने मेरे लिये जो कष्ट उठाया,
जो हानि सही, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता । लेकिन
मेरे लिये पूरे राज्यका विनाश अब मुझसे देखा नहीं
जाता । मैं अपने आप अलाउद्दीनके पास चला जाता हूँ ।’

राणा हमीरने कहा—‘आप ऐसी बात मुखसे फिर
न निकाले । एक राजपूतने आपको शरण दी है ।
जबतक मैं जीवित हूँ, अलाउद्दीनके पास आपको
नहीं जाने दूँगा ।’

दुर्गमें अन्न समाप्त हो जानेपर जब दूसरा कोई
उपाय नहीं रहा तो एक भारी चिता बनायी गयी । सब
नारियों प्रसन्नतापूर्वक चिताकी लपटोंमें कूटकर सती
हो गयीं । सब पुरुषोंने केसरिया बछ पहिने और दुर्गका
द्वार खोलकर वे निकल पड़े । युद्ध करते हुए वे शूर मारे
गये । राणा हमीरने मृत्युके अन्तिम क्षणतक उस सरदारकी
रक्षा की । वह सरदार भी राणाके पक्षमें युद्ध
करते हुए पकड़ा गया । अलाउद्दीनके सामने जब वही
बदी बनाकर उपस्थित किया गया, तब बादशाहने उससे
पूछा—‘तुम्हे छोड़ दिया जाय तो क्या करोगे ?’

सरदारने निर्भाकतापूर्वक कहा—‘हमीरकी सतान-
को दिल्लीके तख्तपर बैठानेके लिये जिंदगीभर तुमसे
लड़ता रहूँगा ।’ इतना उदार नहीं था अलाउद्दीन कि
उस शूरको क्षमा कर दे । उसने उसे मरवा डाला ।

—मु० सिं०

सच्ची न्याय-निष्ठा

बादशाह जहोंगीरमें चाहे जितनी दुर्बलताएँ रही हों,
किंतु वह प्रजावत्सल एवं न्यायग्रिय ग्रासक था, इस
बातको उसके गत्रु भी अस्वीकार नहीं कर सके ।

उसके राजमहलमें घटा बैधा था, जिसकी रस्सी महलसे
वाहर लटकती रहती थी । कोई भी, कभी भी उस रस्सीको
खींच सकता था, यदि उसे बादशाहसे किसी विप्रयमे

न्याय पाना हो। रस्ती रोंचते ही महलमें बँधा घटा घजने लगता था।

एक मग्य शागज़ो ही एक रीने घटाकी रस्ती खींची। वाडगाह उसी समय फरोखेपर आये। वह एक निर्धन नारी भी और दुरी तह से रही थी। पूछनेपर उसने बताया कि वह राजमहलके पास ही एक वर्गाचेके मार्नीमी ली है। फिसीने राजमहलसे बाण चलाया, जो उसके परिमी ढातीमें लगा। उसका पति तुरत बाण लगानेमें मर गया।

वाडगाहने उसे सबरे दरवारमें आनेका हुक्म दिया। राजमहलमें पूछनेपर पता लग गया कि वाडगाहकी प्राणप्रिया बैगम मुसलाज-भद्र चमगादङोपर नियाना लगा रही थीं। उनका ही एक बाण भटककर दूर गया था। वाडगाह गम्भीर हो गये। उस रात उन्हें तनिक भी नीद नहीं आयी।

दूसरे दिन दरवारमें बड़ी गड़वड़ी मची। एक औरसे सभी सदार और अमीर विरोध करने लगे—‘कुछ भी हो, शाही बेगम एक मुन्जिमके समान दरवारमें नहीं बुलायी जा सकती।’

वाडगाह बहुत गम्भीर हो रहे थे। उन्होंने अन्तमें कहा—‘मालिन! तुम देखती हो कि मैं भी तुम्हारे मुन्जिमको यहो बुला नहीं सकता हूँ। लेकिन जहाँगीर अन्याय नहीं होने देगा। बेगमने तुम्हें विवाह बनाया है, तुम उसे विवाह बना दो।’

अपनी कठार नगी करके वाडगाहने उस मालिनको पकड़ा टी और तख्लसे उनरकर उसके सामने उन्होंने अपना सीना कर दिया। कठार मालिनके हाथमें गिर पड़ी। वह अपने उदार वाडगाहको ग्रणाम करने शुक गयी थी।—सु० सिं०

अपरिग्रह

सत अफरायतमा जीवन अत्यन्त सरल था, वे वडी परित्रामे रहने थे। अपनी जन्म-भूमि फारसका परित्याग कर वे सीरिया चले आये थे। नगरके बाहर सदा एक छोटी-सी गुफामें निवास कर वे भगवान्का चिन्तन किया करते थे। वे मूर्यस्तके बाड केवड़ एक छोटी-सी रोटी खा लेने थे और चटाईपर सोते थे। उनका पहनावा केवल एक मोटान्सा कपड़ा था।

एक दिन वे अपनी गुफाके बाहर बैठे हुए थे कि अन्येमियस उनसे मिलने आया। वह कुछ दिनोंतक फारसमें राजदूत था। सतको भेट देनेके लिये अपने साथ फारससे एक सुन्दर बख लाया था।

‘यह आपके देशकी बनी हुई वस्तु है। इसे सहर्ष

ग्रहण कीजिये।’ अन्येमियसने निवेदन किया।

‘क्या आप इसे ठीक समझते हैं कि एक पुराने खामिभक्त नौकर—सेवकको इसलिये निकाल दिया जाय कि दूसरा नया आदमी अपने देशसे आ गया है?’ सनने अपने प्रदनमें अन्येमियसको आश्र्यचकित कर दिया।

‘नहीं, ऐसा करना कठापि उचित नहीं है।’ राजदूतने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

‘तो फिर अपना बल बापस लीजिये। मैंने जिस बखको सोलह सालोंमें अनवरत वारण किया है उसके रहते दूसरा नहीं रख सकता। मेरी आवश्यकता इसीमें पूरी हो जायगी।’ सतकी पवित्र अपरिग्रह-वृत्ति मुखरित हो उठी। वे अपनी गुफाके भीतर चले गये।—ग० श्री०

दानी राजा

फारसके राजा साइरसने राजा क्रोसियसको बड़ी बना लिया। साइरस बड़े दानी और उदार थे। उनके राज्यमें गरीबी और विवशताका नाम लेना पाप समझा जाता था। प्रजा स्वस्थ, सुखी और समृद्ध थी।

‘यदि इस तरह आप दान देनेमें ही नित्यप्रति अपना खजाना खाली करते रहेंगे तो आप कुछ ही दिनोंके बाद कगाल हो जायेंगे। यदि आप अपना धन बचाते रहेंगे तो निस्सदेह अपार सम्पत्तिके स्वामी कहलायेंगे।’ बड़ी क्रोसियसने राजा साइरसको शिष्ट सम्भति दी। वे बहुत धनी थे।

‘यदि मैंने राजसिंहासनपर बैठनेके समयसे आज तक किसीको कुछ भी दान न दिया हो तो मेरे पास कितनी सम्पत्ति होनेका आप अनुमान लगा सकते हैं?’ साइरसने प्रश्न किया।

‘अपार सम्पत्ति’ क्रोसियसके शब्द थे और वे सोचने लगे।

‘तो मैं अभी अपनी प्रजा और हितैषियों तथा मित्रोंके पास सूचना भेजता हूँ कि मुझे अपार सम्पत्तिकी

आवश्यकता है एक बहुत बड़े कामके लिये और आप देखेगे इसका परिणाम।’ साइरसने क्रोसियसके मनमें अद्भुत उत्सुकता पैदा कर दी।

× × ×

साइरसकी सूचनाके परिणामस्फूर्ति राजमहलके सामने सोनेके ढेर लग गये। प्रजाने बड़ी प्रसन्नता और उमड़से राजाकी आज्ञाके अनुरूप आचरण किया।

‘मैंने तो इससे कम सम्पत्तिका ही अनुमान लगाया था।’ क्रोसियस आश्चर्य-चक्रित हो गये।

‘यदि मैंने अपना धन जमीनमें छिपाकर रख दिया होता और दान तथा प्रजाके हितमें उसका उपयोग न किया होता तो प्रजा मुझसे घृणा करती और शत्रु द्वेष करते, मेरी प्रजा मुझे प्यार करती है और क्षण-भात्रमें मैं इतना सोना एकत्र कर सकता हूँ जितना मेरे खपतमें भी नहीं दीख सकता।’ साइरसके उत्तरसे धनी क्रोसियसकी आँख खुल गयी और हृदय खोलकर उनकी दानशीलताकी प्रशंसा की उन्होंने।—रा० श्री०

स्वागतका तरीका

कहा जाता है कि किसी नगरका एक नागरिक अतिथियों तथा अभ्यागतोंको अधिक परेशान करनेके लिये प्रियात हो गया था। कहते हैं कि वह अभ्यागतोंको स्वागत-स्तकारकी पूछताछ और आवभगतमें ही पूरा तग कर देता था।

इसपर एक दिन एक दूसरे व्यक्तिने, जो अपनी धुनका बड़ा पक्का था, उस मनुष्यको स्वयं अपनी आँखों देखना चाहा और चलकर उसकी परीक्षा लेनेकी ठानी। उसके मनमें यह बात जमती ही न थी कि ‘कोई पुरुष स्वागत और आवभगतमें किसीको परेशान

कैसे कर सकेगा?’

इन सब बातोंको सोचकर वह पुरुष पूर्वोक्त अरब सजनके दरवाजेपर उपस्थित हुआ और उसे नमस्कार किया। गृहपतिने भी उससे पधारनेकी प्रार्थना की। वह भीतर गया।

अब जब गृहपतिने उसे स्वागतमन्दिरमें ले जाकर सर्वोत्तम पलापर त्रिराजनेकी प्रार्थना की तो यह अभ्यागत बिना किंचिदपि ननु नच किये उसपर चुपचाप बैठ गया। अब थोड़ी देरमें वह एक बड़ा मुलायम मसनद उस आगन्तुकके लिये लाया और यह नवागत व्यक्ति भी

पूर्ववत् चिना किसी आनाकारीके उसके सहारे बैठ रहा। योङ्गी देखने गृहपतिने अतिथिको चौपड़ खेलनेके लिये निमन्नित किया और वह तुरंत उस खेलमें शामिल हो गया। अब उसने आगन्तुकके पास भोजन लाकर रख दिया। इस भले आदर्मने भी तुरंत उसे खा ही लिया। अब उसने उसके हाथ-पैर धोते ही फुलचाड़ीमें टहलनेका अनुरोध किया और वह भी सीधे वहाँ जाकर टहलने लगा।

अब अन्यागतने उस गृहपतिसे कहा—‘मैं आपसे एक बात कहना चाहता हूँ।’ ‘वह क्या’ गृहपतिने पूछा।

‘मुझे यह पता चला है कि आप अतिथियोंको इस लिये अधिक परेशान कर देते हैं कि वे जो नहीं चाहते उसे आप उनके सामने उपस्थित कर देते हैं और वे जो चाहते हैं उसे आप घ्यानमें भी नहीं लाते।’

‘हाँ, हाँ, मैं आपकी बात समझ गया। मेरे घर जब कोई आता है तो जब मैं उसे उत्तम शश्या, उत्तम

आसन देने लगता हूँ तो प्रायः वह सबको अस्तीकार करता है। जब मैं भोजन लाता हूँ तो वह कहता है ‘नहीं; नहीं; धन्यवाद।’ जब मैं उन्हें शतरंज खेलनेके लिये आमन्त्रित करता हूँ तो वह उसे भी स्वीकार नहीं करता। ऐसी दशामें ठीक छिरद्ध बुद्धिके लोगोंको हम कैसे प्रसन्न करें। मनुष्यको यह चाहिये कि वह जब मित्रोंके साथ मिले तो उसके विचारोंका भी ध्यान रखें गृहपति बोल गया एक ही खरमें।

‘और यही बात आपको भी चाहिये। एक दूसरेके घ्यानसे ही निर्वाह सम्भव है। जो अपनेको बुरा प्रतीत हो वह दूसरेके साथ न करे, जो अपनेको रुचे वह दूसरों-को भी मिले, यह बड़ा व्यापक नियम है तथापि रुचि-वैचिन्यको जानकर भिन्न रुचिगाले व्यक्तिके मनोनुकूल व्यवहार-स्थागत-मिलन ही स्थागतकी भिसेपता है।’ आगन्तुकने कहा।—जा० श०

कर्तव्यके प्रति सावधानी

वगदादके एक खलीफाने अपना वेतन भी निश्चित कर रखा था। राजकार्य तथा प्रजाकी सेवाके बदले वे राज्यके कोपसे प्रतिदिन संघ्यासमय तीन दिरम ले लिया करते थे। यद्यपि राज्यके अन्य कर्मचारियोंका वेतन इससे पर्याप्त अधिक था; किंतु खलीफा अपने लिये इतना ही पर्याप्त मानते थे।

एक बार खलीफाकी वेगमने उनसे ग्रार्थना की—‘आप मुझे तीन दिनका वेतन अग्रिम दे दें तो मैं बच्चोंके

लिये ईदपर नये कपड़े सीकर बना दें।’

खलीफा बोले—‘यदि मैं तीन दिन जीता न रहूँ तो यह कर्ज कौन चुकायेगा? तुम खुशसे मेरी जिन्दगीके तीन दिनका पड़ा ला दो तो मैं तीन दिनका अग्रिम वेतन खजानेसे उठाऊँ।’

वेचारी वेगम क्या कहती। अपने कर्तव्यनिष्ठ सामीकी सामग्री उसे भी बहुत सच्ची और उचित जान पड़ी।—सु० सिं०

१. श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम् । आत्मनः प्रतिकूलानि परेयां न समाचरेत् ॥

जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत् कथमन्यान् स धार्तयेत् । यद् यदात्मनि कांक्षेत तत्परस्यापि चिन्तयेत् ॥

न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः । एष सामाजिको धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते ॥

कर्तव्यनिष्ठा

इगनके शाह अच्छासओ उनके एक पडाविकारीने अपने यहाँ निमन्त्रण दिया था। निमन्त्रणमें पहुँचकर शाह तथा उनके परिकरोंने इतना मध्यान किया कि वे उन्मत्त हो उठे। नगें ही शाह उठे और झूमने हुए उस पडाविकारीके अन्त पुरके द्वारपर पहुँच गये। परंतु उस अविकारीका द्वारपाल इस प्रकार मार्ग रोककर खड़ा था कि उन्हे धक्का देकर हवाये बिना भीतर जाना सम्भव नहीं था। शाहने तलवार खाच ली और उसे ढोटा 'हट सामनेमें। नहीं तो, अभी नेग सिर उडाये डेना है।'

द्वारपाल नहाय जोड़कर नम्रतापूर्वक कहा—'मैं अपना कर्तव्य पालन कर रहा हूँ। आप मेरे देशके स्वामी हैं, आपजर मैं हाय नहीं उठ सकता किन्तु जबतक मैं जीत्रिन हूँ, आप भीतर नहीं जा सकते। मेरा बन्ध करके आप मेरी लाशपर पैर रखकर भीतर जा सकते हैं। लेकिन

श्रीमान्। मैं अपने स्वामीकी मर्यादाकी रक्षाके साथ आपकी भी रक्षाके लिये खड़ा हूँ। आप मुझे मारकर भीतर चले गये तो मेरे स्वामीकी वेगमें हथियार उठ लेगी। एक पर-पुरुष उनका अनादर करे तो वे यह नहीं देखेगी कि वह शाह खुद है या और कोई।'

शाह अच्छासका नदा अपने प्राण-भयकी वात सुनते ही ठंडा पड़ गया। वे लौट गये। दूसरे दिन दरवारमें उस पडाविकारीने प्रार्थना की—'मेरे द्वारपालने जो वेअद्वी की, उन्हे माफ करे। मैंने उसे आजसे अपने यहाँसे निकाल दिया है।'

शाह प्रसन्न होकर बोले—'चलो अच्छा हुआ, अब मुझे तुमसे उस कर्तव्यनिष्ठ सेवकको माँगना नहीं पड़ेगा। मैं उसे अपने अङ्गरक्षक सैनिकोंका सरदार बना रहा हूँ। उसे बुलाओ।'—सु० सिं०

नीति

इगनके न्यायनिष्ठ बाड़गाह नौशेखों एक बार कहीं दिक्कारमें निकले थे। भोजन बनने लगा तो पता लगा कि नमक नहीं है। एक मेवक पासके मकानमें नमक ले आया। बाड़गाहने इसे देख लिया। सेवकको बुलाकर उन्होंने पूछा—'नमकका मूल्य दे आये हो ?'

सेवकने कहा—'इननेसे नमकका मूल्य देनेकी क्या आवश्यकता है।'

बाड़गाहने उसे ज़िड़कते हुए कहा—'ऐसी भूल फिर कभी मत करना। पहिले नमकका मूल्य देकर आओ। बाड़शाह यदि प्रजाके किसी वागसे बिना मूल्य दिये एक फल लेले तो उसके कर्मचारी वागको उजाड़ ही कर देगे। वे शायद वागके पेड कटवाकर लफड़ियों मी जला डाले।'

सभी समय, सब देशोंके उच्चाविकारियोंके लिये यह प्रशस्त आर्द्ध है। —सु० सिं०

अपूर्व स्वामि-भक्ति.

स्वतन्त्र भागनके अन्तिम नरेग पृथ्वीराज युद्ध-भूमिमें पड़े थे। उन्हें इतने धाव लने थे कि अपने स्थानमें वे न खिसक सकते थे, न हाय उठ सकते थे। सच तो यह था कि वे नृष्टिन थे। उन्हे अपने गरीरका पता ही नहीं था। उनके मैनिक धीँचे हट गये थे। युद्ध-भूमिमें क्लेवल आहत सैनिकोंका क़न्डन बच रहा था।

सैकड़ों, सहस्रों गीव उनर आये थे युद्ध-भूमिमें। वे मृत या मृतप्राय सैनिकोंको नोच-नोचकर अपना पेट भरनेमें लगे थे।

गीवोंका एक समुदाय पृथ्वीराजकी ओर बढ़ा आ गया था। पृथ्वीराजमें थोड़ी ही दूरपर उनके अङ्गरक्षक

समन्त सयमराय पडे थे । सयमराय मूर्छित नहीं थे, किंतु उनने धायठ थे कि उठना तो दूर, विसकना भी उनके लिये असम्भव था । पृथ्वीराजकी ओर उन्होंने गीधोंको बढ़ते देखा । उस वीरने सोचा—‘जिसकी रक्षाका भार मुझपर था, मेरे देखने हुए गीध उसे नौचे नो मुझे विक्षार हैं ।’ सयमरायने बगलमें पड़ी तलवार उठा ली और अपने शरीरका मास टुकड़े-टुकड़े काटकर

गीधोंकी ओर फेंकने लगे । गीध इन मासके टुकड़ोंको खानेमें लग गये ।

पृथ्वीराजके सैनिक-सेवक उनकी शोधमें निकले । वे जबतक पहुँचे, तबतक वीर सयमराय मृत्युके निकट पहुँच चुके थे । उनके पर्यावरण शरीरकी रक्षा नहीं हो सकी, किंतु काल भी उनकी उज्ज्वल कीर्तिको नष्ट करनेमें असमर्थ हो गया ।

अतिथिके लिये उत्सर्ग

मेवाड़के गौरव हिंदूकुल-सूर्य महाराणा प्रताप अरावलीके बनोंमें उन दिनों भटक रहे थे । उनको अकेले ही बन-बन भटकना पड़ता तो भी एक बात थी, किंतु साथ थीं महारानी, अबोध राजकुमार और छोटी-सी राजकुमारी । अकत्र-जैसे प्रतापी शत्रुघ्नी सेना पीछे पड़ी थी । कभी गुफामें, कभी बनमें, कभी किसी नलेमें रात्रि काठनी पड़ती थी । बनके कन्द-फल भी अलम्ब्य थे । धासके बीजोंकी रोटी भी कई-कई दिनपर मिल पाती थी । बच्चे सूखकर ककाल हो रहे थे ।

तो उसे क्या दिया जायगा, इसकी चिन्ता उस बालिकाओं भी थी । उसने अपनी आधी रोटी पत्यरके नीचे दबाकर सुरक्षित रख दी, यद्यपि सब उसे कई दिनोंसे कुछ मिला नहीं था ।

सयोगवत्र वहाँ बनमें भी एक अतिथि महाराणाके पास आ पहुँचे । राणाने उहें पत्ते निछाकर बैठाया । पैर धोनेको जल दिया । इतना करके वे इवर-उधर देखने लगे । आज मेवाड़के अधीश्वरके पास अतिथिको जल पीनेको देनेके लिये चनेके चार दाने भी नहीं । किंतु उनकी पुत्रीने पिताका भाव समझ लिया । वह अपने भागकी रोटीका टुकड़ा पत्तेपर रखकर ले आयी । अतिथिके सम्मुख उसे रखकर बोली—‘देव ! आप इसे ग्रहण करें । हमारे पास आपका सत्कार करने योग्य आज कुछ नहीं है ।’

अतिथिने रोटी खायी, जल पिया और बिदा हो गया, किंतु वह बालिका मूर्छित होकर गिर पड़ी । भूखसे वह दुर्वल हो चुकी थी । यह मूर्छा उसकी अन्तिम मूर्छा बन गयी । अतिथिके सत्कारमें उसने अपनी आधी रोटी ही नहीं दी थी, अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था ।

शौर्यका सम्मान

दक्षिण भारतका बहुत छोटा-सा राज्य था बल्लारी । उसका शासक कोई वीर पुरुष नहीं था, एक विधवा

नारी थी । परतु वह नारी—शौर्यकी प्रतिमा थी वह । उनका नाम था मलवाई देसाई । छत्रपति महाराज

शिवाजीकी सेनाने बल्लारीपर चढ़ाई की। जिन महाराष्ट्रोंकी दक्षताने दिल्लीके बादशाह और गजेबको 'तोवा' बुलंगा रखा था, उनकी प्रिंगार्ल सेनाका समना बल्लारीके मुडीमर सैनिक कैसे करते। किंतु बल्लारीके सैनिक लड़े और खूब लड़े। छत्रपति बल्लारीके शूरोंके शौर्यको देखा और 'वाह!' बोल उठे।

बल्लारीके सैनिकोंका एक बड़ा भाग खेत रहा। शेष बढ़ी किये गये। पराजय तो पहिले से निश्चित थी; किंतु मलबाई बदिनी होकर भी सम्मानपूर्वक ही छत्रपति के सम्मुख उपस्थित की गयी, यद्यपि अपने सम्मानसे मलबाई प्रसन्न नहीं थी। उन्होंने शिवाजीसे कहा—'एक नारी होनेके कारण मेरा यह परिहास क्यों किया जा रहा है?' छत्रपति ! तुम महाराज हो, तुम्हारा राज्य बड़ा है और बल्लारी छोटा राज्य है। तुम खतन्त्र हो, थोड़ी देर पहिले मैं भी खतन्त्र थी, मैंने खतन्त्रता-के लिये पूरी शक्तिसे सग्राम किया है, क्या हुआ जो तुमसे शक्ति कंस होनेके कारण मैं पराजित हुई। परतु

तुम्हे मेरा अपमान तो नहीं करना चाहिये। तुम्हारे लोगोंका यह आदरदानका अभिनय अपमान नहीं तो और है क्या? मैं शत्रु हूँ तुम्हारी, तुम मुझे मृत्युदण्ड दो।'

छत्रपति सिंहासनसे उठे, उन्होंने हाथ जोड़े—'आप परतन्त्र नहीं है। बल्लारी खतन्त्र था, खतन्त्र है। मैं आपका शत्रु नहीं हूँ, पुत्र हूँ। अपनी तेज़िलिनी माता जीजाबाईकी मृत्युके बाद मैं मातृहीन हो गया हूँ। मुझे आपमे अपनी माताकी वही तेजोमयी मूर्तिके दर्शन होते हैं। आप यदि शिवाके अपराध क्षमा कर सकें तो उसे अपना पुत्र खीकार कर ले।'

मलबाईके नेत्र भर आये। वे गदगद कंठसे बोलीं—'छत्रपति! सचमुच तुम छत्रपति हो। हिंदू-धर्मके तुम रक्षक हो और भारतके गौरव हो। बल्लारीकी शक्ति तुम्हारी सदा सहायक रहेगी।'

महाराष्ट्र और बल्लारीके सैनिक भी जब आवेशमें छत्रपति शिवाजी महाराजकी जय बोल रहे थे, खय छत्रपतिने उद्घोष किया—'माता मलबाईकी जय।'

मैं आपका पुत्र हूँ

महाराज छत्रसाल खय नगरमें घूमते थे और प्रजाजनोंसे उनका कष्ट पूछते थे। 'जिस राजाके राज्यमें प्रजाके लोग दुख पाते हैं, वह नरेश नरकगामी होता है।' छत्रसालने इसे आदर्श बना-लिया था।

सुगठित उच्च शरीर, भव्य भाल, विशाल लोचन, आजानुब्रह्म महाराजको देखकर एक नारी उनपर मुख हो गयी। 'कामातुरोणा न भयं न लज्जो' अतः वह नारी महाराजके समीप आयी, उसने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'मैं अत्यन्त दुखिनी हूँ।

'आपको क्या छेरा है देवि!' महाराजने पूछा।

नारीने छलपूर्वक उत्तर दिया—'श्रीमान् मेरा कष्ट दूर करनेका वचन दें तो प्रार्थना करूँ।'

सरल हृदय महाराजने कह दिया—'मुझसे सम्भव होगा तो आपका कष्ट अवश्य दूर करूँगा।'

नारीने अब विचित्र भगीसे कहा—'मैं संतानहीन हूँ। मुझे आप-जैसा पुत्र चाहिये।'

छत्रसाल दो क्षणको स्तव्य हो गये; किंतु शीघ्र ही उन्होंने उस नारीके चरणोंमें मस्तक छुकाते हुए कहा—'आपको मेरे समानं पुत्र चाहिये, अतः माता। यह छत्रसाल ही आपका पुत्र है।' छत्रसालने उसे राजमाताकी भौति खीकार किया।

चन्द्राकी मरणचन्द्रिका

अरुणोदयका समय था । चन्द्रावती अपनी हवेलीमे बाहर निकली, उसके कठिनेशमें मिट्ठीका नवीन कलग ऐसा लगता था मानो भगवान् मोहिनीने अमृत-कुम्भ रख लिया हो । उसका समस्त गरीर इंगुरके रगके समान था, उसने लाल रगका धाघरा पहना था और जीनी-जीनी ओढ़नी भी लाल ही थी, ऐसा लगता था मानो साक्षात् ऊपर सूर्यको अर्ध देनेके लिये निकल पड़ी हो । पवन मन्द-मन्द गनिशील था ।

‘वार्ड सौभाग्यवती हों’, पहरेपर बैठे दरवानने अभिवादन किया ।

‘देखो, निकल आयी हमारी चन्द्रारानी’ सातों सखियोंने दरवाजेपर ही खागत किया । उनके हाथमें कलग थे, चन्द्रावती उन्हें प्राणोंमें भी अधिक चाहती थी, वे नित्य सवेरे और आमको उसके साथ बाबलीमे पानी लाने जाया करती थीं ।

बाबली हवेलीसे पाव फोस दूर थी । राजस्थानमें पानी आमानीसे नहीं मिलता है । चन्द्रावतीके पिता एक साधारण भूमिपति थे । हवेलीसे थोड़ी दूरपर एक छोटी-सी बस्ती थी । उसमें उनके सैनिक तथा परिचारक आड़ि रहते थे । वे एक छोटी-सी सेनाके अधिपति थे । उनके आश्रितोंकी कन्याएँ सदा चन्द्रावतीका मन बहलाया करती थीं । बाबलीसे पानी लाना उनका नित्यका काम था ।

× × ×

इधर चन्द्रावती सखियोंके साथ बाबलीकी ओर बढ़ रही थी, उधर धूप चढ़ती जा रही थी । उसने देखा— बाबलीके उस पार बहुत-से तबू और खेमे लगे हुए थे । उनके आस-पास आगिन छायी-छोड़े और ऊट बैंध हुए थे । खेमोंपर हरे झड़े लहरा रहे थे, जिनमें चॉट अङ्कित था । चन्द्राने देखा नाटे और ठिगने तथा पीले

रगके सैनिकोंको, उनकी काली ढाढ़ीसे वह सिंहर उठी ।

‘धूत-धूत’ बड़े जोरसे सिंहा बज़ उठा ।

‘राजस्थानपर दिल्लीके मुगल चढ़ आये हैं चन्द्रा ! उनकी मेनाकी यह एक छोटी-सी टुकड़ी है ।’ किसी सखीने उसकी उत्सुकता कम की ।

‘पर हमारी बीरप्रसविनी भूमिको अपवित्र करनेका इन्होंने साहस किस तरह किया ? क्या इन्हें महाराणा हम्मीर और राणा सौंगाकी तलवारकी धारका विस्मरण हो गया ? क्या इन्हें पता नहीं है कि चिंतौड़के किलेमें जौहरयज्ञ करनेवाली पवित्रिकी चिताकी राख क्षणमात्रमें इन्हें भस्म कर सकती है ?’ चन्द्रावतीके नेत्र लाल हो गये ।

‘राजस्थानका बच्चा-बच्चा राणा साँगा है, चन्द्रा । और हमारे रक्षक हाड़ा राव और उनके नौजवान लाडलेके रहते किसी म्लेच्छका साहस नहीं है -कि हमारी धरतीकी ओर औंख उठाये, काले नागकी त्राह उसका सिर कुचल दिया जायेगा, हम राजपूतकी सर्तान हैं ।’ सखीने चन्द्रावतीकी अँगुली पकड़ ली [वे जल्मरे कलग लेकर हवेलीकी ओर चल पड़ीं, हवेली तनकर खड़ी थी, उसकी श्वेतना उसकी निष्कलकनाकी प्रतीक थी और चन्द्रावती वार-बार उसीकी ओर देखा करती थी मानो वह ‘उससे कह रही थी कि ग्रोण रहते’ तुम्हारी दीवारोंपर म्लेच्छ कालिंद नहीं पोत सकेंगे और वह उमगसे चली जा रही थी सखियोंको अपनी आनन्दमयी मुसकानसे नहलाते ।

‘ठहरो !’ एक सैनिक घोड़ेमे उतर पड़ा, वह चन्द्रावतीके सामने खड़ा हो गया । उसकी अवस्था पचास सालकी रही होगी, रग गेहूँआ था, पर चेहरेपर पीलाप्रन था, आँखें छोटी-छोटी और भीतरकी ओर धूँसी हुई थीं । मूँछे छोटी थीं, ढोकी आ रही थी ।

‘सावधान, यदि हमारी सखीका स्पर्श करोगे तो

दिल्ली लौटना कठिन होगा; हाडा राव तुम्हारी बोटी-
बोटी काटकर अपने शिकारी कुत्तोंके सामने ढाल देंगे।’
एक सहेलीने बुगल पठानको छलकारा।

‘हम दिल्ली लौटनेके लिये नहीं, राजस्थानपर शासन
करने आये हैं, हमारे रक्तमें चंगेज और तैमूर तथा
वावरका ऐश्वर्य रात-दिन प्रवाहित होता रहता है।’
बुगल पठानने चन्द्राका हाथ पकड़ लिया।

‘पापी, नीच, कायर। चंगेज, तैमूर और वावरका
नाम लेते तुझे लजा नहीं आती है। चंगेज मारतकी
ओर आँख उठाकर देख तक नहीं सका; तैमूर नौ
दो भ्याह हो गया और वाप्पा रावलके बंशज राणा साँगाके
सामने जिस वावरकी एक भी न चली, उसकी
वीरताकी ढाँग हॉकता है।’ चन्द्रावतीके अङ्ग-अङ्गसे
रोपकी ज्याला निकल पड़ी, वह ऐसी लगती थी मानो
रावणको विक्रान्तवाली सीता हो या दुयोधनको कुपित
दृष्टिसे निहारनेवाली पाञ्चाली द्वौपदी हो।

असहाय राजकन्याने आकाशकी ओर देखा मानो
वह देखोंसे खरक्षाकी प्रार्थना कर रही हो।

‘मुझे दुराचारी राक्षस हरकर ले जाना चाहता है।
हे पक्षी! तुम्हें मेरे पिताकी नंगी तलवारकी जपथ है,
उनसे कहो कि चन्द्रा हवेलीमें फिर कभी नहीं पैर रख
सकेगी।’ उसने आकाशमें उड़ते कॉवली चिड़ियाकी
ओर सकेत किया और उसकी आँखोंसे टप-टप अशु-
कण गिर पड़े, मानो जन्मभूमिका परित्याग उसके लिये
असह्य था।

‘मुझे गीढ़ अपनी भुजाओंसे कलंकित करना
चाहता है। कॉवली! तुम्हें मेरे भैयाकी राखीकी शपथ
है, उनसे कहना कि मेरे हाथोंकी मेहदीसे राखीके
रेगभी ढोरे अरुण न हो सकेंगे।’ चन्द्रावतीने बुगल
पठानको देखा मानो सिंहिनी गजगजको भयभीत कर
रही हो।

‘मुझे मृत्यु अपने अङ्गमें भरकर यमराजको प्रसन्न
करना चाहती है। कॉवली! तुम्हें मेरे पातिव्रतकी
शपथ है, मेरे प्रियतम प्राणेश्वरसे कहना कि चन्द्रा सर्गमें
ही मिल सकेगी।’ चन्द्राके ये अन्तिम जट थे और
कॉवली हवेलीकी ओर उड़ चली।

बावलीका जल शान्त था। बातावरण गम्भीर था।
चन्द्रावती विवश थी।

X X X

‘पिताजी! हम ऐसा कभी न होने देंगे। बुगल
पठानको दिल्ली जीवित भेजनेसे हमारे पूर्वजोंकी तलबारें
आत्मगलानिमें हूँब जायेंगी। चन्द्रावतीका स्पर्श करनेवाला
जीता रहे, यह असम्भव है।’ चन्द्रावतीके भाईने घोड़ेको
एड़ लगायी और वह हाडा रावके हाथीकी बगलमें आ
गया; नौजवान राजपूतके कटिदेशमें लटकती तलबार
रणकी चुनौती दे रही थी। उसने धूमकर पीछे देखा;
अगणित घोड़े और ऊट बढ़ते चले आ रहे थे; उनके
सवारोंको देखकर राजपूतका सीना फुल गया।

‘बेटा! गिनतीमें हमारे ये ऊट, घोड़े, हाथी और
सवार तथा अख-शख सुगालोंके सामने कुछ भी नहीं है,
रणमें हम आधी घड़ी भी उनका सामना नहीं कर सकते
हैं। इस समय दण्ड नहीं, दाम-नीतिकी आवश्यकता
है।’ बृद्धने पुत्रको बड़े प्रेमसे देखा और नेत्रोंसे विवशता
टपक पड़ी।

‘पर म्लेच्छको उत्कोच देकर चन्द्राको लौटना हमारे
लिये लजा और अपमानकी बात है। चन्द्रा जलकर
राख हो जायगी, पर हवेलीमें पैर नहीं रखेगी।’ राजपूतने
बृद्ध पिताको सावधान किया तथा चन्द्रावतीके पतिको
देखा, मानो जानना चाहता था कि वह ठीक ही कह
रहा है।

‘मुगलोंका भाग्य-सूर्य इस समय मध्याह्नमें है। कान्धारसे
बगलतकर्ता भूमि उनके अधीन है।’ बृद्धने गम्भीर
साँस ली।

‘और आप चाहते हैं कि राजस्थान भी कलकित हो जाय । ऐसा नहीं होगा पिताजी ।’ युवकने धोडेकी चाल बढ़ायी ।

‘मेरा सामूहिक रणमें विज्वास है, यदि हम छुट-फुट छड़ते रहेंगे तो कहींके न रहेंगे कुमार । हमारी साम-दाम-नीनिसे राजस्थान कलकित नहीं, पिजयी होगा । जिसे तुम उत्कोच समझते हो वह रणकी चुनौती है ।’ बृद्धने अपनी सफेद मूँछोंपर अँगुली फेरी । राजपूतोंने मुगल-सेमोंको देखा । वे बाबली-नटपर थे । तीसरे पहरका नूर्य ढल रहा था और जाडेकी बालुकामयी हवा बेगवनी हो उठी ।

X X X

‘मुझे धन नहीं चाहिये, मैं पृथ्वी और विश्वाल सेनाका भोग नहीं चाहता, चन्द्रावनी मेरी है और सदा मेरी रहेगी । बुगल पठानने बृद्ध राजपूतके कथनकी उपेक्षा की, हाडा रावके नेत्र लाल हो गये, वे हाथ मलने लगे ।

‘पिताजी ! आप निधिन्त रहें, चन्द्रावनी भूखों मर जायगी, पर मुगलके घरकी रोटी नहीं नोडेगी ।’ चन्द्रावनीने हाडा रावके चरणकी धूलि मस्तकपर चढ़ायी ।

‘मैं चन्द्रावनीके लिये राजस्थानका कण-कण राजपूतों और मुगलोंके खूनमें लाल कर दूँगा ।’ बुगल पठानके इस कथनसे राजपूत युवककी त्योरी चढ़ गयी, चन्द्रावनीके भाईने म्यानसे तल्लार खींच ली ।

‘मैंया ! आप विज्वास रखें, मैंने जिन हाथोंसे राली बैंधी है उनसे पठानके घर पानी नहीं भर्हँगी । प्राण दे दूँगी, पर म्लेञ्चके घरका जल नहीं पीजँगी ।’ चन्द्रावनीने ओजस्विनाका आश्रय लिया । वह रणचण्डी-सी गरज उठी ।

‘मैं चन्द्रावनीके लिये राजपूतनियोंका सिंदूर धूलिमें मिला दूँगा । राजस्थान जनशृन्य हो जायगा ।’ बुगल पठानने चन्द्रावनीके पतिको ताना मारा ।

‘प्राणेश्वर ! आप मेरी आत्मा हैं, मैं अपने सिंदूरकी अपय लेती हूँ, मेरा शब्द मुगलकी सेजतक नहीं जा सकेगा, मैं उसे सत्यकी जालासे राख कर दूँगी ।’ चन्द्रावनीने अपने पतिसे प्रतिज्ञा की ।

X X X

‘अब तो प्राण जा रहे हैं । आह, पानी ! पानी !! पानी चाहिये ।’ चन्द्राके वचन-वाणसे कामान्य बुगलका हृदय धायल हो गया । वह वासनाका पुतला जलपात्र लेकर बाबलीकी ओर जा ही रहा था कि पलभरमें सारे तबू और खेमे आगकी जालामें धायँ-धायँ जलने लगे । बुगलकी आगा खाहा हो गयी । सत्य कुद्द हो उठा ।

हवेलीकी ओर जाते हुए हाडा राव, चन्द्राके भाई और पतिने बाबलीकी ओर देखा तो लाल-लाल लपटोंसे उनका आत्मसम्मान उन्नत हो उठा । पहिचम आकाशकी लालिमामें चन्द्राके प्राण समा गये । उसके जीवनका सूर्य अस्त हो गया । राजस्थानकी लोक-वाणीमें चन्द्रा चिरसुहागिन हो उठी ।—रा० श्री०

लाजवंतीका सतीत्व-लालित्य

युद्ध समाप्त हुआ । एक-एक करके सभी राजपूत कट भरे ! परंतु किसीने दीनतायुक्त पराधीनता स्थीकार न की । दूसरी ओर किल्में धुएँका पहाड़ उठ रहा था । एक तड़ाकेके शब्दके साथ आग भड़क उठी और आसमानसे बातें करने लगी । राजपूत-ललनाओंने पवित्र

जौहर-न्रत पूर्ण किया ! अकवरके हाथ क्या आया ? जला हुआ अहर । दूटे हुए मकान । जली हुई हड्डियाँ ! मासके लोयडोंकी ढेरी । यह देखकर क्रूर अकवरकी आँखोंमें आँसू भर आये । वह कहने लगा—‘ओहो ! राज्य बढ़ानेकी उमंगमें कितनी हत्याएँ होती हैं ।’

अकबर अपनी क्रूरतापर पछता रहा था । इतनेमें कई मुसलमान सिपाहियोंने एक शखाखधारी तेजस्वी तरुणको अकबरके सामने पेंग किया । उसकी मुश्कें कसी हुई थीं ! चेहरेपर बँकिपनके चिह्न थे । बड़ा अल्हड़ जवान था । आँखें रक्तके समान लाल हो रही थीं । इतना होनेपर भी मुखाकृतिमें बड़ी सुकुमारता थी उसके । अकबरने कहा—‘तू कौन है ? ऐसी बीमत्स स्थितिमें क्यों यहाँ आया है ?’

शुक्र—‘मैं पुरुष नहीं हूँ । खी हूँ । अपने खामीके शब्दकी खोजमें यहाँ आयी हूँ ।’

‘तेरा नाम क्या है ?’

‘मेरा नाम लाजवंती है ।’

‘तू कहाँ रहती है ?’

‘मेरा घर दूँगपुर है ।’

‘चित्तौड़ और दूँगपुरके बीच कितना फासला है ? तू यहाँ क्यों और कैसे आयी ?’

‘फासला बहुत है । मैंने सुना कि चित्तौड़में जौहर होनेवाला है । राजपूत वीर और वीराङ्गनाएँ दोनों धर्मकी देवीपर वलिदान होनेकी तैयारियाँ कर रहे हैं । इस शुभ समाचारको सुनकर मेरा खामी तो पहले ही चला आया था । मुझे पीछेसे पता चला । मेरी तीव्र इच्छा थी कि भाग्यवती राजपूतनियोंके समान मुझे भी सतीत्वकी चित्तापर जलनेका सौभाग्य प्राप्त हो । किंतु मेरे आनेसे पहले ही यहाँ सब कुछ समाप्त हो चुका । अतएव मैं खामीके शब्दको खोजनेके लिये रणभूमिमें चली आयी और तेरे क्रूर सिपाहियोंने मुझे पकड़ लिया ।’

अकबर विस्मययुक्त हो मनमें कहने लगा, ‘ओहो ! मुझे सब जहाँपनाह और खुदावद कहते हैं, पर यह लड़की कितनी निडर है, जो कहती है तेरे क्रूर सिपाहियोंने मुझे पकड़ लिया ! सचमुच राजपूत-रमणी बड़ी निडर होती है ! शावाञ् ।’

‘दूने कैसे समझ लिया कि तेरा खामी युद्धमें काम आ गया ! सम्भव है वह भाग गया हो ।’

(हँसती हुई) ‘अकबर ! तू राजपूतोंके धर्मको नहीं जानता । राजपूत रणभूमिसे कभी भागते नहीं । यह तेरी भूल है ! मैं जानती हूँ मेरा खामी धर्मसे कभी डिंग नहीं सकता !’

‘तेरी उसके साथ कब शादी हुई थी ?’

‘शादी नहीं ! अभी सगाई हुई थी । विवाह होनेही वाला था कि दूने चित्तौडपर चढ़ाई कर दी ।’

अकबरने विशेष विस्मययुक्त होकर कहा—‘नेक-बख्त ! जब शादी नहीं हुई तब वह तेरा शौहर (खामी) कैसे हो गया ? तू घर लौट जा । किसी औरके साथ तेरी शादी हो जायगी ।’

वह क्रोधसे आँखें लाल करके बोली—‘अकबर ! क्या तुझे ईश्वरने इसीलिये सामर्थ्य दी है कि किसी सती रमणीके विषयमें ऐसे अपमानजनक वाक्य अपने मुँहसे निकालनेका दुःसाहस करे ?’

बादशाह उसके तेजसे डर गया, उसने कहा—‘नहीं बेटी ! मैं तेरी बेइजती करना नहीं चाहता । इतनी लाशोंमें तेरे मँगतेरेकी लाशका मिलना मुश्किल है ! अगर हुझमें हिम्मत है तो जा छूँढ़ ले और तेरे जीमें आवे सो कर ।’

अकबरकी आज्ञा पाकर लाजवतीने अपने खामीका शब्द छूँढ़ निकाला और डेरेमेसे लकड़ियों लाकर एकत्र की तथा शब्दको उसपर लिया दिया । पॉच बार परिक्रमा करके चकमकसे आग जलायी । जब आग जलने लगी, तब देवीके समान खामीको गोदमे बैठ लिया और चुपचाप शान्तभावसे सबके देखते-देखते जलकर भस्म हो गयी । सिपाही आश्र्वर्यचकित हो अपनी भाँवामें अनेक प्रकारके गीत गाकर राजपूत सतीके सहज पति-प्रेमकी प्रशंसा करने लगे ।

अभिमानकी चिकित्सा (मन्दाकिनीका भोह-भज्ज)

राजकुमारी मन्दाकिनी प्रथम तो पिताकी एकमात्र संतान अन्यत दुलारी और दूसरे विल्यात सुन्दरी। उसमें सौन्दर्यके साथ सदाचार-प्रणिभा आडि और सद्गुण थे। परतु इन सब सद्गुणों तथा पिताके स्वेहने उसे अभिमानिनी बना दिया था। उसका अहकार इतना बढ़ गया था कि किसी दूसरेको वह अपने सामने कुछ समझनी ही नहीं थी। अनेक राजकुमारोंने उससे विवाह करना चाहा, किंतु किसीको वह अपने योग्य माने नव तो।

प्रत्येक बातकी एक सीमा होती है। कन्याकी अवस्था बढ़ती जा रही थी। महाराजको लोक-निन्दाका भय था। लोग कानाकसी करने भी लगे थे, किंतु राजकन्या थी अपने अहंकारमें। वह किसी राजकुमारको वरण करनेको प्रस्तुत ही नहीं होती थी। अन्तमें महाराजने पड़ोसके युवक राजा रागमोहनसे कुछ मन्त्रणा करके धोयगा कर दी—‘राजकुमारीके आगामी जन्म-दिन प्रान काल जो पुरुष नगद्वारमें पहिले प्रवेश करेगा, उसके साथ राजकुमारीका विवाह कर दिया जायगा, फिर वह कोई भी हो।’

राजकुमारीका जन्म-दिन आया। प्रात काल नगद्वारमें सबसे पहिले प्रविष्ट होनेवाले पुरुषको राजसेनक पकड़ लाये। वह था फटेन्चिथडे लपेटे एक भिक्षुक। परतु वह युवक था, सुन्दर था और पूरा अलमल था। उसके मुखपर सड़ प्रसन्नता खेलनी रहनी थी। महाराजने गजपुरोहितको बुलाया और विना किसी धूम-धामके उन्होंने उसी दिन उस भिक्षुकके साथ गजकन्याका विवाह कर दिया। राजकुमारी चिन्मायी, मच्छी और रोने-रोने उसने अपने सुन्दर नेत्र लाल बना लिये, किंतु आज उसके पिता निष्ठुर बन गये थे।

उन्होंने पुत्रीके रोने-चिन्मानेपर ध्यान ही नहीं दिया। भिक्षुकको केवल पाँच स्वर्णमुद्रा देकर उन्होंने कहा—‘तू अपनी पत्नीको लेकर मेरे राज्यसे तीव्र निकल जा। स्मरण रख कि यहि फिर तू या तेरी पत्नी मेरे राज्यमें आयी तो प्राणदण्ड दिया जायगा।’

‘चलो मन्दाकिनी !’ भिक्षुकने राजकन्याका हाय पकड़ा और चल पड़ा। रोती-विलुप्तिनी राजकुमारी उसके साथ जानेको विवश थी। परतु भिखारी व्यों-काल्यों प्रसन्न था। वह पत्नीके रोनेपर ध्यान दिये विना गीत गाता जाता था।

राजकन्याको पैदल ही पिताके राज्यसे बाहर जाना पड़ा। भिखारी उससे मधुर भाषामें बोलता था, उसे प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता था। पर्याप्त दूर जानेपर जंगलमें नदी-किनारे एक छुसकी झोपड़ीमें दोनों पहुँचे। भिखारीने कहा—‘अब यही तुम्हारा घर है। तुम्हें स्वयं अब जगलके पत्ते और लकड़ियाँ लानी पड़ेंगी। कन्द-मूळ जो कुछ मिलेगा, उसे उबालकर खाना पड़ेगा। पासके गाँवमें लकड़ियाँ बेचने जाना होगा। मैं भी जितना बन सकेगा, तुम्हारी सहायता करूँगा।’

राजकन्याके लिये यह जीवन कितना दुख़ था, वह आप अनुमान कर सकते हैं, किंतु विवाहता सब करा लेनी है। एक ही सुख उसे था कि भिखारी उसके साथ बहुत प्रेमपूर्ण व्यवहार करता था। कुछ दिनों बाद भिखारीने वह झोपड़ी छोड़ दी। मन्दाकिनीको लेकर वह एक गाँवमें आया। वहाँ वे दोनों एक खडहर-ग्राम बरमें रहने लगे। भिखारी कहींसे कुछ पैसे ले आया और उसमें उसने भिट्ठीके वर्तन खरीदे। पत्नीसे उसने कहा—‘इन वर्तनोंको बाजारमें ले जाकर बेच आओ।’

किसी समय जो राजकन्या थी, उसके लिये सिरपर बर्तन उठाकर बाजारमें जाना बड़ा कठिन जान पड़ा, किंतु जाना पड़ा उसे। भिखारीने उसे स्पष्ट कह दिया कि यदि उसकी आज्ञाका पालन न करना हो तो वह मन्दाकिनीको छोड़कर चला जायगा। बेचारी मन्दाकिनी बर्तन सिरपर उठाकर बाजार गयी। उसे बर्तन बेचना तो आता नहीं था, दूसरोंसे नम्र व्यवहार करना भी नहीं आता था। बाजारमें बर्तन रखकर वह उनके पास खड़ी रही। भूमिमें बैठना उसे बहुत बुरा लगा।

एक युवक, घुड़सवार बाजारमें आया। उसने मन्दाकिनीसे बर्तनोंके दाम पूछे। मन्दाकिनीने रुखे खरमें दाम बताये तो घुड़सवार लौट पड़ा। मोड़ते समय उसका घोड़ा भड़क उठा। फलतः घोड़ेके पैरोंकी ठोकरसे सब बर्तन फूट गये। घुड़सवारने इधर ध्यान ही नहीं दिया। वह चला गया। मन्दाकिनी रोती हुई घर लौटी। भिखारी कुछ होगा, इस भयसे उसके प्राण कौप रहे थे।

भिखारी आया। रोते-रोते मन्दाकिनीके नेत्र झूल उठे थे। भिखारी कुछ बोला नहीं। परतु दूसरे दिन उसने कहा—‘मन्दाकिनी ! तुझे कोई काम आता नहीं। मिट्टीके बर्तन फूट गये। अब हम दोनोंका कैसे निर्वाह होगा ?’ एक उपाय है—नगरमें चलें। राजा रंगमोहनकी पाकशालामें तुम्हें कोई नौकरी दिलानेका प्रयत्न करें। तुम्हें काम मिल जाय तो तुम्हारी ओरसे निश्चिन्त होकर मैं भी कहीं काम छूँड़ूँ। कुछ धन एकत्र हो जानेपर कोई व्यापार कर लेंगा और तब तुम्हें भी अपने पास बुला लेंगा।’

राजा रंगमोहनका नाम सुनकर मन्दाकिनीने दीर्घ श्वास ली। एक समय इस नरेशने उससे विवाह करनेका प्रस्ताव किया था। आज वह राजरानी होती; किंतु हाय रे गर्व ! उसी राजभवनमें दासी बनने वह जा रही है। जानेके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं। मन्दाकिनी

नगरमें गयी और राजाकी पाकशालामें उसे नौकरी मिल गयी। भिखारी उससे ब्रिदा होकर कहीं चला गया।

मन्दाकिनीका गर्व नष्ट हो गया था। उसका स्वभाव बदल गया था। अब वह अत्यन्त विनम्र, परिश्रमी और सावधान सेविका बन गयी थी। रसोई-घरकी अध्यक्षा रम्भाकुमारी उसके कार्यसे अत्यन्त सतुष्ट थीं।

वसन्त पञ्चमी आयी। राजा रंगमोहनका यह जन्म-दिन था। सभी सेवकोंको इस दिन नरेश अपने हाथसे पुरस्कृत करते थे। दूसरी सेविकाओंके साथ मन्दाकिनीको भी राजसभामें जाना पड़ा। जब सब सेवक पुरस्कृत हो चुके और सब सेविकाएँ भी पुरस्कार पा चुकीं, तब उसे पुकारा गया। वह हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये राजसिंहासनके सामने खड़ी हो गयी। नरेशने कहा—‘मन्दाकिनी ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम्हें तो मैं अपनी रानी बनाना चाहता हूँ।’

मन्दाकिनी चौक पड़ी; वह बोली—‘महाराज ! आपको ऐसी अवर्मपूर्ण बात नहीं करनी चाहिये। मैं परखी हूँ। क्या हुआ जो मेरा पति भिक्षुक है। मेरा तो वही सर्वस्व है। उसे छोड़कर मैं दूसरे पुरुषकी कामना नहीं करती। वही मेरा खामी है। आपकी मुझपर बहुत कृपा है तो इतना अनुग्रह करें कि मेरे पतिका पता लगाकर, उसे बुला दें। मैं पाकशालामें सेवा करके प्रसन्न हूँ।’

महाराज रंगमोहन भीतर चले गये और थोड़ी देरमें वह भिखारी राजमहलसे निकला। मन्दाकिनी उसे देखते ही दौड़कर उसके पैरोंपर गिर पड़ी। भिखारी मुस्कराया—‘मन्दाकिनी ! मुझे ध्यानसे देखो तो। तुम्हें मुझमें और रंगमोहनमें कुछ सादृश्य नहीं मिलता ?’

भेड़ खुल गया था। भिखारीके बेशमें उसका पाणि-ग्रहण करनेवाले स्वयं राजा रंगमोहन थे और वह थी उनकी महारानी। राजाने कहा—‘मन्दाकिनी ! क्षमा करना, तुम्हारे अभिमानकी दूसरी कोई औषध मुझे मिलती ही नहीं थी।’—सु० सिं०



सच्ची पतित्रता

जयदेव-पत्नी

परम भक्त श्रीजयदेवजीकी पतित्रता पत्नीका राजभवनमें बड़ा सम्मान था। राजभवनकी महिलाएँ उनके घर आकर उनके सत्सङ्गका लाभ उठाया करती थीं। एक दिन वातों-बातोंमें ही रानीसे पद्मावतीने कहा—‘जो स्त्री पतिके मर जानेपर उसकी देहके साथ सती होती है, वे नीची श्रेणीकी सती हैं। सच्ची पतित्रता तो पतिकी मृत्युका सत्राट पाते ही प्राण त्याग देती है। पतिकी मृत्युका समाचार पाकर उसके प्राण क्षणभर भी शरीरमें ठिक नहीं सकते।’

रानीको यह बात ठीक नहीं लगी। उनके मनमें ईर्ष्या जाग उठी। पद्मावतीजीकी परीक्षा करनेका उन्होंने निश्चय कर लिया। एक समय नरेश आखेटमें गये थे। जयदेवजीको भी वे साथ ले गये थे। अवसरका लाभ उठाकर रानीने मुख उदास बनाकर पद्मावतीजीके पास

जाकर कहा—‘पण्डितजीको बनमें सिंह खा गया।’

गर्नीसे यह बात सुनते ही पद्मावती ‘श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण’ कहकर धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ीं और उनका शरीर निष्प्राण हो गया। रानीके तो होश उड़ गये। उनके दु खका पार नहीं था। महाराजके साथ जयदेवजी नगरमें लौटे। उन्हे समाचार दिया गया। जयदेवजीको पत्नीकी मृत्युका दु ख नहीं था, दु ख उन्हें हुआ रानीके ओककी बात सुनकर। उन्होंने कहलाया—‘रानी माँसे कहो, वे घबरायें नहीं। मेरी मृत्युके सत्राटसे पद्मावतीके प्राण निकले हैं तो अब मेरे जीवित लौटनेपर उसके प्राणोंको लौटना भी पड़ेगा।’

जयदेवजीने भगवान्से प्रार्थना की और पद्मावतीकी देहके पास कीर्तन प्रारम्भ किया। वीरे-वीरे पद्मावतीके शरीरमें चेतना लौटी और वे उठ बैठीं। —सु० सिं०

अच्छे पुरुष साधारण व्यक्तिकी वातोंका

भी ध्यान करके कर्त्तव्यपालन करते हैं

वहाँकी वातोंको देखना मेरे लिये बड़ा कठिन है।

बुद्धियाने कहा—‘ऐसा देश, जहाँ तुम शान्ति नहीं रख सकते, अपने पास क्यों रखते हो?’ महमूद इससे बड़ा प्रभावित हुआ और वह लुटरोंके दमन करनेके लिये तुरत तैयार हो गया तथा यात्रियोंकी रक्षाके लिये उसने उस सङ्कपर उचित व्यवस्था कर दी।

नावेरकी सीख

नावेर नामक एक अरब सज्जनके पास एक बढ़िया घोड़ा था। दाहर नामक एक मनुष्यने कई ऊँट ढेकर बदलमें घोड़ा लेना चाहा, परन्तु नावेरको वह घोड़ा

बहुत प्यारा था, इससे उसने ढेनेसे इनकार कर दिया। दाहरके मन घोड़ा बहुत चढ़ गया था, इससे उसने घोड़ा हथियानेकी दूसरी तरकीब सोची। एक दिन नावेर

उसी घोडेपर सवार होकर कहीं बाहर जानेको था । इस बातका पता पाकर दाहरने चालाकीसे अपना चेहरा बदला और फटेन्चियडे पहनकर वह उसी रास्तमें एक ओर बैठकर बुरी तरह खाँसने लगा । नावेर उधरसे निकला तो उसे खाँसते हुए गरीबको देखकर दया आ गयी । उसने अगले गाँवतक पहुँचा देनेके लिये उसे घोडेपर चढ़ा लिया और स्वयं उतरकर पैदल चलने लगा । घोडेपर सवार होते ही दाहरने चालुक मारकर घोडेको जोरसे भगा दिया और कहा कि 'तुमने मुझको सीधे हाथ घोड़ा नहीं दिया तो मैंने चतुराईसे ले

लिया ।' नावेरने पुकारकर उससे कहा—'भगवान्‌की इच्छासे तुमने मेरा प्यारा घोड़ा ले लिया है तो जाओ, इसकी खूब सार-सँभाल रखना, पर खबरदार ! अपनी इस घोखेबाजीकी बात किसीसे मत कह देना । नहीं तो दीन-दुखी और गरीब-अपाहिजोंपर दया करते लोग हिचकने लगेंगे और इससे बहुत-से गरीबोंको सहायतासे वञ्चित होना पड़ेगा ।'

नावेरकी इस बातसे वह बहुत शरमाया और उसने उसी क्षण लौटकर घोड़ा वापस कर दिया और उससे सदाके लिये मित्रता कर ली ।

प्रेमकी शिक्षा

(प्रेषक—सेठ श्रीहरकिशनजी)

शम्स तबरेज जब हिन्दुस्तान आये, तब हिन्दूकुशके पास उनको एक महात्मा मिले । महात्माने उनको आत्म-स्वरूपका उपदेश किया । तदनन्तर शम्स पजाब गये और उस समयके ग्रन्थ्यात मौलाना रूमके यहाँ ठहरे । मौलानाके पास बड़े-बड़े लोग आते थे । उन्हें वे सुनहरी स्थानीसे लिखी हुई कुरान पढ़कर उपदेश किया करते थे । शम्सको यह अच्छा नहीं लगा । उनको लगा कि मौलाना अपने कीमती समयको बृथा खो रहे हैं । एक दिन उपदेश करनेके बाद मौलानाने कुरानकी पुस्तकको रेशमी कपड़ेमे बौधकर चौकीपर रखा था कि शम्सने उसे उठकर पासके हौजमें डाल दिया । इतनी कीमती पुस्तकके यों फेंके जानेसे मौलाना साहेब शम्स-पर बहुत कुछ हुए और उन्हें डॉटने-फटकारने लगे । तब शम्सने कुण्डमें हाथ डालकर पुस्तकको निकाल दिया । मौलानाने देखा कि पुस्तकका कपड़ा पानीमें पड़नेपर भी भीगा नहीं था । वह जैसा-कान्तैसा सूखा ही था । मौलानाको बड़ा आश्चर्य हुआ । वे शम्सके पैरों पड़े और पूछने लगे कि 'यह शक्ति आपको कैसे

प्राप्त हुई ? आपने कहोसे यह सीखी ? आजसे आप मेरे गुरु और मै आपका शिष्य । मुझे बतलाइये कि मैं क्या करूँ और कैसे आगे बढ़ूँ ?' शम्सने कहा कि 'प्रथम तुम जितना जानते हो और जितना तुमने पढ़ा है, वह सब भूल जाओ । फिर प्रेम कैसे करना चाहिये वह सीखो ।' मौलानासे तो यह सब हुआ नहीं । पर उस समयके लाहौरके नवाबका लड़का बदरुद्दीन (जो पीछेसे नाना या शाहकलदरके नामसे ग्रन्थ्यात हुआ) शम्सकी आज्ञा लेकर प्रेम सीखनेके लिये निकल पड़ा ।

वह धूमते-फिरते आगरा पहुँचा । वहाँ जब राजमहलके नीचेसे जा रहा था, तब उसने शाहजादीको खिड़कीमें खड़ी देखा । उसको देखकर वह वहीं खड़ा रह गया । तीन दिन बीत गये पर वह भूखा-प्यासा खिड़कीके सामने खड़ा ही रहा । शेष साढ़ी उसी राहसे जा रहे थे । उन्होंने उसको देखकर पूछा तो पता चला कि वह शाहजादीके साथ शादी करना चाहता है । बादशाहके कानोंतक बात पहुँची । उन्होंने प्रधानोंसे सलाह करके यह तय किया कि यदि उसका शाहजादीपर सच्चा प्रेम

है तो वह किलेकी छनपरसे नीचे कूटकर दिखा दे, फिर उसके साथ शादी कर दी जायगी। बदरुद्दीनको तो प्रेम सीखना था। वह तुरंत मान गया और किलेके ऊपर जाकर नीचे कूट पड़ा। शेष सार्दीने पहलेमे ही नीचे उसको बचानेके लिये नरम झोटी डलगा रखवी थी। वह झोटीपर गिरा और बच गया। बादगाह उसकी हिम्मत देखकर खुश हो गया और अगली लड़कीकी शादी उसके साथ करनेमें तैयार हो गया, परतु बदरुद्दीनको शादी

तो करनी नहीं थी, उसको तो प्रेम करना—प्रेमके लिये त्याग करना—सीखना था। उसको लगा कि अब वह उत्तीर्ण हो गया। उसको प्रेम करना आ गया और वह चल पड़ा। वह शम्सके पास गया। शम्सने देखा कि इसको प्रेम करना आ गया है। तब इन्होंने कहा कि ‘जैसे उस लड़कीमें मन लगाया था, वैसे ही मनको अन्तर्मुखी करके परमात्मामे लगा दे तो तेरा कन्याण हो जायगा।’

निन्दाकी प्रशंसा

बहुत पहले कार्यमें एक प्रजावत्सन्धि, धर्मात्मा राजा रहता था। एक दिन एक देवदूतने राजासे आकर निवेदन किया—‘महाराज ! आपके लिये सर्वमें स्वर्णिम प्राप्ताद बने तैयार हैं। उनमें आप बड़े सुखर्वर्दक निवास कर सकेंगे।’ राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। साथ ही परलेकळकी ओरमे वह सर्वथा निश्चिन्त-सा हो गया। अपनी वार्षिकज्ञाका उसे स्वाभाविक गर्व तो हुआ ही।

थोड़े ही दिनोंके बाद वहाँ उपवनमें एक तपवी महात्मा आये। राजाके मनमें भी उनके दर्घनिकी लालसा हुई। वह बड़े प्रेमसे उन महात्माके पास गया और कुछ फल-फूल उनके सामने रखवा। पर तपसी उस समय ध्यानमग्न थे। उन्हें राजाके आने-जानेका कोई पता न चल। अतएव कोई वात-चीत अथवा आदर-मानका उपक्रम नहीं किया। राजाको इसमे कुछ अपमानका अनुभव हुआ। दुर्दृश्यता उसे क्रोध आ गया और समीप ही पड़ी हुई घोड़के लीढ़को तपसीके सिरपर रखकर वह चलता बना।

कुछ दिन यों ही बीत गये। एक रात देवदूत राजाके पास पुन आया और बोला, ‘राजन् ! तुम्हारे स्वर्णके प्राप्तादमें केवल लीढ़-ही-लीढ़ भरा पड़ा है। उसमें तिल रखनेको भी अब स्थान नहीं रहा है।’—अब

राजा वडी चिन्तामें पड़ा। वह समझ गया कि यह साधुके सिरपर लीढ़ रखनेका ही दुष्परिणाम उपस्थित हुआ है। मन्त्रियोंने सल्लाह दी ‘यदि आपकी सर्वत्र किसी प्रकार बोर मिथ्या निन्दा हो सके तो वे प्राप्ताद लीढ़मे खाली हो जायें।’

दूसरे दिन राजाने अपने गुप्तचरोंसे अपनी मिथ्या दुष्क्रियाओंका प्रचार कराया। वस क्या था, उसकी सर्वत्र निन्दा होने लगी। उसकी सभीने निन्दा कर डाली पर एक लोहार ऐसा बच रहा जिसने इन बातोंपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

कुछ दिनों बाद देवदूत फिर आया और कहने लगा—‘महाराज ! वह लीढ़ तो विल्कुल खाली हो गयी, वस एक कोनेमें थोड़ी-सी बच रही है। आपकी निन्दा करनेवालोंने सारी लीढ़ खा डाली। अब अमुक लोहार यदि आपकी निन्दा कर डाले तो वह रही-सही भी समाप्त हो जाय।’ इतना कहकर देवदूत तो चला गया और राजा इसका उपाय ढूँढने लगा। अन्तमें वह स्वयं वेष बदलकर लोहारके पास पहुँचा और अपनी निन्दा करने-करानेकी चेष्टामें लगा। लोहार थोड़ी देर-तक तो राजाकी बातें सुनता रहा। फिर उसने वडी नम्रतासे कहा—‘महाराज ! मुझे क्यों वहका रहे हैं,

वह लंग तो आपको ही खानी होगी। मैं तो आपकी निन्दा कर उसे ग्वानेमें बाज आया।

परनिन्दा करनेवाला जिसकी निन्दा करता है उसके पापोंको ले लेना है।—जा० श०

धर्मो रक्षति रक्षितः

किसी शहरमें एक बड़ा धर्मत्वा नजा गज्य करता था। उसके दानवर्मका त्रवाह कर्मा बड़ नहीं होता था। एक दिन उसके यहाँ एक साधु आया। उसने राजासे कहा, ‘राजन् ! मुझे कुछ दो।’ राजा बोला—‘कहिये, क्या हूँ ?’ साधुने कहा—‘या तो बाहु वर्षके लिये अपना राजपाठ दे दो या अपना धर्म दे दो।’ साधुकी वान सुनकर राजा पहले तो कुछ चिन्तामें पड़ गया, फिर सोच-विचारकर उसने कहा—‘महाराज ! मैंने राजपाठ सब आपको दिया। आप सम्भाल लीजिये।’ इतना कहकर वह वहाँसे अकेले चल पड़ा।

चलते-चलते मार्गमें एक वर्गीचा आया। वहाँ एक कुआँ और प्याऊ भी था। बड़ा रम्य स्थान था। राजा वहाँ विश्राम करनेके विचारसे ठहर गया। अगल-बगल देखनेपर उमे एक जीन कसा हुआ सुन्दर घोड़ा दीखा। वहाँ एक सुन्दरी लड़ी वैठी हुई रो रही थी। राजाको स्वभावत ढया आयी। उसने उस लड़ीसे रोनेका कारण पूछा। लड़ी बोली—‘महाराज ! मैं एक राजकुमारी हूँ। मेरे पिता, भ्राता सबको शत्रुओंने मार डाला है। मैं किसी ग्रकार जान बचाकर यहाँ भाग आयी हूँ। अब आप ही दैवके द्वारा भेजे मेरे आश्रयदाता हैं। अन. मुझे शरण दें।’ राजाने कहा—‘ठीक है, घोड़ेपर चढ़कर चलो।’ वह बोली—‘नहीं महाराज ! तुम्हाँ घोड़ेपर चलो, तुम्हारे सामने मेरा घोड़ेपर चलना ठीक नहीं है।’ चलते-चलते दोनों एक दूसरे राजाके नगरमें पहुँचे। लड़ीने कहा—‘तुम गहरमें जाकर कोई बढ़िया मकान भाड़ेपर ठीक करो। तब तक मैं यहाँ बैठनी हूँ।’ राजाने कहा—‘भाई ! मेरे पास अबेला भी नहीं है, फिर मकानकी वान किस

मुँहसे कहूँगा।’ लड़ीने कहा—‘महाराज ! रुपये-पैसोंकी आवश्यकता हो तो मेरे पाससे ले जाओ।’ और उसने निकालकर दस मोहरें राजाको यमा दी। राजा भी मकान ठीक कर आया और राजकुमारीको लेकर उसी मकानमें रहने लगा। राजा बाहरसे घोड़े और उस लड़ी आठिके लिये भोजन-सामग्री ले आया। राजकुमारीने भोजन तैयार किया और राजासे भोजन करनेको कहा। राजाने कहा, ‘अरे ! आप भोजन करो !’ उसने कहा, ‘नहीं महाराज ! पहले आप भोजन कर ले तो पीछे मैं कहूँगी।’ राजाने भोजन किया। लड़ीने भी किया।

दूसरे दिन उस लड़ीने कहा—‘राजन् ! आपको कष्ट अविक होता है, एक नौकर रख लो।’ राजा बोला—‘भाई ! मेरे पास एक अघेला भी नहीं है और तुम तो राजाओंकी सी वान कर रही हो।’ लड़ीने कहा—‘राजन् ! आप असमंजसमें न पड़िये, मैं लड़ी न हुई होती तो लय इन कार्मोंको कर लाती, आपको कहने भी न जानी। रुपये-पैसोंकी आपको जब भी आवश्यकता पड़े आप हमसे निस्सङ्केत माँग लिया कीजिये।’ राजा गया और एक नौकर ले आया।

कुछ दिनोंके बाद उस लड़ीने कहा—‘राजन् ! मन वहलानेके लिये कभी-कभी यहाँकी राजाकी कचहरीमें चले जाया करो और वहाँकी कुछ वातें सुन लिया करो।’ अब राजा रोज कचहरी जाने लगा। राजा यह समझकर कि यह मेरे मन्त्रियोंमेंसे किसीका सम्बन्धी होगा, उससे कुछ न पूछता। इधर मन्त्रीलोग उसकी आकृति राजाके समान देखकर राज-सम्बन्धी जानकर कुछ न बोलते। कुछ दिन यों ही ब्रात गये। एक दिन राजा और मन्त्रीवर्गने

आपसमें आखिर उस राजाके सम्बन्धमें वात-चीत की । वह किसीका कोई होता तो या ही नहीं । लोगोंको बड़ा बोन्हूल डुआ । दूसरे दिन राजाने उससे परिचय माँगा । उसने अपनी सारी वात बता दी । उसकी धर्मप्रियता देख राजाने उसका बड़ा स्वागत किया और अपना मुकुट उसके सिरपर रख उसकी पगड़ी अपने सिरपर रख ली, अपने सिंहासनपर बैठाया और मैत्रीकी प्रतिज्ञा की । दूसरे दिन उमे निमन्त्रण दिया । राजाने सारी घटना उस लीसे कहा । उसने कहा—‘ठीक है, आप इसके बढ़ले राजाको सारे परिकर, परिपद् तथा नगरको भी न्योता दे आइये ।’ वह पहले तो हिचकिचाया पर उसके प्रभाव तथा आग्रहको देखकर राजासे जाकर बोला—‘भाई साहब ! आपको ओर आपकी सारी फौज-प्लटनको और तमाम शहरको मेरे यहाँ कल निमन्त्रण है ।’ राजा बोला—‘कहीं भाँग पी ली है क्या ? खैर बोले जाओ मनमानी, मित्र ही तो हो ।’ शामको उसने एक सिपाही भेजकर पता चलाया तो वहाँ कुछ नहीं था । राजाने कहा, ‘भाई ! उसने कहीं भाँग-फाँग पी ली होगी ।’ इधर इसको भी चैन न थी । उस लीमे कहने लगा—‘भाई ! तुमे मेरी अच्छी

फजीहत की । प्रात राजा न जाने मुझे क्या कहेगा लीने कहा—‘महाराज ! चिन्ता न करें, यदि आपको धैर्य न हो तो उस बगीचेमे देख आये, जहाँसे मुझे लिवा लाये थे ।’ राजाने धोड़ेपर चढ़कर जा देखा तो वहाँ सम्पूर्ण देवर्वां ही कार्यमि तत्पर था । अनन्त दिव्य ऐश्वर्य भरा था । वह तो आश्वर्यमि हूब गया । प्रात काल राजासहित सम्पूर्ण नगरको उसने भोजन कराया । इस आश्वर्यको देखकर सभी लोग आश्वर्यमि हूब गये । भोजनोपरान्त सारा देवर्वा अन्तर्धान हो गया ।

अब उस लीने कहा—‘राजन् । तुमने उस साधुको किनने दिनोंके लिये राज्य दिया था । जरा कागज तो देखो ।’ राजाने देखा, समय पूरा हो चुका था । ली बोली तो तुम अब अपने घरको जाओ । राजाने कहा—‘देवि ! तुम्हें छोड़कर तो मैं एक डग भी न जाऊँगा ।’ ली बोली—‘राजन् । तुम मुझे क्या समझ रहे हो ? मैं कोई तुम्हारी दी नहीं हूँ । मैं तो तुम्हारा धर्म हूँ । जब तुमने मुझे नहीं छोड़ा तो मैंने भी तुम्हें नहीं छोड़ना चाहा और तुम्हारी ली बनकर तुम्हारे साथ रहकर किसी प्रकारका तुम्हें क्षेष नहीं होने दिया । पर अब तुम्हारी जैसी इच्छा ।’ —जा० शा०

उचित गौरव

एक भगिन औचाल्य खच्छ करके जब चलने लगी तब किसी भले आदमीने कुत्तहूलवश पूछा—‘तुम्हें यह काम करनेमें धृणा नहीं लगती ? तुम इतनी दुर्गन्ध सह कैसे लेती हो ?’

भगिनने धीरेसे उत्तर दिया—‘हमारे बड़े लोगोंने बताया है कि सुष्टिकर्ताने हमें मनुष्यमात्रकी माताका पद दिया है । अपनी सतानका मल खच्छ करनेमें माताको कभी धृणा लगी है या दुर्गन्ध आयी है ?’ —सु० सिं०

है और नहीं

किसी नरेशने मन्त्रीसे चार वस्तुएँ माँगी—१—है और है, २—है और नहीं है, ३—नहीं है पर है, ४—नहीं है, नहीं है ।

मन्त्री बुद्धिमान् थे । उन्होंने दूसरे दिन राजाके सामने चार व्यक्ति उपस्थित किये—१—धर्मत्वा सेठ, २—वेश्या, ३—साधु और ४—वहेलिया ।

राजाने पूछा कि 'ये लोग क्यों लाये गये हैं ?'

मन्त्री—'आपने चार वस्तुएँ मँगायी थीं, वे सामने हैं। उनमें पहिली वस्तु 'है और है' ये सेठजी। इनके पास यहाँ सम्पत्ति है, सुख है और ये धर्मात्मा हैं, पुण्यकर्म करते हैं इसमें परलोकमें भी इन्हे अपने पुण्यके फलसे सुख मिलेगा। दूसरी वस्तु 'है और नहीं है' यह वेश्या। इसके पास भी धन है, सुख है; किंतु वह सब पापसे उपर्जित होनेके कारण परलोकमें इसे कष्ट-ही-कष्ट भोगना है। तीसरी वस्तु 'नहीं है पर है' ये साधु महाराज।

यहाँ तो इनके पास कुछ है नहीं, यहाँ इनका जीवन ब्रत-उपवासादिमें ही वीनता है; किंतु इनके पास पुण्यकी अपार सम्पत्ति है जो परलोकमें इन्हे असीम सुख देगी। चौथी वस्तु 'नहीं है, नहीं है' यह आधा। यहाँ यह कगाल है और ग्राणियोंको मारकर पेट भरता है तथा इस पापसे परलोकमें इसकी और अधोगति होनी है।'

राजा तथा सभी सभासद् मन्त्रीकी इस व्याख्यासे सतुष्ट हो गये।—सु० सिं०

वस्तुका मूल्य उसके उपयोगमें है

एक साधुने एक नरेशका कोपागार देखनेकी इच्छा प्रकट की। श्रद्धालु नरेश साधुको लेकर कोपागारमें पहुँचे। हीरे, मोती, नीलम, पन्ने आदिका पर्याप्त बड़ा सप्रह देखकर साधुने पूछा—'इन पत्थरोंसे आपको कितनी आय होती है ?'

नरेश बोले—'इनसे आय नहीं होती। उलटे इनको सुरक्षित रखनेके लिये वरावर व्यय करते रहना पड़ता है। पहरेदार रखने पड़ते हैं; क्योंकि ये बहुमूल्य रत्न हैं।'

साधुने कहा—'आप मेरे साथ चलें। इनसे बहुत भारी और अत्यन्त बहुमूल्य पत्थर मैं आपको दिखलाता हूँ।'

साधु नरेशको ले गये एक झोंपडीमें। उसमें एक विधवा रहनी थी। उसके घरमें एक आठेकी पत्थरोंकी चक्री थी। दूसरोंके अन्न पीसकर वह अपना पेट पालती थी। साधुने चक्रीके पत्थरोंकी ओर संकेत करके कहा—'राजन् ! तुम्हारे उन उपयोगहीन पत्थरोंसे ये पत्थर अत्यन्त बहुमूल्य हैं; क्योंकि इस विधवाके लिये ये जीविकाके आधार हैं। ये उपयोगी हैं।'

राजाने मस्तक छुका लिया। वस्तुका मूल्य उसके सौन्दर्य एवं सप्रहमें नहीं, उसकी उपयोगितामें है, यह बात उसने समझ ली या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

—सु० सिं०

अमरफल

पिताने अपने नन्हे-से पुत्रको कुछ पैसे देकर बाजार भेजा फल लानेके लिये। बच्चेने रास्तेमें देखा, कुछ लोग, जिनके बदनपर चियड़े भी पूरे नहीं हैं, भूखके मारे छटपटा रहे हैं। उसने पैसे उनको दे दिये। उन्होंने उन पैसोंसे उसी समय उदरपूर्तिके लिये सामान खरीद लिया। बालकको इसमें बड़ी खुशी हुई। वह मन-ही-मन फूलता हुआ खाली हाथ घर लौट आया। पिताने पूछा—'वेटा ! फल नहीं लाये ?' बालकने उत्तर दिया—'आपके लिये अमरफल लाया हूँ पिताजी !'

पिताने पूछा—'वह कौन-सा ?' उसने कहा—'पिता-जी। मैंने देखा—कुछ अपनेही-जैसे आदमियोंको भूखों मरते हुए, सुझासे रहा नहीं गया। मैंने वे सब पैसे उनको दे दिये। उनकी आजमरकी भूख मिट गयी। हमलोग फल खाते, दो-चार क्षणोंके लिये हमारे मुँह मीठे हो जाते, परतु इसका फल तो अमर है न पिता-जी !' पिता भी बड़े धार्मिक थे। पुत्रकी बात सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

यही बालक आगे चलकर संत रंगदास हुए।

आँख और कानमें भेद

एक सतके पास तीन मनुष्य बननेके लिये है । तीसरा बोला—‘महाराज ! आँख और कानमें और गये । सतने उनसे पूछा—‘व्रताओ, आँख और कानमें कितना अन्तर है ?’ इसपर पहलेने कहा—‘महाराज ! पाँच अगुलका अन्तर है ।’ दूसरेने कहा—‘महाराज ! जगतमें आँखका देखा हुआ कानके सुने हुएसे अधिक प्रमाणित माना जाता है । यही आँख और कानका भेद

भी भेद है । आँखसे कानकी विशेषता है । आँख लौकिक पदार्थोंको ही दिखलाती है, परतु कान परमार्थ-तत्त्वको भी जानेवाला है । यह विशेष अन्तर है ।’ सतने पहलेको शिष्यरूपसे स्वीकार नहीं किया । दूसरेको उपासनाका और तीसरेको ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया ।

तैरना जानते हो या नहीं ?

एक नवजिक्षित शहरी वावू नदीमें नावपर जा रहे थे । उन्होंने आकाशकी ओर ताककर केवटसे कहा—‘मैया ! तुम नक्षत्रविद्या जानते हो ?’ केवट बोला—‘वावूजी ! मैं तो नाम भी नहीं जानता ।’ इसपर वावूने हँसकर कहा—‘तब तो तुम्हारा चौथाई जीवन व्यर्थ ही गया ।’ कुछ देर बाद वावूने फिर पूछा—‘भाई ! तुम गणित पढ़े हो ?’ केवटने कहा—‘वावू ! मैं तो नहीं पढ़ा ।’ वावू बोले—‘तब तो तुम्हारा आधा जीवन मुफ्तमें गया ।’ केवट वैचारा चुप रहा । योडी देर बाद नदीके दोनों ओर पेड़ोंकी पक्कियोंको देखकर वावू बोले—‘तो मैया ! तुम वृक्ष-विज्ञान-शास्त्र तो जानते ही होगे ।’ केवट बोला—‘वावूजी ! मैं तो कोई आसतर-वासनर नहीं जानता—नाव खेकर किसी तरह घेट भरता हूँ ।’ वावूजी हँसकर बोले—‘तब तो मैया

तुम्हारे जीवनका तीन चौथाई हिस्सा बेकाम ही बीता ।’ यों नातचीन चल रही थी कि अकस्मात् जोरोंकी आँधी आ गयी । नाव डगमगाने लगी । देखते-ही-देखते नावमें पानी भर गया । केवटने नदीमें कूदकर तैरते हुए पूछा—‘वावूजी ! आप तैरना जानते हैं या नहीं ?’ वावूने कहा—‘तैरना जानता तो मैं भी कूद न पड़ता । मैया ! बता ! अब क्या होगा ।’ केवट बोला—‘वावूजी ! अब तो सिवा छूटनेके और कोई उपाय नहीं है । आपने सारी विद्याएँ पढ़ीं, पर तैरना नहीं जाना तब सभी कुछ व्यर्थ है । अब तो भगवान्को याद कीजिये !’ भवसागरसे तरनेकी भजनरूपी विद्या ही सच्ची विद्या है । इसे न पढ़कर जो केवल लौकिक विद्याओंके पण्डित बनकर अभिमान करते हैं, उन्हें तो छूटना ही पड़ता है ।

बुद्धियाकी झोंपड़ी

किसी राजाने एक जगह अपना महल बनवाया । उसके बगलमें एक गरीब बुद्धियाकी झोंपड़ी थी । झोंपड़ीका धुआँ महलमें जाता था, इसलिये राजाने बुद्धियाको अपनी झोंपड़ी वहाँसे हटा लेनेकी आज्ञा दी । राजाके सिपाहियोंने बुद्धियासे झोंपड़ी हटा लेनेको कहा, पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया । तब वे लोग उसे ढाँट-

डपटकर राजाके पास ले गये । राजाने पूछा—‘बुद्धिया ! तू झोंपड़ी हटा क्यों नहीं लेती ?’ मेरा हुक्म क्यों अमान्य करती है ?’ बुद्धियाने कहा—‘महाराज ! आपका हुक्म तो सिर माथेपर, पर आप क्षमा करें, मैं एक बात आपसे पूछती हूँ । महाराज ! मैं तो आपका इतना बड़ा महल

और बागवगीचा सब देख सकती हूँ, पर आपकी ऐसा करनेपर क्या आपके न्यायमे कलङ्क नहीं लगेगा ?' और उन्होंमे मेरी यह दूधी झोपड़ी क्यों खटकती है ? बुद्धियाकी बात सुनकर राजा लजित हो गये और आप समर्थ हैं, गरीबकी झोपड़ी उजड़वा सकते हैं; पर बुद्धियाको धन देकर उसे आदरपूर्वक लौटा दिया ।

नियम दूटने मत दो

एक विद्वान् पुरुष ग्रन्थरचना करनेमे लगे थे । एक निर्वन विद्यार्थीकी सहायता करनेकी इच्छासे उन्होंने उसे अपना लेखक बना रखा था । विद्यार्थी दूर रहता था । प्रनिदिन पैदल चलकर आता था । वे दो घंटे बोलने जाते थे और वह विद्यार्थी लिखता जाता था । एक दिन उन्होंने उस विद्यार्थीसे कहा—‘कल कुछ रात रहने ही आ जाना । ग्रन्थ लिखवाकर मुझे बाहर जाना है ।’

वेचारे विद्यार्थीको पर्याप्त रात रहते उठना पड़ा ।

अँधेरेमे ही चलकर वह उनके पास आया । परंतु केवल एक पंक्ति लिखवाकर वे बोले—‘आजका काम हो गया । अब जा सकते हो ।’

विद्यार्थी हँझलाया । वह कुछ बोला नहीं; किंतु उसके मुखका भाव देखकर वे बोले—‘असंतुष्ट मत हो । आज तुमको ऐसी शिक्षा मिली है, जिसपर यदि चलोगे तो जीवनमे सफलता प्राप्त करोगे । वह शिक्षा यह है कि जो नियम बनाओ, उसे दूटने मत दो । चाहे जैसी स्थिति आवे, नियमका नित्य निर्वाह करो ।’

—सु० सिं०

नियम-पालनका लाभ

एक गाँवमे एक साधु आये । उन्हें पता लगा कि गाँवमे एक ऐसा व्यक्ति है जो किसी प्रकारके आचार-विचार, व्रत-नियमको मानता ही नहीं । साधुने उसे बुलवाया और समझाया—‘जीवनमे कोई एक नियम अवश्य होना चाहिये । तुम कोई एक नियम बना लो—ऐसा नियम जो तुम्हें सबसे सुगम जान पडे ।’

वह व्यक्ति बोला—‘मुझसे कोई नियम-पालन नहीं हो सकता, किंतु आप कहते ही हैं तो यह नियम बना लेना है कि अपने घरके पास रहनेवाले कुम्हारका मुख देखकर ही भोजन करेंगा ।’

साधुने स्वीकार कर लिया । साधु तो चले गये और उसका नियम भी चलता रहा; किंतु एक दिन उसे किसी काममे कुछ रात्रि रहते ही घरसे दूर जाना पड़ा । जब वह लौटा तो दो पहर बीत चुका था । कुम्हार गाँवसे दूर मिट्ठी लैदेने चला गया था वर्तन बनानेके

लिये । परंतु उसे अपना नियम-पालन करना था । वह कुम्हारकी खोजमे चल पड़ा, क्योंकि उसे भूख लगी थी और उस कुम्हारका मुख देखकर विना उसे भोजन करना नहीं था ।

उस दिन मिट्ठी खोदते समय कुम्हारको अशर्फियोंसे भरा घड़ा मिला । उस घड़ेकी अशर्फियोंको वह गधेकी बोरीमे भर रहा था, रात्रिमे ले जानेके लिये, इतनेमें यह व्यक्ति पहुँचा । कुछ दूरसे ही कुम्हारका मुख देखकर यह लौटने लगा । कुम्हारको लगा कि इसने उसे अशर्फी भरते देख लिया है । दूसरोंसे यह न बता दे, इस भयसे कुम्हारने उसे पुकारा और घड़ेका आधा धन उसे दे दिया ।

एक साधारण नियमके पालनसे इतना लाभ हुआ, यह देखकर उसी दिनसे वह व्रतादि सभी धार्मिक नियमोंका पालन करने लगा ।—सु० सिं०

सफलताके लिये श्रद्धाके साथ श्रम भी चाहिये

एक ग्रामीण वैलगाड़ी लिये कहीं जा रहा था। एक नालेके कीचड़में उसका गार्डके पहिये बँस गये। ग्रामीण वैलगाड़ीमें उनर पड़ा और पासकी भूमिपर बैठकर हनुमानचालीसाका पाठ करने लगा। वह एक पाठ करता और फिर प्रार्थना करता—‘हनुमानजी! मेरी गाड़ी कीचड़में निकाल दीजिये।’ फिर पाठ करता और फिर प्रार्थना करता।

ग्रामीणकी श्रद्धा सच्ची थी। उसका पाठ-प्रार्थनाका

धनका गर्व उचित नहीं

कोई बनवान् पुरुष अपने मित्रके साथ कहीं जा रहे थे। मार्गमें एक विपत्तिमें पड़े कगालको देखकर मित्रका हाय दबाकर वे अंगपूर्वक हँस पड़े। समीपसे ही कोई विद्वान् पुरुष जा रहे थे। वर्नीका यह अवहार उन्हें अनुचित प्रतीनि हुआ। वे बोले—

वाषदग्नं हससि कि द्रविणन्धमूढ
लक्ष्मी स्थिरा न भवतीह किमत्र चित्रम्।
कि त्वं न पश्यसि घटाखलयन्वचक्रे
रिका भवन्ति भरिता भरिताश्च रिका॥

फलनेका मौका देना चाहिये

किसी वस्तुको रखने या हटा देनेके सम्बन्धमें बहुत सोच-समझकर निर्णय करनेमें बड़े-से-बड़ा लभ होते देखा गया है।

बहुत पहलेकी बात है। एक व्यक्तिने अपने अगूरके वर्गीचेमें एक अर्जीका पेड़ लगा रखा था। बहुत दिनोंमें उसमें फल नहीं लगे थे।

× × × ×

‘यह पेड़ निर्यक सिद्ध हुआ। इसने इतनी जर्मीन व्यर्थ धेर रखी है। तान साल हो गये, पर इस टूँटमें एक फल भी नहीं लगा। इसे काट डालो।’ वर्गीचेके

क्रम पर्याप्त समय तक चलता रहा। अन्तमें हनुमानजीने दर्जन डिया उसे। वे बोले—‘भले आठमी। देवता आलसी और निरुद्धोगीकी सहायता नहीं किया करने। मैं इस प्रकार लोगोंके छकड़े निकाल करूँ तो ससारके लोग उद्योगहीन हो जायँ। दैवी-सहायता पानेके लिये श्रद्धाके साथ श्रम भी चाहिये। तू वैलोंको ललकार और कीचड़में उतरकर पूरी शक्तिसे पहियोंको टेल। तब मेरा वल तुझमें प्रवेश करके तेरी सहायता करेगा।’

—सु० सिं०

‘अरे। धनके मढ़से अंधे बने मूर्ख। आपत्तिमें पड़े व्यक्तिको देखकर हँसता है, किंतु लक्ष्मी कहीं थिर नहीं रहती, अत इसमें (किसीके कगाल होनेमें) विचित्र बात क्या है। क्या तू रहँटकी ओर नहीं देखना कि उसमें लगी भरी ढोलियाँ खाली होती जाती हैं और खाली हुई फिर भरती हैं।’

यह बात सुनकर वह बनवान् लजित हो गया।

—सु० सिं०

मालिकने मालीको आदेश दिया।

‘मालिक! एक सालका और मौका दीजिये। मैं इसके चारों ओर याला बनाऊँगा। पानी और खाद दूँगा। हो सकता है कि हमारी एक सालकी प्रतीक्षा फलवती हो जाय और इस टूँटमें नये प्राण लहरा उठें।’ मालीने मालिकसे प्रार्थना की। उसे विश्वास दिलाया कि यहि इसमें फल नहीं लगेंगे तो काट दाढ़ँगा।

‘तुम ठीक कहते हो, माली! प्रतीक्षासे भी सफलता मिलती है।’ मालिकने आदेश बड़ल दिया। उसे फलकी आगा थी और सचमुच अगली साल फल लग गये।

—र० श्री०

नित्य-दम्पति

(श्रीराधा-कृष्ण-परिणय)

नित्य आनन्दघन, नित्यनिकुञ्जविहारी श्रीनन्दननन्दन धरापर आविर्भूत हुए और उनके साथ ही पधारीं ब्रजधरापर उनकी महाभावरूपा आनन्दशक्ति श्रीराधा। भगवान्‌के आनन्दस्वरूपका नाम आहादिनी शक्ति है, इसका सार नित्य प्रेम है, प्रेमका सारसर्वस्व महाभाव है और महाभावरूपा हैं श्रीराधाजी। ये भगवान् श्रीकृष्णसे नित्य अभिन्न परतु नित्य लीलात्रिहारकी दिव्य मूर्ति हैं। माता कीर्तिकी वे प्राणप्रिय पुत्री, बाबा वृषभानुकी कुमारी, बृहत्सानु (बरसाने) की श्रीब्रजधरापर आपी थीं जगत्को विशुद्ध प्रेमका आदर्श देने। उनके हृदयधन श्रीयशोदानन्दन चाहे जितने रूप ले, चाहे जितने कार्य करे, किंतु वे प्रेमसारसर्वस्व महाभावस्वरूपा—वे तो केवल भावमयी हैं। प्रेम कहते किसे हैं—ब्रह्म रूपसे जगत्को उन्हें यही सिखलाना था।

नित्यकौमार्य—श्रीराधाने ब्रजधरापर नित्यकौमार्य रूप स्वीकार किया। वे चिरकुमारिका रहीं लोकदृष्टिमें। श्रीनन्दननन्दन केवल ग्यारह वर्ष कुछ मासकी वयमें ब्रजसे चले गये और गये सो गये। ब्रज लौटनेका अवसर ही कहाँ मिला उन्हें। चिरत्रिहणी, श्रीकृष्णप्राणा श्रीराधा—उन नित्य आहादमयीने यह वियोगिनी मूर्ति न स्वीकार की होती—महाभावकी परम भूमि, प्रेमकी चरम-मूर्ति विश्वमानसमे अदृश्य ही रह जाती।

समाजकी दृष्टिमें श्रीराधा नित्यकुमारी रहीं, किंतु श्रुतियोंके सरक्षकको मर्यादाकी रक्षा तो करनी ही थी। इयामसुन्दरकी वे अभिन्न सहचरी, वे शालदृष्टिसे धरापर उनसे अभिन्न न हों, यह कैसे हो सकता था। नन्दनन्दनने उनका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया और उस पाणिग्रहणके पुरोहित, साक्षी थे स्वयं जगत्सप्त लोकपितामह।

श्रीराधा लोकदृष्टिसे नन्दनन्दनसे कुछ बड़ी थीं।

वनमें ब्रजेश्वर नन्दरायजी अपने कुमारके साथ गये थे, सम्भवत् गायोंका निरीक्षण करना था उन्हें। श्रीवृषभानुजी भी पहुँचे थे इसी कार्यसे और वन तथा गौओंके अवलोकनका कुत्रहल लिये उनकी लाडिली भी उनके साथ आयी थीं। सघन मेघोंसे सहसा आकाश आच्छादित हो गया, लगता था कि शीघ्र ही वर्षा होगी। श्रीब्रजेश्वरको लगा कि बच्चोंको घर चले जाना चाहिये। उन्होंने कीर्तिकुमारीको पुचकारा—‘बेटी ! तू घर चली जा। देख, वर्षा आनेवाली है। कन्हाईको अपने साथ ले जा। मैं तेरे बाबाके साथ थोड़ी देरमें लौटता हूँ।’

ब्रजेश्वरका अनुरोध सकोचमयी वृषभानुनन्दिनीने स्वीकार कर लिया। मोहनको साथ लेकर लौटीं, किंतु एकान्तमें उन दोनोंका नित्यस्वरूप छिपा कैसे रह सकता है। नन्दनन्दनका बालरूप अदृश्य हो गया और वे नित्य-किशोर-रूपमें प्रकट हो गये। कीर्तिकुमारीकी मूर्ति भी अब किशोरी-मूर्ति हो चुकी थी। इसी समय गगनसे अपने उज्ज्वल हसपर बैठे ब्रह्माजी उतरे। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—‘श्रुतिकी मर्यादा आज सौभाग्यभूषित हो जाय और इस सेवकको भी सुअवसर प्राप्त हो। ब्रजधरापर आप दोनोंका सविधि परिणय करानेकी अनुमति मिले मुझे।’

मन्दस्मितसे दोनोंने एक-दूसरेकी ओर देखा। पुष्पित लताएँ झुक उठीं। जिनका संकल्प कोटि-कोटि ब्रह्मण्डोंकी सुष्ठि करता है, उनके लिये—उनके विवाहके लिये योगमायाको सामग्री प्रस्तुत करनेमें कितने क्षण लगते थे। अग्नि प्रज्वलित करके ब्रह्माजीने मन्त्रपाठ किया। अग्निकी सात ग्रदक्षिणा करायीं। पाणिग्रहण, सिंदूरदान आदि सस्कार सविधि सम्पन्न हुए। नित्य-दम्पति एक आसनपर आसीन हुए। धन्य हो गये सृष्टिकर्ताके आठों लोचन। वे हाथ जोड़े अपलक देख रहे थे इस अनुपम सौन्दर्य-राशिको। वर-वधु-वेशमें यह युगलमूर्ति।

सच्चा अध्ययन

एक विद्वान् ब्राह्मण एक वर्णत्वा नगेशके यहाँ पहुँचे। उनका सच्चार हुआ। ब्राह्मणने कहा—‘राजन् ! आश्रमी इच्छा हो तो मैं आपको श्रीमद्भागवत श्रवण चराऊँ।’

नरेशने उनकी ओर देखा और बोले—‘आप कुछ दिन और श्रीमद्भागवतका अन्यन करके आवें।’

बहुत दुरा लगा ब्राह्मणको। वे उठकर चले आये। मर्तु उन्होंने श्रीमद्भागवतका अध्ययन छोड़ा नहीं। पूरा प्रथ्य काठस करके वे मिर नरेशके पास गये। जिन्हु उन्हे किर वही उचर मिला—‘आप कुछ दिन और श्रीमद्भागवतका अन्यन करें।’

एक बार, दो बार, तीन बार—ब्राह्मणको यही उचर राजा देते रहे, जब भी वे उनके यहाँ गये। अन्नमें वे निराग हो गये। अचानक श्रीमद्भागवत-

का पाठ करते समय वैराग्यव्रोक्त क्षोकोंपर उनका धान गया। उनके चित्तने कहा—‘छि ! मैं एक तुच्छ नगेशके यहाँ बार-बार लोभत्र जाना हूँ और साक्षात् श्रीकृष्ण-स्वरूप अनन्त द्यामय श्रीमद्भागवत मेरे सामने है, उनकी शरण मैं नहीं लेना।’ ब्राह्मण तो अब श्रीमद्भागवतके पाठमें ही तन्मय हो गये।

बहुत दिन बीत गये और ब्राह्मण नहीं आये तब गजाने उन्हें बुलानेको दूत भेजा, किंतु अब नि स्वृह ब्राह्मण उनके यहाँ क्यों जाने लगे थे। अन्तमें राजा स्वयं उनकी झोपड़ीमें पकारे। उन्होंने कहा—‘ब्रह्मन् ! आप मुझे क्षमा करें। श्रीमद्भागवतका ठीक अध्ययन आपने अब किया है। वैराग्य और भगवद्भक्ति न आपी तो मागवन पढ़नेमें लाभ क्या। आप पाठ करें, अब यहीं आपके चरणोंमें बैठकर मैं आपके श्रीमुखसे श्रीमद्भागवत श्रवण कर्हूँगा।’ —नू० सिं०

कर्मफल

मार्गमें एक धायल सर्व नड़फ़ड़ा रहा था। सहन्तों चौटियाँ उससे चिरवी थीं। पासने एक सन्तुष्ट शिष्यके साथ जा रहे थे। सर्वकी दर्यनीय दग्गा उंखकर शिष्यने कहा—‘कितना दुर्खाँ हैं यह प्राणी।’

उस बोले—‘कर्मफल तो सबको मोगना हीं पड़ता है।’

शिष्य—‘इस सर्वं दंसा क्या पाप किया कि सर्व-चौनिमें भी उसे वह कष्ट।’

गुरु—‘तुम्हें स्मरण नहीं कि कुछ वर्ष पूर्व इस सरोवरके किनारेसे हमलोग जा रहे थे तो तुमने एक मछुएको मछली मारनेसे रोका था।’

शिष्य—‘वह दुष्ट मेरे रोकनेपर नेरा ही उपहास करने लगा था।

गुरु—‘आज वही सर्व है और उसने जिन मछलियों-को मारा था। उन्हे अपना बड़ा लेनेका अवसर मिला है। वे चौटियाँ होकर उन्यन हुई हैं।’

लक्ष्मीका वास कहाँ है ?

एक ऐठ रात्रिमें सो रहे थे। खम्ममें उन्होंने देखा कि लक्ष्मीजी कह रही है—‘सेठ ! अब तेग पुष्य समाप्त हो गया है, इसलिये तेरे दरमे मैं थोड़े ढिनोंमें

चली जाऊँगी। तुम्हे मुझमे जो मौगना हो, वह मौगले।’

सेठने कहा—‘कल सवेरे अपने कुदुम्बके लोगोंसे सलाह करके जो मौगना होगा, मौग छूँगा।’

सवेरा हुआ । सेठने स्वप्नकी बात कही । परिवारके लोगोंमेंसे किसीने हीरामोती आदि माँगनेको कहा, किसीने स्वर्णराशि माँगनेकी सलाह दी, कोई अन्य माँगनेके प्रश्नमें या और कोई वाहन या भवन । सबमें अन्तमें मेठकी छोटी बहू थोली—‘पिताजी ! जब लक्ष्मीजीको जाना ही है तो ये वस्तुएँ मिलनेपर भी टिकेंगी कैसे । आप इन्हे माँगेगे, तो भी ये मिलेंगी नहीं । आप तो माँगिये कि कुटुम्बमें प्रेम बना रहे । कुटुम्बमें सब लोगोंमें परस्पर ग्रीति रहेगी तो त्रिपत्तिके दिन भी सरलतासे कट जाएँगे ।’

सेठको छोटी बहूकी बात पसंड आयी । दूसरी रात्रिमें स्वप्नमें उन्हें फिर लक्ष्मीजीके दर्शन हुए । सेठने प्रार्थना की—‘देवि ! आप जाना ही चाहती है तो प्रसन्नतासे

जायें; किंतु यह वरदान दें कि हमारे कुटुम्बियोंमें परस्पर ग्रीति बना रहे ।’

लक्ष्मीजी थोली—‘सेठ ! ऐसा वरदान तुमने माँगा कि मुझे बौध ही लिया । जिस परिवारके सदस्योंमें परस्पर ग्रीति है, वहाँसे मैं जा कैसे सकती हूँ ।’

गुरुबो यत्र पूज्यन्ते यत्राह्नानं सुसंस्कृतम् ।
अदन्तकलहो यत्र तत्र शक वसाम्यहम् ॥

देवी लक्ष्मीने इन्हें कहा है—‘इन्द्र ! जिस घरमें गुरुजनोंका सत्कार होता है, दूसरोंके साथ जहाँ सम्यतापूर्वक बात की जाती है और जहाँ मुखसे बोलकर कोई कलह नहीं करता (दूसरेके प्रति मनमें क्रोध आनेपर भी जहाँ लोग चुप ही रह जाते हैं) मैं वहाँ रहती हूँ ।’

—सु० सिं०

ऋण चुकाना ही पड़ता है

एक व्यापारीको व्यापारमें घाटा लगा । इतना बड़ा घाट लगा था कि उसकी सब सम्पत्ति लैनदारोंका रूपया चुकानेमें समाप्त हो गयी । अब आजीविकाके लिये फिर व्यापार करनेको उसे ऋण लेना आवश्यक हो गया, किंतु कोई ऋण देनेको उचित नहीं था, विवश होकर वह राजा भोजके पास गया और उसने एक बड़ी रकम ऋणके रूपमें माँगी ।

राजाने पूछा—‘तुम यह ऋण चुका कैसे सकोगे ?’

व्यापारीने उत्तर दिया—‘जितना इस जीवनमें चुका सकूँगा, चुका दूँगा; जो शेष रहेगा उसे जन्मान्तरमें चुकाऊँगा ।’

राजाने दो क्षण सोचकर व्यापारीको ऋण देनेकी आज्ञा दे दी । कोयाघ्यक्षने व्यापारीसे ऋणपत्र लिखताकर घन दे दिया । व्यापारी वहाँसे घन लेकर चला । मार्गमें सायंकाल हो जानेके कारण वह एक तेलीके घर रात्रि

व्यतीत करने रुक गया । पासमें घन होनेसे उसकी रक्षाकी चिन्तामें उसे रातमें नींद नहीं आयी । पशु-भाषा समझनेवाले उस व्यापारीने रात्रिमें तेलीके बैलोंको परस्पर बानें करते सुना । एक बैल कह रहा था—‘भाई ! इस तेलीसे पहिले जन्ममें मैंने जो ऋण लिया था । वह अब लगभग समाप्त हो चुका है । कल धानीमें दो-तीन चक्कर कर देनेसे मैं ऋणमुक्त हो जाऊँगा और इससे इस पशुयोनिसे छूट जाऊँगा ।’

दूसरा बैल बोला—‘भाई ! तुम्हारे लिये तो सचमुच यह प्रसन्नताकी बात है, किंतु मुझपर तो अभी इसका एक सहस्र रूपया ऋण है । एक मार्ग मेरे लिये है । यदि यह तेली राजा भोजके बैलसे मेरे दौड़नेकी प्रतियोगिता ठहरावे और एक सहस्रकी शर्त रखते तो मैं जीत जाऊँगा । इसे एक सहस्र मिल जायेंगे और मैं पशुयोनिसे छूट जाऊँगा ।’

व्यापारीने ग्रातकाल प्रस्थान करनेमें कुछ देर कर

दी। सचमुच तेरीकी घानीके दोनीन चक्र करके पहिला दैर्घ्य अनानक गिर पड़ा और मर गया। अब व्यापारीने तेरीके गनरी भय बाज बना दी और उसे गजा भोजके पास जानको कहा। तेरीके दैर्घ्यमें अपने दैर्घ्यकी दौड़-प्रतियोगिता राजाने नहम रखवेंगी अर्तीर स्वीकार कर दी। दीर्घ्यमें तेरीके दैर्घ्य जीत गया; किंतु तेरीको जेमेही एक समझ नहये मिने उनका वा बैल भी मर गया।

अब व्यापारी राजाके कोपाथक्षके पास पहुँचा। उसने ऋणमें जो धन दिया था, उसे लौटाकर ऋणपत्र फाड देनेको कहा। पूछनेपर उसने बताया—‘इस जीपनमें मैं पूरा ऋण चुका सकूँगा, ऐसी आशा मुझे नहीं और दूसरे जीवनमें ऋण चुकानेका भय मैं लेना नहीं चाहता। इसमें तो अच्छा है कि मैं मजदूरीकरके अपना निर्वाह कर दूँगा।’ —सु० सिं०

अपनी करनी अपने सिर

दो यारी घर्णी जा रहे थे। मार्गमं ही सूर्यास्त हो गया। गरीभियामके निये वे पासके गोंगमें पहुँचे। गोंगके पटंगके द्वारपर जाकर उन्होंने आश्रय गोंगा। उन्हें आश्रय मिल गया। दोनों व्यापारी थे, अपना माल बेचकर लौट रहे थे। उनके पास लैपरीकी थींगी थीं और इसीमें गरिमं यात्रा करना टीक न समझत वे पटंगके यहाँ दूर गये थे। पटंगने उनकी थींगोंको देख दिया था। उमरी नीयत चिंगड़ चुर्मी थी। यात्रियोंका उननं स्वामत-सम्भार किया और उन्हें शयन करनेके निये पलग ढेका गया अरनं नमानकं भानव भोने चला गया।

पटंगने मस्तानके भीनर दो गुटोंकी बुलाकर उनमें चुरचाप बान दी—भींगे द्वारपर दो आठभीं सो रहे हैं, उन्हें गविरं मार दो।’ पुग्म्यागके लोगों गुटोंने पटंगकी गत स्वीकार कर दी।

पटंगके दो पुत्र गरिमं स्तंतर सोनेके निये गये थे। परन्तु कुछ गत्रि धीननेपर वहाँ पटंगके नोकर पहुँच

गये, इसलिये वे दोनों धर लौट आये। देर अधिक हो चुकी थी। धरके भीतर जानेकी अपेक्षा उन दोनोंने द्वारपर ही सो रहना दीक समझा। पलगपर अपरिचित लोगोंको पढ़े देगकर उन दोनोंने लौटकर उन्हें उठ जानेको कहा। बैचारे यात्री चुपचाप उठे और पशुगालामे जाकर सो गये। पलगपर पटेलके दोनों पुत्रोंने लती तारी।

गत्रिमे गुडे आये। उन्होंने पलगपर सोये दो व्यक्तियोंको देखा और तलवारके एक-एक झड़केसे उनके मिथड़ने अलग कर दिये और वहाँसे चलते बने।

पशुगालामे सोये दोनों यात्रियोंने सबैरे प्रस्थान करनेकी तैयारी की तो उन्हें पटेलके बगमदेमें रक्त दिखायी पड़ा। उनके पुकारनेपर पटेल साहब धरमे निकले। अब क्या हो सकता था। उनका पाप उन्हींके सिर पड़ा था। दो पुत्रोंकी हत्या उनके पापसे हो चुकी थी और अब उनका भी जेल गये थिना छुटकारा कहों था।

—सु० सिं०

अद्भुत पराक्रम

‘गाड़ी आनेमं कंगड़ आथा धया रह गया है। लकड़ीके पुलपर गाड़ी मिल पड़ी और अगगिन प्राणियोंके ग्राण चलं जायेने देटी। बुढ़ियाने लड़कीमें कहा। वह

जो भयकर हिमपानमे दूट गया था। गाड़ीको दूर ही रोकनेका उपाय सोचने लगी। वह पश्चिमी वर्जीनियाकी एक निर्जन धार्टीम ज्ञोपड़ी बनाकर रहती थी। दूर-दूर-तक चारों ओर उजाड था। बस्ती उस स्थानसे कोसों

दूर थी। बूढ़ी खीने साहस से काम लिया। आवी रातकी भयावनी नीरवनामे भी वह चारपाई से उठ बैठी। रेलगाड़ी आनेका समय निकट देखकर उसका हृदय कौप रहा था।

उसने सोचा कि प्रकाशके द्वारा ड्राइवरको सूचना दी जा सकती है। जोर-जोरसे चिल्लानेपर चलती गाड़ीमे ड्राइवर कुछ भी नहीं सुन सकेगा, पर प्रकाश देखकर गाड़ी रोक सकता है। बुढ़ियाने मोमवत्तीकी ओर देखा, वह आधीसे अधिक जल चुकी थी, उसके प्रकाशका भयकर औंची और जलवृष्टिके समय कुछ भरोसा भी नहीं किया जा सकता था। घरमे शीतनिवारणके लिये जलायी गयी आग ठड़ी हो गयी थी और लकड़ियों जल चुकी थीं। घरमे गरीबीके कारण कोई दूसरा सामान नहीं रह गया था जिसे जलाकर वह प्रकाश करे और ड्राइवरको सावधान करे।

अचानक बुढ़ियाकी दृष्टि चारपाईकी सिरई-पाई और गोडोपर गयी, उसने शीघ्र ही अपनी लड़कीकी सहायतासे उनको चीर डाला और रेलकी लाइनपर रख दिया। दियासलाईसे उसने आग जलायी, रेलगाड़ी सीटी देती आ पहुँची। योड़ी दूरपर प्रकाशपुञ्ज देखकर ड्राइवरने भयकी आशङ्कासे चाल धीमी कर दी। गाड़ी घटनास्थलपर आ पहुँची, ड्राइवरने टूटा पुल देखा और उसके निकट ही उस बुढ़ियाको देखा जिसने एक लकड़ीके टुकड़ेमें अपनी लाल ओढ़नीका एक टुकड़ा फाड़कर लटका रखा था सूचना देनेके लिये और उसकी छोटी लड़की वगलमे खड़ी होकर जलती लकड़ी हाथमें लेकर प्रकाश दिखा रही थी।

गाड़ी रुक गयी और बुढ़ियाके अद्भुत पराक्रम और सत्कर्मसे सैकड़ों प्राणियोंके प्राण बच गये। —रा० श्री०

गांधीजीके तनपर एक लंगोटी ही क्यों ?

सन् १९१६ की बात है। लखनऊमे काग्रेसका महानिवेदन था। गांधीजी उसमे सम्मिलित होने आये थे। वहाँ राजकुमार शुल्कद्वारा किसानोंकी कष्ट-कहानी सुनकर उन्हें देखने वे चम्पारन पहुँचे। साथमे कस्तरवा भी थी। एक दिनकी बात है कस्तरवा भीतिहरवा गाँवमे गयी। वहाँ किसान औरतोंके कपड़े बहुत गडे थे। कस्तरवाने गाँवकी औरतोंकी एक सभा की और उन्हें समझाया कि ‘गंगामे तरह-तरहकी वीमारियाँ होती हैं और कपड़ा धोनेमे कोई ज्यादा खर्च भी नहीं पड़ता, अन उन्हें साफ रहना चाहिये।’

इसपर एक गरीब किसानकी औरत, जिसके कपड़े बहुत गडे थे, कस्तरवाको अपनी झोपड़ीमे ले गयी और अपनी झोपड़ीको दिखाकर बोली—‘मानाजी। देखो, मेरे घरमे कुछ नहीं है। वस, मेरी ढेहपर यह एक ही

धोती है, आप ही बतलाइये, मैं क्या पहनकर धोती साफ करूँ ? आप गांधीजीसे कहकर मुझे एक धोती डिलवा दें तो फिर मैं रोज स्नान करूँ और कपड़े साफ रखूँ।’

कस्तरवाने गांधीजीको उसकी स्थिति बतलायी। गांधीजीपर इसका विचित्र प्रभाव पड़ा। उन्होंने सोचा, ‘इसकी तरह तो देशमे लाखों वहनें होंगी। जब इन सभीको तन ढकनेके कपड़े नहीं हैं, तो फिर मैं क्यों कुर्ता, बोनी और चादर पहनने लगा ? जब मेरी लाखों वहनोंको गरीबीके कारण तन ढकनेको कपड़े नहीं मिलते तो मुझे इतने कपड़े पहननेका क्या हक है ?’

वस, उसी दिनसे उन्होंने केवल लंगोटी पहनकर तन ढकनेकी प्रतिज्ञा कर ली। जा० शा०

(वापूकी कहानियाँ, भाग २)

काल करे सो आज कर

कोई क्षी अपने पिताके घरसे छैटी थी । अपने पतिमे वह कह रही थी—‘मेरा भाई विरक्त हो गया है । वह अगली दीवालीपर दीक्षा लेकर साधु होनेवाला है । अभीसे उसने तैयारी प्रारम्भ कर दी है । वह अपनी सम्पत्तिकी उचित व्यवस्था करनेमें लगा है ।’

पत्नीकी बात सुनकर पुरुष मुस्कराया । खीने पूछा—‘तुम हँसे क्यों ? हँसनेकी क्या बात थी ?’

पुरुष बोला—‘और तो सब ठीक है, किन्तु तुम्हारे भाईका वैराग्य मुझे अद्भुत लगा । वैराग्य हो गया और दीक्षा लेनेकी अभी नियि निश्चित हुई है ? और वह सम्पत्तिकी उचित व्यवस्थामें भी लगा है । भौतिक सम्बन्धि-

में सम्पत्ति-वृद्धि और इस उत्तम काममें भी दूरकी योजना । इस प्रकार तैयारी करके त्याग नहीं हुआ करता, त्याग तो सहज होता है ।’

खीको बुरा लगा । वह बोली—‘ऐसे ज्ञानी हो तो तुम्हीं क्यों कुछ कर नहीं दिखाते ?’

‘मैं तो तुम्हारी अनुमतिकी ही प्रतीक्षामें था ।’ पुरुषने बब्ल उतार दिये और एक धोती मात्र पहिने घरसे निकल पड़ा । खीने समझा कि यह परिहास है, थोड़ी देरमें उसका पनि लौट आयेगा, परतु वह तो लौटेके लिये गया ही नहीं था । —सु० सिं०

ग्रीजेलने अपने पिताको फॉसीसे कैसे बचाया ?

विटेनमें तब जेम्स द्वितीयका जासन था । वह अपने अत्याचार एवं अन्यायके लिये काफी बड़नाम रहा है । उसके समयमें जिसे फॉसीकी सजा सुनायी जाती थी, उसमें उसके परिवारके किसी व्यक्तिको नहीं मिलने दिया जाता था । कॉकरेल-को फॉसीकी सजा सुनायी गयी थी । ग्रीजेल उसीकी लड़की थी । उसने लड़केका रूप धारणकर जेल-अधिकारियोंकी ओरेंमें धूल झोक अपने पितासे मुलाकात की और उससे पता लगाया कि उसके बचनेका एकमात्र उपाय जेम्सका धमान है ।

पर जवनक कोई लड़न जाकर महाराज जेम्ससे मिलकर क्षमा-पत्र ले आये तबनक तो कॉकरेलको फॉसी ही हो जाती । फिर भी ग्रीजेलने धैर्य नहीं छोड़ा, उसने अपने भाईको प्रार्थना-पत्र देकर लड़न त्रिटा किया । उन दिनों फोन-नार तो क्या, रेलगाड़ियाँ भी न थीं । उधर उसका भाई लौटा भी नहीं, इधर फॉसीका दिन एकदम निकट आ गया । अब उसके पिताकी फॉसी रोकी कैसे जाय । ग्रीजेलने निश्चय किया कि डाकियेके हाथसे फॉसीका फरमान लेकर फ़ड़ दिया जाय ।

नियत दिन आ पहुँचा । ग्रीजेलने अपना वेष पुरुषका बनाया और वह डाकियेके मार्गमें खड़ी हो गयी । वह धोड़ेपर सशर थी और हाथमें एक भी पिस्तौल भी लिये थी । डाकिया आया । ग्रीजेलने डपटकर उसे रोका और सारी ढाक मौँगी । डाकियेके हाथमें भी पिस्तौल थी । उसने उसे ग्रीजेलपर चला दिया । एक-एक कर उसने धाँय-धाँय कई गोलियाँ दाग दीं । ग्रीजेल सामने खड़ी हँस रही थी । गोलीसे उसको कुछ न हुआ । *

अब डाकिया ढर गया । ग्रीजेलने उसके हाथसे डाकका यैला छीन लिया । थोड़ी दूर जाकर उसने

* डाकिया रातझो जहाँ सरायमें विश्राम करता था, ग्रीजेल पहले वहाँ पहुँची और थैनेसे फरमान निकालनेके प्रथममें लगी थी । डाकियाना थैला वहाँ रखता था, पर उसके अगल-बगलमें कई और व्यक्ति सोये थे । उसने जब देसा कि वहाँ उसका प्रयास सफल न होगा तो उसने बगलमें पड़ी डाकियेकी पिस्तौलमेंसे सारी गोलियाँ निकालकर उसके स्थानपर शट्टी गोलियाँ भर दीं और वैसे ही रखकर दूसरे दिन रास्तेमें फरमान लेनेको खड़ी हो गयी थी । डाकियेको इसमा कोई पता तो था नहीं । इसलिये शट्टी गोलियाँ दाग-कर वह मुँह ताकता रह गया ।

थैला खोला और पिताकी फॉसीका फरमान निकालकर थैलेको नहाँ फेंक दिया। डाकिया यह सब ढेख रहा था। उसने ग्रीजेलके चले जानेपर थैला उठा लिया और चलता बना।

फरमान न मिलनेसे कॉकरेलको फॉसी न हो सकी

और अवधि आगे बढ़ गयी। इधर जेम्स उसके भाईकी करुण प्रार्थनापर पिघल गये और वह उनसे क्षमादानका पत्र लेकर पहुँच गया। इस प्रकार ग्रीजेलने अपार धैर्य, बुद्धिकौशल तथा साहसके सहारे अपने पिताकी जान बचा ली। —जा० श०

उदारता और परदुःखकातरता

स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० श्रीविद्याधरजी गौड श्रुति-स्मृति-ग्रतिपादित सनातन वैदिक धर्मके परम अनुयायी थे। कई ऐसे अवसर आये, जिनमे धार्मिक मर्यादाकी किंचित् अवहेलना करनेसे उन्हें प्रचुर मान-धन मिल सकता था; परंतु उन्होंने उसे ठुकरा दिया।

इनके पास बहुतसे लोगोंके मकान खेतोंसे रेहन और बन्धक पड़े थे। जब इनकी मृत्युका समय आया,

तब मकानदारोंने आपके अरणागत होकर ऋण तुकानेमें अपनी असमर्थता प्रकट की। इन्होंने उनके दुःखसे कातर होकर त्रिना कुछ भी कहे यह कह दिया कि आपकी जो इच्छा हो सो दे जाइये। इस प्रकार कुछ लेकर उनको चिन्तामुक्त कर दिया।

आप कहा करते थे, ‘इस शरीरसे यदि किसीकी भर्लाई नहाँ की जा सकी, तो बुराई क्यों की जाय।’

श्रमकी

‘मेरे बच्चो। मेरे पास जो कुछ भी तुम्हें देनेके लिये है उसे मैं तुम दोनोंको बराबर-बराबर देता हूँ। मेरी सारी सम्पत्ति इन खेतोंमें ही है, इनमे पर्याप्त अन्न पैदाकर तुमलोग अपने परिवारका पालन-पोषण कर सकते हो। साथ-ही-साथ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इन्हाँ खेतोंमें मैंने अपनी पूँजी भी छिपाकर रख दी है। आवश्यकता पड़नेपर उसका उपयोग कर सकते हो।’ किसानने मृत्यु-शश्यापर अन्तिम सौंस ली।

पिताके मरते ही दोनों लड़कोंने खेतोंमें छिपाकर गाड़ी गयी पूँजीपर विचार किया। उन्होंने खेत खोढ़ डाले। एक इंच भी जमीन खोदनेसे कहाँ खाली नहीं रह गयी। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ कि पिताजीने जीवनमें कभी भूलकर भी असत्य भाषण नहाँ किया और मरते

महत्ता

समय तो किसी भी स्थितिमें झूठ बोल ही नहाँ सकते थे। खेतमे गडा धन न मिलनेपर उन्हें कुछ भी क्षोभ नहीं हुआ, उन्होंने संतोषपूर्वक बीज बो दिये और फसल पकनेपर खेतमे अकूत अन्न हुआ। उतना अन्न गांवमें किसी व्यक्तिके खेतमें नहाँ पैदा हुआ था।

‘हमलोगोंने पिताजीके कहनेका आशय ही नहाँ समझा था। उन्होंने चलते समय खेतको अच्छी तरह कमानेकी सत्-शिक्षा दी थी और उन्हाँके आशीर्वादमें हमलोगोंने इतना अन्न प्राप्त किया।’ दोनों लड़कोंने स्वर्गीय आत्माके प्रति श्रद्धाञ्जलि प्रकट की।

‘समुन्नतिका मार्ग श्रम है’ किसानके लड़कोंने इसे अपने जीवनमें चरितार्थ किया। —रा० श्री०

कर्तव्यपालनका महत्व

मद्रास-ग्रान्तमें एक रेलका पायटमैन था। एक दिन कर लिया कि सर्प चाहे मुझे हँस ले, पर मैं पायट छोड़कर हजारों नर-नारियोंकी मृत्युका कारण नहीं बनूँगा। वह अपने कर्तव्यपर दृढ़ रहा और उन्होंसे जरा भी नहीं हिला। जिन भावानन्दे उसे सद्गुद्धि दी, उन्होंने ही उसे बचाया। गाड़ियोंकी भारी आवाजसे डरकर साँपके छापनेके लिये पायट छोड़ देता हूँ तो गाड़ियों लड़ जाती हैं और हजारों नर-नारियोंके प्राण जाते हैं। नहीं छोड़ता तो साँपके काटनेसे मेरे प्राण जाते हैं।' भगवान्नने उने सद्गुद्धि दी। क्षणभरमें ही उसने निश्चय पायटमैनको पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

नेक कर्माईकी वरकत

प्राचीन कालमें शिर्षी शहरमें एक राजा रहता था। उसके ही ग्रन्तमें एक ब्राह्मण भी रहता था। उस ब्राह्मणकी एक कल्पा थी, जो विवाहके योग्य हो गयी थी। श्रीमाती सगृहने ब्राह्मण उस कल्पाके लिये उसी राजाके पास धन माँगने पहुँचा। राजाने उने दस हजार रुपये दिये। ब्राह्मणने कहा—‘महाराज। यह तो बहुत योद्धा हैं।’ राजाने उस हजार पुन दिल्लाये। ब्राह्मण इसकर भी कहना रहा—‘महाराज।’ यह तो बहुत ही यक्षम हैं।’ अन्तमें राजा अपना समूचा राज्य ही ब्राह्मणको देने लगा। पर ब्राह्मण पूर्वतः यही कहता रहा कि ‘महाराज। यह तो बहुत कम है।’

लाचार होन्नर राजाने पूछा—‘तो मुझे आप क्या दनंगो कह रहे हैं।’ ब्राह्मणने कहा—‘आपने अपने परिवर्मदान नो शुद्ध वन उपार्जित किया हो, वह चाहे वहन योद्धा ही हो, वही बहुत है—मुझे वनी दीजिये।

राजा योद्धी देगतक सोच-विचार करता रहा। किं

^१ ग्रन्त्या परमतापमगत्वा दलमन्दिरम् ।

अनुलङ्घ्य सता मार्ग यत् सत्पमपि तद्वहु ॥

(मन० उद्योग० विदुरग्रजागर ३४)

उसने कहा—‘मैं प्रातःकाल ऐसा धन आपको दे सकूँगा।’ तदनन्तर दस बजे रातको वह अपना वेश-भूषा बदलकर शहरमें घूमने लगा। उसने देखा कि सब लोग तो चैनकी नींद सो रहे हैं, पर एक लोहार अपना काम अभीतक करता जा रहा है। राजा उसके पास गया और बोला—‘माई ! मैं बड़ा गरीब आदमी हूँ, यदि तुम्हारे पास कोई काम हो तो देनेकी दया करो।’ लोहारने कहा—‘मेरे पास यही इतना काम है। यदि तुम इसे प्रातःकालनक कर डालो तो मैं तुम्हें चार पैसे दूँ।’ गजाने उस कामको तथा उसके एक आध और कामको कर डाला। लोहारने उमे चार पैसे दिये और उनको उसने राजधानीमें आकर ब्राह्मणको दे दिया। ब्राह्मण भी उसका सारा राज-प्राट छोड़ केवल चार पैसे ही लेकर घर चला गया। जब स्थीने पूछा कि राजाके पास क्या मिला तो उसने चार पैसे दिखालाये। ब्राह्मणी झुँझला गयी और उसके चारों पैसे छीनकर जमीनमें फेंक दिये।

दूसरे दिन उस आँगनमें चार बृक्ष उग आये, जिनमें केवल रत्नके ही फल लगे थे। उन्होंसे उसने कल्पाका विवाह किया और वह ससारका सबसे बड़ा धनी भी

हो गया। यह समाचार सुनकर सारा नगर दंग रह गया। राजा भी सुनकर देखने आया। ब्राह्मणने उस वृक्षको उखाड़कर राजाको वे चार पैसे डिखला दिये और बतलाया कि इसीसे मैंने तुम्हारे राज-पाटको छोड़कर

तुम्हारी यह ईमानदारी तथा श्रमकी कमाई माँगी थी। नेकीकी कमाई पहले भले ही योड़ी दीखे पर पीछे वह मनुष्यको सभी प्रकारसे सुखी और सम्पन्न बना देती है।—जा० श०

सच्ची नीयत

एक रातकी वात है। एक चोर किसी घरमें सेव लगा रहा था। घरके मालिकने एक कुत्ता पाल रखा था। चोरको देखते ही वह जोर-जोरसे भूँकने लगा। चोरने उसको चुप करनेके लिये एक रोटीका टुकड़ा केंक दिया।

‘मुझे तुम इस घूससे चुप नहीं कर सकते। यदि मैं भूँकता बड़ करहूँगा तो अपने मालिकके प्रति अवृतज्ञ

सिद्ध होऊँगा और दूसरी वात यह है कि यदि इस समय भूँककर अपने मालिकको नहीं जगा देता हूँ तो तुम सारी वस्तुएँ ढो ले जाओगे, मेरा मालिक किस प्रकार मेरा भरण-पोषण कर सकेगा।’ कुत्ता भूँकता रहा। चोरकी दाल नहीं गल सकी और कुत्तेकी ईमानदारीने मालिकके धनकी रक्षा की।—रा० श्री०

पारमार्थिक प्रेम बेचनेकी वस्तु नहीं

एक गृहस्थ त्यागी, महात्मा थे। एक बार एक सज्जन दो हजार सोनेकी मोहरें लेकर उनके पास आये और कहने लगे—‘मेरे पिताजी आपके मित्र थे, उन्होंने धर्मपूर्वक अर्थोपार्जन किया था। मैं उसीमेंमै कुछ मोहरोंकी थैली लेकर आपकी सेवामें आया हूँ, इन्हें स्वीकार कर लीजिये।’ इतना कहकर वे थैली छोड़कर चले गये। महात्मा उस समय मौन थे, कुछ बोले नहीं। पीछेसे महात्माने अपने पुत्रको बुलाकर कहा—‘बेटा! मोहरोंकी थैली अमुक सज्जनको बापस दे आओ। उनसे कहना—तुम्हारे पिताके साथ मेरा पारमार्थिक-ईश्वरको लेकर प्रेमका सम्बन्ध था, सांसारिक

विषयको लेकर नहीं।’ पुत्रने कहा—‘पिताजी! आपका हृदय क्या पल्यरका बना है? आप जानते हैं, अपना कुटुम्ब बड़ा है और घरमें कोई धन गड़ा नहीं है। बिना मोगे इस भले आदमीने मोहरें दी हैं तो इन्हें अपने कुटुम्बियोंपर दया करके ही आपको स्वीकार कर लेना चाहिये।’

महात्मा बोले—‘बेटा! क्या तेरी ऐसी इच्छा है कि मेरे कुटुम्बके लोग धन लेकर मौज करें और मैं अपने ईश्वरीय प्रेमको बेचकर बदलेमें सोनेकी मोहरे खरीदकर दयालु ईश्वरका अपराध करहूँ?'

सहायता लेनेमें संकोच

एक घुड़सवार कहीं जा रहा था। उसके हाथसे चाबुक गिर पड़ा। उसके साथ उस समय बहुत-से मुसाफिर पैदल चल रहे थे, परंतु उसने किसीसे चाबुक

उठाकर दे देनेके लिये नहीं कहा। खुद घोड़ेसे उतरा और चाबुक उठाकर फिर सवार हो गया। यह देखकर साथ चलनेवाले मुसाफिरोंने कहा—‘भाई साहब!

आपने इतनी तकनीक क्यों की ? चावुक हमाँ लोग उठाकर दे देते, इतने-से कामके लिये आप क्यों उतरे ?”

धुड़सवारने कहा—“आइयो ! आपका कहना तो बहुत ही सज्जनतामा है, परतु मैं आपसे ऐसी मदद क्योंकर ले सकता हूँ ! प्रभुमी यही आज्ञा है कि जिससे उपकार प्राप्त हो, बदलेमें जहाँतक हो सके, उसमा उपकार करना चाहिये। उपकारके बदलेमें प्रत्युपकार करनेकी स्थिति हो, तभी उपकारका भार सिर उठाना चाहिये। मैं आपको पहचानता नहीं, न तो आप ही मुझको जानते हैं। राहमें अचानक हमलोगोंका साथ हो गया है, फिर कब मिलना होगा, इसका कुछ भी पता नहीं है। ऐसी हालतमें मैं उपकारका भार कैसे उठाऊँ ?”

यह मुनक्कर मुसाफिरोंने कहा—“अरे भाई साहब ! इसमें उपकार क्या है ? आप-जैसे भले आठमींके हाथसे चावुक गिर पड़ा, उसे उठाकर हमने दे दिया। हमें

इसमें मेहनत ही क्या हुई ?”

धुड़सवारने कहा—“चाहे छोटी-सी बात या छोटा-सा ही काम क्यों न हो, मैं लेता तो आपकी मदद ही न है। छोटे-छोटे कामोंमें मदद लेते-लेते ही वडे कामोंमें भी मदद लेनेकी आदत पड़ जाती है और आगे चलकर मनुष्य अपने स्वावलम्बी सभावको खोकर पराधीन¹ बन जाता है। आत्मामें एक तरहकी सुस्ती आ जाती है और फिर छोटी-छोटी बातोंमें दूसरोंका मुँह ताकनेकी बान पड़ जाती है। यही मनमें रहता है, मेरा यह काम कोई दूसरा कर दे, मुझे हाथ-पैर कुछ भी न हिलाने पड़े। इसलिये जबतक कोई विपत्ति न आवे या आत्माकी उन्नतिके लिये आवश्यक न हो, तबतक केवल आरामके लिये किसीसे किसी तरहकी भी मदद नहीं लेनी चाहिये। जिनकी मददकी जरूरत न हो, वे जब मदद लेने लगते हैं, तब जिनको जरूरत होती है, उन्हें मदद मिलनी मुश्किल हो जाती है।”

ग्रामीणकी ईमानदारी

एक धनी व्यापारी मुसाफिरीमें रात बिनानेके लिये किसी द्योटे गाँवमें एक गरीबकी झोपड़ीमें ठहरा। वहाँसे जाते समय वह अपनी सोनेकी मोहरोंकी धंकी वर्ही भूल गया। तीन महीने बाद वही व्यापारी फिर उसी रास्ते जा रहा था। टैक्सीयोगमें उसी गोंगमें रात हुई और वह उसी गरीबके घर जाकर ठहरा। मोहरोंकी धंकी रास्तेमें कहाँ गिरी थी, इसमा उसे कुछ भी पता नहीं था। इसलिये उसने उस धंकीकी तो आगा ही छोड़ दी थी।

झोपड़ीमें आकर ठहरते ही झोपड़ीके सामीने अपने आप ही आकर कहा—“सेठजी ! आपकी एक मोहरोंकी धंकी यहाँ रह गयी थी, उसे लीजिये। आपका नाम-पता न जाननेके कारण मैं अवतक धंकी नहीं भेज सका। मैंने उसे अवतक धरोहरके रूपमें रख छोड़ा था।” बूढ़े-दरिद्र ग्रामीणकी ईमानदारीपर व्यापारी सुग्रव हो गया और वह इतना कृतज्ञ हुआ कि उसका गुण गातेगाते यक्का ही नहीं तथा अन्तमें बहुत आग्रह करके उसके लड़केको अपने साथ लेता गया।

लोभका फल

एक किसानके बगीचेमें अगूरका पेड़ था। उसमें प्रत्येक वर्ष वडे मीठे-मीठे अगूर फलते थे। किसान वडा परिश्रमी, सतोषी और सत्यवादी था। उसने

सोचा कि बगीचा तो मेरे श्रमकी देन है, परं भूमि मेरे जर्मांदारकी है, इन फलोंमें उसे भी कुछ-न-कुछ भाग मिलना चाहिये, नहीं तो, मैं ईश्वरके सामने “मुख

दिखाने योग्य नहीं रहूँगा । ऐसा सोचकर उसने प्रतिव॑ बगीचेमें लगा दो । भूमिपतिके घर कुछ मीठे-मीठे अंगूर भेजना आरम्भ किया ।

जर्मीदारने सोचा कि अंगूरका पेड़ मेरी जमीनमें है इसलिये उसपर मेरा पूरा-पूरा अधिकार है । मैं उसे अपने बगीचेमें लगा सकता हूँ । लोभके अन्धकारमें उसे सत्कर्तव्यका ज्ञान नहीं रह गया । उसने अपने नौकरोंको आदेश दिया कि पेड़ उखाड़कर मेरे

नौकरोंने मालिककी आज्ञाका पालन किया । बेचारा किसान असहाय था, वह सिवा पछतानेके और कर ही क्या सकता था ! पेड़ जर्मीदारके बगीचेमें लगा दिया गया, पर फल देनेकी बात तो दूर रही, कुछ ही दिनोंमें वह सूखकर टूँठ हो गया और लोभके कीड़ेने उसकी उपादेयताको जड़से उखाड़ दिया ।—३० श्री० (इतिपक्षी कथा)

श्रीचैतन्यका महान् त्याग

श्रीचैतन्य महाप्रभु उन दिनों नवद्वीपमे निमाईके नामसे ही जाने जाते थे । उनकी अवस्था केवल सोलह वर्षकी थी । व्याकरणकी शिक्षा समाप्त करके उन्होंने न्यायशास्त्रका महान् अध्ययन किया और उसपर एक ग्रन्थ भी लिख रहे थे । उनके सहपाठी पं० श्रीरघुनाथजी उन्हीं दिनों न्यायपर अपना 'दीर्घिति' नामक ग्रन्थ लिख रहे थे, जो इस विषयका प्रख्यात ग्रन्थ माना जाता है ।

पं० श्रीरघुनाथजीको पता लगा कि निमाई भी न्यायपर कोई ग्रन्थ लिख रहे हैं । उन्होंने उस ग्रन्थको देखनेकी इच्छा प्रकट की । दूसरे दिन निमाई अपना ग्रन्थ साथ ले आये और पाठशालके मार्गमें जब दोनों साथी नौकापर बैठे तब वहीं निमाई अपना ग्रन्थ सुनाने लगे । उस ग्रन्थको सुननेसे रघुनाथ पण्डितको बड़ा दुःख हुआ । उनके नेत्रोंसे औंसूकी वूँदें टपकने लगीं ।

पढ़ते-पढ़ते निमाईने बीचमे सिर उठाया और रघुनाथको रोते देखा तो आश्वर्यसे बोले—'मैया ! लगा लिया था ।

तुम रो क्यों रहे हो ?'

रघुनाथने सरल भावसे कहा—‘मैं इस अभिलाप्तसे एक ग्रन्थ लिख रहा था कि वह न्यायशास्त्रका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाय; किंतु मेरी आशा नष्ट हो गयी । तुम्हारे इस ग्रन्थके सम्बुद्ध भेरे ग्रन्थको पूछेगा कौन ?’

‘बस, इतनी-सी बातके लिये आप इतने सतत हो रहे हैं !’, निमाई तो बालकोंके समान खुल्कर हँस पड़े । ‘बहुत बुरी है यह पुस्तक, जिसने भेरे मित्रको इतना कष्ट दिया !’ रघुनाथ कुछ समझें, इससे पूर्व तो निमाईने अपने ग्रन्थको उठाकर गङ्गाजीमें बहा दिया । उसके पन्ने भगवती भागीरथीकी लहरोंपर विखरकर तैरने लगे ।

रघुनाथके मुखसे दो क्षण तो एक शब्द भी नहीं निकला और फिर वे निमाईके पैरोंपर गिरनेको झुक फड़े, किंतु निमाईकी विशाल भुजाओंने उन्हें रोककर हृदयसे

साधुके लिये स्त्री-दर्शन ही सबसे बड़ा पाप

श्रीचैतन्य महाप्रभु सन्यास लेकर जब श्रीजगन्नाथपुरीमें रहने लगे थे, तब वहाँ महाप्रभुके अनेक भक्त भी नगालसे आकर रहते थे । महाप्रभुके उन भक्तोंमें

बहुतसे अत्यन्त विरक्त भक्त थे । उन गृहस्थाग्नि साधु भक्तोंमें ही एक थे छोटे हरिदासजी । ये सङ्गीतज्ज्ञ थे और अपने मधुर कीर्तनसे महाप्रभुको प्रसन्न करते थे;

इसलिये इनको जीर्णनिया हण्डिआम भी लोग कहते थे ।

पुरीमें महाप्रभुके अनेक गृहस्थ भक्त भी थे ।

श्रीजग्नात्रयीके मन्दिरमें हिसाव-क्रिताव लिखनेका काम करनेवाले श्रीगिरिजा माहिती, उनके थोडे भाई मुगारि और चनदी विवेचा वहिन मावधी—ये तीनों ही परम भक्त थे । मद्राप्रभुके चरणोंमें इनका अनुराग था । इनमें भी शिल्पि माहिती और मावधी देवीको नो महाप्रभु भगवद्गुरु-प्राप्त भाग्यन्तरोंमें गिनते थे ।

महाप्रभुको पुरीके भक्तगण कभी कभी अपने यहाँ भिक्षांक लिये आमन्त्रित करते थे । एक दिन जब भगवानाचार्यके यहाँ महाप्रभु निक्षाके लिये पथारे, तब भिक्षांमें सुनान्वित सुन्दर चावड बने देखकर उन्होंने पूछा—‘आपने ये उत्तम चावड कहाँमें मँगाये हैं ?’

भगवानाचार्यने कहा—‘प्रभो ! मावधी देवीके घराँमें ये आये हैं ॥

महाप्रभु—‘मावधीके यहाँ चावड लेने कौन गया था ?’

भगवानाचार्य—‘थोडे हण्डिआम ।’

यह सुनकर महाप्रभु चुप हो गये । भिक्षा ग्रहण करनेमा जैने उनमें उसाह रहा ही नहीं । भगवद्गुरु समझकर कुछ ग्राम सुन्दर डालकर महाप्रभु उठ गए । अपने स्थानपर आकर उन्होंने आदेश दिया—‘आजमे नोटा हण्डिआम मेरे यहाँ कभी नहीं आ पावेगा । उसने

कभी यहाँ भूलमे भी पैर रखता तो मैं वहुत अमंतुष्ट होऊँगा ।

महाप्रभुके येवक तो स्थव्र रह गये । समाचार पाकर थोडे हण्डिआम वहुत दुखी हुए, किंतु महाप्रभुने किसी प्रकार उन्हें अपने पास आनेकी अनुमति नहीं दी । सभी भक्तोंने प्रार्थना की, श्रीपरमानन्दपुरीजीने भी महाप्रभुने कहा—‘हण्डिआमको क्षमा कर दीजिये !’ परतु महाप्रभुने वहुत स्कंधभंगी बना ली थी । वे पुरी थोडकर अलालनाय जाकर रहनेको प्रस्तुत हो गये । थोडे हण्डिआमने अन्न-जल त्याग दिया; परतु उनके अनशनका भी महाप्रभुर कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।

अन्तमें दुखी होकर थोडे हण्डिआम पुरीमें पैदल चलकर प्रगांग आये और वहाँ उन्होंने गङ्गा-यमुनाके संगममें देहत्याग कर दिया । यह समाचार जब महाप्रभुको मित्र तब उन्होंने कहा—‘सातु होकर जियोमे वातन्त्रीत करे, उनको चरण ढूने दे, यह तो महाप्रभु है । हण्डिआमने अपने पापके उपशुक्ल ही प्रायोद्धृत किया है ।’ महाप्रभुने ही एक बार सार्वभौम मद्राचार्यमें कहा है—

निष्कञ्चनस्य भगवद्गुरुनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्मवसागरस्य ।
संदर्शनं विगियणामय योगितां च
हा हन्त ! हन्त ! विषभवणतोऽप्यसातु ॥

सच्चा गीता-पाठ

श्रीचैतन्य महाप्रभु जगन्नामपुरीमें दक्षिण नामकी यात्रा करते निकले थे । उन्होंने एक स्थानपर देखा कि सरोवरके किनारे एक ब्राह्मण क्लान करके बैठा है और गीताका पाठ कर रहा है । वह पाठ करनेमें इनका नष्टीन है कि उने सम्भवत अपने गरीबों की पता नहीं है । उसका कण्ठ गद्गढ़ हो रहा है गरीब गेमाद्वित हो रहा है और नेत्रोंमें आँखोंकी वारा वह रही है ।

महाप्रभु चुपचाप जाकर उस ब्राह्मणके पीछे खड़े हो गये और जबतक पाठ समाप्त हुआ, जान खुड़े रहे । पाठ समाप्त करके जब ब्राह्मणने पुस्तक बढ़ की, महाप्रभुने सम्मुख आकर पूछा—‘ब्राह्मणदेवता ! लगा है कि आप सम्भूत नहीं जानते, क्योंकि उनेकोका उच्चारण शुद्ध नहीं हो रहा था । परतु गीताका ऐसा कौन-सा अर्थ आप समझते हैं कि जिसके आनन्दमें आप इन्हें विमोर हो रहे थे ?’

अपने समुख एक तेजोमय भव्य महापुरुषको देखकर ब्राह्मणने भूमि में लेटकर ढण्डवत् प्रणाम किया। वह दोनों हाथं जोडकर नम्रतापूर्वक बोला—‘भगवन्! मैं संस्कृत क्या जानूँ और गीताजीके अर्थका मुझे क्या पता। मुझे पाठ करना आता नहीं। मैं तो जब इस प्रन्यको पढ़ने बैठना हूँ, तब मुझे लगता है कि कुरुक्षेत्रके मैदानमें दोनों और बड़ी भारी सेना सजी खड़ी है। दोनों सेनाओंके बीचमें एक रथ खड़ा है चार घोड़ोंवाला। रथके भीतर अर्जुन दोनों हाथ्य जोड़े बैठा है और रथके आगे

घोड़ोंकी गास पकड़े भगवान् श्रीकृष्ण बैठे हैं। भगवान् मुख पीछे श्यामकर अर्जुनसे कुछ कह रहे हैं, मुझे यह स्पष्ट दीखता है। भगवान् और अर्जुनकी ओर देख-देखकर मुझे प्रेमसे रुद्धि आ रही है।’

‘मैया ! तुम्हाने गीताका सच्चा अर्थ जाना है और गीताका ठीक पाठ करना तुम्हें ही आता है।’ यह कहकर महाप्रभुने उस ब्राह्मणको अपने हाथोंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया।

नामनिष्ठा और क्षमा

भक्त हरिदास हरिनामके मतवाले थे। ये जन्मसे मुसल्मान थे, पर इनको भगवान् का नाम लिये बिना चैन नहीं पड़ता था। फुलिया गाँवमें गोराई काजी नामक एक कड़वा मुसल्मान था। उसने हरिदासकी शिकायत मुलुकपतिसे की और कहा—‘इस काफिरको ऐसी सजा देनी चाहिये जिससे सर्व दर जाय और आगेसे क्रोई भी ऐसा नापाक काम करनेकी हिम्मत न करे। इसे सीधी चालसे नहीं मारना चाहिये। इसकी पीठपर बैठ मारते हुए इसे वार्डस बाजारमें घुमाया जाय और वेंत मारते-मारते इसको इतनी पीड़ा हो कि उसीसे यह तड़प-तड़पकर मर जाय।’ मुलुकपतिने आदेश दे दिया।

वेंत मारनेवाले जल्लादोने भक्त हरिदासजीको बाँध लिया और उनकी पीठपर वेंत मारते-मारते उन्हे बाजारमें घुमाने लगे। पर हरिदासजीके मुँहसे हरिनामकी ध्वनि वंद नहीं हुई। जल्लाड कहते—‘हरिनाम वंद करो।’ हरिदासजी कहते—‘मैया ! मुझे एक बेत मारो, पर तुम हरिनाम लेते रहो, इसी बहाने तुम्हारे मुँहसे हरिका नाम तो निकलेगा।’ बेतोंकी मारसे हरिदासकी चमड़ी उछड़ गयी। खूनकी वारा वहने लगी। पर

निर्दयी जल्लादोंके हाय वंद नहीं हुए। इवर हरिदासकी नाम-धुन भी वंद नहीं हुई।

अन्तमें हरिदासजी बेहोश होकर जमीनपर गिर पड़े। जल्लाडोंने उन्हें मरा समझकर गङ्गाजीमें बहा दिया। गङ्गाजीके शीतल जल-स्पर्शसे उन्हे चेतना प्राप्त हो गयी और वे वहते-वहते फुलिया गाँवके समीप बाटपर आ पहुँचे। लोगोंने वडा हर्ष प्रकट किया। मुलुकपतिको भी अपने बृत्यपर पश्चात्ताप हुआ। पर लोगोंमें मुलुकपतिके विरुद्ध वडा जोश आ गया। इसपर हरिदासजीने कहा—‘इसमें इनका क्या अपराध था।’ मनुष्य अपने कर्मोंका ही फल भोगना है। दूसरे तो उसमें निमित्त वेनते हैं। फिर यहाँ तो इनको निमित्त बनाकर मेरे भगवान् ने मेरी परीक्षा ली है। नाममें मेरी रुचि है या मैं ढोंग ही करता हूँ, यह जानना चाहा है। मैं तो कुछ था नहीं, उन्हाँकी कृपाशक्तिने मुझे अपनी चेतनाके अन्तिम श्वासतक नामकीर्तनमें दृढ़ रखा। इनका कोई अपराध हो तो भगवान् इनको क्षमा करें।’

संतकी बाणी सुनकर सभी गद्दद होकर धन्य-धन्य पुकार उठे। मुलुकपति तथा गोराई काजीपर भी वडा प्रभाव पड़ा और वे भी नामकीर्तनके प्रेर्मी बन गये तथा हरिनाम लेने लगे।

कैयटकी निःस्पृहता

महाभाष्यनिलकंठके कर्ना सस्कृनके प्रकाण्ड विद्वान् कैयटजी नगरमें दूर एक ज्ञोपर्दीमें निवास करते थे। उनके घरमें सम्पत्तिके नामपर एक चटाई और एक कमण्डलु मात्र थे। उन्हें तो अपने सच्चा, पूजन, अध्ययन और प्रन्थ-स्तेखनसे इतना भी अवकाश नहीं था कि पत्नीसे पूछ सकें कि घरमें कुछ है भी या नहीं। बैचारी ब्राह्मणी बनसे मूँज काट लाती, उनकी रस्तियाँ बनाकर बैचती और उससे जो कुछ मिलता उससे घरका काम चलाती। उसके पनिनेवने उसे मना कर दिया था कि किसीका कुछ भी दान वह न ले। पतिकी मेवा, उनके और अपने भोजनकी व्यवस्था तथा घरके सारे काम उसे करने थे और वह यह सब करके भी परम सतुष्ठ थी।

काशीरामके नरेशको लोगोंने यह समाचार दिया। काशीमे आये हुए कुछ ब्राह्मणोंने कहा—‘एक महान् विद्वान् आपके गव्यमें इतना कष्ट पाते हैं, आप कुछ तो ध्यान दें।’

नरेश स्वयं कैयटजीकी कुटियापर पधारे। उन्होंने

हाथ जोड़कर प्रार्थना की—‘भगवन् ! आप विद्वान् हैं और जानते हैं कि जिस राजाके राज्यमें विद्वान् ब्राह्मण कष्ट पाते हैं, वह पापका भागी होता है, अत मुक्षपर कृपा करें।’

कैयटजीने कमण्डलु उठाया और चटाई समेटकर बगलमें बढ़ायी। पत्नीसे वे बोले—‘अपने रहनेसे महाराजको पाप लगा है तो चलो और कहीं चलें। तुम मेरी पुत्रोंके उठ तो लो।’

नरेश चरणोंपर गिर पड़े और हाथ जोड़कर बोले—‘मेरा अपराध क्षमा किया जाय। मैं तो यह चाहता था कि मुझे कुछ सेवा करनेकी आज्ञा प्राप्त हो।’

कैयटजीने कमण्डलु-चटाई रख दिया। राजासे वे बोले—‘तुम सेवा करना चाहते हो तो यही सेवा करो कि फिर यहाँ भत आओ और न अपने किसी कर्मचारीको यहाँ भेजो। न मुझे कभी किसी चीज—घन, जमीन आदिका प्रलोभन ही दो। मेरे अध्ययनमें विद्वन् न पड़े, यही मेरी सबसे बड़ी सेवा है।’

पति-पत्नी दोनों निःस्पृह

बात अदागहवाँ जतावर्दीकी है। पण्डित श्रीरामनाथ तर्कसिद्धान्तने अन्यथन समाप्त करके वगालके विद्यावेन्द्र नवद्वीप नगरके बाहर अपनी कुटिया बना ली थी और पत्नीके साथ त्यागमय ऋषिजीवन स्थीकार किया था। उनके यहाँ अध्ययनके लिये छात्रोंका एक समुदाय सदा डिका रहता था। पण्डितजीने वहाँके अन्य विद्वानोंके समान राजासे कोई दृति ली नहीं थी और वे किसीसे कुछ माँगते भी नहीं थे। एक दिन जब वे विद्यार्थियोंको पढ़ाने जा रहे थे, उनकी पत्नीने कहा—‘धरमं एक मुङ्गी चावलमात्र है, भोजन क्या बनेगा?’ पण्डितजीने केवल

पत्नीकी ओर देख लिया, कोई उत्तर दिये विना ही कुटियासे बाहर वे अपने छात्रोंके बीच ग्रन्थ लेकर बैठ गये।

भोजनके समय जब वे भीतर आये, तब उनके सामने घोड़ेसे चावल तथा उड़ाली हुई कुछ पत्तियाँ आयीं। उन्होंने पत्नीसे पूछा—‘भट्टे ! यह स्वादिष्ट शाक किस वस्तुका है?’

पत्नीने कहा—‘मेरे पूछनेपर आपकी दृष्टि इमलीके वृक्षकी ओर गयी थी। मैंने उसीके पत्तोंका गाक बनाया है।’

पण्डितजीने निश्चिन्ततासे कहा—‘इमलीके पत्तोंका

शाक इतना स्वादिष्ट होता है, तब तो हमलोगोंको भोजनके विषयमें कोई चिन्ता ही नहीं रही।'

इस समय कृष्णनगरके राजा थे महाराज शिवचन्द्र। उन्होंने पण्डित श्रीरामनाथ तर्कसिद्धान्तकी विद्वत्ताकी प्रशंसा सुनी और उनकी आर्थिक स्थितिकी बात भी सुनी। महाराजने बहुत प्रयत्न किया कि पण्डितजी उनके नगरमें आकर रहें, किंतु निःस्पृह ब्राह्मणने इसे स्वीकार नहीं किया। इससे ख्य महाराज एक दिन उनकी पाठशालामें पहुँचे। उन्होंने प्रणाम करके पूछा—‘पण्डितजी ! आपको किसी विषयमें अनुपपत्ति तो नहीं ?’

तर्कसिद्धान्तजी बोले—‘महाराज ! मैंने चारु-चिन्तामणि ग्रन्थकी रचना की है। मुझे तो उसमें कोई अनुपपत्ति जान नहीं पड़ी। आपको कहीं कोई अनुपपत्ति या असङ्गति मिली है ?’

महाराजने हँसकर कहा—‘मैं आपसे तर्कशास्त्रकी

बात नहीं पूछ रहा हूँ। मैं पूछता हूँ कि घरका निर्वाह करनेमें आपको किसी बातका अभाव तो नहीं ?’

पण्डितजीने सीधा उत्तर दिया—‘घरकी बात तो घरवाली जाने।’

पण्डितजीकी आज्ञा लेकर महाराज कुटियामें गये। उन्होंने ब्राह्मणीको प्रणाम करके अपना परिचय दिया और पूछा—‘माताजी ! आपके घरमें कोई अभाव हो तो आज्ञा करे, मैं उसकी पूर्तिकी व्यवस्था कर दूँ।’

ब्राह्मणी भी तो त्यागी निःस्पृह तर्कसिद्धान्तकी पढ़ी थीं। वे बोलीं—‘राजन् ! मेरी कुटियामें कोई अभाव नहीं है। मेरे पहननेका बख अभी इतना नहीं फटा कि जो उपयोगमें न आ सके, जलका मटका अभी तनिक भी फूटा नहीं है और फिर मेरे हाथमें चूड़ियाँ बनी हैं, तबतक मुझे अभाव क्या।’

राजा शिवचन्द्रने उस देवीको भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम किया।

दूसरोंकी तृसिमें तृसि

कलकत्तेके सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीविश्वनाथ तर्कमूष्ण वीमार पड़े थे। चिकित्सकने उनकी परिचर्या करनेवालोंको आदेश दिया—‘रोगीको एक त्रृँद भी जल नहीं देना चाहिये। पानी देते ही उसकी ढगा चिन्ताजनक हो जायगी।’

श्रीतर्कभूषणजीको बहुत तीव्र प्यास लगी थी। उन्होंने घरके लोगोंसे कहा—‘अबतक मैंने ग्रन्थोंमें पढ़ा है तथा ख्य दूसरोंको उपदेश किया है कि समस्त

प्राणियोंमें एक ही आत्मा है, आज मुझे इसका अपरोक्षानुभव करना है। ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देकर यहों बुलाओ और उन्हे मेरे सामने शरवत, तरबूजका रस तथा हरे नारियलका पानी पिलाओ।’

घरके लोगोंने यह व्यवस्था कर दी। ब्राह्मण शरवत या नारियलका पानी पी रहे थे और तर्कभूषणजी अनुभव कर रहे थे—‘मैं पी रहा हूँ।’ सचमुच उनकी रोगजन्य तृपा इस अनुभवसे शान्त हो गयी।

सच्ची शोभा

श्रीराम शास्त्री अपनी न्यायप्रियताके लिये महाराष्ट्र-इतिहासमें अमर हो गये हैं। वे पेशवा माववरावजीके गुरु थे, मन्त्री थे और राज्यके प्रधान न्यायाधीश भी थे।

इतना सब होकर भी अपनी रहन-सहनमें वे केवल एक ब्राह्मण थे। एक साधारण घरमें रहते थे, जिसमें नहीं थी कोई तड़क-भड़क, और नहीं था कोई वैभव।

किसी पर्वते समय श्रीराम शाल्वीजीकी पत्नी राजभगवनमें पधारी। रानी तो अपने गुरुकी पत्नीको देखते ही चकित हो गयी। राजगुरुकी पत्नी और उनके शरीरपर सोना तो दूर, कोई चाँड़ीकरका आभूषण नहीं। पहननेकी साड़ी भी बहुत साधारण। गनीजो लगा कि इसमें तो राजदुर्घटना निन्दा है। जिस गुरुके घर पेशवा प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रणाम करने जायें, उस गुरुकी पत्नी इन प्रकार दगिट्ठनेशमें रहें तो लोग पेशवाको ही कृपण बतायेंगे।

रानीने गुरुपत्नीको बहुमृत्यु वब पहिनाये, रत्नजटिन सोनेके आभूषणोंने अलंकृत किया। जब उनके विदा होनेकद्द समय आया, तब पालकीम बैठकर उन्हें विदा किया। पालकी राम शाल्वीके द्वारपर पहुँची। कहारोंने द्वार खदरदाया। द्वार सुलग और कड़ बड़ हो गया। अगली नीमों इन बैशमं गम शाल्वीजीने देख दिया था।

कहारोंने फिर पुकारा—‘शाल्वीजी ! आपकी धर्मपत्नी आयी हैं, द्वार खोलें।’

शाल्वीजीने कहा—‘बहुमृत्यु बबामूषणोंमें सर्जी ये कोई और देवी हैं। मेरी ब्राह्मणी ऐसे वक्ष और गहने नहीं पहन सकतीं। तुमलोग भूलसे इस द्वारपर आये हो !’

शाल्वीजीकी पत्नी अपने पतिदेवके स्वभावको जानती थी। उन्होंने कहारोंको लौट चलनेको कहा। राजभगवन जाकर उन्होंने वे वक्ष और आभूषण उतार दिये। अपनी साड़ी पहन ली। रानीको उन्होंने बता दिया—‘इन वक्ष और आभूषणोंने तो मेरे लिये मेरे घरका ही द्वार बड़ करा दिया है।’

पैदल ही घर लौटी वे देवी। द्वार खुला हुआ था। शाल्वीजीने घरमें आ जानेपर उनमें कहा—‘बहुमृत्यु वब पर और आभूषण या तो राजपुरुषोंको शोभा देते हैं या मूर्ख उनके द्वारा अपनी अज्ञना छिपानेका प्रयत्न करते हैं। सत्पुरुषोंका आभूषण तो माड़गी ही है।’ वही सच्ची शोभा है।

जुए या सट्टमें मनुष्य विवेकहीन हो जाता है

एक सुन्दर सच्छ जग्यूर्ण सरोवर था, किन्तु दुष्ट प्रवृत्तिके लोगोंने उसके समीप अपने अड़े बना लिये थे। सरोवरके एक कोनेपर वेश्याओंने डेरा बनाया था। दूसरे कोनेपर मदिरा बैठी जा रही थी। तीसरे कोनेपर मास पकाकर मास बैठनेकी दूकान थी और चौथे कोनेपर जुआरियोंका जमघट पाने लिये बैठा था।

उन दुष्ट लोगोंके दूत सीधे, समझ मनुष्योंको अपनी बातोंमें उलझाकर धूमनेके बहाने उस सरोवरके किनारे ले आया करते थे। एक दिन इसी प्रकार एक धनी, सदाचारी व्यक्तिको एक दुष्ट वहाँ ले आया। उसने अपनी लच्छेदार बातोंका ग्रभव उस धनी व्यक्तिपर जमा लिया था।

सरोवरके किनारे वेश्याओंका निवास देखकर धनी व्यक्तिने कहा—‘यह बहुत निन्दित स्थान है। अच्छे व्यक्तिको यहाँ नहीं ठहरना चाहिये।’

दूसरी पुरुष मुसकराया और बोला—‘हमलोग दूसरी ओर चले।’

दूसरी ओर मदिराकी दूकानके पास पहुँचते ही धनी व्यक्तिने नाकमें कपड़ा लगा लिया और वे शीघ्रतासे आगे बढ़ गये। यही बात मासकी दूकानपर पहुँचनेपर भी हुई, किन्तु जब वे जुएके अड़ेके पास पहुँचे, तब उस दुष्ट पुरुषने कहा—‘हमलोग थक गये हैं। यहाँ थोड़ी देर बैठें। बैठकर खेल देवनेमें तो कोई दोग है नहीं।’

सकोचबग वे सज्जन पुरुष वहाँ बैठ गये। बैठनेपर सबने आग्रह प्रारम्भ कर दिया उनसे एक-दो बार खेलनेका। पासे बलात् उन्हें पकड़ा दिये। जुआ खेलना प्रारम्भ किया उन्होंने और शीघ्र ही हारने लगे। उस दुष्ट पुरुषने बीरेसे कहा—‘आप जीतना चाहते हैं तो मस्तिष्कमें स्फुर्ति आवश्यक है। आज्ञा दें तो मै

फलोंके रससे बनी सुराका एक प्याला यहाँ ला दूँ।'

एक-दो बार उसने आग्रह किया और अनुमति मिल गयी। कथाका विस्तार अनावश्यक है—सुरके साथ अनिवार्य होनेके कारण मास भी मँगाना पड़ा और जब मदिराने अपना प्रभाव जमाया, वेश्याओंके निवासकी ओर जानेके लिये दूसरेके द्वारा प्रेरणा मिले यह आवश्यक नहीं रह गया। घूतने वे सब पाप करा लिये, जिनसे अत्यधिक धृणा थी। जब धन नष्ट हो गया इस दुर्व्युसनमें पड़कर, चोरी करने लगा वही व्यक्ति जो कभी सज्जन था। निर्लज्ज हो गया वह। अपने मान-सम्मानकी बात ही भूल गया।

यह दृष्टान्त है जिसे एक सत्पुरुषके प्रवचनमें मैंने सुना है। घटना सत्य है या नहीं, मुझे पता नहीं, किंतु घूतके व्यसनमें पड़कर धर्मराज युविंश्चिन्ने अपना सर्वस्व खो दिया, महारानी द्रौपदीतकनो दावपर लगाकर हार गये, यह तो सर्वाङ्गिदित है। राजा नल भी जुएके नशेमें सर्वस्व हार गये थे। वह घटना दे देना अच्छा है।

X X X

निपध नरेश नलने दमयन्तीसे विवाह कर लिया था। दमयन्तीसे विवाह तो इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम भी करना चाहते थे, किंतु जब उन्हें निश्चय हो गया कि दमयन्तीका नलके प्रानि दृढ़ अनुराग है, तब उन्होंने इस विवाहकी अनुमति दे दी और नलको बहुतसे वरदान भी डिग्रे, किंतु कलियुगको इस घटनामें देवताओंका अपमान ग्रतीत हुआ। उसने राजा नलसे बदला लेनेका निश्चय किया। वह नलके पास पहुँचा और अवसर पाकर उनके शरीरमें प्रविष्ट हो गया।

धर्मार्था राजा नलकी जुआ खेलनेमें प्रवृत्ति ही कलियुगके प्रवेशसे हुई। उनके छोटे भाई पुष्करने उनसे जुआ खेलनेको कहा और वे प्रस्तुत हो गये। दोनों भाई दमयन्तीके सामने ही पासे फेंकने लगे। नलने रत्नोंके ढेर, सर्णाराशि, धोड़े-हाथी आदि जो कुछ दावपर लगाये, उसे पुष्करने जीत लिया। आसपास जो नलके शुभचिन्तक मित्र थे, उन्होंने राजा नलको रोकनेका बहुत प्रयत्न किया, किंतु जुआरी तो जुएके नशेमें विचारहीन हो जाता है। नलने किसीकी बातपर कोई ध्यान नहीं दिया।

'राजा नल वरावर हारते जा रहे हैं, यह समाचार नगरमें फैल गया। प्रतिष्ठित नागरिक एवं मन्त्रीगण एकत्र होकर वहाँ आये। समाचार पाकर रानी दमयन्तीने प्रार्थना की—'महाराज। मन्त्रीगण एवं प्रजाजन आपका दर्शन करना चाहते हैं। कृपा करके उनकी बात तो सुन लीजिये।' परतु शोकसे व्याकुल, रोती हुई रानीकी प्रार्थनापर भी नलने ध्यान नहीं दिया। बार-बार रानीने प्रार्थना की, किंतु उसे कोई उत्तर नहीं मिला।

जुआरी तथा सटोरियेकी दुराशा बड़ी धातक होती है—'अबकी बार अवश्य जीतूँगा। केवल एक दाव और' किंतु यह 'एक दाव और' तब जाकर समाप्त होता है जब शरीरके वस्त्र भी हारे जा चुके होते हैं। यही बात नलके साथ हुई। जुआ तब समाप्त हुआ जब नल अपना समस्त राज्य और शरीरपरके वस्त्र तथा आभूषण भी हार चुके। केवल एक धोती पहिनकर रानी दमयन्तीके साथ उन्हे राजभवनसे उसी समय निकल जाना पड़ा। —सु० सिं०

विवेकहीनता

प्राचीन समयकी बात है। एक धनी व्यक्तिने एक हव्वीको नौकर रखा। उसने अपने जीवनमें हव्वी कभी पहले नहीं देखा था। नौकरके शरीरका रग

नितान्त काला था। धनी व्यक्तिने सोचा कि यह कभी स्थान नहीं करता है, शरीरपर मैल जम जानेसे इसका रंग काला हो गया है।

उसने विना सोचे सगड़े अपने दूसरे नौकरोंको आदेश दिया कि इने अच्छी तरह रगड़-गगड़कर साधुनमे नहाना चाहिये और नगरकर रगड़ने रहना चाहिये जबतक इनका शरीर बच्चा और स्वेच न हो जाय।

नाकरोंने मालिककी आज्ञाका पाठन किया। गिर्मव-

ब्रदल मका। इस नहलानेका दुष्परिणाम यह हुआ कि हव्वाओंको सर्दी हो गयी और थोड़े ही समयके बाद अपने मालिककी विवेकहीनताका गिकार हो गया।

मनुष्यकं जीवनम् सत्-असतके निर्णयका बड़ा महत्व है। यदि मालिकने सद्विवेकसे काम लिया तरु भावुन भाइत घटनेपर भी उसके शरीरका रग नहीं होता तो हव्वाओं जान नहीं जानी।—ए० श्री०

मनका पाप

एक भन थे। विचित्र जीर्ण वाउनका। वे हरेकसे अपनेको अथम समझते और ऐकसे अपनेने उत्तम। शूमने-फिलते एक दिन ने नदीके नीगपर जा पहुँचे। खुनसान एकान्त स्थान ना परम गमणीय। उन्होंने दूसरे देखा—नदीके तटपर स्वच्छ सुकोमल वाल्यार एक प्रोद्ध उच्चका मनुष्य थैया है, वहुन उछासमें है वा। पास ही पठ्ठ-सीरह सालर्नी एक सुन्दरी युवती थैर्डी है। उसके हाथमें कौचका एक गिरास है। गिरासमें जल-जैमा को द्रव पदार्थ है। ढोनों हैम-हैसकर बांते कर रहे हैं—वैथदक। इस दृश्यको देखकर सत मन-कीभन सोचने लगे—‘इस प्रकार निर्जन स्थानमें परम्पर हँसी-भजाक करनेवाले वे सी-पुरुष जहर कोई पाप-चर्चा ही करते होंगे और गिलासमें जहर शगड़ होगी। व्यभिचार और गरावका तो चोलीदामनका सम्बन्ध है। तो क्या मैं इनमें भी अथम हूँ? मैं तो कभी किसी नीसे एकान्तमें मिलतातक नहीं। न मैंने कभी शगड़ ही पी है।’

सत इस तरह विचार कर ही रहे थे कि उन्हें नदीकी भीपण तरहोंके थपेझोंसे धायल एक छोटी-सी नाय हूवती दिखलायी दी। नाव उछट चुकी थी। यात्री पानीमें इधर-उधर हाथ मार रहे थे। सवकी जान खतरेमें थी। सत हाय! हाय! पुकार उठे। इसी धीरमें विजलीकी तरह वह मनुष्य दौड़कर नदीमें कूद पड़ा और बड़ी वहादुरीके साथ बात-की-बातमें नौ मनुष्योंको

बचाकर निकाल लाया। इतनेमें सत भी उसके पास जा पहुँचे। इस तरह—अपने प्राणीओंकी परवा न कर दूसरोंके प्राण बचानेके लिये मौतके मुँहमें कूद पड़ना और सफल्नाके साथ बाहर निकल आना—देखकर सत-का भन बहुत कुछ बदल गया था। वे दुविधामें पड़े उसके मुखकी ओर चकित-में होकर ताक रहे थे। उन्हें मुसकराकर कहा—‘महात्माजी! भगवानने इस नगण्यको निमित्त बनाकर नौ प्राणियोंको तो बचा दिया है, एक अभी रह गया है, उसे आप बचाइये।’ सत तैरना नहीं जानते थे, उनकी कूदनेकी हिम्मत नहीं हुई। कोई जवाब भी नहीं बन आया।

तब उसने कहा—‘महात्माजी! अपनेको नीचा और दूसरोंको ऊँचा माननेका आपका भाव तो बहुत ही सुन्दर है, परन्तु असलमें अभीतक दूसरोंको ऊँचा देखनेका यथार्थ भाव आपमें पैदा नहीं हो पाया है। नीचा समझकर ऊँचा मानना—अपनेमें यह अभिमान उत्पन्न करता है कि मैं अपनेसे नीचोंको भी ऊँचा मानता हूँ। जिस दिन आप दूसरोंको वस्तुत ऊँचा देख पायेंगे, उसी दिन आप यथार्थमें ऊँचा मान भी सकेंगे। भगवान् यदि मूर्खके खपम आपके सामने आयें और आप उन्हें पहचान लें तो फिर मूर्खका-सा बर्ताव देखकर भी क्या आप उनको मूर्ख ही मानेंगे? जो साधक सवमें श्रीभगवान्को पहचानता है, वह किसीको अपनेसे नीचा नहीं मान सकता। दूसरी एक बात यह है कि अभीतक

आपके मनसे पूर्वके अनुभव किये हुए पाप-स्स्कारोंका पूर्णतया नाश नहीं हुआ है। अपने ही मनके दोष दूसरोंपर आरोपित होते हैं। व्यभिचारीको सारा जगत् व्यभिचारी और चोरको सब चोर दीखते हैं। आपने अपनी भावनासे ही हमलोगोंपर दोषकी कल्पना कर ली। देखिये—यह जो लड़की बैठी है मेरी बेटी है। इसके हाथमें जो गिलास है, वह इसी नदीके निर्मल जलसे भरा है। यह बहुत दिनों बाद आज ही सुरालसे लौटकर आयी है। इसका मन देखकर हमलोग नदी-किनारे आ गये थे। बहुत दिनों बाद मिलनेके कारण दोनोंके मनमें बड़ा आनन्द था, इसीसे हमलोग हँसते हुए बातें कर रहे थे। फिर बाप-बेटीमें संकोच भी कैसा? असलमें

मैं तो भगवान्‌की प्रेरणासे आपके भावकी परीक्षाके लिये ही यहाँ आया था।'

उसकी ये बातें सुनकर संतका बचा-खुचा अभिमान और पापके सारे स्स्कार नष्ट हो गये। सतने समझा—‘मेरे प्रभुने ही दया करके इनके द्वारा मुझको यह उपदेश दिलगया है।’ सत उसके चरणोंपर गिर पड़े। इतनेमें वह छवा हुआ एक आदमी भी भगवान्‌की कृपा-शक्तिसे नदीमेसे निकल आया।

तबसे सतको किसीमें भी दोष नहीं दीखते थे। वे किसीको भी अपनेसे नीचा नहीं मानते और किसीसे भी अपनेको ऊँचा नहीं देखते थे।

अन्नदोष

एक महात्मा राजगुरु थे। वे ग्रायं राजमहलमें राजाको उपदेश करने जाया करते। एक दिन वे राजमहलमें गये। वर्ही भोजन किया। दोपहरके समय अकेले लेटे हुए थे। पास ही राजाका एक मूल्यवान् मौतियोंका हार खूँटीपर टैंगा था। हारकी तरफ महात्माकी नजर गयी और मनमें लोभ आ गया। महात्माजीने हार उतारकर झोलीमें डाल लिया। वे समयपर अपनी कुटियापर लौट आये। इधर हार न मिलनेपर खोज शुरू हुई। नौकरोंसे पूछ-ताछ होने लगी। महात्माजीपर तो सदेहका कोई कारण ही नहीं था। पर नौकरोंसे हारका पता भी कैसे लगता! वे बेचारे तो बिल्कुल अनजान थे। पूरे चौबीस घंटे बीत गये। तब महात्माजीका मनोविकार दूर हुआ। उन्हें अपने कृत्यपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे तुरत राजदरबारमें पहुँचे और राजाके सामने हार रखकर बोले—‘कल इस हारको मैं चुराकर ले गया था, मेरी बुद्धि मारी गयी, मनमें लोभ आ गया। आज जब अपनी भूल मालूम हुई तो दौड़ा आया हूँ। मुझे सबसे अधिक दुख इस बातका है कि चोर तो मैं था और

यहाँ बेचारे निर्दोष नौकरोंपर बुरी तरह बीती होगी।’

राजाने हँसकर कहा—‘महाराजजी। आप हार ले जायें यह तो असम्भव बात है। मालूम होता है जिसने हार लिया, वह आपके पास पहुँचा होगा और आप सहज ही दयालु हैं, अत उसे बचानेके लिये आप इस अपराधको अपने ऊपर ले रहे हैं।’

महात्माजीने बहुत समझाकर कहा—‘राजन्। मैं झूठ नहीं बोलता। सचमुच हार मैं ही ले गया था। पर मेरी नि.स्पृह—निर्लोभ वृत्तिमें यह पाप कैसे आया, मैं कुछ निर्णय नहीं कर सका। आज सबैरेसे मुझे दस्त हो रहे हैं। अभी पॉचवीं बार होकर आया हूँ। मेरा ऐसा अनुमान है कि कल मैंने तुम्हारे यहाँ भोजन किया था, उससे मेरे निर्मल मनपर बुरा असर पड़ा है। और आज जब दस्त होनेसे उस अन्नका अधिकाश भाग मेरे अंदरसे निकल गया है, तब मेरा मनोविकार मिटा है। तुम पता लगाकर बताओ—वह अन्न कैसा था और कहोंसे आया था?’

राजाने पता लगाया। भण्डारीने बतलाया कि ‘एक

चोरने बढ़िया चावलोंकी चोरी की थी। चोरको बदालतसे सजा हो गयी, परंतु फरियादी अपना माल लेनेके लिये हाजिर नहीं हुआ। इसलिये वह माल गजमें जस हो गया और वहाँसे राजमहलमें लाया गया। चावल बहुत ही बढ़िया थे। अतएव भगवान्मार्जीके लिये कल उन्हीं चावलोंकी खीर बनायी गयी थी।

मदामार्जनिं कहा—‘इसीलिये शासने गज्यान्मका

नियेध किया है। जैसे जारीरिक रोगोंके सूक्ष्म परमाणु फैलकर रोगका विस्तार करते हैं, इसी प्रकार सूक्ष्म मानसिक परमाणु भी अपना प्रभाव फैलाते हैं। चोरीके परमाणु चावलोंमें। उसीमे मेरा मन चञ्चल हुआ और भगवान्मकी कृपासे अतिसार हो जानेके कारण आज जब उनका अविकाश भाग मलद्वारसे निकल गया, तब मेरी दुखि शुद्ध हुई। आहागशुद्धिकी इसीलिये आवश्यकता है।’

विजयोन्मादके क्षणोंमें

मथुराकार्नीन धरोपकी कथा है। अपने मेनापतिकी शीरतामे पक गजाने युद्धमें विजय प्राप्त की। उसने राजधानीमें मेनापनिका धूमधाममें स्वागत करनेका विचार किया।

‘मेनापनिके गजधानीमें प्रवेश करते ही उसका जय-जयकार किया जाय। चार श्वेत घोड़ोंमें जुते रथपर बैठकर वह युद्धस्थलमें राजमहलक क आये और उसके रथके पीछे-सीछे युद्ध-वंदी दौड़ते रहें तथा उनके हाथमें हृथकझी और पैरोंमें बेड़ी हों।’ गजाने स्वागतकी योजनापर प्रकाश ढाला।

मेनापनि बहुत प्रसन्न हुआ इस स्वागत-समाचारसे। राजाकी स्वागत-योजनाके अनुसार मेनापतिने चार सफेद घोड़ोंके रथपर आसीन होकर नगरमें प्रवेश किया। उमर्की जयध्वनिमें धरती और आकाश पूर्ण थे।

मेनापनिने प्रत्यक्ष-दा देखा कि एक सुन्दर सजे-सजाये रथमें एक दास बैठा हुआ था और उसके रथने सेनापतिके रथके समानान्तर ही राजधानीमें प्रवेश किया। इससे उसे यह सकेत मिला कि छोटे-से-छोटा साधारण दास भी उसके समान गौरवपूर्ण पड़ पा सकता है। इसलिये

नहर ससारके थोड़ेने भागपर विजय काके प्रमत्त नहीं होना चाहिये। यह क्षगभङ्गर है, इसमे आसत्त नहीं रहना चाहिये।

जिस समय लोग उसका जयकार कर रहे थे, उस समय मेनापनिको लगा कि एक दास उसे धूंसा मार रहा है। सेनापति दासके इस व्यवहारसे बड़ा क्षुब्ध था, उसका विजय-भट्ट उत्तर गया। उसका अभिमान नष्ट हो गया। दासका यह कार्य सकेत कर रहा था कि मिथ्या अभिमान वास्तविक उन्नतिमें बावक है।

सबसे आश्वर्यकी बात तो यह थी कि जिस समय धूम-धामसे उसका स्वागत होना चाहिये था उस समय लोग जोर-जोरसे उसकी निन्दा कर रहे थे। अनेक प्रकार-की गाली दे रहे थे। इससे उसे अपने दोगोंका ज्ञान होने लगा और अपनी सच्ची स्थितिका पता चल गया।

उसे ज्ञान हो गया कि मनुष्यको विजय पाकर उन्मत्त नहीं होना चाहिये। सब ग्राणी गौरव प्राप्त करनेके अविकारी हैं तथा अपने दोष ही सबसे बड़े शत्रु हैं, उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। इससे जीवनमें सत्यका प्रकाश उत्तरता है। —र० श्री०

कृतज्ञताका मूल्य

एक राजाके पास दो शिकारी कुत्ते थे । वे एक दूसरेसे थोड़ी दूरपर रखे गये । उनमें प्राय. लड़ाई हुआ करता था । राजाने अपने सम्मनिदातासे पूछा कि क्या उपाय है जिससे दोनों मित्रकी तरह एक साथ रहने लगे । उसने कहा कि आप इन्हें जंगलमें ले जाइये । जब कोई भेड़िया दीख पड़े तो इनमेंसे एकको उसपर छोड़ दीजिये । जब एक कुत्ता लड़ते-लड़ते घकने लगे तब उसकी सहायताके लिये दूसरेको छोड़ दीजियेगा,

दोनों मिलकर भेड़ियेको समाप्त कर देगे और एक दूसरेके कृतज्ञ हो जायेंगे ।

वादगाहने ऐसा ही किया । भेड़िया आया, पर दोनों कुत्तोंने उसे समाप्त कर दिया । पहले कुत्तेने दूसरे कुत्ते-का बड़ा आभार माना, क्योंकि उसकी कृपामें प्राण-रक्षा हुई थी । दोनों कुत्ते साथ-साथ रहने लगे और एक दूसरेके मित्र हो गये ।—जा० श०

संसर्गसे गुण-दोष

एक राजा घोड़ेपर चढ़ा बनमें अकेले जा रहा था । जब वह डाकू भीलोंकी ओपड़ीके पाससे निकला, तब एक भीलके द्वारपर पिंजड़ेमें बंद तोता पुकार उठा—‘टौडो ! पकडो ! मार डालो इसे ! इसका घोड़ा छीन लो ! इसके गहने छीन लो !’

राजाने समझ लिया कि वह डाकूओंकी वस्तीमें आ गया है । उसने घोड़ेको पूरे बैगसे दौड़ा दिया । डाकू दौड़े सही; किंतु राजाका उत्तम घोड़ा दूर निकल गया कुछ ही क्षणमें । हताश होकर उन्होंने पीछा करना छोड़ दिया ।

आगे राजाको मुनियोंका आश्रम मिला । एक कुटीके सामने पिंजड़ेमें बैठा तोना उन्हें देखते ही बोला—

‘आइये राजन् । आपका स्वागत है ! अरे ! अतिथि पधारे है ! अर्थ लाओ ! आसन लाओ !’

कुटीमेसे मुनि बाहर आ गये । उन्होंने राजाका स्वागत किया । राजाने पूछा—‘एक ही जानिके पक्षियों-में स्वभावमें इतना अन्तर क्यों ?’

मुनिके बदले तोना ही बोला—‘राजन् । हम दोनों एक ही माता-पिताकी संतान हैं; किंतु उसे डाकू ले गये और मुझे ये मुनि ले आये । वह हिंसक भीलोंकी बातें सुनता है और मैं मुनियोंके बचन सुनता हूँ । आपने स्वयं देख ही लिया कि किस प्रकार सङ्गके कारण प्राणियोंमें गुण या दोष आ जाते हैं ।’—सु० सिं०

दुर्जन-सङ्गका फल

कोई राजा बनमें आखेटके लिये गया था । थककर वह एक वृक्षके नीचे रुक गया । वृक्षकी ढालपर एक कौआ बैठा था । संयोगवश एक हंस भी उड़ता आया और उसी ढालपर बैठ गया । कौएने स्वभाववश बीट कर दी जो राजाके सिरपर गिरी । इससे क्रोधमें आकर राजाने धनुषपर बाण चढ़ाया और कौएको लक्ष्य करके बाण छोड़ दिया । धूर्त कौआ तो उड़ गया; किंतु बाण

हंसको लगा और वह लड़खड़ाकर नीचे गिर पड़ा ।

राजाने आश्वर्यसे कहा—‘अरे ! इस बनमें क्या सफेद कौए होते हैं ?’

मरते हंसने उत्तर दिया—‘राजन् । मैं कौआ नहीं हूँ । मैं तो मान-सरोवरवासी हूँ; किंतु कुछ क्षण कौएके समीप बैठनेका यह दारूण फल मुझे ग्रास हुआ है ।’—सु० सिं०

सच्चे आदमीकी खोज

एक बादशाह (शुल्तान) को सच्चे आदमीकी खड़ी खोज थी । अन्य कर्मचारी गज्य-का वसूल करके खा जाया करते थे । बादशाहका मन्त्री बड़ा योग्य व्यक्ति था ।

‘आप भारे गत्यम् द्विद्वेग पिण्डा दीजिये कि आपको राज्य-का वसूल करनेवाले पक्ष योग्य अधिकारीकी आवश्यकता है । जब मैटके लिये लोग आयें, तब उनमे आप नाचनेके लिये कहियेगा ।’ दुर्दिमान् मन्त्री (सम्मनिदाता) ने बादशाहसे निवेदन किया ।

× × × ×

सारे राज्यम् यह बात विजलीमी तरह फैल गयी कि बादशाहको योग्य कर्मचारीकी आवश्यकता है । आवेदक निधित समयपर गजमहलके सामने एकत्र हो गये । बादशाह जिस कमरेमें भेटके लिये बैठा हुआ था उसमे

जानेका रस्ता एक गलियारेसे था, जिसमे इतना अंधेरा था कि हाथ पसारे भी नहीं सूझता था । लोग राज-सिंहासनके सामने एकत्र हो गये ।

बादशाहने उनमेमे प्रत्येकको बारी-बारी नाचनेके लिये कहा । लोग झेप गये और बिना नाचे ही, वे सब, एक व्यक्तिको छोड़कर बाहर चले आये । जो आदमी सिंहासनके सामने खड़ा था वह नाचने लगा ।

‘यह व्यक्ति सच्चा है ।’ मन्त्रीने बादशाहको बताया । मन्त्रीने कहा कि ‘मैंने अन्धकारपूर्ण गलियारेमें सोनेके बहुत-से सिक्के बोरेमें भरकर रखा दिये थे । जो बैद्यमान थे उन्होंने अपनी जेबें मोहरोंसे भर ली थीं । यदि वे नाचते तो उनकी चोरीका रहस्य प्रकट हो जाता ।’

बादशाहको सच्चा आदमी मिल गया । —०० श्री०

परिवर्तनशीलके लिये सुख-दुःख क्या मानना

एक मम्पन्न घरके लड़केको डाकुओंने पकड़ लिया और अरबके एक निर्दिय व्यक्तिके हाथ बेच दिया । निधुर अब उस लड़केमें बहुत अधिक परिव्रम लेना था और फिर भी उसे शिकना और पीटना रहता था । पेट भर जोगन भी उस लड़केको नहीं मिलता था । एक व्यापारी वृमना हुआ उस नगरमें पहुँचा । वह लड़केको पहिचानता था । उसने लड़केसे पूछा—‘आजकल तुम्हें बहुत कलेग हैं ।’

लड़का बोला—‘जो पहले नहीं थी और आगे भी नहीं रहेगी, उस परिवर्तनशील अवस्थाके लिये कलेश क्या मानना ।’

वर्ष दीतते गये । अरब वृद्ध हुआ, मर गया । अरबकी खी और अबोध वालक निराधार हो गये । उनका वह गुलाम अब युवक हो गया था । मरते समय अरबने उसे अपने दासत्वसे मुक्त कर दिया था । वही

अब सब उपार्जन करके अरबकी पत्नी और पुत्रका भी भण-पोपण करता था । वह व्यापारी फिर उस नगरमें आया और युवकसे उसने पूछा—‘अब क्या दशा है ।’

युवक बोला—‘जो पहले नहीं थी और आगे भी नहीं रहेगी । उस परिवर्तनशील अवस्थाके लिये सुख क्या मानना और दुःख भी क्यों मानना ।’

युवक उन्नति करता गया । वह अपने कनीलेका सरदार हुआ और धीरे-धीरे उस प्रदेशका राजा हो गया । व्यापारी फिर उस नगरमें आया तो राजासे मिले बिना जा नहीं सका । मिलनेपर उसने कहा—‘श्रीमान् । आपके इस बैभवके लिये धन्यवाद ।’

राजाने शान्त स्थिर भावसे कहा—‘भाई । जो पहले नहीं थी और आगे भी नहीं रहेगी, उस परिवर्तन-शील अवस्थाके लिये उछास क्या और खेद भी क्यों ।’

—०० श्री०

टूनलालको कौन मार सकता है

एक महात्मा एक स्कूलके आगे रहा करते थे। एक दिन स्कूलके लड़कोंने उनको तग करनेकी सोची। वरम, एक लड़का आकर उनको गुदगुदाने लगा। महात्मा कभी 'ही ही ही ही' करते, कभी 'ऊँ हूँ ऊँ हूँ' करते और कुछ गुनगुनाने लगते। एक दिन एक आदमी एक हॅडिया रसगुल्ला लेकर उनके पास आया और उसने कहा—'मेरा भतीजा बीमार है। बाबा !

आप उसे ठीक कर दीजिये।' पहले तो वह जिस तरफ हॅडिया करता उस ओरसे वे मुँह फेर लेते। बादमें उन्होंने हॅडियामेसे एक रसगुल्ला लेकर हॅडिया फॉड दी और कहने लगे—'मेरे टूनलालको कौन मार सकता है?' घर आकर उस आदमीने देखा कि लड़का बिल्कुल स्वस्थ होनेकी ओर बढ़ रहा है। उस बीमार लड़केका नाम टूनलाल था। उमे महात्माजी बिल्कुल नहीं जानते थे।

कुत्ता श्रेष्ठ है या मनुष्य

कोई महात्मा बैठे थे। उनके पास एक कुत्ता आकर बैठ गया। तब किसी असभ्य मनुष्यने महात्मासे पूछा—'तुम दोनोंमें श्रेष्ठ कौन है?' महात्माने कहा,

'यदि मैं प्रभुकी सेवाके लिये सत्कर्म करता हूँ तब तो मैं श्रेष्ठ हूँ और यदि मैं भोग-विलासमें जीवन बिताता हूँ तो मेरे-जैसे सैकड़ों मनुष्योंसे यह कुत्ता श्रेष्ठ है।'

संतकी विचित्र असहिष्णुता

एक संत नौकामे बैठकर नदी पार कर रहे थे। सध्याका समय था। आखिरी नाव थी, इससे उसमे बहुत भीड़ थी। संत एक किनारे अपनी मस्तीमे बैठे थे। ढोतीन मनचले आदमियोंने सतका मजाक उड़ाना शुरू किया। सत अपनी मौजमे थे, उनका इधर ध्यान ही नहीं था। उन लोगोंने संतका ध्यान खींचनेके लिये उनके समीप जाकर पहले तो गोर मचाना और गालियों बकना आरम्भ किया। जब इसपर भी संतकी दृष्टि नासिकाके अग्रभागसे न हटी, तब वे सतको धीरे-धीरे ढकेलने लगे। पास ही कुछ भले आदमी बैठे थे। उन्होंने उन बदमाशोंको डॉटा और सतसे कहा—'महागज! इतनी सहनशीलता अच्छी नहीं है, आपके गरीरमें काफी बल है, आप इन बदमाशोंको जरा-सा डॉट देगे तो ये अभी सीधे हो जायेंगे।' अब संतकी दृष्टि उधर गयी। उन्होंने कहा—'भैया!

सहनशीलता कहाँ है, मैं तो असहिष्णु हूँ। सहनेकी शक्ति तो अभी मुझमे आयी ही नहीं है। हाँ, मैं इसका प्रतीकार अपने ढगसे कर रहा था। मैं भगवान्‌से प्रार्थना करता था कि 'वे कृपा कर इनकी बुद्धिको सुधार दे, जिसमे इनका द्वद्य निर्मल हो जाय।' संतकी और उन भले आदमियोंकी बात सुनकर बदमाशोंके क्रोधका पारा बहुत ऊपर चढ़ गया। वे संतको उठाकर नदीमें फेंकनेको तैयार हो गये। इतनेमें ही आकाशवाणी हुई—'हे सतगिरोमणि! ये बदमाश तुम्हें नदीके अयाह जलमें डालकर डुबो देना चाहते हैं, तुम कहो तो इनको अभी भस्म कर दिया जाय।' आकाशवाणी सुनकर बदमाशोंके होश हवा हो गये और संत रोने लगे। संतको रोते हुए देखकर बदमाशोंने निश्चित समझ लिया कि अब यह हमलोगोंको भस्म करनेके लिये कहनेवाले हैं। वे काँपने लगे। इसी बीचमे संतने

कहा—‘ऐसा न करे स्थामी ! मुझ तुच्छ जीवके लिये इन कई जीर्णोंके प्राण न लिये जायें । प्रभो । यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और याद मेरे मनमें इनके विनाशकी नहीं, परतु इनके सुधारकी मच्ची आमज़ाह्वा हैं तो आप इनको भग्न न करके इनके मनमें वगे हुए कुपित्वार्गे और कुभावनाओंको, इनके दोषों और दुर्गुणोंको तया

इनके पापों और तापोंको भग्न करके इन्हें निर्मलहृदय और सुखी बना दीजिये ।’ आकाशवाणीने कहा—‘सतशिरोमणि ! ऐसा ही होगा । तुम्हारा भाव बहुत ऊँचा है । तुम हमको अत्यन्त प्यारे हो । तुम्हें धन्य है ।’

बस, बद्माश परम साधु बन गये और सतके चरणोंपर गिर पड़े ।

गरीब चोरसे सहानुभूति

एक भक्त थे, कोई उनका कपड़ा चुग ले गया । कुछ दिनों बाद उन्होंने उसको बाजारमें बेचते देखा । दूकानदार कह रहा था कि ‘कपड़ा तुम्हारा है या चोरी-का, इसका क्या पता । हाँ, कोई सज्जन पहचानकर बता दें कि तुम्हारा ही है तो मैं खरीद लेंगा ।’ भक्त पास ही खड़े थे और उनमें दूकानदारका परिचय भी था । उन्होंने कहा—‘मैं जानता हूँ, तुम ढाम ने दो ।’ उन्होंने कपड़ा खरीदकर कीमत चुका दी । इसपर

भक्तके एक साथीने उनसे पूछा कि ‘आपने ऐसा क्यों किया ?’ इसपर भक्त बोले कि ‘वह बेचारा बहुत गरीब है, गरीबीसे तंग आकर उसे ऐसा करना पड़ा है । गरीबको तो हर तरहसे सहायता ही करनी चाहिये । इस अवस्थामें उसको चोर बतलाकर फँसाना और भी पाप है ।’ इस बातका चोरपर बड़ा प्रभाव पड़ा और वह भक्तकी कुटियापर जाकर गेने लगा । उस दिनमें वह भी भक्त बन गया ।

संत-स्वभाव

श्रीविश्वनाथपुरी बाराणसीमें एक साधु गङ्गामान का रहे थे । सहसा उनकी दृष्टि प्रवाहमें बहते एक विच्छूपर पड़ी । साधुने दया करके उसे हाथपर उठा लिया । विच्छू तो विच्छू ही छहरा, उसकी पीठपरमें पानी नीचे गिरा और उसने अपना भयकर डक चला दिया । हाथमें डक लगनेमें हाथ कौप उठा और विच्छू फिर पानीमें गिर पड़ा ।

साधुके हाथमें भयानक रीढ़ा प्राप्त हो गया थी, किंतु उन्होंने आगे छुककर फिर उस विच्छूको हाथपर उठा लिया और जलमें बाहर आने लगे । विच्छूने फिर डक मारा, हाथ फिर कौपा और विच्छू फिर हाथसे जलमें गिर पड़ा । साधु उसे उठाने फिर जलमें आगे बढ़े ।

आस-पास और भी लोग म्लान कर रहे थे । साधु बार-बार विच्छूको उठाते थे और बार-बार वह उनके हाथमें डक मारता था । लोग इस दृश्यकी ओर आकर्षित हो गये । फिसीने कहा—‘यह दुष्ट प्राणी तो वैमें भी मार देने योग्य है । अपनी दुष्टतासे ही यह मर रहा है तो आप इसे बचानेका निर्वक प्रयत्न क्यों करते हैं ? मरने दीजिये इसे ।’

साधुने विच्छूको हाथपर उठाने हुए कहा—‘यह क्षुद्र प्राणी अपना डक मारनेका सभाव नहीं छोड़ता है तो मनुष्य होकर मैं अपना दया करनेका सभाव कैसे छोड़ दूँ । पशुतासे यहि मानवता श्रेष्ठ है तो मेरा मानवता अवश्य इसकी पशुतापर विजय पायेगी ।’

पशुतासे मानवता, क्रूरतासे दया, तमोगुणसे सत्त्व-

गुण श्रेष्ठ है, बलवान् है, यह तो सदेहसे परे है। साधुकी दयाको विजय पाना ही था। विच्छूने इस

बार अपना डक सीधा कर दिया। वह ऐसा गान्त हो गया जैसे डक चलाना उसे आता ही न हो।—सु० सिं०

दूसरोंके दोष मत देखो

वे नागा साधु थे। एक नागा साधुके समान ही उनमे तितिक्षा थी, तपस्या थी, त्याग था और था अक्षयडपना। साधु तो रमतेराम ठहरे, जहाँ मन लगा; वहीं धूनी भी लग गयी। वे नागा महात्मा धूमते हुए श्रावस्ती नगरीमे पहुँचे। एक नीमका छायादार सघन वृक्ष उन्हे अच्छा लगा। वृक्षके चारो ओर चबूतरा था। साधुने वही धूनी लगा ली।

जहाँ साधुकी धूनी लगी थी, उसके सम्मुख ही नगरकी एक वेश्याकी अद्वालिका थी। उसके भवनमे पुरुप तो आते-जाते ही रहते थे। साधुको पता नहीं क्या सूझी, जब वेश्याके घरमें कोई पुरुप जाता, तब वे एक ककड अपनी धूनीके एक ओर रख देते। उनके ककडोंकी ढेरी पहले ही दिन भूमिसे ऊँची दीखने लगी। कुछ दिनोंमें तो वह अच्छी बड़ी राशि हो गयी।

एक दिन जब वह वेश्या अपने भवनसे बाहर निकली तब साधुने उसे समीप बुलाकर कहा—‘पापिनी! देख अपने कुक्षुत्यका यह पहाड़। अरी हुष्टे! तरे इतने पुरुषोंको भ्रष्ट किया है, जितने इस ढेरमें कंकड हैं। अनन्त-अनन्त वर्षोंतक तू नरकमे सड़ेगी।’

वेश्या भयसे कॉपने लगी। उसके नेत्रोंसे आँसूकी धारा चलने लगी। साधुके सामने पृथ्वीपर सिर रखकर गिडगिडाती हुई बोली—‘मुझ पापिनीके उद्धारका उपाय बतावें प्रभु।’

साधु क्रोधपूर्वक बोले—‘तेरा उद्धार तो हो ही नहीं सकता। यहाँसे अभी चली जा। तेरा मुख देखनेके कारण मुझे आज उपवास करके प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।’

वेश्या भयके मारे वहाँसे चुपचाप अपने भवनमे चली गयी। पश्चात्तापकी अग्निमे उसका हृदय जल रहा था। अपने पलगपर मुखके बल पड़ी वह हिचकियों ले रही थी—‘भगवान्। परमात्मा! मुझ अधम नारीको तो तेरा नाम भी लेनेका अधिकार नहीं। तू पतितपावन है, मुझपर दया कर।’

उस पश्चात्तापकी घड़ीमे ही उसके प्राण प्रयाण कर गये और जो पापहारी श्रीहरिका स्मरण करते हुए देह-त्याग करेगा, उसको भगवद्गाम प्राप्त होगा, यह तो कहने-की बात ही नहीं है।

उधर वे साधु धृणापूर्वक सोच रहे थे—‘किननी पापिनी है यह नारी। आयी थी उद्धारका उपाय पूछने, भला ऐसोंका भी कहीं उद्धार हुआ करता है।’

उसी समय साधुकी आयु भी पूरी हो रही थी। उन्होंने देखा कि हाथमे पाश लिये, दण्ड उठाये बड़े-बड़े दौतोंवाले भयकर यमदूत उनके पास आ खड़े हुए हैं। साधुने डॉटकर पूछा—‘तुम सब क्यों आये हो? कौन हो तुम?’

यमदूतोंने कहा—‘हम तो धर्मराजके दूत हैं। आपको लेने आये हैं। अब यमपुरी पधारिये।’

साधुने कहा—‘तुमसे भूल हुई दीखती है। किसी औरको लेने तुम्हें भेजा गया है। मैं तो बचपनसे साधु हो गया और अबतक मैंने तपस्या ही की है। मुझे लेने धर्मराज तुम्हें कैसे भेज सकते हैं। हो सकता है कि तुम इस मकानमें गृहनेवाली वेश्याको लेने भेजे गये हो।’

यमदूत बोले—‘हमलोग भूल नहीं किया करते। वह वेश्या तो वैकुण्ठ पहुँच चुकी। आपको अब यम-

पुरी चलना है। आपने बहुत तपस्या की है, किंतु बहुत पाप भी किया है। वेश्याके पापकी गगना करते हुए आप निरन्तर पाप-चिन्तन ही तो किया करते थे और इस मृत्युकालमें भी तो आप पाप-चिन्तन ही कर

रहे थे। अब आपके पाप-पुण्यके भोगोंका क्रम-निर्णय वर्मगज करेंगे।

साधुके बड़की बात अब नहीं थी। यमदूतोंके पाशमें वृंधा प्राणी यमपुरी जानेको निकल होना ही है। —त्र० सिं०

सबसे वड़ा दान अभयदान

किसी राजाके चार रानियाँ थीं। एक दिन प्रसन्न होकर राजाने उन्हें एक-एक वरदान माँगनेको कहा। रानियोंने कह दिया—“दूसरे किसी समय वे वरदान माँग लेंगी।”

रानियाँ धर्मज्ञा थीं। कुछ काल बाद राजाके यहाँ कोई अपराधी पकड़ा गया और उमे प्राणदण्डकी आज्ञा हुई। वडी रानीने सोचा कि ‘इस मरणासन मनुष्यको एक दिनका जीवनदान देकर उसे उत्तम भोजन सहुष करना चाहिये।’ उन्होंने राजाने प्रार्थना की—‘मेरे वरदानमें आप इस अपराधीको एक दिनका जीवन-दान दें और उसका एक दिनका आनिध्य मुझे करने दें।’

रानीकी प्रार्थना स्वीकार हो गयी। अपराधीको वे राजमन्त्र ले गयीं और उसे बहुत उत्तम भोजन उन्होंने दिया। परंतु दूसरे दिन मृत्यु निश्चिन है, इस भयके कारण उस मनुष्यको भोजन प्रिय कैमे लगता? दूसरे दिन दूसरी रानीने यही प्रार्थना की और उन्होंने उस अपराधीको उत्तम भोजनके साथ उत्तम वस्त्र भी दिये। तीसरे दिन तीसरी रानीने भी वही प्रार्थना की और भोजन-वस्त्रके साथ अपराधीके मनोरक्षनके लिये उन्होंने चृत्य-संगीतकी भी व्यवस्था कर दी। परउस मनुष्यको वह कुछ भी अच्छा नहीं लगा। उसने कुछ खाया-रीया नहीं।

चौथे दिन छोटी रानीने प्रार्थना की—‘मैं

वरदानमें चाहती हूँ कि इस अपराधीको क्षमा कर दिया जाय।’ उनकी प्रार्थना स्वीकार हो गयी तो उन्होंने अपराधीको केवल स्वस्ति मोटी रोटियाँ और दाल खिलाकर विदा कर दिया। उसने आज वे स्वस्ति रोटी बड़े बाबत्या आनन्दसे पेटभर खायी।

रानियोंमें विवाद उठा कि सबसे अविक सेवा उस मनुष्यकी किसने की। परस्पर जब निर्णय नहीं हो सका, तब बात राजाके यहाँ पहुँची। राजाने अपराधीको बुलाकर पूछा तो वह बोला—‘राजन्। जबतक मुझे मृत्यु सामने दीखनी थी, तबतक भोजन, वस्त्र या दृत्य-समारोहमें मुझे क्या सुख मिलना था। मुझे तो सबसे त्वादिष्ट लगा छोटी रानीमाताकी खस्ती रोटियाँ, क्योंकि तब मुझे मृत्युसे अभय मिल चुका था।’ इसीलिये कहा गया है—

न गोप्रदातं न महीप्रदातं
न चान्दानं न सुवर्णदानम्।
यथा चदन्तीह बृधा. प्रधानं
सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम्॥

बुद्धिमान्लोग समस्त दानोंमें अभयदानको जितना प्रधान (महत्वपूर्ण) बताते हैं, उनना महत्वपूर्ण गोदान, पृथ्वीदान, अनदान या स्वर्णदानको नहीं बताते। —त्र० सिं०

अपने प्रति अन्याय

एक साधुकी गाय किसीने चुरा ली। जब लोग गाय छूँढ़ने लगे, तब साधु बोले—‘गाय ले जाते समय मैंने चोरको देखा, किंतु उस समय मैं जप कर रहा था,

बोल नहीं सकता था।’

‘किनना दुष्ट है वह।’ लोग चोरकी निन्दा करने लगे। साधुने उन्हें रोका—‘मैंने उसे क्षमा कर दिया है।

आप सब भी क्षमा कर दें।'

'ऐसा दुष्ट भी क्या क्षमा करनेयोग्य होता है। उसे तो दण्ड मिलना चाहिये।' दूसरे लोग बहुत उत्सेजित थे।

साधु बोले—'उसने मेरे प्रति तो कोई अन्याय

किया नहीं, मैं क्यों क्रोध करूँ और दण्ड दिलाऊँ। गाय मेरे प्रारब्धमें अब नहीं होगी, इसलिये चली गयी। उसने तो अपने प्रनि ही अन्याय किया है; क्योंकि उसने चोरीका पाप किया, जिसका दण्ड उसे अब या जन्मान्तरमें अवश्य भोगना पड़ेगा।'

सबसे अपवित्र है क्रोध

कहा जाता है कि भगवान् विश्वनाथकी पुरी काशीकी वात है। गङ्गा-ज्ञान करके एक सन्यासी घाटसे ऊपर जा रहे थे। भीड़ तो काशीमें रहती ही है, वचनेका प्रयत्न करते हुए भी एक चाण्डाल वच नहीं सका, उसका वच उन सन्यासीजीसे हूँ गया। अब तो सन्यासीको क्रोध आया। उन्होंने एक छोटा पत्थर उठाकर मारा चाण्डालको और डॉटा—'अंधा हो गया है, देखकर नहीं चलता; अब मुझे फिर ज्ञान करना पड़ेगा।'

चाण्डालने हाथ जोड़कर कहा—'अपराध हो गया, क्षमा करे। रही ज्ञान करनेकी वात सो आप ज्ञान करें या न करें, मुझे तो अवश्य ज्ञान करना पड़ेगा।'

सन्यासीने आश्वर्यसे पूछा—'तुझे क्यों ज्ञान करना पड़ेगा ?'

चाण्डाल बोला—'सबसे अपवित्र महाचाण्डाल तो क्रोध है और उसने आपमें प्रवेश करकेमुझे हूँ दिया है। मुझे पवित्र होना है उसके स्पर्शसे।' सन्यासीजीने लज्जासे सिर नीचा कर लिया।

निष्पाप हो वह पत्थर मारे

महात्मा ईसामसीहके सम्मुख एक नारी पकड़कर ले आयी गयी थी। नगरके लोगोंकी भीड़ उसे धेरे हुए थी। लोग अत्यन्त उत्सेजित थे। वे चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे कि उसे मार देना चाहिये। उस नारीपर दुराचरणका आरोप था और अपना अपराध वह अखीकार कर दे, ऐसी परिस्थिति नहीं थी। उसके हाथ पीछेकी ओर बैंधे थे। उसने अपना मुख झुका रखा था।

ईसाने एक बार उस नारीकी ओर देखा और एक बार उत्सेजित भीड़की ओर। उन्होंने ठंडे खरमें कहा—'इसने पाप किया है, यह वात जब यह स्थय अखीकार नहीं करती है तो अविश्वास करनेका कोई कारण ही नहीं। यह पापिनी तो है।'

'इसे दण्ड मिलना चाहिये—प्राणदण्ड !' भीड़से लोग चिल्लाये।

'अच्छी वात ! आपलोग जैसा चाहते हैं, वैसा ही करे। इसे सब लोग पौच-पौच पत्थर मारे।' ईसाने उसी शान्त कण्ठसे निर्णय दे दिया।

वेचारी नारी कॉप उठी। उसे दयालु कहे जाने-वाले इस साधुसे ही एक आशा थी और उसका यह निर्णय। उधर भीड़के लोगोंने पत्थर उठा लिये। परतु इसी समय ईसाका उच्चखर गूँजा—'सावधान मित्रो ! पहला पत्थर इसे वह मारे जो सर्वथा निष्पाप हो। स्थयं पापी होकर जो पत्थर मारेगा, उसे भी यही दण्ड भोगना होगा।'

उत्सेजित भीड़में उठे हाथ नीचे झुक गये। लोगोंका चिल्लाना बद हो गया। नारीने अशुपूर्ण नेत्र उठाकर ईसाकी ओर देखा, किंतु ईसा भीड़को सम्बोधित कर रहे थे—'मारो ! बन्धुओ, पत्थर मारो ! यह पापिनी

नारी तुम्हारे सामने है, निष्पाप पुरुष डसे पहला पत्थर मारे ।

भीड़के लोग धीरे-धीरे खिसकने लगे । योड़ी दरमें तो वहाँ ईसा अकेले बच रहे थे । उन्होंने आगे बढ़कर उस नारीके बैंधे हाथ खोल दिये और बोले—“देवि । तुम चाहे जहाँ जानेको अब सतन्त्र हो । परमात्मा

दयासागर है । वज्जींका ऐसा कोई अपराध नहीं हो सकता, जिनको उनका पिता क्षमा माँगनेपर क्षमा न कर दे । उस परम पितासे तुम क्षमा माँगो ।”

भीड़की उत्तेजना उस नारीको मार सकती थी, किंतु ईसाकी दयाने उसकी पापग्रवृत्तिका बध कर दिया । वह नारी पश्चात्तापकी ज्वालामें शुद्ध हो चुकी थी ।

ऋण लेकर भूलना नहीं चाहिये

नेपोलियन बोनापार्ट वचपनमें बहुत निर्धन थे, किंतु अपने साहस और उद्योगसे वे फ्रासके सम्राट् हुए । सम्राट् होनेके पश्चात् वे एक दिन धूमते हुए उस और पहुँचे जहाँ वचपनमें उन्होंने शिक्षा पायी थी । सहसा उन्हें कुछ स्मरण आया और अकेले ही एक छोटे घरके आगे वे जा खड़े हुए । उस घरकी एक बुद्धियाको उन्होंने बुलाकर कहा—“वूँही माँ ! बहुत पहले इस स्कूलमें एक बोनापार्ट नामका लड़का पढ़ता था, तुम्हें उसका कुछ स्मरण है ?”

बुद्धिया बोली—“हाँ, हाँ, मुझे स्मरण है । वह अच्छा लड़का था वह ।”

नेपोलियन—“वह तुमसे फल, मेवा, रोटी आदि

खाने-पीनेकी चीजें लिया करता था । उसने तुम्हारा सब दाम दे दिया या कुछ उधार उसपर रह गया ?”

बुद्धिया—“वह उधार रखनेवाला लड़का नहीं था । वह तो अपने साथियोंमें किसीके पास पैसा न हो तो अपने पाससे उनके पैसे भी चुका देता था ।”

नेपोलियन—“तुम बहुत बूँही हो गयी हो, इससे सब बातें तुम्हें स्मरण नहीं । अपने पैसे देकर तुम भूल जाओ, यह तो ठीक है, किंतु ऋण लेकर भूलना तो ठीक नहीं । उस लड़केपर तुम्हारे कुछ पैसे अभीतक उधार हैं । वह आज अपना ऋण चुकाने आया है । यह थैली लो और बहुत दिनोंका अपना ऋण इसके रूपयोंसे चुका लो ।”

सच्चा वीर

उस समय फ्रास और ऑस्ट्रियामें युद्ध चल रहा था । लॉटूर आवर्न फ्रासकी ग्रेनेडियर सेनाका सैनिक था । वह छुट्टी लेकर अपने घर गया था । छुट्टी समाप्त होनेपर जब वह लौटने लगा, तब मार्गमें पता लगा कि ऑस्ट्रियाकी एक सैनिक टुकड़ी पहाड़ी मार्गसे शीघ्रतापूर्वक फ्रासके एक छोटेसे पर्वतीय दुर्गकी ओर चढ़ी आ रही है । उस सैनिकने निश्चय किया—“मैं गत्रुसे पहले पहुँचकर दुर्ग-रक्षकोंको सावधान कर दूँगा और वहाँसे एक सैनिक भेज दूँगा सढेझ लेकर, जिससे समयपर सहायताके लिये सेना आ जाय ।”

वह दौड़ता हुआ किसी प्रकार उस पहाड़ी किलेमें

पहुँचा, किंतु वहाँ पहुँचकर उसने जो कुछ देखा, उससे बहुत दुख हुआ । दुर्गका द्वार खुला हुआ था । उसके रक्षक गत्रुके आक्रमणका समाचार पाकर भाग गये थे । वे इतनी उतावलीमें भागे थे कि अपनी बदूकें भी साथ नहीं ले गये थे । आवर्नने झटपट अपना कर्नल्य निश्चित किया । उसने दुर्गका द्वार बढ़ कर दिया । कुछ भोजन करके उसने सब बदूकें एकत्र कीं । आजके समान कारत्ससे चलनेवाली बदूकें उस समय नहीं थीं । आवर्नने सब बदूकें भरी और उन्हें स्थान-स्थानपर जमाकर लगा दिया । प्रत्येक बदूकके पास उसने बारूद और गोलियाँ रखीं । यह सब करके वह गत्रुकी प्रतीक्षा करने लगा ।

ऑस्ट्रियन सैनिक दुर्गपर अचानक आक्रमण करना चाहते थे;। रात्रि के अन्धकार में वे जैसे ही आगे बढ़े, किले के ऊपर से एक बदूक का धड़ाका हुआ और उनका एक सैनिक लुढ़क गया। उस समय वे पीछे हट गये। सबेरा होनेपर उनके सेनानायकने व्यूह बनाकर किलेपर आक्रमण किया; किंतु किले से आती गोलियोंने उस सेनाके अनेक सैनिकोंको मूला दिया। गोलियों कभी एक ओर से, कभी दूसरी ओर से, इस प्रकार किले की बहुत-सी खिड़कियोंसे आ रही थीं। किला ऊँचाईपर था। उसपर सीधे चढ़ जाना अत्यन्त कठिन था। दिनभर संग्राम चलता रहा; किंतु ऑस्ट्रियन सैनिक आगे नहीं बढ़ सके। उनके बहुतसे सैनिक मरे तथा धायल हुए।

उधर आवर्ण दिनभरमे थककर चूर हो गया था। वह समझता था कि कल वह इसी प्रकार किले को नहीं बचा सकेगा। भागे हुए सैनिकोंने 'फांसीसी' सेनाको सावधान कर दिया होगा, यह भी वह अनुमान करता था। उसने संध्या-समय पुकारकर ऑस्ट्रियन सेनाके नायकसे कहा—'यदि दुर्गवासियोंको फांसके झड़े तथा हथियारोंको लेकर निकल जानेका बचन दो तो मैं कल सबेरे किला तुम्हें सौंपे दूँगा।'

सेनानायकने आवर्णकी भाँग स्वीकार कर ली। प्रातःकाल ऑस्ट्रियन सैनिक दो पंक्तियोंमें इस प्रकार खड़े हो गये कि उनके मध्यसे एक-एक करके दुर्गके सैनिक जा सकें। किलेका द्वार खुला। हायमे फांसका झड़ा लिये कधींपर ढेरों बंदूकें लाटे आवर्ण निकला। ऑस्ट्रियन मेनानायकने पूछा—'दूसरे सैनिक तुम्हारे पीछे आ रहे हैं?'

आवर्ण हँसकर बोला—'मैं ही सैनिक हूँ, मैं ही दुर्गपाल हूँ और मैं ही पूरी सेना हूँ।' उसके इस शौर्यसे ऑस्ट्रियन सेनानायक इतना प्रभावित हुआ कि उसने बंदूकें ले जानेको उमे अपना एक मजदूर ठिया तथा एक प्रशसापत्र लिखकर उसे दिया। इस घटनाका समाचार जब नेपोलियनको मिला तो उसने आवर्णको फांसके महान् ग्रेनेडियरकी उपाधि दी। आवर्णकी मृत्यु होनेपर भी उसका नाम सैनिक-सूचीसे पृथक् न किया जाय, यह आदेश दिया गया। उसकी मृत्युके पश्चात् भी सैनिकोंकी उपस्थिति लेते समय सैनिक अधिकारी पहले उसका नाम लेकर पुकारता था और एक सैनिक नियमितरूपसे उठकर उत्तर देता था—'वे युद्धमूमिमे अनन्त यशकी शश्यापर सो रहे हैं।'

सम्मान पदमें है या मनुष्यतामें

सिकन्दरने किसी कारणसे अपनी सेनाके एक सेनापतिसे रुष्ट होकर उसे पदच्युत करके सूबेदार बना दिया। कुछ समय बीतनेपर उस सूबेदारको सिकन्दरके सम्मुख उपस्थित होना प्रड़ा। सिकन्दरने पूछा—'मैं तुमको पहलेके समान प्रसन्न देखता हूँ, बात क्या है?'

सूबेदार बोला—'श्रीमान्! मैं तो पहलेकी अपेक्षा भी सुखी हूँ। पहले तो सैनिक और सेनाके छोटे अधिकारी मुझसे डरते थे, मुझसे मिलनेमे सकोच्च करते थे, किंतु अब वे मुझसे स्नेह करते हैं। वे मेरा भरपूर सम्मान करते हैं। प्रत्येक बातमे मुझसे सम्मति लेते हैं। उनकी सेवा करनेका अंतर सर तो मुझे अब मिला है।'

सिकन्दरने फिर पूछा—'पदच्युत होनेमे तुम्हें अपमान नहीं प्रतीत होता?'

सूबेदारने कहा—'सम्मान पदमें है या मानवतामें? उच्च पद पाकर कोई प्रमाद करे, दूसरोंको सतावे, धूस आदि ले और गर्भमें चूर बने तो वह निन्दाके योग्य ही है। वह तो बहुत तुच्छ है। सम्मान तो है दूसरोंकी सेवा करनेमे, कर्तव्यनिष्ठ रहकर सबसे नम्र व्यवहार करनेमे और ईमानदारीमे। भले वह व्यक्ति सैनिक हो या उससे भी छोटा गोवका चौकीदार।'

सिकन्दरने कहा—'मेरी भूलपर ध्यान मत देना। तुम फिर सेनापति बनाये गये।'

कुसङ्गका दुष्परिणाम

रोमका एक चित्रकार ऐसे व्यक्तिका चित्र बनाना चाहता था, जिसके मुखसे भोलेपन, सरलता और दीनताके भाव स्पष्ट प्रकट होते हों। वर्षोंके परिश्रमके पश्चात् उमे एक ऐसा बालक मिला। चित्रकारने बालकको बैठकर उसका चित्र बनाया। उस चित्रकी इतनी प्रतिग्राँ विर्की कि चित्रकार मालामाल हो गया।

दस-पद्धत वर्ष पीछे चित्रकारके मनमें एक दुष्टताके भाव प्रकट करनेवाले चित्रको बनानेकी इच्छा हुई। वह ऐसे व्यक्तिका चित्र बनाना चाहता था जिसके मुखसे धूर्ता, कूरता और सार्यलिप्सा फटी पड़ती हो। स्पष्ट था कि ऐसे व्यक्ति उमे कारागारमें ही मिल सकते थे। वह कारागारमें पहुँचा और उसे

एक कैदी मिल भी गया।

‘मैं तुम्हारा चित्र बनाना चाहता हूँ।’ चित्रकारने बताया।

‘मेरा चित्र। क्यों?’ कैदी कुछ डर गया।

चित्रकारने अपना पहला चित्र दिखलाया और उसने अपना विचार सूचित किया। पहले, चित्रको देखकर कैदी फट-फटकर रोने लगा। उसने बताया—‘यह चित्र मेरा ही है।’

‘तुम इस दशामें कैसे पहुँच गये?’ आश्वर्यसे चित्रकारने पूछा।

‘कुसङ्गमें पड़कर।’ कैदीके पश्चात्तापके अशुरुकते ही नहीं थे।

सहनशीलता

चीनके बादशाहका मन्त्री गाहचांग बहुत धक गया था। उस दिन उमे सबेरे ही बादशाहके सम्मुख एक रिपोर्ट रखनी थी। आधी राततक जागते हुए वह अपने सहायकसे रिपोर्ट लिखवाता रहा। रिपोर्ट पूरी करके वह उठा और अपने गयनकक्षकी ओर जाने लगा। इसी समय उसका सहायक भी उठा, किंतु सहायककी असावधानीसे लैभ्यको धक्का लग गया। लैभ्य गिर पड़ा। सब कागज तेलमें भीग गये और उनमें

आग लग गयी। सहायकका तो मुख ही सूख गया ‘काटो तो खून नहीं।’

मन्त्री महोदय लौट पडे। उन्होंने धीरेसे कहा—‘यह सयोगकी बात है, तुम्हारा कोई अपराध तो है नहीं। बैठो, हम दोनों फिरसे उस रिपोर्टको तैयार कर लेंगे।’ अपने आसनपर बैठ गये और कागजोंको सम्भालकर रिपोर्ट लिखवाना आरम्भ कर दिया।

क्षमा

एक दिन एक घमडी युवकने इगलैंडकी महारानी एलिजावेथके आढरमाजन तथा प्रख्यात शूर सर बॉल्टर रैलेको दृद्धयुद्धकी चुनौती ढी। उस समय यूरोपमें दृद्धयुद्धकी चुनौतीको अस्थीकार करना अत्यन्त कायरताका चिह्न माना जाता था। सर रैले तलवार चलानेमें अत्यन्त निपुण थे, किंतु उन्होंने उस युवककी

चुनौती अस्थीकार कर दी। इसमें उस असम्य युवकने घृणापूर्वक सर रैलेके मुखपर थूक दिया।

बिना किसी उत्तेजनाके रैले बोले—‘जितनी सरलता से अपने मुखपर पडे इस थूकको मैं खुमाल निकालकर पीछे सकता हूँ, यदि उतनी ही सरलतासे मानवहत्याकापाप भी पीछा जा सकता तो अवश्य मैं तलवार निकालकर तुम्हारे साथ भिड़ पड़ता।’

पवित्र बलिदान

फ्रांसके करडोनिस बेल आइलके प्रकाश-गृहकी घटना है। प्रकाश-गृहमें लालटेन जलानेवाला अचानक बीमार पड़ गया। बड़ी अँधेरी रात थी। उसकी पत्नीने लालटेनको जला दिया। लालटेन जलाकर वह लौटी ही थी कि उसने देखा कि पति मरणासन्न है। वह बड़ी चिन्तित हो गयी। इतनेमें उसके सात सालके लड़के और दस सालकी लड़कीने सूचना दी कि लालटेन घूम नहीं रही है। प्रकाश-गृहकी लालटेन रातभर घूमकर समुद्रकी उत्ताल तरङ्गोंपर चारों ओर अपना प्रकाश फैलाती थी। यदि वह एक ही दिशाको प्रकाशित करती तो जहाजोंके टकराने और छबनेकी आशका हो जाती थी।

पत्नीने पतिको मरणशङ्कापर छोड़ दिया और बच्चोंको

साथ लेकर वह लालटेन ठीक करने चली गयी। लालटेन ठीक नहीं हो सकी।

‘बच्चो ! तुमलोग रातभर इस लालटेनको धुमाते रहो। समुद्रमें चारों ओर घना अन्धकार छाया हुआ है; बड़े जोरका तफान आ रहा है।’ यह आदेश देकर वह पतिके पास चली आयी।

दोनों बच्चे नौ बजे रातसे सात बजे सबैरेतक लालटेन धुमाते रहे। इस प्रकार उन्होंने अनेक जहाजोंको प्रकाश दिया और असख्य प्राणोंकी रक्षा की, पर उनके पिताके प्राण तो चले ही गये। मॉ मृत पतिके पास रो रही थी, पर इस पवित्र बलिदानके लिये उसके मनमें निराशाकी एक रेखा भी न थी। अपने बच्चोंके सत्कर्तव्य-पालनसे वह बड़ी प्रसन्न थी।—रा० श्री०

वैष्णवकी नम्रता

एक वैष्णव वृन्दावन जा रहा था। रास्तेमें एक जगह सध्या हो गयी। उसने गॉवमें ठहरना चाहा, पर वह सिवा वैष्णवके और किसीके घर ठहरना नहीं चाहता था। उसे पता लगा—बगलके गॉवमें सभी वैष्णव रहते हैं। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने गॉवमें जाकर एक गृहस्थीसे पूछा—‘भाई ! मैं वैष्णव हूँ। सुना है इस गॉवमें सभी वैष्णव हैं। मैं रातभर ठहरना चाहता हूँ।’ गृहस्थने कहा—‘महाराज ! मैं तो नराधम हूँ, मेरे सिवा इस गॉवमें और सभी वैष्णव हैं। हॉ, आप कृपा करके मुझे आतिथ्य करनेका सुअवसर दें तो मैं अपनेको धन्य समझूँगा।’ उसने सोचा, मुझे तो वैष्णवके घर ठहरना है। इसलिये वह आगे बढ़ गया। दूसरे

दरवाजेपर जाकर पूछा, तो उसने भी अपने यहाँ ठहरनेके लिये तो बहुत नम्रताके साथ प्रार्थना की; पर कहा यही कि ‘महाराज ! मैं तो अत्यन्त नीच हूँ। मुझे छोड़कर यहाँ अन्य सभी वैष्णव हैं।’ वह गॉवभरमें भटका; परतु किसीने भी अपनेको वैष्णव नहीं बताया, वर सभीने नम्रतापूर्वक अपनेको अत्यन्त दीन-हीन बतलाया। गॉवभरकी ऐसी विनय देखकर उसकी भ्रान्ति दूर हुई। उसने समझा ‘वैष्णवताका अभिमान करनेसे ही कोई वैष्णव नहीं होता। वैष्णव तो वही है जो भगवान् विष्णुकी भौति अत्यन्त त्रिनम्र है।’ उसकी अन्तर्दृष्टि खुल गयी और उसने अपनेको सबसे नीचा समझकर एक वैष्णवके घरमें निवास किया।

संतकी सहनशीलता

एक महात्मा जगलमें कुटिया बनाकर एकान्तमें रहते थे। उनके अक्रोध, क्षमा, शान्ति, निर्माहिता आदि गुणोंकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। मनुष्य पर-मृण-असहिष्णु होता है। उनकी शान्ति भग करके क्रोध दिलाया जाय—इसकी होड़ लगी। दो मनुष्योंने इसका बीड़ा लिया। वे महात्माकी कुटियापर गये। एकने कहा—‘महाराज! जरा गौंजेकी चिलम तो लाइये।’ महात्मा बोले—‘भाई! मैं गौंजा नहीं पीता।’ उसने फिर कहा—‘अच्छा तो तमाखू लाओ।’ महात्माने कहा—‘मैंने कभी तमाखूका व्यवहार नहीं किया।’ उसने कहा—‘तब वाबा बनकर जगलमें क्यों बैठा है? धूर्त कहाँका।’ इतनेमें पूर्व योजनाके अनुसार बहुत-से लोग वहाँ जमा हो गये। उस आदमीने सबको सुनाकर फिर कहा—‘पूरा ठग है, चार बार तो जेटकी हवा खा चुका है।’ उसके दूसरे साथीने कहा—‘अरे भाई! मैं खूब जानता हूँ, मैं साथ ही तो था। जेलमें इसने मुझको ढंडेंसे मारा था, ये देखो उसके निशान। रातको रामजनियोंके साथ रहता है, दिनमें बड़ा सत बन जाता है।’ यों वे दोनों एक-से-एक बढ़कर—झूठे आरोप लगाने लगे, कैसे ही महात्माको क्रोध आ जाय, अन्तमें महात्माके माता-पिताको, उनके साधनको तथा वेशको भी गाली बकने लगे। बकते-बकते सारा भण्डार खाली हो गया। वे चुप हो गये।

तब महात्माने हँसकर कहा—‘एक भक्तने शक्तरकी पुड़िया दी है, इसे जरा पानीमें डालकर पी लो। (शक्तरकी पुड़िया आगे रखकर कहा) मैया! यक गये होओगे।’

वह मनुष्य महात्माके चरणोंपर पड़ गया और बोला—‘मुझे क्षमा कीजिये महाराज! मैंने आपका बड़ा अपराध किया है। हमलोगोंके इतना करनेपर भी महाराज! आपको क्रोध कैसे नहीं आया?’

महात्मा बोले—मैया! जिसके पास जो माल होता है, वह उसीको दिखाता है। यह तो ग्राहककी इच्छा है कि उसे ले या न ले। तुम्हारे पास जो माल था, तुमने वही दिखाया, इसमें तुम्हारा क्या दोष है। परतु मुझे तुम्हारा यह माल पसंद नहीं है।

दोनों लजित हो गये। तब महात्माने फिर कहा—‘दूसरा आदमी गलती करे और हम अपने अदरआग जला दें, यह तो उचित नहीं है। मेरे गुरुजीने मुझे यह सिखाया है कि क्रोध करना और अपने बदनपर छुरी मारना बराबर है। ईर्ष्या करना और जहर पीना बराबर है। दूसरोंकी दी हुई गालियाँ और दुष्ट व्यवहार हमारा कोई नुकसान नहीं कर सकते।’

यह सुनकर सब लोग बहुत प्रभावित हुए और महात्मा-को प्रणाम करके चले गये।

‘बोलै नहीं तो गुस्सा मरै’

एक घरमें श्री-पुरुष दो ही आदमी थे और दोनों आपसमें नित्य ही छड़ा करते थे। एक दिन उस छीने अपनी पड़ोसिनके पास जाकर कहा—‘वहिन! मेरे स्थानीका मिजाज बहुत चिङ्गचिङ्गा है, वे जब-तब मुझसे लड़ते ही रहते हैं और इस तरह हमारी बनी रसोई बेकार चली जाती है।’ पड़ोसिनने कहा—‘अरे! इसमें कौन-सी बात है? मेरे पास एक ऐसी अचूक दवा है

कि जब तुम्हारे पति तुमसे लड़ें, तब तुम दवाको अपने मुँहमें भर रखा करो, बस, वे तुरत चुप हो जायेंगे।’ पड़ोसिनने शीशी भरकर दवा दे दी। उस छीने दवाकी दो-तीन बार पतिके क्रोधके समय परीक्षा की और उसे बड़ी सफलता मिली। तब तो उसने खुशी-खुशी जाकर पड़ोसिनसे कहा—‘वहिन! तुम्हारी दवा तो बड़ी कीमिया है। उसमें क्या-क्या चीजें पड़ती हैं, बता

दो तो, मैं भी बना रखवूँ।' पड़ोसिनने हँसकर कहा— रहनेसे तुम बदलेमे बोल नहीं सकी और तुम्हें शान्त 'वहिन। शीर्जीमें साफ जलके सिवा और कुछ भी नहीं पाकर उनका क्रोध भी जाता रहा। वस, 'एक मौन था। काम तो तुम्हारे मौनने किया। मुँहमे पानी भरा सब दुख है, बोलै नहीं तो गुस्सा मरै।'

क्रोधमें मनुष्य हितैषीको भी मार डालता है

किसी नरेशको पक्षी पालनेका शौक था। अपने पाले पक्षियोंमें एक चकोर उन्हे इतना प्रिय था कि उसे वे अपने हाथपर बैठाये रहते और कहीं जाते तो साथ ही ले जाते थे।

एक बार राजा वनमे आखेट करने गये थे। उनका घोड़ा दूसरे साथियोसे आगे निकल गया। राजा वनमे भटक गये। उन्हें बहुत प्यास लगी थी। धूमते हुए उन्होंने देखा कि एक चट्टानकी सधिसे वूँद-वूँद करके पानी धक्का रहा है। राजाने वहाँ एक प्याला जेवसे निकालकर रख दिया। कुछ देरमे प्याला भर गया। राजाने पानी पीनेको उठाया। इसी समय उनके कधेपर बैठा चकोर उड़ा और उसने पंख मारकर प्याला छुड़का दिया। राजाको बहुत क्रोध आया; किंतु उन्होंने प्याला फिर रख दिया भरनेके लिये। बड़ी देरमे प्याला फिर भरा, पर जब वे पीने चले तब चकोरने फिर परख

मारकर उसे गिरा दिया। क्रोधके मारे राजाने चकोरको पकड़ लिया और गर्दन मरोड़कर मार डाला उसे।

अब चकोरको नीचे फेंककर उन्होंने सिर उठाया तो सहसा उनकी दृष्टि चट्टानकी संधिपर पड़ी। वहाँ एक मरा सर्प दबा था और उसके शरीरमेंसे वह जल टपक रहा था। राजा कोँप उठे—'हाय! जल पीकर मैं मर न जाऊँ इसलिये इस पक्षीने दो बार जल गिराया और मैंने क्रोधमे उसीको मार दिया।' इसीसे कहा गया है—

क्रोधोत्पत्तौ हि क्रोधस्य फलं गृह्णाति मूढधीः।
स शोचति तु किं पश्चात् पक्षीघातकमूपवत्॥

'जो मूर्ख मनुष्य क्रोधके उत्पन्न होनेपर उसे दबा नहीं पाता, वह उस क्रोधका फल भोगता है। पक्षीको मारनेवाले राजाके समान पीछे पश्चात्ताप करनेसे क्या लाभ?'—सु० सिं०

अक्रोध

एक सज्जन पुरुषके सम्बन्धमे प्रख्यात था कि उन्हें क्रोध आता ही नहीं है। कुछ लोगोंको किसी सायमीको सयम-च्युत करनेमें आनन्द आता है। ऐसे ही कुछ लोगोंने उनके सेवकसे कहा—'तुम यदि अपने सायमीको उत्तेजित कर सको तो तुम्हें पुरस्कार दिया जायगा।'

सेवक जानता था कि उसके सायमीको अपने पलगका विछौना सिकुड़ा हुआ तनिक भी अच्छा नहीं लगता। उसने रातमे उनका विछौना सम्हाला ही नहीं। प्रातःकाल उन्होंने सेवकसे कहा—'कल विछौना ठीक नहीं

विछा था।' सेवकने बहाना कर दिया—'मैं उसे ठीक करना भूल गया।'

कोई भूल हो तो सुधरे; किंतु जब जानबूझकर कोई भूल करना चाहे तो भूल सुधरे कैसे। विछौना दूसरे दिन भी ठीक नहीं विछा और तीसरे दिन भी ठीक नहीं विछा। उस दिन सबेरे उठनेपर वे सेवकसे बोले—'छाता है कि तुम विछौना ठीक करनेके कामसे ऊब गये हो और चाहते हो कि मेरा यह समाव छूट जाय। कोई बात नहीं, मुझे अब सिकुड़े विछौनेपर ही सो रहनेकी आदत पड़ती जा रही है।'

ब्रह्मज्ञानका अधिकारी

एक साधकने किसी महात्माके पास जाकर उनसे प्रार्थना की कि 'मुझे आत्मसाक्षात्कारका उपाय बताइये ।' महामाने एक मन्त्र बताकर कहा कि 'एकान्तमें रहकर एक साल्तक इस मन्त्रका जाप करो, जिस दिन वर्ष पूरा हो, उस दिन नहाकर मेरे पास आना ।' साधकने वैसा ही किया । वर्ष पूरा होनेके दिन महात्माजीने वहाँ झाड़ू टेनेवाली भगिनने कह दिया कि 'जब वह नहाखोकर मेरे पास आने लगे, तब उसके पास जाकर झाड़ू से गर्दा उड़ा देना ।' भगिनने वैसा ही किया । साधकको क्रोध आ गया और वह भगिनको मारने टौड़ा । भगिन भाग गयी । वह फिरमे नहाकर महात्माजीके पास आया । महात्माजीने कहा—'भैया ! अभी तो तुम सौंपकी तरह काटने दोड़ते हो । सालभर और बैठकर मन्त्र-जप करो, तब आना ।' साधकको बात कुछ दुरी तो लगी, पर वह गुरुकी आज्ञा समझकर चला गया और मन्त्रजप करने लगा ।

दूसरा वर्ष जिस दिन पूरा होना था, उस दिन महात्माजीने उसी भगिनसे कहा कि 'आज जब वह आने लगे, तब उसके पैरसे जरा झाड़ू छुआ देना ।' उसने कहा, 'मुझे मारेगा तो ?' महात्माजी बोले, 'आज मारेगा नहीं, बककर ही रह जायगा ।' भगिनने जाकर झाड़ू छुआ दिया । साधकने झङ्गाकर दस-पॉन्ट कठोर डब्डु सुनाये और फिर नहाकर वह महात्माजीके पास आया । महात्माजीने कहा—'भाई ! काटते तो नहीं, पर अभी सौंपकी तरह कुफकार तो मारते ही हो । ऐसी अवस्थामें आत्मसाक्षात्कार कैसे होगा । जाओ, एक वर्ष

और जप करो । इस बार साधकको अपनी भूल दिखायी दी और मनमें बड़ी लज्जा हुई । उसने इसको महात्माजीकी कृपा समझा और वह मन-ही-मन उनकी प्रशंसा करता हुआ अपने स्थानपर आ गया ।

उसने सालभर फिर मन्त्र-जप किया । तीसरा वर्ष पूरा होनेके दिन महात्माजीने भगिनसे कहा कि 'आज वह आने लगे तब कूड़ेकी टोकरी उसपर उँडेल देना । अब वह खीझेगा भी नहीं ।' भगिनने वैसा ही किया । साधकका चित्त निर्मल हो चुका था । उसे क्रोध तो आया ही नहीं । उसके मनमें उल्टे भगिनके प्रति कृतज्ञताकी भावना जाप्रत् हो गयी । उसने हाथ जोड़कर भगिनसे कहा—'माता ! तुम्हारा मुझपर बड़ा ही उपकार है, जो तुम मेरे अटरके एक बड़े भारी दोपको दूर करनेके लिये तीन सालसे बराबर प्रयत्न कर रही हो । तुम्हारी कृपासे आज मेरे मनमें जरा भी दुर्भाव नहीं आया । इससे मुझे ऐसी आगा है कि मेरे गुरु महाराज आज मुझको अवश्य उपदेश करेंगे ।' इतना कहकर वह स्नान करके महात्माजीके पास जाकर उनके चरणोंपर गिर पड़ा । महात्माजीने उठाकर उसको हृदयसे लगा लिया । मस्तकपर हाथ फिराया और ब्रह्मके खखलपका उपदेश किया । शुद्ध अन्त करणमे तुरंत ही उपदेशके अनुसार धारणा हो गयी । अज्ञान मिट गया । ज्ञान तो था ही, आवरण दूर होनेसे उसकी अनुभूति हो गयी और साधक निहाल हो गया ।

सोनेका दान

एक धनी सेठने सोनेसे तुलादान किया । गरीबोंको खूब सोना बांटा गया । उसी गाँवमें एक सत रहते थे । सेठने उनको भी तुलाया । वे वार-वार

आग्रह करनेपर आ गये । सेठने कहा—'आज मैंने सोना बांटा है, आप भी कुछ ले लें तो मेरा कल्याण हो ।' सतने कहा—'भाई ! तुमने बहुत अच्छा काम

किया, परंतु मुझको सोनेकी आवश्यकता नहीं है।' धनीने फिर भी हठ किया। सतने समझा कि इसके मनमे धनका अहकार है। सतने तुलसीके पत्तेपर रामनाम लिखकर कहा—‘भाई! मैं कभी किसीसे दान नहीं लेना। मेरा सामी मुझे इतना खाने-पहननेको देता है कि मुझे और किसीसे लेनेकी ज़खरत ही नहीं होती। परंतु तुम इतना आग्रह करते हो तो इस पत्तेके बराबर सोना तौले दो।' सेठने इसको व्यग समझा और कहा—‘आप डिल्ली क्यों कर रहे हैं, आपकी कृपासे मेरे घरमे सोनेका खजाना भरा है, मैं तो आपको गरीब जानकर ही देना चाहता हूँ।'

सतने कहा—‘भाई! देना हो तो तुलसीके पत्तेके

बराबर सोना तौल दो।' सेठने झुँझलाकर तराजू मँगवाया और उसके एक पलड़ेपर पत्ता रखकर वह दूसरेपर सोना रखने लगा। कई मन सोना चढ़ गया; परंतु तुलसीके पत्तेगला पलड़ा तो नीचे ही रहा। सेठ आश्चर्यमे ढूब गया। उसने संतके चरण पकड़ लिये और कहा—‘महाराज! मेरे अहकारका नाश करके आपने बड़ी ही कृपा की। सच्चे धनी तो आप ही है।'

सतने कहा—‘भाई! इसमे मेरा क्या है। यह तो नामकी महिमा है। नामकी तुलना जगत्मे किसी भी वस्तुसे नहीं हो सकती। भगवान् ने ही दया करके तुम्हें अपने नामका महत्त्व दिखलाया है। अब तुम भगवान् का नाम जपा करो, तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा।'

किसी भी हालतमें निर्दोष नहीं

पहले समयकी बात है। किसी देशके एक छोटे-से गाँवमे एक व्यक्ति रहता था। उसके पास एक गवा था। वह उसे बेचना चाहता था। अपने लड़केको साथ लेकर वह निकटस्थ बाजारमे गवा बेचनेके लिये चल पड़ा। पिता गधेके पीठपर था और लड़का पैदल चल रहा था।

वे कुछ दूर गये थे कि तीन व्यक्ति मिले। उनमेसे एकने कहा कि ‘यह कैसा वाप है, अपने तो सत्त्वार है गधेकी पीठपर और लड़का पैदल चल रहा है कँकरीले रास्तेपर।’ पिता गधेपरसे उतर पड़ा और लड़का बैठ गया।

कुछ दूर गये थे कि दो महिलाएँ मिलीं। ‘कैसा पुत्र है। बूढ़े वापको पैदल ले जा रहा है और स्थयं सत्त्वारीपर विराजमान है।’ उनमेसे एकने व्यग किया।

मिताने पुत्रसे कहा कि ‘सबको समान रूपसे प्रसन्न रखना बहुत कठिन है। चलो, हम दोनों ही पैदल चलें।’ दोनों पैदल चल पडे।

आगे बढ़नेपर कुछ लोगोंने कहा कि ‘किनने मूर्ख है दोनों। साथमे हृष्ट-पुष्ट सत्त्वारी होनेपर भी दोनों पैदल जा रहे हैं।’ पिता-पुत्र दोनों गधेपर सत्त्वार हो गये। पर दो-चार कदम आगे बढ़नेपर किसीने कहा कि ‘किनने निर्दय हैं दोनों; इतने भारी सड़े-मुसड़े बेचारे दुव्वल्प-पतले गधेपर लदे जा रहे हैं।’ दोनों तत्काल उतर पड़े और सोचा कि गधेको कधेपर रखकर ले चलना चाहिये। बाजार योड़ी ही दूर रह गया था। उन्होंने पैड़की एक डाली तोड़ी और उसके सहारे गधेको रस्सीसे बॉधकर कधेपर लटका लिया।

बाजारमे प्रवेश करते ही लोग कहकहा मारकर हँस पडे।

‘देखो न, किनने मूर्ख है दोनों, कहाँ तो इन्हें गधेकी पीठपर सत्त्वार होकर आना चाहिये और कहाँ ये उसे स्थयं अपने कधे पर ले रहे हैं।’ लोगोंने मजाक उडाया।

बूढ़े व्यक्तिकी समझमें सारी बात आ गयी।

हमलोगोंने सबको प्रसन्न करना चाहा, इसलिये किसीको भी प्रसन्न न कर सके। सबमें अच्छी बात यह है कि जगत्के लोगोंकी आलोचनापर ध्यान न दे, क्योंकि जगत् तो एक-न-एक दोष निकालेगा ही। जगत्की

दृष्टिमें कोई किसी भी हालतमें निर्दोष नहीं है। अन सुने सबकी, पर करे वही जो मनको ठीक लगे। जिस कार्यके लिये आत्मा सत्प्रेरणा प्रदान करे वही हमारा कर्तव्य है। पिताने पुत्रको सीख दी।*

सभी परमात्माकी सत्तान हैं

एक बार एक फक्तीर अपने एक युवक मेषकके साथ कहीं जा रहे थे। रात्में मेषकने एक चिडिया देखी। उस पक्षीके साथ एक बच्चा भी था। वह मेषकको बहुत मुन्द्र लगा। उसने उसे पकड़ लिया। ढोनों माँ-बेटे छटपटाने लगे। इसे देख फक्तीर तुरन्त मेषकके पास गये और बोले—‘खवादार ! इस पक्षीके बच्चेको तुरन्त इसकी माँको सौंप दो। ईश्वर समस्त जीवोंका—

प्राणिमात्रका पिता है। वह प्रेममय—वात्सल्यमय है। सभी प्राणी परमात्माके बालक हैं। इसलिये उसकी सत्तानको कष्ट देना तो उसके साथ वगापत करना है। भला पुत्रप्रसाद पिता अपने पुत्रके कष्टको कैसे क्षमा करेगा ? अत वह भगवान्के प्रिय बननेवालों अथवा प्रिय चाहनेवालोंको तन-मनसे उनकी सत्तानको भी प्रसन्न करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।’

मांस सस्ता या महँगा ?

एक नरेशने अपने दग्धारमें सामन्तोंसे पूछा—
‘मास सस्ता है या महँगा ?’

सामन्तोंने उत्तर दिया—‘सस्ता है।’

सामन्तोंकी बात सुनकर राजकुमारने कहा—
‘पिताजी ! मास महँगा है।’

नरेशने पुत्रसे कहा—‘तुम अभी बालक हो, अनुभवहीन हो। सामन्तगण अनुभवी हैं। बात उनकी ही ठीक है।’

राजकुमार बोला—‘यदि आप कुछ दिन राजसभामें आयें तो मैं इस बातको सिद्ध कर दूँगा कि किसकी बात ठीक है।’

राजकुमारकी बात राजाने मान ली। दो-एक दिन बाढ़ राजकुमार एक सामन्तके घर पहुँचे और बोले—
‘पिताजी बीमार हैं। राजवैद्य कहते हैं कि किसी शर

सामन्तके हृदयका मास चाहिये। कृपा करके आप अपने हृदयका दो तोला मास दें दें। जो भी मूल्य चाहें, आपको दिया जायगा।’

सामन्तने राजकुमारको एक बड़ी रकम भेंट की और कहा—‘आप मुझमर दया करें। किसी दूसरे सामन्तके पास पाशरें।’

राजकुमार क्रमशः सभी सामन्तोंके पास गये। सबने उन्हे भारी भेंट देकर दूसरेके यहाँ जानेको कहा। राजकुमारने भेंटमें प्राप्त वह त्रिगाल धन-राशि लाकर पिताके सम्मुख रख दी। सब बातें बता दीं पिताको। दूसरे दिन राजसभामें राजा आये। सामन्तोंसे उन्होंने किस पूछा—‘मास सस्ता है या महँगा ?’

सामन्तोंने तथ्य समझ लिया। उन्होंने मस्तक कुक्का लिया। राजकुमार बोले—

* ऐसी ही एक कथा शिव पार्वती और नन्दी वैत्के सम्बन्धमें सुनी जाती है।

स्वमांसं दुर्लभं लोके लक्षेनापि न लभ्यते ।
अल्पमूल्येन लभ्येत पलं परशरीरजम् ॥
‘पिताजी ! अपना मास ससारमें दुर्लभ है । कोई लाख रुपयेमें भी अपने शरीरका मांस देना नहीं चाहता । परंतु दूसरेके शरीरका मांस तो थोड़े मूल्यमें ही मिलता है ।’

अपने शरीरके समान ही दूसरोंको भी उनका शरीर प्रिय है और उनके लिये उनका मास वैसा ही बहुमूल्य है जैसे अपने लिये अपना मास । इससे किसी प्राणीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये, यह राजकुमारका तात्पर्य अब सामन्तोंकी समझमें आया ।

—सु० सिं०

अभी बहुत दिन हैं

एक श्रेष्ठ नारी थी । माता-पिता भगवद्गत्त थे, उन्होंने पुत्रीको उत्तम शिक्षा दी थी । विवाह हो जाने-पर पतिगृह आकर उसने सोचा—‘हीको पतिकी सेवा करनी चाहिये और सच्ची सेवा तो है जीवको मृत्युके मुखमें सेवा देना । भगवान्‌के भजनमें लगकर ही प्राणी मृत्युके फदेसे छूट सकता है ।’ यह विचार करके वह पतिको समय-समयपर भजन करनेको कहा करती थी ।

पतिदेव थे सासारिक व्यापार-निपुण । वे पत्नीकी बात सुनकर कह देते थे—‘अभी क्या जीव्रता है । अभी तो बहुत दिन हैं । भजन-पूजनका भी समय होता है । ससारके अमुक कार्य पूरे कर लेने दो, फिर तो भजन-ही-भजन करना है ।’

एक बार पति महोदय वीमार पड़े । वैद्यजी आये,

नाड़ी देखी और दवा दे गये । पत्नीने दवा लेकर रख दी । जब दवा लेनेका समय हो गया तब पति ने पत्नीमें दवा माँगी । लीने कहा—‘अभी क्या जीव्रता है ? अभी तो बहुत दिन पड़े हैं । दवा फिर ले लीजियेगा ।’

पतिदेव झल्लाये—‘तब दवा क्या मरनेके बाद खानेको है ?’

पत्नीने दवा देते हुए कहा—‘दवा तो अभी खानेकी है; किंतु आपने सम्भवतः भगवान्‌का भजन मरनेके पश्चात् करनेकी वस्तु माना है; क्योंकि मृत्यु कव आयेगी, यह तो किसीको पता नहीं ।’

पुरुषको अपनी भूलका पता लगा और भूल जब समझमें आ जाय तो वह दूर होकर रहती है, यदि पुरुष सत्पुरुष है ।—सु० सिं०

अपने अनुभवके बिना दूसरेके कष्टका ज्ञान नहीं होता

एक राजकुमारकी शिक्षा पूरी हो चुकी थी । महाराज ख्ययं आये थे मन्त्रियोंके साथ गुरुगृहसे अपने कुमारको ले जाने । समावर्तन संस्कार समाप्त हुआ और राजकुमारने आचार्यके चरणोंमें प्रणाम किया । आचार्य बोले—‘ठहरो ! मेरी छड़ी तो लाओ ।’

राजकुमारने छड़ी लाकर दी । आचार्यने उस सुकुमार राजकुमारको दो छड़ी कसकर जमा दी । उसकी पीठपर छड़ीके चिह्न उभड़ आये । रक्त छलछला

उठा । अब आचार्यने आशीर्वाद दिया—‘क्स ! तुम्हारा मङ्गल हो । अब पिताके साथ जाओ ।’

विनम्र राजकुमार कुछ नहीं बोला; किंतु राजासे रहा नहीं गया । वे बोले—‘अपराध क्षमा करे ! निरपराधको ताडना देनेका कारण जाननेकी इच्छा है ।’

आचार्यने शान्तिसे कहा—‘इसकी शिक्षामें इतना अभाव रह गया था, दण्डकी तो कोई बात ही नहीं ।

यह इतना नम्र और सावधान है कि इसे ताड़ना देनेका दूसरोंको टण्ड देना है। उस समय इसे अनुभव होना अवसर ही नहीं आया। परतु इसे आसक बनना है, चाहिये कि टण्डकी बेदना कैसी होती है।'—सु० सिं०

अन्यायका कुफल

एक व्यापारीके दो पुत्र थे। एकका नाम था—धर्मबुद्धि, दूसरेका दुष्टबुद्धि। वे दोनों एक बार व्यापार करने विदेश गये और वहाँसे दो हजार अशर्फियाँ कमा लाये। अपने नगरमें आकर सुरक्षाके लिये उन्हें किसी वृक्षके नीचे गड़ दिया और केवल सौ अशर्फियोंको बॉटकर काम चलाने लगे।

एक बार दुष्टबुद्धि चुक्के उस वृक्षके नीचेसे सारी अशर्फियाँ निकाल लाया और बुरे कामोंमें उसने उनको खर्च कर डाला। एक महीना बीत जानेपर वह धर्मबुद्धिके पास गया और बोला—'आर्य। चलो, अशर्फियोंको हम लोग बॉट लें, क्योंकि मेरे यहाँ खर्च अधिक है।' उसकी बात मानकर जब धर्मबुद्धि उस स्थानपर गया और जमीन खोदी तो वहाँ कुछ भी न मिला। जब उस गड्ढेमें कुछ न दीखा, तब दुष्टबुद्धिने धर्मबुद्धिसे कहा—'माल्हम होता है तुम्हीं सब अशर्फियाँ निकालकर ले गये हो, अत मेरे हिस्सेकी आधी अशर्फियाँ अब तुम्हे देनी पड़ेंगी।' उसने कहा—'नहीं भाई। मैं तो नहीं ले गया, तुम्हीं ले गये होगे।' इस प्रकार दोनोंमें झगड़ा होने लगा। इसी बीच दुष्टबुद्धि अपना सिर फोड़कर राजाके यहाँ पहुँचा और उन दोनोंने अपना-अपना पक्ष राजाको सुनाया। उन दोनोंकी बातें सुनकर राजा किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सका।

राजपुरुषोंने दिनभर उन्हें वहीं रखा। अन्तमें दुष्टबुद्धिने कहा कि 'वह वृक्ष ही इसका साक्षी है और कहता है कि यह वर्मबुद्धि सारी अशर्फियाँ ले गया है।' इसपर अधिकारी वडे विस्मित हुए और बोले कि 'प्रात'-काल हमलोग चलकर वृक्षसे पूछेंगे।' इसके बाद जमानत देकर दोनों भाई भी घर गये।

इधर दुष्टबुद्धिने अपनी सारी स्थिति अपने पिताको समझायी और उसे पर्याप्त धन देकर अपनी ओर मिला लिया और कहा कि तुम 'वृक्षके कोटरमें छिपकर बोलना।' वह रातमें ही जाकर उस वृक्षके कोटरमें बैठ गया। प्रात काल दोनों भाई व्यवहाराधिगतियोंके साथ उस स्थानपर गये। वहों उन्होंने पूछा कि 'अशर्फियोंको कौन ले गया है?' कोटरस्थ पिताने कहा—'वर्मबुद्धि।' इस असम्भव आश्वर्यकर घटनाको देख-सुनकर चतुर अधिकारियोंने सोचा कि अवश्य ही दुष्टबुद्धिने यहाँ किसीको छिपा रखा है। उन लोगोंने कोटरमें आग लगा दी। जब उसमेसे निकलकर उसका पिता कूदने लगा, तब पृथ्वीपर गिरकर वह मर गया। इसे देखकर राजपुरुषोंने सारा रहस्य जान लिया और धर्मबुद्धिको पाँच सौ अशर्फियों दिला दीं। धर्मबुद्धिका सत्कार भी किया और दुष्टबुद्धिके हाथ-पैर काटकर उसको निर्वासित कर दिया।—जा० श० (कथामत्तिसागर)

आसक्तिका अन्तर

एक नरेशकी श्रद्धा हो गयी एक महात्मापर। नरेशने संतकी सेवाका महत्त्व सुना था। वे राजा थे, अत अपने दृग्से वे सेवा करनेमें लग गये। अपने राजभवनके

समान भवन उन्होंने महात्माके लिये बनवा डिया। अपने उद्यान-जैसा उद्यान लगवा दिया। अपनी सरारियाँ-जैसी सरारियाँ, हाथी, घोड़े आदि रख दिये उनकी

सेवामें। एक रानी तो वे महात्माके लिये नहीं डिलगा सके, परंतु सेवक, अव्याय, वस्तु एवं दूसरी सब सुख-सामग्री उन्होंने महात्माके लिये भी बैसी ही जुठा दी जैसी उनके पास थी।

एक दिन नरेश महात्माके साथ घूमने निकले। उन्होंने पूछ लिया—“भगवन्। अब आपमें और मुझमें अन्तर क्या रहा है?”

संतने समझ लिया कि राजा वाहरी त्यागको महत्त्व देकर यह प्रश्न कर रहा है, किंतु प्रश्नका उत्तर न देकर बोले—“तनिक आगे चलो, फिर बनाऊँगा।”

‘भगवन्। किननी दूर चलेगे। अब लौटना चाहिये। हमलोग नगरसे दूर निकल आये हैं।’ राजाने प्रार्थना की, क्योंकि महात्मा तो चले ही जा रहे थे। वे रुकनेका नाम ही नहीं लेते थे और राजा यक्कुके थे। उन्हे स्मरण आ रहा था आजका राज्यकार्य, जिसमें विलम्ब

करना हानिकर लगता था।

संतने कहा—“अब लौटकर ही क्या करना है? मेरी इच्छा तो लौटनेकी है नहीं। चलो, बनमें चलें। वहों भगवान्‌का भजन करेगे। सुख तो बहुत दिन भोग चुके।”

राजाने ध्वराकर हाय जोडे—“भगवन्! मेरे खी है, पुत्र हैं और राज्यकी भी मैंने कोई व्यवस्था नहीं की है। वनमें रहने-जैसा साहस भी अभी मुझमें नहीं है। मैं इस प्रकार कैसे चल सकता हूँ!”

सत हँसे—“राजन्। मुझमें और तुममें यही अन्तर है। वाहरसे एक-जैसा व्यवहार रहने हुए भी हृदयका अन्तर ही मुख्य अन्तर होता है। भोजोमें जो आसक्त है, वह वनमें रहकर भी संसारी है और जो उनमें आसक्त नहीं, वह घरमें रहकर भी विरक्त ही है। अच्छा, अब तुम राजधानी पधारो।”—सु० मि०

अशार्फियोंसे धृणा

एक दिन एक सिंधी सज्जन किसी कामनासे सत मथुरादासजीको खोजता हुआ उनके पास आया और अशार्फियोंकी थैली सामने रखकर अपनी कामना-पूर्तिके लिये प्रार्थना करने लगा। संतने उसे समझाया, पर वह जब नहीं माना, तब सतजीने पूछा—“अच्छा, एक वानका उत्तर दो कि यदि तुम्हारी लड़कीकी शादी हो, वारात दरवाजेपर पहुँचनेवाली हो, उस समय यदि कोई तुम्हारी रसोइमि, जिसको तुमने लिपवा-पुतवाकर साफरखखा हो, अंदर चूल्हेमें जाकर टट्टी कर दे तो तुम क्या करोगे?”

सिंधीने कहा—“महाराज! ढंडे मार-मारकर हड्डी-प्रसली

तोड़ दूँगा।”

संत बोले—“मैया। इसी प्रकार हम अपने हृदयको साफ करके भगवान्‌की बाट देख रहे हैं, वे मिलनेवाले हैं। इसीसे हम सब कुछ छोड़कर निर्जन गङ्गातटपर एकान्मे उनकी पूजाके लिये चौका लगाकर बैठे हैं। तू यह अशार्फियोंकी थैलीरूप उसमें टट्टी करना चाहता है, वता तेरे साथ क्या वर्ताव करना चाहिये। तुझे धर्म नहीं आती।”

सिंधी समझ गया और प्रणाम करके वहाँसे चुपचाप चलता बना।

त्याग या बुद्धिमानी

एक वीतराग सतका दर्जन करने वहोंके नरेण पवारे। साधु कौपीन लगाये भूमिमें ही अलमस्तु पड़े थे। नरेशने पृथ्वीपर मस्तक रखकर साधुके चरणोंमें प्रणाम किया और दोनों हाय जोड़कर नम्रतापूर्वक खड़े हो गये। साधु बोले—“राजन्। आप मेरे-जैसे कगालका

इतना सम्मान क्यों करते हैं?”

राजाने उत्तर दिया—“भगवन्। आप त्यागी हैं और त्यागी पुरुष ही समाजमें सबसे अधिक आदरके योग्य हैं।”

साधु तो झटपट खड़े हो गये, हाथ जोड़कर उन्होंने

राजाको प्रणाम किया और बोले—‘राजन् ! क्षमा करें । स्थागिका ही सम्मान योग्य है तो मुझे आपका सम्मान करना चाहिये था । सबसे बड़े त्यारी तो आप ही हैं ।’

राजाने पूछा—‘भगवन् । मैं कैमे त्यारी हो गया ?’

साथु बोले—‘जो योडे लाभका त्याग बडे लाभके लिये करे वह त्यारी है या जो बडे लाभका त्याग करके छोटी बस्तुमें सनोंप कर ले वह त्यारी कहा जायगा ?’

राजा—‘भगवन् । जो बडे लाभके द्विये छोटे लाभका त्याग करे वह बुद्धिमान् हैं, किंतु त्यारी नहीं हैं ।

जो बडे लाभका त्याग करके अन्यमें सतुष्ट रहे वही त्यारी है ।’

‘तो राजन् । मैं केवल बुद्धिमान् हूँ और तुम त्यारी हो ।’ साथुने समझाया—‘क्योंकि मैंने तो अल्प कालतक रहनेवाले, दु खसे भरे सासारिक भोगोंका त्याग आकृत, अनन्त आनन्दकी प्राप्तिके लिये किया है, किंतु तुम उस अनन्त आनन्दस्वरूप परमात्माको त्यागकर जगत्के वृणास्त्र, कलेशपूर्ण तुच्छ भोगोंको ही अपनाकर सतुष्ट हो ।’ —सु० सिं०

गर्व किसपर ?

बाढ़गाह सनके पास उमडेग लेने पहुँचे थे । सतने पूछा—‘तू रेगिस्तानमें भटक जाय, प्यासके मारे मर रहा हो और उस बत्त सडे नालेका एक प्याला पानी लेकर कोई तेरे पास आका कहे—‘इस प्यालेभर पानीका मूल्य तेरा आधा गज्य है ।’

‘मैं तुरंत वह पानी ले लूँगा ।’ बाढ़गाहने इस्टसे उत्तर दिया । साथुने किर पूछा—‘यह सडा पानी पेटमें पहुँचकर गेग उम्पन्न कर दे । न् पीड़ामें छग्पटाने लगे । मरणासन हो जाय और तब एक हक्कीम पहुँचकर

कहे—‘अपना बाकी आधा राज्य दे दो तो तुम्हें ठीक कर सकता हूँ ।’

बाढ़गाह बोले—‘इसमें पूछनेकी कोई बान ही नहीं । मैं उसे बाकी आधा राज्य दे दूँगा । जीवन ही नहीं रहेगा तो गज्य किस काम आयेगा ।’

सतने समझाया—‘तब त् बाढ़गाहतका घमड किसपर कहता है ? एक प्याले सडे पानी और उसपे उपन गिकारको दूर करनेके मूल्यमें जो त्रिया जा सके, उस राज्यपर तेग गर्व है ।’ —सु० सिं०

अनधिकारी राजा

एक भिक्षुक अचानक गजा हो गया था । उस देशके सनानहीन नरेशने धोयणा की थी कि उनकी मृत्युके पश्चात् जो पहिला व्यक्ति नगद्वारमें प्रवेश करे, उसे सिंहासन दे दिया जाय । भाग्यवत् नगद्वारमें प्रवेश करनेवाला पहिला व्यक्ति वह भिखारी था । मन्त्रियोंने उसे राजतिलक कर दिया ।

भिक्षुक क्या जाने राजप्रबन्ध । गजमेनक सच्छन्द व्यवहार करने लगे । अश्रीनस्थ सामन्तोंने कर देना बड़ कर दिया । प्रजा उम्हीडित होने लगी गजमेनकोद्वाग । मन्त्री मनमानी करने लगे । नरेश कुछ करता भी तो अनुभवहीन होनेके कारण परिणाम उल्टा निकलता ।

उसके विरुद्ध राज्यमें असनोप बढ़ता जाता था । स्थय वह अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा था ।

धूमते हुए उसका एक पुराना मित्र उस नगरमें आया । राजासे उसने मिलनेकी इच्छा प्रकट की । एकान्तमें राजा उससे मिला । मित्रने कहा—‘आपके सौभाग्यपर मैं बर्वाई देने आया हूँ ।’

राजाने कहा—‘मेरे हुर्भाग्यपर रोओ और भगवान्से प्रार्थना करो कि मैं इस विपत्तिसे श्रीब्रह्म छृट जाऊँ । जब मैं भिक्षुक था तो मिलामें जो भी रुखी-सूखी रोटी मिलती थी उसे खाकर निञ्चन्त रहता था । परतु आजकल तो अनेक चिन्ताओंके कारण मैं सभ दुखी रहता हूँ । मुझे ठीक निद्रातक नहीं आती ।’ —सु० सिं०

सुकुमार वीर

महाभारतके युद्धका नवम दिन था । आज भीष्मपितामह पूरी उत्तेजनामे थे । उनका धनुष आज प्रलयकी वर्षा कर रहा था । पाण्डवदलमे क्षण-क्षणपर रथ, अश्व, गज और योगा कट-कटकर गिर रहे थे । हाहाकार मच गया था पाण्डवदलमे । बड़े-बड़े त्रिख्यात महारथी भी भाग रहे थे । व्यूह छिन-मिन हो चुका था । सैनिकोंको भागनेको स्थान नहीं मिल रहा था । श्रीकृष्णचन्द्रने यह अवस्था देखकर अर्जुनको उत्साहित किया । पितामहपर वाण-वर्षा करनेकी इच्छा अर्जुनमे नहीं थी; किंतु अपने परम सखा श्रीकृष्णकी प्रेरणासे वे युद्धके लिये उद्यत हुए । वासुदेवने उनका रथ पितामहके सम्मुख पहुँचाया । पाण्डव-सेनाने देखा कि अर्जुन अब पितामहसे युद्ध करेंगे तो उसे कुछ आश्वासन मिला ।

अपने सम्मुख अर्जुनके नन्दिष्वोप रथको देखकर भीष्मका उत्साह और द्विगुणित हो उठा । उनके धनुषकी प्रत्यञ्चाका घोष बढ़ गया और बढ़ गयी उनकी वाण-वृष्टि । अर्जुनने दो बार उनका धनुष काट दिया, किंतु इससे पितामहका उत्साह शिथिल नहीं हुआ । उनके पैने बाण कवच फोड़कर अर्जुन और श्रीकृष्णके शरीरको विद्ध करते जा रहे थे । दोनोंके शरीरोंसे रक्तके झरने वह रहे थे ।

श्रीकृष्णचन्द्रने देखा कि उनका सखा अर्जुन मन लगाकर युद्ध नहीं कर रहा है । उन जनार्दनको अपने जनोंमे प्रमाद सह नहीं है । आज अर्जुन पितामहके प्रति पूज्य भाव होनेके कारण युद्धभूमिमे क्षत्रियके उपयुक्त कर्तव्यके प्रति जागरूकताका परिचय नहीं दे रहे थे । वे शिथिल हो रहे थे कर्तव्यके प्रति ! मधुसूदन यह सह नहीं सके । उन्होंने घोड़ोकी रस्मि छोड़ दी और चाबुक ही लिये दौड़ पड़े भीष्मकी ओर ।

रक्त और लोयोसे पटी युद्धभूमि, स्थान-स्थानपर घड़े बाण, खड़, खण्डित धनुष और उसमे दौड़ते जा

रहे थे कमललोचन वासुदेव ! उनके चरण रक्तरे सन गये थे । उनके शरीरसे रक्त प्रवाहित हो रहा था । उनके नेत्र अरुण हो उठे थे । उनके अवर फड़क रहे थे । उनके उठे हाथमे चाबुककी रस्ती धूम रही थी । दौड़े जा रहे थे वे भीष्मकी ओर ।

युद्धके प्रारम्भमे ही दुर्योधनने आचार्य द्रोण तथा अपने सभी महारथियोंको आदेश दिया था—‘भीष्म-मेवाभिरक्षन्तु भवन्त् । सर्व एव हि’ ‘आप सब लोग केवल भीष्मकी सावधानीसे रक्षा करें ।’

वहाँ द्रोणाचार्य थे, अश्वत्थामा थे, शल्य थे, दु शासनके साथ दुर्योधन था अपने सभी भाइयोंके सङ्ग और उसके पक्षके सभी महारथी थे; किंतु सब हाथ उठाकर खियोंकी भौति चिल्ला रहे थे—‘भीष्म मारे गये । भीष्म अब मारे गये ।’

श्रीकृष्ण—सौकुमार्यकी मूर्ति श्रीकृष्ण और उनके पास कोई शश नहीं । वे चक्र नहीं, केवल चाबुक लेकर दौड़ रहे थे । परंतु जिसका संकल्प कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंको पलमे ध्वस्त कर देता है, उसके हाथमे चक्र हो या चाबुक, कौरव-पक्षमे ऐसा मूर्ख कोई नहीं था जो आशा करे कि रोषमे भरे मधुसूदनके सम्मुख वह आधे पल रुक सकेगा । कराल काल भी जहाँ कॉप उठे, वहाँ मरने कौन कूदे । धरी रही राजाजा, भूल गया शौर्य, पूरा कौरवदल हाथ उठाये पुकार रहा था—‘भीष्म मारे गये । अब मारे गये भीष्म !’

भीष्म तो अपने रथमे बैठे स्तुति कर रहे थे—‘पधारो मधुसूदन ! अपने हाथों मारकर भीष्मको आज कृतार्थ कर दो माधव !’ परंतु अर्जुन कूद पड़े अपने रथसे । दौड़कर पीछेसे उन्होंने अपने सखा के चरण पकड़ लिये और कहा—‘मुझे क्षमा करो वासुदेव ! मैं अब प्रमाद नहीं करूँगा । तुम अपनी प्रतिज्ञा मत तोड़ो ।’

किससे माँगूँ ?

वादगाहकी सरारी निकली थी। मार्गफ़ि समीप वृक्षके नीचे एक अन्मस्त फ़कीर लेटे थे अपनी मस्तीमें। वादगाह धार्मिक थे, श्रद्धालु थे, फ़कीरपर दृष्टि गयी, सरारी घोड़का उनर पड़े और पैंटल अंजले फ़कीरके पास पहुँचे। प्रणाम करके बोले—‘आपको कुछ आवश्यकता हो तो माँग दीजिये।’

फ़कीरने कहा—‘तु अच्छा आया। ये मस्तिष्याँ मुझे

तग कर रही हैं। इन्हें भगा दे यहाँसे।’

वादगाह बोले—‘मस्तिष्याँ तो मेरे बगमे नहीं हैं, किंतु आप चलें तो ऐसा स्थान दिया जा सकता है जहाँ मस्तिष्याँ।’

बीचमे ही फ़कीर बोले—‘वस, वस ! तु जा अपना काम कर। मैं किससे माँगूँ, तुच्छ मस्तिष्योंपर भी जिसका अधिकार नहीं, उससे ॥

सच्चा त्याग और क्षमा

उत्तर प्रदेशमें गजवाटके पास किसी गाँवमें एक पिंडान् पण्डितजी रहते थे। वर्षमें उनकी विदुयी पत्नी थी। पण्डितजी एक बार बीमार पड़े। एक दिन वे मरणासन्न हो गये। उनको बोर निपान था, चेनना नहीं थी। बोली बढ़ थी। पिंडुयी पत्नीने चाहा कि ‘मण्णके पहले इनको सन्यास ग्रहण कर लेना चाहिये। ब्राह्मणके लिये यही आनन्दविद्यान है।’ भाग्यमें एक वृद्ध सन्यासी रस्तेमें चले जा रहे थे। ब्राह्मणीने उनको बुलाया और सारी परिस्थिति समझाकर पतिको उनमें सन्यासकी दीक्षा दिलवा दी। विरक्त सन्यासी चले गये।

प्राच्यवर्षी वात, पण्डितजी अच्छे हो गये। ब्राह्मणी उनकी सब मेजा करती पर उनका स्वर्ग नहीं करती। पण्डितजीको यह नयी वात मालूम हुई। उन्होंने एक दिन स्वर्ग न करनेका कारण पूछा। उसने कहा—‘महाराज ! आप सन्यासी हो गये।’ और फिर उसने वे सारी वातें सुना दीं कि कैसे सन्यासी हुए थे। पण्डितजी बोले—‘फिर, सन्यासीको घरमें नहीं रहना चाहिये।’ धर्मगीता विदुयी पत्नीने कहा—‘महाराज ! उचित तो यही है।’ उसी क्षण पण्डितजी कापाय वज्र धारणकर घरसे निकल गये।

x

x

x

बींबों बाड हरद्वारमें कुम्भका मेला था। पण्डितजीके गाँवमें भी लोग कुम्भकानके लिये गये थे। उनमें पण्डितजीकी पत्नी भी थी। पण्डितजी सन्यास लेकर ऋषिकेशमें रहने लगे थे। सब्जे त्यागी थे। पिंडान् तो थे ही। सन्यासियोंमें उनके त्याग और पण्डित्यकी प्रख्याति हो गयी। बड़े-बड़े सन्यासी उनसे पढ़ने लगे। हरद्वार-ऋषिकेशके यात्री उनके दर्जन ब्रिना लौटनेमें यात्राको निष्कल समझने लगे। गाँवके लोगोंके साथ पण्डितजीकी पत्नी भी उनके दर्जनार्थ गयी। उसे पता नहीं था, ये मेरे पूर्वाश्रमके पति हैं। वह वहाँ जाकर बैठी। खामीजीका दृष्टि उसकी ओर गयी। उन्होंने पहचान लिया और कहा—‘तु कव आ गयी ?’ विदुयी ब्राह्मणीने कहा—‘खामीजी ! अब भी आपको मेरा स्मरण है ?’ खामीजीको मानो सावधानीका कोडा लगा। पर उन्हें इससे बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि वे अपनी भल्को पकड़ सके। उन्होंने उसी क्षणसे किसीको आँख उठाकर न देखनेका तथा सदा मौन रहनेका प्रण कर लिया और जीवनभर उसे निभाया।

× × ×

एक समय वे किसी गाँवके समीप गङ्गातटपर ध्यान कर रहे थे। गाँवके कुछ गरारती मुसलमान छोकरोंने यह देखनेके लिये कि देखें इनका ध्यान दूटता है या

नहीं, उनके पीठपर कुल्हाड़ीसे धाव कर दिये। महात्माजी ज्यों-केन्त्रों पापाण-प्रतिमाकी तरह बैठे रहे। पीठसे खून वहने लगा। दूसरे कुछ लड़कोंने यह देखा और वे गॉवके जर्मीदारको खबर देने गये। वह जर्मीदार स्थामीजीका बड़ा भक्त था। मुसलमान छोकरे भाग गये।

जर्मीदार आये, उन्होंने उन छोकरोंको पकड़वाकर बुलाया। उसने कहा—‘इन्हें खूब मार मारो।’ यह सुनते ही महात्माजी खड़े हो गये और हाथ ऊपर उठाकर मारनेसे मने कर दिया। जर्मीदार चुप हो रहे। लड़कोंको इगारेसे विदा कर दिया। तबसे जीवनभर उनका वह हाथ उठा ही रहा।

साधुवेष बनाकर धोखा देना बड़ा पाप है

एक राजाको कोढ़की वीमारी हो गयी थी। वैद्योंने बताया कि मानसरोवरसे हस पकड़वाकर मँगाये जायें और उनके पित्तसे दवा बने तो निश्चय ही राजाका रोग नष्ट हो जाय। राजाके आदेशसे व्याध भेजे गये। व्याधोंको देखते ही हंस उड़ गये। तब व्याधोंने एक कौशल रचा। उन्होंने गेरुआ बछ पहन लिये, नकली जटा लग ली, कमण्डलु ले लिये, भस्मके त्रिपुण्ड्र लग लिये, गल्मे माला पहन ली। उनके इस संन्यासी वेपको देखकर हंस नहीं उडे। व्याध हसोंको पकड़कर राजाके पास ले आये। राजाने जब व्याधोंके द्वारा हसोंके

पकड़े जानेका तरीका सुना, तब उसके मनमें विचार आया कि हसोंने संन्यासी वेपका विश्वास करके व्याधोंका भय नहीं किया। वे बड़े सरल हैं। इस प्रकार धोखा देकर उन्हे पकड़ना और मारना सर्वथा अनुचित है। बड़ा पाप है। यह सोचकर राजाने उनको छोड़ दिया। इस पुण्यके कारण राजा एक दूसरे वैद्यकी निर्दोष दवासे रोगमुक्त हो गया। व्याधोंने भी सोचा कि जब कपटी साधुके वेषसे बनके पश्चु-पक्षीतक विश्वास कर लेते हैं, तब असली साधु होनेपर तो सभी विश्वास करेंगे। इससे वे भी पक्षीवधका नृशस काम छोड़कर असली त्यागी बन गये।

दयासे बादशाही

एक व्यक्ति शिकारके लिये जगलमे गया। वहाँ उसने एक हरिनीको देखा। उसके साथ छोटा बच्चा था। गिकारी दौड़ा, हरिनी तो डरकर जगलमे छिप गयी। बच्चा पकड़ा गया। शिकारी बच्चेको लेकर चला तब हरिनी भी निकल आयी और बच्चेके स्नेहवश वह भी पीछे-पीछे चलने लगी। शिकारीने कुछ दूर आनेके बाद पीछेकी ओर मुड़कर देखा। हरिनीकी ओर्खोंसे आँसुओंकी धारा वह रही थी और वह पीछे-पीछे चली आ

रही थी। शिकारी अपने गॉवके समीप आ गया। तब भी हरिनी उसी प्रकार रोती चली आ रही थी। उसको दया आ गयी। उसने बच्चेको छोड़ दिया। बच्चा छूटते ही छलोंग मारकर मौके पास पहुँचा। हरिनी मूक आगीर्वाद देती हुई बच्चेको लेकर लौट गयी। रातको शिकारीने खम्मे देखा—कोई कह रहा है, ‘इस दयाके फलस्वरूप तुम्हे बादशाही मिलेगी।’ वही आगे चलकर गजनीका बादशाह हुआ।

प्राणी-सेवासे ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति

एक महात्मा बड़ी सुन्दर वेदान्तकी कथा कहा करते। बहुत नर-नारी सुनने जाते। उनमें एक गरीब राजपूत

भी था, जो आश्रमके समीप एक कुर्ँैके पास खोमचा-लगाकर उबाले हुए चने-मठर बेचा करता था। वह बड़े

ध्यानसे कथा सुनता । उसने एक दिन महात्माजीसे कहा—‘महाराज ! मैं इतने दिनोंसे मन लगाकर कथा सुनता हूँ, मैंने अन्ध-व्यतिरेकके द्वारा आत्माके स्वरूप-को भी समझ लिया है । परतु मुझे जो आत्मानन्द प्राप्त होना चाहिये, वह नहीं हो रहा है । इसका क्या कारण है ?’ महात्माने कहा—‘कोई प्रतिबन्ध होगा, उसके हटनेपर आत्मानन्दकी प्राप्ति होगी ।’ खोमचेवाला चुप हो गया ।

एक दिन वह कुएँके पास छायामें खोमचा लगाये वैठा था । गरमीके दिन थे । कड़ाकेकी धूप थी । गरम लू चल रही थी । दोपहरका समय था । इतनेमें एक चमार लकड़ियोंका बोझा उठाये वहाँ आया । वह पसीनेमें तर था । उसकी आँखें लाल हो रही थीं । वहुत यका था । कुएँके पास आते ही वह व्याकुल होकर गिर पड़ा और बैहोश हो गया । खोमचेवाले

राजपूतने तुरत उठकर उसको उठाकर छायामें सुलाया । कुछ देर अपनी चदरसे हवा की, फिर शरबत बनाकर थोड़ा-योड़ा उसके मुँहमें डालना शुरू किया । यों करते-करते एक बढ़ा बीत गया । तब उसने आँखें खोलीं । खोमचेवाले वडे प्यारसे उसे दो मुट्ठी चने लिये और फिर ठड़ा पानी पिलाया । वह विलुप्त अच्छा हो गया । उसके रोम-रोमसे आशीष् निकल रही थी । उसने कुतन्त्राभरी आँखोंसे राजपूतकी ओर देखा और अपना रस्ता पकड़ा ।

इसी समय राजपूतको आत्मानन्दकी प्राप्ति हो गयी । मानो उसका हृदय ब्रह्मानन्दमय हो गया । उसने महात्माके पास जाकर अपनी स्थितिका वर्णन किया । महात्माने कहा—‘तुमने निष्कामभावसे एक प्राणीकी सेवा की, इससे तुम्हारा प्रतिबन्ध कट गया । साधक-मात्रको सर्वभूतहितैषी होना चाहिये ।’

मेहनतकी कमाई और उचित वितरणसे प्रसन्नता

एक राजा जगलके रस्ते कहीं जा रहा था । उसने देखा एक खेतमें एक जवान आदमी हल जौत रहा है और मस्तीमें झूमता हुआ ऊँचे खरसे कुछ गा रहा है । वह बड़ा ही प्रसन्न था । राजा वहाँ खड़ा होकर उसका गाना सुनने लगा । फिर राजाने उससे पूछा कि ‘भाई ! तुम वहुत प्रसन्न मालूम होते हो । बताओ—तुम औसत प्रतिदिन कितना कमाते हो ?’ उसने हँसते हुए कहा—‘मैं खुद मेहनत करके आठ आने रोज कमाता हूँ और उनको चार हिस्सोंमें बाँट देता हूँ । मैं न इससे अधिक कमाना चाहता हूँ और शेष बचे हुए दो आनेमें अपना पेट भरता हूँ ।’

कहानीके द्वारा वैराग्य

एक दासी नित्यप्रति महारानीकी सेज बिछाया किछीयी । गरमीके दिन थे । नदी-किनारेके महलमें ठड़ी हवा आ रही थी । दासी थकी हुई थी, वह जरा

सेजपर लेट गयी । लेटते ही वेचारीको नीद आ गयी । कुछ देरमे महारानी आयी, उसने आते हीं जो दासीको अपनी सेजपर सोये देखा तो क्रोधमे आगव्वूला हो गयी और दासीको जगाया । दासी वेचारी डरके मारे कॉफने लगी । महारानीने उने कोडे लगाने शुरू किये । दो-चार कोडे लगे तबतक तो वह उदास रही और रोती रही । पीछे उसका मुख प्रसन्न हो गया और वह हँसने लगी । महारानीको बड़ा आश्र्वय हुआ; उसने प्रसन्नताका और हँसनेका कारण पूछा । तब दासीने कहा—‘महारानीजी ! कस्तूर माफ हो, मुझे इस बातपर हँसी आ गयी कि मैं

एक दिन थोड़ी-सी देरके लिये इस पलांपर सो गयी, जिससे मुझपर इतने बेभाव कोडे पड़े रहे हैं । ये महारानी रोज इसपर सोती हैं, इनपर पता नहीं किनने कोडे पड़ेंगे । तब भी ये समझ नहीं रही हैं और अपने भविष्यपर ध्यान न डेकर मुझे मार रही हैं । आपकी इस वेसमझीपर मुझे हँसी आयी ।’

एक नाईने किसी राजा साहबके तेल मलते-मलते यह कहानी कही और इसीसे उनको बैराग्य हो गया और वे राज छोड़कर घरसे निकल पडे ।

महत्व किसमें ?

किसी नरेशके मनमें तीन प्रश्न आये—१. प्रत्येक कार्यके करनेका महत्वपूर्ण समय कौन-सा ? २. महत्वका काम कौन-सा ? ३. सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति कौन ?

नरेशने अपने मन्त्रियोंसे पूछा, राजसभाके विद्वानोंसे पूछा; किंतु उन्हें किसीके उत्तरसे सतोप नहीं हुआ । वे अन्तमे नगरके बाहर बनमें कुटिया बनाकर रहनेवाले एक सतके समीप गये । सत उस समय फावड़ा लेकर फूलोंकी क्यारीकी मिट्टी खोद रहे थे । राजाने साधुको प्रणाम करके अपने प्रश्न उन्हें सुनाये, परतु साधुने कोई उत्तर नहीं दिया । वे चुपचाप अपने काममें लगे रहे ।

राजाने सोचा कि साधु वृद्ध हैं, यक गये हैं, वे स्वस्थ चित्तसे बैठें तो मेरे प्रभोंका उत्तर दे सकेंगे । यह विचार करके उन्होंने साधुके हाथसे फावड़ा ले लिया और स्थयं मिट्टी खोड़ने लगे । जब साधु फावड़ा देकर अलग बैठ गये, तब नरेशने उनसे अपने प्रभोंका उत्तर देनेकी प्रार्थना की । साधु बोले—‘वहीं कोई व्यक्ति दौड़ता आ रहा है । पहले हमलोग देखें कि वह क्या चाहता है ।’

सचमुच एक मनुष्य दौड़ता आ रहा था । वह अत्यन्त भयभीत लगता था । उसके शरीरपर शर्कोंके धाव थे

और उनसे रक्त वह रहा था । सभीप पहुँचनेसे पहले ही वह भूमिपर गिर पड़ा और मूर्छित हो गया । साधुके साथ राजा भी दौड़कर उसके पास गये । जल लाकर उन्होंने उसके धाव धोये । अपनी पगड़ी फाइकर उसके धावोंपर पट्टी बौधी । इतनेमें उस व्यक्तिकी मूर्छा दूर हुई, राजाको अपनी शुश्रूपामे लगे देखकर उसने उनके पैर पकड़ लिये और रोकर बोला—‘मेरा अपराध क्षमा करें ।’

नरेशने आश्र्वयपूर्वक कहा—‘भाई ! मैं तो तुम्हें पहचानता तक नहीं ।’

उस व्यक्तिने बताया—‘आपने मुझे कभी देखा नहीं है; किंतु एक युद्धमे मेरा भाई आपके हाथों मारा गया है । मैं तभीसे आपको मारकर भाईका बदला लेनेका अवसर छूँड़ रहा था । आज आपको बनकी ओर आते देखकर मैं छिपकर आपको मार डालने आया था । परतु आपके सैनिकोंने मुझे देख लिया । वे मुझपर एक साथ टूट पड़े । उनसे किसी प्रकार प्राण बचाकर मैं यहाँ आया । महाराज ! आज मुझे पता लगा कि आप किनने दयालु हैं । आपने अपनी पगड़ी फाइकर मुझ-जैसे शत्रुके धाव बौधे और मेरी सेवा की । आप मेरे अपराध क्षमा करें । अब मैं आजीवन आपका सेवक बना रहूँगा ।’

उस व्यक्तिको नगरमें भेजनेका प्रवन्ध करके राजाने साधुसे अपने प्रश्नोंका उत्तर पूछा तो साधु बोले—‘राजन् ! आपको उत्तर तो मिल गया । सबसे महत्त्वपूर्ण समय वह था, जब आप मेरी फूलोंकी क्यारी खोद रहे थे, क्योंकि यदि आप उस समय क्यारी न खोदकर लैट जाते तो यह व्यक्ति आपपर आकर्षण कर देता । सबसे महत्त्वपूर्ण काम था इस व्यक्तिकी सेवा करना, क्योंकि यदि सेवा करके आप इसका जीवन न बचा लेने तो यह शत्रुता चित्तमें लेफर मरता और पता नहीं इसकी तया आपकी शत्रुता किनने जन्मोतक चलती रहती ।

और सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति मैं हूँ, जिसके द्वारा ज्ञान्ति पाकर तुम लौटोगे ।’

नरेन भस्तक छुकाया । साधु बोले—‘ठीक न समझे हो तो फिर समझ लो कि सबसे महत्त्वपूर्ण समय ‘वर्तमान समय’ है, उसका उत्तमसे उत्तम उपयोग करो । सबसे महत्त्वपूर्ण वह काम है जो वर्तमानमें तुम्हारे सामने है । उसे पूरी सावधानीसे सम्पन्न करो । सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति वह है जो वर्तमानमें तुम्हारे सम्मुख है । उसके साथ सम्यक् रीतिसे व्यवहार करो ।—सु० सिं०

संसारका स्वरूप

एक युवक बचपनसे एक महात्माके पास आया-जाया करता था । सन्सारके प्रभावसे भजनमें भी उसका चित्त लगता था । महात्माने देखा कि वह अधिकारी है, केवल मोहब्बत परिवारमें आसक्त हो रहा है । उन्होंने उसे समझाया—‘वेटा ! माता-पिताकी सेवा और पत्नीका पालन-पोषण तो कर्तव्य है । उसे धर्म समझकर करना चाहिये । परतु मोहब्बत उनमें आसक्त होना उचित नहीं । भगवान् ही अपने हैं । ससारमें दूसरा कोई किसीका नहीं है ।’

युवकने कहा—‘भगवन् ! आपकी यह बात मेरी समझमें नहीं आती । मेरे माता-पिता मुझे इतना स्वेह करते हैं कि एक दिन घर न जाऊँ तो उनकी भूख-प्यास तथा नींद सब बढ़ हो जाती है । मेरी पतिव्रता पत्नीकी तो मैं क्या कहूँ । मेरे बिना तीनमेंसे कोई जीवित नहीं रह सकता ।’

महात्माने उसे परीक्षा करके देखनेको कहा और युक्ति बतलायी । उस दिन घर जाकर वह सीधा पलगपर लेट गया । किसीकी बातका कुछ उत्तर नहीं दिया उसने । थोड़ी देरमें हाथ-पैर कड़े करके प्राणवायु मस्तक-में चढ़ाकर वह निश्चेष्ट हो गया । धरमें रोनापीटना मच

गया उसे मृत समझकर । पास-यड़ोसके लोग एकत्र हो गये ।

इसी समय महात्माजी पधारे । उन्होंने कहा—‘मैं इसे जीवित कर सकता हूँ । एक कटोरी पानी चाहिये ।’

घरके लोग तो साधुके चरणोंमें लोटने लगे । कटोरी-का पानी लेकर महात्माजीने कुछ मन्त्र पढ़े और युवकके चारों ओर धुमाया । अब वे बोले—‘इस जलको कोई पी जाय । जल पीनेवाला मर जायगा और युवक जीवित हो जायगा ।’

मेरे कौन ? सब एक दूसरेका मुख देखने लगे । पड़ोसी, मित्र आदि धीरे-धीरे खिसक गये । साधुने युवकके पिताकी ओर देखा तो वे बोले—‘मैं प्रसन्नतासे जल पी लेता, किंतु अभी कुछ आवश्यक कार्य रह गये हैं । उन्हें निवाटा न हूँ तो इसे बहुत क्लेंग होगा । मेरी ज्ञी ।’

परतु बुद्धिया बीचमें ही अँख निकालकर बोली—‘वूढ़े ! तू मेरे बिना रह सकेगा ? और देखता नहीं कि वह किननी बच्ची है । वह अभी घर सम्हाल सकती है ।’

‘देवि ! तुम तो पतिव्रता हो । पतिके बिना वैसे भी

तुम जीवित रहना नहीं चाहोगी ।' साधुने शुक्रकी पत्नी-
की ओर देखा ।

उस नारीने उत्तर दिया—'भगवन् ! मैं न रही तो
जीवित होकर भी ये बहुत दुखी होंगे और मेरे माता-
पिता तो मेरी मृत्युका समाचार पाते ही मर जायेंगे ।
उनके और कोई संतान नहीं है । विपत्तिके दिन मैं
उनके पास रहकर काढ़गी तो उनको कुछ तो धैर्य
रहेगा ।'

'तब मैं पी लूँ यह पानी ॥' साधुने पूछा ।

अब तो सभी एक साथ बोल उठे—'आप धन्य हैं ।
महात्माओंका तो जीवन ही परोपकारके लिये होता है ।
आप कृपा करे । आप तो मुक्तात्मा है । आपके लिये
तो जीवन-मरण एक-से हैं ।'

शुक्रको अब और कुछ देखना-सुनना नहीं था ।
उसने प्राणायास समाप्त कर दिया । और बोल उठा—
'भगवन् ! आप पानी पिये, यह आवश्यक नहीं है ।
मुझे आपने सचमुच आज जीवन दे दिया है—प्रदुष्ड
जीवन ।' —सु० सिं०

अभीसे अभ्यास होना अच्छा

एक सेठजीने अन्नसत्र खोल रखा था । दानकी
भावना तो कम थी, मुख्य भावना तो थी कि समाज उन्हे
दानवीर समझे, उनकी प्रगति करे । उनके प्रशसक
लोग कम थे भी नहीं । सेठजी गल्लेका थोक व्यापार
करते थे । अन्नके कोठरोंमें वर्षके अन्तमें जो धुना-सड़ा
अन्न बिकनेसे वच रहता था, वह अन्नसत्रके लिये दे
दिया जाता था । प्रायः सड़ी ज्वारकी रोटी ही सेठजीके
अन्न-क्षेत्रमें भूखोंको प्राप्त होती थी ।

सेठजीके पुत्रका विवाह हुआ । पुत्रवधू घर आयी ।
वह सुशीला, धर्मज्ञ और विचारशीला थी । अपने श्वशुर-
का व्यवहार देखकर उसे दुख हुआ । भोजन बनानेका
भार उसने खाय उठाया । पहिले ही दिन अन्न-क्षेत्रसे
सड़ी ज्वारका आटा मँगवाकर उसने एक रोटी बनायी ।
सेठजी भोजन करने वैठे थे । दूसरे भोजनके साथ

उनकी थालीमें वह रोटी भी पुत्रवधूने परोस दी । काली,
मोटी रोटी देखकर सेठजीने कुतूहलवश पहिला ग्रास
उसीका मुखमें डाला और थू-थू करके थूकते हुए बोले—
'बेटी ! घरमें आटा तो बहुत है । तूने रोटी बनानेके लिये
यह सड़ी ज्वारका आटा कहाँसे मँगाया ? क्या सूझी
तुझे ?'

पुत्रवधू बोली—'पिताजी ! आपके अन्न-क्षेत्रमें
इसी आटेकी रोटी भूखोंको दी जाती है । परलोकमें तो
वही मिलता है जो यहाँ दिया जाता है । वहाँ केवल
इसी आटेकी रोटीपर आपको रहना है । इसलिये मैंने
सोचा कि अभीसे इसे खानेका अभ्यास आपको हो जाय
धीरे-धीरे तो वहाँ कष्ट कम होगा ।'

कहना नहीं होगा कि अन्न-क्षेत्रका सड़ा आटा उसी
दिन फेकना दिया गया और वहाँ अच्छे आटेका
प्रबन्ध हुआ ।—सु० सिं०

स्वयं पालन करनेवाला ही उपदेश देनेका अधिकारी है

एक ब्राह्मणने अपने आठ वर्षके पुत्रको एक महात्माके
पास ले जाकर उनसे कहा—'महाराजजी ! यह लड़का
रोज चार पैसेका गुड़ खा जाता है और न दें तो लड़ाई-
झगड़ा करता है । कृपया आप कोई उपाय बनाइये ।'

महात्माने कहा—'एक पखवाड़ेके बाद इसको मेरे पास
लाना, तब उपाय बताऊँगा ।' ब्राह्मण पंद्रह दिनोंके
बाद बालकको लेकर फिर महात्माके पास पहुँचा । महात्माने
बच्चेका हाथ पकड़कर बड़े भीठे शब्दोंमें कहा—'बेटा !

देव, अब कभी गुड़ न खाना भना, और लड़ना भी मन ! इमरे बाड़ उमरी पीछपर थर्मरी टेकर तथा बड़े प्यासे उनके भार बान्दरांत करके माना माने उनको पिंडा किया । उनीं दिनमें बाल्कल गुड़ खाना और लड़ना बिल्कुल छोड़ दिया ।

एउटे दिनोंके बाड़ ब्राह्मणने महान्मार्के पास जाकर उसकी मूच्छना दी और बड़े आश्चर्ये पूछा—‘महाराज-जी ! आपके पक्ष बाग्ने उमड़नाने इतना जादूका काम किया कि एउटे कहा नहीं जाना, मिर आपने उसी दिन उपर्युक्त न देकर पढ़ा है दिनोंके बाड़ क्यों बुलाया ? महाराजजी ! आप उचित मनज्ञ तो उमका गहर्य ब्रतानेकी दृष्टा करें ।’ महान्माने हँसकर कहा—‘भाई ! जो मनुष्य व्यवह स्यमन्नियमका पाउन नहीं करता, वह दूसरोंको भगवन्नियमके उपर्युक्त देनेका अधिकार नहीं हो या स्त्री ?’

रखना । उसके उपर्युक्ते बछ ही नहीं रहता । मैं इस बच्चेकी तरह गुड़के लिये रोता और लड़ता तो नहीं था, परंतु मैं भोजनके साथ प्रनिदिन गुड़ खाया करता था । इस थाड़नके छोड़ देनेपर मनमें किननी इच्छा होती है, इस बातझी मैंने सब एक पखवाड़तक परीक्षा की और जब मैंग गुड़ न खानेका अन्यास दृढ़ हो गया, तब मैंने यह समझा कि अब मैं पूरे मनोव्रलके साथ दृढ़तापूर्वक तुम्हारे लड़कोंको गुड़ न खानेके लिये कहने-का अधिकारी हो गया हूँ ।’

महात्माकी बात सुनकर ब्राह्मण लजिन हो गया और उसने भी उस दिनमें गुड़ खाना छोड़ दिया । दृढ़ता, त्याग, सयम और तदनुकूल आचरण—ये चारों जहाँ एकत्र होने हैं, वहीं सफलता होती है ।

पुरुष या स्त्री ?

एक सातु नगरे बाहर कुटिलामें गहते थे । परंतु भिक्षा माँगने तो उहें नगरमें आना ही पड़ता था । मार्गमें एक वेश्याका पर पड़ता था । वेश्या उहें अपनी ओर आकर्पित करनेका प्रयत्न करके हार चुकी थी । इसमें प्राय नड़ प्रनिदिन उनमें पूछती—‘तुम पुरुष हो या स्त्री ?’

सातु उत्तर दें देने—‘एक दिन इसका उत्तर दूँगा ।’

वेश्याने इसका कुछ ओर अर्थ मनमें डिया था । वह प्रनिदिन उनके नगरमें आनेका मार्ग देखनी रहती थी । सदा उने यही उत्तर मिलता था । सदसा एक देन एक व्यक्तिने आकर समाचार दिया वेश्याको—‘महात्माजी तुम्हें कुत्तियापर बुला रहे हैं ।’

वेश्या वहाँ पहुँची । सातु बीमार थे, भूमिपर पड़े थे और अब उनके जीवनके कुछ क्षण ही ओप थे ।

उन्होंने वेश्यामें कहा—‘मैंने तुम्हें तुम्हारे प्रनवका उत्तर देनेका वचन दिया था, वह उत्तर आज दे रहा हूँ—मैं पुरुष हूँ ।’

वेश्या बोली—‘यह उत्तर तो आप कभी दे सकने थे ।’

सातुने कहा—‘क्वल पुरुषका शरीर मिलनेसे कोई पुरुष नहीं हो जाना । जो ससारके भोगोंमें आसक्त है, वह मायाके परतन्त्र है । परतन्त्र जीव मायाकी कठपुतली है तो स्त्री ही है । पुरुष एक ही है—मायाका सामी । उसमें एकात्मना प्राप्त करनेपर ही पुस्तक प्राप्त होता है । जीवन जवनक है, कोई नहीं कह सकता कि कव माया उमे नचा लेगा । परंतु अब मैं जा रहा हूँ । अब मैं कह सकता हूँ कि माया मेरा कुछ नहीं कर सकती । अब मैं समझता हूँ कि मैं पुरुष हूँ ।’—सु० सिं०

मेरा भी अनुकरण करनेवाले हैं

एक वहिरा मनुष्य नियमपूर्वक कथा सुनने जाया करता था। जब कथावाचकजीको पता लगा कि वह वहिरा है और कथाका एक गद्द नहीं सुन पाता, तब उन्होंने उसके कानके पास मुख ले जाकर पुकारकर पूछा—‘आपको तो कथा सुनायी पड़ती नहीं, फिर आप प्रतिदिन यहाँ क्यों आते हैं?’

वहिरा मनुष्य बोला—‘यहाँ भगवान्‌की कथा होती है। मैं उसे सुन पाऊँ या नहीं, अन्यत्र बैठनेसे यहाँके

पत्रिव्र वातामरणमे बैठनेका लाभ तो मुझे होता ही है। परंतु मुख्य वात तो यह है कि मेरा भी अनुकरण करनेवाले कुछ लोग हैं। मेरे बच्चे और सेवक, मेरे घरके दूसरे सदस्य मेरे आचरणसे ही प्रेरणा प्राप्त करते हैं। मैं कथामे इसीलिये नियमपूर्वक आता हूँ कि इससे उनके चित्तमे भगवत्कथाके प्रति रुचि, श्रद्धा, महत्त्ववृद्धि तथा उल्कण्ठा हो। तथा मैं आकर बैठता हूँ, इससे कथाके शब्दोंसे मेरे अङ्गोंका स्पर्श तो होता ही है।’—सु० सिं०

ईश्वर श्रद्धासे जाना जाता है

एक ब्राह्मणके दो पुत्र थे। दोनोंके विधिपूर्वक यज्ञोपतीतादि सभी सत्कार हुए थे। उनमें ब्राह्मणका बड़ा पुत्र तो यज्ञोपतीत संस्कारके पश्चात् गायत्रीजपमें लग गया। उसने अध्ययन बहुत कम किया; क्योंकि पिताकी मृत्युके पश्चात् घरका भार उसीपर आ पड़ा। परंतु ब्राह्मणका छोटा पुत्र प्रतिभाशाली था। वह अध्ययनके लिये काशी गया और वहाँ उसने कई वर्षतक अध्ययन किया। वेदोंका वेदाङ्गके साथ अध्ययन करके वह एक प्रतिष्ठित विद्वान् बन गया।

काशीमे एक वाहरके विद्वान् पधारे। काशीनरेशके समक्ष काशीके विद्वानोंसे उनका शास्त्रार्थ हुआ। वह ब्राह्मणकुमार भी उस शास्त्रार्थमे था। वाहरसे आया विद्वान् नाना तकोंसे प्रमाणित कर रहा था—‘ईश्वर नामकी कोई सत्ता नहीं है।’ काशीके विद्वानोंको उसका खण्डन करके ईश्वरकी सत्ता सिद्ध करना था। उस वाहरके विद्वान्‌से सर्वप्रथम शास्त्रार्थ ब्राह्मणकुमारको ही करना पड़ा, जिसमे ब्राह्मणकुमार हार गया। दुखी होकर तथा पराजयके अपमानसे लज्जित होकर वह उस सभासे तुरंत उठ गया और काशी छोड़कर घर लौट आया।

बड़े भाईने छोटे भाईको उदास देखकर पूछा—‘तुम इतने दुखी क्यों हो?’

छोटे भाईने अपने पराजयकी वात बतलायी। बड़े भाई बोले—‘इसमें दुखी होनेकी क्या वात है। जिसमे प्रतिभा अधिक है, वह कम प्रतिभावालेको अपने तकसे पराजित कर ही सकता है। परंतु जैसे कोई किसीको अखाड़ेमे पटक दे, इसीलिये पटकनेवालेकी वात सत्य नहीं मानी जाती, वैसे ही तर्कके द्वारा सत्यका निर्णय नहीं होता।’

छोटा भाई रोकर बोला—‘भैया। मुझे पराजयका इतना दुख नहीं है। मुझे दुख तो इस वातका है कि खय मुझे ईश्वरकी सत्तामे सदेह हो गया है। मैंने वेद, गाथ, पुराण आदि सब पढ़े हैं; किंतु मेरे मनका संतोष नहीं हो रहा है।’

बड़े भाईने छोटे भाईको जिङ्गिक दिया—‘सब शास्त्र-पुराण पढ़कर भी दूर्मूर्ख ही रहा। जो सत्य है, वह न तकसे जाना जाता और न पोथे पढ़नेसे। वह तो सत्य है, इसलिये उसे प्रत्यक्ष उपलब्ध किया जा सकता है। उसपर तथा उसे पानेके साधनपर श्रद्धा करके लग जानेसे

वह उपलब्ध हो जाता है। यज्ञोपवीत संस्कारके समय आचार्यने गायत्रीके सम्बन्धमें जो कुछ कहा था, उसे तू भूल गया? गायत्रीका जप क्यों नहीं करता?"
छोटे भाईने वडे भाईके चरण पकड़ लिये—'मेरे

गुरु आप ही हैं। मैं अब जप ही करूँगा।'

श्रद्धाके साथ संयमपूर्वक साधन चलने लगा और जहाँ ये दोनों हैं, साध्य अनुपलब्ध कैसे रह सकता है?
—सु० सिं०

वेषसे साधु साधु नहीं, गुणोंसे साधु साधु है

एक साधु प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर नदी-किनारे एक धोबीके कपड़े धोनेके पत्थरपर खड़े-खड़े ध्यान करने लगे। इतनेमें धोबी गधेपर कपड़े लादे वहाँ आया। उसने कपड़े उतारे और प्रतीक्षा करने लगा कि उसके पत्थरसे साधु हटें तो वह अपना काम प्रारम्भ करे। कुछ देर प्रतीक्षा करनेपर भी जब साधु हटे नहीं तब उसने प्रार्थना की—'महात्माजी! आप पत्थरसे उत्तरकर किनारे खड़े हों तो मैं अपने काममें लगूँ। मुझे देर हो रही है।'

साधुने धोबीकी बातपर कोई ध्यान नहीं दिया। धोबी कुछ देर और रुका रहा, उसने फिर प्रार्थना की और अन्तमें उक्ताहटके कारण उसने धीरेसे साधुका हाथ पकड़कर उन्हें पत्थरसे उतारनेकी चेष्टा की। एक धोबीके हाथ पकड़नेसे साधुको अपना अपमान जान पड़ा। उन्होंने उसे धक्का दे दिया।

धोबीकी श्रद्धा साधुका क्रोध देखकर समाप्त हो गयी। उसने भी साधुको धक्का देकर पत्थरसे हटा

दिया। अब तो साधु महाराज भिड़ गये धोबीसे। दोनोंमें गुल्यमगुल्य होने लगी। धोबी था बलवान्। उसने साधुको उठाकर पटक दिया और उनके ऊपर चढ़ बैठा।

नीचे दबे साधु प्रार्थना करने लगे—'मेरे आराध्य-देव! मैं इतनी श्रद्धा-भक्तिसे आपकी पूजा-आराधना तथा ध्यान करता हूँ, फिर भी आप मुझे इस धोबीसे छुड़ाते क्यों नहीं?"

साधुने उसी समय आकाशवाणी सुनी—'तुम्हारी बात ठीक है, हम छुड़ाना भी चाहते हैं; किंतु यही समझमें नहीं आता कि तुम दोनोंमें साधु कौन है और धोबी कौन है।'

इस आकाशवाणीको सुनकर साधुका गर्व नष्ट हो गया। धोबीसे उन्होंने क्षमा माँगी और उसी दिनसे सत्य, क्षमा, दया आदि साधुताके गुणोंको अपनाकर वे सच्चे साधु बन गये। —सु० सिं०

मैं किसीका कल्याण करूँ और उसे जान भी न पाऊँ

एक साधु थे। उनका जीवन इतना पवित्र तथा सदाचारपूर्ण था कि दिव्य आत्माएँ तथा देवदूत उनके दर्शनके लिये प्रायः आते रहते थे। साधु मुँहसे तो अधिक मोहक शब्दोंका प्रयोग नहीं करते थे, किंतु उनके कर्तव्य और उनकी सारी चेष्टाएँ पर-कल्याणके लिये ही होती थीं।

एक दिन एक देवदूतने उनके सम्बन्धमें भगवान्से प्रार्थना की, 'प्रभो! इसे कोई चमत्कारपूर्ण सिद्धिदी जाय।'

भगवान्ने कहा, 'ठीक तो है, तुम जैसा कहते हो वैसा ही होगा। पूछो, इसे मैं कौन-सी चमत्कारकी शक्ति प्रदान करूँ?'

देवदूतने साधुसे कहा—'क्या तुम्हें रोगियोंको रोगमुक्त करनेकी शक्ति दे दी जाय?'

साधुने इसे अस्वीकार कर दिया और इसी प्रकार वे देवदूतके सभी अन्य प्रस्तावोंको भी अस्वीकार करते गये।

‘पर हमलोगोंकी यह वलवती इच्छा है कि तुम्हें कोई परमाञ्चर्यपूर्ण चमलकारमयी सिद्धि दी ही जाय।’ देवदूतने कहा।

‘तब ऐसा करो कि मैं जिसके बगलसे गुजरूँ, इसका, उसको बिना पता लगे ही उसका परम श्रेय—कल्याण हो जाय, साय ही मैं भी इसे न जान पाऊँ कि मुझसे किसका क्या कल्याण हुआ।’

देवदूतने उसकी आयाम ही यह अद्भुत गति दिला दी। वह जिस दुखी या रोगप्रस्त चर, अचर प्राणियोपर पड़ जानी, उसके सारे त्रयताप नष्ट हो जाते और वह परम सुखी हो जाता। पर न तो कोई उसे धन्यवाद दे पाता और न समझ ही पाता कि उसका यह कल्याण कैसे हो गया, यह श्रेय उसे कैसे मिला?

—जा० श०

अनन्य निष्ठा

एक भगवद्भक्त कहीं यात्रा करने निकले थे। पर्वतकी एक गुफाके सम्मुख उन्होंने बहुत बड़ी भीड़ देखी। पता लगा कि गुफामें ऐसे संत रहते हैं जो वर्षमें केवल एक दिन बाहर निकलते हैं। वे जिसे स्पर्श कर देते हैं, उसके सब रोग दूर हो जाते हैं। आज उनके बाहर निकलनेका दिन है। रोगियोंकी भीड़ वहाँ रोगमुक्त होनेकी आशामें एकत्र है।

भगवद्भक्त वहाँ रुक गये। निश्चित समयपर संत गुफामेंसे निकले। सचमुच उन्होंने जिसका स्पर्श किया,

वह तत्काल रोगमुक्त हो गया। जब सब रोगी लौट रहे थे स्वस्थ होकर तब भक्तने संतकी चदरका कोना पकड़ लिया और बोले—‘आपने औरोंके शारीरिक रोगोंको दूर किया है, मेरे मनके रोगोंको भी दूर कीजिये।’

संत जैसे हड्डवड़ा उठे और कहने लगे—‘छोड़ जल्दी मुझे। परमात्मा देख रहा है कि दूने उसका पल्ला छोड़कर दूसरेका पल्ला पकड़ा है।’

अपनी चदर छुड़ाकर वे शीघ्रनासे गुफामें चले गये।

सच्चा साधु—मिखारी

एक साधुने ईश्वरप्राप्तिकी साधनाके लिये कठिन तप करते हुए छ. वर्ष एकान्त गुफामें विताये और प्रमुखे प्रार्थना की कि ‘प्रभो! मुझे अपने आदर्शके समान ही ऐसा कोई उत्तम महापुरुष बतलाइये, जिसका अनुकरण करके मैं अपने साधनपथमें आगे बढ़ सकूँ।’

साधुने जिस दिन ऐसा चिन्तन किया, उसी दिन रात्रिको एक देवदूतने आकर उससे कहा—‘यदि तेरी इच्छा सदृष्टी और पवित्रतामें सबका मुकुटमणि बननेकी हो तो उस मर्त्त मिखारीका अनुकरण कर जो कविता गाता हुआ ईश्वर-उवर भटकता और भीख माँगता फिरता है।’ देवदूतकी बात सुनकर तपस्वी साधु मनमें जल उठा, परंतु देवदूतका बचन समझकर क्रोधके आवेशमें

ही उस मिखारीकी खोजमें चल दिया और उसे खोजकर बोला कि ‘भाई! दूने ऐसे कौन-से सत्कर्म किये हैं, जिनके कारण ईश्वर तुझपर इतने अधिक प्रसन्न हैं?’

उसने तपस्वी साधुको नमस्कार करके कहा—‘पवित्र महात्मा! मुझसे दिल्लीगी न कीजिये। मैंने न तो कोई सत्कर्म किया, न कोई तपस्या की और न कभी प्रार्थना ही की। मैं तो कविता गा-गाकर लोगोंका मनोरक्षन करता हूँ और ऐसा करते जो खूखा-मूखा टुकड़ा मिल जाता है, उसीको खाकर सतोप मानता हूँ।’ तपस्वी साधुने फिर आग्रहपूर्वक कहा—‘नहीं, नहीं, दूने कोई सत्कार्य अवश्य किया है।’ मिखारीने नम्रतासे कहा, ‘महाराज! मैंने कोई सत्कार्य किया हो, ऐसा मेरी जानमें तो नहीं है।’

इसपर साधुने उससे फिर पूछा, 'अच्छा बता, तू भिखारी कैसे बना ? क्या तूने फिजूलखर्चमिं पैसे उड़ा दिये, अथवा किसी दुर्व्यसनके कारण तेरी ऐसी हालत हो गयी ।'

भिखारी कहने लगा—‘महाराज ! न मैंने फिजूलखर्चमिं पैसे उड़ाये और न किसी व्यसनके कारण ही मैं भिखारी बना । एक दिनकी बात है, मैंने देखा एक गरीब ही घबरायी हुई-सी इधर-उधर दौड़ रही है, उसका चेहरा उतरा हुआ है । पता लगानेपर मालूम हुआ कि उसके पति और पुत्र कर्जके बदलमें गुलाम बनाकर बेच दिये गये हैं । बहुत खूबसूरत होनेके कारण कुछ लोग उसपर भी अपना कब्जा करना चाहते हैं । यह जानकर मैं उसे ढाढ़स देकर अपने घर ले आया और

उसकी उनके अत्याचारसे रक्षा की । फिर मैंने अपनी सारी सम्पत्ति साहूकारोंको देकर उसके पति-पुत्रोंको गुलामीसे छुड़ाया और उनको उससे मिला दिया । इस प्रकार मेरी सारी सम्पत्ति चली जानेसे मैं दरिद्र हो गया और आजीविकाका कोई साधन न रहनेसे मैं अब कविता ग-गाकर लोगोंको रिक्षाता हूँ और इसीसे जो टुकड़ा मिल जाता है उसीको लेकर आनन्द मानता हूँ । पर इससे क्या हुआ ? ऐसा काम क्या और लोग नहीं करते ?’

भिखारीकी कथा सुनते ही तपस्वी साधुकी आँखोंसे मोती-जैसे आँसू झरने लगे और वह उस भिखारीको हृदयसे लगाकर कहने लगा—‘मैंने अपनी जिंदगीमें तेरे-जैसा कोई काम नहीं किया । तू सचमुच आदर्श साधु है ।’

भगवान्‌पर मनुष्य-जितना भी विश्वास नहीं ?

एक भजनानन्दी साधु धूमते हुए आये और एक मन्दिरमें ठहर गये । मन्दिरके पुजारीने उनसे कहा—‘आप यहाँ जितने भी दिन रुकना चाहें, प्रसन्नतापूर्वक रहें; किंतु यहाँ भोजनकी कोई व्यवस्था नहीं है । भोजनकी कोई व्यवस्था आप कर लें ।’

साधु बोले—‘तुम्हारे पड़ोसीने कहा है कि मुझे दो रोटियाँ प्रतिदिन वह दे दिया करेगा ।’

पुजारी—‘तब ठीक है । तब तो आप निश्चिन्त रहें, वह सच्चा आदमी है ।’

साधुने यह सुनकर आसन उठाया—‘भाई ! यह स्थान मेरे रहनेयोग्य नहीं है और न तुम देव-सेवा करनेयोग्य हो । भगवान् विश्वम्भर हैं, अपने जनोंके भरण-पोषणकी उन्होंने प्रतिज्ञा कर रखी है; किंतु उन सर्व-समर्थ भगवान्‌पर तो तुम्हें मनुष्य-जितना भी विश्वास नहीं ।’

—सु० सि०

सच्ची श्रद्धा

नगरका नाम और ठीक समय स्मरण नहीं है । वर्षा-ऋतु बीती जा रही थी; किंतु वर्षा नहीं हुई थी । किसानोंके खेत सूखे पड़े थे । चारेके अभावमें पशु मरणासन्न हो रहे थे । जब कोई मानव-प्रयत्न सफल नहीं होता, तब मनुष्य उस त्रिभुवनके स्थामीकी ओर देखता है । गाँवके सब लोग गिरजाघरमें एकत्र हुए वर्षाके लिये प्रार्थना करने । एक छोटा बालक भी आया था; किंतु वह आया था अपना छोटा-सा छत्ता लेकर ।

किसीने उससे पूछा—‘तुम्हे क्या इतनी धूप लगती है कि छत्ता लाया है ?’

बालक बोला—‘वर्षा होगी तो घर भीगते जाना पड़ेगा, इससे मैं छत्ता लाया हूँ कि भीगना न पड़े ।’

प्रार्थना की जायगी और वर्षा नहीं होगी, यह संदेह ही उस शुद्धचित्त बालकके मनमें नहीं उठा । जहाँ इतना सरल विश्वास है, वहाँ प्रार्थनाके पूर्ण होनेमें संदेह

कहाँ । प्रार्थना पूर्ण होते-होते तो आकाश बादलोंसे ढक चुका था और झड़ी प्रारम्भ हो गयी थी । बालक अपना छत्ता लगाये प्रसन्नतापूर्वक घर गया । यह वर्षा इतनी

भीड़के प्रार्थना करनेसे होती था नहीं, कौन कह सकता है; किंतु वह हुई, क्योंकि प्रार्थना करनेवालोंमें वह सच्चा श्रद्धालु बालक भी था ।

हक्की रोटी

एक राजाके यहाँ एक संत आये । प्रसङ्गवश बात चल पड़ी हक्की रोटीकी । राजाने पूछा—‘महाराज ! हक्की रोटी कैसी होती है ?’ महात्माने बतलाया कि ‘आपके नगरमें अमुक जगह अमुक बुद्धिया रहती है, उसके पास जाकर पूछना चाहिये और उससे हक्की रोटी मोंगनी चाहिये ।’

राजा पता लगाकर उस बुद्धियाके पास पहुँचे और बोले—‘माता ! मुझे हक्की रोटी चाहिये ।’

बुद्धियाने कहा—‘राजन् ! मेरे पास एक रोटी है, पर उसमे आधी हक्की है और आधी बेहक्की ।’

राजाने पूछा—‘आधी बेहक्की कैसे ?’

बुद्धियाने बताया—‘एक दिन मैं चरखा कात रही थी । शामका बक्त था । अंधेरा हो चला था । इतनेमें उधरसे एक जुद्धस निकला । उसमे मशाले जल रही थीं । मैं अलग अपनी चिराग न जलाकर उन मर्शालोंकी रोशनीमें कातती रही और मैंने आधी पूनी कात ली । आधी पूनी पहलेकी कती थी । उस पूनीसे आटा लाकर रोटी बनायी । इसलिये आधी रोटी तो हक्की है और आधी बेहक्की । इस आधीपर उस जुद्धसवालेका हक्क है ।’

राजाने सुनकर बुद्धियाको सिरे नवाया ।

संतकी क्षमा

एक सत कहाँ जा रहे थे । एक दुष्ट व्यक्ति उन्हें गालियाँ देता, हुआ उनके पीछे-पीछे चल रहा था । संतने उसमे कुछ कहा नहीं, वे चुपचाप चलते रहे; किंतु जब कुछ घर दिखायी पड़ने लगे, तब वे खड़े हो गये । उन्होंने उस व्यक्तिसे कहा—‘भाई ! तुम्हें जो कुछ

कहना हो, यहाँ कह लो । मैं खड़ा हूँ । आगे उन घरोंमें मुझसे सहानुभूति रखनेवाले लोग रहते हैं । वे तुम्हारी बाते सुनेंगे तो तुम्हे तंग कर सकते हैं ।’

दुष्ट व्यक्ति लजित होकर क्षमा माँगने लगा ।

नीचां सिरं क्यों ?

एक सज्जन बड़े ही दानी थे, उनका हाथ सदा ही ऊँचा रहता था, परतु वे किसीकी ओर नजर उठाकर देखते नहीं थे । एक दिन किसीने उनसे कहा—‘आप इतना देते हैं पर आँखें नीची क्यों रखते हैं ?’ चेहरा न देखनेसे आप किसीको पहचान नहीं पाते, इसलिये कुछ लोग आपसे दुबारा भी ले जाते हैं ।’ इसपर उन्होंने

कहा—‘भाई !

देनहार कोड और है देत रहत दिन रैन ।

लोग भरम हम पर धरै आते नीचे जैन ॥

देनेवाला तो कोई दूसरा (भगवान्) ही है । मैं तो निमित्तसात्र हूँ । लोग मुझे दाता कहते हैं । इसलिये शर्मके मारे मैं आँखें ऊँची नहीं कर सकता ।’

आतिथ्यधर्म

भारतवासियोंके समान ही अरब भी अतिथिका सम्मान करनेमें अपना गौरव मानते हैं। अतिथिका स्वागत-सत्कार वहाँ कर्तव्य समझा जाता है।

अरबलोगोंकी शूरता प्रसिद्ध है और अपने शत्रुको तो वे क्षमा करना जानते ही नहीं। एक व्यक्तिने एक अरबके पुत्रको मार दिया था। वह अरब अपने पुत्र-धारीके खूनका प्यासा हो रहा था और सदा उसकी खोजमें रहता था। सयोग ऐसा बना कि वहाँ व्यक्ति किसी यात्रामें निकला। मार्गमें ही उसे लूँ लग गयी। जरकी पीड़ासे व्याकुल किसी प्रकार गिरता-पड़ता वह जो सबसे पास तम्बू मिला, वहाँतक पहुँचा। तम्बूके दरवाजेतक पहुँचते-पहुँचते तो वह गिर पड़ा और बेहोश हो गया।

तम्बूके मालिकने अपने दरवाजेपर गिरे बेहोश

अतिथिको उठाकर भीतर लिटा दिया। वह उसकी सेवामें लग गया। रात-दिन जागकर भली प्रकार उसने वीमारकी सेवा की। रोगीकी मूर्छा दूर हड्डी, किंतु उसे स्वस्थ होनेमें कई दिन लगे। उस तम्बूके स्वामी अरबने उसकी सेवा-सत्कारमें कहाँ कोई कमी नहीं होने दी।

रोगी जब स्वस्थ हो गया, सबल हो गया और इस योग्य हो गया कि लम्बी यात्रा कर सके, तब उस अरबने कहा—‘तुम मेरा सबसे बलवान् ऊँट ले लो और जितनी शीघ्रतासे जा सको, यहाँसे दूर चले जाओ। मेरा आतिथ्य-सत्कार पूरा हो गया। मैंने अपनां एक कर्तव्य ठीक पूरा किया है। परतु तुमने मेरे पुत्रकी हत्या की है, तुमसे पुत्रका बदला लेना मेरा दूसरा कर्तव्य है। मैं ठीक दो घटे बाद अपने दूसरे कर्तव्यके पालनके लिये तुम्हारा पीछा करनेवाला हूँ।’

अस्तेय

साधु इब्राहीम आदम धूमते-धामते किसी धनवान्‌के बगीचेमें जा पहुँचे। उस धनी व्यक्तिने उन्हें कोई साधारण मजदूर समझकर कहा—‘तुझे यदि कुछ काम चाहिये तो बगीचेके मालीका काम कर। मुझे एक माली-की आवश्यकता है।’

इब्राहीमको एकान्त बगीचा भजनके उपयुक्त जान पड़ा। उन्होंने उस व्यक्तिकी बात स्वीकार कर ली। बगीचेका काम करते हुए उन्हें कुछ दिन बीत गये। एक दिन बगीचेका स्वामी कुछ भित्रोंके साथ अपने बगीचेमें आया। उसने इब्राहीमको कुछ आम लानेकी आज्ञा दी। इब्राहीम कुछ पके आम तोड़कर ले

आये, किंतु वे सभी खट्टे निकले। बगीचेके स्वामीने असतुष्ट होकर कहा—‘तुझे इतने दिन यहाँ रहते हो गये और यह भी पता नहीं कि किस वृक्षके फल खट्टे हैं तथा किसके भीठे।’

साधु इब्राहीमने तनिक हँसकर कहा—‘आपने मुझे बगीचेकी रक्षाके लिये नियुक्त किया है। फल खानेका अधिकार तो दिया नहीं है। आपकी आज्ञाके बिना मैं आपके बगीचेका फल कैसे खा सकता था और खाये बिना खट्टे-भीठेका पता कैसे लगता।’

वह व्यक्ति तो आश्वर्यसे साधुका मुख देखता रह गया।

कामना कष्टदायिनी

संत इब्राहीम खवास किसी पर्वतपर जा रहे थे। पर्वतपर अनारके बृक्ष थे और उनमें फल लगे थे। इब्राहीमकी इच्छा अनार खानेकी हुई। उन्होंने एक फल तोड़ा; किंतु वे ह खट्टा निकला, अतः उसे फेंककर वे आगे बढ़े। कुछ आगे जानेपर एक मनुष्य मार्गके पास लेटा हुआ मिला। उसे बहुत-सी मक्खियाँ काट रही थीं; किंतु वह उन्हें भगाता नहीं था। इब्राहीमने उसे नमस्कार किया तो वह बोला—‘इब्राहीम अच्छे आये।’

एक अपरिचितको अपना नाम लेते देख इब्राहीमको आश्वर्य हुआ। उन्होंने पूछा—‘आप मुझे कैसे

पहचानते हैं?’

पुरुष—‘एक भगवत्प्राप्त व्यक्तिसे कुछ छिपा नहीं रहता।’

इब्राहीम—‘आपको भगवत्प्राप्ति हुई है तो भगवान्‌से प्रार्थना क्यों नहीं करते कि इन मक्खियोंको आपसे दूर कर दे।’

पुरुष—‘इब्राहीम! तुम्हें भी तो भगवत्प्राप्ति हुई है। तुम क्यों प्रार्थना नहीं करते कि तुम्हारे मनमें अनार खानेकी कामना न हो। मक्खियाँ तो शरीरको ही कष्ट देती हैं; किंतु कामनाएँ तो हृदयको पीड़ित करती हैं।’

सच्चा भाव

एक गँवार गङ्गरिया पर्वतकी चोटीपर बैठा प्रार्थना कर रहा था—‘ओ खुदा! यदि दू इधर पधारे, यदि दू मेरे पास आनेकी कृपा करे तो मैं तेरी सेवा करूँगा। मैं तेरी दाढ़ीमे कंधी करूँगा, तेरे सिंके केशोंसे ऊर्जे निकालूँगा, तेरे शरीरमें तेलकी मालिश करके तुझे स्नान कराऊँगा। मैं अपने आपको तुशपर न्योछावर कर दूँगा। तेरे पैर मैं अपनी दाढ़ीसे पौँछूँगा। दू सोना चाहेगा तो तेरे लिये विछौना विछाऊँगा। दू वीमार पड़ेगा तो तेरी सेवामें रात-दिन खड़ा रहूँगा। मेरे पास आ, मेरे अच्छे खुदा! मैं तेरा गुलाम बनकर रहूँगा।’

हजरत मूसा उधरसे कहाँ जा रहे थे। उन्होंने उस गङ्गरियेसे पूछा—‘अरे मूर्ख! दू किससे बातें कर रहा है? किस वीमारकी सेवा करना चाहता है?’

गङ्गरियेने कहा—‘मैं खुदासे बातें कर रहा था

और उन्हींकी सेवा करना चाहता हूँ।’

मूसाने उसे डॉटा—‘अरे बेवकूफ! दू तो गुनाह कर रहा है। खुदाके कहाँ बाल है और वह सर्वशक्ति-मान् कहाँ वीमार पड़ता है। वह तो अशरीरी, अजन्मा, सर्वव्यापक है। उसे मनुष्योंके समान सेवा-चाकरीकी क्या आवश्यकता? ऐसी बेवकूफी फिर मत करना।’

बेचारा गङ्गरिया चुप हो गया। मूसा-जैसे तेजस्वी फकीरसे वह क्षमा मांगनेके अतिरिक्त कर क्या सकता था। परंतु उस दिन मूसा खयं जब प्रार्थना करने लगे, आकाशवाणी हुई—‘मूसा! मैंने तुम्हें मनुष्योंका चित्त मुझमें लगानेको भेजा है या उन्हें मुझसे दूर करनेको? उस गङ्गरियेका चित्त मुझमें लगा था, तुमने उसे मना करके अपराध किया है। तुम्हें इतना भी पता नहीं कि सच्चा भाव ही सच्ची उपासना है।’

भगवान्‌की कृपापर विश्वास

एक अकिञ्चन भगवद्भक्तने एक बार ब्रत किया। पूरे दस दिनतक वे केवल जल पीकर रहे। उनका

शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया। ब्रत समाप्त होनेपर वे ठठे और अपनी कुटियासे बाहर आये। वहाँ पृथ्वीपर एक

सूखा फल पड़ा था । एक बार इच्छा हुई कि उसे उठाकर ब्रतका पारण करें, किंतु फिर मनने कहा—‘यह फल सूखा है, इस समय शरीरके लिये हानिकर है, ऐसा कैसे हो सकता है कि दयामय प्रभुने दस दिन-के दीर्घ उपवासके पश्चात् इस फलसे ब्रत-पारणका पिधान मिला हो ।’ फलको वहाँ छोड़कर वे कुटियाके सामने एक वृक्षके नीचे बैठ गये ।

कुछ ही देरमें वहाँ एक व्यापारी आये । बहुत-से फल और मेत्रा वे ले आये थे । उन्होंने बताया—‘मेरा जहाज समुद्रमें दफ्नानमें पड़ गया था । उस समय मैंने सकल्प किया था कि सकुशल किनारे पहुँचनेपर भगवान्-

को भोग लगाऊंगा और जो पहिला अतिथि मिलेगा उसे वह प्रसाद अपित करूँगा । मेरा जहाज किनारे खड़ा है । टटपर मैं देरतक प्रतीक्षा करता रहा, किंतु कोई व्यक्ति उधर नहीं आया । प्रसाद लेकर मैं वहाँसे चला तो आप ही सर्वप्रथम मुझे दिखायी पड़े । कृपा करके यह प्रसाद स्वीकार करें ।’

साथुने अपनी आवश्यकता-जितना प्रसाद ले लिया । उनके नेत्र भर आये थे और वे मन-ही-मन कह रहे थे—‘मेरे दयामय सामी मेरे लिये पहिलेसे ही व्यवस्था करनेमें व्यस्त थे ।’ —सु० सिं०

कौड़ियोंसे भी कम कीमत

एक जिज्ञासुने किसी सतसे पूछा—‘महाराज ! राम-नाममें कैसे प्रेम हो तथा कैसे भजन बने ?’

सत बोले—‘भाई ! रामनामका मूल्य, उसका महत्व समझनेसे प्रेम होता है और तभी भजन होता है ।’

‘महाराज ! मूल्य और महत्व तो कुछ-कुछ समझमें आता है परतु भजन नहीं होता ।’

‘क्या धूल समझमें आता है । समझमें आया होता तो क्या यह प्रश्न जोप रह जाता । फिर तो भजन ही होता । अमीतक तो तुम रामनामको कौड़ियोंसे भी कम कीमती समझते हो ।’

‘महाराज ! यह कैसे ? कौड़ियोंके साथ रामनामकी तुलना कैसी ?’

‘अच्छा तो बतलाओ, तुम्हारी वार्षिक आय अधिकसे अधिक क्या है ?’

‘अनुमान पैंतालीस-पचास हजार रुपये ।’

‘अच्छा तो अब विचार करो । व्यापारी हो, हिसाब लगाओ । वार्षिक पैंतालीस-पचास हजारके मानी हुए मासिक लगभग चार हजार रुपये और दैनिक लगभग एक सौ चालीस रुपये । दिन-रातके चौबीस घटेकी

तुम्हारी आमदनी एक सौ चालीस रुपये हैं, इस हिसाबसे एक घटेमें लगभग पौने छ रुपये और एक मिनटमें डेढ़ आना आमदनी होती है । अब जरा सोचो, उसी एक मिनटमें तुम कम-से-कम डेढ़ सौ रामनामका बड़े आरामसे उच्चारण कर सकते हो । अर्थात् जितनी देरमें छ पैसे पैदा होते हैं, उतनी देरमें डेढ़ सौ रामनाम आते हैं । अभिप्राय यह कि एक पैसेमें पचीस रामनाम हुए । इतनेपर भी पैसेके लिये तो खूब चेष्टा करते हो और रामनामके लिये नहीं । अब बताओ तुमने रामनामका महत्व और मूल्य कौड़ियोंके बराबर भी कहाँ समझा ? यह हिसाब तो पैंतालीस-पचास हजारकी वार्षिक आयवालेका है । साधारण आयवाले लोग हिसाब लगाकर देखें और समझें कि रामनामकी वे कितनी कम कीमत आँकते हैं ।’

‘महाराज ! बात तो ऐसी ही है ।’

‘इसीसे कहता हूँ—सोचो, विचारो, हिसाबकी भूलको मुघारो और समयका सद्गुपयोग करो । सद्गुपयोग यही है कि समयको निरन्तर नाम-जपमें लगाओ ।’

एक पैसेकी भी सिद्धि नहीं

एक साधक था । उसने घोर तपस्या की और जलके ऊपर चलनेमें समर्थ हो गया । अब वह प्रसन्नतासे खिल उठा और दौड़ा हुआ अपने गुरुके पास गया । गुरुजीने पूछा ‘क्यों आज वडे प्रसन्न दीखते हो ? क्या वात है ?’ साधक बोला, ‘महाराज ! मुझे जलपर चलनेकी सिद्धि प्राप्त हो गयी ।’ गुरुने कहा—‘चौदह वर्षोंतक क्या तुम

इसीके लिये मरते रहे ? यह तो तुम्हारी एक पैसेकी भी सिद्धि नहीं हुई ; क्योंकि यह काम तो तुम मछाहको एक पैसा देकर भी कर सकते थे । तपस्या तो भगवत्प्राप्ति-के लिये होती है । ऐश्वर्यादिकी प्राप्तिके लिये तपस्या करनेसे तो अच्छा है कि वह कोई व्यापार ही कर ले ।’ गिर्ष्य लजा गया ।

हम मूर्ख क्यों बनें

एक विचारशीला भगवद्भक्ता नारीका एकमात्र पुत्र मर गया । पति घरसे बाहर गये थे । उस नारीने पुत्रका शव ढक दिया और पतिके लिये भोजन बनाया । परिश्रमसे हारे थके पतिदेव घर लौटे । आते ही उन्होंने पूछा—‘अपने बीमार पुत्रकी क्या दशा है ?’

स्त्री बोली—‘आज वह पूरा विश्राम कर रहा है । आप भोजन करे ।’

पुरुषने हाथ-पैर धोया और भोजन करने बैठा । नारी उसे पखेसे वायु करने लगी । पंखा झलते हुए वह बोली—‘मेरी पड़ोसिनने मुझसे एक वर्तन माँगा था । मैंने उसे वर्तन दे दिया । अब मैं उससे अपना वर्तन

माँगती हूँ तो वह वर्तन देना नहीं चाहती, उलटे रोने-चिलाने लगती है ।’

पुरुष हँसा—‘वड़ी मूर्खा है वह ! दूसरेकी वस्तु लौटानेमें रोनेका क्या काम !’

पुरुष भोजन समाप्त कर चुका था । उसे हाथ धुलाते हुए स्त्री बोली—‘स्वामी ! अपना लड़का भी तो अपने पास भगवान्की धरोहर ही था । प्रभुने आज अपनी वस्तु ले ली है, किंतु इसमें रो-चिलाकर हम मूर्ख क्यों बनें ।’

‘तुम ठीक कहती हो देवि !’ पुरुषने गम्भीरता-पूर्वक पल्लीकी ओर देखा । —मु० सिं०

वास्तविक उदारता

एक सम्पन्न व्यक्ति बहुत ही उदार थे । अपने पास आये किसी भी दीन-दुखीको वे निराश नहीं लौटाते थे, परतु उन्हे अपनी इस उदारतापर गर्व था । वे समझते थे कि उनके समान उदार व्यक्ति दूसरा नहीं होगा । एक बार वे धूमते हुए एक खंजूरके बागमे पहुँचे । उसी समय उस बागके रखवालेके लिये उसके घरसे एक लड़का रोटियाँ लेकर आया । लड़का रोटियाँ देकर चला गया । रखवालेने हाथ धोये और रोटियाँ खोलीं, -इतनेमें

वहाँ एक कुत्ता आ गया । रखवालेने एक रोटी कुत्तेको दे दी । किंतु कुत्ता भूखा था, एक रोटी वह झटपट खा गया और फिर पूछ हिलाता रखवालेकी ओर देखने लगा । रखवालेने उसे दूसरी रोटी भी दे दी ।

वे धनी सज्जन यह सब देख रहे थे । पास आकर उन्होंने रखवालेसे पूछा—‘तुम्हारे लिये कितनी रोटियाँ आती हैं ?’

रखवाला बोला—‘केवल दो ।’

धर्मी व्यक्ति—‘तब तुमने दोनों गेटियों कुत्तेको क्यों दे दीं ?’

रुद्रांगा—‘महोदय ! तुम वडे विचित्र आडमी हो । यहाँ कोई कुत्ता पहिले नहीं था । यह कुत्ता यहाँ पहिलं कर्मी आया नहीं है । यह भूंडा कुत्ता यहाँ ठीक उस समय आया, जब गेटियाँ आयीं । मुझे पेसा लगा हो गया ।

कि आज ये गेटियाँ इसीके प्रारब्धसे आयी हैं । जिसकी बन्नु थी, उने मैंने दे दिया । इसमें मैंने क्या विचित्रता की ?

एक दिन भूंडे रहनेमें मेरी कोई हानि नहीं होगी ।’

उस धर्मी मनुष्यका मस्तक झुक गया । उनमें जो अपनी उदाहनाका अभिमान था, वह तत्काल नष्ट हो गया । —सु० सिं०

भगवान्‌का भरोसा

पहले समयकी बात है । एक धर्मी नवयुवक गज-पथपर छहल रहा था । उसने गेने और मिस्तकनेकी आवश्यक सुनी और वह एक बाके सामने छहर गया ।

‘यिनाजी ! हमलोगोंको कतनक इस तरह भूंडों मरना होगा । चलिये न, बाजारमें भाँड़ भाँड़कर हम-लोग जीवनका निर्वाह करें । लड़कानं सिस्तर्की भर-कर बहा ।

‘वेदी ! यह सच है कि हमलोगोंका साग बन चला गया । हमारे पास एक पैसा भी नहीं रह गया है । दिनिनाके लघुपर्यं हमारे वरपर भगवान्‌की कृपाका अवनरण हुआ है । भगवान्‌पर भगेशा गुडना चाहिये, वे हमारी आवश्यकताएँ पूरी करेंगे ।’ मिनाने अपनी तीनों लड़कियोंको समझाया ।

वाहर खिड़कीके पास खड़ा होकर धर्मी नवयुवक उनकी बानें सुन रहा था । वह द्वारा गया । उसके खजानेमें

सोनेके तीन वडे-वडं छड़ थे । रातको उसने एक छड़ खिड़कीके गत्तेसे गरीब आडमीके घरमें छोड़ दिया । पिना और छड़कियोंने भगवान्‌को धन्यवाद दिया कि उनकी ग्रार्थनाएँ सुन ली गयीं । दूसरे दिन गनको उसने दृसग छड़ छोड़ दिया । तीसरी रातको तीसरा छड़ फैकलेवाला ही था कि उस असहाय और गरीब व्यक्तिने देख लिया । वह नवयुवकके चरणपर गिर पड़ा इस अयाचित सहायताके लिये ।

‘मार्ड ! तुम यह क्या कर रहे हो ? तुम्हें तीन छड़ भगवान्‌की कृपाने ही मिले हैं । भगवान्‌को ही धन्यवाद देना चाहिये । यदि मुझे तुम्हारे वरतक उन्होंने पर्सों रातको न भेजा होना तो मैं इन्हें किस तरह प्रदान करता ।’ (संत) निकोल्सने गरीब आडमीका ग्रंमालिङ्गन किया । निकोल्सके श्रेष्ठ दानसे भगवान्‌में उनका विश्वास उत्तरोत्तर छढ़ होना गया ।—रा० श्री०

विद्यासका फल

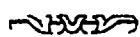
एक सच्चा भक्त था, पर था बहुत ही भीत्रा । उसे छठ-कपटका पता नहीं था । वह हृदयमें चाहता था कि मुझे श्री भगवान्‌के दर्शन हों । दर्शनके लिये वह दिन-नात छठपटाता रहता और जो मिलता, उसीमें उपाय पूछता । एक दिनको उसकी इस स्थितिका पता लगा । वह साथुका वेप बनाकर आया और उससे

बोआ—‘मैं तुम्हें आज ही भगवान्‌के दर्शन करा दूँगा । तुम अपना साग सामान बेचकर मेरे साथ जंगलमें चलो ।’ भक्त निष्कापद, सरल हृदयका था और दर्शनकी चाहसे व्याकुल था । उसको वड़ी सुनी हुई और उसने उसी समय जो कुछ भी ढाममें मिले, उसीपर अपना सारा सामान बेच दिया और रूपये साय लेकर वह घाके

साथ चल दिया । रास्तेमे एक कुओं मिला । ठाने कहा, 'बस, इस कुएँमे भगवान्‌के दर्शन होगे, तुम इन मायिक रूपयोंको रख दो और कुएँमे झौंको ।' सरल विश्वासी भक्तने ऐसा ही किया । वह जब कुएँमे झौंकने लगा, तब ठाने एक धक्का दे दिया, जिससे वह तुरत कुएँमे गिर पड़ा । भगवत्कृपासे उसको जरा भी चोट नहीं लगी और वही साक्षात् भगवान्‌के दर्शन हो गये । वह कृतार्थ हो गया ।

ठग रूपये लेकर चपत हो गया था । भगवान्‌ने सिपाहीका बेष धरकर उसे पकड़ लिया और उसी कुएँपर लाकर अदर पड़े हुए भक्तसे सारा हाल कहा

और भक्तको कुएँसे निकालना चाहा । भक्त उस समय भगवान्‌की रूपमाधुरीके सरस रसपानमे मत्त था; उसने कहा—'आप मुझको इस समय न छेड़िये । ये ठग हो या कोई, मेरे तो गुरु है । सचमुच ही इन्होंने मेरी मायिक पूँजीको हरकर मुझको श्रीहरिके दर्शन कराये हैं । अतएव आप इन्हे छोड़ दीजिये ।' भक्तकी इस बातको सुनकर और सरल विश्वासका ऐसा चमत्कार देखकर ठगके मनमे आया कि सचमुच इसको ठगकर मैं ही ठग गया हूँ । उसे अपने कृत्यपर बड़ी ग़लानि हुई और उसका हृदय पलट गया । भक्त और भगवान्‌के सङ्गका ग्रभाव भी था ही । वह भी उसी दिनसे अपना दुष्कृत्य छोड़कर भगवान्‌का सच्चा भक्त बन गया ।



विचित्र बहुरूपिया

पुरानी बात है—अयोध्यामे एक सत रहते थे, वे कहीं जा रहे थे । किसी बदमाशने उनके सिरपर लाठी मारकर उन्हे घायल कर दिया । लोगोंने उन्हें बेहोश पड़े देखकर दवाखानेमे पहुँचाया । वहाँ मरहमपट्टी की गयी । कुछ देरमे उनको होश आ गया । इसके बाद दवाखानेका एक कर्मचारी दूध लेकर आया और उनसे बोला—'महाराज ! यह दूध पी लीजिये ।' संतजी उसकी बात सुनकर हँसे और बोले—'वाह भाई ! तुम भी बड़े विचित्र हो । पहले तो सिरमे लाठी मारकर घायल कर दिया और अब बिछौनेपर सुलाकर दूध पिलाने आ गये ।'

बेचारा कर्मचारी संतकी बातको नहीं समझ सका और उसने कहा—'महाराज ! मैंने लाठी नहीं मारी थी । वह तो कोई और था । मैं तो इस दवाखानेका सेवक हूँ ।' संतजी बोले—'हॉ-हॉ, मैं जानता हूँ । तुम बड़े बहुरूपिये हो । कभी लाठी मारनेवाले बदमाश—डाकू बन जाते हो, तो कभी सेवक बनकर दूध पिलाने चले आते हो । जो न पहचानता हो, उसके सामने फरेब-जाल करो, मैं तो तुम्हारी सारी माया जानता हूँ, मुझसे नहीं छिप सकते ।' अब उसकी समझमें आया कि संतजी सभीमे अपने प्रभुको देख रहे हैं ।



नींद कैसे आवे ?

एक महात्मा रातों जगकर प्रभुका स्मरण किया करते थे । एक बार उनके एक मित्रने उनसे पूछा—'आप यदि बीच-बीचमें सो लिया करें तो क्या कोई हानि है ?'

महात्माने उत्तर दिया—'जिस मनुष्यके नीचे नरकाग्नि, जल रही हो और जिसे ऊपरका दिव्य राज्य बुला रहा हो, उसे नींद कैसे आ सकती है ?'



नीच गुरु

एक सुन्दरी बाल्विवताके घरपर उमका गुरु आया । विचवा देवीने श्रद्धा-भौलिके माय गुरुको भोजनादि कराया । नडनन्तर यह उनके मामने वर्मोपदेश पानेके लिये बैठ गयी । गुरुके मनमें उमके द्वय-पौत्रवतको देखकर पाप आ गया और उनसे उसको अपने कपटजालमें फँसानेके लिये भाँति-भाँतिकी युक्तियोगे आत्मनिवेदनका महत्त्व बनायकर यह समझाना चाहा कि जब वह उमकी शिष्या हैं तो आत्मनिवेदन करके अपनी देहके द्वाग उने गुरुकी मेंगा कर्नी चाहिये । गुरु न्यूव पढ़ा-निक्षा था, इसमें उसने वहुन-में तकोंके द्वाग गाँवोंके प्रणाल देनेकर यह सिद्ध किया कि यहि ऐसा नहीं किया जायगा तो गुरु-कृपा नहीं होगी और गुरु-कृपा न होनेमें नन्होंकी प्राप्ति होगी ।

विचवा देवी बड़ी बुद्धिमती, विचारशीला और अपने सर्वार्थमंडली रक्षामें तत्पर थी । वह गुरुके नीच अभियायकों मध्यमें गयी । उनने बड़ी नम्रताके साम कहा—“गुरुजी ! आपकी कृपामें मैं इनना तो जान गयी हूँ कि गुरुकी मेंगा करना शिष्याका प्रम धर्म है, परन्तु भाग्यहीनताके कारण मुझे मेंगाका

कोई अनुभव नहीं है । इसीसे मैं यथासाध्य गुरुके चरणकमलोंको हृदयमें विगजित करके अपने चक्षु-कर्णादि इन्द्रियोंमें उनकी सेवा करती हूँ । आँखोंसे उनके स्वरूपके दर्शन, कानोंमें उनके उपदेशायूतका पान आदि करती हूँ । सिर्फ दो नीच इन्द्रियोंको, जिनसे मल-मूत्र वहा करना है, मैंने भेजामं नहीं लगाया, क्योंकि गुरुकी नेवामं उन्हीं चीजोंको लगाना चाहिये जो पवित्र हों । मल-मूत्रके गड्डेमें मैं गुरुको कैसे विठाऊँ । इसीमें उन गदे झड़ोंको कपड़ोंमें ढके रखनी हूँ कि कहाँ पवित्र गुरु-भेजामें बाबा न आ जाय । इनलेपर भी यदि गुरु-कृपा न हो तो क्या उपाय है । पर सच्चे गुरु ऐसा क्यों करने लगे ? जो गुरु मल-मूत्रकी चाह करते हैं, जो गुरु भक्तिहीनी सुवा पाकर भी मूत्राशयकी ओर लछायी आँखोंमें देखने हैं, जो गुरु शिष्याके चेहरेकी ओर दयादृष्टिमें न देखकर नरकके मुख्यद्वार—नरक बहानेवाली दुर्गन्धयुक्त नालियोंकी ओर ताकने हैं, ऐसे गुरुके प्रति आत्मनिवेदन न करके उसके मुँहपर तो कालिख ही पोननी चाहिये और झाड़ओंसे उसका सकार करना चाहिये ।” गुरुजी चुपचाप चल दिये ।

रूप नादमें देख लो

किसी गाँवमें एक गरीब विचवा ब्राह्मणी रहती थी । तस्यी थी । सुन्दर लूप था । धर्म और कोई न था । गाँवका जर्मांदार दुगचारी था । उनने ब्राह्मणीके लूपकी तारीफ मुनी । वह उसके घर आया । ब्राह्मणी तो उने देखने ही काँप गयी । उसी समय भगवान्‌की कृपासे उसे एक युक्ति मूँड़ी । उसने दूर हटते हुए हँसकर कहा—“सर्वाकार ! मुझे दूना नहीं । मैं मासिक वर्मये हूँ । चार दिन बाद आप पवारियेगा ।” जर्मांदार सनुष्ट होकर लौट गया ।

ब्राह्मणीने जमालगोदा मँगवाया और उसे खा लिया ।

उने दस्त होने लगे दिन-रातमें सैकड़ों बार । उसने मकानके चौकमें एक मिट्टीका नाड़ रखवा ली और वह उसीमें टट्टी फिरने लगी । सैकड़ों दस्त होनेसे उसका शरीर धुल गया । आँखें बँस गयीं । मुखपर झुरियाँ पड़ गयीं । बदन काला पड़ गया । गरीर काँपने लगा, उठने-बैठनेकी ताकत नहीं रही, देह सूख गयी । उसका सर्वथा रूपान्तर हो गया और वह भयानक प्रतीत होने लगी ।

चार दिन बाद जर्मांदार आया । तस्यी सुन्दरी ब्राह्मणीका पता पूछा । चारपाईपर पड़े कंकालसे क्षीण

आवाज आयी । 'मैं ही वह ब्राह्मणी हूँ ।' जर्मांदारने मुँह फिरा लिया और पूछा—'तेरा यह क्या हाल हो गया । वह रूप कहाँ चला गया ?' क्षीण उत्तर मिला—'जाकर

उस नादमें देख लो । सारा रूप उसीमें भरा है ।' मूर्ख जर्मांदार नादके पास गया, दुर्गन्धके मारे उसकी नाक फटने लगी । वह तुरंत लौट गया ।

मांस, मेद, मज्जाकी सुन्दरता कसाईखानेमें बहुत है

किसी राज्यमें वहाँका राजकुमार बड़ा लाड़ला था । वह एक दिन रास्तेमें एक लावण्यवती युवतीको देखकर मोहित हो गया । युवती एक सद्गृहस्थ ब्राह्मणकी कन्या थी । पूर्वसंस्कारवश उसको योगका अन्यास था । इसीसे उसने विवाह नहीं किया था । उसका नाम था योगशीला । राजकुमारने अपनी इच्छा अपने पिताको जनायी । पुत्रमोह-ग्रस्त राजाने योगशीलाके पितासे कहलत्राया कि 'तुम अपनी पुत्री योगशीलाका विवाह राजकुमारसे कर दो ।' ब्राह्मण-ने राजाकी सेवामें उपस्थित होकर अनेकों तरहसे उसे समझाया कि 'प्रथम तो प्रजाकी प्रत्येक कन्या आपकी कन्याके समान है । इस नाते राजकुमारकी वह वहिन होती है । दूसरे वह ब्राह्मण-कन्या है, क्षत्रियके साथ उसका विवाह शास्त्रनिषिद्ध है ।' पर राजाने उसकी एक भी न सुनी । ब्राह्मणको बड़ी चिन्ता हो गयी । वह सोचके मारे सूखने लगा । खाना-पीना भी उसका छूट गया । योगशीला बड़ी बुद्धिमती थी, उसने पितासे सारी बातें जानकर कहा कि 'पिताजी ! आप चिन्ता न करें, राजासे कहकर पंद्रह दिनोंका समय माँग लें । मैं अपने धर्मकी रक्षा कर लूँगी ।'

ब्राह्मणने राजसभामें जाकर राजासे समय माँग लिया । राजकुमारने कहा, 'सोलहवें दिन तुम कन्याको यहाँ भेज देना । तब विवाह हो जायगा ।' ब्राह्मणने स्वीकार किया । पद्धत दिन बीत गये । इस बीचमे योगशीलाने योगकी क्रियाओंसे अपने शरीरको गला डाला । केवल हड्डियोंका ढाँचामात्र रह गया । सारा लावण्य नष्ट हो गया । सोलहवें दिन योगशीला राजमहलमें पूर्वनिर्दिष्ट

राजकुमारके एकान्त कमरेमें पहुँची । राजकुमार तो उसको देखते ही चीख पड़ा और उसने तत्क्षण उसपरसे दृष्टि हटाकर कहा—'तुम कौन हो ?' योगशीला बोली—'राजकुमार ! मैं वही ब्राह्मणकन्या हूँ, जिसपर तुमने मोहित हो विवाहका प्रस्ताव किया था । मैं अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तुमसे विवाह करने आयी हूँ । अब देर क्यों करते हो ? मनोकामना पूरी करो ।'

राजकुमारने कहा—'उस दिन तो तुम बड़ी रूपवती थी । तुम्हारे सौन्दर्यकी चौंदनीने मेरा मन मोह लिया था । तुम्हारी वह सुन्दरता कहाँ चली गयी । आज तो तुम चुड़ैल-जैसी मालूम होती हो, दूसरी कोई होओगी । मेरे सामनेसे हट जाओ ।'

योगशीलाने कहा—'राजकुमार ! मैं वही हूँ, जिसके लिये तुम्हारे पिताने मोहवश अपना राजधर्म त्यागकर तुम्हारे साथ विवाह कर देनेको कहा था । मुझमें जो कुछ उस दिन था, वही आज भी है, परंतु मालूम होता है, तुम बड़े ही भोले हो । सोचो, उस दिनमें और आजमे मुझमें क्या अन्तर है । केवल मास, मेद, मज्जा और रक्तमें कुछ कमी हुई है । इसी कारण तुम मुझे सुन्दर नहीं देख पा रहे हो । यदि तुम्हें मास, मेद, मज्जा तथा रक्तमें ही सुन्दरता दिखायी देती है तो सीधे चले जाओ—कसाई-खाने । वहाँ ये चीजें तुम्हें खूब मिलेंगी । तुम्हें लज्जा नहीं आती, जो तुम इन घिनौनी चीजोंपर इतना मोह करते हो ?'

राजकुमार हताश होकर बाहर चला गया । ब्राह्मण-कन्या सकुशल अपने घर लौट आयी ।

सतीत्वकी रक्षा

(लेखक—श्रीत्रिलोकनाथजी 'पन्तु')

गर महासमरमें वर्षापर जापानका अधिकार हो चुका था और प्रिंटिंग-मेना फिरमे उसपर आधिपत्य जमा रही थी। मेनाके निपाही बहुधा मदान्ध होने हैं, ऐसा ही एक गढ़वाली सैनिक (जिसने स्थ्य मुझे यह धटना निनान्त ब्रह्मापूर्वक अपने मुँहमे सुनायी थी एवं जिसका नाम भी यहाँ प्रकट करना अनुचित ममझना है) एक अन्यकारमयी रजनीमें पक्ष अन्य बृड़े सिपाहीको साथ लेकर गिजित प्रान्तान्तर्गत समीपके एक ग्राममें अपनी कामनिष्ठा शान्त करने दूमा ।

दोनों सैनिक गड़फल्नेमे लैस थे। गौँबंद घुसकर उन्होंने देखा कि एक छोटा-सा मकान है, जिसके आगे एक बृद्ध बैठा हुआ है, मकानकी देहलीपर एक नवयुवनी सुन्दर महिला बैठी है, जो कि सिगार पी रही थी, मदान्ध सैनिकने इसी वहिनके साथ अपना मुँह काला करनेका निश्चय किया ।

दोनों सैनिक मकानके द्वारपर जा पहुँचे और ज्यों ही नवयुवक सिपाही कमरेमें प्रविष्ट होना ही चाहता था कि वह वहिन वीरनापूर्वक उठी और लोहेका एक हथियार, जिसे 'दाव' बोलते हैं तथा जिससे ऊँटवाले बृक्ष काटा करते हैं, उठाकर कामान्ध सैनिकपर आक्रमण करनेके लिये उद्धत हो गयी । सिपाहीको ऐसा प्रतीत हुआ कि ज्यों ही वह मकानके द्वारकी देहलीपर पैर रखेगा, ज्यों ही उसका सिर धड़से अलग होकर भ्रमिपर नाचनेके लिये अवश्य बाधित होगा । अतएव वह ठिक्क गया और एक कदम पीछे हट गया ।

उसने दस रुपयेका एक नोट अपनी जेवमें निकाला और उस वहिनको दिखलाया, किंतु उत्तरमें

वही शब्द फिर उसकी ओर दोनों हाथोंसे दृढ़तापूर्वक पकड़ा हुआ घूरता हुआ दृष्टिगत हुआ । सैनिकका बल नष्ट हो गया ।

पीछे खड़ा हुआ दूसरा बृद्धा सिपाही उसका नाम लेना हुआ कड़ककर बोला, ' । देखना क्या है ? राडफल तो तेरे पास है ।' कामान्ध सैनिकने फिर साहस किया और सनी महिलाके मुँहके सामने बंदूक तानकर उसे भयभीत करना चाहा । किंतु ग्रन्तुतरमें वही शब्द फिर ज्यों-का-त्यों तना हुआ मिला । सैनिक चाहता है, गोली मारूँ । महिला उद्धत है कि उसका सिर धड़से पृथक् कर दूँ । पर्याप्त समयतक यही दृश्य रहा और आखिर सतीत्वके शुद्ध सकल्पके सम्मुख निर्लज्ज कामको पराजित होना पड़ा । दोनों सिपाही अपना-सा मुँह लेकर अपने स्थानपर लौट गये ।

यह एक अक्षरा सञ्ची धटना है, आज सात-आठ वर्ष हुए, जब मैंने इसे सुना था । मुझे इस कथामे सदैव प्रेरणा मिलती रहती है और मैं इसे कभी भी भूल जाना नहीं चाहता, वहिनें इसमें अवश्य ही शिक्षा प्रहृण करें ।

जिस हृदयमें सतीत्व-रक्षाका दृढ़ संकल्प विद्यमान है, उसे बदूकका भय और पैसेका लालच कडापि विचलित नहीं कर सकते । रात्रण-सीता-सवादकी पुनरावृत्ति होनी ही रहेगी ।

मैं मन-ही-मन बहुधा वर्षाकी उस सती वीर भगिनीके चरणोंमें नमस्कार किया करता हूँ ।

'सतीत्वकी जय'

शास्त्रीजीपर कृपा

एक शास्त्रीजी थे। भक्त थे। वे नावपर गोकुलसे मथुरगको चले। साथ कुछ बच्चे और खियों भी थी। नौका उलटे प्रवाहकी ओर खींची जा रही थी। इतनेमें ही आकाशमें काली धटा उठी, बादल गरजने लगे और यमुना-जीके तटोपर मोर शोर मचाने लगे। देखते-ही-देखते जोरसे हवा चलने लगी और धनधोर वर्षा होने लगी। नाव ठहरा दी गयी। मल्लाहोने कहा—‘तुमलोग सामने वरसानेके पुराने श्रीराधार्जीके मन्दिरमें धीरे-धीरे पैदल चले आओ। हम नाव लेकर वहाँ तैयार रहेगे।’ गालीजीकी कमरमें चार सौके नोट थे, कुछ रुपये और पैसे थे। उन्होने रक्खाकी दृष्टिसे कसकर कमर बॉथ ली और नावसे उतरकर चलने लगे। मन्दिर वहाँसे एक मीलकी दूरीपर था। नोट भीग न जाय, इसलिये वे मन्दिरकी ओर तेजीसे चलने लगे।

किनारेका रास्ता बीहड़ था। चारों ओर जल भर जानेसे पगड़ियों डिखायी नहीं देती थीं। इसलिये बिना ही मार्गके वे पानीमें छप-छप करते आगे बढ़े जा रहे थे। मनमें रह-रहकर श्रीकृष्णकी बाललीलाओंकी सृष्टि होने लगी। धीरे-धीरे मन तल्लीन हो गया। वे मार्ग भूलकर कहाँ-के-कहाँ निकल गये। मन्दिरकी बात याद नहीं रही।

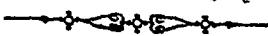
सामने एक बड़ा टीला था, वे सहज ही उसपर चढ़ गये। थकान जाती रही। इतनेमें बादलोंकी गडगडाहट-के साथ जोरमें बिजली चमकी, उनकी ओंखे बड़ हो गयीं। वे वहाँ रुक गये। कुछ क्षणोंके बाद ओंखे खुलनेपर उन्होने देखा—वर्षा कम हो गयी है और नीचे मैदानमें अत्यन्त सुन्दर तथा हृष्ट-पुष्ट गौएं हरी धास चर रही है। उनके मनमें आया—‘इन्हीं गौओंको हमारे प्यारे गोपाल चराया करते थे, वे अब भी यहाँ कही हींगे।’ वे इन्हीं विचारोंमें थे कि हठात् उनके मनमें नीचे उत्तरनेकी आयी, मानो कोई अज्ञान अक्षि उन्हें प्रेरित कर रही हो।

नीचे उतरते ही उन्होने देखा—सामने थोड़ी ही दूरपर सान या आठ वर्षका, केवल लगोटी पहने, हाथमें छोटी-सी लकुटी लिये, वर्षके जलमें स्नान किया हुआ, श्याम-वर्ण, मन्द-मन्द मुसकराना हुआ गोपवालक उनकी ओर देखता हुआ अंगुलीके इशारेसे उन्हे अपनी ओर बुला रहा है। शास्त्रीजीने समझा—कोई गरीब बालेका लड़का है, इसे दो-चार पैसे दे देने चाहिये। परतु पैसा निकालनेमें बड़ी अड़चन थी, क्योंकि पैसे नोट और रुपयोंके साथ ही कमरमें बैंधे थे तथा यहाँ एकान्त था। वे कुछ दूर तो बालककी ओर आगे बढ़े, फिर सहसा उनके पैर रुक गये।

वह बालक मुसकराता हुआ बोला—‘पण्डितजी ! देखो, तुम्हारी रुपयेकी गाँठ पूरी तो है १ दो चार पैसे लेनेवाले ब्रजमें बहुत मिलेगे, उन्हें दे देना। मैं तो इन गौओंके दूधसे ही प्रसन्न रहता हूँ !’

बालककी अमृतभरी बाणीसे शास्त्रीजी श्रियुध हो गये। वे निर्निमेष नेत्रोंसे बालककी ओर देखने लगे। साथ ही उन्हें आश्र्वय हुआ कि बालकको मेरी कमरमें बैंधे रुपयोंका तथा मेरे मनकी बातका पता कैसे लग गया। फिर वह बालक बोला—‘देखो ! यह सामने मन्दिर दिखायी पड़ रहा है, तुम्हारी नाव वहाँ पहुँच गयी है। तुम इधर कहाँ जा रहे हो। मथुराजीकी सड़क यहाँसे दूर है और यह जगह भयानक है। तुम तुरंत यहाँसे चले जाओ।

शास्त्रीजी तो बेसुध-से थे। इतनेमें वह बालक हँसता हुआ मुड़कर जाने लगा। शास्त्रीजी मन्त्र-मुग्धकी तरह उसके पीछे-पीछे चले। पीछे-आगे देख बालकने कहा—‘जाओ, जाओ, इधर तुम्हारा क्या काम है ? जाओ, अभी धूमो !’ इतना कहकर बालक उन गौओंके साथ अन्तर्धान हो गया। शास्त्रीजी होशमें आये। उन्होने बहुत खोजा, पर बालक और गौओंका पता नहीं लगा। वे हताश होकर मन्दिरपर पहुँचे। उन्हे ऐसा प्रतीत हुआ—मानो किसीने उनका सर्वस्व हरण कर लिया हो।



पुलिस कसान साहबकी गणेश-भक्ति

एक पुलिसके सानियर मुपरिटेंट अप्रेज सज्जन थे। एक बार उनपर कोई सकट आया। एक ब्राह्मण चपरासीने उनसे कहा—‘सरकार ! गणेशजी सिद्धिदाना और सब सकटोंका नाश करनेवाले हैं। आप गणेशजीकी मूर्ति मँगवाकर उसकी पूजा कीजिये और जब किसी नये कामका आरम्भ करना हो या कहीं जाना हो तो गणेशजीका ध्यान कर लिया कीजिये।’

साहबने पैसा ही किया। उनका सकट टूट गया। फिर तो वे गणेशजीकी एक सुन्दर हाथीदाँतकी मूर्तिको जेवरमें ही रखने लगे। जब कहीं जाते या नया काम करने मूर्ति निकालकर हाथ जोड़कर प्रार्थना कर लेते।

उन्होंने बताया था कि गणेशजीकी कृपासे वे कभी असफल नहीं हुए।

वाँधकी रक्षा

एक अप्रेज अफसर एक जगह वाँध बैठवाने आया। जिस दिन वाँधके पूरा होनेमें एक दिन बच रहा था, उसी दिन गतको बड़े जोगमे वर्षा आयी। अफसरने देखा कि वाँध टूट जायगा। अश्वीं होकर उसने अपने एक हिंदू नौकरसे उपाय पूछा।

नौकरने कहा—‘सरकार ! एक उत्ताप तो है।’

अफसरने आनुगतासे पूछा—‘बताओ किस जन्दी।

नौकर—‘मरकार ! आप सच्चे मनमे सामनेवाले मन्दिरमें जाकर प्रार्थना कीजिये, वाँधकी रक्षा हो जायगी।’ अफसरने वैसे ही किया।

आधी रातक वर्षा होती रही। अफसरका वैर्य

छूटने लगा। वह उसी समय वाँधको देखने चला गया। वहों जाकर उसने देखा—‘वाँधपर एक विचित्र प्रकाश फैला हुआ है। दो अन्यन्त सुन्दर तरुण—एक गौर और एक ड्याम रगका पुरुष तथा एक बड़ी ही मनोहर ली, तीन व्यक्ति वहाँ खड़े हैं, जहाँ वाँध टूटनेका भय है—इस प्रकार मानो वाँधकी रक्षा कर रहे हों। और आश्वर्य है कि इतनी वर्षा होनेपर भी पानी वाँधसे दो अगुल कम ही है।’

अफसरने आठर एव उल्लासमे भरकर घुटने टेक दिये। वह मन्दिर सीता-राम-लङ्घणका था, जीर्ण हो चला था। अफसरने अपने बैठनके पैमेसे उसका जीर्णोद्धार किया।

धर्मके नामपर हिंसा

एक राजा एक बार यज्ञ करने जा रहे थे। यज्ञमें वलि देनेके लिये एक वक्ता उन्होंने मँगवाया। वक्ता पकड़कर लाया गया तो वह चिल्ला रहा था। यह देखकर राजा अपनी सभाके एक विद्वानसे पूछा—‘यह वक्ता क्या कहता है ?’

पण्डित—‘यह आपसे कुछ प्रार्थना कर रहा है।’

राजा—‘कैसी प्रार्थना ?’

पण्डित—‘यह कहता है कि सर्वका उत्तम भोगोंकी मुझे तृष्णा नहीं है। सर्वका उत्तम भोग दिलानेके लिये

मैंने आपसे कोई प्रार्थना भी नहीं की। मैं तो धास चरकर हीं संतुष्ट हूँ। इसलिये मुझे वलि देनेके लिये आपने पकड़ मँगाया, यह उचित नहीं किया। यदि यज्ञमें वलि देनेसे ग्राणी सर्व जाता है तो आप अपने माता, पिता, पुत्र तथा कुटुम्बियोंकी वलि देकर यज्ञ कर्यों नहीं करते ?’

पण्डितकी बात सुनकर राजाको प्रतीत हो गया कि पशु-वलि अनुचित है। उन्होंने वकरेको छोड़ दिया।

—सु० सिं०

आर्यकन्याकी आराध्या

सृष्टिकी सम्मूण पवित्रताकी साकार प्रतिमा निर्दिष्ट करना हो तो कोई भी बिना संकोचके किसी आर्यकुमारीका नाम ले सकता है। मृदुता, सरलता और पवित्रताका वह एकीभाव और उसकी भी आदर्शभूता श्रीजनकनन्दिनी। मर्यादा-पुरुषोत्तमने अवतार धारण किया था धर्मकी मर्यादा स्थापित करनेके लिये। मानव-कर्तव्यके महान् आदर्शोंकी स्थापना करनी थी उन्हें। उनकी पराशक्ति, उनसे नित्य अभिन्न श्रीमैथिली उनके इस महान् कार्यकी पूरिका बनीं। उन्होंने नारीके दिव्य आदर्शको मूर्ति किया जगतमें।

आर्यकन्या किसकी आराधना करे ? स्त्रीका उपास्य तो पति है या पति जिसकी आराधनाकी अनुमति दे वह; किंतु कुमारी यदि आराधना करनी चाहे, यदि उसे आराधनाकी आवश्यकता हो और आवश्यकता तो है ही; क्योंकि आराधना-हीन जीवन तो शास्त्रकी दृष्टिमें जीवन ही नहीं, फिर आकाङ्क्षा न हो ऐसा हृदय गिने-चुने ज्ञानियोंका ही तो हो सकता है, किसी बालिकाके मनमें आकाङ्क्षा हो तो वह किस देवताकी शरण ले ? इसका उत्तर सोचना नहीं पड़ता। आर्य-कन्याकी आराध्या हैं भगवती उमा। हिंदू-

बालिका उन गौरीकी ही उपासना करती है।

श्रीजनकनन्दिनी तो आयी ही थीं धरापर नारियोंका पथ-प्रदर्शन करने। बालिकाओंको मार्ग दिखाया उन्होंने। उनका गौरी-पूजन; किंतु गौरी-पूजन करने चली थीं वे कोई विशेष संकल्प लेकर नहीं। माताने आदेश दिया था पूजनका और सखियोंके साथ आकर उन्होंने पूजन किया।

‘निज अनुरूप सुभग वर माँगा।’

परंतु पूजनका फल तत्काल प्रत्यक्ष हो गया। पुष्प-चाटिकामें ही श्रीकोैसल्यानन्दवर्धन रघुनाथजी-के दर्शन हो गये। अपनी निधिको नेत्रोंने देखते ही पहचान लिया और आकाङ्क्षा उद्दीप्त हो उठी। आकाङ्क्षाकी पूर्तिके लिये भी शास्त्रीय मार्ग आराधना ही है और आर्यकन्या तो आराधना भी करेगी तो सतियोंकी आराध्या भगवती पार्वतीकी ही। अतः श्रीजनकनन्दिनी पुनः भगवतीके मन्दिरमें पधारीं। उन्होंने गणेश और सामिकार्तिककी जननी उन शम्भुप्रियासे प्रार्थना की। वे प्रार्थना करेंगी और देवी प्रसन्न नहीं होंगी—

विनय प्रेम वस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी॥

ब्राह्मणिके द्वारा जीवरक्षा

(नेपर—श्रीहनुषद्वारा नमगम)

महाराज राजके नेडियार मानाके भन्दिरमें चर्ची-
पट्टर अनुष्ठान चढ़ रहा था । इसी जीवमें एक दिन
उत्तर उच्च उच्चर्मार्गो महागज श्रीभगवत्सहर्जी महागजका
जन्मदिन था । उन्हजे नेडियार मानाकी निशेय पूजाके
नियं नामगजके हर्जी नेडियार मन्दिरमें आये । पूजाकी
सम्पर्की, भोग तथा विद्विन्दि नियं एक वक्ता वे सार
उत्तर थे । उन्हें साथ प्रवन्धके द्विये धानेदार तथा कुछ
निराकारी भी थे ।

अनुष्ठानके आचारे भृष्ट उच्चगम पुस्त्रोत्तमकी वर्म-
पर्णी श्रीमर्ती कल्परीवार्ड वर्णों थीं । उन्होंने जब मुना
कि मानाजीके भोगदे निये वक्ताओंकी वित्ती दी जायगी,
तब उन्होंने द्वारा छोभ हुआ । उन्होंने भोवा—“क्या मानाजी
वक्ताओंकी नियंके नोगें प्रमल होंगी ? नहीं नहीं, ऐसा
नहीं होगा । मैं नामगकी वारा वहाँ बैठी हूँ । भोग
मन्दिर चांडे उत्तर जाय, मैं वक्ताओंकी वित्ती नहीं होने
दैर्घ्य ।” यह द्वद मिचार करके अन्तरीवार्ड मानाजीके
द्वारे पास जाकर बैठ गयीं ।

हर्जीजी पूजन-नामग्रीके साथ पवारे । वक्ताको
दाल करवाकर देवीजीके भाष्मे खड़ा किया गय ।
आनेदार नाय थे । ब्राह्मणिके पूठनेपर हर्जीने बताया
कि ‘महागज नाहवरे जन्मदिनके अवसरपर देवीजीकी
पूजाके निये वक्ताओंकी वित्ती दी जायगी ।’ ब्राह्मणीने

कहा—‘जबतक मैं यहाँ बैठी हूँ वक्ताको विद्विन्दि नहीं
हो सकता । किमी जीवके मासमे ही देवीजी प्रसन्न
होनी हो तो वक्ताके वडले इन ब्राह्मणपुत्रीको विद्विन्दि
कर दीजिये ।’ उन्होंने वडी दृढ़तासे अपना निश्चय
बनाया ।

हर्जी तभा धानेदारने ब्राह्मणीको बहुत नमधाया ।
महाराज साहवके नाराज होनेका डर भी डिखलाया ।
हमन्योग वहाँ जाकर क्या उत्तर देंगे—यों अपनी मजबूरी
भी व्यक्त की, परतु ब्राह्मणी अपने निश्चयसे जरा भी
नहीं हिन्दी । वे बोली—“आप जाकर महागज वहादुरने
कह दीजिये कि ‘एक ब्राह्मणकी लड़कीने हमे विद्विन्दि
नहीं करने दिया ।’ फिर महाराज वहादुर जो कुछ ढण्ड
देंगे नो सुझे स्वीकार होगा ।”

ब्राह्मणिके प्रभावमे हर्जीने अपना आग्रह छोड़
दिया । वक्ताको कानके धासमे जरा-सा खून लेकर उससे
देवीजीके निलक कर दिया । वक्ता छोड़ दिया गया ।

हर्जीने देवीजीका पूजन करके कसार-ल्पर्सिका भोग
लगाया और उर्मा भोगको लेकर वे महाराजाके पास
गये । वक्ताको विद्विन्दि न करनेकी सारी घटना उन्होंने
मुनावी । गुणप्राही महाराज सुनकर प्रसन्न हुए और
उसी दिनमे जन्म-दिनपर होनेवाला जीवोंका विद्विन्दि
द्वद कर दिया गया ।

—४३८—

गोपाल पुत्ररूपमें

वगालमें किमी गाँवमें एक नोल्ह वर्षकी युवती
रहती थी । जिस साल उसका विवाह हुआ उसी साल
उसके पनिका देहान्त हो गया । वह इस आकस्मिक

विपत्तिके कारण अन्यन्त दुखी हो गयी ।

एक दिन वह अकेली बैठी रो रही थी। इसी समय उसको ऐसा लगा मानो कोई कह रहा है कि तुम पासमे रहनेवाले महात्माके पास जाओ। इस अन्तः-प्रेरणासे वह महात्माके पास जाकर फूट-फूटकर रोने लगी। तब महात्माने पूछा—‘बेटी! तुम रो क्यों रही हो?’

युवतीने उत्तर दिया—‘महाराज ! मेरे कोई नहीं हैं।’

महात्मा—‘बेटी ! तुम इतनी झूठ क्यों बोल रही हो ? तुम्हारे-जैसी झूठी तो मैंने आजतक कभी देखी ही नहीं।’

यह सुनते ही बेचारी युवती सकपका गयी। तब महात्माने कहा—‘बेटी ! तुमने यह कैसे कहा कि मेरे कोई नहीं हैं। क्या भगवान् भी मर गये हैं। वे तो सबके अपने हैं। सबके परम आत्मीय हैं। जिसके कोई नहीं होता वे तो उसके होते ही हैं। तुम उनका चाहे जिस रूपमें भजन कर सकती हो। भजन करोगी तो सदा उनको अपने पास पाओगी। तुम चाहो तो उन्हें अपना बेटा बना लो।’

युवतीने बहुत सोचकर भगवान्‌को अपना पुत्र बना लिया।

अब वह प्रतिदिन भगवान्‌के लिये भोजन बनाती और थालमें परसकर अपने गोपालको बुलाती। उसे अनुभव होता मानो गोपाल रोज आकर मैयाका दिया भोजन बड़े चावसे खाता है। इस प्रकार तीस साल बीत गये। अब वह युवती बूढ़ी हो गयी।

एक बार वह रामकृष्ण परमहंसके दर्शन करने गयी। गोपाल देर होनेसे भूखा न रह जाय, इसलिये उसने अपने गोपालके लिये थोड़ी-सी दाल और चावल साथ ले लिये। सोचा, खिचड़ी बनाकर खिला दूँगी गोपालको।

जब वह परमहंसजीके यहाँ पहुँची, तब उसने देखा कि बहुत बड़े-बड़े आदमी उनके चारों ओर बैठे हैं।

यह देखकर वह वापस जाने लगी। इसी समय स्थान परमहंसजी अपने आसनसे उछले और उसको बुला लाये तथा कहने लगे कि ‘माता ! तुम मेरे लिये खिचड़ी बनाओ। मुझे बड़ी भूख लगी है।’ बेचारी बृद्धा कृतार्थ हो गयी। परमहंसजी उसे चौकेमें ले गये और कहने लगे—‘माता ! जल्डी बनाओ।’

खिचड़ी तैयार हो गयी तो उसने एक पत्तलमें उसे परसा; किंतु परमहंसजीको बुलानेमें उसे संकोच होने लगा। परमहंसजी बृद्धाके मनकी बात जान गये और स्थ ही आकर खिचड़ी खाने लगे। थोड़ी देर बाद बृद्धाने देखा कि परमहंसके स्थानपर उसका गोपाल प्यारा बैठा है। वह ज्यों ही पकड़ने दौड़ी कि वह भाग गया।

तबसे वह पागल-सी रहने लगी। कभी कहती ‘उसने खाकर हाथ नहीं धोये, कभी कहती कि वह इत्र-की शीशी चुरा लाया।’ ऐसी दशा होनेके बादकी एक चमत्कारपूर्ण घटना यह है—

लोगोंमें बात फैल गयी थी कि बुढ़ियाको भगवान्‌के दर्शन होते हैं। अत. एक बार कुछ लोगोंने उससे भगवान्‌के दर्शन करानेके लिये ग्रार्थना की। उसने भगवान्‌से कहा। किंतु उन्होंने ऐसा भाव प्रकट किया मानो वे दर्शन देना नहीं चाहते तथापि बृद्धाकी बातका आदर करनेके लिये वे एक क्षणके लिये बृद्धाके सामनेसे अदृश्य हो गये और कहींसे एक इत्रकी शीशी ले आये। बृद्धा यह देखकर बोली कि ‘यह इत्र तू कहाँसे चुरा लाया ?’ यह सुनते ही गोपालने शीशी फोड़ दी। लोगोंको दर्शन तो नहीं हुए; किंतु सभीको शीशी फूटनेका शब्द सुनायी पड़ा तथा इत्रकी सुगन्ध चारों ओर फैल गयी।

उस बृद्धाकी दशा—जबतक वह जीवित रही—ऐसी ही रही।

अंधा हो गया

एक महात्मा थे । वे एक बार किसी किलेके सामने उड़ा देनेकी आज्ञा दी । दो बार तोप छोड़ी गयी, पर वे बैठे थे । उस समय मुगलराज्य था । एक सियाहीने उनको भगा दिया, पर वे फिर आकर बैठ गये । इस तरह तीन बार हुआ । तब अफसरने उनको तोपके मुँह

महात्मा बैठे हँसते रहे । तब अफसरने एक बार अपने सामने तोप छोड़नेकी आज्ञा दी । कहते हैं कि वह अफसर तभी अंधा हो गया और महात्मा उठकर कहीं चले गये !

वात्सल्य

एक महिला थी । उसका नाम था कान्हवाई । वह श्रीकृष्णके बाल-रूपकी भक्ति करती थी । कहा जाता है कि जब वह श्रीकृष्णको पालनेमें झुलाती, तब वे स्वयं मूर्तिमान् हो जाते और वह उनको जिस प्रकार एक छोटे बालकको झुलाया जाता है वैसे ही झुलाने लगती । होते-होते श्रीकृष्ण उसको विलकुल माताकी तरह आनन्द देने लगे । वे अब हर समय उसके सामने प्रकट रहते । वे कभी उसको खानेके लिये कुछ बनानेके लिये कहते, कभी और कुछ काम करनेके लिये कहते रहते तथा वह भक्तिमती महिला सदा उनकी इच्छाके अनुरूप कार्य करती रहती ।

एक बार वह भगवान्को शयन कराके किसी उत्सर्थमें चली गयी । किसी कारणवश रात्रिको न लौट सकी ।

अधिक रात्रि बीतनेपर कान्हवाई तथा वहाँ उपस्थित अन्यान्य सज्जनोंमेंसे भी पाँच-सातको ऐसा सुनायी पड़ने लगा—मानो कोई बालक रोता हुआ कह रहा है—‘मैया ! मुझे डर ला रहा है ।’ यह सुनते ही कान्हवाईने कहा कि ‘मेरा बच्चा रो रहा है ।’ और उसी समय वह घबरायी हुई-सी वहाँसे उठकर घर चली गयी । और जाकर भगवान्को यथापाकर—फुसलाकर शयन कराया ।

जब उसका अन्तकाल समीप आया, तब श्रीकृष्णने कहा—‘मैया ! अब तू यहाँसे चल ।’ यह कहकर भगवान् उसकी आत्माके साथ चले गये तथा उसके प्राण-प्रखेरू उड़ गये ।

इस तरह अपने भावके कारण उसने भगवान्को भी अपने वशमें कर लिया ।

वात्सल्यवती वृद्धा

एक भक्तिमती वृद्धा श्रीराधाके बालरूपका ध्यान कर रही थी । ध्यानमें श्रीराधाने काजल न लगानेका हठ पकड़ लिया । वह भाँति-भाँतिसे उसको फुसला रही थी । वह कह रही थी कि ‘तू काजल लगाये बिना कन्हैयासे खेलने जायगी तो वह तेरी हँसी उड़ायेगा ।’ यह कहकर वह काजल लगानेकी कोशिश करने लगी । इससे काजल फैल गया और श्रीराधाकी आँखोंमें जल भर आया । यह

देखकर वृद्धाने अपने आँचलसे उनको पौछ दिया । जब उसकी आँखें खुलीं, तब उसने देखा कि उसके आँचलमें श्रीराधाके दिव्य अश्रुओंसे सिद्धित काजल लगा है । वह यह देखकर गदगद हो गयी और अपने प्रति श्रीराधाकी कृपा देखकर आत्म-विस्मृत हो गयी । उसके नयनोंसे अविरल प्रेमाश्रु वहने लगे । कहते हैं कि वह दिव्य कजल वृद्धाके आँचलमें दस-बारह घंटेकर रहा । तदनन्तर वह स्वयमेव अन्तहिंत हो गया ।

प्रभुकी वस्तु

एक भक्तके एक ही पुत्र था और वह बड़ा ही सुन्दर, सुगील, धर्मात्मा तथा उसे अन्यत्त प्रिय था। एक दिन अकस्मात् वह मर गया। इसपर वह प्रसन्न हुआ और उसने भगवान्का उपकार माना। लोगोंने उसके इस विचित्र व्यवहारपर आश्चर्य प्रकट करते हुए उससे पूछा—‘पापल ! तुम्हारा एकलौता वेदा मर गया है और तुम हँस रहे हो। इसका क्या कारण है ?’ उसने कहा—‘मालिकके बगीचेमे फूल हुआ बहुत सुन्दर पुष्प माली अपने मालिकको देकर प्रसन्न होता है या रोता है ? मेरा तो कुछ है ही नहीं। सब कुछ प्रभुका ही है। कुछ समयके लिये उनकी एक चीज मेरी सँभालमे थी,

इसमे मेरा कर्तव्य था—मैं उसकी जी-जानसे देख-रेख करूँ, अब समय पूरा होनेपर प्रभुने उसे वापस ले लिया, इससे मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है और मैं उसका उपकार इसलिये मानता हूँ कि मैंने उनकी वस्तुको न मालूम किनी बार अपनी मान लिया था—न जाने किनी बार मेरे मनमे वैद्मानी आयी थी। उसकी देख-रेखमे भी मुझसे बहुत-सी त्रुटियाँ हुई थीं, परतु प्रभुने मेरी इन भूलोंकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर मुझे कोई उल्लास नहीं दिया। इनी बड़ी कृपाके लिये मैं उनका उपकार मानता हूँ तो इसमें कौन-सी आश्र्यकी बात है ?’

देवीजीके दर्शन

एक महात्मा थे। वे एकान्तमे देवीजीकी पूजा करते थे। एक दिन जब वे पूजा कर रहे थे उनके मनमे आया कि माता मुझे दर्शन दें। उसी समय उनको दिखायी पड़ा कि एक विल्ली साड़ी पहनकर पिछले दो

पैरोंसे चल रही है। एक बार नो उनको डर लगा फिर उन्होंने मातासे प्रार्थना की कि ‘मो ! अपने पुत्रको इस प्रकार मत डराओ।’ उसी समय विल्ली देवीके रूपमे प्रकट हो गयी और उनका चढ़ाया हुआ नैवेद्य देवीजी-ने ग्रहण कर लिया।

भक्तकी रक्षा

एक भक्त ब्राह्मणदम्पति थे। उनके मनमे सड़ा यह इच्छा वर्ती थी कि ‘हम कहाँ जायें जिससे हमे भगवान्के दर्शन हो जायें।’

अन्तमे उन्होंने वृन्डावन जानेका निश्चय किया और वे चल पडे। गोवर्द्धनके पास रात हो गयी। वे वहाँ ठहरनेका विचार करके पासकी एक वस्तीमे चले गये।

उसी समय वीको दिखायी पड़ा कि गोवर्द्धन पर्वत-

पर श्रीकृष्ण और श्रीराधा बैठे हैं और यहाँ ठहरनेको मने कर रहे हैं। वी अपने पतिके साथ वहाँसे चली गयी।

वास्तमे वह डोमोंकी वस्ती थी। डोमोंने यह सोचा था कि ‘उनको मारकर इनका बन ले लेगे।’

वहाँमे जानेपर उनको खन्न हुआ कि ‘वह डोमोंकी वस्ती थी। उनका विचार तुमलोगोंको मारनेका था। इसलिये हमने तुमको मना किया था।’

भगवान् सबकी रक्षा करते ही हैं।

बंद करके बहुत समयतक निश्चेष पड़े रहते, वायुतक ग्रहण नहीं करते।

ध्यान या चिन्तनमें शरीरकी आसक्ति बहुत ही वाधक है। संसारमें जो नाना प्रकारके दुःख और चिन्ताएँ हैं, यदि उनके मूलका पता लगाया जाय तो अधिकांश उनका कारण शरीरकी आसक्ति ही मिलेगी। शरीर या शरीरके सम्बन्धियोंकी चिन्तासे ही लोग व्याकुल रहते हैं। जिसने इस आसक्तिका परिस्थाग कर दिया, वह सबसे बड़ा तपस्वी और सुखी है। साधकोंको इस बातसे बहुत सावधान रहना चाहिये कि कहीं शरीरकी आसक्तिके कारण वे साधन-भजनसे विमुख तो नहीं हो रहे हैं।

महाराज मनुकी तपस्या निर्विघ्न चलती रही।

(२)

यह निश्चय है कि जिन्होंने अपने मनोरक्षन अथवा जीवोंके कल्याणके लिये अपने संकल्पसे इस सृष्टिकी रचना की है, जिनकी दया-दृष्टिसे जीवित होकर यह स्थित है और जिनके संकेतसे यह उन्होंमें समा जायगी; वही भगवान् इसके स्वामी हैं और वे एक-एक अणु, एक-एक परमाणु तथा एक-एक धटनाको उसके तहमें रहकर देखा करते हैं। वे भक्तोंकी अभिलापा पूर्ण करते हैं, परंतु साथ ही ध्यान रखते हैं कि इस अभिलापको पूर्ण करनेसे कहीं उनका कुछ अनिष्ट तो नहीं हो जायगा।

महाराज मनुकी तपस्या इसलिये चल रही है कि 'प्रलयके समय सृष्टिकी रक्षाका भार मुझपर हो। मैं सारी ओपधियोंको बचाऊँ।' यह इच्छा बड़ी अच्छी है। इसके मूलमें दया है, सम्पूर्ण प्राणियोंकी कल्याणकामना है, परंतु वही इच्छा यदि किसी साधारण प्राणीके हृदयमें हो और उसके पूर्ण हो जानेपर उसके मनमें घमंड हो जाय कि 'मैंने इनकी रक्षा की है, मैंने इन्हें बचाया है' तो वह भगवान्से विमुख होकर पतनकी ओर जा सकता है। यद्यपि यह बात मनुपर लागू नहीं है, फिर भी जगत्के लोगोंपर इसका प्रकट हो जाना आवश्यक है। मानो इसी भावसे भगवान्से एक अद्भुत लीला रची।

एक दिन वैवस्त मनु कृतमाला नदीमें स्नान करके तर्पण कर रहे थे। एकाएक उनकी अङ्गलिमें एक नन्ही-सी मछली आ गयी। महाराजने उसे फिर नदीमें छोड़ दिया। परंतु एक ही क्षणमें वे आश्र्वर्यचकित हो गये, जब वह मछली मनुप्य-भाषामें कहने लगी कि 'राजन्! मैं बहुत ही

निर्वल और गरीब हूँ। दुःख है। मेरे पास वल नहीं है और आप जानते ही हैं कि हमारा जातिमें बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियोंको खा जाती हैं। आप बड़े दयालु हैं। आपकी करुणाशीलता प्रसिद्ध है। क्या आप मेरी रक्षा कर सकते हैं? क्या आप इस छोटी-सी गरीब और निर्वल मछलीकी रक्षा कर सकते हैं?' यह बात सुनकर मनुका कोमल हृदय दयासे भर गया और उन्होंने शीघ्रतासे उठाकर मछलीको अपने कमण्डलमें रख लिया। नित्यकृत्य करनेके पश्चात् उसे लेकर अपने स्थानपर आये और पूर्ववत् तपस्यामें लग गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल देखते हैं तो वह मछली बढ़कर इतनी बड़ी हो गयी है कि कमण्डलमें नहीं अँटती। वैवस्त मनुको देखते ही मछलीने गिरिगिराकर कहा—'महाराज ! मैं बड़े कष्टमें हूँ। मेरा शरीर इसमें नहीं अँटता। कमण्डलकी संकीर्णतासे मेरा शरीर छिल रहा है। मुझे पानीकी बड़ी आवश्यकता है। कहीं ऐसे स्थानमें रखिये, जहाँ मेरी रक्षा हो सके। आपने मेरी रक्षाका भार लिया है। आप बड़े उपकारी हैं। अवश्य मेरी रक्षा करेंगे।'

मछलीकी बात सुनकर महाराज मनुने उसे एक छोटे-से तालाबमें रख दिया और अपने दूसरे कामोंमें लग गये। कुछ ही समय बाद वह मछली इतनी बड़ी हो गयी कि उसे रहनेके लिये तालाबमें भी जगह न रही। बाहरसे चील-कौए मँडराने लो और उसका शरीर धूपसे जलने लगा। मनु महाराजके सामने आते ही मछलीने बड़े करुण स्वरसे फिर नियेदन किया—'भगवन्! मैं जलवासी जन्तु हूँ। परंतु इस तालाबमें मैं सुखी नहीं हूँ। आप देखते ही हैं, धूप और पशु-पक्षियोंके आक्रमणके भयसे मैं जमीनमें गड़ी जा रही हूँ। मेरा शरीर सिकुड़ा हुआ है। आपके रक्षाकालमें मुझे इतना कष्ट तो नहीं होना चाहिये। मुझे कहीं इससे बड़े जलाशयमें रखिये।'

मनु महाराजने मछलीकी यह बात भी बड़े ध्यानसे सुनी और उसे एक बहुत बड़े जलाशयमें रख दिया। किंतु वहाँ भी मछलीकी यही गति हुई। अन्तमें जब उसे ले जाकर समुद्रमें छोड़ने लो तब उसने कहा—'समुद्रमें बड़े भयंकर जीव रहते हैं। आप यहाँ मुझे छोड़कर चले जायेंगे तो बहुत सम्भव है कि वे हमें कष्ट पहुँचायें और मार डालें।' उस मछलीकी बातोंमें बड़ी मधुरता थी। मनु महाराजके मनमें अभिलाप्त होती कि इसकी बात सुनता ही रहूँ। जब

कुष्ठीके रूपमें भगवान्

पठना शहरमें कोई ब्राह्मण रहते थे। उनका नियम था—प्रतिदिन एक ब्राह्मणको भोजन कराके तब स्वयं भोजन करते।

एक दिन इसी तरह वे किसी ब्राह्मणकी खोजमें थे कि एक व्यक्तिने, जिसके हाथ-पैरोंमें गलित कुष्ठ हो रहा था, कहा कि ‘मैं ब्राह्मण हूँ।’ उसके ऐसा कहने-पर उन्होंने उसको अपने घर चलनेके लिये आग्रह किया और उनको लाकर उसी आसनपर आढ़रपूर्वक बैठाया, जिसपर वे प्रतिदिन ब्राह्मण-अनियिको बैठाया करते थे तथा उनके चरणको उसी परातमे धोया। पर गलित कुष्ठ होनेके कारण उस परातका जल पीव तथा खूनके रूपमें बदल गया। उनका यह नियम था कि वे प्रति-

दिन ब्राह्मणका चरणोदक पान किया करते थे। इसी नियमके अनुसार उन्हें आज भी पान करना था। वे ऑखे बद करके चरणोदकको हाथमें लेकर भगवान्‌का स्मरण करते हुए पी गये।

कहते हैं कि उसके पान करते ही वे समाधिस्थ हो गये। वे गृहस्थ लगातार सोलह दिनोतक इसी दशामें रहे। सतरहवें दिन उनका शरीर शान्त हो गया।

उस ब्राह्मणीने लोगोंको यह बताया—‘वे ब्राह्मण, जो भोजन करने आये थे, स्वयं भगवान् थे। मैं उनके दर्शनकी अधिकारिणी नहीं थी, पर सदा पतिदेवके अतिथि-सेवा-कार्यमें सहयोग देती थी, इसीलिये भगवान्‌ने मुझे भी दर्शन दे दिये।’

शिव-पार्वतीकी कृपा

एक अयाची-वृत्तिके महात्मा काशी गये। सुबहसे शाम हो गयी, पर न तो उन्होंने किसीसे कुछ माँगा और न कुछ खाया। सध्याको एक वृद्ध उनके पास आये और उनको कुछ खानेको दिया, तब उन्होंने खाया। इस तरह वे वृद्ध रोज आकर उनको खिला देते। एक दिन एक वृद्धा भी वृद्धको हूँडती हुई

वहाँ आयी। अब उसने आकर वृद्धके साथ भोजन बनाकर उनको दिया। उसी दिन रातको उनको खप्न आया कि तुम्हारे मनमें यह दृढ़ विश्वास था कि ‘काशीमें भगवान् शिव-पार्वतीके दर्शन हो ही जायेंगे। इसीलिये हम-लोग वृद्ध-वृद्धा बनकर आये थे।’ यह खप्न देखकर महात्मा भाव-विहृल होकर छट-छटकर रोने लगे।

अन्त मति सो गति

सौराष्ट्रमें थानगढ़ नामक छोटेसे गाँवमें बेचर भक्त नामक एक सरल हृदय परम भक्त रहते थे। इनके घर एक बार एक साधु आये। उन्हें द्वारकाजी जाना था। जाते समय वे कपड़ेमें लपेटी हुई एक छोटी-सी पुस्तक बेचरजीको यह कहकर दे गये कि, ‘तुम इसको अपने पास रखो, मैं द्वारकासे लौटकर ले लूँगा।’

बहुत दिन हो गये; महात्माजी लौटे नहीं, तब बेचर भक्तने विचार किया कि महात्माजी आये नहीं,

देखे इसमें क्या है। भक्तजीने कपड़ा खोलकर पुस्तक देखी तो उसमें एक छोटा-सा सॉपका बच्चा दिखलायी दिया। उन्होंने उसे सँडासीसे पकड़कर दूर फेक दिया पर थोड़ी ही देरमें वह फिर आकर पुस्तकपर बैठ गया। इसपर भक्तजीके मनमें आया कि इसमें कोई रहस्य अवश्य होना चाहिये। उन्होंने पुस्तकका जिल्द तोड़कर देखा तो उसमें पौच्छ रूपये थे। भक्तजीने रूपये निकाल-कर पुस्तकसे अलग रख दिये, तो वया देखते हुए कि

सर्पका वज्चा तुरत पुस्तकसे हटकर रूपयोंपर आ बैठा । इसमें वेचर भक्तके मनमें यह सदेह हुआ कि कठाचित् उन साधुजीका देहान्त हो गया हो और रूपयोंमें वासना रहनेके कारण अन्तकालमें रूपयोंमें मन रहा हो तथा इसीमें वे सर्प हो गये हों । तब भक्तजीने हाथमें जल

लेकर सकल्प किया कि ‘महाराजजी ! आपकी यदि इन रूपयोंमें वासना रही हो तो इन पौच्छ रूपयोंमें सत्रा रूपया अपनी ओरसे और मिलाकर मैं साधुओंको भोजन करा दूँगा ।’ यों कहकर उन्होंने जल नीचे छोड़ दिया । सर्पका वज्चा जल छोड़ते ही तुरत वहीं मर गया ।

विवाहमें भी त्याग

श्रीगोदावलेकर महाराजकी पहली पत्नीका देहान्त हो चुका था । दो-चार माहके बाद उनकी माँने उन्हें दूसरी आदी करनेपर मजबूर किया । मातृभक्तिके कारण महाराज ना नहीं कह सके, परतु उन्होंने माँमें एक शर्त मजबूर करा ली कि वे स्वयं अपनी दूसरी पत्नीको पसंद करेंगे । शर्तपर ही क्यों न हो, किंतु महाराज विवाह करनेको राजी तो हो गये । घरके सब लोग इससे प्रसन्न थे ।

घरमें विवाहकी बातचीत चलने लगी । गाँवके और दूसरे गाँवोंके लोग अपनी-अपनी विवाहयोग्य कन्याओंको लेकर महाराजके पसंदके लिये गोदावले आने लगे, परतु महाराजने सर्वपर अस्वीकृतिकी

मुहर लगाना शुरू कर दिया । लोगोंको चिन्ता हुई कि महाराज शादी करेंगे या नहीं ।

महाराजकी चिन्ता तो अलग ही थी । वे पूरे अन्तज्ञानी थे । आठपाँडी गाँवके निवासी श्रीसखाराम पत देगपाडे नामक गरीब ब्राह्मण अपनी नेत्रहीन कन्याके विवाहकी चिन्तामें रात-दिन दूवा रहता है, यह जानकर महाराज दयार्द्र हो गये । वे आठपाँडी गये और ब्राह्मणसे मिलकर उन्होंने कहा कि ‘मैं एक गोसाची हूँ, आप चाहें तो अपनी कन्याका विवाह मेरे साथ कर सकते हैं ।’ रोटीके एक टुकडेको तरसनेवाला मानो बद्धिया पक्कान पा गया । ब्राह्मणने अपनी कन्याका विवाह महाराजसे कर दिया ।

भगवन्नामसे रोगनाश

(१)

कुछ वर्ष पूर्वकी घटना है । एक सेठजी गाँजा पीनेकी आदतसे लाचार थे । वे एक बार एक सन्यासीके पास गये और भावत्-मार्गमें लगानेकी तटवीर पूछने लगे । जब स्थामीजीको गाँजाकी बात मालूम हुई, तब उन्होंने सेठजीमें बाततक भी न की और उन्हें विदा कर दिया । दूसरे दिन मेठजी आकर रोने लगे । स्थामीजीने कहा—‘तुम रातको सोनेके पूर्व दस हजार भगवन्नाम ले लिया करो ।’

आश्चर्य ! थोड़े ही दिनोंमें उनकी यह बुरी

आदत विलुप्त हो गयी ।

(२)

डाक्टरोंने एक शिवान् सजनके खखारकी परीक्षा कर यहमा धोगित कर दिया । अब तो वे वेचारे क्षयरोगके आतঙ्कसे लगे गलने और लगे जगह-जगहकी खाक छानने । सभी प्रमुख डाक्टर-वैद्योंकी शरणमें गये और उन सबकी चिकित्सा करायी, पर वह सब निष्कल गयी ।

एक दिन निराश होकर वे घरसे भाग निकले । थोड़ी ही दूर गये थे कि यक गये और हारकर गिर पड़े । उसी रास्तेसे कुछ वैष्णव साधु जा रहे थे जो चिमटे

वजा-वजाकर जोर-जोरसे 'सीताराम सीताराम' गा रहे गपथ कर ली ।

ये । इन सजनने भी पूरी शक्ति लगाकर 'सीताराम सीताराम' कहना शुरू किया । अब वे 'सीताराम' मन्त्र-जपकी शरण हो गये । पता लगेपर घरवाले उन्हे उठाकर घर लाये, पर उन्होंने 'सीताराम' कहना नहीं छोड़ा ।

कुछ ही दिनों बाद उनकी हालत सुधरने लगी और वे बिन्दुल ठीक हो गये । तदनन्तर उन्होंने इस सीतारामके अतिरिक्त किसी भी डाक्टर-चैद्यकी औपचार्यको —जिसे वे जहर कहते थे, कभी न लेनेकी ही

(३)

एक आदमीके सिरमे भयानक पीड़ा थी । वह दर्दके मारे कराह रहा था । उसको एक दूसरे मित्रने रामनाम कहकर कराहनेकी सम्मति दी । पता नहीं उसने क्या किया ? पर एक दूसरे सजनने उसे ध्यानमे रख लिया, क्योंकि उन्हे भी सिर-दर्द होता था । अब जब उन्हे सिर-दर्द होता, तब वे रामनामका प्रयोग आरम्भ कर देते । उन्हे तत्काल लाभ होने लगा । अन्तमे इस रोगने उनका पिण्ड ही छोड़ दिया ।—जा० श०

रामनामसे शरावकी आदत भी छूटी.

एक मुंशीजी थे । वे थे तो बडे अच्छे ओहदेपर, पर थे पुराने पियकड़ । शराबसे जो हानि होती है वह तो चिख्यात है । सारा धन और माल साफ होने लगा । एक दिन काशीके प्रसिद्ध योगी महात्मा श्रीश्यामाचरण लाहिडी-

से इनकी मुल्यकात हुई । उन्होंने बतलाया, 'भाई ! गमनाम कहा करो, और कोई रास्ता नहीं है ।' मुंशीजीने वैसा ही किया । फिर क्या था, सदाके लिये बोतलसे छुट्टी मिल गयी ।

भगवत्प्राप्तिके लिये कैसी व्याकुलता अपेक्षित

एक शिष्यने अपने गुरुसे पूछा—'भगवन् ! भगवत्प्राप्ति-के लिये किस प्रकारकी व्याकुलता होनी चाहिये ?' गुरु मौन रहे । शिष्य भी उनका रुख देखकर गान्त रह गया । दूसरे दिन ज्ञानके समय गुरु-शिष्यने एक ही साथ नदीमें गोता लगाया । गुरुने शिष्यको पकड़कर एकाएक जोरसे पानीमें दबाया । वह बड़े जोरसे छटपटाया और किसी प्रकार तड़प-कूद मचा बाहर निकल आया ।

स्वस्थ होनेपर गुरुने पूछा—'पानीसे निकलनेके लिये किननी आतुरता थी तुम्हारे मनमे ।'

शिष्य बोला—'बस, एक क्षण और पानीमे रह जाता तो मर ही गया था ।'

गुरुने कहा—'बस, जिस क्षण संसाररूपी जलसे बाहर निकलकर अपने परम प्रियतम प्रभुसे मिलनेके लिये यों ही व्याकुल हो उठोगे, उसी क्षण तुम्हारी व्याकुलता उचित रूपमे व्यक्त होगी और वह प्रभुको प्राप्त करा सकेगी ।'

लक्ष्य और साधना

एक मुमुक्षुने अपने गुरुदेवसे पूछा—'ग्रभो ! मैं कौन-सी साधना करूँ ?'

'तुम बडे जोरसे दौड़ो । दौड़नेके पहले यह निश्चित कर लो कि मैं भगवान्के लिये दौड़ रहा हूँ । बस,

यही तुम्हारे लिये साधना है ।' गुरुने बतलाया ।

'तो क्या बैठकर करनेकी कोई साधना नहीं है ।'

शिष्यने पुन. पूछा ।

'है क्यों नहीं । बैठो और निश्चय रखो कि तुम

भगवान्‌के लिये बैठे हो ।' गुरुने उत्तर दिया ।

'भगवन् ।' कुछ जप नहीं करें ।' शिष्यने पुन व्रन्न किया ।

'किसी भी नाममा जप करो, सोचो मैं भगवान्‌के लिये कर रहा हूँ ।' गुरुने समझाया ।

'तब क्या क्रियाका कोई महत्त्व नहीं ? केवल भाव ही साधना है । शिष्यने फिर पूछा ।

गुरुने कहा—'भेणा ! क्रियाकी भी महत्ता है ।

क्रियासे भाव और भावसे ही क्रिया होती है । इसलिये दृष्टि लक्ष्यपर रहनी चाहिये । फिर तुम जो कुछ करोगे, वही साधना होगी । भगवान्‌पर यदि लक्ष्य रहे तो वे सबको सर्वत्र सर्वदा मिल सकते हैं । ऐसा है ही कौन जिसे भगवान् नहीं मिले हुए है । लक्ष्य यदि ठीक रखा जाय तो साधना स्वयमेव ठीक हो जायगी ।'

भगवान् सदा साथ हैं

एक महात्मा थे । उन्होंने स्वयं ही यह घटना अपने एक मित्रको सुनायी थी । वे बोले—'मेरी आडन है कि मैं तीन बजे उठकर ही औचक्ज्ञान कर लेना हूँ और भजन करने बैठ जाना हूँ । एक बार मैं वृन्दावनके समीप ठहरा हुआ था । अर्पण के दिन थे, यसुनाजी वहुत बढ़ी हुई थी । मैं तीन बजे उठा, औचके लिये चल पड़ा । थोर अवकार था और मूमलधार वृष्टि हो रही थी । आगे जानेपर मुझे भय लगने लगा । मैंने भगवान्‌को स्मरण किया । तुरत ही मुझे ऐसा लगा कि मानो मेरे भीतर ही कोई अत्यन्त मधुर स्वर्गमें विलकुल स्पष्ट मुझे कह रहा हो—'दरते क्यों हो भाइ ! मैं तो सदा ही तुम्हारे साथ रहता हूँ, जो मेरा आश्रय पकड़ लेना है, उसके साथ ही मैं निरन्तर रहता हूँ ।' बस, यह सुनते ही मेरा भय सदाके लिये भाग गया । अब मैं कहाँ भी रहूँ—मुझे ऐसा लगता है कि भगवान् मेरे साथ है । हो, उनके प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होते ।'

उन महात्माको एक बड़ा विचित्र अनुभव बचपनमें भी हुआ था ।

x

x

x

सरयूजीसे रास्ता

श्रीअवधर्मे सरयूके किनारे एक महात्मा थे । वे एक ऊँचे मचानपर रहते थे । वे किसीसे बोलते नहीं थे ।

जब उनको भगवान्‌के दर्शन करनेकी मनमें आती

तब वे सरयूजीसे कहते 'वहिनी ! तनि रक्तवा दहो'— यह कहकर सरयूमेंसे जाकर कनकभवनमें भगवान्‌का दर्शन करके फिर इसी तरह कहकर वापस मचानपर आ जाते थे ।—कृ० ४०

विहारीजी गवाह

बृन्दावनके पास एक ब्राह्मण रहता था। एक समय ऐसा आया कि उसके सभी घरवालोंकी मृत्यु हो गयी। केवल वही अकेला वच रहा।

उसने उन सबका श्राद्ध आदि करना चाहा और इसके लिये अपना मकान गिरवी रखकर एक सेठसे पाँच सौ रुपये उधार लिये।

ब्राह्मण धीरे-धीरे रुपये सेठको लौटाता रहा, पर सेठके मनमें वेर्डमानी आ गयी। ब्राह्मणने धीरे-धीरे प्रायः सब रुपये लौटा दिये। दस-बीस रुपये वच रहे। सेठने उन रुपयोंको उसके खातेमें जमा नहीं किया। वहीके दूसरे पन्नेपर लिख रखा और पुरे रुपयोंकी ब्राह्मणपर नालिश कर दी।

ब्राह्मण एक दिन मन्दिरमें बैठा था कि उसी समय कोट्टका चपरासी नोटिस लेकर आया। नोटिस देखकर ब्राह्मण रोने लगा। उसने कहा कि 'मैंने सेठके करीब-करीब सारे रुपये चुका दिये। फिर मुझपर नालिश क्यों की गयी।'

चपरासीने पूछा—'तुम्हारा कोई गवाह भी है ?'

उसने कहा—'और कौन गवाह होता, हाँ, मेरे विहारीजी सब जानते हैं, वे जरूर गवाह हैं !'

चपरासीने कहा—'रोओ मत, मैं कोशिश करूँगा।'

चपरासीने जाकर जज साहबसे सारी बाते कहीं। जज साहबने समझा—'कोई विहारी नामक मनुष्य होगा।' उन्होंने विहारीके नामसे गवाही देनेके लिये एक नोटिस जारी कर दिया और चपरासीको दे आनेके लिये कहा।

चपरासीने आकर ब्राह्मणसे कहा—'मैं गवाहको नोटिस दे दूँ, वताओ वह कहाँ रहता है ?'

ब्राह्मणने कहा—'मैया ! तुम मन्दिरकी दीवालपर साट दो।' चपरासी नोटिस साटकर चला गया।

जिस दिन मुकदमेकी तारीख थी उस दिनकी पहली रात्रिको ब्राह्मण रातभर मन्दिरमें बैठा रोता रहा।

सूर्योदयके समय उसको कुछ नाद-सी आ गयी। तब उसको ऐसा मालूम पड़ा मानो श्रीविहारीजी कह रहे हैं—'धवरा मत, मैं तेरी गवाही ढूँगा।' अब तो वह निश्चिन्त हो गया।

वह अदालतमें गया। वहाँ जब जजने विहारी गवाहको बुलानेकी आज्ञा दी, तब तीसरी आवाजपर—'हाजिर है !' कहकर एक सुन्दर युवक कटघरेके पास आकर खड़ा हो गया और जजकी तरफ देखने लगा। जजने ज्यों ही उसको देखा, उनके हायसे कलम गिर गयी और वे पंद्रह मिनटके बैसे ही बैठे रहे। उनकी पलक नहीं पड़ी। न शरीर ही हिला। कुछ बोल भी नहीं पाये। पंद्रह मिनट बाद जब होश आया, तब उन्होंने विहारी गवाहसे सारी बातें पूछीं। विहारी गवाहका केवल मुँह खुला था, वाकी अपने सारे शरीरको वह एक कम्बलसे ढके हुए था। उसने कहा—'मैंने देखा है—इस ब्राह्मणने सारे रुपये चुका दिये हैं। थोड़ेसे रुपये बाकी होंगे। मैं सदा इसके साथ जाया करता था।' यह कहकर उसने एक-एक करके सारी बातें बतानी शुरू कर दीं। उसने कहा—'रुपये सेठने इसके खातेमें जमा नहीं किये हैं। वहीके दूसरे पन्नेमें एक दूसरे नामसे जमा है। मैं वहीका वह पन्ना बता सकता हूँ।' तब जज उसको साथ लेकर सेठकी दूकानपर पहुँचे। वहाँ जानेपर विहारी गवाहने सब बताना शुरू किया। वह जो-जो बोलता गया, जज वही देखते गये और अन्तमें जिस पन्नेमें जिस नामसे रुपये जमा थे, वह पन्ना मिल गया। जजने सारी रकम विहारीके बतानेके अनुसार जमा पायी। इसके बाद ज्यों ही जजने ऑख उठाकर देखा तो वहाँ कोई नहीं था। कच्चहरीमें जाकर जजने कड़ा फैसला लिखा और वहीं बैठे-बैठे स्तीफा लिखकर संन्यास ग्रहण कर लिया। —कु० ८०



पहले ललिताजीके दर्शन कीजिये

एक महात्मा वृन्दावनके पास बनमें बैठे थे। उनके मनमें आया कि सारी उम्र ऐसे ही बीत गयी, न भगवान्के दर्शन हुए, न उनके किसी सखाके ही हुए।

इसी समय कान्धी बद्ध छा गयी और बड़े जोरसे पानी वरसते लगा। किंतु वे महात्मा वहाँमें उठे नहीं, दो घटेतक छगातार मूसलधार पानी वरसता रहा, अब उनको ठड़ लगने लगी।

इसी समय उनको दिखायी दिया कि साड़ी पहने एक छोटी-सी सुकुमार लड़की पानीपर छप-छप करती आ रही है।

लड़की—‘महाराज ! आप यहाँ क्यों बैठे हैं ?’

महात्मा—‘ऐसे ही !’

लड़की—‘क्या आपको अभी किसीके दर्शन नहीं हुए।

महात्माको उसकी बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह लड़की कौन है और कैसे भेरे मनकी बात जान गयी। वे उसकी ओर देखने लगे, कुछ बोले नहीं, तब लड़कीने कहा—‘अच्छा, अब आप पहले ललिताजीके दर्शन करिये।’ इतना कहकर वह तुरत अदृश्य हो गयी। महात्माजी बड़े प्रसन्न हुए।

एक बार उनके चेचक निकल आयी। उस समय वे वृन्दावनसे दो सौ मील दूर थे। उनके बहुत प्रार्थना करनेपर एक सज्जन टैक्सी करके उनको वृन्दावन ले आये।

ज्यों ही उनसे कहा गया कि वृन्दावन आ गया, उनको भगवान्के दर्शन हो गये और वे इस गरीबको छोड़कर चले गये।—कु० य०

मेरे तो वहिन-वहनोई दोनों हैं

जनकपुरमें एक मिथिया नाक्षणी रहती थी। उसके एक छोटा लड़का था।

एक बार वह कुछ लोगोंके साथ चित्रमूर्ट जा रही थी। गत्तेमें पिथियाका लड़का अनेक एक जगलमें चला गया। वह मिल नहीं रहा था, किंतु पिथियाके मनमें यह दृढ़ मिथिया था कि ‘रामजी अपने सालेको कहीं खोने नहीं देंगे।’ (जनकपुरकी होनेके कारण वह अपनेको श्रीरामललाजीकी सास मानती थी।)

इधर लड़का जगलमें धूम रहा था कि उसको एक तेजस्विनी खी मिली। उसने बड़े प्यारसे उससे पूछा—‘भैया ! तुम मेरे साथ चलोगे ?’

लड़केने कहा—‘तू कौन है ?’

स्त्री—‘मैं तेरी वहिन हूँ।’

इसी समय एक सुन्दर तरुण पुरुष वहाँ आ पहुँचा और उसने कहा—‘यह अपने घर नहीं जायगा, मैं इसको अभी इसकी माँके पास पहुँचा आता हूँ।’

उधर मिथिया और उसके साथगले लोग भी रास्ता भूल गये थे। चलते-चलते उनको धास काटती हुई एक ली मिली। उसने उनको ठीक रास्ता बता दिया। आगे फिर एक पुरुष मिला। उससे भी रास्ता पूछकर वे लोग आगे बढ़े। वहाँ जानेपर मिथियाको उसका लड़का मिल गया। वह बहुत ही प्रसन्न था। जब उससे पूछा गया तब उसने बताया कि ‘मौं ! तू तो कहती थी कि तेरे कोई नहीं है। मेरे तो वहिन-वहनोई दोनों हैं।’ उसने सारा प्रसङ्ग सुनाया, जिसे सुनकर मिथिया गदगद हो गयी।—कु० य०

विश्वास करके लड़की यमुनाजीमें पार हो गयी

एक लड़की थी। एक दिन उसने एक पण्डितजीको कथा कहते हुए सुना कि 'भगवान्‌का एक नाम लेनेसे मनुष्य दुखर भवसागरसे पार हो जाते हैं।' उसे इन वचनोंपर दृढ़ विश्वास हो गया।

एक दिन वह यमुनाके उस पार दृढ़ी बैचने गयी। वहोंसे लौटते समय देर हो गयी। इसलिये माझीने उसे पार नहीं उतारा।

इसी समय लड़कीके मनमें आया कि जब एक नामसे दुस्तर भवसागरसे पार हुआ जाना है, तब यमुनाको पार करना क्या मुश्किल है। वस, वह विश्वासके साथ 'राघेकृष्ण-राघेकृष्ण' करती हुई यमुनाजीमें उत्तर गयी। उसने देखा कि उसकी साड़ी भी नहीं भीग रही है और वह चली जा रही है। तब तो और छियाँ भी उसीके

साथ 'राघेकृष्ण-राघेकृष्ण' कहकर पार आ गयी।

जब कथावाचक पण्डितजीको इस बातका पता लगा तब वे लड़कीके पास आये और कहने लगे 'क्या तुम मुझको भी इसी तरह पार कर सकती हो।' 'हाँ' लड़कीने कहा।

वे उसके साथ आये। यमुनामे उत्तरे, पर भीगनेके दरसे कपड़े सिकोड़ने लगे तथा छूटनेके भयसे आगे बढ़नेसे रुकने लगे। लड़कीने यह देखकर कहा— 'महाराज! कपड़े सिकोड़ोगे या पार जाओगे?' पण्डितजी-को विश्वास नहीं हुआ। इससे वे पार तो नहीं जा सके, पर उनको शलक-सी पड़ी कि दो सुन्दर हाथ आगे-आगे जा रहे हैं और वह उनके पीछे-पीछे चली जा रही है।

—२५७४—

हिंसाका कुफल

(लेखक—श्रीलीलाधरजी पाण्डेय)

कुछ समय पूर्व बलरामपुरमें ज्ञारखड़ी नामक शिव-मन्दिरके निकट बाबा जानकीदासजी रहते थे। वैराग्य पञ्च सदाचारमय जीवन ही उनका आदर्श था।

शिवमन्दिरके निकट पश्चिमकी ओर एक वृहत् सरोवर अब भी वर्नमान है। उसमें 'सुखी मीन जहँ नीर अगाधा' की भौति स्वच्छन्द रूपमें असंख्य मछलियों निवास करती थीं। मछलियोंके ऊपर बाबाकी करुणाकी छत्रछाया थी। फलस्वरूप किसीको भी तालाबकी मछलियोंको मारनेका साहस नहीं होता था, यद्यपि तालाबके किनारे मांस-हारियोंकी ही वस्ती थी। बाबाके अहिंसा-त्रतके फलस्वरूप मछलियोंको न मारनेकी धोषणा नगरमरमें व्याप्त थी।

एक बारकी बात है कि उस नगरमें एक मुसल्मान दारोगा स्थानापन होकर आया। बाबाकी धोषणा उसके कानोंमें भी पड़ गयी। कट्टर यत्न बाबाकी

इस धोषणासे जल उठा और उसने तालाबमें मछली मारनेका पक्का निश्चय कर लिया। क्रोधसे जलता हुआ वह बाबाकी हस्ती देखनेपर उतारू हो गया। फलतः उसने अपने सालेको मछली मारनेके लिये तालाबपर भेजा। किंतु 'जाको राखे साइयाँ मारि सके ना कोय' मध्याह्न-तक खोज करते रहनेपर भी एक मछली भी उसके हाथ न आ सकी। बाबाजीने सुना कि दारोगाजीका साला तालाबमें मछलियोंका शिकार कर रहा है, तो वे अविलम्ब उसके पास जाकर बोले—'वेदा! मैं किसीको भी इस तालाबकी मछलियोंको नहीं मारने देता हूँ। अपनी बंसी निकालकर चले जाओ। बेचारी गरीब मछलियोंको न मारो।'

बाबाकी बात सुनकर वह सरोष चला गया और घर पहुँचकर सारा समाचार दारोगासे कहा।

उसके क्यनपर दारोगा कोवसे तिलमिला उठा । दूसरे ही दिन अन्य सावनों और कर्मचारियोंके सहित मछलियोंका गिकार करनेके लिये उसने अपने सालेको यह कहकर भेजा कि ‘तुम चलो, काम शुल्क करो, हम अभी आते हैं ।’ उसने पहुँचते ही मछलियोंको मारना शुरू किया । वावाजी यह सुनते ही वहाँ पहुँचकर कुछ रोपमे अच्छे मेरे उमे फटकारने लगे—‘मैंने तुमको कल ही रोक दिया था, किन्तु तुमने मुझे अकिञ्चन समझकर नहीं माना । जानते नहीं हो, इस नालावकी मछलियोंके

रक्क श्रीहनुमान्‌जी हैं !’ तबतक दारोगा भी आ पहुँचा था । वह हनुमान्‌जीका नाम सुनते ही आगवनबूला हो उठा और वावाको मारनेके लिये अपने सालेको लड़कारा । वह वावापर झपटा ही था कि एक अज्ञात और अद्व्य अज्ञिने उस नराधमको तालावकी अशाह जलराजिमे विलीन कर दिया । सब लोग भयभीत हो गये और चारों ओर हाहाकार मच गया ।

काठमे मारे हुए दारोगाजी किसी भाँनि अवको निकलवाकर चुपचाप चले गये ।

साधु-महात्माको कुछ देकर आना चाहिये

(लेखक—हा० श्रीयतीशचन्द्र राय)

स्वामीजी श्रीभोलानन्दगिरिजी महाराज कटकमें वावू देवेन्द्रनाथ मुख्यकि घर ठहरे थे । कालेजके चार छात्र स्वामीजीके दर्शनार्थ वहाँ गये । छात्रोंने जाकर चरणोंमें प्रणाम किया । स्वामीजीने वडे मधुर स्वरमें कहा—‘बच्चो ! साधु या देवताके दर्शनार्थ जाना हो तब उन्हें देनेके लिये कुछ भेंट ले जानी चाहिये । नहीं तो, वडा अपराध होना है । तुमलोग यहाँ साधु-दर्शनके लिये आये हो तो मुझे कुछ दे जाना चाहिये ।’

छात्रोंने सोचा कि स्वामीजी कुछ रुपये चाहते हैं । वे मनमें सोचने लगे, हम गरीब छात्र रुपया-पैसा कहाँसे लायें । इननेमें ही स्वामीजी हँसकर बोले—‘देखो बच्चो ! रुपये-पैसेकी बान मत सोचो । मुझे तो तुम यह बचन

दे जाओ कि मेरी कही हुई चार वातें याद रखोगे और इनका पालन करोगे । कभी भूल हो जाय तो कुछ पैसे दण्डस्वरूप देवपूजन या गरीब-सेवामें लगा दोगे । वे चार वातें ये हैं—

- (१) कभी मिथ्या न बोलना ।
- (२) परचर्चा नहीं करना ।
- (३) जपथ नहीं करना और
- (४) चरित्रनाश कभी न होने देना ।

वस, हमारी यहीं शिक्षा है । छात्रोंने आठेंग स्त्रीकार किया । स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए । उन छात्रोंमें एक मै भी था । उन्होंने काल वात गया, पर स्वामीजीकी अमर-त्राणी मेरे हृदयमें बैठी हुई है ।

वावा ! शेर बनकर गीदड़ क्यों बनते हो ?

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

प्रसिद्ध संत श्रीतपसीवावाजी महाराज वडे घेर तपस्वी संत थे । जो भी रुखा-सूखा मिल जाता, उसीसे पेट भर लेते और निरन्तर भजन-ध्यानमें लगे रहते । सब कुछ त्याग होनेपर भी आपने देखा कि मुझसे और सब तो छूट गया, पर दूध पीनेकी

इच्छा बनी रहती है, दूध पिये बिना चैन नहीं पड़ती और इसमे भजनमें बड़ा बिल पड़ता है ।’ अत आपने एक दिन अपने मनको कई लताड़ देते हुए कहा—‘मैं आज प्रतिज्ञा करता हूँ, जीवनभर कभी दूध नहीं पीऊँगा ।’ इसीके साथ अन्न-फल-

फूल आदि खाना भी छोड़ दिया और सारे गरीरके वस्त्र भी उतारकर फेक दिये । वस्त्रोंकी जगह आप मूँजकी लगोटी बॉधा करते थे और गरीरपर भस्म लगाया करते थे । भोजनमें वृक्षोंके पत्ते धूनीमें उबालकर उनका गोला बनाकर खा लिया करते थे । इस प्रकारके कडे नियमोंका लगातार पैतालीस वर्षों-तक पालन होता रहा । हजारों दर्शनार्थी आते रहते, पर आप न तो किसीसे कुछ लेते और न किसीसे बातें करते । हर समय तपस्यामें सलान रहते । पैतालीस वर्ष पश्चात् एक दिन आपका मन दूधकी ओर चला और दर्शन करने आयी हुई एक माईसे आपने कहा—‘आज रात्रिको हम दूध पीयेंगे ।’ वह माई धनी घरनेकी थी और बड़ी ही बुद्धिमती भी थी । उसे यह पता लग चुका था कि महाराजकी जीवनभर दूध न पीनेकी प्रतिज्ञा की हुई है ।

माईने कहा कि ‘अच्छा महाराज ! रात्रिको दूध आ जायगा ।’ उसने पंद्रह-बीस घड़े भरकर

दूध मँगवाया और उनमे भीठा मिलाकर बाबाकी कुटियाके बाहर लाकर रखवा दिया । जब बाबा कुटियामें तपस्या करके बाहर निकले, तब माईने हाथ जोड़कर कहा—‘महाराज । मैं लोभी नहीं हूँ । आपके लिये दूधके घड़ेपर घड़े भरकर लायी हूँ । चाहे जितना दूध आप पीयें । दूधकी कमी नहीं है । पर प्रभो ! एक बात याद रखिये । आज आप शेरसे गोदड़ बनने क्षेत्र जा रहे हैं ? पैतालीस वर्षतक जिस प्रतिज्ञाको आपने निभाया, अब अन्तिम समय उसे भंग करके कायरताका परिचय क्यों दे रहे हैं ?’ बाबाकी आँखें खुल गयीं । अरे, मन कितना धोखेबाज है, कितना चालाक है । मैं समझ गया । बाबा माईके चरणोंमें झुक गये । ‘देवी ! तुमने इस पापी मनके जालसे मुझे बचा लिया । नहीं तो, मैं आज मारा जाता । इस मनीरामका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये । यह न जाने कब धोखा दे दे ।’

भगवतीने कन्यारूपसे टटिया बाँधी

(लेखक—श्रीहरिश्चन्द्रदासजी बी०५०)

भक्तशिरोमणि कवित्र रामप्रसाद सेनने अपने जीवन-कालमे ही देवी उमाका साक्षात्कार किया था । इतनी थी उनकी प्रगाढ़ भक्ति एवं भगवतीके चरणोंकी लवलीनता । कहा जाता है कि एक बार आपने अपनी कुटियाके लिये कुछ बौसके डठल, धास-फूस एवं डोरी लेकर टटिया (वेडा) बौधनेका उपक्रम किया । समयथा अपराह्न काल । भक्तप्रवर्णने सोचा कि क्यों नहीं मौं उमा (उनकी लड़कीका नाम) से ही सहायता लेकर वेडा बौध लिया जाय । उन्होने ‘मौं उमा, मौं उमा’ कहकर पुकारा । मौं उमा (उनकी लड़की) उस समय अपनी सखियोंके घर खेलने गयी थी । उनको इसका क्या पता था । वे तो दो-चार बार मौं उमाको पुकारकर अपने कार्यमें लग गये । सज्जीत उनके हृदयसे नि सृत

हो रहा था, जिसमे उनकी तपी-तपायी भक्तिका भाव-स्रोत फूट रहा था और वे थे भावमें तल्लीन । इस पारसे डोरीको उन्होने दिया, परतु उस ओरसे डोरी तो आनी ही चाहिये । नहीं तो, बेड़ा बँधता किस तरह ! भगवती उमाने अपने बेटेके कष्ट एवं निश्छलताको देखा और मौं दौड़ पड़ी सतानकी मददके लिये । फिर तो क्या था । दोनों ओरसे डोरी आ-जा रही थी और इस तरह वह बेड़ा बँधकर सज्जीत-लहरीके शेष होते-होते तैयार हो गया । मौंकी कैसी विडम्बना ? सतानकी पुकारपर क्षणभरमे दौड़ पड़ना और फिर ओर्खोंसे ओङ्कल ।

ठीक उसी समय आती है उनकी कन्या मौं उमा । उमाने आते ही आश्र्वयसे पूछा कि ‘बाबा ! क्या ही बढ़ियों बेड़ा बौधा है आपने, क्योंकर आपसे अकेले ऐसा सम्भव हो

पाया। मिताने स्मित हँसी हँसकर कहा कि 'वेटी! बिना तेरी मददके यह क्योंकर सम्भव हो पाता, तूने ही तो उस ओरमे डोरी दे-देकर मेरी सहायता की और तभी तो यह सुन्दर वेडा बैधकर सामने है।' कन्याके आश्र्वयका कोई ठिकाना नहीं रहा, जब उसने अपनी मददकी बातें सुनीं तब बतलाया कि वह तो अपनी सहेलियोंके साथ खेल रही थी। वह तो अभी-अभी वेडाके बैध जानेपर आर्थ है। पहले तो रामप्रसादजीने सहसा त्रिव्यास ही नहीं किया। परतु कन्याके बात-बात कहनेपर उनको बड़ा ही आश्र्वय हुआ और तब भक्तने समझा कि भगवती उमाने ही आकर उनकी सहायता की थी और भक्तप्रब्रह्म फृट-फृटकर रोने लगे एवं सज्जीनलहरी फिर पूर्वकी तरह प्रवाहित हो चली। यह उनके जीवनकी एक सच्ची किंतु अलौकिक घटना है, जिसका उनके एक तत्सम्बन्धी सङ्गीतसे भी पता चलता है—

अद्भुत उदारता

बगालके सुप्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी सन्तुरुप अधोनायजीके पिता श्रीयादवचन्द्र राय फारसी तथा सत्कृत भागके उच्च-कोठिके त्रिद्वान् थे, ईश्वरभक्त थे और अत्यन्त दयालु थे। वे बहुत ही त्यागी तथा परिप्रहरहित व्यक्ति थे। एक गत्रि उनके घरमें चोर घुमे। चोरोंने घरका एक-एक कोना छान मारा, किंतु ले जाने योग्य कोई वस्तु उन्हें

मन केन मार चरण छाड़ा ॥

ओ मन भाव शक्ति, पावे मुक्ति, बौद्धो दिया भक्ति दड़ा समय थाकने नादेखले मन, केमन तोमार कपाल पोड़ा मा भक्ते छलिते, तनया रूपेते बौद्धेन आसि घरेर वेडा जैर्ह ध्यावे एक मने, सेहूं पावे कालिका तारा नाई देखो कन्यारूपे, रामप्रसादेर बौद्धछे वेडा ॥१॥

अर्थ यों है—

रे मन ! तुमने मौंके चरणको क्यों छोड़ दिया ? बो मन ! अक्तिरूपिणी मौंका चिन्तन करो, तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी। भक्तिरूपी रसीमे उसे बौद्ध लो। रे मन ! तुमने समय रहते मौंको नहीं देख पाया, तुम्हारा कैसा जला हुआ कपाल था। भक्तको छलनेके लिये मौंने कन्या रूपमें आकर घरका वेडा बौद्ध दिया। जो एक मनसे मौंका ध्यान करेगा, वही मौं कालिका ताराको पायेगा। तभी तो मौं उमाने कन्या-रूपसे रामप्रसादका वेडा बौद्ध।

मिली नहीं। श्रीयादवचन्द्रजी जाग रहे थे। चोरोंकी गति-विधि देख रहे थे। वे धीरेसे उठे और चिलममे तम्बाकू भरकर हुक्का लिये चोरोंके सामने आ खड़े हुए। नम्रतापूर्वक बोले—'भाड़यो ! आपलोंगोने परिश्रम बहुत किया, किंतु लाभ कुछ नहीं हुआ। अब कृपा करके तम्बाकू तो पीते जाइये।' वेचारे चोर तो टज्जा और ग्लानिके मारे श्रीयादवचन्द्रजीके पैरोंपर ही गिर पड़े।

सेवाका अवसर ही सौभाग्य है

श्रीईश्वरचन्द्र त्रिव्यासागर अपने मित्र श्रीगिरीगचन्द्र त्रिव्यारत्नके साथ बंगालके कालना नामक गाँव जा रहे थे। मार्गमें उनकी दृष्टि एक लेटे हुए मजदूरपर पड़ी। उसे हैजा हो गया था। मजदूरकी भारी गठरी एक और लुढ़की पड़ी थी। उसके मैले कपड़ोंसे दुर्गन्ध आ रही थी। लोग उसकी ओरसे मुख फेरकर बहाँसे शीत्रनापूर्वक चले जा रहे थे। वेचारा मजदूर उठनेमें भी असमर्थ था।

'आज हमारा सौभाग्य है।' त्रिव्यासागर बोले। 'कैसा सौभाग्य ?' त्रिव्यारत्नने पूछा।

त्रिव्यासागरने कहा—'किसी दीन-दुखीकी सेवाका

अवसर प्राप्त हो, इससे बढ़कर सौभाग्य क्या होगा। यह वेचारा यहाँ मार्गमें पड़ा है। इसका कोई स्वजन समीप होना तो क्या इसको इसी प्रकार पड़े रहने देता। हम दोनों इस समय इसके स्वजन बन सकते हैं।'

एक ढरिद्र, मैले-कुचैले दीन मजदूरका उस समय स्वजन बनना, जब कि हैजे-जैसे रोगमें स्वजन भी दूर भागते हैं—परतु त्रिव्यासागर तो थे ही दयासागर और उनके मित्र विद्यारत्न भी उनमें पीछे कैसे रहते। त्रिव्यासागरने उस मजदूरको पीठपर लादा और प्रियारत्नने उसकी भारी गठरी सिरपर उठायी।

दोनों कालना पहुँचे। मजदूरको रहनेकी सुव्यवस्था की, मजदूर दो-एक दिनमें उठने-बैठने योग्य हो गया, तब एक वैद्यजीको चिकित्साके लिये बुलाया और जब उसे कुछ पैसे देकर वहाँसे लौटे।

नौकरके साथ उदार व्यवहार

श्रीताराकान्त राय बगालके कृष्णनगर राज्यके उच्च पदपर नियुक्त थे। नरेश उन्हे अपने मित्रकी भाँति मानते थे। बहुत समयतक तो वे राजभवनके ही एक भागमें निवास करते थे। उस समय जाडेजी ऋतुमें एक दिन वे बहुत अधिक रात बीतनेपर अपने शयन-कक्षमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि उनका एक पुराना सेवक उनकी शाय्यापर पैतानेकी ओर सो रहा है। श्रीरायने एक चटाई उठायी और उसे बिछाकर चुपचाप भूमिपर ही सो गये।

कृष्णनगरके नरेशको सबेरे-सबेरे कोई उत्तम समाचार मिला। प्रसन्नताके मारे नरेश ख्य श्रीरायको वह समाचार सुनाने उनके शयन-कक्षकी ओर चले आये। नरेशने

उनका नाम लेकर पुकारा, इससे रायमहोदय हड्डबड़कर उठ बैठे। शाय्यापर सोया नौकर भी जाग गया और डरता हुआ दूर खड़ा हो गया।

रोजाने समाचार सुनानेसे पहले पूछा—‘राय महाशय ! यह क्या बात है ? आप भूमिपर सोते हैं और सेवक शाय्यापर ।’

श्रीरायने कहा—‘मैं रातमें लौटा तौ यह शाय्याके पैताने सो गया था। मुझे लगा कि इसका स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा अथवा यह बहुत अधिक यक गया होगा काम करते-करते। शाय्यापर तनिक लेटते ही नींद आ गयी होगी। जगा देनेसे इसे कष्ट होता और चटाईपर सो जानेमें मुझे कोई असुविधा थी नहीं।’

भगवान्‌का विधान

एक समयकी घटना है। महात्मा विजयकृष्ण गोखामी अध्यात्मका प्रचार कर रहे थे; दैवयोगसे वे लाहौर जा पहुँचे। एक धर्मशालामें ठहरे हुए थे। आधी रातको अचानक नींदका परित्याग कर उठ बैठे। वे चिन्तामन थे।

‘मेरा जीवन पाप-चिन्ताके अधीन है। कहनेके लिये तो मैं हूँ उपदेशक, पर मनमें पापका ही राज्य है। भगवान्‌की भक्ति नहीं मिल सकी मुझे।’ उनका रोम-रोम कॉप उठा। वे पश्चात्तापसे क्षुब्ध थे। वे आधी रातमें अपने कमरेका दरवाजा खोलकर राजपथपर गये और योड़ी देरमें भगवती रावीके तटपर आ पहुँचे।

नदीका वेग शान्त था। जल स्थिर था। निर्जन तटकी विकरालता बड़ी भयानकी थी। विजयकृष्ण गोखामी महोदयने जलमें दाहिना पैर डाला ही था कि वे सहसा चौंक उठे एक अपरिचित आवाजसे।

‘क्या करते हो ? लौट जाओ। आत्महत्या पाप है।’ किसीने दूरसे ही सावधान किया।

‘मैं नहीं लौट सकता। इस शरीरको रावीकी मध्यधारामें प्रवाहित करके ही रहूँगा। इसने आजतक पाप-ही-पाप कमाये हैं। दुनियाको सत्य-पालनका उपदेश देकर ख्य असत्यका आचरण किया है इसने।’ महात्मा विजयकृष्ण अपने निश्चयपर दृढ़ थे।

‘वत्स ! शरीर-नाशसे पापका नाश नहीं होता है। यदि तुम ऐसा समझते हो तो यह तुम्हारी भूल है। तुम्हारे शरीर-नाशका समय अभी नहीं आया है। तुम्हें भगवान्‌की कृपासे अभी बड़े आंख्यक कार्य करने हैं। भगवान्‌का विधान पहलेसे निश्चित रहता है। उसमें हीरफेर असम्भव है। तुम्हारा काम केवल इतना ही है कि विश्वेश्वर परमात्माकी लीलाके दर्शन करो।’ एक महात्माने तत्काल प्रकट होकर उनको आत्महत्यासे रोका।

महात्मा विजयकृष्ण गोखामीकी निराशाका अन्त हो गया अपरिचित महात्माके उद्बोधनसे और वे धर्मशालमें लौट आये।

सर्वमें भगवद्गीत

नाग महाशयकी झोंगड़ी पुरानी हो चुरी थी। उसकी मरम्मत आवश्यक थी। मजदूर बुआया गया। परन्तु जब वह टनके घर पहुँचा तो नाग महाशयने उसे हाथ पकड़कर चटाईपर बैठाया। आप नम्बारु भर लाये चिन्हसं उसको पीनेके लिये। वह छाप्पर चढ़ने आ तो गेंगे लग गये—उनमें धृप्रम भगवान् में लिये श्रम करें।

वहुते प्रभन करनेपर भी मजदूर सका नहीं, छप्पर चढ़ गया तो आप छत्ता लेकर उसके पीछे जा खड़ हुए। उसके मन्त्रकरण पर्मीना आते ही हाथ जीड़ने लगे—‘आप यक गये हैं। अब कृपा करके नीचे चलिये। क्रम-पे-क्रम नम्बारु तो पी लीजिये।’

इसका परिणाम यह, हुआ था कि जब ये घरमे कर्ही चले जाते थे, तब मजदूर इनके घरकी मरम्मतका काम करने थे।

× × ×

‘आप बैठिये! बैठिये भगवन्! आपका यह सेवक है न?’ आपकी मेवा करनेके लिये। नौकापर बैठते तो नाग महाशय मल्लाहुके हाथमे ढाँड़ ले लेने थे। मल्लाहुको बड़ा मजाच होता था कि वे बैठे रहे और पक्क परोपकारी संपुद्दर पश्चिम करता रहे। परन्तु नाग महाशयसे यह कैसे महा जारि कि उनकी मेवाकुरु लिये भगवान् श्रम करे आग समी न्दर्पोम भगवान् ही है; यह उनका पिचास-पिचास नहीं, दृढ़ निश्चय था।

ठीकरी पैसा वरावर

परम्परा गमकृष्णदंपत्ति-किलारे बैठ जाते थे एक ओर न्योग्य-पैसोंका देर लगाकर और पक्क और ककड़ोंकी देरी गवाकर। एक मुद्रीमे पैसे और एकमे ककड़लेकर वे कहते—‘यह ककड़ यह पैसा’ और फेक देते दोनों मुद्री गङ्गामें।

‘ये ककड़ वे पैसोंकी मुद्रीको देवकर कहते और

फिर ककड़ोंकी मुद्रीको देवकर कहते—‘ये पैसे।’ दोनों मुद्री फिर गङ्गाजीमे विर्जित हो जाती।

परमहमदेवके इस अन्यासके फर्छखरूप ऐसा लिखित हो गया कि उनके शरीरमे कोई वातु मूल्ये हृ जाती तो वह अह सूना पड़ जाता। वहुत दैर्घ्य उस अङ्गकी चेना लौटनी।

शरीरका सदुपयोग

ओर दीख पड़ा। स्वामीजी प्रसन्नतासे नाच उठे।

‘भगवानने ठीक समयपर इस ओरको भेजा है। वेचारा भूखा है। मैं भी भूखा हूँ।’ पर मैं अपने शरीरको इसमे बचाऊँ क्यों? इम शरीरके द्वाग मैं इश्वरका साक्षात्कार नहीं कर सका, इसलिये इसको रखनेका कोई उद्देश्य ही नहीं है।

स्वामीजीने ऐसा सोचकर अपने आपको सौंप देनेका निश्चय किया। वे सिंहके सामने खड़े हो गये उसके खाद्यरूपमें, पर जोकी हिंसात्मक वृत्ति उनके दर्शनसे बढ़ल गयी और वह दूसरे रास्तेपर चला गया।

उन्होंने बैठमे प्रवेश किया। मूर्ख अस्तावृलको जो चुके थे। समस्त बैठ अन्यकोसे पुरिष्ठ था। स्वामीजी की भूखमे बिहळ थे। थोड़े ही समयके बाद उन्हें एक

उन्हें बैठ दूसरे रास्तेपर चला गया।

आत्मसम्बन्ध

स्वामी रामतीर्थ जापानसे अमेरिका जा रहे थे। प्रशान्त महासागरका वक्ष विदीर्ण करता हुआ उनका जहाज सान फ्रासिसकोके एक बंदरगाहपर आ लगा। सब यात्री उतर गये। जहाजके डेकपर स्वामी रामतीर्थ ठहल रहे थे। ऐसा लगता था कि वे जहाजसे उतरना ही नहीं चाहते हो। एक अमेरिकिन सज्जन उनकी गति-विधिका निरीक्षण कर रहे थे।

‘आपका सामान कहाँ है? आप उतरते क्यों नहीं हैं?’ अमेरिकिन सज्जनका प्रश्न था।

‘जो कुछ मेरे शरीरपर है उसके सित्रा मेरे पास दूसरा कोई सामान नहीं है।’ भारतीय सन्यासीके उत्तरसे जागतिक ऐश्वर्यमें मग्न रहनेवाले अमेरिकिनका आश्र्वर्य बढ़ गया। स्वामीजीका गेहुआ वक्ष उनके गौर-वर्ण, तस्त्वर्ण शरीरपर आन्दोलित था मानो पाताल देशकी राजसिकतापर विजय पानेके लिये सत्यका अरुण केतन फहरा रहा हो। वे मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे, ऐसा लगता था मानो उनके हृदयकी करुणा नये विश्वका उद्घार करनेके लिये विकल्प हो गयी हो।

‘आपके रूपये-पैसे कहाँ हैं?’ सज्जनका दूसरा प्रश्न था।

‘मैं अपने पास कुछ नहीं रखता। समस्त जड़-चेतनमे मेरी आत्माका रमण है। मैं अपने (आत्म) सम्बन्धियोंके प्रेमामृतसे जीवित रहता हूँ। भूख लगनेपर

कोई रोटीका टुकड़ा दे देता है तो प्यास लगनेपर पानी पिला देता है। समस्त विश्व मेरा है। इस विश्वमें रमण करनेवाला सत्य ही मेरा प्राण-देवता है। कभी पैड़के नीचे रात कटती है तो कभी आसमानके तारे गिनते-गिनते ओंखे लग जाती है।’ त्याग-मूर्ति रामने वेदान्त-तत्त्वका प्रतिपादन किया।

‘पर यहाँ अमेरिकामे आपका परिचित कौन है?’ स्वामीजीसे अमेरिकिन महानुभावका यह तीसरा प्रश्न था।

‘(मुसकराते हुए बोले) —आप। भाई! अमेरिकामे तो केवल मैं एक ही व्यक्तिको जानता हूँ। चाहे आप परिचित कह लें या मित्र अथवा साथीके नामसे पुकार लें और वह व्यक्ति आप हैं। महात्मा रामतीर्थने उनके कंधेपर हाथ रख दिया। वे सन्यासीके स्पर्शसे धन्य हो गये। स्वामीजी उनके साथ जहाजसे उतर पडे। नयी दुनियाकी धरतीने उनकी चरण-धूलिका स्पर्श किया, वह धन्य हो गयी।

‘स्वामी रामतीर्थ हिमालयकी कन्दराओंसे उदय होनेवाले सूर्यके समान हैं। न अग्नि उनको जला सकती है, न अख-शब्द उनका अस्तित्व नष्ट कर सकते हैं। आनन्दाश्रु उनके नेत्रोंसे सदा छलकते रहते हैं। उनकी उपस्थितिमात्रसे हमे नवजीवन मिलता है।’ अमेरिकिन सज्जनके ये उद्गार थे भारतीय आत्ममानव-के प्रति।

मेहतरके लिये पगड़ी

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त ‘हरि’)

दिल्लीमें अनेकों प्रसिद्ध लाला हुए; परतु जो लालई लाला महेशदासको नसीब हुई, उसका शताश भी और किसीके हिस्सेमें नहीं आया। दिल्लीके वच्चे-वच्चेकी जवानपर उनका नाम था और दिल्लपर

उनकी छाप। वे प्रतिष्ठित घरानेके थे, धन-वैभवसे सुसम्पन्न थे; दूर-दूरतक उनकी पहुँच थी;—यह सब ठीक, परतु उनकी ख्याति इनमेसे एकपर भी आश्रित न थी। उसका रहस्य तो था उनकी परदुःख-कातरतामें,

प्रत्येकके लिये सदैव सर्वत्र सहज सुलभ असीम आर्मीयतामे । जन-जन उनके घरको अपना घर और उनके तन-मन-धनको अपना तन-मन-धन समझता था, उनके साथ एकान्त आर्मीयताका अनुभव करता था ।

ठीक-ठीक कैगे थे लाला महेशदास^१—इसका कुछ अनुमान निम्नलिखित उनकी एक जीवन-झाँकीसे हो सकेगा—

एक दिनकी बात है । सुबहके समय जब लाला महेशदासके यहोंकी मेहतरानी उनके यहाँ मैला कमाने आयी, तब वह एकदम उदास थी । उसका मुँह विल्कुल उत्तर द्वारा दुआ था । आँखें मुर्झायी-मुर्झायी, सूखी-सूखी और दीर्घदृढ़ी-सी लाल थीं । ऐसा लगता था जैसे घटों उसे लगातार रोते रहना पड़ा हो और अभी भी बाढ़ द्याये द्वारा हों । लाला महेशदासकी धर्मपत्नी लालाइनने उमे देखा तो तुरत समझ गयी कि कोई बात है । सहानु-भूनिमरे खरमें पूटा—‘क्यों, क्या बात है ?—ऐसी क्यों हो रही है ?’

विरे बाढ़ सहानुभूतिका सर्व पाते ही पुन. वरस पड़े, गेते रोते मेहतरानी बोली—

‘कुछ न पूछो बहूंजी ! हम तो मर लिये । जिसकी आवश्यकी उसका रहा क्या !’

‘कुछ बता भी तो बात क्या है ?’

लालाइनके स्वरमें अपनायत और प्रखर हुई ।

मेहतरानीने छूटते-उनराते ठंडी सौंस भरते कहा—

‘क्या बताऊँ बहूंजी ! मौत है मौत ! आज तुम्हारे मेहतरको जान-बाहर कर देंगे । पचायन है तीसरे पहर मैदानमें ।’

‘जान-बाहर कर देंगे ! आखिर उसका अपराध^२ ?’

‘अपराध तो है ही बहूंजी ! बिना अपराध सजा थोड़े ही मिलती है—पच-प्रमेसरके दरवारसे !’

‘फिर भी ऐसा किया क्या उसने ?’

‘उनका किया मेरे मुँहपर कैसे आये बहूंजी ! आप भी औरत हैं । मर्द लाख बुरा हो, पर औरतके मुँहपर उसकी बुराई कैसे आये ! फिर भी इतना मुझे भरोसा है कि यदि अबकी बार माफी मिल जाय तो वे आगे सदा नेक चलनसे चलेंगे । और नहीं तो, बहूंजी ! हम दीनके रहेंगे, न दुनियाके । बाल-बच्चे बीरान हो जायेंगे । तुम्हारा ही भरोसा है । लालाजीसे कह देखो तनिक ।’

इतना कह मेहतरानी छट-छटकर रोने लगी । रह-रहकर उसकी सुविकियोंका खर आता था और लालाइनका कलेजा चीरा जाता था । लालाइनने कुछ क्षण सोचा, फिर बोली—

‘भरोसा तो रखना चाहिये भगवान्‌का ! हमारी विसात क्या ? पर दू चिन्ता न कर । भगवान् सब भली करेंगे ।’

मेहतरानीके कमा कर चले जानेके पश्चात् लालाइन लालाजीके पास आयी और उन्हें उसकी सारी व्यथा कह सुनायी । कुछ-कुछ भनक तो बैठकमेवैठे लालाजीके कानोंमें पहिले ही पड़ गयी थी, अब सारी बात खुलासा समझ वीरेसे दु खभरे खरमें बोले—

‘दिल तो मेरा भी बहुत भरा आ रहा है, पर मामला बेदब्र है । पार पड़ती दिखायी नहीं देती ।’

‘यह सब मैं नहीं जानती । इसे तो किसी भी कीमतपर पार पड़ना ही होगा । मेरे हल्कमें तो ग्रास तब ही चलेगा, जब यह मामला निवट जायगा । मरनेसे बदतर हो रही है बेचारी मेहतरानी । जबतक वह जी न जाय, मेरा जी भी आता-जाता ही रहेगा ।’

लालाइनने रुआसी-सी आवाजमें, पर साथ ही अपने चिर-परदु ख-कातर पतिपर गर्व भी अनुभव करते हुए कहा ।

लाला महेशदास सुनकर चुप हो रहे । उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया । पर उनके माथेपर पड़े बलों

और उनकी गम्भीर मुख्यक्रियासे स्थग झलक रहा था कि वे गहरे सोचमे पड़ गये हैं।

सोचते-सोचते जाने क्या सूझा कि लालाजी खिल पड़े। आपद वही चीज हाय लग गयी जिसकी उन्हे तलाश थी। सोचके चगुलसे छूट अब वे खिले-खिले अपने नित्यप्रतिके कार्मोंमे लग गये, पर कभी-कभी उनके चेहरेपर एक विवर-ज्यया-सी झलक मार जाती थी।

तीसरे पहर वार्षी जुनवाकर लालाजी उसी मैटानमे पहुँचे, जहाँ पेड़नले मेहतरोकी पचायन हो रही थी। पैरोंमे सलेमगाही जोड़ा, चूड़ीदार पाजामा, बारीक मलमलका कुरता, उसपर तजेवका अंगरखा और सिरपर ब्रकाशक सफेद पगड़ी पहिने अपनी उत्तमोत्तम वेपभूपामे थे वे उस समय। गाड़ीमे उनकर ज्यों ही वे मेहतरोकी पचायतमे पहुँचे, उन्हे देखते ही पंचोसहित सब मेहतर उठ खड़े हुए। ‘लाला महेशदास आये’ ‘लाला महेशदास आये’ का गोर मच गया, ‘लालाजी। क्या हुक्म है? लालाजी! क्या आज्ञा है?’ की आवाजे चारों ओरसे आने लगी।

लालाजीने सबसे राम-राम किया और फिर सबसे बैठनेकी प्रार्थना कर आप भी अपने घरके मेहतरकी बगलमे, जो बैचारा एक कोनेमे ओख छुकाये, सिर लटकाये बैठा था, जा बैठे। ‘है! है! लालाजी’ यह आप क्या करते हैं? ‘हमें कौंठोमे क्यों घसीट रहे हैं’ आठि लोगोंके लाख कहनेपर भी लालाजीने किसी की एक नहीं मानी। यह कहते हुए कि ‘भाइयो। आज तो मेरी जगह यहाँ इसके बराबर ही है’ अपने घरके मेहतरकी बगलमे ही बैठे रहे।

आखिर समस्त पचायतके भावोंको मूर्तरूप देना हुआ सरपच लालाजीसे बोल—

‘कहिये लालाजी! कैसे दया की? क्या हुक्म है?’

लालाजीने यह सुनकर उत्तरमे अपनी पगड़ी सिरसे

उतारकर पंचोंके पैरोंमे रख दी और भरे गलेसे गिडगिडाते हुए कहा—

‘भाइयो! आपका अपराधी (घरके मेहतरकी) और सकेत करते हुए) यह नहीं, मैं हूँ। अब यह पगड़ी आपके चरणोंमे है। चाहे मारिये, चाहे जिलाइये। बखाशिये, चाहे सजा दीजिये। वेडजर हूँ। आपके तावे हूँ।’

लालाजीकी बातसे पचायनमे सन्नाटा था गया। पच भी बड़े चक्करमे पड़े। लालाजीके मेहतरको जात-बाहर करनेका लालाजीके आनेसे पहिले ही लाभग अन्तिम निश्चय हो चुका था। पर अब बात आ पड़ी थी बीचमे कुछ और, लालाजीकी पगड़ी मौन पड़ी हुई भी एक-एक ढिलमे हलचल मचा रही थी। कुछ क्षणोंके लिये पचोंने परस्पर विचार-विनिमय किया और फिर सरपच गम्भीर आवाजमे बोल—

‘कसूर तो इसका (लालाजीके मेहतरका) ऐसा था कि किसी मटपर भी माफ नहीं किया जा सकता था। पर यह पगड़ी आडे आयेगी, इसका हमे सपनेमे भी गुमान नहीं था। लाला महेशदासका हुक्म सिरमायेपर। वे किरणा करके अपनी पगड़ी अपने सिरपर रखें, उसे यूँ पड़ी देख हम उरज रहे हैं, लज्जासे कट रहे हैं, उनके मेहतरको माफ किया जाता है।’

सरपचके फैसला सुनाते ही लालाजीने पचोंको धन्यवाद देते हुए अपनी पगड़ी उठाकर पहिन ली। लालाजीके घरके मेहतरकी खुड़ीका तो कोई ठिकाना ही न था। लालाजीके इस मान-मर्यादा-त्यागके बलपर अनायास छुटकारा पा वह कृतज्ञतासे गदगद होकर लालाजीके चरणोंमें लोट गया। लालाजी सात्त्विक संकोचमें पड़कर बोले—

‘मेरे पैरो नहीं भाई! पंचोंके पैरों पड़, जिन्होंने मुझे माफ किया। मेरी माने तो अब सदा आदमी

वने रहियो और पंचोंको कर्मी कोई शिकायतका अवसर न दीजियो ।”

अपने गुणगानकी बौद्धारमे ‘अच्छा भाइयो । अब आज्ञा ? राम-राम !’ कह काम बनानेके लिये प्रभुको लाल-ज्ञान धन्यवाद देते हुए, वर्धीमें बैठ, लालजीं घर लाए । घरपर लालाइन लालजीकी मेहकी-सी बाट जोह रही थीं । देखने ही बोली—

‘कहिये, क्या रहा ?’

‘सब ठीक ही गया । उसे माफ कर दिया गया । अब जाकर प्रभाड पाओ गनी ! तुम्हारी प्रेरणा व्यर्थ थी ऐड ही जानी ।’

‘पर किस कीमतपर ?’ लालाइन फिर बोलीं । ‘इम कीमतपर ।’

मिस्मे पगड़ी उनार खूँटीपर टोंगते हुए पगड़ीकी ओर सफेल करते हुए लाला महेशदास बोले । ऐसा करते पक रेखा क्षीण-सी उनके मुखपर आयी और क्षणावर्षमें ही चिल्हस हो गयी ।

‘ओह मेरे देवना, वन्य हो तुम !’

चीखनी हुई-सी लालाइन पागल बनी लालजी के चरणोंमें छिप गयी । आन्तरिक उल्लाससे ओत-प्रोत होकर लालाइनको लालजीने बलपूर्वक उठाया और गम्भीर म्लेह-निःश्वस एव कृतज्ञानामिश्रित स्वरमें बीरे-बीरे बोले—

‘वन्य मैं नहीं, तुम हो, देवि । जिसकी सत्-प्रेरणामें मैं एक तुच्छ वनिया-मान-मर्यादाका मोह त्याग कर्तव्यग्रालन कर सका ।’

तो ऐसे थे लाला महेशदास ।

आत्मप्रचारसे विमुखता

(लेखक—श्रीहृषीगोपालजी मायुर)

मुप्रमिद्र विद्वान् सर रमेशचन्द्र दत्त इतिहास-मर्मज्ञ पुम्पथे । उन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की थी । एक बार वे श्रीअरविन्दके पास गये और उनमें उनकी कुछ रचनाओंकी पाटुलिपियां पढ़नेको मांगीं ।

ये रचनाएँ रामायण तथा महाभारतका अग्रेजी अनुवाद था । इसके पहले दत्त महाश्यामे भी महाभाग्न, रामायणका अग्रेजी अनुवाद किया था और उम अनुग्रामको लड्डनके एक प्रकाशकने प्रकाशित करनेके लिये ले लिया था । अब श्रीअरविन्दके इस अनुवादको पढ़कर दत्तके प्रिस्मयकी सीमा नहीं रही । अरविन्द नहीं दिखा रहा था और आत्म-परिचयकी स्थृहा भी उन्हें नहीं थी । यह तो सब था ही, पर अपनी रचनाके सम्बन्धमें भी वे उत्तरासीन थे । इतना जानते हुए भी गुणशाही और उदार-हृदय दत्त महाश्यामे मुक्तकण्ठसे उनसे कहा—‘ऋषिवर ! मैंने भी यह अनुवाद किया है और आत्म-

लंडनकी ‘एवरमिन्स लाइब्रेरी’ को प्रकाशनार्थ भेजा है । बहुत दिन हो गये, आयठ वह छप भी गया होगा, परतु आपका यह अनुवाद इतना सुन्दर हुआ है कि मेरे उम अनुवादको प्रकाशित करानेमें मैं अब लज्जाका अनुभव कर रहा हूँ ।’

सर रमेशचन्द्रके मुखसे यह बात सुनकर यदि अन्य कोई होता तो फला न समाता । परंतु श्री-अरविन्द तनिक भी उछसित नहीं हुए, बल्कि शीलभावमें बोले—‘यह सब मैंने छानेके हेतु छप सकेगा ।’

फिर भी दत्त महाश्य अपने लोभका सवरण नहीं कर सके । वे वार-वार मुक्त कण्ठसे कहते रहे—‘इस अमूल्य सामग्रीका प्रकाशन तो हो ही जाना चाहिये ।’ परतु श्रीअरविन्द किसी प्रकार भी राजी नहीं हुए ।

कहना नहीं होगा कि श्रीअरविन्दने अपने किया होगा । वह सब यदि प्रकाशमे आ जाती तो आज जीवनमें न जाने किन्तनी अमूल्य सामग्रीका निर्माण साहित्यकी किन्तनी अभिवृद्धि हुई होती ।

मुझे अशर्पियोंके थाल नहीं, मुट्ठी भर आया चाहिये

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

पण्डित श्रीरामजी महाराज सस्कृतके महान् धुरन्वर विद्वान् थे । सस्कृत आपकी मातृभाषा थी । आपका सारा परिवार संस्कृतमे ही बातचीत करता था । आपके यहाँ सैकड़ों पीढ़ियोंसे इसी प्रकार संस्कृतमें ही बातचीत करनेकी परम्परा चली आयी थी । आपके पूर्वजोंकी यह प्रतिज्ञा थी कि हम न तो संस्कृतको छोड़कर एक शब्द दूसरी भाषाका बोलेंगे और न सनातनधर्मको छोड़कर किसी भी मत-मतान्तरके चक्करमे फँसेंगे । मुट्ठी-मुट्ठी आठा माँगकर पेट भरना पड़े तो भी चिन्ता नहीं, भिखारी बनकर भी देववाणी संस्कृतकी, वेद-शास्त्रोंकी और सनातन धर्मकी रक्षा करेंगे । इस प्रतिज्ञाका पालन करते हुए पं० श्रीरामजी महाराज अपनी धर्मपत्नी तथा बाल-वच्चोंको लेकर श्रीगङ्गाजीके किनारे-किनारे विचरा करते थे । पाँच-सात मील चलकर सारा परिवार गाँवसे बाहर किसी देवमन्दिरमे या वृक्षके नीचे ठहर जाता । ये गाँवमें जाकर आठा माँग लेते और स्खावा-सूखा जैसा होता, अपने हाथोंसे बनाकर भोजन पा लेते । अगले दिन फिर श्री-गङ्गाकिनारे आगे बढ़ जाते । अवकाशके समय वच्चोंको संस्कृतके ग्रन्थ पढ़ाते जाते तथा स्तोत्र कण्ठ कराते ।

एक बार श्रीरामजी महाराज धूमते-धामते एक राजाकी रियासतमें पहुँच गये और गाँवसे बाहर एक वृक्षके नीचे ठहर गये । दोपहरको शहरमे गये और मुट्ठी-मुट्ठी आठा घरोंसे माँग लाये । उसीसे भोजन बनने लगा । आपकी धर्मपत्नी भी पतिव्रता थीं और बच्चे भी ऋषि-पुत्र थे । अकस्मात् राजपुरोहित उधर आ निकले । उन्होंने देखा कि एक ब्राह्मणपरिवार वृक्षके नीचे ठहरा हुआ है । माथेपर तिलक, गलेमें यजोपवीत, सिरपर लम्बी चोटी,

ऋषि-मण्डली-सी प्रतीत हो रही है । पास आकर देखा तो रोटी बनायी जा रही है । छोटे बच्चे तथा ब्राह्मणी सभी संस्कृतमे बोल रहे हैं । हिंदीका एक अक्षर न तो समझते हैं न बोलते हैं । राजपुरोहितको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ । राजपुरोहितजीने प० श्रीरामजी महाराजसे संस्कृतमे बातें कीं । उनको यह जानकर और भी आश्चर्य हुआ कि आजसे नहीं, सैकड़ों वर्षोंसे इनके पूर्वज संस्कृतमे बोलते चले आ रहे हैं और संस्कृतकी, धर्मकी तथा वेद-शास्त्रोंकी रक्षाके लिये ही भिखारी बने मारे-मारे ढोल रहे हैं । राजपुरोहितने आकर सारा वृत्तान्त राजा साहबको सुनाया तो राजा साहब भी सुनकर चकित हो गये । उन्होंने पुरोहितसे कहा कि ‘ऐसे ऋषि-परिवारको महलोंमे बुलाया जाय और मुझे परिवारसहित उनके दर्शन-पूजन करनेका सौभाग्य प्राप्त कराया जाय ।’

राजा साहबको साथ लेकर राजपुरोहित उनके पास आये और उन्होंने राजमहलमे पधारनेके लिये हाथ जोड़कर प्रार्थना की । पण्डितजीने कहा कि ‘हमे राजाओं-के महलोंमे जाकर क्या करना है । हम तो श्रीगङ्गाकिनारे विचरनेवाले भिशुक ब्राह्मण हैं ।’ राजा साहबके बहुत प्रार्थना करनेपर आपने अगले दिन सपरिवार राजमहलमे जाना स्वीकार कर लिया । इससे राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने स्वागतकी खूब तैयारी की । अगले दिन जब यह ऋषि-परिवार आपके यहाँ पहुँचा, तब वहाँ हजारों स्त्री-पुरुषोंका जमघट हो गया । बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ श्रीरामजी महाराज, आपकी धर्मपत्नी और वच्चोंको लाया गया और सुवर्णके सिंहासनोंपर बैठाया गया । राजा साहबने स्वयं अपनी रानीसहित सोनेके

पत्रोंमें ब्राह्मणदेवना, ब्राह्मणी तथा उच्चोंके चरण लोकर पूजन किया, आरती उतारी और चौंडींके यालोंमें सोनेकी अर्गफिर्फतों और हजारों रुपगोंके ब्रह्मिया-ब्रह्मिया दुआले लेकर सानने रख डिये। सबने वह देखा कि उस ब्राह्मण-परिवारने उन अर्गफिर्फतों और दुआलोंकी ओर ताका तक नहीं। जब स्वप्न गजा साहबने भेंट स्तीकार करनेके लिये करवद्व प्रार्थना की, तब पण्डिनजीने धर्मपत्नीकी ओर ढेढ़का पूछा कि 'क्या आजके लिये आठा है?', ब्राह्मणीने कहा—'नहीं तो।' आपने राजा साहबमें कहा कि 'बस आजके लिये आठा चाहिये। ये अर्गफिर्फतोंके याल और दुआले मुझे नहीं चाहिये।'

राजा साहब—महाराज ! मैं क्षत्रिय हूँ, दे चुका, स्तीकार कीजिये।

पण्डिनजी—मैं ले चुका, आप बापस ले जाइये।

राजा साहब—क्या दिया दान बापस लेना उचित है?

पण्डिनजी—त्यागी हुई वस्तुका क्या फिर सम्रह करना उचित है ?

राजा साहब—महाराज ! मैं अब क्या करूँ ?

पण्डिनजी—मैं भी लाचार हूँ।

राजा साहब—वह आप ले ही लीजिये।

पण्डिनजी—राजा साहब ! हम ब्राह्मणोंका धन तो तप है। इसीमें हमारी जोभा है, वह हमारे पास है। आप क्षत्रिय हैं, हमारे तपकी रक्षा कीजिये।

राजा साहब—क्या यह उचित होगा कि एक क्षत्रिय दिया हुआ दान बापस ले ले। क्या इससे सनातन-धर्मको धनि नहीं पहुँचेगी ?

पण्डिनजी—अच्छा इसे हमने ले लिया, अब इसे हमारी ओरेमें अपने राजपुरोहितको दे दीजिये। हमारे और आपके दोनोंके धर्मकी रक्षा हो गयी।

सबने देखा कि ब्राह्मण-परिवार एक सेर आय लेकर और अब सोनेकी अर्गफिर्फतोंसे भरे चौंडींके याल, दुआलोंको दुकराकर लगलमें चले जा रहे हैं और फिर बेदपाठ करनेमें सज्जन हैं।

ब्रजवासियोंके दुकड़ोंमें जो आनन्द है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है

(हेत्क—भक्त श्रीशमशरणदातजी)

श्रीहृष्णावनब्राह्मके बाबा श्रीशमशरणदासजी महाराज वडे ही उच्चज्ञोंके महापुस्त्य थे। आप गौड़ीय सम्ब्रात्यके महान् ब्रिद्धान्, और त्यागी, नपही सत थे। आप प्रान कल चार वडे श्रीयमुनाजीका स्नान करके अपनी गुफामें बैठा करते थे और भजन-ध्यान करके संध्याके समय बाहर निकलते थे। आप स्वयं ब्रजवासियोंके वर जाकर भूखे टूक माँग लाते और श्रीयमुनाजलमें भिगोकर उन्हें पा लेते। फिर भजन-ध्यानमें लग जाने। वडे-वडे राजा-महाराजा क्लोडपनि सेठ आपके दर्ढनार्थ आने, पर आप लाख प्रार्थना करनेपर भी न तो ब्रजसे कहीं बाहर जाने और न किसीसे एक पर्द लेते तथा न किसीका

कुछ खाते। मिट्टीका करवा, कौपीन और ब्रजके टूक—यही आपकी सारी सम्पत्ति थी। एक दिन मोउर-कारमें गजस्थानके एक राजा साहब आये। उनके साथ फलोंमें भरे कई टोकरे थे। टोकरोंको नौकरोंसे उठाकर राजा साहब बाबाके पास पहुँचे और साथइँ प्रणाम करके उन्होंने टोकरे सामने रखवा दिये। बाबाने पूछा—'कहाँ रहते हो ?'

राजा साहब—जयपुर-जोवुरुकी नरफ एक छोटीसी रियासत है।

बाबा—क्यों आये ?

राजा साहब—दर्ढन करनेके लिये।

बाबा इन टोकरोंमें क्या है ?

राजा साहब—इनमे सेव, संतरे, अनार, अगूर आदि फल हैं।

वावा—इन्हें क्यों लाये?

राजा साहब—महाराज! आपके लिये।

वावा—हम इनका क्या करेंगे?

राजा साहब—महाराज! इन्हे पाइये।

वावा—भाई! हमे इन फलोंसे क्या मतलब। हम तो ब्रज-चौरासीको छोड़कर इन्ड बुलाये तो भी न तो कहीं जायेंगे और न ब्रजबासियोंके घरोंसे

मौंगे टूक छोड़कर छप्पन प्रकारके भोजन मिलते हों तो उनकी ओर आँख उठाकर देखेंगे। हम तो अपने लालके घरमे हैं और उसीके घरके ब्रजबासियोंके टूक मौंगकर खाते हैं तथा लालका स्मरण करते हैं। हमे तुम्हारे यह फल आदि नहीं चाहिये। इन्हे ले जाकर और किसीको दे दो। मैया! कन्हैयाके इन ब्रजबासियोंके सूखे टुकड़ोंमे जो आनन्द है वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

राजा साहब यह सुनकर चकित हो गये।

आदर्श बी० ए० बहू

(लेखक—प० श्रीरामनरेणजी त्रिपाठी)

बात न पुरानी है, न सुनी हुई कहानी है। कानसे ज्यादा आँखे जानती हैं। कहानीके सभी पात्र जीवित हैं, अतएव नाम बढ़ाकर ही कहना होगा।

एक रिटायर्ड जज हैं। कहा जाता है कि उन्होने कभी रिश्वत नहीं ली थी। वार्षिक विचारोंके सद्गृहस्थ हैं। दावतोंमे, पार्टियोंमे, मित्रोंके यहाँ खान-पानमे वे चाहे जितने स्वतन्त्र रहे हों, पर घरके अदर रसोई-घरकी रुद्दियोंके पालनमें न असावधानी करते थे, न होने देते थे।

गृहिणी गिक्षिता हैं, सभा-सोसाइटियोंमे, दावतोंमे पतिके साथ खुलकर भाग लेती रही हैं, पर घरके अदर चूलहेकी मर्यादाका वे पतिसे भी अधिक ध्यान रखती हैं। तुलसीको प्रत्येक दिन सबेरे स्नान कराके जल चढ़ाना और सध्या समय उसे धूप-दीप देना, और उसके चबूतरेके पास बैठकर कुछ देर रामचरितमानसका पाठ करना—यह उनका नियमित काम है, जो माता-पितासे विरासतकी तरह मिला है और कभी छूट नहीं सकता।

जज साहबके कोई पुत्र नहीं; एक कन्या है। जिसका नाम लक्ष्मी है। माता-पिताकी एक ही सतान होनेके कारण उसे उनका पूर्ण स्नेह प्राप्त था। लक्ष्मीको भगवान् ने सुन्दर रूप दिया है।

लक्ष्मीको खर्च-वर्चकी कमी नहीं थी। युनिवर्सिटीमे पढ़नेवाली साथिनोंमें वह सबसे अधिक कीमती और आकर्षक वेष-भूपामे रहा करती थी। वह स्वभावकी कोमल थी, सुशील थी, घमडी नहीं थी। घरमें आती तो मौंके साथ मेमनेकी तरह पीछे-पीछे फिरा करती थी। मौंकी इच्छासे वह तुलसीके चबूतरेके पास बैठकर तुलसीकी पूजामें भी भाग लेती और मौंके अधिक देरतक बैठकर मानसका पाठ भी किया करती थी। भारतीय संस्कृति और युनिवर्सिटीकी रहन-सहनका यह अद्भुत मिश्रण था।

जज साहबकी इच्छा थी कि लक्ष्मी बी० ए० पास कर ले, तब उसका विवाह करे। वे कई वर्षोंसे सुयोग्य वरकी खोजमें दौड़-धूप कर रहे थे। बी० ए० कन्याके लिये एम० ए० वर तो होना

ही चाहिये; पर कहाँ एम० ए० वर मिलता तो कुख्य मिलता, कहीं भयकर खर्चाली जिंदगीबाला पूरा साहब मिलता, कहाँ दहेज इतना माँगा जाता कि रिश्वत न लेनेबाला जज दे नहीं सकना। कन्याके पिताको जज, डिप्टी कमिश्नर, डिप्टी कलक्टर आदि शब्द किनने महँगे पड़ते हैं, यह वे ही जान सकते हैं।

लक्ष्मीने वी० ए० पास कर लिया और अच्छी श्रेणीमें पास किया। अब वह पिताके पास परायी यातीकी तरह हो गयी। अब उसे किसी नये घरमें वसा देना अनिवार्य हो गया। जज साहब वर खोजते-खोजते थक चुके थे और निराग होकर पूजा-पाठमें अविक समय लगाने लगे थे।

मनुष्यके जीवनमें कभी-कभी विचित्र घटनाएँ घट जाती हैं। क्या-से-क्या हो जाता है, कुछ पता नहीं चलता। एक दिन शहरकी एक बड़ी सड़कपर जज साहब अपनी कारमें बैठे थे। एंजिनमें कुछ खराबी आ गयी थी, इससे वह चलता नहीं था। ड्राइवर वारन्वार नीचे उतरता, एंजिनके पुर्जे खोलता-करता, तार मिलाता, पर कामयात्र न होता। उसने कई सावारण श्रेणीके राह-चलतोंको कहा कि वे कारको ढकेल दें, पर किसीने नहीं सुना। सूट-बूट-वालोंको कहनेका उसे साहस ही नहीं हुआ। एक नवयुवक, जो बगलसे ही जा रहा था और जिसे बुलाने-की ड्राइवरको हिम्मत भी न होती, अपने-आप कारकी तरफ मुझ पड़ा और उसने ड्राइवरको कहा—‘मैं ढकेलता हूँ, तुम स्टेयरिंग पकड़ो।’

ड्राइवरने कहा—‘गाड़ी भारी है, एकके मानकी नहीं।’

युवकने मुसकराकर कहा—‘देखो तो सही।

ड्राइवर अपनी सीटपर बैठ गया। युवकने अकेले ही गाड़ीको दूरतक ढकेल दिया। एंजिन चलने लगा।

जज साहबने युवकको बुलाया, धन्यवाद दिया। युवकका चेहरा तस काङ्क्षनकी तरह चमक रहा था। चेहरेकी बनावट भी सुन्दर थी। जवानी अङ्ग-अङ्गसे छलकी पड़ती थी। फिर भी पोशाक बहुत सादी थी—धोती, कुरता और चण्ठ। चण्ठ बहुत घिसी-घिसाई थी और धोती तथा कुरतेके कपड़े भी सस्ते किस्मके थे। फिर भी आँखोंकी ज्योति और चेहरेपर गम्मीर भाँखोंकी झलक देखकर जज साहब उससे कुछ बात किये त्रिना रह नहीं सके।

एजिन चल रहा था, ड्राइवर आज्ञाकी प्रतीक्षामें था। जज साहबने युवकसे कहा—शायद आप भी इसी तरफ चल रहे हैं आइये, बैठ लीजिये। रास्तेमें जहाँ चाहियेगा, उतर जाइयेगा।

युवक जज साहबकी बगलमें आकर बैठ गया। जज साहबने पूछ-ताछ की तो युवकने बताया कि वह युनिवर्सिटीका छात्र है। अमुक जिलेके एक गरीब कुटुम्बका लड़का है। मैट्रिक्से लेकर एम० ए० तक वरावर प्रथम आते रहनेसे उसे छात्रवृत्ति मिलती रही, उससे और कुछ अंगरेजी कहानियोंके अनुवादसे पारिश्रमिक पाकर उसने एम० ए० प्रथम श्रेणीमें पास कर लिया और अब उसे विदेशमें जाकर शिक्षा ग्रहण करनेके लिये सरकारी छात्रवृत्ति मिलेगी। वह दो महीनेके अंदर विदेश चला जायगा।

जज साहबका हाल तो—‘ऐरत थके थाह जनुपाई’ जैसा हो गया। बात करते-करते वे अपनी कोठीपर आ गये। स्थैं उतरे, युवकको भी उतारा, और कहा—‘आपने रास्तेमें मेरी बड़ी सहायता की। अब कुछ जल-पान करके तब जाने पाइयेगा।

युवकको बैठकमें बैठाकर जज साहब अदर गये और लक्ष्मी और उसकी माताको भी साथ लेकर आये और उनसे युवकका परिचय कराया। इसके बाद नौकर जल-पानका सामान लेकर आया और युवकको जज साहबने बड़े

प्रेमपूर्वक जल-पान कराया। इसके बाद युवकको जज साहब अक्सर बुलाया करते थे और वह आता-जाता रहा।

गरीब युवकके जीवनमें यह पहला ही अवसर था, जब किसी रईसने इतने आदरसे उसे बैठाया और मिलाया-पिलाया हो।

अन्तमें यह हुआ कि जज साहबने लक्ष्मीका विवाह युवकसे कर दिया।

युवकके विदेश जानेके दिन निकट चले आ रहे थे। जज साहबने सोचा कि लक्ष्मी कुछ दिन अपने पतिके साथ उसके गाँव हो आये तो अच्छा; ताकि दोनोंमें ग्रंमका बन्धन और दृढ़ हो जाय और युवक विदेशमें किसी अन्य स्थानपर आसक्त न हो।

जज साहबका प्रस्ताव सुनकर युवकने कहा—मैं गाँव जाकर घरको ठीक-ठाक करा आऊँ, तब बहूको ले जाऊँ।

युवक गाँव आया। गाँव दूसरे जिलेमें शहरसे बहुत दूर था और पूरा देहात था। उसका घर भी एक टूटा-फूटा खेड़हर ही था। उसपर एक सड़ा-ग़ला छप्पर रखका था। उसके नीचे उसका बुड्ढा बाप 'दिन-भर बैठे-बैठे हुक्का पिया करता था।

युवकके चचा बनी थे और उनकी बखरी बहुत बड़ी और बेटों-भेटों और बहुओंसे भरी हुई थी। युवकने चचासे प्रार्थना की कि उसे वह अपने ही घरका बतायें और पद्धति दिनोंके लिये उसकी बहूको अपने घरमें रहने दें। चचाने स्थीकार कर लिया।

घरके बाहरी बरामदेमें एक कोठरी थी। युवकने उसीको साफ कराके उसमें जखरी सामान, रंखवा दिये, एक कुरसी और मेज भी रखवा दिये। बहू चचाके घरमें खाना खा लिया करेगी और उसी कोठरीमें रहेगी। एक लड़केको नौकर रख लिया गया।

युवक वापस जाकर बहूको ले आया। पाँच-सात दिन बहूके साथ गाँवमें रहकर युवक अपनी विदेश-यात्राकी तैयारी करनेके लिये शहरको वापस गया और बहू चचाके घरमें अकेली रहने लगी। दोनों बक्त घर-के अदर जाकर खाना खा आती और नौकरकी सहायता-से दोनों बक्त कोठरीके अदर चाय बनाकर पी लिया करती। चायका सामान वह साथ लायी थी।

दो ही चार दिनोंमें बहूका परिचय गाँवकी प्रायः सब छोटी-बड़ी लियों और बच्चोंसे हो गया। बहूका सभाव मिलनसार था। माता-पिताकी धार्मिक शिक्षाओंसे और रामचरितमानसके नियमित पाठसे उसके हृदयमें कोमलता और सहिष्णुता आ गयी थी। सबसे वह हँस-कर ग्रेमपूर्वक मिलती, बच्चोंको प्यार करती, बिस्कुट देती और सबको आदरसे बैठाती। रेशमी साड़ीके अदर छुभावने गुण देखकर मैली-कुचैली और फटी धोतियोंवाली ग्रामीण लियोंकी जिज्ञासा जाती रही और वे खुलकर बातें करने लगीं।

बहूको सीना-पिरोना अच्छा आता था, हारमोनियम बजाना और गाना भी आता था। कण्ठ सुरीला था, नम्रता और विनयका प्रदर्शन करना वह जानती थी, उसका तो दरबार लगने लगा। कोठरीमें दिनभर चहल-पहल रहती। गाँवके नरकमें मानो सर्ग उतरे आया था।

गाँवकी लियोंका मुख्य विषय प्रायः परनिन्दा हुआ करता है। कुछ लियों तो ऐसी होती हैं कि ताने मारना, व्याह बोलना, झगड़े लगाना उनका पेशा-सा हो जाता है और वे घरोंमें चक्कर लगाया ही करती हैं। एक दिन ऐसी ही एक स्त्री लक्ष्मीके पास आयी और उसने बिना सकोचके कहा—तुम्हारा बाप अथा या क्या, जो उसने बिना-घर देखे विवाह कर दिया?

लक्ष्मीने चक्कित होकर पूछा—क्या यह मेरा घर नहीं है?

खी उसका हान पकड़कर बरामदेमें ले गयी और उँगलीके डगारेमे युवकके खँडहरकी ओर दिखाकर कहा—‘वह देखो, तुम्हारा घर है और वह तुम्हारे समुरजी है, जो छपरके नीचे बैठकर हुक्का पी रहे हैं। वह घर तो तुम्हारे पनिके चचाका है, जो अलग रहते हैं।’

छड़ीने उस खीको चिटा किया और कोटीमें आकर उसने गृहस्थीके जखरी सामान—वरतन, आटा, ढाल, चावल, मिर्च-मसालेकी एक सूची बनायी और नौकरको बुलाकर अपना सामान खँडवाकर वह उसे उसी खँडहरमें भेजवाने लगी।

चचा सुन पाये। वे दौड़े आये। आँसू भरकर कहने लगे—वहू! यह क्या कर रही हो? मेरी बड़ी बदनामी होगी।

बरकी ख्रियाँ भी बाहर निकल आयीं। वे भी समझाने लगीं। छड़ीने सबको एक उत्तर दिया—दोनों घर अपने ही हैं। मैं इसमें भी रहूँगी और उसमें भी रहूँगी। फिर उसने चचाके हाथमें कुछ स्पष्ट और सामानकी सूची देकर कहा—यह सामान बाजारसे अभी मँगा दीजिये।

चचा लाचार होकर बहुत उदास मनसे बाजारकी ओर गये, जो एक मील दूर था। वहू खँडहरमें आयी। आते ही उसने आँचलका छोर पकड़कर तीन बर समुरका दैर छुआ। फिर खँडहरमें गयी। एक कोटी और उसके सामने छोटा-सा ओसारा, धरकी सीमा इतनी ही थी। नौकरने सामान लाकर बाहर रख दिया। वहूने उससे गोवर मँगाया; एक बाल्टी पानी मँगाया। कोटी और ओसारेको झाड़ लगाकर साफ किया। फिर रेगामी साड़ीकी कढ़ाँड़ मारकर वह घर लीपने बैठ गयी।

यह खबर बात-की-बातमें गँवभरमे और उसके आस-पासके गँवोंमें भी पहुँचे गयी। झुँडके-झुँड खी-पुरुष देखने आये। भीड़ लग गयी। कई खियों लीपने-

के लिये आगे बढ़ीं, पर वहूने किसीको हाथ लगाने नहीं दिया। बृद्धा लियाँ आँमू पैँछने लगीं। ऐसी वहू तो उन्होंने कभी देखी ही नहीं थी। पुरुष लोग उमे टेवी-का अवनार मानकर श्रद्धामे देखने लगे।

इतनेमें बाजारसे वरतन आ गये। वहूने पानी मँगवाकर कोटीमें स्नान किया। फिर वह रसोई बनाने बैठ गयी। शीत्र ही भोजन तैयार करके उसने समुरजीमें कहा कि वे स्नान कर लें।

समुरजी आँखोंमें आँसू भरे मोह-मुख बैठे थे। किसीसे कुछ बोलते न थे। वहूकी प्रार्थना सुनकर उठे, कुँप्पर जाकर नहाया और आकर भोजन किया। वरतन सब नये थे। खँडहरमें एक ही ज़िलंगा खाट थी। वहूने उसपर ढरी लिया दी। समुरको उसपर बैठाकर, चिलम बढ़ाकर हुक्का उनके हाथमें थमा दिया। फिर उसने खयं भोजन किया।

वहूने चचासे कहा—दो नयी खाटें और एक चौकी आज ही चाहिये। बाबके लिये उसने चचाको पैसे भी दे दिये। चचा तो बाब खरीदने बाजार चले गये।

लोहार और बढ़ावहीं मौजूद थे। सभी तो आनन्द-विभोर हो रहे थे। हर-एकके मनमें यही लाटसा जाग उठी थी कि वह वहूकी कोई सेवा करे। लोहारने कहा—मैं पाटीके लिये अभी बाँस काटकर लाना हूँ और पाये गँड़कर खाटें बना देता हूँ।

बढ़ाने कहा—मैं चौकी बना दूँगा।

बाब भी आ गया। खाट बिननेवाला अपनी सेवा प्रस्तुत करनेके लिये मुँह देख रहा था। उसने दो खाटें बिन दी। समुरकी ज़िलंगा खाट भी वहूने आयेगयेके लिये बिनबाकर अलग रख ली। बढ़ाने चौकी बना दी। आमतक यह सब कुछ हो-गया। - - -

रातमें वहूने अपने माता-पिताको एक पत्र लिखा, जिसमें दिनभरमें जो कुछ हुआ, सब एक-एककरके

लिखा, पर पिताको यह नहीं लिखा कि तुमने भूल की और मुझे कहाँ-से-कहाँ लाकर डाल दिया। बल्कि बड़े उल्लासके साथ यह लिखा कि मुझे आपकी और माता-जीकी सम्पूर्ण शिक्षाके उपयोग करनेका मौका मिल गया है।

बहूके झोंपडेपर तो मेला लगने लगा। सब उसको देवी करके मानने लगे थे। बराबर उम्रकी बहुएँ दूसरे गाँवोंसे आतीं तो ऑचलके छोरको हाथोंमें लेकर उसका पैर छूनेको छुकतीं। बहू लज्जाके मारे अपने पैर साढ़ी-में छिपा लेती। उनको पास बैठाती, सबसे परिचय करती और अपने काढ़े हुए बेल-बूटे दिखाती।

गाँवोंके विवाहित और अविवाहित युवक भी बहूको देखने आते। बहू तो परदा करती नहीं थी, पर युवकों-की दृष्टिमें कामुकता नहीं थी। बल्कि जल्की रेखाएँ होती थीं। ऐसा कठोर तप तो उन्होंने कभी देखा ही नहीं था।

रातमें बहूके झोंपडेके सामने गाँवकी वृद्धा खियाँ जमा हो जातीं। देव-कन्या-जैसी बहू बीचमें आकर बैठ जाती। ‘आरी-आरी कुस-काँसि, बीचमें सोनेकी रासि।’ बहू वृद्धाओंको ऑचलसे चरण छूकर प्रणाम करती, मीठी-मीठी हँसी-ठोली भी करती। वृद्धाएँ बहूके स्वभाव-पर मुख्य होकर सोहर गाने लगतीं। लोग हँसते तो वे कहतीं—बहूके बेटा होगा, भगवान् औतार लेंगे, हम अभीसे सोहर गाती हैं। बहू बेचारी सुनकर लज्जाके मारे जमीनमें गड़-सी जाती थी।

चौथे रोज जज साहबकी भेजी हुई एक लारी आयी, जिसमें सीमेटके बोरे, दरवाजों और खिड़कियोंके चौकटे और पल्ले, पलँग, भेज-कुर्सियाँ और जखरी लोहा-लकड़ भरे थे और एक गुमास्ता और दो राजगीर साथ थे।

गुमास्ता जज साहबका एक लिफाफा भी लाया था; जिसमें एक कागज था और उसपर एक ही पंक्ति लिखी थी—

पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ।

नीचे पिता और माता दोनोंके हस्ताक्षर थे। लक्ष्मी उस कागजको छातीसे चिपकाकर देरतक रोती रही।

जज साहबने गुमास्तेको सब काम समझा दिया था। मकानका एक नवशा भी उसे दिया था। गुमास्तेने गाँवके पास ही एक खुली जगह पसद की। जर्मांदार उस जगहको बहूके नामपर मुफ्त ही देना चाहता था, पर गुमास्तेने कहा कि जज साहबकी आज्ञा है कि कोई चीज मुफ्त न ली जाय। अतएव जर्मांदारने मामूली-सा दाम लेकर जज साहबके वचनेकी रक्षा की।

पड़ोसके एक दूसरे गाँवके एक जर्मांदारने पक्का मकान बनवानेके लिये ईंटोंका पजावा लगवा रखवा था। ईंटोंकी जखरत सुनकर वह स्वयं आया और बहूके नामपर ईंटें मुफ्त ले लिये जानेका आग्रह करने लगा, पर गुमास्तेने स्वीकार नहीं किया। अन्तमें पजावेमें जो लागत लगी थी, उतना रुपया देकर ईंटें ले ली गयीं।

मजदूर बिना मजदूरी लिये काम करना चाहते थे, पर बहूने रोक दिया और कहा कि सबको मजदूरी लेनी होगी।

दो राजगीर और भी रख लिये गये। पास-पड़ोसके गाड़ीवाले अपनी गाड़ियों लेकर दौड़ पडे। पजावेकी कुल ईंटें ढोकर आ गयीं। मजदूरोंकी कमी थी ही नहीं। एक लंबे-चौड़े अहातेके बीचमें एक छोटा-सा सीमेटके पलस्तरका पक्का मकान, जिसमें दो कमरे नीचे और दो ऊपर तथा रसोई-घर, स्नानागार और पाखाना थे, दो-तीन हफ्तोंके बीचमें बनकर तैयार हो गया। अहातेमें फूलों और फलोंके पेड़-पौधे भी लगा दिये गये। एक पक्की कुहायाँ भी तैयार करा दी गयी।

युवकको अभीतक किसी बातका पता नहीं था।

लक्ष्मीने भी कुछ लिखना उचित नहीं समझा, क्योंकि भेड़ खुल जानेमे पतिको लजा आती। और उन साहबने मी लक्ष्मीको दूसरे पत्रमें लिख भेजा था कि वहाँका कोई समाचार वह अपने पतिको न लिखे।

गुमानेका पत्र पाकर उन साहबने गृह-प्रवेशकी साइन पूछी और गुमानेको लिखा कि साइनके दिन मैं, लक्ष्मीकी माँ और उसके पनि भी आ जायेंगे। एक हजार व्यक्तियोंको भोजन करानेकी पूरी तैयारी कर रखो।

लक्ष्मीने सहुरके लिये नेवारका एक सुन्दरसा पल्लंग, उसनर त्रिभानेकी ढरी, गदा और चादर, तकिये और मसहरी गाँवहीमें मैंगा लिया था। चौंडीका एक फर्गा हुक्का, चौंडीकी चित्तम, चौंडीका पीकडान साथ लेने आनेको लिये उसने पिताको पत्र लिखा था। सब चीजें आ गयी थीं।

वीक समयपर वडी घूम-भासते गृह-प्रवेश हुआ। सबसे पहले युवकके पिता सुन्दर बब्र पहने हुए मकानके अंदर गये। बढ़िया चादर त्रिछी हुड़ नेवारकी पल्लंगपर बैठके गये, पास ही लक्ष्मीने सब चित्तम चढ़ाकर फर्गा हुक्का रख दिया। लक्ष्मीने सहुरके लिये एक सुन्दरसा देहानी जूता भी बनवाया था, वही पहनकर सहुरने गृहमें प्रवेश किया था, वह पल्लंगके नीचे वडी ओमा दे रहा था। पल्लंगके नीचे चौंडीका पीकडान भी रखा था। सहुरको पल्लंगपर बैठकर और हुक्केकी सुनहली निगाली उसके मुँहमें देकर वहने आँचलका छोर पकड़कर तीन बार उसके चरण छुर। सहुरके मुँहमें तो बान ही नहीं निकलनी थी। उसका तो गला छल-फलकर रह जाना था। हाँ, उसकी आँखें दिन-भर अशु-शारा पिरानी रहीं।

प्रेम छिपाये ना छिपै, जा घट परगट होय।

जो वै मुख थोड़ै नहीं, नयन देत हैं रोय॥

गृह-प्रवेश कराके लक्ष्मीने माना-पिता एक कमरमें

जा बैठे थे। सहुरको पल्लंगपर बैठकर और पतिको उसके पास ढोड़कर वह अपने माता-पिताके कमरमें गयी। पहले वह पिताकी गोड़में जा पड़ी। पिता उसे देरतक चिपटाये रहे और आँमू गिराते रहे। फिर वह मानाके गल्से लिपट गयी। दोनों बाहें गल्में ल्पेटकर वह मूर्छित-सी हो गयी। माँ-बेटी देरतक रोनी रहीं।

माता-पितासे मिलकर वह निमन्त्रितोंके लिये भोजनकी व्यवस्थामें लगी। उसने छोटी-में-छोटी कमीको भी खोज निकाला और उसे पूरा कराया। गृह-प्रवेशके दिन वडी भीड़ थी। आस-भासके गाँवोंकी बियाँ, जिनमें वृद्धा, युवती, बालिका सब उत्रोंकी थीं, वहका दर्जन करने आयी थीं। गरीब और नीची जानिकी बियोंका एक हुड़ अलग खड़ा था। उनके करड़े गदे और फटे-पुराने थे। भले घरोंकी बियोंके बीचमें आने और बैठनेका उनको साहस नहीं होता था। वह स्थायं उनके पास गयी और एक-श्कलका हाथ पकड़कर ले आयी और बिछी हुई दरीपर एक तरफ उहें बैठ दिया और उनके गदे कपड़ोंका विचार किये विना उनके बीचमें बैठ गयी। सबका परिचय पूछा और स्वागत-सल्कारमें जो पान-डलापची अन्य बियोंको दिया गया, वही उनको भी दिया। चारों ओरसे वहपर आशीर्वादोंकी हृषि होने लगी।

संध्याको निमन्त्रितोंको भोजन कराया गया। लोग प्रत्येक कौरके साथ वहको आशीर्वाद देते थे। जबतक वे भोजन करते रहे, वहके ही गुणोंका बखान करते रहे, ऐसी जोमा बनी कि कुछ कहने नहीं बनता।

युवक तो वह सब दृश्य देखकर अनाकृ हो गया था। पतीके गुणोंपर वह ऐसा मुश्व हो गया था कि दोनों आमने-सामने होते तो उसके मुँहसे बान भी नहीं निकलती थी। दिनभर उसकी आँखें भरी रहीं।

दो दिन उसी मकानमें रहकर लक्ष्मीके सहुरके लिये वर्षभर खानेका सामान घरमें रखवाकर लक्ष्मीके

नौकरको उर्हाके पास छोड़कर और युवककी एक चाचीको, जो बहुत गरीब और अकेली थी, लक्ष्मीके सुसुरके लिये खाना बनानेके लिये नियुक्त करके जज साहब अपनी पुत्री, उसकी माता और युवकको साथ लेकर अपने घर लौट गये। जानेके दिन आसपासके दस-ग्रोंच मीठोंके हजारों पुरुष-खी बहूको विदा करने आये थे। वह दृश्य तो अद्भुत था। आज भी लोग ऑर्खोंमें हर्षके ओसू भरकर बहूको याढ़ करते हैं।

वह पक्का मकान, जो सड़कसे थोड़ी दूरपर है,

आज भी बहूके कीर्तिस्तम्भकी तरह खड़ा है।

युवक विदेशसे सम्मानपूर्ण डिग्री लेकर वापस आया है और कहाँ किसी बड़े पदपर है। बहू उसीके साथ है।

एक बी० ए० बहूकी इस प्रकारकी कथा शायद यह सबसे पहली है और समस्त बी० ए० बहुओंके लिये गर्वकी वस्तु है। हम ऐसी कथाएँ और सुनना चाहते हैं।

यह रामचरितमानसका चमत्कार है जिसने चुपचाप

लक्ष्मीके जीवनमें ऐसा प्रकाश-पुञ्ज भर दिया।

श्रद्धा और मनोबलका चमत्कार

(लेखक-कविविनोद वैद्यभूषण प० श्रीठाकुरदत्तजी शर्मा 'वैद्य')

वे एक ग्राममें रहते थे और कुछ दवा-दाख करते थे। परंतु जिसकी चिकित्सा करते, उससे लेते कुछ नहीं थे। एक छोटी-सी दूकान और कुछ भूमि थी; उसीसे जीवन-निर्वाह होता था। कई वर्षोंसे उनकी प्रवल इच्छा काशी जानेकी थी और वे यह भी कहा करते थे कि काशीजीमें ही शरीरपात होनेसे कल्याण होगा। वे अपने मन्तव्यानुसार पूजा-पाठमें बहुत तल्लीन रहते थे।

अन्तमें, एक दिन आ ही पहुँचा जब कि काशीजी जानेकी सब सामग्री जुट गयी और अपनी धर्मपत्नी तथा पुत्रको साथ लेकर वे काशीवाम पहुँच गये। वहाँ पचक्रोशीकी परिक्रमा समाप्त करके दशाश्वमेव धाठ-पर सायक्काल जा वैठे। गङ्गामें पाँव डालकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे—

'हे गङ्गा मैया ! मेरी मनोऽभिलापा तने पूर्ण कर दी है। अब मैं वापस जाना नहीं चाहता। कल बारह बजेतक अपनी पावन गोदमें त्रिठलाकर मातृ-सुख प्रदान कर दे, अन्यथा मुझे ही प्रवाह लेना होगा।'

अपने निवासस्थानपर आकर सो रहे। भोर होते ही उठ वैठे और अपनी धर्मपत्नीको भोजन बना लेनेका आदेश किया। भोजन बन चुका तो पत्नी और पुत्रको भोजन करनेकी आज्ञा देकर कहने लगे—'मुझे तो

भोजन नहीं करना है।' जब दोनों भोजन कर चुके तब उन्हे इस प्रकार समझाना आरम्भ कर दिया—

'देखना, यह जरीर तो अब काशीजीकी भेट हो चुका है; अब ग्राण भी यहाँ विसर्जित होनेवाले हैं, इसलिये मेरे लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा। देखना ! रोना-शोना नहीं।'

और भी ऐसी ही बाते समझाने लगे। सुनकर पत्नी और पुत्र दोनों हँसने लगे। समझे कि पण्डित-जी हँसी कर रहे हैं। फिर भी गम्भीर होकर बोल उठे—'हम ऐसी अवाञ्छनीय बाते सुनना नहीं चाहते।' परंतु वे कहते ही रहे। ग्यारह बजेके लगभग मूर्मिको शुद्ध करके आसन लगाया और ध्यानावस्थित होकर बैठ गये। ठीक बारह बजे विना किसी कष्टके और विना कोई चिह्न प्रकट हुए ग्रीवा एक ओर झुक गयी। देखा तो उनका स्वर्गवास हो चुका था।

इस समाचारका जिन-जिनको पता लगा, सब एकत्र होकर उनकी स्तुति करने लगे और सबने मिलकर बड़ी भक्तिसे समारोहपूर्वक अन्तिम सस्कार किया।

एक ग्राम-बासी साधारण व्यक्तिकी श्रद्धा-अक्षि और मनोबलका ऐसा परिचय पाकर सचमुच बड़ा आश्चर्य होता है।

चोरके साथ चोर

ग्वारिया बाबा बृन्दावनके एक प्रसिद्ध परम भक्त थे। वे पागलकी तरह रहते थे। एक दिन वे अपनी मस्तीमें कहाँ पड़े थे। इसी समय दो चोर वहाँ आये और ग्वारिया बाबासे उन्होंने पूछा—
‘आप कौन हैं?’

ग्वारिया बाबा—तुम कौन हो?

चोर—हम चोर हैं।

ग्वारिया बाबा—मैं भी चोर हूँ।

चोरोंने कहा—तब तो हमारे साथ तुम भी चोरी करने चलो।

ग्वारिया बाबाने कहा—अच्छा चलो।

इतना कहकर वे उनके साथ चोरी करने चल पड़े। चोरोंने एक घरमें सेंध लगायी और वे उसके अंदर घुस गये। वहाँ उन्होंने सामान बाँधना शुरू कर दिया। ग्वारिया बाबा चुपचाप एक ओर बैठे रहे। जब चोरोंने उनको सामान बाँधनेके लिये कहा, तब—‘तुम्हीं बाँधो’ कहकर चुप हो रहे। इतनेमें उन्होंने देखा कि वहाँ एक टोल्क पड़ी है। मौज ही तो थी। उसे उठाकर लगे जोरोंमें बजाने। टोल्ककी आवाज सुनकर सब घरवाले जग गये। चोर-चोरका हल्ला मचा। हल्ला मचते ही चोर तो भाग गये। लोगोंने त्रिना समझे-नूझे ग्वारिया बाबा-पर मारकी बौद्धार शुरू कर दी। बाबाजीने न तो उनको मना किया और न टोल्क बजानी ही बढ़ की। कुछ देर बाद उनका सिर फट गया और वे लहू-लहान होकर बैहोड़ हो गये। फिर कुछ होश आनेपर लोगोंने उनको पहचाना कि—‘अरे, ये तो ग्वारिया बाबा हैं।’ तब उन्होंने बाबासे पूछा कि ‘वे यहाँ कैसे आ गये?’ ग्वारिया बाबाने कहा—‘आया कैसे! श्यामसुन्दरने कहा चलो चोरी करने, श्याम-सुन्दरके साथ चोरी करने आ गया। उन्होंने तो उधर सामान बाँधना शुरू कर दिया, इवर टोल्क देख-

कर मेरी उसे बजानेकी इच्छा हो गयी। मैं उसे बजाने लगा।’ यों कहकर वे हँस पडे। तब लोगोंने उनकी मरहम-पट्टी की और अपनी असावधानीके लिये उनसे क्षमा माँगी।

अपनी मृत्युके छः महीने पहले उन्होंने अपने हाथोंमें बेडियों पहन लीं और वे सबसे कहते कि ‘सखा श्यामसुन्दरने बाँध दिया है और कहता है कि अब तुझे चलना होगा।’

जब उनकी मृत्युके पांच दिन शेष रहे, तब उन्होंने एक दिन अपनी भक्तमण्डलीको बुलाया और पूछा कि ‘मैं मर जाऊँगा तब तुम कैसे रोओगे?’ वे प्रत्येकके पास जाते और उससे रोकर दिखानेको कहते। इस प्रकार उस दिन उन्होंने अपनी भक्तमण्डलीसे खूब खेल किया।

अपनी मृत्युके दिन उन्होंने भक्तमण्डलीमेंसे करीब सोलह-सतरह लोगोंको कह दिया कि ‘मैं आज तुम्हारी भिक्षा लेंगा।’ सब बना-बनाकर ले आये। उन्होंने उस सारी भिक्षामेंसे करीब तीन हिस्सा भिक्षा खा ली। इसके बाद खूब पानी पिया। करीब दो घण्टे बाद उनको दस्त लगाने शुरू हुए और वे अचेत होकर पड़ गये। कुछ देर बाद उनकी नाड़ी भी धीमी पड़ने लगी। इसके थोड़ी ही देर बाद वे जोरसे हँसे और बोले—‘सखा आ गया’ यह कहते-कहते उनका शरीर चेतनाभूत्य होकर गिर पड़ा। इधर तो करीब तीन बजे यह घटना हुई। उधर अन्तरङ्ग भक्तों-मेंसे एकको, जो उस समय वहाँसे चार मील दूर था ऐसा लगा मानो बाबा उसके पास आये और उससे बोले कि ‘चल मेरे साथ आज ग्वारिया बाबाके बड़ा भारी उत्सव हो रहा है।’ वह उनके साथ चल पड़ा। योड़ी-सी दूर आनेपर वे तो गायब हो गये और उसने ‘बाबाके यहाँ जाकर देखा कि उनका शब उठानेकी तैयारी की जा रही है।

महाशक्ति ही पालिका हैं

सत्ययुगका काल था । सभावसे मानव कामना-हीन था । मनुष्यका अन्तःकरण कामना-कल्पित नहीं हुआ था और न रजोगुण तथा तमोगुणके सम्बर्ष ही उसे क्षुब्ध कर सकते थे । निसर्गपवित्र मानव—एकाक्षर प्रणव ही पर्याप्त था उसके लिये । त्रीयका कर्म-विस्तार न आवश्यक था और न शक्य; क्योंकि मनुष्यने यज्ञके लिये भी सप्रह करना तबतक सीखा नहीं था । वह तो सहज अपरिग्रही था ।

‘मनुष्य जब यज्ञन नहीं करता, हमे यज्ञभाग नहीं देता तो हमीं वृष्टिकी व्यवस्थाका श्रम क्यों करें ?’ देवराजके मनमें ईर्षा जाग्रत् हुई—‘सृष्टिके विधायकने तो नियम बनाया है कि मनुष्य यज्ञ करके हमे यज्ञभाग-द्वारा पोषित करे और हम सुवृष्टिद्वारा अन्नोत्पादन करके मनुष्योंको भोजन दें । परस्पर सहायताका यह नियम मानवने प्रारम्भमें ही भङ्ग कर दिया । मनुकी संतान जब हमे कुछ गिनती ही नहीं, तब हमारा भी उससे कोई सम्बन्ध नहीं ।’

देवराज असंतुष्ट हुए और मेघ आकाशसे लुप्त हो गये । धराके प्राण जब गगन सिंचित नहीं करेगा, तब अङ्गुरोंका उदय और वीरुधोंका पोषण होगा कहाँसे ? तृण सूख गये, लताएँ सूखी लकड़ियोंमें बदल गयीं, वृक्ष सुरक्षा गये । घोर दुष्काल पड़ा । अन्न, फल, शाक, तृण—प्राणवाहियोंके लिये कोई साधन नहीं रह गया धरापर ।

मनुकी निष्पाप संतान—मानवमें चिन्ता और कामना कहाँ आयी थी उस समयतक । ध्यान और तप उसे प्रिय लगते थे । निष्पत्र, शुष्कप्राय वर्णोंमें मानवने जहाँ सुविधा मिली, आसन लगाया । उसे न चिन्ता थी और न था क्लेश । उसने बड़े आनन्दसे कहा—

‘परमात्माने तपस्याका सुयोग दिया है । धराका पुण्योदय हुआ है ।’

जहाँ-तहाँ मानवने आसन लगाकर नेत्र बंद कर लिये थे । सत्ययुगकी दीर्घायु, सत्ययुगकी सात्त्विकता और सत्ययुगका सहज सत्त्व—मानव समाधिमें मान हो जायगा तो देवराजका युगों व्यापी अकाल क्या कर लेगा उसका ? परंतु मानव, यह क्यों करे । उसने अधर्म किया नहीं, कोई अपराध किया नहीं, तब वह भूखा क्यों रहे ? उसे बलात् तप क्यों करना पड़े ?

इन्द्र प्रमत्त हो गया कर्तव्यपालनमें; किंतु अपने पुर्णोंके पालनमें विश्वकी संचालिका, नियन्त्रका महाशक्ति जगजननी तो प्रमत्त नहीं होती । दिशाएँ आलोकसे पूर्ण हो गयीं । मानव अपने आसनसे आतुरतापूर्वक उठा और उसने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक हुकाये । गगनमें सिंहस्थिता, रक्तवर्णा, शूल, पाश, कपाल, चाप, वज्र, बाण, अङ्गुश, मुसल, शङ्ख, चक्र, गदा, सर्प, खड़ग, अभय, खट्टवाङ्म एवं दण्डहस्ता, दशमुजा महामाया आदि-शक्ति शाकम्भरी प्रकट हो गयी थीं ।

धरित्रीपर वर्षा हो रही थी—मेघोंसे जलकी वर्षा नहीं, महाशक्तिके श्रीअङ्गसे अन्न, फल, शाककी वर्षा । पृथ्वीके प्राणीकी क्षुधा कितनी ? महामाया देने लगे तो प्राणी कितना क्या लेगा ? दिन दो दिन नहीं, वर्षों यह वर्षा चलती रही । देवराज ध्वराये । यदि महामाया इसी प्रकार अन्न-शाकादिकी वर्षा करती रहें तो उनका इन्द्रज्ञ समाप्त हो चुका । पृथ्वीको उनके मेघोंकी क्या आवश्यकता ? कभी भी मानव यज्ञभाग देगा देवताओंको इसकी सम्भावना ही वया ? यही दशा रहे तो अब देवलोक-में सुखमरी प्रारम्भ होनेमें कितने दिन लगेगे ? देवराजने क्षमा मौंगी जगद्वात्रीसे और आकाश बादलोंसे ढक गया ।

शास्त्रार्थ नहीं करूँगा

एक महात्मा थे । वे राधाकृष्ण के समारोह के साथ वहुत सुन्दर उत्सव मनाते । एक दिन एक आदमी उनके पास आया और कहने लगा कि तुम वडा पाखण्ड फैला रहे हो, मैं तुमसे शास्त्रार्थ करूँगा ।

महात्मा—अभी तो मैं पूजा कर रहा हूँ । पीछे बात करना । महात्मा पूजा करनेके बाद मस्तीमें कीर्तन करते हुए नाचने लगे । तब शास्त्रार्थ करनेके लिये आये हुए

पण्डितजीको दिखलायी पड़ा कि राधाकृष्ण दोनों उन महात्माके पीछे-पीछे नाच रहे हैं ।

कीर्तन समाप्त होनेपर महात्माने शास्त्रार्थ करनेको कहा । तब वह चरणोंमें लोट गया और कहने लगा—मुझे जो समझना-देखना या सो मैंने समझ-देख लिया । अब शास्त्रार्थ नहीं करूँगा ।

सच्चे महात्माके दर्शनसे लाभ

(लेपक—श्री सी० एल० भाटिया)

एक ली हमेशा अपने पतिकी निन्दा किया करती थी । यह ली पूजा करने और माला फेरनेमें तो अपना काफी समय लगाती थी, परतु पाखण्डी महात्माओंके फोटो रखकर उनपर चन्दन और फूल चढ़ाया करती थी । इस लीने रामायणकी कई आवृत्ति की पर पाखण्डियोंके फेरमें पड़ी रहनेके कारण इसको इस बातका ज्ञान नहीं हो सका कि जिस पतिकी वह निन्दा करती फिरती है वह उसके लिये क्या है । वह वीरों महात्माओंके पास गयी । सब उससे वडे प्यारसे बोलते थे और अपने पास बैठते थे । वह यह देखकर वडी प्रसन्न होती थी कि महात्मा लोग उसको किनना प्यार करते हैं । यह ली अपने सगे-सम्बन्धियोंके यहाँ जाकर भी अपने पतिकी निन्दा करती थी । इस लीने अपनी बुराइयोंको छिपानेके लिये यही एक सावन निकाल रखता था । पर इस लीको कोई समझा न पाया ।

एक दिन इसको एक अच्छे महात्मा मिल गये । यह उन महात्माके दर्शन करने गयी । प्रात कालका समय था । इसने उनसे अपने पतिकी निन्दा की ।

महात्माजीने पूछा—‘तुम्हारे पतिने भी कहीं किसीसे तुम्हारी निन्दा की है?’ लीने कहा—‘नहीं।’ महात्माने उत्तर दिया कि ‘आज मैंने तुम्हारा दर्शन किया । अतः मैं तीन दिनका मौन-साधन और उपवास करूँगा।’ और यह कहकर वे ऊप हो गये तथा कानमें अँगुली लगा ली । ली बहाँसे चल दी । वह फिर दूसरे दिन महात्माजीके पास गयी । महात्माजीने लिखकर बताया कि ‘आज फिर तुम्हें देख लिया इससे अब पाँच रोजतक उपवास रहेगा।’ ली लौटकर चली गयी । लीसे न रहा गया । उसने सारा हाल अपने पतिसे कहा । पतिने कहा—‘अच्छा पाँच रोज समाप्त होनेपर चलेंगे।’ जिस समय महात्माजीका उपवास समाप्त होनेवाला था, उसके पति फल लेकर महात्माजीके पास गये । महात्माजीने फल खाकर उसके पतिको आशीर्वाद दिया । तब उसके पतिने कहा कि ‘आपको मेरी लीने वडा कष्ट दिया, इसके लिये मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ और आपको यह जानकर खुशी होगी कि मेरी लीने अब मेरी निन्दा करना छोड़ दिया है।’ महात्माजीने कहा—‘अच्छे और बुरे पुरुषोंके सङ्गका यही फल होता है।’

पाँच सेर भजन !

लगभग तीस वर्ष पहलेकी बात है। एक गाँवमें एक बूढ़ा रहता था। उसकी पत्नी भी बूढ़ी हो गयी थी। दोनोंका स्वभाव बड़ा सरल था। पढ़े-लिखे वे बिल्कुल नहीं थे। उन्हे गिनती केवल बीस या तीसतक ही आती थी। वे दोनों जब भजन करने बैठते, तब एक-एक सेर गेहूँ या चना तौलकर अपने-अपने सामने रख लेते। ‘कृष्ण-कृष्ण’ कहते जाते तथा एक-एक दानाको अलग करते जाते। जब सम्पूर्ण दानोंको अलग कर लेते, तब समझते कि एक सेर भजन हुआ। इसी प्रकार कभी दो सेर, कभी तीन सेर भजन करते। इस प्रकार उनके भजनकी गिनती श्रिचित्र ही थी।

एक बार जाडेकी रात थी। वे बडे जोरसे रोने लगे—‘अरे! मेरे कन्हैयाको जाडा लग रहा है रे!’, फिर अपनी रजाई उठायी और जाकर गाँवके बाहर फैक आये। लोगोंने तो समझा कि बूढ़ा पागल हो गया है। पर उन्हें तो सचमुच दर्शन हुआ था और भगवान्‌ने कहा था—‘दादा! मुझे जाड़ा लग रहा है।’ अपनी जानमें उन्हें यह दीख रहा था कि ‘यह बात कहकर कन्हैया गाँवके बाहर चला जा रहा है, उसे गाय चराने जाना है; वे उसके पीछे

गये हैं और जाकर अपनी रजाई ओढ़ा दी है।’

उन्हींके सम्बन्धमें दूसरी घटना एक और है— उसी गाँवमें एक बड़ा भयङ्कर भैंसा रहता था। उससे प्रायः सभी लोग डरते थे। जिधर जाता, बच्चे तो भाग ही जाते, जवानोंके प्राण भी सूख जाते। एक दिन वे बूढ़े वाला कहाँसे आ रहे थे। भैंसा उस ओर ही लपका। लोगोंने समझा कि आज बूढ़ेका प्राण गया। भाला लेकर लोग दौड़े अवश्य; पर उससे पहले ही भैंसा बूढ़ेके पास आ चुका था। इतनेमें दीखा—‘न जाने कैसे, भैंसा दूसरी ओर मुड़कर भागा।’ लोग चकित रह गये। लोगोंने बूढ़ेसे पूछा। बूढ़ेने बताया—‘तुमलोगोंको दीखा नहीं। अरे कृष्ण कहो। मेरा कन्हैया वड़ा खिलाड़ी है। वह आया, बोला—‘दादा। मैं आ गया हूँ’ और यह कहकर उसने भैंसेकी पूँछ मरोड़ दी। फिर तो वह भैंसा भागा।’ लोगोंने यह तो स्पष्ट देखा था कि ठीक उसकी पूँछ ऐसी टेढ़ी हो गयी थी कि जैसे किसीने सचमुच मरोड़ दी हो, पर उसके अतिरिक्त और कुछ भी किसीको नहीं दीखा।

दोनों ही खी-पुरुष निरन्तर भजन करते थे। कभी सेर, कभी दो सेर, कभी पाँच सेरतक।

विपर्तिका मित्र

(लेखक—श्रीदीनानाथजी सिद्धान्तालंकार)

छः-सात वर्षकी बात है। दिल्लीमें एक टाँगेपर बैठा जा रहा था। टाँगा चलानेवाला अपने कार्यमें विशेष दक्ष प्रतीत नहीं होता था। बातचीत चल पड़ी। मैंने पूछा कि ‘आप कवसे यह काम करते हैं।’ उसने कहा—‘अभी तीन-चार महीनेसे।’ इसी प्रसङ्गमें बात-चीत बढ़ती गयी और मेरी जिज्ञासा भी। उसने अपने जीवनका जो वृत्तान्त सुनाया, वह

संक्षेपतः इस प्रकार है—

मैं पेशावरके पास होती मर्दनिका रहनेवाला हूँ। वहाँ मेरी आदतकी बड़ी दूकान थी। कपूरथलाके एक व्यापारी मेरे नगरमें माल लेने और बेचने प्रायः आते रहते थे। वे जब आते, मुझे अपने नगरमें वसनेका निमन्त्रण दे जाते। मैं भी कह देता, अच्छा कौशिश करूँगा। मेरी दूकानपर वे जितने दिन ठहरते, मैं उनकी

वयाद्यकि पूर्ण मेवा अना, इनमें पाकिन्दान बन गया। सबके साम सुझे भी बहौंसे निश्चला पड़ा।

बहौंसे बहुत क्षेत्रोंके बाद किसी प्रकार अमृतसर पहुँचा। अब कहीं रहने और कामकाज प्राप्ति अनेका प्रमुख समने आया। परिचरमें सब मिथकर दस व्यक्ति थे। उन्हीं सदम सुझे अपूर्यश्लेष्मे निश्चला घान आया। मैंने उनको पत्र लिखा। उसका उत्तर उत्तर आ गया, जिसमें सुझे परिचामृहित शीघ्र बहौं पहुँचनेके लिये आग्रह किया गया था। मेरे लिये उत्तर उत्तर गें मी प्रकार किया था कि 'मैंने अगले मास पहुँचनेकी भूचला इन्हीं द्वारे ब्यों दी।' बुल्ल बारगांवे मैं इमृतसरमें रवाना न हो सका। वे सबन तीन-चार दिन बाद स्वयं बहौं आ गये और सुझे साय चलनेके लिये उद्दोने बाय किया।

मैं परिचामृहित अपूर्यश्ल उत्तर व्यागरी मित्रके पास पहुँच गया। उद्दोने दों बहौं पहुँचते ही कह दिया 'कम्पेक्स छ, मैं आप मेरे पास सर्वथा निश्चिन्त होनेर गहे, अपने सब अप्यका दास्ति सुझार है। अपने और बच्चोंके ज्ञात्यका घान करे। उसके बाद आपके मर्जी अर्थकम्पके सम्बन्धमें विचार किया जाका।' मैं किसी भी प्रकार उत्तर आयिन होनेर नहीं रहना चाहता था। पर वे मी सुझे कहा न अनें देनेके लिये छवनिश्चयी थे। किसी प्रकार छ, मैं उठा करे। मैंने कहा—'आपने सुझार इन्होंना उत्तर किया है, उसका मैं कैसे बदला चुका सकता हूँ। आजकर्ता अज्ञान पाठ्य हो गया। इसलिये अब आप सुझे छुट्टी दीजिये।' इस प्रकार आज-कल बहते उद्दोने पूज महीना और निकाल दिया।

अन्तमें मैंने भी बहुत हठ किया। तब मेरे उन उत्तरी नित्रने पूछा—'आप कहाँ जाना चाहते हैं?' बहौं कपूरयश्लमें रहे। मैं आपको दूकान खुल्ला देना हूँ।' पर मैं अब, किसी प्रकार भी कपूरयश्लमें रहनेके लिये तैयार न था। बहुत ऊँचानानके बाद मैं डिल्डी जानेके लिये उनमें छुट्टी ले सका। उद्दोने चलते समय मेरे हाथमें नीन हजार रुपये नकद रुप दिये और कहा—'डिल्डी जाने ही आपको भकान नहीं मिलेगा, रोजगार हृदृष्टा होगा, तबकक कैसे गुजारा करेंगे?' वे हमये काम आयेंगे। यहि फिर जल्दत हो तो नि संकोच डिल्डीमें छिप देना, मैं और मैत्र दृग्गा।' मैं यह गुह्यि लेनेको किसी प्रकार भी उद्यत नहीं था। फिर ऊँचान छुई। मैंने बड़ा विगुव किया पर सब व्यर्थ।

मैं डिल्डी पहुँचा। किसी प्रकार पांडी देनेपर एक थोड़ा-सा अमरु मिला, जिसमें हम दस प्राणी रहते हैं, पर दूकान नहीं मिठि सकी। इसलिये, मैंने तीन-चार मासमें, दोंगा चलानेका काम शुरू कर दिया। आजतक वह काम कभी नहीं किया था। पर मैंहनत तो करनी ही है। इस समय उसकी आँखें आँसू थे। उसने कहा—'बाबूजी।' मैंने तो कपूरयश्लके व्यापारी मित्रकी बुल्ल भी सेवा नहीं की थी, पर उसने मुझार इन्हें उपकार किये हैं कि जिनका बदला मैं कहीं जन्मामें भी नहीं चुका सकूँगा।'

मैंने कहा—'मार्ड! थोड़ा-सा किया गय उत्तर मी कभी व्यर्थ नहीं जाना है। आपने सर्व इसका अनुभव कर दिया। आप भी अपने जीवनमें सेवा और परकल्पणका ब्रत ले।

जाति-विरोधसे अनर्थ

एक व्याधने पक्षियोंको फँसानेके लिये अपना जाल बिछाया। उसके जालमें दो पक्षी फँसे; किंतु उन पक्षियोंने झटपट परस्पर सलाह की और जालको लेकर उड़ने लगे। व्याधको यह देखकर बड़ा हु ख हुआ। वह उन पक्षियोंके पीछे भूमिपर दौड़ने लगा।

कोई ऋषि अपने आश्रममें बैठे यह दृश्य देख रहे थे।

उन्होंने व्याधको समीप बुलाकर पूछा—‘तुम व्यर्थ क्यों दौड़ रहे हो? पक्षी तो जाल लेकर आकाशमें उड़ रहे हैं।’

व्याध बोला—‘भगवन्! अभी इन पक्षियोंमें मित्रता है। वे परस्पर मेल करके एक दिशामें उड़ रहे हैं। इसीसे वे मेरा जाल लिये जा रहे हैं। परंतु कुछ देरमें इनमें झगड़ा हो सकता है। मैं उसी समयकी

प्रतीक्षामें इनके पीछे दौड़ रहा हूँ। परस्पर झगड़कर जब ये गिर पड़ेंगे, तब मैं इन्हें पकड़ लेंगा।’

व्याधकी बात ठीक थी। थोड़ी देर उड़ते-उड़ते जब पक्षी यकने लगे, तब उनमें इस बातको लेकर विरोध हो गया कि उन्हे कहाँ ठहरना चाहिये। विरोध होते ही उनके उड़नेकी दिशा और पंखोकी गति समान नहीं रह गयी। इसका फल यह हुआ कि वे उस जालको सम्भाले नहीं रख सके। जालके भारसे लड़खड़ाकर खयं भी गिरने लगे और एक बार गिरना प्रारम्भ होते ही जालमें उलझ गये। अब उनके पंख भी फँस चुके थे। जालके साथ वे भूमिपर गिर पड़े। व्याधने उन्हें सरलता-पूर्वक पकड़ लिया।—सु० सिं०

(महाभारत, उद्योग ० ६४)

सुख-दुःखका साथी

व्याधने जहरसे बुझाया हुआ बाण हरिनोंपर चलाया। निशाना चूककर बाण एक बड़े वृक्षमें धूस गया। जहर सारे वृक्षमें फैल गया। पत्ते झड़ गये और वृक्ष मूरखने लगा। उस पेड़के खोखलेमें बहुत दिनोंसे एक तोता रहता था। उसका पेड़में बड़ा प्रेम था। अतः पेड़ सूखनेपर भी वह उसे छोड़कर नहीं गया था। उसने बाहर निकलना छोड़ दिया और चुगा-पानी न मिलनेसे वह भी सूखकर कॉटा हो गया। वह धर्मात्मा तोता अपने साथी वृक्षके साथ ही अपने ग्राण देनेको तैयार हो गया। उसकी इस उदारता, धीरज, सुख-दुःखमें समता और व्यागवृत्तिका बातावरणपर बड़ा असर हुआ। देवराज इन्द्रका उसके प्रति आकर्षण हुआ। इन्द्र आये। तोतेने इन्द्रको पहचान लिया। तब इन्द्रने

कहा—‘प्यारे शुक! इस पेड़पर न पत्ते हैं, न कोई फल। अब कोई पक्षी भी इसपर नहीं रहता। इतना बड़ा जंगल पड़ा है, जिसमें हजारों सुन्दर फल-फूलोंसे लदे हरे-भरे वृक्ष हैं और उनमें पत्तोंसे ढके हुए रहनेके लायक बहुत खोखले भी हैं। यह वृक्ष तो अब मरनेवाला ही है। इसके बचनेकी कोई आशा नहीं है। यह अब फल-फूल नहीं सकता। इन बातोंपर विचार करके तुम इस टूँठे पेड़को छोड़कर किसी हरे-भरे वृक्षपर क्यों नहीं चले जाते?’

धर्मात्मा तोतेने सहानुभूतिकी लंबी साँस छोड़ते हुए दीन बचन कहे—‘देवराज! मैं इसीपर जन्मा था, इसीपर पला और इसीपर अच्छे-अच्छे गुण भी सीखे। इसने सदा बच्चेके समान मेरी देख-रेख की, मुझे

मीठे फल दिये और वैसियोंके आकर्मणसे बचाया। आज इसकी बुरी अवस्थामें मैं इसे छोड़कर अपने सुखके लिये कहाँ चला जाऊँ? जिसके साथ सुख भोगे, उसीके साथ दुःख भी भोगेंगा। मुझे इसमें बड़ा आनन्द है। आप देवताओंके राजा होकर मुझे यह बुरी सलाह क्यों दे रहे हैं? जब इसमें गति थी, यह सम्पन्न था, तब तो मैंने इसका आश्रय लेफ़र जीवन धारण किया; आज जब यह गतिहीन और दीन हो गया, तब मैं इसे छोड़कर चल दूँ? यह कैसे हो सकता है।'

तोतेकी मधुर मनोहर प्रेमभरी वाणी सुनकर इन्द्रको बड़ा सुख मिला। उन्हें दया आ गयी। वे बोले—‘शुक! तुम मुझसे कोई वर भाँगो।’ तोतेने कहा—‘आप वर देते हैं तो यही दीजिये कि यह मेरा प्यारा पेड़ पूर्ववर्त हराभरा हो जाय।’ इन्द्रने अमृत वरसाकर पेड़को सींच दिया। उसमें फिरसे नयी-नयी शाखाएँ, पत्ते और फल लग गये। वह पूर्ववर्त श्रीसम्पन्न हो गया और वह तोता भी अपने इस आदर्श व्यवहारके कारण आगु पूरी होनेपर देवलोकको प्राप्त हुआ। (महाभारत)

आदर्श मित्र

हिम्मक् राष्ट्रमें सुकुल नामका एक धर्मात्मा राजा राज्य करता था। नगरके पास ही एक व्याध पक्षियोंको फँसाकर उन्हें बेचकर अपनी जीविका चलाता था। वहाँपर एक बड़ा लता-चौड़ा ‘मानस’ नामका सरोवर था। व्याध वहाँ जाल फैलाया करता था। वहाँ अनेकों प्रकारके पक्षी ढलकेढल आया करते थे। उस समय हसरोंका राजा चित्रकूट पर्वतकी गुफामें रहा करता था। एक बार हसरोंने आकर उससे अपना समाचार कहा तथा उस सरोवरकी बड़ी प्रशसा की, साथ ही वहाँ चलनेकी प्रार्थना भी की। हसराजने कहा—‘यद्यपि वहाँ चलना ठीक नहीं है तथापि तुम लोगोंका आग्रह ही है तो चलो एक बार देख आयें।’ ऐसा कहकर वह भी अपने परिवारके साथ चल पड़ा। सरोवरके पास पहुँचकर हसराज अभी उत्तर ही रहा था कि जालमें फँस गया, तथापि उसने धीरज-से काम लिया और घवराया नहीं, क्योंकि वह जानता था कि यदि घवराकर होहल्ला मचाऊँगा तो ये सभी हंस भूखे ही भाग जायेंगे।

शामको जब चलनेकी वारी आयी और सबने

हंससे चलनेको कहा, तब उसने अपनी स्थिति बतला दी। अब क्या था, सभी हंस भाग चले। बस, केवल उसका मन्त्री सुमुख रह गया। हसराजने उससे भी भाग जानेको कहा और व्यर्थ प्राण देनेमें कोई लाभ न होनेकी बात बतलायी। पर सुमुखने कहा—‘मैं आज यहाँसे भाग भी जाऊँ तो भी अमर तो होऊँगा नहीं। हाँ, मेरा धर्म चला जायगा। इसलिये मैं प्राण देकर भी अपने धर्मकी रक्षा करूँगा और तुम्हें बचाऊँगा।’ ऐसा कहकर वह वहाँ रह गया।

दूसरे दिन प्रात काल व्याध आया। उसने देखा कि एक स्तनन्त्र हंस भी यों ही ढटा है तो उसके पास जाकर कारण पूछा। उसने अपनी सारी बात बतलायी। व्याधने कहा—‘तू चला जा, मैं तुझे जीवन-दान देता हूँ।’ सुमुखने कहा—‘नहीं, तू मुझे खा ले या बेच डाल, पर मेरे राजाको छोड़ दे।’ इसपर व्याधका हृदय द्वन्द्वित हो गया और उसने यह कहकर हसराजको छोड़ दिया कि ‘सुमुख-जैसे मित्र किसी विरलेके ही भाग्यमें होंगे।’

एक अनुभव

(लेखक—श्रीरामरुदप्रसादसिंहजी, आई० ए० एस०)

गत वर्ष मैं पठनेमें मकान बना रहा था। बरसातके कुछ पहले एक वैगन चूना आ गया। चारों तरफ ईंट खड़ाकर और ऊपर करोगेटेड टीनके चादर रखकर उस चूनेको भीतर रख दिया गया। उन टीनके चादरोंको रोकनेके लिये उन चादरोंको कुछ ईंटोंसे दबा दिया गया। थोड़े दिन बाद अर्द्ध रात्रिके समय बड़े ही जोरका अंधड़-पानी आया, इतने जोरका कि शहरकी बिजली बुझ गयी, अनेकों पेड़ और कुछ मकानोंके छप्पर गिर गये। उस धोर रात्रिमें मैंने सोचा कि मेरे चूनेके घरके टीनके चादर, जो थोड़े ईंटोंसे दबाकर रखवे गये थे, जखर ही उड़ जायेंगे और समूचा चूना बिनष्ट हो जायगा। मैं तत्क्षण बैठकर प्रभुसे रक्षार्थ प्रार्थना करने लगा। मैंने अशरण-शरणकी पुकार की। मैंने सोचा इस धोर परिस्थितिमें उनके बिना और कोई सहारा नहीं है। मैंने स्मरण किया—

‘कोटि विष्णु सकट विकट, कोटि सत्रु जो साथ।
तुलसी बल नहिं करि सकै जो सुदिष्ट रघुनाथ॥
‘गरल सुधा रिपु करहिं मितार्ह। गोपद सिंधु अनल सितलार्ह॥
गरुड सुमेरु रेणु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥
‘चाहे तो ढार कौं मेरु करै, अरु मेरु कौं चाहे तो ढार बनावै।
चाहे तो रंक कौं राव करै, अरु राव को ढार ही ढार फिरावै।’

‘निरालम्बो लम्बो दरजननि कं यामि शरणम्॥
‘क्षुधावृषार्ता जननीं सारनित॥
‘दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का स्वदन्या,
सर्वोपकारकरणाय सदाद्र्वचित्ता॥
‘निराश्रयं मां जगदीश रक्ष॥’

दूसरे दिन सबरे मुझे आश्र्य हुआ, यह देखकर कि मेरे चूनेके घरके ऊपरके टीनके चादर अपनी जगह पर मौजूद थे। मैंने देखा कि मेरे एक मित्रके घरके ऊपरके असवेस्टसके चादर जो तारसे बैंधे थे टूटकर गिर पड़े थे। प्रभुकी कृपासे मैं गदूगद हो गया।



कपोतकी अतिथि-सेवा

गोदावरीके समीप ब्रह्मगिरिपर एक बड़ा भयंकर व्याध रहता था। वह निय ही ब्राह्मणों, साधुओं, यतियों, गौओं और मृग-पक्षियोंका दारुण संहार किया करता था। उस महापापी व्याधके हृदयमें दयाका लेश भी न था और वह बड़ा ही क्रूर, क्रोधी तथा अस्त्यवादी था। उसकी खीं और पुत्र भी उसीके समावके थे।

एक दिन अपनी पत्नीकी प्रेरणासे वह बने जंगलमें घुस गया। वहाँ उसने अनेकों पशु-पक्षियोंका वध

किया। कितनोंको ही जीवित पकड़कर पिंजडेमें डाल दिया। इस प्रकार पूरा आखेटकर वह तीसरे पहर घरको लौटा आ रहा था, एक ही क्षणमें आकाशमें मेघोंकी धनधोर घटा धिर आयी और बिजली कौंधने लगी। हवा चली और पानीके साथ प्रचण्ड उपल (ओला) वृष्टि हुई। मूसलधार वर्षा होनेके कारण बड़ी भयंकर दशा हो गयी। व्याध राह चलते-चलते थक गया। जलकी अधिकताके कारण जल, थल और गढ़े एक-से हो रहे

थे । अब वह पापी सोचने लगा—‘कहाँ जाऊँ, कहाँ ठहरूँ, क्या करूँ ?’

इस प्रकार चिन्ता करते हुए उसने थोड़ी ही दूर-पर एक उत्तम वृक्ष देखा । वह वहीं आकर बैठ गया । उसके सब बत्ते भींग गये थे । वह जाड़ेसे ठिकुर रहा था तथा नाना प्रकारकी बातोंको सोच ही रहा था कि सूर्योदय हो गया । अब उसने वहीं रहनेकी ठानी । उसी वृक्षपर एक कवूतर भी रहता था । उसकी छीं कपोती बड़ी पतिक्ता थी । उस दिन वह चारा चुगकर नहीं लौट सकी थी । अब कपोत चिन्तित हुआ । वह कहने लगा—‘कपोती न जाने क्यों अबतक नहीं आयी । आज वहीं औंधी-नर्पा थी, पता नहीं वह कुशल्से है या नहीं ?’ उसके बिना आज यह बोसला उजाइ-सा जान पड़ता है । वास्तवमें (गृह) घरको (गृह) घर नहीं कहते—गृहिणीको ही (गृह) घर कहा जाता है । जिस गृहमें गृहिणी नहीं वह तो जगल है । यदि आज मेरी प्रिया न लौटी तो मैं इस जीवनको रखकर क्या करूँगा ?’

इधर उसकी कपोती भी इस व्याधके ही पिंजड़ेमें पड़ी थी । जब उसने कवूतरको इस प्रकार विलाप करते सुना तो बोली—‘महामते ! आज मैं धन्य हूँ, जो आप मेरी ऐसी प्रशंसा कर रहे हैं । पर आज आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये । देखिये, यह व्याध आपका आज अतिथि बना है । यह सदसि निश्चेष्ट ही रहा है, अतएव कहींसे तृण तथा अग्नि लाकर इसे स्वस्थ कीजिये ।’

कवूतर यह देखकर कि उसकी छीं वहीं है, होमें आया तथा उसकी बात सुनकर उसने धर्ममें मन लगाया । वह एक स्थानसे थोड़ा तृण तथा अग्निको चोंचसे उठा लाया और उसने अग्नि प्रज्वलित कर व्याधको तपाया । अब

कपोतीने कहा, ‘महामाण ! मुझे आगमें डालकर इस व्याधका भोजन-सत्कार अब कर दीजिये; क्योंकि यह क्षुधा-दावानलमें जल रहा है ।’

कपोत बोला—‘शुभे ! मेरे जीते-जी तुम्हारा यह धर्म नहीं । मुझे आज्ञा दो, मैं ही इसका आतिथ्य करूँ ।’ ऐसा कहकर उसने तीन वार अग्निकी परिक्रमा की और वह भक्तवत्सल चतुर्पुंज महाविष्णुका स्मरण करते हुए अग्निमें प्रवेश कर गया । अब व्याध होशमें था, उसने जब कवूतरको ऐसा करते देखा तो सहसा बोल उठा—‘हाय ! मैंने यह क्या कर डाला ? मैं बड़ा ही नीच, क्रूर और मूर्ख हूँ । अहा ! इस महात्मा कवूतरने मुझ दुष्टके लिये प्राण दे दिया । मुझ नीचको वार-वार धिक्कार है ।’ ऐसा कहकर उसने लाठी, शालका, जाल और पिंजड़ेको फेंककर उस कवूतरीको भी छोड़ दिया और महाप्रस्थानका निश्चयकर बहोंसे तप करनेके लिये चल दिया ।

अब कवूतरीने भी तीन वार कपोत एवं अग्निकी प्रदक्षिणा की और बोली—‘स्वामीके साथ चितामें प्रवेश करना छींके लिये बहुत बड़ा धर्म है । वेदमें इसका विधान है और लोकमें भी इसकी बड़ी प्रशंसा है ।’ यों कहकर वह भी आगमें कूद गयी । इसी समय आकाशमें जय-न्ययकी ध्वनि गैंग उठी । तल्काल ही दोनों दम्पति दिव्य त्रिमानपर चढ़कर सर्ग चले । व्याधने उन्हें इस प्रकार जाते देख हाय जोड़कर अपने उद्धारका उपाय पूछा ।

कपोत-दम्पतिने कहा—‘व्याध ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम गोदावरीके तटपर जाओ । वहाँ पढ़ह दिनोंतक स्नान करनेसे तुम सब पापोंसे मुक्त हो जाओगे । पाप-मुक्त हो जानेपर जब तुम पुनः गौतमी (गोदावरी) गङ्गामें स्नान करोगे तो तुम्हें अश्वमेघ यज्ञका पुण्य प्राप्त होगा ।’

उनकी बात सुनकर व्याधने वैसा ही किया । फिर तो वह भी दिव्य रूप धारणकर एक श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर सर्ग गया । इस तरह कपोत, कपोती और व्याध तीनों ही सर्ग गये । गोदावरी-तटपर जहाँ यह घटना घटी थी, वह कपोत-तीर्थके नामसे विख्यात हो गया । वह आज भी उस महात्मा कपोतका स्मरण दिलाता

हुआ हृदयको पत्रित करता है तथा स्नान, दान, जप, तप, यज्ञ, पितृ-पूजन करनेवालोंको अक्षय फल प्रदान करता है । —जा०ग०

(महाभारत, शान्तिपर्व, आपद्धर्म अध्याय १४३—१४९; ब्रह्मपुराण अ० ८०; पञ्चतन्त्र काकोलूकीय कथा ८; स्कन्द-पुराण, ब्रह्मखण्ड)

खूब विचारकर कार्य करनेसे ही शोभा है

- किसी वनमें खरनखर नामक एक सिंह रहता था । एक दिन उसे बड़ी भूख लगी । वह शिकारकी खोजमें दिनभर इधर-उधर दौड़ता रहा, पर दुर्भायवशात् उस दिन उसे कुछ नहीं मिला । अन्तमें सूर्यास्तके समय उसे एक बड़ी भारी गुहा दिखायी दी । उसमें घुसा तो वहाँ भी कुछ न मिला । तब वह सोचने लगा, अवश्य ही यह किसी जीवकी माँद है । वह रातमें यहाँ आयेगा ही, सो यहाँ छिपकर बैठता हूँ । उसके आनेपर मेरा आहारका कार्य हो जायगा ।

इसी समय उस माँदमें रहनेवाला दधिपुच्छ नामका सियार वहाँ आया । उसने जब दृष्टि डाली तो उसे पता लगा कि सिंहका चरण-चिह्न उस माँदकी ओर जाता हुआ तो दीखता है, पर उसके लौटनेके पद-चिह्न नहीं है । वह सोचने लगा, ‘अरे राम ! अब तो मैं मारा गया, क्योंकि इसके भीतर सिंह है । अब मैं क्या करूँ, इस बातका सुनिश्चित पता भी कैसे लगाऊँ ?’

आखिर कुछ देरतक सोचनेपर उसे एक उपाय सूझा । उसने बिलको पुकारना आरम्भ किया । वह कहने लगा—‘ऐ बिल ! ऐ बिल !’ फिर थोड़ी देर रुककर बोला—‘बिल ! अरे, क्यों तुम्हें स्मरण नहीं है, हमलोगोंमें तथ् हुआ है कि मैं जब यहाँ आऊँ तब तुम्हें मुझे

स्वागतपूर्वक बुलाना चाहिये । पर अब यदि तुम मुझे नहीं बुलाते तो मैं दूसरे बिलमें जा रहा हूँ ।’ इसे सुनकर सिंह सोचने लगा—‘मालूम होता है यह गुफा इस सियारको बुलाया करती थी, पर आज मेरे डरसे इसकी बोली नहीं निकल रही है । इसलिये मैं इस सियारको ग्रेमपूर्वक बुला लूँ और जब यह आ जाय तब इसे छट कर जाऊँ ।’

ऐसा सोचकर सिंहने उसे जोरसे पुकारा । अब क्या था उसके भीपण शब्दसे वह गुफा गूँज उठी और वनके सभी जीव डर गये । चतुर सियार भी इस क्षेक्ष को पढ़ता भाग चला—

अनागतं यः कुरुते स शोभते
स शोच्यते यो न करोत्यनागतम् ।
वनेऽश्र संस्थस्य समागता जरा
बिलस्य वाणी न कदापि मे श्रुता ॥

अर्थात् ‘जो सावधान होकर विचारपूर्वक कार्य करता है, वह तो शोभता है और जो बिना विचारे कर डालता है, वह पीछे पश्चात्ताप करता है । मैं इस वनमें ही रहते-रहते बूढ़ा हो गया, पर आजतक कहीं बिलको बोलते नहीं सुना । (अवश्य ही दालमें कुछ काला है) अर्थात् माँदमें सिंह बैठा हुआ है ।’

(पञ्चतन्त्र)

मिथ्या गर्वका परिणाम

(लेखक—श्रीबुद्धर्नन्दिहर्जी)

समुद्रनदके किसी नगरमें एक धनवान् वैश्यके पुत्रोंने एक कौआ पाल रखा था । वे उस कौएको वगवर अपने भोजनमें बचा अन्न ढेने थे । उनकी जूँटन खानेवाला वह कौआ खाइए तथा पुष्टिका भोजन खाकर न्वृत मोटा हो गया था । इसमें उसका अहकार बहुत बढ़ गया । वह अपनेमें श्रेष्ठ पक्षियोंको भी तुच्छ समझने और उनका अपमान करने लगा ।

एक दिन समुद्रनदपर कहाँने उडते हुए आकर कुछ हस उनरे । वैश्यके पुत्र उन हसोंकी प्रगति का रहे थे, यह बात कौएके सर्दी नहीं गयी । वह उन हसोंके पास गया और उसे उनमें जो सर्वश्रेष्ठ हस प्रतीत हुआ, उसमें बोला—“मैं तुम्हारे साथ प्रतियोगिता करके उड़ना चाहता हूँ ।”

हसोंने उमे समझाया—“भैया ! हम तो दूर-दूर उडनेवाले हैं । हमारा निवास मानसरोवर यहाँसे बहुत दूर है । हमारे साथ प्रतियोगिता करनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा । तुम हसोंके साथ कैसे उड़ सकते हो ?”

कौणे गर्वमें आकर कहा—“मैं उडनेकी सौ गतियों जानता हूँ और प्रत्येकमें सौ योजनतक उड़ सकता हूँ ।” उड्डीन, अवडीन, प्रडीन, डीन आदि अनेकों गतियोंके नाम गिनाकर वह बकवाड़ी कौआ बोला—“बतलाओ, इनमेंसे तुम किस गनिमे उड़ना चाहते हो ?”

तब श्रेष्ठ हसने कहा—“काक ! तुम तो बड़े निपुण हो । परतु मैं तो एक ही गति जानता हूँ, जिसे सब पक्षी जानते हैं । मैं उसी गतिसे उड़ूंगा ।”

गर्भिन कौएका गर्व और बढ़ गया । वह बोला—“अच्छी बात, तुम जो गति जानते हो उसीसे उड़ो ।”

उस समय कुछ पक्षी वहाँ और आगये थे । उनके

सामने ही हस और कौआ दोनों समुद्रकी ओर उडे । समुद्रके ऊपर आकाशमें वह कौआ नाना प्रकारकी कल्पवाजियाँ डिखाता पूरी शक्तिसे उड़ा और हससे कुछ आगे निकल गया । हस अपनी स्वाभाविक मन्द गतिसे उड़ रहा था । यह देखकर दूसरे कौर प्रसन्नता प्रकट करने लगे ।

योडी देरमें ही कौएके पख यकने लगे । वह विश्राम-के लिये इधर-उधर वृक्षयुक्त द्वीपोंकी खोज करने लगा । परतु उसे उम अनन्त सागरके अनिरिक्त कुछ दीख नहीं पड़ता था । इतने समयमें हस उड़ता हुआ उससे आगे निकल गया था । कौएकी गति मन्द हो गयी । वह अन्यन्त थक गया और ऊँची तरगोंवाले भयकर जीवोंसे भरे समुद्रकी लहरोंके पास गिरनेकी दशामें पहुँच गया ।

हसने देखा कि कौआ बहुत पीछे रह गया है तो स्क गया । उसने कौरके समीप आकर पूछा—“काक ! तुम्हारी चोंच और पख बार-बार पानीमें डूब रही हैं । यह तुम्हारी कौन-सी गति है ?”

हसकी व्यंगमरी बात सुनकर कौआ बड़ी दीनतासे बोला—“हांस ! हम कौए केवल कॉत्र-कॉत्र करना जानते हैं । हमें भला दूरतक उड़ना क्या आये । मुझे अपनी मूर्खताका दण्ड मिल गया । कृष्ण करके अब मेरे प्राण बचा लो ।”

जलसे भीगे, अचेत और अधमरे कौएपर हसको दया आ गयी । पैरोंसे उसे उठाकर हसने पीछर रख लिया और उसे लादे हुए उड़कर वहाँ आया जहाँसे दोनों उडे थे । हसने कौएको उसके स्थानपर छोड़ दिया ।

(महाभारत, कर्ण०४१)

—३५८—

संकटमें बुद्धिमानी

एक वनमें वटवृक्षकी जडमें सौ दरवाजोका विलवनाकर पलित नामका एक बुद्धिमान् चूहा रहता था। उसी वृक्षकी शाखापर लोमश नामका एक विलाव भी रहता था। एक बार एक चाण्डालने आकर उस वनमें डेग ढाल दिया। सूर्यास्त होनेपर वह अपना जाल फैला देता था और उसकी तोतकी डोरियोको यथास्थान लगाकर मौजसे अपने झोपड़में सो जाता था। रातमें अनेकों जीव उसके जालमें फँस जाते थे, जिन्हे वह सधेरे पकड़ लेता था। विलाव यद्यपि वहुत सावधान रहता था तो भी एक दिन उसके जालमें फँस ही गया। यह देखकर पलित चूहा निर्भय होकर वनमें आहार खोजने लगा। इतनेही-में उसकी दृष्टि चाण्डालके डाले हुए (फँसानेके लिये) मास-खण्डोंपर पड़ी। वह जालपर चढ़कर उन्हे खाने लगा। इतनेमें ही उसने देखा कि हरिण नामका न्यौला चूहेको पकड़नेके लिये जीभ लपलपा रहा था। अब चूहेने जो ऊपरकी ओर वृक्षपर भागनेकी सोची तो उसने वटकी शाखापर रहनेवाले अपने धोर शवु चन्द्रक नामक उल्लको देखा। इस प्रकार इन गन्तुओंको बीचमे पड़कर वह डर गया और चिन्तामें डूब गया।

इसी समय उसे एक विचार सूझ गया। उसने देखा कि विलाव सकटमें पड़ा है, इसलिये वह इसकी रक्षा कर सकता। अतः उसने उसकी शरणमें जानेकी सोची। उसने विलावसे कहा—‘भैया। अभी जीवित हो न ? देखो ! ढो मत। यदि तुम मुझे मारना न चाहो तो मैं तुम्हारा उद्धार कर सकता हूँ। मैंने खूब विचारकर अपने और तुम्हारे उद्धारके लिये उपाय सोचा है। उससे हम दोनोंका हित हो सकता है। देखो ये न्यौला और उल्ल भी मेरी धातमें बैठे हुए हैं। इन्होंने अभीतक मुझपर आकर्षण नहीं किया है, इसीलिये वचा हुआ हूँ। अब तुम मेरी रक्षा करो और तुम जिस जालको काटनेमें

असमर्थ हो उसे काटकर मैं तुम्हारी रक्षा कर लूँगा।’

विलाव भी बुद्धिमान् था। उसने कहा—‘सौम्य ! तुम्हारी वानोसे बड़ी प्रसन्नता हुई है। इस समय मेरे प्राण संकटमें हैं। मैं तुम्हारी शरणमें हूँ। तुम जैसा भी कहोगे मैं वैसा ही करूँगा।’

चूहा बोला—‘तो मैं तुम्हारी गोदमें नीचे छिप जाना चाहता हूँ, क्योंकि नेवलेसे मुझे वडा भय हो रहा है। तुम मेरी रक्षा करना। इसके बाद मैं तुम्हारा जाल काट दूँगा। यह बात मैं सत्यकी अपथ लेकर कहता हूँ।’

लोमग बोला—‘तुम तुरत आ जाओ। भगवान् तुम्हारा मङ्गल करे। तुम तो मेरे प्राणोंके समान सखा हो। इस सकटसे छूट जानेपर मैं अपने वन्धु-ब्रान्ववोंके साथ तुम्हारा प्रिय तथा हितकारी कार्य करता रहूँगा।’

अब चूहा आनन्दसे उसकी गोदमें जा बैठा। विलावने भी उसे ऐसा नि अङ्ग बना दिया कि वह माता-पिताकी गोदके समान उसकी छातीसे लगकर सो गया। जब न्यौले और उल्लने उनकी ऐसी गहरी मित्रता देखी तो वे निराश हो गये और अपने-अपने स्थानको छले गये। चूहा देवकालकी गतिको पहचानता था, इसलिये चाण्डालकी प्रतीक्षा करते हुए धीरे-धीरे जाल काटने लगा। विलाव बन्धनके खेदसे ऊब गया था। उसने उससे जल्दी-जल्दी जाल काटनेकी प्रार्थना की।

पलितने कहा, ‘भैया ! घबराओ मत। मैं कभी न चुरूँगा। असमयमें काम करनेसे कर्नको हानि ही होती है। यदि मैंने पहले ही तुम्हे छुड़ा दिया तो मुझे तुमसे भय हो सकता है। इसलिये जिस समय मैं देखूँगा कि चाण्डाल हथियार लिये हुए इधर आ रहा है, उसी समय मैं तुम्हारे बन्धन काट डालूँगा। उस समय तुम्हे

बृक्षपर चढ़ना ही मूँझे और मैं तुरत अपने विडमें घुम जाऊँगा ।'

विश्वने कहा—‘भाई ! पहलेको मेरे अपने वोंको भूल जाओ । तुम अब फुनकि साथ मेरा बन्धन काट दो । देखो, मैंने आपत्तिमें देखकर तुम्हें तुरन बचा लिया । अब तुम अपना मनोमालिन्य दूर कर दो ।’

चूहेने कहा—‘मित्र ! जिम मित्रमे भगवकी ममावना हो उसका काम इस प्रकार करना चाहिये, जैसे बाजीगर सर्पके साथ उसके मुँहमे हाथ बचाकर खेलता है । जो व्यक्ति वरगानके साथ मन्त्र करके अपनी गधाका भ्यान नहीं रखता, उसका यह भेड़ अपथ्य भोजनके समान केमे हिनकर होगा ॥ मैंने बहुत-से तनुओंको काट डाया हूँ, अब सुस्तन एक ही ढोरी काटनी है । जब चाणडाल आ जायगा, तब भयके कारण तुम्हे भागनेकी ही मूँझेगी, उमी समय मैं तुरन उसे काट डाढ़ेगा । तुम विलुप्त न बदराओ ।’

इसी तरह वाते करते वह रात बीत गयी । लोमगका भय बराबर बढ़ता गया । प्रात काल परिव्य नामक चाणडाल हाथमें शब्द लिये आता दीखा । वह साक्षात् यमदूतके समान जान पड़ता था । अब तो विश्व भयसे व्याकुल हो गया । अब चूहेने तुरंत जाल काट दिया । विलव झट पेडपर चढ़ गया और चूहा भी विलमें घुस गया । चाणडाल भी जालको कटा देख निराग होकर वापस चला गया ।

अब लोमगने चूहेमे कहा—‘मैंया ! तुम मुझमे कोई वात किये विना ही विलमें क्यों घुम गये । अब तो मैं तुम्हारे मित्र हो गया हूँ और अपने जीवनकी अपय काके कहता हूँ, अब मेरे बन्धु-बन्धव भी तुम्हारी इस प्रकार सेवा करेंगे, जैसे डिप्प लोग गुरुकी सेवा

करते हैं । तुम मेरे जरीर, मेरे घर और मेरी सारी सम्पत्तिके स्वामी हो । आजसे तुम मेरा मन्त्रिल स्वीकार करो और पितामही तरह मुझे शिक्षा दो । बुद्धिमें तो तुम साक्षात् शुक्राचार्य ही हो । अपने मन्त्रवलसे जीवन-दान देकर तुमने मुझे नि शुल्क खरीद लिया है । अब मैं सर्वया तुम्हारे अधीन हूँ ।’

विलावकी निकनी-चुपडी वातें सुनकर परम नीनिज्ञ चूहा बोल—‘भाई साहब ! मित्रना तभीतक निभनी है, जबतक स्वार्थसे प्रियोव नहीं आता । मित्र वही बन सकता है, जिसमे कुछ स्वार्थ सिद्ध हो तथा जिसके मरनेमे कुछ हानि हो, तभीतक मित्रता चलनी है । न मित्रना कोई स्थायी वस्तु है और न गतुता ही । स्वार्थ-की अनुशूलना-प्रनिशूलनासे ही मित्र तथा शत्रु बनते रहते हैं । समयमें फेरमे कभी मित्र ही शत्रु तथा कभी शत्रु ही मित्र बन जाता है । हमारी प्रीति भी एक पिशेव कारणसे ही हुई थी । अब जब वह कारण नष्ट हो गया तो प्रीति भी न रही । अब तो मुझे खा जानेके सिया मुझमे तुम्हारे कोई दूसरा प्रयोजन सिद्ध होनेवाला नहीं । मैं दुर्वल तुम बलवान्, मैं भड़य तथा तुम भक्षक ठहरे । अतएव तुम मुझसे भूख बुझाना चाहते हो । भला, जब तुम्हारे प्रिय पुत्र और छी मुझे तुम्हारे पास बैठा देखेंगे तो मुझे झट चट करनेमें वे क्यों चूकेंगे ? इसलिये मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता । अतएव मैया ! तुम्हारा कल्याण हो ! मैं तो चला । यदि मेरे किये हुए उपकारका तुम्हें ध्यान हो तो कमी मैं चूक जाऊँ तो मुझे चट न कर जाना ।’

पलितने जब इस प्रकार खरी-खरी सुनायीतो विलावने लज्जिन होकर कहा—‘भाई ! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, तुम मेरे परमप्रिय हो और मैं तुमसे द्वेष नहीं कर सकता । अधिक क्या तुम्हारे कहनेसे मैं अपने बन्धु-बन्धवोंके साथ प्राणतक त्याग सकता हूँ ।’

इस प्रकार विलावने जब चूहेकी और भी बहुत प्रशंसा की, तब चूहेने कहा—‘आप वास्तवमें बड़े साधु हैं। आपपर मैं पूर्ण प्रसन्न हूँ, तथापि मैं आपमें विश्वास नहीं कर सकता। इस सम्बन्धमें शुक्राचार्यकी दो बातें ध्यान देने योग्य हैं—(१) जब दो शत्रुओंपर एकसी विपत्ति आ पड़े तब परस्पर मिलकर बड़ी सावधानीसे काम लेना चाहिये और जब काम हो जाय तब बली शत्रुका विश्वास नहीं करना चाहिये। (२) जो अविश्वासका पात्र हो, उसका कभी भी विश्वास न करे और जो

विश्वासपात्र हो, उसका भी अत्यधिक विश्वास न करे। नीतिशास्कका यही सार है कि किसीका विश्वास न करना ही अच्छा है। इसलिये लोमशजी ! मुझे आपसे सर्वथा सावधान रहना चाहिये और आपको भी ‘जन्मशत्रु चाण्डालसे बचना चाहिये।’

चाण्डालका नाम सुनकर विलाव भाग गया और चूहा भी बिलमें चला गया। इस तरह दुर्वल और अकेला होनेपर भी बुद्धिवलसे पलित कई शत्रुओंसे बच गया। —जा० ग०

(महा० शान्ति० आपद्धर्म० अध्याय १३८)

बहुमतका सत्य

(लेखक—श्रीसुदर्ढनसिंहजी)

किसी वृक्षपर एक उल्लू बैठा हुआ था। अचानक एक हस उड़ता हुआ उस वृक्षपर आ बैठा। हस स्थानिक रूपमें बोला—‘उक् ! किननी गरमी है। सूर्य आज बहुत प्रचण्ड रूपमें चमक रहे हैं।’

उल्लू बोला—‘सूर्य ? सूर्य कहाँ है ? इस समय गरमी है यह तो ठीक, किन्तु यह गरमी तो अन्धकार बढ़ जाने-से हुआ करती है।’

हसने समझानेका प्रयत्न किया—‘सूर्य आकाशमें रहते हैं। उनका प्रकाश संसारमें फैलता है, तब गरमी बढ़नी है। सूर्यका प्रकाश ही गरमी है।’

उल्लू हँसा—‘तुमने प्रकाश नामक एक और नयी वस्तु बतायी। तुम चन्द्रमाकी बात करते तो वह मैं समझ सकता था। देखो, तुम्हें किसीने बहका दिया है। मूर्ख या प्रकाश नामकी वस्तुओंकी समारमें कोई सत्ता ही नहीं है।’

हसने उल्लूको समझानेका जिनना प्रयत्न किया, उल्लूका हठ उनना बढ़ना गया। अन्तमें उल्लूने कहा—‘यद्यपि

इस समय उड़नेमें मुझे बहुत कष्ट होगा, फिर भी मैं तुम्हारे साथ चलूँगा। चलो, बनके भीतर सघन वृक्षोंके बीच जो भारी बटवृक्ष है, उसपर मेरे सैकड़ों बुद्धिमान् जाति-भाई हैं। उनसे निर्णय करा लो।’

हसने उल्लूकी बात स्वीकार कर ली। वे दोनों उल्लूओंके समुदायमें पहुँचे। उस उल्लूने कहा—‘यह हंस कहता है कि आकाशमें इस समय सूर्य चमक रहा है। उसका प्रकाश संसारमें फैलता है। वह प्रकाश उष्ण होता है।’

सारे उल्लू हँस पड़े, फिर चिल्लाकर बोले—‘क्या बाहियात बात है, न सूर्यकी कोई सत्ता है, न प्रकाशकी। इस मूर्ख हसके साथ तुम तो मूर्ख मत बनो।’

सब उल्लू उस हसको मारने ज्ञापटे। कुशल इतनी थी कि उस समय डिन था। उल्लूओंको वृक्षोंके अन्धकारसे बाहर कुछ दीख नहीं सकता था। हंसको उड़कर अपनी रक्षा करनेमें कठिनाई नहीं हुई। उसने उड़ते-उड़ते अपने-आप कहा—‘बहुमत सत्यको असत्य तो

कर नहीं सकता, किंतु उन्हें को कर्मोंका जहाँ बद्धमत हो, सफलता मिलनी कठिन ही है। चाहे वह सत्यका नहीं किमी समझदारको सत्यका प्रतिपादन करनेमें साक्षात्कार कर चुका हो।

स्वतन्त्रताका मूल्य

एक चाँड़नी रातमें दैवतोगमे एक भेड़ियेको एक आयन्न मौटेनाजे कुत्तेमें गंट हो गयी। प्राथमिक शिष्य-चार्जके बाट भेड़ियेने कहा—‘मिर! यह कैसी बात है कि तुम न्यय तो या पीकर इन्हें मौटेनाजे हो गये हो और इधर मैं गत-ठिन भोजनके अभासमें मर रहा हूँ, वही दृष्टिनार्थमें इस दुर्बल अरीरंग गेरे प्राणमात्र अब शोप रह गये हूँ।’

कुत्तेने कहा—‘टीक तो है, तुम भी हमारे-जैसे मौटेनाजे बन सकते हो, बस, आपद्यकला इस बातमी है कि तुम भी मेरा अनुकरण करो।’

भेड़ियेने कहा—‘यह क्या?’

‘ब्रह्म, केवल मेरे मालिकके घरमी रखगाली करना और गतमें चोरोंगो समीप न आने देना।’ कुत्ता बोला।

‘सब प्रकारमें सोउहों आने जी लगाकर करहँगा। आजकल मेरे दिन बड़े दूँखमें बीन रहे हैं। एक तो जगठ-का बातागण, दूसरे असश्य हिमपात, धोर वर्षा—जीवन-धारण कठिन हो रहा है सो सिरपर गरम छन और भर-पेट भोजन, मैं समझता हूँ, यह परिवर्तन कोई दुरा तो नहीं दीएना।’ भेड़िया बोला।

‘प्रिल्युल ठीक। बस, तो अब आपको कुछ करना नहीं है। आप चुपचाप मेरे पीछे-पीछे चलते आइये।’ कुत्ता बोला।

इस प्रकार जब दोनों धीरे-धीरे चले जा रहे थे,

तबतक भेड़ियेका ध्यान कुत्तेकी गर्दनपर पड़े हुए एक दागकी तरफ गया। इस विचित्र चिह्नको देखकर उसे इतना कुत्तहल हुआ कि वह किसी प्रकार अपनेको रोक न सका ओर पूछ बैठा कि वह उसका कैसा चिह्न है?

कुत्तेने कहा—‘यह कुछ नहीं है।’

भेड़ियेने कहा—‘तो भी कृपाकर बतलाओ तो सही।’

कुत्ता बोला—‘मालूम होता है तुम वन्धनकी पट्टीकी बात कर रहे हो, जिसमें मेरी सिकड़ी लगी रहती है।’

‘तो इसका अर्थ है कि तुम्हें यथेच्छ घूमने-फिरनेकी स्वतन्त्रता नहीं है।’ भेड़िया चकित होकर चिल्ला पड़ा।

‘प्रायः नहीं, क्योंकि मे देखनेमें भयानक हूँ ही। इसलिये दिनमें तो लोग मुझे बाँध रखते हैं और रातमें खुला ढोड़ देने हैं। पर मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, मेरा मालिक मुझे अपने जैसा ही भोजन देता है। वह मुझे बड़ा प्यार करता है। परतु भाई यह क्या! तुम चले कहों?’

‘बस! नमस्कार! तुम्हारा यह भोजन तुम्हें ही मुवारक हो। मेरी आजादीके सामने यह जगलका सूखा छिल्का एक परवश सम्राट्के उपभोगोंसे भी कहाँ बढ़ा-चढ़ा है। मैं तो इस लोह-शृङ्खलाको उस मूल्यपर भी न स्वीकार करूँगा।’—A dry crust with liberty against a king's luxury with a chain

--जा० श०

बुरी योनिसे उद्धार

ग्राचीन कालमे एक सियार और एक वानर मित्र-भावसे एक ही स्थानपर रहते थे । दोनोंको अपने पूर्वजन्मका स्मरण था । एक समय वानरने सियारको इमआनमे धृणित शवको खाते देखकर पूछा, 'मित्र ! तुमने पूर्वजन्ममे क्या किया था जिससे तुम्हें इतना निपिङ्ग तथा धृणित भोजन करना पड़ता है ।' सियारने कहा, 'मित्र ! मैं पूर्वजन्ममें वेदोंका पारङ्गत विद्वान् और समस्त कर्मकलापोंका ज्ञाता वेदशर्मा नामका ब्राह्मण था । उस जन्ममें मैंने एक ब्राह्मणको धन देनेका सकल्प किया था पर उसको दिया नहीं, उसीसे इस बुरी योनि तथा बुरे आहारको प्राप्त हुआ हूँ । प्रतिज्ञा करके यदि ब्राह्मणको वह वस्तु नहीं दी जाती तो उसका दस जन्मोंका पुण्य तत्काल नष्ट हो जाता है, अब तुम बताओ, तुम किस कर्मविपाकसे वानर हुए ।'

वानर बोला—'मैं भी पूर्व-जन्ममें ब्राह्मण ही था । मेरा नाम वेदनाथ था और मित्र ! पूर्वजन्ममें भी हमारी-तुम्हारी धनिष्ठ मित्रता थी । यद्यपि तुम्हें यह स्मरण नहीं, तथापि पुण्यके गौरवसे मुझे उसकी पूर्णतया स्मृति है । उस जन्ममें मैंने एक ब्राह्मणका शाक चुराया था, इसलिये मैं वानर हुआ हूँ । ब्राह्मणका धन लेनेसे नरक तो होता

ही है, नरक भोगनेके बाड वानरकी ही योनि मिलती है । ब्राह्मणका धन अपहरण करनेसे बढ़कर दूसरा कोई भयकर पाप नहीं । यित तो केवल खानेवालेको ही मारता है, किंतु ब्राह्मणका धन तो समूचे कुलका नाश कर डालता है । वालक, दरिद्र, कृपण तथा वेद-शास्त्र आदिके ज्ञानसे शून्य ब्राह्मणोंका भी अपमान नहीं करना चाहिये, क्योंकि क्रोधमे आनेपर वे अग्निके समान भस्म कर देते हैं ।'

सियार और वानर इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि दैवयोगसे किंवा उनके किसी पूर्व-पुण्यसे सिन्धुद्वीप नामक ऋषि स्वेच्छासे वृमते हुए वहीं पहुँच गये । उन दोनों मित्रोंने मुनिको प्रणाम किया और अपनी कथा सुनाकर उद्धारका रास्ता पूछा । ऋषिने बड़ी देरतक मन-ही-मन विचारकर कहा—'तुम दोनों श्रीरामचन्द्रजीके धनुष्कोटि तीर्थमें जाकर स्नान करो । ऐसा करनेसे पापसे छूट जाओगे ।'

तदनुसार सियार और वानर तत्काल ही धनुष्कोटिमें गये और वहाँके जलसे स्नानकर सब पापोंसे मुक्त होकर श्रेष्ठ व्रिमानपर आखड़ होकर देवलोकमें चले गये ।

(स्कन्दपुराण, ब्राह्मणण्ड, सेतुमाहात्म्य अध्याय ३९)

—जा० श०

सबसे भयंकर शत्रु—आलस्य

पुरानी वात है । एक पूर्वजन्मका स्मरण करने-वाला—ज्ञानिस्मर ऊँट था । वह वनमे रहकर कठोर नियमोंका पालन करता हुआ तप कर रहा था । उसकी तपस्या पूरी होनेपर ब्रह्माजीने उसे वर माँगनेको कहा । वह ऊँट स्वभावसे बड़ा आलसी था । उसने वर माँगा—'भगवन् । मेरी गर्दन सौ योजनकी हो जाय जिसमें मैं उतनी दूरतककी धास एक जगहसे बैठें-बैठे ही चर

सकूँ ।' ब्रह्माजी भी 'तथास्तु' कहकर चल दिये । अब क्या था, वह आलसी ऊँट कहीं चरने नहीं जाता और एक ही जगह बैठ रहकर भोजन कर लेता था ।

एक बार वह अपनी सौ योजन लघी गर्दन फैलाये कहीं निश्चिन्त धूम रहा था । इतनेमे बड़े जोरोंकी आँखी आयी और घोर वृष्टि भी शुरू हो गयी । अब उस मूर्ख पशुने अपने सिर और गर्दनको एक कन्दरामे धुसेङ्ग

दिया । उसी समय उस ओंधी और जलवृष्टिसे आक्रान्त एक गीदड़ अपनी गीदड़ीके साथ उस गुफामें झरण लेने आया । वह मासाहारी शृगाल सर्दी, भूख और यकानसे धीड़ित था । वहाँ उसने ऊँटकी गर्दन देखी और इट उसीको खाना आरम्भ कर दिया । जब उस

आळसी, दुद्धिहीन ऊँटको इसका पता चला, तब दु खसे अपने सिरको डधर-उधर हिलाने लगा । उसने अपनी गर्दन निकालनेका प्रयत्न किया पर वह सफल न हो सका । गीदड़-गीदड़ीने भर-पेट उसका मास खाया और परिणामस्वरूप ऊँटकी मृत्यु हो गयी ।—जा० ग०

(महामारत, शान्तिपर्व, अध्याय ११२)

सत्यनिष्ठाका प्रभाव

चन्द्रमाके समान उज्ज्वल, सुमुष्ट, सुन्दर सींगोंवाली नन्दा नामकी गाय एक बार हरी धास चरती हुई बनमें अपने समूहकी दूसरी गायोंसे पृथक् हो गयी । दोपहर होनेपर उसे प्यास लगी और जल पीनेके लिये वह सरोवरकी ओर चल पड़ी, किंतु सरोवर जब समीप ही ही, मार्ग रोककर खड़ा एक भयकर सिंह उसे मिला । सिंहको देखते ही नन्दाके पैर रुक गये । वह थर-थर काँपने लगी । उसके नेत्रोंसे आँसू वह चले ।

भूखे सिंहने उस गायके सामने खड़े होकर कहा—
‘अरी ! तू रोती क्यों है ? क्या तू समझती है कि सदा जीवित रहेगी ? तू रो या हँस, अब जीवित नहीं रह सकती । मैं तुझे मारकर अपनी भूख मिटाऊँगा ।’

गाय कौपते स्वरमें बोली—‘ननराज ! मैं अपनी मृत्युके भयसे नहीं रोती हूँ । जो जन्म लेता है, उसे मरना पड़ता ही है । परतु मैं आपको प्रणाम करती हूँ । जैने आपने मुझसे वातचीत करनेकी कृपा की, वैसे ही मेरी एक प्रार्थना स्तीकार कर लें ।’

सिंहने कहा—‘अपनी वात तू शीघ्र कह डाल । मुझे बहुत भूख लगी है ।’

गौ—‘मुझे पहिली बार ही एक बछड़ा हुआ है । मेरा वह बछड़ा अभी धास मुखमें भी लेना नहीं जानता । अपने उस एकमात्र बछड़ेके स्नेहसे ही मैं व्याकुल हो रही हूँ । आप मुझे योङ्गा-सा समय देनेकी कृपा करें, जिससे मैं जाकर अपने बछड़ेको अन्तिम बार दून पिला

दूँ, उसका सिर चाट लैँ और उसे अपनी सखियों तथा माताको सौंप दूँ । यह करके मैं आपके पास आ जाऊँगी ।’

सिंह—‘तू तो बहुत चतुर जान पड़ती है, परतु यह समझ ले कि मुझे तू ठग नहीं सकती । अपने पैरमें पड़े आहारको मैं छोड़नेवाला नहीं हूँ ।’

गौ—‘आप मुझपर विश्वास करें । मैं सत्यकी अपय करके कहती हूँ कि बछड़ेको दूध पिलाकर मैं आपके पास शीघ्र आ जाऊँगी ।’

सिंहने गौकी बहुत-सी शपथें सुनीं, उसके मनमें आया कि ‘मैं एक दिन भोजन न करूँ तो भी मुझे विशेष कष्ट नहीं होगा । आज इस गायकी वात मानकर ही देख लैँ ।’ उसने गायको अनुमति दे दी—‘अच्छा, तू जा, किंतु किसीके बहकावेमें आकर रुक मत जाना ।’

नन्दा गौ सिंहकी अनुमति पाकर वहाँसे अपने आवासपर लौटी । बछड़ेके पास आकर उसकी आँखोंसे आँसूकी धारा चल पड़ी । वह शीघ्रतासे बछड़ेको चाटने लगी । बछड़ेने माताके रोनेका कारण पूछा । जब नन्दाने बताया कि वह सिंहको लौटनेका बचन दे आयी है, तब बछड़ेने कहा—‘माता ! मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूँगा ।’

नन्दाकी वात सुनकर दूसरी गायोंने उसे सिंहके पास फिर जानेसे रोकना चाहा । उन्होंने अनेक युक्तियोंसे नन्दाको समझाया । परतु नन्दा अपने

निश्चयपर दृढ़ रही। उसने सत्यकी रक्षाको ही अपना धर्म माना। बछडेको उसने पुचकारकर दूसरे गायोंको सौंप दिया, किंतु जब वह सिंहके पास पहुँची, तब पूँछ उठाये 'बॉ-बॉ' करता उसका बछड़ा भी ढौड़ा आया और अपनी माता तथा सिंहके बीचमे खड़ा हो गया। नन्दाने यह देखकर सिंहसे कहा—'मुगेन्द्र ! मैं लौट आयी हूँ। आप मेरे इस अवोध बछडेपर दया करें। मुझे खाकर अब आप अपनी क्षुधा शान्त कर लें।'

सिंह गायकी सत्यनिष्ठासे प्रसन्न होकर बोला—
‘कल्याणी ! जो सत्यपर स्थिर है उसका अमङ्गल कभी नहीं हो सकता। अपने बछडेके साथ तुम जहाँ जाना चाहो, प्रसन्नतापूर्वक चली जाओ।’

उसी समय वहाँ जीवोंके कर्म-नियन्ता धर्मराज प्रवक्ट हुए। उन्होने कहा—‘नन्दा ! अपने सत्यके कारण बछडेके साथ तुम अब खर्गकी अधिकारिणी हो गयी हो और तुम्हारे सर्सगसे सिंह भी पापमुक्त हो गया है।’—सु० सिं०

संसारके सुखवोंकी अनित्यता

किसी नगरमे एक गृहस्थके घर एक गाय पली थी। एक दिन उस गायका बछड़ा बहुत उदास हो रहा था। वह समयपर माताके स्तनोंमे मुख लगाकर दूध पीनेमे भी उस दिन उत्साह नहीं दिखला रहा था। गायने अपने बच्चेकी यह दशा देखकर पूछा—‘वेटा ! आज तुम इतने उदास क्यों हो ? उत्साहपूर्वक दूध क्यों नहीं पीते हो ?’

बछड़ा बोला—‘मौं ! तुम उस भेडेकी ओर तो देखो। वह काला-कल्दटा है, मुझसे छोटा है और सुस्ता भी है; किंतु अपने स्वामीका पुत्र उसे कितना प्यार करता है। उसे वह रोटी खिलाता है, हरी-हरी धास देता है, मटरकी फलियों अपने हाथों खिलाता है और उसे पुचकारता है। उस भेडेको स्वामीके पुत्रने धटियों पहिनायी हैं और उसके साँगोंमें प्रतिदिन तेल लगाता है। दूसरी ओर मुझ अभागोकी कोई पूछ ही नहीं। मुझे पेटभर सूखी धास भी नहीं दी जाती। समयपर कोई मुझे पानीतक नहीं पिलाता। मुझमे ऐसा क्या दोष है ? मैंने कौन-सा अपराध किया है ?’

गाय बोली—‘वेटा ! व्यर्थ दुख मत करो। यह ससार ऐसा है कि यहाँ बहुत सुख और बहुत सम्मान मिलना बड़े भयकी बात है। ससारके सुख और सम्मानके पीछे रोग, शोक, मृत्यु तथा पतन छिपे हैं। तुम लोभ मत करो और दूसरेका सुख-सम्मान

देखकर दुखी भी मत हो। वह तो दयाका पात्र है जैसे मरणासन्न रोगी जो कुछ चाहता है, उसे दिया जाता है, वैसे ही यह भेड़ा भी मरणासन्न है। इसे मारनेके लिये पुष्ट किया जा रहा है। हमारे सूखे तृण ही हमारे लिये शुभ हैं।’

कुछ दिन बीत गये। एक सध्याको गौ जब बनसे चरकर लौटी, तब उसने देखा कि उसका बछड़ा भयसे कॉप रहा है। वह न दौड़ता है, न बोलता है। दीवारसे सटा दुबका खड़ा है। पास 'जानेपर भी उसने दूध पीनेका कोई प्रयत्न नहीं किया। गायने उसे चाटते हुए पूछा—‘वेटा ! आज तुझे क्या हो गया है ?’

बछड़ा बोला—‘मौं ! मैंने देखा है कि उस भेडेको पहले तो खबू सजाया गया, छल-माला पहिनायी गयी, किंतु पीछे एक मनुष्यने उसका मस्तक काट दिया। केवल एक बार चीत्कार कर सका बेचारा ! उसने थोड़ी ही देर पैर पछाड़े। उसके गरीरके भी हत्यारोंने टुकड़े-टुकड़े कर दिये। अब भी वहाँ ऑगनमें भेडेका रक्त पड़ा है। मैं तो यह सब देखकर बहुत डर गया हूँ।’

गायने बछडेको पुचकारा और वह बोली—‘मैंने तो तुमसे पहिले ही कहा था कि ससारके सुख और सम्मानसे सावधान रहना चाहिये। इनके पीछे ही रोग, शोक, पतन और क्रिनाश दबे पैर आते हैं।’—सु० सिं०

श्रीमत्स्यावतार-कथा

(१)

नतागा राजा ॥ कि जग गमान्म लोग निपयाके मोहमें
पइरन् भगवानसो भूल जाते हैं और उनकी न्वाभाविक
निष्मतारं राण पारनापरमे छुलसने लगते हैं, तभ उन्हें

फिसके माय मटे, फिसमे हटें, फिसको मटाके लिये अपने
पास गर्दनेकी चेष्टा रुरे, अथवा फिसके माय रहनेकी चेष्टा
करें, यही मात्रकर बुद्धिमान्लोग जगत्‌के पदार्थोंमें अलगा
रहन्ऱ अपने स्वरूपमें अथवा भगवान्‌क चरणोंमें स्थित रहते

अवतार-कथा

(लेखक—स्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज)

उदाहरण तो सकारमें प्राय प्रतिदिन ही देखनेको
मिलता है ।

ममारमा अर्थ है मरमनेवाला, जो प्रतिपल बढ़ल रहा
है अथवा जो पल बढ़लनेमे पहले ही लापता हो जाता है ।
सुषिक बड़े-बड़े देवता, मृणि महर्षि, राजा रुक, विद्वान् मूर्ति
सवकी यही गति ह । यों कहे कि जितने पदार्थ हमारे
अनुभवमें आते हैं, नहा आते हैं, सपन्के-सर मृत्यु एव
प्रलयकी ओर बढ़े बेगसे बढ़ते जा रहे हैं । ऐसी स्थितिमें

गया, वैसा ही रुर डालते हैं ।

यहौं प्रमङ्गवता महाराज मनुके पुत्र इक्ष्यामुकी भी योङी
चर्चा कर दी जाती है । हन्हने वचपनमें ही सम्पूर्ण वेद-आत्मा-
का अव्ययन भर लिया था । केवल अव्ययन ही नहीं, इनके
सम्पूर्ण आचरण शास्त्रोंके अनुसार ही होते थे । इनका जीवन
दैत्री सम्पत्तियोंके रगमें पूर्णत रँग गया था । सरमे वडी
वात तो यह थी कि सम्पूर्ण जान एव आचरणोंका सार
भगवन्नक्ति इन्हे प्राप्त थी । ये शरीरसे जगत्का काम करते,

निश्चयपर दृढ़ रही। उसने सत्यकी रक्षाको ही अपना धर्म माना। बछडेको उसने पुचकारकर दूसरे गायोको सौंप दिया, किंतु जब वह सिंहके पास पहुँची, तब पूँछ उठाये 'बॉ-बॉ' करता उसका बछडा भी ढौडा आया और अपनी माता तथा सिंहके बीचमे खड़ा हो गया। नन्दाने

सिंह गायकी सत्यनिष्ठासे प्रसन्न होकर बोला— 'कल्याणी! जो सत्यपर स्थिर है उसका अमङ्गल कभी नहीं हो सकता। अपने बछडेके साथ तुम जहाँ जाना चाहो, प्रसन्नतापूर्वक चली जाओ।'

उसी समय वहाँ जीवोंके कर्म-नियन्त्रा धर्मराज प्रकट

पानीतक नहीं पिलाता। मुझमें ऐसा क्या दोष है? मैंने कौन-सा अपराध किया है?"

गाय बोली—'वेटा! व्यर्थ दुख मत करो। यह संसार ऐसा है कि यहाँ बहुत सुख और बहुत सम्मान मिलना बड़े भयकी बात है। ससारके सुख और सम्मानके पीछे रोग, शोक, मृत्यु तथा पतन छिपे हैं। तुम लोभ मत करो और दूसरेका सुख-सम्मान

देर पैर पछाडे। उसके शरीरके भी हत्यारोंने टुकड़े-टुकड़े कर दिये। अब भी वहाँ ऑगनमे भेड़ेका रक्त पड़ा है। मैं तो यह सब देखकर बहुत डर गया हूँ।'

गायने बछडेको पुचकारा और वह बोली—'मैंने तो तुमसे पहिले ही कहा था कि ससारके सुख और सम्मानसे सावधान रहना चाहिये। इनके पीछे ही रोग, शोक, पतन और विनाश दबे पैर आते हैं।'—सु० सिं०

श्रीमत्स्यावतारकथा

(१)

सतोना कहना है कि जब सुसारके लोग विद्योंके मोहर्में पठक भगवानसे भूल जाते हैं और उनकी न्वामानिक विषयमताके कारण पाप-तापसे झुलनने लगते ह तब उन्हें दु जसे वचनेके लिये अनन्त शान्ति देनेके लिये और उनका महान् अजान मिटाकर अपने न्वन्पक्षा योथ करने एव अपनेमें मिला लेनेके लिये न्वर्म भगवान् आते ह और अपने आचरणों, उपदेशों तथा अपने दर्शन सर्व आदिसे जगन्के लोगोंको मुक्तहन्से कल्याणका दान करते हैं। यदि व न्वय आकर जीवोंकी ग़कान्डीकारी व्यवस्था नहीं करते, जीवोंको अपनी दुर्दिके बल्पर सत्य-अनुच्छेद किरण व गना होता और अपने निश्चयके बल्पर चलकर उद्धार करना होता तो वे करोड़ों कल्यांगमें भी अपना उद्धार कर सकते था नहीं, इसमें सुदेह है। परंतु भगवान् अपने इन नन्हे-नन्हे शिशुओंको कभी ऐसी अवस्थामें नहीं छोड़ते, जब वे भटकर गड्ढोंमें गिर जायें। जब कभी वे अपने हाथमें कुछ जिम्मेदारीका काम लेना चाहते हैं और इसके लिये उनसे प्रार्थना करते हैं तब वहृत समझा-कुजाकर सुषिका गहस्य स्वए करके उन्हें अपने सामने कुन्त काम दे देते हैं।

महर्षि कृष्णपके पौत्र एव सूर्य भगवान्के पुत्र महाराज वैवस्तत मनु ऐसे ही पुरुष हो गये हैं। सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलपर उनका शासन था। वे प्रजापर पुत्रवत् न्नेह करके वर्मपूर्वक गत्य करते थे। उन्हें किसी वातकी कमी नहा थी और सुसारमें जितने प्रकाके सुख साधन हैं, सब उनके पास विद्यमान थे। गत्य करते-करते वहृत दिन हो गये, उन्हें ऐसा मात्रम हुआ कि अब प्रलयका समय निकट है। इस संवारका यही नियम है। जो जन्मना है, उसे मग्ना ही पड़ता है। जिसकी सुषित हुई, उसना प्रलय अवश्य होगा। इसका उदाहण तो सक्षात्में प्राय प्रतिदिन ही देखनेको मिलता है।

सुसारका अर्थ है सरकनेवाला जो प्रतिपल वदल रहा है अ-स्वा जो पल वदलनेसे पहले ही लापता हो जाता है। सुषिके बड़े-बड़े देवता, मृणि-महर्षि, गजा-रक्ष, विद्वान्-भूर्ख सबकी यही गति है। वो कह कि जितने पदार्थ हमारे अनुभवमें आते हैं, नहीं आते हैं, सब-के-सब मृत्यु एव प्रलयकी घोर बड़े बेगसे बढ़ते जा रहे हैं। ऐसी स्थितिमें

किसके साथ सुर्में किसके हटें, किसका सुरार्दे दिये अपने पास रमनेर्सी चेया करे अथवा किसके नाथ रहनेर्सी चेया करे, वही सोन्कर बुद्धिमान्लोग जगन्के पदार्थमें अल्प गहकर अपने न्वन्पमें अथवा भगवान्के चागामें स्थित रहते हैं। जगत्की सारी जिम्मेदारी भगवान्कर छोड़कर उनके भजनमें ही मन रहते ह।

महाराज वैवस्तत मनु द्वारामें अविवित नहा थे। न्वर्म उनके पिता सूर्य भगवान्से उन्हें भगवान्से प्राप्त गुह्यतम जानकी जिता थी यी जिसका वर्गन गीताके चतुर्थ अन्यामें न्वय भगवान् श्रीकृष्णने सिखा ह। वे पूर्ण ज्ञानी थे, भगवान्समें स्थित थे और दैवी सम्पत्तियोंमें मूर्तिमान् आदश थे। परन्तु प्रलयकी कल्पना करके एक बार उनके मनमें भी क्षोभ हो ही गया। वे चाहते थे कि वे जीव तमोगुणकी प्रगाढ नित्रामें सोकर बहुत दिनोंके लिये अपनी उच्चतिसे वञ्चित न हो जायें। महाम्याओंका यह सहज न्वमाव होता है कि अपनेको बड़ी-से-बड़ी आपनिमें डालकर दूसरेकी ओटी-से-ओटी आपनि भी दूर करें। उन्होंने मोत्ता ऐसी तपस्या करें, जिसे प्रलयके समय भी जीव भगवान्से दूर न हो, औपचे वनन्पतियोंका वीज नष्ट न हो और उनकी रक्षाका ब्रेप भगवान्के प्रेम तथा उपासनाको प्राप्त हो।

वस, सोन्चने भगवानी देव थी। राज्य सिद्धामनगर अपने देशु पुत्र इध्याकुको वैद्या दिया और वे न्वय तपस्या करनेके लिये जगलमें चले गये। जिस सिंहसनपर वैठकर उन्होंने अनेक वपातक राज्य किया था, जिस प्रजाके स्थाय उनका अनन्त प्रेम था, उसे छोडनेमें एक क्षणका भी विलम्ब न हुआ। महाम्याओंकी यही विनेपना है, व सार गहकर भी अल्प गहते हैं और अलग गहकर भी साथ रहते हैं। न उन्हें मिसी बल्से राग होना और न द्रेप। जब जैसा आ गया, वैसा ही कर डालते हैं।

गहू प्रमद्वय ग महाराज मनुके पुत्र इध्याकुकी भी योद्धी चर्चा कर दी जानी है। इन्होंने वचनमें ही सम्पूर्ण वैद्य आन्तों का अव्ययन कर लिया था। केवल अव्ययन ही नहीं, इनके सम्पूर्ण आचरण आन्तोंमें अनुसार ही होते थे। इनका जीवन दैवी सम्पत्तियोंमें रहमें पूर्णत रूप गता था। सउमें वही बात तो यह थी कि सम्पूर्ण जान एव आचरणोंका भाग भगवद्गति इन्ह प्राप्त थी। ये शर्पिसे जगत्का भाग करते,

वाणीसे भगवान्‌के मधुर नामोंका जप करते और हृदयमें भगवान्‌का सरण करके चिह्निल होते रहते। उठते-बैठते, सोते-जागते एक अणके लिये भी भगवान्‌को नहीं भूलते। अपने घरमें भगवान्‌का चित्रपट रखते, नित्य-नियमसे तीनों समय भगवान्‌की पूजा अवश्य करते, स्वप्नमें भी इन्हें भगवान् व्यामुसुन्दरके ही दर्शन होते। वर्षाकालमें सॉकले-सॉकले बादलोंको देखकर इन्हे भगवान्‌की याद हो आती और उन्हे घटों एकटक देखते रहते। कृष्णसार मृगको देखकर या उसका नाम सुनकर इन्हें श्रीकृष्णकी याद हो आती और ये भगवत्प्रेममें उन्मत्त हो जाते। राज-काजका सारा भार भगवान्‌पर ही रहता; परतु ये कभी अपने कर्तव्यसे च्युत नहीं होते। ऐसे लोगोंका काम भगवान्‌की इच्छाशक्ति प्रकृति माता स्वयं ही करती हैं और सर्वदा करेंगी। जिसने अपना सर्वस्व भगवान्‌को सौंप दिया, भगवान्‌ने अपने-आपको उसे सौंप दिया और जिसके भगवान् हो गये, उसके लिये यह, हानि आदिकी सम्भावना ही नहीं है।

ऐसे योग्य पुत्रको राज्य सौंपकर जाते समय वैवस्वत मनुको प्रसन्नता ही हुई। वे मार्गमें भगवान्‌की इस लीलामयी सृष्टिको देखते हुए चले जा रहे थे। उनका चित्त भगवान्‌की महिमा देख-देखकर मस्त हो रहा था। कहीं बड़े-बड़े पहाड़ पड़ते, कहीं बड़ी-बड़ी नदियों पड़ती, कहीं मरुस्थल पड़ता तो कहीं शस्य-श्यामला भूमि पड़ती। वे इन सबको भगवान्‌के ही विविध रूप समझते और जहाँ चित्त लग जाता, वहाँ घटों बैठकर भगवान्‌का ध्यान करते। एक दिन वे चीरिणी अथवा कृतमाला नदीके पावन तटपर पहुँच गये।

कृतमाला बड़ी सुन्दर नदी है। सब श्रृङ्गओंमें एक-सी आरोग्यप्रद है। अनेकों प्रकारके पशु-पक्षी इसके तटपर रहते हैं, बड़े-बड़े शृङ्गियों-तपस्वियोंके पर्णकुटीर स्थान-स्थानपर बने हुए हैं और नदीकी धबल धारा भी एक प्रेम-योगिनीकी भौति अपने कृत शरीरसे भगवान्‌के मङ्गलमय नामोंका गायन करती हुई मानो भगवान्‌के पास ही जा रही है। उस नदीके तटपर पहुँचकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। चारों ओर बड़ा धना जगल था। उसमें फल-मूल सुलभतासे प्राप्त ही सकते थे। जगली पशुओंकी अधिकता होनेपर भी हिंसक जन्मुओंकी कमी थी और जो थे भी वे किसीको कष्ट नहीं पहुँचाते थे। वाहरी लोगोंका आना-जाना कम था, तपस्यामें विघ्न पड़नेकी कोई सम्भावना नहीं थी।

वैवस्वत मनुने वहाँ पहुँचकर नदी-देवताको नमस्कार

किया और शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर विधिपूर्वक स्नान किया। कृतमालाके शीतल जलमें स्नान करनेसे उन्हें बड़ी शान्ति मिली। सन्ध्या-वन्दन किया, सूर्यको अर्च दिया और गायत्री-जप करने लगे। जगके समय मूर्य-मण्डलमें स्थित परम पुरुष परमात्माके ध्यानमें वे इस प्रकार तन्मय हो गये कि धर्योतक उनका वाह्यज्ञान छुस रहा। जब होश आया, तब उन्होंने अपनी तपस्याका नियम बनाया। कितने समयतक जप, कितने समयतक व्यान, कितने समयतक प्रार्थना और कितने समयतक स्वाध्याय किया जाय, इसके लिये समय निश्चित किया।

समयका नियम बड़े महत्वका है। जो लोग निरन्तर भगवान्‌के सरणमें लगे रहते हैं या जिनकी वृत्ति सर्वदा ब्रह्माकार रहती है, उनकी बात अलग है, परतु जो साधक हैं, जिनका समय प्रमाद या आलस्यमें भी बीत सकता है अथवा व्यर्थ कामोंमें अधिक समय लग जानेकी सम्भावना है, उन्हें तो अपना समय नियमित रखना ही चाहिये। समयसे उठना, समयसे सोना और समयसे ही स्नान-ध्यान आदि करना बड़ा ही उपयोगी है। वर्तमान क्षण बड़ा ही मूल्यवान् है। जिसने भूत और भविष्यकी चिन्तामें इसको खो दिया, उसने भगवान्‌को ही खो दिया। समय भगवान् है। वर्तमान क्षणको ठीक कर लो, वस, सारी साधना पूरी हो गयी, भगवान् मिल गये। इसीसे आजतकके समस्त महात्माओंने समयके सदुपयोगपर बड़ा जोर दिया है।

वैवस्वत मनुका स्वभावसे ही सारा समय भजन-पूजनमें ही बीतता। परतु सर्वसाधारणके लाभ और आदर्शकी हृषिके उन्होंने उसे नियमित कर रखा था। वे बहुत कम सोते थे। कहते हैं कि जिसे किसी वस्तुकी लगन होती है, वह उसके चिन्तनमें हत्तना तल्लीन रहता है कि नीद उसके पास फटक ही नहीं सकती। जिन्हे साधनाके समय नीद आती है, उन्हें अपनेमें लगानकी कमीका अनुभव करना चाहिये। वे ब्रह्मवेलामें ही उठ जाते, नित्यकृत्य करके भगवान्‌के ध्यानमें लग जाते। उन्हे दूसरा कोई काम ही नहीं था।

वे मनसे तो भगवान्‌का चिन्तन करते ही, शरीरको भी घोर तपस्यामें लगाये रखते। वर्षमें विना छायाके मैदानमें खड़े रहते, जाड़ोंमें पानीमें पड़े रहते और गरमीके दिनोंमें पञ्चामि तपते। कभी एक पैरसे खड़े रहते, कभी सिरके बल खड़े रहते और कभी बहुत दिनोतक खड़े ही रहते। अनेकों दिनके उपवास करते, पानीतक नहीं पीते। शास

प्राणियोंके प्रति दया नहीं है, उसका कभी उद्धार नहीं हो सकता। वह मुझे कभी पहचान नहीं सकता। या यों कहिये कि उसके सामने मैं कभी प्रकट नहीं हो सकता। आप मुझे पहचान गये, मैं अनन्त हूँ। मेरे अवतारका कोई कारण नहीं हुआ करता। मैं भक्तोंकी भलाईके लिये अपनी इच्छासे समय-समयपर स्वयं ही अवतारण हुआ करता हूँ। साथ संसार मेरे अंदर है, वह प्रकृति मेरा एक अंश है; परंतु मुझ अनन्तमें अंशकी कल्पना भी नहीं हो सकती। वह सब मेरी लीला है। यह सब मैं ही हूँ। इसीसे चाहे किसी भी शरीरमें मैं प्रकट हो सकता हूँ। किसी समय, किसी स्थानपर और किसी भी वस्तुके ल्पमें मुझे पहचाना जा सकता है और वास्तवमें मैं वहीं रहता हूँ; परंतु जब लोग मुझे नहीं पहचान पाते, तब मैं अपने आपको स्वयं प्रकट करता हूँ और किसी भी ल्पमें प्रकट करता हूँ। मेरे लिये मनुष्य और मछलीके शरीरमें भेद नहीं है। मैं ही सब हूँ। जिसने सब ल्पमें मुझे पहचान लिया, उसने मेरी लीलाका रहस्य समझ लिया। कहींसे मुझे हड्डिया नहीं जा सकता, चाहे जिस ल्पमें मेरे अस्तित्वका विश्वास किया जा सकता है। अब प्रलयका समय निकट है। मैंने आपको रक्षाका भार सौंपा। मैं स्वयं आपके साथ रहूँगा। प्रलयके समय जब तीनों लोक जलमग्न होने लगें, तब सप्तर्णियोंके साथ एक नौकापर बैठ जाना। मैं स्वयं मत्स्यरूपसे आजेंगा, तब उस नौकाको मेरी सांगसे बाँधकर जीवों और सारी ओषधियोंके बीजोंकी रक्षा करना।' भगवान् मत्स्य अन्तर्धान हो गये।

(३)

शाल्वोंमें चार प्रकारके प्रलयोंका वर्णन आता है। जैसे आत्मनितक, प्राकृतिक, नैमित्तिक और नित्य। इनमें आत्मनितक प्रलय तो केवल ज्ञानके द्वारा ही होता है। जब जीव और ईश्वरकी उपाधिका वाध कर देनेपर केवल एकमात्र चित् सत्ता अवधिष्ठ रह जाती है, फिर संसार, पुनर्जन्म, वन्ध, मोक्ष आदि द्रन्दोंका अभाव अनुभव हो जाता है। यह आत्म-कृपा, गुरुकृपा, शाल्वकृपा तथा ईश्वरकृपाके अधीन है। विना इनके ज्ञान नहीं होता और ज्ञानके विना यह अनुभूति नहीं होती। कर्मके द्वारा मलनाश, उपादनके द्वारा विक्रेप-नाश और ज्ञानके द्वारा आवरण-भंग होनेपर यह स्वयंप्रकाश वत्सुस्थिति प्राप्त होती है। इसे ही 'आत्मनितक प्रलय' कहा गया है।

'प्राकृतिक प्रलय' उसे कहते हैं, जिसमें दो अपरार्थ काल

वीत जानेपर ब्रह्माकी आयु पूरी हो जाती है। पृथ्वी जलमें, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें, वायु आकाशमें, आकाश अहंकारमें, विविध अहंकार महत्त्वमें और महत्त्व प्रकृतिमें लीन हो जाता है। प्रकृति अपनी शक्तियोंको समेटकर अपने स्वरूपमें सो जाती है, किसी प्रकारका श्वोभ नहीं होता। सत्त्व, रज, तम तीनों गुण साम्यावस्थाको प्राप्त हो जाते हैं। शिव और विष्णु अपनी लीलाओं-को वंद करके अपने निर्गुण स्वरूपमें छिप जाते हैं। हिरण्य-गर्भके साथ देवयान मार्गसे गये हुए उपासक मुक्त हो जाते हैं। इसे कहाँ-कहाँ 'महाप्रलय' भी कहा गया है।

नैमित्तिक प्रलयके पूर्व संक्षेपमें नित्य प्रलय समझ लेना चाहिये। सम्पूर्ण प्राकृतिक वस्तुएँ क्षण-क्षणमें वदल रही हैं। एकका नाश, दूसरेकी उत्पत्ति; यही इस जगत्की प्रक्रिया है। एक अक्षरका प्रलय हो जानेपर दूसरे अक्षरका उच्चारण होता है, एक वृत्तिका प्रलय हो जानेपर दूसरी वृत्तिका जन्म होता है; अर्थात् संसारमें नित्य प्रलय हो रहा है। सब कुछ प्रलयरूप ही है।

वहुत-से लोग ऐसा मानते हैं कि इस संसारका अनुभव तभी होता है, जब मनोवृत्तियाँ रहती हैं। विना मनो-वृत्तियोंके संसारका अनुभव नहीं हो सकता। मूर्छामें, सुपुत्रिमें जब मनोवृत्तियाँ नहीं रहतीं, हमें संसारका वोध नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि यह जगत् मनोवृत्तिमूलक है। इसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय मनोवृत्तियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयपर निर्भर है। इसीसे नित्य जब सुपुत्रिमें वृत्तियोंका प्रलय हो जाता है, तब जगत्का प्रलय भी हो जाता है। इसे 'नित्य प्रलय' कहते हैं।

जैसे जीवकी सुपुत्रिको नित्य प्रलय कहते हैं वैसे ही ब्रह्माकी सुपुत्रिको 'नैमित्तिक प्रलय' कहते हैं। मनुष्योंके तीन सौ साठ दिनकी अर्थात् एक वर्षकी देवताओंकी एक दिन-रात होती है। इस प्रकारके तीन सौ साठ दिन-रातका देवताओंका एक वर्ष होता है। ऐसे एक हजार वर्षोंकी मनुष्योंके चार युग होते हैं और एक हजार चतुर्युगका ब्रह्माका एक दिन होता है और इतनी ही बड़ी रात होती है। इसी रातमें ब्रह्म सोते हैं और उनकी मनोवृत्तिके साथ उनकी सुष्ठि भी विलीन हो जाती है।

इसी नैमित्तिक प्रलयका अवसर उपस्थित था। मत्स्य भगवान्-के अन्तर्धान हो जानेके पश्चात् महाराज मनु भगवान्-की रूपमाधुरीका मन-दी-मन आस्वादन करते हुए अपने

वे भाष्ट्राज्यका त्याग करके जगलमें रहनेवाले विरक्त एवं ज्ञानवान् महात्मा उस मछलीकी सुन्दरताको देखते, तब उनकी अँगें एकटक लगी ही रह जातीं। उनके हाथ उस दिव्य मछलीका स्पर्श करनेके लिये लालायित रहते थे। जबसे उन्हें यह मछली भिली थी, दूसरे कामोंमें उनका मन नहीं लगता था। नियम-निष्ठाके कारण तपस्या करने वैठते, परतु उनका मन मछलीके पास ही रहता। वास्तवमें भगवान्की सुन्दरता ऐसी ही है। ससारमें जो वस्तु सुन्दर-से-सुन्दर एवं मधुर-से-मधुर है, उसे भगवान्की मधुरता एवं सुन्दरताका लेगमात्र भी नहीं कहा जा सकता।

आज मछलीकी यह बात सुनकर मनु महाराज विचलित हो गये। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—‘भगवन्। आप कौन हैं? आप कोई देवता हैं, ऋषि हैं या और कोई हैं? मछलीके बेडमें मुझसे क्यों खेल रहे हैं? आपकी सुन्दरता और मधुरता देखकर एक ओर तो मैं मोहित हो रहा हूँ, दूसरी ओर आपका यह विनोदभरा खेल मुझे चकित कर रहा है। प्रभो! अब अधिक न छकाइये। आप स्वयं भगवान् हैं। मैं आपको पहचान गया। आप गो-व्राण्ण, देवता-साधु और सम्पूर्ण ससारकी रक्षाके लिये अनेको प्रकारके गरीर धारण किया करते हैं, इस बार आपने एक जलचर मत्स्यका गरीर धारण किया है। मत्स्यरूपवारी प्रभो! हम साधारण जीव मायके चक्ररमें पड़े हुए हैं। हमारी दृष्टि विषयोंतक ही सीमित है। हम आपको कैसे पहचान सकते हैं। आप गरणागतोंके रक्षक हैं, ससार-सागरसे पार जानेवालोंके लिये नौका-स्वरूप हैं। आपके सभी अवतार प्राणियोंके कल्याणके लिये ही होते हैं। अवश्य यह मत्स्यलीला भी इसीलिये रची होगी। भगवन्। इस लीलाका क्या रहस्य है? मेरे मनमें इस बातकी बड़ी जिजासा हो रही है। प्रभो! आप ही मेरे मौनाप हैं। आप ही गुरु हैं, आप ही सखा है, आप ही मेरे आत्मा हैं और आप ही सब कुछ हैं। आपके चरणोंमें आ जानेके पश्चात् कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता, सब कुछ प्राप्त हो जाता है। आज आपने अपने परम दयालु स्वभावके कारण स्वयं ही आकर मुझे अपनाया है। आपकी कृपा धन्य है, आपका कृपापात्र मैं धन्य हूँ। आपके चरणोंमें मैं अतः प्रणाम करता हूँ।’ इतना कहते-कहते महाराज मनु भगवान्के चरणोंमें लोट गये।

इसके पहले मनु महाराज एक साधारण मछली समझते थे और उसकी जिम्मेवारी अपने ऊपर लिये हुए थे। जब

उसकी सुन्दरता एवं मधुरतासे इनका चित्त वरवस लिच जाता, तब ये तपस्यामें कुछ विघ्न-मा अनुभव करते। बार-बार चेष्टा करके उसकी स्मृतिको भुलाना चाहते, परतु सफल नहीं होते। इस बातकी उन्हे कुछ-कुछ चिन्ता भी थी। अब उन्हे साधात् भगवान् जान लेनेपर चिन्ता तो मिट ही गयी, इन्हे बड़ा आनन्द हुआ। ‘स्वयं भगवान् मत्स्यरूपमें मेरे पास आये और मैंने उनके दर्शन, स्पर्श आदि प्राप्त किये, इससे बढ़कर मेरा सौभाग्य क्या होगा?’ यह सब सोचते-सोचते महाराज मनु गदगद हो गये। उन्हे ऐसा मालूम हुआ, मानो वे भगवत्कृपाके अनन्त समुद्रमें डूब उतरा रहे हो। नीचे-ऊपर, अगल बगल और अपने गरीरके रग-रग, रोम-रोममें उन्होंने भगवत्कृपाकी धारा प्रवाहित होते देखी। उनके गरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, शुद्धि एवं आत्मा-सब कुछ भगवत्कृपामें सरावोर थे। बहुत समयतक ऐसी ही स्थिति रही। ऐसे अवसरपर समय ला-पता हो जाता है।

कुछ देर बाद उन्हे स्मरण आया कि ‘जिन भगवान्के सकल्पसे सारे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय होते हैं, जो सारे जगत्के आधार हैं, जो निरन्तर सम्पूर्ण जगत्के कल्याणमें लगे रहते हैं, उनकी रक्षाकी जिम्मेवारी मैंने ली, यह मेरे अभिमानका फल है। मैं कितना क्षुद्र हूँ कि भगवान्की रक्षापर विश्वास न करके अपने बलपर जीवों एवं ओपरियोंके बीजकी रक्षा करनी चाहीं, किंतु यह मेरी भूल थी। अब मैं समझ गया कि मुझमें रक्षा करनेकी शक्ति नहीं है। रक्षा तो केवल भगवान् ही कर सकते हैं। वे ही सबके प्रेरक हैं, वे ही सबके हृदयके सचालक हैं। जो कुछ होता है, उनकी प्रेरणासे ही होता है। ऐसी स्थितिमें वे जो कुछ कराना चाहें, करायें; एक यन्त्रकी भौति अभिमान और कामना छोड़कर करना चाहिये। जहाँ अपना व्यक्तित्व आया, वहाँ पतन हुआ। मैं अपनी मूढ़तामें, अभिमानसे पतनकी ओर बढ़ रहा था, परतु भगवान्ने मुझे बचा लिया। हमारे प्रभु कितने दयालु हैं!'

यही सब सोचते-सोचते मनु महाराज तल्लीन हो रहे थे कि इतनेमें भेघ-भास्मीर ध्वनिसे हँसते हुए मत्स्य भगवान्ने उनकी तल्लीनता भग की। भगवान्ने कहा—‘राजन्। आपका अन्त करण शुद्ध है, जीवोंपर दया करनेके कारण आपके चित्तके मल धुल गये हैं। जिसके हृदयमें दुखी

गर्जनामें वे भगवान्‌के आगमनकी अगहटका अनुभव करते। कभी-कभी ऐसा भाव उठता कि सम्भव है भगवान्‌ हमारे आस-पास ही कहीं छिपे हों और हमारी प्रत्येक गतिधिधिका निरीक्षण कर रहे हों! भगवान्‌ हमारे पास ही हैं, यह ध्यान आते ही उन लोगोंका मन विहङ्ग हो गया। उनके हृदयकी विलक्षण दशा हो गयी। आँखें आँसुओंसे भर गयीं, साग शरीर पुलकित हो गया। अज्ञलि बाँधकर एक स्वरसे वे प्रार्थना करने लगे—

‘भगवन्‌! हम सब न जाने कवसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमारा हृदय तुम्हारे लिये तड़प रहा है। हमारी आँखें तुम्हारे दर्शनके लिये ललक रही हैं। हमारे हाथ तुम्हारा स्वर्वा प्राप्त करनेके लिये और हमारा चित्त अपने सिरपर तुम्हारे करकमलोंकी छत्रछाया प्राप्त करनेके लिये न जाने कवसे मचल रहा है। तुम आते क्यों नहीं? क्या हमारे हृदयकी दशा तुमसे छिपी है? नाथ! आओ, शीघ्र आओ!! हम प्रलयसे भयभीत नहीं होते। अनन्तकालतक मृत्युका आलिङ्गन किये रह सकते हैं। हमें उसकी याद भी नहीं पड़ेगी, परंतु तुम आओ!

‘क्या हमारा हृदय कल्पित है? क्या तुम कहीं यहीं हो? हम तुम्हें पहचाननेमें असमर्थ हैं? अवश्य यही बात है। पर हम तुम्हें पहचानने योग्य कव हो सकते हैं? तुम्हीं कृपा करके अपनी पहचान करा दो, तभी सम्भव है; अन्यथा हम तुम्हें नहीं पहचान सकते! परंतु तुम छिपे क्यों हो? यह आँख-मिचौनी क्यों खेल रहे हो? हम चाहे जैसे हैं, तुम्हारे तो हैं न? यह अपने लोगोंसे पर्दा कैसा? आओ, अब एक क्षणका विलम्ब भी असह्य है!'

प्रार्थना करते-करते वे लोग इतने व्याकुल हो गये कि उन्हें एक क्षण कल्पके समान मालूम पड़ने लगा। व्याकुलताकी हद हो गयी! वे केवल रो रहे थे। ठीक इसी समय मत्स्य भगवान्‌ प्रकट हुए।

(४)

भगवान्‌की लीलाका रहस्य कठिन-से-कठिन और सरल-से-सरल है। कठिन इसलिये कि सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, पुराण उनका वर्णन करते-करते हार गये, उन्हें हूँढ़ते-हूँढ़ते थक गये, अन्तमें ‘नेति-नेति’ कहकर चुप हो गये। भगवान्‌का रहस्य उतना ही दुर्वोध बना रहा, जितना कि उनके वर्णन करनेके पहले था। स्वयं भगवान्‌ने अपनी लीलाका सहस्र-सहस्र मुखसे वर्णन करनेके लिये शेषनाशका रूप धारण किया। न

जाने वे कवसे वर्णन कर रहे हैं और न जाने कवतक करते रहेंगे? परंतु न लीलाके रहस्यका पार पा सके हैं और न तो पानेकी सम्भावना ही है। कारण, ‘भगवान्‌ अनन्त हैं, उनकी लीला अनन्त है, उनका रहस्य अनन्त है। जब अन्त है ही नहीं, तब वे स्वयं अन्त कैसे पा सकते हैं? सरल इसलिये कि वे इतने कृपाल हैं कि उन्हें कभी ग्वाल-बालोंके साथ नाचना पड़ता है, ग्वालिनोंके घर मालन-चोरीकी लीला करनी पड़ती है और रस्सीसे बँधकर रोना पड़ता है। छोटे-छोटे राक्षसोंको मारनेके लिये उन अजन्मा भगवान्‌को जन्म लेना पड़ता है, जिनके संकल्पमात्रसे सारी सूषिका संहार हो सकता है। यह दयाकी बात इतनी सरल है कि कोई भी सहृदय व्यक्ति उनकी दयाका सरण करके रोये बिना नहीं रह सकता।

प्रलयकी अपार जल-राशिमें एक छोटी-सी नौकापर सप्तर्षि और आदिराज मनु सम्पूर्ण ओषधियोंका तथा समस्त जीवोंका बीज-तत्त्व लेकर बैठे हुए हैं। कौन कह सकता है कि यदि भगवान्‌ इनके रक्षक न होते तो ये लोग उन कठोर तरंगाधारोंसे टकराकर चूर-चूर न हो गये होते! परंतु आइमें छिपकर भगवान्‌ इनकी व्याकुलता देख रहे थे और अन्तमें इनके प्रगाढ़ प्रेमके कारण वे प्रकट हो गये। आज परम दयालु भगवान्‌ मत्स्यके रूपमें प्रकट हुए हैं। उनके लिये शरीरोंका भेद कोई भेद नहीं। सब समान हैं, सबके आत्मा वही हैं; परंतु हमारे लिये हमारी दृष्टिसे वे मछली बनकर आते हैं और हमारी रक्षा करते हैं, यह कम कुतन्ताकी बात नहीं है। उनकी इस लीलाका रहस्य हमारे लिये इतना सरल होना चाहिये कि इसकी निरन्तर स्मृति बनी रहे कि उन्होंने ही हमें बचा रखा है।

उनके सामने एक दस हजार योजनके बड़े भारी मत्स्यके रूपमें भगवान्‌ प्रकट हुए और उनका बड़ा लम्बा सींग ऊपर निकल आया। तुरंत वासुकि नाग भी प्रकट हुए और वह नौका उन्होंके द्वारा भगवान्‌के सींगमें बाँध दी गयी। भगवान्‌ने, जिनका शरीर सोनेकी भाँति चमक रहा था, मुसकराते हुए कहा—‘मृषियो! मैं आ गया हूँ। नाव भी मेरे सींगमें बाँध दी गयी है। अब नावपर तरंगोंका उतना असर नहीं पड़ेगा। अब शान्तिसे प्रलयका समय बिता दिया जाय।’ उन लोगोंने कहा—‘भगवन्‌! ये शरीर चाहे स्वर्गमें हों या नरकमें; शान्त आश्रममें हों या प्रलयके उत्ताल तरंगोंपर; हमें इसकी जरा भी चिन्ता नहीं। केवल आप हमारे साथ हों। आप आ गये, हमारा कल्याण हो गया।’

आश्रमपर चले आये और निरन्तर भगवान्‌के आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

तीनों लोकका प्रलय सामने था। मनोवृत्ति स्वय ही इनकी ओर नहीं जाती थी। जब सब क्षणभङ्गुर हैं, सब मृत्युके मुहमें पड़कर पिसे जा रहे हैं। किसीका कोई ठिकाना नहीं, न जाने कर नष्ट हो जायें। पानीके बुलबुलेकी तरह न जाने कब बिला जायें। मृत्यु-दुःखके भयानक चक्करमें निरन्तर पिस ही रहे हैं, न जाने कब इनका अस्तित्व उठ जाय। इनके चिन्तनमें, इनकी प्रतीक्षामें अपना अमृत्यु समय क्यों खोया जाय? यह सौचकर इनकी ओरसे मन हटाकर वे परमात्मामें मन लगाये हुए थे या यो कहना चाहिये कि परमात्माके अनन्त आनन्दस्वरूपकी दिव्य सुव्याधारामें उनका मन स्वय ही गोते लगा रहा था। जिसने एक बार उन्हें देख लिया, ऑर्खोंकी बात तो दूर रही; केवल बुढ़िके द्वारा उनके अनन्त दिव्य गुण, सौन्दर्य, माधुर्यकी कल्पना कर ली, वह एक क्षणके लिये भी उन्हें छोड़कर विपर्योक्त चिन्तन नहीं कर सकता। हाँ, महाराज मनु भगवान्‌के चिन्तनमें तन्मय हो गये, उन्हें मालूम ही नहीं हुआ कि जगत्‌में क्या हो रहा है?

इधर समारमें बहुत बर्पेंतक एक बैंद भी वर्पा नहीं हुई। सूर्य अनेकों रूप धारण करके मानो आग वरसाने लगे और उनकी तेज किरणोंसे अनेकानेक मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष जलकर खाक होने लगे। थोड़े ही दिनोंमें यह सूखी पृथ्वी जीवजन्तु, घर और वृक्षोंसे रहित होकर जलते हुए तबके समान तपने लगी। रुद्ध भगवान्‌की सौससे ऐसी प्रखर लपटें निकली जिससे पाताल भस्स हो गया और क्रमशः पृथ्वी तथा स्वर्ग भी राखके ढेर हो गये। बहुतसे लोगोंने भागकर जनलोकमें झरण ली, पर वहाँ भी इतनी ऑच पहुँच रही थी कि वे लोग निरापद नहीं रह सके। अन्तमें महलोंकमें जाना पड़ा। उस अग्नि काण्डके प्रतिक्रियास्वरूप सर्वतक नामके मेघ अपने ढल-वादलके साथ प्रकट हुए और पातालसे लेकर स्वर्गतक जलसे भर गया।

महाराज मनु जिस सुधासागरमें छूटे हुए थे, वहाँतक पहुँचनेकी शक्ति उस प्रलयकी आगमें नहीं थी। जिसे भगवान्‌ने अपना लिया है, जो भगवान्‌का हो गया है, स्वय मृत्यु भी उसका बाल बॉका नहीं कर सकती। महाराज मनु अपने सरकल्पसे सम्पूर्ण जीवों और ओपरियोंके बीज एकत्रित करके भगवान्‌के भ्यानमें मग्न थे। परतु जब चारों ओर जल-

ही-जल हो गया और वे अगले क्षणमें ही अपनेको छूटा हुआ समझते थे कि एक बड़ी विजाल नाव आती हुई दीख पड़ी।

इस प्रलयकालके जलको देखकर उनके मनमें तनिम भी चिन्ता या ध्वराहट हुई हो, एमी बात नहीं। जगत्‌की परिस्थितियोंसे केवल वही लोग ध्वगते हैं, जिन्हे भगवान्‌का विश्वास नहीं है। जिन्हे भगवान्‌का विश्वास प्राप्त हो गया है, जिन्होंने अपने-आपको उनके हाथों सांप दिया है, वे मृत्युके मुहमें भी उनके मधुर सर्गका अनुभव करते हैं। सॉपको जब कि वह लपलपाती हुई जीमसे काटने ढौड़ता है, अपने प्रियतमका दूत समझते हैं और वडे प्रेमसे उसका स्वागत करते हैं और उस बाघको, जिसके नग्याधातसे शरीर धत्त-विक्षत हो गया है, जिसकी बड़ी-बड़ी दाढ़ें क्रूरताके भाथ ग्वून पीनेमें लगी हैं, अपने प्रियतमके पास शीघ्रतिग्रीष्म पहुँचानेवाला अपना हितैषी समझते हैं।

प्रलयके जलको देखकर मनु महाराजके मनमें भी ऐसी ही भावना हुई थी। वे जलकी निकटताके साथ ही भगवान्‌की निकटताका भी अनुभव कर रहे थे। आखिर नाव आ ही गयी। सप्तरिंयोंका स्थान छूट चुका था और वे भी उसी नावपर सवार थे। उन्होंने ओपरियोंके बीजके साथ मनु महाराजको नावपर बैटा लिया और उनकी नाव प्रलयकी अपार जलराशिकी उत्ताल तरंगोंपर नाचने लगी। पानीकी एक लहरसे वह नाव सैकड़ों योजन दूर चली जाती और किर क्षणभरमें ही उससे भी दूर दीखती। कभी लहरोंके कारण जल हट जानेसे वह पातालमें पहुँच जाती और कभी उनके उछलनेके साथ स्वर्गमें चली जाती। वे भगवान्‌पर विश्वास रखनेवाले महर्षि और राजर्षि ही ऐसे थे, जो ऐसे अवसरपर भी शान्तिके साथ भगवान्‌की लीला देख रहे थे। यदि कोई नास्तिक होता, अविश्वासी होता तो उसकी मनोवृत्तियों चाहे जितनी भी दृढ़ रहती, अपने अन्तःकरणपर उसका चाहे जितना भी सयम होता; अन्तमें वह ध्वराकर अवश्य मर जाता। या विवश होकर उसे अपनेको भगवान्‌के भरोसे छोड़ देना पड़ता। ऐसे अवसरोंपर वडे-वडे नास्तिकोंको आस्तिक होते देखा गया है।

उन लोगोंके मनमें कोई बात थी तो केवल यही कि अबतक भगवान्‌ नहीं आये। कहाँ कोई चीज चमक जाती, कहाँ कोई लहर उठती तो ऐसा मालूम होता कि भगवान्‌ आ गये। उस अनन्त जलराशिकी प्रतिपल होनेवाली धोर

स्थूल जगत्‌में हमलोग व्यवहार करते हैं, आध्यात्मिक जगत्‌में मन-बुद्धि आदिका व्यवहार होता है, वैसे ही अधिदैविक जगत्‌में देवता और दैत्योंका व्यवहार होता है—उन्हें हम देख सकते हैं, उनके यहाँ जा सकते हैं और उनसे सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। इसके लिये एक विशेष मार्ग है, एक विशेष प्रकारकी उपासना-पद्धति है। अस्तु।

आये दिन देवता और दैत्योंमें युद्ध छिड़ा ही रहता था। उन दिनों अर्थात् छठे काशुष मन्त्रन्तरमें देवता और दानवोंका पारस्परिक वैमनस्य चरम सीमातक पहुँच गया था। ऐसा कोई दिन नहीं बीतता, जब छिट-फुट आक्रमण न हो। देवता जर्जरित हो गये थे। सारे स्वर्गमें त्राहि-त्राहि मची हुई थी। उन्हीं दिनों एक और घटना ऐसी घट गयी, जिसके कारण सभी देवता भयभीत हो गये।

वात यह हुई कि देवराज इन्द्र अपने ऐरावत हाथीपर सवार होकर कहीं वाहर जा रहे थे। रास्तेमें दुर्वासाजी महाराज स्वर्गकी ही ओर आते हुए मिल गये। इन्द्रने उन्हें सादर प्रणाम किया और महर्षि दुर्वासाने प्रसन्न होकर अपने हाथमें पहलेसे ही ले रखी हुई माला उन्हें पहना दी। वह माला बहुत सुन्दर थी। उसके दिव्य पुष्प कभी कुम्हलानेवाले नहीं थे। उसको पहननेवाले कभी दुखी नहीं होते थे, परंतु उस समय इन्द्र असाधान थे। दुर्वासाके स्वभावका ध्यान न रहनेके कारण उनसे कुछ प्रमाद बन गया। उन्होंने वह माला अपने गलेसे निकालकर हाथीको पहना दी और हाथीने अपने सूँझेसे खींचकर उसे तोड़ डाला और पैरों तले डालकर मसल दिया। यह सब एक ही क्षणमें दुर्वासाके देखते-देखते हो गया। रुद्रावतार दुर्वासाके क्रोधकी सीमा न रही। उनका चेहरा तमतमा उठा। शरीर कँपने लगा और उनके मुँहसे निकल पड़ा—‘इन्द्र ! तुझे अपने राज्यका इतना धमंड है ! तू इतना मदमत्त हो गया है ! जिस मालाको जीवनभर अपने गलेमें धारण करना चाहिये, उसका इतना अपमान ! जा, अपने कियेका फल भोग ! तेरी यह श्री न रहेगी। तू और तेरा राज्य श्रीहीन हो जायगा।’ इन्द्रने उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा की, परंतु सफल न हुए।

एक और दैत्योंके आक्रमण-पर-आक्रमण और दूसरी ओर दुर्वासाका यह भीषण शाप ! देवतालोग धवरा गये। उनकी सभा हुई। सबने अपने-अपने दुःख कह सुनाये। अन्तमें सर्वसम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि ब्रह्माके पास चलें। वे हमारे पितामह हैं, बृद्ध हैं, अनुभवी हैं। उनके मुँहसे

स्वभावतः ही वेदवाणी निकलती रहती है। उनके पास गये विना हमारे सुख एवं शान्तिका उपाय नहीं मालूम हो सकता।’ वास्तवमें बृद्धोंकी वाणी वेदवाणी ही होती है।

सब मिलकर ब्रह्माकी सभामें गये। ब्रह्माकी सभा दिव्य स्वर्णमय सुमेरु पर्वतके ऊँचे शिखरपर वनी हुई है। संसार-की उत्तम-से-उत्तम वस्तुएँ वहाँ रहती हैं। उससे बढ़कर सुन्दरता संसारमें और कहीं नहीं है। सुषिका वह सर्वश्रेष्ठ नमूना है। वहाँ शान्तनु, गय, भीष्म आदि राजर्षि और वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि ब्रह्मर्षि तथा नारदादि देवर्षि एवं सनकादि परमर्षि सभासद्वके रूपमें उपस्थित रहते हैं। सबकी सम्मतिसे सारे काम होते हैं और ब्रह्मा अपने चारों मुखोंसे वेदवाणीके बहाने निरन्तर भगवान्के गुणोंका दिव्य संगीत गाया करते हैं।

देवताओंने जाकर लोकपितामह ब्रह्माको आदर और श्रद्धाके साथ प्रणाम किया तथा उनकी आज्ञासे वे यथास्थान बैठ गये। ब्रह्माके पूछनेपर देवताओंने अपने समाचार कह सुनाये और ब्रह्माने स्वयं देखा भी कि देवताओंके शरीरपर कान्ति नहीं है, वे शक्तिहीन हो गये हैं। इनके हृदयमें शान्ति नहीं है। अतः उन्होंने निश्चय किया कि इनकी सहायता करनी चाहिये। सोचते-सोचते वे तल्लीन हो गये। योङ्गी देर बाद भगवान्का सरण करते हुए प्रसन्नमुखसे उन्होंने कहा—‘देवताओ ! स्वयं मैं, देवाधिदेव शंकर और तुमलोग; इतना ही नहीं, वल्कि मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष और परमाणु-परमाणु जिनकी शक्तिसे, जिनके संकल्पमात्रसे उत्पन्न हुए हैं, हैं और रहेगे, उन भगवान्के चरणोंकी शरण ग्रहण करनेके अतिरिक्त सुख-शान्तिका और कोई दूसरा साधन नहीं है। यद्यपि उनके लिये कोई अनिवार्य कर्तव्य नहीं है, उन्हें किसी कामके लिये वाध्य नहीं किया जा सकता, वे सबके स्वामी हैं, ईश्वर हैं, उनका न कोई शत्रु है न मित्र, न वे किसीकी उपेक्षा करते हैं और न अपेक्षा। फिर भी लोगोंकी रक्षा, मर्यादा एवं नियन्त्रणके लिये वे समय-संमयपर रजोगुण, तमोगुण एवं सत्त्वगुणको स्वीकार करके अवतार ग्रहण करते हैं और अपने लोगोंका कल्याण करते हैं। यह समय संसारकी रक्षाका है। इसका पालन करनेके लिये इस समय वे सत्त्वगुणको स्वीकार किये हुए हैं। हमलोग उन्होंने जगदगुरुकी शरणमें चलें। वे ही हम सबका हित करेंगे।’ इतना कहकर ब्रह्मा चुप हो गये।

सारी सभा उठकर अज्ञानसे, अन्धकारसे और लोका-

मनु महाराजने हाथ जोड़कर कहा—‘भगवन्। आपकी मधुर वाणी सुननेकी बही अभिलापा हो रही है। जबतक हमलोग आपकी सन्तिधिमें हैं तबतक आप हमें धर्म-कर्मके रहस्य समझायें। आपके बिना आपके स्वरूप, लीला आदिका रहस्य कौन समझा सकता है?’ मनुकी हस जिजासामरी प्रार्थनाको सुनकर भगवान्ने उन्हे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों प्रकारके पुरुषार्थोंके लक्षण, स्वरूप और साधन बतलाये। उन्हीं उपटेजोंका संग्रह मत्स्य-महापुराणके नामसे प्रसिद्ध है। स्वाध्याय-प्रेमियोंको उसका अध्ययन करना चाहिये। सक्षेपमें उसका सार-संग्रह इस प्रकार किया जा सकता है—

भगवान्ने कहा—अच्छा, मैं तुम्हे धर्मका सार सुनाता हूँ। सावधानीसे श्रवण करो। यहों मैं उस जानकी चर्चा नहीं करता, जो एक अनन्त आनन्दस्वरूप त्रिविध भेद-शून्य है, क्योंकि उसमें बन्ध-मोक्ष, जीव-ईश्वर आदिके भेद हैं नहीं, वह केवल पारमार्थिक सत्य है और अनुभवगम्य तथा अनिर्वचनीय है। यहों तो केवल व्यावहारिक दृष्टिसे विचार करना है, जहों धर्म-अधर्म, बन्ध-मोक्ष आदिके भेद-विभेद हैं, इस दृष्टिसे यह जो जगत् चल रहा है, यह अनादिकालसे ऐसा ही चलता आया है और अपरिमित कालिनक चलता रहेगा। सृष्टिके बाद प्रलय, प्रलयके बाद सृष्टि यही इसका कम है, जब प्रलय हो जाता है, सारे जीव तमोगुणकी घोर निद्राके अधीन हो जाते हैं, तब मैं प्रकृतिको क्षुब्ध करता हूँ, जीवोंको जगाता हूँ और इसलिये जगाता हूँ कि वे स्वतन्त्रता-पूर्वक अपने कल्याणका मार्ग निश्चय करें तथा आगे बढ़ें। ब्रह्मा, विष्णु एव शिवके रूपमें तथा अन्यान्य विभूतियों, संत-महात्माओं और अवतारोंके रूपमें प्रकट होकर उन्हें सन्मार्ग बताता हूँ। जो लोग पूर्व-संस्कारके अनुसार पशु-पक्षी अथवा कीट-पतंग अथवा और किन्हीं जन्तुओंके रूपमें पैदा होते हैं, उन्हें क्रमशः आगे बढ़ाता हूँ और जो मनुष्ययोनिमें होते हैं उन्हें तमोगुणसे रजोगुण तथा रजोगुणसे सत्त्वगुणमें ले जाकर भगवद्येम अथवा मोक्षका अधिकारी बना देता हूँ।

जिन लोगोंके जीवनमें प्रमाद, आलस्य और निद्राकी अधिकता है, उन्हें अर्थ, धर्म आदि किसी भी पुरुषार्थकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि वे सकारकी सम्पत्ति, शरीर, पुत्र एव यत्र आदिके लोभसे भी किसी काममें लग जायें और रजोगुणकी प्रवृत्ति उनके जीवनमें आ जाय तो बहुत सम्भव है कि वे सत्त्वगुणमें भी पैरूच जायें। परतु आश्र्य है कि कई लोग पशुओंसे भी गयी-त्रीती हालतमें पड़े रहते हैं और

अपने अमूल्य जीवनको नष्ट करते रहते हैं। आओंमें उनके लिये अर्थगात्रका विधान है। वे भौतिक उच्चतिमें लगकर अपना कल्याण कर सकते हैं।

जिनकी प्रवृत्ति रजोगुणी है, जो लोभ, प्रवृत्ति, वडे-बड़े कारवार, अगान्ति, ईर्ष्या और स्पर्धामें पड़े हुए हैं, उन्हें वहीं नहीं पड़े रहना चाहिये। उन्हें धर्मगात्रके अनुमार अपनी प्रवृत्तियोंको सान्त्विक बनाना चाहिये। रजोगुण अच्छा है, परतु सत्त्वगुण उससे भी अच्छा है। धर्म-बुद्धिरहित कर्मके पञ्चदोषमें पड़कर लोग स्वार्थी हो जाते हैं और अपने जीवनका लक्ष्य ही मुला देते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिये। प्रत्येक काम धैर्यके साथ करना चाहिये और करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि इसमें अधिक से-अधिक लोगोंकी मन्दी भलाई हो रही है या नहीं? जहाँतक हो सके, पूरी शक्ति लगाकर काम, क्रोध, लोभसे बचे और अपने शरीर तथा सम्पत्तिका उपयोग विध-भगवान्की सेवामें करें।

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनकी दृष्टि इस दृश्यमान जगत्में इतने जोरसे लग जाती है और सकुन्तित होने लगती है कि वे सारे सकारकी भलाईकी उपेक्षा करके केवल अपने शरीरके ही पालन-पोपण और ऐओ-आराममें भूल जाते हैं। उनके सामने परलोककी ब्रात रक्खी जाती है। जीवन बहुत विशाल है, जीवन-मरणके चक्करमें कई बार स्वर्ग और नरकोंमें भी जाना पड़ता है। यदि उनकी ओरसे दृष्टि हटा ली जाय तो इस जीवनके कुछ दिन सम्भव है, सुखसे बीत जायें; परतु आगे चलकर पछताना ही पड़ेगा। अतः सच्चयशील प्राणी परलोकके लिये भी पुण्यसच्य करते हैं। पुरुषार्थोंमें जिसे ‘काम’ कहा गया है उसका अर्थ स्त्री-पुरुषोंका सयोग नहीं है। उसका अर्थ है ‘पारलौकिक सुखकी प्राप्ति’। जब पारलौकिक सुखकी दृष्टिसे यज्ञ, दान, तप, उपासना आदि किये जाते हैं, तब उन्हें ‘काम’ नामक पुरुषार्थका साधन कहा जाता है। धर्म लौकिक और पारलौकिक दोनों सुखोंका मूल है और धर्मके बिना अर्थ या काम कोई भी नहीं मिलते।

चाहे लौकिक दृष्टिसे हो या पारलौकिक दृष्टिसे, धर्म होना चाहिये। धर्म स्वयं पुरुषार्थ है, इससे रब कुछ मिल सकता है। निष्काम भावसे किया जाय तो अन्तःकरणकी शुद्धि होती है और ज्ञान या भक्ति प्राप्त हो जाती है। यदि धर्म धर्मके लिये ही न हो तो लौकिक सुखकी उपेक्षा पारलौकिक सुखकी दृष्टि अधिक उच्चता है। कारण, लौकिक सुख इसी स्थूल देहपर अवलम्बित है और हाङ्ग-चाम-मास मल-मूत्रका पुलिंदा

है। यह दोन्हार दिनकी चीज है और इतना दृष्टिगत है कि इसके लिये ही कर्म करना अश्वा इसीको सुन पहुँचाना कभी जीवनका उद्देश्य हो नहीं सकता। पारलैंकिक हुनरकी दृष्टि क्योंकि उसके न होते हुए भी इसकी जोड़ा उच्चम है क्योंकि वह सम जर्नले सम्बन्ध रखती है, जो कि आन्मा या जीवसे अधिक निकट है। पारलैंकिक दृष्टि जीवने न्वनरकी जिज्ञासा पैदा करती है, अनेक लोगोंके समन्वयमें कुत्तहल उत्पन्न करती है और उनके दबानेवाले, उनके सामी और फल देनेवाले विश्वास करनेवाली होती है।

परंतु जीवके कल्याणकी दृष्टिके इतना ही पर्याप्त नहीं है। उनमें जो आनन्दकी एक अनृत सारसा है, सरदा जीवित रहनेकी भावना है और सबका जान प्राप्त कर लेनेकी जिज्ञासा है, वह उनमें ही पृण महा होती। उसके लिये तो अनन्त आनन्द, अनन्त जान और अनन्त सत्यकी आवश्यकता है और वह केवल मैं ही हूँ। जगन्न जीव मेरे पास नहीं आता तबतक उसे सच्चा सुन, सच्ची शान्ति, सच्चा ज्ञान और सच्ची अमरता नहीं प्राप्त हो सकती, क्योंकि इनका आधार मैं ही हूँ। न्यय परम्परा मेरे एक अद्य है।

सबने घटकर आश्रयकी बात तो यह है कि ये जीव मेरे दृष्टर ही हैं। मैं भी उनके दृष्टर व्याप्त हूँ, परंतु उन्हें मेरा पता नहीं है। जैसे एक प्यासा आदमी अमृतके समुद्रमें छूत्तरप नहा हो, पर उसे पता न हो कि मैं अमृतके समुद्रमें हूँ। वह समझ नहा हो कि मैं एक धोर मरुस्सलमें इवर-उश्शर भट्ठ नहा हूँ। तब जैसी परिस्थिति होती है, जैसी ही परिस्थिति इन जीवोंकी है। ये इन विप्रवाङ्के मोहरमें इर प्रकार फँस गये हैं कि मेरी ओर दृष्टि ही नहीं ढालते। इसीका नाम है 'श्रान्ति'। इरीको कहते हैं भूल। जीवोंके दु लक्ष भूल वह भूल ही है। इस भूलको सिद्धान्तके लिये जिस शाक्तज्ञान विदा गया है, उसे 'मोक्षशाक्ति' कहते हैं और इस भूलका मिट जाना ही 'मोक्ष' है।

(५)

उत्तमि और राज्यि मनु वडी एकाग्रता और प्रेमसे मगवानकी मधुर बाणी तुन रहे थे। प्रलयके कारण मनकी चक्कलताने लिये और कोई स्थान तो या ही नहीं। उनकी वृत्तिगंगे के एकमात्र आश्रय थे मगवान् या मगवानकी बाणी। बाल्तवर्म मन लोह आवार नहीं रहता, किन्तुका भरोसा नहीं रहता; तब मगवानका विश्वास और मगवानका चिन्तन सचाइके साथ होता है।

तब मगवान् तुर हो गये, तब समर्पितोंने बारी-बारीसे मगवानकी प्रार्थना की। मरीचिने कहा—'भगवन् ! जिसने तुम्हारे चरणकमलोंके मकरन्द-स्वका आवादन नहीं किया, उसका जीवन वर्ध ही बीत गया। उसके साथ मनोरथ निष्पल हुए और जीवनका पवित्र लक्ष्य उसे प्राप्त नहीं हुआ। मुझपर आमने बड़ी कृपा की, मेरा श्रृंगि-जीवन उफल हुआ। मैं आपके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ।'

अत्रिने रुधि कष्टसे गद्गद बाणीसे निर छुकाकर अख्लिं बौधकर प्रार्थना की—'प्रमो ! जिना तुम्हारी दृष्टिके तुम्हारी प्राप्ति नहीं हो सकती। जीवमें इतनी शक्ति कहो है कि अपने वन्य-पौधपर सुर्खे प्राप्त कर सके। उनमें इतना ज्ञान कहो है कि वह तुम्हारे बोरमें कुछ सोन-समझ सके। परंतु तुम इतने दयालु हो कि अपने-आपको जह भी नहीं छिपाते, जीवकी जरानी पुकार तुनकर उसके पास दौड़ आते हो और उसे अपने गलेसे लगाकर कृतकृत्य करते हों। मुझपर तुमने अगर कृपा की है। मैं तुम्हारा तो हूँ ही। पुन-पुन तुम्हारे चरणोंमें अपने-आपको समर्पित करता हूँ।'

अङ्गिरने कहा—'प्रमो ! यह सारी दृष्टि आपकी है। मैं आपका हूँ। सारी दृष्टिके न्वामी आप जिसके अपने हो गये हैं, उसे कभी किस ब्रातकी है ? मैं तो इसी मावसे फूल नहीं समाता कि मैं मगवानका हूँ, मगवान् मेरे हैं। वह और मुझे क्या चाहिये ? आपकी पावन स्मृति निरन्तर बनी रहे।'

पुलस्त्यने कहा—'भगवन् ! आप ही शिव हैं, आप ही ब्रह्म हैं, आप ही विष्णु हैं। चाहे जो नाम रखता जाय, चाहे जो भी रूप हो, सब आप ही हैं। आपका यह सर्वमात्र मेरे मानस-पठ्ठपर अङ्गित रहे और मैं आपके गुण और नामोंका गायन करके मस्त रहूँ, आपकी दृष्टिका अनुभव करता रहूँ। मैं आपके चरणोंमें बार-बार साथाङ्क दण्डवत् करता हूँ।'

पुलहने कहा—'भगवन् ! जिसे लोग प्रकृति और पुरुषसे परे परश्वका आश्रय पुरुषोत्तम कहते हैं, वह आप ही हैं। आप हमारे आत्माके भी आत्मा हैं। मैं निरन्तर आपके मजन-में लगा रहूँ, यही एकमात्र अभिज्ञापा है। मैं आपके शरणागत हूँ। आपके कर-कमलोंकी छवियावाका इच्छुक हूँ। दया करो ! दया करो !!'

क्रनुने कहा—'भगवन् ! इस संसारमें जितने कर्म हो रहे हैं, वे सब यज्ञ हैं। सबार आपका एक यज्ञकर है। जिन्होंने इसके रहस्यको जान लिया है, वे यज्ञलुप हो गये हैं, क्योंकि विश्वके अङ्ग यज्ञके अङ्ग हैं। ऐसी कोई वस्तु नहीं, ऐसा कोई

कर्म नहीं, जो आपसे सम्बद्ध न हो। इस बातको न जानकर लोग भटकते हैं, दुःख उठाते हैं। मैं आपकी इच्छाका यन्त्र हूँ। आपके मनेतपर नान्ननेवाली कठपुतली हूँ। आप इसी तरह अपनाये रखतें। मैं आपके चरणोंमें नतमस्तक हूँ।¹

विश्वामित्रने कहा—‘भगवन्! आप जगत्के अन्तरात्मा हैं। जानस्वरूप हैं। अपने अत्यन्त आत्मीय हैं और आत्मा ही हैं। आप सब कुछ जानते हैं। आपसे क्या कहना और क्या सुनना है? कहा-सुना तो दूसरोंसे जाता है। अपने-आपसे ही क्या कहें और क्या सुनें? मैं अपने आत्मस्वरूप भगवान्को अभेदभावसे प्रणाम करता हूँ।’

मनु महाराजने बड़े प्रेमसे हाथ जोड़कर कहा—‘भगवन्! आपकी कृपासे सम्पूर्ण जीवोंकी, ओपाधि वनस्पतियोंके वीजोंकी रक्षा हुई। अब जीव्र ही इम प्रलयका अन्त कीजिये और इन जीवोंको इनकी उन्नतिकी ओर अग्रसर कीजिये। आपने मुझपर अपार कृपा की, मेरे लिये अवतार धारण किया और ज्ञानपूर्ण उपदेश सुनाकर सारे जीवोंको कृतार्थ किया। यद्यपि इस समय इनकी वृत्तियों विलीन हैं, ये सुन नहीं सकते, फिर भी आपकी वाणीका प्रभाव इनपर पड़ेगा ही और जगत्‌में जानेपर भी कभी-न-कभी इनके हृदयमें इन उपदेशोंकी स्मृति होगी तथा ये अपना कल्याण कर सकेंगे। आपके साथ रहने और आपके उपदेश सुननेके कारण प्रलयका इतना लब्ध समय क्षणभरकी भौति व्यतीत हो गया। अब योद्धा ही समय है। आपकी मधुर वाणी सुनते-सुनते और आपकी अनूप रूप-रागि, मोहिनी छवि देखते-देखते ही यह समय बीते और निरन्तर ही इमकी स्मृति बनी रहे ऐसी कृपा कीजिये।’

इन सबकी बातोंको सुनकर भगवान्ने कहा—‘मेरे प्रति आपलोगोंका अहैतुक प्रेम सर्वथा प्रशसनीय है। मैं तो अपना काम ही करता रहता हूँ। दुनियाभरकी शङ्खट अपने सिरपर ले रखती है। आपलोगोंके प्रेमकी जितनी परवा करनी चाहिये, नहीं कर पाता। मैं निश्चिन्त होनेपर भी इस बातके लिये चिन्तित रहता हूँ कि कहीं मेरे प्रेमियोंको कोई कष्ट न पहुँच जाय। आपलोगोंके बलपर ही मैं भगवान् बना हुआ हूँ। आपलोग मेरे हृदय हैं। मैं आपलोगोंका हृदय हूँ। आप मेरे अतिरिक्त दूसरी किसी वस्तुका चिन्तन नहीं करते परतु मुझसे ऐसा नहीं हो पाता, इसके लिये मैं आपलोगोंका श्रृणी हूँ और यह श्रृण बहन करनेमें मुझे बड़ा आनन्द आता है। मैं उच्छ्रण हो ही क्य सकता हूँ? इसी नाते आपलोग मेरा स्मरण किया करें, आपलोगोंके पवित्र हृदयोंमें स्थान पाकर मैं कृतकृत्य हो जाता हूँ।

‘यद्यपि लोग मुझे समदर्शी कहते हैं और मैं हूँ भी वैसा ही, परतु जो अपने धन, जन, जगीर, प्राण और सर्वस्वकी चिन्ता छोड़कर केवल मेरे ही भरोसे मेरे चिन्तनमें लग रहते हैं, उन्हें मैं कदापि नहीं छोड़ सकता। अग्रिके पास जो जाते हैं, उन्होंकी ठड़क दूर होती है। जो कल्पवृक्षकी छायामें जाते हैं, उन्होंकी अभिलापा पूर्ण होती है। जो अपने-आपको मेरे प्रति समर्पित कर देते हैं, मैं भी अपने-आपको उनके प्रति समर्पित कर देता हूँ। जो मुझे जिस भावसे भजता है, मैं भी उसी भावसे उसे भजता हूँ।’

इतना कहते-कहते भगवान् मानो आवेदमें आ गये। यद्यपि भगवान्को कभी आवेद नहीं होता, न हो सकता है; परतु भक्तोंके कल्याणके लिये उन्हें आवेदकी भी लीला करनी पड़ती है। उन्होंने कहा—‘मैं आपसे सत्य कहता हूँ; गपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं आपलोगोंके विना जीवित नहीं रह सकता। मेरा जीवन आपलोगोंके अधीन है। मेरी सत्ता आपलोगोंके हाथमें है। आपलोग मेरे आत्मा हैं। मुझ भगवान्के भगवान् हैं। मैं आपलोगोंके पीछे-पीछे इसलिये भटकता फिरता हूँ कि कहीं-कहीं आपलोगोंके चरणोंकी धूलि मिल जाय! और उसे सिरपर लगाकर मैं पवित्र हा जाऊँ। आपके ही बलपर मुझमें ससारको धारण करनेकी शक्ति है। मैं निश्चय-पूर्वक कहता हूँ कि एक दिन सारे ससारका उद्धार होगा। सम्पूर्ण जीवोंको मेरे पास आना होगा। मुझसे एक होना होगा।

‘आना होगा, निश्चय आना होगा। मेरे पास आये बिना उनकी यात्रा समाप्त नहीं हो सकती। आखिर वे अपने घर आये बिना मार्गमें कब्रतक भटकते रहेंगे। मैंने इसलिये उन्हें स्वतन्त्र किया कि अपनी विद्या-बुद्धिसे अपना हित सोच-कर वे उसे पावें, परंतु उन्होंने उस विद्या-बुद्धिका दुरुपयोग किया। विषयोंके लिये गँवाया। उन्हें कदापि शान्ति नहीं मिल सकती। परतु इतनेपर भी उन्हे मैं छोड़ नहीं सकता। वे मेरे अपने हैं। कहीं अपने लोगोंको भी छोड़ा जा सकता है? रोगी दबा न लेना चाहे तो क्या उसे दबा नहीं दी जायगी? मैं इन्हे बलात् अपने पास खीचूँगा। यदि वे मुझे छोड़कर धनसे प्रेम करेंगे तो उनका धन नष्ट हो जायगा। यदि मुझे भुलाकर खी, पुत्र, उरीरके चिन्तनमें लग जायेंगे तो उन्हें अशान्ति और उद्देशका शिकार होना पड़ेगा। यदि वे मेरी उपेक्षा करके ससारकी किसी वस्तुको चाहेंगे तो प्राप्ति और अप्राप्ति दोनों ही हालतोंमें वह जलायेगी। पानेपर सफलता-

का गर्व होगा, और पानेकी कामना होगी न पानेपर अडचन ढालनेवाले के प्रति क्रोध होगा; लड़गे, मरंगे, नष्ट होंगे।

मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि नेरे पात्र रहनेमें, मेरी उपादना करनेमें और मेरी जनिविका अनुभव करनेमें ही जीवोंका कल्याण है। क्या नन्हा-ना बच्चा अपनी भौंको छोड़कर कमीदूजी हो सकता है? जीवो! आओ! आओ! आओ! दौड़ आओ! मैं तुम्हें अपने हृदयसे लगानेके लिये कवरे पुकार रहा हूँ। क्षण-क्षण तुम्हारी बाट देव नहा हूँ। नेरे प्यारे दृश्यों। आओ, मेरी गोदमें बैठ जाओ! मैं तुम्हारे सिरपर अपना हाथ केंद्रे! तुम्हें चूम लैँ। और निर कमी एक क्षणके लिये भी न ठोड़ूँ। किसीकी परवा मत करो। संसारके धर्म-कर्म गोड़कर सेरे पात्र दौड़ आओ। मैं तुम्हारा अपना हूँ, मेरे तुम्हारा अपना हूँ! १

मत्स्य मगानान् और बहुत-सी बातें कहते रहे। मानो प्रकृतिसे होकर अब उन्होंने कहा—‘अब प्रलयका अमय बीननेपर आजा। हयग्रीव दैत्यने वेद तुम्हा लिये हैं। उनका उद्धार करनेके लिये मैं उनके पात्र जाता हूँ। विना वेदके तुष्टि कैसे हो सकेंगा? त्रहासे लिये पहले उन्होंकी आवश्यकता है।’

मत्स्य मगानान्से प्रस्तान किया।

(६)

किसीनिकी पुण्यमें वह कथा मित्र प्रकारसे आती है। कल्यामेश्वरे दोनों ही कथाएँ ठीक हो उठती हैं उनमें लिखा है कि कृष्णनाला नदीके तटपर राजपिंडि सत्यवत नामके एक महान् तरसी रहते थे। वे पूल-मूलादि भी भोजनरे लिये नहीं लेते थे। केवल पानी पीकर ही अपने शरीरका निर्वाह कर लेते थे। समयपर ज्ञान, तर्पण, संव्यय आदि नित्य-नियम वडे प्रेससे करते और भगवान्का चिन्तन करते हुए उनका नाम लेलेकर मुख्य हुआ करते। उनके मनमें जोई कामना नहीं थी। वे हृष्ट पाना नहीं चाहते थे। अपने जीवनका परम लाभ समझकर भगवचिन्तनमें मला रहते थे।

उनमें तीनों प्रकारके तप पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित थे। नित्य अपने आरान्धदेव भगवान्की विविधरूपक पूजा करते; अतिथियों, विदानोंका धयार्थीक सन्दार करते। श्रुतियों, गुरुजनोंकी बढ़ना करते। त्रिकाल ज्ञान करते। मन्त्र, भस्त्र और न्याय आदि करके अपने शुरोंको पवित्र करते। उनमें इतनी सरलता, इतनी नम्रता थी कि वनके वनस्पतियों, वृक्षों और पशु-पक्षियोंके साथ वे बहुत शुक्रकर सम्मानके साथ व्यक्तिगत करते।

उनके ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है। अश्विव मैथुनकी चर्चा भी उनके पात्र नहीं फटकारे पानी थी। उनमें अहिंसाका भाव इतना ऊँचा था कि आश्रमके आनुशासके हिस्तक जनुमी अहिंसाप्रेरी हो गये थे। अपना त्वामाविक वैर छोड़कर बाव-बकरी एक ही साथ चर्चेविचर्चते, एक ही चाषपर पानी पीते थे।

वे जन-समाजसे तो प्राय दूर ही रहते थे, किंतु सिल्लदे-चुल्ले न थे, बारतीत अपिन नहीं बनते थे, परन्तु अमी निर्जनसे बोलना ही पड़ता तो बहुत सम्भालकर त्वृत तौल्कर प्रिय, सच एव हितकर बात ही कहते थे। भगवानके नामोंके उच्चारण एवं सत्-शब्दोंने न्वान्मामने अनिक्त दूसरे कामोंमें वार्गिका बहुत कम उपयोग करते थे।

उनके अन्त-करणकी अवस्था विलङ्घण ही थी। जिन्हता, विशद, उद्देश उनके पासनक नहीं फटकते थे। सदा उनका गम प्रसन्न रहता। ज्ञातकी अनिन्दना, भगवान्की सत्यता और आनन्द एव शान्तिके भाव निरन्लर उठा करते। मनमें व्यर्थके निचार कमी नहीं थारे। वह एक प्रकारसे मौन ही थे। अन्त-करणपर उनका पूरा सर्व था और चाहे जिस क्षण जिस परिस्थितिमें उसे रख सकते थे। लहों वे रहते थे उसके आस-पास परिव्रताके परमाणु फैलते रहते थे।

वे नित्य-नियमसे अपनी तपस्यामें लगे हुए थे कि अक्षसान् एक ढोटी-सी मछली उनकी अज्ञानिमें आ गयी। जब उन्होंने उसे गिर पानीमें डाल दिया तब उसे बैकमत भनुसे उस मछलीकी बात हुई थी। वैसे ही इनसे भी हुई और इन्होंने भी रक्षा करते-करने श्रम उस मछलीको सनुद्धमें पहुँचा दिया।

भगवान् वडे भक्तवत्तु है। जब अपने भक्तको निष्काम मात्रसे भजनमें लगा हुआ देखते हैं और देखते हैं अपने बद्रव्यमें उसकी तन्मयता, तब अवश्य-अवश्य उसपर कृपा करते हैं और दर्शन देकर उसे ज्ञान-विजान, प्रेम, अविकार और सब कुछ देते हैं तथा उसके योग काम देकर उसे अपना सहकारी बना लेते हैं। भगवान्की यह बान है कि धर्ममें लगे हुएका कल्याण करते ही हैं। कोई धर्मके मार्गमें चले, तपस्या करे, साधना करे और भगवान् उसे न मिलें, ऐसा हो ही नहीं सकता। हमारे एक-एक भाव एक-एक सुकल्प और एक-एक विचार हमारे जीवनके ताथ जोड़े जाते हैं और एक-एक दिन उनका फल मिलना ही है। भगवान्के उज्ज्वला यही विचान है।

आज राजर्पि सत्यव्रतके सामने भगवान् मत्स्यरूपसे प्रकट हैं। यद्यपि भगवान् के लिये सभी रूप समान हैं, परतु भक्तोंके सामने वे कभी कभी ऐसे रूपमें भी प्रकट होते हैं, जिससे उन्हे सर्वत्र देसनेमें सहायता मिल सके। इसीलिये वे पशु-पक्षी, जलचर, थलचर और शूकर तथा मत्स्यके रूपमें भी प्रकट होते हैं। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि हमारे सामने जितनी वस्तुएँ आती हैं, उनका आकार-प्रकार चाहे जो हो, उनके रूपमें स्वयं भगवान् आ सकते हैं और आते हैं। यदि हम प्रमादमें हुए, आलस्यमें हुए अथवा विषयोंके चिन्तनमें पागल हुए तो वे सामनेसे आकर निफल जाते हैं, हम उन्हे पहचान नहीं पाते। जो सर्वदा उनकी प्रतीक्षा करते रहते हैं, सब वस्तुओंमें उन्हे पहचाननेकी चेष्टा किया करते हैं, उनके सामने एक-न-एक दिन भगवान् आते हैं और वे उन्हें पहचानकर निहाल हो जाते हैं।

राजर्पि सत्यव्रतने मत्स्यके रूपमें भगवान् को पहचान लिया। असलमें भगवान् अपने पहचाननेके लिये ही आये हुए थे। सत्यव्रतके दण्डवत्-प्रणाम और प्रार्थनाके बाद भगवान् ने कहा—‘सत्यव्रत। मैं तुम्हारी तपस्यासे, साधनासे और अहैतुक प्रेमसे प्रसन्न हूँ। मैं जानता हूँ, तुम निष्काम हो। तुम्हारे हृदयमें किसी प्रकारकी वासना नहीं है। वास्तवमें ऐसे ही भक्तोंकी मुझे आवश्यकता है और उन्हें मैं छूँडा करता हूँ। तुम भेरे सृष्टि-कार्यमें हाथ बेटाओ! मेरी आजाका पालन करनेमें तुम्हें आनन्द ही होगा। आजके सातवें दिन सारी पृथ्वीको समुद्र छुवा देगा। स्वर्ग और पाताल भी छूवनेसे नहीं बच सकेंगे। यह ‘नैमित्तिक प्रलय’ का समय है। इस समय जीवों और ओपरियोंके द्वीज वच्चानेकी आवश्यकता है। मैंने यह काम तुम्हें सौंपा। जब सारी सृष्टि जलमें छूवने लगेगी, तब एक बड़ी-सी नौका तुम्हारे पास आयेगी। सप्तरियोंके साथ जीव और वीजोंको लेकर उसमें बैठ जाना। उस समय प्रलयके अगाध जलमें जब नौका डावोडोल होने लगेगी, तब मैं मत्स्यरूपसे आऊँगा। मेरे सींगमें नाव बोधकर तुमलोग अपनी रक्षा करना।’

राजर्पि सत्यव्रतने वही प्रसन्नतासे भगवान् की आजा शिरोधार्य की। भगवान् अन्तर्धान हो गये। यह जीवन क्षणभहुर है। आज है, पता नहीं कल रहेगा या नहीं? कलकी तो बात ही क्या, अगले क्षणमें भी इसके रहनेका कोई पक्षा विश्वास नहीं। ऐसे जीवनसे यदि भगवान् की आजाका पालन हो जाय तो इससे बढ़कर अच्छी बात और क्या होती? हम न जाने कितनोंकी आजा मानते हैं, किसीकी स्वार्थसे मानते

हैं, किसीकी दबावसे मानते हैं और किसीकी विनोदसे मानते हैं; परतु क्या भगवान् की आजा इतना मूल्य भी नहीं रखती? स्वार्थ और भयकी हाथिसे भी भगवान् की आजाका उल्लङ्घन उचित नहीं है, विचार तो यही स्वीकार करता है परतु हमारी हालत वही विचित्र है। वेद, शास्त्र, गीता आदिके रूपमें भगवान् की आजा प्राप्त होनेपर भी हम उसका पालन नहीं करते।

यह मूढ़ताके सिवा और कुछ नहीं है। यदि प्रेमीको अपने प्रियतमकी आजा मिल जाय तो पूछना ही क्या है? उसके लिये तो हानि-लाभका प्रश्न ही नहीं है। वस, आजा-ही-आजा है। यह सोचकर कि इस जीवनमें भगवान् के आजापालनका सुअवसर प्राप्त हुआ, राजर्पि सत्यव्रतको वही प्रसन्नता मिली। वे कृत-मालाके पूर्व किनरेपर कुशासन विछाकर बैठ गये और मत्स्य भगवान् के चरणकमलोंका चिन्तन करने लगे। आजके सातवें दिन प्रभु प्रकट होंगे और वहुत समयतक उनके सर्वांग और आलपका आनन्द मिलेगा, इस भावसे उनका हृदय द्रवित हो गया। वे भगवान् की दयालुताका स्मरण करके रोने लगे। उन्हें ये सात दिन सात कल्पसे भी बड़े जान पड़े। इन सात दिनोंमें ही जगत् की न जाने क्या हालत हो गयी, परतु उन्हें कुछ पता न चला। भगवान् की इच्छा और उनकी सकल्य-शक्तिसे सभी वस्तुएँ अपने बीजरूपसे उनके पास उपस्थित हुईं। इन बातोंका पता सत्यव्रतको तब लगा, जब समुद्रकी धोर गर्जनासे उनकी एकाग्रता भंग हुई।

उन्होंने देखा, अब समुद्र मुझे छुवाना ही चाहता है कि इतनोंमें नाव आ गयी और सप्तर्षि आदिके साथ वे उसपर सवार हो गये। समुद्रकी भीषणता देखकर उन लोगोंके मनमें तनिक भी आशंका नहीं हुई। उन्होंने वही शान्तिसे भगवान् का ध्यान किया। ध्यान करते ही मत्स्य भगवान् प्रकट हुए और वासुकिके द्वारा वह नाव उनके सींगमें बाँध दी गयी।

अब राजर्पि सत्यव्रतने गद्गाद स्वरसे प्रार्थना की। वे बोले—‘भगवन्! हम सब जीव अनादिकालसे अविद्याके कारण आत्मस्वरूपको भूलकर ससारमें भटक रहे हैं। आपकी शरण ग्रहण करनेसे ही इसका नाश हो सकता है। यदि हम अजानी जीव अपने हाथों इस अज्ञान और कर्मके बन्धनको काटना चाहे तो असम्भव ही है। इसे केवल आप काट सकते हैं। जैसे अधेका नेता अंधा नहीं हो सकता, वैसे ही अज्ञानी जीवका गुरु कोई अज्ञानी गुरु नहीं हो सकता। गुरु तो केवल आप ही हैं और आपके ही उपदेशसे हमारी दुर्बुद्धि मिट सकती है। कामनाओंके कारण हमारी दुर्दिन नष्ट हो गयी है।

अरने व्योतिर्भव प्रशांतसे इसका मोह दूर न र दीजिये और सर्वेषामे लिये हमें अपना लीजिये । भगवन् । हमने समस्त गुरुओंके पन्मन्त्रप आपको ही गुरुके रूपमें वरण किया है । मैं आपके चरणोंमें शत-शत, सहस्र-सहस्र नमस्कार करना हूँ ।

सत्यवतती भक्तिपूर्ण इस प्रार्थनामो सुनकर भगवान्ने सार्वयोग आदिकी विज्ञा दी । सार मत्स्यपुराण सुनाया और अन्तमें आत्मतत्त्वका गुरुतम ज्ञान और अपनी भक्तिका उपदेश किया । तत्पत्रान् सत्यवतको सम्मोहित करके भगवान् ने यह—‘अप प्रलयका समय वीत गया । तुमलोग समारम्भ जाओ । मैं तुमर प्रसन्न हूँ । मैंने तुम्ह स्वीकार किया । मैं सर्वदा तुम्हारे साथ रहूँगा । एक धणके लिये भी नहीं छोटूँगा । अप अगले कल्पमें तुम विवक्षान्तके पुत्र बनोगे और तुम्हारा नाम वैवस्वत मनु होगा । एक मन्यव्यतरके तुम्हीं अधिगति होआगे । मेरी कृपासे तुम्ह कभी मेरी विम्मुति नहीं होंगी ।’

मने श्रद्धा-भक्तिसे भगवान्को प्रणाम किया और वे हयग्रीवके वधके लिये उपस्थित हुए ।

(७)

वेदका अर्थ है अनन्त ज्ञान । यज्ञ भगवत्प्रवृत्ति है । भगवान्का नि धार अर्थात् प्राण है । इसका भगवान्के साथ अद्भुत मग्निय है । वेद रहें और भगवान् न रहें या भगवान् रहें, वेद न रहें, ऐसी स्थिति न कभी हुई है और न हो सकती । पहले पहल अर्थात् सृष्टिके प्रारम्भमें भगवान् ही व्रहाके हृदयमें वेदोंका सचार करते हैं । उन्हें ऐसा ज्ञान देते हैं, जिससे वे पूर्व कल्पके तत्त्वोंको पहचानते हैं और उनकी ठीक ठीक व्यवस्था करते हैं । जगतक वे इस ज्ञानको सावधानीके साथ सुरक्षित रखते हैं, इसका सरण बनाये रखते हैं, तत्त्वक वे सृष्टिकी व्यवस्था करते रहते हैं, क्याकि वह ज्ञान भगवत्प्रवृत्ति ही है । इसके आश्रयसे की जानेगली सृष्टि भगवत्-सम्बन्धसे युक्त ही रहती है ।

बल्कि वेदसे ही सृष्टि हुई है । उँकारके द्वारा प्रकृतिर्मध्यम, गायत्रीके द्वारा ज्ञानका सचार और व्रहाके चाग मुख्योंसे निकले हुए मन्त्रोंद्वारा ही सम्पूर्ण जगतकी सृष्टि हुई है । जगतक व्रहाके मुख्योंसे वेद-मन्त्र निकलते रहते हैं, तत्त्वक प्रलय नहीं होता और जब वे असामान्य हो जाते हैं, तमोगुण उनकी राजसिक और सात्त्विक प्रवृत्तियोंको दशा लेता है, तब उनका वेद-ज्ञान भूल जाता है और वे निष्ठित हो जाते हैं । यह निद्राकाल ही नैमित्तिक प्रलयकाल है ।

रहते हैं कि जब व्रहाका रात्रिकाल निकट आता है, मध्या हो जाती है, तब वे कुछ तन्द्राग्रस्त हो जाते हैं । उसी समय हयग्रीव नामका दैत्य, जिसे हम तमोगुण भी कह सकते हैं, उनके वेद चुरा ले जाता है । वे तो निद्राके कारण सो जाते हैं, परतु भगवान् इस वातकी उपेक्षा करके सकते हैं । वे मत्स्यवतार धारण करके इस अगाध जल्पागिमेंसे उसे हूँड निकालते हैं और प्रलयका अन्त होते होते व्रहाके हृदयमें पुनः वही जान प्रकाशित कर देते हैं ।

यत्थापि व्रहाने वेद कागजपर लिखे हुए कुछ गिनेबन्नुने मन्त्रोंके रूपमें नहीं हैं, जिन्हें कोई चुरा सके । वे तो अनन्त हैं । तथापि असावधानी और तमोगुणके ढारा अनन्त जान-रागी भी छुस हो सकती है, इस वातका पता देनेके लिये भगवान् ही ऐसी लीला करते हैं ।

वेदोंका रक्षक कौन है ? धर्मका रक्षक कौन है ? वेद और धर्मके व्यावहारिक रूप वर्णाश्रमका रक्षक कौन है ? इन प्रश्नोंका एकमात्र उत्तर है—‘भगवान् !’ वास्तवमें इनके रक्षक भगवान् ही हैं ।

जब हयग्रीव वेदोंको चुराकर अगाध जल-राशिमें छिप गया और उसने सोचा कि मेरे पास तक कोई नहीं आ सकेगा, मुझे अप कोई न देख सकेगा, तब भगवान्ने मत्स्यरूप धारण किया और वे उसके पास पहुँच गये । भला भगवान्से छिपकर कोई रहँ जा सकता है ? वे घट-घटकी जानते हैं, बल्कि घट घटमें जितने विचार पैदा होते हैं, सब उन्हें आश्रयसे, उन्होंकी शक्तिसे होते हैं । यही नहीं, बल्कि वे स्वयं ही घट-घटमें रहते हैं । ऐसी स्थितिमें हम उनसे क्या छिपा सकते हैं ?

हम निया नहीं सकते, परतु छिपते हैं । इसका कारण क्या है ? क्या हम भगवान्पर विश्वास नहीं करते ? क्या हम अपनेको आस्तिक कहते हुए भी अदरसे नास्तिक हैं ? अवश्य, हम एक साधारण आदमीके सामने जिन चोरी आदि कुक्मोंको नहीं कर सकते, उन्हें भगवान्के सामने करते हुए लजित नहीं होते । भगवान्पर आस्ता रखनेवालेके द्वारा यह कभी सम्भव नहीं है ।

परतु इतनी वात अवश्य है कि हमारे अदर बहुत सी कमजोरियाँ हैं । हम कभी तमोगुणके अधीन हो जाते हैं, कभी रजोगुणके अधीन हो जाते हैं । यदि इनके अधीन होने-के समय भी भगवान्की याद बनी रहे, उनका भरोसा रहे तो हम समस्त आपत्तियोंसे छूट सकते हैं ।

ब्रह्मा असावधान हो गये थे; परतु भगवान्‌का भरोसा नहीं छूटा था। यही कारण है कि भगवान्‌ने उनकी रक्षा की और हयग्रीवने भी चोरी तो की, परतु उसे भगवान्‌का भय था। भयसे ही सही, भगवान्‌पर आस्था यी इसलिये भगवान्‌ने स्वयं उसके पास जाकर उसे सद्गति प्रदान की।

साधारण वध और भगवान्‌के द्वारा किये गये हुए वधमें बड़ा अन्तर होता है, क्योंकि भगवान्‌ अपने हाथी जिसका वध करते हैं, उसका उड़ार हो जाता है। हाँ, तो हयग्रीवका उड़ार करके उन्होंने वेद ब्रह्माको दे दिये और ब्रह्माने फिरसे पहले कल्पकी भौति सृष्टि की। इस प्रकार मत्स्यरूपसे भगवान्‌ने वेदोंकी रक्षा की। धर्मका, ज्ञानका उपदेश किया और अपनी महान्‌ भक्तवत्सलता प्रकट की। इस अवतारके द्वारा भगवान्‌ने ऐसी सुन्दर लीला की, जिसे गान्गाकर लोग भवसागरसे तरेगे और उनके प्रेममें मस्त रहेंगे।

प्रत्येक अवतारकी अलग-अलग उपासना-पठति है। उनमें उनके मन्त्र, ध्यान आदिका विस्तारसे वर्णन हुआ है। मत्स्य भगवान्‌के सम्बन्धमें भी मन्त्र और ध्यानका वर्णन मिलता है। वासुदेव द्वादशाक्षर मन्त्रकी भौति इनका भी द्वादशाक्षर मन्त्र है। ‘ॐ नमो भगवते म मत्स्याय।’ इस

मन्त्रका जप करनेसे साधकको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होती है।

इनके ध्यानके सम्बन्धमें मेरुतन्त्रमें लिखा है—

नाभ्यघोरोहितसम आकण्ठं च नराकृतिः ।

चन्द्रयामश्चतुर्वाहुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥

शङ्खिमत्स्यनिभो मूर्द्धा लक्ष्मीवक्षोविराजितः ।

पद्मचिह्नितसर्वाङ्गः सुन्दरशास्त्रोचनः ॥

(मेरुतन्त्र ३६ अ०)

भगवान्‌ मत्स्यका विग्रह नाभिसे निचले भागमे रोहित मछलीकी भौति है। गलेतक मनुष्यके आकार-सा है और सिर शृङ्गी मछलीकी भौति है। वर्षाकालीन मेघके समान श्यामल वर्ण और तीन हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा धारण किये हुए हैं। आँखोंसे दयाकी वर्षा हो रही है और बक्षःस्थल-पर लक्ष्मी विराज रही हैं। मत्स्य भगवान्‌का यही स्वरूप है। इसके ध्यानसे साधकोंका परम कल्याण-साधन होता है। विस्तार मूल ग्रन्थमें ही देखना चाहिये।

अन्तमें हम शङ्ख-भक्तिपूर्वक भगवान्‌ मत्स्यको प्रणाम करें और उनके चरणोंमें भक्तिकी प्रार्थना करें।

बोलो भक्त और भगवान्‌की जय !



श्रीकृष्णपावतार-कथा

(१)

सत्त्व, रज और तम-इन तीन गुणोंकी विषमताका नाम ही सृष्टि है। जब ये तीनों वरावर रहते हैं, तब प्रलय रहता है। सृष्टिकी दशामें ये तीनों वरावर रहे अथवा तीनोंमेंसे किसी एककी प्रधानता न रहे, ऐसा सम्भव नहीं और जब ये तीनों विषम अवस्थाये रहते हैं, तब एक दूसरेको अपने अधीन कर लेना चाहते हैं, अपनी ही प्रधानता स्थापित करना चाहते हैं। इसलिये सृष्टिकी दशामें इन तीनोंका समाम निरन्तर चलता रहता है। यदि रजोगुणकी प्रधानता हुई तो वह तमोगुणकी ओर ले जाता है और सत्त्वगुणकी प्रधानता हुई तो वह भगवान्‌की ओर ले जाता है। रजोगुणकी प्रधानता भी यदि भगवान्‌के आश्रयसे हो तो थोड़े ही दिनोंमें वह सत्त्वगुणका रूप धारण कर लेती है। इस सृष्टिमें और जीवनमें सर्वदा यह युद्ध चला करता है।

इसी कारण अनादि कालसे देवासुर-सग्राम होता चला आया है। देवता भगवान्‌के वलपर लड़ते हैं, उनका अपना

बल कुछ नहीं है, इसलिये उन्हे अचला कहा गया है और दैत्य अपने वलपर, अहकार-अभिमानके वलपर लड़ते हैं; इसलिये उन्हें बुरा बतलाया गया है। जब देवता भी भगवान्‌का आश्रय छोड़कर अपने वलपर युद्ध करते हैं, तब वे हार जाते हैं और दुःख भोगते हैं; परतु सत्त्वमूर्ति भगवान्‌को सत्त्वगुण अधिक प्रिय है। वे तमोगुणका साम्राज्य नहीं देखना चाहते, इसीसे सत्त्वगुणी देवताओंकी सहायता किया करते हैं और अपनी ओर न आनेवाले दानवोंकी सहायता नहीं करते।

यहाँ यदि देवताका अर्थ दैवी सम्पत्तियोंका प्रेमी कर लिया जाय और दैत्यका अर्थ आसुरी सम्पत्तियोंका प्रेमी कर लिया जाय तो भी वात ठीक बैठ जाती है, परंतु यह केवल रूपक ही नहीं है, इसके साथ एक महान्‌ ऐतिहासिक सत्य जुड़ा हुआ है। देवता और दैत्योंका सग्राम होता है, बार-बार होता है, उनके लोक हैं, उनमें राजा-प्रजा आदिके व्यवहार यथावत् चलते हैं और आज भी चलते हैं। जैसे

‘अन्तर्यामिन् ! आप जानते ही हैं कि इस समय सुष्ठिकी स्थितिका अवसर है । यदि इस समय दैवी-सम्पत्ति और देवताओंकी रक्षा और अभिवृद्धि न हुई तो सारी सुष्ठि तमोरुणी हो जायगी । फिर तो सुष्ठिका यह उद्देश्य कि लोग स्वतन्त्रतासे अपने कल्याणका साधन करें और भगवान्को प्राप्त करें, केवल उद्देश्यमात्र ही रह जायगा । काम, क्रोध, लोभ, मोह, प्रमाद, आलस्य आदिके कारण सभी जीव पाप-तापकी महान् ज्वालामें जलने लगेंगे । क्या आपकी यही इच्छा है ? नहीं, नाथ ! आपकी ऐसी इच्छा कदापि नहीं है । आप तो सब जीवोंको अपने पास बुलाना चाहते हैं और इसीके लिये आपने यह सुष्ठिका प्रणश्च रचा है । ये सभी देवता और हमलोग आपकी शरणमें आये हैं । आपके चरणोंमें नमस्कार करते हैं । जैसे जगत्का कल्याण हो, वैसा कीजिये ।’

भगवान्ने दयाद्विषे निहारते हुए प्रेमभरी वाणीसे कहा—‘ब्रह्मा, शिव तथा देवताओ ! आपलोगोंकी विपत्ति मुझसे छिपी नहीं है । मैं सभी वातें जानता हूँ । आपके साथ मेरी हार्दिक सहानुभूति है । परंतु किया क्या जाय, इस सुष्ठिका एक नियम है । इसकी एक व्यवस्था है । इसमें पुरुषार्थ करनेवाला विजयी होता है । मैं सदाचारियोंका सहायक हूँ । मैं सात्त्विक पुरुषोंका मित्र हूँ; परंतु सदाचार और सात्त्विकताका यह अर्थ तो नहीं है न कि मेरे भरोसे हाथ-पर-हाथ रखकर बैठा जाय ? तुम्हारे पास जितनी शक्ति है, जितना बल है, तुम जो कुछ और जितना कर सकते हो, सचाई और साहसके साथ उतना करो । जब इतनेपर भी तुम्हारा काम होता न दीखे तो मुझे पुकारो । मैं तुम्हारे साथ हूँ । मैं सचाईसे पुकारनेवाली चींटीकी भी आवाज सुनता हूँ; क्योंकि सचाईका निवासस्थान मेरे अन्यन्त निकट है ।

‘साया संसार मेया है । देवता और दैत्य दोनों ही मेरे हैं । मैं किसीके प्रति पक्षपातका भाव नहीं रखता । जो सच्चे हृदयसे मुझे पुकारता है, मैं उसकी सहायता करता हूँ । परंतु सचाईके साथ मुझे पुकारनेवालेके हृदयमें आसुर भाव रह ही नहीं सकते । वह देवता हो जाता है । देवता और असुरोंका यही मुख्य भेद है कि देवता मुझे पुकारते हैं और असुर नहीं पुकारते । पुकारनेवालेके पास जाना और न पुकारनेवालेके पास रहकर भी प्रकट न होना, यह समदर्शिताको भंग नहीं करता । मैं समदर्शी ही नहीं, स्वयं सम हूँ ।

‘अब तुमलोगोंको मुझे याद रखते हुए पुरुषार्थ

करना होगा । पुरुषार्थ भी केवल अकेले नहीं, सबको मिलकर करना होगा । तुमलोग बलिके पास जाओ । वह तुम्हारा शत्रु है तो क्या । जब तुमलोग शास्त्राख्यका त्याग करके नम्रताके साथ उसके पास जाओगे, तब वह वडे सम्मानके साथ तुम्हारी मित्रता स्वीकार करेगा ।

‘शत्रुको नम्र देखकर वडे-से-बड़ा शत्रु भी नम्र हो जाता है और लाभके अवसरपर शत्रुको मित्र बनानेसे हिचकना हानिकर है । इस समय तुमलोग बलिको श्रेष्ठ स्वीकार कर लो और उन्हें ही अपना नेता बनाओ । उनसे सलाह करके समुद्र मथनेकी तैयारी करो । पृथ्वीकी समस्त ओष्ठधि-वनस्पतियोंको समुद्रमें डालकर मन्दराचलकी मथानी बनाकर बासुकि नागकी रस्सीसे मथो । समुद्रसे वडे सुन्दर-सुन्दर रख निकलेंगे । लोभ नहीं करना । संतोष रखना । बलिकी इच्छा पूर्ण होने देना । अन्तमें अमृत निकलेगा, जिसको पान करनेके बाद तुमलोग अमर हो जाओगे । तुम्हारे सामने जब कोई अङ्गचन आवें, मुझे याद करना । मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा । आलस्य मत करो । उठो, जागो और अपने कर्तव्यमें ला जाओ । ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जो सच्ची लगन और सत्साहसरे प्राप्त नहीं हो सकती । आगमें कूद पड़ो । जो अपने जीवनमें जोखिम नहीं उठाता, वह किसी महत्वपूर्ण लाभकी आशा नहीं कर सकता ।’

देवताओंको इस प्रकारकी आज्ञा देकर उनके देखते-देखते भगवान् अन्तर्धान हो गये । ब्रह्मा और शंकरने भी भगवान्को साधांग प्रणाम करके उनके दिव्य गुणोंका स्मरण-चिन्तन करते हुए अपने-अपने दिव्य धामकी यात्रा की और देवताओंने विना शास्त्राख्यके, विना कवचके बड़ी नम्रताके साथ बलिके पास प्रस्थान किया ।

दैत्योंने देखा कि आज देवतालोग यों ही चले आ रहे हैं । कहियोंके मनमें यह इच्छा हुई कि आज बड़ा अच्छा अवसर मिला है, इन लोगोंको छकाया जाय । वहुतोंने अपने हथियार सम्भाले कि आज युग-युगका बदला ले लिया जायगा । कहियोंके मनमें उन्हें कैद कर लेनेकी वात आयी । कुछ समझदारोंने कहा कि ‘देवतालोग इस प्रकार आ नहीं सकते । इसमें कोई-न-कोई चाल होगी । इन्द्र सबका रुख देखते हुए भी कुछ बोले नहीं । बड़ी नम्रतासे बलिके पास पहुँचे । वलि अपनी सभामें अपने सभासदोंके साथ बैठकर नीति-शास्त्रका विचार कर रहे थे । कोई कह रहा

लोक पर्वतसे परे भगवान्‌के प्रकाशमय नित्यधारके पास पहुँची । ब्रह्मा, शकर, इन्द्रादि देवता तथा समस्त ऋषि-महर्षि वहाँ जाकर दिव्य वाणीसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे । लोगोंने अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे प्रार्थना की—‘प्रभो ! हम आपके शरणागत हैं । न हमें अपना वल है न और किसीका सहाय है । हम आपके हैं, आपके मरोसेपर हैं और आपकी ही गणमें आये हुए हैं । हम अपनी आँखोंसे आपका दर्शन करनेमें भी असमर्थ हैं, क्योंकि इनमें इतनी शक्ति ही नहीं कि अपने अदर-वाहर और इनसे भी परे रहनेवाले परम पिताका दर्शन कर सकें । आप अनन्त हैं, निर्विकार हैं, निराकार हैं और विजानानन्दधन हैं । हम सब मायाके चक्करमें फेंसे हुए हैं और हमारे हृदय, इन्द्रिय और शरीर मायाके ही कामोंमें लगे हुए हैं ।

‘परतु हम सब मायामें तो हैं न ! हमारे अटर इतनी शक्ति नहीं है कि इस मायाके पर्देंको फाड डालें । इसके परे पहुँच जायें । यह तो आपकी कृपासे ही हो सकता है और होता है । हम आपकी इच्छाके अनुसार चलनेमें ही अपना कल्याण समझते हैं और चलते हैं । यह देवताओंकी पराजय, दैत्योंकी वृद्धि, ससारमें दैवी शक्तियोंकी कमी और आसुरी शक्तियोंकी अभिवृद्धि आपकी इच्छासे ही हो रही होगी, परतु हमें स्तोष कहों ? हमारा हृदय अगान्तसे भर गया है । हम उद्घिन हो गये हैं । अब आपके अतिरिक्त इस दुःखसे बचानेवाला और कोई नहीं दीखता । नाथ ! आप आइये । दर्शन दीजिये, हमारे नेत्रोंको सफल कीजिये ।

‘यद्यपि आप निराकार है तथापि आप भक्तोंके लिये साकार हो जाने हैं । आप साकार होते हुए भी निराकार हैं । निराकार होते हुए भी साकार है । आप कुछ न चाहते हुए भी सब कुछ चाहते हैं और सब कुछ चाहते हुए भी कुछ नहीं चाहते । यही तो आपकी भगवत्ता है । प्रभो ! आपने कहा है कि ‘भक्तोंकी इच्छा ही मेरी इच्छा है ।’ आज हम सब आपके दर्शनके इच्छुक हैं, कृपा करके हमें दर्शन दीजिये । आप अवश्य दर्शन देंगे । आप दर्शन दिये त्रिना रह नहीं सकते ।’

प्रार्थना करते-करते सब-के-सब वाह्य-विस्मृत हो गये और साधाङ्ग जमीनपर शिर पढ़े । उनकी व्याकुलता, आतुरता एव दर्शनकी उत्सुकता देखकर भगवान्‌ने अपने आपको प्रकट किया । वे तो सर्वत्र रहते ही हैं और प्रकट भी रहते हैं । जहाँ उनके दर्शनकी सच्ची इच्छा हुर्वं, वस, दर्शन हो

गये । उनके प्रकट और अप्रकट होनेकी बात तो केवल व्यावहारिक होती है ।

भगवान्‌की उस अनुपम रूपराशिको देखकर देवताओंकी ओंसे चाँधिया गर्या । वे उन्हें देख न सके । कुछ धर्णोंमें सम्भलकर उन्होंने देखा कि अनन्त सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यकी गति उनके सामने मूर्तिमान् छोकर खड़ी है और उसकी मन्द-मन्द मुमकान सबके चित्तको चुरा रही है ।

कैसी अद्भुत रूप-माधुरी है ! स्वच्छ मरकत मणिके समान क्यामर्वाङ्का गरीर है, कमलकी कोमल पंखुडियोंके सद्बा गुलाबी ओंसें है । तपाये हुए सोनेके समान विशुद्ध पीताम्बर धारण किये हुए हैं । मुखसे आनन्द और प्रमग्नताकी धारा वह रही है । सुन्दर-सुन्दर टेढी-टेढी भोहंसे अनुग्रहकी वर्षा हो रही है । चार चित्तवनसे मानो सारे संसारको प्रेमके समुद्रमें डुबानेके लिये सकेत कर रहे हैं । गलेमें बनमाला, वक्षःखलपर कौसुम मणि और लक्ष्मी तथा अन्यान्य सुकुमार अङ्गोंमें दिव्य आमूषण धारण किये हुए हैं और उनके अख भूतिमान् छोकर उपासना कर रहे हैं । सभी दिव्य हैं, अलौकिक हैं, भगवत्वरूप हैं ।

सबने शिर टेककर साधाङ्ग प्रणाम किया ।

(२)

शिव-सनकादि भगवान्‌की रूप-माधुरीका अपलक दग्धोंसे पान कर रहे थे । बाहर-भीतरका कुछ ज्ञान नहीं था । जितना ही पीते, उतनी ही अधिक अत्मसि बढ़ती जाती । यही तो भगवान्‌के रूप-सकी विगेषता है । वह नित्य-नूतन है । पीजिये और पीते ही जाइये । न कभी समाप्ति होगी, न कभी तृप्ति होगी । देवतालोग एकटक देख रहे थे । उन्हें बोलनेका साहस ही नहीं होता था । अन्तमे ब्रह्माने अपना मौन भङ्ग किया । उन्होंने कहा—‘भगवन् । आप अन्तर्यामी हैं । आपसे कोई वात छिपी नहीं है । आपसे क्या कहें और क्या न कहें ? आपकी दशालुता देखकर हमसे कुछ कहा नहीं जाता । आपके दर्शन अत्यन्त दुर्लभ हैं । बड़े-बड़े यज्ञ-यागादि साधन करनेपर भी क्षणमात्रके लिये आपकी ज्ञोंकी मिलनी कठिन है । कहाँ हम ससारमें भूले हुए और ससारमें लगे हुए विषयासक्त प्राणी और कहाँ आपका परम विरक्त ज्ञान-ज्ञनोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लम दर्शन ! परतु आपने कृपा करके हमें दर्शन दिया है, अतः आपकी यह कृपा ही हमें कुछ निवेदन करनेकी दिठाई करनेके लिये उत्साहित करती है ।

वलिसे इन्द्रने कहा—‘मूँढ़ ! तू अपनेको बड़ा बलिष्ठ लगाता है। एक क्षणभर मेरे सामने और उठार जा ! तू मायाके बलपर अवतक हमलोगोंको छकाता आया है। आज उसका मजा चख ! अभी-अभी मैं बज्रसे तेरा सिर काट लेता हूँ।’ बलिने कहा—‘देवेन्द्र ! काल और कर्मकी प्रेरणाके अनुसार हम सभी संग्राम-भूमिमें उतरे हुए हैं। जय-पराजय, कीर्ति-अकीर्ति और जीना-मरना जो कुछ जैसा होनेवाला होगा, वह होकर ही रहेगा। विद्वान्लोग सारे जगत्को कालके गालमें देखते हैं। न कभी प्रसन्न होते और न कभी शोक करते हैं। तुम इस बातको नहीं जानते। मूर्ख हो। इसलिये तुम्हारी इन कड़ी बातोंसे मैं दुखी नहीं होता।’ यह कहते-कहते बलिने वारोंसे इन्द्रका शरीर छेद डाला। वे व्याकुल हो गये।

सम्भलकर इन्द्रने बलिपर बज्र-प्रहार किया।

(७)

जैसे सूर्य भगवान् समानरूपसे सारे जगत्को प्रकाश और उष्णताका दान करते हैं। उनकी शक्तिसे, उनके प्रकाशसे लाभ उठाकर कुछ लोग संध्या-पूजा, यज्ञ-दान आदि करते हैं और कुछ लोग बुरे विषयोंका दर्शन, धातक शस्त्रोंका निर्माण आदि करते हैं, परंतु सूर्य इन दोनोंसे अलग रहता है, न वह किसीका पक्षपात करता और न किसीसे द्वेष करता है। जो लोग लाभ उठाना चाहें उठावें, न उठाना चाहें न उठावें। ठीक भगवान्की भी ऐसी ही बात है; वे सबपर कृपा करनेको तैयार हैं, कृपा किये हुए हैं। जो लोग उसका अनुभव करते हैं, वे लाभ उठाते हैं और जो नहीं अनुभव करते वे उससे वञ्चित रह जाते हैं।

देवता उनकी कृपाका अनुभव करते हैं और उससे लाभ उठाते हैं। आज भी जब उन्होंने भगवान्का सरण किया, तब वे आ गये और देवताओंका बल बढ़ गया। जब उनकी जीत होने लगी, तब भगवान् अन्तर्धीन हो गये; परंतु युद्ध अब भी चल ही रहा था। देवराज इन्द्रके बज्र-प्रहारसे बलिके धायल होते ही दैत्य उन्हें दूसरी ओर उठा ले गये और जम्भासुर अपनी विकराल गदा लेकर इन्द्रपर टूट पड़ा। गदाकी चोटसे व्याकुल होकर ऐरावत घुटनोंके बल बैठ गया और उस समय युद्धके योग्य न रहा। मातलिने इन्द्रके सामने उनके हजार घोड़ोंवाला रथ उपस्थित किया और इन्द्र झटपट उसपर सवार होकर मैदानमें फिर उतर पड़े।

इन्द्रके बज्र-प्रहारसे जम्भासुरकी मृत्यु हो गयी। यह समाचार सुनते ही नमुचि, बल और पाकासुर—ये तीनों

उपस्थित हुए। इन लोगोंका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। अन्तमें इन्द्रने अपने शतधार बज्रसे बल और पाकासुरके सिर भी काट लिये; परंतु नमुचिपर उनका बज्र असर न कर सका। इन्द्र बड़ी चिन्तामें पड़ गये। उन्होंने सोचा कि दधीचिकी हड्डियोंसे बना हुआ यह तपस्याओंका सारखरूप बज्र कभी विफल नहीं हुआ था। जिससे पहले मैंने अनेकों पर्वतोंकी पाँखें काट डालीं। बृत्रासुरको मार डाला और न जाने कितने बड़े-बड़े दैत्य-दानवोंको मृत्युके धाट उतार दिया; वही बज्र आज इस छोटे-से दैत्यपर व्यर्थ हो गया ! यहाँतक कि उसके चमड़ेपर भी चोट न कर सका, अतः अब इसे लेकर मैं क्या करूँगा ?

इन्द्रकी चिन्ताओंका अन्त नहीं था। इतनेमें ही आकाश-वाणी हुई कि ‘इन्द्र ! यह शोक करनेका अवसर नहीं है। इसने पहले धोर तपस्या करके यह वरदान प्राप्त किया है कि मैं सूखी या गीली चीजसे न मरूँ। इसीसे तुम्हारा बज्र इसपर कारगर नहीं हो सका। अपने बज्रमें समुद्रका फैन लगाकर इसपर प्रहार करो। इसकी मृत्यु हो जायगी।’ इन्द्रने बैसा ही किया। क्षणभरमें नमुचिका सिर धड़से अलग हो गया।

अब दैत्योंके पैर उखड़ गये। जो बचे थे, वे भग गये, परंतु देवताओंने उनका पीछा न छोड़ा। वे उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़कर मारने लगे। तब ब्रह्माकी प्रेरणासे देवर्पिं नारद अपनी वीणापर भगवान्के मधुर नामोंका सुन्दर स्वरसे गायन करते हुए देवताओंके पास आये और उन्होंने समझाया। नारदने कहा—‘देवताओ ! तुमपर भगवान्की कृपा है। तुम भगवान्-के आश्रित हो। तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो गयी। तुमने अमृत पी लिया। अब इन वेचारोंको खदेड़-खदेड़कर मारनेसे क्या लाभ है ? यदि तुम्हें इसी प्रकार कोई मारता तो तुम्हें कितना दुःख होता ? जो बात अपनेको बुरी लगे, वह दूसरेके लिये भी नहीं करनी चाहिये। हिंसा स्वयं नरक है। इस नरकमें जानेके रस्ते काम, क्रोध और लोभ हैं। परंतु मुझे तो तुम्हारे अंदर अकारण क्रोधकी ही मात्रा अधिक दीखती है।

‘तुमलोग जानते ही हो कि आग जिस स्थानमें जलती है, पहले उसी स्थानको जलाती है। क्रोध आग ही है। यह जहाँ पैदा होता है, पहले उसीको जलाता है। अपराध करनेवालेपर भी क्रोध नहीं करना चाहिये; क्योंकि क्रोध स्वयं अपराध है। यदि एकके क्रोध करनेके अपराधपर दूसरा

था, इस प्रकारका उपाय करनेसे देवतालोग सदाके लिये बगमे हो सकते हैं और कोई कह रहा था कि ऐसा करनेसे हमलोगोका रज्य अचल हो जायगा। इतनेमें ही इन्द्रने सूचना देकर बलिके समा-भवनमें प्रवेश किया।

शत्रुओंको इस प्रकार आया हुआ देखकर बलिने बड़ा स्वागत-संत्कार किया और कुरुख रखनेवाले असम्य दैत्योंको डॉटकर देवताओंसे उनके आनेका कारण पूछा। इन्द्रने बड़े विस्तारसे समझाया कि समुद्रमें अनेकों रत्न हैं और यदि हमलोग एक साथ होकर समुद्र मर्यें तो वे हमें मिल सकते हैं। उन्हें पाकर वास्तवमें हम ससारकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु पा लेंगे। मन्दरकी मथानी, वासुकिकी रस्ती और भगवान्के सहायक होनेकी वात भी उन्होंने कही। बलि और उसके समासदोने हृदयसे इन्द्रकी वातोंका अनुमोदन किया और दोनों दल मिलकर समुद्र-मथन करें, यह वात निश्चिन हो गयी।

सिवता हो गयी। समुद्र-मन्थनकी वात पक्की हो गयी। अब केवल मन्दराचलके लानेकी देर रही। तुरंत सब देव-दानव मिलकर मन्दराचलके पास गये और उन्होंने बड़े देगसे उसे उखाइ डाला। विशाल बाहुओंवाले बलशाली दैत्य और देवताओंने उसे उखाइकर बड़े जोरकी आवाज करते हुए उसको लेकर समुद्रकी ओर यात्रा की। परतु वहाँसे समुद्र निकट नहीं था, बहुत दूर था। चलते-चलते उनकी शक्ति क्षीण हो गयी और विश्व होकर बलि तथा इन्द्रने उसे छोड़ दिया। उस बड़े भारी पहाइके गिरनेके कारण अनेको दैत्य और देवताओंके शरीर चूर-चूर हो गये। कहयोके हाय टूट गये, कहयोके पैर टूट गये और वहुतोंकी कमर सरक गयी। दोनों दलोंमें तहलका मच गया। उनका उत्साह ठढ़ा पड़ गया।

इसी समय देवताओंने भगवान्की याद की। भगवान् कहाँ दूर थोड़े ही थे। उन्हे तो केवल पुकारने भरकी देर थी। जबतक इन लोगोंको अपने बलका भरोसा था, धमंड था, तबतक भगवान् अपने आप क्यों आने लगे? जब धमड़ चूर-चूर हो गया, तब पुकारते ही वे प्रकट हो गये। अपनी अमृतवर्षीयी दृष्टिये मरे हुए देव-दानवोंको उन्होंने जीवित किया, जिनके अङ्ग-भङ्ग हो गये थे, उनके शरीर पूर्वतः ठीक किये। सबके अन्त करणमें बल और साहसका सचार कर दिया। अनने वाये हाथसे मुसकराते-मुसकराते मन्दराचलको उठाया और देखते-देखते क्षणभरमें उसे गर्ढपर रखकर समुद्रतटपर पहुँचा दिया। भगवान्ने अब

गरुडको विदा कर दिया और स्वयं वहाँ रह गये।

तत्पश्चात् देवता और दानवोंने वासुकि नागसे ग्राथना की कि 'तुम समुद्र मथनेमें हमारी सहायता करो। हम तुम्हें फलमें अपने वरावर ही हिस्ता देंगे।' वासुकिने स्वीकार कर लिया और उन्होंने वासुकि नागसे लपेटकर मन्दराचलको समुद्रमें डाल दिया। वासुकि नागके मुखकी ओर देवताओंके साथ भगवान्ने पकड़ा और पूँछकी तरफ दैत्योंको पकड़नेके लिये कहा। परतु दैत्योंने यह वात स्वीकार नहीं की। उन्होंने कहा कि 'हम देवताओंके बड़े भाई हैं, बली हैं और किसी प्रकार कम नहीं हैं। ऐसी हालतमें हमलोग पूँछ कभी नहीं पकड़ सकते। हम तो मुँहकी ओर रहेंगे।' भगवान्ने दैत्योंकी यह वात मान ली और उन्हें मुँहकी ओर पकड़ाकर स्वयं देवताओंके साथ पूँछकी ओर चले आये। कभी-कभी आत्माभिमानके कारण बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। दैत्यलोग मुँहकी ओर क्या गये मुँहकी खा गये! आगे उन्हें इसका फल मालूम होगा।

अब दोनों दल दही मथनेकी भौति मन्दराचलसे समुद्र मथने लगे। परंतु सबसे पहला विघ्न यह उपस्थित हुआ कि मन्दराचल स्थिररूपसे रहता ही नहीं था। वह समुद्रमें छूवने लगा। देव-दानवोंने अपनी ओरसे बहुत चेष्टा की परतु उनकी एक न चली। निराश होकर उन्होंने भगवान्का सहारा लिया। भगवान् तो सब जानते ही थे। उन्होंने हँसकर कहा—‘सब कायोंके प्रारम्भमें गणेशकी पूजा करनी चाहिये। सो तो हमलोगोंने विल्कुल भुला दिया। बिना उनकी पूजाके कार्य सिद्ध होता नहीं दीखता। अब उन्होंकी पूजा करनी चाहिये।’

गणेशकी विधिपूर्वक पूजा की गयी।

(३)

भगवान् बड़े लीलाप्रिय हैं। वे समुद्र मथनेके लिये स्वयं ही मन्दराचल उठा ले आये। एक ओर लगाकर स्वयं मथने जा रहे हैं, विष्णु-बाधाकी कोई सम्भावना ही नहीं है। जिनके नाम-स्मरणसे, लीला-गायनसे और सरणमात्रसे अनेकों विष्णु-बाधाओंके पहाइ टल जाते हैं, जिनका नाम लेनेमात्रसे समुद्रमें बड़े-बड़े पहाइ तैरने लगते हैं, उनकी उपस्थितिमें और उनके ही द्वारा होनेवाले काममें कोई विष्णु पड़े, यह उनकी लीलाके केवल लीला ही नहीं होती। उसके द्वारा हमें मार्गपर चलनेका उपदेश भी प्राप्त होता है। विघ्नेश्वर गणेशकी पूजाका भी

यही गहस्य था । वृद्धोंद्वारा सम्मानित मर्यादाकां, परम्परागत शिष्यचारका उत्तमुन नहीं होना चाहिये । उनका पालन क्यों किया जाय इस दृष्टिसे नहीं, उनका पालन क्यों न किया जाय, इस दृष्टिसे विचार करना चाहिये । यदि हम अपनी वृद्धिमानीके घमडसे, शारीरिक गलके मदसे अथवा आलस्य प्रमादसे वैसा नहीं करते तो अपराध करते हैं; क्योंकि ये सभ ख्य अपराध हैं और यदि यह बात नहीं है तो न फरनेका रोई कारण नहीं है । वे तो पहलेसे ही हमारे सामने कर्तव्यरूपसे उपस्थित हैं । उन्हें करनेमें कर्तव्य-अकर्तव्यका तो कोइ प्रश्न ही नहीं उठता । भगवान्‌की इस लीलामा एक यह भाव था ।

उधर गणेशजीकी पूजा हो रही थी, इधर भगवान्ने कन्छगरूप धारण किया । सबके देरते-देरते मन्दराचल ऊपर उठ आया और मथनेके योग्य हो गया । भगवान् सत्यसकल्य हैं । उन्होंने अपना वही रूप जो नित्य शाश्वत और आधार शक्तिके रूपमें पृथ्वी और पृथ्वीको भी धारण करनेवाले शेयनागके धारण करता है, प्रकट किया । उनकी हजारों योजन लम्बी-चौड़ी एवं कठोर पीठपर मन्दराचल एक तिनकेकी भाँति प्रतीन हो रहा था । जब देवता और दानवोंने मन्थन प्राग्भूति किया, तब जिस मन्दराचलको खीचनेमें देवता और दानवोंकी सम्झूल शक्ति लग रही थी, उसका धूमना कन्छग भगवान्स्को ऐसा मालूम होता; मानो कोई उनकी पीठ खुला रहा है । मन्दराचलके निरन्तर श्रमणसे सारा समुद्र खलवला उठा, वही ऊँची-ऊँची तररों उठने लगी, जीव-जन्म धनरामर प्रलयका अनुभान करने लगे, पर्वत और समुद्रके आधातये उठनेवाला शब्द सारे ब्रह्माण्डमें फैल गया । बड़े बेगसे समुद्र-मन्थन जारी रहा ।

भगवान् कन्छपरूपसे मन्दराचलको धारण किये हुए थे, विष्णुरूपसे देवताओंके साथ मथ रहे थे । एक तीसरा रूप भी धारण करके मन्दराचलको अपने हाथोंसे दबाये हुए थे कि वहीं उछल न जाय । जब मथते मथते सब लोग थक गये तब भगवान्ने देखा कि अप तो इनका उत्साह टढ़ा पड़ने ल्या, हस प्रकार काम नहीं चलेगा । इन लोगोंके अदर शक्ति-सचार करना चाहिये । वस किर क्या था । मोन्हने भरकी तो देर थी, सभी सो गुने, हजार-नुने उत्साहसे अपने काममें लग गये ।

यद्यपि सबके अदर भगवान्स्की ही शक्ति काम कर रही थी, फिर भी उस समय दैत्योंकी बुरी हालत थी । एक और

समुद्रका धनधोर गर्जन कान फाड़े डालता था, दूसरी ओर सारी शक्ति ल्याकर मन्दराचलको खीचना पड़ता था और तीसरी ओर वासुकि नागके हजारों मुखों, हजारों आँखों और हजारों नाकोंसे उनकी जीभकी ही तरह ल्पलपाती हुई विषकी लपटें निकल रही थीं और उनकी तीव्र ज्वालासे दैत्योंका शरीर जल-भून रहा था । मानो भगवान्स्की आजा न मानने और अपने बढ़पनके घमडका प्रायक्ष फल मिल रहा था ।

दूसरी ओर देवताओंमें प्रतिश्वेष नवीन स्फूर्ति, नवीन वल और नवीन उत्साह बढ़ता जाता था । कारण उनके साथ ख्य भगवान् मथ रहे थे । वे क्षण-क्षणपर भगवान्स्के दिव्य सौन्दर्यमूर्तका पान करके निहाल हो रहे थे और उन्हें देख-देखकर मस्त हो रहे थे । यदि कुछ थकावट होती भी तो भगवान्स्की प्रेममरी दृष्टिके पढ़ते ही मिट जाती थी । उधर वासुकि नागके श्वासकी गरमीसे बादल बन-बनकर देवताओंकी ओर चले आते, उनपर छाया करके, उनपर छोटी-छोटी बूँदें बरसाकर उन्हें सुखी कर रहे थे । वास्तवमें बात यह है कि काम करते समय यदि भगवान्स्की स्मृति बनी रहे, उनकी समीपताका अनुभव होता रहे और आँखें उन्होंकी परम मनोहर श्यामसुन्दर छपिको देख-देखकर अपना जीवन सफल करती रहे तो अजान्ति और दुर पाल आ ही नहीं सकते । आज देवताओंके परम सौभाग्यका दिन है । न केवल देवताओंके साथ, प्रत्येक काम करने और नकरनेवालेके साथ भगवान् रहते हैं । उसके कठोरमें कष उठाते हैं और परिश्रम करते हैं । जो लोग उस समय उन्हें देखते रहते हैं, उनका जीवन धन्य है और वास्तवमें वे ही जीवनका लाभ ले रहे हैं ।

मथते-मथते बहुत देर हो गयी, परतु अमृत न निकला । अब भगवान्ने सहस्रगाढ़ होकर स्वयं ही दोनों ओरसे मथना शुरू किया । उस समय भगवान्स्की बड़ी विलक्षण शोभा थी । वर्णकालीन मेघके समान साँवल रग, मुख-मण्डलसे सहस्रों सूखोंके समान किंतु सहस्रों चन्द्रमाके समान शीतल प्रकाश-की धारा, कानोंमें विजलीके समान चमकते हुए शरीर हिलनेके झारण चक्षु झुण्डल, सिरपर विश्वरे वाल, गलेकी बनमाल अस्त-व्यस्त, आँखें लाल-लाल और अपने विजयी हाथोंसे वासुकि नागको पकड़कर समुद्र मथ रहे हैं । कैसी अपूर्व शोभा है ! कितना अद्भुत रूप है ! भक्तोंके लिये भगवान्स्की दयालुताका कितना सुन्दर निर्दर्शन है । ब्रह्मा, शिव, सनकादि आकाश-मण्डलसे पुर्णोंकी वर्षा कर रहे हैं ।

उन लोगोंकी ध्वनिमें ध्वनि मिलाकर समुद्र भी भगवान्‌का जय-जयकार कर रहा है।

इसी ममय हालाहल विष प्रकट हुआ। जबतक समुद्रमें विष भग हुआ या, तबतक अमृत कहाँसे निकलता? आखिर भगवान्‌ने अपने हाथों विष निकाल ही दिया। अब यह विष कहाँ जाय। सारे संसारमें कोलाहल मच गया। पशु, पक्षी, मनुष्य व्याकुल हो गये। समुद्रके जीव-जन्तु मछली, मगर आदि वैहोश होने लगे। प्रजापतियोंने अपनी प्रजापर आपत्ति देखकर सदागिव भगवान्‌की शरण ली।

इधर देवता और दानवोंकी व्याकुलताका ठिकाना नहीं था। चले थे अमृतके लिये और मिला विष! भगवान्‌पर विश्वास न रखनेवाले दानवोंके मनमें वड़ी निराशा हुई। वे विषादग्रस्त होकर गिर पड़े। उन्हें तो पहले अच्छी लगनेवाली वस्तु चाहिये। पीछेसे चाहे वह जितनी बुरी हो जाय। पहलेके दुःखसे पीछे होनेवाले सुखका उन्हें पता नहीं था। वे घबरा गये। देवतालोगोंको यह विश्वास तो था कि 'भगवान्‌की आजासे ही हम यह काम कर रहे हैं और वे साथ ही रहकर हमारी सहायता भी कर रहे हैं, अन्तमें हमारा भला ही होगा।' परंतु विषकी गरमीसे वे भी व्याकुल हो गये। जब उनकी बुद्धिने जवाब दे दिया, तब उन्होंने भगवान्‌की शरण ली।

भगवान्‌ने कहा—'भाई! यह विषका मामला तो बड़ा देढ़ा है। पहले इससे बचनेका उपाय अवश्य होना चाहिये। यहाँ तो कोई दूसरा उपाय दीखता नहीं। सब लोग मिलकर देवाधिदेव महादेवकी प्रार्थना करें तो वे अवश्य इसका निवारण कर सकते हैं। वे औढ़रदानी हैं, आशुलोप हैं। उनके सामने दीन होकर प्रार्थना की जाय तो चाहे जितना कठिन काम हो, वे उसे कर ही डालते हैं। अतः सब लोग मिलकर उन्होंकी प्रार्थना करें, उन्होंकी शरणमें जायें तो काम बन सकता है।'

प्रजापति, देवता आदि सब मिलकर भगवान्‌ शकरकी प्रार्थना करने लगे। उन्होंने कहा—'देवाधिदेव महादेव! हम सब आपको नमस्कार करते हैं, आपकी शरण हैं। भगवन्। आपकी महिमा अनन्त है। आपकी दयालुता प्रसिद्ध है। सारे जगत्‌के आप ही स्वामी हैं। सारे सासारको मोक्ष देनेवाले जानका उपदेश करनेवाले आप ही जगदुरु हैं। आपके दरवारसे कोई निराग नहीं लौटा। अबतकके समस्त ज्ञानियोंने आपकी पूजा-अर्चा की है और आगे भी करते

रहेंगे। भगवन्। आप ब्रह्म हैं, निर्युण हैं, निराकार हैं। अपनी त्रिगुणमयी शक्तिसे जगत्‌की उत्तरति, स्थिति और लयके लिये आप ही ब्रह्म, विष्णु और रुद्रका रूप धारण करते हैं। इन रूपोंमें होनेपर भी आप आत्मामें स्थित रहते हैं। आपमें कोई विकार नहीं होता। आप स्वयं आत्मा हैं। स्वय-प्रकाश हैं। ससारमें जो कुछ दीख रहा है या ससारका जो कुछ स्वरूप है, वह आपकी मायाका परिणाम है। आपका खिलबाड़ है। वह माया भी आपसे भिन्न नहीं, आपका ही स्वरूप है। आप माया से परे हैं। परतु माया आपके अंदर है। मायाकी दृष्टिसे आप भिन्न हैं और आपकी दृष्टिसे माया अभिन्न है। प्रभो! ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो आपसे अल्ला हो। सुख-दुःख, पाप-पुण्य, भला-बुरा, महात्मा-दुरात्मा और आत्मा-अनात्मा सब कुछ आप ही हैं। आपके लिये अपना-पराया कुछ नहीं है।

'सर्वज्ञ! क्या आपसे यह बात छिपी है कि आज हालाहल विषके कारण सारे संसारमें त्राहि-त्राहि मची हुई है। पशु-पक्षी, मनुष्य-देवता सभी महान्‌ सकटमें पड़े हुए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि उस भयकर विषकी आगसे अकालमें ही त्रिलोकीका प्रलय होनेवाला है। आपके सिवा ऐसा और कोई नहीं दीखता, जो इससे जगत्‌की रक्षा करे। हम आपके चरणोंमें बार-बार नमस्कार करते हैं।' इतना कहकर प्रजापति और देवता भगवान्‌ शंकरके चरणोंमें साधारण लोट गये।

भगवान्‌ शंकर अबतक भगवान्‌के चिन्तनमें अवश्य स्वरूप-समाधिमें लीन थे। जब उन्होंने सुना कि जगत्‌पर महान्‌ सकट आया हुआ है, तब अपनी समाधि तोड़ दी। विश्वके हितके लिये समाधितक छोड़कर लग जाना उनकी दयालुताके अनुरूप ही है। वे विष पीने जा ही रहे थे कि सामने जगदम्भा भगवती पार्वतीके दर्गन हुए। उन्हें देखकर भगवान्‌ शकरने उनसे सलाह ले लेना उचित समझा। वे तो भगवान्‌की अर्द्धाङ्गिनी ही हैं। भगवान्‌ शकरकी इच्छा ही उनकी इच्छा है। अवश्य यों कहें कि शकरकी इच्छा ही भगवती पार्वतीका स्वरूप है। वे कव अस्तीकर कर सकती थी! जगत्‌पर सकट हो, अपने वर्चोंपर आपत्ति आयी हो, पिता उसे नष्ट करनेके लिये उघ्रत हो और मॉ—दयामयी मॉ सम्मति न दे, यह असम्भव है। परतु कौटुम्बिक दृष्टिसे सम्मति लेना उचित है, यह बात शंकरने स्पष्ट कर दी। वे पार्वतीसे कहने लगे।

(४)

अनन्त ज्ञान हो, भगवान् शक्ति हो परतु दया न हो तो हमलोगोंके लिये उससे क्या उपयोग है ! हम दराहिन इंश्वरनी यज्ञना भी नहीं न हो सकते । हम नसारके पास-ताम-ग्रन्थ नीचे गए तो उभी मोच ही नहीं सकते कि हम अग्रेने वल्लर दु चौंसे दुष्टकाग और चुप्पसी प्राप्ति कर सकेंगे । हमारी मनोवृत्ति न जाने वाले दूसरोंसा आश्रय ढूँढ़ रही है, ढूँढ़ती ही रहती है । रुपयेता आश्रय, मनुष्यना आश्रय, पशु-पारियोंका आश्रय जर्हों देखें, वहाँ आश्रय ही आश्रय दीनकरता है । पिना आश्रयके द्वायाएँ एक अण भी नहीं गीतता और न तो गीत ही सकता है । निगश्रय नों नेवल भगवान् हैं । परन्तु इन आश्रयोंको नुननेमें इसमें वहाँ गलती होती है । ये सासारके पदार्थ, सासारके जीव व्यय दूसरोंके आधिन हैं, हमें आश्रय क्या दे सकते ? इन्होंने जब हम चुदिपूर्वक नौचिपिचारार सत्ताकी यज्ञातिष्ठे अपना आश्रय नुनते हैं, तब भगवान्-हो ही नुनते हैं कि वे परम दयाल हैं । हमें दु वर्षों उत्तराते देवकर वे द्रवित हो जायेंगे । अपिकारी न होनेपर भी वे हमें परम चुख देंगे । वालतर्में हमारी इंश्वर-भापना अनन्त ज्ञान और अनन्त शक्तिपर नहीं, बहुत कुछ दयालुनापर ही अवलम्बित है ।

भगवान् शक्तर परम दयाल है । वे दयाकी साकात् मूर्ति है । वे हमें कष्टमें नहीं देने सकते । जब विलोसीको सुरुठमें देना तर उनमें न रहा गया । उन्होंने भगवतोंसे कहा—
‘देवि ! देवो, आज हमारी प्रजापर, हमारे नन्हे नन्हे शिशुओंपर कितना सन्दर्भ है । धीरगमागरके मन्यनसे निफले हुए काल्यवृक्षी ज्वालामे दिग्गजाओंमें प्रचण्ड आगेन धघक नहीं है । आज वानुसी प्राणविक्षिप्ति नाटनी हो गयी है, जल्दी जीवनी शक्ति लागता हो गयी है, औपरिन्ननस्तियाँ छूल्न गयी हैं और जीवाने प्राण-पर्येन निफलना ही चाहते हैं । ऐसी अगस्यामें यदि मैं इनसी रक्षा न करूँ, इन्हें हम आगतिसे न बचाऊँ तो मेरी शक्तिका, मेरे ऐश्वर्यका और मेरे महादेव होनेका और क्या उपयोग हो सकता है ? उसी शक्तिमानसी शक्ति, शक्ति है जिसकी शक्ति दीनोंकी, दुखियोंकी रक्षामें, पालन-योगामें लगती है । अगतके महात्माओंने, नाधु-पुरुषोंने अग्रेने इन धण्डमण्डुर प्राणों और जीवनका यही सद्गुण्योग किया है । इसीमें जीवनकी सफलता बतलायी है कि विश्व भगवान्की सेवामें इसे नमर्तित कर दिया जाय । वहाँ भारी ब्रह्मज्ञानी हो, वहाँ भारी भक्त हो और वहाँ भारी कर्मयोगी हो परतु यदि वह दीनोंकी

उपेक्षा करता है, उनकी रक्षा नहीं करता तो उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है, उसकी भक्ति विफल हो जाती है और कर्मयोग अप्रण रह जाता है ।

भगवान् सर्वात्मा हैं । इस जगत्के एक-एक अण, एक एक जीव उनके ही स्वन्प हैं, उनके ही अण हैं । इनकी सेवा भगवान्की सेवा है और ऐसा करनेसे वे बहुत प्रसन्न होते हैं । उनकी प्रसन्नता और मेरी प्रसन्नता दो वस्तु नहीं हैं, क्योंकि हम दोनों दो नहीं, एक ही हैं । उनकी प्रसन्नतामें मेरी प्रसन्नता है और मेरी प्रसन्नतामें उनकी प्रसन्नता है । देवि ! तुम मेरा अनुमोदन करो । तुम रहस्यामीनी हो । मुझे आजा दो । मैं इस विष्णुको पीकर सारी प्रजाका कल्याण करूँ ।

देवीने कहा—‘स्वामिन् । आपकी इच्छा ही मेरी इच्छा है । जब अग्रनी ही सतान इतने सकटमें है, तब विलम्ब करनेकी आवश्यकता नहीं है । विष्य आपसे पृथक् थोड़े ही है । स्वयं विष्य भी आपका ही एक स्वरूप है । आप ही उसे पन्ना सकते हैं । विलम्ब मत कीजिये । अग्रेने वचोंका दुख छुआइये ।’

भगवान् शक्तर अग्रेने हाथ फैलाकर सकल्यमात्रसे उस व्यापक विष्णुको एकत्रित कर लिया और पी गये । भगवान् शक्तरके लिये, जो कि प्रलयके समय अग्रेने तीसरे नेत्रकी अग्निसे सारे सासारको जला डालते हैं, सासारके एक तुच्छ अण उस विष्णुको समेट लेना क्या बड़ी बात थी ? परतु भगवान्की ऐसी ही लीला थी । उस विष्णुके प्रभावसे शक्तरका कण्ठ नीला पड़ गया । मानो जगत्के कल्याणके लिये किये गये इस महान् कर्मकी साक्षिता देनेके लिये वह उनके गल्में बैठ गया । लोग कहते हैं कि भगवान् शक्तर परम पुरुष परमात्माका हृदयमें निरन्तर ध्यान किया करते हैं, यह भयकर कालकूट विष रही उनके सुकोमल, सुकुमार द्यामल शारीरपर न पहुँच जाय, इसलिये जान-बूझकर उन्होंने स्वयं ही उसे अग्रेने गल्में रख लिया ।

महापुरुषोंकी यही बात है, सहज स्वमाव है कि अग्रेने लिये कोई कर्तव्य शेष न रहनेपर भी, कोई कष्ट, ताप, सताप न रहनेपर भी लोगोंके लिये वे कमोंमें लगे रहते हैं और कष्ट सहन किया करते हैं, क्योंकि भगवान्की यह सबसे बड़ी आराधना है, इससे भगवान् परम प्रसन्न होते हैं, और भक्तके लिये भगवान्की प्रसन्नतासे बढ़कर और कोई बात

है ही नहीं। आज शकर अपने प्रियतम भगवान्‌को प्रसन्नताके लिये नीलकण्ठ हो गये और यह लोकोपकारके लिये स्वीकार की हुई कालिमा ही अनन्त कालतक उनकी कीर्तिका गायन करती रहेगी। पीते समय जो कुछ विषके कण छिटक गये थे, वे ही विच्छू, सौप आदिको मिले और वच्छनाग, सखिया आदिके रूपमें हुए।

विष पीलेनेके पश्चात् देवता, दानव तथा समस्त जीवोंको बड़ी प्रसन्नता मिली। देवता-दानव अधिकाधिक उत्साहसे समुद्र-मन्थन करने लगे। भगवान् उनके सहायक थे, मन्दराचलके धूमनेसे उठी हुई हर-हर ध्वनि महादेवके विषपानका महान् सदेश गा-गाकर त्रिलोकीको सुना रही थी। समुद्रकी तरर्गे उछल-उछलकर आकाशको चूम आती थी। भगवान्‌के हाथोंका सर्व प्राप्त होते रहनेसे वासुकि नागको और सुख ही प्राप्त हो रहा था। मन्थन जारी रहा।

थोड़ी ही देरमें कामधेनु प्रकट हुई। समुद्रके हम महान् रक्षको देखकर सभीको बड़ा आनन्द हुआ। कामधेनुका अर्थ है उनसे जो कामना की जाय, उसे वे तुरत पूरी कर दें। उनसे जो चाहें, दुह लें। समुद्रका प्रथम रत्न विष तो जगहुर भगवान् शकरके हिस्से पड़ा। दूसरा रत्न जगलमें रहकर नित्य यज-यागादि करनेवाले ब्राह्मणोंको मिलना चाहिये, यह वात सर्वसम्मतिसे निश्चित हुई। ऋषियोंने उसे स्वीकार किया। उन्हे अग्निहोत्रके लिये पवित्र हविष्यकी आवश्यकता थी और आज कामधेनुके द्वारा वह पूरी हो गयी।

इसके बाद पुनः मन्थन प्रारम्भ हुआ। भगवान् कच्छप शान्तिसे वैठे हुए अपने पीठपर मन्दराचलके धूमनेसे कुछ-कुछ खुजलानेका सुख अनुभव कर रहे थे। अबकी बार उच्चैःश्रवा नामका अत्यन्त सुन्दर और बलिष्ठ धोड़ा प्रकट हुआ। दैत्योंने कहा—‘अब हमारी बारी है, क्योंकि हम देवताओंसे श्रेष्ठ हैं इसलिये हमें पहले मिलना चाहिये।’ देवताओंको तो भगवान्‌ने पहले ही सिखा दिया था कि लोभ मत करना, घवराना मत, सतोप रखना, सब भला होगा। अतः वे कुछ न बोले, उन्होंने एक प्रकारसे उनकी बात मान ली। वह धोड़ा दैत्योंको मिला।

इस बार और भी उत्साहसे समुद्र मथा गया। थोड़ी ही देरमें ऐरावत नामका एक महान् हाथी निकला। उसे देखकर दैत्योंको लोभ तो हुआ पर वे बोल नहीं सकते थे। उन्हें अपनी उत्तावलीपर मन-ही-मन क्रोध भी हुआ, परतु

अब वे क्या करते। वात हाथसे निफल चुकी थी। वह ऐरावत हाथी देवताओंके राजा इन्द्रको मिला। चार दॉत और वर्षके पहाड़की भौति उसका द्वेत शरीर देखकर देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे फूले न समाते थे। उन्हें सतोपका फल प्रत्यक्ष हो गया।

समुद्र-मन्थन चलता ही रहा। इस बार पद्मरागके समान दिव्य, अत्यन्त मनोहर चिन्मय कौस्तुभमणि प्रकट हुई। उसको देखते ही किसीका मन काबूमें न रहा। अभी चाह रहे थे कि यह हमको मिले। सम्भव था कि इसके लिये युद्ध हो जाता, परतु भगवान्‌को अभी युद्धका होना अभीष्ट नहीं था। उन्होंने उसे अपने हाथों उठाकर अपने गलेमें पहन लिया। देवताओंकी प्रसन्नताका डिकाना न रहा। दैत्योंके मनमें तो कुछ-कुछ खुजलाहट हुई, परतु इस समय वे भी भगवान्‌को अप्रसन्न करना नहीं चाहते थे।

अबकी बार सौगुने उत्साहसे मन्थनका काम चलने लगा। जितना ही अधिक समुद्र-मन्थन होता, उतनी ही अधिक अमृत निफलनेकी आशा बढ़ती जाती। इस बार कल्पवृक्ष प्रकट हुआ। कल्पवृक्षमें यह विशेषता है कि उसके नीचे जाकर चाहे जो कामना की जाय, पूरी हो जाती है। वह दैत्योंके पास रह ही नहीं सकता था, विना किसीकी अपेक्षा किये स्वर्गमें चल गया और वहाँका आभूषण हुआ। उसकी स्वतन्त्रतामें वाधा डालना ठीक नहीं समझा गया। यही कल्पवृक्ष एक बार सत्यभासाके आग्रहसे भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा द्वारकामें लाया गया था। यह बड़ा ही पवित्र वृक्ष है।

कल्पवृक्षके बाद अप्सराएँ निकलीं। वे भी स्वभावतः किसीके वन्धनमें नहीं रहना चाहती थीं। वे सुन्दर बछ और नाना प्रकारके आभूषण धारण करके नाना प्रकारके हाव-भावसे स्वर्गमें रहनेवालीं और सुखियोंका मन मोहित करने लगीं, चाहे वह कोई भी हों।

तत्पश्चात् समुद्र-मन्थन करते-करते देवता और दैत्योंने देखा कि महान् प्रकाश हो गया। मानो एक सिर बिजली उनके सामने आ गयी हो और उनकी ओरें चौंधिया गयी हों।

सम्हलनेके बाद मालूम हुआ कि यह तो सक्षात् भगवती लक्ष्मी हैं।

(५)

दुर्नानं शास्त्रे सर्वे देवता-न्दानव और त्रिलोकी श्रीहीन हो गयी थी। जब इन्हीं सामना और परिश्रमने बाट श्रीदेवी प्रकट हुई, तब भला किसे प्रसन्नता न होनी? चारों ओर कोलाहल मच गया—‘श्रीदेवी प्रकट हुई! श्रीदेवी प्रकट हुई! सभीके द्वारोंमें पहचेनी सूती हुई आशा-न्ना पुन स्मृत्ता उठी। देव-न्दानव, श्रृणि-मुनि सभी सनृष्ण नेत्रोंसे उन्हें देखने लगे। इन्होंने न्यय यद्या तुन्द्र आनन्द ने आनन्द नैठनेसे दिया। नैठयों सूर्णीमान होरसर सोनेके कल्पगोंमें जड़ ले आये। पृथ्वीने अभियेकके दोष व्योगिधियाँ एकत्र कर लीं। गौरें पञ्चगव्य लाये और श्रृणियोंने विषेषवृक्ष अभियेक सिया। वरचत्तने अनन्हीं श्रृतु प्रकट कर दी। गन्धवं भगवानी लक्ष्मीके उर्गान गाने लगे। प्रथ्वाहुए नाचनेमाने उर्गा। आकाश-मण्डलमें नुरज्ज नेतु, वैगा आदि दाजे बजने लगे। दिग्जानोंने रक्षामें जन्म भा भरनर अभियेक रिये यौंग द्राघगोने देखेंने मन्न पड़े।

कुमुद सूर्णीमान् द्योकर पवित्र पीताम्बर पहननेके लिये ले आया। ब्रह्माने वैज्ञानीमाला दी। उसके चारों ओर मत्त भैरवे गुजा नहते हुए भैंडग रहे थे। विश्वरुमनि अनेकों प्रकाशने दिव्य ज्ञानूषण दिये। सर्ववतीने हार पहनाया। द्रग्राने रक्षल दिया और नागाहजीने कुण्डल उपस्थित किये। हाथमें रुक्म लेकर जब लक्ष्मीदेवीने लोगोंकी ओर देता, तब उनके मनो-रुप उदासता, शर्णी-उत्ति, गौर वर्ण और प्रतुरम भद्रियाएं सभी लोग आकर्षित हो गये। भला कौन चाहता है ये लक्ष्मी न मिलें। सभी सनृष्ण नेत्रोंसे उनकी ओर देता रहे थे।

परतु लक्ष्मी उपरने योहे ही मिलती है। अर्था होने-वाले रुक्म-मन्यनमें जिनका प्रधान हाथ है, जो उपदेश करनेवाले मदन्यचल लनेवाले, उसे धारण करनेवाले और द्वानेवाले, देवता एव दैत्योंमें शक्ति-उच्चार करनेवाले तथा स्वयं भयनेवाले हैं उन परम पुरुषार्थन्वरूप भगवान्को छोड़कर लक्ष्मी और किसीनो कब वरण करने लगी? इतना ही नहों, लक्ष्मी उनकी नित्य सगिनी हैं, उन्हें छोड़कर और कहीं वे जा ही नहों सकतीं। जब जन्म-जन्मान्तरमें या उस जन्ममें नहान् पुरुष करने भगवान्कों प्रसन्न किया जाता है, तब वे प्रसन्न होकर कुछ क्षणके लिये लक्ष्मीको हृपा कर देनेके लिये प्रेरित कर देते हैं। किना उनकी हृपाने लक्ष्मीका पाना असम्भव है और वह चाहे जैसे हो, कुछ क्षणोंके लिये ही होता है और वहुत कम होता है। यद्यपि भगवान्की कृपाका यही

न्यजग नहों है तथापि लोगोंकी बाझ्डाके अनुसार की हुई भगवान्की कृपाका नमना अवश्य है। भगवान्द्वये अतिरिक्त सम्पूर्ण लक्ष्मी न यौर निर्माने पास रहती है, न रह सकती है। परतु कामनाओंका क्या अन्त! एक बार सभीको उनके चक्रमें आना पड़ता है।

भगवती लक्ष्मीने एक लौल रखी। मानो वे न्यव किर्मीको चरण करना चाहती हों। हाथमें कमलकी दिव्य माल ली और एक-एकमे देखने लगी। वहाँ उत्त समय देव-न्दानव, श्रृणि-मुनि, शक्ति प्रक्षा उभी उपस्थित थे। वे सबको देखती हुई—रही थीं। उबको देख तुकनेपर उन्होंने कहा—मैंने सभीको देख लिया। एक-एकको अलग-अलग पहचान लिया। कोई-कोई उजन बड़े तपती हैं, मैं उनकी तपत्ताकी प्रगति करती हूँ। वे हमारे पूजनीय हैं परतु इतनेसे ही उन्हें सर्वगुणात्मक नहों कहा जा सकता। बड़े-बड़े तपत्तियोंमें क्रोधकी पर्याप्त मात्रा पायी जाती है और वे जानसे भी बचित ही हैं। किंतु किसीमें अगर जान है, वे सारे वेद-वेदाङ्गोंको कण्ठस्य लिये हुए हैं, परतु वे उज्ज्वोल अयवा आसक्तिके पड़ेरे नुक्क नहों हैं। जिन्हें ज्ञान है, सङ्घपर विजय प्राप्त है, वे भी कामसे हारे हुए हैं, और जो किसीके अधीन है, वह भी किसीका त्वारी हो सकता है? कहाँ-कहाँ धर्मकी स्थिति भी अच्छी देखी जाती है, परतु वे भी समृत प्राणियोंके प्रति दयाका भाव नहों रखते। कहाँ-कहाँ यद्या विकट त्याग है परतु बाल्पव जानसे दूर ही है।

कुछ रक्षकर लक्ष्मीने और कहा—कहाँ-कहाँ वडे दीर्घ-जीवियोंके दर्शन हुए हैं, परतु उनका शील-स्वभाव मङ्गलमय नहों है। जहाँ शील-स्वभाव अच्छा है, वहाँ आखुका कुछ ठिकाना ही नहों है। जहाँ आखु और शील-स्वभाव दोनों ही अच्छे हैं, वहाँ भी तूरम-दृष्टिसे देखनेपर कुछ-न-कुछ त्रुटि निकल ही जाती है। मैं खूब गौरसे देख चुकी, सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त कोई मिला नहों।

इतनेमें उनकी हाथि विष्णु भगवान्पर पही। वे एक ओर उदासीनकी मौति बैठे हुए थे। मानो लक्ष्मीके प्रकट होनेसे न उन्हें कोई कुत्सल हुआ है और न वे इन्हें चाहते हैं। लक्ष्मीने कुछ लजाते हुए सुह नीचे कर्के कहा—‘और जिनमें सारे गुण हैं, जिन्हें मैं चाहती हूँ, वे मुक्तसे उदासीन हैं, मुझे चाहते ही नहों। परतु इससे क्या हुआ? मैं इन्हें ही वरण करूँगा।’ उन्होंने धीरेसे अपने हाथकी वरमाला जिसके चारों ओर चुगन्यसे नस्त भौंरुकी मण्डली मङ्गड़ा रही थीं, उनके गलेमें पहना दी। भगवान्के वक्षस्थल्पर अपने

रहनेके स्थानको देखकर उनके मुँहपर मुसकराहट आ गयी । औंखे कुछ नीची हो गयी और वे सकुचा गया ।

तीनों लोकोंकी जननी माँ लक्ष्मीने जगत्पिता परमात्माको जब वरण कर लिया, तब ब्रह्म, शकर आदि बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने वेदमन्त्रोंसे भगवान्की अर्थर्थना की । देवताओंने वधाई दी और भगवती लक्ष्मीने भगवान्के वक्षः-स्थलपर निवास किया । उस समय दैत्य-दानव श्रीहीन हो रहे थे ।

कहते हैं कि उस समय नारदजी महाराज अपनी मण्डलीके साथ कच्छप भगवान्के पास जा पहुँचे । उन्होंने स्तुति, प्रशासा आदि करनेके बाद भगवान्से पूछा कि 'यह लक्ष्मी कौन है ? इनका आपसे क्या सम्बन्ध है ? ये सबको छोड़कर आपको ही क्यों चाहती हैं ?' भगवान्ने कहा—'नारद ! तुम जान-बूझकर पूछते हो । लक्ष्मी मेरी अपनी ही शक्ति है । वे मेरी अद्वाज्ञिनी हैं, सर्वदा मेरे साथ ही रहती हैं । यह स्वयंवरकी लीला तो इसलिये की है कि लोग यह समझ जायें कि आश्रय लेनेयोग्य और भजन करनेयोग्य एकमात्र भगवान् ही हैं । वे मन्दिमाकी अधिष्ठात्री देवी हैं । अर्थात् सनारमें जितनी कोमलता, सुकुमारता, मधुरता, सुन्दरता आदि सदृगुण हैं, वे उन्होंके झरेन्परे अश है । वे सबकी केन्द्र हैं और मेरी सेवा किया करती हैं । जो मोक्ष चाहते हैं, भगवत्प्रेम चाहते हैं अथवा मेरा दर्शन चाहते हैं, उन्हें तो मेरा भजन करना ही चाहिये । परतु जो सासारिक धन, मान, कीर्ति, ऐश्वर्य, सौन्दर्य आदि चाहते हैं, उन्हें भी मेरी ही आराधना करनी चाहिये । मैं ही सबका आधार हूँ । मैं ही सबका भजनीय हूँ ।' अन्तमें भगवान् कच्छपने नारदादिको यह कहकर विदा किया कि 'समुद्रमन्थन समाप्त होनेपर जब मैं रसातलमें चलेंगा और सबकी आधार-शक्ति होकर पृथ्वी तथा शेषनागादिका धारण करूँगा, तब तुमलोग आना । मैं इन बातोंका रहस्य समझाऊँगा ।' नारदादि विदा हो गये ।

इधर अमृतमन्थन पुनः प्रारम्भ हुआ । इस बार वार्णी-देवी प्रकट हुईं । यह पातालमें रहनेवाले जलधिपतिकी पुत्री हैं । इनमें लोगोंको मत्त कर देनेकी शक्ति है । इनके सेवनसे जीव कर्तव्य-अकर्तव्यका ज्ञान भूल जाता है । इसीसे देवी-नम्भित्के प्रेमी अथवा देवतालोग इनकी अभिलापा नहीं करते । दैत्य इधर कई बारसे कुछ नहीं पा रहे थे । उन्होंने बड़े चावसे वार्णीदेवीको अपनाया । वे वास्तवमें उन्होंके योग्य थीं । वार्णीको पाकर लक्ष्मी न पानेकी चिन्ता मिट्टी

हुई-सी मानूस पड़ी । दैत्य प्रसव हो गये और फिर समुद्रम मथना चालू हुआ ।

इस बार एक बड़ा ही विशाल धनुष प्रकट हुआ । उस धनुषकी उत्तमताकी सराहना तो सभीने की, परतु उसे उठानेकी शक्ति किमीमें नहीं थी । बहुतोंने साहम करके अपनी शक्तिकी परीक्षा करनी चाही पर स्वर्ण करते ही उन्हें ऐसा झटका लगा कि वे दूर हट गये । दैत्य तो उस धनुषके पास तक भी नहीं जा सकते थे । भगवान् विष्णुने जाफ़र स्वयं उस धनुषको उठा लिया । इस धनुषके टकारमें इतनी शक्ति है कि पापी, दुराचारी उसे सुनते ही घवरा जाते हैं और भक्त तथा पुण्यात्मा जीव उसे सुनकर आनन्द और प्रसन्नतासे भर जाते हैं ।

जैसे-जैसे वस्तुएँ निकलती जाती थीं, वैसे-ही-वैसे लोगोंकी आगा बढ़ती जाती थी । उनका अनुग्राम था कि अब शीघ्र ही अमृत प्रकट होनेवाल है । इतनेमें परिपूर्ण चन्द्रमा प्रकट हुए । इन सागरके पुत्र चन्द्रमाको देखकर सबकी औंखें शीतल हो गयीं । सबका मन आहादित हो गया । चन्द्रमा किसी एककी वस्तु होकर तो रह नहीं सकते थे । अतः उन्हें आकाशका बड़ा विस्तृत मैदान दिया गया कि वे वहाँ टहलते हुए देवता-दानव दोनोंको समानरूपसे सुखी करें । पीछे ताराओंसे उनका विवाह हुआ और दक्षके गापसे वे घटने-बढ़नेवाले हो गये । ओषधि, वनस्पति एवं ब्राह्मणोंके राजा बनाये गये और ग्रहोंमें इन्हे स्थान मिला । ये अमृत-वर्षा करके जीवोंमें तथा ओषधि-वनस्पतियोंमें जीवन-शक्ति और आहादका सचार किया करते तथा इनकी अमृत-शक्तिके विना मनमें विचार करनेकी शक्ति रह ही नहीं सकती । ये मनके उसी प्रकार अधिष्ठातृ देवता हैं, जैसे औंखोंके सूर्य ।

उधर देवता और दैत्य पूरी शक्ति लगाकर समुद्र-मन्थन कर रहे थे । एक दिव्य शङ्ख प्रकट हुआ । उसे भगवान्ने स्वीकार किया और वे स्वयं भी इस बार बड़े मनोयोगसे समुद्र मथने लगे । भगवान्के लिये मनोयोग तो क्या कहा जाय, उनके सफलमात्रसे ही अमृत पैदा हो सकता था; परतु वे बड़े कौतुकी हैं, कुछ न-कुछ खेल खेलते ही रहते हैं ।

इतने वेगसे समुद्र-मन्थन हुआ कि उसका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता । जहों मथनेका वर्तन विशाल समुद्र, मथानी मन्दराच्चल, रससी वासुकि नाग और दूधके स्थानपर सम्पूर्ण क्षीर-सागर हो और मथनेवाले हों समस्त देव दानव तथा स्वयं भगवान्, ऐसी स्थितिमें कैसा मक्खन निकलेगा,

इसकी क्षमा कल्पना की जा सकती है। इस प्रकार दैनी शाकिं और आसुगी शक्ति दोनोंसे भगवान्‌के आश्रित रूपके सत्त्वना समुद्र मध्ये तो बान्धनमें अमृतलवर्षी प्राप्ति होगी।

इस बार एह गिर्भग्रु पुरुष प्रकट हुए। उनका शरीर बड़ा ही मुन्द्र था। पीताम्बर पहने हुए थे। व्यामरण, युवावस्था, बनमाला पहने हुए, दिव्य आनूपणानो धारण किए हुए धन्वन्तरि भगवान्‌से देखकर मध्य-सभ चारित हो गये। उनके शान्तिकाले लघ्ये और तुङ्गशराले चिरने केदा की त्रिंशु अनोन्ही ही थी। चौदों छानी और हाथोंका अमृत-कलश वरप्रस लोगोंने अपनी ओर गांच रखा था। मध्य-सुर अमृत-कलश देखकर आनन्दनिमग्न हो गये।

(६)

भगवान्‌की कृपासे हर्षे जर श्रोद अभिलाप्ति पदार्थ प्राप्त होता है, तर हर वहुपा प्रसन्नतासे पृन उठते हैं और कहं बार तो उत्तापनी भी कर रेटते हैं। ऐसे अपनरोपर जो अपनेसे कावृमें राज लेना है, अपनेसे सम्भाल मरना है, अपने वल-पौद्धकी दींग नहीं होन्ता, दान्तमें वह महापुरुष है।

परंतु देखोनी तो बात ही दूरी है। उन्ह अपने मरनेका अभिमान रहता, ते अपने वल-पौद्धकी दींग होन्ते अथवा अमृत पानेकी उत्तापनी रहते तो हम उन्ह उतना दोषी नहीं कहते। उनके मनमें वेद्हमानी आ गयी, उनकी नीयत रिगड़ गयी। उन्होंने शुद्धिपूर्वक सोचा कि अप तो अमृत निरुप्त ही गया। भगवान्से अपना कोई मतलब नहीं। देवताओंमें इतनी शक्ति है नहीं कि हमसे लड़कर वे जीत सकें। इनलिये अमृत छीन लिया। हुआ भी ऐसा ही। देखोने धन्वन्तरिके एथोंसे अमृतका घड़ा छीन लिया। देवताओंसा चैहण कुछ फीका पढ़ गया। उन्हे भगवान्‌सा विश्वास था, इसीसे विचलित नहीं हुए।

प्राय देखा गया है कि वेद्हमानोंकी गुटवटी बहुत समय-तक नहीं चलती। देखोंमें जो बली थे, उन्होंने निर्पलोंसे छीन लिया और फिर जो उनसे गली थे, उन्होंने उनपर दो धास जमायी और अमृतका घड़ा ले लिया। जर अपने काम न आते देता, समझ लिया कि अप तो हमसे अमृतका घड़ा छीन गया, तब निर्वलने यह आवाज उठायी कि 'भाई! ऐसा अन्याय नहीं होना चाहिये। देवताओंने भी हमसे साथ ही वरापर परिश्रम किया है। उन्ह भी अमृतका हिस्सा मिलना चाहिये। कहं बार विविगताके कारण भी लोग न्यायका आश्रय लेते ह। जबतक अपनी चलती है, तबतक तो अन्याय करनेमें कोर-क्सर नहीं करते। जर हार जाते हैं तब न्यायकी दुहाई देने लगते हैं।

सर्वदासे स्वार्थीयोंसी यही गति होती आयी है। जो लोग अन्याय-अत्याचारके बलपर दूसरोंके न्यायोचित स्वार्थमें वादा ढालते हैं, उनका अपना स्वार्थ भी नहीं सधता। भगवान्‌की ऐसी ही कुछ लीला थी। दैत्योंमें छीना-ज्ञपटी होने लगी। वैर-विरोध बढ़ गया और अमृत पीनेमें वादा पड़ गयी। वे आपमें झगड़ने लगे। इसी समय भगवान्‌ने एक दूसरी लीला रची।

दैत्योंने देसा, एक पग्ग सुन्दरी त्रिभुवन-मनोमोहिनी सी सामनेसे आ रही है। उसके सौन्दर्य, हाव-भाव और मस्तीको देखकर सम-के-सब दैत्य मोहित हो गये। सबकी ओरें उस मोहिनीको एकटक देसा लगा। उनका ज्ञगड़ा शान्त हो गया। मध्य-के-सब अमृतको गौण समझने लगे। उनका मुख्य विषय हो गया मोहिनीकी प्रसन्न रूपके अपने अनुकूल रूपना। कभी-कभी वही वस्तुकी लालचसे लोग सामान्य वस्तुकी उपेक्षा कर देते ह और उसके लिये आपसके राहें-झगड़े भूल-कर उसीकी प्राप्तिकी चेदा करने लगते हैं।

उस लीके रूपमें कोई दूसरा नहीं, स्वयं भगवान् थे। उनकी छविमें ऐसा आकर्षण ही है कि अमृत उसके सामने पीका पढ़ जाता है। दैत्योंने कहा—'सुन्दरि। हम हृदयसे तुम्हारा स्वागत करते हैं। वहे शुभ अवसरपर तुम्हारा आशमन हुआ है। इस समय हमलोग आपसमें लड़-झगड़कर कट मरते। अप तुम्हीं यह ज्ञगड़ा निपटा दो। यह अमृतका कलश है, इसे तुम चाहे जिसे पिलाओ, मत पिलाओ, हम तुम्हारी प्रसन्नतामें ही प्रसन्न हैं।'

वहुत-से लोग लोभके कारण अपनी आत्मातक बेच ढालते हैं। इस अनजान लीके हाथों अमृत समर्पण करनेका यह अर्थ नहीं है कि वे न्याय चाहते हैं या इस लीकी न्याय-शीलतापर विधास करते हैं। विलिक हसका यह कारण है कि वे मोहिनीका सौन्दर्य देखकर मोहित हो गये हैं और कामवश होनेके कारण इतने परिश्रमसे प्राप्त किये हुए अमृतका निर्णायक चुनकर अपनेको उसकी प्रसन्नताका पात्र बनाना चाहते हैं।

मोहिनीने अपनी भोहें कुछ टेढ़ी करके उनकी ओर देखते-देखते एव मन्द-मन्द मुसकराते-मुसकराते कहा—'आप लोग तो महर्षि कन्यपकी पवित्र मंत्रान हैं। इतना परिश्रम करके यह अमूल्य अमृत प्राप्त किया है। आपके वल-पौद्धकी कीर्ति सारे सासारमें फैली हुई है। आपलोग मेरे-जैसी अनजान लीपर इतना विधास कैसे कर रहे हैं? बीरो! पण्डितलोग

क्षियोंका विश्वास नहीं करते। क्या पता, वे क्या कर डाले !

दैत्योंने मोहिनीकी इस ब्रातको विनोद समझा और आग्रह करके उसके हाथमे अमृतका कलज ढे दिया। अमृतका घडा अपने हाथमें आ जानेपर मोहिनीने अपनी मधुर चितवनसे उनका मन हरण करते हुए कहा—‘जब आपलोग मुझपर विश्वास ही करते हैं, तब मैं चाहे टीक करूँ या वेठीक; आपको मानना ही पड़ेगा। देव दानव मन्त्रके-स्वर एक पक्षिमें बैठ जायें, मेरे क्रमः अमृत पिला दूँगी ।’

आजाकी ही देर थी। सब स्नानादि करके पवित्रतामें बैठ गये। मोहिनी दैत्योंकी ओर तो तिगछी औंखोंसे देखने लगी और देवताओंको अमृत पिलाने लगी। कई दैत्योंके मनमें शङ्का हुई, उन्होंने आपत्ति भी करनी चाही; परतु मोहिनी-के सौन्दर्यने उनकी जीभपर ताला लगा दिया। वे कुछ न बोल सके। देवताओंकी पक्षि समाप्त होते-होते सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें एक राहु नामका दैत्य वेग वदलकर आ बैठा था। उसे अमृत पिलाया ही जा रहा था कि चन्द्रमा और सूर्यने बतला दिया और तुरत भगवान्के चक्रने उसका सिर धड़से अलग कर दिया। परतु कुछ अमृत उसे मिल चुका था। अतः सिर कट जानेपर भी वह मरा नहीं। इसलिये उसे ग्रहोंमें स्थान दिया गया। उसकी धड़ आज भी पुच्छल तारा अथवा केतुके नामसे प्रसिद्ध है। राहु अब भी सूर्य-चन्द्रमासे बदला लेनेके लिये उनके पर्व अमावस्या और पूर्णिमापर आक्रमण करता है, जिसे ‘ग्रहण’ कहते हैं। इस राहुको कहाँ-कही छायापुत्र भी कहा गया है।

इस प्रकार देवताओंका अमृतपान समाप्त होते ही मोहिनीने अपना वास्तविक रूप धारण किया। यह तो भगवान्की ही एक लीला थी। उन्होंने ही मोहिनीरूप धारण किया था। सबके देखते-देखते अब वे अन्तर्धान हो गये।

एक ही उद्देश्यसे एक ही साथ और एक ही प्रकारसे देवता और दानवोंने प्रयत्न किया था। किसीने भी अपनी ओरसे काम करनेमें कुछ कोर-कसर नहीं रखती थी। परतु फलमें महान् अन्तर पड़ गया! इसका कारण क्या है? अवश्य कुछ कारण है और वह इतना स्पष्ट है कि विचार करनेवालेसे छिपा नहीं रह सकता। देवता और दानवोंमें इतना ही अन्तर है कि देवता तो भगवान्के आश्रित हैं और दानव अभिमानके आश्रित हैं। अभिमानका आश्रय लेकर, सम्भव है, हम बहुत बड़ा काम कर डालें, परतु सच्चे सुख,

सच्ची शान्ति और अमृत या अमृतत्वकी प्राप्ति नहीं कर सकते। परतु वही काम यदि भगवान्का आश्रय लेकर किया जाय तो काम तो हो ही जाता है और फल मिलनेमें कोई शङ्का रहती ही नहीं, बल्कि काम करनेके समय ही भगवान्के सानिध्यका अनुभव अथवा पवित्र स्मरण होते रहनेके कारण महान् आनन्दकी प्राप्ति होती है। यही कारण है कि देवता आरम्भसे अन्ततक सुखी रहे, जान्त रहे और अमृतके भागी बने तथा दैत्योंको केवल कष्ट ही हाथ लगा।

भगवान्के अन्तर्धान होते ही दैत्योंके अङ्ग अङ्गसे आगकी चिनगारियाँ छिटकने लगी। इतना परिश्रम करनेपर भी फलके समय इस प्रकार वश्चित रह जानेसे उनके क्रोधकी सीमा न रही। उन्हें अपनी मूर्दतापर बड़ी झुक्काहट हुई और एकमत होकर सबने शश उठा लिये। उनके मनमें यह बात बैठ गयी कि देवताओंने अमृत पी लिया तो क्या हुआ, उनके शरीरमें बल तो उतना ही है न! स्वर्गसे मारकर लदेड़ देंगे। ये अपने अमर होनेकी दुर्दशा भोगते रहेंगे। आत्महत्या भी नहीं कर सकेंगे। हम इन्हें चिढ़ा-चिढ़ाकर स्वर्ग भोगेंगे! मनुष्य घोर विफलताकी अवस्थामें भी कल्पित आशा वॉधकर पहलेसी अपेक्षा भी अधिक उत्साहसे पुनः प्रयत्न करने लगता है, यह तो हम ससारमें प्रतिदिन ही देखते हैं। एक आशा टूटती है और दूसरी वॉधकर हम जीवन-सग्राममें पुनः अग्रसर होते हैं। हमारा यह प्रवृत्तिमय जीवन आगाओंका ही धनीभाव है और ससारसे निराश होते ही निवृत्तिमय जीवनका प्रारम्भ होता है। उसमें भी पारमार्थिक आगा है, परतु वह आगा-निराशा दोनोंसे ही ऊपर उठानेवाली है।

देवताओंने तो अमृत पी ही लिया था, भगवान्का आश्रय या ही, दैत्योंकी तैयारी देखकर उन्होंने भी शङ्का उठाये। बड़ा धमासान युद्ध हुआ। अपने-अपने वाहनोंपर सबार होकर नमुचि, शम्वर, व्राण आदिने देवताओंपर अनेकों प्रकारके शस्त्रोंका प्रहार करना प्रारम्भ किया और बलिने भी मय दानवके बनाये हुए युद्ध-सामग्रीसे सुसज्जित विमानपर सबार होकर युद्ध-भूमिके लिये प्रस्थान किया। बलिने प्रहारोंसे जब इन्द्र जर्जरित हो गये, तब उन्होंने भगवान्का स्मरण किया और स्मरण करते ही वे प्रकट हो गये। उनके आते ही देवताओंका बल बढ़ गया। बलिसे इन्द्र, तारकासुरसे स्वामिकार्तिक, हेतिसे, वरुण, कालनाभसे यमराज, मयसे विश्वकर्मा आदि लड़ने लगे।

और परम शान्तिके साथ मेरे समरणमें लगे रहें, यही इनका कर्तव्य है। यदि जीविकाकी आवश्यकता जान पड़े तो अध्यापन करना, यज्ञ करना और दान लेना—इनके लिये उत्तम है। परंतु अध्यापनकी अपेक्षा याजन कनिष्ठ है और याजनकी अपेक्षा दान लेना कनिष्ठ है। यद्यपि औरेंका कल्याण तो इसीमें है कि वे ब्राह्मणोंको दान दें, परंतु ब्राह्मणोंके लिये यह वृत्ति अत्यन्त निन्दित है।

‘मेरी बाहुओंसे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई है। उनका मुख्य कार्य भी बाहुस्थानीय है। वे सबकी रक्षा-दीक्षामें तत्पर रहें, यही उनका मुख्य कर्तव्य है। वेदोंका अध्ययन, यज्ञ, दान, आदित्कता, वीरता—ये सब उनके लिये उपादेय हैं। एक वीर क्षत्रियमें इन वातोंका रहना अनिवार्य है। वह सब कुछ करता हुआ भी मेरा समरण रखता है और किसीके कष्टकी वात सुनकर अपने कष्ट-जैसा ही उसका अनुभव करता है। इसकी वृत्तिके लिये प्रजा-पालन आदि हैं। इसे दान लेने आदिका अधिकार नहीं है।

‘वैश्य मेरी जाँधोंसे पैदा हुए हैं। इनका काम सारे शरीरका बहन करना है। सबको समयपर भोजन मिल जाय, इसकी जिम्मेवारी वैश्योंपर ही है। कोई आपत्ति आनेपर क्षत्रिय उसे दूर करते हैं। इन्हें अध्ययन, यज्ञ और दान अवश्य करने चाहिये। जीविकाके लिये कृपि, गोरक्षा और वाणिज्य इन्हें करने चाहिये। ये यदि न्याय, सत्य और भगवदर्पण-बुद्धिके साथ अपने कर्तव्यका पालन करें तो वही ही सुगमतासे इनका उद्धार हो सकता है।

‘शूद्र मेरे चरणोंसे उत्पन्न हुए हैं। इनका कर्तव्य है, इन तीनों वर्णोंकी सेवा। इसीसे इनका पारमार्थिक कल्याण सघता है और लौकिक जीविकाके लिये भी यही है। जो गति ब्राह्मणादिकोंको बड़ी-बड़ी तपस्या, यज्ञ, अध्ययन आदिके द्वारा प्राप्त होती है, वही शूद्रोंको केवल सेवाके द्वारा प्राप्त होती है।

‘इन चारों वर्णोंमें नीच-ऊँचका भेद नहीं है। सभी मेरे अङ्ग हैं, सभी मेरे अपने हैं। ये सब अपने-अपने कामोंद्वारा मेरी ही आराधना करते हैं। समाजमें सबका ही यथोचित स्थान है। इन वर्णोंकी सुष्ठि गुण और कर्मके भेदसे स्वयं मैंने ही की है। जो मेरी आज्ञाके अनुसार अपने वर्णधर्मका पालन करता है, उसपर मैं प्रसन्न होता हूँ और उसकी अभिलापा पूर्ण करता हूँ। यदि वर्णधर्मके द्वारा चाहे तो सभी प्रकारके लौकिक तथा पारलौकिक सुख प्राप्त हो सकते हैं। यदि कुछ पाना न चाहे तो अल्पकालमें ही अन्तःकरण

शुद्ध हो जाता है और मेरे अखण्ड ज्ञान तथा अविच्छिन्न प्रेमकी प्राप्ति होती है।

‘मेरे स्वरूपका ज्ञान अथवा मेरे प्रति भक्ति इस मायके प्रपञ्चसे पार करनेवाली है। अपने-अपने वर्णोंके अनुसार आचरण किये विना इनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः कल्याणका सीधा मार्ग यह है कि अपने धर्मका आचरण करके इन्हें प्राप्त किया जाय। मैं जीवोंको अपने पास बुलानेके लिये उत्सुक रहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि वे विषयोंके चक्रमें न पड़ें, परम सुख तथा परम शान्तिका अनुभव करें। इसीलिये मैं समय-समयपर अवतार भी ग्रहण किया करता हूँ। मैं धोषणा करता हूँ कि धर्मात्मा और मेरे भक्तका कभी नाश नहीं हो सकता। आ जाओ, सब-के-सब मेरी शरणमें आ जाओ! तुम्हारी जिम्मेवारी मुश्शपर है। मैं तुम्हें सब पाप-तापोंसे मुक्त करके अपनेमें मिला लूँगा। अपने द्वदयसे लगा लूँगा।’

भगवान् कन्छप अब भी हैं और आधार-शक्तिके रूपमें हम सबको धारण किये हुए हैं। यदि उनके उपदेशके अनुसार हमारा जीवन बन जाय तो हमारा कल्याण हो जाय। अन्य अवतारोंके मन्त्रोंकी भाँति कन्छप भगवान्की उपासनाके भी बहुत-से मन्त्र हैं। उन सबकी चर्चा तो यहाँ प्रासङ्गिक नहीं होगी, केवल एक मन्त्र और उनके ध्यानका स्वरूप लिखा जाता है। भगवान् कन्छपका मन्त्र है—ॐ नमो भगवते कुं कूर्माय धराधरधुरन्धराय नमः।’ इस मन्त्रके कथ्यप्रभाव ऋषि हैं, प्रकृति छन्द है और स्वयं कन्छप भगवान् देवता हैं। ‘धराधरधुरन्धर’ शक्ति है और ‘कुं’ वीज है तथा अपने सम्पूर्ण अभीष्टोंकी सिद्धिमें इसका विनियोग होता है। इनका ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—

*****शङ्खचक्रगदाधरम् ॥

पीताम्बरं कूर्मपृष्ठं लसल्लाङ्गलशोभितम् ।
दीर्घग्रीवं महाग्राहं गिरन्तं रक्तलोचनम् ॥

(मेरस्त्वम् २६)

भगवान् कन्छप अपने चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। पीताम्बर पहने हुए हैं। पीठ कछुएकी पीठके समान है। बड़ी ही सुन्दर पृष्ठ पीछेकी ओर शोभायमान है। गला बड़ा लंबा है। संसाररूपी महाग्राहको नष्ट कर रहे हैं और उनकी आँखें लाल-लाल हैं। कन्छप भगवान्का ध्यान करता हुआ जो साधक उपर्युक्त मन्त्रका विधिपूर्वक जप करता है, उसकी अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं। उसपर भगवान्की कृपा प्रकट होती है।

बोलो भगवान् कन्छपकी जय!

कोई क्रोध करे और दूसरेपर तीमय करे तो मारा मराही क्रोधमय हो जाय। इसलिये क्रोधका वदला क्रोधसे नहीं, धर्मसे ही देना चाहिये। हिंसाका वदला हिंसासे नहीं, अहिंसासे देना चाहिये।

‘तुमलोग दैवी सम्पत्तिके प्रेमी हो। इन समय तुम विजयी हो। तुम्हारी अभिलापा पूर्ण हुई है। इन ऊंचे पठपर वैठकर यदि तुम द्वेष करनेवालोंसे प्रेम करो, घृणा करनेवालोंका सम्मान करो और मारनेवालोंकी जीवन-ऋक्षा करो तो तुम्हारी वडाई है। और वास्तवमें तभी तुम्हारा कर्तव्य पूरा होता है।’

नारदकी वात सुनकर देवताओंने मार-काट वद कर दी और वे स्वर्गमें जाकर आनन्दोपभोग करने लगे। इधर वचे-खुचे दैत्य कटे-मरे दैत्योंको उठाकर शुक्राचार्यके पास ले गये और उन्होंने अपनी मृत-मजीविनी विद्यासे उन सबको जीवित कर दिया।

अब देवर्णि नारदको कच्छप भगवान्‌की वात याद आयी। उन्होंने कहा था कि समुद्र-मन्थन समाप्त होनेपर रसातलमें फिर वाते होगी। देवर्णि नारद अपनी मण्डलीके साथ वहाँ पहुँच गये। उन्होंने देखा कि कच्छप भगवान् सबको धारण किये हुए आधारशक्तिके रूपमें बैठे हैं। इन लोगोंने जाकर श्रद्धा-भक्तिसे प्रणाम किया, उनकी स्तुति-प्रार्थना की और अनेकों प्रकारके प्रश्न पूछे तथा कच्छप भगवान्‌ने प्रत्येक प्रश्नका विस्तारपूर्वक उत्तर दिया। वे ही प्रश्नोत्तर ‘क्रूर्मपुराण’के नामसे प्रसिद्ध हैं। आध्यात्मिक जिज्ञासुओंको उनका अन्यथन करना चाहिये। उन सबकी चर्चा करना तो यहाँ सम्भव नहीं है, परतु सक्षेपसे कुछ वाते लिखी जाती हैं।

कच्छप भगवान्‌ने कहा—‘ऋषियो ! वहुत विस्तार न करके सक्षेपमें ही मैं तुम्हे सार-सार वता देता हूँ। इस सुषिर्में चौगमी लाख योनियों हैं। उनमें मनुष्य-योनि-को छोड़कर सभी भोग प्रधान हैं। मनुष्य-योनि कर्म-प्रधान है और इसमें आकर अपनी इच्छाके अनुसार चाहे जिस योनिमें जा सकते हैं वा इन योनियोंसे मुक्त हो सकते हैं। इन योनियोंके भ्रमणमें महान् कष्ट उठाना पड़ता है। जन्म, मृत्यु और जीवनकालमें इतने दुःखोंका सामना करना पड़ता है कि व्यथाका अनुभव करते-करते अनेकों वार मर्जिन होना पड़ता है। शरीरके क्लेश, मनके क्लेश और लोक-लोकान्तरोंके क्लेश भोगते-भोगते जीव धबरा जाता है। वह सुखकी खोजमें भटकता फिरता है, परतु

सुखके वदले दुःख ही अधिक पाता है। दूरसे मार्दम होगा कि ‘वहाँ जाऊँगा, वह विषय पा लैंगा और वह समय आ जायगा तो मैं सुखी हो जाऊँगा।’ परतु उनके आनेपर सुखके दर्गन नहीं होने वल्कि दुःखमें पड़ जाता है और तब फिर मार्दम होता है कि अमुक स्थान, अमुक वस्तु और अमुक विषयसे सुख प्राप्त हो सकता है, किंतु यह कोरा भ्रम है। विषयोंसे सुख मिल ही नहीं सकता; क्योंकि उनमें सुख ही नहीं।

‘मायका वन्धन वडा भयकर है। एक जगह निराशा होनेपर भी दूसरी जगह आगा हो जाती है। वहाँ दूटनेपर फिर तीसरी जगह। इसका तॉता दूटता ही नहीं। जैसे मारवाड़के बालूमें हरिन एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पानीके लिये भटकते रहते हैं और उनकी आगा वनी रहती है तथा उन्हें दीखता रहता है कि ‘यहाँ न सही, वहाँ तो मिल ही जायगा।’

‘जीवोंका यह भटकना तबतक वद नहीं हो सकता, जबतक वे मनुष्य योनिमें आकर विषेक-बुद्धिसे सोच-विचार-कर अपने धर्मकी शरण नहीं लेते। मनुष्योंमें भी अधिकाग तो भोगप्रधान ही होते हैं। वे अपने पिछले जीवनों अर्थात् पशु-पक्षियोंके समान ही आचरण करते हैं और निद्रा, भोजन, विषयभोग आदिमें ही लगे रहते हैं। उन्हें पुनः भोगयोनियोंमें ही लौट जाना पड़ता है। परतु जो लोग भारतवर्षमें पैदा हुए हैं और अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार रहकर मेरे भजनमें लगे हुए हैं, वे इस चौरासीके चक्करसे छुटकारा पा जाते हैं। वडे वडे देवतालोग भोगोंसे ऊवकर भारतवर्षमें जन्म ग्रहण करना चाहते हैं। वहाँका वायुमण्डल आध्यात्मिकता-प्रधान है। वहाँ वडे-वडे ऋषि, तपस्वी आदि वर्तमान हैं। उनके उच्चारण किये हुए मन्त्र, उपदेश आदि वहाँके कण-कणमें फैले हुए हैं। भारतवर्षमें पैदा होकर जिस मनुष्यने अपना कल्याण-साधन नहीं किया, उसने अपने हाथमें आयी हुई एक अमूल्य वस्तुको खो दिया।

‘चार वर्ण हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये वर्ण हैं। इनमें ब्राह्मण मेरे सुखसे पैदा हुए हैं। समाजके शिरो-भाग होनेके कारण इनके कार्य भी शीर्षस्थानीय ही हैं। ये अपनी बुद्धिसे दिन-रात सबका हित सोचते रहते हैं। वेदोंका स्वाध्याय, यज, दान इनके मुख्य कर्म हैं। ये जीविकाकी चिन्ता न करके निरन्तर इन्द्रियोंके निग्रह, मनकी एकाग्रता

लोग अपनी धर्मपक्षियोंके साथ दिव्य विमानोंपर विचरण करते हुए भगवान्की मधुर लीलाओंका गायन करते रहते हैं। कभी सुन्दर-सुन्दर उपवनोंमें, हरी-भरी लताओंके मण्डपोंमें और अमृतसे भरी हुई वावलियोंमें विहार करते हुए भगवान्के पवित्र स्मरणके आनन्दोल्लासमें समय व्यतीत करते हैं। परंतु वहाँ समय वीतने-न-वीतनेका प्रश्न ही नहीं होता; क्योंकि समय वीतनेकी समस्या वहाँ है, जहाँ मृत्यु है। सारस, चक्रोर, हंस, शुक, मयूर आदि सुन्दर-सुन्दर पक्षी तालाओंमें विहार करते-करते जब भौंरेको भगवान्की लीलाओं-का गायन करते देखते हैं, तब आँख बंद करके कान लगाकर बड़ी एकाग्रतासे उसे सुननेमें तड़ीन हो जाते हैं। मन्दार, कुन्द, कमल, चम्पा, नागकेसर, मौलसिरी आदि दिव्य पुष्पों-के गन्ध-सौन्दर्यसे भरे रहते हैं। वहाँकी भूमि मणिमय है, परंतु कठोर नहीं, कोमल है। वहाँकी भीतें स्फटिक मणिकी बनी हुई हैं। वहाँके लोगोंकी परछाई उनमें पड़ती है तो यह पहचानना कठिन हो जाता है कि कौन-सा पुरुष है और कौन-सी परछाई है!

भगवान्के प्रासादकी सात कक्षाएँ हैं। सभी एक-से-एक सुन्दर और सुसज्जित हैं। उनमें वे लोग नहीं जा सकते, जिन्होंने कभी भगवान्की लीला नहीं सुनी है, नहीं देखी है। जो मनुष्य-जीवनमें अपने धर्म-कर्मका पालन करते हुए विना किसी वासनाके भगवान्की प्रेमाभक्ति करते हैं, वे ही उस लोकके अधिकारी होते हैं।

हाँ, तो सनक-सनन्दनादि भगवान्के उस लोकमें पहुँच गये। छः कक्षा पार करके वे सातवीं कक्षामें पहुँचे ही थे कि सातवीं कक्षाके द्वारपालोंने उन्हें साधारण वालक समझकर रोक दिया। भगवान्के लोकमें उनके खास द्वारपाल यह अज्ञानपूर्ण व्यवहार करें, इसे भगवान्की लीलाके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। भगवान् कुछ ऐसी लीला रखनेवाले थे कि वे अपने इन भक्तोंको सम्मिलित किये विना अपनी उस लीलाको अपूर्ण समझ रहे थे। उन्हें संसारमें आना था, सबके लिये अपनेको सुलभ कर देना था तो यह काम भक्तोंको निमित्त बनाकर ही करना चाहिये। भगवान्की इच्छा भी भक्तोंकी इच्छाके अधीन है।

इधर तो जय-विजय नामक द्वारपालोंके मनमें भेद-बुद्धि हुई, विना आज्ञाके जानेकी चेष्टा करनेके कारण सनकादिकोंके द्वारा उन्हें अपने अपमानका अनुभव हुआ और उन दोनोंने ही डॉटकर कहा—‘भगवान्के धाममें ऐसी धाँधली कर रहे

हों। हमसे पूछकर जाना चाहिये था। हमारी इच्छा होती तो हम तुम्हारे-जैसे नंगे बालकोंको जानेकी आज्ञा देते या नहीं देते।’ उन्होंने उन्हें केवल डॉटा ही नहीं, बैंत लेकर रोक भी दिया।

दूसरी ओर उन परमर्थियोंके चित्तमें, जिसमें सारे संसार-का प्रलय हो जानेपर भी क्षोभ या विकार नहीं होता और न तो होनेकी सम्भावना है, द्वारपालोंके इस व्यवहारसे क्षोभ ही गया। कहा नहीं जा सकता कि यह अपने प्रकट होनेके लिये लीला-प्रिय भगवान्की ही एक लीला थी अथवा भगवान्को प्रकट करानेके उन लोकोपकारी संतोंकी लीला थी। परंतु इतनी बात निसंदेह कही जा सकती है कि यह एक लीला थी और वह चाहे जिसकी रही हो, संत और भगवन्तमें भेद न होनेके कारण एक ही बात थी।

ऋषियोंने द्वारपालोंको फटकारते हुए कहा—‘अरे, तुमलोग कौन हों ? भगवान्की आराधनासे इतने ऊँचे स्थानपर आ गये हो; फिर भी तुम्हारे स्वभावकी विषमता नहीं मिटी, तुम्हारी भेद-बुद्धि बनी हुई है। जहाँ परम शान्त, भेदरहित, सम भगवान्का निवास-स्थान है, वहाँ भी तुम्हारे मनमें कपट-बुद्धि पैदा हो गयी। जैसे आकाशके द्वारा ही आकाशमें भेद नहीं हो सकता, वैसे ही सबको अपने अंदर रखनेवाले आत्मस्वरूप भगवान्में भेद नहीं हो सकता। तुम्हारा शरीर भगवान्के शरीर-जैसा है। तुमने अपनी वेश-भूषा उनके-जैसी बना रखी है और पेटके कारण होनेवाले छल-कपटको अपने अंदर छिपा रखा है, ऐसे दम्भियोंको धिक्कार है ! तुम भगवान्के इस पवित्र धाममें रहनेयोग्य नहीं हो। जाओ, यहाँसे जाओ। तीन जन्मोंतक पाप-योनिमें रहकर इन छल-कपट, भेद, क्रोध आदिसे प्रेम करो। उनसे तुम्हारा बहुत प्रेम है न, तो उन्होंसे प्रेम करो। तुम भगवान्से प्रेम करनेके अधिकारी नहीं हो।’

ऋषियोंकी यह बात सुनते-सुनते जय-विजयकी बुद्धि ठिकाने आ गयी थी। उन्होंने समझ लिया था कि यह ब्राह्मणोंकी वाणी कभी व्यर्थ नहीं हो सकती। अब इसका फल हमें भोगना ही पड़ेगा। वे अपने अपराधपर लज्जित भी थे। उन ऋषियोंके चरणोंपर अत्यन्त कातर होकर वे गिर पड़े और कम्पित स्वरसे प्रार्थना करने लगे। उन्होंने कहा—‘भगवन् ! हमसे महान् अपराध हुआ। प्रगाढ़वज्ञ हमने महात्माओंका अपमान किया। इसका फल भी हमें मिलना ही चाहिये। आपलोगोंने हमें समुचित दण्ड दिया है।

श्रीवाराहावतार-कथा

(१)

भगवान्‌की महिमा अनन्त है, उनका स्वरूप अनिर्वचनीय है। निर्गुण-निराकार, सगुण-साकार सब उन्होंका स्वरूप है। फिर भी वे इतनेके ही अंदर वैधे नहीं हैं। बुद्धि जितना सोच सकती है, जितना आकलन कर सकती है और जितना बहङ्गा काल्पनिक मान-चित्र बना सकती है, उसके भी परे, बहुत परे भगवान् विराजमान हैं। मन वहाँ पहुँच नहीं सकता, वाणी उनका वर्णन नहीं कर सकती। साराश यह कि हमारे पास देखने और जाननेके जितने साधन हैं, केवल उनके ही बलपर हम अनन्त कालमें भी भगवान्‌को नहीं प्राप्त कर सकते। वे कृपा करके जिसपर अपनेको प्रकट कर दें, जिसे अपने दर्शन और अनुभवका अधिकारी चुन लें, वही उनके पास पहुँच सकता है। वेद-गांत्र और सतोंने ग्रायः यही कहकर भगवान्‌का वर्णन किया है।

परतु परम दयालु भगवान् और उनके भक्त सत कोई-न-कोई ऐसी लीला किया ही करते हैं, जिनके कारण अधिक-से-अधिक लोग भगवान्‌को जानें और उन्हें प्राप्त करें। इसके लिये स्वयं भगवान् भी कई बार अवतार ग्रहण करते हैं और सत तो निरन्तर इसी प्रयत्नमें रहते ही हैं। उनके लिये भगवान्‌के ज्ञान, चिन्तन, स्मरण और दर्शन आदिके अतिरिक्त और कोई काम रहता ही नहीं। वे स्वयं भगवान्‌का स्मरण करते रहते हैं और उनकी प्रत्येक चेष्टा ऐसी होती है, जिससे लोग आनन्दस्वरूप भगवान्‌के स्मरण-चिन्तन आदिमें लगाकर इस दुःखमय समारसे मुक्त हो जायें।

ब्रह्माके मानसपुत्र सनक, सनन्दन, सनत्कुमार आदि चारों भाई भी इसी श्रेणीके सत हैं। जब ब्रह्माकी मोह-महामोह आदि पौच पवोवाली अविद्या दूर हो गयी, तब उन्होंने निर्मल अन्तःकरणसे इनकी सृष्टि की थी। ये जन्मसे ही परम विरक्त, भगवान्‌के स्मरणमें मत्त और परम ज्ञाननिष्ठ हैं। इनकी अवस्था सर्वदा पौच वर्षकी ही रहती है। ब्राह्मी शक्ति अर्थात् सरस्वतीने इन्हें स्वयं सम्पूर्ण विद्या, उपासना-पद्धति एव तत्त्वज्ञानका उपदेश किया है। इन सबके अध्ययन, तपस्या, श्रीलक्ष्मभाव एकसे ही हैं। इनमें शत्रु-मित्र तथा उदासीनोंके लिये भेद-भावका स्थान नहीं। ससारके सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि इनका सर्पश्च नहीं कर पाते। इनके मुखसे निरन्तर भगवन्नामका और इनके श्वास-श्वासमें हरिः शरणम् मन्त्रका उच्चारण होता रहता है। इनके सकलसे,

इनकी सनिधिसे और इनकी उपस्थितिसे जगत्‌में सुख-आनंद एव आनन्दका संचार होता रहता है।

इन लोगोंकी लीला भी भगवान्‌की ही लीलाकी भौति जगत्‌के हितके लिये ही होती है, या यों कह सकते हैं कि भगवान्‌से अभिन्न होनेके कारण इनकी लीला भी भगवान्‌की ही लीला है। एक दिन इन्होंने सोचा कि ‘आज वैकुण्ठमें चले और वहाँ भगवान्‌का दर्शन करें। यही तो इस जीवनका फल है कि अन्तःकरणमें भगवान्‌के अनन्त स्वरूप, और अनन्त कृपाका अनुभव करके विद्वल होते रहे, वाणीसे उनके मधुरातिमधुर मङ्गलमय नामोंका गायन होता रहे और ओंखे उनकी अनूप रूप-माधुरीको पी-पीकर मदमाती रहे।’ वस, सोचने भरकी तो देर थी, सकल्य करते ही वे वैकुण्ठमें पहुँच गये। उनके शरीर साधारण मनुष्य-शरीर तो ये नहीं, दिव्य शरीर थे, सिद्ध शरीर थे; उन्हें कहीं पहुँचनेमें स्कावट नहीं थी।

भगवान्‌का लोक परम दिव्य है। भक्तोंका कहना है कि वह प्रकृतिसे परे, अप्राकृत सामग्रियोंसे बना हुआ है। त्रिगुण-मयी मायाके दोष-गुण वहाँ पहुँच नहीं सकते। वहाँके वृक्ष, लता, भवन, कुएँ आदि भी यहाँकी अपेक्षा चिन्मय हैं। वहाँ अमृतकी निर्दियों बहती हैं। प्रेमके बादल अमृतकी बूँदें बरसाते हैं। वहाँके निःश्रेयस वनमें आनन्दके ही फल-फूल लगाते हैं। सत्य, दया, क्षमा आदि मूर्तिमान् होकर वहाँके निवासियोंकी सेवा करते हैं। वहाँके सभी निवासी श्यामवर्णी, पीताम्बरधारी, चतुर्वाहु और गङ्गा, चक्र, गढा, पद्म धारण करनेवाले होते हैं। वहाँ भूख, प्यास, ईर्ष्या, द्वेष जा नहीं सकते। जन्म और मृत्युका प्रवेश नहीं। उसके कभी प्रलय, महाप्रलय होते नहीं, वह भगवान्‌का नित्य धाम है, भगवान्‌का लीलालोक है। वहाँ एक ही स्थानमें सब स्थान, एक ही कालमें सब काल और एक ही वस्तुमें सब वस्तुएँ विद्यमान रहती हैं। किसी वस्तुके लिये प्रयत्न नहीं करना पड़ता। उसे लानेके लिये कहीं जाना नहीं पड़ता। सकल्य करते ही वह उपस्थित हो जाती है। जानका लोप कभी नहीं होता। सभी वस्तुओंमें वहाँ भगवान्‌के दर्शन होते रहते हैं। वहाँ भगवान् व्यापक होनेपर भी एक स्थानमें रहते हैं और एक स्थानमें रहनेपर भी व्यापक रहते हैं।

जिन्होंने निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक भगवान्‌की आराधना की है, उन्हीं लोगोंका वहाँ प्रवेश हो सकता है। वहाँके

बुद्धिसे उसे सोच ही सकती हो । जहाँतक सोचनेका सम्बन्ध है, संसार ही है । मैं विषय नहीं हूँ कि मुझे देखा जा सके । सरे विषयोंको सोच डालो । उनका निषेध कर दो तो निषेध करनेवालेके मूलमें मेरा पता चल सकता है । यह भी एक संकेतमात्र है । वास्तवमें मेरा पता मैं ही हूँ ।

‘जगत्, स्वप्न, सुपुसि; स्थूल, सूक्ष्म, कारण; विश्व, तैजस, प्राण; विराट्, सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भ; अकार, उकार, मकार आदि-आदि जितने भी प्रकृति और प्रकृतिके कार्य हैं, उनके परे बहुत परे मैं अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्दके रूपमें स्थित हूँ । यह भी तुम्हें समझानेके लिये कह रहा हूँ, मेरा यह वास्तविक वर्णन नहीं है । इस रूपमें तुम और मैं भिन्न-भिन्न नहीं, केवल मैं ही मैं हूँ । यह जगत् भी मुझसे भिन्न नहीं और इसके संचालक भी मुझसे भिन्न नहीं ।

‘यह जो विराटरूप तुमने देखा है, मेरा स्थूल रूप है । मैं विश्वके रूपमें प्रकट हूँ । आकाश मेरे शरीरका अवकाश है । वायु मेरी प्राणवायु है, चन्द्रमा-सूर्य मेरी आँखें हैं, अग्नि मेरी जाठराग्नि है, जल मेरे शरीरके रस हैं, नदियाँ नसें हैं, वृक्ष रोम हैं, पर्वत हड्डियाँ हैं और ये प्राणी मेरे शरीरके कीटाणु हैं । स्थावर, जंगम सम्पूर्ण पदार्थ मेरे शरीरके अंदर हैं । जैसे जीवका एक छोटा-सा शरीर होता है, वैसे ही यह विश्व-ब्रह्माण्ड मेरा शरीर है । जैसे जीवके शरीरमें मन, बुद्धि आदि होते हैं, वैसे ही मेरे शरीरमें ब्रह्मा, विष्णु आदि हैं । मैं सबका संचालक हूँ । वे मेरे एकरूप हैं ।

‘मैं इस जगत्से परे हूँ, इसका यह अर्थ है कि जो लोग इस स्थूल जगत्से ही लगे हैं, जो मुझे नहीं जानते, मुझे भूले हुए हैं, उन्हें इस जगत्से परे रहनेवाले मुझतक पहुँचनेकी अभिलाषा हो । वे स्थूलमें ही न बँधे रहें । सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और उससे भी परे पहुँच सकें । मैं विषयोंसे और जगत्से परे हूँ, किंतु विषय और जगत् मुझसे परे नहीं हैं । मैं उनके भीतर ही नहीं हूँ, बाहर भी हूँ; परंतु वे मेरे बाहर नहीं हैं ।

मैं उनसे पृथक् हूँ, परंतु वे मुझसे पृथक् नहीं हैं । विषयोंकी दृष्टिसे द्वैत है, परंतु मेरी दृष्टिसे द्वैत नहीं है । वास्तवमें तो यह सब मेरा स्वरूप समझानेके लिये संकेत मात्र है । मैं अनिर्वचनीय हूँ । मैं अनिर्वचनीय हूँ ।’

भगवान् ने बहुत-से उपदेश दिये । जैसे-जैसे पृथ्वी माता प्रवन करती जाती थीं, वैसे-वैसे भगवान् उत्तर देते जाते थे । वे प्रश्नोत्तर ही वाराह-महापुराणके नामसे प्रसिद्ध हैं ।

जब बहुत दिन ब्रीत गये, तब शंकर आदिने भगवान्-से लीला-संवरणके लिये प्रार्थना की । भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके विलक्षण ढंगसे अपना शरीर परित्याग किया, जिसके अवयवोंसे सम्पूर्ण यज्ञोंकी सृष्टि हुई है । आज भी वाराह भगवान् यज्ञोंके रूपमें पृथ्वीपर ही स्थित हैं ।

विभिन्न अवतारोंकी उपासना-पद्धतिकी माँति भगवान् वाराहकी भी एक उपासना-पद्धति है । इनके मन्त्रका जप, इनकी मूर्तिका ध्यान करके साधक अपना अभीष्ट लाभ करता है । इनके बहुत-से मन्त्र हैं, जिनमें यहाँ केवल एक मन्त्रकी चर्चा की जाती है । वह है—‘ॐ भूः वराहाय नमः ।’ इस षष्ठाक्षर मन्त्रके ऋषि ब्रह्म हैं, छन्द जगती है और वराह देवता हैं । अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये इसका विनियोग किया जाता है । इनके ध्यानका वर्णन इस प्रकार आता है—

कृष्णाङ्गं नीलवस्त्रं च मलिनं पद्मासंस्थितम् ।

पृथ्वीशक्तियुतं ध्यायेच्छङ्कचक्राम्बुजं गदाम् ॥

भगवान् वाराहका शरीर श्यामवर्णका है, वे नीले रंगका वस्त्र धारण किये हुए हैं, उनके शरीरमें कीचड़ लग रहा है, पृथ्वी देवतासे युक्त हैं, चारों हाथोंमें शङ्क, चक्र, गदा, पद्म हैं और वे अपार जलराशिमें एक पद्मपर खड़े हैं । जो साधक भगवान् वाराहका इस प्रकार ध्यान करके विधिपूर्वक मन्त्रोंका जप करता है, उसकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं ।

बोलो श्रीवाराह भगवान्की जय !

श्रीनृसिंहावतार-कथा

(१)

जहाँ भगवान्की संनिधि है, सभी वस्तुएँ भगवान्की हैं और हम स्वयं भगवान्के हैं, वहाँ सुख-ही-सुख है । वहाँ दुःखकी पहुँच हो ही नहीं सकती । परंतु जहाँ अभिमान है, यह मैं हूँ, यह मेरा है—इस प्रकारकी मोह ममताका साम्राज्य है, वहाँ दुःख-ही-दुःख है । दुःखका कारण अत्यन्त स्थूल है । स्थूल जगत्से सम्बन्ध होनेके कारण ही यह सूक्ष्म

जगत्के पहुँचता है । शरीर और शरीरके सम्बन्धी व्यक्तियों अथवा पदार्थोंसे अहंता-ममताका भाव ही दुःखजनक है । यदि इनसे सम्बन्ध छोड़ दिया जाय, इनके रहते हुए तथा इनके साथ व्यवहार करते हुए भी अहंता-ममताका सम्बन्ध भगवान्-के साथ ही रक्खा जाय तो दुःख नहीं हो सकता और इनसे व्यवहार न करके भी, इनसे अलग रहकर भी तथा इनके नष्ट हो जानेपर भी यदि इनके साथ सम्बन्धका

अपमान करके हमने केवल आपका ही अपराध नहीं किया है, मग्नूर्ण देवलोक और भगवानका अपराध किया है। हम दण्ड भोगनेके लिये तैयार हैं। परंतु एक वानका प्रार्थना है। ऐसी कृपा करें कि हमें भगवान्का विस्मरण न हो। यदि हमें भगवान्की स्मृति वनी रहेगी तो नीच्चसे नीच्च वोनिमे जाकर भी हम प्रमत्न नहेंगे।

बे बोल ही रहे थे कि भगवान्के चरणोंकी ध्वनि कानोंमें पर्दी।

(२)

मजन-पृजनके समय तो भगवान्की याद आती ही है, परंतु उससे भी अधिक याद नव आती है जब अपराध करनेपर हमें पश्चात्ताप होता है। सच्चे पश्चात्तापके समय अभिमान नहीं रहता; दीनता रहती है और यह अभिमानका न रहना, दीनताका होना भगवान्के प्रकट होनेका शुभ समय है। हम खद्र पुण्य करें, ठान करें, करना अच्छा ही है, परंतु यदि उनके कर्तृत्वका भार अपने सिरपर लाद लें, अभिमानसे फूल उठें तो हम भगवान्से पृथक् हो जायेंगे। भगवान्का ही रुच रहना चाहिये, अभिमानका नहीं। अभिमान और अभिमानके अभावका अभिमान नष्ट होते ही भगवान् प्रकट होते हैं।

अपराध होनेके कारण जय-विजय दीन हो गये हैं और क्रोध आ जानेके कारण सनकादि भी शिथिल पड़ गये हैं। टीक वही अवसर है भगवान्के प्रकट होनेका। आखिर भगवान् आ ही गये। उनके सौन्दर्यामृतका पान करके सबकी ओँखें छक गयी। उन लोगोंने निर्निमेष नवनोंसे देखा कि कमलनयन भगवान् व्यामसुन्दर श्रीलक्ष्मीर्जिके साथ स्वयं आ रहे हैं। उनके क्योंपर पीताम्बर फूहरा रहा है, काले-काले बृंघराले वाल कपोलोतक लटके हुए हैं, मकराङ्कुत कुण्डलकी छटा न्यारा ही है, मुकुटमें सूर्यके समान हजारों किरणें निकल रही हैं, ऊच्चे ललाटपर गोरोचनका तिलक है, टेढ़ी-टेढ़ी मौंह अनुग्रहकी वर्या कर रही है, प्रेममर्मा चितवन और तोतेके समान ऊँची नाक है, मण्कतमणिके समान स्वच्छ चमकते हुए कपोल हैं, लाल-लाल ओढ़ोंमें से डॉतोंकी धबलता मुसकानके यहाने सुशार्की वर्पा कर रही है, शङ्ख-जैसे कण्ठमें वैजयन्ती माला शोभा पा नहीं है और वक्ष स्थलपर कौस्तुभ मणिकी चमक तो निराली ही है। पहने हुए पीताम्बरके नीचेसे शरीरकी व्यामता निकल-निकलकर उसकी प्रतिमाको देवाना चाहती है। चरणोंकि नख-मण्डलसे लालिमामिथित ज्योति निकलकर प्राणोंमें एक नर्वान चेतनाका संचार कर रही है। तीन हाथोंमें

शङ्ख, चक्र, गदा हैं और चौथे हाथमें वे मानो अभय दान कर रहे हैं। मानो सबको वे अपनी दवाके तमुदमें अवगाहन करनेके लिये ही बड़े घेगने चले आ रहे हैं।

भगवान्को इस स्पर्शमें आते देखकर सनकादि चिह्निल हों गये और आनन्दमग्न होकर अनुस ऑखोंसे भगवान्को निहारने लगे। इनकी ओँखे मुन्दमण्डलमर ही अटक गयीं; चरण-स्पर्श अपराध प्रगाम आदि करनेका ध्यान ही न रहा। भगवान् तो बड़े लीलाप्रिय हैं। वे सनकादिके पास आकर भी न आये, कुछ दूरपर खड़े-खड़े मुसकगते रहे।

इधर सनकादिका शरीर भी जड़वत् हो रहा था। वे भगवान्का आलिङ्गन करना चाहते थे, परं न उनके पैर उठते थे न हाथ। वे ऑखोंद्वारा भगवान्की रूपमाधुरीको पी जाना चाहते थे, पर ऑखोंने कोरा जवाब दे दिया। वे भूले हुएकी भौति, छके हुएकी भौति जहाँ थे, वहाँ खड़े रहे, अपना शरीर हिला न सके। उस समय उनकी तन्मयता दर्शनीय थी और स्वयं भगवान् भी उसे देख-देखकर आनन्दित हो रहे थे। पता नहीं, कितनी देरतक वे लोग इसी अवस्थामें रहे। यदि वैकुण्ठमें कालकी गति होती, समयका माप होता तो वत्तलाया जा सकता कि कितनी देरतक उनकी यह विलश्चण समाधि ली रही होगी।

जब ध्यान आया कि भगवान् सामने खड़े हैं, तब वे साथाङ्ग उनके चरणोंपर गिर पड़े। वे सब कुछ भूलकर भगवान्की चरणधूलिमें लोटने लगे। वहाँकी मणिमय भूमिपर पड़े हुए भगवान्के चरणोंके पद्म-पराग उनके शरीरमें लगलगाकर उनके स्वर्ण-चर्ण शरीरकी आभाको और भी चमकाने लगे। उनकी ओखोंसे ऑसुओंकी धारा वह रही थी। शरीर पुलकित था और चेतना छुत थी। भगवान्से अपने हाथों उठाकर सत्कार किया, मानो कोई अपने गुरुजनोंका सम्मान कर रहा है। भगवान्जा प्रेम देखकर सबके-सब सुध हो गये। कुछ ध्यानोंमें सम्हलकर सिर छुकाकर अज्ञालि बोधे हुए झंधे कण्ठसे वे भगवान्की स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा— प्रभो! आपकी यह नयनाभिराम मूर्ति सभीके हृदयोंमें रहती है। बड़े-बड़े योगीश्वर बहुत समयतक ध्यान-समाधि लगाकर इसके दर्शनकी अमिलापा किया करते हैं। जिनके हृदयमें छल, कपट, राग-द्वेष आदि हैं, उन्हें तो कभी इसके दर्शन होने ही नहीं। परंतु आपने कृपा करके अपनी वही अनूप स्पर्श-रागि हमारी ओखोंके सामने कर दी है। हम अपने सौभाग्यकी कितनी प्रशासा करें। परंतु प्रभो! यह हमारे सौभाग्यकी महिमा नहीं है; यह तो आपकी अहंतुकी कृपाका फल है।

‘अपतक हम केवल जानसे सुना करते थे, हमारे पिता ब्रागा प्राय आपके स्वरूप, लीला और गुणोंका वर्णन करके हमें आपकी ओर प्रवृत्त किया रखते थे, परतु हम अपने जान-के घमटमें उनकी गतोंको इतना अग्रिम महत्व नहीं देते थे। आज उनकी गतोंका अर्थ समझमें आया। हमें अपनी भूल स्वीकार दै। दीननन्धो। हमें गर्वदा आपकी कृपासा अनुभव होता रहे।

‘जगद्भूते ज्ञानेलमें ठोड़र मातेन्गते जग मत-मद्गुरुकी कृपा होती है और अपने जीमन एवं समयके व्यर्थ प्रितानेना पश्चात्ताप होता है, समारके किमी पिग्यका भगेमा नहीं रहता, तब यदों जारूर आपके चरणोंका आश्रय मिलता है और आपके प्रेमजा कुरुकुरु उदय होता है, हृदयमें वैराग्यकी प्राप्त ज्ञान नहीं जड़ उठती, वह आपकी भक्ति और जानका लेशमार भी नहीं पा सकता और जिमने आपके चरणोंकी दरण प्रण तर रक्षी है, उसे किमीका भय नहीं, वह तो सर्वदा निर्भय रहता है।

‘प्रभो! हमारे अपराधोंके कारण चाहे हमारे सैकड़ों जन्म हों, जारन्नार नरकमें जाना पड़े और वहा रहना पड़े, हमकी हमें तनिक भी चिन्ता नहीं है। हम केवल इतना ही चाहते हैं कि ब्राह्मचित्त भाँतीके समान सदा आपके चरणकरमलोंमें रमा धेर। चार्णा तुम्हीकी भाँति आपके चरणकरमलोंसे लिपटी रहे और जान आपने ही दिव्य अनन्त गुणगणोंमें भरते रहे और सर्वदा अनभरे ही बने रह।

‘भगवन्! आपके दर्शनसे हमें परम आनन्द प्राप्त हुआ है। हम आपके चरणोंमें शतश, सद्भव और कौटिङ् ग्रणाम रखते हैं।’

भगवान्ने कहा—‘मृगियो! आपकी महिमा अनन्त है। आप मेरे पूजनीय देवता हैं। मुझे आपलोगासे ही कीर्ति प्राप्त हुई है। मेरी नक्ता आपकी ही सत्तापर अवलभित है। जिस लक्ष्मीके लिये वडे-बडे लोग तपस्या करते हैं, वह विरक्त होनेपर भी मेरी चरण-मेवा इसलिये करती है कि मुक्षपर ब्राह्मणोंकी, कृपालु महात्माओंकी वडी कृपा है। मैं धनिकोंके द्वारा किये हुए यज्ञोंमें, जिनमें अग्निमें सूर्य धी आदि हविष्योंकी आहुतियों दी जाती हैं, उतनी प्रसन्नतासे स्वीकार नहीं करता, जितनी प्रसन्नतासे ब्राह्मणोंको खिलाये हुए पदार्थोंको स्वीकार करता हूँ। जिन ब्राह्मणोंकी पूजा मैं करता हूँ, किसमें ऐसी सामर्थ्य है, जो उनका तिरस्कार कर सके। जो तिरस्कार करनेपर,

गाली देनेपर भी ब्राह्मणोंका तिरस्कार नहीं करते बल्कि प्रसन्नताके माथ प्रेमभरी वाणीसे उनका सम्मान करते हैं और उन्हे मेरा स्वरूप समझते हैं, वे मानो मेरी ही पूजा करते हैं।

‘ब्राह्मणो! ये जय और विजय यों ता मेरे पार्षद हैं, परतु इन्होंने मेरे शासन और आज्ञाका उल्लङ्घन करके आपका अपमान किया है। सेवकका अपराध स्वामीका ही है। मैं अपने इग अपराधके लिये स्वयं लजित हूँ। आपलोगोंने जो इन्हें दण्ड दिया है, वह भी मुझे माल्य है। आपलोगोंकी इच्छा मेरी इच्छा है और वही हुआ है, जो मैं चाहता था। इन दोनोंने मेरे अभिग्राहको न समझकर जो यह दुर्व्यवहार किया है, उसके फलमवूल्य ये तीन जन्मोंतक असुरयोनिमें जायें और शीघ्र ही पुनः अपने स्थानपर लैट आवें। यह मैं इनपर कृपा कर रहा हूँ। ये मेरे प्यारे सेवक हैं, वहुत दिनोंतक मुझसे ये अलग रहें, यह मुझे अभीष्ट नहीं है।’

भगवान्की जात सुनकर अग्नियोंकी बुद्धि चक्रा गयी। मानो उन्होंने समझा ही नहीं कि ‘भगवान् क्या कह रहे हैं?’ वे गद्गाद वाणीसे भगवान्से कहने लगे। वे बोले—भगवन्! आपकी यात हमारी समझमें नहीं आ रही है। आप त्रिलोकी-नाथ होकर हमें अपना आराध्यदेव बतला रहे हैं, यह आपकी कृपा है। आप ब्राह्मणोंके आत्मा हैं, स्वामी हैं, सनातनधर्मके परम रहस्य हैं। आप यदि ब्राह्मणोंका इतना सम्मान न करेंगे तो और कौन करेगा? परतु प्रभो! यहाँ सत्त्वके साम्राज्यमें आकर हमलोगोंने वहा अनुचित कार्य किया है। इसके लिये आप हमें दण्ड दें और इन्हें शापसे मुक्त कर दें। ये निरपराध हैं।’

भगवान्ने कहा—इसके लिये आपलोगोंको चिन्ता करने-की आपश्यकता नहीं। ये असुरयोनिमें जाकर वैभावसे मेरा चिन्तन करेंगे और फिर मैं स्वयं जाकर इनका उदार करूँगा। यह आप मेरी इच्छासे ही इन्हें मिला है, ऐसा आपलोग समझें।’

इसके गद रडे प्रेमसे वैकुण्ठकी शोभा देखकर और भगवान्की परिक्रमा, प्रणिपात आदि करके उनकी सम्मति लेकर सनकादि वहाँसे विदा हुए। वे मार्गमें भगवान् और उनके वैकुण्ठकी प्रशंसा करते हुए यथेच्छ चले गये।

अब भगवान्ने जय-विजयपर दृष्टि ढाली।

(३)

जब अपनेसे अपराध बन जाता है, किसीकी सहानुभूति-का भरोसा नहीं रहता, चारों ओर निराशा-हीनिराशा नजर आती है, उस समय यदि कोई थोड़ा-सा भी सद्व्यवहार कर

देता है तो बड़ा आश्वासन मिलता है और लोग उसके कृतज्ञ हो जाते हैं। यदि ऐसे अवसरपर किसी वडे आदमीका सहारा मिल जाय तब तो प्रसन्नताका ठिकाना ही नहीं रहता।

ऐसे ही अवसरपर भगवान्की सहायता प्राप्त होती है। वे झबते हुएको उद्धार लेते हैं, भरते हुएको जिला देते हैं, विष पीनेकी इच्छा करनेवालेको अमृतसे सराबोर कर देते हैं। इसीसे उन्हें परम दयालु कहा जाता है और इसीमें उनकी दीन-बन्धुता है। जब जय-विजय सर्वथा निराग हो गये, ब्राह्मणोंका अपराध, भगवान्का अपराध और बहुत दिनोंतक भगवान्से वियोग होनेका घोरतम शाप देख-सुनकर वे घबरा गये, तब भगवान्ने उनपर अपनी कृपादृष्टि डाली। वे एक कोनेमें मुँह छिपाये रखे थे। उन्हें साहस नहीं होता या कि वे भगवान्के सामने आवें और उनसे क्षमा माँगें। यद्यपि भगवान्का करुणामय स्वभाव उनसे छिपा न था, वे जानते थे कि ‘भगवान् हमारे दोषोंपर हाष्टि न ढालेगे; क्योंकि यदि वे दोषोंपर हाष्टि ढालने लगें तो करोड़ों कल्पोंमें भी उद्धार सम्भव नहीं, परतु वे परम दयालु हैं, हमें क्षमा कर देंगे, हमें अपना लेंगे, तथापि आज न जाने क्या बात थी कि वे भगवान्के सामने जानेमें हिचकते थे।

जब उन्होंने देखा कि भगवान् स्वय ही प्रेमभरी हृषिके हमारी ओर देख रहे हैं, तब वे दौड़कर उनके चरणोंपर गिर पड़े, उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा वह निकली, रोते-रोते हिचकी बैध गयी, वे कुछ बोल न सके। भगवान्ने अपने हाथोंसे उन्हें उठाते हुए कहा—‘जय-विजय ! तुमलोग इतना घबराते क्यों हो ? क्या तुम्हें मेरी लीलाका रहस्य मालूम नहीं ? मेरी इच्छाके विपरीत जगत्‌में कोई काम हो ही नहीं सकता, स्वय जगत् भी नहीं हो सकता। तब भला इस वैकुण्ठमें मेरी इच्छाके विपरीत कोई बात कैसे हो सकती है ? बात यह है कि मैं संसारमें अवतार ग्रहण करके कुछ लीला करना चाहता हूँ। उस लीलामें तुमलोगोंको प्रधान पात्र बनाना आवश्यक है। हमलोगोंकी जो सम्मिलित लीला होगी, उसे गाकर तथा स्मरण करके ससारके लोग सुगमतासे मेरे पास आ सकेंगे। केवल लोगोंके उद्धारके लिये ही यह लीला करनी है। और कोई ऐसा काम हो नहीं सकता, जिसके लिये मुझे जाना पड़े।

‘इस लीलामें तुमलोगोंको बड़ा कठोर काम करना होगा। परंतु तुम्हारा अधिकार देखकर ही यह काम तुम लोगोंको सौंपा गया है। तुम्हें मुझसे वैरभाव रखना होगा।

और मैं तुमलोगोंको अपने हाथोंसे मारूँगा। उस समय तुमलोगोंको याद नहीं रहेगा कि ये हमारे स्वामी हैं, हमारे सेव्य हैं। लक्ष्मीने भी तुम्हें शाप दे दिया है, इन ब्राह्मणोंका भी शाप हो चुका है, अब इसका सदुपयोग करना चाहिये। मेरे प्यारे पार्षदों। मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता। मेरी शरणमें आकर किसीका पतन नहीं हो सकता। यदि तुम्हें तीन बार ससारमें जन्म लेना पड़ेगा तो मैं तुम्हारे लिये चार बार आऊँगा। तुम मेरे हो। मैं तुम्हारा हूँ। मेरे लिये इतना कष्ट उठानेमें तुम्हें आपत्ति नहीं होनी चाहिये।’

भगवान् तो उन्हें समझाकर अपने धाममें चले गये, परतु विजयको सतोप नहीं हुआ। वह दुखी होकर अपने भाई जयसे कहने लगा—‘भैया ! मैं बड़ा दुखी हूँ। मैं यह सोचकर दुखी नहीं हूँ कि मुझे असुरयोनिमें जाना पड़ेगा। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। यदि अपने किये हुएका दण्ड भोगनेके लिये मुझे नरकमें जाना पड़े और उसमें करोड़ों वर्षोंतक रहना पड़े तो भी मुझको दुःख नहीं होगा। मैं भगवान्का स्मरण करते-करते बात-की-बातमें उन वर्षोंको विता दूँगा। परतु अपने स्वामीसे, भगवान्से पृथक् होकर मैं उनका प्रेमसे स्वरण भी नहीं कर सकूँगा, इतना ही नहीं, उनसे वैरभाव रखूँगा, यह सोचकर मैं चिन्ताके मरे मरा जा रहा हूँ। भैया ! मुझे बचाओ !’ इतना कहकर वह जोर-जोरसे रोने लगा।

विजयको समझाते हुए जयने वडी गम्भीरतासे कहा—‘मेरे प्राणप्रिय भाई ! तुम इतना घबराते क्यों हो ? तुम तो भगवान्से प्रेम रखते हो, तुम तो उनके सच्चे सेवक हो, मुझे तो इसमें जरा भी सदेह नहीं है। भाई ! प्रेमधर्म, सेवाधर्मका पालन करना बड़ा ही कठिन है। इसमें अपनी मनोवृत्तियोकी परवा छोड़ देनी पड़ती है, अपने सुख-दुःखकी उपेक्षा कर देनी पड़ती है। जिससे अपने प्रियतमको प्रसन्नता हो, अपने स्वामी सुखी हों, वही करना पड़ता है। भगवान् जहाँ भेजें, जिस रूपमें भेजें और जैसे रक्खें, हमें उसी प्रकार जाना होगा, रहना होगा। हम उनके हैं, उनकी कठपुतली हैं, वे जो नाच नचायेंगे, हम प्रसन्नतासे नाचेंगे, उनकी प्रसन्नता ही हमारी प्रसन्नता है।

‘क्या तुम उनसे हसलिये प्रेम करते हो, इस भावसे सेवा करते हो कि वे हमारी इच्छाके अनुसार काम करें ? हमें जिसमें सुख प्रतीत हो वही करें ? हमारी इच्छाके अनुसार न होनेपर हम दुखी हों। दुःखका मूल मन है। मनमें जब कोई कामना होती है कि हम इस प्रकार रहें, इस प्रकार रक्खे

साये और ऐसा नहीं होता तब हमारी कामनापर टेस लगती है, तभी हम दुरी होते हैं। भिना कामनाके कोई दुग्धी हो ही नहीं सकता। भगवान् जो कुन्त करते हैं, हमारे भले के लिये करते हैं और उनकी इच्छापर आनन्दमय होकर नाचते रहना ही हमारा धर्म है। उठो, चलो, विषाद गोड़ो। भगवान् इस आशाका अग्रिम्य पालन किया जाय।

जयसी गत सुनकर प्रिजयको बड़ा सतोप हुआ। दोनोंने भद्राभिंश्च पर्यन्त भगवान् को प्रणाम किया। इन्हें ही उनके चैकुण्ठसे गिरनेता समय आ पहुँचा। उनके गिरनेके समय हाताकार मच गया। बड़ा उस समय अपनी सधार्म बैठे हुए थे। उन्होंने जप देरा कि भगवान् के प्रिय पार्षद बैकुण्ठसे गिरकर असुरयोनिमें जा रहे हैं और अभी हमी समय इन्हें भगवान्नी स्फुटि नहीं है, तब उन्हें बड़ा आश्रय हुआ। उनके मनमें ऐसे भाव आने लगे कि जो अपतक कभी नहीं हुआ था, वह इन समय कैसे हो रहा है। अपतक केवल मेरे लोकतक ही पुनर्जन्मसी गति थी, आज बैकुण्ठसे भी पुनर्जन्म होनेकी वात देरी गयी। क्या भगवान् के लोकमें भी यात्री पहुँच हो गयी। परतु ऐसा कैसे हो सकता है। काल तो भगवान् के लोकका सर्व भी नहीं कर सकता, परतु ये गिर तो रहे हैं। अवश्य इनमें कुन्तन-कुन्त भगवान् की लीला होगी। भगवान् भी कैनी-कैनी लीलाएँ करते हैं।

भगवान् की लीलाका स्वरण करते-करते ब्रह्मा तन्मय हो गये। योड़ी देवके गाद जप उनकी तन्मयता भग हुई, तब उन्हें स्वरण हो आया कि यह तो कोई नयी गत नहीं है। प्रत्येक चागद-कल्पमें ऐसा ही होता आया है। अग भगवान् जगत् का रूपाण करनेके लिये प्रकट होनेवाले हैं। अहा। भगवान् किसने दयालु हैं। जगत् के श्रप्ताओंमें 'कैसे हुए जीवोंका उदाहर करनेके लिये वे स्वयं जगत् में आते हैं। अनेकों प्रभावकी लीलाएँ करते हैं, वहुतोंको तार देते हैं और ऐसी लीला फर जाते हैं कि उसका स्वरण-विन्तन करके लोग भग-नागरमें पार उत्तरते रहें। धन्य है भगवान् और धन्य है उनकी लीला।

ब्रह्मा पुनः समाधिस्थ हो गये। वे भगवान् के विन्तनमें हतने तटीन हो गये कि उनकी समाधि तब खुली, जप जय विजय उपरके लोकोंवे वहुत ही नीचे आ नुके थे। ब्रह्माने सोचा अग इन्हें कहीं स्थान देना चाहिये। इन्हें गर्भमें धारण करनेकी शक्ति भला किसमें है। हाँ, दिति इन्हें अपने गर्भमें धारण कर सकती है। अच्छा, तब यही ढीक है।

ब्रह्माने उन्हें दितिके गर्भमें जानेकी व्यवस्था कर दी। (४)

प्रकृति शान्त थी। सायकालीन सूर्यकी लाल-लाल किरणें समुद्रके नीले जलके साथ खेल रही थीं। तरगें वहुत कम उठती थीं। बायु मन्द हो गया था। दिन और रातकी सन्धिका समय होनेके कारण चारों ओर आन्ति-ही-शान्ति विराज रही थी। चारा चुग लेनेके बाद पक्षी अपने-अपने नीङ्गोंपर बैटकर भगवान् के मधुर नामोंका सगीत गा रहे थे। यह वही समय है, जब भगवान् श्रीकृष्ण जगलसे गौओंको चराकर लैटते थे और उनके गोधूलि-धूसरित मुख-मण्डलको देखनेके लिये बजके सभी प्राणी उत्सुक रहते थे। दिनभर काम करनेवाले इसी समय अपने घर आते हैं। यह प्रतीक्षाका समय है। इस समय हृदयमें एक मधुर लाला जाग्रत् होती है। प्रकृतिके शान्त होनेके कारण इस समय मन अधिक पवित्रता और वेगके साथ परमात्माकी ओर गढ़ता है। हाँ, तो उस दिन प्रकृति शान्त थी और महर्पि कश्यप अपने आश्रमके पास ही बैटकर सध्या कर रहे थे।

प्रात कालकी सध्या सूर्योदयके पूर्व हो जानी चाहिये और सायकालीन सध्या सूर्यास्तसे पूर्व हो जानी चाहिये। यह द्विजातियोंका नित्य कर्तव्य है। इसके उल्लङ्घनसे पाप लगता है। वर्णश्रिमके अदर रहकर सध्याकी अधृतेलाना नहीं की जा सकती। महर्पि कश्यप नित्य सध्या करते थे और आज भी समयपर वे सध्या करने बैठे थे। विष्वर्वक ध्यान करते हुए उन्होंने प्राणायाम किया, आचमन, मार्जन, अधमर्धण आदि करके अभी जप करने जा ही रहे थे कि दिति वहाँ आ पहुँची।

दितिको असमय आयी हुई देखकर महर्पि कश्यपको बड़ा आश्रय हुआ। उन्होंने सोचा, यह नयी वात कैसे हो गयी। यद्यपि दिति मेरी धर्मपत्नी है, मेरी बड़ी सेवा करती है, तथापि आजतक सध्याके समय यह कभी नहीं आयी थी। उन्होंने, जपमें विघ्न न हो, इसलिये यह सोचा कि इसे पूरा हो जानेके बाद वात कर लैंगा। वे फिर पूर्ववत् एकाग्र होकर सविता देवताका ध्यान करने लगे।

दितिका मन उस समय वशमें नहीं था। वह सत्तान-प्राप्तिके लिये अत्यन्त उत्सुक थी। उसने कश्यपके पास जाकर बड़े दीनभावसे कहा—‘आर्यपुत्र। मैं आपकी दस्ती हूँ। इस समय मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। आप मेरी

रक्षा कीजिये । यह देखिये कामदेव अपना धनुष-चाण चढ़ाकर प्रवल वेगसे मुझपर आक्रमण कर रहा है । जैसे मदमत्त हाथी अपनी सूँडसे केलेके वृक्षको धुन डालता है, वैसे ही मेरा अन्तःकरण मेरे वज्रमें नहीं है । मेरा शरीर टूट रहा है । आप कृपा करके मुझे बचाइये । इसे शान्त कीजिये । भगवन् ! मेरी कई मौतें हैं । उनकी सतान और सम्पत्तिको देखकर मेरे कलेजेमें जलन होती है । आपके द्वारा जो सतान मुझे प्राप्त होगी, वह आप-जैसी ही होगी और उससे सारे सासारमें हमारा यश छा जायगा ।

‘नाथ ! जब मेरे पिता दक्षने बड़े प्यारसे मुझसे पूछा कि तुम किसे पतिके रूपमें वरण करना चाहती हो, तब यद्यपि लज्जाके मारे मैंने मुँहसे कुछ नहीं कहा, फिर भी वे मेरा भाव समझ गये और आपके साथ उन्होंने मेरा विवाह कर दिया । इस समय कामकी यन्त्रणासे व्याकुल होकर मैं आपकी शरणमें आई हूँ । आपके सिवा और कौन मेरी रक्षा कर सकता है । आप महान् पुरुष हैं । जो कोई आपकी शरणमें आता है, उसकी आप रक्षा करते हैं । आपकी शरण अमोघ है । मेरा दुःख मिटाइये ।’

कश्यपने देखा कि आज दिति बहुत बोल रही है । एक तो कामके बाणोंसे व्यथित है, दूसरे सौतोंकी सम्पत्ति भी इसे सता रही है । इसकी कामना तो अनुचित नहीं है । उन्होंने बड़े ग्रेमसे समझाया—‘देवि ! तुम मेरी अर्धाङ्गिनी हो । तुम्हारे सहरे मेरे अर्थ, धर्म, काम तीनों ही सधते हैं । यहस्यजीवनमें वास्तवमें तुम्हारे-जैसी धर्मपत्नीकी बड़ी आवश्यकता है । जीवनका समस्त भार तुम्हें सौंपकर मैं निश्चिन्त धर्मपालनमें समर्थ होता हूँ । तुम्हारी सङ्गति और आश्रयसे ही मैं अपने शत्रु इन्द्रियोंको वशमें रखता हूँ । मानो नारी एक ऐसा किला है, जिसके आश्रयसे शत्रुओंकी ओरसे निर्भय होकर रहा जा सकता है ।

‘मैं तुम्हारी सेवाका ऋणी हूँ । यदि जीवनभर तुम्हारी सेवा करनी पड़े तो भी मैं उत्कृष्ण नहीं हो सकता । मैं तुम्हारी कामना पूर्ण करूँगा । परतु ब्रिये । तुम दो घड़ी और ठहर जाओ । यह सध्याका समय है । देवाधिदेव महादेवके अनुचर इस समय सासारमें धूमा करते हैं । स्वयं भगवान् शङ्कर श्मशानकी राख शरीरमें लपेटे जटाओंको खोले हुए यह देखते फिरते हैं कि कौन इस समय अपने कर्तव्य सध्या आदिमें न लगाकर प्रमाद एवं पापकर्ममें लगा हुआ है । यद्यपि उनका कोई शत्रु-मित्र अथवा निन्दनीय-

प्रगमनीय नहीं है; फिर भी पापियोंपर उनकी तीमरी आँख पढ़ ही जाती है । उनका चरित्र बड़ा निर्मल है । संसार-सागरसे पार होनेवाले उनके चरित्रका गायन करते रहते हैं । फिर भी वे उन्मत्तकी भौति विचरण करते रहते हैं । इस समय गर्भाधान गर्हित वतलाया गया है, इसलिये थोड़ी देर धैर्य धारण करो । नहीं तो, उनके क्रोधकी सम्भावना है ।’

कश्यपके इतना समझानेपर भी दितिको संतोष नहीं हुआ । उसने निर्लज्ज होकर कश्यप अृषिका वस्त्र पकड़ लिया । महर्षि कश्यपने सोचा कि मेरे इस शान्त आश्रममें, जहाँ निरन्तर भगवान्का ही स्वरण, चिन्तन, वर्णन होता रहता है, इस प्रकारकी मनोवृत्तिका होना बड़ा आश्वर्यजनक है । यहाँ हिंसक जन्म अहिंसक हो जाते हैं, कामी, क्रोधी यहाँ आते ही शान्त हो जाते हैं । मेरी अर्धाङ्गिनी ही आज इस प्रकार कामपीड़ित और निर्लज्ज हो जाय, इसका कारण समझमें नहीं आता । मेरे अग्निहोत्रके समीप असमयमें ऐसी भावनाका उदय होना विधि-विधानका ही घोतक है । अस्तु, भगवान्की इच्छा पूर्ण हो ।

गर्भाधान होनेके पश्चात् दितिका आवेश शान्त हुआ । वह सोचने लगी कि यह मैंने क्या किया ? पतिदेव, स्वयं भगवान् शङ्कर और शास्त्रोंकी आजाके विपरीत मैं ऐसा काम कर बैठी, जिससे निन्दनीय और कुछ ही नहीं सकता । उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ । वह तुरंत महर्षि कश्यपकी शरणमें गयी । अत्रतक महर्षि कश्यप स्नान करके प्राणायाम-पूर्वक ध्यान करते हुए भगवान्के नामका जप करने लगे थे । दितिने जाकर लज्जावश अपना मुँह नीचे करके कहा—‘भगवन् ! मुझसे बड़ा अपराध हुआ । भगवान् सद्गुरु होकर कही मेरे गर्भका अनिष्ट न कर दें । मैं उनकी शरणमें हूँ । आप उनसे प्रार्थना कीजिये । मैं देवाधिदेव महादेवको नमस्कार करती हूँ । वे आशुतोष है, सम हैं और मेरे सगे-सम्बन्धी हैं । आपके नाते मेरे देवर हैं और पिताके नाते मेरे बहनोई हैं । मेरी वहिन सती उनकी धर्मपत्नी है । मेरा बच्चा उन्होंका बच्चा है । वे मेरे बच्चेका अनिष्ट कदापि नहीं करेगे । भगवन् ! आप दया करके मेरी रक्षा कीजिये ।’

इस प्रकार दितिको अपने कृत्यपर लज्जित एवं सतानके कल्याणके लिये उत्सुक देखकर नियम पूरा हो जानेके बाद महर्षि कश्यपने कहा—‘तुम्हारे इस पश्चात्ताप और

शङ्करने प्रार्थनाने देखते हुए यह रुहा जा सकता है कि भगवान् उद्ध तुम्हारे नालकोंसा अनिष्ट नहीं करेंगे । परन्तु अममयमें ही गर्भांशन रुनेके कारण मेरी आजाका न पालन वरने तथा अपनी सौतके पुत्र देवताओंके प्रति द्वोह-भाव रमनेके कारण तुम्हारे गर्भसे हैनेवाले पुत्र देवताओंही एवं अमद्वन्नरूप होंगे । गर्भांशनके समयकी तुम्हारी ईर्प्पा उनरे हृदयमें ऐसे भाव भर देगी कि वे तीनों लोकोंको कमित कर देंगे । उन समय मेरे मनमें भगवान् शङ्करका ध्यान था, अत तुम्हारे दोनों पुत्र शङ्करके भक्त होंगे । जर उनके द्वान् नित्याध दीन प्राणियोंनी हिंसा होगी, स्त्रियाँ दुर्ग पायेंगी, उनरर महात्मालोग कोधित हो जायेंगे तर न्य भगवान् अन्तर लेन्दर उनसा वध रुहेंगे । तुम्हारे मनमें पश्चात्ताप हुआ है, तुम्ह अपने कृत्यपर गोद हुआ है, इमलि तुम्हारा पौत्र हिरण्यगतिसुवा एक लड़का वहा ही भक्त होगा । उसमी भक्तिसे तुम्हारे बग़ा उद्धार दो जायगा ।^१

मेरे पुत्रोंका वध स्वय भगवान् करेंगे, यह सुनकर दितिको उड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि उसका विश्वास था कि वधके नाते ही सहाय, हमारे पुत्रोंका भगवान्से सम्बन्ध तो होगा । चाहे जिस भावसे, जिस नातेसे उनसे सम्बन्ध हो जाय, केवल सम्बन्ध होना चाहिये । वस, कृत्याण-ही-कृत्याण है । दिति यही साधधार्नके साथ अपने गर्भकी रक्षा करने लगी ।

जर दितिने गर्भमें पहलेके भगवान्के द्वारपाल दिन्तु अन असुर आ गये, तर तीनों लोकोंकी दशा ही चढ़ गयी । सूर्यका तेज नम हो गया, अनि निर्धूम होकर प्रसन्नतासे हृषिप्य नहीं ग्रहण करतो, दिशाओंमें तुम्हारा आया रहता है, वायुका न्यर्श चढ़ा ही तीना मान्दम होता है, कहो प्रसन्नता नहीं, कहीं मङ्गल नहीं, सप्तके-सप्त देवता घरा गये । वे आपमें गलाह करके ब्रह्माके पास गये । सप्तने ब्रह्मासे नम्मलित प्रार्थना की कि अपितामह । आज सप्तारमें यह क्या अनर्थ हो रहा है । चारों ओर भय छाया हुआ है । सप्तके हृदयोंमें एक उद्देश समाया हुआ है । गाहर-भीतर सर्वत्र अगान्ति है । इनका कारण क्या है । दितिका गर्भ बहुत वप से रट रहा है । यह क्या है । क्या इसीके कारण जगत्की यह दशा है । भगवान् । हमें कोइ उपाय नतलाइये, इस सकटसे उचारिये । हम सप्त आपकी शरणमें हैं । आपके चरणोंमें वारस्तार नमस्कार करते हैं ।^२

ब्रह्माने मधुर वाणीसे सात्त्वना देते हुए जय-विजयके शापसे लेकर उनके गर्भमें आने तककी बात कह सुनायी और अन्तमें कहा कि वे ही दोनों दितिके गर्भमें आये हुए हैं । उनके ही भीयण तेजसे त्रिलोकी ब्रह्म है । भगवान् इसके सम्बन्धमें स्वय विधान करनेवाले हैं । देवताओं ! उन्होंके सफलत्यसे सुष्ठि होती है, उन्होंकी शक्तिसे शिति है और उन्होंके भ्रूभगरे इसका प्रलय हो जाता है । वडे-वडे शृष्टीश्वर, योगीश्वर उनकी योगमायाका रहस्य नहीं समझ पाते । वे कर इस प्रकार किसका कल्याण करना चाहते हैं, यह भगवान् और भगवान्के भक्तोंने अतिरिक्त और कोई नहीं जान सकता । परन्तु इतना निश्चित है कि उनके प्रत्येक विधानमें जीवोंका हित ही निहित रहता है । वे ही हमारे स्वामी हैं, वे ही हमारे सहायक हैं, उन्होंका हमें भरोसा है, वे ही हमारा कल्याण करेंगे । हम अपनी तुच्छ बुद्धिसे क्या मोच विचार सकते हैं । हम उनकी शरणमें हैं । उनके कर-कर्मलोकी सुकोमल छत्रछायामें हैं । वस, यही भाव निरन्तर बना रहना चाहिये ।^३

ब्रह्माकी यह विश्वास और प्रेमसे परिपूर्ण वाणी सुनकर देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई । वे सतुष्ट होकर भगवान्का समरण करते हुए अपने-अपने धामको चले गये और वहाँ शान्तिके साथ भगवान्की प्रतीक्षा करने लगे ।

इधर दितिके प्रसवका अवसर आया । साधारण प्रसव-के समयकी अपेक्षा बहुत अधिक समय बीत जानेके पश्चात् सतान होनेका समय उपस्थित हुआ । उस समय सप्तारमें चडे रडे उत्पात होने लगे । साँपकी भाँति फुफ्कारता हुआ बायु चलने लगा । उल्का और वध्र गिर-गिरकर लोकोंको भयभीत करने लगे । आकाशमें पुच्छल तारे उग आये । नश्त्रोंकी ग्रामा नष्ट हो गयी । भीयण यादलोंके दलने प्रकाश आनेका मार्ग वद करके अन्धकारका राज्य स्थापित कर दिया । समुद्र उदामीके साथ चिल्लने लगा । मानो सारी प्रकृति क्षुब्ध होकर कहने लगी हमें तुम्हारे-जैसे लोगोंकी आवश्यकता नहीं, ब्रह्मा और ब्रह्माके कुछ पुनोंको छोड़कर सारी प्रजाको ऐसा अनुभव हुआ कि असमयमें ही प्रलय होने जा रहा है । अथवा यह एक महान् विश्व-विघ्नका सूत्रपात है ।

पैदा होनेके योङी ही देर बाद दोनों असुरोंमें महान् बलका सचार हो गया । उनका शरीर पौलादकी तरह कठोर और पर्वतके समान बड़ा था । कश्यपने दोनोंका

नामकरण किया। गर्भावानके हिसाबसे जो बड़ा था, किंतु उत्पत्ति-क्रमसे छोटा था, उनका नाम हिरण्यकशिष्यु रक्षा। और जो गर्भावानके क्रमसे छोटा किंतु उत्पत्ति-क्रमसे बड़ा था, उनका नाम हिरण्यकश रक्षा। हिरण्यकशिष्युने घोर तपस्या करके ब्रह्मसे वर प्राप्त किया और त्रिलोकीपर शासन किया। उसकी कथा श्रीनृसिंहावतारकथामें देखनी चाहिये। उसका छोटा भाई हिरण्याश बड़ा ही वीर था। वह हिरण्यकशिष्युको बहुत मानता था तथा वह भी इसपर बड़ा प्रेम करता था।

हिरण्याश हाथमें गदा लेकर अपनेसे लड़नेवालेको हैंडने-के लिये स्वर्गमें गया। उसके असहा नेग, महान् गदा, उत्साह, शक्ति और वरसे प्राप्त पौरुषको देखकर सभी देवता भयभीत हो गये। जब उसने देखा कि इन्द्र आदि सभी देवता मेरे सामनेसे भग गये, तब वह उन्हे नपुणक समझने लगा। इसके बाद अपने बैहौंकी खुसारी मिटानेके लिये वह समुद्रमें कूद पड़ा और भयकर गर्जना करते हुए अगाध समुद्रमें मत्त होकर विहार करने लगा। उसके समुद्रमें प्रवेश करते ही प्रहार न करनेपर भी उसके प्रभावसे भयभीत होकर बद्धनके सैनिक भाग गये। वह वधोंतक समुद्रमें क्रीड़ा करता रहा। वह अपनी गदासे समुद्रके जलको पीट-पीटकर इतना उछालता था कि जलके छोटोंसे ऊपरके लोकमें रहनेवाले धवरा जाते थे।

अब वह वस्त्रकी राजधानीमें गया। वहाँ वस्त्रसे नीचकी भौति उन्हे प्रार्थना की कि आप लोकपाल हैं, जलके अधिपति हैं, आपकी कार्ति नारे संसारमें फैली हुई हैं, आपने बड़े-बड़े वीरोंका धमंड चूर कर दिया है, समस्त दैत्य-दानवों-को जीतकर आपने राजस्य बढ़ा किया है, मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करके एक भीख माँगता हूँ। आगा है, आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे। मैं आपसे यही भीख माँगता हूँ कि आप मुझसे युद्ध करें।^१

वहगने देखा कि इस समय इसका बल बड़ा हुआ है। इससे लडाई करना अपनेको सकटमें डालना है। अतः क्रोधसे अपनी बुद्धिसे दयाकर उन्होंने बड़ी नम्रतासे कहा—‘मैथ्या। हम तो अब बुझे हो गये हैं। अब युद्ध करनेकी ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं है और वास्तवमें भगवान् विष्णुके अनिरिक्त तुमसे युद्ध करनेवाला कोई दंखता भी नहीं। तुम्हरे-जैसे वीर पुरुषोंको उन्होंसे युद्ध करना चाहिये। जाओ, तुम उनके पास जाओ। तुम्हारा धमड़ चूर होगा और कुछ

शरोंमें ही कुत्ते तुम्हरे शरीरको नोचकर सा जायेगे।’

हिरण्याश तो अपने जोड़का योद्धा हैं दृढ़ ही रहा था, वह भगवान् विष्णुको हैंडनेके लिये चल पड़ा।

(५)

सुषिके आदिकालकी वात है। ब्रह्म भगवत्प्रेरणासे सुषिकर रहे थे; परतु उनकी इच्छाके अनुरूप सुषिकर नहीं हो रही थी। उनकी अभिलाषा थी कि सुषिकुन्दर-से-सुन्दर हो; बड़े और प्रवृत्ति-धर्मका पालन करे। परतु उनकी वह अभिलाषा दरिंदोंके मनोरथकी भाँति प्री नहीं होती थी। कुछ अजानी हुए, कुछ भोगी हुए, कुछ क्रोधी हुए और कुछ निवृत्तिपरायण हो गये। उनके शोककी सीमा न रही। वास्तवमें जब कुछ करनेकी इच्छा की जाती है और वह पूरी नहीं होती, तब शोक होता ही है। ब्रह्म भी शोकग्रस्त हो गये।

परतु भगवान्की लीलाको कौन जानता है। इस शोकके अवसरपर ही उनमें रजोगुण और तनोगुणका वाञ्छनीय मिश्रण हो गया और एक सुन्दर दम्पति उनके सामने प्रकट हो गये। यही दम्पति मनु और शतरूपा थे। इन्हें देखकर ब्रह्माको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि वह, अप मेरी अभिलाषा पूर्ण हो गयी। मैं जैसी चाहता था, वैसी सुषिकर हो गयी। मनु और शतरूपाने हाथ जोड़कर पूछा—‘भगवन्! हमें क्या आजा है? हम आपकी आशाकारी संतान हैं। जो आजा हो, वही करे।’ ब्रह्माने बड़ी प्रसन्नतासे समझाया—

‘हम सब परम पिता परमात्माके यन्त्र हैं। हमारा एक-मात्र धर्म है उनकी आजाका पालन करना। वे हमारे स्वामी हैं, हमारे सखा हैं और हमारे आत्मा हैं। वे कर्ता-अकर्ता, भोक्ता-अभोक्ता सब कुछ हैं और सबसे परे हैं। वह सुषिका समय है। हमें यह आजा है कि तमोगुणमें सेते हुए जीवोंको उठाकर ऐसी स्थितिमें लावें कि वे अपने पुरुषार्थद्वारा इस दुखमय संसारसे मुक्त हो जायें। भगवान्-के पास पहुँच जायें। यह काम तुमसे होगा।’

परतु इसके लिये तपकी आवश्यकता है। तुम दोनों तपस्या करके शक्ति प्राप्त करो। आदिगच्छिकी आराधना करो और उनसे निर्विकल्प सुषिकुन्दरकी योग्यता लाभ करो। मनुने ब्रह्माकी वात विरोधार्थ की और दोनों तपस्याके लिये चल पड़े।

इस सुषिके अंदर और बाहर एक शक्ति है। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसमें कोई-न-कोई शक्ति न हो। शक्तिहीनका

अनिन्द्र ही नहीं है। उसा न्यू एक शक्ति है। हम लो उपासना न ने है हमारी उपासनाज्ञा उर्जातर सम्बन्ध है, गहनतर शक्ति ही शक्ति है। न्यू ईश्वर शक्तिमय है। ऐश्वर्य-शक्ति के लिए उभयं रुद्रान्वय ही चिठ्ठ नहीं होता। उर्जातर शक्तिरी आगशना ही आगशना है और हम सभी शक्ति-की आगशना करते हैं।

मनु और शतरूपा दोनों ही प्रेमसे शक्तिरी आगशना करते रहे। उन्होंने मन ही मन भगवनी आदिशक्तिरी प्रार्थना की कि देवी। जगन्तरे समल काण्डोंकी काण्डाभूता भद्रशक्ति। हम तुम्हें शतश प्रणाम करते हैं। केदोंके न्यूमें तुम्हारी प्रकट हो। उम्हारे महालोंकी तुम्हारी मूल हो। ब्रह्म, विष्णु, भद्रेय सभी तुम्हारे शिशु हैं। तुम्हारे ही दर्शन जगन्तरे दिना हुआ है। पालन, पांचण, सुर्जन, विश्वर्नन सब तुम्हारी ही शक्तिरी होता है। तुम्हारी शक्तिके लिए कार्य हो ही नहीं सकता।

‘हमें अपने नितार्की आशा प्राप्त हुई है और उसमें भगवन्प्रेमा भी है कि हमलोग दृष्टि करें। परन्तु हममें क्या शक्ति है कि उनसी आदाशा पालन कर नक़े। हम तुम्हारी इपाके निरार्थ हैं। तुम्हारे ही शिशु हैं। तुम्हारे दग्धवजेसर पढ़ है। मा। प्यारी माँ। आकर हमें गोदमें उठा लो। हमें दुलारी, पुक्कारो। हमर बाल्लव न्नेह प्रकट करो।’

मनु और शतरूपा एक ही साथ एक ही प्रकारकी प्रार्थना कर रहे थे। पर्तिशर्नामा हृदय एक ही भावमें विभोग था। वह एक ही हो गया था। उनसे कच्ची प्रार्थना और उर्जानकी परम लाङ्गो देवता उपानी माँ प्रकट हुई। उन्हें देखने ही उन्हें काण्डोंग गिरा दोनोंने आशङ्का प्रणाम दिया। माँकी कल्पनासे उनसा हृदय पिछल हो गया। शरीर पुलिन और जागरामें आसू। दोनों ही अजुलि बाँधे रखड़े थे।

मनि पुनकारने हुए कहा—‘वेदा! तुम तो मेरे अपने हो। तुम हमार्नामे प्रकट हुए हो कि परमार्थ-सामन उन्नेयोग मानती रुद्धि हो। मेरी प्रसन्नतासे लिये तपस्या उन्नेकी क्या आवश्यकता है। मैं अपने बन्धेसा कष्ट उठाते नहीं देखना चाहती। जब मैं देखती हूँ कि मेरा कोट शिशु सचमुच मेरे लिये रो रहा है, तब दौड़कर उसे अपने आँचल में लिया लेनी हूँ। मेरा हृदय उसके पानेने लिये दूध बनकर बाहर निकल आता है। मैं एक लृणके लिये मीं उसे नहीं छोड़ना चाहती।

‘जो मुझे न चाहकर कोई और बत्तु चाहते हैं, उन्हें यदि उस बन्तुसे उनकी हानि होनेवाली सम्भावना नहीं रहती तो वह बन्तु भी दे देती है और आइमें वही रहकर अपने बन्धेसा रेखना देखकर प्रसन्न होता है। यदि अनिष्ट होनेकी सम्भावना देखती है तो अपटकर वह बन्तु आन लेता है और उसे उससे भी उसम बन्तु देती है अथवा उसे अपनी गोदमें ले लेता है।

‘प्यारे मनु और शतरूपा! मुझे और कोई नाम नहीं है। मैं दूसरा कोई काम करती ही नहीं। निगन्तर अपने नहेनहेन शिशुओंकी देखभाल किया करती हैं। छोड़नेकी रुद्धना भी उठ जात तो मुझे कितना कष्ट होगा; इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। मैं कभी छोड़ ही नहीं सकती।

‘उम नितार्की आशासे दृष्टिकार्य करना चाहते हो, यह वही प्रश्नतारी वात है। मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। सब भगवान् विष्णु वाराहावतार धारण करके तुम्हारे सुष्टिकार्यमें सहयोग देंगे और आगे चलकर वे तुम्हारी सतानके रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे। वेदा! जाओ। सावधार्नसे अरना काम करो। तुम्हारा कल्प्याण होगा।’

माँ अन्तर्धान हो गयी और मनु लोकपितामह ब्रह्माके पास आये।

मनु और शतरूपाको प्रसन्नताके साथ आने देखकर ब्रह्माने अनुमान कर लिया कि इनसा कार्य चिद्र हो गया है। प्रणाम स्तरते ही उन्होंने उदाकर हृदयसे व्यालिया और आनन्दानिरेकसे उनसा सिर सुँघने लगे। माँकी कृपा और बगदानकी वात बुनकर ब्रह्माको वडा हर्ष हुआ। सउके सब माँकी दगलुनाका सरण करके मुग्ध हो गये। उन्हें ऐसा मादूम होने लगा कि हम उनकी गोदमें ही बैठे हुए हैं।

तन्मयता भग होनेपर मनुने प्रार्थना की कि प्रिताजी। सुष्टि कलनेके लिये विद्याल भूमिका आवश्यकता है। पृथ्वीके लिया तुष्टि क्षेत्री की जाय। सारा ससार जलमन हो गहाहै। इसके सम्बन्धमें कोट-न-कोर्द उपाय अवश्य करना चाहिये।’

उसी समय ब्रह्माके दूसरे पुत्र मर्गित्रि आदि भी उपस्थित हो गये। ब्रह्माने चिन्ता करने हुए कहा कि इस वातके लिये तो मुझे न्यू वही चिन्ता हो रही है। प्रलयके नमय दैत्योंने पृथ्वीको चुराकर रसातलमें रख दिया, अर उसके उद्धारका कोट उपाय नहीं दर्शता। भगवान्की इपाके लिया यह कार्य असम्भव है। आओ, हम सब उन्होंकी प्रार्थना करें। वे ही हमलोगोंका कल्प्याण-विद्यान करेंगे।

अभी प्रार्थना शुरू भी नहीं हुई थी कि ब्रह्माकी नाकसे एक अगुलका एक अद्भुत शूकर-सावक निकल पड़ा। उसे देखकर लोगोंको बड़ा आश्र्य हुआ। वे सोचने लगे, यह क्या वस्तु है? देखते-ही-देखते क्षणभरमें वह बढ़कर हाथीके बराबर हो गया। सनक, सनन्दन, मनु, मरीचि सबके सब आश्र्यचकित हो गये। तर्कना करने लगे कि यह क्या है? अभी-अभी नाकसे वह निकला है और इतना बड़ा हो गया। इतनेमें ही शूकर भगवान्‌ने घोर गर्जना की। उनकी गर्जना सुनकर इन लोगोंके मनमें भय नहीं हुआ; आनन्द ही हुआ। ब्रह्माकी समझमें बात आ गयी। उन्होंने कहा कि 'अवश्यमेव पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये भगवान् ही शूकर-रूपसे अवतीर्ण हुए हैं।'

(६)

जिस वस्तुके लिये चिन्तित हों, जिसकी प्रतीक्षामें दूसरा काम अच्छा न लगता हो, जिसके बिना हमारे कर्तव्यमें ही वाधा पड़ जाती हो, यदि वही वस्तु सहसा बिना किसी प्रयत्नके सामने आ जाय, हमारी अभिलाषा पूर्ण कर दे तो इससे बढ़कर प्रसन्नताकी बात और क्या होगी? ऐसे अवसरों-पर ही हम अपने जीवनको धन्य मानते हैं।

यहाँ तो कोई दूसरी वस्तु नहीं, स्वयं भक्तवाच्छ-कल्पतरु भगवान् ही यजवाराह-रूप धारण करके प्रकट हुए हैं। उनके सुकोमल दन्तद्वयविराजित श्याम शरीरकी सुन्दरता और फरफराती हुई रोमावली देखकर ब्रह्मा आदिके आनन्दकी सीमा न रही। सब-के-सब उठ खड़े हुए और उनके पास जाकर पोड़दोपचारसे पूजा की। अन्तमें सबने बड़े प्रेमसे प्रार्थना की कि 'भगवन्! आप ही इस सूषिके आधार हैं। आप ही इसके अधिष्ठान हैं। आपकी ही सत्तासे यह सूषि और हम सब सत्तावान् बने हुए हैं। आपकी ही कृपासे, आपकी ही प्रेरणासे सब कुछ हो रहा है और जब आवश्यकता होती है तब इनकी रक्षा-दीक्षाके लिये आप प्रकट होते हैं। आप सर्वज्ञ हैं, आप ज्ञानस्वरूप हैं, आपका शीविग्रह आनन्दमय है, एकमात्र आप ही सत्य हैं। आपके ही पावन नामोंका उच्चारण करके आपकी ही पावन स्मृतिमें तल्लीन होकर हमारा जीवन व्यतीत होता रहे, सर्वदा हम आपके ही ध्यानमें मरने रहे, एक क्षणके लिये भी आपको न भूलें, ऐसी कृपाकीजिये।

'अभो! पृथ्वी आपकी सेविका हैं। आपने उमे अपनी स्वीकार किया है। प्रलयके समय असुरोंके द्वारा

वह हरण कर ली गयी है। आपकी अपनी होनेके पश्चात् वह असुरोंके हाथमें गयी, वह आश्र्यकी बात अवश्य है। परन्तु आपकी लीला आप ही जान सकते हैं। और कोई क्या जाने? भगवन्! अब उसका उद्धार कीजिये। हमलोग आप-की प्रेरणासे सूषिके कार्यमें लगे हैं, बिना पृथ्वीके हम सूषि कहों करे? पृथ्वी भी ध्वरायी हुई है, वह आपके दर्जन और सप्तशक्ति के लिये बहुत ही उत्सुक है। उसे आश्रासन दीजिये, अपनाहये।'

ब्रह्मादिकी प्रार्थना सुनकर भगवान् बड़े जोरसे हँसे और गरजते हुए समुद्रमें कूद पड़े। उनके कूदनेसे समुद्रका जल उछल-उछलकर जनलोक, महलोकसे बारें करने लगा। मानो 'भगवान्' मेरे जलमे क्रीड़ा कर रहे हैं। आज मेरी इतने दिनोंकी तपस्या सफल हुई। मैं भगवान्‌का दिव्य स्वर्ण प्राप्त कर रहा हूँ।' अपनी गम्भीर ध्वनिके द्वारा इस बातकी ढकेकी चोट धोषणा करता हुआ समुद्र तीनों लोकों-को अपने आनन्दका सदेश सुना रहा था।

भगवान् मथरगतिसे रसातलकी ओर जा रहे थे। जो भगवान् अपने भक्तोंकी पुकार सुनकर गरुड़को भी छोड़कर पौर-प्यादे दौड़ते हैं, वही भगवान् आज मथरगतिसे क्यों चल रहे हैं। अवश्य सर्वदा क्षीरसागरमें उनके रहनेके कारण नीर-सागरको बड़ी सर्वर्धा रही होगी कि क्षीर-सागर कितना भाग्यवान् है। काश, एक दिन भगवान् मेरे अदर भी आ जाते। वह बड़ा उत्सुक था। इतने दिनोंसे गम्भीर एवं शान्तचित्तसे जिसकी उपासना करता था, वही भगवान् उसके पास आये हैं और धीरे-धीरे उसे सर्ग-सुखका अनुभव करते हुए रसातलकी ओर जा रहे हैं।

भगवान् धीरे-धीरे बढ़ते हुए रसातलमें पहुँच गये। भगवान्को देखकर पृथ्वी प्रसन्नताके मारे खिल उठी। उसने भगवान्‌का चरणभूत लिया। सुन्दर आसनपर बैठाकर भगवान्की पूजा की। उसे ऐसा मालूम हुआ कि आज मेरे सौभाग्यका सूर्य चमक उठा। अव्रतक भगवान् लक्ष्मीके पास रहते थे, आज मेरे घर आ गये। मेरा असुरोंके हाथमें पड़ना अच्छा ही हुआ, क्योंकि इसीलिये भगवान् मेरे घर आये हैं। पृथ्वी देवी घोड़शोपचार पूजा करनेके पश्चात् आरती लेकर भगवान्‌के सामने नाचने लगी। उस समय उसके ग्रेम और आनन्दका क्या कहना! स्वयं ग्रेम और आनन्दस्वरूप भगवान् उसके सामने विराजमान ये।

पूजा समाप्त होनेपर पृथ्वीको जब ब्रह्मजनन हुआ, तब वह अङ्गलि बोधकर भक्ति-गद्गद चित्तसे प्रार्थना करने

ल्यी । उम्ने इहा—“मलनम । शङ्खन्त्रनगढ़ा-
गरे । शामसुन्दर । तुम्हाँ हमाग उद्धार रखेवाले हो ।
तुम्हें भारे न्मारी हों, तुम्हें हमारे परिनेव हो । प्रभो !
तुम्हीं धर्म-प्रभु-न्मे परे पुरुषोन्म हो । तुम्हीं पञ्चनृतोंका
उद्धार रखें हो । केवल उद्धार रखनवाले हों नहीं, तुम्हीं
मधुक जन्मदाता भी हो । ब्रह्मा, रिषि, वट तुम्हारे ही
न्मन्य हैं । वृद्धेन्वडं योगीश्वर तुम्हारा ही न्यान रखते हैं ।
रद रेड उद्गमस तुम्हारी ही उद्गमना रखते हैं । तुम्हा नजामोंका
यज्ञपुरुष हो । भगवन् । तुम्हारे शान्तिरु मन्यरों सेव
नना जानता । दैर्घ्य प्रदृतिरु लग तुम्हारे प्रगतारार्थी ही
उद्गमना रखते हैं । तुम्हारी आगमनार्थे भिना आन्म-माजान्मार,
प्रभरी अनुभूति भथता मुक्ति नहा हो नमस्ति । जा कुछ
मनसे माना जा सकता है, नेव-जाणी प्रादि इन्द्रियोंके द्वारा
जो कुछ भेद्या जा सकता है और दूसिंह द्वारा जिनमें
पदार्थोंना योग रित्या जा सकता है, वह सब तुम्हारे हो ।
जो कुछ मैंने कहा है वह तुम्हारे हो । जो कुछ नना रहा
है, वह जी तुम्हारा हो । आमा-अनान्मा सब तुम्हारे ही न्म्य
हैं । भगवन् । अप मुझे एक क्षणके लिये भी मत आइये ।
मुझे अपने भाव ते चलिये ।

प्रार्थना रखनकरते पृथ्वी उनके चरणोंपर गिर पड़ी
और प्रभगान्नगद होकर रेने लगी । भगवान् वगहने वृद्धे
प्रेमसे उम्ने अपने वाय दौतपर उठा लिया । उस समय
वार्षिक आदि दैत्योंने गधा डान्नी चारी, पर भगवान्के
गदाप्रहारसे भयभीत होकर उनमेंसे कई भग गरे और
दैय दैत्योंने भगवानक छायों सृत्यु प्राप्त करके दुर्लभ गति
प्राप्त ही । जर भगवान् अपने दौतापर पृथ्वीसे लेकर वेगसे
चलने लगे, तर भगवान्का पानी उद्धृत-उद्धृतकर फिर महलोंका-
तर जाने लगा । उनके श्यामके वेगसे जो जग्नाराएं
उठनी था, उनसे जनलोकोंने निवासी ता सरावों हो गये ।
उस समय सनम-सनन्दनादि वर्हा उपस्थित थ । उन्होंने वृद्धे
प्रेमसे भगवान्की स्तुति ही । महानाराह भगवान् जर अपने
वेदमय शरीरना वृद्धी न्मृतिके साथ ठैंपते हुए चलने लगे,
तर उनके रोमकूपोंमें स्थित अमृतिगण वृद्धे प्रेमसे उनकी
स्तुति रखने लगे । उन्होंने प्रजन्य वरह भगवान्का वर्णन
रखने हुए रहा—“भगवन् । आप सबके भाग हैं ।
नवके मूल न्मन्य हैं और आप ही यज्ञपुरुष हैं । आपके
चरणोंमें चार वेद हैं । मुख्यमं द्येन चित आदि चितियों हैं,
यज्ञरी अग्नि आपरी जीभ है, गत-क्रिया आपके नेत्र हैं ।

आपसा वृश्न लुचा है, आपकी धीर-गम्भीर व्यनि सामख्यर
है, आपके अवयवोंमें नम्रार्ण उनकी सामग्री है । आपकी
टांदोपर गक्की हुड़ पृथ्वी पेसी माद्रम होती है, मानो वियाल
गजेन्द्रके वृद्धे दौतपर न्मलकी एक नन्दी-सी पद्मुड़ी गक्की
है । आप ही एक परमार्थ सत्य है । आपके अतिरिक्त
और सोट नहा है । आपके अनन्त जानस्वरूपमें जट-जात्-
को देवनेवाले श्रान्त हैं । वास्तवमें सब कुल जान ही है,
सब कुछ आनन्द ही है, सब कुछ आत्मा ही है और सब
कुछ आपका न्मन्य ही है । भगवन् । आप पृथ्वीका उद्धार
करके लीयोंका महान् न्म्याण सब रहे हैं । प्रभो ! आपकी
जय हो ! आपकी जय हो । हम आपके चरणोंमें कोटि-
सोटि प्रणाम करते हैं ॥

एक ओर तो मरे श्रृंगीश्वर, योगीश्वर भगवान्की
स्तुति सब रहे थे, दूसर्य ओर नारदजी और ही धुनमें
थे । उन्हें जर माद्रम हुआ कि भगवान् पृथ्वीका उद्धार
करके लौट रहे हैं, तर वे हिरण्याक्षके पास पहुँचे । हिरण्याक्ष
तो पहलेसे ही भगवान्से हृष्ट रहा था । जर देवर्पि नारदने
यत्तलया कि भगवान् पृथ्वीको रक्षातलसे लिये आ रहे हैं,
तर वह उमी और चल पड़ा ।

नारद भगवान्के अत्यन्त प्रिय है । पुराणोंमें, इतिहासोंमें
ऐसा उदाहरण वृद्धी कटिनतासे मिल्या कि किसीको नारदजी
मिल गये हीं और उसे भगवान् न मिले हा । नारदका यही
काम है । वे सप्तरो भगवान्सी ओर बढ़ाते हैं । जो प्रेमका
अधिकारी होता है, उसे प्रेमसे, और जो द्रेपका अधिकारी
होता है, उसे द्रेपसे । वे भगवान्का स्वभाव जानते हैं कि
उनके पास द्रेपसे भी जानेपर कल्याग ही होता है । केवल
उनके पास जाना चाहिये । व भगवान्के अन्तरङ्ग प्रेमी हैं,
वे भगवत्येभियोंकी अभिवृद्धि करनेमें ही लगे रहते हैं ।
यदि वे हिरण्याक्षके पास अभी नहीं आते तो सम्भव है,
उसके उद्धारमें विलम्ब हो जाता । उन्हें यह बात असह
यी, आसिर उसे उन्होंने भेज ही दिया ।

हिरण्याक्षने योद्धी ही दूर चलनेके बाद देवा कि समुद्र-
में उथल-पुथल मचाते हुए वरह भगवान् आ रहे हैं ।
उनकी आसोंसे एक ऐसी ज्योति निकल रही है, जिससे
दौतपर रक्की हुड़ पृथ्वी पुष्ट हो रही है । उसने हॉस्टे हुए
कहा—“रे शूकर ! त अपनेको वडा चतुर समझता है ? यह
पृथ्वी हमारी ह, हम रसातलवासियोंकी सम्पत्ति है । मेरे
देवते देखते तू इसे ले जाना चाहता है, यह नहीं हो

सकता । हमारे शत्रुओंने तुझपर यह भार सौंपा है; परतु न तुझमे वल है, न गति । तू यों ही टट्टीकी ओट शिकार किया करता है । तुझे केवल अपनी मायाका वल है । अभी तुझे ममास करके मैं अपने मित्रोंको सुखी करता हूँ । जब मेरी गदासे तेरा मिर फट जायगा और तू मर जायगा तब तेरे वलपर जीनेवाले शृंगि और देवता स्वय ही मर जायेंगे । आ, मैदानमें उतर आ । अभी मैं तुझे इसका मजा चखता हूँ ।'

भगवान्‌ने देखा कि पृथ्वी भयभीत हो रही है । उसकी वात सुनकर भी उन्होंने उसपर ध्यान नहीं दिया । वे मस्तीके साथ चलते रहे । हिरण्याक्ष उनके पीछे-पीछे चलता हुआ कह रहा था कि 'जो निर्लज है, असज्जन है, उनके लिये निन्दनीय क्या है ।' ललकारते हुए शत्रुको छोड़कर इस प्रकार भागना कायरता है ।' परतु भगवान्‌ने तनिक भी ध्यान नहीं दिया । उन्होंने जलके ऊपर आकर पृथ्वीको रक्खा और उसमें अपनी शक्ति स्थापित करके उसे स्थिर कर दिया । हिरण्याक्षके देखते-देखते देवताओंने भगवान्‌पर पुष्पवर्पा की । ब्रह्माने स्तुति की । सर्वत्र आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा ।

अब भगवान्‌ने हिरण्याक्षपर अपनी कठोर दृष्टि डाली ।

(७)

भगवान्‌की दृष्टि कभी कठोर नहीं होती । अपने नन्हे-नन्हे शिशुओंपर परम दयालु भगवान् कभी कठोर दृष्टि डाल ही नहीं सकते । वेसी दृष्टि तो शत्रुओंपर, स्पर्धा करनेवालोंपर डाली जाती है । परतु भगवान्‌से स्पर्धा करनेवाला, शत्रुता करनेवाला कोई है ही नहीं । लोग अपने अजानके कारण भगवान्‌पर शत्रुताका आरोप करते हैं, परतु उनपर भी भगवान्‌का भाव कोमल ही रहता है । वल्कि औरोंकी अपेक्षा अधिक कोमल रहता है । वे अधिक दयाके पात्र हैं । उन्हें अति शीघ्र वे अपने पास बुला लेना चाहते हैं ।

भगवान्‌ने हिरण्याक्षकी ओर देखकर कहा—'नीच दैत्य ! सचमुच मैं शूकर हूँ और तुम्हारे-जैसे ग्रामसिंहों (कुत्तों) को छूँढ़ा करता हूँ । वीर ! अब तुम मृत्युके पजेमें आ गये हो, तुम्हारा यह वहकना शोभा नहीं देता । मान लो मैं तुम्हारी सम्पत्ति पृथ्वी चुराकर लाया हूँ और तुम्हारी गदाके भयसे भागता भी हूँ, परतु अब तो किसी प्रकार तुम्हारे सामने खड़ा हूँ न । तुम्हारे-जैसे वलवान्‌से वैर पैदा करके जा हो कहों सफता हूँ ? आओ, दो हाथ देख लो । तुम्हारी जितनी शक्ति हो, मेरा अनिष्ट करनेके लिये उसे

लगा दो । मुझे मारकर अपने मित्रोंके ऑसू पौछो । तुमने प्रतिज्ञा की है न, उसे प्रीरी करो । जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता, वह सभ्य पुरुषोंकी गिनतीमें नहीं आ सकता ।'

भगवान्‌की यह आक्षेपभरी वात सुनकर तथा अपने सामने ही देवताओंद्वारा उनका सम्मान देखकर और अपनी इच्छाके विपरीत जलपर पृथ्वीको स्थित देखकर क्रोधके मारे हिरण्याक्ष जलने लगा । उसका सारा शरीर कॉपने लगा । लब्धी सौंमें चलने लगीं । अपनी गदा उठाकर बड़े वेगसे भगवान्‌के बशःस्थलपर उसने प्रहार किया । परतु भगवान्‌ने अपना शरीर टेढ़ा कर दिया और उसका आकमण व्यर्थ हो गया । अपनी गदा उठाकर वह जोरसे द्वुमाने लगा । भगवान् भी अपने दॉतोंसे ओठ दवाकर क्रोधका अभिनय करते हुए हाथमें गदा लेकर दौड़े और हिरण्याक्षकी भौंहोंमें एक गदा लगायी ।

अब दोनोंमें गदायुद्ध होने लगा । जैसे दो मदमत्त सॉड़ आपसमें लड़ते हैं, वैसे ही वे दोनों एक द्वूसरेपर प्रहार करने लगे । युद्ध देखनेके लिये ब्रह्मा आदि देवता तथा शृंगिराण अपने-अपने विमानपर चढ़कर वहाँ आ गये थे । जब उन्होंने देखा कि बड़ी देरसे युद्ध चल रहा है और अभी हिरण्याक्ष थका नहीं, तब उनके मनमें कुछ-कुछ चिन्ता हो गयी । ब्रह्माने कहा—'भगवन् । आप इससे ऐसा खेल क्यों खेल रहे हैं । प्रभो ! जो लोग आपके चरणोंकी शरण ग्रहण किये हुए हैं या करना चाहते हैं, उन देवताओं, ब्राह्मणों, गौओं और सम्पूर्ण प्राणियोंका यह शत्रु है । यह निरपराधोंका अपराधी है, सज्जनोंको भयभीत करनेवाला है, इसका जीवन पापमय है । हमारे ही वरसे इसे ऐसी शक्ति प्राप्त हो गयी है । यह अपनी जोड़ीका योद्धा हूँठता हुआ त्रिलोकीमें विचरण किया करता है और लोगोंको वड़ा कष्ट देता है । यह किसीकी वात नहीं मानता । वड़ा कपटी है, दुष्ट है । प्रभो ! इसके साथ वालकोंकी भौति खिलवाड़ न करें । यह सॉप है, सॉप । इसका कोई विश्वास नहीं । अभी-अभी सध्याकाल होनेवाला है, निशाचरी वेला होनेपर इसका वल वढ़ जायगा । वह समय आनेके पहले ही इसका सहार कर दीजिये । यह समय हमकी मृत्युके लिये वड़ा ही अच्छा है । हमलोगोंका कल्याण कीजिये, हमारा कष्ट मिटाइये । भगवन् । आपकी जय हो ॥ आपकी जय हो ॥'

प्रजाके निपाट औं। प्रेमभरे उनन सुनकर भगवान्से कान्तियोगम स्वीकार किया। भगवान्से गदे जोसे एक गदा चलाई। परतु वगनेस पहले ही हिण्यासने उनकी गढापर अपनी गदामे छगा आकमण किया कि भगवानकी गदा उनसे आधासे दृटार गिर पड़ी। तीनों लोकमें हाहाकार मन गया। हिंसे गर्वामध्ये नारी स्थानिका गहर हो गया। उन्होंने भगवान्से आधासे दृटार गदा गिर जाय, तर रद्दी नभूत गयी। परतु रभी-अभी भगवान् अपने भगवान् रूप हिंसाने के लिये एम्सी परिवर्त्ति भी पैदा कर दिया गया है। हिण्याक्ष उनसा भक्त था न। हिण्याक्ष रूप भगवान्सन ही रह है।

रजारी रूप गमय हिण्याक्षको अपगर भिल गया था। जहाना तो भगवान्सर दुराग आकमण कर देता, परतु युद्धके भर्ती दृष्टिमे औं भगवान्सों कोषित करनेकी इच्छासे उगन ऐमा नाली रिया। भगवान्से मन र्ही मन उनकी प्रश्ना र्ही और जप्तना भगवान्से प्रश्ना किया। उनके हाथमें चक जप्त रहा गहा था और आकाशमें देवतालोग उनको देख परदार प्रगत हते हुए भगवान्से प्रार्थना कर रहे थे कि श्री प्रभ मे श्री रूपरा अन्न रख दें। हाथमें चक धुमाते देखकर अपने दोस वीष्मित दृष्टि और ‘अन मर गये’ गद जहाना हुआ उनसे भगवान्सर आकमण किया। भगवान्से चाय देखे ऐसी टोकर लगायी कि उनकी गदा गिर पड़ी। भगवान् अपने हाथासे उनकी गदा उठाकर देने लगे, परतु उनसे लिया नहा।

अब उनसे प्रिश्न उठाया, परतु आकमण करनेके पहले ही भगवान्से अपने नक्को उनको सण्ठ-गण्ड कर दिया। इसके बाद हिण्याक्ष अन्तर्गत होकर माया युद्ध करने लगा। और सगारम तहलका मच गया। प्रजाको ऐसा माइम हुआ कि अभी प्रलय हो जायगा। जोसे आँधी चलने लगी। धूलमे दिशाएँ भर गयीं, पत्थरोंकी वर्गी होने लगी, आकाशमें भयकर गर्जना होने लगी और खूनकी, पीरकी, हँडियोंकी वर्गी होने लगीं। रङ्गे-रङ्गे पहाड़ उड़ते हुए शत्रोंकी वर्गी कहते हुए दीपने लगे। ढाकिनी शाकिनी आदि बाल खोलकर नगे भिर हाथोंमें सप्तर लिये धूमने लगीं। सभी भयभीत हो गये।

भगवान्से सुदर्शन चक्रका प्रयोग किया। क्षणभरमें ही सारी माया नष्ट हो गयी। उह भगवान्सके सामने आकर बलपूर्वक लिपट जाना चाहता था कि भगवान्से उसके

सामनें एक ऐसा धूमा जमाया कि उसका भिर फट गया, मुँहसे घून गिरने लगा और वह धड़ामने जमीनपर गिर पड़ा। उस समय दितिकी छाती कॉप रही थी। उसके सानोंसे घून उन्हें लगा था।

हिण्याक्षकी मृत्यु हो जानेके पश्चात् मरे समारमें आनन्द भज्ञ रह गया। श्रूपि, मुनि, देवता आ-आकर भगवान्सकी पूजा रखने लगे। सुर सुन्दरियोंने पुष्पवर्षा की, अमराएँ नाचने लगा, सभने भगवानकी रत्नति की। भगवान्से सम्मान पूर्वक सरको विदा रिया।

विभिन्न पुराणमें हिण्याक्षकी कथा विभिन्न प्रकारसे आती है। वह सभ ऋन्यभेदसे अवता एक ही ऋन्यमें यथा सम्भव घट सकती है। किसी किसी पुराणमें लिखा है कि किसी समय पर्वतोंके अत्याचारसे ऊपर कर देवताज इन्द्रने उनके पाँच काटना शुरू कर दिया। कई पर्वत भयभीत होकर पातालमें चले गये। इन दिनों पाताल ही असुरोंकी वस्ती थी। पर्वतोंने असुरसे कहा कि ‘देवतालोग छोटे होनेपर भी तुमपर गज्य करते हैं और तुमलोग बड़े होकर भी उनके शासनमें रहते हो। यह बात तुम्हारे लिये गौवजनक नहीं है।’ पर्वतोंकी थात सुनकर असुरोंको उड़ा छोप हुआ और उन्होंने हिण्याक्षको अपना अधिपति बनाकर देवताओंपर आकमण कर दिया। देवतालोग पराजित हो गये और स्वर्ग छोड़कर भगवान् ह

किसी-किसी पुराणमें दैत्यपति हिण्याक्षके सम्बन्धमें दूसरे प्रकारका वर्णन आता है। वहाँ लिया है कि पुत्रकी कामनासे इसने महादेवकी दीर्घकालितक उपासना की थी। जब इसकी तपस्या और आराधनासे प्रसन्न होकर आशुतोष भगवान् शङ्करने इसे अपना दर्शन दिया और वर माँगनेको कहा, तब हिण्याक्षने उसे अन्धक नामका एक पुत्र दिया। भगवान् शङ्करने उसे अन्धक नामका एक पुत्र करके साथ देवताओंसे युद्ध किया और उन्हें पराजित करके अपने पुत्रके साथ पृथ्वीको भी पातालमें ले गया। उस समय देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान्से बाहावतार धारण किया और पातालमें जाकर हिण्याक्षका वध करके पृथ्वीका उड़ार किया। अस्तु,

इम प्रकार पुण्योमे विभिन्न प्रकारसे इमका वर्णन हुआ है। कहीं-कहीं चार-चार, पॉच-पॉच पुत्रोंके नाम मिलते हैं और कहीं-कहीं विना पुत्रके ही युवावस्थामें इमके वधकी वात मिलती है, परतु नर्वव्र इमका वय भगवान् वाराहके द्वारा ही हुआ है। हिरण्याक्षके साथ भगवान् की दयालुताकी कथा जुड़ी हुई है।

स्तुति-प्रार्थना आदि होनेके पश्चात् भगवान् ने सबको सम्मानपूर्वक विदा कर दिया और वे स्वयं पृथ्वीके प्रेम और प्रार्थनामें विवश होकर उसीके पास रहने लगे।

(८)

भगवान् दयापरवर्ग हैं। उनका स्वभाव इतना दयालु है कि जिसको उन्होंने अपने लिये छटपटाते देखा, उसीके हो गये। वे अपने लिये किसीको दुखी देख ही नहीं सकते। समानके जीव पुत्रके लिये, धनके लिये जितना व्याकुल होते हैं, यदि उसका शतांश भी भगवान् के लिये व्याकुल हो तो भगवान् मिले विना न रहे। एक दिन समयपर पुत्रके न वानेपर जितनी वेचैनी होती है, दस-पॉच दिन पतिका समाचार न मिलनेपर जितना कष्ट होता है और अपनी पूँजी स्वो जानेपर जितना शोक होता है, यदि भगवान् के लिये भी उतना ही हो तो वे अवश्य मिल जायें। उनकी नीति ही है कि वो जितने प्रेमसे उनका भजन करता है, वे भी उतने ही प्रेमसे उसका भजन करते हैं। हम वाहर-नाहर चाहे जितना चिह्नायें, चाहे जितने ऑस्‌गिरायें, वे तो हृदय ही देखते हैं और मच्छी उस्तुकता होते ही रीझ जाते हैं।

आज वे पृथ्वीके हैं। पृथ्वीके स्वामी हैं, पृथ्वीके जीवन-सखा हैं, पृथ्वीके प्राण हैं और पृथ्वीके मर्वस्व हैं। पृथ्वी उनके विना जीवित नहीं रह सकती। पृथ्वी उन्हें देखे विना एक ध्यानको कल्य समझती है। प्रेमसे, सचाईसे उनकी सेवा करती है, उनके चरणोंकी दासी है। पृथ्वीको छोड़कर भगवान् भला और कहीं कैसे रह सकते हैं। नित्य नयी-नयी लीला होती है, नयी-नयी वातें होती हैं। प्रेमचर्चामें ही वड़े-वड़े आध्यात्मिक रहस्य समझा दिये जाते हैं। भगवान् की एक-एक क्रिया अपने प्रेमीको प्रसन्न करनेवाली होनेके साथ ही जगत्के हितकी भी होती है। प्रतिदिन ऐसी ही वातें होती रहीं और वहुत दिनोंतक होती रहीं, वे सब अवर्ण-नाय हैं।

एक दिन पृथ्वीने भगवान् के चरण पकड़कर प्रार्थना की कि ‘भगवन्।’ आप इसी प्रकार अनेकों वार मेरा उद्घार करते हैं। मुझे अपनाते हैं और समय-समयपर जब मैं पापियोंके,

दुरचारियोंके भाग्ये दवने लगती हैं तब आप अवनार धारण करके मेरी रक्षा करते हैं। गम, कृष्ण, मल्ल, कृष्ण आदि अवतार आपने मेरे ही लिये धारण किये हैं। मुक्तपर आपकी अनन्त कृपा है। मैं आपकी कृपामें दयी हुई हूँ। आप चिलोकीनाथ होकर भी मेरे साथ प्रियजनोंकी भौति व्यवहार करते हैं। यह आपकी कृपा नहीं तो और क्या है? परंतु प्रभो! आपकी इतनी कृपा होनेपर भी मैं आपके स्वल्पमें अनभिज ही हूँ। आपका वास्तविक स्वस्य क्या है, मुझे यह जाननेकी वडी इच्छा है।

पृथ्वीकी वात सुनकर भगवान् वडे जोरसे हँसे, उनके हँसते ही पृथ्वीने देखा कि उनके अंदर ही वस्ता, कठ, इन्द्रादि देवता, लोकपाल, दिक्षाल, ग्रह, नदीत्र, तारा, पञ्चभूत, ऋषि, मुनि, मनुष्य आदि सभी स्यावर-जङ्गम स्थित हैं। चतुर्दश भुवन, तीनों लोक, अष्टधा और एकवा प्रकृतिको उनके अदर ही देखकर पृथ्वी आङ्गचर्चन्चकित हो गयी। उसका भारा शरीर कॉपने लगा। ओँसे वद हो गयी।

ओँसे खुलनेपर पृथ्वीने देखा कि भगवान् का वह आङ्गचर्चयमय रूप अब नहीं है। वे क्षीरसागरमें शैष-शाय्यापर शयन कर रहे हैं। लक्ष्मी उनकी सेवा कर रही है, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए हैं, शीतल-मन्द-सुगन्ध दिव्य वायु धीरे-धीरे पंखा झल रहा है, जिससे पीताम्बर हिल रहा है। उस क्षीरसागरमें, धवलताके समुद्रमें भगवान् का श्यामसुन्दर श्रीविग्रह अद्भुत शोभा पा रहा है। वास्तवमें श्याम वस्तुका दर्शन अन्धकारमें नहीं होता, प्रकाशमें ही होता है। उनके इस रूपको देखकर और मन्द मुस्कान तथा प्रेमभरी चित्तवन्को देखकर पृथ्वी विहृल हो गयी। वह प्रेमपूर्वक भगवान् की स्तुति करने लगी।

अभी स्तुति पूरी भी नहीं हो पायी थी कि भगवान् पुनः वाराहल्पमें हो गये और भगवान् की यह लीला देखकर पृथ्वी चकित-सी हो रही थी। भगवान् ने कहा—‘पृथ्वी! तुम मेरा वास्तविक स्वरूप जानना चाहती हो, यह वडी अच्छी वात है। मेरे स्वरूपका जान वडा ही हुर्लम है। जिसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, जिसने मेरी भक्ति नहीं की है, वह मेरे स्वरूप-शानका अधिकारी नहीं। परतु तुम तो मेरी प्रिय भक्त हो, तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध है, तुम्हें मै सक्षेपमें ही बताता हूँ।’ भगवान् ने कहा—

‘देवि! मेरा वास्तविक स्वरूप अनिर्वचनीय है। तुम उसे कैसे जानना चाहती हो। कानोंसे सुनकर उसका एक काल्पनिक चित्र बनाना चाहती हो। यह असम्भव है। न मैं स्वयं वाणीसे उसका वर्णन कर सकता हूँ, न तो तुम अपनी

हमसे बोलो, अपने हाथोंसे हमारे आँखू पोंछो ।'

"सूर्यास्त हो गया, परंतु वे सब सुयज्ञके शबके पास आती पीट-पीटकर रोते ही रहे । अब यमराजसे नहीं देखा गया, वे एक पाँच वर्षके बालकका वेप धारण करके उनके पास आये । उन्होंने कहा—'अरे ! तुमलोगोंकी अवस्था तो बहुत बड़ी है, परंतु तुम्हारी बुद्धि मुझ बालक-जितनी भी नहीं है । रोज-रोज देखते हो, सभी तो मर रहे हैं, अमर कौन है ? फिर इतना रोने-धोनेकी क्या जरूरत है ? देखो, मैं नन्हा-सा बालक हूँ, मेरे माँ-आपने इस धोर जंगलमें मुझे छोड़ दिया है । देहर, भैंडिया आदि मेरी ओर देखतक नहीं सकते, क्योंकि जो गर्भमें रक्षा करता है, वह इस समय भी रक्षा करनेके लिये मौजूद है । भाई ! तुमलोग क्यों इतना रोते हो ? हम सब तो किसीके खिलौने हैं । जब मौज होती है, वहा देता है और चाहे जब विगाड़कर सब वरावर कर देता है । अपने कर्मके अनुसार सभी चक्रर काट रहे हैं, इन्हें कोई रोक नहीं सकता । जो होनेवाला है, वह होकर ही रहेगा । देखो, अभी कलकी वात है, मैंने अपनी आँखों देखा था, चिंडियोंकी एक जोड़ी बड़े सुन्दर पेड़पर धोंसला बनाकर रहती थी । उनमें आपसमें बड़ा प्रेम था । मस्तीके साथ चरते-चुगते थे । एक बहेलिया आया । उसने अपना जाल फैला दिया । उस समय पति था नहीं, पढ़ी लालचमें पड़कर जालमें फँस गयी । जब पति आया और अपनी पढ़ी-को जालमें पड़ी देखा तो शोकाकुल होकर रोझे लगा । तब-तक बहेलियेने उसे भी अपने काव्यमें कर लिया ।'

"उस बालकने अपनी ओर उन रोनेवालोंको आकर्षित करते हुए कहा—'हम सब कालके जालमें फँसे ही हुए हैं । न जाने कब हमें चवा जायगा । अपनी-अपनी चिन्ता करें । हम मरनेके पहिले सावधान हो जायें । चलो, क्रिया-कर्म करो । अब शोक करनेका समय नहीं है ।'

हिरण्यकशिपुने अपनी मौ दिति और वहू भानुमतीको सम्बोधित करते हुए कहा—'उस बालककी वात सुनकर सब लोगोंने शोक छोड़ दिया और वे क्रिया-कर्ममें लग गये । इस जगत्‌की यही गति है । जो हो गया, सो हो गया । अब शोक करनेसे मेरा भाई लौट नहीं सकता ।'

हिरण्यकशिपुकी वात सुनकर उन्हें कुछ ढाढ़स हुआ । वे घरके काम-काजमें कुछ-कुछ योग देने लगे । कहते हैं कि भानुमतीने किसी वैष्णवका कटा हुआ सिर देखे विना भोजन नहीं करती थी और क्रूर दैत्य हिरण्यकशिपुने इसका

प्रबन्ध कर रखा था । राज्य तो उसका हो ही गया था, सब दैत्य उसकी आज्ञा भी मानते थे, उसके सामने कोई पड़ता भी न था; परंतु हिरण्यकशिपुके अन्तःकरणमें एक प्रकारका भय सर्वदा ही बना रहता था । वह सोचता कि मेरा भाई तो मुझसे भी बलवान् था, जब विष्णुके हाथोंसे वह भी नहीं बच सका तो मेरा क्या ठिकाना ? पता नहीं, वह कब आक्रमण कर दे ! उसका चेहरा उदास रहता ।

एक दिन हिरण्यकशिपुकी पढ़ी कथाधूने बड़ा हठ किया, तब कहीं उसने अपने मनकी वात बतायी । दोनोंमें सलाह हुई कि तपस्या करनी चाहिये । तपस्या करके ऐसी शक्ति प्राप्त की जाय कि त्रिलोकीका राज्य निष्कण्टक हो जाय और हम अमर हो जायें । निश्चय होनेके बाद हिरण्यकशिपु तपस्या करनेके लिये चला गया । उन दिनों कथाधू गर्भवती थी ।

० किसी-किसी पुराणमें ऐसी कथा आती है कि जब हिरण्यकशिपु तपस्या करने लगा, तब इन्द्रकी प्रेरणासे दो ऋषि पक्षीका वेश धारण करके उसके पास आये और 'नमो नारायणाय'का उच्चारण करने लगे । दो-तीन बारतक सहन करनेके पश्चात् उसे क्रोध आ गया और वह धनुष-बाण उठाकर उन्हें मारने दौड़ा । वे तो मिले नहीं, परंतु तपस्यामें विघ पड़ गया । हिरण्यकशिपु लौटकर घर आया और अपनी पढ़ीसे वह समाचार कह रहा था कि इतनेमें ही 'नारायण' मन्त्रका उच्चारण करते समय कथाधूको गर्भ रह गया । इसी मन्त्रके प्रभावसे प्रह्लाद-जैसे भक्त उसके गर्भमें आये ।

पढ़ीकी प्रेरणासे हिरण्यकशिपु पुनः तप करने चला गया ।

(२)

ऐसा देखा जाता है कि इस मायाके झपेटेमें आकर बड़े-बड़े लोग भी चक्कर खाने लगते हैं । पहले चाहे जितने धैर्यशाली वनते रहे हों, विपत्तिकी चोट उन्हें विचलित कर देती है । सम्मान पाते-पाते आदत इतनी विगड़ जाती है कि अपमान होते ही, वे अपनेको काबूमें नहीं रख पाते । शत्रुताका चिन्तन करते-करते वे उसके प्रवाहमें इतने वह जाते हैं कि अपनेको सम्हाल नहीं पाते । उनके धैर्यका वाँध दूट जाता है । उनके काम पञ्चां-जैसे होने लगते हैं । यह दैवी सम्पत्तिका लक्षण नहीं है । दैवी सम्पत्तिका अर्थ है, अद्विष्ट धैर्य ! परंतु भगवान् अपने जनोंकी रक्षा करते आये हैं, करते हैं और करेंगे ।

हिरण्यकशिपुके तपस्या करनेके लिये चले जानेपर

भाव वना रहा तो ये महान् कष्ट देनेवाले बन जाते हैं।

जरीरके माथ सम्बन्ध ही अर्थात् यह भै हूँ, यह मेरा है—इस प्रकारका भाव ही साधारण जीवोंकी प्रधान दुर्वलता है। इसीसे जब कभी जरीर और जरीरके सम्बन्धियोंका विच्छेद होता है, तब उन्हें बड़ा कष्ट होता है।

यह बात उस समयकी है, जब बाराह भगवान् ने हिरण्यकश्चक वध कर डाला था। उसकी माता दिति, उसकी पत्नी भानुमती, उसके भाई हिरण्यकश्चिपु और समस्त परिवार बड़ा हुआ था। चारों ओर कुहराम मचा हुआ था। कोई शोकसे पागल होकर रो-पीट रहा था, किसीकी धिनिधी बैधी हुई थी। उसकी पत्नी भानुमती तो सती होनेके लिये चिताके पाम जानेको उच्यता थी। दिति किंकर्तव्यविमृद्ध थी। एक ओर माताका वास्त्वपूर्ण हृदय पुत्र-शोकमें व्याकुल हो रहा था, दूसरी ओर अधिक व्याकुलता प्रकट करनेसे वहूके सती हो जानेका भय था, उसको समझानेमें अड़चन पड़ती थी।

हिरण्यकश्चिपुके हृदयमें ह्रौप और क्रोधकी आग धधक उठी थी। उसने सबको रोक दिया। उसने कहा—‘मेरे बीर भाईकी अन्त्येष्टि किया साधारण लोगोंकी भौति नहीं होगी। सम्पूर्ण देवताओंको स्वर्गसे मार भगानेके पश्चात् बीर पुरुषोंको जैसा कर्म करना चाहिये, वैसा ही किया जायगा।’ उसने दैत्योंको सम्बोधन करके कहा—‘बीर दैत्यो! शत्रुओंने अवसर पाकर विष्णुकी सहायतासे हमें नीचा दिखाया है, हमारे भाईको मार डाला है। देर मत करो। अभी धावा बोल दो। मैं अपने भाईके हत्यारेको मारकर शत्रुके खूनसे उसका तर्पण करूँगा। यदि मेरे भाईका हत्यारा मार डाल जाय तो सभी देवताओंको मरा हुआ ही समझो, परतु वह तो छिपा रहता है। उसका मिलना कठिन है; किंतु उसको मारनेका एक उपाय है। तुमलोग पृथ्वीमें जाकर द्विजातियों-की तपस्या, यज, स्वाध्याय, व्रत और दानको नष्ट कर दो। जहाँ-जहाँ ब्राह्मण, गौ, वेद, वर्णश्रम आदि हों, वहाँ-वहाँ आग लगा दो, उन देशोंको नष्ट-प्रष्ट कर दो, क्योंकि इन्हेंके आधारपर देवताओं और मेरे उस मायावी शत्रुका जीवन है। इनके नष्ट हो जानेपर वे स्वयं नष्ट हो जायेंगे।’

अपने स्वामी हिरण्यकश्चिपुकी आज्ञा पाकर छुड़-के-छुड़ दैत्य पृथ्वीपर आकर उत्पात मचाने लगे, देवताओंने स्वर्ग छोड़ दिया, सर्वत्र असुर-भावका बोलबाला हो गया, हिरण्यकश्चिपुने अपने भाईकी अन्त्येष्टि किया की। अबतक

माताने समझा-बुझाकर इस बातपर भानुमतीको तैयार कर लिया था कि वह अपने शत्रुओं और उनके अनुयायियोंकी दुर्दशा देखनेके लिये जीवित रहे, परतु अभी दिति और भानुमती दोनोंका ही शोक मिटा नहीं था। वे दोनों विपादमें ही अपना समय व्यतीत करती थीं।

हिरण्यकश्चिपुने उन्हें समझाया और खूब समझाया। आसुरभावके लोग ऐसे ही अवसरापर वेदान्तका उपयोग किया करते हैं। उनका अपना जीवन तो धोर भौतिकतासे सना हुआ होता है, परतु दूसरोंके लिये वे अपनी विद्या-बुद्धिका बहुत अधिक उपयोग करते हैं। हिरण्यकश्चिपुने कहा—‘मूँ और वहू। मेरे बीर भाईके लिये इतना शोक करनेकी आवश्यकता नहीं है। बड़े-बड़े बीर जैसी अवस्थामें मरनेकी कामना किया करते हैं, वैसी ही मृत्यु उन्हें प्राप्त हुई है। यह जरीर अनित्य है, किनीका कोई मायी नहीं है। जैसे चौराहेके पौसरेपर चारों ओरसे लोग आकर इकट्ठे हो जाते हैं, घड़ी-दो-घड़ी बात-चीत कर ली, फिर अपना राता ले लेते हैं, वैसे ही अपने कर्मोंके अनुसार लोग कुछ दिनों-तक पिता-पुत्र-पति आदिके रूपमें रह लेते हैं और समय आनेपर चले जाते हैं। जैसे पानीकी चञ्चलतासे उसमें पड़ी हुई चृक्षकी छाया भी चञ्चल मालम होती है, जैसे ओखोंकी चञ्चलतासे सारी दुनिया चञ्चल दीखती है; वैसे ही शरीरकी चञ्चलतासे आत्मा भी चञ्चल-सी जान पड़ती है। मनके सुख-दुःख व्यर्थ ही आत्मापर डाल दिये जाते हैं और इसीसे लोगोंको शोक-मोहके पजेमें आना पड़ता है। बास्तवमें आत्मा शुद्ध है, जन्म-मरणसे रहित है।’

हिरण्यकश्चिपुने समझानेके सिलसिलेमें एक दृष्टान्त देते हुए कहा—‘मूँ। थोड़े दिनोंकी बात है, उजीनर देशमें सुयक्ष नामका एक बड़ा यशस्वी राजा था, युद्धमें शत्रुओंके हाथों उसकी मौत हो गयी, उसके भाई-बन्धु उसे धेरकर खड़े हो गये, कलका राजा आज जमीनमें पड़ा हुआ है, उसका शरीर खूनसे लथपथ है, बाल विखरे हुए हैं, ऊँखें उलट गयी हैं, दॉतोंसे ऊँठ दबा हुआ है, हाथ कट गये हैं, उसकी छियों, उसकी माताएँ छाती पीट-पीटकर ‘हा नाथ।’ ‘हा बेटा।’ कहती हुई रो रही हैं। उनके विलाप और विषादकी सीमा नहीं है। वे कह रही थीं—‘ब्रह्मा। तुम वड़े निठुर हो। हमारे प्राणप्रिय स्वामीको इस हालतमें पहुँचा दिया। हमारा बेटा आज जमीनपर पड़ा हुआ है। राजन्। तुम तो हमसे बड़ा प्रेम करते थे, आज एकाएक छोड़कर कहाँ चले गये। आओ,

हिरण्यकशिपु भी प्रह्लादपर बड़ा स्नेह रखता था । यों तो प्रह्लादसे बड़े-बड़े पुत्र थे परंतु जब ये गर्भमें थे तब कयाधूको बड़ा कष्ट भोगना पड़ा था, इसलिये उसको प्रसन्न करनेकी दृष्टिसे तथा प्रह्लादके सौन्दर्यसे आकर्षित होनेके कारण वह इन्हें बहुत मानता था । कभी-कभी किसी देवताको, साधुको दण्ड देते समय यदि प्रह्लाद आ जाते तो फिर उन्हें छोड़ देना पड़ता अथवा उस समय उस वातको टाल देना पड़ता । कभी-कभी तो उन्हें वचानेके लिये प्रह्लाद उपवास तक कर बैठते थे । जब हिरण्यकशिपु पूछता कि 'वेण ! तुम इनके लिये उपवास क्यों करते हो ? क्या मुझपर दयाव ढालकर अभीसे मुझे अपने वशमें करना चाहते हो ? जब मैं बुझा हो जाऊँगा, तब तुम राजा होना और जैसी इच्छा हो, करना ।' प्रह्लाद कहते कि 'पिताजी ! मैं आपपर कभी दयाव ढालना नहीं चाहता । उन्हें दण्ड भोगते देखकर मुझे बड़ा कष्ट होता है । कभी-कभी तो मेरे मनमें आता है कि इनके खानपर मुझे ही दण्ड दिया जाता तो बड़ा अच्छा होता । पिताजी ! मैं आपके सामने रोता हूँ, गिरिगिराता हूँ; यदि मेरे पूर्वजन्मके पुण्य जगे रहते हैं, मेरा अन्तःकरण शुद्ध रहता है, मैं सचाईके साथ आपसे प्रार्थना करता हूँ तो आप छोड़ देते हैं । यदि मेरे पुण्य जगे नहीं हुए, मेरा अन्तःकरण शुद्ध नहीं रहा और मैं सचाईसे प्रार्थना नहीं कर सका तो आप नहीं छोड़ते । मैं इसलिये उपवास नहीं करता कि आपपर कोई दयाव पड़े, मैं शासन करूँ । उपवास इसलिये करता हूँ कि मेरे पाप नष्ट हो जायें, मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो । मैं गरीबोंके लिये सचाईसे प्रार्थना कर सकूँ । सच्ची प्रार्थना अवश्य सफल होती है ।'

इस नन्हे-से बालककी ऐसी वात सुनकर हिरण्यकशिपु चकित हो जाता ! वह सोचने लगता कि यह दैत्यवंशके विपरीत क्यों बोल रहा है ? इसने ये बातें कहाँसे सीखीं ? क्या कोई इसे सिखा जाता है ?

परंतु फिर उसके मनमें यह वात आती कि 'अभी तो यह बच्चा है, इसे कोई क्या सिखा सकता है ? अब इसको ऐसे मार्गपर लगाया जाय कि इधरसे इसका मन ही हट जाय ।' जह उस समय प्रह्लादकी वात मान लेता । इस कोमल शिशुके संसर्गसे उस क्रूर हिरण्यकशिपुमें भी कुछ कोमलता आ गयी । उसकी कठोरता बहुत कुछ शिथिल पड़ गयी । परंतु अपने बच्चेको सुधारनेकी चिन्ता बढ़ती ही गयी ।

एक दिन हिरण्यकशिपुने कयाधूसे कहा—'प्राणप्रिये ।

मैं त्रिलोकीका राजा हूँ, सभी मेरी आज्ञा मानते हैं, मेरे पास असीम ऐश्वर्य है, तुम्हारे समान अर्डाङ्गिनी है, किसी वस्तुकी मुझे कमी नहीं, कोई अभाव नहीं । जो कुछ चाहिये, जो कुछ मिल सकता है, सब मुझे मिल चुका है; फिर भी मैं चिन्तित हूँ । मुझे दो बातोंकी चिन्ता है—एक तो अपने भाईको भारनेवाले विष्णुसे बदला नहीं ले सका, दूसरे, प्रह्लादका रुख भी मुझे उलटा ही जान पड़ता है । तुम प्रह्लादकी चिन्ता करो, किसी तरह उसे मार्गपर लाओ, मैं विष्णुकी खोज करता हूँ ।'

कयाधूने कहा—'प्राणनाथ ! आप कहते तो ठीक हैं, परंतु इन्हीं दोनों बातोंका भय मुझे भी जान पड़ता है । प्रह्लाद तो अब उपनयन करने योग्य हुआ । उसका संस्कार करवाकर गुरुकुलमें भेज दें, वहाँ दैत्यबालकोंके साथ मिल-जुलकर तथा अपने कुलके अनुरूप शिक्षा पाकर वह बदल जायगा । मैं तो अपनी ओसे चेष्टा करते-करते हार चुकी हूँ । आगे जैसी आपकी आज्ञा ।'

कयाधूकी बात हिरण्यकशिपुको जँच गयी । उन दिनों उसके कुलपुरोहित शुक्राचार्य तीर्थयात्रा कर रहे थे । उनके दोनों पुत्र घण्ड और अमर्क ही गुरुकुलके अध्यक्ष थे । उन्हें बुलवाया गया, विधिपूर्वक यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और प्रह्लाद उनके साथ गुरुकुलमें भेज दिये गये ।

(५)

संसारके सभी काम नियमसे होते हैं । रात-दिन, पक्ष-महीना, ऋतु-वर्ष सब-के-सब नियमित गतिसे चल रहे हैं । सबके जीवनमें एक नियम काम कर रहा है । जो लोग अपनी वासनाओंके कारण नियमकी अवहेलना कर देते हैं, वे प्रकृतिके निदारण प्रहारसे विताड़ित होकर चूर-चूर हो जाते हैं । सभी समाजके, चाहे वह दैत्यके हों या देवताके—एक प्रकारके अपने नियम होते हैं और उनपर चलना ही पड़ता है । चलनेमें ही हित भी है ।

उस दिन नियमके अनुसार राजराजेश्वर हिरण्यकशिपुके प्रिय पुत्रको एक लँगोटी पहनकर भीख भाँगनी पड़ी और पहली भीख उसकी माता कयाधूको ही देनी पड़ी । उसने अपने हृदयके ढुकड़े प्रह्लादको मिक्षुक ब्रह्मचारीके वेशमें देखा और उसे अपनी आँखोंसे ओङ्काल गुरुकुलमें बहुत दिनोंके लिये भेज दिया । कहा जा सकता है कि यदि नियमकी पावंदी न होती, अपने बच्चेके हितका ध्यान न होता तो वह माता, जो अपने लड़केको देखे बिना दो घड़ी भी सुखसे नहीं रह सकती थी, इस प्रकार इतने

देवताओंको अवसर मिला । प्रतिहिंसाके भावसे उनकी दैवी सम्पत्तिपर पट्टा पड़ गया था । उन्होंने दैत्योंसे कम नौच-खसोट नहीं की । जहाँ कामना है, वहाँ यही होता है । प्रसिद्ध है कि ‘काम क्रोधका पिता है और क्रोध जीवको अंधा बना देता है’ । देवताओंमें स्वर्गके सुखोके भोगकी कामना है, उसमें अङ्गूष्ठन पड़नेपर उन्हें क्रोध आना ही चाहिये और क्रोध आनेपर वे कोई कुछत्य कर डालें तो इसमें आश्र्यकी कौन-सी वात है । इसीसे सकाम पुरुषमें दैवी सम्पत्तिकी पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं होती, वह तो उसीमें होती है, जो निष्काम भावसे भगवद्भजन करता है ।

क्रोधके आवेगमें आऽन्न देवताओंने एक-एक दैत्यकी खबर ली । मायेपर कोई था नहीं, वे लड़ते भी तो किसके भरोसे ? विन गडरियेंकी भेड़ोंकी तरह वे सब तितर-वितर हो गये । दैत्योंके भग जानेपर उन्होंने लियोंपर आक्रमण किया । हिरण्यकशिष्युकी न्यौं क्याधू भी उनकी दृष्टिसे नहीं वच सकी । वह उस समय गर्भवती थी । देवताओंके मनमें वह वात यैठी हुई थी कि अब दैत्योंको निर्वाज कर दिया जाय । अतएव वालक होनेपर उसे मार डालनेके लिये वे क्याधूको स्वर्गकी ओर ले चले । क्याधूके रोने-गिरिगिरानेपर उन लोगोंने तनिक भी ध्यान नहीं दिया ।

भगवान्के भक्त वडे दयालु होते हैं । चाहे कोई भी हो, कैसा भी हो, वे किसीको दुखी देख ही नहीं सकते । उनका हृदय पिघलकर पानी हो जाता है । वे उसकी रक्षाके लिये दौड़ पड़ते हैं । क्याधूके हरणकी वात देवर्पिं नारदको माल्म हो गयी । यद्यपि वे उस समय अपनी वीणा वजाते हुए भगवान्के सुभाषुर नामोंके सकृतिनमें भस्त थे, तथापि एक दुखी जीवको संकटसे मुक्त करनेके लिये वे दौड़ पड़े । भजन और दुखियोंकी उपेक्षा ये दंतों वातें इकट्ठी नहीं रह सकतीं । जो सकटमें पड़कर कराहते हुए दुखियोंको दुकुर-दुकुर देखता रहता है, वह कभी भक्त हो ही नहीं सकता । नारद दौड़ पड़े । उनकी वीणा आश्रममें ही छुटकती रह गयी । उन्होंने डॉटते हुए देवताओंसे कहा—‘देवताओ ! आज तुम्हारा बुद्धिमें क्या हो गया है ? तुम्हारा देवत्व कहाँ हवा खाने चला गया है ? तुम्हारी दैवी सम्पत्ति क्या छुस हो गयी है ? वे दैत्य थे, उन्होंने जो कुछ किया, अपने स्वभावके अनुसार किया । परतु तुम्लोग वैसा क्यों कर रहे हो ? क्या तुम्लोग भी दैत्य बन गये ? यह तुम्हें शोभा नहीं देता । कोई चोरी करे

तो क्या नाहुकारको भी उसके घरमें चोरी करके बढ़ला लेना चाहिये ? यह सर्वथा अनुचित है । माना कि उन्होंने तुम्हरे साथ कूरता की, परतु तुम्हें तो वैसा नहीं करना चाहिये । तुम कामसे, क्रोधसे अंधे क्यों हो रहे हो ?’

नारदकी फटकार सुनकर देवताओंका होश कुछ डिकाने आया । वे देवर्पिंके प्रभावसे अनभिज नहीं थे और वास्तवमें तो देवर्पिंके दर्शन, वार्तालाप और मानिष्यसे ही देवताओंके मनमें परिवर्तन हो गया था । सत्सङ्गका प्रभाव ऐसा होता ही है । जब देवताओंने आँखे नीची कर लीं, उनसे कुछ बोला न गया, नये अपराधीकी यह दशा होनी ही है । तब नारदने पुनः कहा—‘अच्छा, जो हो गया, अच्छा ही हुआ । भगवान्की ऐसी ही इच्छा थी । इसके लिये अब विषाद करनेकी जरूरत नहीं है । इस क्याधूको तुम्लोग छोड़ दो । तुम्हें पता नहीं, इसके गर्भमें परम भागवत भक्तरज प्रहाद है । यदि क्याधूको किसी प्रकारका कष्ट हुआ तो अनर्थ हो जायगा । भगवान् सब कुछ सह लेते हैं, परतु अपने भक्तका अपमान नहीं सह सकते । इससे तुम्हें कोई भय नहीं है । तुम्हारा कल्याण होगा ।’

नारदकी वात सुनकर देवताओंने प्रसन्नताके साथ क्याधूको छोड़ दिया । वे भगवान्का परम अनुग्रह मानते हुए स्वर्गमें चले गये । उन्होंने सीचा कि आज भगवान्ने कितनी कृपा की है कि नारदको भेजकर हमारे अदर बढ़ते हुए आसुर भावको दवा दिया है । यदि वे ऐसा न करते तो आज एक भक्तका अपमान हो जाता और हम फिर भगवान्के सामने जाने लायक नहीं रहते । आज हमारी मनोवृत्तियों कैसी हो गयी थी । दैत्योंकी गन्तुताका चिन्तन करते-करते हम्लोग भी दैत्यभावसे पूर्ण हो गये थे । भगवान् ने कृपा करके हमें बचा लिया । वे भगवान्की कृपाका स्मरण करके तन्मय हो गये । आखिर देवता ही थे न ।

उधर देवर्पिं नारदने क्याधूको ले जाकर एक सुन्दर आश्रममें ठहरा दिया । वह वहाँके पवित्र वायुमण्डलमें रहकर अपना समय प्रसन्नतापूर्वक विताने लगी । जगलके हरे-भरे वृक्ष, उनके सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंको देखनेमें उसका मन खूब लगता था । नदीके किनारे बैठकर उसकी हर-हर ध्वनि सुननेमें और तरणोंको गिननेमें वह तन्मय हो जाती थी । पवित्र वायु, पवित्र जल, पवित्र आश्रम और पवित्र व्यक्तियोंके संसर्गसे उसके मनमें भी पवित्रताका सचार हो गया । वह सत्सङ्गके अवसरपर मुनियोंकी वात वडे ध्यानसे सुनती

थी । वर्षी नारद प्रायः आ आपर उमे उपर्युक्त न जाया करते थे ।

एक दिन देवर्षि नामके वृष्ण—वैष्णवी । तपाग अन्तः करण शुद्ध है । तुक्षश दृश्यम् भगवद्वत्त है । भगवान् सि न्दीया मुननमे तुम्हारा भन ल्याए है, यह वह गीवाल्यसी जाए है । तुम आपने गर्वम् वालकरी चिन्ना गा रुग । वह भगवान्मा वपना पार्षद है । उमे राट् कष्ट नहीं हो रुगना । तर तम जाहारी नहीं उम्हा जन्म आया । भगवान्मी छपांत तमें इच्छाप्रसरकी शक्ति होगी ।

वैष्णवी । गमामि चिन्ना करनकी वा कोई बल ही नहीं । एम नर परम चिना परमामामे गर्वद है । उनक वज्र है और इनका ही जाम, जामाम इम उनक गर्व है । लन्म मरण, मयोग चिंता आहि शर्वीकर ही नहीं है, चिन्न व्यामाका कोई गम्भन्न नहीं है । गाँ दृग्भ-आक इम शर्वी-मु गम्भन्न मान ल्याक व्याग ही है । अपने जार्वीपुरुष गम्भन्न-वा चिनार रह इन अट गम्भवाका आदर्ने ना चाहिये । ये गम्भन्न ही शूट हा, करुल इन्हीं ही गा नहीं है, ताक चिन पटाखोंपु गम्भन्न है, वे ली शूट है । जानदृष्टिये इम वानकी जानकर इनक द्वान गम, वस्त्रा व्रग्न्यामा आदिका चिनार न करने परमामाक ही चिननाम गम रुग्ना जाहिये ।

वैष्णवी ना भगवान्मा प्राप्त रुग्नेक वृद्धनमे उपाय है और गम अच्छे हैं परन्तु यह उपाय स्वयं भगवान्म व्यायाम है । हि रुक्मि ना रुक्मिय गुज्ज आप गम्भ भगवान्म बंस ही, वही वर्वानम उपाय है । गुदजनकी वजा, दूरी प्राणियाम पर दशा, जो कुछ अपन पाल हा उनका व्यावरक व्यागाम गमर्णण, गुग्जकी, व्याप्राणकी पुजा, उनकी कथाम अद्वा, उनके गुण-कर्मोंका कार्तन, उनक चण्डकमयाम ज्यान और उनकी गर्भा चिनानेवा तीर्थ आप, गंडिर आदि रुद्धनमें उनक चण्डक गमांत अनन्य प्रम प्राप्त होता है ।

नामने क्षयाद्युमो गुम्याम रुग करने हूण, किं कहा—वैष्णवी ! इन जीवनका एकमात्र लक्ष्य भगव प्रभ आप करना है । नर उनकी मुरु लंबा, दिन्य नाम और अर्नवर्तीनीय गम्भपके गर्भानको मुनकर इनका आनन्द होता है कि वर्गिकी सुन्दर नहीं रहती, गंभाश्व द्वा आता है, आँगाम व्याप, वहन व्यान है और मुननवाय भग इक्कर जाग-जागत गेन, गनि, चिद्वान तथा नामन ल्याना है । मानो उमे किंगी भृतने ही पक्ष, दिया हा । उह कर्मी हैंगना है, कर्मी विल्लारा है, कर्मी आन करने ल्याता है तो कर्मी

ल्याका अप्पत्, नमकार करन ल्याता है । वाग्मार शाग-वापास नामयन, गर्विन्द, व्यार, युक्तन कहकर मान हो जाए है, उमे विनीकी ल्यान्नार्थ नहीं रहती । जीव विद्वा हृता आप जीव गाँ रुग चाल दिया जाय, वैष्णवी ही द्वा जाता है । वैष द्वा पिता हृता हृत्य वी तपावामके पाप जाकर भगवान्मा ही द्वा जाता है । नम जनक उनक भगवार नप द्वा जान है, वैष गम कष्ट जाए है, आवागमनकी समाप्ति ही नहीं है, याद प्राप्त द्वा जाता है और तपावान गिर जाते हैं । इग्निय एकमात्र उन्हाम वजन रुगना इग्नाक करते हैं ।

वैष्णवी ! भगवान् सि आग मनामें फोर्ड कष्ट द्वा नहीं उठाना पड़ता ! उन्हे दैदर्दनेक लिये कही जाना तो तो नहीं पड़ता । त इमार दृश्यम् ही आवायकी भौंनि आवाम् रूपम चिनज गह है । य श्रीकिंक और पार्वतीके व्याप्ति उनक गमन कृष्ट नहीं है, तुक्ष है । आज है, कृष्ट नहीं होगी । इनकी चिनता आदिकर उन्हेका मान करना चाहिये । त किन त्यादृ है, त नीर्जी ऊंची जाम्यांत नहीं दृश्यते, व्यामण, श्रूप, देव्यामें देव्याप नहीं रुगत, पाण्डु, गर्व दाना ही उनक लिये गमन है । नम, तपम्या, यज, परिवेना और ग्रन्थिकी उनक लिये अनिवार्य आवश्यकता नहीं है । दैदर्य, यज, गमन, चिंता, शूट, पश्च, पदी गर्वी उनका वजन करने हैं उन्हे प्राप्त कर लें हैं, इग्निय तुम उन्हीका वजन कर, उन्हीकी शरणमें जाओ । यही ज्यार्थ और यही परमार्थ है ।

नामदकी वाने गुनकर फलायुक्त दृश्यमें नामामाप जापत् द्वा गया और उह उन्हा वानका गमण चिनन कर्मा हैरू तरुगार आवागण करने ल्याती ।

(३)

गणनाआरु और उनक वनाम्यं हूण गार्वपर चक्षो-जालक अर्नविन्द गर्वी गामण जीप चामनाम दृश्यमें हूण, चूल रहे हैं । उनक ग्रामी काम है, वे आगकी पुर्विं लिय ही गर्वी ग्राम उगत है और यही तह कि उनका जीपन, उनकी आगा कामाय ही नहीं है । व कामना वी नहीं कर गफत कि कामर्गिन नीतन वी दाना होगा; परन्तु यह काम वी धूगा है कि वर्वी पुग नहीं होता । आगम जिन्ना वी शिविय, यह वदीर्वी ही धायगी ।

दैदर्यग दिग्धक्षिणपूर्वों किम वातकी कर्मी थी । धन्द-पीदप था, आगकर्मी गना थी, पर्वा-पूर्व व और शा प्रियंकापर एकल्लम व्यापन । परन्तु इतनेम उपकी कामना

त्रूप न हुई । उसने सोचा कि विष्णु भगवानकी सहायनामे हन्द्र आकर्षण कर दे तो सम्भव हैं अपने मार्दकी मौति मुझे भी मौतका गिराए होना पड़े ! व्रत, अब क्या था, मौतमे बचनेकी कामना हुई और वह धोर तपस्यामे ल्या गया । उसकी कामनाका रूप था कि 'मुझे कोई जीत न सके, मैं अजर-अमर हो जाऊँ, मेरा कोई शत्रु न हो और एकमात्र मेरा ही राज्य हो ।'

मन्दराचलकी गहन गुफामें देखी एक अगुलीपर खड़ा होकर, दोनों हाथोंको ऊपर उठाकर, अपलक नयनांसे ऊपर की ओर देखता हुआ, हिरण्यकणिषु अत्यन्त दारण तपस्या करने लगा । उसके सिरपर बड़ी-बड़ी जटाएँ हो गयीं । इसी हालतमे न जाने कितना समय व्यतीत हो गया । दाना-धानी-की तो वात ही क्या, वह अरीरतक नहीं हिलाता था । उसकी तपस्या अग्रिका रूप धारण करके उसके सिरसे निकलने लगी और उसके धूएँ तथा तापसे तीनों लोक व्यथित होने लगे । समुद्र क्षुब्ध हो गया, नदियों करार तोड़कर गाँवोंको छुवाने लगा, पृथ्वी कॉपने लगी, ग्रह-ताराएँ टूट-टूटकर आकाशसे पिरने लगीं, दर्पों दिगाएँ जल उठी और देवता भयभीत हो गये ।

देवताओंने सर्वसम्मतिसे निव्वय किया कि 'अब ब्रह्माके पास चलना चाहिये ।' तदनुसार ब्रह्माके पास जाकर सबने निवेदन किया—'लोकपितामह ! हिरण्यकणिषुकी तपस्याकी ज्यालासे स्वर्ग छुल्स रहा है । हमलोगोंमें इतनी शक्ति नहीं है कि वहाँ शान्तिसे रह सकें । जब तक उसकी तपस्याकी अग्रिसे तीनों लोक जलकर भस्स नहीं हो जाते, तभी तक भगवन् । उसकी शान्तिका उपाय हो जाना चाहिये । आप तो जानते ही हैं कि उसका सकल्य बड़ा भयकर है । उसने संकल्प किया है कि तपस्याके बलसे ही तो ब्रह्मा ब्रह्मा बने हुए हैं ! मैं भी तपस्याके बलपर अपनेको बैसा ही बनाऊँगा । नहीं तो, एक ऐसी सुषिका निर्माण करूँगा, जैसी कभी नहीं हुई थी । वह वैकुण्ठसे भी उत्तम लोक निर्माण करनेकी चेष्टा-में है । आप लोगोंके कल्याणके लिये श्रीम ही कुछ-न-कुछ उपाय कीजिये ।'

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्माने कहा—'नुमलोग धवराओं मत ! जो होगा, अच्छा ही होगा । प्रत्येक विधानमें भगवानका मङ्गलमय हाथ रहता ही है ।'

ब्रह्माका आश्वासन सुनकर देवताओंको कुछ सतोष हुआ और वे अपने-अपने धामको छले गये । इधर ब्रह्मा भी भूगु,

दक्ष आदिके माथ हिरण्यकणिषुके पास पथोरे । उन्होंने देखा कि हिरण्यकणिषुका शर्ग लापना है । श्रग-यान, दीमकही मिट्ठी और बौमके भुग्मुद्रामे वह छिप गया है । शर्गमें चारियाँ ल्या रही हैं । जैसे बाढ़लसे ढके हुए मूर्दमी किरणें चमकती हैं, वैसे ही उसके शर्गसे अद्भुत उर्ध्वोनि निरुप रही हैं । उसकी वह दशा देखकर ब्रह्माने हँसने हुए कहा—'कल्याप-नन्दन ! उठो, उठो ! तुम्हारी तपस्या पूर्ण हो गयी । वेदा ! देवो, आँखें खोलो, मैं तुम्हे वर देनेके लिये तुम्हारे नामने खड़ा हूँ । तुम्हारी जो इच्छा हो मुझमें मौग लो । मैंने तुम्हारे हृदयका बल देखा । तुम्हारी शक्तिकी पर्णिका कर ली । किननी आच्चर्यजनक वात है कि तुम्हारा शर्ग से टैम यस खा गये और तुम्हारे प्राण हट्टियोंमें रह रहे हैं । ऐसी तपस्या पहले किसीने नहीं की थी और न तो आगे करनेकी सम्भावना है । मला, किसमें इतना माहस और शक्ति है कि दिव्य सहस्र वर्षतक विना जल्के प्राणोंको धारण कर सके ! तुम्हारे हम निन्द्रासे, हम धोर तपस्यामें मैं तुम्हारे अर्धन हो गया हूँ । मैं तुम्हारी सब अभिलापाओंको पूर्ण करूँगा । मैं दर्शन व्यर्थ नहीं जाते ।'

ब्रह्माकी वात समाप्त हो जानेपर भी हिरण्यकणिषु न तो उठा और न बोला । उसमें शक्ति ही नहीं थी । ब्रह्माने मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके अपने कमण्डलुका जल उम्पर छिड़का । देखते-ही-देखते उसका शरीर सर्वाङ्गसुन्दर एवं वज्रकी भौति कठोर हो गया । वह अप्रवृ शक्तिमपन्न होकर उठ खड़ा हुआ । अपने मामने ही ब्रह्माको देखकर उसके शरीरमें रोमाछ हो आया, हृदय आनन्दसे भर गया । चरणोंमें साधारण दण्डवत् करनेके बाद उसने प्रार्थना की—'भगवन् । आप ही इस सुषिको बनानेवाले हैं । आप ही इस सुषिके धाता-विधाता हैं । सारे व्यवहार आपकी ही कृपासे चलते हैं । आपने ही अव्यक्तको व्यक्त किया है । सम्पूर्ण सुषिके प्रभु आप ही हैं । आपसे परे और कुछ नहीं है । यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो कृपया पहले मुझे अमर बना दें ।'

ब्रह्माने कहा—'वेदा ! मैं अमर बनानेकी शक्ति नहीं रखता । इस जगत्का वह नियम है कि जो जनसत्ता है, उसे मरना पड़ता है । सारे देवता और कहनेके लिये मैं भी अमर हूँ । परतु वह केवल कहनेकी वात है । हम केवल सौं वर्ष-तक जीते हैं । हमारा माप बड़ा होनेके कारण दूसरे लोग हमें अमर कहा करते हैं । परतु मृत्यु तो हमारी भी होती ही है । इसलिये कोई दूसरा वर मांगो ।'

हिरण्यकशिष्युने कहा—‘अच्छा! यदि आर अमर नहीं कर सकते तो मुझे यही का दीक्षिण्ये कि आरप्री वनामी हुई स्थिका कोई घटक नहीं भए न सके। अहर या भीतर परिणय या गतिमें मेरी भैतू न हो। अकाश या भूमिमें, नवन्प, पश्चु, देवता; दैन्य सर्व, प्राणी, अप्राणी अथवा किसी अवसरे मेरी नृत्य न हो। युद्धमें मेरे लामने कोई ठहर न सके। सभी चुष्टिग भेज एकाविन्य हो और नेह नहून किरीते कम न हो।’

ब्रह्म उसकी तपस्यासे प्रसन्न थे और वह कान भी थी कि उसे कर देनेके लिया और कोई चाह नी न था। उसकी तपस्यासे तीनों लोक ब्रह्म रहे थे, वर न देते तो उसकी क्षमा दशा होती, इनका कुछ-कुछ अनुभाव किया जा सकता है। अन्ततः भगवान्के विगतकी मङ्गलमन्ताग विकास न्यते हुए ब्रह्माने जहा—‘दितिनदन! यद्यपि तुम्हारे नोंगे हुए का दुर्लभ हैं तथाने तुन्हारी को तपस्यासे प्रसन्न होकर मैं उन्हें दिये देता हूँ। तुम्हारी अभिलापा पूर्ण हो।’

हिरण्यकशिष्युने विविष्ट ब्रह्माकी पूजा की और स्तुति की। ब्रह्म उसने नामत पुत्रोंके ताय ब्रह्मलोकको गये। हिरण्यकशिष्युने अपनी राजधानी हिरण्यपुरीकी यात्रा की। उसे देवताओंने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। केवल कुछ सैँदहर देवे हुए थे। उनके आनेमर उमत्ता दैत्य-दानव, उसके भूमि, पुत्र आदि उप इन्हें हुए। राजधानीका एन निर्माण हुआ। शक्तिक्र एकत्रित हुए। देवताओंके अन्यतर देख-चुनकर हिरण्यकशिष्यु कल-भुन गया। उसकी बौतें लाल-लाल हो गयीं, चेहर तपत्तना उठा। उसके बदला लेनेके मात्रसे उसने स्वर्गमर चढाई कर दी। देवताओंको स्वर्गसे भार भगाया, लोकपाल-दिक्षालोंको अपने बद्धमें कर लिया, त्रिलोकी उसके बद्धमें हो गयी। ऐसा कोई नहीं था, जो उसके सामने सुदृश्म ठहर सके। उसने अपनी राजधानी स्वर्गमें बनायी। वह इन्हें महाट्में रहता नन्दनवनका उपमोग करता और देवताओंसे अपनी सेवा करता। गन्धर्व, विश्वधर उसकी तुलि करते अन्तर्गत नाचकर उसे निष्ठाता, विश्वावसु, तुम्हुर आदि उसे गाना सुनाते और संसारमें जो यज्ञ होते, उनका भाग वह स्वयं लेना। पृथ्वी ढकर तिना जोतेन्द्रोंसे अल्प पंडा कर देता, सनुष्ठ रख दे देते, छहों शूतुरें एक ही ताय उसे प्रसन्न करती रहती। तभी लालाँ बृह आदि वाम्हों माल पलते-फूलने। कहनेद्वा तान्यर्य यह कि चर-अचर सम्पूर्ण लगातपर दुसरा एकाविन्य था।

उसके इच्छानुवार न जलनेर अभिको दण्ड भोगना पड़ता, उसके आजानुवार न दरनेर सूर्यको बड़ी होना पड़ता और उसके प्रसन्नदानुवार, पंजा न झलनेर बायु देवतामर पट्टकार पड़ता। पञ्चरागके आसन, दूधके फेलकी भाँति श्वसा, स्त्रियकी भीत, बैदूर्यके खम्मे और सर्वांचर्क-मर विवाननने थे। वह सुखाके सर्वोत्कृष्ट मोरोंको भोगता था। उसकी इच्छा पूर्ण होनेमें कोई द्वावट नहीं थी।

उसे चिन्ता थी तो केवल एक यही निष्ठु मिल जाय तो उसका कच्चमर निकाल ढाँडे। रात-दिन चोचा करता निः अब देखें वह कौनसा कुचक न्यता है। बैदूर्या पाठ बंद कर दिया गया, हैंट-हैंटकर बैण्णवोंके लिय काटे जाने लगे। शादि, मूरिंपूजा, अवतार आदिको माननेवाले भौंसींगर लटकाये जाने लगे। किसीके दुःहसे धोलेषे भी भगवान्का नाम निकल जाय तो उसकी जीभ निकलवायी जाने लगी। यदि कोई देवता कहों चाँच-चमड़ करते तो उन्हें कुर्ताओंसे तुच्छा लिया जाता। न्यतन्त्र निचार्खालोंने ओढ़ सी दिये गये। सारे सदारमें हाहाकर भन्न गया।

देवताओंने विष्णु भगवान्की शरण ली। उन्हें उचर निला निः ‘अमीं समझनी प्रतीक्षा करौं। यह अभिमानमें पूला हुआ है। इसका लड़का ही इसकी बोलती बद कर देगा। वह सद्वर चारुन करता है पर अपने लड़केना ही चारुन न कर सकेगा। इसकी जांके गर्भमें मेरा परन भन्न प्रहाठ है। उसकी पुकाररर में प्रकट होजाँगा और इसकी खबर लौँगा। तुमले ग बवहारों मत। नेरी लीला देखो, नेरी प्रतीक्षा करो।

अवतरक देवर्पि नारद क्याघूनो हिरण्यकशिष्युके पास पहुँचा गये थे।

(४)

उसार द्वन्द्वमय है। उत्तु-दुत्त, राम-द्वैष, हानि-लाम, जीवन-भरण, जन-पराजय, यश-अपरय यही उत्त इसके न्यन्प हैं। इसमें ऐसी एक भी वत्तु नहीं, जो आकर्षण विकर्षणसे शून्य हो। इसका कुछ दून्हर अर्थ नहीं है। मेरी समझमें इसका तीव्रा अर्थ है—स्वीचा-नानी। एक ही बन्तु दो और सिंची जा रही है, कर्मी इवर चली जाती है, कर्मी उवर। वह स्विर नहीं रह उकरता। यह अस्थिरता ही उंचारका स्वल्प है। रामके अंदर विराग, भोगके अंदर त्याग अथवा विजगके अठर रण और त्यगके अंदर भोग दार्यनिक सत्त हैं। ऐसा होना आगा है और ऐसा हीं होता रहेगा।

एक और तो हिरण्यकशिष्युके एवल प्रताम और शासनसे

भगवद्गत्तोंकी सौसत हो रही है, दूसरी ओर उमीकी राजवानीमें, उनीके महलमें और उसीकी अर्धाङ्गिनी कथाधूकी कोखमें एक परम भगवद्गत्त पनप रहा है। आज हिरण्यकशिपुके अत्याचारके सामने भगवद्गत्ति दब्री हुई है तो एक दिन इसी गर्मस्य वालकके प्रतापसे हिरण्यकशिपु और उसके अत्याचार भगवद्गत्तिके सामने दब जायेंगे। अब वह समय दूर नहीं है।

उस दिन प्रकृतिने अपनेको सजाया था। भक्तोंके हृदय प्रसन्न थे, देवताओंके बाहिने अङ्ग फड़क रहे थे। पशु-पक्षी भी जान-बृद्धकर शुभ शुभनकी सूचना दे रहे थे। दैत्योंकी गजवानी हिरण्यपुरी कलग-तोगण आदिसे सजी हुई थी। घर-घर मङ्गल-वधावे बज रहे थे। निर्याँ मङ्गलाचार कर रही थीं। सौहरकी ध्वनिसे राजमहल भी गैंग उठा था। देवदानव, साधु-धार्म सभी प्रसन्न थे। ऐमा क्यों था, भक्तराज प्रह्लादने दैत्यराज हिरण्यकशिपुके घर जन्म ग्रहण किया है। वे सम हैं, उनके जन्मकी प्रमत्तता भी सम है।

कितना सुन्दर वालक था, लोग उसे देखते-देखते ही रह जाते थे। क्यों न हो, जो गर्ममें ही व्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करता रहा हो, उसका इतना आकर्षक होना स्वाभाविक ही है। वह शूक्रग्रस्तके चन्द्रमाकी भौति बढ़ने ल्या, उसका पुष्ट और कोमल शरीर, सुन्दर मुखाकृति, हुँवराले वाल और जन्मसे ही ओँओँसो हिला-हिलाकर हँसते रहना, सबको वरवस विवदा कर लेता था। वह कभी रोया नहीं, सबसे हँसता, सबकी गोदमें जाता और सबसे खेलता। धीरे-वीरे वह बैटने लगा, बुटनों चलने ल्या और थोड़े ही दिनोंमें अपनी मॉकी अगुली पकड़कर ठहलने लगा। जब पहले-पहल उसका मुँह खुला, तब भगवान्‌का नाम ही निकला। माता आश्वर्यचकित हो गयी। अब उसकी समझमें आया कि न बोलनेपर भी इसके ओउ क्यों हिला करते थे।

उस दिन नन्देसे प्रह्लाद महलकी ही छोटी-सी वगीचीमें खेल रहे थे। खेल क्या रहे थे, अपनी तोतली आवाजसे भगवान्‌में कुछ कह रहे थे। वहों कोई न था, केवल कथाधू एक लताकुञ्जकी आडसे सब कुछ देख रही थी। प्रह्लाद कभी गम्भीर हो जाता, कभी हँसने लगता, कभी ओँओँसे धौनु निकलने लगते। कभी हाथ जोड़कर वह प्रार्थना करता, कभी जोर-जोरसे भगवान्‌के नाम लेने लगता, कभी कुछ वातचीत करता और कभी ध्यानमम हो जाता। घटों वीत गये, न खाने-पीनेकी सुव, न मॉकी यद और न सुनेपनकी चिंता।

मॉका वात्सत्य स्नेह उमड़ पड़ा। दौड़कर झसने गोदमें

उठा लिया और छातीसे सदाकर प्यार करने लगी। कथाधूने कहा—‘वेदा। तुम क्या करते हो? तुम अपने पिताके शत्रुसे प्यार करते हो। तुम्हारे पिता सुनेंगे तो अप्रसन्न होंगे। वेदा। ऐसा मत किया करो।’ प्रह्लादने कहा—‘मैं! तू क्या कहती है। भला भगवान्‌से भी कोई शत्रुता कर सकता है? वे तो सबके हृदयमें रहते हैं। सबके अपने हैं। मेरे पिताजीको किसीने मुलवा दिया होगा। उन्होंने उन्हें देखा नहीं होगा। इसीने नाराज होंगे। नहीं तो, भगवान् तो प्यार करनेकी वस्तु है, उनसे भला कोई शत्रुता काहिको करेगा?’ माताने कहा—‘वेदा। उन्होंने तुम्हारे चाचाको मार दाला है, इसीसे तुम्हारे पिता उनपर नाराज हैं। उन्हें मारनेके लिये हूँदते रहते हैं, उनके भक्तोंको सताते हैं और उनके सिर कटवा लेते हैं। वचा। तुम उनका नाम न लिया करो।’ प्रह्लादने कहा—‘नहीं धम्मा। वे त्रिमा अपराधके किसीको टण्ड नहीं देते। टण्ड तो देते ही नहीं। मेरे चाचाजीको अपने पास ले गये होंगे, प्रेमसे रखते होंगे। वे वडे प्रेमी हैं। मेरे पिताजी उन्हें मारनेके लिये हूँदा करते हैं। यह कैसी वात है? वे तो उनके हृदयमें भी रहते हैं। जब वे उन्हे मारनेके लिये हूँदते समय छटपटाते होंगे, तब मेरे प्यारे भगवान् उनके हृदयमें वैठे-वैठे ताली बजाकर हँसते होंगे। परतु माताजी! अब तो मैं भक्तोंको नहीं सताने दूँगा, हड़ करूँगा, पिताजीसे रोकेंगा, मच्चल पहुँगा। वे मेरे रहते-रहते भक्तोंको वैसे सतायेंगे?’

मॉने देखा कि इस समय मना करनेसे बच्चेकी जिद बढ़ जायगी। वह पुच्चाकरती हुई कुछ खिलानेके लिये ले चली। वह कह रही थी कि ‘तू वडा पगला है, इतना दिन आ गया, अभी कुछ खाया-पीया नहीं। अभी तो खाने-पीनेकी उम्र है। खूब खा-पी, खेल-क्रूद।’ प्रह्लाद मॉके प्यारमें भगवान्‌का ही प्यार देखते और उनका सरण करते हुए प्रसाद समझकर कुछ खा-पी लेते।

मन्त्रियोंके, मुसाहियोंके दूसरे बच्चे खेलनेके लिये बुलाने आते तो प्रह्लाद किसी तरह टरका देते। बहुत आग्रह करनेपर चलते भी तो हँसकर ऐसा मुँह बनाते कि वे इन्हे छोड़कर चले जाते। उनके स्वभावसे इनका स्वभाव मिल था। वे भी केवल इनके सौन्दर्य और महत्वकी दृष्टिमें ही इनके पास आते, नहीं तो अलग ही खेलते रहते, क्योंकि उन दैत्य-वालकोंको चाटी मारनेमें, पशु-पश्चियोंको सतानेमें, गरीबोंको पीस देनेमें आनन्द आता था और प्रह्लादके रहनेपर यह सब वे कर नहीं पाते थे। ऐसे अवसरोंपरे उनकी जिद कोई साल नहीं सकता था।

सोचते हैं कि अभी तो सारा जीवन पड़ा हुआ है, कुछ लेल-खा लें, तब भजन करेंगे।' प्रह्लादने कहा—'ऐसा सोचना ठीक नहीं। पता नहीं, मृत्यु कब आ जाय। फिर ऐसी बुद्धि रहे, न रहे; समय किसीके अधीन थोड़े ही है। वन्चपनमें ही भजन करना चाहिये।'

जब-जब गुरुजी बहाँसे टल जाते, तब-तब सब विद्यार्थी इकट्ठे होकर भगवद्गतिकी चर्चा करते। धीरे-धीरे प्रह्लादके अनुयायियोंकी संख्या बढ़ने लगी। गुरुरूपसे सभी भजन करने लगे। एक-दो लड़कोंने जाकर गुरुजीसे सारा हाल कह सुनाया। उन्हें क्रोध तो बहुत आया; परंतु प्रत्यक्षरूपसे उन्होंने प्रह्लादकी भर्त्सना नहीं की। उन्हें एकान्तमें बुलाकर कहा—'प्रह्लाद ! क्या तुम सचमुच यह अनर्थ कर रहे हो ? तुम्हें गुरुजनोंकी आज्ञा माननी चाहिये, पिताको प्रसन्न रखना चाहिये, कुल-धर्मकी रीत-रितज्ञको निम्नना चाहिये, यह सब क्या कर रहे हो ? क्या हमने जो तुम्हारी शिकायत सुनी है, वह झूठ तो नहीं है ?'

प्रह्लादने कहा—'गुरुदेव ! आपने जो कुछ कहा, सब मेरे हितके लिये कहा और वह सब ठीक है। आपने जो कुछ सुना है, वह झूठ नहीं है। जिसने आपसे कहा है, वह मेरा बड़ा हितेशी है; क्योंकि आपकी पाठशालामें, आपके विचारके विशद्ध कोई वात कहकर मैं अपराध ही कर रहा था और उसने आपसे कहकर मुझे निरपराध कर दिया। कुलधर्म भी ठीक है, पिताकी आज्ञा भी ठीक है और गुरुजनोंके उपदेश भी हमारे भलेके लिये ही हैं, परंतु गुरुदेव ! मेरा मन मेरे हाथमें नहीं है। मैं दूसरी कोई वात सोचना चाहता हूँ तो मेरे सामने एक साँवरा-सलोना सुन्दरसा बालक आकर बाँसुरी बजाने लगता है, नाच-नाचकर प्रेमभरी चितवनसे मेरी ओर देखता है, इशारेसे मुझे अपने पास बुलाता है, मैं उसकी मन्द सुसकान देखकर सब कुछ भूल जाता हूँ—विचलित हो जाता हूँ। गुरुदेव ! दूसरी वात मुझे सुहाती ही नहीं।'

कहते-कहते प्रह्लाद वेसुध हो गये। उनका शरीर पुलकित हो गया, शरीरसे आनन्दकी ज्योति छिटकने लगी। दोनों पुरोहित अवाक् हो गये। उन्होंने सोचा कि अब डॉट-डपटसे काम नहीं चल सकता। इसे किसी ऐसे पचड़में लगाया जाय कि इसका ध्यान ही उधर न जाय। प्रह्लादके होशमें आनेपर राजनीतिका अध्यापन प्रारम्भ हुआ। सारी शुक्रनीति विस्तारके साथ पढ़ायी गयी, शत्रुमित्र आदिके

साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, इस वातकी शिक्षा दी गयी। प्रह्लादने वडे ध्यानसे सुना, विचार किया, समझ लिया और वे गुरुपुत्रोंकी परीक्षामें पास हो गये।

इस बार जब प्रह्लादको गुरुपुत्र राजसभामें लेकर गये तब वे बहुत प्रसन्न थे। उनकी प्रसन्नता देखकर हिरण्यकशिपु-को भी बड़ी ब्रह्मन्वता हुई। उसने प्रेमसे प्रह्लादको अपने पास बैठाया और उनके प्रणामका अभिनन्दन करके पूछा—'वेदा ! तुम इस बार राजनीतिकी शिक्षा प्राप्त करके आये हो। मुझे उसका सार सुनाओ।' प्रह्लादने कहा 'पिताजी ! गुरुजनोंने वडे प्रेमसे मुझे राजनीतिकी शिक्षा दी और मैंने एक विद्यार्थीकी भाँति ईमानदारीके साथ उसका अध्ययन भी किया, परंतु मुझे उनकी वात जँची नहीं। शत्रुके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिये, मित्रके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिये, ये वातें तभी ठीक उत्तरती हैं, जब कोई शत्रु-मित्र हो। ये भेद अज्ञानकपित हैं। भगवान्को भूल जानेके कारण हैं। जब सब रूपोंमें हमारे प्यारे भगवान् ही प्रकट हो रहे हैं तब शत्रु-मित्रका भेद कैसा ? उनके साथ विभिन्न व्यवहार कैसे ? इसलिये पिताजी ! केवल राजनीति ही नहीं, सब नीतियोंका सार यह है कि भगवान् का ही भजन करना चाहिये।'

हिरण्यकशिपु आग-ब्रह्मला हो रहा था। उसने आज्ञा की कि 'अब तो अनर्थ हो गया। ऐसे लड़केसे तो यिना लड़केका रहना ही अच्छा है। मैं तुम्हें अभी मार डालता; परंतु अपने लड़के हो, सम्भव है दया आ जाय इसलिये तुम्हें बेमौत मरवा डालता हूँ। देखो, विष्णुभक्तिका मजा !'

उसने प्रह्लादको मारनेके लिये दैत्योंको आज्ञा दे दी।

(६)

द्वेष अन्तःकरणको कल्पित कर देता है। क्रोध आँख-वालोंको अंधा बना देता है। लोग दूसरे शत्रुओंसे बदल लेनेके लिये, उनपर शासन करनेके लिये द्वेष और क्रोधसे काम लेते हैं, परंतु उन्हें यही मालूम नहीं होता कि मैं द्वेष और क्रोधलघी महान् शत्रुके अधीन हो रहा हूँ। आज हिरण्यकशिपु विष्णुकी अधीनता न स्वीकार करके क्रोधकी अधीनता स्वीकार कर रहा है। यह क्रोधान्धता नहीं तो और क्या है ?

प्रह्लादको मारनेकी आज्ञा सुनकर कुछ लोगोंको, जो उस सभामें उपस्थित थे, दुःख अवश्य हुआ होगा, परंतु किसीके मुँहसे हिरण्यकशिपुके विशद् एक शब्द भी नहीं

दिनोंके लिये कभी न भेजती । अस्तु, प्रह्लाद चले गये ।

यह वात देखी गयी है कि जो भगवान्‌का सरण करते हैं, सध्या-चन्दन, गायत्री-जप और नाम-जप आदि करते हैं, उनकी बुद्धि शुद्ध रहती है, स्मृति-शक्ति प्रबल रहती है, वे किसी वातको और विद्यार्थियोंकी अपेक्षा शीघ्र समझ लेते हैं, बिना विशेष रटे ही उन्हें पुस्तकें याद हो जाया करती हैं । प्रह्लादपर तो भगवान्‌की कृपा थी । वे निरन्तर भगवान्‌के सरणमें तल्लीन रहते । गुरुजीसे पाठ सुनते ही उन्हें सब हृदयङ्गम हो जाता था । अतिरिक्त समयमें वे भगवान्‌का ध्यान करते रहते । उनकी प्रतिभासे गुरुजी भी प्रसन्न रहते और प्रह्लाद उनकी सेवा भी खूब करते । उनके सहपाठी उनकी विद्या, बुद्धि, प्रतिभा, सरल स्वभाव देखकर मुग्ध रहते थे । 'मै राजकुमार हूँ'—इस वातका अभिमान तो उन्हें छू भी नहीं गया था । वे बड़ोंके सामने सेवकोंकी भौति रहते, गरीबोंपर पिताकी भौति स्नेह करते, बरावरीवालोंसे सगे भाईकी तरह व्यवहार करते और गुरुजनोंको तो ईश्वर ही समझते थे । माता सरस्वतीकी उनपर अपार अनुकम्पा थी । थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने वेद-वेदाङ्गोंका अध्ययन समाप्त कर लिया । जब गुरुपुत्रोंने देखा कि प्रह्लादका सम्पूर्ण विद्याओंमें पूर्णतः प्रवेश हो गया, तभी उन्होंने अपनी कुगलता प्रकट करनेके लिये उसको राजसभामें ले जानेका विचार किया ।

एक दिन राजसभाके विशाल मण्डपमें सभी सभासद् अपने-अपने स्थानपर बड़ी नम्रताके साथ बैठे हुए थे । राज-काजसम्बन्धी अनेकों वातें हो रही थीं, तबतक दोनों पुरोहित प्रह्लादको साथ लिये हुए वहों पहुँच गये । हिरण्यकशिपुने यथायोग्य पुरोहितोंका सम्मान किया और अपने चरणोंमें सांशङ्ग प्रणाम करते हुए प्रह्लादको उठाकर हृदयसे लगा लिया । सिर सूँचकर गोदमे बैठा लिया । वह प्रेमभरी हृषिसे एकटक प्रह्लादको देखने लगा । यों तो वह पाठशाला दूर न थी । प्रह्लाद कई बार वहों अपने पुरोहितोंके साथ आते भी थे; परतु आजकी वार्ता कुछ दूसरी ही थी । उनके अध्यापक प्रह्लादको सुयोग्य विद्वान् वताकर समावर्तन कराना चाहते थे । इतने थोड़े दिनोंमें राजकुमारको महान् विद्वान् बना दिया । यह वाहवाही भी लूटनी थी । हिरण्यकशिपु भी अपने पुत्रको योग्यतम देखकर प्रसन्न हो रहा था ।

हिरण्यकशिपुने दुलार करते हुए प्रह्लादसे पूछा—'वेदा ।

तुमने विद्या पढ़ ली । अब समावर्तनका समय आया । भला बताओ तो सबके सारल्पसे तुमने कौन-सी वात प्रह्लण की ?' प्रह्लादने कहा—'पिताजी । यह ससार असार है । इसमें कोई वस्तु प्रह्लण करने योग्य नहीं है । इनकी ओरसे उदासीन होकर भगवान्‌का भजन करना ही सार है । यही सम्पूर्ण विद्याओंका सार है, संसारका सार है और जीवनका सार है ।' प्रह्लादकी यह वात सुनकर हिरण्यकशिपु चौंक गया । उसने उनको अपनी गोदसे नीचे उतार दिया, वडे जोरसे डॉटा—'अरे कुलाङ्गार । तुम्हें ऐसी भौंडी वात किसने सिखायी है ? मै त्रिलोकीका स्वामी हूँ । मेरे अतिरिक्त और कोई ईश्वर नहीं है । क्या इन अध्यापकोंने तुम्हें यही पढ़ाया है ? मै इन्हे अभी दण्ड देता हूँ ।' दोनों पुरोहित थर-थर कॉप रहे थे । प्रह्लादने कहा—'पिताजी । मेरे ईश्वर, आपके ईश्वर और सारे ससारके ईश्वर एकमात्र भगवान् विष्णु हैं । वे सर्वत्र रहते हैं, सबकी रक्षा करते हैं । यह वात मै किसीके सिखानेसे नहीं कह रहा हूँ, मेरे अध्यापकोंने यह वात मुझे कभी नहीं सिखायी, सबको सिखानेवाले तो वही भगवान् विष्णु हैं ।'

हिरण्यकशिपु त्रोधके भारे जल-भुन रहा था । तबतक पुरोहितोंने निवेदन किया—'राजेन्द्र । वास्तवमें हमारी अवधानीसे ही ऐसा हुआ है । यदि हम ध्यान रखते तो हमारी पाठशालामें ऐसा नहीं हो सकता था । अतः इस बार प्रह्लादको क्षमा किया जाय, हम फिर इन्हें ले जाते हैं । ये बहुत पढ़ गये तो क्या, आखिर तो अभी बालक ही हैं । इन्हें राजनीतिका अध्ययन कराया जायगा ।'

हिरण्यकशिपुने और साधानी रखनेकी आज्ञा देकर उन्हें विदा किया । प्रह्लाद अपने अध्यापकोंके साथ गुरुकुलमें आये । कई विद्यार्थी वडे प्रेमसे मिले, किसीने कहा—'मैया ! तुम मुझे वडे प्रिय लगते हो । तुम्हारे साथ रहे बिना मेरा जी नहीं लगता । मुना है, तुमने राजसभामें कुछ ऐसी वात कह दी कि देत्यराज नाराज हो गये । मैया ! जो कुछ करना हो, उनसे छिपकर ही किया करो, नहीं तो क्या पता, वे न जाने क्या कर बैठें ?' प्रह्लादने कहा—'मेरे भगवान् वडे दयालु हैं, वडे शक्तिमान् हैं । वे सबकी रक्षा करते हैं और अपने भक्तकी तो विशेष-रूपसे रक्षा करते हैं । मुझे किसीका क्या डर है ? मैं तो प्रेमसे भजन करूँगा ।' एक बालकने कहा—'मैया ! तुम्हें देखकर भजन करनेकी हमारी इच्छा भी होती है, फिर

समुद्रमें ही रखना पड़ेगा । दूसरा कोई उपाय नहीं है ।' दैत्योंने आज्ञापालन किया ।

समय होनेपर प्रह्लाद भगवान्की स्तुति करने लगे—
 'कमलनयन ! पुरुषोत्तम ! तुम्हारे चरणोंमें कोटि-कोटि
 नमस्कार है । तुम संसारके हितके लिये वार-वार अवतार
 लेते हो । तुम्हीं ब्रह्म हो, तुम्हीं विष्णु हो, तुम्हीं शिव
 हो । देव, दैत्य, यक्ष, राक्षस, चीटी, मनुष्य, पशु,
 पञ्चभूत और पञ्चतन्मात्रा आदि-आदि सब कुछ तुम्हीं हो ।
 तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं । तुममें ही यह संसार
 ओतप्रोत है । तुम्हीं सबके आधार हो, तुम्हीं सब हो । जब
 तुम्हीं सब हो, तब मैं भी तुम्हारा स्वरूप ही हूँ । मुझसे ही
 सब है, मैं ही सब हूँ और मुझमें ही सब है । मैं अविनाशी
 हूँ । मैं ब्रह्म हूँ, मैं ही मैं हूँ । मेरे अतिरिक्त और कुछ
 नहीं है ।'

इस प्रकार अभेद-भावनासे भगवान्का चिन्तन करते-
 करते प्रह्लादकी समाधि लग गयी और वे सब कुछ भूल
 गये । अपने आपमें स्थित हो गये । ऐसी स्थितिमें नागपाश
 स्वर्य टूट गया, पहाड़ हट गये और समुद्रने उन्हें ऊपर उठा
 दिया । उनकी आँखें खुलीं और भगवान् उनके सामने
 प्रकट हुए । उन्होंने श्रद्धा-भक्तिसे प्रणाम किया, स्तुति की
 और उनकी अनन्त कृपाका अनुभव करते हुए उनकी ओर
 एकटक देखते रहे । भगवान्ने कहा—'प्रह्लाद ! मैं तुम्हारी
 अनन्य भक्तिसे प्रसन्न हूँ । जो चाहो, माँग लो ।' प्रह्लादने
 कहा—'भगवन् ! भले ही मुझे हजारों योनियोंमें जाना पड़े
 परंतु तुम्हारे चरणोंकी भक्ति न छूटे, वह अविचल वनी
 रहे । प्रभो ! संसारासक्त मूर्खलोग विषयोंसे जितना प्रेम करते
 हैं, उतना ही प्रेम, वैसा ही अनन्य प्रेम आपके चरणोंमें बना
 रहे ।' भगवान्ने कहा—'प्रह्लाद ! तुम्हारे हृदयमें तो हमारी
 भक्ति है ही और रहेगी भी । कोई दूसरा वर माँगो ।'

प्रह्लादने कहा—'नाथ ! एक वर और माँगना है ।
 तुमसे प्रेम करनेके कारण पिताजी मुझपर रुष्ट रहते हैं ।
 उन्होंने अपनी ओरसे मुझे कष्ट पहुँचानेकी चेष्टा भी की है ।
 यदि उनके इस कृत्यसे उन्हें पाप हुआ हो तो वह नष्ट हो
 जाय । मेरे पिता मुक्त हो जायें ।' भगवान्ने कहा—'यह
 सब ठीक है, तुम्हारे पिताका कल्याण होगा । तुम और
 माँगो ।' प्रह्लादने कहा—'भगवन् ! जिसे तुम्हारी भक्ति प्राप्त
 हो गयी, उसे और क्या चाहिये ? उसे धर्म, अर्थ, कामका
 प्रयोजन नहीं, मोक्ष उसकी मुठीमें है और वह भक्ति मुझे

प्राप्त हो गयी है और मुझे कुछ नहीं चाहिये ।' प्रह्लादकी
 यह निःस्पृहता देखकर भगवान्ने उन्हें परम निर्वाणका
 वरदान दिया और अन्तर्धान हो गये । प्रह्लाद वड़ी प्रसन्नताके
 साथ अपने पिताके पास लौट आये ।

इस बार प्रह्लादमें कुछ ऐसा आकर्षण आ गया था कि
 हिरण्यकशिपु उनका विरोध करनेमें हिचकता था । दूसरी
 ओर प्रह्लादकी माता कथाधूका भी बड़ा आग्रह था कि अब
 वहुत हो गया, जाने दो, आखिर अपना ही लड़का है न !
 जैसे रहे, वैसे रहने दो ! कथाधूका वह ज्ञान, जो नारदजीसे
 प्राप्त हुआ था, भूल गया था । असुरोंकी सङ्गतिमें आकर
 उसका हृदय वहुत कुछ क्रूर हो गया था । फिर भी माताका
 ही हृदय था न ! वह अपत्यस्नेहके कारण व्यथित रहती
 थी । उसने प्रह्लादको भी कई बार समझाया, पिताके अनुकूल
 होकर रहनेकी सलाह दी, परंतु प्रह्लाद अपनी धुनके पक्के
 थे, वे भजनके विपरीत किसीकी सलाह नहीं सुनते थे ।
 आखिर हारकर कथाधूने हिरण्यकशिपुको समझाया कि जाने
 दो, उपेक्षा कर दो, उसकी जैसी मौज हो, वैसे रहे । हिरण्य-
 कशिपुने भी मान लिया । ख्रीका हठ था, कुछ-कुछ विवशता
 भी थी । और करता ही क्या ? प्रह्लादसे शिष्टापूर्ण व्यवहार
 करने लगा ।

उधर प्रह्लादका अपना काम जारी था । उनकी महिंमा
 वढ़ गयी थी । ऐसी आपत्तियोंसे वे बेदाग लौट आये
 थे । सब लोग उनकी बात मानने लगे थे । उनके
 सहपाठी छात्र जो कि अब घर आ गये थे, उनकी
 बातोंपर वड़ी श्रद्धा करते थे । प्रह्लादके प्रभावसे हिरण्यपुरीमें
 भक्तिका खूब प्रचार हुआ । पहले लोग मन-मनमें भगवान्-
 का ध्यान करते, एक-एक करके मूर्तिपूजा शुरू हुई और
 धीरे-धीरे सामूहिक संकीर्तनका नंब्रर आया । प्रह्लादके
 हमजोली शहरमें धूम-धूमकर कीर्तन करने लगे । राजकुमार
 प्रह्लादके अद्वये पहले तो लोग हिरण्यकशिपुसे कहते नहीं
 थे, परंतु यह बात कितने दिनोंतक छिपती, एक दिन
 हिरण्यकशिपुको मालूम हो ही गयी ।

(८)

भगवान्की लीला भी क्या अद्भुत है ! वे कव, कैसे,
 क्या करना चाहते हैं, इसे वही समझ सकते हैं । दूसरा कोई
 समझ नहीं सकता । मङ्गलमें अमङ्गल और अमङ्गलमें
 मङ्गल पैदा कर देना तो उनका मनोरञ्जन है, नित्यका
 खिलवाड़ है । जहाँ विष्णुभक्तिका नाम नहीं था, यहाँतक कि

निकल सका । असुरका राज्य, असुरोंका मन्त्रित्व और असुर ही सभासद् । वहाँ तो वैष्णवोंके सिर नित्य ही कटते थे, प्रह्लादको मारनेकी आज्ञासे लोगोंको अधिक आश्र्वय नहीं हुआ । यदि किसीको आश्र्वय हुआ भी तो उसे मन मसोसकर रह जाना पड़ा । क्या करता, मालूम हो जानेपर उसे भी मौतके मुँहमें जाना पड़ता ।

बहुतसे दैत्य प्रह्लादको पकड़कर ले गये । प्रह्लाद निर्बिकार भावसे, मानो कुछ हो ही नहीं रहा है, उनके साथ चले गये । जब उन्होंने अपने शस्त्रोंसे प्रह्लाद किया और प्रह्लादके शरीर कटनेकी जगह उनके शर्क ही ढुकड़े-ढुकड़े हो गये, तब उनके आश्र्वयकी सीमा न रही । प्रह्लादका शरीर एक ठिक्क प्रभासे दमकने लगा । दैत्य प्रह्लादको लेकर हिरण्यकशिष्ठुके पास आये । उसने डॉटा—‘तुमलोग इूठ बोलते हो । मेरे सामने भारो तो ।’ उन सर्वोंने आक्रमण किया, परतु सब विफल । उनकी एक न चली । प्रह्लादने कहा—‘पिताजी ! सम्पूर्ण भयोंको भयभीत करनेवाले और भयोंका भय छुड़ानेवाले भगवान् मेरे हृदयमें स्थित हैं, शर्कोंमें हैं, आक्रमण करनेवालोंमें हैं । इसी सत्यके बलपर ये हयियार मुक्षपर आक्रमण नहीं कर सकते ।’

अब तो हिरण्यकशिष्ठु और भी भयभीत हो गया । उसने सोचा—‘अब कौन-सा उपाय किया जाय ।’ सौंपोंको आज्ञा हुई कि ‘इसे नष्ट कर दो ।’ उन्होंने अपने सम्पूर्ण विषका प्रयोग किया, परतु उनकी दाढ़ें दूर गयी, मणियों चटख गयीं, फणोंमें पीड़ा होने लगी, कलेजा कॉपने लगा, किंतु प्रह्लादका बाल भी बॉका नहीं हुआ । वे सब हिरण्यकशिष्ठुसे आज्ञा लेकर भग गये ।

हिरण्यकशिष्ठुने बड़े-बड़े हाथियोंको आज्ञा दी कि ‘इसे पीस डालो ।’ हाथियोंने अपना सम्पूर्ण बल लगा दिया, उनके दोते दूर गये, जिन्हि शिथिल पड़ गयीं, किंतु प्रह्लाद जैसा-का-तैसा मस्त । वह भगवान्के स्मरणमें तन्मय था ।

दुण्डा राक्षसी गोदमें लेकर बैठी, दैत्योंने चिता बनाकर आग लगा दी । दुण्डा समझती थी कि ‘मैं वच जाऊँगी, प्रह्लाद जल जायगा ।’ परतु हुआ उलटा, वह जल गयी और प्रह्लाद मस्त होकर भगवन्नामका जप कर रहा था ।

अब घण्ड और अमर्क दोनों दैत्यराजको चिन्तित देखकर बोले—‘महाराज ! इस बालकको तो हमलोग ही ठीक कर सकते हैं । हमें एक बार और अवसर दीजिये । यदि यह नहीं मानेगा तो हम कृत्याको उत्पन्न करके

इसे नष्ट कर डालेंगे ।’ हिरण्यकशिष्ठुने स्वीकृति दे दी, वे दोनों प्रह्लादको लेकर पाठगालापर आये ।

इस बार प्रह्लादका प्रभाव बढ़ गया था । भजन करनेवाले प्रह्लादको महाराज हिरण्यकशिष्ठु भी नहीं मार सके, यह बात विद्यार्थियोंतक पहुँच चुकी थी । सबने बड़े आदरसे प्रह्लादका स्वागत किया और गुरुजीके चले जानेपर भगवत्प्रेमकी बात करने लगे । प्रह्लादने कहा—‘भाइयो । मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ । अपना हृदय तुम्हारे सामने रख रहा हूँ । मैं लोभसे, मीहसे, किसी कामनासे ऐसा नहीं कह रहा हूँ । इसे प्रेमके साथ सुनो, जैसे तो अपनाओ । हम लोग वाहर-न्याहर तो बहुत सोचते-विचारते हैं, परतु अपने जीवनपर दृष्टि नहीं डालते । वचपन खेल-कूदमें गेवा दिया, जवानी विषयोंके सेवनमें और बुढ़ापा व्यर्थकी चिन्ताओंमें—रोने-धोनेमें । क्या यहीं जीवन है ? क्या इसीके लिये हमारा जन्म हुआ है । सोचो, विचार करो, इस शरीरमें क्या है ? यह अपवित्र वस्तुओंकी एक पुष्टिया है । यह जीवन क्या है ? वासनाओंकी उधेड़-बुन है । इसमें कहीं सुख नहीं, केवल दुःख-ही-दुःख है । छोड़ दो इसका मोह, तोड़ दो संसारका बन्धन और मोड़ दो अपना मन भगवान्-की ओर । भगवान् बड़े सुन्दर हैं । बड़े दयालु हैं, उनके भजनमें कोई कष्ट नहीं है । वे अपने हृदयमें हैं, अपने सरो-सम्बन्धी हैं और अपने आत्मा ही हैं । उनका भजन करो, केवल उनका भजन करो ।

‘मित्रो । वे ही सब रूपोंमें प्रकट हैं । किसीसे द्वेष मत करो । किसीसे बुरा मत मानो, सबके प्रति समान प्रेम रखें । यह समता ही उनकी आराधना है । वे तुम्हारी रक्षा करेंगे, वे तुम्हारा कल्याण करेंगे । डरो मत ! किसीसे मत डरो । उनके कर-कमलोंकी छत्रछाया तुम्हारे सिरपर है । जानते ही हो, मेरी क्या सौसत नहीं की गयी, सौंपोंसे हृसवाया गया, आगमें जलाया गया, मारा-पीटा गया, परतु मुझे जरा भी कष्ट नहीं हुआ । मेरे रक्षक भगवान् थे । मारनेवालोंके प्रति मेरे मनमें जरा भी द्वेष नहीं है । मेरे प्यारे मित्रो । उन्होंकी शरणमें जाओ, उन्होंका भजन करो, वे तुम्हारा कल्याण करेंगे ।’

प्रह्लादकी बात सुनकर सभी छात्र जोर-जोरसे भगवन्नामकीर्तन करने लगे । हिरण्यपुरीमें भक्ति-भागीरथीकी धारा वह गयी । गुरुपुत्रोंने बहुत समझाया, उनकी एक न चली । आखिर वे हिरण्यकशिष्ठुके पास ले गये । उसने

ग्नोरयोंको विष देनेकी आज दी। प्रहादको बड़ा मयकर हालाहल विष दिया गया। भगवान्के नामका उच्चारण करके प्रहादने विषके साथ साग अल खा दिया और विना किसी विष्ट्रवाचके वह सब पच भी गया। हिरण्यकशिषुने आजा दी—‘पुरोहितो। अब इनकी मृत्युमें विलम्ब नहीं होना चाहिये। इनको मारनेके लिये कृत्या उत्पन्न करे। दैत्यराजकी वह आज्ञा पाकर दोनों पुरोहित प्रहादके पास गये। उन्होंने प्रहादकी प्रश्ना कृते हुए कहा—आपुपन। तुम व्रक्षाके वड्यमें दैत्यराज हिरण्यकशिषुके पुत्र हो। तुम्हें विष्णुकी क्षा आवश्यकता है। जैसे तुम्हारे पिता त्रिलोकीके गया हैं, वैसे तुम भी होनेवाले हो। दोइ दो वह वनेहा। शुक्री लुनि नहीं करनी चाहिये। प्रहादने दर्ढी नप्रवासे साथ कहा—‘भगवन्। आरक्षी वात अविकाश सत्त्व है। मैं इस दश उत्तम हूँ, मेरे पिता त्रिलोकी के अस्तित्व हैं, मैं उनका उत्तराविर्तुर्ज हूँ, यह सब ठीक है। उनकी वात मुझे भानना भी चाहिये, परंतु मुझे मगवानजी क्षा आवश्यकता है; आरक्षी वह वात मेरी सुमझमें नहीं आती।

‘चाहे किसी भी दृष्टिए देखें, भगवान्के विना वह जीवन अनाग है। उनके विना इनका उद्देश्य हीं पूरा नहीं होता। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष कार्यों पुरुषायोंके मूल भगवान्-के चर्चणोंकी आगवना है। कहनेके लिये तो प्रहाद बहुत कुछ कह गये, परंतु अन्तमें गुरुजनोंके वामने इनका अधिक बोलनेके लिये क्षमा माँगकर वे कुर हो गये।

पुरोहितोंने कहा—‘वालक। तुम बहुत बढ़-बढ़का वात करते हो; हमने तुम्हें आगमें बढ़नेवे बचाना और अनेक अनन्तियोंसे तुम्हारी रक्षा की। हम समझते थे कि तुम हमारी वात मानोगे। परलु तुम एक भी नहीं उन्नते। अब तुम्हारी मृत्युके लिये हम कृत्या उत्पन्न करते हैं।’ प्रहादने कहा—‘भगवन्। कौन किसे मारता है? कौन निसे जितता है? उत्तर अग्ने-अग्ने क्रमोंका फल भोग रहे हैं। न कोई किसीको भाग सकता है और न जिता सकता है।’ पुरोहितोंने अब त्रोत्र आ गया। उन्होंने अग्ने मन्त्रवल्लसे कृत्या उत्पन्न की। वह भयंकर राशसी अग्ने ऐरेंसे लर्मनको रोदती हुई, आगकी दफ्टरके समान चमकती हुई, त्रिशूल लेकर प्रहाद-पर टूट पड़ी। वडे लोरसे उसने त्रिशूल चलाया। परंतु प्रहादकी ढारीगर ल्याते ही वह त्रिशूल खण्ड-खण्ड होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। भला, जिसे हृदयमें निरन्तर

भगवान् निजसे करते हैं, वहाँ लगाकर बत्र सो कुठ कर ही नहीं सकता, त्रिशूल क्षा कर सकता है। कृत्याकी यह गति है कि जित्तरर उसका प्रयोग किया जाता है, यदि उसे न मार सके तो प्रग्रोग कन्नेक्षेत्रों ही वह मार ढालती है। उसने लैटकर पुरोहितोंपर आक्रमण किया और वे दोनों भा गये।

उन्हें कृत्याकी आगमें जलते देखकर ‘हृष्ण। कृष्ण। त्राहि। त्राहि।’ कहते हुए प्रहाद दौड़ पड़े। प्रहादने कहा—‘भगवन्। आग सर्वव्यापक है, सर्वलुप है, इस मन्त्रकी आगसे ललते हुए इन त्राप्तगांकी रक्षा कीजिये। भगवान्को, आपको सर्वन्वलुप जानकर जैसे मेरे शुक्रवारोंमें भी भगवद्वावना करता हूँ, उन्हें भी भगवद्वलुप ही देखता हूँ, उन्हीं प्रकार इनको भी देखता हूँ तो, वे पुरोहित भी कृत्याकी ज्वालावे बच जायें। जिन्होंने भूमि विष दिया, मुक्षरर आक्रमण किया, आगमें जलाया, सौंपाये हँसाया, हाथियोंसे कुचलवाया, उनके प्रति भी वह इमरे हृदयमें भगवद्वाव एवं समान प्रेम नहीं हो, यदि उनके प्रति मेरे मनमें कर्मी पाप-बुद्धि न हुई हो सो तो मेरे पुरोहित जी उठें।’

यो कहकर प्रहादके सर्व करते ही दोनों पुरोहित भले-नगे होकर उठ उड़े हुए और विनयी प्रहादकी आरीरांद देने लगे। वेद। तू दीर्घायु हो, ऐश्वर्यद्याली हो। तेरे मङ्गल-ही-मङ्गल हो।’

तत्प्रश्नान् हिरण्यकशिषुके पास जाकर पुरोहितोंने सारी वात कह दुनायी।

(७)

लीवका वह राहत दोप है, दोप नहीं न्वमान है कि वह स्वय दैसा होता है, दूसरेको भी दैसा ही देखता है। पारीको उत्तर पारी दीखते हैं, पुण्याल्याको उत्तर पुण्याल्या दीखते हैं। जिस दण्डे वह अग्ना काम-क्षा चलाता है, चाहता है कि दूसरे भी उसी दण्डे चलावें, नहीं चलाते हैं तो चलावें, सब मेरे अनुयायी हों और वास्तवमें उत्तर मेरी ही भाँति काम करने भी हैं। यदि स्वीकार कर लें तो मैं उनका नेता बन जाऊँ। इसे यदि असुर-मात्र न कहें तो भी इसमें अपिमान-का भाव तो है ही।

हिरण्यकशिषु स्वय वडा शक्तिशाली था। वह न्वर्म माया जानता था और वडे-वडे नायावी उत्तरके हायमें थे। वह किसीमें कोई अद्भुत शक्ति देखता तो उसके मनमें यह वात आ जाती कि इसने भी तपस्याद्वाय यह शक्ति प्राप्त

की होगी। मन्त्र, यन्त्र, माया आदिके अतिरिक्त भगवत्कृपासे भी ऐसा सम्भव है, यह वात उसके मनमें नहीं बैठती थी। जब उसे मालूम हुआ कि प्रह्लादपर कृत्याकृ भी एक न चली, तब वह सोचने लगा कि अवश्य इसने कोई मन्त्र शिद्ध कर लिया है। प्रह्लादको बुलाकर उसने पूछा—‘वेटा। तुम्हारे इस प्रभावका, चमत्कारका कारण क्या है? क्या तुमने कोई मन्त्र सिद्ध कर लिया है? अथवा यह तुम्हारी स्वाभाविक शक्ति है?’

प्रह्लादने पिताके चरणोंमें नमस्कार करके वड़ी नम्रताके साथ कहा—‘पिताजी। न तो यह मन्त्रभिद्विका प्रभाव है और न यह मेरे लिये स्वाभाविक वात है। वास्तवमें वात यह है कि जिसके हृदयमें भगवान् विराजमान रहते हैं, उसके लिये यह कोई आश्वर्यकी वात नहीं है। जैसे अपना अनिष्ट लोग नहीं करना चाहते, वैसे ही जो दूसरोंका भी अनिष्ट नहीं चाहता, उसके अनिष्ट होनेका कोई कारण ही नहीं है। जो कर्मसे, मनसे, वाणीसे दूसरोंको कष्ट पहुँचाता है, कष्ट पहुँचानेके फलस्वरूप उसे हुँख भोगना पड़ता है। मैं न किसीका अनिष्ट करता, न चाहता और न कहता हूँ। मेरी दृष्टिमें सम्पूर्ण प्राणियोंके अंदर और बाहर भी भगवान्-ही-भगवान् हैं। मैं भी उनसे पृथक् नहीं हूँ। जब मेरा चित्त सर्वदा सर्वत्र आनन्दस्वरूप परमात्माके ही चिन्तनमें सलझ रहता है, तब मुझे गारीरिक, मानसिक, दैविक अथवा भौतिक हुँख स्पर्श ही कैसे कर सकते हैं? पिताजी। मैं आपसे सत्य कहता हूँ। आपके चरणोंका सर्पण करके सच्चे हृदयसे प्रार्थना करता हूँ कि बुद्धिमानोंके लिये यही उचित और परम कर्तव्य है कि वे सर्वत्र भगवान्का ही दर्शन करते हुए निरन्तर उनके ही प्रेममें छके रहें।’

प्रह्लादकी वात सुनते-सुनते हिरण्यकिंपु क्रोधान्ध हो रहा था। उसने आज्ञा की कि ‘दैत्यो। असी-अभी इस सौ योजन ऊँची छतपरसे इस दुष्टको जमीनपर पटक दो। पत्थरकी चट्ठानपर गिरकर इसकी हड्डी चूर-चूर हो जाय, तब यह मानेगा।’ हुआ भी ऐसा ही। उस आकाश-चुम्बी राजमहलकी छतसे एक चट्ठानपर प्रह्लाद पटक दिया गया। उस समय प्रह्लादको ऐसा मालूम हो रहा था कि ‘पटकनेवाले भगवान् हैं, जिस चट्ठानपर मैं गिरूँगा, वह भगवान् है, जिस आकाशमेंसे होकर मैं गुज़रूँगा, वह भगवान् है, सर्वत्र भगवान्-ही-भगवान् है, भगवान्से पृथक् किसी

वस्तुका अनुभव करनेवाला मैं ही कहूँ हूँ?’ प्रह्लाद उस गमय भगवत्स्वरूपमें स्थित थे। लोगोंकी दृष्टिये प्रह्लादका शरीर चट्ठानपर गिरा, परतु उन्हे जरा भी चोट नहीं आयी। चोट लगती कैसे? भगवान्ने दौड़कर ऊपरही-ऊपर उन्हे गोदमें उठा लिया था। उनका प्यारा भक्त चट्ठानपर कैसे गिर सकता था?

हिरण्यकिंपु ध्वन गया! उसने शम्भरासुरको आज्ञा दी कि ‘अपनी मायासे इसे नष्ट कर डालो।’ शम्भरासुरने पूरी शक्तिसे अपनी मायाका प्रयोग किया। प्रह्लाद भगवत्स्वरूपमें मस्त थे। उसने ऐसी हवा पैदा की, जिससे प्रह्लादका शरीर सूख जाय। ऐसी ठंडक पैदा की, जिससे प्रह्लाद ठिठुरकर मर जायें। ऐसी गरमी पैदा की, जिससे वह जलकर राख हो जायें। वारी-नारीसे उसने सबका प्रयोग किया, परतु उसकी एक न चली। भगवान्का चक्र सुदर्शन उसकी मायाका नाश कर रहा था। स्वयं मायापति भगवान् प्रह्लादके हृदयमें वैठे हुए हँस-हँसकर उनसे बातें कर रहे थे। तब भला शम्भरासुरकी माया कैसे चलती? उसकी हजारों चालें नष्ट हो गयीं। वह अपना-मा मुँह लेकर चला गया।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न उपायोंसे प्रह्लादको मारनेकी चेष्टा की गयी, परतु किसीमें सफलता नहीं मिली। अन्तमें हिरण्यकिंपुने आज्ञा दी कि ‘दैत्यो। इस दुष्ट वालकको नागपाशमें बॉधकर समुद्रमें डाल दो और उसपर हजार-हजार पहाड़ चुन दो। यदि यह जीता भी रहेगा तो कोई आपत्तिकी वात न होगी।’ दैत्योंने वैसा ही किया। क्षार समुद्रके भयकर तरणोंके बीचमें प्रह्लाद डाल दिये गये और उनपर अनेकों पर्वत चुन दिये गये। वे नाग-पाशमें बैधे हुए हाथ-पैर न हिला सकनेपर भी भगवान्के चिन्तनमें लगे हुए थे। भगवचिन्तनके लिये हाथ-पैरकी आवश्यकता भी क्या है? प्रह्लादको वड़ी प्रसन्नता हुई। जगत्‌के जजालसे छूटकर निरन्तर भगवचिन्तनका अवसर तो मिलेगा।

परतु समुद्र प्रह्लादको अपने अदर नहीं रख सका। वह अपना किनारा छोड़कर सारी धरतीको अपने अदर हुआ लेनेकी चेष्टा करने लगा। उसके क्षोभसे हिरण्यकिंपुका आसन डगमगा उठा। उसने आज्ञा की कि ‘दैत्यो! पर्वतोंको ला-लाकर ऐसा बॉध बनाओ कि समुद्र जहों-का-तहों रह जाय। आग, सौप, गङ्गा, विष और माया आदिसे तो उस दुरात्माकी मृत्यु होती नहीं, उसको हजारों वर्षोंतक

—
—

“है एवं है वै वै वै वै वै वै वै वै ।” अहम्
ने भी उद्देश्य देखकर नामदाते रहे थे वै वै वै वै
वै वै वै वै वै वै वै वै । अहम् वै वै वै वै वै
वै वै वै वै वै वै वै ।

इह यह प्रहृष्ट द्वच देव अद्वितीय यह यह यह कि
द्वितीय द्वच देव निर्वाचन द्वितीय हिंकरण यह । द्वुपूर्ण
देव प्रहृष्ट देव यह यह द्वच देव निर्वाचन द्वितीय हिंकरण यह । यह
द्वच देव है ॥ १० ॥ उत्ते देव, द्वितीय द्वच देव है द्वच देव है ॥ ११ ॥
क्षेत्रे देव, द्वच देव है ॥ १२ ॥ द्वच देव द्वच देव द्वच देव
द्वच देव द्वच देव ॥ १३ ॥ द्वुपूर्णे द्वितीय द्वच
देव द्वच देव द्वच देव है यह यह । निर्वाचन द्वच
है द्वच देव ॥ १४ ॥ द्वच देव द्वितीय कर व्योम द्वच
देव देव प्रहृष्ट देव निर्वाचन द्वितीय द्वच देव निर्वाचन
द्वितीय द्वच देव ॥ १५ ॥ निर्वाचन द्वच देव निर्वाचन
देव देव प्रहृष्ट देव द्वितीय द्वच देव निर्वाचन देव ॥ १६ ॥
प्रहृष्ट द्वच देव द्वितीय द्वच देव निर्वाचन देव कि देव
देव देव कर देव, द्वलक्षण देव देव है देव देव है ॥ १७ ॥
द्वितीय द्वच देव निर्वाचन । त्रिलक्षण द्वच देव द्वितीय द्वच
देव है ॥ १८ ॥ देव कर है यह ! प्रहृष्ट देव द्वितीय द्वच
देव है ॥

ਤਨ ਪ੍ਰਹਵਲਾ ਰਾਜ ਕਾ ਚੌਥੀ ॥ ਤਨਕੁ ਸਿਖ
ਦੂਜੀ ਦੀ ਦੀ ॥ ਦੇਣੀ ਹਾਂਦੀਗੇਹੈ ਕੇ ਕੋਡਾ ਭੈਂਦ ਲਾਦੇ
ਦੇ ॥ ਜੇ ਲੋਂ ਤਨਕੁ ਬਹੁ ਜਾਣੇ ਲੋ ਕੇ ॥ ਤਨਕੇ
ਦੂਜੀ ਚੁਕ ਦੇ ਕਿ ਲਹ ਕਰ ਵੱਡੇ ਦੇ ਦੇ ਤਨਕੁ
ਕਾਂਧੀਕ ਵਹੀ ਵਹੀ ਜਾਣੇ ਦੇ ॥ ਪ੍ਰਹਵਲੇ ਪ੍ਰਾਵਦੇ ਹਿਰਦੂਰੀ
ਸਿਖੇ ਸੂਬੇ ਪ੍ਰਦਾਨ ਹੁਕ ॥ ਪ੍ਰਹਵਲੇ ਲੋਂ ਸਾਡੇ ਸਾਡੇ
ਕ ਲਾਗ ਕਮਾਏ ਟਕੜਕ ਲੱਭੇ ਸੂਫ਼ੀਕ ਹੁਕ ਹੁੰਦੇ
ਕੀਵੀਵੇਂ ਰਾਹੂਦੀਕ ਕੋਈਕਿਵਾਂ ਨੰਕ ਲਦ ॥ ਪ੍ਰਹਵਲੇ
ਹੁਕੁਮੀਂ ਹੁਕੁਮੀਂ ਹੁਕੁਮੁਕਾਰ ਕੁਦਨ ਕੁਨੇ ਹੋਂ ॥ ਹੁਕੁਮੀਂ
ਪ੍ਰਹਵਲੇ ਦਿਵਦੇ ਪ੍ਰਹਵਲੇ ਦੇ ਕੋਈ ਹਿਰਦੂਰੀਕੁਦੇ ਜਹੁਦੇ ਨਹੀਂ
ਦੇ ਪ੍ਰਹਵਲੇ ਵਹੀ ਵਹੀ ਕਿਵੇਂ ਕਿਵੇਂ ਕਿਵੇਂ ॥ ਹੁਕੁਮੀਂ
ਹੁਕੁਮੀਂ ਹੁਕੁਮੀਂ ਹੁਕੁਮੀਂ ਹੁਕੁਮੀਂ ॥

(c)

महादेव द्वितीय ने कहा उन्होंने कहा है ! के कहा कहें, वह करना चाहते हैं वह वही राजा राजा करते हैं । बुद्ध ने देखा वही राजा । नक्षत्रों द्वारा बुद्ध द्वारा लक्षणों नक्षत्र द्वारा कर देने से उनका निश्चय है निश्चय हितवान है । जहाँ निश्चय का राजा वही यह दर्शाते कि

भगवान्का नाम लेना अपराध था, वहीं आज नाम-संकीर्तन-की धूम मची हुई है।

उस दिन हिरण्यकशिषुने बड़ा भयकर स्वप्न देखा था। शुक्राचार्यने तीर्थयात्रासे लौटकर हिरण्यकशिषुको अनिष्टकी सूचना दी थी। उसका मन चिन्तित था। वह कभी भयभीत होकर आकाशकी ओर देखने लगता तो कभी अपने बल-पौरुषकी धार करके घमडसे फूल उठता। कभी अपने आप ही बड़बड़ाने लगता कि 'कौन करेगा मेरा अनिष्ट ! मैं उसे देखूँगा ! इन्द्र ! इन्द्र तो मेरा बदी है। विष्णु ! वह तो भागा फिरता है ! मेरे डरसे छिपा हुआ है। वह मेरे सामने आ ही नहीं सकता। आ जाय तो उसे मैं मजा चखाऊँ !' यही सब न जाने क्या-क्या वह वक रहा था।

इतनेमें ही किसीने आकर घर-घर संकीर्तन और मूर्तिपूजाकी बात सुनायी। एक तो वह पहलेसे ही भयभीत था, उत्सेजित था, दूसरे वह बात भी आज ही उसके कानमें पड़ी। वह आगवबूला हो गया। उसकी ऑर्खोंसे आगकी चिनगारियों छिटकने लगी। उसने कहा—‘प्रह्लादको बुलाओ। देखूँ, उसका विष्णु कहाँ है ? आज उसकी कैसे रक्षा करता है ? अवतक मुझसे पाला नहीं पड़ा था, आज मैं अपने हाथों ही उसकी खधर लूँगा !’

प्रह्लाद उपस्थित किये गये। प्रणाम करके अङ्गलि बॉधे हुए वे सिर नीचा करके खड़े हो गये। हिरण्यकशिषुने तिरछी नजरसे देखा। पैरसे मारे हुए सॉपकी भौति वह खलबला उठा। लवी सॉस चलने लगी। उसने डॉटते हुए कहा—‘ढीठ ! नीच ! कुलकलक ! मैंने समझा था, अब तू विष न वोयेगा। मेरे राज्यमे रहकर मेरी आजाकी अवहेलना ! मूर्ख ! तुझे पता नहीं, मेरे क्रोध करनेपर तीनों लोक मुझसे शर-थर काँफने लगते हैं। इन्द्र मेरे पैरोंपर गिरते हैं और विष्णु तो डरके मारे छिपे ही हुए हैं। त्रिता, तू किसके बलपर मेरी आजाका उल्लङ्घन करता है ?’

प्रह्लादने बड़ी नम्रतासे कहा—‘पिताजी ! केवल मैं ही नहीं, जिसके बलपर ब्रह्म सृष्टि करते हैं, सद्गुरु सहार करते हैं, आप बोलते हैं, सबके सब चराचर जिनकी शक्तिके भरोसे जीवित हैं, वही भगवान् विष्णु मेरे स्वामी हैं। वे पिताओंके भी पिता हैं। मैं उन्हींका भजन करता हूँ। और मुझे कुछ पता नहीं !’ हिरण्यकशिषुने कहा—‘बस, अब तू भरना चाहता है। मेरे सामने इतना बहक रहा है ! ठीक है, मौत

पास आ जानेपर लोगोंकी बुद्धि मारी जाती है। जिसे तूने मेरे अतिरिक्त ईश्वर बतलाया है, वह कहाँ रहता है ? यदि वह सर्वत्र है तो इस खमेमें क्यों नहीं दीखता। तू इतना वक रहा है, अभी इस खड़गसे मैं तेरा सिर काटता हूँ। देखूँ, वह कैसे तेरी रक्षा करता है ?’

प्रह्लादने कहा—‘बाबूजी ! मेरे, आपके और इस खड़गके भीतर, जिससे आप मुझे मारने आ रहे हैं तथा इस खमेमें भी वे हैं। देखिये, आँखें खोलकर देखिये, वे इसीमेंसे प्रकट होंगे !’ हिरण्यकशिषु कुछ भयभीत हो गया। एक ही समय दोनोंके हृदय खमेमें परमात्माको देखना चाहते हैं, परतु एक गत्रुभावसे, एक मित्रभावसे। हिरण्यकशिषुने साहस करके एक बड़े जोरका धूंसा खमेपर लगाया, वह तड़तड़ाकर टूट गया, बड़ी भयंकर आवाज हुई और एक भीषण मूर्ति बहों प्रकट हो गयी।

कितना विकराल रूप था ! मुँह मिहका और शेप शरीर मनुष्यका ! विखरे हुए बाल आकाशमें लहरा रहे थे, तपाये हुए सोनेकी भौति आँखोंसे किरणें निकल रही थीं, बड़े-बड़े दॉत बाहर निकले हुए थे, तलवारकी तरह जीभ धूम रही थी, भौंहें बड़ी भीषण थीं, लंबे-लंबे कान ऊपरको उठे हुए थे। मुँह, नाक, कन्द्राके समान जान पड़ते थे, शरीर आकाशसे बात कर रहा था। ऊँची छाती, मोटा गला और पतली कमर ! हाथोंमें बड़े भीषण नख ! उनके इस अद्भुत रूपको देखकर सभी दैत्य-दानव डर गये, स्वयं हिरण्यकशिषुकी आँखें बद हो गयीं। उनके भीषण हुकारसे चिलोकी कॉप उठी।

अपने भक्तकी बाणी सत्य करनेके लिये, अपनेको सर्वत्र व्यापक प्रकट करनेके लिये भगवान् नृसिंहरूमें खमेसे प्रकट हुए। उनके अद्भुत रूपको देखकर हिरण्यकशिषु डरके मारे आँखें बंद करके सोचने लगा—‘अरे, मेरी मृत्यु आ गयी क्या ? यह न मनुष्य है, न पशु ! विलक्षण जीव है। इस समय न दिन है न रात ! सध्या है। मैं न बाहर हूँ, न भीतर, दरवाजेपर हूँ ! यह ब्रह्माका बनाया हुआ नहीं जान पड़ता। इसके नख इतने कठोर हैं कि वे शस्त्रका काम दे सकते हैं। तब क्या यह मुझे मार डालेगा ?’ हिरण्यकशिषुको मालूम हुआ कि मेरी मृत्यु आ गयी।

उसने सोचा ‘अच्छा ! मृत्यु ही सही। जब मरना है तो बीरताके साथ मरें !’ उसने बड़े वेगसे अपनी गदा चलायी। नृसिंह भगवान्नने हँसकर उसे छीन लिया। पुनः

रद्दग लेकर उसने प्रहार किया। भगवान् ने धीरेसे उसे पकड़कर उठा लिया और चौकटपर बैठकर उसे अपनी जाँघोंगर सुलाकर अपने नग्नेए उसका केजा नीर डाला। गारा शरीर दूनसे लथपथ हो गया। उन्होंने अंतिमियाँ निकालकर माला पहन ली। क्षणभरमें उस भयकर असुरक भगवान् मार्गकर तिदासनमर जा विराजे।

शात की-चाताँ साग समाचार तीनों लोकोंमें फैल गया। देवतालोग पुष्पोंही वर्षा करने लगे, गन्धर्व गाने लगे, अप्यराँ नाचने लगाँ। ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी आदि वहाँ उपस्थित हुए। भगवान्के तेजमे तिनोंकी जल रही थी। उनके गलोंसे गादल गिर रहे थे, न्यायसे समुद्र क्षुब्ध हो रहा था, धरमरात्मसे ढगकर दिग्गज चिल्ला रहे थे। गारे साथारमें द्वाहाकाश भचा हुआ था। ब्रह्मा, रुद्र, हन्द्र, पितर, मृगि, सिद्ध, विद्याधर आदिने आ-आकर पृथक-पृथक् स्तुति की, परतु किसीकी हिम्मत न पड़ी कि उनके पास जाय। आज भगवान्का भयानक रूप देखकर सर-के-सर भयभीत हो रहे थे।

उन्हें उलाह करके लक्ष्मीको भेजा कि ये जाकर भगवान्को शान्त कर सकती हैं, परतु भगवान्के इस स्वप्नको देखकर वे भी भयभीत हो गयीं। भगवान्के पास जानेकी उनकी हिम्मत नहीं हुई।

देवाधिदेव महादेवने कहा—‘नृसिंह भगवान्, प्रहारके लिये प्रकट हुए हैं। आज यिन उनके वे प्रसन्न होते नहीं दीपते।’ सरके मनमें यह जात वैठ गयी। ब्रह्माने कहा—‘प्रहार ! जाओ। तुम्हारे स्वामी तुम्हारे पिताके कारण कुद्द हुए हैं। वे तुमसे ही जान्त होंगे।’ प्रहार तो न जाने करसे लालायित थे। उनके प्रभु चाहे जितने भयकर वेशमें आर्व, वे उन्हे पहचानते हैं। वे प्रेमगद्गद होकर उनके पास चले गये और अखालि नॉथकर चरणोंमें लोट गये।

अपने चरणमें लोट-पोट हुए प्रहारको देखकर नृसिंह भगवान्ने छपटकर उठा लिया और उनके सिंहपर हाथ फेककर प्रेममरी दृष्टिए देखने लगे। उन्होंने कहा—‘वेदा प्रहार ! मुझसे वडा अपराध हुआ। मैंने तुम्हारे पास आनेमें वडा विलम्ब कर दिया। कहाँ तो तुम्हारा यह सुकुमार शरीर और कहाँ हस्त कूरकी दारुण यन्त्रणाएँ! कहाँ यह नन्हा-सा सुकोमल शरीर और कहाँ साँपोंसे ढँसाना, आगमें जलाना। मुझसे वडा अपराध हुआ। वेदा ! तुम मुझे क्षमा कर दो। इस बातको भूल जाओ।’

नृसिंह भगवान्की यह बात सुनकर तथा उनके करकरमलोंका सर्श पाकर प्रहारकी दशा ही बदल गयी। वे परमानन्दमें मग्न हो गये। शरीर पुलकित हो गया, ऑखोंमें ऑसू भर आये, हृदय द्रवित हो गया। योङ्गी दरमें सँभलकर वे एकाग्र मनसे हृदय और ऑखोंको नृसिंह भगवान्के दर्शनमें लगाकर प्रेममरी वाणीसे स्तुति करने लगे। प्रहारने कहा—‘प्रभो ! ब्रह्मादि देवण, शृणि, मुनि, सिद्ध, जिनके अन्तःकरणमें सर्वदा सत्त्वगुण ही रहता है, वे भी अपनी विशुद्ध वाणीके द्वारा आपकी स्तुति नहीं कर सकते तो मेरे-जैसा दैत्यगालक आपकी क्या स्तुति कर सकता है ? परतु धन, जन, जप, तप, पाठ, पूजा, वल, पौरुष आदिके द्वारा आप प्रसन्न नहीं होते, आप केवल भक्तिसे प्रसन्न होते हैं। आप प्रेमके भूते हैं, आप गजेन्द्रकी पुकारपर दौड़े गये थे। भजन न करनेवाले ब्राह्मणकी अपेक्षा भजन करनेवाला चाण्डाल उत्तम है। मैं नीच हूँ, मायामें भट्क रहा हूँ, फिर भी आपकी स्तुति करता हूँ। यह इसलिये नहीं कि आपकी स्तुति होगी। वल्कि इसलिये कि उससे मेरी वाणी पवित्र होगी।

‘प्रभो ! बहुत-से लोग आपके इस भीषण स्वप्नको देखकर भयभीत हो गये हैं, परतु मैं तो आपको देखन-देखकर प्रसन्न हो रहा हूँ। आप तो हमारे परम प्रेमास्पद हैं, भयास्पद नहीं। मैं डरता हूँ तो केवल इस सप्तरसे। यह अपने चक्ररमें डालकर मुझे न जाने कहाँ ले जाना चाहता है। प्रभो ! मैं आपके चरणोंकी शरण लेता हूँ। आप मुझे अपना दास स्वीकार कीजिये। मुझे और किसीका भरोसा नहीं है। आप ही मेरे पिता हैं, आप ही मेरी माता हैं। मैं आपकी लीला गानाकर अपने जीवनको निताऊँ, यह आशीर्वाद दीजिये।

‘स्वर्गमें क्या रक्खा हुआ है। मैंने तो अपनी ऑखोंसे देखा है कि मेरे पिता हँसी-हँसीमें क्रोधित होकर जब भाँदे टेढ़ी कर देते थे, तब देवता लोग भाग-भागकर जगलोंमें शरण लेते थे। ऐसे क्षणिक और भयपूर्ण स्थानके लिये तो इच्छा ही क्यों होनी चाहिये ? प्रभो ! जगत्के जीव सप्तरके अँधेरे कुएँमें पड़कर सँड रहे हैं। मैं इनकी ही भाँति सँडना नहीं चाहता। मैं तो आपके भक्तोंकी सँझति चाहता हूँ। आप अनन्त हैं, आप शनस्वरूप हैं, आपके अतिरिक्त और कोई बस्तु नहीं है। मैं आपकी शरण हूँ।

‘भगवन् ! इस मनको आपकी कथा सुनकर जितना

प्रफुल्ल होना चाहिये, नहीं होता । अनेकों प्रकारकी कामनाएँ हर्ष-ओरके भाव इसे व्यथित किया करते हैं । ऐसे मनसे आपको कैसे हूँदू, कैसे पाऊँ ? एक ओर जीम खांचनी है, एक ओर सर्वशुद्धका प्रलोभन खांचता है, एक ओर जननेन्द्रिय विवड़ करती है, कहाँतक कहूँ, सभी इन्डियों मुझे परेशान किया करती हैं । यह केवल मेरी ही वात नहीं, माधारण जीवमात्रकी वात है । जैसे बहुत सी सौतें एक पतिको चारों ओरसे नोचती-खमोटती रहती हैं, वैसे ही जीव इन इन्डियोंके पंजेमें पड़कर परेशान हो रहे हैं । अनेकों ऋषि, महर्षि इन्हे छोड़कर तपस्या करते हैं, वे केवल अपनी मुन्नि चाहते हैं । उनका ऐसा चाहना भी ठीक है, परतु प्रभो ! मुझमे ऐसा नहीं होता । ऐसी कृपा कीजिये कि सबका उद्धार हो जाय ।

‘प्रभो ! अब इतने उग्र तेजकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती । आपके भयकर लूपको देखकर लोग डर रहे हैं, अब उन्हे भयभीत करनेसे क्या लाभ ? ऐसी कृपा कीजिये कि उनका भय मिट जाय । मेरा मन, आपका स्मरण करे, मेरी वाणी आपका गुणगान करे, मेरा शरीर आपकी सेवामें लग जाय ।’

प्रार्थना करते-करते प्रह्लाद तन्मय हो गये और बहुत सुन्दर प्रार्थना, जिसका वर्णन भागवतके सप्तम स्कन्धमें है, उन्होंने की । अपने भक्तकी मधुर वाणी सुनकर भगवान् प्रसन्न हो रहे थे । उन्होंने कहा—‘वेदा ! तुम्हारा कल्याण हो । तुमपर मे प्रसन्न हूँ । तुम्हारी जो इच्छा हो मॉग लो । मेरे दर्शनके पश्चात् किसी वातका ताप-संताप नहीं रह जाता ।’ भगवान्की यह प्रलोभन-वाणी सुनकर प्रह्लादका मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ । उन्होंने मुसकराते हुए कहा—‘भगवन् । मैं तो जन्मसे ही सासारिक विश्वमें फैसा हुआ हूँ । वरदानके बहाने आप मुझे उनमें ही और अविक न फैसावें । मैं उनसे डरकर, दुखी होकर उनसे मुक्त होनेके लिये आपकी अरणमें आया हूँ । प्रभो ! आप मेरा हृदय टटोलनेके लिये ही ऐसी वात कहते होंगे । नहीं तो, आप कश्चन-सागर हैं, सबको कल्याणके मार्गपर चलानेवाले हैं । ऐसी वात आप कैसे कह सकते हैं । जो आपसे किसी वस्तुको पाना चाहता है, वह सेवक नहीं, व्यापारी है । सकाम पुरुष कभी सच्चा सेवक नहीं हो सकता । मैं आपसे कुछ नहीं चाहता । आपकी सेवा करना चाहता हूँ । राजा और नौकरकी भौति हमारा लेन-देनका कुछ सम्बन्ध

नहीं । यदि आप मुझे वरदान देना ही चाहते हैं तो कृपा करके यही वरदान दीजिये कि कभी किसी वस्तुका वरदान माँगनेकी कामना ही न हो । कामना ही आपसे अलग किये हुए है । कामना नष्ट होते ही पुरुष आपके पास पहुँच जाता है । भगवन् । मैं आपके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ ।’

प्रह्लादके वचन सुनकर नृसिंह भगवान्ने कहा—‘प्रह्लाद ! वास्तवमें जो तुम्हारे-जैसे मेरे सच्चे भक्त हैं; वे कभी लैकिक या पारलैकिक वस्तु मुझसे नहीं चाहते । किर भी एक मन्त्रन्तरके लिये मैं तुम्हें दैत्योंका राजा बनाये देता हूँ । डरो मत । मेरी कथा सुनते रहना । सर्वत्र मुझे देखते रहना और मेरी आराधनासे प्रारब्ध कर्मको नष्ट करते रहना । पुण्योंका भोग कर लो । जानसे पापोंको नष्ट कर दो । सारे सासारमें मेरी भक्तिका विस्तार करो । समय आनेपर शरीर छोड़कर मेरे लोकमें आ जाना ।’

प्रह्लादने कहा—‘प्रभो ! मुझे एक वातकी चिन्ता है । मेरे पिताजीकी सद्गति हुई या नहीं ? आपसे वे द्वेष करते थे, मुझपर उनकी कोधदृष्टि थी, उन्हें इसके फलस्वरूप दुर्गति तो नहीं भोगनी पड़ेगी ।’

नृसिंह भगवान्ने कहा—‘प्रह्लाद ! जिस वंशमें तुम्हारे-जैसे भगवद्गत्का जन्म होता है, उसकी इक्षीष पीढ़ियों तर जाती हैं, तुम्हारा पिता तो तुम्हारा पिता ही है । उसके सम्बन्धमें क्या कहना है ? जिस देशमे मेरे भक्त रहते हैं, वह मगध होनेपर भी दूसरोंको पवित्र करनेवाला हो जाता है । अब तुम जाकर अपने पिताकी अन्त्येष्टि किया करो ।’ भगवान्की आशा पाकर प्रह्लाद पिताकी अन्त्येष्टि किया करने चले गये ।

ब्रह्माने देवताओंके साथ आकर नृसिंह भगवान्की स्तुति की । भगवान्ने ब्रह्माको सावधान किया कि अब आगे-से दैत्योंको ऐसा वर मत देना । ब्रह्माने आज्ञा शिरोधार्य की । तदनन्तर शुक्राचार्य आदिके साथ भगवान् नृसिंहने प्रह्लादका राज्याभिषेक किया । कुछ समयतक उन्हें समझा-बुझाकर वे अन्तर्धान हो गये ।

भगवान्के अन्तर्धान हो जानेपर उनके आज्ञानुसार प्रह्लाद राज-काज करने लगे । उनके राजत्वकालमें भूमण्डलपर चारों ओर भक्त-ही-भक्त दिखायी देते थे । वे संत-महात्माओं-को हूँढ़-हूँढ़कर उनका सत्सङ्घ करते, प्रजाकी एक-एक इच्छा पूर्ण करते । उनके राज्यमें सभी लोग सुखी थे, कभी

किसीको किसी प्रकारका कष्ट हुआ ही नहीं। वे निरन्तर इसी चेष्टामें रहते थे कि सभी लोगोंका कल्याण हो, सभ आनन्दसे रहें, सभ भगवान्को प्राप्त करें। वे भगवान् नृसिंहका स्मरण करते हुए प्रतिदिन इस मन्त्रका जप किया करते थे—

सर्वे भवन्तु सुखिन् सर्वे मन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

नृसिंह भगवान्के नहुत-से मन्त्र हैं और वहुत-सी मूर्तियाँ हैं। उनमें कुछ तो इतने भयकर हैं कि उनका प्रयोग गृहस्थोंके लिये उचित नहीं है। यहाँ केवल एक लक्ष्मी-नृसिंहमन्त्रका वर्णन किया जाता है, जो यह है—१३० श्रीं ह्रीं श्रीं जय लक्ष्मीप्रियाय नित्यप्रमुदितचेतसे लक्ष्मीश्चितार्थ-देहाय श्रीं ह्रीं श्रीं नमः।^१ इसके अनुष्ठृप्ति प्रजापति हैं, अनुष्ठृप्ति

चन्द्र है और लक्ष्मीनृतिंह देवता हैं। श्रीवीजसे घड़जन्यास करना चाहिये। इनका ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—

सर्वेन्द्रभोगशयन सर्वेन्द्रभोगचत्वान् ।
आलिङ्गितश्च रमया दीपभासेन्दुसनिभ ।
पद्मचक्रवराभीतिधरस्यक्षेन्दुशेखर ॥

—भगवान् नृसिंह शेषशब्दापर शयन कर रहे हैं, शेष अपने फाँसे छाया किये हुए हैं, भगवती लक्ष्मी उनकी सेवा कर रही हैं और उनके शरीरसे शीतल प्रकाश फैल रहा है। एक हाथमें कमल है, दूसरेमें चक्र। एक हाथसे वरदान कर रहे हैं और दूसरे हाथसे निर्भय कर रहे हैं। आँखें तीन हैं और ललाटपर चन्द्रमा हैं। इस प्रकार ध्यान करते हुए विधिपूर्वक उपर्युक्त मन्त्रका जप करनेसे अभीष्टसिद्धि होती है।

बोलो श्रीनृसिंह भगवान्की जय !

श्रीवामनावतारकथा

(१)

श्रीभगवान्की लीला बड़ी समर्पी है। अपनी लीलाके रूपमें वे स्वयं अपनेजो ही प्रकट करते हैं। भगवान् और भगवान्की लीला ये दोनों भिन्न नहीं हैं, एक ही हैं। एक प्रकारसे यह समर्पण सुसार भगवान्की लीला ही है। ये सभ नाम-रूप उन्होंके हैं, वे ही हैं, परतु वे इतने ही नहीं, इनसे परे भी हैं। उनकी सत्ता, उनका स्वरूप और उनकी लीला अनिर्वचनीय है।

जब जीव प्रमादवश भगवान्के स्वरूप और लीलाको भूलकर उनसे भिन्न प्राकृत पदार्थोंसे सुख पानेकी आशा एव अभिलाप्या करता है और वहिर्मुख होकर उन्होंके पीछे भटकने लगता है, तब वह उद्वेग, अशान्ति एव हु-खसे घिर जाता है। भगवान् वैसी स्थितिमें भी उसे वार-वार चेतावनी देते रहते हैं और प्रतीक्षा किया करते हैं कि वह अभिमान तथा भौतिक पदार्थोंका मरोसा छोड़कर सच्चे हृदयसे मुक्ते पुकारे तो मैं अभी चलकर उसे गलेसे लगा दूँ, उसपर अपना अनन्त प्रेम प्रकट करूँ तथा सर्वदाके लिये सुख-शान्तिके साम्राज्यमें वास दे दूँ। वे स्वयं उसके लिये कई बार मौका देते हैं, हृदयमें प्रेरणा करते हैं, सर्तोंको भेजते हैं और स्वयं आते हैं।

परतु जीवकी यह मोहनिद्रा दूटे तब तो यह आयोजन

सफल हो। भगवान्की दयाका तो क्या वर्णन किया जाय। उन्होंने तो समस्त जीवोंको दयाके अनन्त समुद्रमें ही रख छोड़ा है। उनके अनन्त उपकार, अपार कृपा और अपरिमित प्रेमसे सब के-सब दवे हुए हैं।

जब अभिमान, कामना और भयके थोड़ोंसे व्यातुल होकर, रजोगुणके नाना व्यापारोंसे ऊबकर नरक, स्वर्ग आदिमें चक्कर खाते-खाते परेशान होकर भी लोग सात्त्विकता, दैवी सम्पत्ति एव भगवान्की शरण नहीं ग्रहण करते, उलटे तमोगुणकी प्रगाढ़ निद्रामें सो जाते हैं, चराचरका प्रलय हो जाता है, तब यदि भगवान् प्रकृतिको क्षुब्ध करके इन्हें जगाते नहीं तो उस मोहनिद्रासे कैसे छुटकारा मिलता। सोतेसे जगाया, ज्ञानका सचार किया। तमसे रजमे लाकर सत्त्वकी ओर अग्रसर किया। अप क्या जीवन-दान करनेवाले प्रभुकी शरण लेना भी हमारा कर्तव्य नहीं है। क्या हम इतना भी नहीं कर सकते ?

केवल कृतशताकी दृष्टिसे ही नहीं। उनका आश्रय लिये विना हमारा काम भी तो नहीं चल सकता। हम चाहे जितना प्रयत्न करें, जितना हाथ-पैर पीटें, विना उनके हमारे सुख-शान्ति आदि स्थायी भी तो नहीं रह सकते। दो-चार दिनके लिये कुछ गुणोंकी छाया भले ही आ जाय, भगवान्के विना उनका टिकाऊ होना असम्भव है। यह

आजकी वात नहीं—सर्वदासे ऐसा ही होता आया है।

भगवान्‌की कृपासे देवताओंका राज्य हुआ। स्वर्गके सिंहासनपर इन्द्रका राज्याभिषेक हुआ। वहों भोगोंकी तो कोई कमी थी ही नहीं। परंतु कामनाओंका अभाव कव होता है? यह तो भगवान्‌की वड़ी कृपाका फल है। देवसभामे मर्वसम्मतिसे निश्चय हुआ कि हमलोगोंके पास भोगकी प्रत्युर सामग्री रहनेपर भी मृत्युके भयसे उसका पूर्णतः भोग नहीं हो पाता। यह डर लगा ही रहता है कि न जाने कव मृत्यु हमें इनसे अलग कर देगी। कोई ऐसा उपाय किया जाय जिससे हमलोग अमर हो जायँ।

देवता तो थे ही। इनका यही लक्षण है कि ये भगवान्‌की गरण नहीं छोड़ते। सबने एक स्वरसे भगवान्‌से प्रार्थना की और भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान्‌ने इनकी अभिलाषा पूर्ण की। केवल अमृतमन्थनके लिये भगवान्‌ने अपनेको अनेक रूपोंमें प्रकट किया।

मन्दराचलको लाना, उसे कच्छप बनकर पीठपर धारण करना; बाहर देवताओंके साथ मथना; धन्वन्तरिके रूपमें अमृत लाना; मोहिनीके रूपमें पिलाना और अन्तमें बलि आदि दैत्योंको युद्धमें पराजित कर देना; सब काम स्वयं भगवान्‌ने ही तो किया था। परंतु अब देवताओंकी अभिलाषा पूर्ण हो गयी थी। उनके पास भोगोंकी कमी थी ही नहीं, मृत्युका भय छूट ही गया था। अब भगवान्‌को भला कौन याद करे? होना तो यह चाहिये कि कामनाओंकी पूर्ति और भय-निवृत्ति हो जानेपर भगवान्‌का अधिकाधिक स्मरण हो। परंतु इससे उल्टा ही होता देखा गया है।

अपनी विजयके गर्वमें देवतालोग भगवान्‌को भूल गये, विषयपरायण हो गये। उनमें देवत्वके स्थानपर असुरत्व दृस आया। परंतु यह भी निश्चित है कि भगवान्‌के बिना चाहे दैवी सम्पत्ति हो या लौकिक सम्पत्ति, टिक नहीं सकती। हुआ भी ऐसा ही।

उधर होरे हुए दैत्य वड़ी सावधानीके साथ पूरे प्रयत्नसे अपना बल बढ़ाने लगे। अपने कुलगुरु शुक्राचार्यकी सम्मतिसे वड़े भारी यशका आयोजन हुआ। विषिपूर्वक अनुष्ठान होने लगे। यहाँ असुरभावके स्थानपर देवमावकी जागृति होने लगी। हारनेवाला जीत गया और जीतनेवाला हार गया। स्वयं अग्निदेवने प्रकट होकर रथ, घोड़े आदि एवं आशीर्वाद दिया। बलिका अभिषेक हुआ। वड़ोंकी वन्दना करके उन्होंने विजयान्ना की।

देवतालोग अपनी अमरताके धमडमें चूर थे। विषयोंकी मदिरा पीकर पागल थे। लक्ष्मी उनसे अप्रसन्न थीं; क्योंकि वहों न उनके पतिकी पूजा थी, न उनकी ही। वात-की-वातमें दैत्योंने उन्हें स्वर्गसे खदेढ़ दिया। जिनके पास भगवान्‌का बल नहीं है, भला वे किस बलपर—कितनी देरतक किसी आपत्ति, विपत्ति या द्वन्द्वका सामना कर सकते हैं। मर सकते नहीं थे, विषयभोग छिन गये, साधारण जीवोंकी अपेक्षा भी अधिक दुर्दग्गा भोगनी पड़ी। किसीने बन-श्रीहड़की शरण ली और किसीने नदीतटपर अड्डा जमाया। स्वर्गपर बलिका अधिकार हो गया। वे ही अब इन्द्र हुए।

देवेन्द्रके दुःखका पारावार नहीं था। कलका इन्द्र आज भिखारी है। कलका त्रिलोकाधिपति एकच्छत्र शासक आज दुत्कारा जा रहा है। अमृत पीनेवालेको पानी नहीं मिलता। खानेको अन्न नहीं, पहननेको वस्त्र नहीं। इस अवस्थाके दुःखका अनुमानमात्र किया जा सकता है। कोई क्षत्रिय राजा होता तो लड़कर सामने युद्धमें प्राण त्याग देता; परंतु इसमें तो इनकी वही अमरता, जिसके बलपर ये फूले नहीं समाते थे, बाधक हो रही थी। इसीको कहते हैं— समयका फेर।

जब वे सर्वथा निराश हो गये, तब अपनी मौकी याद आयी। वे सोचने लगे—अब माताकी शरणमें जानेसे ही कल्याण हो सकता है। जिसके द्वदयके खूनसे इस जीवनकी रक्चना एवं रक्षा हुई है, जिसने अपने गर्भमें महीनों इसका वहन किया है; जब चलना नहीं आता था, तब चलना सिखाया, बोलना नहीं आता था बोलना सिखाया, पहनना नहीं आता था पहनना सिखाया, जिसकी शिक्षा-दीक्षा एवं कृपासे इतने उच्च पदपर आसीन हुए और वास्तवमें जिसका यह शरीर और जीवन है, उसी मौके पास चलना चाहिये।

उनकी माताका नाम आदिति था। ये दक्ष प्रजापतिकी पुत्री तथा महर्षि कश्यपकी धर्मपत्नी थीं। ये महर्षि कश्यपकी विभिन्न पत्नियोंमें एक थीं और इन्हें ही देवजननी होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कश्यप महर्षि तो अलग एक एकान्त कुटीरमें भगवचिन्तनमें लगे रहते थे। अब पितामहकी आशाका पालन कर चुके थे, विभिन्न पत्नियोंसे असर्व्य सतानोंकी सुष्टि कर चुके थे। उनका एकमात्र काम था— भगवचिन्तन। दूसरी स्त्रियों अपने प्रतापशाली पुत्रोंके साथ

रहती थीं। केवल अदिति ही—उनकी कुटीरसे थोड़ी दूरपर एक आश्रममें रहकर अपने पतिकी सेवामें लगी रहती थीं। वह अपने पतिदेवको ही साज्ञान् भगवान् समझती थी और उन्हींसे सेवा पूजामें लगी रहती थी। उन्हें सामने वडे-वडे प्रनोमन आये, अरना ही पुत्र देवेन्द्र हुआ, दिग्य भोगोंकी क्या कमी थी, परतु पतिसेवके सामने वट उन्हें तुच्छ समझती थी। अरना लड़का नुस्खी है, सतुष्ठ है और अरना काम कर रहा है, इनना जान लेनेके बाद फिर उसे कमी उनका स्वरग भी नहीं हुआ। वह निरन्तर मन, झर्म और वार्गसे पतिसेवामें ही लगी रही।

इन्हें सोचा कि गिताजी तो समझी है, देवनादेत्य दोनों ही उनके पुत्र हैं। वे भला क्यों हमारे लिये अलशील होने लगे। वे भीषे जरनी माताके आश्रमपर पहुँचे। वह अपने पतिदेवके लिये फलाहारकी तामग्नी कर रही थीं। एनाएक देवेन्द्र आहर उनके चरणोंपर गिर पड़े। उनकी ओँगोंके ओँसूसे माताके चरण भींग गये। अपने शुभको इन अवस्थामें देवनर माता अदितिकी क्या दशा हुईं, इसनी कल्पना कीर्त मातृहृदय ही कर सकता है। अदितिने शत देवेन्द्रको अपने दोनों हाथोंसे उठाकर आतीसे लगा लिया। उनकी स्थितिकी कल्पनासे माताका हृदय वह पढ़ा और ऑनुग्रहींसे धारसे देवेन्द्रका मस्तक चिक हो गया।

थोड़ी देर बाद सुग्नलकर अदितिने देवेन्द्रको ढाढ़स बैधाया और सुमआया कि व्येग। इतना निराय, उदास क्यों दोने ही? क्या भगवान्पर तुम्हारा विश्वास नहीं है? वे सर्वदा सर्वथा भला ही करते हैं। उनके देवस्थामें अन्यायके लिये स्थान नहीं है। वे दयामूर्ति हैं। जब कहीं पतनकारी दोष देखते हैं, तभ क्षणमपरने लिये आडमें जड़े हीं जाते हैं और उन अभिमानादि दोषोंका नाश करनेके लिये मानो उसपर दुर्घटका पहाड़ ढाल देते हैं। उनरग विश्वास रखनेवाले इस स्थितिमें बड़ा आनन्द लेते हैं। इस ऑंगमिचौनी-की भूलमुलैजामें पड़कर वे उन्हें कोखने नहीं लगते। यस्कि कहते हैं कि तुम्हारी लीला बड़ी रसमरी है।¹

(२)

सुमेर पर्वतके एक ऊँचे द्विलक्षणपर महर्षि कर्शयका आश्रम था। चारों ओर हरे-भरे वृक्ष, लताओंके सुन्दर कुञ्ज, लिले-अधिले रग-विरगे अनेकों प्रकारके सुगन्धित पुष्प और उनपर मंडराते हुए भाँड़ोंके गुजार तथा नाना प्रकारके

पक्षियोंके कलरसे वह शोभायमान था। सामने ही वेगसे वहते हुए झारनेकी धबल धारा हर-हर-हरकी आकाशमेंदी स्वानिसे प्रकृतिके अणु-अणुमें भगवत्येमका सचार कर रही थी। सर्वत्र आन्ति थी।

अरने शान्तिमय कुटीरमें पवित्र आसनपर स्वामानिक सिद्धामुनसे बैठकर महर्षि कर्शय मगवच्चिन्तनमें तल्लीन थे। न उनके सामने जगत्की विविताएँ थीं, न जगत् था। एकमात्र रसमय आनन्दमय जानन्वरूप सर्वत्र और सर्वत्रके परे विराजमान अनुभवरूप भगवान् श्यामसुन्दर ही उनके हृदय मन्दिरमें विहार कर रहे थे और महर्षि कर्शय सब कुछ भूलकर उनके स्वल्प और लीलाकी अमेदानुभूतिमें ही मग्न थे।

न जाने किनना समय थीत गया। ऐसी स्थितिमें युग-के-युग एक क्षणकी भौति थीत जाते हैं। मव्याह-सव्याके अवसर-पर प्रतिदिनकी भौति ध्यान दूटा। थीरे-थोरे शरीर और जगत्का स्मरण थाया। पर्वत, वृक्ष, नदी, आश्रम और अदिति एक-एक करके सभी सामने थाये। परतु सबकी स्मृति आनेपर मी वे भगवान्को नहीं भूले। यस्कि वे सबको भगवान्की लीला समझ रहे थे। यह जगत् तमीतक भगवान्को भुलनेमें समर्थ होता है, जपतक इसके भगवत्सम्बन्धका बोच नहीं होता। जप यह बात समझें आ जाती है कि यह सब भगवान्का है या सब भगवान् है, तब इस जगत्की सभी चीजें भगवान्की याद दिलाती हैं। महर्षि कर्शय सभी वस्तुओंको देव-देवकर मुग्व हो रहे थे।

आज एकाएक भगवत्येरणा हुई कि अदितिके आश्रमपर चले। भगवान्की इश लीलाका सब लेनेके लिये वे तुरत चल पड़े। मार्गमें उछलते हुए हिण, कूजते हुए मूरु, चहकते हुए पक्षी और गरजते हुए सौंवले बादलोंको देव-देवकर भगवत्येमें मत्त होते जाते थे। अदितिका आश्रम इतना जल्दी आ गया कि वे देवकर आश्रयचकित हो गये।

अदितिने बड़ी तत्त्वासे अगवानी की। चरणोंमें साधाङ्ग दण्डवत् करनेके पश्चात् पवित्र आसनपर बैठाकर उनके चरण पखरे। चरणामृत लेकर उससे अपने आश्रमका अभिनेक किया। फिर विविर्वक पोडशोपचार पूजा करके हाथ जोड़कर सामने बैठ गयी। मातो किंवि आजाकी प्रतीक्षामें हो।

कर्शयने देवा—सब व्यवहार पूर्ववत् सप्रेम और

अविविध होनेपर भी आज अदिति कुछ उदास है। इसके मनमे कोई चिन्ता अवश्य आ गयी है। सोचने लगे— क्या यह किसी अतिथि-अप्यागतका सल्कार नहीं कर सकी है अथवा किसी याचकको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके नहीं दे सकी है, परतु यह तो इसके लिये असम्भव है। किसीका तिरस्कार तो इससे हो ही नहीं सकता। तब इसकी चिन्ताका क्या कारण है? महर्षि कश्यप स्वयं चिन्तित हो गये।

थोड़ी ही देरमें मानो उनके हृदयमें किसीने कहा— माता केवल पुत्रके कष्टसे ही चिन्तित होती है। उन्होंने योगवलसे जान लिया कि इन्द्रादि देवता किस प्रकार स्वर्गसे बच्चित हो गये हैं। क्रमशः अदितिके पास इन्द्रका आना और अदितिके आश्चासनकी बात भी जान ली। अदितिके हृदयमें भगवान्का अगाध विश्वास देखकर महर्षि कश्यप पुलकित हो गये। उन्होंने सोचा—अदिति तो कुछ कहेगी नहीं, अब इसकी चिन्ता-निवृत्तिका कुछ उपाय होना चाहिये।

कहीं-कहीं और विशेष करके महात्माओंके पास कुछ कहनेकी अपेक्षा न कहनेका प्रभाव अधिक पड़ता है। परतु इसमें बड़े धैर्यकी आवश्यकता होती है। इस परीक्षामें अदिति पास हो गयी। इसी समय इन्द्रने आकर प्रणाम किया। उन्हे चरणोंमेंसे उठाकर कश्यपने हृदयसे लगाया और अनेकों प्रकारसे समझाया।

उन्होंने बताया कि इस सुष्ठिका उद्देश्य तभी पूरा होता है जब भगवान्का भजन किया जाय। यदि तुम स्वर्गके स्वामी होकर भगवान्को ही भूल गये, अभिमान, काम, क्रोध और विषयोंके सेवक बन गये तो यह आवश्यक था कि तुम्हें उस स्थानसे च्युत करके चेतावनी दी जाय। अब सम्हल जाओ और पूर्णरूपसे भगवान्की गरण ग्रहण करो। उनकी सेवामें ही अपनी सारी शक्ति लगा दो।

इसके बाद सभी देवता और इन्द्र इकट्ठे हुए और सब आग्रह करके कश्यप तथा अदितिको ब्रह्मलोक—ब्रह्माकी सभामें ले गये। वहाँ उस समय देवाधिदेव महादेव, सम्पूर्ण अधिष्ठातृ देवता एव मुख्य-मुख्य महर्षि उपस्थित थे एव भगवान्की लीला तथा ससारकी रक्षा-दीक्षाकी चर्चा चल रही थी।

इन लोगोंका यथायोग्य सल्कार हुआ। सब यथास्थान बैठ गये। जगत्‌की वर्तमान अवस्थापर विचार होने लगा। देवताओंने अपनी विपद्-गाथा कह सुनायी। वलिके राज्यके

कारण दैत्योंकी मनमानी बढ़ गयी है। स्वभावसे ही आसुरी सम्पत्तियुक्त होनेके कारण वे महान् उपद्रव कर रहे हैं, इत्यादि वाते होनेके पश्चात् सर्वसम्मतिसे धीरसागरके तटपर जानेका निश्चय हुआ।

ब्रह्मा, शङ्कर, कश्यप, अदिति, इन्द्र एव सम्पूर्ण महर्षि, देवता आदि धीरसागरके तटपर जाकर एक स्वरसे भगवान्की स्तुति करने लगे। पुरुषसूक्तकी मधुर एवं गम्भीर ध्वनिसे सारा वायुमण्डल मुखरित हो उठा। सभके मन, वाणी, प्राण, शरीर, बुद्धि एव आत्मा भगवान्की प्रार्थनामें लग गये।

प्रार्थना कभी विफल नहीं जाती, किंतु उसे पूर्ण शक्तिसे होना चाहिये। अपने तमोगुण, रजोगुणकी समस्त वृत्तियोंकी प्रवृत्ति सत्त्वाभिमुख करके भगवान्की प्रार्थनामें लग जाना चाहिये। जितनी गम्भीरतासे प्रार्थनाके भाव या शब्द निकलेंगे उतनी ही जल्दी प्रार्थनाकी पहुँच होती है।

आज तमोगुण और रजोगुणके अधिष्ठातृ देवता शङ्कर एव ब्रह्मा सत्त्वगुणके उज्ज्वल प्रतीक क्षीरसागरके तटपर एकनित हुए हैं। उनके साथ समस्त देवता, महर्षि आदि जिन्हे विश्वके इन्द्रिय, मन, बुद्धि एव आत्मा कह सकते हैं, सब-के-सब एक स्वरसे भगवान्को पुकार रहे हैं। सर्वत्र होनेपर भी भगवान् क्षीरसागरसे अर्थात् सत्त्वके साम्राज्यमें ही निवास करते हैं एव प्रकट होते हैं।

ज्यों ही एकाग्रता हुई और सबकी सम्पूर्ण शक्ति प्रार्थनामें लगी कि भगवान् प्रकट हो गये। वर्षाकालैन मेघके समान श्यामल शरीर, पीताम्बर धारण किये हुए, शङ्क, चक्र, गदा, पद्मधारी भगवान्को गरुडपर आते हुए देखकर सब-के-सब आनन्दसे भर गये। तन-वदनकी सुध भूल गयी। नेत्रोंमें औंसुओंकी धारा, शरीरमें रोमाञ्च और वाणीमें बोलनेकी शक्ति नहीं, यही सबकी दशा थी। सब निश्चेष्ट थे।

भगवान् ने अपनी कृपामयी दृष्टिसे सबमें शक्तिसचार किया। लोग उठकर खड़े हुए। सिर झुके थे, अङ्गलियाँ बैधी थीं। ब्रह्माने सबका प्रतिनिधित्व किया—‘प्रभो! आप तो सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं और परम दयालु हैं। क्या इस समय आपकी यही इच्छा है कि आसुरी सम्पत्तिकी बृद्धि हो। इन्द्रके राजत्वकालमें वलिका राज्य हो। असुरोंके उपद्रवसे त्रिलोकी त्रस्त है, भगवन्! दया करो! दया करो!!’

भगवान् ने मुसकराते हुए कहा—‘आपलोग धवरायें नहीं। मैंने सब व्यवस्था कर रखकी है। मैं शीघ्र ही कश्यपके द्वारा

अदिति के गर्भसे अवतार ग्रहण कर्नेंगा। मर्ताप करो, शान्त हो, सुखी हो ।'

भगवानकी अभय-वाणी सुनते ही सभी प्रसन्नतासे गिल उठे। कव्यम्-अदिति के आनन्दनी तो सीमा ही नहीं थी। भगवान्‌के धन्तवधांन होनेपर सभी अपने-अपने लोकमें चले गये। कव्यम् अदिति भी अपने आश्रमपर आये।

अदितिनी प्रसन्नताका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसे चिन्ता थी तो नेवल यहीं कि जिन प्रभुके सफलतमें समस्त विभ व्रदाण्ड रहते हैं, उनको मेरे अपने गर्भमें कैसे बहन कर सकेंगी। फिर मोचती मानो भगवान् रह रहे हैं 'अरी पगली । तू मुझे मेरे गर्भमें रहनेरी चिन्ता क्यों न रही है, म तुम्ह भी धारण कर्नेंगा और मारे जगत्की भी ।' कभी-कभी उसने मनमें यह वात आती दि—'मैं तो न्यार्थकी पुतली हूँ। मैंने अपने पुत्रोंने लिये भगवानसे प्रार्थना की। फिर मनमें आता कि इसीमें तो जगत्का हित भी है न । उनकी दृढ़ा भी ऐसी ही है। वह वात भी रहते ही वह गद्गद हो जाती कि भगवान् हमारे पुत्र होंगे। वह भगवान्‌की दया और करणारी वान मोचक आनन्दके समुद्रमें हृत जाती।

महर्षि कव्यपरे आजा लेकर उसने अनेकों न त अनुशासन आदि किये। वह सोचती कि मेरे कछुपित हृदयमें भगवान् कैसे रहेंगे? महर्षि कव्यप रहते—'तू तो वावली हो गयी है, भगवान् जहाँ आते हैं वहाँ भर स्वय शुद्ध हो जाता है। बस, तू उनका नाम रह ।' अदितिका समय आत्म-शुद्धिके नियमोंमें और भगवान्‌की मधुर प्रतीक्षामें ही वीतता। आखिर एक दिन भगवान् उसके गर्भमें आ ही गये।

(३) -

किसी-किसी पुराणमें ऐसी कथा आती है कि स्वर्गपर दैत्योंके आविष्य और देवताओंकी पराजयका समाचार सुनकर अदिति के मातृ-हृदयको बड़ा कष्ट पहुँचा। वह उदास रहने लगी। आश्रमके कामकाज भी ठिकानेसे न होते।

एक दिन जब महर्षि कव्यप उसके आश्रमपर आये, तब वहोंकी दया देवमर आश्रयमें पढ़ गये। अदितिने विधि पूर्वक उनकी पूजा की। इस उदायीका भारण पूछनेपर अदितिने मारी जात कह सुनाई और इस आपत्तिके निवारण-का उपाय पूछा।

महर्षि कव्यपने पहले तो समझानेकी चेष्टा की। उन्होंने कहा—'पिये। हमलोग आश्रमवासी हैं। हमारे वस, यहीं

काम है कि सम्पूर्णलूपसे भगवान्का ही भजन करें। यह साग सासाग भगवान्का है। इसके बनानेवाले, गङ्गा करनेवाले एव प्रलय करनेवाले वही हैं। वे जो कुछ करते हैं अच्छा ही करते हैं। उनके दरवारमें अन्यायके लिये सान नहीं। अपनी मतानपर भी भला कोई अल्पाचार कर सकता है। हम सर देव, दानवादि उन्हींकी सतान हैं। हमने शृणु-मृदृ यह सम्बन्ध जोड़ रखा है कि यह मेरा पुत्र है वह मेरा भाई है। यह सब मोहके कारण है। इसे छोड़कर भगवान् जो कुछ करते हैं उसीमें प्रसन्न रहकर प्रेमपूर्वक भजन करें।'

महर्षि कव्यपके इस उपदेशका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसका मातृ-हृदय अपने पुत्रोंके कल्याणके लिये अकुला उठा। वह उनका चरण पकड़कर रोने लगी। भगवान्की ऐसी ही प्रेरणा समझसर उन्होंने पयोग्रत नामके अनुशासनकी विधि व्रतायी और उसके द्वारा भगवान्की आगधना कलेकी सलाह दी। अदिति वही तत्परताके साथ प्रेमसे उसमें जुट गयी।

यद्यपि सकामकी अपेक्षा भगवान्की निष्काम आगधना ही उत्तम है तथापि जिनके मनमें सासारिक कामनाएँ हैं वे निष्काम आगधना नहीं कर सकते। उन्हें यदि निष्काम भावका उपदेश किया जाय तो उसमें उनका मन नहीं लोगा और यदि अपनी आजा प्री न होनेकी सम्भासनासे आगधना ही छोड़ दी तब तो सर्वनाश हो गया। ऐसी स्थितिमें दो ही उपाय हैं, यदि कामना-नाशकी ऐष्टता साधककी समझमें आ जाय तर तो वह आगधना करके भगवानसे उसके नाशकी प्रार्थना करें नहीं तो, अपनी कामनाओंकी प्रतिके लिये ही भगवान्की आगधना करे। उसका कल्याण अवश्य होगा। सर्वसाधारण प्राय इनीके अधिकारी हैं।

अदितिके हृदयमें विभास था, श्रद्धा यीं पूरी तत्परता थी और था इन्द्रियोंका महान् सयम। किसी भी साधनके लिये हनकी अनिवार्य आवश्यकता है। वह लग गयी, पूर्णतः लग गयी।

वह फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीयुक्त अमावस्याके प्रात झाल उठी, नित्यहृत्यसे निवृत्त होकर वाराह भगवान्की बद्धना करके अपने शरीरमें मिली लगायी और झग्नेमें विविष्वक खान किया। सम्यावन्दनादि करके भगवान्की पूजामें लग गयी। आवाहन, स्वागत, अर्थ, पाद्य आदि पोदगोपचार मन्त्रका उच्चारण किया। सीर आदि दूधके बने पदार्थोंका

भोग लगाकर भक्तोंको प्रमाद चॉटकर स्वयं वडे प्रेमसे प्रमाद ग्रहण किया। एक सौ आठ मन्त्रोंका जप करके श्रद्धा-भक्ति से स्तुति करने लगी।

‘प्रभो! आप ही मारे जगत्‌के रक्षक हैं, आप ही सबके आधार हैं। भक्तवत्सल भगवन्। दया करो। दया करो।’

स्तुति करते-करते गद्गद होकर साष्टाङ्ग जमीनपर लोट गयी। प्रदक्षिणा की, पुष्पाञ्जलि की और विसर्जन करके दो ब्राह्मणोंको भोजन कराया। उनके खीर आदि खा लेनेके पश्चात् आज्ञा लेकर स्वयं भोजन किया। फिर रातमें भूमि-जयन आदिका व्रत ग्रहण किया।

फालगुन शुक्ल प्रतिपदसे लेकर द्वादशी पर्यन्त पर्योत्रत होता है। इसमें दूधकी ही मुख्यता रहती है। दूधमें भगवान्‌का स्नान, दूधसे वनी वस्तुओंका नैवेद्य, उसीसे ब्राह्मण-भोजन और उसीका प्रसाद पाना होता है। प्रतिदिन विधिपूर्वक भगवान्‌की पूजा, हवन, ब्राह्मणभोजन, त्रिकाल स्नान, तर्पण आदि किया जाता है। अदितिने वडे मनोयोगसे वारह दिनतक सब नियमोंका पालन किया। वह कुसङ्गसे दूर रहकर सम्पूर्ण ग्राणियोंसे प्रेम करती और सम्पूर्ण विषयमोगों एव आरामकी सामग्रियोंसे विरक्त रहकर भगवान्‌के चिन्तन, रत्नवन् एव भजनमें लगी रहती।

त्रयोदशीके दिन तो महान् उत्सव हुआ। अपनी शक्तिके अनुशार भगवान्‌की पूजा हुई। वडा भारी हवन हुआ। श्रुत्विजों एव गुरुओंको बहुत वडी दक्षिणा दी। ब्राह्मणोंसे लेकर चाण्डालोतकको यथायोग्य भोजन कराया। भजन, कीर्तन, नृत्य, गान हुए। भगवान्‌के म्बरुप, जन्म-कर्मकी कथाएँ हुईं। इन दिनों निरन्तर सावधान रहकर वडी एकाग्रतामें भगवान् वासुदेवका चिन्तन करती हुई ही अदितिने अपना मारा समय पूरा किया। इस प्रकार तेरहवें दिन वह ‘प्रयोक्त्रत’ पूरा हुआ।

पूर्णाहुतिके दिन अदितिकी श्रद्धा-भक्ति एव नियम-निःश्वासे प्रगत होकर गद्दू, चक्र, गदा धरण किये हुए, पीताम्बरधारी, वर्षाशालीन मैथके समान श्यामल, मुपकराते हुए भगवान् अदितिके सामने एकाएक प्रकट हो गये। कगड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान तथा करोड़ों चन्द्रमाके सदृश शीतल

* श्रीमद्भागवतके अष्टम स्वर्णके सोलहवें अव्यायमें इस मन्त्रम् पूरा थांन है। वहाँ तो दिग्दर्शन भर करा दिया है।

भगवान्‌के ज्योतिर्मय रूपको देखकर अदिति आदरके साथ उठकर खड़ी हो गयी और फिर श्रद्धासे सिर छुकाकर उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग गिर गयी। वेसुध हो गयी।

थोड़ी देर बाद जब चैनना आयी, तब अङ्गलि चॉटकर उठ खड़ी हुई। उस समय अदितिकी विलक्षण दशा थी। ओँखें ओँसुओंसे भरी थीं। सारा शरीर पुलकित था। आनन्दसे गद्गद होकर वह कॉप रही थी। स्तुति करना चाहती थी, परतु कर नहीं सकती थी, गला रुँधा हुआ था। उसकी ओँखें एकटक भगवान्‌के मुख-कमलपर लगी थीं, उसके रस-पानमें वह मस्त थी। ओठ फुरफुरा रहे थे, परतु स्पष्ट बोला नहीं जाता था।

धीरे-धीरे बोलनेकी शक्ति आयी। वह हाथ जोड़कर प्रेम-गद्गद वाणीसे कहने लगी—

‘भक्तवत्सल। दयालो। आपका स्वरूप अनिर्वचनीय है, आपकी महिमा अनन्त है और आपकी लीला दयामयी है। आपने मुक्षपर कृपा करके दर्शन दिया है। आपकी प्रसन्नतासे, आपकी कृपासे मोक्ष भी मिल जाता है फिर सामारिक सम्पत्तियोंकी तो वात ही क्या है? भगवन्। प्रमन्न हों, प्रमन्न हों।’

अदितिकी प्रेमभरी प्रार्थना सुनकर मुस्कुराते हुए भगवान्‌ने कहा—

‘देवि! तुम्हारी अभिलापा मैं जानता हूँ। तुम चाहती हो कि तुम्हारे पुत्र ही स्वर्गके राजा हों, दैत्योंको पराजित कर दें और सुखी रहें, परतु यह समय दैत्योंके अनुकूल है। वे ब्राह्मणोंके गुरुओंके भक्त हैं। सदाचारके मार्गपर चलते हैं। देवताओंमें इतनी शक्ति नहीं कि दैत्योंको इस समय पराजित कर दें। परतु जग तुमने इसीलिये मेरी आराधना की है, तब मुझे यह काम करना ही पड़ेगा। मैं मक्तोंके अवीन हूँ। जग वे कोई हठ करते हैं, तब मुझे पूरा करना ही पड़ता है। मैं उनसे हारा हुआ हूँ। देवि! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करनेके लिये मैं तुम्हारे गर्भसे जन्म लैगा। इन्द्रका छोटा भाई बनूँगा। उसे स्वर्गका राज दूँगा, मुखी कहूँगा। देवि! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ।’

इतना कहकर भगवान्‌के अन्तर्वान हो जानेपर अदितिको वडी प्रसन्नता हुई। भगवान् हमारे पुत्र होंगे—यह सोचकर वह आनन्दमग्न हो गयी। वडे प्रेमसे, वडे उत्साहसे अग्ने पतिदेवकी सेवामें लग गयी। यह सर उसे अग्ने पतिदेव महर्षि कञ्जपकी कृपाका फल ही माल्दम पड़ता था। कमी-

कभी उसे अपने स्वार्थपर क्षोभ भी होता, परतु भगवान्‌के पुत्र होनेकी स्मृतिसे वह सब कुछ भूल जाती। अब प्राय देवताओंके राज्यकी भी उसे याद नहीं पड़ती। भगवान्‌के चिन्तनमें ही लगी रहती। उनकी कृपा सोचकर वह आत्म-विस्मृत हो जाती।

महर्षि कथ्यपर सब जानते थे। भगवान्‌की लीलाके औचित्यपर उन्हे पूर्ण विधाम था। वे सोचते थे भगवान्‌यदि इन्द्रको स्वर्गराज्य देंगे तो वलिकी भी कोई-न-कोई व्यवस्था करेंगे ही। सम्भव है इन्द्रसे भी अच्छा पद उन्हें दे दें। भगवान्‌की लीलाका रहस्य मला कोई क्या जान सकता है। वे जो कुछ करें, उसे देख-देखकर आनन्दित होते रहना चाहिये—यह सोचकर वे भगवान्‌के ध्यानमें मस्त हो जाते थे।

अदिति उनकी सेपामें लगी रही। योड़े ही दिनोंके बाद भगवान्‌ने उसके गर्भमें प्रवेश किया।

(४)

वहुत बड़ी सम्पत्ति हो, अपार सेना हो, बड़े-बड़े लोग आज्ञापालनके लिये हाथ जोड़कर सामने खड़े रहते हों, बड़ी-बड़ी गुरुथियोंको सुलझा डालेवाली विगाल बुद्धि हो, कल्पोंतक रहनेवाली कीर्ति हो, विषय-मोगोंकी रागि अपने हाथमें हो, सुन्दर-स्वस्थ युवा शरीर हो, गुणज आज्ञाकारी वलिष्ठ पुत्र हों, मनचाही पल्ली हो और हो तीनों लोकोंपर एकच्छत्र शासन, परतु इनसे—केवल इनसे शान्ति और सच्चे सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

आज वलिके पास क्या नहीं है? सभारमें जो कुछ हो सकता है वह सभी तो हो चुका है। परतु वे जान्त नहीं हैं, उनके मनमें उद्गेग है। सब उनके शासनकी प्रशासा करते हैं, उनकी दहाड़ुरीके गीत गाते हैं, उनके पुरुषार्थ, प्रयत्न और तत्परताके आभारी हैं। परतु समझ नहीं पाते कि चित्तमें यह अभावकी आग कहाँसे क्यों धधक रही है।

मन्त्रियोंने विचार किया, गुरु-पुरोहितोंने ग्रन्थोंके पन्ने-भन्ने उल्ल डाले, जो कुछ समझ सके, वैसा ही उन्होंने किया, परतु किसी उपायसे स्थायी लाभ नहीं हुआ। कुछ साधन करते। दान, यज्ञ आदिका विविधक अनुश्रान होता। योड़े समयके लिये सतोप हो जाता। दो चार दिन शान्तिका अनुभव हो जाता, पर वही पुरानी हालत हो जाती।

अग्रमें सदने सलाह की, स्वय वलिने इस व्रतपर वड़ा जोर दिया कि हमारे दादा प्रह्लादजीके पास चलकर यह व्रत

पूछी जाय। वे एकान्तमें रहते हैं, फल-सूल खाते हैं, उनके पास समारके विषय-भोग हैं नहीं, फिर भी वे हमारी अपेक्षा अधिक शान्त, अधिक सुखी हैं। वे अवश्य हमारी अशान्तिका कारण जानते होंगे। वे शान्तिका उपाय भी बतायेंगे।

दो-चार मुख्य-मुख्य दैत्योंको लेकर वलि प्रह्लादके कुटीरपर पहुँचे। वे उस समय भगवान्‌के चिन्तनमें लगे हुए थे। उनकी ओरें नद थीं। मुखमण्डलसे एक दिव्य ज्योति छिपक रही थी। शरीर निश्चेष्ट था और आसन ढढ। इससे सिद्ध होता है कि वे बहुत दरेसे उसी दशामें थे।

उनके ध्यानमें वाचा न पड़े, इस दृष्टिसे वलिने दूरसे ही प्रणाम किया और सबके साथ वहीं बैठ गये। प्रह्लादके शरीरसे शान्ति, प्रेम एव आनन्दकी धारा प्रवाहित हो रही थी, जिसके कारण वलि आदिका मन बहुत कुछ जान्त हो गया। वे प्रह्लादकी ओर एकटक देख रहे थे और उनके प्रसन्न मुखमण्डलको देख-देखकर विसित हो रहे थे। कितना समय बीत गया इसकी ओर उनका ध्यान ही नहीं गया।

जब प्रह्लादका ज्ञान दूर्या और उन्होंने भगवन्नामका उच्चारण करते हुए अपनी ओरें खोलीं, तब इन्हें पता चला कि अप वहुत देर ही गयी है और इन लोगोंने जाकर चरण-स्पर्श किये। प्रह्लादने वड़े प्रेमसे हृदयसे ल्पाया और कुशल-समाचार पूछे वही नप्र वाणीसे, किन्तु अभिमानके साथ वलिने अपनी विजय-कथा कह सुनायी और देवतालोग इनके सामने एक क्षण नहीं ठहर सके, अप उनकी क्या दशा हो रही है यह सब भी कहे विना वलिसे नहीं रहा गया। अन्तमें वलिने कहा—‘आप गुरुजनोंके आशीर्वादसे मैं अब त्रिलोकीका राजा हूँ। मेरे पास किसी भी मामग्रीकी कमी नहीं। मैं किंकिको दुखी भी नहीं रहने देना चाहता। नित्य दान किया करता हूँ। पहलेसे ही सतर्क रहकर आपत्तियोंका निवारण करता रहता हूँ। परतु दादाजी! यह सब होनेपर भी न मेरे अदर शान्ति है, न तो मेरी प्रजा ही जान्त है। मैं आपसे यहीं पूछते आया हूँ कि इस अशान्तिका कारण क्या है? आप बताइये—मैं उसे उखाड़कर फेंक दूँ।’

प्रह्लादने कहा—‘वेदा। ससारकी भारी सम्पत्तियोंमें यह शक्ति नहीं है कि वे किसीको सुख-शान्ति दे सकें। उसे देनेकी शक्ति तो केवल भगवान्‌में ही है। जो उनका भजन, सेवन करता है, उनकी आज्ञापर चलता है, उनसे प्रेम करता है और उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर देना है, उसे ही

सुख-आनन्दकी प्राप्ति होती है। यह सारा उद्घेग, यह सम्पूर्ण अगान्ति केवल उनका भजन न करनेसे है।^१

प्रह्लाद यह कहते-कहते भगवान्‌की स्मृतिमें छूटते-से जा रहे थे। वे मानो दूसरे लोकमें चले गये। वाणी वद हो गयी। शरीर निर्व्वेष हो गया। वे दूसरे रूपमें भगवान्‌को छूँढ़ने लगे। वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक, स्वर्ग एवं मर्त्यलोकमें भगवान्‌को छूँढ़ डाला, परतु कहीं भगवान्‌के दर्जन नहीं हुए। फिर अल्प-अल्प तरह वस्तुओंको देखना शुरू किया। अन्ततः देखा तो अदितिके गर्भमें भगवान् मन्द-मन्द सुसकरा रहे हैं। नमस्कार किया। आशीर्वादके लिये वामन भगवान्‌के दाहिने हाथको उठा देखकर प्रह्लादको इतना आनन्द हुआ कि उन्हें और सब वातें भूल गयीं। वडी देरतक एकटक देखते रहे। फिर भगवान्‌ने स्वयं ही उन्हें इस शरीरमें भेज दिया।

यहाँ बलि वैठे-वैठे प्रह्लादके अन्तिम वाक्यपर विचार कर रहे थे कि 'यह सारा उद्घेग, यह सम्पूर्ण अगान्ति भगवान्‌का भजन न करनेसे है।' उनका हृदय क्षुध्य हो उठा। वे अपने आप ही उत्तेजित हो उठे। उनका चेहरा लाल हो गया, ऑखे चढ़ गयीं। वे सोचने लगे कि भगवान् कौन है? अपना भजन न करनेसे वह हमें दुःख क्यों देता है? क्या वह हमसे अधिक वल्यान् है, सुनते हैं वह देवताओंका हिमायती है? क्या इसीसे हमें अगान्ति करता है? अस्तु, दादाजी इस बार कोई पतेकी वात कहेंगे। इतनेमें ही प्रह्लादकी ऑखें खुल्लें।

क्षणभर बाद प्रह्लादने कहा—'वेटा! अब भगवान्‌के भजन विना कल्याण नहीं। वे देवताओंकी प्रार्थनासे अदितिके गर्भमें आ चुके हैं। वे देवताओंका कल्याण करेंगे। तुम-लोग भी उनका भजन करो, वे तुम्हारा भला करेंगे।'

बलि पहलेसे ही उत्तेजित थे। प्रह्लादकी वातोंसे उनकी उत्तेजना बढ़ गयी। उनका अभिमान बोल उठा—'मैं समझ गया। यह सब उन्हींकी करतूत है। वे हमारे पुराने गव्य हैं। अमृत मथनेके समय वरावर परिश्रम करनेपर भी हमें ठग लिया। युद्धमें देवताओंकी सहायता की। इस बार जब हमारी शक्ति वडी तब सामने नहीं आये। अब लुक-छिपकर अगान्ति फैलाते हैं। देवताओंकी महायता करनेके लिये अदितिके गर्भमें आये हैं। इस बार देखा जायगा। मेरे एक-एक मित्र गम्भर, मय, वल आदि उन्हें मार सकते हैं। उनमें रक्खा ही क्या है?'^२

आवेशमें आकर बलि बहुत बोल गये। पीछेसे गुरुजनोंके

सामने इतना बोल जानेका पश्चात्ताप भी हुआ। परतु अब तो तीर निकल चुका था। अब कर ही क्या सकते थे। भगवान्-पर आशेप प्रह्लादसे नहीं सुना गया। वे कॉप उठे। उनके रोम-रोमसे चिनगारियों निकलने लगीं। कहीं-कहीं ममता भी क्रोधकी जननी हो जाती है। सम्भव है दूसरा कोई ऐसी वात कहता तो प्रह्लादको धोम न होता, परतु अपना ही पौत्र इस प्रकार कहे यह उन्हे असह्य था। वे बोल उठे—

'बलि! तू मेरे कुलका कलक है। मेरा पौत्र, विरोन्ननका पुत्र होकर तू ऐसी वात कहता है? तुझे गर्भमें ही मर जाना चाहिये था। तू इस सेनाके वलपर, इस शरीरके वलपर इतना धमड़ कर रहा है, इतना इतरा रहा है। तुझे धनका उन्माद हो गया है। इसीसे तू चिलोकीको सकलपमात्रसे धारण करनेवाले भगवान्‌का निरादर करता है। जा, अब तेरा धन न रहेगा, तेरी सेना काम न आयेगी और तू पद-भ्रष्ट हो जायगा, तब तेरी हेकड़ी छूटेगी, तू भगवान्‌की महिमा जानेगा।'

बलि तो सन्न रह गये। कायो तो खून नहीं। वे चाहे जितने अभिमानी रहे हों, परतु उनके हृदयमें प्रह्लादकी भक्ति थी, गुरुजनोंका आदर था। वे आवेशमें जो कुछ कह गये थे, उनके लिये स्वयं उन्हें दुःख था। जब प्रह्लादकी वात सुनी, तब तो वे सर्वथा निराश हो गये। उनका विश्वास था कि चाहे जो हो जाय दादाजीकी वात मिथ्या नहीं हो सकती। वे तुरत उनके चरणोंपर गिर पड़े। उनकी ऑखोंसे ऑस्की धारा बहने लगी।

क्षणभर बाद ही प्रह्लाद गान्त हो गये, बलिको उठाकर छातीसे लगाया। समझाया—'वेटा! मैं तुम्हारी वात सुनकर आवेशमें आ गया। तभी तो ऐसी वात मुँहसे निकल गयी। नहीं तो, इस भगवान्‌की लीलामें क्रोधके लिये स्थान कहाँ है? ऐसी ही उनकी इच्छा थी। अब चलकर उनका भजन-स्मरण करो। वे किसीका पक्षपात नहीं करते। सबको समानरूपसे देखते हैं। यदि वे इन्द्रको स्वर्गका राज्य देंगे तो तुम्हें उससे भी अच्छा पद दे सकते हैं। उनके विधानपरं विश्वास रक्खो। वे जो कुछ करते हैं अच्छेके लिये ही करते हैं। जिस सम्पत्ति, पद, सेना, वल आदिको अगरा समझकर तुम अभिमानवग भगवान्‌को भूलकर अगान्त होते जा रहे थे—यदि भगवान् उन्हें छीनकर तुम्हें अपना लें, अपनी सारी वस्तुएँ तुम्हें दे दे, वे स्वयं तुम्हारे हो जायें तो इससे बढ़कर क्या वात होगी?

'अब जाओ, अपने धनका सदुपयोग करो। सबका

सम्मान करो । सबकी हँडा पूर्ण होने दो । वे न जाने किस रूपमें आ जायें । सबके रूपमें उन्हे देखो । आजसे यज्ञ प्रारम्भ कर दो । तुम्हारा कल्याण होगा । भगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे ।¹⁹

बलि जाकर यज्ञकार्यमें ल्पा गये ।

~(५)

प्रकृति माता अनादि कालसे एक ही काम करती आयी है और अपने जीवनभर वही करती रहती हैं । उनके लिये दूसरा कोई काम ही नहीं है । वह काम है—परम पुरुष परमात्माको दिखाना । उनकी आशाके अनुसार चलती हैं, उनके इशारेसे नाचती हैं, गाती हैं, सो जाती हैं और जागती हैं । यह इसीलिये बनी हैं और हैं कि भगवान् अपने एकाकीपनमें—सूनेपनमें इनके साथ रमण करें, खेलें, मनोरञ्जन करें । हों, तो प्रकृति माता सर्वदा अपने इस काममें सावधान रहती हैं, एक श्रण भी प्रमाद नहीं करती । यह सामान्य गत है ।

परतु जिस दिन भगवान् निराकारसे साकार अव्यक्तसे व्यक्त और निर्गुणसे लीलाधारी होते हैं उस दिन तो इनकी प्रसन्नताका ठिकाना ही नहीं रहता, इनका आनन्द फूट पड़ता है । आज भाद्रपद शुक्र द्वादशी है । प्रकृति माताने दूसरे ही रूपमें अपनेको सजा रखता है । दिशाएँ प्रसन्न हैं, अृतु अनुकूल है, शीतल सुगन्ध वायुके मन्द-मन्द झकोरे लोगोंके हृदय गुदगुदा जाते हैं । आकाश निर्मल है, नदियों शान्तिसे भगवन्नामका सुगीत गा रही है, अन्तरिक्ष उन्हींके शब्दोंमें अपना शब्द मिलाकर अनाहत नादको प्रकट कर रहा है, अग्नि धूमरहित होकर आहुति ग्रहण कर रही है, सारी पृथ्वीमें मङ्गल-ही-मङ्गल है, ब्राह्मण वेदोंके गायनमें मस्त हैं, गौथोंके स्तनोंसे स्वयं दूध निकल रहा है, पञ्च, पक्षी, अणु, परमाणु सब कुछ जात, प्रसन्न, अनन्दित हैं ।

और तो क्या, आज स्वयं ब्रह्मा, शिव एव समस्त देवमण्डल अदिति के सतिकार्यमें उपस्थित होकर गर्भमें स्थित अनन्त, अजन्मा, निर्विकार, जानस्वरूप प्रभुकी स्तुति कर रहा है—

‘प्रभो, अनन्त, अच्युत ! तुम्हीं सारे विश्व ब्रह्माण्डोंके अधिपति हो, आश्रय हो । तुम्हारे ही संकल्पसे सुषिक्ति उत्पन्नि, स्थिति एव प्रलय होते हैं । सरारमें दैवी सम्पत्तिकी स्थापना करके तुम्हीं विश्वको मोक्षकी ओर बढ़ाते हो और स्वयं अपनी ओर खाँचते हो । भगवन् । हँडा-

मात्रसे ही ससारका कल्याण, हमारा उद्धार, आसुरी सम्पत्तियों-का निवारण कर सकनेपर भी तुम भक्तोंके लिये अवतार ग्रहण करते हो कि वे भर-ओँख तुम्हें निहार-निहारकर देखें और निहाल हों तथा पीछेसे तुम्हारी लीला गा-गाकर लोग तुम्हारा सरण करें और ससार-सागरसे पार उत्तर जायें । प्रभो ! हम तुम्हारे चरणोंमें कोटि-कोटि नमस्कार करते हैं ।’²⁰

देवतालोग स्तुति करके अपने-अपने धाम गये ही थे कि भगवान्-के अवतारका शुभ समय आ पहुँचा । उस समय विजया द्वादशीका अभिजित् सुहृत् था । सर्वभगवान् बीचोबीच आकाशमें ठहरकर भगवान्-के अवतारकी प्रतीक्षा कर रहे थे । एकाएक अदितिका आश्रम प्रकाशसे भर गया । चारों ओर दिव्य शीतल किरणें फैल गयीं । सहसा अदितिके सामने पीताम्बरधारी, चतुर्भुज, शङ्ख, चक्र, गदा, कमल लिये हुए, मन्द-मन्द मुस्कराते हुए स्यामसुन्दर भगवान् प्रकट हो गये । उनकी चितवनसे प्रेमकी वर्ण हो रही थी । लाल-लाल ओठोंपर दाँतोंकी सुधा-बबल किरणे छिट्क रही थीं । बनमालापर गुजार करते हुए भौंरे मँडरा रहे थे । नाना प्रकारके चिन्मय आभूषण अपनेको सुशोभित कर रहे थे ।

अभी अदिति सम्हली भी नहीं थी कि आकाशमें शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग, वीणा आदिके शब्द होने लगे । गन्धर्व गाने लगे, विद्याधरी, अप्सराएँ नाचने लगीं, विद्व-चारण स्तुति करने लगे और देवताओंने दिव्य पुष्पोंकी वर्षासे अदितिका आश्रम भर दिया—

अब अदितिने देखा कि स्वयं भगवान् उसके पुत्रस्पसे सामने खड़े हैं । वह विस्य, आनन्द एव भगवान्-की कृपाका अनुभव करके प्रेमविहृल वाणीसे स्तुति करने लगी—

‘भक्तवत्सल, परम दयालो, प्रभो ! मैं अयोध नारी तुम्हारी क्या स्तुति कर सकती हूँ । बड़े-बड़े शृणि-महर्षि, देव-सिद्ध, गन्धर्व एव वेद भी तुम्हारी वास्तविक महिमाका गान करनेमें असर्प्य हैं । नेति-नेति करके अन्तमें सभी मौन धारण कर लेते हैं । अवतक तुम्हारी पूरी महिमाका गायन न हो सका, न हो सकेगा । वह अनन्त है, अपार है, अचिन्त्य है । जर तुम्हारी वास्तविक महिमाका वर्णन ही नहीं किया जा सकता तब स्तुति या प्रशासा तो कोई क्या कर सकता है । मुझपर तुमने महान् कृपा की है । मैं जन्म-जन्मकी अपराधिनी हूँ । ब्रत किया, जप किया, साधना की ओर उनसे तो क्या-तुम्हारी कृपाके बलपर तुम्हें प्रसन्न कर पाया । परतु नाथ ! मेरा अन्त करण इतना कछुपित, इतना

मलिन था कि तुम्हें पाकर भी पुत्रादि सम्बन्धियोंके बन्धनमें घड़ी रही । जिनसे मोक्ष मिल सकता था, प्रेम प्राप्त हो सकता था और जो स्वयं प्राप्त हो सकते थे, उनसे केवल पुत्रोंके राज्यकी प्रार्थना की । परतु भगवन् । तुम कितने दयालु हो, मेरे पापोंकी परवा न करके स्वयं मेरे गर्भसे प्रकट हुए और मेरे लिये दैत्योंको पराजित करने जा रहे हो ।'

इतना कहते कहते आदिति सकोच एवं लजासे गड़-सी गयी । भगवान् ने वडे प्रेमसे उसे आश्वासन देते हुए कहा—‘देवि । सकोच करनेका कोई कारण नहीं है । मेरी इच्छाके लिना कोई काम नहीं होता । यदि जीवमें स्वार्थ, लोभ, भय और अज्ञान न रहे, तो वह संसारमें भटके ही क्यों ? वह तो सीधे मेरे पास आ जाय, मेरा स्वरूप हो जाय । परतु उनका अस्तित्व जिनके अदर है, वे यदि स्वार्थित्वद्वि, लोभपूर्ति, भय-निवारण एवं अज्ञान-निवृत्तिके लिये दर-ठर न भटकें, संसारमें विश्वयोंके पीछे मारे-मारे न फिरें, सीधे मुझसे मौर्गे, मुझसे प्रार्थना करें तो मैं उनकी प्रत्येक उचित इच्छाको पूर्ण करता हूँ, अनुचित इच्छाओंका नाश कर देता हूँ और इच्छाके पूर्ण या नष्ट होनेपर उन्हें अपने पास बुला लेता हूँ ।

‘मेरे द्वारा इच्छा पूर्ण होनेपर उसमें किसीपर अन्याय तो हो ही नहीं सकता । सबकी भलाई ही होगी । देखो, मैं तुम्हारी प्रार्थनासे अभी प्रकट हुआ हूँ, इन्द्रको स्वर्गका राज्य मिल जायगा, क्योंकि इस समय उन्होंको इन्द्र होना चाहिये । परतु बलिकी भी कोई हानि नहीं हो सकती । उन्हें स्वर्गके समान ही स्थान मिलेगा । संसारमें उनकी कीर्ति होगी । उनकी छिपी हुई महिमा प्रकट हो जायगी । अगले मन्वन्तरमें वे इन्द्र होंगे । ऐसी स्थितिमें तुम अपने स्वार्थकी बात सोचकर दुःख मत करो । इसके पहले तुम्हारे हृदयमें स्वार्थ था, परतु अप वह दूर हो गया । उपासना, सत्सङ्ग और मेरे संसर्ग एवं आलापसे तुम्हारा हृदय शुद्ध हो गया है । अब चिन्ता मत करो । प्रसन्नतासे मेरी लीला देखो और आनन्दित हो ।’

भगवान् बोल ही रहे थे कि उनके आयुध, बछ, आभूपण आदि लुप्त होने लगे और वे वामनके रूपमें प्रकट हो गये । तुरत ब्रह्मा आदि देवतागण एवं ऋषि-महर्षि वहाँ उपस्थित हुए, विविर्बुद्ध कर्मकाण्ड कराने लगे । भगवान्के काम आकर सभी अपनेको धन्य मान रहे थे ।

ब्रह्मचर्यदीक्षा सम्पन्न हुई । कर्त्यपने मेवला,

ब्रह्मपतिने यज्ञोपवीत और सूर्यने गायत्रीकी दीक्षा दी । पृथ्वीने कृष्णमृगचर्म, ओपरियोंके स्वामी चन्द्रमाने दण्ड, माताने कौपीन एवं ओढ़नी, आकाशने छत्र, ब्रह्माने कमण्डलु, सप्तरियोंने कुश और सरस्वतीने रुद्राक्षकी माला दी । कुबेरने भिक्षा-पात्र एवं साक्षात् जगन्माता अन्नपूर्णाने भिक्षा दी । उनके ब्रह्मचर्यकी दीक्षा पूर्ण हुई । वे सबके साथ हवन करने लगे । उस समय उनके मुखमण्डलसे निकलती हुई ज्योतिका नेत्रोंद्वारा पान करके लोग आनन्द-मग्न हो रहे थे ।

हवन समाप्त होनेपर जब मालूम हुआ कि बलिके यहाँ यज्ञ हो रहा है, तब उन्होंने सबसे कहकर यज्ञगालकी ओर प्रस्थान किया ।

जिन भगवान्की इच्छासे ही यह जगत् टिका हुआ है और जिनके श्रू-भङ्गमात्रसे इसका प्रलय हो जाता है, वही भगवान् इस जगत्के एक प्राणीसे भिक्षा मँगनेके लिये भिक्षुक ब्रह्मचारीके वेशमें पांच-प्यादे पधार रहे हैं । न सकल्पमात्रसे उसे नष्ट कर सकते और न युद्धमें उसका संहार ही कर सकते । आज तो उसके यहाँ भिक्षा मँगनी होगी और वे उसी वेशमें सजे जा रहे हैं । हम इसे क्या कहें ? ऐश्वर्य या माधुर्य ?

(६)

यों तो लोभ और भय जीवकी दुर्बलता है और यह भगवत्स्वरूपके अज्ञान एवं उनके प्रेमके अभावमें ही पनपती और फलती-फूलती है । परतु यदि इसका सदुपयोग किया जाय तो इसी दुर्बलताके द्वारा जीव अपना परम कल्याण साधन कर सकता है । पापोंसे भय, नरकका भय, मृत्युका भय, भगवान्का भय, स्वर्गका लोभ, वैकुण्ठका लोभ, परम-नन्दका लोभ, मोक्षका लोभ एवं भगवत्प्रेमका लोभ—ये सब-के-सब साधनामें लगाकर जीवको परम गति, परम कल्याण-की ओर ले जाते हैं । इसीसे जाग्नोंमें भी इनके लिये पर्याप्त स्थान है और बहुत-सी बातें रोचक एवं भयानक ढगसे कही गयी हैं । परतु इनसे जीव-जगत्का महान् लाभ है, अतः इन्हें यथार्थके रूपमें मानना ही सर्वोत्तम है ।

अब बलिके अन्तःकरणकी दूसरी ही दशा है । सम्पत्ति, पद, बल, मान, मर्यादा आदिके नाशकी आजङ्गा तथा विश्वाससे उनके अभिमान, मद नष्ट हो गये हैं । यह सब मेरा है, मैं इनका स्वामी हूँ, इस प्रकारकी ममता तथा अज्ञान लापता हो गये हैं । यह सब भगवान्का है, सारे जगत्का है,

न जाने कर द्विन स्पर्शमें वे आ जायें कहों प्रभादवय उनका अरमान न हो जाय, इस प्रकारे भाव उनके हृदयम उठा करते हैं। वहेन्द्रवेद यज्ञ वान आदि भगवान्‌रूप प्रतिक्रियाके लिये ही करते, करने ही नहीं हैं। कहों भगवान् प्रसन हो जायें, आ जायें, तर तो क्या पृथिवा है। इस प्रकारे भाव उनके हृदयमें उठा रहते हैं।

इन्हें जो एकाएक इनना पर्वतन हो गया, इसका वारग उनकी अरने दादार्ज भक्तउज प्रहारप्रश्ना अद्वा ही थी। कुछ न हो, ऐरह पूर्णपुण्योंपर अद्वा ही, मनाना विश्वास हो तो मन कुछ ही मरना है। जिन्हें गह वान श्री और पूर्णस्पति थी। अत ने यहि, जिनके अभिमानकी सीमा न थी, जो भगवान्‌रूप नी अरने निनिकोसे निर्वल बनाते थे, आज इस प्रकार पानी-नानी ही गये हैं।

नमंदारे पवित्र नदिय एक मृगुकच्छ नामका स्थान है। अब वहीं अरने पुरोहित भगुवार्णी शुभाचार्यके निरीक्षणमें द्विने एक मदान् दगड़ा आयोजन किया है। होता; श्रुत्विज, दगड़ा आदि यज्ञके अरने अरने काममें लगे हैं। यहि अपनी घरंपरां दिन-पार्वतीके साथ ब्राह्मणोंके आदेशानुसार नाम कर रहे हैं। मध्यूरा यज्ञाग चल, पुरोडाय आदि यज्ञीप्रभागियोंने भाँज़ हुई है। कहों दिटिङ्को अप बैद्य जा रहा है, कहों भोजन करना जा रहा है, कहों वहु-मूल्य वज्र दिये जा रहे हैं। वज्रा कोलाहल है, वज्रा उन्साह है, वज्री स्फुर्ति है।

कह देखोकि मनमें दर्ढ़ी आदक्षा है कि दैत्यराज वलि यह सब कर कर रहे हैं। इतने दुन्हे हाथने यह सारी समर्पित क्यों लुटा रहे हैं? विलोक्निके नामी तो हैं ही, अर और क्या चाहते हैं? जिनके मनमें भगवान्‌रूप प्रतिक्रिया वा निष्काम-भावकी कल्पना तक नहीं हो सकती ऐसे लोग भी सरामें बहुतसे रहते हैं।

ब्राह्मणोंनी वेदन्वनि, लोगोंनी जय-जय व्यनिके वीच वलिको उच्चना मिली कि एक द्वे तेजव्री वामन ब्रह्मचारी आ रहे हैं। उनके देव और प्रभावर्की वात सुनकर दान्हने सोचा कि सम्भव है भगवान् ही आते हो। परनु वे तो इन्हें कहापर हैं न? तो क्या वे मुझे भारकर हन्दको राज्य देंगे। हौं, भगवान् यदि अरने दाथों मारें भी तो हमारा कल्याण ही होगा। उनके दाथों किसीकी हानि तो हो ही नहीं सकती। दादार्जने ऐसा ही कहा था। पर यह क्या

निश्चय है कि वही है। वे न हों, तो भी हमें सान्नधान रहना चाहिने। न जाने वे किस देशमें आ जायें।

दूसे ही उनके ल्योतिमय मुन्नमण्डलको देखकर यत्के सब उद्दय प्रभावित हो गये। उन्हें आगे जाकर उनका स्वागत किया और नजशालमें ले आकर उन्हें सर्वोच्च आमन-पर बैठाया। वलि और विन्ध्यावलीने अपने हाथों उनके चक्र धोकर चरणामृत लिया एवं विश्वरूपक उनकी पूजा की। उस समय वामनभगवानकी छवि वही भर्ला लगती थी।

प्रकाशमान मुन्नमण्डल, सिरपर विजगी हुई जायएँ, कधेग धील वज्र, गडेमें यज्ञोपवीत, चगलमें मृगचर्म, कमरमें धूंजकीमेजला और पासही रक्षे हुए छव एवं सबल कमाड़ल शोभा पा रहे थे। पूजा हो लानेके पश्चात् वलिने ग्रायन्ह कर्म—‘द्विजयज, ब्रह्मनिर्गुण! आपके शुभागमनसे हमारी यज्ञभूमि पवित्र हो गयी। आज दुसे ऐसा अनुभव हो रहा है, मानो ब्रह्मपर्योक्ती तपस्या ही मूर्त्तिमान् होकर जायी है। आपके तेज, आपके प्रभावसे मेरे पितर तृप्त हो गये, मेरा कुछ पवित्र हो गया। आपके शुभागमनसे, आपकी चरणशूलिये मेरा शृंग पवित्र हो गया। आपके चरण-मृतसे मेरे पाप छुल गये। मैं पवित्र हो गया। ब्राह्मण-देवना! आप प्रसन्न होकर मेरी कुछ सेवा स्वीकार करें। आपको जित्पत्सुकी आवश्यकता हो, धन, भूमि, गौ, हाथी, धोड़े, कन्या आदि नि संक्रोच मुझसे मांग सकते हैं। आपका उपकरना न हो तो भी मुझपर कृपा कर्वे इस देवताको दृष्टार्थ करनेके लिये ही कुछ स्वीकार करें। ब्राह्मणकुमार! आप इस यज्ञके सुनर अवश्य कुछनकुछ ग्रहण करें। मैं आपके चरणोंमें कोटि-कोटि नमस्कार करता हूँ।’

वलिकी इस धर्मानुद्वल, उदागतायुक्त और महुरा प्रायनामो सुनकर वामन भगवान् बहुत प्रसन्न हुए। उन्हेंनि वलिका अभिनन्दन करते हुए कहा कि ‘दैत्येन्द्र! तुम्हारी वात सुनकर मुझे वज्री प्रसन्नता हुई है। तुम्हारे गुरुजन भगुवाणी और विशेषकर शुक्राचार्य थन्य हैं, जिनके सङ्ग और दिक्षासे तुम्हे ऐसी दृढ़ि प्राप्त हुई है। तुम्हारे वज्रमें यह कोई नयी वात नहीं है। तुम्हारे वज्रमें अवतक कोई ऐसा नहीं हुआ है जो शक्तिहीन हो, सूम हो अथवा किसीको कुछ ठेनेवा वज्र देकर पिर अर्वाकार कर गया हो। तुम्हारे धूंजोंमें हिन्द्याक इतना वज्र वीर था कि यद्यपि विष्णुने किसी प्रकार जीत लिया पर वे अपनेको विजयी नहीं

मानते। संमय-समयपर उसके बल-पौरुषका समरण किया करते हैं।

और तो क्या कहूँ दानबेन्द्र। हिरण्यकशिषु जब अपने भाईका बदला लेनेके लिये विष्णुको हूँडने गया, तब मानो उन्हें कही छिपनेकी जगह न मिली तो उसीके हृदयमें धूस-कर छिप गये। तुम्हारे दादा प्रह्लादकी महिमासे तो आज त्रिलोकी ही भरी हुई है जो कि अब भी सारे सासारके उद्घारके लिये निरन्तर चिन्तित रहते हैं और तुम्हारे पिता-जैसा उदार, दाता और ब्राह्मणभक्त तो सासारमें विरला ही हुआ होगा, क्योंकि जब देवता छलसे ब्राह्मणवेश बनाकर उसके पास आयु मॉगने आये, तब उसने जानकर अपनी सम्पूर्ण आयु दान कर दी। तुमने अपनी उदारतासे पूर्वजोंकी कीर्ति रख ली। आज सारे सासारमें तुम्हारी कीर्ति छायी हुई है। मैं तुमसे अधिक कुछ नहीं चाहता। केवल मेरे पगोंसे तीन पग भूमि मुझे दे दो। मुझे इससे अधिककी आवश्यकता नहीं है। अधिक परिग्रहसे पापभागी होना पड़ता है।'

बामनकी बात सुनकर बलि हँस पड़े। उन्होने कहा—‘ब्राह्मणकुमार। यद्यपि तुम्हारी बाते तो बृद्धोंकी-सी हैं परन्तु अभी बालक ही हो न। इसीसे मुझसे केवल तीन पग भूमि मॉग रहे हो। तुम्हें जितना चाहिये अधिकसे-अधिक ले लो। मैं द्वीप-के-द्वीप ढे सकता हूँ। मुझसे मॉगकर फिर किसीसे मॉगना नहीं पड़ता।’

बामनने कुछ गम्भीरतासे कहा—‘दैत्येन्द्र। सासारके विषयोंके भोगसे अन्तर्क न किसीको तृप्ति हुई है, न होगी। जैसे अग्निमें जितना धी डाला जाय, उतनी ही वह बढ़ती है, वैसे ही बासनाओंको जितना बढ़ाया जाय, उतनी ही अधिक उनकी वृद्धि होती है। यदि मैं तीन पग भूमिसे सतुष्ट न रहूँ तो एक द्वीप मिलनेपर भी सतोपकी आगा नहीं है। सुख सतोपमें है, परिग्रहमें नहीं। अनेकों राजा सातों द्वीपोंके स्वामी हुए हैं, क्या वे भर्वदा सुखी रहे हैं, क्या उनकी तृणा नष्ट हो गयी है? सासारके दुखोंका कारण अस्तोष है। जो सतुष्ट है, उन्हे कहीं दुख नहीं है। विशेष करके हम ब्राह्मणोंके लिये सतोष ही सर्वोत्तम वस्तु है। इसलिये मैं प्रयोजनसे अधिक नहीं चाहता। आप मुझे केवल तीन पग पृथ्वीका दान करें।’

ब्राह्मणके ज्ञान, सतोष, तेज एव शान्ति आदि सद्गुणोंको देखकर बलि आश्वर्यचकित हो गये। उन्होने कहा—‘ब्राह्मण-

कुमार। तुम्हारी जितनी इच्छा हो, उतना ही लो। मैं तुम्हारी प्रसन्नतामें ही प्रसन्न हूँ।’

बलिने सकल्प करनेके लिये जलपात्र उठाया।

(७)

जब मनुष्यको अपनी विद्या-बुद्धिका अभिमान हो जाता है तब कभी-कभी वह ऐसा सोचने लगता है कि ‘मैं भगवान्-से अलग रहकर भी सुखी हो सकता हूँ।’ उसके अन्तःकरणके किसी कोनेमें ऐसा भाव भी आ जाता है कि ‘एक बार अवसर पड़नेपर भगवान्-को भी छका सकता हूँ और अपनी चतुरतासे भगवान्-की इच्छाके विपरीत भी काम बना सकता हूँ।’ यह कोरा अज्ञान है, परन्तु बड़े-बड़े कहे जानेवाले लोगोंमें भी यह पाया जाता है। यहाँतक देखा गया है कि बाहरसे भगवान्-की दुर्बार्द्ध देनेवालोंके चित्तमें भी यह भाव स्थित रहता है और कई बार तो उन्हें स्वयं इस बातका पता भी नहीं होता।

शुक्राचार्यकी विद्या, बुद्धि, नीति, सब एकसे एक बढ़कर थे। उनकी मृतसजीविनी विद्या देवगुरु बृहस्पतिको भी नहीं मारूम थी। उनकी सम्मतिके बलपर बलिने त्रिलोकीका राज्य प्राप्त किया था और उनकी नीति शुक्रनीतिके रूपमें आज भी महान् आदर पा रही है। परन्तु वे भी जगत्की सम्पत्तिको बड़ा महत्व देते थे। विषयोंमें उन्हें सुख दीखता था, भगवान्-के आनन्दका अनुभव नहीं था। केवल विद्यासे ही उस आनन्दका अनुभव नहीं होता।

दैत्येन्द्र बलि अनजानमें एक तेजस्वी ब्रह्मचारी समझ-कर बामनकी अभिलाधा पूरी करनेके लिये सकल्प करने जा रहे हैं और शुक्र जान-बूझकर कि ‘ये भगवान् हैं, कहीं मेरे यजमानकी सारी सम्पत्ति छिन न जाय’ इस भयसे बलिको मना करने जा रहे हैं। उन्हें भगवान्-की अपेक्षा बलिकी सम्पत्तियोंका अधिक मूल्य दीखता है। अब यहाँ क्या निर्णय किया जाय कि शुक्रका ज्ञान अच्छा है या बलिका अज्ञान?

शुक्राचार्यने कहा—‘दैत्येन्द्र। यह कोई साधारण ब्रह्मचारी नहीं हैं। ये कश्यप-अदितिसे अवतार ग्रहण करके देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये स्वयं विष्णु ही आये हुए हैं। इन्हे तीन पग भूमि देनेकी बात करके तुमने अच्छा नहीं किया। ये दो पगमें ही सम्पूर्ण पृथ्वी और

स्वर्ग नाप लेंगे तथा अपने बड़े शरीर से सारा आकाश ले लेंगे, तुम तीसरा पग कहाँसे पूरा करोगे। ये तुम्हारा राज्य छीनकर इन्द्रको देनेके लिये आये हैं, यदि सब तुम इन्हे दे दोगे तो तुम्हारे शरु सुली हो जायेंगे और तुम्हारे बन्धु-यान्धव तथा स्वयं तुम राहके भिसारी बन जाओगे। दानकी भी एक नीति है। दान ऐसा होना चाहिये, जिससे सर्वदा दान देनेकी परम्परा चलती रहे। आज दान देकर कल भूतों मरना ठीक नहीं। तुम्हें इट्टी प्रतिशक्ति दोष न लगेगा। अस्वीकार कर दो।”

शुक्राचार्यकी बात सुनकर बलिके हृदयकी अद्भुत दशा हो गयी। अभीतक वे साधारण ब्राह्मण समझ रहे थे। जब उन्हें मात्रम् हुआ कि ये तो वही भगवान् हैं जिनकी प्रतीक्षा करते-करते मेरे एक एक दिन युग-युगकी भाँति चीतते हैं, तब उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वे रिल उठे, वे सोचने लगे कि जिनके सकल्पमात्रसे सारी सृष्टिका प्रलय हो सकता है, वे ही प्रथु धाज मेरे द्वारपर भिसारीके रूपमें आये हैं। उनका हृदय गद्गद हो गया। वे यहाँ जोर लगाकर अपनी झाँगीके झाँसू रोके हुए थे। उनका चिच भगवान्की भक्त-वस्तुलता, दयालुता आदिमें तम्य होता जाता था। ‘जिनका सब कुछ है, वे याचक हैं और जिनका कुछ नहीं वह दाता बना हुआ है’—यह अहङ्कारके कारण वनी हुई परिस्थिति और उसका हुपरिणाम है। परतु भगवान् कितने दयालु हैं। वे भिसारी बनकर भी हमें कल्याण-मार्गपर चलाते हैं।

उन्होंने शुक्राचार्यसे कहा—‘भगवन् ! आप अपनी समझसे मेरे कल्याणकी ही बात कह रहे हैं। आप मेरे हितपौरी हैं। परतु जो बात मैं कह चुका हूँ उसे छोड़ना ठीक नहीं जैवता। मैं नरकसे, मृत्युसे और किसी भी सामारिक यन्त्रणासे नहीं डरता; परतु इससे बहुत डरता हूँ। किसी साधारण मनुष्यसे भी कोई प्रतिज्ञा करके मैं उसे नहीं तोड़ सकता तो साक्षात् भगवान्से ऐसा व्यवहार कैसे कर सकता हूँ। जिन्हे पत्र, पुण्य आदि देनेसे जीवका कल्याण-साधन होता है, उन्हें त्रिलोकीका दान करके मैं दुखी हो जाऊंगा, यह बात समझमें नहीं आती। वह इन्द्रको देना चाहते हैं—दे दें। मैं तो उनकी वस्तु उन्हें देना चाहता हूँ।’

शुक्राचार्यको ऐसा जान पड़ा कि बलि मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर रहे हैं, मेरा अपमान कर रहे हैं। समानकी कामनामें ठेस लगते ही क्रोध आ गया और क्रोध तो मनुष्यको

अधा बना ही देता है। शुक्राचार्यने गाप दे दिया—‘श्रीघ्र ही तुम्हारी सम्पत्ति नष्ट हो जाय।’

इस समय शापसे उन्हें तनिक भी निन्ता या घवराहट नहीं हुई। उन्हें इस सम्पत्तिके बदले स्वयं भगवान् मिल रहे थे। विन्यावलीने सोनेकी ज्ञारीसे जल दिया, बल्ले अपने हाथों भगवान्के चरण धोये, चन्दन लगाया, माला पहनायी और सकल्प लेनेके लिये जल उठाया।

सुनते हैं—फिर शुक्राचार्यने अपना शरीर सूक्ष्म बनाकर ज्ञारीमें प्रवेश किया और जल गिरनेका रास्ता रोक दिया। भगवान्से एक कुश उठाकर उसके छेदमें डाला, शुक्राचार्यकी एक ओंख फूट गयी। तबसे वे काने हो गये। दानमें विघ्न करनेका अच्छा फल मिला।

बलिके सकल्पके लिये जल ग्रहण करते ही ससारके सभी प्राणी आश्र्यचकित हो गये। इतना त्याग, इतना सत्यप्रेम और इतनी भगवन्निष्ठा कि यह जानते हुए भी कि सारी वस्तुएँ हमारे शत्रुको मिलेंगी, त्रिलोकीका राज्य दान कर रहे हैं। बलिके अभिनन्दनमें देवताओंके नगरे वज पढ़े, गन्धर्व गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं, विद्याधर पुण्यवर्षा करते हुए स्तुति करने लगे।

इधर बामन भगवान्से दूसरी ही लीला रची। अब उनका नन्हा-सा बवना शरीर न रहा। उन्होंने अपना विराट्-रूप प्रकट कर दिया। बास्तवमें भगवान्से विराट्-रूप-दर्शनका यही समय है। जब जीव ससारकी समस्त वस्तुओंपरसे अपनी ममता हटा लेता है, तब सभी वस्तुएँ भगवान्की हो जाती हैं और उन रूपोंमें स्वयं भगवान् हो जाते हैं।

उस समय बलिने देखा कि सम्पूर्ण संसार, जीव, सस्कार, अन्त करण, इन्द्रिय और शरीर तथा जो कुछ विगुणमय है सब भगवान्से शरीरमें है। वर्णोंमें पृथ्वी, तलवेमें रसातल, ज्योतिर्में पर्वत, नाभिमें अन्तरिक्ष, कोखोंमें सातों समुद्र, छाती-पर ताराओंकी माला, बाहुओंमें इन्द्रादि देवता, कानोंमें दिग्गाँ, बालोंमें चादल, श्वासमें चायु, आँखोंमें सूर्य और उनके शरीरमें सम्पूर्ण विश्वकी सभी वस्तुएँ पृथक् पृथक् दीख पड़ीं। उस समय भगवान्से सारे आयुध, समस्त पार्षद उपस्थित हो गये।

सकल्प पूर्ण होते ही भगवान्से एक पगसे सारी पृथ्वी, शरीरसे आकाश एवं बाहुओंसे सारी दिग्गाँ ले लौं। दूसरे पगसे स्वर्ग नाप लिया। भगवान्सका दूसरा पग स्वर्गमें होकर

महर्लोक, जनलोक एवं तपोलोकमें होता हुआ ब्रह्मलोकमें पहुँचा। उन लोकोंके रहनेवाले सिद्धोंने विधिपूर्वक पूजा की।

ब्रह्मने देखा कि उनका लोक भगवान्‌के नखमण्डलकी दिव्य चमकसे चमक उठा। वे सम्भ्रमके साथ उठ सड़े हुए और वड़े प्रेमसे अपने कमण्डलुके जलसे उन्होंने भगवान्‌के चरण-कमल पथारे। उस समय वहाँके निवासी मरीचि आदि प्रजापति, सनकादि सिद्ध तथा समस्त वेद-उपवेदोंने भगवान्‌की पूजा की तथा गद्गढ कण्ठसे प्रार्थना की। ब्रह्मके कमण्डलुका जल ही कालान्तरमें गङ्गाके रूपमें अवतीर्ण हुआ, जिसकी परम पावन तीन धाराओंसे त्रिलोकी पवित्र होती है।

एक ओर ब्रह्मा आदि गन्ध, धूप, दीप आदिसे पोहशोपचार पूजा कर रहे थे। आरति, नृत्य, गीत, नाम-कीर्तन, गङ्गा-नगारादि वाजे तथा स्तुतियोंसे भगवान्‌की आराधना करके अपने जीवनको सफल कर रहे थे। दूसरी ओर शृंखराज जामवान् मनकी भोंति तीव्र गतिसे दौड़कर भगवान्‌की प्रदक्षिणा कर रहे थे और भेरी वजान्वजाकर चारों ओर देवताओंकी विजय, भगवान्‌की कृपा और परमानन्दकी घोषणा कर रहे थे।

दैत्योंने देखा कि हमारे स्वामी तो इस समय यजकी दीक्षा लिये हुए हैं, शब्द उठा नहीं सकते और ये उन्हें धोखा देकर सारा राज्य ले लेना चाहते हैं। वे अपने-अपने शब्द उठाकर दृट पड़े। भगवान्‌के पार्षद नन्द, सुनन्द आदिने हँसते-हँसते उन्हे भार भगाया। यह सब देखकर वलिने उन्हे समझाया कि 'भैया। जर भगवान् अनुकूल रहते हैं, तभी विजय प्राप्त होती है। इस समय वे देवताओंके अनुकूल हैं। तुम्हारी एक न चलेगी। यद्यपि वे सदा सवपर अनुकूल ही रहते हैं, परतु उनकी लीलाका रहस्य सहसा समझमें नहीं आता। यह तुम्हारी विजयका समय नहीं है, भगवान्‌की लीला देखो और प्रसन्न रहो।'

वलिकी वात दैत्योंकी समझमें नहीं आयी। परतु वे अपना अवसर न देखकर पातालमें चले गये।

अभी तीमरा पग देना वाकी ही था।

(८)

भगवान् सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् है और परम दयालु हैं। वे सब कुछ जानते हैं, सब कुछ कर सकते हैं और किसी-को दुखी देख नहीं सकते। इन तीन वातोंपर जिनका विश्वास हो गया है, वे भयकर-से-भयकर परिस्थितिमें भी

भयभीत नहीं होते, दुखी नहीं होते। सर्वज्ञ भगवान् किसी-की परीक्षा नहीं लेते, उनकी परीक्षामें कोई केल नहीं होता—सब पाप ही होते हैं, परतु विश्वासकी कमी और अपनी दुर्वलता ही उन्हे दुखी बना देती है। ऐसी परिस्थिति-में भी अपने भक्तोंको सुखी दिखलाकर भगवान् जगत्‌के सामने उनकी महिमा प्रकट करते हैं और एक महान् आदर्श उपस्थित कर देते हैं।

भगवान्‌ने तीसरे पगके लिये वलिको डॉटा। भगवान्-की इच्छा समझकर गरुडने उन्हे वारण-पाशसे बोध दिया। भगवान्‌की लीलाका रहस्य न समझनेवालोंमें हाहाकार मच गया। एक ध्यणके लिये सभी स्तव्य हो गये। भगवान्‌ने कहा—'दैत्यराज ! तुमने वडी ढौंग मारी थी कि मैं यह ढौंगा, वह ढौंगा। अब तीन पग जमीन नहीं दे सकते। एक पगमें सारी पृथ्वी, दूसरेमें स्वर्ग और शरीरसे आकाश तथा वाहुओंसे दिआएँ ले लो। अब तीसरे पगके लिये स्थान बताओ। यदि प्रतिज्ञा करके नहीं दे सकोगे तो तुम्हे नरकमें जाना पड़ेगा। प्रतिज्ञा करके न देनेवालेकी यही गति होती है।'

भगवान्‌की यह कड़वी वात सुनकर भी वलिको किंचित् क्षोभ नहीं हुआ। उन्होंने वडी प्रसन्नता एवं गम्भीरतासे कहा—'भगवन्। आप परम दयालु हैं। मैं धनके मद्दमे अधा होकर अपनेको उसका स्वामी मानता था और दानके समय मैं वडा उदार दाता हूँ, ऐसा अभिमान करता था, परतु आपने मेरा धमड तोड़ दिया। न मेरा कुछ है, न मैं दाता-कर्ता हूँ। सब आपकी लीला है, आप ही करते-करते हैं। यही समझकर हमारे दादा प्रह्लादने आपके चरणों-की शरण ली थी। भगवन्। यह तीसरा पग पूरा न करके आपने मुक्षपर वडी टया की है। आप इसके बदले मुझे ही ले लीजिये। प्रभो ! अब आप अपना चरण मेरे सिरपर रखें और मेरे अन्त-करण—मैन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा आत्माको अपना बना लें। यह सब तो आपके हैं ही, केवल अजानके कारण मैं भूल हुआ था। भगवन् ! अब ऐसी कृपा करे कि यह भूल कभी न हो।'

अभी वलि बोल ही रहे थे कि भगवान्‌की स्मृतिमें विभोर विहुल होकर मधुर स्वरसे भगवद्वामका उच्चारण करते हुए भक्तराज प्रह्लाद वहाँ उपस्थित हुए। वलि उन्हें देखकर चुप हो गये। उनका सिर छुक गया और

ओंखोंमें ओंसू आ गये । वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये कि जिनके आनेपर मैं विविष्युवक्त पूजा करता था, आज उनका चरण-स्पर्श करके प्रणाम भी नहीं कर सकता ।

भगवान्को देखकर प्रह्लादकी ओंखोंसे आनन्दके ओंसू बहने लगे, शरीरमें रोमाञ्च हो गया । भगवान्के चरणोंमें वे साथाङ्ग लोट गये । थोड़ी देर बाद उठे और अङ्गल-चौधकर झंधे कण्टसे बोलने लगे ।

‘प्रमो ! तुमने बड़ा ही अच्छा किया । तुम्हाने इसे इन्द्र-पद दिया और तुम्हाने ले लिया । वह तुम्हारा ही है । उसे जो अपना मानकर गर्व करता है, उसके हाथमें वह रह नहीं सकता । इसे बड़ा घमड था । यह तुम्हारे भजनसे विसुख हो गया था । घमदसे बड़े-बड़े लोग मोहित हो जाते हैं । यह तो अभी बच्चा है । तुम्हारा प्रत्येक विधान न्याय तथा करुणासे परिपूर्ण है । मैं तुम्हें कोटि-कोटि नमस्कार करता हूँ ।’

विन्द्यावलीने आकर पूजा की । नीचे मुख करके हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी । भगवान् उसकी श्रद्धा, भक्ति, पाति-ब्रत्यको देख-देखकर प्रसन्न हो रहे थे ।

ब्रह्माने भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया और बड़ी नम्रतासे प्रार्थना की—

‘भगवन् ! अब आपने इसका सर्वस्व ले लिया । अब इसे छोड़ दीजिये, छोड़ दीजिये । जिसके चरणोंमें जल चढ़ाकर तथा दूय आदिसे पूजा करके लोग बन्धनमुक्त हो जाते हैं, उन्होंके चरणोंमें अपना सर्वस्व समर्पित करके बलि बन्धनमें पड़े, यह अच्छा नहीं लगता ।’

भगवान्ने कहा—‘ब्रह्मन् ! अनेक योनियोंमें भटकने-के बाद इस शरीरकी प्राप्ति होती है । केवल इसीमें अपने कल्याणका साधन किया जा सकता है और कहीं नहीं । इसमें भी आकर लोग अपनी कुलीनता, पदमर्यादा, बल, सुन्दरता और सम्पत्ति आदिमें फँस जाते हैं, उन्हें अपना मानकर गर्वसे फूल जाते हैं, अपने जीवनका उद्देश्य भूल जाते हैं । परमार्थसे प्रेम न कर विषयोंमें प्रेम करने लग जाते हैं । ऐसी स्थितिमें यही एक उपाय है कि उन वस्तुओंको उनसे छीन लिया जाय । यही मेरा परम अनुग्रह है । मैं जिसपर दया करता हूँ उसकी सम्पत्ति छीन लेता हूँ ।

‘मैं केवल सम्पत्ति छीन ही लेता हूँ, देता नहीं हूँ,

सो बात नहीं है । जब अभिमान नष्ट हो जाता है, वास्तविक तत्त्वकी उपलब्धि हो जाती है, तब मैं अपनी इच्छाके अनुसार त्रिलोकीका शासन भी करता हूँ । परतु अभिमान मुझे पसद नहीं । दानवेन्द्र बलि तो मेरे परम भक्त हैं, प्रह्लादके पौत्र हैं । इनका धन छीन लिया, डॉटा, बॉथ और नरकमें भेजनेकी बात कही, फिर भी इनके मनमें क्षोभ नहीं । बन्धु-वान्धवोंने छोड़ दिया, गुरुजनोंने शापतक दे दिया, परतु ये सत्यसे विचलित नहीं हुए । इनका विश्वास नहीं डिगा । इन्हें अब मैं ऐसा स्थान देता हूँ जो देवताओंको भी दुर्लभ है । ये सावर्णि मन्वन्तरमें इन्द्र होंगे । तबतक सुतल लोकमें रहें । उस विश्वकर्मीके बनाये हुए लोकमें आधि व्याधि, क्लेश, पराजय आदि नहीं होते और मेरी दृष्टिके प्रभावसे कोई विघ्न-बाधा दुख नहीं पहुँचा सकती । समय आनेपर ये इन्द्र होंगे और मैं इनकी रक्षा करूँगा ।’

बलिकी और दृष्टि करके भगवान्ने कहा—‘देवतराज ! अब तुम सुतल लोकमें जाओ । बड़ा ही सुन्दर लोक है, देवतालोग भी उसे चाहते रहते हैं । तुम्हें कोई दवा न सकेगा । जो तुम्हारी आज्ञा न मानेगा, मेरा चक्र उसका सिर काट डालेगा । मैं सर्वदा तुम्हारी रक्षामें तत्पर रहूँगा । तुम सर्वदा मेरा दर्शन प्राप्त कर सकोगे । मैं हाथमें गदा लेकर तुम्हारा द्वारपाल बना रहूँगा । बलि ! तुमने मुझे बौध लिया । जो मेरे हाथ बैध गया, मैं उसके हाथ बैध गया । मेरा तुम्हारा हूँ ।’

भगवान्के मुखसे ये शब्द निकल रहे थे और सबकी आँखोंसे आँख । सभी भगवान्की कृपालुता देखकर चकित थे । अवश्यक बलिका बन्वन खुल चुका था । उनका सिर था भगवान्के चरणोंके नीचे और भगवान्के हाथ उन्हें बलात् उठाकर छातीसे लगा रहे थे ।

सावधान होकर बलिने भगवान्से कुछ कहनेकी चेष्टा की किंतु उनका गला झंध गया, बाणी न निकली, शरीर पुलिकित हो गया । वे एकटक भगवान्का मुखमण्डल देखना चाहते थे, पर अशुद्धाराके बेगसे उनकी आँखें भरी हुई थीं, देख न पाते थे । अन्तमें भगवान्जी आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होंने सपरिवार सुतल लोककी यात्रा की । देगा तो एक ओर शिव-इन्द्रादि देवता भगवान्जी यह लीला देख-देखकर निहाल हो रहे हैं । सभको प्रणाम करके जर बलि चले गये तब भगवान्ने शुक्राचार्यसे कहा—

‘अब इस यजकी पूर्णाहुति कर दो, जिससे विधिभग न हो, यजमानका कल्याण हो।’ शुक्राचार्यने कहा—‘भगवन्! जिस वज्रमे आप स्वयं उपस्थित हैं, वहाँ विधिभंग कैसी? मन्त्र, तन्त्र, काल, देश एव वस्तुसे जप यजकी पूर्णता नहीं होती, किन्तु प्रकारकी त्रुटि रह जाती है, तब आपके नामोंका सक्रीतन करके उसे पूर्ण किया जाता है। इस यजमे तो आप स्वयं उपस्थित हैं। वहाँ त्रुटि कैसी? परतु आपकी आज्ञाका पालन करना ही जीवोंका एकान्त कर्तव्य है। आपकी आज्ञा सर्वथा गिरोधार्य है’—कहकर शुक्राचार्यने यजकी पूर्णाहुति की।

अब प्रह्लादने भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श करते हुए कहा—‘भगवन्! ऐसी कृपा आपने अवतक किसीपर नहीं की है। ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी और योगेश्वरोपर भी ऐसी कृपा नहीं हुई है कि आप उनके द्वारपाल हों। प्रभो! आपमें विप्रमता नहीं है। सप्तको एक ही हृषिके देखते हैं। यदि आपमें नीच-ऊँचका भेट होता तो आप हम असुरोंके द्वारपाल कैमे होते? प्रभो! हममें कोई योग्यता नहीं है, हमारा कुछ अविकार नहीं है। यह सब आपकी कृपा है। मैं आपके चरणोंमें अनन्त प्रणाम करता हूँ।’

प्रणाम करते हुए प्रह्लादसे भगवान्‌ने कहा—‘प्रह्लाद! अब तुम भी सुतल लोकमे जाओ! वलिके साथ मेरा स्मरण करते हुए प्रसन्नतासे रहो। तुम वहाँ नित्य मेरा दर्घन पाते रहोगे। तुम्हारे और वलिके सुतलगसे वहाँके दैत्योंका आसुर भाव छूट जायगा। उनमें देवभाव आ जायगा। ससारके जिस यजमें विधिभग हो जायगा, उसका फल सुतलमें रहने-वालोंको प्राप्त होगा।’

भगवान्‌की आज्ञासे प्रह्लाद चले गये। अवतक भगवान् अपने पहले वामन रूपमें हो गये थे।

इधर इन्द्रने वडी तैयारी की। देवता, ऋषि, मुनि और योगेश्वरोंके साथ भगवान्‌को विमानपर चढ़ाकर स्वर्ग ले गये। वहाँ भगवान्‌ने इन्द्रको स्वर्गके रिंहासनपर बैठाकर सबके साथ विधिपूर्वक राज्याभियेक किया और इन्द्रका राज्य उन्हें सौंप दिया।

ब्रह्माकी अनुमतिसे सबने मिलकर उपेन्द्रपदपर वामन भगवान्‌का अभियेक किया और अपनी प्रसन्नता तथा संतोषके लिये वेद, धर्म, मङ्गल, व्रत एव मोक्ष आदिका स्वामी उन्हें बनाया। कव्यप, अदिति, सनत्कुमार, नारदादिने स्वयं अपने हाथों तिलक किया। सर्वत्र आनन्द, मङ्गल, प्रेम, ज्ञानका साम्राज्य हो गया। भगवान् एक रूपसे इन्द्रके पास रहने लगे और एक रूपसे वलिके पास। आज भी वे दोनोंके पास रहते हैं।

हाँ, तो भगवान्‌की लीला वडी रसमयी है। वे अजन्मा होनेपर भी इसीलिये जन्म लेते हैं, अकर्मा होनेपर भी इसीलिये कर्म करते हैं। अव्यक्त होनेपर भी इसीलिये व्यक्त होते हैं। वे स्वयं रसरूप होनेपर भी अपनी लीलामें विशेष रसका आस्वादन करते हैं। भगवान्‌के जिस दिव्य जन्म एवं दिव्य लीलाका रसास्वादन करनेके लिये जानीलोग रसरूप-सुखका त्याग कर देते हैं और सर्वदा उसीमें मस्त रहते हैं, उसके सम्बन्धमें यदि हम वार-वार कहे कि भगवान्‌की लीला वडी रसमयी है तो इसमें आश्रयकी क्या वात है।

अन्य अवतारोंकी भौति भगवान् वामनकी उपासनाके भी बहुतसे मन्त्र हैं। उनमेंसे यहाँ केवल एक मन्त्र दिया जाता है—‘ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महावलय स्वाहा।’ इस मन्त्रके ऋषि इन्द्र हैं, विराट् छन्द है और देवता स्वयं वामन भगवान् हैं। इसका ध्यान इस प्रकार कहा गया है—

उवलन्मयूखकनकच्छत्राध्पुण्डरीकगम् ।
पूर्णचन्द्रनिभध्यायेच्छीभूम्याद्विलष्पार्कम् ॥

चमकते हुए स्वर्णमय छत्रके नीचे पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान भगवान् वामन वडे ही सुन्दर कमलपर विराजमान हैं, लक्ष्मी और पृथ्वी वगलमें खड़ी होकर उनकी सेवा कर रही हैं। जो साधक इस प्रकार भगवान् वामनका ध्यान करके विधिपूर्वक मन्त्रका जप करता है, उसकी सब अभिलापाएँ पूर्ण होती हैं।

दोलो श्रीवामन भगवान्‌की जय !



सम्पादकका निवेदन और क्षमाप्रार्थना

इस वर्ष विशेषाङ्कके लिये कई प्रस्ताव आये थे। तीर्थाङ्कके लिये विशेष आग्रह था, पर उसकी सामग्री तैयार नहीं थी। सामग्री सग्रह करनेके लिये हमारे कुछ साथी तीर्थयात्रामें गये हुए थे और वे अभी यात्रामें ही हैं। सामग्री सग्रह की जा रही है। इसी बीचमें गीताप्रेससे एक छोटी-सी पुस्तिका निकली थी—‘पढो, समझो और करो’। इस पुस्तकको लोगोंने बहुत ही प्रसंद किया तथा इसका प्रचार-प्रसार भी दूसरे हुआ तथा हो रहा है। इस पुस्तकको पढ़कर लोगोंने आग्रह किया कि इसी प्रकारका एक बड़ा सग्रह ‘कल्याण’ के विशेषाङ्कके रूपमें निकाला जाय। यह प्रस्ताव सभको ठीक जँचा और तदनुसार कार्य आरम्भ कर दिया गया। हिंदीमें—जहाँतक हमारा अनुमान है—ऐसा कोई बड़ा ग्रन्थ अवतक नहीं निकला है। महात्मा तथा सत्युदयोंके उपदेशों, वचनों तथा वाणियोंके सग्रह तो कर्द प्रकाशित हुए हैं। गीताप्रेससे ही ‘दाईं हजार अनमोल घोल’ ‘भजन-सग्रह’ आदि पुस्तकें निकली हैं तथा ‘सत्त्वाणी-अङ्क’ नामक ‘कल्याण’ का विशेषाङ्क भी प्रकाशित हो चुका है। पर जिसमें छोटी-छोटी ऐसी शुभ प्रेरणाप्रध घटनाएँ सकलित हों, जिनसे मानव-जीवन सभी क्षेत्रोंमें उच्चस्तरपर पहुँच सके और जो एक राष्ट्रके ही नहीं, मानवमात्रके चरित्रनिर्माणमें पूर्णरूपसे सहायक हों, ऐसा कोई बड़ा ग्रन्थ नहीं देखनेमें आया। अतएव ऐसे ग्रन्थके प्रकाशनकी आवश्यकता थी।

इसके अतिरिक्त, आज मानव-समाजका स्तर बहुत नीचेकी ओर जा रहा है। राग द्वय, कल्ह-प्रियेव, वैर-हिंसा, असत्य-स्त्रेय, छल-कपट, दम्भ-ओह, ईर्ग-प्रतिरिद्धि, अभिन्नन-नार्व, मन-इन्द्रियोंकी गुलामी, कायरता-कुचेष्टा, पर-मुख-कातरता और पर-दुर-संप्रयणता, नीच कामना और स्वार्थपरता, कामोपभोग-परयणता, मतवाद और दलवादी आदि मानव-समाजसे मानवताका अपहरण करनेवाले दोषोंका प्रचार-प्रसार और विस्तार हो रहा है। भारतवर्षमें भी ये सब दोष वहीं तेजिसे फैल रहे हैं और हमलोग इन्हें स्वराज्य-शिशुके शुभ जन्मके बाद होनेवाली सहज अस्थायी मातृपीड़कों स्वरूपमें मानकर सहन कर रहे हैं, अथवा जहाँ दोषोंके सरासे हमारी बुद्धि कल्पित हो गयी है एव तमसाञ्चञ्च होनेके कारण वह विपरीतदर्गिनी हो गयी है, वहो इन दोषोंमें ‘सुदृगुण-बुद्धि’ और इनसे होनेवाले पतनमें ‘उत्थान-बुद्धि’

होनेसे हम इन्हें उच्चतिका लक्षण मानकर सहर्ष अपना रहे हैं। भगवान् जो नित्य, सत्य, चिदानन्द-स्वरूप हैं, जो परम सत् हैं, जिनका वोध या प्राप्त करना ही मानव जीवनका चरम और परम उद्देश्य है, उन्हें भूर्लोकी कल्पना मानकर उनका अस्तीकार कर रहे हैं। यह जो ‘सत्’ रूप परमात्माका तथा उनके अनुकूल तथा उनकी प्राप्तिके साधन-स्वरूप दैवी सम्पदाके ‘सत्’गुणों, सद्गावों तथा सत्-क्रियाओंका अस्तीकार और भगवद्विद्वारा असद् भावोंका तथा दुर्गुण, दुर्माव, दुष्किया-रूप ‘असत्’ का स्वीकार है, यह निश्चय ही हमारे लिये भयानक दुष्परिणामका कारण होगा। अपने राष्ट्रको तथा मानव-जातिको इससे बचाना अत्यवश्यक है। यह आजका सरपे अधिक आवश्यक कार्य है। यह न हुआ और सासारके प्राणी ‘सत्’ का परित्याग कर ‘असत्’ की सेवामें लगे रहे तो सासार सचमुच दु खार्णव बन जायगा। इसके लिये भी इस प्रकारके ग्रन्थोंके प्रकाशन और प्रचार-प्रसारकी परम आवश्यकता है, जिनसे जनसमुदायमें सद्गवना फैले, लोगोंके सात्त्विक तथा शुभ चरित्रका निर्माण हो, हमारे राष्ट्रपुरुषकी बड़े उच्चतरपर प्रतिष्ठा हो और उसके आदर्शसे विश्व-मानवताको प्रकाश मिले एव वह अपने नित्य सत् भगवत्-स्वरूपकी उपलब्धि कर सके।

सर्वशक्तिमान् सर्वउत्तर-प्रेरक, सर्वेश्वर, परम दयासागर, अग्रोध कल्याण-गुणगणार्थव श्रीभगवान्की कृपाके बलसे ही यथार्थ रूपमें कुछ काम किया जा सकता है। हम किसी पार्थिव पदार्थके बलपर, अभिमानका आश्रय लेकर कुछ करने जायेंगे, तब तो उसका फल विपरीत ही होगा। उनकी कृपाके बलसे ही सारे विद्वानोंका नाग और समस्त अनुकूल साधनोंकी प्राप्ति होती है। उनका बल ही परम बल है। हम यह तो स्पष्ट अनुभव करते हैं कि हम मिथ्या अभिमानसे रहित नहीं हैं और न हमें अनन्य रूपसे केवल भगवान्की महती कृपाका ही भरोसा है। अपनी कमी हमारे सामने प्रत्यक्ष है। पर साथ ही भगवत्कृपासे ही हमें यह भी अनुभव होता है कि हमारे अत्यन्त साधनहीन, गुणहीन तथा नीचाशय होनेपर भी भगवान्की हमपर अमन्त और असीम कृपा है और हमार्य यह क्षुद्र प्रयास भी,—महान् आकाशसे भृष्टके उड़नेके सूझ अत्यन्त नगण्य तथा तुच्छ होनेपर भी, तथा अपने अभिमानका प्रकाशक एव प्रचारक होनेपर भी—वस्तुत भगवत्कृपाका ही एक सकेत मात्र है। हमारे अज्ञानका पर्दा हटे और बासवमें हम अपने प्रत्येक



COLLECTION OF VARIOUS

- > HINDUISM SCRIPTURES
- > HINDU COMICS
- > AYURVEDA
- > MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

कार्यमें अवत्-सकेत ही नहीं, भगवान्‌के मङ्गलमय करकमलोंका दर्शन करें—इस स्थितिके लिये हम भगवान्‌से विनीत प्रार्थना करते हैं और आप सब कल्याणके पाठक-पाठिकाओंकी कृपा तथा आत्मीयतासे पूर्ण सद्भावना चाहते हैं।

इस अङ्कके सम्पादनमें हमें जिन महानुभावोंसे सहायता मिली है, उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। बहुतसे सज्जनोंने संतोंकी जीवनियाँ, अपने पूज्य गुरु भगवान्‌के चित्र-चरित्र तथा संतोंकी वाणियाँ भेजी हैं, पर वे इस अङ्कमें काम नहीं आ सकीं, इसके लिये हम उनसे क्षमा चाहते हैं। कुछ ऐसी घटनाएँ आयीं, जो पहले छप चुकी थीं, वे भी नहीं छप सकी और स्थानाभावसे भी बहुत-सी घटनाएँ नहीं जा सकी हैं, यद्यपि महत्वपूर्ण घटनाओंको देनेका ही यथासाध्य प्रयत्न किया गया है। इसके लिये भी हम नम्रताके साथ क्षमा चाहते हैं।

किसी सत्कथामें लेखक महानुभावका नाम भूलसे छूट गया हो, अनुवाद या सक्रिय करने आदिमें कोई भूल हो गयी हो तो उसके लिये भी हम क्षमाप्रार्थी हैं।

इस अङ्कमें एक हजार सत्कथा देनेका विचार था, परन्तु स्थानाभावसे ८६० कथाएँ ही जा सकी हैं। शेष कथाएँ क्रमशः साधारण अङ्कोंमें दी जा सकती हैं।

भगवान्‌के चौबीस अवतारोंकी विस्तृत कथा इस अङ्कमें देनेकी वात सोची गयी थी, परन्तु स्थानाभावसे केवल पाँच ही अवतारोंकी कथा दी जा रही है। इनके लेखक सभ्यान्य स्वामीजी श्रीअखण्डनन्दजी महाराजके हम कृतज्ञ हैं।

इस अङ्कके सम्पादनमें बहुत त्रुटियाँ रही हैं। कुछ तो ऐसी हैं जो हमारी दृष्टिमें हैं। बहुत-सी ऐसी

होंगी, जिनकी ओर हमारा ध्यान गया ही नहीं है। हमारा यह भूलोंसे भरा तुच्छ प्रयास है। हमारे देशके सुयोग्य अधिकारी विद्वान् तथा प्रकाशक हम ओर ध्यान देकर उत्तमोत्तम साहित्य प्रकाशित करेंगे, ऐसी आशा है। हम अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमाप्रार्थना करते हैं।

इस अङ्कमें प्रकाशित घटनाएँ जिन-जिन विविध भाषाओं-के अन्योंसे मग्रह की गयी हैं, उन सबके लेखकों तथा प्रकाशकोंका हम हृदयसे आभार मानते हैं तथा उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। सबके नाम देनेके लिये स्थानकी कमी थी, इसलिये अलग-अलग नाम न देकर हम एक ही साथ उन सबके प्रति अपनी श्रद्धा समर्पित करते हुए उनसे क्षमा-प्रार्थना करते हैं। यह विशेषाङ्क हमारे उन श्रद्धास्पद लेखकोंके मत्-प्रयासका ही परिणाम है, अतः सारा श्रेय उन्हेंको है। हमने तो केवल उनकी चीजोंको इसमें एक जगह सजानेका प्रयास किया है। इस प्रयासमें प्रमादवज्ञ हमसे अनेक प्रकारकी भूलें हुई होगी। उनके लिये वे सब महानुभाव कृपापूर्वक हमें क्षमा करेंगे।

इस अङ्कके प्रकाशित घटनाओंके सकलनमें हमारे साथी प० श्रीजानकीनाथजी शर्मा, श्रीसुर्दर्जनसिंहजी, श्रीरामलालजी तथा श्रीगिवनाथजी दुवेने बड़ा परिश्रम किया है। हमारे अन्यान्य साधियोंने भी यथासाध्य बहुत सहयोग दिया है। इन सभके सम्मिलित प्रयत्नका ही फल यह विशेषाङ्क है। कोई घटना दुवारा छप गयी हो और प्रमादवज्ञ अन्यान्य भूलें रह गयी हो, उनकी जिम्मेदारी हमारी है और हम उन भूलोंके लिये करवद्व क्षमा-प्रार्थी हैं।

क्षमा-प्रार्थी,

हनुमानप्रसाद पोद्धार |
चिम्मनलाल गोस्वामी } सम्पादक

सत्कथा

सत्कथा शुचि संत भक्तोंसे मिलाती ।
सत्कथा हरिनामका अमृत पिलाती ॥
सत्कथा हरिचरित गायत्रमें लगाती ।
सत्कथा सब पाप तापोंको भगाती ॥
सत्कथा माता पिता गुरुओं मनाती ।
सत्कथा उनकी सदा सेवा कराती ॥
सत्कथा वैराग्य रस रुचिको बढ़ाती ।
सत्कथा हरि विरहकी ज्वाला जगाती ॥

सत्कथा प्रभु-मिलनके साधन बताती ।
सत्कथा प्रभु-प्रेमों पागल बनाती ॥
सत्कथा चर अचरमे प्रभुको दिखाती ।
सत्कथा सब जगत्का सेवक बनाती ॥
सत्कथा माया अविद्याको हटाती ।
सत्कथा ममता अहंताको मिटाती ॥
सत्कथा निजरूपका अनुभव कराती ।
सत्कथा भगवान्‌के दर्शन कराती ॥